Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

R
विषय संख्या ८०
पुस्तक संख्या प्र ८ ९ स
आगत पंजिका संख्या भा०२६ वि० १

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें। 386

112882

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३४७ D

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

स्वर्ण जयन्ती वर्ष १९८४-१९८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३८७ 112882

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

CATALOGUED 1973

भाग २६, खण्ड १

जनवरी-जून

१९२५

112882

ॐ ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ॐ
पुस्तक सं० सर०
आगत सं० २६(१-५)
तिथि०
गुरुकुल ग्रन्थालय कांगड़ी.

सम्पादक

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०

सहायक सम्पादक—देवीदत्त शुक्ल

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

वार्षिक मूल्य साढ़े छः रुपये

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची ।

नंबर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अन्तर्नाद	श्रीयुत वियोगी हरि	६७, २२६ और ३३५
२	अपनी बात		१५०, २६७, ३७६, ४६१, ६०५ और ७१६
३	अफ़ग़ानिस्तान	श्रीयुत दीनदयालु श्रीवास्तव, बी० ए०	५१६
४	अम्बिकाऽपराध-क्षमा-प्रार्थना (कविता) ...	श्रीयुत 'सत्कविदास'	७१
५	आन्दोलन	श्रीयुत मावलीप्रसाद श्रीवास्तव ...	५०७
६	आबकारी के महकमे के काम की सरकारी संभालोचना	श्रीयुत क्ष—	४०४
७	आराध्य देव (कविता)	श्रीयुत भगवानदीन पाठक (भगवन्त) ...	३८५
८	आँख की किरकिरी (कविता) ...	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	२७३
९	आँसू (कविता)	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	२२
१०	२१ अगस्त १९०३	श्रीयुत सुदर्शन	४२६
११	इस्लाम-धर्म और कला	श्रीयुत गिरिजाशङ्कर वाजपेयी ...	१२
१२	इँग्लैंड में भारतवर्ष	एक भारतीय	४०
१३	इँग्लैंड के नीच पेशेवाले अँगरेज़ों से हम क्या सीख सकते हैं ?	श्रीयुत सेंट निहालसिंह	६२२
१४	उर्दू-कविता	श्रीयुत सुदर्शन ... ९३, १८१ और	२९५
१५	एकादशी	श्रीयुत भारद्वाज ८७, २१३, ३९२ और	४४९
१६	कली (कविता)	श्रीयुत रामचरित उपाध्याय	२११
१७	कवितावली	श्रीयुत खञ्जीत मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी०	३९२
१८	कवि का आत्म-परिचय	श्रीयुत हृषीकेश	५१
१९	कौटिल्य की कुटिल नीति	श्रीयुत गोपाल दामोदर तामस्कर, एम० ए०, एल-टी०	५१३
२०	क्या हिन्दुओं में जातीयता नहीं थी ? ...	श्रीयुत रामदयाल तिवारी, बी० ए०, एल-एल० बी०	१८९
२१	गैसों के द्वारा विद्युत्प्रवाह	श्रीयुत जगद्विहारी सेठ	५४०
२२	चारु चयन	१२५, २४९, ३५१, ४७३, ५८० और	६८९
२३	चीन पर भारत का ऋण	श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए० ...	१७६
२४	चुनाव, प्रतिनिधि और मताधिकार ...	श्रीयुत मावलीप्रसाद श्रीवास्तव ...	६३४
२५	छाया (कविता)	श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त	५९
२६	जू	श्रीयुत रमाशङ्कर उपाध्याय	५५७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंबर	नाम	लेखक	पृष्ठ
२७	तुम और मैं (कविता)	श्रीयुत गोपालशरणसिंह ...	४६७
२८	देश की कथा		१४०, २६१, ३६६, ४८६, ५६६ और ७०७
२९	देश की बात...	समीक्षक ...	६७
३०	द्रविड़-जातीय भारतवासियों की सभ्यता की प्राचीनता ...	श्रीयुत पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी	२८२
३१	धर्मधुरन्धर (कविता)	श्रीयुत रामचरित उपाध्याय ...	६३३
३२	नवीन सर्बिया	श्रीयुत रमाशङ्कर उपाध्याय ...	६६०
३३	पद्य-पुष्प (कविता)	श्रीयुत भूपनारायण दीक्षित ...	३३४
३४	पाप-परिणाम	श्रीयुत सुदर्शन ...	२८९
३५	पाश्चात्य देशों में वेदों का अध्ययन ...	"शिलीमुख" ...	४९८
३६	५,००० वर्ष पूर्व का पञ्जाब	श्रीयुत सन्तराम, बी० ए० ...	७२
३७	पुस्तक-परिचय		१४४, २६४, ३७४, ४८८, ६०२ और ७११
३८	पेशावर का युद्ध	श्रीयुत वेणी शुक्ल ...	६१०
३९	प्रकृति (कविता)	श्रीयुत रामचरित उपाध्याय ...	२०१
४०	प्रारब्ध-परिवर्तन	श्रीयुत सुदर्शन ...	६५०
४१	ब्रिटिश-पार्लियामेंट	एक 'भारतीय' ...	२०३
४२	भगवान् ईसामसीह की छाया में ...	श्रीमती कमला किल्पेट्रिक ...	२२०
४३	भाषा-विज्ञान	श्रीयुत नलिनीमोहन सान्याल, एम० ए०, भाषा-तत्त्व-रत्न ...	६०
४४	भीतर और बाहर	श्रीयुत एन० सी० एम० ...	३१९
४५	मनःसंयोग	श्रीयुत सन्तराम, बी० ए० ...	५३२
४६	महाराज मानसिंह	श्रीयुत ब्रजरत्नदास, मन्त्री, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ...	१६६
४७	महावीर स्वामी (कविता)	श्रीयुत रामचरित उपाध्याय ...	५१२
४८	मानव-जाति और राष्ट्रीयता	श्रीयुत दीनदयालु श्रीवास्तव, बी० ए०	४०७
४९	मुग़ल-सभ्यता में हिन्दूत्व की छाप ...	श्रीयुत लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, एम० ए०	४३५
५०	मुक्ति का द्वार (कविता)	श्रीयुत गोपालशरणसिंह ...	६०९
५१	मुक्ति-पीठ	श्रीयुत ज्वालादत्त शर्मा ...	१९७
५२	योग-मीमांसा	श्रीयुत दिनकर शर्म्मा ...	५०५
५३	योरप के इतिहास का महत्त्व... ...	श्रीयुत भाई परमानन्द, एम० ए०	२७४
५४	लेजिस्लेटिव ऐसेम्बली की कुछ बातें ...	श्रीयुत ज्ञ—	३०२
५५	वर्ण-भेद	श्रीयुत श्रीकण्ठ पाठक, एम० ए०	९
५६	वह छबि (कविता)	श्रीयुत गोपालशरणसिंह ...	१६१
५७	विचित्र विचार (कविता)	श्रीयुत गोपालशरणसिंह ...	४२४
५८	विजय	श्रीयुत दीनानाथ ...	५५७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंबर	नाम	लेखक	पृष्ठ
५९	विपर्यय	श्रीयुत दीनानाथ	२७
६०	विराट् वीणा (कविता)	श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त	१
६१	विविध विषय	१०५, २३५, ३३८, ४५५, ५६९ और	६७२
६२	विश्व-कीर्ति	१०१ और	२३१
६३	विश्व-व्याप्ति (कविता)	श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त	२२८
६४	श्रीदेवनाथ महाराज	श्रीयुत मावलीप्रसाद श्रीवास्तव ...	२७७
६५	श्रीज्ञानेश्वर महाराज	श्रीयुत लक्ष्मीधर वाजपेयी	२
६६	सम्बन्ध (कविता)	श्रीयुत रामचरित उपाध्याय	५१
६७	ससीम और असीम	श्रीयुत मुमुक्षु	६५५
६८	संसार की गति	१३७, २५७, ३६६, ४८४, ५९० और	७०४
६९	सात्त्विक जीवन (कविता)	श्रीयुत रामचरित उपाध्याय	३९१
७०	सांख्य-दिग्दर्शन	श्रीयुत ईश्वरचन्द्र ब्रह्मचारी	६१८
७१	सूर और बिहारी	श्रीयुत कृष्णबिहारी मिश्र, बी० ए०, एल-एल० बी०	१६३
७२	हज़रत अलीसाहब	श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल ..	६४४
७३	हमारे राष्ट्रीय जीवन के कुछ गुण दोष ...	श्रीयुत मावलीप्रसाद श्रीवास्तव ...	३८६
७४	हिन्दूत्व	श्रीयुत रामदयाल तिवारी, बी० ए०, एल-एल० बी०	२३

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची ।

रङ्गीन चित्र ।

नंबर	नाम	महीना	पृष्ठ
१	अनन्त पथ	फ़रवरी	... २०८
२	ईश्वर के प्रति	मार्च	... ३३२
३	एक जापानी रमणी	एप्रिल	... ४०८
४	गणेश-जननी	जनवरी	... १०२
५	गृह-हीन (१)	,, ...	... ४०
६	गोस्वामी तुलसीदास	,, ...	मुखपृष्ठ
७	,, (२)	,, ...	... ६४
८	,, (३)	,, ...	... ७२
९	छाया	मई	... ५३७
१०	जगाई-मधाई	जून	... ६९६
११	दिनावसान	,, ...	मुखपृष्ठ
१२	धनुर्धर	एप्रिल	मुखपृष्ठ
१३	नटवर	मई	मुखपृष्ठ
१४	निर्जन	एप्रिल	... ४४०
१५	निस्तब्धता	फ़रवरी	... १७६
१६	पनघट	मई	... ५८०
१७	पूर्व-स्मृति	जून	... ६२४
१८	भारतमाता	जनवरी	... १०१
१९	महाराज सवाई जगतसिंह	मार्च	... २९२
२०	रहस्य-भेद	जनवरी	... ६०
२१	वह छबि	फ़रवरी	मुखपृष्ठ
२२	शेष अवलम्ब (१)	जनवरी	.. ८
२३	,, (२)	,, ...	... १६
२४	,, (३)	,, ...	... २४
२५	समुद्रगुप्त की प्रशस्ति	एप्रिल	... ४४६
२६	सम्राट् बहादुरशाह	मार्च	मुखपृष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सादे चित्र।

नम्बर	नाम	पृष्ठ
१–१४	अफ़ग़ानिस्तान-सम्बन्धी १४ चित्र	५२०–५३१
१५–१७	आयर्लैंड की वर्तमान अवस्था-सम्बन्धी ३ चित्र	५९१–५९३
१८–३०	इस्लाम-धर्म और कला-सम्बन्धी १३ चित्र	१३–२१
३१–४३	इँग्लैंड में भारतवर्ष-सम्बन्धी १३ चित्र	४१–४९
४४–५१	इँग्लैंड के नीच पेशेवाले अँगरेज़ों से हम क्या सीख सकते हैं ?-सम्बन्धी ८ चित्र ...	६२३–६३२
५२	गणेश-जननी	१०२
५३–७७	गैसों के द्वारा विद्युत्प्रवाह-सम्बन्धी २५ चित्र	५४३–५५५
७८–८३	जबलपुर में-सम्बन्धी ६ चित्र	४६२–४६५
८४–९४	जू-सम्बन्धी ११ चित्र	४४७–४५४
९५–११३	नवीन सर्बिया-सम्बन्धी १९ चित्र	६६१–६७०
११४–१२१	पक्षी और पशु-संसार के फोटो किस प्रकार लिये जाते हैं-सम्बन्धी ८ चित्र ..	३५९–३६४
१२२–१४६	५,००० वर्ष पूर्व का पञ्जाब-सम्बन्धी २५ चित्र	७३–८६
१४७–१५९	ब्रिटिश-पार्लियामेंट-सम्बन्धी १३ चित्र...	२०४–२१२
१६०–१६६	भगवान् ईसामसीह की छाया में सम्बन्धी ७ चित्र	२२१–२२५
१६७	भगवान् दयानन्द	२३३
१६८–१७७	भीतर और बाहर-सम्बन्धी १० चित्र	३२१–३३३
१७८	महात्मा गाँधी	२६२
१७९–१९६	मानवजाति और राष्ट्रीयता-सम्बन्धी १८ चित्र	४१०–४२२
१९७	मावड़े का मैदान	११०
१९८–२०१	राजा बाबू-सम्बन्धी ४ चित्र	५८५–५८६
२०२–२१३	लेजिस्लेटिव एसेम्बली की कुछ बातें-सम्बन्धी १२ चित्र	३०३–३१०
२१४	श्रीयुत शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय	३८४
२१५	स्वर्गीय नित्यानन्द मीमांसक	६७५
२१६–२१८	हज़रत अली साहब-सम्बन्धी ३ चित्र	६४५–६४८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत माता

A Three-Colour Reproduction.

Block by
THE INDIAN PHOTO ENGRAVING WORKS
8, Park Road, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

A Three-colour Reproduction.

Block by
THE INDIAN PHOTO ENGRAVING WORKS,
8, Park Road, Allahabad.

गोस्वामी तुलसीदास ।

[श्रीयुत एम० ए० रहमन
चगताई, लाहौर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वह छवि ।

A Three-colour Reproduction.
Block by
THE INDIAN PHOTO ENGRAVING WORKS,
8, Park Road, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8, Park Road, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणेश-जननी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेष-अवलम्ब (१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेष अवलम्ब (२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेष-अवलम्ब (३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृह-हीना (१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

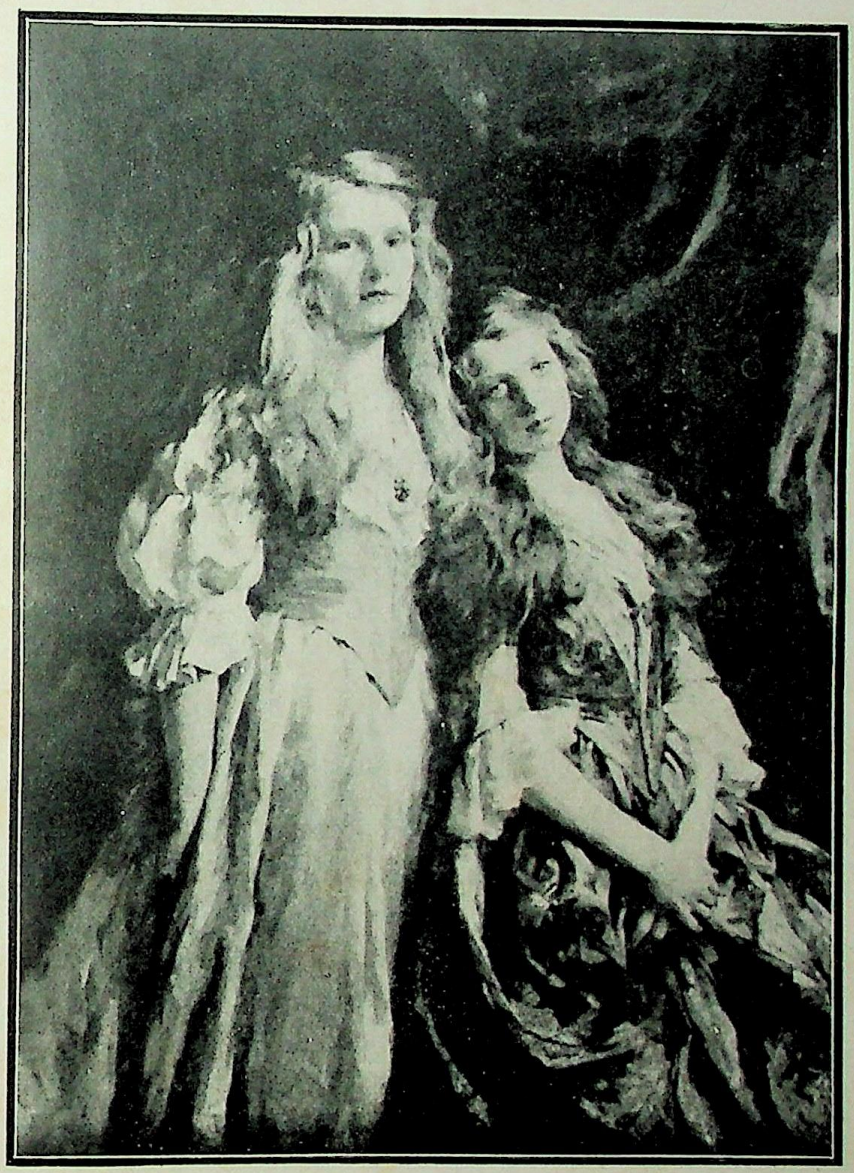

गृह-हीना (२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गृह-हीना (३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

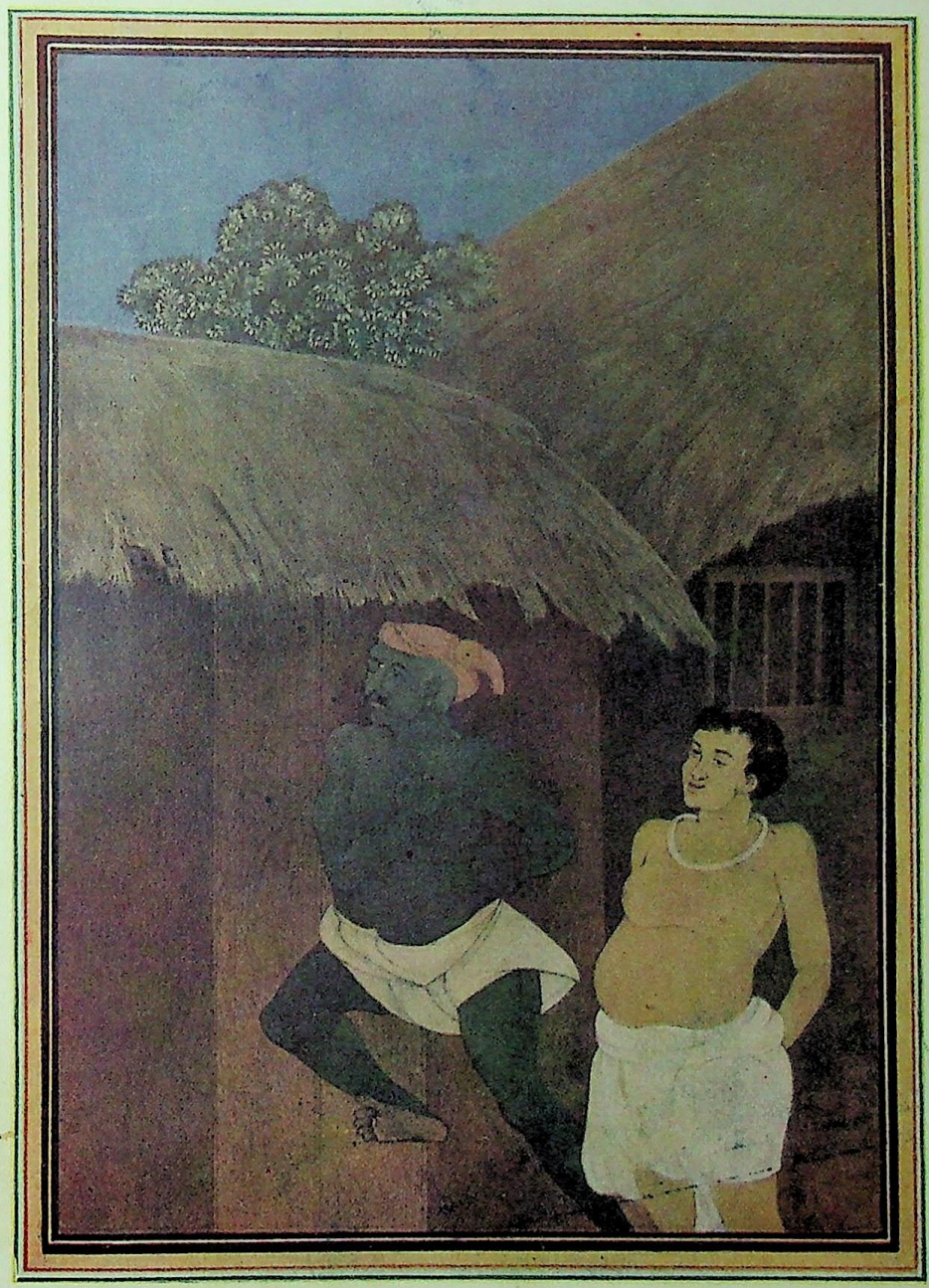

जगाई-मधाई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

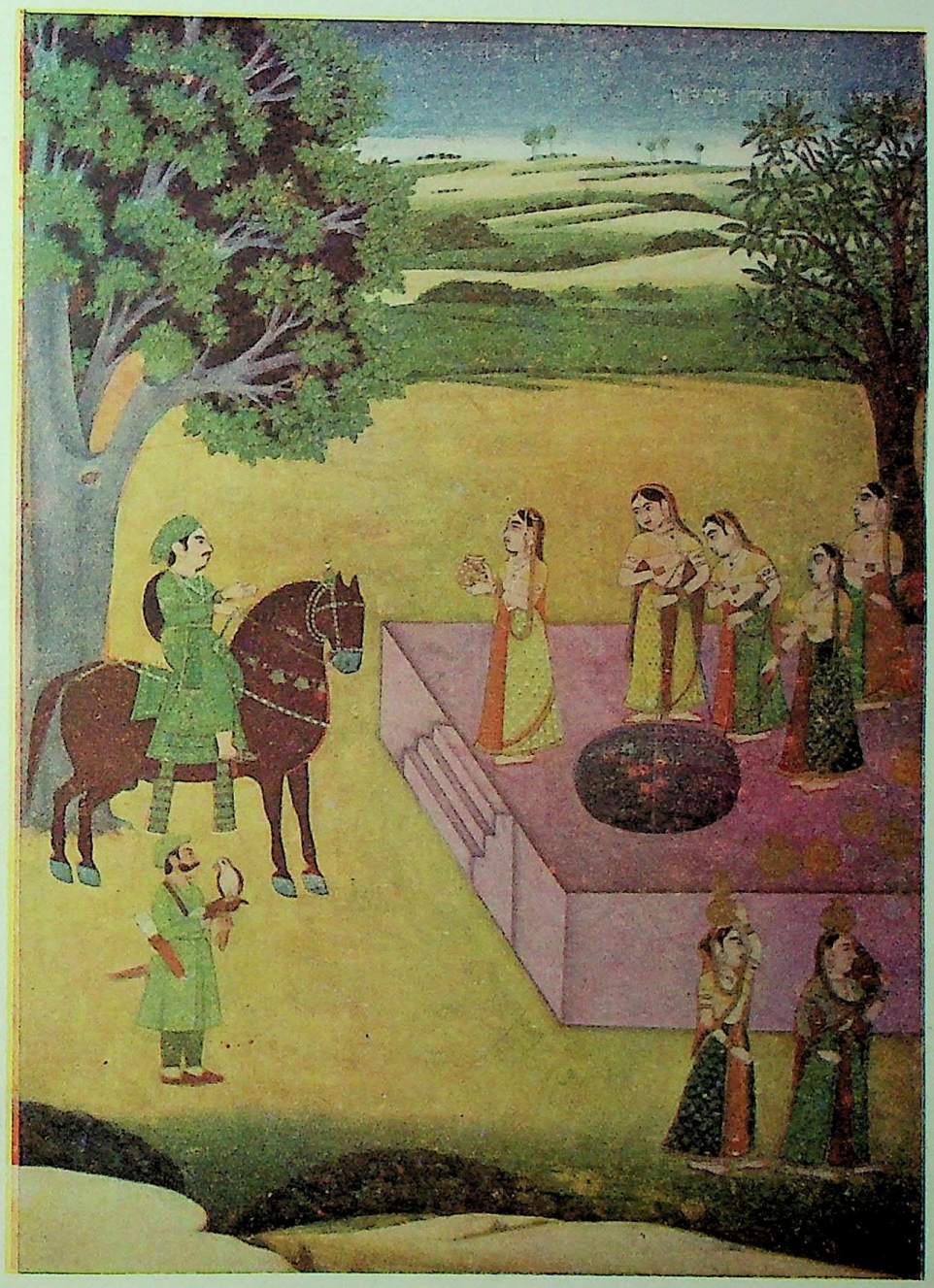

घनघट ।

पण्डित हनूमान शर्मा, जयपुर
की कृपा से प्राप्त ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

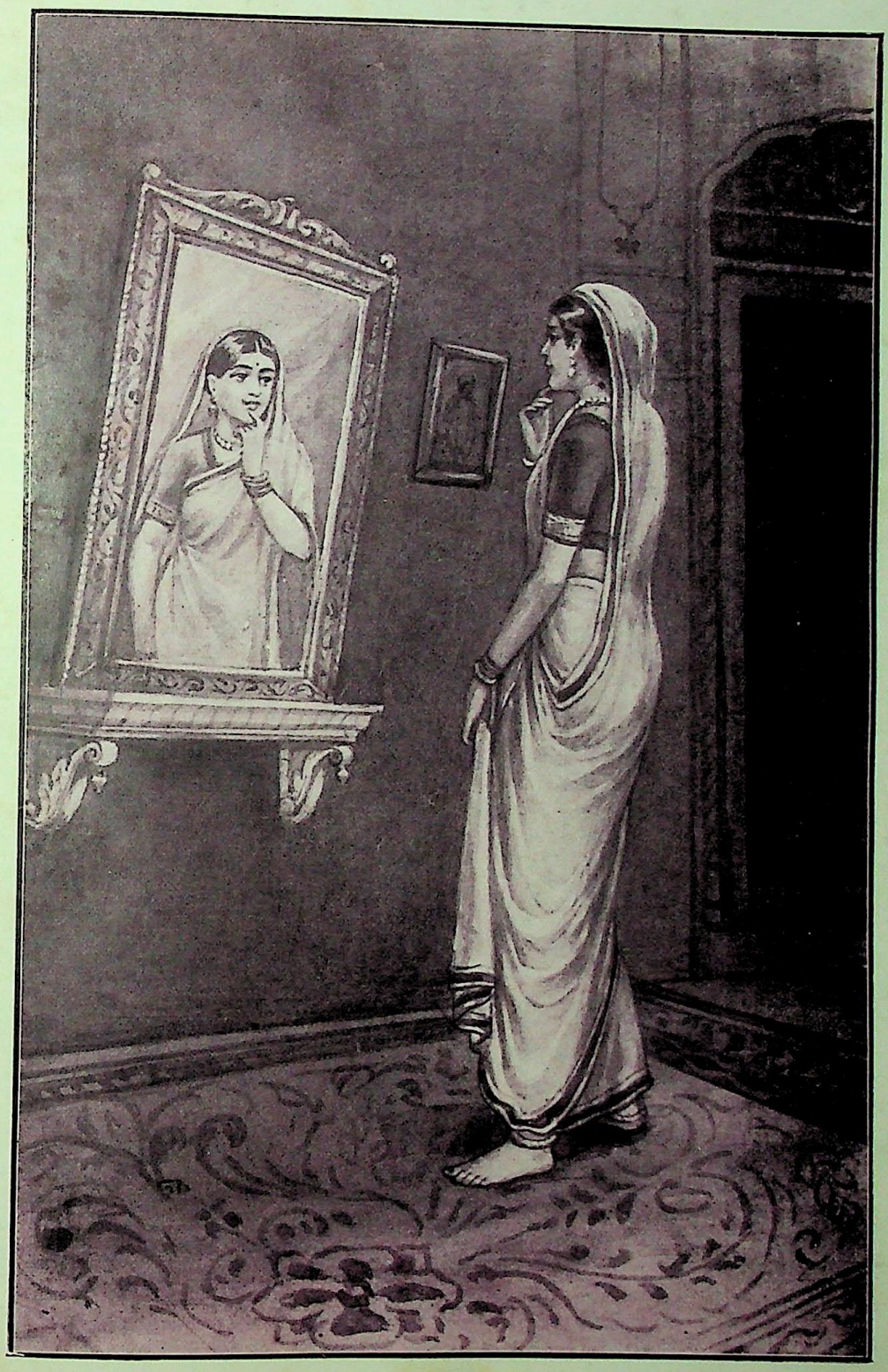

पूर्व-स्मृति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

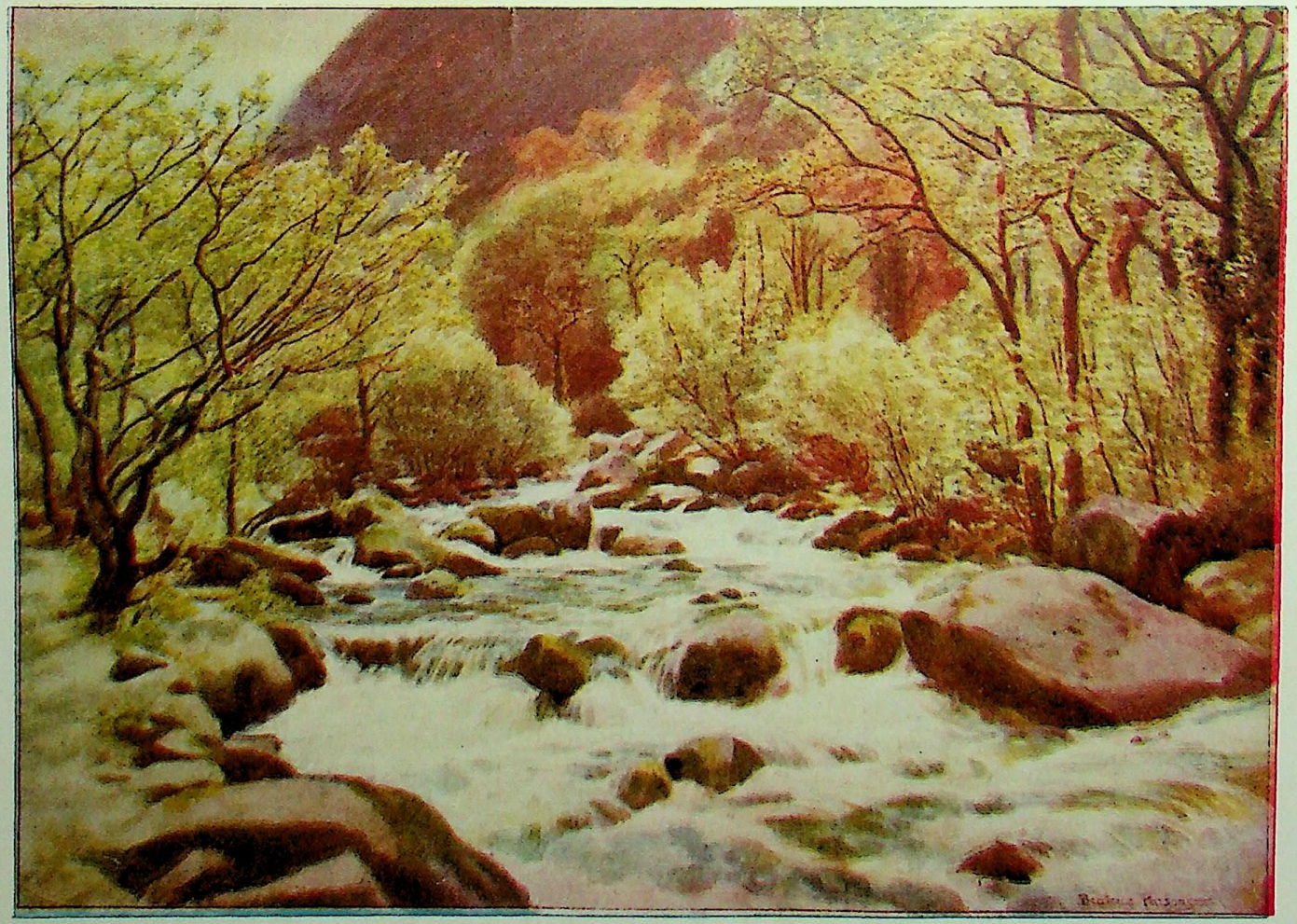

निर्जन ।

A Three-colour Reproduction.
Block by
THE INDIAN PHOTO ENGRAVING WORKS.
8, Park Road, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नटवर गिरिधारी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जापानी रमणी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

A Three-colour Reproduction.
Block by
THE INDIAN PHOTO ENGRAVING WORKS,
8, Park Road, Allahabad.

धनुर्धर

चित्रकार ए० आर० असगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २६, खण्ड १] जनवरी १९२५—पौष १९८१ [संख्या १, पूर्ण-संख्या ३०१

विराट्-वीणा ।

तुम्हारी वीणा है अनमोल,
हे विराट, जिसके दो तूँबे हैं भूगोल-खगोल ।
दयादण्ड पर न्यारे न्यारे
गूँज रहे हैं प्यारे प्यारे
कोटि गुणों के तार तुम्हारे
खुली प्रलय की खोल !
तुम्हारी वीणा है अनमोल ।

हँसता है कोई रोता है,
जिसका जैसा जी होता है,
सुध-बुध सब कोई खोता है,
क्या विचित्र हैं बोल !
तुम्हारी वीणा है अनमोल ।

इसे बजाते हो तुम जब लों
नाचेंगे हम सब भी तब लों
चलने दो, न कहो कुछ—कब लों,
यह क्रीड़ा-कल्लोल ।
तुम्हारी वीणा है अनमोल ।

मैथिलीशरण गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीज्ञानेश्वर महाराज।

महाराष्ट्र-प्रान्त में विक्रम की चौदहवीं शताब्दी से एक विशेष प्रकार के ज्ञानी साधु कवियों की परम्परा प्रारम्भ हुई थी। इस साधु-परम्परा ने महाराष्ट्र में अपने मौखिक और लिखित उपदेशों तथा ग्रन्थों के द्वारा लोगों में धर्म-जागृति उत्पन्न की। उस समय की जनता संस्कृत नहीं समझती थी, अतएव सर्वसाधारण की बोलचाल की मराठी भाषा में ही उन्होंने अपने ग्रन्थ लिखे। ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, रामदास ये चार साधु उस प्रान्त के अन्य सैकड़ों साधु कवियों में मुख्य समझे जाते हैं। इन साधुवर्यों के उपदेशों का ही यह प्रभाव था कि महाराष्ट्र-समाज ने अपना 'स्वत्व' पहचाना; और स्वधर्म तथा स्वराज्य की स्थापना में उस समाज ने आत्म-बलिदान किया। इन साधुओं के उपदेश का ही यह प्रभाव है कि आज भी महाराष्ट्र-समाज अपने प्राचीन धर्म-कर्मों पर आरूढ़ है। इस बीच में जब कि भारत के अन्य प्रान्तों पर मुसलमान और ईसाई-धर्म के भावों तथा उनकी वेषभूषा का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है, महाराष्ट्र-प्रान्त के लोगों—विशेषकर वहाँ की स्त्रियों—में वही प्राचीन धर्मभाव और वेषभूषा क़ायम है। इन साधुओं में श्रीज्ञानेश्वर महाराज एक मुख्य साधु कवि हैं। ये मराठी भाषा के आदि-कवि समझे जाते हैं। अर्थात् जैसे हिन्दी में महाकवि चन्दबरदाई का ग्रन्थ पृथ्वीराज रायसा प्रथम माना जाता है, उसी प्रकार मराठी में ज्ञानेश्वर महाराज का ग्रन्थ 'ज्ञानेश्वरी' (गीता की पद्यात्मक टीका) प्रथम माना जाता है। इसके पहले का कोई ग्रन्थ मराठी भाषा में उपलब्ध नहीं है।

पूर्वज-वृत्तान्त।

श्रीज्ञानेश्वर महाराज की माता का नाम रखुमाबाई और पिता का नाम विट्ठल पन्त था। इतिहास-प्रसिद्ध प्रतिष्ठान (आज-कल का पैठन) नगर के निकट आपे गाँव में गोविन्द राव नामक एक पवित्र और कर्मठ ब्राह्मण के घर में विट्ठल पन्त का जन्म हुआ था। गोविन्द राव (ज्ञानेश्वर के दादा) जी ने पुत्रोत्पत्ति के लिए गायत्री-पुरश्चरण इत्यादि बहुत किये थे। शायद इसी लिए, अथवा अन्य संस्कारों के वश, विट्ठल पन्त लड़कपन ही से बहुत विरक्त थे। फलतः ब्रह्मचर्यावस्था में ही वे माता-पिता इत्यादि का मायाजाल तोड़कर और गृह-सम्पत्ति को विषवत् समझ कर तीर्थ-यात्रा के लिए बाहर निकल पड़े। इधर-उधर तीर्थों का भ्रमण करते हुए कुछ दिनों बाद वे अलङ्कापुरी (आज-कल का आलन्दी) नामक तीर्थ-क्षेत्र में पहुँचे। वहाँ शिदो पन्त नामक एक परम धार्मिक सद्गृहस्थ रहते थे। इनको अतिथि-अभ्यागत की सेवा-शुश्रूषा से बहुत प्रेम था। इसलिए हमारे ब्रह्मचारी विट्ठल पन्त को भी वे बड़े आदर-सत्कार से अपने घर ले आये और नित्य-नियमानुसार उनको भी भोजन इत्यादि कराकर सन्तुष्ट किया। परन्तु संयोगवश उसी रात को शिदो पन्त महाशय को यह दैवी स्वप्न हुआ कि "तुम अपनी विवाह-योग्य कन्या विट्ठल पन्त ब्रह्मचारी को अर्पण करके धन्य बनो!" सुबह होने पर उन्होंने यह वृत्तान्त विट्ठल पन्त से बतलाया। विट्ठल पन्त स्वाभाविक ही बड़े विरक्त थे, इसलिए उन्होंने कहा कि "जिस प्रकार ईश्वर ने आपको स्वप्न दिया है, उसी प्रकार यदि मुझे भी देगा तो मैं आपके कथन को स्वीकार करूँगा, अन्यथा नहीं।" परन्तु ईश्वर की लीला बड़ी विचित्र है, उसी दिन रात को विट्ठल पन्त को भी वैसा ही स्वप्न हुआ। फिर क्या था, दूसरे ही दिन तिथि इत्यादि निश्चित करके शुभमुहूर्त में देवी रखुमाबाई के साथ विट्ठल पन्त का विवाह कर दिया गया।

विवाह के बाद विट्ठल पन्तजी बहुत दिन तक आलन्दी में ही दाम्पत्य-सुख का अनुभव करते रहे। परन्तु हम पहले ही कह चुके हैं कि विट्ठल पन्तजी स्वभाव से ही एक विरक्त पुरुष थे, अतएव गृहस्थी से शीघ्र ही उनका मन उचट गया; और संन्यास ग्रहण करने की उत्कण्ठा उनके मन में प्रबल हुई। अपनी धर्मपत्नी रखुमाबाईजी से कई बार उन्होंने संन्यास ग्रहण करने के लिए आज्ञा माँगी; परन्तु स्त्रियों को स्वाभाविक ही गृहस्थी विशेष प्रिय होती है—वे भला अपने पति को संन्यास ग्रहण करने की अनुज्ञा क्यों देने लगीं? इसके सिवा पति-पत्नी दोनों अभी तरुणावस्था में थे और कोई सन्तति भी नहीं उत्पन्न हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। परन्तु फिर भी विट्ठल पन्त संन्यास ग्रहण करने के लिए बिलकुल आतुर हो रहे थे। अन्त में एक दिन जब कि उनकी पत्नी निद्रितावस्था में थीं, उनको जाग्रत करके एक-दम विट्ठल पन्त ने प्रश्न किया कि "क्या अब मैं संन्यास लेऊँ? रखुमाबाई अर्धनिद्रा अवस्था में थीं; और ज़बरदस्ती जगाई गई थीं, अतएव कुछ प्रमाद में, और कुछ त्रस्त होकर, उन्होंने उत्तर दिया, "अच्छा, जाओ, ले लो!" बस, उनके मुख से इन शब्दों का निकलना था कि विट्ठल पन्त तुरन्त ही घर से चल पड़े, और मंज़िल-दर-मंज़िल तय करते हुए काशीक्षेत्र में आ पहुँचे। काशी में उस समय श्रीपाद यतीश्वर नामक एक बहुत बड़े विद्वान् संन्यासी रहते थे। उनकी सेवा में जाकर विट्ठल पन्त ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा कि "मैं अपनी धर्म-पत्नी से आज्ञा लेकर संन्यासदीक्षा लेने के लिए आपकी सेवा में आया हूँ।" श्रीपाद यतीश्वर ने भी देखा कि यह युवक कोई होनहार पुरुष मालूम होता है, वैराग्यशील भी है और शास्त्रानुसार अपनी पत्नी से आज्ञा लेकर आया है, अतएव उन्होंने विट्ठल पन्त को संन्यासदीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया और उनका नाम "चैतन्य" रक्खा। चैतन्य संन्यासाश्रम के कर्त्तव्य बड़ी दक्षता से पालन करने लगे; और अपने गुरु की ऐसी अपूर्व सेवा की कि थोड़े ही दिनों में वे यतीश्वरजी के पट्टशिष्य बन गये। अन्त में स्वामीजी ने अपने मठ का सारा आधिपत्य चैतन्य को ही सौंप दिया और आप तीर्थयात्रा करने के लिए बाहर निकल पड़े। रामेश्वर जाते हुए मार्ग में वे आलन्दीक्षेत्र में ठहर गये। वहाँ संयोगवश विट्ठल पन्त की पत्नी, श्वसुर और सास स्वामीजी के दर्शन को आये। उनसे विट्ठल पन्त का सब समाचार मालूम होने पर स्वामीजी काशी लौट आये, वहाँ आकर उन्होंने अपने शिष्य चैतन्य को समझाया कि पत्नी के रहते हुए, पुत्र-सन्तान न होते हुए, और पत्नी की स्पष्ट सम्मति बिना, संन्यास लेना शास्त्रनिषिद्ध है, इसलिए तुम गृहस्थाश्रम को फिर स्वीकार करो। इस प्रकार स्वामीजी ने चैतन्य स्वामी को फिर विट्ठल पन्त बना कर आलन्दी को वापस कर दिया। विट्ठल पन्त जब अपने घर आलन्दी आये तब वहाँ ब्राह्मणों ने उनके आश्रमान्तर को अशास्त्रीय बतला कर उनका बहिष्कार कर दिया! परन्तु विट्ठल पन्त को इससे कुछ भी खेद नहीं हुआ; क्योंकि उनका जीवन पुण्यमय था। वे बराबर ध्यान-धारणा, भजन-पूजन और शास्त्र-अध्ययन करते हुए गृहस्थधर्म का पालन करते रहे।

जन्म और संस्कार।

ज्ञानेश्वरजी के पिता विट्ठल पन्त की उपर्युक्त कथा से ज्ञानेश्वरजी के जन्म और उनके संस्कारों का बहुत सम्बन्ध है, इसी कारण हमने उपर्युक्त कथा विस्तारपूर्वक दी है। विट्ठल पन्त के दुबारा गृहस्थाश्रम स्वीकार करने के बारह वर्ष बाद शाके ११९० में उनके प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम निवृत्ति रक्खा गया। दूसरा लड़का तीन वर्ष बाद शाके ११९३ में श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी के दिन उत्पन्न हुआ। यही हमारे चरितनायक ज्ञानेश्वरजी हैं, तीसरा लड़का शाके ११९६ में पैदा हुआ, जिसका नाम सोपानदेव रक्खा गया। चौथी सन्तति ११९९ में उत्पन्न हुई। यह कन्या थी। इसका नाम मुक्ताबाई रक्खा गया। ज्ञानेश्वरी का हिन्दी-अनुवाद करनेवाले पण्डित रघुनाथ रावजी भगाड़े ने ज्ञानेश्वरजी का जन्म शाके १२९७ लिखा है। पर यह अशुद्ध जान पड़ता है। क्योंकि ज्ञानेश्वरजी के समकालीन साधु नामदेव की दासी जनाबाई ने, जो एक स्वयं भक्त कवि साधुनी थीं, अपने एक अभङ्ग में इस प्रकार लिखा है:—

शालीबाहन शके, अकराशें नव्वद।
निवृत्ति आनन्द, प्रकटले॥ १॥
त्र्याण्णवचे सालीं, ज्ञानदेव प्रकटले।
सोपान देखिले, शाण्णवांत॥ २॥
नव्व्याण्णवांचे सालीं, मुक्ताबाई देखिली,
जनी म्हणे केली, मात त्यानी॥ ३॥

इस पद्य में जनाबाई ने उन तीनों भाइयों और बहन की जन्म-परम्परा वही बतलाई है जो हमने ऊपर लिखी है। अस्तु। ये तीनों भाई और बहन, अपने माता-पिता के ज्ञान-सम्पन्न होने और अपने पूर्व-संस्कारों के कारण जन्मतः ज्ञानसम्पन्न थे। बहुत छोटी अवस्था में ही वे जो कुछ भाषण करते थे उससे जान पड़ता है कि ये कोई अवतारी व्यक्ति हैं। उनका भाषण पण्डितों का सा होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था; और आलन्दी नगर के ब्राह्मण उनके भाषण को सुन कर चकित हो जाया करते थे। परन्तु फिर भी, उन बालकों की अवस्था क्रमशः १५, १२, ९ और ६ वर्ष की होने पर भी किसी ने उस कुटुम्ब को बिरादरी में शामिल करने की परवा नहीं की। विट्ठल पन्तजी ने बालकों के यज्ञोपवीत-संस्कार करने चाहे, परन्तु ब्राह्मणों ने बालकों को संन्यासी पुत्र कह कर यज्ञोपवीत कराने से ही इनकार कर दिया। विट्ठल पन्त ने ब्राह्मणों से बहुत प्रार्थना करके विनती की कि आप लोग जो कुछ कहें वह प्रायश्चित्त करने को हम तैयार हैं, परन्तु दुराग्रही ब्राह्मणों ने एक भी न सुनी और कहा कि तुमने संन्यास लेकर फिर गृहस्थाश्रम स्वीकार किया है, यह शास्त्र-निषिद्ध है। देहान्त प्रायश्चित्त को छोड़ कर इसका और कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। यह सुन कर विट्ठल पन्तजी सकुटुम्ब प्रयाग चले आये; और अपनी धर्म-पत्नी के साथ श्रीत्रिवेणीजी में जलसमाधि ले ली। इस प्रकार श्रीविट्ठल पन्तजी ने देहान्त प्रायश्चित्त करके ब्राह्मणों के प्रति वैसी ही श्रद्धा प्रकट की जैसी उन्होंने आश्रमान्तर करने में अपने गुरु के वचनों पर श्रद्धा प्रकट की थी।

ज्ञानेश्वर महाराज, अपने दोनों भाइयों और बहन के साथ, जन्मतः ज्ञानसम्पन्न थे, अतएव उनको मातृ-पितृ-वियोग का कुछ भी दुःख नहीं हुआ। देश लौटने पर उनके भाई-बन्दों ने उन्हें घर नहीं आने दिया, और न पैत्रिक सम्पत्ति में ही कोई भाग दिया। इससे चारों भाई-बहनों को भिक्षावृत्ति का अवलम्बन करना पड़ा। उपनयन-संस्कार के लिए बड़े भाई निवृत्तिनाथजी बिलकुल उत्सुक नहीं थे; क्योंकि वे सबसे अधिक विरक्त और ब्रह्मज्ञानी थे; पर ज्ञानेश्वर महाराज की यह सम्मति अवश्य थी कि वर्णाश्रम-धर्म के अनुसार यज्ञोपवीत संस्कार ज़रूर होना चाहिए। एक बार जाति-शुद्धि के विषय में ज्ञानेश्वरजी ज़रा खिन्न दिखाई दिये। उस समय उनके छोटे भाई सोपानदेव ने उनको समझाते हुए कहा, "देखो जात-पाँत से हमको क्या करना है? सच तो यह है कि भगवान् के चरणों में जिसकी भक्ति है वही सबसे श्रेष्ठ है।" इतना कह कर उन्होंने प्राचीन-काल के उन अनेक ऋषि-मुनियों का नाम लिया जिनकी जाति का कोई पता नहीं था, अथवा अत्यन्त नीच जाति के होते हुए भी तप और ईश्वर-भक्ति के कारण पूज्य समझे गये हैं।

ज्ञानेश्वर और उनके भाई-बहनों के संस्कार इत्यादि के विषय में बहुत कुछ ऊहा-पोह होने के बाद आलन्दी के ब्राह्मणों ने उनसे कहा कि, तुम पैठन के ब्राह्मणों का शुद्धिपत्र ले आओ तो हम तुमको शुद्ध मान लेंगे। इसलिए वे चारों भाई-बहन पैठन गये और वहाँ की ब्रह्ममण्डली से शुद्धि-पत्र देने के लिए प्रार्थना की। परन्तु उन लोगों ने यह निर्णय किया कि संन्यासी-पुत्रों को हम ब्राह्मण नहीं मान सकते और न उपनयन का ही अधिकार दे सकते हैं। परन्तु जब ज्ञानेश्वर महाराज ने अपने योगबल से कई अलौकिक चमत्कार दिखलाये तब पैठन के ब्राह्मणों ने उनको अवतारी पुरुष माना और शुद्धि-पत्र दे दिया। उस शुद्धिपत्र में यह लिखा था—

"ज्ञानेशो भगवान् विष्णुः निवृत्तिर्भगवान् हरः।
सोपानो भगवान् ब्रह्मा मुक्ताख्या ब्रह्मचित्कला" ॥

अर्थात् ज्ञानेश्वर साक्षात् विष्णु, निवृत्तिदेव हर, सोपानदेव ब्रह्मा और मुक्ताबाई माया का अवतार हैं। ज्ञानेश्वरजी ने पैठन के ब्राह्मणों को जो चमत्कार दिखलाये उनमें भैंसे के मुख से वेदपाठ और श्राद्ध के लिए मूर्तिमान पितरों को बुलाना, इत्यादि प्रसिद्ध चमत्कार हैं। पैठन से लौटते समय मार्ग में नेवासें नामक ग्राम में सच्चिदानन्द नामक कोई पुरुष मर गया था; और उसकी स्त्री सती होने जा रही थी। उसने इन चारों मूर्तियों को नमस्कार किया तब ज्ञानेश्वरजी ने उसको यह आशीर्वाद दिया, "अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव"। परन्तु जब पीछे से उनको मालूम हुआ कि इसका पति मृत हो चुका है तब ज्ञानेश्वरजी ने उसको जीवित कर दिया। इससे उनको लोग सचमुच ही ईश्वर का अवतार समझने लगे और उनकी पूजा करने लगे। ज्ञानेश्वरजी ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ "ज्ञानेश्वरी" भी इसी स्थान पर रचा था।

गुरुमन्त्र।

आलन्दी से जब वे लोग शुद्धि-पत्र लेने को पैठन जा रहे थे, मार्ग में त्र्यम्बकेश्वर नामक स्थान पर उतर पड़े थे। वहीं ज्ञानेश्वरजी के बड़े भाई निवृत्तिनाथ को गैनी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाथ नामक एक तपस्वी साधु के दर्शन हुए। इस साधु ने निवृत्तिनाथ की योग्यता देख कर उन्हें गुरुदीक्षा दी। फिर निवृत्तिनाथजी ने अपने दोनों भाइयों और बहन को भी वहीं गुरुमन्त्र देकर कृतार्थ किया। तभी से वे लोग निवृत्तिनाथ से बन्धु का नाता छोड़ कर गुरु का नाता मानने लगे। ज्ञानेश्वरजी ने अपने ग्रन्थों में गुरु अथवा स्वामी या पिता का स्मरण करते हुए निवृत्तिनाथ का ही स्मरण किया है।

आलन्दी लौटने पर।

पैठन से आलन्दी वापस आने पर वहाँ के ब्राह्मणों ने उनका पावनपत्र देख कर बहुत ही आदर-सत्कार किया। जो लोग उनको 'दूर दूर' करते थे वही लोग आकर अब उनके पैरों पड़ने लगे। सब ब्राह्मण लोगों ने उनको अपने कुटुम्ब में मिला लिया और प्रतिदिन उनको भोजन के लिए बुलाने लगे। परन्तु बिसोबा चेटी नामक एक दुष्ट मनुष्य फिर भी नहीं सन्तुष्ट हुआ। वह सदैव उनको संन्यासी-पुत्र कह कर उनकी हँसी उड़ाया करता था। यह घर का सुखी था, अतएव उसके प्रभाव में आकर अन्य कुछ लोग भी ज्ञानेश्वरजी को तङ्ग किया करते थे। अतएव उन्होंने फिर कई अलौकिक चमत्कार आलन्दी के लोगों को दिखलाये, जिससे बिसोबा चेटी ज्ञानेश्वरजी के शरण आया। उन्होंने उसके अपराधों को क्षमा करके अपना शिष्य बना लिया।

तीर्थयात्रा और धर्मोपदेश।

उन्हीं दिनों के लगभग महाराष्ट्र के एक तत्कालीन प्रसिद्ध साधु नामदेवजी से ज्ञानेश्वरजी की भेट हो गई। दोनों साधु परस्पर मिल कर बड़े आनन्दित हुए; और फिर सब मिल कर तीर्थयात्रा के लिए निकले। अनेक क्षेत्रों में धर्म-चर्चा करते और अलौकिक चमत्कार दिखला कर लोगों को सन्मार्ग में लगाते हुए ज्ञानेश्वर महाराज काशीक्षेत्र में आये। वहाँ मुद्गलाचार्य नामक एक महाशय उस समय यज्ञ कर रहे थे। उस अवसर पर वहाँ बड़े बड़े विद्वान् एकत्र हुए थे और यज्ञ में अग्रपूजा का मान किसको दिया जाय, इसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। ज्ञानेश्वर महाराज भी उस समय वहीं जाकर उपस्थित हो गये। वाद-विवाद के बाद यह निश्चय हुआ कि एक हथिनी की सूँड़ में पुष्पमाला दी जाय और वह हथिनी जिसके गले में माला डाल दे उसी को अग्रपूजा का मान दिया जाय। फलतः हथिनी ने उस समुदाय में श्रीज्ञानेश्वर के सामने आकर उनके गले में माला पहना दी। ज्ञानेश्वरजी का परिचय पाकर सब विद्वन्मण्डली बड़ी प्रसन्न हुई और यज्ञ में उन्हीं की अग्रपूजा की गई। श्रीकाशी विश्वेश्वरनाथ ने भी उनके हाथ से यज्ञ का पुरोडाश ग्रहण किया। काशी से ज्ञानेश्वरजी उत्तर के अन्य सब तीर्थों में भ्रमण करते हुए द्वारका पहुँचे और वहाँ से फिर मारवाड़ होते हुए पंढरपुर वापस आये। वहाँ विट्ठलजी के दर्शन करके धर्मोपदेश करते हुए आलन्दी वापस आगये।

आलन्दी में आकर श्रीज्ञानेश्वर अन्त-समय तक निरन्तर वेदान्तचर्चा, कथा-कीर्तन, भजन-पूजन इत्यादि करते रहे। भागवत, योगवासिष्ठ, भगवद्गीता इत्यादि धार्मिक ग्रन्थों पर प्रवचन करके लोगों को सन्मार्ग में लगाते रहे। एक बार उनकी कीर्ति सुन कर चांगदेव नामक एक सिद्ध योगी के हृदय में मत्सर उत्पन्न हुआ। चांगदेव बड़ा विद्वान् था; और काशी इत्यादि अनेक स्थानों में इसने विजयपत्र प्राप्त किये थे। कहते हैं कि हज़ार दो हज़ार शिष्य साथ लेकर, व्याघ्र पर बैठा हुआ और हाथ में सर्प की चाबुक धारण किये हुए, वह ज्ञानेश्वर महाराज की परीक्षा लेने को आलन्दी आया। ज्ञानेश्वरजी उसका भीतरी उद्देश समझ गये; और उसका गर्वहरण करने के लिए—जिस दीवार पर वे बैठे थे उसी को हाथी की तरह चला कर, उसका स्वागत करने के लिए गये। यह चमत्कार देख कर चांगदेव भौचक्का रह गया, उसका सारा गर्व जाता रहा और वह ज्ञानदेवजी के शरण आकर उनका शिष्य बन गया। उसके नाम से ज्ञानेश्वरजी ने "चांगदेव पासष्टी" नामक एक ग्रन्थ भी लिखा है।

समाधि।

जब ज्ञानेश्वर महाराज की अवस्था २२ वर्ष की हुई तब उन्होंने विचार किया कि अब अधिक दिन तक इस नश्वर संसार में रहने की कोई आवश्यकता नहीं। हमारे अवतार का कार्य समाप्त हो चुका। इसलिए आलन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इन्द्रायणी नदी के तट पर उन्होंने एक गुफा तैयार करवाई । कार्तिक वदी ११ को सब सन्तों ने मिल कर भजन-कीर्तन किया, द्वादशी को सबने पारण किया, त्रयोदशी को श्रीज्ञानेश्वर ने तुलसीपत्र और बिल्वपत्र का आसन तैयार किया और गुफा के अन्दर प्रविष्ट होकर, योगाभ्यास के द्वारा ईश्वर का ध्यान करते हुए, शरीर को त्याग दिया । उस समय उनके बड़े भाई और दीक्षागुरु श्रीनिवृत्तिनाथजी तथा अन्य भाई-बहन और अन्य अनेक साधु-सज्जन वहाँ उपस्थित थे। इस प्रकार महाराष्ट्र का यह परम योगी शाके १२१५ में ब्रह्म में लीन हो गया। यों तो श्रीज्ञानेश्वरजी जीवन्मुक्त थे, सदैव ही ब्रह्मानन्द में मग्न रहते थे, परन्तु लोकाचार की दृष्टि से उस दिन वे परमपद को प्राप्त हुए ।

उनके बाद उनके छोटे भाई सोपानदेवजी ने वैशाख सुदी ११ शाके १२१९ में जीवित समाधि ली, एक वर्ष बाद वैशाख वदी ११ शाके १२२० में मुक्ताबाई और इसके एक मास बाद श्रीनिवृत्तिनाथ, ज्येष्ठ वदी १२ शाके १२२० में, त्र्यम्बकेश्वर में समाधिस्थ हुए । महासाधु नामदेवजी ने इनके समाधिस्थ होते समय का, अभङ्ग छन्दों में, बहुत ही सुन्दर काव्यरस-भरित ज्ञानपूर्ण और करुणोत्पादक वर्णन किया है। श्रीज्ञानेश्वर के बाद महाराष्ट्र में जितने कवि और साधु हुए हैं, सभी ने उनका गौरव वर्णन करके अपनी वाणी को पवित्र किया है।

ग्रन्थ-रचना ।

श्रीज्ञानेश्वरजी ने अपनी इतनी थोड़ी अवस्था में ही अनेक ग्रन्थ रचे हैं। उनमें ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, पवनविजय, योगवासिष्ठ की टीका पञ्जीकरण, चांगदेव पासष्टी, समास और स्वानुभव मुख्य हैं । इनके सिवा अभङ्ग और पद इत्यादि बहुत से फुटकर पद्य भी रचे हैं। ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ में कुल ९०३४ ओवी नामक छोटे पद्य हैं। अमृतानुभव में १००० ओवी-छन्द हैं। ये दोनों ग्रन्थ बहुत कठिन समझे जाते हैं, परन्तु काव्यलक्षणों से सम्पन्न होने के कारण बहुत ही सरस हैं। ज्ञानेश्वरी श्रीमद्भगवद्गीता की टीका है। इस टीका का दूसरा नाम "भावार्थदीपिका" भी है । अमृतानुभव में दसों उपनिषदों का सार दिया हुआ है। चांगदेव पासष्टी भी एक अद्वैतपर ग्रन्थ है। 'समास' नामक ग्रन्थ में कुल छः प्रकरण हैं। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम, त्रिविध अहङ्कार, देह के षट्चक्र इत्यादि अध्यात्म-विषयों का बहुत ही गम्भीर विवेचन है।

श्रीज्ञानेश्वरजी के ही ग्रन्थों में नहीं, बल्कि मराठी के सम्पूर्ण साहित्य में ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ बहुत ही श्रेष्ठ समझा जाता है। इस ग्रन्थ की रचना श्रीज्ञानेश्वरजी ने शाके १२१२ में की, जब कि उनकी अवस्था सिर्फ़ १८ या १९ वर्ष की थी। नेवासें नामक स्थान में एक पत्थर के खंभे पर बैठ कर ज्ञानेश्वरजी ने यह ग्रन्थ लिखा था। यह खम्भा अब तक उस स्थान पर मौजूद है; और प्रति वर्ष वहाँ मेला लगता है। इस स्थान पर जिस सच्चिदानन्द नामक सज्जन को उन्होंने (उसकी पत्नी को सौभाग्य का आशीर्वाद देकर) मृत से जीवित किया था उसी को ज्ञानेश्वरजी ने ज्ञानेश्वरी का लेखक बनाया था। ज्ञानेश्वरी के अन्तिम पद्य से उसकी रचना का संवत् और 'लेखक' का नाम प्रकट होता है:—

शाके बाराशतें बारोत्तरें ।
तें टीका केली ज्ञानेश्वरें ।
सच्चिदानन्द बाबा आदरें ।
लेखकू जाहला ॥

भगाड़े जी की हिन्दी-ज्ञानेश्वरी में "बाराशतें बारोत्तरें" पद का अर्थ १२७२ दिया हुआ है, जो नितान्त अशुद्ध है । वह १२१२ चाहिए । "बारोत्तरें" का अर्थ बहत्तर नहीं है; "किन्तु बारह अधिक" इतना ही है। शायद यह छापे की भूल होगी ।

वास्तव में भगाड़े जी ने ज्ञानेश्वरी का हिन्दी में अनुवाद करके हिन्दी-भाषा-भाषियों पर बड़ा उपकार किया है। क्योंकि ज्ञानेश्वरी टीका गीता का रहस्य समझाने के लिए एक अद्वितीय साधन है। इसको टीका न कहकर अध्यात्मशास्त्र पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही कहना चाहिए। इस ग्रन्थ में ज्ञान, कर्म, उपासना के रूप में सदाचार और नीति तथा अध्यात्मज्ञान का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया गया है। आध्यात्मिक ग्रन्थों की भाषा प्रायः रूखी होती है, अतएव साधारण पाठकों का ऐसे ग्रन्थों के पढ़ने में मन नहीं लगता। पर इस ग्रन्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में यह बात नहीं है। इसकी भाषा काव्यमयी है। उपमा, दृष्टान्त, रूपक, इत्यादि काव्यालङ्कारों के द्वारा बड़ी ही सरसता के साथ विषय का प्रतिपादन किया गया है। ईश्वर है अथवा नहीं? यदि है तो दिखाई क्यों नहीं देता? ईश्वर यदि न्यायी है तो संसार में "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की कहावत पद पद पर क्यों चरितार्थ होती हुई दिखाई देती है? मरणोत्तर जीव की क्या दशा होती है? इत्यादि अनेक ऐसे प्रश्न हैं जो आज-कल के संशय-शील लोगों के मन में और भी अधिक चञ्चलता उत्पन्न करते रहते हैं। इन—और ऐसे ही अन्य भी अनेक प्रश्नों का खुलासा इस ग्रन्थ के, गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन करने से, हो जाता है। यह ग्रन्थ संसारी और परमार्थी, दोनों प्रकार के, लोगों के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। अस्तु।

ज्ञानेश्वर के बड़े भाई निवृत्तिनाथजी, सोपानदेवजी, तथा बहन मुक्ताबाईजी ने भी अनेक फुटकर पद, अभङ्ग, इत्यादि लिखे हैं और उनमें अध्यात्मज्ञान तथा व्यवहारज्ञान का अच्छा उपदेश दिया है।

श्रीज्ञानेश्वर का मत।

ज्ञानेश्वरजी के ग्रन्थों के अवलोकन से स्पष्ट मालूम होता है कि वे अद्वैतवादी थे। साकार उपासना उनको सम्मत नहीं थी। वे एक निराकार ईश्वर को ही मानते थे। उन्होंने अपने ग्रन्थों का प्रारम्भ करते समय किसी विशिष्ट साकार देवता का स्मरण नहीं किया है; किन्तु एक निराकार, अव्यक्त, ओंकारस्वरूपी वेद-प्रतिपाद्य जगदात्मा का ही नमन किया है। यहाँ तक कि उनके मत से शिव, गणेश, देवी इत्यादि भी सब एक उसी परमात्मा के रूप हैं। उदाहरणार्थ हम उनके 'ज्ञानेश्वरी' और 'स्वानुभव' नामक ग्रन्थों के प्रारम्भ के पद्य उद्धृत करते हैं—

"ओं नमोजी आद्या।
वेदप्रतिपाद्या।
जय जय स्वसंवेद्या।
आत्मरूपा॥ १॥
देवा तूंचि गणेश।
सकल मति प्रकाश।
म्हणे निवृत्ति दास।"
अवधारी जो जी॥ २॥

—श्रीज्ञानेश्वरी।

"ऐसी इयें निरुपाधिकें।
जगाचीं जियें जनकें।
तीं वंदिली मियां मूलकें
देवो-देवी॥ १॥

अर्थात् हे आदि ओंकारस्वरूप, वेद-प्रतिपाद्य परमात्मा, मैं तुमको नमस्कार करता हूँ। हे स्वसंवेद्य आत्मरूप, तुम्हारी जय हो, जय हो, ॥१॥ हे देव, निवृत्तिदास (ज्ञानेश्वर) कहता है कि, सुनिए, आप ही गणेश भी हैं, जिनसे सम्पूर्ण मति का प्रकाश होता है॥२॥

ये निरुपाधि देवीदेव, जो जगत् के जनक हैं, उनके मूलस्वरूप की मैं वन्दना करता हूँ॥१॥

श्रीज्ञानेश्वरजी न सिर्फ़ निराकार ईश्वर के उपासक ही थे; बल्कि साकार उपासना के निषेधक भी थे। उनके एक अभङ्ग से यह मत स्पष्ट प्रकट होता है—

निर्जिव दगडाची काय करिसिल सेवा।
तो तुज निर्देवा देईल काय?॥ १॥
कवणें गुणें भुली पड़ली गव्हारा।
तीर्थाच्या माहेरा तोलखीसी॥ २॥
अष्टोत्तरशें तीर्थें जयाच्या चरणीं।
तो तुझ्या हृदय-भुवनीं आत्माराम॥३॥

इसका सारांश यह है कि "अरे, निर्जीव पत्थर की सेवा क्या करेगा? अरे अभागी, वह तुझको क्या दे देगा? असली ईश्वर को तुम क्यों भूले हुए हो? सब तीर्थ जिसके चरणों में बसते हैं उसको नहीं पहचानते? वह आत्माराम तुम्हारे हृदय में ही है।" ज्ञानेश्वर के इस उपदेश से जान पड़ता है कि मूर्तिपूजकों और तीर्थ-यात्रियों की अन्धभक्ति को देख कर उस समय भी उनको इनका खण्डन करना पड़ा था।

परन्तु ज्ञानेश्वरजी निराकार परमात्मा के उपासक होते हुए भी आज-कल के एकेश्वरवादियों की तरह शुष्क ज्ञानी नहीं थे। उनका हृदय ईश्वर-भक्ति से भरा हुआ था। उनके मत से, भक्ति के बिना कोरा ज्ञान बिलकुल व्यर्थ है। व्यर्थ ही नहीं है, बल्कि उद्दण्डता और अनुचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिमान का बढ़ानेवाला है। ज्ञानेश्वरजी ने अपने ग्रन्थों में भक्ति का जगह जगह उपदेश किया है। उन्होंने कहा है कि जैसे चन्द्र से चन्द्रिका भिन्न नहीं है, उसी प्रकार परब्रह्म से भक्ति भिन्न नहीं हो सकती। परमात्मा का अपने हृदय में अखण्ड ध्यान और उसके आनन्दस्वरूप में सदा निमग्न रहना, उनके मत से सर्वश्रेष्ठ भक्ति का लक्षण है।

ज्ञानेश्वर का व्यापक ज्ञान।

ज्ञानेश्वरजी अध्यात्मज्ञान में तो पारदर्शी थे ही, परन्तु व्यावहारिक ज्ञान और सृष्टि-निरीक्षण में भी अद्वितीय थे। यह बात नीचे के अवतरणों से भली-भाँति मालूम हो जायगी—

नातरी नगरांतरीं वसिजे।
तरी नागरचि होइजे ॥ १ ॥

अर्थात् शहर में रहने से चातुर्य आता है।

जैसा म्हैसा नुठी कीं पुरा।
तैसा उगाचि असे ॥ २ ॥

अर्थात् जैसे भैंसा बड़ी भारी बाढ़ आती हुई देखकर भी अपनी जगह से नहीं उठता।

कां कमलकन्दा आणि दर्दुरीं।
नांदणूक एकेचि घरीं।
परि पराग सेविजे भ्रमरीं।
येरा चिखलचि उरे ॥ ३ ॥

अर्थात् भ्रमर और मेंढक दोनों कमल के निकट ही रहते हैं, परन्तु भ्रमर पराग का सेवन करता है और मेंढक कीचड़ में ही आनन्द मानता है।

जैसा मेघाचेनि तोंडें।
सिन्धु एके आंगें काढे।
आणि नदी येरीकडे।
भरितीचि असती ॥ ४ ॥

अर्थात् मेघ के एक मुख से समुद्र उसके उदर में जाता है और दूसरे मुख से नदियाँ भरती हैं।

ज्ञानेश्वरजी के ज्योतिष-ज्ञान का उदाहरण लीजिए—

आणि उदोअस्ताचेनि प्रमाणें।
जैसे न चलतां सूर्याचें चालणें ॥५॥

अर्थात् सूर्य, स्वयं न चलते हुए भी, उदय-अस्त के कारण चलता हुआ सा जान पड़ता है। इससे जान पड़ता है कि पृथ्वी का चलना और सूर्य का स्थिर रहना ज्ञानेश्वरजी भी मानते थे।

नीचे एक अवतरण दिया जाता है, जिससे मालूम होता है कि ज्ञानेश्वरजी के ज़माने में चमड़े के नोट चलते थे—

राजाज्ञेचीं अक्षरें आहातीं।
तिये चामा एका जमा पड़ती।
तया चामासाठीं जोड़ती।
सकल वस्तु ॥ ६ ॥

अर्थात् राजाज्ञा के अक्षर यदि चमड़े पर ही अङ्कित कर दिये जाते हैं तो उस चमड़े से ही सब वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं।

मातृ-भाषा-प्रेम।

ज्ञानेश्वरजी को अपनी मातृ-भाषा मराठी पर कितना प्रेम था, यह निम्नलिखित पंक्तियों से मालूम हो जायगा। आप बड़े अभिमान से कहते हैं—

माझा महाठाची बोल कौतुकें।
परि अमृतातें ही पैजा जिंके।
ऐसी अक्षरें रसिकें।
मेलवीन ॥ १ ॥
जैसी अगाचेनी सुन्दरपणें।
लेणिया आंगचि होये लेणें।
तेथ अलंकारिलें कवणकवणें
हें निर्वचने ना ॥ २ ॥
तैसी देशी आणी संस्कृत वाणी।
एका भावार्थाच्या सुखासनीं।
शोभती आयणीं।
चोखट आयिका ॥ ३ ॥

सारांश यह है कि यह मेरी मराठी भाषा अमृत से भी अधिक मधुर है। जैसे सुन्दर शरीर और आभूषण दोनों एक दूसरे से शोभा को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार 'देशी' और 'संस्कृत' दोनों भाषायें एक दूसरे से शोभित होती हैं।

ज्ञानेश्वर की हिन्दी-कविता।

ज्ञानेश्वर महाराज को अपनी भाषा का तो अभिमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था ही, किन्तु आपने राष्ट्रीय भाषा हिन्दी को भी उसी समय अपना लिया था। वास्तव में, महाराष्ट्र सज्जनों के द्वारा हिन्दी की सेवा बहुत प्राचीनकाल से होती चली आई है। ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, रामदास इत्यादि सभी प्राचीन महाराष्ट्र साधु कवियों ने हिन्दी में कविता की है। स्वयं छत्रपति शिवाजी महाराज के रचे हुए भी कुछ हिन्दी-पद पाये जाते हैं। अस्तु। मराठी के आदि-कवि ज्ञानेश्वरजी की हिन्दी-रचना का नमूना देखिए। इससे यह भी पता चल जायगा कि आज से लगभग साढ़े छः सौ वर्ष पहले महाराष्ट्र साधु और कवि किस प्रकार की हिन्दी लिखते थे —

पद ।

सो ही कच्चा बे कच्चा बे।
नहीं गुरू का बच्चा ॥ सो ही० ॥

दुनियाँ त्यज कर खाक लगाई, जाकर बैठा बन में।
खेचरि मुद्रा वज्रासन में, ध्यान धरत है मन में ॥
तीरथ करके उम्मर खोई, जोग जुगुत में सारी।
धन कामिनि औ कुञ्जर लागे, जोग कमाया भारी ॥
गुप्त होय कर परगट होये, गोकुल मथुरा कासी।
सिद्धजी हूवे प्रान निकाले, सत्यलोक के बासी ॥
शास्त्र में तो कुच नहिं रह्या, पुरान गायन माया।
भेद बिदी का मारग चलता, तन का लग का लीया ॥
कुंडलिनी कू खूब चढ़ावे, ब्रह्मरन्ध्र कू जावे।
चलता है पानी के उप्पर, बोलत सोई होवे ॥
हुकुम निवृत्ति का ज्ञानेश्वर कू, तीन उप्पर मेना।
सद्गुरु की कृपा भई जद, आपी आप पिछाना ॥

इन पङ्क्तियों से मालूम होता है कि ज्ञानेश्वरजी हिन्दी भाषा खूब जानते थे। साढ़े छः सौ वर्ष पूर्व आप बहुत ही अच्छी हिन्दी-कविता लिख गये हैं; और इसको पढ़कर प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी सज्जन को अवश्य ही बड़ा कौतूहल होगा।

लक्ष्मीधर वाजपेयी

वर्णभेद ।

इस विशाल भू-मण्डल पर सैकड़ों क्यों, हज़ारों जातियाँ वास करती हैं। उनमें परस्पर, अनेक बातों में, भेद है। परन्तु सबसे बड़ा भेद वर्ण अर्थात् रङ्ग का है। कोई जाति काली है, कोई भूरी, कोई पीली और कोई सफ़ेद। किसी का रङ्ग ताँबे के सदृश है, तो किसी का गेहूँ के छिलके के सदृश। अच्छा तो इस वर्ण-वैचित्र्य का कारण क्या है। योरप और अमेरिका के कितने ही, बड़े बड़े विज्ञान-विशारदों ने इस प्रश्न को हल करने की चेष्टा की है और अब तक करते जा रहे हैं। उन्होंने कुछ सिद्धान्त भी, इस विषय में, स्थिर किये हैं। पर वे सिद्धान्त अनेक बातों में एक दूसरे से कम मिलते हैं। इस कारण, यह निश्चय करना कठिन हो रहा है कि उनमें से कौन सिद्धान्त निर्भ्रान्त है। तथापि जिस सिद्धान्त को लोग अपेक्षाकृत अधिक युक्तिसङ्गत और तर्कसह समझते हैं उसी के सम्बन्ध की कुछ बातें यहाँ लिखी जाती हैं।

पहले तो यह प्रश्न उठता है कि सृष्टि के आरम्भ में मानव-जाति का रङ्ग कैसा था। पर इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर देना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि प्राचीन अथवा आदिम मनुष्य-जाति का इतिहास उपलब्ध ही नहीं। बहुत प्राचीन काल के मनुष्यों की जो ठठरियाँ ज़मीन से खोद कर निकाली गई हैं उनसे भी यह नहीं मालूम हो सकता कि उनके चमड़े का रङ्ग कैसा था। क्योंकि कङ्कालों के ऊपर चमड़े का नामोनिशान तक नहीं पाया गया। फिर भला उसके रङ्ग का ज्ञान कैसे हो सकता। इस दशा में अनुमान से ही काम लिया जा सकता है। दूसरा उपाय ही नहीं।

विज्ञानवेत्ता डाक्टर वालेस का मत है कि अपनी आदिम अवस्था में मनुष्य न बहुत काला ही रहा होगा और न बहुत गोरा ही। अर्थात् आज-कल मुग़ल-जाति के लोगों का रङ्ग जैसा होता है वैसा रङ्ग आदिम मनुष्यों का रहा होगा।

जो मनुष्य पहले पहल पैदा हुए होंगे उनकी वंशवृद्धि होने में हज़ारों वर्ष लगे होंगे। जब उनकी संख्या बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ गई होगी और एक ही जगह सबके रहने के कारण जीवन-सङ्ग्राम उपस्थित हुआ होगा तब उन लोगों की टोलियाँ स्थानान्तर कर गई होंगी। जो लोग शीत-प्रधान देशों में जा बसे वे धीरे धीरे अधिक श्वेत होते गये और जो उष्ण-प्रदेशों में जा रहे वे क्रमशः कृष्णवर्ण होते गये। डाक्टर वालेस ने इस अनुमान की पुष्टि में बहुत सी युक्तियों से काम लिया है। पर कुछ विज्ञानवेत्ता उनकी युक्तियों को भ्रमपूर्ण समझते हैं। वे उनके मत के क़ायल नहीं। वे कहते हैं कि आदिम मनुष्य बिलकुल ही सफ़ेद रङ्ग के थे। परन्तु इस मत के पक्षपाती पण्डित अपने अनुमान के पोषक कोई प्रमाण नहीं दे सकते। प्रमाण न सही, युक्तियाँ भी वे कोई अच्छी नहीं दे सकते। इस कारण अधिकांश विद्वान् डाक्टर वालेस के मत को ही अधिक युक्तिसङ्गत और माननीय समझते हैं। अधिक संख्या उन्हीं लोगों की है जो डाक्टर वालेस के पक्ष में हैं।

मानव-शरीर के जिस मौलिक वर्ण की बदौलत भिन्न भिन्न वर्णों की उत्पत्ति होती है उसका ज्ञान विद्वानों ने बहुत समय पूर्व ही प्राप्त कर लिया था। इसकी प्राप्ति उन्होंने शव-विच्छेद-द्वारा की थी। उसी ज्ञान की सहायता से अब यह कल्पना की गई है कि व्यवच्छेद-लब्ध वर्ण ही जातीय वर्ण-वैचित्र्य का मुख्य कारण है। पर यह वर्ण शरीर में कैसे उत्पन्न होता है और किसी में कम, किसी में अधिक होकर नाना जातियों में नाना वर्णों की उत्पत्ति कैसे करता है, इस विषय में बहुत मतभेद है।

और बातों पर विचार करने के पहले हमें पूर्वनिर्दिष्ट मौलिक वर्ण के उद्गम-स्थान चर्म की अवस्था और गठन आदि के सम्बन्ध की कुछ बातें जान लेना चाहिए। शरीर-शास्त्र के ज्ञाताओं का मत है कि शरीर के ऊपर चमड़े की दो तहें होती हैं। ऊपरी तह बहिश्चर्म्म और भीतरी अन्तश्चर्म्म कहाती है। बहिश्चर्म्म रक्त-प्रवाह रहित नीरस कोषमय सामग्री से बनता है। वह समग्र शरीर में एक सा नहीं होता; कहीं मोटा होता है और कहीं पतला। परन्तु अन्तश्चर्म्म की बनावट भिन्न प्रकार की होती है। उसमें शरीर के अन्यान्य अङ्गों या अंशों की तरह स्नायविक विन्यास और रक्तकोश साफ़ साफ़ देख पड़ते हैं।

बहिश्चर्म्म के नीचे और अन्तश्चर्म्म के ठीक ऊपर कुछ कोश होते हैं। वे आँख से, साधारण तौर पर, नहीं दिखाई देते। पर खुर्दबीन की सहायता से स्पष्ट देख पड़ते हैं। उनमें से जो कोश ऊपर की ओर होते हैं वे सदा नीरस रहते हैं। परन्तु जो सबसे नीचे होते हैं वे सदैव एक प्रकार के वर्ण-रस से परिपूर्ण रहते हैं। शरीर-शास्त्र के वेत्ताओं का मत है कि इन कोशों में जो रस होता है वही जातीय-वर्णोत्पादन की मूल सामग्री है।

अफ़रीक़ा के निवासियों के आबनूस सदृश काले चमड़े की परीक्षा से इस सिद्धान्त की सचाई स्पष्ट हो जाती है। उनके बहिश्चर्म्म के नीचे और अन्तश्चर्म्म के ऊपर भी वर्णरसपूर्ण बहुत से कोश होते हैं। वे कोश बहिश्चर्म्म के ऊपर की ओर जैसे जैसे उठते जाते हैं वैसे ही वैसे उनका रस कम होता जाता है। इसी लिए बहिश्चर्म्म का ऊपरी भाग बिलकुल नीरस और स्वच्छ कोशमय सामग्री से बना होता है। पूर्वोक्त कोश के सङ्गठन के उपादान क्या हैं, यह बात विज्ञान-वेत्ताओं से छिपी नहीं रहने पाई। इसमें सन्देह नहीं कि इस पदार्थ या इन उपादानों का रासायनिक योग कुछ जटिल है। इसी से इसका—विश्लेषण करने में रसायन-शास्त्रवेत्ता पहले चकरा गये थे और इस बात का ठीक ठीक निर्णय न कर सके थे कि यह पदार्थ किन किन रासायनिक पदार्थों के मिश्रण से बना है। परन्तु बहुत परिश्रम और खोज के बाद अध्यापक सर्वी ने इसके रासायनिक मिश्रण का ठीक ठीक पता लगा कर प्रस्तुत सिद्धान्त की पुष्टि कर दी है और पूर्ववर्ती विज्ञान-वेत्ताओं के सन्देहों को दूर कर दिया है।

अध्यापक सर्वी ने चमड़े के रङ्ग की परीक्षा पहले नहीं की। यह देख कर कि केशों के वर्ण का उत्पादक पदार्थ और चमड़े के भिन्न भिन्न रङ्गों का उत्पादक पदार्थ मूलतः एक ही है, उन्होंने पहले केशमूलस्थ कोशों के वर्ण की परीक्षा आरम्भ की। इस परीक्षा से उन्हें मालूम हुआ कि केशों के कोशों में श्वेत, कृष्ण और पीत, इन तीन प्रकार के मौलिक वर्ण विद्यमान रहते हैं और चमड़े के भिन्न भिन्न रङ्ग भी इन्हीं के द्वारा उत्पन्न होते हैं।

विज्ञान-विशारदों का मत है कि वर्णकोशों में उक्त तीन रङ्गों का पूर्ण मिश्रण नहीं होता। इसी लिए भिन्न भिन्न जातियों में भिन्न भिन्न वर्णों के केश और चर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं। योरप के निवासियों के बहिश्चर्म्म के नीचेवाले कोशों में कृष्ण-वर्ण की अपेक्षा श्वेत और पीत-वर्ण के रस की अधिकता होती है। इसी कारण, उनके केश और चर्म्म प्रायः ताम्र और काञ्चन वर्ण होते हैं। परन्तु अफ़रीक़ा और एशिया के निवासियों के वर्णकोशों में कृष्णवर्ण के रस ही की प्रचुरता पाई जाती है। इसी से उन लोगों का वर्ण काला होता है—किसी का कम, किसी का अधिक।

अच्छा तो यह वर्ण-रस कहाँ से और कैसे उत्पन्न होता है। गवेषणापरायण विज्ञान-शास्त्रियों ने इस विषय की बहुत कुछ छानबीन की है। परन्तु एकमत होकर वे किसी तथ्य का निर्णय नहीं कर सके। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। कुछ विद्वानों का मत है कि बहिश्चर्म्म के नीचे के वर्णकोशही वर्णरस की उत्पत्ति के कारण हैं। किसी अपरिज्ञात पद्धति के द्वारा कोशों ही में रस उत्पन्न हो जाता है और वहाँ से ऊपर के वर्णकोशों में पहुँच जाता है। अन्य विज्ञानवेत्ता कहते हैं कि यह अनुमान भ्रमात्मक है। वर्णरस सारे शरीर में उत्पन्न होता है। वर्णकोशों का काम इस सर्वदेहव्याप्त रस को इकट्ठा करना है। परन्तु ऊपर निर्दिष्ट तीनों वर्ण या रङ्ग सारे शरीर या कोशों ही में क्यों और कैसे उत्पन्न होते हैं, इसका निर्भ्रान्त निर्णय आज तक नहीं हो सका।

यह बात बहुत लोग जानते होंगे कि पश्चिमी देशों के अस्त्र-चिकित्सकों ने घाव अच्छा करने की एक अनोखी तरकीब निकाली है। वे किसी भले-चङ्गे मनुष्य के चमड़े को काट कर रोगी के घाव पर लगा देते हैं। औषधि-प्रयोग की सहायता से वह चमड़ा घाववाले रोगी के शरीर पर जम जाता है—कुछ दिन बाद वह उसी का अंश होजाता है। इसी चिकित्सा-पद्धति के अनुसार अफ़रीक़ा के काले हबशियों का चमड़ा योरप के गोरे आदमियों के शरीर में लगा देने से, कुछ समय बाद, वह गोरा हो जाता है। अर्थात् काले चमड़े की क़लम का भी वही रङ्ग हो जाता है जो रङ्ग गोरों के चमड़े का है। इसलिए यह विश्वास अब प्रायः दृढ़ हो गया कि ऊपर निर्दष्ट दूसरा मतही सच्चा है। यदि ऐसा न होता और पहला ही मत ठीक होता तो योरप के गोरों की देह में क़लम किया हुआ कालों का चमड़ा कभी सफ़ेद न होता। कारण यह कि उस दशा में कृष्णचर्म्म में वर्णकोशों से केवल कृष्णवर्ण ही उत्पन्न होता और शरीर का वह जुड़ा हुआ काला टुकड़ा सदा काला ही बना रहता। पर वास्तव में ऐसा नहीं होता। इसलिए यही मानना पड़ता है कि वर्ण-रस सारे शरीर में उत्पन्न होकर कोशों में पहुँचता है। इसी से श्वेतकाय मनुष्य के सारे शरीर से उत्पन्न श्वेतवर्णोत्पादक रस से नवसंयुक्त कृष्णचर्म्म के कोश पूर्ण हो जाते हैं। अतएव धीरे धीरे काला चमड़ा सफ़ेद हो जाता है। इसके सिवा एक बात और भी है जो दूसरे ही सिद्धान्त की पुष्टि करती है। केशों की जड़ में जो वर्णकोश होते हैं उनकी परीक्षा करने पर यह कई बार देखा गया है कि कोशों के चारों तरफ़ बहुत सा वर्ण-रस एकत्र होता और वही पीछे से कोशों के भीतर चला जाता है। अतएव यह सिद्ध ही सा है कि वर्ण-रस पहले सारे शरीर में उत्पन्न होता है। फिर वह कोशों के भीतर जाता है।

जीवधारियों की देह में दिन-रात कुछ न कुछ उलट-फेर हुआ ही करता है। ऊपर लिखा जा चुका है कि बहिश्चर्म्म के नीचे के कोशों में वर्ण-रस सदा सञ्चित होता रहता है। अतएव प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यह सञ्चयशील रस चला कहाँ जाता है। शरीरशास्त्र के तत्त्वज्ञों का कथन है कि चर्म्मस्थ कोश एक ही स्थान पर स्थिर नहीं रहते। जो कोश किसी समय चमड़े के सबसे नीचे-वाले भाग में होते हैं वे धीरे धीरे चमड़े के ऊपर आ जाते हैं और कुछ दिनों बाद मृतचर्म्म के रूप में शरीर से गिर पड़ते हैं। यह ऐसी बात है जिसका अनुभव शायद साधारण आदमियों को भी हो; क्योंकि निर्जीव चर्म्मांश, रगड़ खाने से, बहुधा शरीर से गिराही करता है। अच्छा, यदि यह बात सच है तो, वर्णरस-पूर्ण कोश, चमड़े के ऊपर आने के समय, अपना रस कहाँ रख आते हैं। क्योंकि चमड़े के ऊपर आने पर वे नीरस हो जाते हैं। इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर आज तक कोई नहीं दे सका। कुछ विद्वानों की सम्मति है कि जिस समय वर्णकोश चमड़े के ऊपर आने लगते हैं उस समय कोशस्थ रस अपने आदि उपादान में विश्लिष्ट हो जाता है। पर वर्णरस के सदृश स्थायी और जटिल यौगिक पदार्थ सहज ही में विश्लिष्ट हो सकता है, इस विषय में सन्देह ही रह जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लज्जा और भय आदि विकारों के कारण, मनुष्य की मानसिक अवस्था में परिवर्तन होने से, गौरकाय लोगों के वर्ण में जो रूपान्तर हो जाता है उसका कारण भी शरीर-शास्त्रियों ने ढूँढ़ निकाला है। वे कहते हैं कि इन लोगों के चर्म्मकोश में कृष्णवर्णोत्पादक रस का अभाव होने के कारण बहिश्चर्म्म स्वच्छ अवस्था में रहता है। अतएव पूर्वोक्त मानसिक परिवर्तन होने पर ज्योंही अन्तश्चर्म्म में रक्त सञ्चित होता है त्योंही स्वच्छ बहिश्चर्म्म को पार करके रक्त की दीप्ति दिखाई देने लगती है। इसी से वर्ण में रूपान्तर ज्ञात होता है।

अच्छा, तो विशेष विशेष जातियों में मौलिक वर्ण-रसत्रय में से किसी की अल्पता और किसी की अधिकता क्यों होती है। विज्ञानवेत्ता अब तक इस प्रश्न का भी सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके। जातीय वर्णोत्पादक में स्थानीय शीतातप, देश का भौगोलिक अवस्थान, जातीय खाद्य इत्यादि का प्रभाव ही मुख्य माना जाता है। किसी किसी विद्वान् का अनुमान है कि अफ़रीका के हबशियों के घोर कृष्णवर्ण होने का कारण प्राकृतिक निर्वाचन का फलमात्र है। उनके चर्म्म के कृष्ण-रस बहुल कोश मौसमी बुख़ार आदि स्थानीय रोगों के अवरोधक हैं। इसी से आदिमकाल से लेकर अब तक इन सब रोगों के कीटाणुओं से युद्ध करते करते वे कृष्णत्व को प्राप्त हो गये हैं। डाक्टर टामसन आदि कई विद्वानों का कथन है कि गौरकायों की अपेक्षा कृष्णकाय जाति के मनुष्यों के यकृत का आकार और वज़न प्रायः अधिक होता है। सम्भव है, यकृत के इस गुरुत्वाधिक्य के साथ जातीय वर्ण-वैचित्र्य का भी कुछ सम्बन्ध हो।

योरप और अमेरिका के शरीर-शास्त्रज्ञ बहुत दिनों से जातीय वर्ण-वैचित्र्य के कारणों का अनुसन्धान करने में लगे हुए हैं। अब तक वे कुछ ही स्थूल तत्त्वों का ज्ञान सम्पादन कर सके हैं। अब भी इस विषय की खोज जारी है। यदि वे लोग अपने अध्यवसाय में इसी तरह निरन्तर रत रहे तो, बहुत सम्भव है, किसी दिन वे इस विषय की पूर्ण मीमांसा करने में सफलमनोरथ हों।

[सङ्कलित

श्रीकण्ठ पाठक

इस्लाम-धर्म और कला।

ज्ञासा और सत्य-लिप्सा इस्लाम-धर्म का मूल है। हज़रत मुहम्मद सत्य के बड़े जिज्ञासु थे। सैयद अमीरअली ने लिखा है कि दूसरे पैग़म्बरों की अपेक्षा हज़रत मुहम्मद का ज्ञान से बहुत अधिक अनुराग था। मक्का के पराभव के बाद मदीना लोगों के आकर्षण का केन्द्र हो गया था। यहाँ केवल अरबवासी ही नहीं, किन्तु ईरानी, यूनानी, सीरियावासी, ईराक़ी, अफ़्रीकी आदि भिन्न भिन्न जातियों के लोग दूर दूर से आते रहते। इनमें अधिकांश लोग ज्ञान-पिपासा की प्रेरणा से ही आते और श्रद्धा के साथ इस्लाम-धर्म के पैग़म्बर का उपदेश श्रवण करते। हज़रत मुहम्मद ने ज्ञान के महत्त्व का उपदेश किया है। उन्होंने कहा है—"ज्ञान का अर्जन करो। क्योंकि जो व्यक्ति ईश्वर के मार्ग में ज्ञान को प्राप्त करता है वह पुण्य कार्य करता है; जो उसकी चर्चा करता है वह ईश्वर की स्तुति करता है; जो उसकी खोज करता है वह ईश्वर की पूजा करता है; जो उसकी शिक्षा दान करता है वह भिक्षा-दान करता है; जो उसे अधिकारी को प्रदान करता है वह ईश्वर की भक्ति का कार्य करता है। ज्ञान से ही सद्-असद् का विवेक होता है; स्वर्ग के मार्ग को वह प्रकाशित कर सकता है, मरुभूमि में वह हमारा साथी है, एकान्त में वह हमारा समाज है, मित्रों के रहित होने पर वह हमारा सङ्गी है; वह हमें सुख की ओर ले जाता है, कष्टों में वह हमें सहनशील बनाता है; मित्रों के साथ में वह हमें आभूषण का काम देता है; शत्रुओं के विरुद्ध वह हमें कवच का काम देता है। ज्ञान के पास होने से ईश्वर का दास कल्याण के ऊँचे स्थान पर जा पहुँचता है, इस संसार में बादशाहों के पास उठता-बैठता है और परलोक में भी परम सुख प्राप्त करता है"। हज़रत मुहम्मद ने कहा है—विद्वान् की स्याही शहीद के रक्त की अपेक्षा अधिक पवित्र है। उन्होंने अपने शिष्यों को इस सम्बन्ध में बार बार उपदेश दिया है कि 'चीन में भी ज्ञान के लिए खोज' करनी चाहिए और 'जो ज्ञान की खोज में अपना घर-बार छोड़ देता है वह ईश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के मार्ग का पथिक है'। 'जो ज्ञान की खोज में यात्रा करता है उसको ईश्वर स्वर्ग का मार्ग बतला देता है'। ज्ञान-विज्ञान के महत्त्व का प्रमाण स्वयं कुरान शरीफ़ ही है।

इस्लाम-धर्म के प्रचार के समय तक अरब-प्रायद्वीप ने बौद्धिक समुन्नति के कोई चिह्न नहीं प्रकट किये थे। कविता, वक्तृत्व तथा ज्योतिष ही उस समय के अरबों के आलोच्य विषय थे, इस्लाम-धर्म के प्रचार के पहले उनको विज्ञान और साहित्य से प्रेम नहीं था। परन्तु हज़रत मुहम्मद के शब्दों ने जाति की जाग्रत शक्तियों में नये बल का सञ्चार कर दिया। यहाँ तक उन्हीं के जीवन-काल में शिक्षा-सम्बन्धी संस्था का बीज-वपन हो गया था। बग़दाद, सलेर्नो, काहिरा और कार्डोवा के विश्वविद्यालय उसी के फल थे। अपने समय की नव प्रतिष्ठित शिक्षा-संस्था में

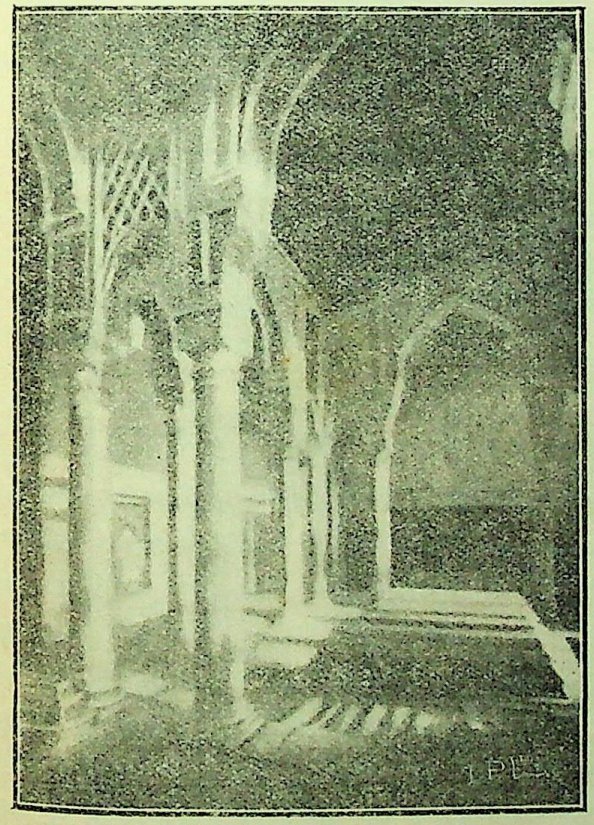

मूर-सुलतानों के मक़बरे।

हज़रत मुहम्मद ने कहा था—'ईश्वर की रचना पर एक घण्टा का भक्ति-पूर्वक ध्यान सत्तर वर्ष की प्रार्थनाओं की अपेक्षा श्रेष्ठ है'। 'शहीदों के हज़ारों जनाज़ों में उपस्थित होने की अपेक्षा ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा घण्टा भर ही सुनना अधिक पुण्य कार्य है'।

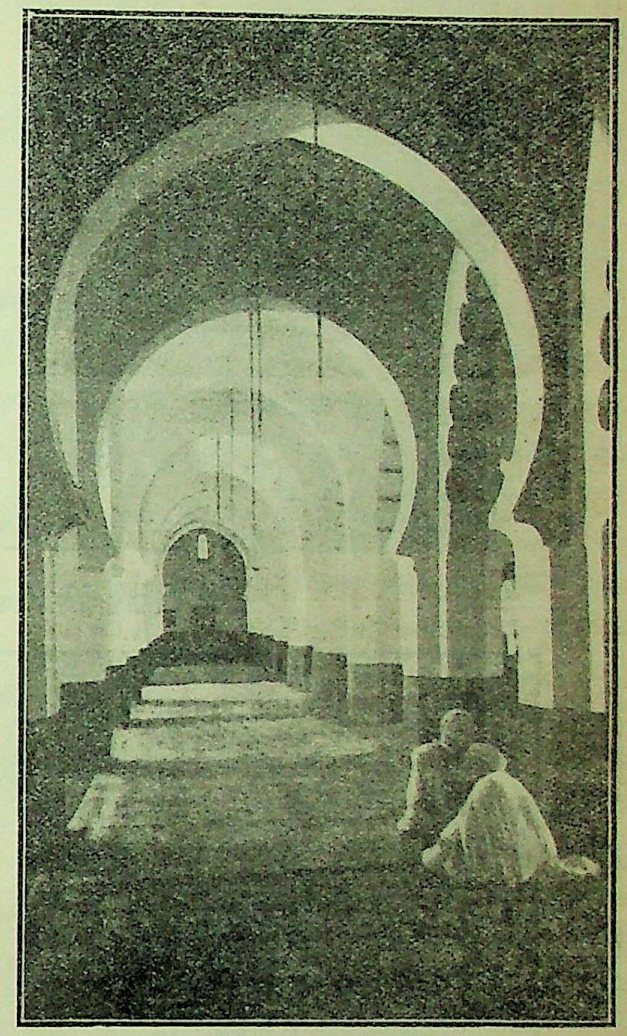

बड़ी मस्जिद का भीतरी दृश्य, अल्जीयर्स।

हज़रत मुहम्मद के दामाद अली ने नव-सङ्गठित इस्लामी संस्था की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा-सम्बन्धी भिन्न भिन्न विभागों पर शिक्षा-दान किया है। उन्होंने भी कहा है—'विज्ञान में प्रगल्भता श्रेष्ठ सम्मान प्राप्त करना है'। 'विद्या-प्राप्ति में जो जीवन का उत्सर्ग कर देता है। वह मरता नहीं है।' 'पाण्डित्य ही मनुष्य का सबसे उत्तम भूषण है'।

पैग़म्बर तथा अली के उपर्युक्त ऊँचे विचारों का प्रभाव स्वभावतः शिष्यों पर बहुत अधिक पड़ा और सभी जाति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

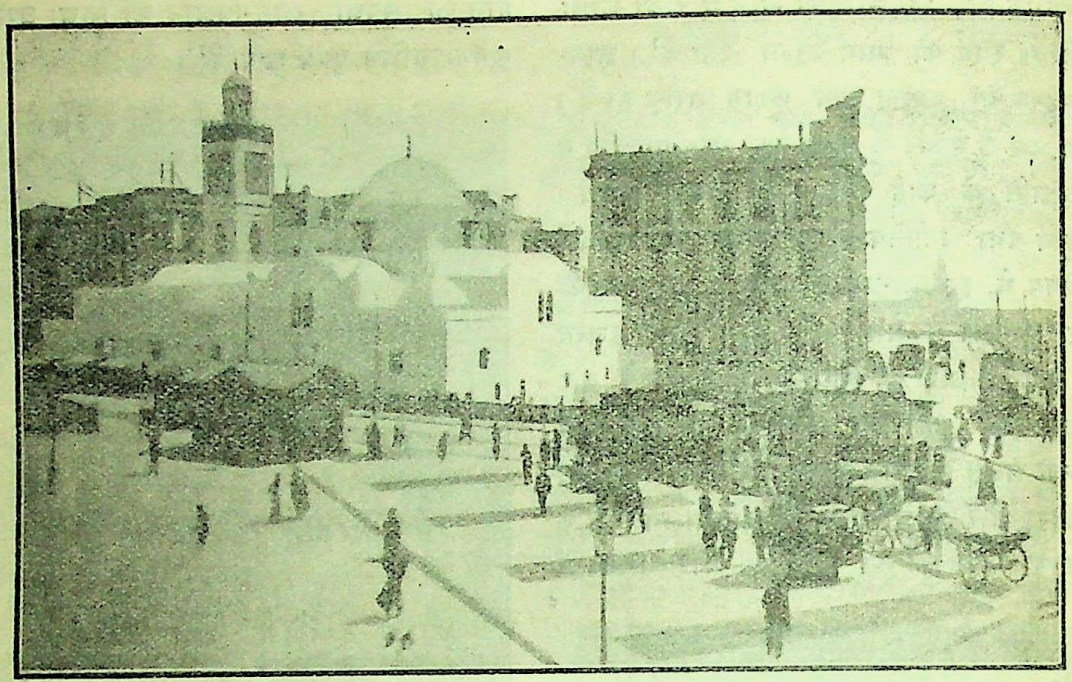

पेचेरी मस्जिद और सरकारी भवन, अल्जियर्स।

तैमूरशाह की मस्जिद, काबुल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लोग विद्योपार्जन के इच्छुक होगये। यद्यपि प्रारम्भिक ख़लीफ़ाओं के समयों में अरब-जाति को बड़े गड़बड़ से सामना करना पड़ा था, तो भी इस्लाम-धर्म के केन्द्र-स्थान

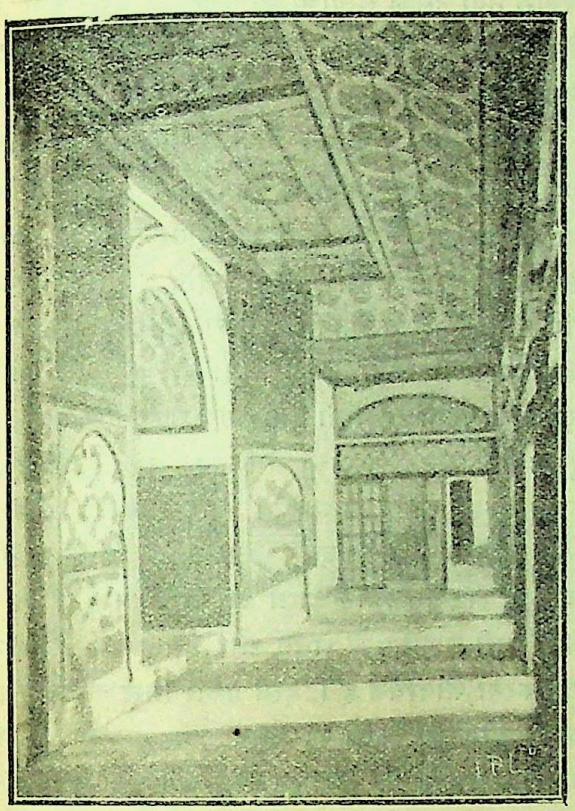

राज-महल का बरामदा, मराको।

में लोग साहित्य और कला से उदासीन नहीं हुए। अली और उनके भतीजे इब्न अब्बास कविता, व्याकरण, इतिहास और गणित की शिक्षा देते थे; दूसरे लोग कुरान के पाठ करने की विधि तथा कुछ लोग खुशख़ती की शिक्षा दिया करते थे। इस्लाम के पैग़म्बर का उदाहरण और आदेश ऐसा ही है। इसी के प्रभाव के कारण बाद को इस्लाम का जैसे जैसे विकास हुआ वैसे वैसे कला और विज्ञान की भी समुन्नति हुई।

साहित्य और कला की उन्नत्ति में भिन्न भिन्न जातियों के पारस्परिक सम्मिलन का बड़ा प्रभाव पड़ता है। अरब की मरु-भूमि में जिस जाति का जीवन-केन्द्र है वह जाति निष्क्रिय नहीं हो सकती। उसे अपने जीवन-निर्वाह के लिए दूसरी जातियों से सम्बन्ध स्थापित करना ही पड़ता है। इसी कारण अपने गौरव-काल के पहले अरब-जाति का काफ़िला दूसरे देशों में व्यवसाय के लिए भ्रमण किया करता था—मुसलमान यात्रियों ने लम्बी लम्बी यात्रायें कीं—मुसलमानों का व्यवसाय फैला। इस प्रकार वे प्राच्यों तथा पाश्चात्यों के सम्पर्क में आये। इन नये सम्बन्धों का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। फलतः उन्होंने कला-सम्बन्धी अपने विचार पहले की प्राच्य-सभ्यताओं की परम्पराओं पर निर्धारित किये। यही कहना ठीक जँचता है। क्योंकि यह अनुमान करना असम्भव है कि इस्लाम के जन्म के पहले अरब की सभ्यता का ललित कलाओं पर क्या प्रभाव पड़ा था। अभी तक अरब के प्राचीन कलाद्योतक स्मृतिमन्दिरों का अवलोकन कर उनकी कला की विवेचना नहीं की गई है, अतएव निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि अरबी कला पर उनका कहाँ तक प्रभाव पड़ा है। ख़ीमों में रहनेवाले अरब लोग अपनी कला का परिचय दरी और ख़ीमों के परदे बुनने में प्रकट करते हैं। मुसलमानी इमारतों में जो सौन्दर्यपूर्ण काम हमें देखने को मिलता है उसमें अरबों की उपर्युक्त कला का परिज्ञान हमें हो जाता है। आज-कल की कला में कपड़े और इमारतों की दस्तकारी के सिद्धान्त एक नहीं हैं। परन्तु मुसलमानी कला ने कपड़े की दस्तकारी के अपने मौलिक विचारों का उपयोग इमारतों की दीवारों, दरवाज़ों, छतों आदि में सफलतापूर्वक किया है। यह उनकी एक ख़ूबी

अकबर का दीवाने आम, आगरा।

रही है। अरब की इस कारीगरी के अधिक विकसित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने में उनकी लेखन-कला से भी बहुत अधिक सहायता मिली है। तुग़रा-लेखन अरब की एक ख़ास चीज़ है। इस ढङ्ग से लिखी गई अरबी वर्णमाला एक प्रकार की चित्र-लिपि सी हो जाती है। रेखा-गणित में तो अरब प्रवीण ही थे। उन्होंने अपने पाटी-गणित और रेखा-गणित के ज्ञान का उपयोग कला में पूर्ण रूप से किया है। फलतः कुछ नये नमूनों का विकास हो गया। ये चाहे सरल या टेढ़े हों, पर इनकी स्वाभाविक विशेषता ईरानी, तुर्की और मिर्ज़ापुरी दरियों में स्पष्ट देख पड़ती है। बेल-बूटे निकालने का काम पीछे से शुरू हुआ था। परन्तु यह बात ध्यान में रख लेना चाहिए कि बेल-बूटे निकालने के काम का भी सम्बन्ध रेखा-गणित से है। इसमें सन्देह नहीं है कि यह काम है मुसलमानी कला की उन्नतावस्था के समय का और प्रकृति का निरीक्षण करके ही इसका सम्पादन होता रहा होगा। परन्तु सभी समय रेखा-गणितपरक कारीगरी शुष्क विज्ञान के रूप में ही अध्ययन की गई है। साहित्य-भवनों और मकतबों में प्रायः उसकी ओर ध्यान दिया जाता रहा है। विद्वान् लोग हाथ की कारीगरी से घृणा करते थे, पर वे चित्र-लिपि की कला पर मुग्ध थे और अपने विद्यार्थियों को तुग़रा लिखने तथा उसमें नई नई बारीकियाँ निकालने की सोत्साह शिक्षा देते थे। अतएव कला-सम्बन्धी ख़ालिस वैज्ञानिक पुस्तकें मुसलमानी साहित्य में बहुत कम हैं, पर तुग़रा-लिपि या रेखा-गणितात्मक कारीगरी-सम्बन्धी पुस्तकें बहुत अधिक हैं और उनका अध्ययन शौक़ और परिश्रम के साथ किया जाता था। परन्तु यह बात भी स्वीकार कर लेनी चाहिए कि प्रकृति के अध्ययन का परित्याग कर देने से मुसलमानी कला की दृष्टि सङ्कुचित और उसके सुन्दर नमूनों की संख्या भी परिमित हो गई है। प्रकृति असीम है, और मनुष्य के मस्तिष्क की सर्वोत्कृष्ट कल्पनायें परिमित होती हैं। जो साधारण कलाविद सीधा प्रकृति-द्वारा अनुप्राणित होते हैं उनके हाथों में भी बहुत कुछ ऐसा मसाला रहता है जिसका उपयोग पूर्ण कलात्मक भावना से किया जा सकता है। जो नमूने परम्परा से चले आ रहे हैं, परिमितता सदैव उनको एक बँधा हुआ रूप प्रदान कर देती है। इसका फल यह होता है कि यह पीछे से कला-विद् तथा दर्शक दोनों की दृष्टि को सङ्कुचित कर देता है। इस प्रकार जब एक बार सङ्कुचित दृष्टि की नींव पड़ जाती है तब वह बढ़ती ही रहती है। वह कला के विचारों तथा उसकी संस्थाओं की वृद्धि को रोक देती है और अन्त में स्वयम् जनता पर भी अपना हाथ साफ़ करती है।

किसी मुख्य काल या किसी देश की मुसलमानी कला का इतिहास जानने के लिए यह आवश्यक है कि उस काल के पहले की कला का इतिहास पहले जान लिया जाय। तभी हम उसके गुण-दोष जानने में सफल होंगे। स्पेन की मुसलमानी कला का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें रोम तथा यूनान की कला का इतिहास पहले पढ़ लेना पड़ेगा। तभी हम जान सकेंगे कि स्पेन के मुसलमानों ने उन कलाओं से कितना लेकर तथा उसमें फेरफार करके अपने नये आदर्शों के साथ अपनी प्रारम्भिक कला को उन्होंने ऐक्य प्रदान किया। अलजीरिया और ट्यूनिस की मुसलमानी कला का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्तरी अफ़्रीका की रोमन और ईसाई-कला का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इसी प्रकार मिस्र के लिए हमें काप्ट लोगों की कला का ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। तभी हम काहिरा की इब्नतूलून की मस्जिद का महत्त्व समझ सकेंगे। तुर्की कला के लिए बैज़न्टा इनके प्रभावों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। जब तुर्कों ने कुस्तुन्तुनिया को जीत लिया और वे योरप में जा पहुँचे तब वहाँ उनकी कला पर बैज़न्टाइन का पूरा प्रभाव पड़ा और योरपीय भूमि पर उस पर उसका प्रभाव उसकी प्रारम्भिक अवस्था में बराबर पड़ता रहा। सोफ़िया-मस्जिद के साथ सुलेमान की मस्जिद की तुलना करने पर इसका भेद स्पष्ट खुल जाता है। बूसानगर के बाद स्तम्बोल की रचना हुई थी। इन दोनों नगरों की निर्माण-कला में जो भेद है वह बैज़न्टाइन कला के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है।

किसी भी स्थान की मुसलमानी इमारत में ये तीन मूलतत्त्व किसी न किसी मात्रा में अवश्य दृष्टिगोचर होंगे—(१) उस स्थान के निवासियों की परम्परायें, जो साधारणतया निश्चित रहती हैं; (२) नवागन्तुकों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

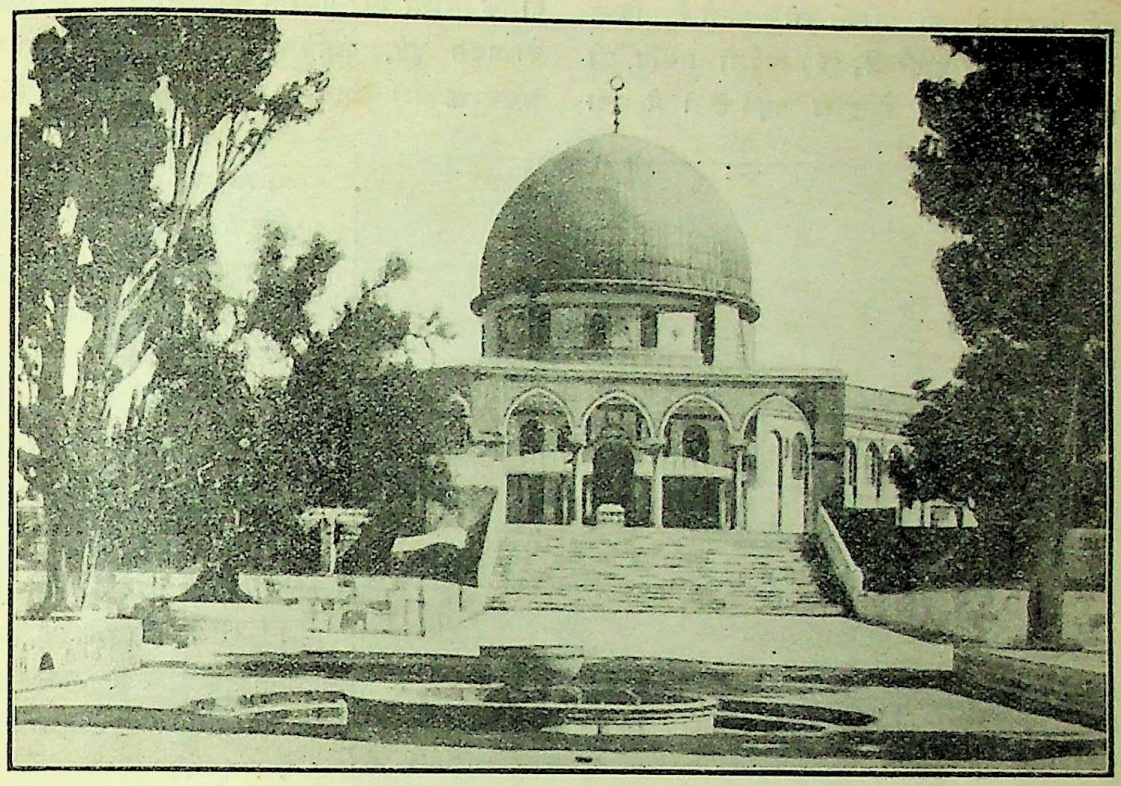

उमर की मस्जिद, जेरूसलेम।

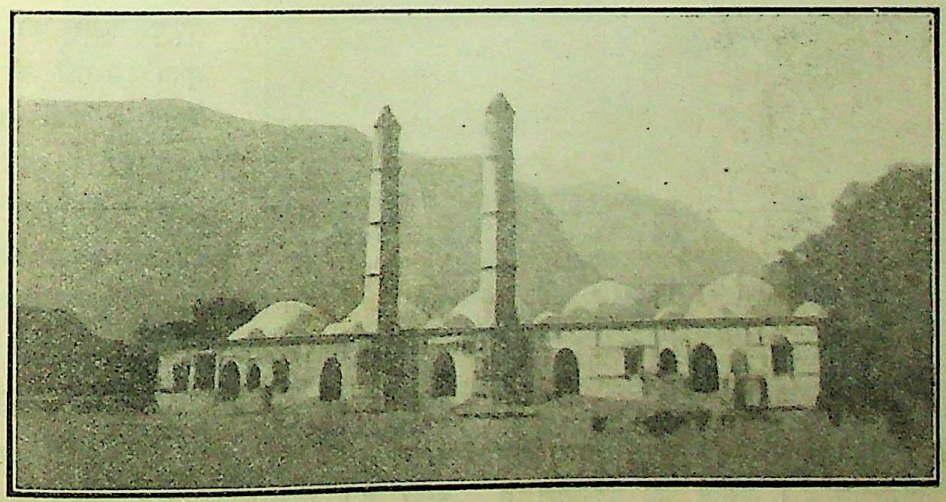

चम्पानेर की मस्जिद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाई हुई परम्परायें, जो परिवर्तनशील होती हैं, किन्तु बाद को निश्चित हो जाती हैं; (३) विदेशी प्रभाव, जो आवागमन तथा व्यापार के द्वारा पड़ते हैं। ये सदा

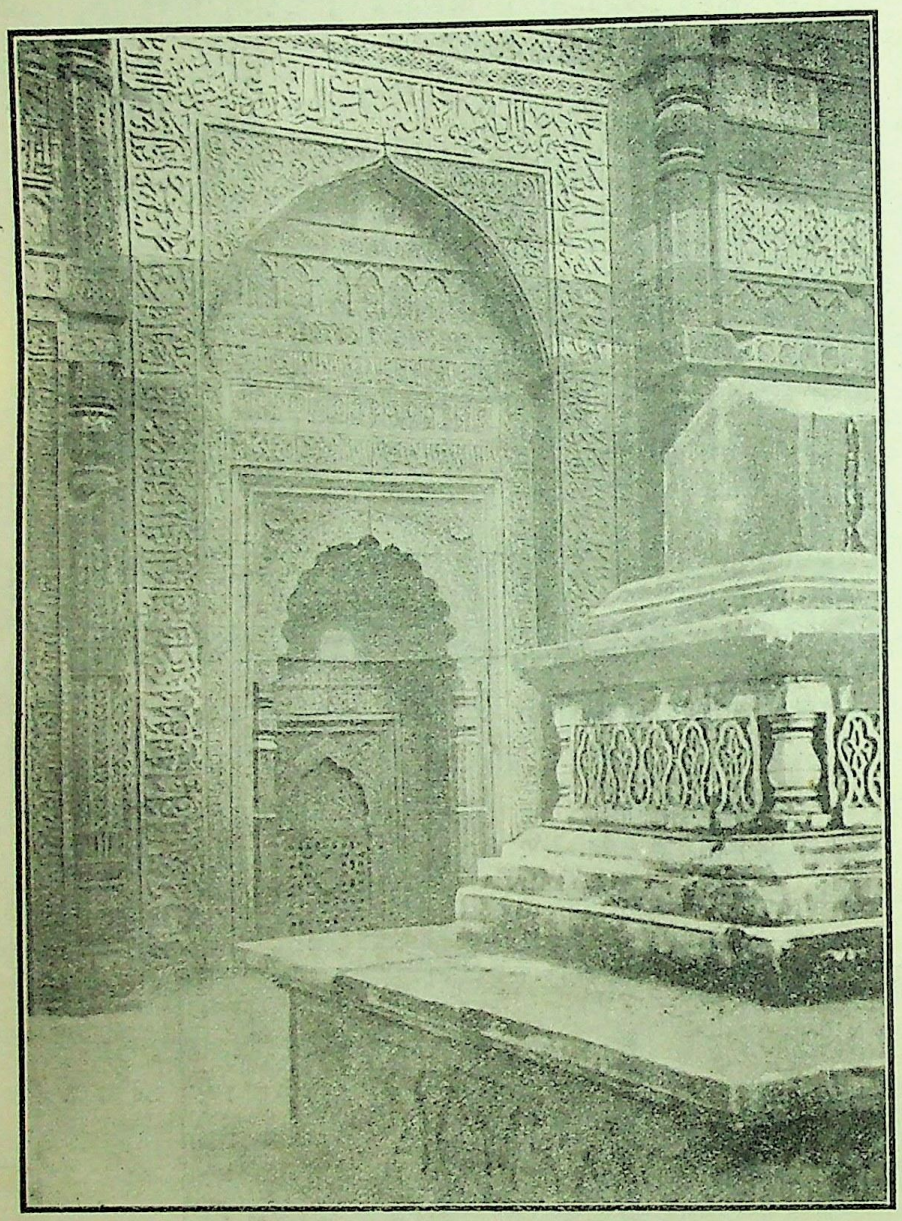

आदमख़ाँ का मक़बरा।

परिवर्तनशील रहते हैं और लोक-रुचि पर निर्भर करते हैं।

मुसलमानी कला के सबसे पिछले रूप में विलासिता और वैभव का दिग्दर्शन है। बुनाई की कारीगरी में उसका जन्म हुआ था। अतएव वह पत्थर की अत्यन्त बारीक तराशी और पलस्तर की कारीगरी में भी प्रकट होने को प्रवृत्त हुई, यद्यपि इन दोनों बातों में उसका उपयोग अनुपयुक्त और कठिन था और इन कठिनाइयों की वृद्धि मसाले की अस्थिरता से और भी अधिक बढ़ गई। ईंट या मिट्टी की टूटी-फूटी इमारतों में हमें प्रायः मिनाकारी के काम दिखाई दिया करते हैं। यही कारण है कि जो मुसलमानी नगर किसी समय समृद्धि-पूर्ण थे वे उजड़ जाने पर सौ वर्ष बाद ढह कर ध्वंसावशेष-मात्र रह गये। भारत में इसके अनेक प्रमाण मौजूद हैं। यहाँ उजड़े हुए मुसलमानी शहरों और क़स्बों में उनकी ऊर्जितावस्था के समय में बनी हुई बहुसंख्यक सुन्दर इमारतों के ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी इस दशा का कारण उस सामग्री का उपयोग करना है जो मरम्मत के अभाव में चिरस्थायी नहीं रह सकती। एक-मात्र पत्थर की इमारत ही स्थायी रह सकती हैं। परन्तु दुर्भाग्य से यहाँ इसका उपयोग बहुत कम किया गया है। सफ़ेद पत्थर का उपयोग मुख्य मुख्य इमारतों या उनके अंश विशेषों में किया गया है। परन्तु उसके अधिक व्यय-साध्य होने के कारण उसका उपयोग बहुसंख्यक इमारतों में नहीं किया जा सका। अतएव मुसलमान लोग योरप की गाथिक इमारतों की भाँति अपनी कलाद्योतक इमारतें चिरस्थायी नहीं बना सके।

इमारतों में कमज़ोर सामग्री के उपयोग करने के कारण मुसलमानी राजघरानों का अस्थिरत्व भी बताया जाता है। मुसलमान-समाज ख़लीफ़ाओं के प्रजातन्त्र और राजतन्त्र के बीच में कोई मध्य-मार्ग न निकाल सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

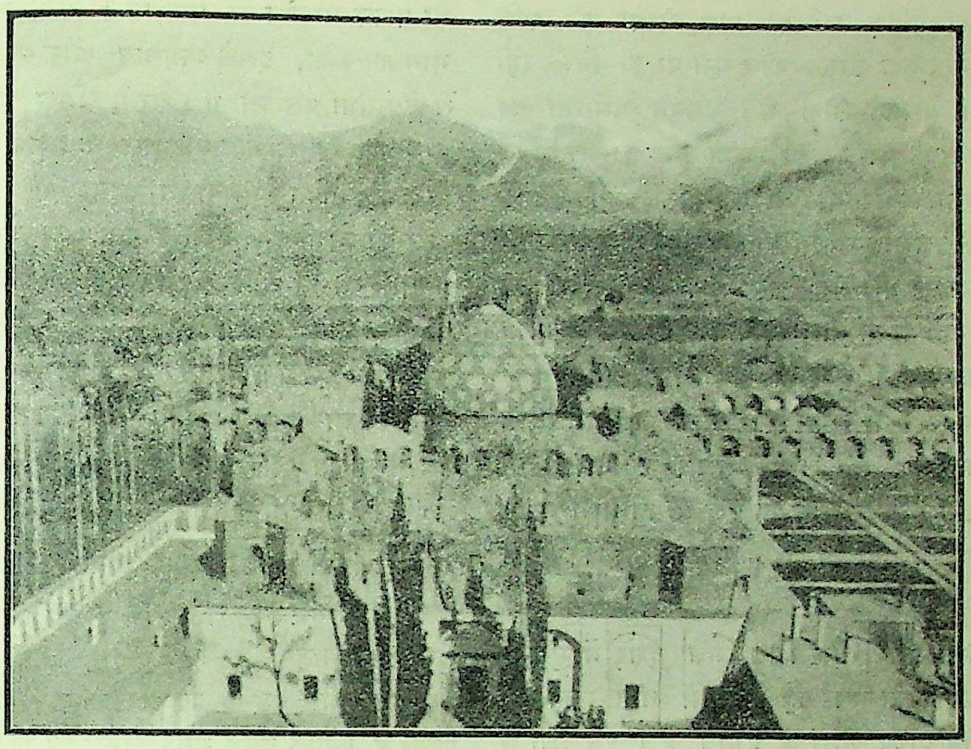

शाह नियामतुल्ला अली का मक़बरा, माहून (करमान)।

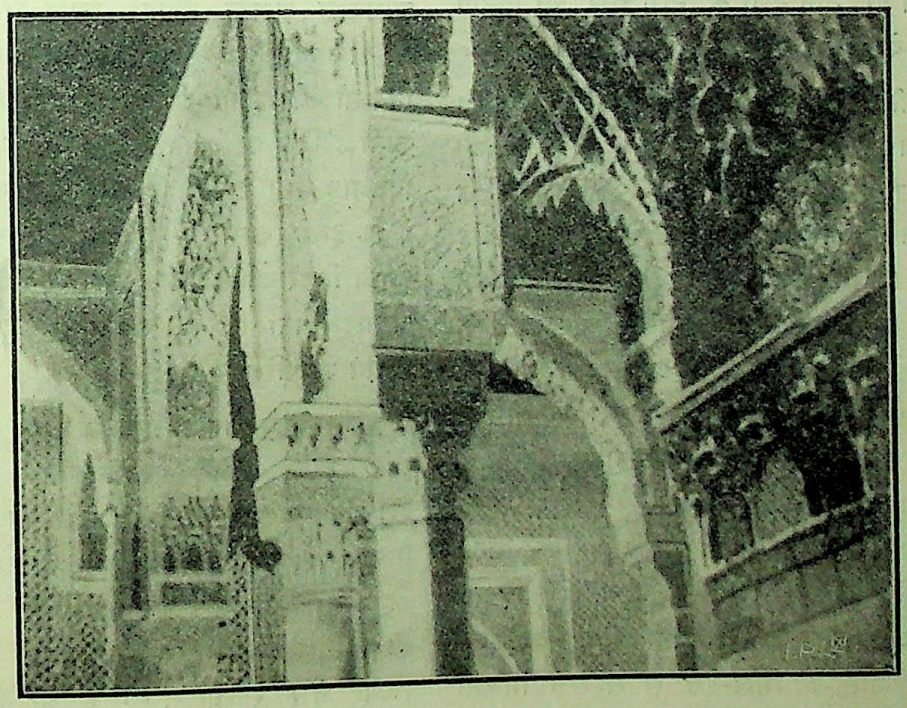

सअादीन सुलतानों के मक़बरे, मराको।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी राजनैतिक अधिकार-प्राप्त संस्था की शक्ति जनता या निरङ्कुश शासक की इच्छा पर ही निर्भर रही और ये दोनों परिवर्तनशील थे। अतएव इमारतों का निर्माण शीघ्रता के साथ हुआ। वही बाद को उतनी ही शीघ्रता के साथ धराशायी भी की गईं, क्योंकि उनके निर्माताओं के उत्तराधिकारियों को अपने ही नाम की कीर्ति की विशेष चिन्ता थी, उन्हें कला या उसके आदर्शों की उतनी परवा नहीं रहती थी। अपने को समृद्धिपूर्ण बनाने के आगे उनका अपनी इमारतों को स्थिरत्व प्रदान करने की ओर ध्यान नहीं था। योरपीय समाज की जागीरदारी संस्था में घरानों की परम्परा का आधार दृढ़ था, परन्तु मुसलमान-समाज में इस बात का पूर्ण अभाव था। भारत में इस त्रुटि के प्रभावों का ज्ञान भले प्रकार किया जा सकता है।

भिन्न भिन्न समयों और भिन्न भिन्न देशों में मुसलमानी कला पर जो प्रभाव पड़े हैं उनमें तीन मुख्य हैं। एक तो प्राचीन प्राच्य देशों के प्रभाव हैं। इन देशों में असीरिया, चाल्डिया और ससान गिने गये हैं। दूसरा बैज़न्टाइन और तीसरा पश्चिमी योरप का लैटिन-प्रभाव है। इनके साथ ही तीन देशों के नाम और भी गिनाये जा सकते हैं। वे भारत, चीन और मिस्र हैं।

मुसलमानी गृह-निर्माण-विद्या पाँच प्रकार की है। इस विभाग का आधार भौगोलिक है। परन्तु यह उन मुख्य मुख्य बातों पर ज़ोर देने का काम देता है जो भिन्न भिन्न देशों की मुसलमानी गृह-निर्माण-कला का भेद प्रकट करती हैं। भौगोलिक विभागों से राजनैतिक विभागों का, जैसा कि उनका वर्तमान समय में अस्तित्व है या पहले के ऐतिहासिक कालों में वे अस्तित्व में थे, कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु उन विचार-समूहों के बीच के भेद को वे स्पष्ट करते हैं जो भिन्न भिन्न मुसलमानी देशों में प्रचलित थे।

गृह-निर्माण-कला का पहली पद्धति सिरियाई-मिस्री है। बहुत प्राचीन काल से अरब की मिस्र से घनिष्ठता थी। स्वयम् हज़रत मुहम्मद की जीवनी और उनके इतिहास की अनेक बातों का मिस्र-देश से सम्बन्ध मिलता है। सीरिया की यात्रा करने से उनका इस देश के साथ तो प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो गया था। रोमन-साम्राज्य के इस भाग की कला, इसके व्यवसाय और सामाजिक जीवन से वे सर्वथा परिचित थे। अरब, मिस्र और सीरिया में इस्लाम के प्रारम्भिक इतिहास के समय से ही घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया था। इन देशों में गृह-निर्माण-कला का जो विकास हुआ है उसमें सादृश्य है। सजावट के कामों की भी उत्पत्ति परम्पराओं से ही है। ये अनेक राजघरानों और साम्राज्यों के उदय-काल में अपना प्रभाव बराबर बनाये रहे। इन पर अनेक जातियों के वहाँ समय समय पर आ बसने का भी प्रभाव पड़ता रहा। परन्तु कला-सम्बन्धी प्रचलित विचार पर्याप्त रूप से विचारों के रूप में परिणत हो गये, जिससे एक नई पद्धति का जन्म हुआ।

गृह-निर्माण-कला का दूसरी पद्धति मग़रिब के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी जन्म-भूमि अफ़्रीका के सुदूर पश्चिमाञ्चल में स्थित मराको-देश है। परन्तु इसे अफ़्रीकी पद्धति कहना अधिक उपयुक्त मालूम पड़ता है, क्योंकि इसके मुख्य स्वरूप का विकास ट्यूनिस, अलजीरिया और मराको में हुआ था। यह अपनी उन्नति की पराकाष्ठा को स्पेन में प्राप्त हुआ। इस पद्धति के अधिकांश अत्यन्त मनोहर स्मृति-मन्दिर सिस्ली-द्वीप में पाये जाते हैं। इस पद्धति की कला में वहाँ के मूल-निवासी बर्बर लोगों की उस भावना का प्राधान्य पाया जाता है जिस पर रोमन सभ्यता का प्रभाव पहले से ही विद्यमान था। इसकी इमारतों में एक मुख्य बात यह है कि इनके खम्भों पर यूनानी प्रभाव देख पड़ता है। इनकी मिहराबें भी अधिक भारी रहती हैं। इनका गुम्बद चौकोर होता है, जो सम्भवतः यहूदी परम्पराओं के प्रभाव का परिणाम है।

तीसरी ईरानी पद्धति है। उपर्युक्त दोनों पद्धतियों की अपेक्षा इसमें अधिक स्वाधीनता का भाव पाया जाता है। इस स्कूल में पशुओं के रूपों का अनुकरण न्याय्य माना गया है। इसका कारण शिया-सम्प्रदाय है, जो कट्टर सम्प्रदाय की अपेक्षा अधिक उदार है। ईरान की संस्थाओं का इतिहास अधिक सम्बद्ध है। दूसरे राज्यों और राजघरानों की अपेक्षा ईरान अपने गुरुत्व के केन्द्र में अधिक दृढ़ है। ईरानी लोग अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

R
८०८
प्र० ८९स
भा० २६ खं० १

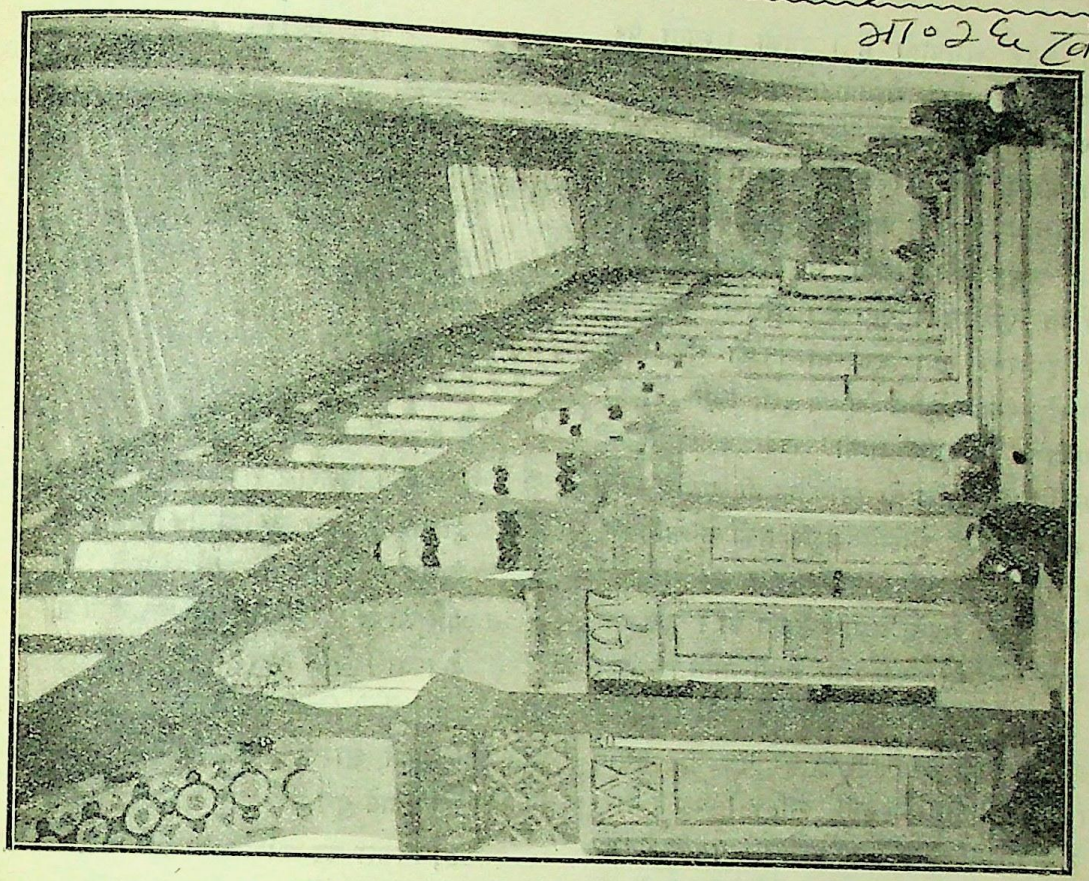

दमस्कस की बड़ी मस्जिद का बरामदा।

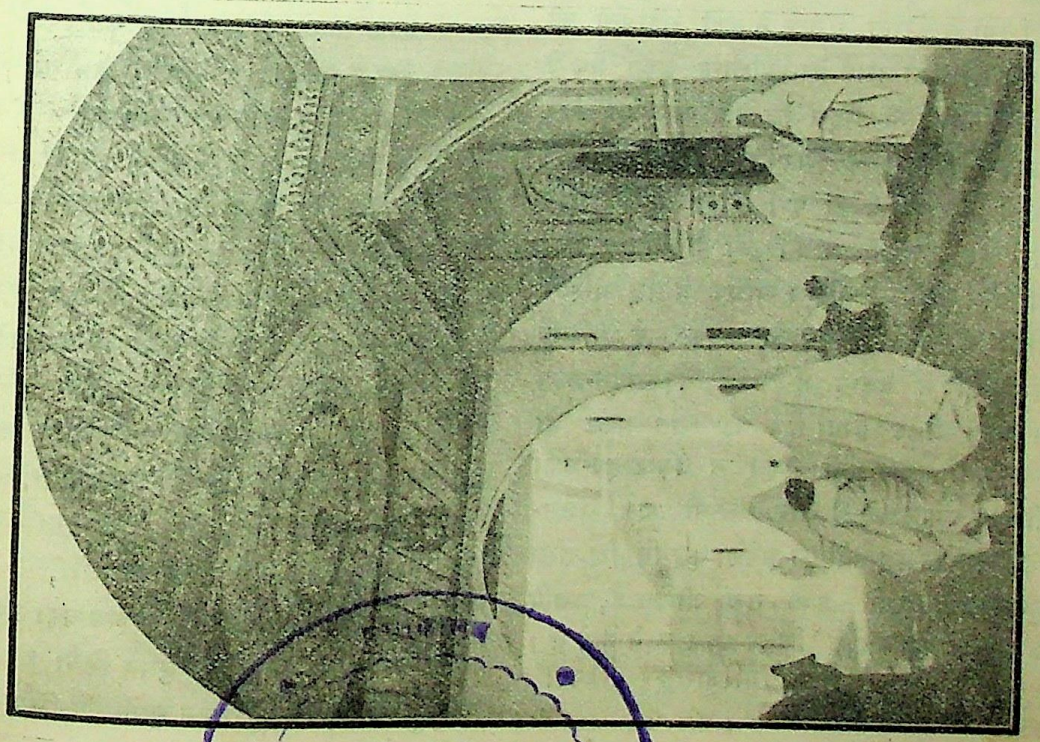

सीदीबेन हसून का मक़बरा, मराको।

112882
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्शों के कट्टर अनुयायी हैं। उनकी सभ्यता पर आरम्भ में चाल्डिया और मेसोपोटैमिया की सभ्यताओं का प्रभाव पड़ा था। ईरान की कला की उन्नति में वहाँ के ससान-राजघराने का पूरा हाथ था। ये सारे प्रभाव बाद को मुसलमानी कला ने आत्मसात् कर लिये। इसके सिवा ईरानी स्कूल का प्रभाव भारत की मुसलमानी इमारतों पर भी पूर्णरूप से पड़ा है। दक्षिण-भारत की मुसलमानी इमारतें तथा उत्तर-भारत की मुग़लों की इमारतों की श्रेष्ठ कल्पनाओं का उद्भव इसी पद्धति से हुआ है। मध्य-एशिया के मुसलमानी राज्यों का साहित्य, उसकी राजनीति और कला तो ईरान का ही प्रसाद था। जब ईरान सेल्जुक और ओस्मानअली तुर्कों के अधिकार में हो गया था तब उसने उनके राजत्व-काल की संस्थाओं और कलाओं पर भी अपना प्रभाव डाला था। इन सब बातों के विचार से किसी दूसरी मुसलमानी जाति की कला की अपेक्षा ईरानी कला विशेषरूप से अध्ययन करने योग्य है।

मुसलमानी गृह-निर्माण-कला की एक और पद्धति है। उसका भी हमें विचार करना चाहिए। वह है योर-पीय और लघु-एशिया के तुर्कों की ओटोमन पद्धति। ऊपर कहा गया है कि सेल्जुक तुर्कों के राजत्व-काल में इस पद्धति की रचना में ईरानी प्रभाव ने बड़ी सहायता की थी। जब ओस्मानअली-घराने का प्राधान्य हुआ तब वे अपनी कोनिया राजधानी से इस पद्धति की कला को अपने साथ योरप लेते गये। इसके योरप पहुँचने पर वहाँ इस पर बैज़न्टाइन कला ने अपना पूरा प्रभाव डाला। इसी अवसर पर बहुसंख्यक गिरजे मस्जिदों में परिणत किये गये थे। योरपीय तुर्कों की अत्यन्त अधिक प्रसिद्ध मस्जिदें पहले ईसाइयों के गिरजाघर थे। जो अनेक नई मस्जिदें वहाँ मुसलमानों ने बनाई हैं उनमें बैज़न्टाइन-कला का प्रभाव स्पष्ट प्रकट होता है। यह बात प्रकट हो जाती है कि वहाँ मुसलमानी कला ने बैज़न्टाइन-कला की कितनी बातें नक़ल की हैं और कितनी बातें आत्म-सात् की हैं। उपर्युक्त पद्धतियों की अपेक्षा गृह-निर्माण-कला की यह मुसलमानी पद्धति अभी तक जीवित है, यद्यपि अब उसके आदर्श पराभव के चिह्न प्रकट करने लगे हैं।

गिरिजाशङ्कर वाजपेयी

आँसू।

बह रही शुचि आँसुओं की धार है,
क्या न बनता मोतियों का हार है?
तुच्छ इसको मित्र! मत मानो कभी,
क्या नहीं यह प्रेम का उपहार है? ॥१॥
क्यों बहुत बेचैन आँखें हों नहीं?
हानि ऐसी क्या सही जाती कहीं?
क्या न वे आँसू बहा कर रोज़ ही,
हैं हज़ारों मञ्जु मोती खो रहीं? ॥२॥
मिट गया विकराल रोष-विधान है,
छा गई मुख पर मधुर मुसकान है।
जो अभी थी रो रही वह हँस पड़ी,
आँसुओं में बह गया सब मान है ॥३॥
देखनेवाले सभी बेहाल हैं,
आँसुओं से सिक्त दोनों गाल हैं।
देख लो, आरक्त आँखें हो गईं,
खिल गये युग पद्म मानो लाल हैं ॥४॥
हैं, निकल कर आँख में वे छन गये,
और काजल में ढुलक कर सन गये।
लाल गालों की ललाई ले ज़रा,
क्या न आँसू हैं "त्रिवेणी" बन गये? ॥५॥
भोगते हैं दुःख हरदम जो कड़े,
हैं जिन्हें सब बात के लाले पड़े।
शान्ति सुख से हीन जो अति दीन हैं
आँसुओं के हैं धनी वे ही बड़े ॥६॥
कुछ न डर है आप चाहे जो कहें,
किस तरह यह चोट दिल की हम सहें?
है कलेजे से लहू जब बह रहा,
क्यों नहीं तब आँख से आँसू बहें? ॥७॥
क्या कहें, कुछ भी नहीं जाता कहा,
खो चुके हम पास में जो कुछ रहा।
धन हमारा सिर्फ़ आँसू रह गया,
किन्तु वह भी जा रहा है अब बहा ॥८॥
क्या भला संसार में तुमने किया?
किसलिए यह जन्म तुमने है लिया?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपदा में लीन दुर्विध दीन को,
जो नहीं दो बूँद आँसू भी दिया ॥९॥
तुम उन्हें हरदम सताते ही रहे,
और वे चुपचाप सब कुछ हैं सहे।
ज़ालिमो! देखो न बह जावो कहीं,
दीन के आँसू दृगों से हैं बहे ॥१०॥

गोपालशरणसिंह

हिन्दूत्व।

हमारा देश आज दिन सभी बातों में और और देशों से पिछड़ा हुआ है। अतएव हमारे सम्बन्ध में योरपीय विद्वानों ने जितनी छानबीन की है उसका चतुर्थांश भी स्वयम् हम लोगों ने नहीं किया है। ऐसी अवस्था में अपने सम्बन्ध में बहुत सी धारणायें जो हमने स्थिर की हैं वे अधिकांश में हमारी नहीं। हम लोगों ने उन्हें योरपीय विद्वानों से सुना है या पढ़ा है और धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार भी कर लिया है।

हिन्दुओं के सम्बन्ध में यह धारणा एक तरह से सर्वमान्य हो चुकी है कि हम लोगों में जातीयता के भाव आज तक उत्पन्न ही नहीं हुए थे। अँगरेज़ी शासन-प्रणाली के अन्तर्गत जब से यह देश आया तभी से हिन्दू-समाज में एकीकरण की क्रिया प्रारम्भ हुई, और लोगों में जातीयता के भाव अङ्कुरित होने लगे। हमारे विद्वान् लोग यह बात मुक्तकण्ठ से स्वीकार भी करने लगे हैं कि वर्तमान शासन-प्रणाली में चाहे जो दोष हों, परन्तु इस व्यवस्था को कम से कम इस बात का श्रेय अवश्य है कि उसके द्वारा हिन्दू-जन-समाज में जातीयता के भाव अङ्कुरित ही नहीं, प्रत्युत पल्लवित भी हो रहे हैं। देश की वर्तमान राजनैतिक प्रगति इसी उदीयमान जातीय भावों का परिणाम है।

किसी सभ्य जन-समाज के लिए इससे अधिक अपमानजनक बात नहीं कही जा सकती। परन्तु हमारे दुर्भाग्य-वश यही बात हम हिन्दुओं के सम्बन्ध में हमारे विद्वान् विदेशी पण्डितों से सुनकर कहा करते हैं और हम चुपचाप सुना भी करते हैं। योरपीय लेखकों को यह कहते हुए किसने नहीं सुना है कि हिन्दुस्तान एक भौगोलिक शब्द के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है?

हिन्दुओं के अनादर का अन्त केवल इतने में ही नहीं हो जाता। और तो क्या, 'हिन्दू' शब्द के ही सम्बन्ध में हममें से कई लोगों की धारणा है कि यह नाम तिरस्कार-सूचक है, और विदेशियों का दिया हुआ है। अपने स्वभाव की नम्रता के वशवर्ती होकर हिन्दुओं ने इसे स्वीकार कर लिया। परिणाम यह हुआ कि कालान्तर में हम लोग अपने को निःसङ्कोच भाव से हिन्दू कहने लगे और यह नाम प्रचलित हो गया। वी० पी० केलकर नामक एक महाराष्ट्र सज्जन ने अँगरेज़ी में एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसका नाम है 'क्या हिन्दू शब्द तिरस्कारसूचक है'? उसमें इन विचारों को निर्मूल सिद्ध करने का लेखक ने बड़ी योग्यता-पूर्वक प्रयत्न किया है। पुस्तक के पहले अध्याय में ग्रन्थकर्त्ता ने ग्रन्थ का विषय-निर्देश करते हुए यह प्रकट किया है कि अँगरेज़ी का Hinduism शब्द जातीयता का बोधक नहीं है। वह केवल हिन्दू-समाज के धार्मिक और नैतिक सिद्धान्तों का द्योतक है। अँगरेज़ी में यदि Hinduness शब्द की सृष्टि की जाय तो उससे कदाचित् जातीयता का अर्थ निकाला जा सकता है। परन्तु उस भाषा में यह शब्द अभी तक व्यवहृत नहीं हुआ। अतएव पुस्तक अँगरेज़ी में होते हुए भी सार्थक शब्द के अभाव में उद्देशानुसार 'हिन्दूत्व' शब्द ही स्वीकार करना पड़ा; क्योंकि इसी शब्द से ग्रन्थकार के वक्तव्य विषय का बोध हो सकता है। एक अँगरेज़ी पुस्तक के लिए इस नाम में जो विचित्रता का कुछ आभास प्रतीत होता है उसका कारण केवल इतना ही है। इसके बाद लेखक ने योग्यतापूर्वक विषय का विवेचन किया है। यहाँ उसके विचारों का सारांश दिया जाता है।

आज तक पूर्वी संसार के सम्बन्ध में जितनी खोज हुई है उसके आधार पर यह कहना कठिन है कि आर्यों का सबसे पहला गिरोह सिन्धु-नदी के किनारे कब आकर बसा; परन्तु इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि बैबिलोनियन और इजिप्शियन सभ्यताओं का जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय जन्म नहीं हुआ था उस समय सिन्धु-नदी के पार्श्ववर्त्ती पर्वतों की कन्दराओं में वेदमन्त्रों की प्रतिध्वनि गूँज रही थी, उस समय तक सिन्धु-नदी के तट पर निवास करनेवाले ये आर्य अपने पड़ोसी ईरानियों से अपने को सर्वतोभावेन भिन्न मान चुके थे, और सिन्धु एवम् उसकी सहायक नदियों के मध्यवर्त्ती प्रान्त में अपना सामुदायिक अस्तित्व स्थापित कर चुके थे। उन दिनों वे लोग अपने को 'सप्तसिन्धु' कहा करते थे। ऋग्वेद इस बात का प्रमाण है। जो नदी का नाम था वही उनकी जातीयता का द्योतक भी हो गया। क्यों?

इमा आपः शिवतमाः। इमा राष्ट्रस्य भेषजीः।
इमा राष्ट्रस्य वर्धनीः। इमा राष्ट्रभृतोपमाः॥

इसमें सन्देह नहीं कि उन प्राचीन आर्यों को आगे चलकर और भी कई नदियाँ मिलीं; परन्तु सिन्धु के लिए उनकी एक बार जो श्रद्धा और ममता स्थिर होगई थी वह बनी रही। क्योंकि उनकी धारणा थी कि हम लोगों की जातीयता का जन्म उसी पुण्यसलिला के किनारे हुआ था।

इसके अतिरिक्त इस बात का भी प्रमाण मिल सकता है कि न केवल यही लोग अपने को 'सप्तसिन्धु' या 'सिन्धु' के नाम से पुकारते थे, बरन ईरान-निवासी भी इन आर्यों को 'हप्तहिन्दु' के नाम से सम्बोधन करते थे। इसका प्रमाण उनके धर्म-ग्रन्थ ज़ेंदअवस्ता में है। इस बात को पौराणिक-काल के पण्डित भी जानते थे। भविष्य-पुराण का प्रतिसर्ग पर्व (अध्याय ५) इस बात को सिद्ध करता है—

संस्कृतस्यैव वाणी तु, भारतं वर्षमुह्यताम्।
अन्यखण्डे गता सैव, म्लेच्छाह्यानं दिनेऽभवन्॥
पितृ पैतर भ्राता च, बादरः पतिरेव च।
सेति सा यावनी भाषा, हयश्वश्चास्य तथा पुनः॥
जानुस्थाने जैनुशब्दः, सप्तसिन्धुस्तथैव च।
हप्तहिन्दुर्यावनी च, पुनर्ज्ञेया गुरुंडिका॥

यह बताने की कदाचित् आवश्यकता नहीं है कि संस्कृत-भाषा का 'स' ज़ेंदअवस्ता तथा योरप की कुछ भाषाओं में भी 'ह' में परिणत होजाता है। जैसे सप्त, हप्त हेप्दार्शी। उसी प्रकार कुछ हिन्दुस्तानी प्राकृत भाषाओं में भी संस्कृत का 'स' 'ह' का रूपान्तर ले लेता है। जैसे केसरी, केहरी, सरस्वती, हरहवती इत्यादि। इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाण से यह निस्सन्देह सिद्ध होता है कि हिन्दुस्तानी आर्यलोग आपस में तथा सन्निकटवर्त्ती विदेशों में भी 'हप्तहिन्दु' या हिन्दू के नाम से प्रसिद्ध थे।

अभी तक हमने प्राचीन-ग्रन्थों के प्रमाणों से काम लिया। अब हम बुद्धि-गम्य अनुमान से पाठकों को यह बताना चाहते हैं कि हिन्दुस्तानी आर्यों का दिया हुआ 'सिन्धु' नाम यदि प्राचीन 'हिन्दू' का रूपान्तर-मात्र हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

जब कभी हम किसी नये भूमि-खण्ड में अपनी बस्ती स्थापित करते हैं तब प्रायः देखने में आता है कि उस स्थान को हम एकदम किसी नये नाम से नहीं पुकारते। बहुधा हम उस स्थान के लिए कुछ आवश्यक रूपान्तर के साथ उसके तत्कालीन नाम का ही उपयोग करते हैं। यह मनुष्य-समाज का अनुभव है।

जिस समय आर्यों का पहला गिरोह इस देश में आया उस समय सिन्धु-नदी के आसपास यहाँ के मूलनिवासियों की जो बस्तियाँ थीं वे यत्र-तत्र फैली हुई थीं। जन-संख्या भी उनकी कुछ अधिक नहीं थी। प्रतीत होता है कि सिन्धु-तट के ये मूलनिवासी बड़े सरल-स्वभाव के थे; क्योंकि इन 'विद्याधराप्सरोयक्ष रक्षोगन्धर्वकिन्नराः' लोगों ने आगन्तुक आर्यों से किसी प्रकार का विरोध नहीं किया। प्राचीन आर्यों ने इन मूलनिवासियों के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक उद्गार भी प्रकट किये हैं। ऐसी अवस्था में बहुत सम्भव है कि इन आर्यों ने बहुत से स्थानों के पुराने नाम कुछ रूपान्तर के साथ स्वीकार कर लिये। इस प्रकार के कई शब्द संस्कृत-भाषा में आ भी गये हैं। जैसे शतकंट-कटा, मलय, मिलिंद, अलसंदा सुवूव इत्यादि।

यदि यह बात सच है तो बहुत सम्भव है कि सिन्धु-नदी का प्राचीन नाम 'हिन्दु' ही रहा हो, और आर्यों ने आवश्यक परिवर्तन के साथ उसे 'सिन्धु' नाम दे दिया हो। इस अनुमान से तो यह प्रतीत होता है कि सिन्धु-नदी तथा उसके पार्श्ववर्ती मूलनिवासियों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हिन्दु' नाम इतना प्राचीन है कि वह इतिहास की मर्यादा से भी बाहर हो जाता है।

कालान्तर में आर्य लोग पञ्जाब के पञ्चनद से दक्षिण की ओर अग्रसर हुए, और उनकी जन-संख्या तथा विस्तार दिनों दिन बढ़ने लगा। जङ्गल काट डाले गये। खेती के लिए खेत और खलियान बनने लगे। स्थान स्थान पर नगरों का दृश्य दृष्टिगोचर होने लगा। इस प्रकार जो स्थान निर्जन अरण्य से ढके हुए थे वे आर्य-सभ्यता के लक्षणों से अलङ्कृत हो गये।

जैसे जैसे दिन बीतते गये, आर्यों की बस्तियाँ दूर दूर फैलती गईं; और भिन्न भिन्न स्थानों में बस्ती स्थापित करनेवाले आर्यों में प्रान्तीयता भी आने लगी। काशी, कुरु, विदेह, मगध इत्यादि नामों से भिन्न भिन्न प्रान्त-निवासी आर्य अपना सम्बोधन करने लगे। 'हिन्दू' या 'सिन्धु' नाम कुछ काल के लिए विस्मृतप्राय हो गया था। परन्तु इसका यह अर्थ न लेना चाहिए कि उनकी संस्कृति में किसी प्रकार का सैद्धान्तिक अन्तर हो गया था। उनकी सभ्यता एक ही बनी रही। वे अपने अपने प्रान्तों में स्वतन्त्र होते हुए भी एक ही सार्वभौम चक्रवर्ती की छत्रछाया में शान्तिपूर्वक रहने लगे। विन्ध्य और हिमालय के मध्य में फैला हुआ समूचा प्रदेश 'आर्यावर्त' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। आर्यों का विस्तार सिन्धु-नदी की सीमा से बाहर हो गया।

इस प्रकार जैसे जैसे आर्यों की जन-संख्या बढ़ती गई, वैसे वैसे वे अधिकाधिक दक्षिण की ओर अग्रसर होते गये। अन्त में कई शताब्दियों के पश्चात् अयोध्या के राजकुमार वीर-बाहु श्रीरामचन्द्र ने लङ्कापुरी में विजयश्री के साथ पदार्पण किया। इस विजय का परिणाम यह हुआ कि आर्यों की बस्ती हिमालय से लङ्का तक फैल गई। आर्य-सभ्यता की दुन्दुभी सारे देश में पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक एक बार बज उठी। हिमालय के दक्षिण में फैला हुआ यह समूचा विशाल भूमि-खण्ड आर्यों का आधिपत्य स्वीकार करके कृतकृत्य हो गया। बस, वही दिन हिन्दुस्तानी आर्यों की राष्ट्रीयता का जन्म-दिन था। आर्यों की जातीयता अपने विकास की पूर्णावस्था को उस दिन प्राप्त होगई। हमारे पूर्वजों की एक-मात्र जातीय अभिलाषा उस दिन पूरी हो गई। आज भी हिन्दूसमाज उस दिन को अपनी विजया-दशमी मान कर प्रफुल्लित होता है। क्यों न हो? निस्सन्देह वह दिन पवित्र था। हिन्दूजाति के इतिहास में वह दिन धन्य है, नमस्कार करने योग्य है।

जब आर्यों का साम्राज्य लङ्का तक फैल गया तब उन्हें एक ऐसे नाम की आवश्यकता प्रतीत हुई जो हिमालय और लङ्का के मध्यवर्ती समूचे भूमिखण्ड के लिए सार्थक सिद्ध होसके। 'ब्रह्मावर्त' अथवा 'आर्यावर्त' इत्यादि नामों की सार्थकता तिरोहित हो गई। अपने विस्तार-क्रम में आर्यों ने दक्षिण के मूल-निवासी अनार्यों पर भी अपनी सभ्यता की छाप लगाकर उन्हें अपने समाज में सम्मिलित कर लिया था। यह भी एक कारण था कि उन्हें एक ऐसे नाम की आवश्यकता प्रतीत हुई जो सिन्धु से लेकर लङ्का तक समूचे देश का द्योतक हो। यह आवश्यकता अधिक समय तक बनी रही। अन्त में भरत नाम का एक सार्वभौम सम्राट् सिंहासन पर आसीन हुआ। यह नरेन्द्र अपनी लोक-प्रियता और वैभव के कारण हिन्दुओं का हृदय-सम्राट् हो गया। समग्र देश भरतखण्ड या भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध हो गया। अपने देश के लिए जिस नाम की खोज में तत्कालीन आर्य लोग थे वह अनायास उन्हें प्राप्त होगया। भरतखण्ड की भौगोलिक मर्यादा इस प्रकार बाँध दी गई —

उत्तरं यत्समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भारतम् नाम, भारती यत्र सन्ततिः॥
(विष्णुपुराण)

'भारतवर्ष' नाम इस देश के लिए सर्वमान्य तो हो गया, परन्तु फिर भी हिन्दुस्तानी आर्यों के मन से उनका प्राचीन 'सिन्धु या हिन्दू' नाम विस्मृत नहीं हुआ। उन दिनों में भी वे लोग अपने को हिन्दू ही कहा करते थे। सीमान्त-प्रान्त के रहनेवाले आर्य लोग उन दिनों में भी अपने को 'सिन्धुराष्ट्र' कहा करते थे। महाभारत-युद्ध में सिन्धु-सौवीरों का नाम स्थान स्थान पर पढ़ने में आता है। 'भारतवर्ष' नाम के प्रचलित हो जाने के पश्चात् भी उन दिनों के ईरान-निवासी यहूदी तथा यूनानी सरीखे विदेशी लोग हमें 'हिन्दू' नाम से ही जानते थे। हुएन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांग नाम का चीनी यात्री इस देश में बहुत दिनों तक रहा। उसने भी हम लोगों के लिए 'शिंतु या हिंतु नाम का उपयोग किया है। इस प्रकार यद्यपि हम लोगों ने आवश्यकतानुसार अपने देश को 'भारतवर्ष' नाम दे दिया; परन्तु प्रतीत यह होता है कि विदेशियों ने हमारे इस नये नाम की कोई परवा नहीं की। ये लोग हमें सिन्धु या 'हिन्दु' ही कहते रहे। आज भी इतने दिनों के पश्चात् एतद्देशीय आर्य लोग 'हिन्दू' नाम से संसार भर में प्रसिद्ध हैं। हमारा देश भी एशिया, योरप तथा अमेरिका में 'हिन्दुस्तान' नाम से ही जाना जाता है। हमारे पूर्वज वैदिक काल के आर्यों की भी कदाचित् यही इच्छा थी।

बड़े खेद का विषय है कि ऐसे ऐतिहासिक प्रमाणों के रहते हुए भी हम लोगों को यह मानने में कुछ भी सङ्कोच नहीं होता कि हिन्दू विदेशियों का दिया हुआ एक तिरस्कार-सूचक नाम है। हम लोगों की यह धारणा निर्मूल और निन्दनीय है। अपनी जातीयता की सम्मान-रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि हम लोग ऐसे विचारों को जितनी जल्दी हो सके, अपने हृदय से निकाल दें।

क्या इतिहास इस बात का साक्षी नहीं है कि मुसलमानों के पैग़म्बर मुहम्मद के जन्म के पहले तथा अरब-निवासियों का जिस समय पता तक नहीं था तभी से हमारी जाति दूर दूर तक 'हिन्दु' तथा 'सिन्धु' नाम से प्रसिद्ध थी? जो लोग कहते हैं कि अरब-निवासियों ने हमें अपनी तिरस्कार-बुद्धि प्रकट करने के लिए हिन्दू नाम दिया वे यदि ऐसा भी कहें कि सिन्धु नदी का सिन्धु नाम भी विदेशियों ने ही दिया है तो कोई आश्चर्य नहीं। जो बात अपनी निर्मूलता के कारण संसार भर में कहीं स्वीकृत नहीं होती, हिन्दू उसे स्वीकार कर लेते हैं, चाहे फिर वह स्वयं हमारे ही विषय में क्यों न हो। 'हिन्दू' नाम पहले पहल अरब-निवासियों ने प्राचीन ईरानी तथा यहूदी लोगों से सुना, क्योंकि इन जातियों को हम लोग पहले से ही सिन्धु तथा हिन्दू नाम से परिचित थे। अच्छा, इन ऐतिहासिक प्रमाणों को क्षण भर के लिए जाने दीजिए। हम पूछते हैं कि क्या हिन्दुओं की सभ्यता में आत्म-सम्मान-बुद्धि के लिए कोई स्थान नहीं है? 'हिन्दू' नाम यदि सचमुच विदेशियों का दिया हुआ और तिरस्कार-सूचक होता तो क्या यह सम्भव था कि हमारे प्राचीन सभ्य और स्वाभिमानी आर्य लोग उसे स्वीकार कर लेते और उस नाम का उपयोग अपने लिए वे स्वयं करने लगते? अरबी और ईरानी भाषा से हमारे पूर्वज एक-दम अनभिज्ञ नहीं थे। मुसलमान लोग हमें काफ़िर भी कहते आये हैं। क्या हम लोगों ने इस नाम को भी स्वीकार कर लिया है? समझ में नहीं आता कि हमारे कुछ भ्रान्तबुद्धि देश-भाइयों को किन प्रमाणों के आधार पर यह जातीय अपमान सहन हो सकता है।

कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दू शब्द संस्कृत-साहित्य में कहीं नहीं पाया जाता। परन्तु इससे क्या? कई शब्द ऐसे हैं जो संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में नहीं पाये जाते। किशन, बनारस, मराठा, सिख, गुजरात, पाटण, सिया, जमना इत्यादि कई शब्द जिनका हम प्रतिदिन उपयोग करते हैं संस्कृत-ग्रन्थों में नहीं मिलते। तो इससे क्या यह अनुमान करना होगा कि ये शब्द विदेशियों के गढ़े हुए हैं? बनारस शब्द संस्कृत में नहीं मिलता, क्योंकि यह "वाराणसी" का प्राकृत रूप है। संस्कृत-ग्रन्थों में शब्दों के प्राकृत रूप का मिलना क्योंकर सम्भव हो सकता है? इसी प्रकार हिन्दू शब्द भी एक प्राकृत शब्द है। प्राकृत रूप होने पर भी इस शब्द का महत्त्व इसी से सिद्ध होता है कि यह शब्द मेरुतन्त्र-सरीखे संस्कृत-ग्रन्थ में भी पाया जाता है। संस्कृत-कोष के विद्वान् लेखक आप्टे तथा बङ्गाल के तारानाथ तर्कवाचस्पति सरीखे विद्वानों ने भी इस शब्द का उपयोग अपने ग्रन्थों में किया है। इसके सिवा "शिव शिव न हिन्दुर्न यवनः" इस वाक्य को कौन नहीं जानता?

यह बहुत सम्भव है कि पीछे से ईरान के मुसलमानों ने हिन्दू शब्द में अपने हृदय के तिरस्कार-भाव का समावेश कर दिया हो। परन्तु इससे यह नहीं जाना जा सकता कि उस नाम के जन्मदाता भी वही लोग थे। कहा जाता है कि हिन्दू शब्द काले आदमी के अर्थ में व्यवहृत होता था और उसका ऐसा उपयोग करनेवाले ईरानी मुसलमान ही थे। "हिन्दी" या "हिन्द" शब्द का भी उपयोग ईरानी-भाषा में होता है, परन्तु उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ काला नहीं माना जाता। बात तो यह है कि हिन्दु नाम का उपयोग प्राचीन ज़ेद अवस्था के ईरानियों के समय से चला आ रहा है और इस शब्द का उपयोग उनके समय में काले आदमी के अर्थ में होही नहीं सकता था; क्योंकि उन दिनों के आर्य लोग तत्कालीन ईरानियों के समान ही गौरवर्ण होते थे। यहाँ तक कि ईसा की पहली शताब्दी तक पार्थिया-निवासी हमारे सीमान्त-प्रान्त को 'श्वेत भारत' के नाम से पुकारते थे।

इसमें सन्देह नहीं हिन्दू शब्द प्रारम्भ में हमारी जातीयता, हमारा देश, हमारी सभ्यता तथा राष्ट्रीयता का बोधक था। बेचारे ईरानी मुसलमानों का उन दिनों में अस्तित्व ही नहीं था। पीछे अपनी सङ्कीर्णता तथा मूर्खता से प्रेरित होकर यदि हमारे नाम का उच्चारण उन लोगों ने तिरस्कारपूर्वक किया तो क्या ऐसा समझना चाहिए कि हिन्दू नाम का अर्थ ही बदल गया। इस प्रकार के कई उदाहरण संसार में और भी पाये जाते हैं। नॉर्मन लोगों ने जब इँग्लिस्तान पर अधिकार कर लिया तब इँग्लेंड शब्द अपने अर्थ से इतना गिर गया कि नॉर्मन लोग जब किसी का अपमान करना चाहते थे तब उसका सम्बोधन 'इँग्लिशमैन' के नाम से किया करते थे। अतएव उन दिनों इँग्लिशमैन कहलाना बड़ा अपमान-जनक समझा जाता था। समय को धन्य है। आज अँगरेज़ लोग अपने इस नाम पर बड़े अभिमान के साथ फूले फिरते हैं। यह तो मनुष्य-स्वभाव है कि जब लोग किसी को घृणा की दृष्टि से देखते हैं तब उसके स्वयं स्वीकृत नाम में ही बुरे अर्थ का आरोप कर दिया जाता है। परन्तु इससे शब्द दूषित नहीं हो सकता। बुरा अर्थ समझनेवाले के हृदय में ही रह जाता है। अन्तर्जातीय द्वेष के वशवर्ती होकर लोग प्रायः ऐसा किया करते हैं। परन्तु ऐसे पारस्परिक द्वेषजन्य भावों को जितनी जल्दी हो सके, छिन्नमूल कर देना चाहिए। हिन्दू शब्द का उपयोग यदि मुसलमानों ने बुरे अर्थ में किया तो उसी शब्द का उपयोग प्राचीन ईरानी तथा बैबिलॉन निवासियों ने बहुत अच्छे अर्थ में भी किया है। जब कोई आदमी किसी बात का निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया करता था तो ईरानी लोग कहा करते थे कि इसने तो एक हिन्दू के समान उत्तर दिया है। उसी प्रकार बैबिलॉन-निवासी किसी अच्छे और महीन वस्त्र को सिन्धु-वस्त्र कहा करते थे। यानचांग नाम का चीनी यात्री "हिन्दु" शब्द की व्युत्पत्ति "इन्दु" शब्द से करता हुआ कहता है कि इन लोगों को संसार ने यह नाम इस कारण दिया कि हिन्दू लोगों की सभ्यता चन्द्रमा के समान स्वच्छ और देदीप्यमान है।

इस प्रकार हिन्दुओं की सभ्यता तथा उनकी जातीयता की प्रशंसा कई विदेशियों ने भी मुक्तकण्ठ से की है पर हम हिन्दुओं के मन में यह भ्रम घुसा हुआ है कि हिन्दू नाम अपमानसूचक है तथा हम लोगों में जातीयता कभी थी ही नहीं।

रामदयाल तिवारी

विपर्यय।

(१)

जिस समय की बात है उस समय के और आज के आगरे में बड़ा अन्तर है। उस समय आगरा भारतवर्ष के नगरों का सिरमौर था। उसकी छटा कुछ निराली ही थी। प्रतापी अकबर के समय में ही उसने यथेष्ट उन्नति कर ली थी, किन्तु शाहंशाह जहाँगीर के शासन-काल में तो वह इन्द्र की अमरावती से होड़ लगाने लगा था। इस विस्तीर्ण नगर के एक कुछ विरल किन्तु रमणीक मुहल्ले में एक छोटी सी मस्जिद थी। पीर मुहम्मद इसके कार्य्याध्यक्ष थे। इनको बचपन में ही धर्म के प्रति बड़ा अनुराग था। युवावस्था में ही इन्होंने अपना सारा जीवन धर्म के नाम पर अर्पण कर दिया था। सांसारिक झगड़ों से ये एक प्रकार से उदासीन हो चुके थे। नमाज़ आदि से जो समय बचता था वह अधिकतर क़ुरान शरीफ़ के अध्ययन में ही व्यय होता था।

सवेरे की अज़ान हो चुकी थी। सूर्यदेव ने अपनी सुनहरी किरणों से इस नगर को नहला दिया था। रात्रि भर की सरदी के बाद प्रातःकाल की धूप सभी को असा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारण रूप से प्यारी लगती है। पीर साहब भी सहज स्वभाव से मस्जिद के बाहरी चबूतरे पर टहल रहे थे। अभी तक शहर की चहल-पहल और कोलाहल असह्य नहीं हुआ था। ऐसे शान्त और सुखद प्रातःकाल में पीर साहब मन ही मन आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव कर रहे थे। ऐसे अवसरों पर तो साधारण व्यक्तियों को भी एक विशेष प्रकार का आह्लाद सा मालूम पड़ता है, फिर पीर साहब का कहना ही क्या। पास ही थोड़ी दूर पर भठियारिन की दूकान के सामने कुछ लड़के आपस में लड़-झगड़ रहे थे। किन्तु उनकी बकझक का हेतु कोई धन-जन जैसी महत्त्व-पूर्ण वस्तु न थी। एक ने कहा, यार, बड़ा मज़ा रहा, आज रात भर क़ासिम उस्ताद का गाना सुनने को मिला। दूसरे ने पूछा—कौन क़ासिम, क्या बादशाह सलामत के क़ासिम। पहला हाँ भी न कह पाया था कि तीसरा बोल उठा, कैसे पागल हो? वह क़ासिम यहाँ कहाँ रक्खा है। बस, इसी बात पर लड़कों में दो पक्ष बँध गये और आपस में ख़ासा झगड़ा सा होने लगा।

पीर साहब का इन छोकड़ों की ओर कोई ध्यान न था। किन्तु जब बार बार क़ासिम का नाम उनके कानों में पड़ने लगा, तब उन्हें भी कुछ कौतूहल हुआ। क्योंकि थोड़े दिनों से क़ासिम का नाम शहर में बादशाह सलामत के कृपा-कटाक्ष से बहुत मशहूर हो गया था। वह एक अद्भुत गवैया तो था ही, क्योंकि एक इसी गुण ने उसको जहाँगीर की महफ़िल में अग्रगण्य बना दिया था, किन्तु लोग यह भी कहते थे कि इस समय संसार में उससे बढ़ कर कोई स्वरूपवान् नहीं है। पीर साहब को सङ्गीत विद्या से प्रेम न था, वे यदि उसको बुरा नहीं तो अच्छा भी नहीं कहते थे। उनकी धारणा बँध गई थी कि मदिरा और सङ्गीत का अनिवार्य सम्बन्ध है। जहाँ एक होगा, वहाँ दूसरे का अभाव नहीं रह सकता। अतएव ज्यों ज्यों लड़कों का झगड़ा बढ़ता गया, त्यों त्यों पीर साहब का औत्सुक्य भी तीव्र होता गया। किन्तु बहुत देर तक उन्हें बाट देखने की निरर्थक वेदना न सहनी पड़ी। क़ासिम बाहर निकल आया और लड़कों की बक-झक शान्त हो गई।

क़ासिम को पहचानने के लिए किसी विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं थी, उसको देखना ही उसका पहचान लेना था। देखते ही पीर साहब के दिल में विचार उठा—निस्सन्देह क़ासिम से अधिक सुन्दर मनुष्य का इस पृथ्वी पर मिलना असम्भव है। धार्मिक पुस्तकों में बहिश्त के अधिवासिकों का जो चित्र खींचा गया है, यह उससे किसी प्रकार कम नहीं मालूम होता।

किन्तु फिर पीर साहब ने मन ही मन कहा—नहीं, इस प्रकार की तुलना करना सर्वथा असङ्गत है, असंगत ही नहीं, बरन भीषण पाप-कर्म है। कहाँ वे स्वर्गीय पुण्यात्मा, कहाँ यह क्षुद्र जीव। इतना ही क्यों, सुनते हैं कि यह शराबी और दुराचारी भी है। देखो तो, इसके चलने के ही ढङ्ग से मालूम पड़ता है कि हृदय में कितना घमण्ड भरा हुआ है, गर्व के मारे पृथ्वी पर पैर ही नहीं रखना चाहता। या ख़ुदा, यह रूप और यह क्षुद्रता। क्या इस सजीले और रसीले नौजवान से मैं दो-एक धर्म के शब्द कह सकता हूँ? पर क्या वह उन्हें ध्यानपूर्वक सुनेगा और क्या ऐसे बखेड़ों में पड़ना मेरा कर्त्तव्य है?

अन्तःकरण से प्रत्युत्तर पाने की आशा में उनका सिर कुछ ऊँचा और आँखें कुछ बन्द सी हो गई थीं। किन्तु जब वे खुलीं तब उनके सामने एक दूसरा ही दृश्य उपस्थित हो गया। सड़क की दूसरी ओर दीवार की जड़ और नाली के बीच में एक गठरी सी पड़ी थी। एक तो उसमें कम्पन का नाम न था और दूसरे उसका रङ्ग दीवार के धुँधले रङ्ग से एक-दम मिल गया था। शायद इन्हीं कारणों से पीर साहब का ध्यान उस ओर बिलकुल ही नहीं गया। किन्तु क़ासिम के पीछे चलनेवाले बालकों के कर्कश स्वर ने उस गठरी को जगा दिया।

उसने जो सिर खोला तो मालूम हुआ कि एक स्त्री बैठी हुई है।

यह कोई असाधारण दृश्य न था। हमारे सामने नित्य-प्रति ऐसी घटनायें हुआ करती हैं। पीर साहब के लिए भी यह साधारण बात थी। शहर में रहने के कारण ऐश्वर्य और वैभव, दारिद्र्य और अपमान, धर्म और अधर्म, पाप और पुण्य के दृश्य उनके लिए सहज थे। अतएव इनसे उनके हृदय में विस्मय और भावोद्रेक नहीं होता था। किन्तु आज इस दीन-हीन स्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को देखकर उनका हृदय एक-दम बैठ सा गया। पहले कभी उनका हृदय इस प्रकार द्रवित नहीं हुआ था।

स्त्री के कपड़े चिथड़े-चिथड़े हो रहे थे। मनुष्य-जाति की भी ऐसी दुर्दशा हो सकती है, इसके लिए कुछ कल्पना की आवश्यकता होती है। पीर साहब ने उसका चेहरा भी स्पष्ट रूप से नहीं देख पाया, क्योंकि उसका सारा मुख गर्द से ढका हुआ था, उसी गर्द के ढेर में से दो बड़ी बड़ी आँखें चमक रही थीं, मानो सम्पूर्ण चेहरे की कान्ति उन्हीं में सिमट कर समा गई थी। ज्योंही ये दोनों आँखें पीर साहब पर पड़ीं, त्योंही उनकी आँखें उस दयनीय वस्तु की ओर खिंच गईं। उनकी देह में सिर से पैर तक एक कपकपी सी छा गई। पर ज्योंही उन्हें मालूम हुआ कि इन आँखों ने कभी सतृष्ण होकर खुदा की ओर नहीं देखा है, त्योंही उनके हृदय को एक भीषण धक्का लगा। दुख के मारे उस स्त्री की देह बहुत कुछ सूख गई थी, शरीर अस्थियों का एक पञ्जरमात्र मालूम पड़ता था। इतना होने पर भी सौन्दर्य के एक अङ्ग में बिलकुल ह्रास नहीं हुआ था, उल्टा उसकी प्रचुरता अत्यधिक बढ़ गई थी। हमारा सङ्केत काले और चमकदार केशराशि की ओर है। न जाने कब से उसके बाल सँभाले नहीं गये थे। कुछ तो चिथड़े के एक धागे से कस कर बँधे हुए थे और कुछ इधर-उधर छिटक कर उसकी हड्डियों को ढक रहे थे।

ऐसा मालूम होता था, जैसे उसने वर्षों से नहाया-धोया न हो। तथापि इस धूल-धूसरित देह के भीतर से एक अद्भुत कोमलता झलक रही थी। प्रारम्भ में ही पीर साहब ने इसका अनुभव कर लिया था। परन्तु उनको यह सारा दृश्य एक भयंकर स्वप्न के समान मालूम हुआ। सबसे अधिक भयङ्करता तो उन्हें उस समय मालूम हुई जब उन्होंने देखा कि जिस स्त्री की ऐसी दुर्दशा हो रही है वह पूर्ण युवती है। अतएव उनके हृदय में एक साथ विस्मय और भय का सञ्चार होने लगा।

इसी बीच में क़ासिम उन लोगों के समीप आ गया था। पीर साहब के हृदय-व्यथित और करुणा-पूर्ण नेत्र उस सुन्दर नवयुवक की ओर आकृष्ट हो गये।

जब उन दोनों नववयस्कों का सामना हुआ तब वह दृश्य पीर साहब की आँखों में शूल के समान खटकने लगा। कितना भीषण अन्तर था! यदि एक ओर बहिश्त था तो दूसरी ओर दोज़ख़।

यदि पीर साहब पहले से ही उस स्त्री के पास पहुँच न गये होते तो वह सुन्दर नवयुवक कभी उस सतृष्ण भिखारिन की ओर दृष्टिपात भी न करता। और शायद उन्हीं के लिहाज़ से वह वहाँ खड़ा हो गया, पर इससे वह समझता था कि उसने पीर साहब को ही कुछ बाधित किया है। उसके खड़े होने के तर्ज़ से यही भाव टपकता था। स्त्री की ओर तो उसने इस प्रकार से देखा मानो उसके दर्शन-मात्र से ही उसका मोक्ष हो जायगा। इस दर्पातिरेक को देख कर पीर साहब का मुख लाल हो उठा।

किन्तु तो भी क़ासिम को लज्जा न आई। उसने पीर साहब को दिखाते हुए अपनी जेब में हाथ डाला और साभिमान कुछ पैसे उस दुखिया के आगे फेंक दिये।

स्त्री पत्थर की मूर्त्ति की भाँति उस युवक को घूर रही थी। उसने न तो उन पैसों को उठाया और न दाता के प्रति कुछ धन्यवाद ही प्रकट किया। उल्टा पीर साहब घोर विस्मय में पड़ गये। उसकी लाल लाल आँखों में एक अग्निशिखा जलने लगी और थोड़ी ही देर में ऐसा मालूम हुआ जैसे चिथड़ों के ढेर में सिर से पैर तक फैल गई हो। चीड़ की लकड़ियों के ढेर में आग जैसे एक-दम प्रज्वलित हो उठती है, ठीक वही दशा उस समय उस स्त्री की थी। एकाएक वह उठ खड़ी हुई और एक क़दम आगे लपक कर उसने नवयुवक के चेहरे पर थूक दिया। पीर साहब का हृदय ज़ोर ज़ोर से धकधक कर रहा था। उन्होंने सोचा—या ख़ुदा! अब क्या होनेवाला है।

युवती की आँखों में ऐसी तीव्र घृणा थी कि यदि उसमें सचमुच स्थूल वस्तुओं के जलाने की शक्ति होती तो क़ासिम कभी का भस्म हो गया होता। इधर क़ासिम भी एक-दम भौंचक्का सा खड़ा रह गया था, अन्यथा वह न जाने कब का बदला चुका लिया होता। इसके लिए उसमें काफ़ी शक्ति थी। परन्तु वह तो लकवा से आहत प्राणी की भाँति मूर्तिवत् खड़ा था। उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगमरमर-समान उज्ज्वल चेहरे में सुर्ख़ी दौड़ रही थी और आँखों में क्रोधाग्नि की प्रबल ज्वाला भड़कना ही चाहती थी। वह इसीलिए ठहरा हुआ था कि उसका निशाना ठीक बैठे।

जीवन का मोह बड़ा प्रबल होता है, उसको छोड़ना आसान नहीं। उस स्त्री ने थूक तो दिया, किन्तु तुरन्त ही उसको होश आया। भय से काँपने लगी। पीर साहब से भी यह दशा छिपी न रही। उसके लिए एक ही साथ उनके हृदय में असीम दया और पैरों में अद्भुत विद्युत्-शक्ति उत्पन्न हो गई। वे सीधे उस क्रोध-स्तम्भित शिकारी और उस भयभीत शिकार के बीच जा खड़े हुए। और तुरन्त शिकार को गोद में उठा कर मस्जिद की ओर भागे। अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचते ही उन्होंने अली, या अली की आवाज़ लगाई। अली उनके नौकर का नाम था। अली ने इसके पहले कभी अपने स्वामी में न तो इतनी घबराहट देखी थी और न इतनी तेज़ी। वह हैरान था कि आख़िर मामला क्या है। पर उसने किवाड़ बन्द करने की पीर साहब की आज्ञा का अविलम्ब पालन कर दिया।

इस समय पीर साहब का मस्तिष्क भी उसी तेज़ी से काम कर रहा था जिससे शरीर अपने कार्य में संलग्न था। सामने के दालान को पार करते ही वे बाईं ओर के बरामदे से ज़ीने पर चढ़ने लगे और छत पर पहुँचते ही आराम के साथ अपनी गठरी को धूप में रख दिया।

इधर क़ासिम से कुछ न बन पड़ा। पीर साहब बाज़ी मार ले गये। वह उनका पीछा करने ही वाला था कि इतने में इधर-उधर से बहुत से आदमी एकत्र हो गये और इस गड़बड़ का कारण पूछने लगे। क़ासिम को उन्हीं से पीछा छुटाना कठिन हो गया। उसने सोचा—इस समय बात बढ़ाना अच्छा नहीं। कुछ नहीं, कुछ नहीं, कहता हुआ वह तेज़ी से आगे बढ़ने लगा।

(२)

जिस समय घाव लगता है उस समय उतना दर्द नहीं मालूम होता। पीर मुहम्मद को स्वयं आश्चर्य था कि मैं इतने बड़े बोझ को, इतनी तेज़ी से, इतने ऊँचे पर कैसे चढ़ा लाया। साथ ही उनको यह चिन्ता सता रही थी कि कहीं क़ासिम पीछा तो नहीं कर रहा है। थोड़ी ही देर में क़ासिम का खटका जाता रहा। तब पीर साहब के जी में जी आया। किन्तु जैसे निरापद स्थान में पहुँचते ही चोरों के हृदय में लूट के माल की जाँच करने की लालसा तीव्र होने लगती है, ठीक वही दशा इस समय पीर साहब की हुई। उनका हृदय यह जानने के लिए उत्कण्ठित हो रहा था कि जिसको उन्होंने मृत्यु के मुख से बचाया है वह आख़िर है कौन। किन्तु उसके नवयौवन और विपन्नावस्था को देखते हुए उन्हें सहसा कुछ पूछने का साहस न हुआ। एक बार फिर उनका हृदय करुणा से भर गया।

कुछ देर बाद उन्होंने कहा—बेटी, भला तुमने क्यों ऐसा किया? वह कृत्य ही तुम्हारे अयोग्य था, उसकी याद कर मेरे तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

पीर साहब के प्रत्येक शब्द में उनकी आन्तरिक सहानुभूति झलकती थी। लड़की ने भी शायद इस बात का अनुभव कर लिया था, किन्तु वह चुप थी। उन्होंने फिर कहना प्रारम्भ किया—यदि ख़ुदा अपने गूढ़ रहस्यों के अनुसार आज मुझे बाहर टहलने के लिए नियुक्त न करता, यदि मैं तुम्हारे पास तक न पहुँच सकता, तो आज तुम्हारा प्राणान्त हुए बिना न रहता। इसमें सन्देह नहीं कि वह पीछे से तुम्हारी हत्या पर अवश्य पछताता, किन्तु इसमें भी रत्ती भर संशय नहीं कि वह तुम्हें कदापि जीवित न छोड़ता। तुम्हारे हृदय में उसके प्रति ऐसी उत्कट घृणा क्यों हुई? ज़रूर उसने तुम्हारा कोई बड़ा अनर्थ किया है। क्या तुम उसे बता नहीं सकती?

युवती का सारा शरीर काँप गया, जो सूर्य-प्रकाश में स्पष्ट दिखाई दिया।

किन्तु उसने उत्तर में यही कहा—नहीं, उसने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा है।

तब तो पीर ने और भी चकित होकर पूछा—फिर ख़ुदा के वास्ते यह तो बताओ कि तुमको ऐसा दुस्साहस कैसे हुआ।

उसका दिल भर आया। मालूम होता था कि वह किसी से बोलना नहीं चाहती थी। उसने एकाएक अपने बदन से लिपटे हुए चिथड़ों को हटा दिया और मुख पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिखरे हुए बालों को भी हटा लिया। फिर पीर साहब की ओर देखकर यों कहना प्रारम्भ किया—

यह तुम क्या पूछते हो? मैंने उसके ऊपर क्यों थूका है? तुम तो मुल्ला मालूम पड़ते हो। क्या तुमको जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं? क्या तुम इसका कारण नहीं सोच सकते? यदि मैं उसको प्यार न करती होती, उससे प्रेम न करती होती, समझे न, तो भला मैं क्यों उसके सौन्दर्य को भ्रष्ट करने की चेष्टा करती? मुझे क्या पड़ी थी? तुम मेरी ओर घूरते क्यों हो? क्या यह सीधी सादी बात भी तुम्हारी समझ में नहीं आती? बड़े बेवकूफ़ मालूम पड़ते हो। फिर विद्वान् क्यों बनते हो? इतनी भी बुद्धि नहीं। इस प्रकार की भीषण घृणा का अन्य कारण ही क्या हो सकता है? मैंने वर्षों उसकी पूजा की है, महीनों भूख-प्यास सही है, दिन को दिन और रात को रात नहीं समझा है। ऐसी कौन सी नारकीय यातना है जो मैं उसके लिए सहने को तैयार न थी? क्यों मुल्ला साहब, अब तो तुम मुझसे उसका कारण न पूछोगे कि मैंने क़ासिम पर, सुप्रसिद्ध क़ासिम पर, जहाँगीर की महफ़िल के दुलारे क़ासिम पर क्यों थूका था। मैंने थूका था, क्योंकि मैंने उसकी पूजा की है, उसे चाहा है, उसे प्यार किया है।

पीर साहब युवती की ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। उन्होंने देखा कि सड़क के उस हीरे में बड़े गुण हैं। बोलने के समय उसके चेहरे पर एक विशेष आभा आ गई थी। उन्हें आज पवित्रता का एक नया रूप दिखाई दिया। सम्भव है, वह श्रद्धोत्पादक न हो, किन्तु वह उपेक्षणीय कदापि नहीं था। उसके दुबले-पतले और गंदे शरीर में भी एक जगह विशुद्ध कान्ति का निवास था। वह उसकी आँखें थीं। वे बड़ी थीं, उनकी ज्योति भी तेज़ थी। उनमें चमक भी थी और गम्भीरता भी। सौन्दर्य तो मानो उनसे फूटा पड़ता था। पीर साहब पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने काँपते स्वर में कहा—

ठीक है, बेटी, लेकिन इस प्रकार का प्रेम प्रेम नहीं, बरन पागलपन है।

यह सुनते ही उसने फिर चिल्लाकर कहा—मुझे शिक्षा मत दो। क्या मैं इस बात को नहीं जानती हूँ? जानती हूँ, और तुमसे अधिक जानती हूँ, लेकिन तुम क्या जानो? न स्त्री में हो और न पुरुष में, तुम्हें शायद इसी में मज़ा आता हो। क्या तुम यह जानते हो कि तुम किससे बातें कर रहे हो, मैं ज़िन्दा नहीं, मुर्दा हूँ। न जाने कितने दिन पहले अपने प्रियतम से मिलने के लिए मैंने इस स्थूल जगत् और इस नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया था। मेरा वर्तमान जीवन तो केवल आकाश-कुसुमों पर निर्भर है। किन्तु तुम्हें शायद आकाश-कुसुमों के अस्तित्व में विश्वास ही न हो। मैं कहती हूँ और दावे से कहती हूँ कि आकाश-कुसुम होते हैं, वे उसी प्रकार यथार्थ हैं जैसे बाग़ के बेला और चमेली! जो उनमें विश्वास नहीं करते वे पागल हैं। देखो, तुम मुल्ला होकर ऐसी ग़लती न करना।

धीरे धीरे आवेग की तीव्रता क्षीण होती गई। चिथड़ों के ढेर में जो सञ्जीवन आया था वह फिर लोप हो गया। वह चुपचाप धूप में लेट गई। स्पंज जैसे पानी को सोख लेता है, उसी प्रकार आलस्य ने उसकी गति को निश्चल कर दिया। पीर कुछ देर तक चुपचाप खड़े रहे। प्रेम का यह उत्कट आदर्श उनके जीवन का प्रथम अनुभव था।

थोड़ी देर में उन्होंने फिर कहा—बेटी, देखो, मैं तुम्हारी बात काटना नहीं चाहता, किन्तु यह कहता हूँ कि प्रेम करने का इससे भी उत्तम एक और ढङ्ग है। यह मस्जिद है। यहाँ तुमको भगवत्-प्रेम की शिक्षा मिल सकती, जो प्रेम की चरम सीमा है। यदि तुम मेरा कहना मानो तो तुमको यहाँ शान्ति भी मिल सकती है और सुख भी।

लड़की ने कोई उत्तर नहीं दिया। हताश होकर पीर साहब ने फिर अली को बुलाया। वह भी अपनी उधेड़-बुन में लगा हुआ था। आज पीर साहब को क्या हो गया है? कामिनी और काञ्चन का तिरस्कार करनेवाले पीर का भी दिल क्या चलायमान हो गया? क्या ताज्जुब, ईश्वर की गति निराली है। कोई उसे समझ नहीं सकता। अपनी बुलाहट की आवाज़ सुनते ही वह चौंक उठा। दिल में डर हुआ कि कहीं मेरे मुख से कुछ अनाप-शनाप तो नहीं निकल गया। झट से दौड़ता हुआ वह छत पर जा पहुँचा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीर साहब ने कहा—देखो, अली, तुम हमीदा को बुला लाओ। आज वह इसी के पास रहेगी। उसके साथ इस दुखिया का दिल बहल जायगा। देखो, उसे समझा देना कि इसे खाने-पीने की कोई तकलीफ़ न हो।

अली ने धीरे से कहा—जो हुक्म। किन्तु इसे कपड़ों की भी आवश्यकता मालूम होती है।

पीर साहब ने कुछ ज़ोर से उत्तर दिया—तुझे उसकी क्या चिन्ता, मैं सब प्रबन्ध कर लूँगा। मैं जो कहता हूँ उसे करता है कि खड़ा खड़ा बातें बनाता है।

अली चुपचाप चल दिया। ज़ीना उतरते समय कई बार उसके दिल में यह विचार आया कि युवती तो बड़ी सुन्दर है। पीर साहब ने कहाँ से इसे फाँसा है।

अली के चले जाने के बाद पीर साहब ने फिर एक बार लड़की को सिर से पैर तक निहारा। वह सचमुच निर्जीव की भाँति पड़ी थी। किन्तु उसके नेत्रों में वह तेज था जो सजीवता का मूल-स्रोत है। उन्होंने चलने का उपक्रम करते हुए पूछा—बेटी, तुम्हारा नाम क्या है?

उसने धीरे से कहा—ज़ुलेख़ा, मुल्लाजी, मैं आपसे कभी उऋण नहीं हो सकती।

(३)

शाम हो गई। किन्तु पीर साहब का चित्त शान्त न हुआ था। उन्हें बार बार प्रातःकाल की घटना याद आती थी। आज उनकी दिनचर्या में भी कुछ व्यतिक्रम हो गया था। पर चिराग़ जलते ही उन्होंने रहल उठाई और कुरान शरीफ़ उठाकर उसका पारायण करने लगे। पीर साहब का मिज़ाज जैसा सादा था, उसी प्रकार उनके कमरे में भी अधिक सजावट नहीं थी। वे मसजिद के बाहरी दालान में बैठा करते थे। धीरे धीरे वे पुस्तक में तल्लीन होने लगे।

नौ बजे के लगभग उज्ज्वल चाँदनी छिटक आई। द्वार में होकर उसने उनके समीप तक प्रवेश भी किया, किन्तु उसकी ओर उनकी दृष्टि न गई। वे अपने भावों में मग्न थे कि एकाएक उनको मालूम हुआ जैसे बादल घिर आये हों। ऊपर दृष्टि उठाते ही वे स्तम्भित रह गये। आकाश बिलकुल निर्मल था, बादलों का तो कहीं नाम भी न था। एक व्यक्ति अपने सीने पर दोनों हाथ ताने हुए इनकी ओर घूर रहा था। उसी की छाया से इनको बादलों का भ्रम हुआ था।

पर पीर साहब को आगन्तुक के पहचानने में देर न लगी। उन्होंने कुछ प्रेम से कहा—आओ, क़ासिम, भीतर चले आओ।

इस कोमल वाणी ने उसकी उत्तेजना को और भी भड़का दिया। उसका गौरवर्ण मुखमण्डल क्रोध से तमतमा उठा। उसने इस ढङ्ग से कमरे में प्रवेश किया जो भयोत्पादक कहा जा सकता है।

क़ासिम ने चिल्ला कर कहा—क्यों पीर साहब, तुम मुझे धोखा देना चाहते थे। मैंने तुम दोनों का पता लगा लिया है। यद्यपि मैं नास्तिक नहीं हूँ, मसजिद और मुल्ला—इन सबको मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ, तथापि मैं यह कदापि नहीं सहन कर सकता हूँ कि कोई मेरे और मेरे दण्डनीय अपराधी के बीच में बाधा डाले। मैं उसे दण्ड दूँगा और उचित दण्ड दूँगा। तुम चुपचाप उसको मेरे हवाले कर दो। व्यर्थ बकवाद करके अपना समय नष्ट करने से क्या लाभ?

पीर साहब ने उत्तर दिया—मान लो, मैं इतना नीच हो भी जाऊँ जो अपने शरणागत को तुम्हें सौंप दूँ तो तुम यह बताओ कि उसके साथ कैसा व्यवहार करोगे।

क़ासिम ने दाँत पीसते हुए गरज कर पीर साहब के अन्तिम शब्दों को दुहराया—मैं उसके साथ कैसा व्यवहार करूँगा। उसके बाल पकड़ कर उसको यहाँ से घसीटता हुआ और उसके मुँह पर थूकता हुआ कोतवाली तक ले जाऊँगा, फिर उसको जेल में भिजवा दूँगा।

पीर साहब ने उत्तेजित न होकर उसके क्रोध की अवहेलना की। उन्होंने कहा—उसको जेल में भिजवाना व्यर्थ होगा, क्योंकि इस प्रकार की यात्रा से तो वह मार्ग में ही मरणासन्न हो जायगी और फिर उल्टा तुम पर हत्या का अभियोग चलाया जायगा। उसने तुम्हारा घोर अपमान किया है, इसके लिए तो तुम कोई प्रमाण जुटा ही न सकोगे। क्योंकि उस घटना का मेरे सिवा इस संसार में और कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। और तुम यह याद रखना कि यद्यपि मैं पीर हूँ, तथापि उसको बचाने के लिए मैं झूठ बोलने में भी कोई सङ्कोच नहीं करूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर तुम्हारे ढङ्ग से तो ऐसा मालूम होता है कि शायद तुम्हें किसी का डर ही न नहीं है, जैसे स्वयं तुम्हीं इस साम्राज्य के बादशाह हो। तुम यह तो बताओ कि तुम्हारा प्रभाव कितना बढ़ा-चढ़ा है।

क़ासिम ने फिर चिल्ला कर कहा—यह तो तुम भली भाँति जानते हो कि मैं कौन हूँ, तुम्हीं को नहीं उस पगली को भी, जिसने मेरा ऐसा अपमान किया है, यह भले प्रकार विदित था। मैं क़ासिम हूँ, भारतवर्ष का सुप्रसिद्ध गायक क़ासिम। भला आगरे में कौन ऐसा है जिसने मेरा नाम न सुना हो। मैं केवल शहंशाह जहाँगीर की महफ़िल का सङ्गीताचार्य ही नहीं हूँ, बल्कि संसार का सबसे सुन्दर पुरुष हूँ।

पीर साहब ने कहा—मैं इसको नहीं मान सकता।

क़ासिम चिल्ला उठा—तुम नहीं मान सकते। तुम झूठे और पक्के धोखेबाज़ हो। तुम कैसे इस बात से इनकार कर सकते हो। देखो न, मैं असली तुर्क हूँ, मेरा चमड़ा स्वच्छ दूध के समान चमकता है। इससे तुम्हें विश्वास नहीं होता। यह कहते कहते उसने कँपते हुए हाथों से आस्तीन के बटन खोल डाले।

पीर साहब ने हाथ हिलाते हुए कहा—नहीं, नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है, दूध तो मैं रोज़ ही देखा करता हूँ। यदि इसी कारण तुम संसार में सबसे सुन्दर माने जाते हो तो मैं अब रोज़ चार घण्टे दूध को देखा करूँगा।

सवाल हल न होने से बच्चा जैसे झुँझला उठता है, वही हालत क़ासिम की हुई।

उसने ज़ोर से कहा—अच्छा, तुम मुझसे दिल्लगी करते हो, मैं तुमको इसका मज़ा चखाये बिना न रहूँगा। अपने ऊपर गिरता हुआ देखकर पीर साहब झट उठ बैठे और कठोर दृष्टि से उसे देखने लगे।

उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—ए मेरे प्यारे अज़ीज़, मेरी बात सुनो, घड़ी भर के लिए अपमान की बात भूल जाओ और मुझे यह बताओ कि तुमने कभी अपनी जीवन-धारा पर विचार भी किया है, रात-दिन घमण्ड और अनाचार, मदिरा और सङ्गीत, चापलूसी और मिथ्या आत्म-प्रशंसा के अतिरिक्त तुमने कभी जीवन के अर्थ पर भी विचार किया है। अरे, कम से कम मनुष्य के हृदय का मूल्य करना तो सीख लेते। यह तो जान लेते कि स्त्री केवल विषय-भोग की सामग्री नहीं है, बरन प्रेम की देवी है, संसार में प्रेम का स्रोत स्त्री-हृदय से ही निकला है।

स्त्री, स्त्री की ऐसी उत्कट प्रशंसा!—सहसा ये शब्द क़ासिम के मुँह से निकल पड़े। किन्तु शब्दों से उसके हृदय का भाव उतनी अच्छी तरह प्रकट नहीं होता था जितना कि उसकी मुखाकृति से। मानो वह समस्त स्त्री-जाति का परम शत्रु है। उसने कहा—तुम पीर होकर ऐसी बातें करते हो, मदिरा की निन्दा करो और स्त्री की प्रशंसा। बलिहारी है तुम्हारी बुद्धि पर। भला मदिरा और स्त्री में अन्तर ही कितना है! बस, इतना ही न कि एक जड़ है और दूसरी चैतन्य। जब बोतल ख़ाली हो जाती है तब उसको रखने से क्या लाभ? स्त्री में जब तक मादक तत्त्व है तभी तक वह सङ्ग्रहणीय है।

पीर साहब ने कहा— बड़े परिताप की बात है, जो तुम स्त्रियों को ऐसा हेय समझते हो। इसी लिए हमारी दृष्टि में तुम सबसे अधिक दयनीय हो!

इस पर क़ासिम को ऐसा आवेग आया कि वह उठ कर खड़ा हो गया। उसने चिल्लाकर कहा—मैं दयनीय, अच्छा, मुल्ला साहब, मैं तुम्हारा उपदेश नहीं सुनना चाहता। चुपचाप उस पगली को मेरे हवाले कर दो और देखो, यदि फिर कभी मेरी और तुम्हारी भेंट हो जाय तो मुझको कृतज्ञतापूर्वक अभिवादन करना।

इस बार पीर साहब भी क्रोध न सँभाल सके। उन्होंने ऐसे क्रोध से उसके शब्दों को दुहराया कि आतङ्क के मारे फिर से क़ासिम नीचे बैठ गया। अभिवादन करना, अभिवादन करना यही शब्द पीर साहब के कान में गूँज रहे थे। उन्होंने जोश में आकर कहा—तुम पूरे काठ के उल्लू हो। तभी तो धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि मदिरा के सेवन से मनुष्य बहुत जल्दी पशु बन जाता है। और सङ्गीत तो उसका सहचर ठहरा। और तिस पर यह रूप, उससे भी बढ़ कर नवयौवन का मद। यदि ऐसी अवस्था में तुम्हारा हृदय पत्थर हो गया तो आश्चर्य ही क्या है। क्या तुम्हें दुखिया पर दया नहीं आती? जानते हो, उसने क्यों तुम्हारा अपमान किया था?

क़ासिम को भी क्रोध चढ़ रहा था। उसने नाक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फुलाते हुए कहा—नहीं, मैं नहीं जानता, तुम्हीं बताओ उस पगली ने क्यों ऐसा दुस्साहस किया था ?

पीर साहब ने कहा—हाँ, यह मैं तुमको बता सकता हूँ। तुम्हारा रूप निस्सन्देह भुलानेवाला है। उसकी आँखें भी भूल गई थीं। किन्तु आख़िर उसे भी मालूम हो गया कि तुम खोखले और निर्जीव हो। बस, तुम्हारा असली रूप प्रकट हो गया। और अब जिस प्रकार मैं तुम्हें तहेदिल से करुणा की दृष्टि से देखता हूँ, ठीक उसी प्रकार वह अपने अन्तःकरण से तुम्हें घृणा करती है।

प्रातःकाल जैसे क़ासिम भौचक्का हो गया था, उसी तरह इस समय भी उसकी समझ में इसका कोई उत्तर न आया।

उसको चुप देखकर पीर साहब ने फिर कहना प्रारम्भ किया—तुम उस अभागिनी को भीषण दण्ड देना चाहते हो और इधर तुम उसे पगली भी कहते हो। भला, यह तो सोचो कि क्या तुम्हारे सब काम निर्दोष हैं। ईश्वर ने तुम्हें मनोहर रूप दिया है, पर किसलिए ? क्या तुमने उसका सदुपयोग किया है ? उसको सत्यानाश तो किया ही, साथ ही बहुत से अभागों को भी ले डूबे। तुम सङ्गीत-विद्या में बेशक पारंगत हो, किन्तु उससे क्या लाभ ? क्या इस पाशविक जीवन में उसकी कुछ शोभा है ? यह तो और भी भयानक—

क़ासिम ने पीर साहब को बीच में ही टोक कर कहा—और तुम्हीं कहाँ के भलेमानुस हो। यही नहीं कि हम जैसों को ताना मारना सीख लिया है। क्या इस अपूर्व सौन्दर्य की निन्दा करना कोई अच्छी बात है ? यदि मैंने अपने स्वरूप और अपनी विद्या का दुरुपयोग किया है तो तुमने भी मेरे दिल को दुखा कर भारी असाधुता की है।

पीर साहब ने उत्तर दिया—लेकिन मैं तो तुम्हारी भलाई चाहता हूँ, यदि मेरे शब्दों से तुम्हारे हृदय में चोट लगे और पश्चात्ताप का भाव जाग्रत हो और वह अभागिनी जेल की यातना से छुटकारा पा जाय तो बताओ मैंने उचित किया या अनुचित। बदला लेना महत्त्व का सूचक नहीं। इसलिए इस विचार को छोड़ दो और शान्तिपूर्वक यहाँ से चले जाओ। मसजिद में खड़े होकर बखेड़ा करना तो महापातक है।

क़ासिम ने ज़ोर से कहा—पातक और पापपुञ्ज शब्दों से मैं घबरानेवाला नहीं। मान लो, मैं यहाँ से चला भी जाऊँ तो क्या कभी दुष्टों को उचित दण्ड देने से रुक सकता हूँ। मैं बदला लूँगा और फिर लूँगा। हाँ, यह मैं मानता हूँ कि जीवन में इसके पहले मैं कभी इतना अधिक लज्जित नहीं हुआ था और न किसी ने कभी मेरे ऊपर इतने व्यङ्ग्य-बाण छोड़े थे। किन्तु मुझे पक्का विश्वास है कि आज सारा आगरा,—आगरा ही क्यों समस्त मुग़ल-साम्राज्य—मुझको सबसे अधिक सुन्दर मानता है और मेरी पूजा करता है।

क़ासिम ये बातें कह ज़रूर रहा था, किन्तु उसके हृदय में विश्वास न था। यहाँ तक कि उसका शरीर भी कुछ कुछ काँपने लगा।

पीर साहब ने गम्भीरता से कहा—ज़रा सोचो। जनता तुम्हारी प्रशंसा करती है, पर वास्तव में वह प्रशंसा नहीं, बरन चापलूसी है और यदि तुम उसे सत्य मानते हो तो एक-दम बेवकूफ़ हो। मुझे तो शङ्का है कि संसार में शायद ही कोई ऐसा पुरुष निकले जिसको लोग तुमसे भी कम प्यार करते हों। सुनी-सुनाई बातें न कहो, बरन हृदय में विचारो, अपनी बुद्धि से काम लो और फिर बताओ तुम्हें कौन प्यार करता है।

क़ासिम पीर साहब की ओर घूर रहा था, उसकी विचार-शक्ति मारी गई थी। उसने कोई उत्तर न दिया।

पीर साहब ने फिर कहा—मेरी समझ में पृथ्वी पर केवल एक ही व्यक्ति ऐसा है जो तुमसे प्रेम रखता है। अभी मैंने तुमसे कहा था कि वह स्त्री तुमसे बहुत घृणा करती है, किन्तु मैंने तुम्हें यह नहीं बताया था कि इस घृणा का कारण क्या है। घृणा और द्वेष को लोग त्याज्य समझते हैं, इनकी गिनती गुणों में नहीं, अवगुणों में है। किन्तु यदि किसी व्यक्ति की घृणा को मैं श्रद्धा की दृष्टि से देख सकता हूँ तो बस यह उस पगली की घृणा है। शायद यदि मैं तुमको सारी कथा सुनाऊँ तो तुम्हारा पत्थर-हृदय भी पिघल जाय और तुम बदला लेने की बात छोड़ दो। भले-मानुस, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि आगरा और मुग़ल-साम्राज्य तुम्हारी उपासना नहीं करता है। उपासना करता है वही पद-दलित और धूल-धूसरित चिथड़ों का ढेर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क़ासिम काँप रहा था, उसकी आँखें पीर साहब की ओर बँधी हुई थीं किन्तु उसके चेहरे का रङ्ग बड़ी तेज़ी से बदल रहा था। पर कौन भाव उस पर काम कर रहा था, यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। शायद लज्जा और क्रोध के भाव बारी बारी से उसे वशीभूत कर अपना काम कर रहे थे।

पीर साहब ने धीरे से कहा—क्यों क़ासिम ? क्या तुम्हें उस पर कुछ दया नहीं आती। यदि कुछ भी ख़याल हो तो अब यहाँ से भलेमानसों की तरह चले जाओ। किन्तु देखो, मेरे होनहार क़ासिम, जाते-जाते कहीं फिर यह न भूल जाना कि वही एक अभागिनी ऐसी है जो तुम्हें हृदय से प्यार करती है।

एकाएक पीछे से एक अपरिचित और सुरीली आवाज़ आई। "नहीं, वह अभागिनी नहीं है।" पहले सामने के किवाड़ अधखुले थे। इसी आवाज़ के साथ वे भी खुल गये।

इनके बीच में एक ऊँची, गम्भीर और संगमरमर जैसी उज्ज्वल एक मूर्त्ति खड़ी थी। चेहरे की आँखें सबसे पहले ध्यान आकर्षित करती थीं। उन्हीं की ज्योति में मुखमण्डल की अपूर्व कोमलता झलक रही थी। गाम्भीर्य तो उस मूर्त्ति की नस-नस से टपकता था। यद्यपि उसकी पोशिश न तो बहुत बढ़िया थी और न बहुत क़ीमती, तथापि किन्तु उसके शरीर ने उस पोशिश को आभा प्रदान कर दी थी। बाल तो बड़ी ही सुघड़ रीति से बाँधे गये थे। ऐसा मालूम होता था कि यदि इसी प्राणी ने उपर्युक्त आवाज़ लगाई है तो यह निस्सन्देह अभागिनी नहीं कही जा सकती।

उसको देख कर क़ासिम और भी सिमट कर बैठ गया, उसके हृदय में आश्चर्य बढ़ रहा था। पीर साहब भी स्तम्भित थे, उनकी सांस तेज़ी से चल रही थी।

स्त्री की आँखें पीर साहब पर जमी हुई थीं। उसका स्वच्छ और मधुर कण्ठस्वर अब भी कमरे में गूँज रहा था। उसने कहा—देखते क्या हो, मैं वही चिथड़ों का ढेर हूँ जिसको तुम सवेरे सड़क से बटोर लाये थे। क्या तुमको वे शब्द याद नहीं हैं जो तुमने प्रातःकाल मुझको सुनाये थे। तुमने मुझसे नित्य-प्रेम, आदर्श-प्रेम, भगवत्प्रेम की बात कही थी। वे शब्द मेरी अन्तरात्मा में पैठ गये हैं। उनकी आत्मा से मेरा अन्तःकरण उद्दीप्त हो गया है, उसी प्रकार परिष्कृत हो गया है जिस प्रकार हमीदा के धोने से मेरे ये मैले-कुचैले और फटे-पुराने कपड़े चमक रहे हैं। बस, अब मुझको कोई चिन्ता नहीं, मेरा मार्ग साफ़ हो गया है। मैं अब उसी मार्ग से शान्ति खोजूँगी जिसमें चिरन्तनकाल से दुखियों को सुख मिलता आया है।

पीर साहब ने लम्बी साँस लेकर कहा—ऐ होनहार लड़की—वे आगे कुछ और कहना चाहते थे किन्तु क्रोधावेश में आकर क़ासिम ने उनको बीच ही में रोक दिया। उसने गरज कर कहा—तुम दोनों शैतान हो। तुमने इसका यह नवाबी ठाठ-बाट इसीलिए बना रक्खा है कि मैं उससे डर जाऊँ। पीर, सचमुच तुम बड़े शैतान हो, तुमने छिपा भी उसको ऐसी जगह रक्खा कि मुझे ताने मारो और वह मेरी लाञ्छना और लज्जा पर जी भर कर हँसे!

स्त्री ने तुरन्त डपटकर उत्तर दिया—नहीं, जनाब, यह क्या, सैकड़ों मुल्ला भी यदि चाहते तो मुझे टस से मस नहीं कर सकते थे। उनके उपदेशों का मेरे ऊपर प्रभाव ही क्या पड़ सकता था, क्योंकि उस समय तो मैं ज़िन्दा नहीं बिलकुल मुर्दा थी। किन्तु सौभाग्य से अब मेरे हृदय में नवजीवन-सञ्चार हुआ है, मुझे हृदय में एक स्फूर्ति मालूम हो रही है, मैं उसी की सूचना देने के लिए यहाँ आई थी। किन्तु हठात् तुम्हारी आवाज़ कान में पड़ी और मैं बरामदे में खड़ी खड़ी तुम्हारी बातें सुनने लगी। मैं समझती हूँ कि यह अच्छा ही हुआ। सच बात कहने-सुनने में डर किस बात का। अब तो मैंने नित्य सत्य का मज़ा चख लिया है।

भावावेश में रमणी दो-तीन क़दम और आगे बढ़ आई थी। उसकी आँखों के सामने क़ासिम की आँखें ठहरती नहीं थीं। उस निर्मल नवयौवन-सौंदर्य के मारे वे चका-चौंध हो रही थीं। प्रातःकाल भी इन्हीं की तीव्र घृणा को देखकर वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया था। किन्तु इस समय उस पर एक दूसरा ही भाव चढ़ रहा था। पीर साहब ने उसके लिए पहले से ही ज़मीन तैयार कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्खी थी, स्त्री को देखकर उसकी पुष्टि हो गई। उसने पीर साहब से कहा—

अच्छा, पीर साहब, यदि तुम धूर्त्त नहीं तो झूठे अवश्य हो। अभी तुम क्या कह रहे थे कि संसार में मुझे कोई हृदय से प्यार ही नहीं करता और उसके लिए न जाने क्या क्या तर्क तुमने भिड़ाये थे। पर देखो, ज़रा आँखें खोलकर देखो। कौन मुझे घृणा करता है, कौन मुझे प्यार करता है! कैसी सुन्दर रमणी है! शायद उतनी ही सुन्दर जितना कि मैं पुरुष-समाज में गिना जाता हूँ। क़ासिम के नेत्रों में गर्व की एक विशेष झलक थी, उसने उँगली उठाकर कहा—ए लड़की, तुम अभी अपने और मेरे—दोनों के रहस्यों को तो सुन ही चुकी हो। मैंने तुम्हें प्यार नहीं किया था। किन्तु अब मैं तुम्हें इज़ाजत देता हूँ कि तुमसे जितना बने, उतना मुझसे जी खोल प्रेम करो।

घृणा के मारे रमणी उल्टे पैर देहरी तक लौटती गई। उसकी आवाज़ भी काँप रही थी। उसने कहा—तुम बेवकूफ़ हो। तुम्हें मेरे प्रेम से मतलब? मैं तुम्हें प्यार करूँ या न करूँ। तुम उसमें रोक-टोक करनेवाले कौन? मैं वर्षों से तुम्हें प्यार कर रही थी, किन्तु क्या तुम्हारी आज्ञा लेकर? हे ईश्वर, आज तुम्हारे मुँह से प्रेम शब्द तो निकला, पर कैसा नीरस, कैसा शुष्क। इस शब्द से तुम्हारे हृदय में जितना भावोद्रेक हुआ है उसको आकाश-मण्डल के समस्त तारागणों से गुणा कर डालो तो भी वह कदापि स्त्री-प्रेम की बराबरी नहीं कर सकता यदि वह सचमुच किसी पुरुष को सच्चे दिल से चाहती है। तीन वर्ष पहले जिस दिन पहले पहल मैंने तुम्हें देखा था, वह एक दिन था और एक आज का दिन! मैं बराबर नीचे ही नीचे गिरती गई। महलों से निकल कर झोपड़े में और झोपड़ों से निकल सड़क पर मारी मारी फिरी। जीवन से प्रमाद और प्रमाद से उन्माद। लोग पगली कहने लगे। यह सब किसलिए? कि मैं तुम्हारे प्रेम की भिक्षा पाऊँ। खाना-पीना छूट गया, हृदय के घूट पी पी कर जीवन-निर्वाह करने लगी, मस्तिष्क में कविता करने की शक्ति आ गई। तुम्हारे सितार के झनूकार से मेरा प्रत्येक तार बजने लगा। उनका भी मैंने एक सङ्गीत बना डाला। तुम्हारे पैरों की आहट से भी मेरा हृदय धक्‌धक् होने लगा उसमें भी मुझे स्वर्ग का आनन्द मिला। मेरा प्रेम! मेरे प्रेम ने तुम्हारे लिए कौन से दुःख नहीं उठाये, कौन कौन सी आपत्तियाँ नहीं झेलीं? चोरों, डाकुओं, बदमाशों और शैतानों की परवा नहीं की। जान पर खेलकर उसको अछूता रक्खा। मैं कहाँ थी, मेरा शरीर सड़क की नालियों में सन रहा था, मेरी अन्तरात्मा नारकीय स्वर्ग के फन्दे में फँस चुकी थी, किन्तु मैं अपनी गोद में आकाश-कुसुमों को चुन चुन कर रखती जाती थी कि एक दिन इनसे तुम्हारी पूजा करूँगी। तुम्हारे मैंने न जाने कौन कौन से नाम रख छोड़े थे, उन्हीं से तुम्हें पुकारा करती थी। चाँदनी रात्रि में चन्द्रमा की ओर देखकर तुम्हारा ध्यान करती और तिनकों का सितार बजाकर तुम्हारे अनुरूप राग अलापती। तुम्हारे प्रेम के लिए मैं आग में कूद सकती थी, पर्वत से गिर सकती थी, पृथ्वी में धँस सकती थी,—किन्तु अब वह दिन नहीं है, अब मैं स्वतन्त्र हूँ, पूर्ण स्वतन्त्र हूँ, सारे बन्धन छूट गये हैं। मैंने जान लिया है कि जिसको मैं प्यार करती थी, जो मेरा इष्टदेव था वह सुधास्रोत नहीं, बल्कि एक ख़ाली घड़ा है और उस पर मनुष्य की नहीं, बरन पशु की तसवीर बनी हुई है। बस, उसी क्षण, उसी घड़ी, मेरे प्रेम का अन्त हो गया। ज्योंही मैंने तुम्हारे ऊपर थूका, त्योंही मेरी बेड़ी खुल गई। वर्षों तुम्हारा नाम मेरे कानों में गूँजा है, उसी की झनूकार के अनुसार मेरी साँस चलती थी। मैं तुम्हारे प्रेम की गाथा कहाँ तक कहूँ? किन्तु अब उस नाम में कोई जादू नहीं रह गया है। यह वैसा ही नीरस है जैसे मेरा सीधा-सादा नाम जुलेख़ा। क़ासिम, मैं सच कहती हूँ कि अब मैं तुम्हें प्यार नहीं करती हूँ।

क़ासिम घुटने के बल होकर और आगे की ओर हाथ बढ़ाता हुआ चिल्ला उठा—करती हो, करती हो। वह खड़ा हो गया और जोश से बोला—देखो मैं अभी इस बात को साबित किये देता हूँ। यदि तुमने सचमुच कभी मुझको उसी प्रकार प्यार किया है जिस प्रकार कहती हो तो मैं कहता हूँ कि यदि मैं फिर से तुम्हें अपने पास बुलाना चाहूँ तो तुम कभी इनकार नहीं कर सकती। दिलरुबा! अब मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम्हें मेरे पास आना होगा। मैं यहाँ इसलिए आया था कि तुझे जेल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिजवाऊँगा किन्तु नहीं, तुम्हें उस प्रकार जीतना ठीक नहीं है, मैं तुम्हें दूसरी तरह से जीतूँगा। यह कहते हुए उसने दो-तीन क़दम आगे बढ़ाये, उसकी आँखों में मधुरता थी, किन्तु होंठ काँपते थे। उसने कहा—प्यारी, यह तो बताओ कि यदि मैं तुम्हें अपनी छाती से लगा लूँ तो फिर क्या तुम मेरी निन्दा-स्तुति के पाठ पढ़ सकोगी। साथ ही वह तेज़ी से जुलेख़ा की ओर लपका।

पीर साहब ने कड़क कर कहा—क्यों रे दुराचारी कुत्ते, मस्जिद में ऐसे अपशब्द। उन्होंने जल्दी से जुलेख़ा को भीतर ढकेल ज़ंजीर लगाना चाही, किन्तु डर के मारे वह उन्हीं से लिपट गई। उसकी साँस ज़ोरों से चल रही थी। क़ासिम ने एक क़हक़हा लगाया और पीर साहब के हाथों से उसे छुड़ाने को उद्यत हो गया। उसका उद्धत स्वरूप देखकर पीर साहब भी कुछ डर से गये। उसके कलुषित हाथ कहीं उन्हें छू न लें, इसलिए वे पीछे हटते जाते थे। किन्तु ज्यों ज्यों वे पीछे हटते थे, त्यों त्यों यह उन्हें और दबाता जाता था।

उसने पूछा—आप बीच में बोलनेवाले कौन हैं? यदि कल मैं उसे आलिङ्गन करना चाहता तो क्या वह मेरे आगे आत्मसमर्पण न कर देती और अपना भाग्य न सराहती। उसने अभी अभी कहा है कि वह मेरी पूजा करती थी। इसीलिए मेरी इच्छा हुई है कि कोई इसी तरह मुझे प्यार करे। ऐ माहेमन इधर निकल आओ, तुम जिस आदमी को ठुकरा रही हो, अभी तुमने उसे सचमुच पहचाना नहीं है। मैं तुम्हारे चेहरे से बता सकता हूँ कि तुम्हें स्वयं अपने दुराग्रह के औचित्य में सन्देह हो रहा है। देखो पीछे पछताना पड़ेगा। जहाँ मैंने एक बार तुम्हारे लाल होंठो का चुम्बन किया, तहाँ तुम्हारा सारा क्रोध काफूर हो जायगा। फिर एक क्या, हज़ार मुल्ला भी आवें तो तुम अपना तन-मन-धन मुझे सौंपे बिना नहीं रह सकती।

पीर साहब ने सुना कि जुलेख़ा उसके पीछे खड़ी खड़ी कातर स्वर से सिसकियाँ ले रही है। ऐसा मालूम हुआ जैसे वह ख़ुदा को याद कर रही हो—या अल्ला, मेरे ऊपर रहम कर, मुझे इस भयानक काण्ड से बचा ले। अब मेरी इज़्ज़त तेरे ही हाथ है। पीर साहब ने कहा—मैं नहीं कह सकता कि स्त्री-पुरुष के इस झमेले में पड़ने से ईश्वर मुझ पर प्रसन्न होगा या अप्रसन्न। फ़क़ीर के लिए यह काम कहाँ तक उचित है, यह भी मैं नहीं जानता। किन्तु हृदय यही कहता है कि इस स्त्री को पतन के गर्त में गिरने से बचाने के लिए मुझे चेष्टा करनी चाहिए। इसलिए, सुनो क़ासिम, जब तक जुलेख़ा मेरी सहायता चाहती है तब तक मैं प्राण देकर भी उसकी रक्षा करने को तैयार हूँ। इसीलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम यदि अपनी कुशल चाहते हो तो यहाँ से भाग जाओ।

क़ासिम ने पहले ज़ोर से अट्टहास किया और फिर कहा—मैं चला जाऊँगा, लेकिन एक शर्त है। मैं पहले दिल भर कर उस ख़ूबरू और नाज़ुक अन्दाम के बोसे ले लूँगा। इसके लिए मुझे मुल्ला को भी सताना पड़े तो मैं आगा-पीछा न करूँगा।

पीर साहब का मस्तिष्क आज सवेरे से ही उत्तेजित था। क़ासिम की यह धृष्टता उन्हें असह्य होगई। उन्होंने झपट कर क़ासिम को पकड़ लिया और उसे ज़मीन पर पटक दिया। गिरने की आवाज़ अली के कान में पहुँची, तुरन्त वह डंडा लेकर बाहर के बरामदे में जा धमका और बिना कुछ पूछे-जाँचे वह क़ासिम के सिर पर जमाने ही वाला था कि पीर साहब ने झट से हाथ बढ़ाकर रोक दिया। उन्होंने कहा—देखो, पहले इस स्त्री को भीतर कर आओ। उसे हमीदा के पास पहुँचा आओ।

जुलेख़ा मूर्त्तिवत् चुपचाप खड़ी थी। पीर साहब का आदेश पाते ही चुपचाप अली के साथ भीतर चली गई। पीर साहब ने सावधानी से किवाड़ बन्द कर दिये। फिर वे क़ासिम की ओर बढ़े, तो देखा कि उसका मस्तक नत हो गया है, हाथ भी ढीले पड़ गये हैं और सारा बदन थर-थर काँप रहा है।

पीर साहब ने धीरे से उसके कन्धे पर हाथ रक्खा और बड़े प्रेम से कहा—मेरे नादान बच्चे, यदि तू चाहे तो तू भी अपनी अन्तरात्मा को बचा सकता है।

सुनते ही क़ासिम पागलों की भाँति चिल्ला उठा—चुप रहो, चुप रहो। तुम पक्के शैतान हो और वह औरत भी धोखेबाज़ है। सच कहता हूँ कि जब तक आज सवेरे मैंने तुम्हारी सूरत नहीं देखी थी तब तक मैं आगरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बेताज का बादशाह था, किन्तु तुमने, जितना तुमसे हो सका है, मुझ पर लाञ्छन लगाने की ही चेष्टा की है और मनमाना अपमानित किया है। मेरा जीवन बनता है या बिगड़ता है, इससे तुम्हें मतलब ? तुम्हें मुझे उपदेश देने का कोई अधिकार नहीं है, रत्ती भर अधिकार नहीं है। न उस कुलटा को मेरी पूजा का ही अधिकार है। देखो तो प्रेम के नाम से आदमी कैसा पागल हो जाता है। आज प्रातःकाल तक मैं बड़े आनन्द में था, मुझसे अधिक सुखी शायद ही कोई इस पृथ्वी पर मिलता। चलो, हटो, मैं तुम्हारी बात नहीं सुनना चाहता। यह कहता हुआ वह धीरे धीरे बाहर की ओर बढ़ने लगा। उसका मस्तक और कन्धे अब भी झुके थे।

(४)

इस घटना को बहुत दिन हो गये। मस्जिद के सभी निवासी इसको भूल सा गये। भूल नहीं गये तो कम से कम उनको उसे याद करने के लिए कुछ चेष्टा की आवश्यकता थी। केवल एक ऐसा व्यक्ति था जो उसे कभी नहीं भूल सकता था। किन्तु ज्ञात रूप से वह भी कभी उसकी सुधि नहीं करना चाहता था। जुलेखा के जीवन में अब आकाश-पाताल का अन्तर हो गया है। पीर साहब के सत्सङ्ग से उसकी रुचि ईश्वर की ओर अधिक हो गई है। धार्मिक विषयों से उसका मन कभी नहीं उचटता। जब पीर साहब कुरान पढ़ते तब वह बराबर ध्यानपूर्वक उसको सुना करती। कभी कभी वह शङ्का करती तो पीर साहब उसका समाधान कर देते। वे उसकी प्रखर बुद्धि से दङ्ग हो जाते, किन्तु उसके मुख पर उसकी प्रशंसा कभी नहीं करते। उसका पहला जीवन उसके लिए अब इतिहास का पृष्ठ हो गया। उस पर वह कभी आलोचना नहीं करती। हाँ, यदि कभी एकान्त में हमीदा एकाध बात पूछ बैठती तो वह उसका उत्तर दे देती। किन्तु उस समय उसका चेहरा फीका पड़ जाता, जैसे उसे कोई मार्मिक वेदना होती हो। असल में अब केवल दो वस्तुओं को छोड़कर और किसी से उसके जीवन का अधिक सम्पर्क नहीं रह गया था। वे वस्तुएँ हैं एक तसबीह और दूसरी कुरान-शरीफ़।

बात ही बात में एक दिन पीर साहब ने कहा—क्यों जुलेखा, तुमने क़ासिम उस्ताद की बात सुनी है। जुलेखा का हृदय एक-दम धक से हो गया। किन्तु कहीं यह धड़कन मुख पर न आ जाय, इसलिए उसने बड़े यत्न से पूछा—क्यों, मैंने तो नहीं सुना। पीर साहब ने जोश में आकर कहना शुरू किया—नहीं सुना, मैंने तो पहले ही कह दिया था कि ऐसे घमण्डियों का सिर नीचा हुए बिना नहीं रह सकता। बात यह हुई कि अपनी सुन्दरता के गर्व से उसने हरम की किसी दासी से मज़ाक किया। उसने नूरजहाँ से शिकायत जड़ दी कि यह मुझ से व्यर्थ ही छेड़-ख़ानी करता था। फिर क्या था, नूरजहाँ आग-बबूला हो गई। यह तो तुम जानती ही हो कि आज-कल जहाँगीर नहीं, बल्कि नूरजहाँ हम लोगों के ऊपर बादशाहत करती है। उसने तुरन्त देश-निकाले का हुक्म दे दिया। स्वयं बादशाह ने चाहा कि वे इस हुक्म को रद कर दें, क्योंकि इससे उनके महफ़िल की रङ्गत बिगड़ती थी, किन्तु उनकी एक न चली। क़ासिम भी ऐंठ के मारे माफ़ी माँगे बिना ही चल खड़ा हुआ। पर लोग कहते हैं कि असल में ईर्ष्यावश क़ासिम के ही एक शागिर्द ने, जिसको उसने बड़ी मेहनत से यह विद्या सिखाई थी, उसके विरुद्ध यह चाल चली थी। कुछ भी हो, एक न एक दिन तो उसका पतन अनिवार्य था। इतना कह कर वे जुलेखा के मुख की ओर देखने लगे कि उसके ऊपर इसका क्या प्रभाव पड़ा है। किन्तु वह बिलकुल चुपचाप थी। इस विषय में उसने कोई उत्साह नहीं दिखाया। थोड़ी देर में वह अपने एकान्त कमरे में चली गई।

शाम को जब हमीदा आई तब उसने क़ासिम की कहानी के विषय में पूछा। यह पहला ही अवसर था कि उसने अपने आप क़ासिम के लिए उत्सुकता प्रकट की। अतएव उसने कुछ व्यङ्ग्य से उत्तर दिया—जो तुमने सुना है सो बिलकुल ठीक है। हमीदा भठियारिन के यहाँ आती थी और उन दिनों भठियारिनों के घर ही समाचारों के अड्डे हुआ करते थे। अब उसको उस विषय में कोई सन्देह न रह गया। हाँ, हमीदा से कोई नई बात ज्ञात न हुई।

उस रात्रि को जुलेखा को अच्छी नींद न आई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

एक बड़े अहाते में एक छोटा सा कमरा है। चारों ओर से धुवाँ उठ रहा है। भठियारिनों के यहाँ यह मामूली बात है। एक तो बावर्चीख़ाने का धुँवा और दूसरे तम्बाकू की चिलमों का धुँवा। किन्तु इस कमरे में शराबियों का जमघट था। उन्हें बाहर के संसार से कुछ प्रयोजन नहीं होता। वे उसी में स्वर्गीय आनन्द का उपभोग कर लेते हैं।

एक ने कहा—यार, यहाँ जो कल गाना हुआ था सो क्या तुमने सुना था। दूसरे ने कहा—नहीं, मैंने नहीं सुना। लेकिन उसका सुनना ही क्या। गाना तो यहाँ एक दिन हुआ था जब यह भठियारिन न जाने किस प्रकार क़ासिम को फँसा लाई थी। गाने में क़ासिम पक्का उस्ताद था। तानसेन के बाद उसी का—

बात पूरी न हो पाई थी कि तीसरे ने बीच में ही झिड़क कर कहा—क्यों व्यर्थ की बकवाद करते हो? क़ासिम गाना-बजाना क्या जाने। उसकी तो सूरत-शक्ल अच्छी थी, इसलिए लोग उसकी प्रशंसा कर दिया करते थे, औरतें तो उस पर लट्टू हो जाती थीं।

एक ने फिर कहा—यार जिस दिन से भागा है उस दिन से फिर उसका पता नहीं लगा।

कोने में सबसे पीछे एक नौजवान एक गिलास और कई बोतलें लिये बैठा था। कोई उसे पक्का शराबी कहते थे और कोई पागल। कुछ भी हो, वह बोलता बहुत कम था। कभी कभी यों ही अपने आप बड़बड़ाया करता था। आज उसने बड़े तपाक से कहा—मैं उसका पता जानता हूँ।

सब लोग एक-दम उसकी ओर देखने लगे। और सभी एक साथ बोल उठे—हाँ, हाँ, इनको ज़रूर मालूम होगा। अच्छा बताओ तो सही वह कहाँ गया है?

उसने कहा—अच्छा बताऊँ, क़ासिम यमुना में कूद पड़ा है!

सब लोग एक साथ ज़ोर से हँस पड़े। जो उसके पास बैठा था उसने अपने कन्धे से इशारा करके कहा—यार, तुम भी बड़े दिल्लगीबाज़ निकले।

फिर एक ने पूछा—क्यों, क्या वह तुम्हारा दोस्त था?

उसने पहले अपने गिलास में सभी बोतलों में से थोड़ी थोड़ी शराब उड़ेली और एक घूट पिया। फिर उसने कहा—

क़ासिम मेरा दोस्त था? यह पूछते हो? हाँ, वह मेरा दोस्त था, क्या मैं डर के मारे उससे अपनी दोस्ती छोड़ दूँगा। एक दिन था जब तुम जैसे डरपोक उसकी चापलूसी किया करते थे। कहते थे, क़ासिम जैसा न तो कोई गायक है और न कोई सुन्दर नवयुवक। और आज उसी की दिल्लगी उड़ाते हो। मैं तो उसकी सारी कथा जानता हूँ। यह भी जानता हूँ कि क्यों उसे आगरा छोड़ना पड़ा।

एक ने कहा—यह कौन नहीं जानता। न औरतों से मज़ाक करता, न ऐसी दुर्दशा होती। बदमाश औरतों से खुदा ही बचाये।

दूसरे ने कहा—चुप भी रहो, यार, ज़रा सुनने दो। इनकी बातों में बड़ा मज़ा आता है। ये क़ासिम के दोस्त ठहरे, पते की बात बतलायँगे।

उसने फिर दो-तीन घूट पिये और जेब से रूमाल निकाल कर मुँह पोंछा, मानो कोई बड़े महत्त्व की बात कहने जा रहा है। उसने कहा—कौन कहता है कि वह उस कुलटा स्त्री के कारण बरबाद हुआ। तुम बेवकूफ़ हो, जो ऐसी बात करते हो। कुलटाओं के कारण कोई नष्ट नहीं होता, नष्ट तो मनुष्य पाषाणहृदय सती-साध्वियों के कारण होता है। कुछ देर चुप रह कर उसने नौकर को एक और बोतल लाने का इशारा किया और फिर कहने लगा—यह शराब नहीं, जामे जमशेद है। क्या तुम जानते हो कि जितना प्रेम मुझे मिला है, उतना तुम सबको मिला कर भी नहीं प्राप्त हुआ होगा। यह हँसने की बात नहीं है। मैं मानता हूँ कि अब मुझे कोई प्यार नहीं करता। इसलिए मैं शराब पीता हूँ, कम से कम इससे यह विश्वास तो रहता है कि कोई मुझे प्यार करता है। जानते हो इस शराब में मुझे उसी क़ासिम की तसवीर दिखाई देती है। तुम्हें न दिखाई दे, किन्तु कम से कम उसकी निन्दा तो न किया करो।

अब की बार वह सारे का सारा गिलास चढ़ा गया और एक एक करके सभी बोतलें पटक दीं। दो एक फूट भी गईं। फिर वह तन कर बैठ गया और इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उँगलियाँ नचाने लगा मानो सितार बजा रहा हो। थोड़ी देर गुनगुनाने के बाद उसने ललकार कर कहा—तुम लोग गाना क्या जानो। आओ मेरे साथ सुर में सुर मिला कर गाओ, देखें, कौन गा सकता है। देखो, अब कभी मत कहना कि क़ासिम गाना नहीं जानता था। सुनो, वह इश्क़ के पीछे बरबाद हुआ है और मैं—

उसकी बोली लड़खड़ाने लगी। वह औंधे मुँह ज़मीन पर गिर पड़ा। धीरे धीरे उसका मस्तिष्क भी क़ासिम और उसके प्रेमपात्री की बात भूल गया।

लोग फिर अपनी बातों में लग गये। थोड़ी देर में चाँदनी निकल आई। एक एक करके सब लोग अपने घर खिसक गये। जब सवेरे नौकर कमरा बुहारने आया तब उसने प्रातःकाल कपड़ों के ढेर रूप में पड़े हुए एक शराबी को जगाकर कहा—उठो, उठो, सवेरा हो गया।

आदमी ने कपड़ों के भीतर से ही कहा—शराब, थोड़ी शराब और दो। मैंने अपना सारा माल तो इस दूकान में दे दिया है, क्या तुम मुझे थोड़ी और न दोगे?

नौकर ने डाँटकर कहा—देखो, सूर्य निकल आया है, शराब का नाम मत लो, अपना धन्धा देखो।

उसने काँखते हुए फिर विनती की—सूर्य निकल आया है, यह तो मैं भी जानता हूँ, किन्तु यदि थोड़ी सी दे दो तो क्या हर्ज है?

नौकर ने बिना कुछ उत्तर दिये ही उसको खड़ा कर दिया और फिर कहा—इस दरवाज़े से बाहर निकल जाओ।

होश तो कुछ आ गया था, किन्तु पैरों में बिलकुल शक्ति न थी। दरवाज़े से टकराने के कारण माथा कुछ छिल गया। बाहर निकल कर आँखें बन्द किये ही चल दिया। यह पता नहीं था कि कहाँ जा रहा है। लड़-खड़ाते लड़खड़ाते थोड़ी दूर गया होगा कि फिर धड़ाम से नाली में गिर पड़ा।

जुलेख़ा का यह दैनिक नियम था कि वह सूर्य निकलने के पहले उठा करती थी और जब तक काफ़ी दिन नहीं चढ़ता था तब तक बाहर के बरामदे में ही टहला करती थी। बाहर भारी आवाज़ होने से वह दरवाज़े के पास आ गई। उसने देखा कि मैले-कुचैले कपड़ों से ढका हुआ एक आदमी नाली में गिर पड़ा है। एकाएक उसके अपने जीवन का वही दिन याद आ गया। ठीक इसी दशा में इसी तरह निस्सहाय, दीन-हीन और पागल की भाँति वह भी इसी मस्जिद के सामने गिरी थी। उसका हृदय काँप उठा। उसको मार्मिक वेदना हुई। वह जल्दी से लपक कर उसके पास पहुँची और अपने बटुए के सारे रुपये उसके कपड़ों में डाल दिये।

आदमी ने जो सिर उठाया तो जुलेख़ा पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़ी रह गई। दोनों की आँखों का सम्मिलन हुआ। आदमी की आँख में लालिमा की रेखा थी। किन्तु बात की बात में उसने भयङ्कर क्रोध का रूप धारण कर लिया। उसने खड़े होने की बड़ी कोशिश की। उसके चेहरे के बीभत्स रूप से यह साफ़ मालूम होता था कि वह जुलेख़ा के ऊपर थूकना चाहता है। किन्तु जब वह उठकर उसके बराबर खड़ा हुआ तब उसे जुलेख़ा की आँखें पढ़ने में देर न लगी। उनमें असीम सहवेदना, करुणा और चिरकालीन प्रेम की झलक थी। जुलेख़ा ने अपने प्रियतम का नाम लेना चाहा, किन्तु उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला। हाँ, खुली सड़क के बीच उसकी दोनों बाहें निस्सन्देह उसको सँभालने के लिए अपने आप खुल गईं। क्षण भर के लिए विस्मय और अविचार ने क़ासिम को हतबुद्धि कर दिया, किन्तु तुरन्त ही वह सन्तसहृदय एक ठण्ढी साँस लेकर उनसे जा लिपटा।

दीनानाथ

इँग्लैंड में भारतवर्ष।

वेम्बली में ब्रिटिश-साम्राज्य की प्रदर्शिनी समाप्त होगई। कितने ही दर्शक आये और ब्रिटिश-साम्राज्य का वैभव देख कर चले गये। मैं भी यह प्रदर्शिनी देख आया—

The world-compelling plan was thine
And lo! the long laborious miles
Of Palace, lo! the giant aisles,
Rich in model and design,
Harvest tool and husbandry,
Loom, wheel and engineering,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Secrets of the sullen mine,
Steel and gold and corn and wine,
Fabric-rough, or fairy-fine,
Sunny token of the line
Polar marvels and a feast
Of wonder, out of west and east,
And shapes and hues of Art divine.

भारतीय होने के कारण भारतीय वस्तुओं की ओर मेरी विशेष आकृष्टि हुई। मैं जानता हूँ कि भारतीयों को इस ब्रिटिश-साम्राज्य की प्रदर्शनी से सहानुभूति नहीं हो सकती। क्या पराधीन भारतवर्ष को भी गर्व हो सकता है कि उसने अपने शासकों की आज्ञा से उनके मनोविनोद के लिए ब्रिटिश-साम्राज्य की प्रदर्शनी में अपनी अमूल्य वस्तुएँ भेजीं? विदेश में स्वदेश की वस्तुएँ देखकर चित्त में आह्लाद अवश्य होता है। मैं यह निस्सङ्कोच कह सकता हूँ कि मुझे इन

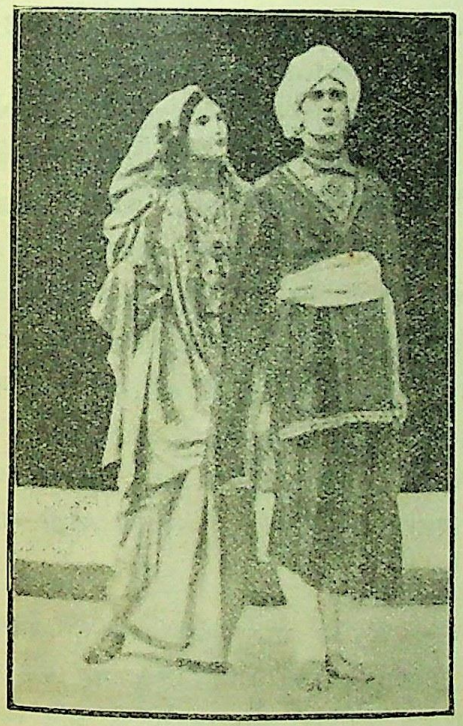

लन्दन में अभिनीत रवीन्द्र बाबू के एक नाटक का दृश्य।
कुन्ती (मिस फ्लोरेंस सांडर्स) और कर्ण
(मिस्टर जान लारी)

वस्तुओं को देख कर आनन्द हुआ। यदि किसी क़ैदी का भाई सज़ा पाकर जेल में अपने भाई से मिले तो क्या उसको आनन्द नहीं होगा? परन्तु वह आनन्द क्षणिक ही होगा। जब मैं प्रदर्शनी देखकर लौटा तब मेरा चित्त खिन्न था। इँग्लेंड में मेरी मातृ-भूमि की जो मूर्ति स्थापित

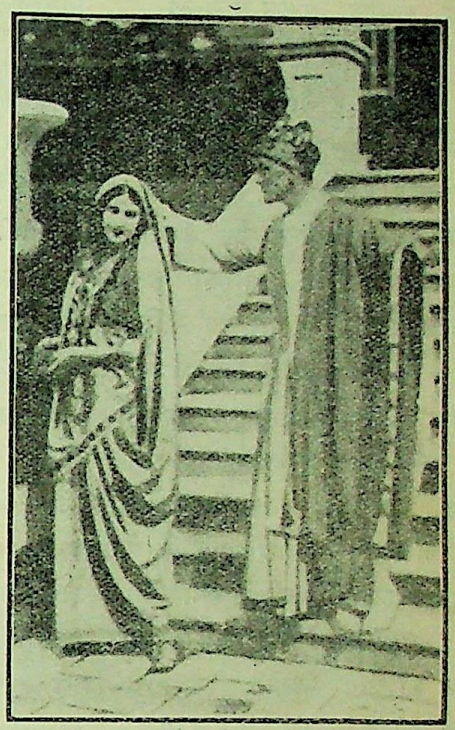

लन्दन में एक भारतीय नाटक का अभिनय।

देवयानी (मिस फ्लोरेंस) और कच (मिस्टर फ्लोरेंस सांडर्स)

हुई है उस पर पराधीनता की कालिमा है। हमें कितना अपमान, कितना तिरस्कार सहना पड़ता है। विदेशों में भारतीयों की स्थिति लज्जाजनक है। उन्हें स्वतन्त्रता की भूमि में भी परतन्त्रता का दृश्य देखना पड़ता है।

अच्छा, इस प्रदर्शनी का उद्देश क्या था। ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत भिन्न भिन्न देशों में दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करना ही इसका एक-मात्र उद्देश था, जिससे ये सब पारस्परिक आदान-प्रदान के द्वारा समस्त साम्राज्य की वैभव-वृद्धि कर सकें। सच तो यह है कि आज-कल कितने ही लोग ब्रिटिश-साम्राज्य को एक दृढ़ सङ्घ के रूप में परिणत करने की चेष्टा कर रहे हैं। उनका कहना है कि यदि इस बृहत् साम्राज्य के सभी राष्ट्र परस्पर प्रेम और मैत्री के भाव से संग्रथित हो जायँ तो उसमें सम्मिलित होने से प्रत्येक को लाभ हो। कितने लोगों ने तो यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा बाँध रक्खी है कि शायद भविष्य में यही साम्राज्य संसार-व्यापी राष्ट्र-सङ्घ का सेतु बन जाय। किन्तु ध्यानपूर्वक विचार करने से यह भ्रम तत्काल दूर हो जाता है, क्योंकि ब्रिटिश-साम्राज्य की वर्तमान कार्य-प्रणाली पर दृष्टिपात करने से यह विचार उसी प्रकार निरर्थक हो जाता है जैसे मृगतृष्णा से प्यास बुझाने की चेष्टा करना। महायुद्ध के कारण इसकी अवस्था और भी शोचनीय हो गई है, सभी अङ्ग कुछ न कुछ निर्बल से हो गये हैं, अतएव सबको अपनी अपनी पड़ी है। और उसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ है कि प्रधानतः साम्राज्य की बागडोर उन सैनिकों और सैन्य-पक्षपातियों के हाथ में चली गई है जो ब्रिटिश-जाति के सबसे योग्य और सबसे नीति-निपुण व्यक्ति नहीं कहे जा सकते हैं। इसके लिए विशेष प्रमाण की आवश्यकता नहीं। उन्होंने आयर्लैंड, भारतवर्ष और मिस्र के साथ जैसा व्यवहार किया है और उससे साम्राज्य-शान्ति एवं प्रेम-बन्धन को जो आघात लगा है उसको सँभालना अब किसी प्रकार आसान नहीं। वे साम्राज्य-सङ्गठन और साम्राज्य सौहार्द्र्य की चाहे जितनी डींग हाँकें किन्तु उनका यह कथन कि उन्होंने एक ही झण्डे के नीचे कई विजातीय राष्ट्रों को मिलाकर संसार के सामने एक असाधारण आदर्श स्थापित किया है, कदापि युक्तिसङ्गत नहीं हो सकता। बहुतों का विश्वास तो अब सदा के लिए उठ गया है। इसमें सन्देह नहीं कि ये लोग अपनी बात की पुष्टि के लिए एक न एक युक्ति निकाला करते हैं। हाल में ही प्रिंस आव् वेल्स ने जो अपना संसारव्यापी साम्राज्य का दौरा किया है वह भी इसी उद्देश से था। प्रिंस आव् वेल्स कोई साधारण व्यक्ति नहीं। उन्हीं के सिर पर एक दिन इँग्लैंड का ताज रक्खा जानेवाला है, वही एक दिन असंख्य प्राणियों के भाग्य-विधाता बनेंगे। अतएव उनकी आवाज़ तो संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक सुनी जानी चाहिए थी। उनको एक बहुत उत्तम अवसर मिला था। वे अपनी प्रजा को बतला सकते थे कि साम्राज्य में रहनेवालों के क्या कर्त्तव्य हैं और क्या लाभ हैं। किन्तु इन्हीं ब्रिटिश नीतिज्ञों के कारण प्रिंस आव् वेल्स का एक भी भाषण ऐसा नहीं हुआ। क्या वे अपनी प्रजा को नहीं बता सकते थे कि भविष्य में जब मेरे ऊपर तुम्हारा भार सौंपा जायगा, उस समय के लिए मेरे दिल में क्या विचार उठ रहे हैं? क्या उनके एक भी भाषण से उनकी एक भी रिआया के हृदय में उस स्वर्णकाल की कल्पना जाग्रत हुई है। जब साम्राज्य में रहनेवालों का यह हाल है तब बाहरवालों का तो कहना ही क्या। उनके लिए तो ब्रिटिश-साम्राज्य ब्रिटिश लोगों के जातीय अभिमान और जातीय आत्म-गौरव का रूपान्तर-मात्र है। निस्सन्देह यह अभिमान ऐसा दुर्दमनीय और यह आत्म-गौरव ऐसा विशाल है कि घड़ी भर के लिए सभी के हृदय में उसका आतङ्क छा जाता है। कहते हैं कि प्रिंस आव् वेल्स का साम्राज्य के अङ्गभूत देशों में बड़ा आगत-स्वागत हुआ था। किन्तु क्या उनमें सच्ची प्रजावत्सलता और आदर्श राज-भक्ति के लक्षण थे। नहीं, वे तो उसी अभिमान, उसी आत्मगौरव के स्वाँग थे। मानो उनके भीतर साक्षात् अभिमान यह कह रहा था, लो यह हमारा रूप है और इसको हम कदापि नहीं छोड़ सकते। जैसे हम सहस्रों वर्ष पहले थे, वैसे हैं और वैसे ही सदा रहेंगे। हम ब्रिटिश हैं, वही ब्रिटिश-दिग्विजयी वीरों की सन्तान। कहाँ तो साम्राज्य में एक ओर दारिद्र्य और भय का साम्राज्य फैल रहा है और कहाँ मनोविनोद के लिए प्रिंस आव् वेल्स का साम्राज्य-पर्यटन की योजना! यही बात इस ब्रिटिश-साम्राज्य-प्रदर्शनी के विषय में भी कही जा सकती है। मैं यह क्यों कह रहा हूँ? क्योंकि मैं इँग्लैंड में अँगरेज़ों का जो भारतवर्ष देखा करता हूँ वह प्राच्य और पाश्चात्य जातियों के पारस्परिक सम्मिलन का साधक कभी नहीं हो सकता।

यह सच है कि भारत के कितने ही श्रीमानों से कितने ही अँगरेज़ों की घनिष्ठ है। यह भी सच है कि भारतीय साहित्य और कला के प्रति कितने ही अँगरेज़ों को बड़ा अनुराग है। रवीन्द्र बाबू की कृतियों का यहाँ विद्वानों में मान है। उनके नाटकों का अभिनय भी विद्वानों को तोषप्रद है। परन्तु बहुत कम भारतवासी इस बात को जानते हैं कि इँग्लैंड के लोग भारतवर्ष के विषय में कैसी धारणा रखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

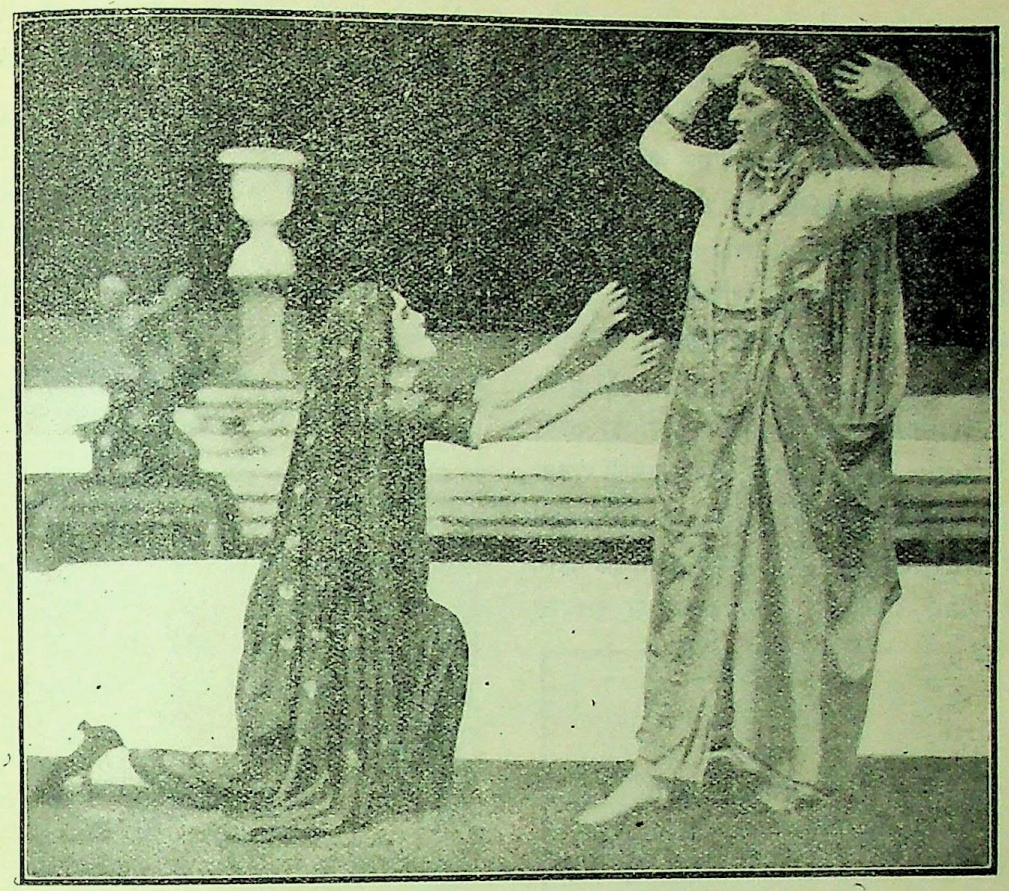

हैम्स्टेड में रवीन्द्र बाबू के एक नाटक का अभिनय।

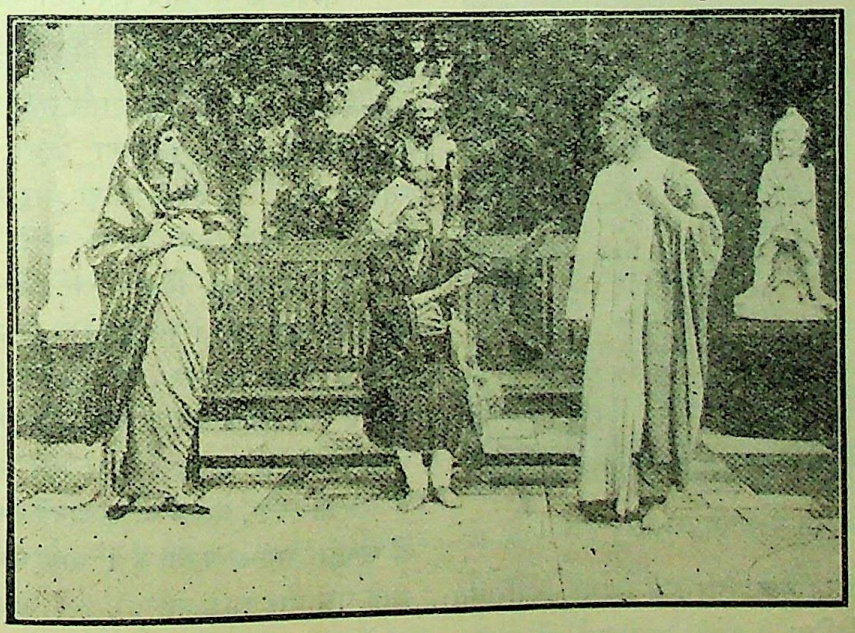

लन्दन में एक भारतीय नाटक का अभिनय।
गान्धारी (मिस मोयन मकगिल, धृतराष्ट्र (मिस्टर जान लारी) और दुर्योधन (मिस्टर हेनरी ओस्कार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, उनको भारतवर्ष का कुछ ज्ञान है अथवा नहीं है, अपढ़ या साधारण शिक्षित जनता के हृदय में भारतवर्ष का नाम लेने से क्या भाव उठते हैं। विश्व-भारती में एक फ्रेंच विद्वान् ने इस पर कुछ प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि भारतवर्ष—आधुनिक भारतवर्ष के विषय में तो योरपीय लोग सर्वथा अपरिचित हैं। इतने अपरिचित हैं कि हमको बड़ा आश्चर्य होता है। क्योंकि योरपवासी तो बहुत ही शोधप्रिय होते हैं, फिर भला वे भारत से क्यों इतने अनभिज्ञ हैं। जो लोग किसी भारतीय भाषा को पढ़ना चाहते हैं वे अधिकतर संस्कृत पढ़ते हैं, किन्तु इनकी संख्या भी उँगलियों पर गिनने लायक़ है। इस प्रकार इन विद्वानों को भारतवर्ष का जो कुछ न्यूनाधिक ज्ञान होता है वह सब प्राचीन पुरातन भारत से सम्बन्ध

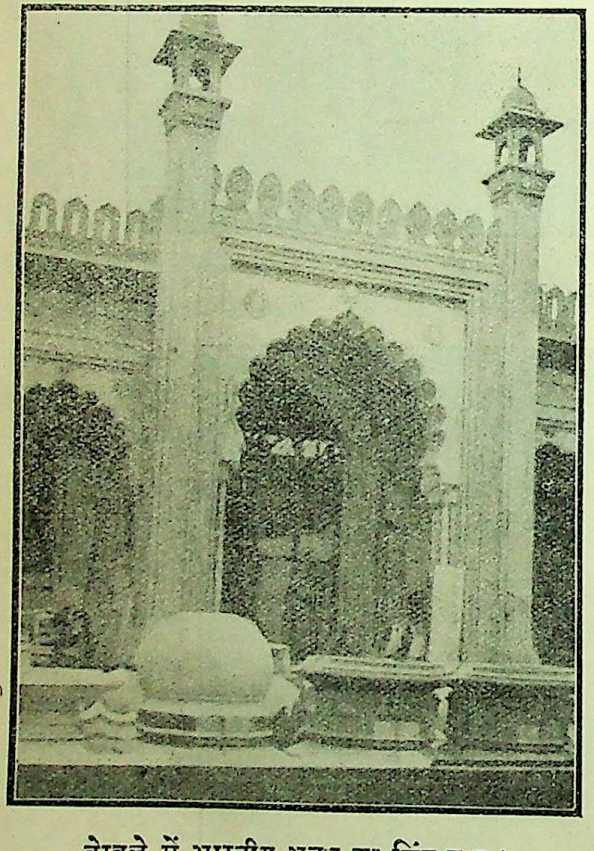

वेम्बले में भारतीय भवन का सिंह-द्वार।

रखता है। वे भी आधुनिक भारत से सर्वथा अपरिचित रहते हैं। इसके अतिरिक्त वे कभी भारतवर्ष में आकर स्वयं उसको अपनी आँखों से देखने का कष्ट नहीं उठाते। इसलिए वे साधारण जनता को भारतवर्ष के विषय में

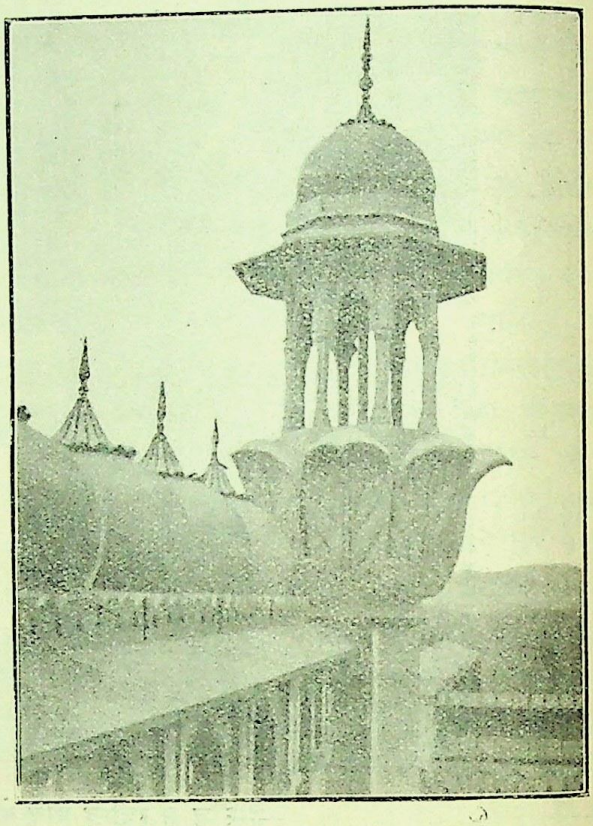

वेम्बले के भारतीय भवन का एक मीनार।

कुछ नहीं बता सकते। अतएव उनको भारतवर्ष के विषय में ज्ञान-प्राप्ति का केवल एक मार्ग समाचारपत्र है। किन्तु ये भी अधिक बातें बतलाना पसन्द नहीं करते। जो बतलाते भी हैं वे तोड़ी-मरोड़ी और सुनी-सुनाई, उनका उद्देश भी सत्य-प्रचार करना नहीं बरन स्वार्थ-सिद्धि होता है। वे अपनी विरोधी बातों को कभी उस रूप में प्रकाशित नहीं करते। भारतवर्ष के विषय में चर्चा करनेवाले पादरियों, उपन्यासकारों एवं यात्रियों का भी यही हाल है। वे केवल एक ही ओर देखते हैं, शायद दूसरी ओर पक्षपात के कारण देख ही नहीं सकते।

न जाने क्यों, प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको अपने साथियों से अच्छा समझा करता है। चाहे धनी हो, चाहे दरिद्र, चाहे नम्र और चाहे घमण्डी, चाहे ऊँचा और चाहे नीचा, चाहे स्वरूपवान् और चाहे कुरूपवान्, चाहे पहलवान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और चाहे रोगी, चाहे योगी और चाहे भोगी, चाहे विद्वान् और चाहे मूर्ख। सारांश यह कि चाहे किसी अवस्था में हो, अपने को बड़ा समझना उसका स्वभाव सा पड़ गया है। इसके लिए कोई उपयुक्त कारण नहीं बताया जा सकता। शायद यही कारण है कि इसमें उसे कोई रोक-टोक करनेवाला नहीं है और इसी लिए वह अपनी विशेष स्थिति और परिस्थिति को महत्ता प्रदान कर देता है, उसको सद्गुण मान बैठता है। किन्तु यह ढकेल रहा है उससे राष्ट्र भी सुरक्षित नहीं हैं। पुरातन काल से संसार की सभी जातियाँ अपने आपको अपने पड़ोसियों से उत्तम समझती आई हैं और यही विश्वास शायद उनके नागरिकों के जीवन-निर्माण में सबसे अधिक काम करता है। प्रायः संसार में एक भी जाति ऐसी नहीं है जिसने कभी न कभी इस मिथ्या विचार को सत्य मानने से घोर दुख न उठाया हो। किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि कोई भी इस मिथ्या ढोंग को छोड़ने के लिए तैयार नहीं

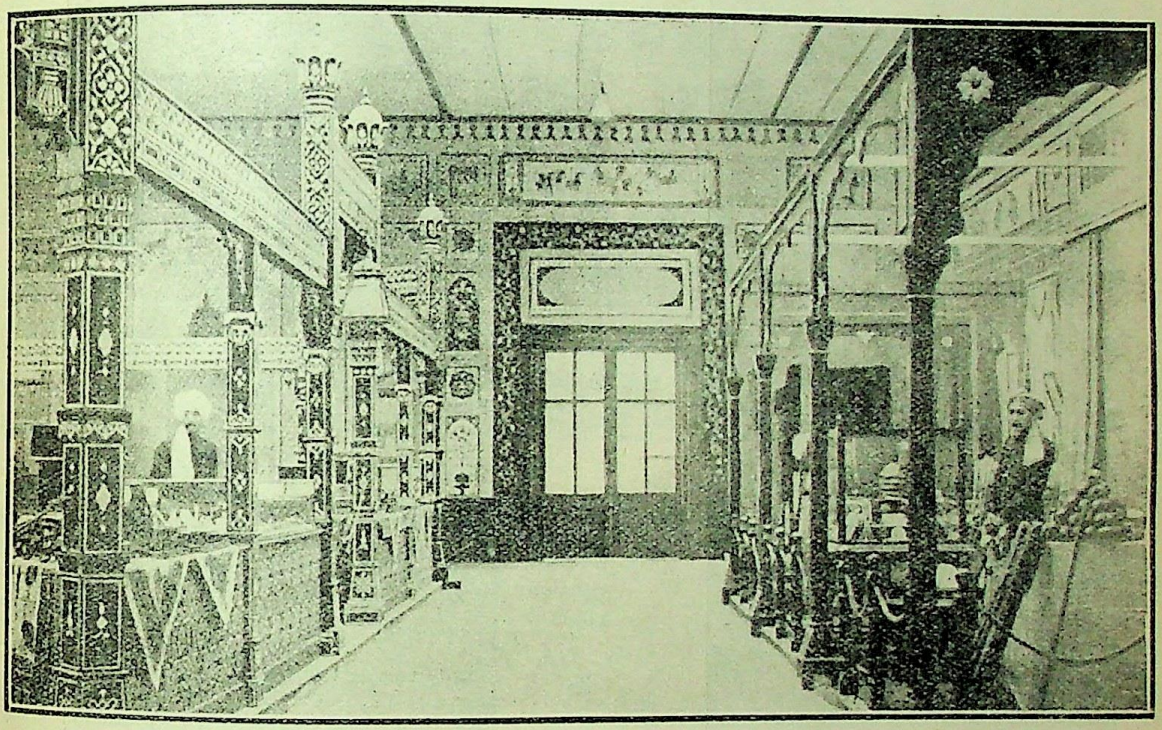

वेम्बले प्रदर्शिनी के भारतीय भवन में पंजाब-प्रान्त-विभाग।

क्रिया केवल उसी के व्यक्तित्व तक सीमाबद्ध नहीं रहती। धीरे धीरे वह अपने कुटुम्ब, अपने नगर, अपनी जाति को भी इसी काल्पनिक आभा से आच्छादित करने लगता है। यदि कोई उससे पूछे कि वह क्यों अपने नगरवासियों के गुणों और स्वभावों को अच्छा समझता है तो वह कोई कारण नहीं बता सकेगा, उसका दिल यही कहेगा, क्योंकि वे अपने हैं। बेचारा यह नहीं जानता कि इस प्रकार वह अज्ञातरूप से कितना अनर्थ फैला रहा है।

किन्तु जो दोष व्यक्तियों को अवनति के गर्त्त में नीचे है। प्राचीन सभ्यताओं का इतिहास जातियों को यही उपदेश देता है, उनके समीपवर्ती इतिहास का भी यही सङ्केत है, पर वे मदान्ध होने के कारण इस मिथ्या गर्व को नहीं छोड़तीं। इतना ही नहीं, इसकी पुष्टि के लिए नाना प्रकार के तर्क सोचा करती हैं। उदाहरण के लिए सबसे पहले वे यह विश्वास कर लेती हैं कि उनमें कुछ ऐसे सद्गुण हैं जो संसार के अन्य मनुष्यों में नहीं पाये जाते और न पाये जा सकते हैं, इसके बाद यह धारणा बाँधती हैं कि बस, यही सद्गुण भगवान् को सबसे अधिक प्रिय है, इन्हीं के द्वारा वह प्रसन्न हो सकता है। जहाँ यह विश्वास जम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया, तहाँ उन्होंने संसार में अपने आपको भगवान् का प्रेमपात्र घोषित कर दिया। भला, इस चालबाज़ी से लाभ क्या? इसका उत्तर बहुत सरल है। इस पवित्रता की आड़ में वे संसार में निस्सङ्कोच अपने साम्राज्य-विस्तार के लिए चेष्टा किया करती हैं। कहते हैं कि यदि दूसरी जातियाँ उनके

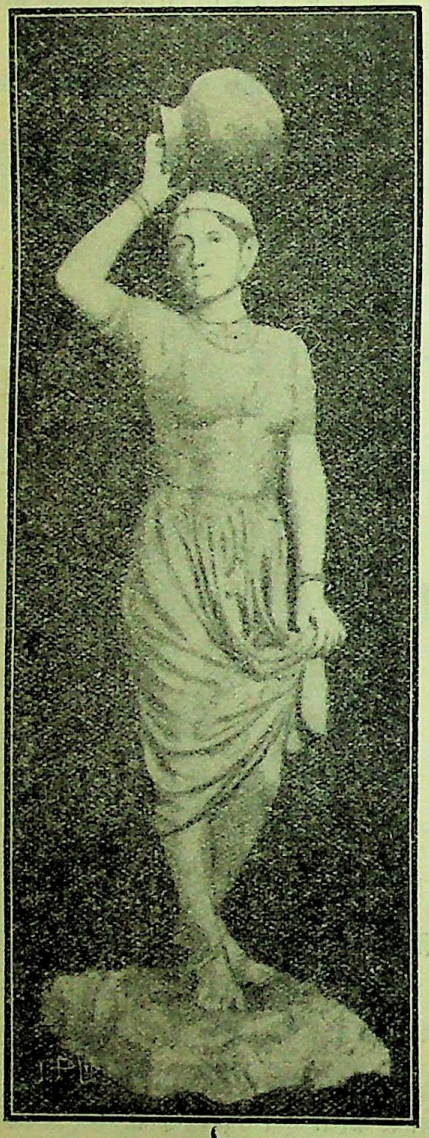

कुँए की ओर।

(वेम्बले में प्रदर्शित श्रीयुत म्हातरे के पुत्र श्रीशामराव म्हातरे की एक मूर्ति)

आधिपत्य में आ जायँगी तो सभी ईश्वर की प्रेमपात्री बन सकेंगी। इसके सिवा उनके लिए कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है। अतएव जिसको लोग हमारी निरङ्कुशता अथवा अत्याचार कहते हैं वह उसी प्रकार अनिवार्य है जैसे बुख़ार भगाने के लिए कुनैन जैसी कड़वी दवा।

देव-मन्दिर को।

(वेम्बले-प्रदर्शिनी में मिस्टर जी० के० म्हातरे की एक मूर्ति)

सम्भव है कि आज जनरल डायर सच्चे और सीधे हिन्दुस्तानियों से सहमत न हो सकें और उन्हें गोली से मार कर अपना रास्ता साफ़ करने में मानो वे उन्हीं पर उपकार कर रहे हैं। सम्भव है कि आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

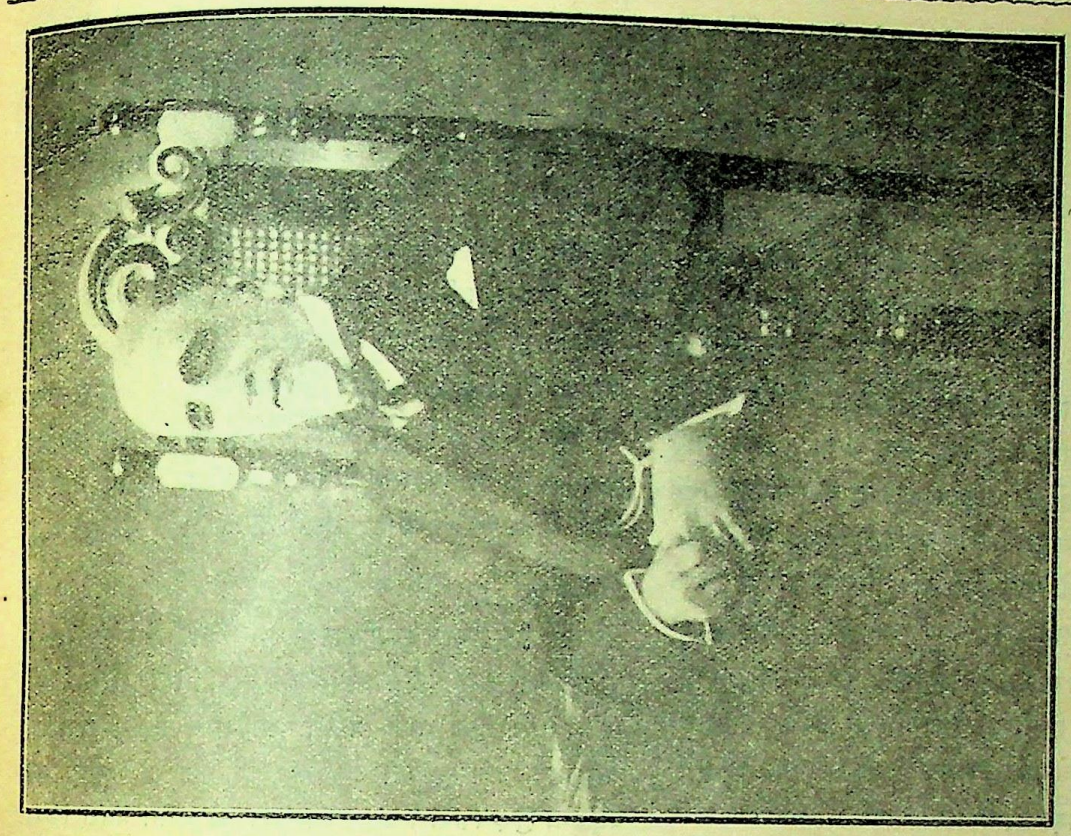

सर कवासजी जहाँगीर।
(वेम्बले की प्रदर्शिनी में भारतीय वस्तुओं के प्रदर्शन में इन्होंने विशेष अनुराग दिखाया)

श्रीमती जहाँगीर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लावेल टामस अँगरेज़ जनता के आगे हिन्दुस्तानियों की सचाई और सिधाई की खूब हँसी उड़ाय, साथ ही उनका थोड़ा-बहुत मनोरञ्जन भी कर दें और कोई इनको रोकने-वाला न हो। किन्तु वास्तव में जनरल डायर का आत्म-गौरव और लावेल टामस का व्यङ्ग्यपूर्ण परिहास उस कूड़े-कचरे से अधिक महत्त्व का नहीं है जिसकी गति ज्वारभाटे के साथ होने के कारण अविच्छिन्न सी मालूम पड़ती है। पर क्या सचमुच उसमें कोई दम है? नहीं, ज्वार-भाटे के उतरते ही तटवर्ती झाड़ियों में फँस जाना ही उसका अनिवार्य अन्त है। चाहे आज उसको कोई देखे, चाहे न देखे, उसका परि-णाम और कुछ नहीं हो सकता। किन्तु वही हिन्दुस्तानी जो आज इनके आघातों से चकनाचूर हुए जा रहे हैं, क्रमशः ज्वारभाटे के साथ इस प्रकार मिलते जाते हैं कि वे एक दिन उसके साथ तन्मय होकर सर्वशक्तिसम्पन्न हो बैठेंगे। उनकी गति सचमुच अविच्छिन्न हो जायगी, क्योंकि प्रकृति उनके साथ होगी। हिन्दुस्तानियों को इस बात का पक्का विश्वास है। वे जानते हैं कि असत्य से सत्य, अन्याय से न्याय शब्द कहीं बड़ा है, क्योंकि अन्त में उसी की विजय होती है। सत्य की विजय में कोई अपवाद नहीं, कोई संशय नहीं। असत्य का प्रभुत्व क्षणिक और अस्थिर है। ईश्वरीय न्याय वह न्याय है जिसको कोई मेट नहीं सकता, वह शक्ति है जिसको कोई रोक नहीं सकता, वह विरुद्ध होने पर एक तो क्या सैकड़ों ब्रह्माण्डों की भी परवा नहीं करती, असत्य के पक्ष में होने से एक तो क्या लाखों साम्राज्यों को भी मटियामेट कर सकती है। ब्रिटिश-साम्राज्य के पोषकों ने क्या यह बात सोच ली है? जनरल डायर और लावेल टामस ने तो साम्राज्य-गौरव पर ही अपनी आत्मा का बलिदान कर दिया है, यही उनके लिए अन्तिम तथ्य है। वे तो कहते हैं कि जिसको लोग अनादि सत्य अथवा ईश्वरीय न्याय मान बैठे हैं, जिसकी वे रात-दिन दुहाइयाँ दिया करते हैं, वह भी तो आख़िर-कार ब्रिटिश-साम्राज्य का एक अङ्ग है। बेचारों को यह ख़बर नहीं कि उल्टी गङ्गा बहाने से कोई लाभ नहीं हो सकता। अन्धा भी इस बात को देख सकता है कि ब्रिटिश-साम्राज्य प्रकृति-साम्राज्य के अन्तर्गत है या प्रकृति-साम्राज्य ब्रिटिश-साम्राज्य के।

अब प्रश्न यह उठता है कि पश्चिम को पूर्व के प्रति ऐसी प्रकट घृणा क्यों है? योरपवालों ने एशिया-वासियों—हिन्दुस्तानियों, चीनियों, जापानियों, के साथ कैसा व्यवहार किया है? अफ़्रीकावालों के साथ जो व्यव-हार हो रहा है उसका तो कुछ पूछना ही नहीं। जो लूट-मार या धन-खसोट इन्होंने मचाई है, हम उसका कोई उलहना नहीं देना चाहते! किन्तु यदि एशियावासी भी श्वेताङ्गों को वैसा ही प्रत्युत्तर दें तो? योरप के समा-चार-पत्रों में जो यदा-कदा एशियावासियों के प्रति घृणा का भीषण उद्रेक दिखाई देता है वह किसी एक विक्षिप्त सम्पादक या संवाददाता के मस्तिष्क का प्रलाप नहीं है, किन्तु योरप के अधिकांश नागरिकों की यही धारणा है।

अच्छा, इस रोग ने ऐसा भयङ्कर रूप कैसे धारण कर लिया है? इसकी व्युत्पत्ति बड़ी मनोरञ्जक है। एक समय था जब पश्चिमी लोग जापानियों, चीनियों और शायद भारतवासियों को भी अपनी उदारता से वश में करना चाहते थे। किन्तु फिर उन्होंने गिरगिट की भाँति रङ्ग बदलना शुरू किया। पहले व्यापारी की भाँति प्रवेश किया, फिर पादरी के रूप में मोहिनी डालना चाही, पश्चात् सिपाही का रूप धारण किया और अन्त में शासक बन बैठे। यही उनकी संक्षिप्त कथा है। किन्तु उन्होंने सदा मित्र, सहायक और विश्व-सेवक बनने का दावा किया है। अतएव उनका सर्वत्र स्वागत हुआ। घरेलू झगड़ों के कारण जिनमें एशियावासी बहुत ही सिद्धहस्त हैं उनकी आव-भगत सचमुच बड़ी श्रद्धा से होने लगी। फल यह हुआ कि पश्चिम का भाग्य चमक गया और पूर्ववालों ने उनकी कृपा से अपना जीवन कुछ व्यवस्थित कर लिया। किसी किसी देश को तो निस्सन्देह उनसे बड़ा लाभ हुआ, क्योंकि वहाँ घर के भीतर उन्होंने प्रवेश नहीं किया या प्रवेश नहीं हो सका, केवल बाहर ही बाहर परामर्श देते रहे। किन्तु जिन पर उन्होंने एकाधिकार प्राप्त कर लिया उनको घाटा उठाना पड़ा। पर वे सदा यही दुन्दुभी पीटते रहे कि उनका उद्देश पवित्र है। वे एशियावासी को दुखी नहीं देख सकते। वे उनको सभ्य बनायँगे और फिर उनको स्वराज्य देकर अपने घर की राह लेंगे। शर्तनामे की पहली किस्तें तो उन्होंने ईमानदारी से चुका दीं, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

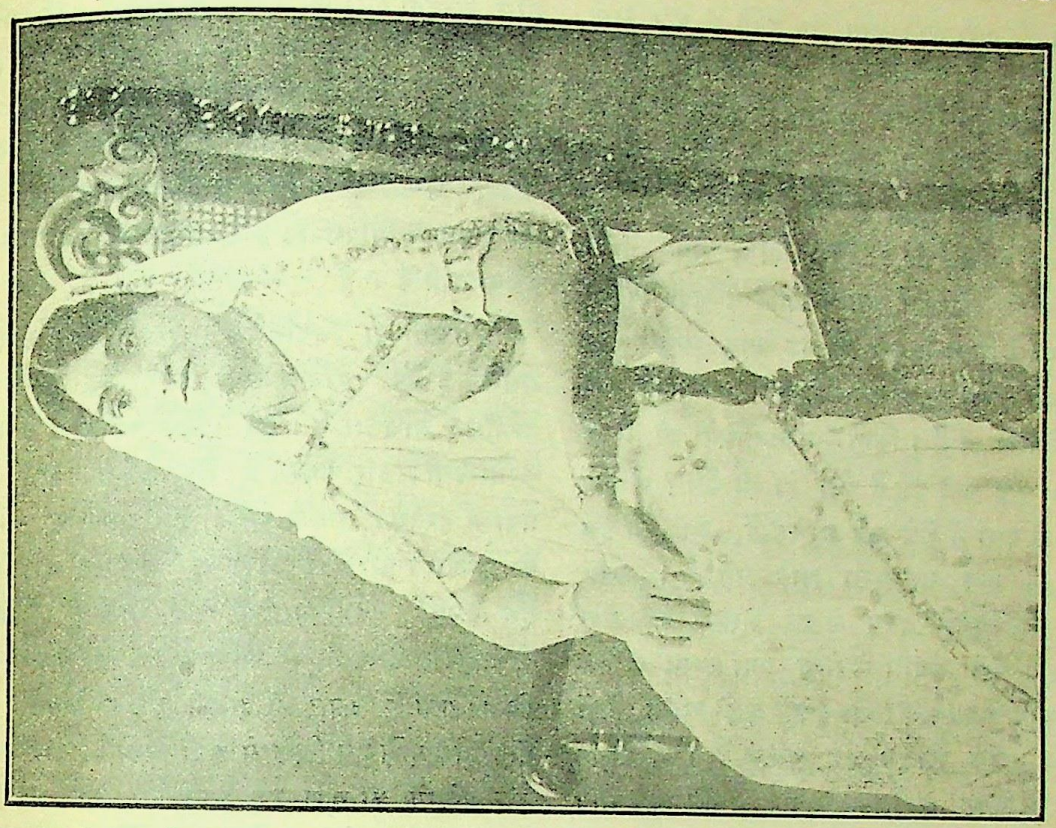

राष्ट्र-सङ्घ के भारतीय प्रतिनिधि सर सैयद अलीइमाम की पत्नी।

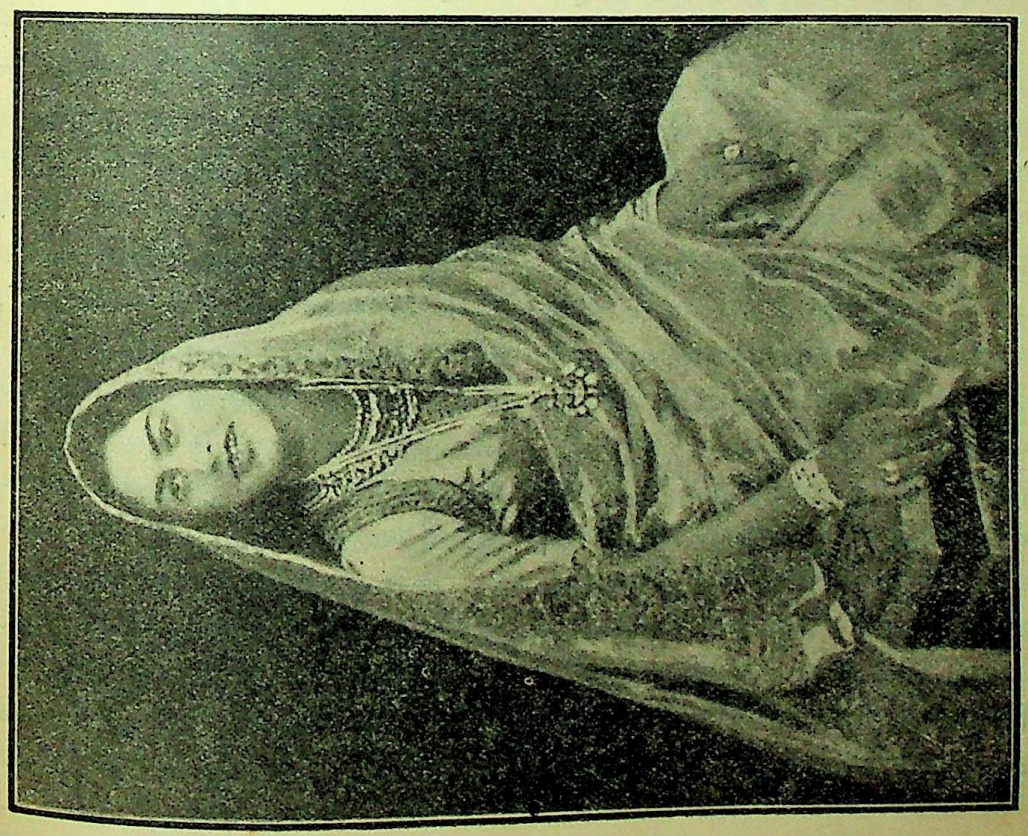

लन्दन में मंडी की राजकुमारी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब स्वराज्य की बारी आने लगी तब हृदय में पाप समा गया। दाँत पीस पीस कर कहने लगे कि हमने यों ही अपना रक्त बहाया था कि जो चुपचाप इतने बड़े साम्राज्य का प्रभुत्व छोड़ दें। ऐसी बेवकूफ़ी हमसे नहीं होने की। पर क्या अनादिकाल तक के किसी जाति को गुलाम बनाये रखना सम्भव है? जापानियों ने सबसे पहले उनके चुङ्गल से छुटकारा प्राप्त किया। वे अपने विदेशी शिक्षकों के पक्के शिष्य निकले, झटपट अपने मतलब की बात सीख कर उनका जुआ उतार दिया। चीनी भी धीरे धीरे इसी कोशिश में हैं। किन्तु भारतवासियों की निद्रा अभी पूर्णतः भङ्ग नहीं हुई है और हो भी कैसे? पीढ़ियों से गुलामी के पाश में बँधे चले आ रहे हैं, उन्हें तो इस हीनावस्था में कुछ मज़ा सा आने लगा है। जन्म-जन्मान्तरों से जिनके हृदय में यह संस्कार पड़ गया हो कि तपस्या और संन्यास से मोक्ष प्राप्त करना ही इस जीवन का ध्येय है उनकी निद्रा टूटना कुछ आसान नहीं है। पर अब उनके लिए सोना कठिन है। वे हज़ार सोना चाहें, किन्तु अड़ोस-पड़ोसवाले उनको कब सोने देंगे। इसी कारण आज-कल वे भी देश के शासन में कुछ हाथ बँटाने के लिए लालायित हो उठे हैं। जापान, मिस्र आदि देशों की ओर देख देख कर उनकी लालसा और भी तीव्र होती जाती है। उनकी इच्छा है कि वे एशिया और अफ़्रीका में कम से कम मनुष्य तो समझे जायँ, पशुओं की तरह उनके साथ दुर्व्यवहार तो न हो। इन्हीं चीत्कारों के मारे पश्चिमी लोगों के कान फटे जा रहे हैं, अतएव उन्होंने भी काले रङ्गवालों की निन्दा में अपना स्वर ऊँचा कर दिया है। वे कहते हैं कि देखो तो ये काले रङ्गवाले कैसे दुष्ट हैं, कृतघ्नता की तो इन्होंने पराकाष्ठा कर दी है, शायद ये वह दिन भूल गये जब ज़ालिम अपने दस्तरख़्वान से कुत्तों की भाँति इनके लिए दो एक निवाले फेंक देते थे और उसी को ये अहोभाग्य समझते थे। हमने इनको आदमी बनाया और अब ये बराबरी करने को तैयार हो गये। देखो, यदि अब भी हमारा कहना नहीं मानोगे तो पछताओगे। योरप की साधारण जनता के हृदय में एशियावासियों के प्रति इसी प्रकार के विचार जमे हुए हैं। इससे हमारा यह आशय नहीं कि वहाँ विचार-शील, दूरदृष्टा और कुशल राजनीतिज्ञ ही नहीं, जो कुछ उदार विचार न रखते हों। इसमें सन्देह नहीं कि वैसे लोग हैं, किन्तु उनकी संख्या इतनी थोड़ी है कि जब यह शैतान-चौकड़ी ऊधम मचाती है तब उनकी कुछ नहीं चलती। वे उस पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। उनसे इस विषय में निष्पक्षपात होकर विचार करने के लिए कहना व्यर्थ है।

इस रोग का निदान भी सरल है। श्वेताङ्गी लोग समझते हैं कि एशियावासियों पर राज्य करना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। इस पवित्र अधिकार में हस्तक्षेप करना उसी प्रकार अक्षम्य है जिस प्रकार किसी धार्मिक प्रथा में हस्तक्षेप असह्य होता है। भगवान् ने श्वेताङ्गों को कृष्णाङ्गों पर राज्य करने के लिए पैदा ही किया है, इस विषय में उनको ज़रा भी सन्देह नहीं है। विकासवाद के अनुसार योग्यतम के अस्तित्व का जो सिद्धान्त स्थिर किया गया है उससे भी इसकी पुष्टि हो जाती है। योरपीय लोग एशियावासियों से कहीं योग्य हैं, यदि उनके पीछे कुछ अयोग्यों का नाश हो जाय तो क्या परवा। यह तो प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है। ऐसी दशा में भला निरस्त्रीकरण कानफ़रेन्सों से क्या कोई आशा करना चाहिए? जब तक यह भीषण घृणा योरपवासियों के हृदय में घर किये हुए है तब तक शान्ति-सभाओं और राष्ट्रसङ्घों की चर्चा व्यर्थ है। सबसे पहली बात तो यह है कि वे अपने लालच और बड़प्पन-लालसा को कुछ कम करें, एशियावासियों को निरा पशु न समझें और उनका मनुष्योचित आदर करें, साथ ही एशियावासियों के ऊपर राज्य करने के अपने जन्म-सिद्ध अधिकार की बात को सदा के लिए छोड़ दें। राजनीतिज्ञों को चाहिए कि वे अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उसी सौहार्द्र और सहानुभूति से काम लें जिसके अनुसार वे पश्चिमी राष्ट्रों से व्यवहार करते हैं।

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि पूर्ववालों को पश्चिमी देशों से कुछ लेने की कोई इच्छा नहीं है। वे तो केवल अपने घर में शान्तिपूर्वक रहना चाहते हैं, एकमात्र इच्छा यह है कि कोई उनके घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करे। अच्छा या बुरा वे जिस तरह का अपना प्रबन्ध कर सकेंगे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी में प्रसन्न रहेंगे। यह क्या योरपवासियों के लिए कम गौरव की बात है कि पूर्ववाले पश्चिमी विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाना चाहते हैं, पश्चिमी सभ्यता और शैली के अनुकरण करने की भी इच्छा रखते हैं और जहाँ तक हो सकता है अपने देशों में पश्चिमी संस्थाओं की स्थापना के लिए चेष्टा करते हैं। इस पर गर्व करना तो दूर रहा, वे उल्टा पूर्ववालों से ईर्ष्या करते हैं, जैसे पूर्ववालों के अनुकरण से उनको हानि होती हो। कुछ ऐसा मालूम होता है कि उनका मस्तिष्क ठिकाने नहीं है। यदि वे स्वस्थ-चित्त होते तो ऐसे गन्दे विचार और कुत्सित भावनायें कभी उनके मस्तिष्क और हृदय में न उठतीं। इसी लिए संसार भर के विद्वानों और हितचिन्तकों की तो आज-कल यही प्रार्थना रहती है कि ईश्वर जल्दी से जल्दी श्वेताङ्गियों को वह उज्ज्वल मति प्रदान करें जिससे वे अनुचित द्वेष को जीत सकें और सबके साथ बिना किसी भेद-भाव के प्रेम और सहृदयता का बर्ताव कर सकें। रुड्यार्ड किपलिंग की यह प्रसिद्ध भ्रमोक्ति कि पूर्व और पश्चिम का कभी मिलान नहीं हो सकता, काफ़ी अनर्थ कर चुकी। अब दोनों को सँभल जाना चाहिए। क्या एशिया में ऐसे राष्ट्र और मनुष्य नहीं हैं जो योरप के उच्चतम से उच्चतम राष्ट्र के साथ बराबरी कर सकते हैं, जो न केवल पूर्व के लिए बरन संसार के लिए गौरव के विषय हैं और हो सकते हैं। एशिया में तो ऐसे राष्ट्र हैं जिनकी प्राचीन सभ्यतायें, जिनका साहित्य, जिनकी सन्तान आज क्या सदैव संसार के इतिहास में शीर्षस्थानीय बना रहेगा। यदि योरप में थोड़ी सी भी बुद्धि शेष रह गई है तो वह कदापि इस अमूल्य रत्न की उपेक्षा नहीं करेगा। यदि योरप इसका अनुभव नहीं करता तो एक न एक दिन पूर्व और पश्चिम में भीषण युद्ध होगा, ऐसा भीषण कि संसार में आज तक कभी ऐसा न हुआ होगा। सचमुच लोहू के नद बहने लगेंगे। इसमें कौन बाज़ी लेगा, सो भी सन्दिग्ध नहीं है। सम्भव है प्रारम्भ में योरप कुछ बलवान् सिद्ध हो किन्तु अन्त में उसकी जीत नहीं हो सकती, क्योंकि पूर्व की संख्या ही पश्चिम से कई गुना अधिक है। ईश्वर न करे कि संसार को ऐसा दुर्दिन देखना पड़े। इसके परिणाम को सोचते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं, पश्चिम की प्रिय और महत्त्वपूर्ण सभ्यता तहस-नहस हो जायगी, संसार की भावी भलाई का मार्ग बन्द-सा हो जायगा, साथ ही विद्वेष और घृणा की ज्वालायें बहुत दिनों तक शान्त न होंगी। अतएव हमारी यह प्रार्थना होना चाहिए कि ईश्वर दोनों ओर के अदूरदर्शी लोगों के हृदयों में सत्-बुद्धि, सहनशीलता और प्रेम का सञ्चार करे।

एक भारतीय

सम्बन्ध।

प्रभो! हम भजें तुम्हें इस नाते।
अज अनीह अविछिन्न अलौकिक क्योंकि आप कहलाते॥
जल में स्थल में व्योम-विपिन में सबमें तुमको पाते।
तो भी स्थूल नेत्र ये देखे बिना तुम्हें अकुलाते॥
नेति नेति कह करके तुमको सभी वेद हैं गाते।
निज से प्रकट कभी होते तुम निज में कभी समाते॥
कहीं नहीं तुम आते हो प्रभु! कहीं नहीं तुम जाते।
पर भक्तों के भय हरने में प्रभुता आप दिखाते॥
तुम अघ हरते हो प्रतिपल पर हम अघ से न अघाते।
हम कब के गिर जाते यदि तुम हमको नहीं उठाते॥

रामचरित उपाध्याय

कवि का आत्म-परिचय।

अमरीका के एक प्रसिद्ध कवि वाल्ट ह्विटमैन ने अपनी रचना के विषय में कहा है—वह ग्रन्थ नहीं जो इसे स्पर्श करता है, वह एक मनुष्य को स्पर्श करता है। बात भी यही है। काव्य में कवि की आत्मा अन्तर्हित रहती है। जब हम किसी कवि की रचना को उठाते हैं तब वह मानो सदेह उपस्थित हो जाता है। परन्तु इतना तो सभी स्वीकार करेंगे कि कवि अपनी कृति में बिलकुल छिपा रहता है, इतना छिपा रहता है कि उस पर हमारी दृष्टि तक नहीं जाती। हम काव्य में तो तल्लीन हो जाते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु कवि को भूल सा जाते हैं। रामायण पढ़ते समय हमारी सहानुभूति रामायण के भिन्न भिन्न पात्रों के प्रति रहती है, रामायण के रचयिता के प्रति नहीं। कवि का यह कितना बड़ा आत्मत्याग है। वह अपने जीवन में न जाने कितना दुख-सुख सहता है, वह भी मनुष्य है, क्या उसे अपने जीवनकाल में शारीरिक और मानसिक यातनायें न सहनी पड़ती होंगी, क्या वह कभी आपत्ति-ग्रस्त न होता होगा? क्या उसमें हर्ष और विस्मय, भय और क्रोध, ईर्ष्या और प्रेम, निराशा और गर्व के भाव न उठते होंगे। परन्तु वह अपने हृदय के ऐसे भावों को छिपा लेता है। हम दुष्यन्त और शकुन्तला के भिन्न भिन्न भावों के उत्थान-पतन को बिलकुल स्पष्ट देख लेते हैं। हम उनके अन्तस्तल तक को देख लेते हैं और वे हमसे इतने परिचित हो जाते हैं कि हम फिर उन्हें कभी नहीं भूल सकते। उनकी स्मृति अक्षय हो जाती है। परन्तु जो कवि उनके लिए मनुष्यों के हृदय में यह अक्षय स्मृति-मन्दिर बना जाता है वह स्वयं सर्वथा अज्ञात बना रहता है। हिन्दू-समाज में सीता और राम की अक्षय प्रतिष्ठा करनेवाले वाल्मीकि की जीवन-कथा दो एक किंवदन्तियों में विद्यमान है। किसी ने कवि की प्रशंसा में यह यथार्थ ही लिखा है कि कवि अपने जीवन-सागर को मन्थन कर जो अमृत निकालता है उसे तो वह संसार को दे डालता है और विष वह स्वयं पी जाता है।

कवि अपने विषय के निरूपण में ही सदैव व्यस्त रहता है। उसकी कृति देखने से यही प्रतीत होता है कि उसका सम्बन्ध इहलोक से कम और कल्पना-लोक से अधिक है। उसका जीवन रहस्यमय प्रकट होता है। यही कारण है कि कभी कभी हम लोगों को यह भी कौतूहल होता है कि हम उसे इहलोक में भी देखें। कवि भी कभी कभी अपने विषय में कुछ लिख जाता है। ऐसी अवस्था में वह जो कुछ लिखता है वह उसके अन्तः-करण का प्रतिबिम्ब होता है। उस समय वह कवि नहीं रहता, मनुष्य हो जाता है। भावों के वशीभूत कौन नहीं होता? कवि भी तो मनुष्य है। दुख पड़ने पर वह ईश्वर को स्मरण करता है। अन्याय से पीड़ित होने पर वह क्रोध के आवेश में अपने हृदय के भाव को छिपा नहीं सकता। हर्षातिरेक में उसके हृदय से आनन्दोद्गार निकल पड़ते हैं। अवसर मिलने पर वह अपने विरोधियों पर व्यङ्ग्य-बाण छोड़ने में नहीं चूकता। अन्याय होने से वह उग्र हो जाता है। लोगों की अनुचित अवहेलना और उपेक्षा सहकर वह उनका तिरस्कार करता है। कभी वह अहंमन्य श्रीमानों की निन्दा करता है और कभी वह अपने सुहृज्जनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है। कभी वह निराश हो जाता है और कभी वह अपनी अन्तर्निहित शक्ति का अनुभव कर उसकी परीक्षा के लिए संसार को आह्वान करता है। ऐसे ही समय वह गर्वोक्तियाँ कहता है। सभी देशों के कवियों ने अपनी कविताओं में ऐसे मनोभाव प्रकट किये हैं। हिन्दी में भी कितने ही कवियों ने अपने काव्यों में अपना आत्म-परिचय दिया है। अधिकांश कवियों ने अपने आत्म-परिचय में अपना खूब यशोगान किया है। ऐसे कवियों की उक्तियों से उनका मिथ्याभिमान प्रकट होता है। ऐसे ही कवि जब अपने विरोधियों पर आक्षेप करते हैं तब वे मर्यादा तक का उल्लङ्घन कर डालते हैं। कवियों को न आत्म-प्रशंसा शोभा देती है और न कालुष्यपूर्ण उद्गार। परन्तु सभी कवि ऐसे नहीं। कुछ कवियों की उक्तियाँ ऐसी सरस और मर्मस्पर्शी हैं कि उन्हें भूल जाना असम्भव है। उन्हें पढ़कर हम कवि के अन्तर्भावना से बिलकुल अवगत हो जाते हैं और उससे उस कवि पर हमारी श्रद्धा बढ़ जाती है।

चन्द हिन्दी के आदि-कवि माने जाते हैं। विद्वानों की राय है कि उनका जन्म-काल सन् ११२८ है। उनके विषय में यह भी कहा जाता है कि वे प्रायः ६५ वर्ष तक जीवित रहे। उनका जीवन-काल दिल्लीश्वर महाराज पृथ्वीराज की राज-सभा में व्यतीत हुआ। कौन कह सकता है कि इस दीर्घकाल में उनके विरुद्ध कितने षड्यन्त्र न रचे गये होंगे। ये राज-कवि थे और महाराज पृथ्वीराज के प्रेमपात्र थे। राजाओं के कृपापात्रों पर विद्वेषियों की सदैव कुदृष्टि रहती है। यह सम्भव नहीं कि चन्द कवि का विरोधी कोई भी न रहा हो। ऐसे ही विरोधियों के सम्बन्ध में चन्द कवि ने लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस-काव्य रचना रचौं, खल जन सुनि न हसन्त।
जैसे सिन्धुर देखि मग, स्वान सुभाव भुसन्त॥

इससे प्रकट होता है कि चन्द को अपने निन्दकों की परवा नहीं थी। उन्हें अपनी कवित्व-शक्ति पर पूरा विश्वास था। परन्तु चन्द कविता की महत्ता को खूब समझते थे। वे जानते थे कि कवि का पद बड़ा ऊँचा है। उन्होंने अपनी कविता के सम्बन्ध में लिखा है—

कवी कित्ति कित्ती उकत्ती सुदिख्खी।
तिनैं की उचिष्टी कवी चन्द भख्खी॥

चन्द ने अपनी कविता को अपने पूर्ववर्ती कवियों का उच्छिष्ट कहा है। उसका कारण यह है कि कविता के सम्बन्ध में उनकी धारणा बड़ी ऊँची थी—

सबद ब्रह्म इह सत्ति। अपर पावन कहि निर्मल॥
जिहित सबद नहिँ रूप। रेख आकार वन्न नहिँ।
अकल अगाध अपार। पार पावन त्रयपुर महिँ॥
तिहि सबद ब्रह्म रचना करौं। गुरु प्रसाद सरसैं प्रसन॥
जद्यपि सुउकति चूकौ जुगति। तौ कमल बदनि कवि तह हँसन॥

चन्द की इस उक्ति का समर्थन कौन नहीं करेगा।

हिन्दी के आदिकाल में जितने सन्तों ने अपने उपदेशों को पद्य-बद्ध किया है उनमें कबीर सबसे प्रधान हैं। उनका जन्म उस काल में हुआ था जब ब्राह्मण्य-धर्म के विरुद्ध भारत में आन्दोलन हो रहा था। हिन्दू-समाज में धर्म की जो कृत्रिम मर्यादा बना दी गई थी उसके कारण समाज बड़ा सङ्कुचित हो गया था। धर्म केवल स्मृति-शास्त्र का अनुशासन रह गया था और सदाचार आडम्बर। कबीर नीच कुलोत्पन्न थे। अतएव उन्हें कोई भी ब्राह्मण-धर्म का उपदेष्टा नहीं स्वीकार करता था। कबीर तत्कालीन प्रचलित भाषा में धर्मोपदेश किया करते थे और उस समय धर्म के सभी अनुशासन संस्कृत-भाषा में बद्ध थे। कबीर ने ब्राह्मणों के इस धर्माधिकार पर और संस्कृत के एकाधिपत्य पर सदैव आक्षेप किया है—

मेरा तेरा मनुवा कैसे एक होय रे।
मैं कहता हूँ आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी,
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राखा उरझोय रे।

दूसरी जगह उन्होंने कहा है—

संस्कृतहिँ पण्डित कहै, बहुत करै अभिमान।
भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ़ अजान॥
कबीर बाम्हन बूड़िया, जनेऊ केरे जोरि।
लख चौरासी माँगि लई, सतगुरु सेती तोरि॥
कलि का बाम्हन मसखरा, ताहि न दीजै दान।
कुटुम्ब सहित नरकै चला, साथ लिया जजमान॥
पण्डित और मसालची, दोनों सूझै नाहिँ।
औरन को करें चाँदना, आप अँधेरे माँहिँ॥

विरोधियों ने कबीर के नीच कुल पर अवश्य आक्षेप किया होगा। परन्तु कबीर ने बड़े गर्व से अपने कुल का उल्लेख किया है—

तू बाम्हन मैं कासी क जुलहा, बूझौ मोर गियाना।

एक दूसरी जगह उन्होंने कहा है—

कासी का मैं बासी बाम्हन, नाम मेरा परबीना।
एक बार हरिनाम बिसारा, पकर जुलाहा कीना।

कबीर सन्त थे। उनका अन्तःकरण पवित्र था। पवित्रात्मा में ही ज्ञान की ज्योति स्वयं झलक जाती है। यह ज्ञान साधना का फल है, विद्या का नहीं। अतएव कबीर ने कहा है—

मसि कागज छूवौ नहिं, कलम गहौ नहिँ हाथ।
चारऊ जुग का महातम, कबिरा मुखहिँ जनाई बात।

सूरदास के विषय में विद्वानों की यह राय है कि उनका जन्म लगभग सन् १४८४ में हुआ और सन् १५६४ में उनका देहावसान हुआ। उनके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उनकी दृष्टि-शक्ति नष्ट हो गई थी। सूरदास ने अपनी दृष्टि-शक्ति नष्ट हो जाने पर कहा है—

रहो सूरजचन्द दृग ते हीन भर भर शोक॥
परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातयें दिन आइ यदुपति कियो आप उधार॥
दियो चख दे कही शिशु सुनु माँग वर जो चाइ।
हों कहों प्रभु भगत चाहत शत्रुनाश सुभाइ॥
दूसरो ना रूप देखों देखि राधा श्याम।
सुनत करुणासिन्धु भाषी एवमस्तु सुधाम॥

और तभी से उनकी समस्त इन्द्रियाँ हरि की ही ओर आकृष्ट हुईं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोइ रसना जो हरिगुण गावै।
नैन की छबि यहै चतुरता ज्यों मकरन्द मुकुन्दहि ध्यावै॥
निर्मल चित्त तौ सोई साँचो कृष्ण बिना जिय और न भावै।
श्रवणनि की जु यहै अधिकाई सुनि रसकथा सुधारस प्यावै॥
कर तेई जो श्यामहिँ सेवैं चरणनि चलि वृन्दावन जावै।
सूरदास जैये बलि ताके जो हरि जू से प्रीति बढ़ावै॥

सूरदास के गुरु श्रीवल्लभाचार्य थे। अपने गुरु पर उनकी अपार भक्ति थी। अपने गुरु के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्रीबल्लभ नख चन्द्र छटा बिन, सब जग माँझ अँधेरो॥
साधन और नहीं या कलि में, जासों होत निबेरो।
सूर कहा कहि दुबिधि आँधरो, बिना मोल को चेरो॥

कहा जाता है कि अन्त में किसी ने उनसे नेत्र की वृत्ति के सम्बन्ध में पूछा है। उसके उत्तर में उन्होंने कहा—

खंजन नैन रूप-रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते॥
चलि चलि जात निकट स्रवनन, उलटि उलटि ताटङ्क फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके, नातरु अब उड़ि जाते॥

दादूजी का जन्म सन् १५४४ में हुआ था और सन् १६०४ में वे परमगति को प्राप्त हुए। एक ही पद में उन्होंने अपना मत प्रकट कर दिया है—

भाई रे ऐसा पन्थ हमारा।
द्वै पथ रहित पन्थ गहि पूरा अवरण एक अधारा।
वाद विवाद काहू सौं नाहीं मांहिं जगत थैं न्यारा।
समदृष्टी सूँ भाई सहज में आपहि आप विचारा।
मैं, तैं, मेरी यहु मत नाहीं निरबैरी निरविकारा।
पूरण सबै देखि आपा पर निरालम्ब निरधारा।
काहू के संगी मोह न ममिता संगी सिरजनहारा।
मन ही मन सूँ समझि सयाना आनँद एक अपारा॥
काम कलपना कहे न कीजै पूरण ब्रह्म पियारा॥
इहि पन्थ पहुँचि पार गहि दादू सेा तत सहजि सँभारा॥

गोस्वामी तुलसीदासजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनका रामचरितमानस हिन्दी-साहित्य का सर्वस्व है। उनका जन्मकाल सन् १५३३ बताया जाता है और उनके मृत्युकाल के विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ शरीर॥

अपने जन्म के विषय में उन्होंने कहा है—

मातु-पिता जग जाय तज्यो
विधि हू न लिख्यो कछु भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर
कूकर टूकनि लागि ललाई॥
राम सुभाव सुन्यो तुलसी
प्रभु सौं कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को
रघुनाथ सेा साहिब खोरि न लाई॥

उपर्युक्त पद्य में गोस्वामीजी ने अपनी दीनावस्था के साथ अपनी भक्ति का ऐसा पवित्र चित्र अङ्कित किया है कि उन दोनों में कोई भेद ही नहीं जान पड़ता है। ऐसा जान पड़ता है कि भक्ति के लिए दैन्यावस्था ही आवश्यक है—

जायेा कुल मंगन बधावनो बजायेा सुनि
भयेा परिताप पाप जननी जनक को।
बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन
जानत हौं चारि फल चारिहि चनक को॥

अपनी कविता के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट कहा है—

भाषा भनित मोर मति थोरी।
हँसबै जोग हँसै नहिं खोरी॥

जान पड़ता है कि तुलसीदासजी भी निन्दकों की कटूक्तियों से नहीं बचे। तभी तो उन्होंने खल-वन्दना में उनके स्वभाव का चित्र अङ्कित कर दिया है। परन्तु गोस्वामीजी यह जानते थे कि उनकी कविता का कभी निरादर नहीं हो सकता। उन्हें विश्वास था कि सभी लोग उनकी कविता का आदर करेंगे, नहीं तो वे यह न लिखते—

जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं।
सेा श्रम बादि बाल कवि करहीं॥

केशवदासजी वीरबल के कृपापात्र थे। केशवदासजी के समय से हिन्दी-साहित्य में कविता का स्रोत बदल गया। उसमें भावसौष्ठव की अपेक्षा कला-सौष्ठव पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। केशवदासजी इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवर्त्तक थे। वे कविता के आचार्य थे और एक प्रकार से वे हिन्दी के प्रथम आचार्य कहे जा सकते हैं। मुग़ल-काल में कवियों का यथेष्ट आदर होने लगा। बड़े बड़े श्रीमानों ने कवियों को अपनी सभा में सादर स्थान दिया। इसका फल यह हुआ कि कवि जनता के कवि न होकर सभा के कवि हो गये। अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में सदैव ऐसी अतिशयोक्ति से काम लिया है कि उनकी प्रशंसा चाटुकारिता हो जाती है। ऐसी अतिशयोक्तियों से आश्रयदाता श्रीमानों को भले ही आत्म-तुष्टि हो, परन्तु उनसे इतना अवश्य प्रकट हो जाता है कि कवि अपने उच्च आदर्श से च्युत हो गये हैं। केशवदास ने वीर-बल की प्रशंसा में कहा है—

केशवदास के भाल लिख्यो बिधि,
रंक को अंक बनाय सँवारयो।
छोड़े छुट्यो नहिं धोए धुयो,
बहु तीरथ के जल जाय पखारयो॥
ह्वै गयो रंक ते राउ तहीं,
जब वीर बली बलवीर निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना,
चतुरानन बाय रह्यो मुख चारयो॥

उपर्युक्त पद्य से केशवदासजी की कवित्व-शक्ति अवश्य विदित होती है। परन्तु उनके परवर्ती कवियों ने उन्हीं का अनुकरण कर अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में विलक्षणता लाने के लिए विचित्र कल्पनायें की हैं, जिनसे कृतज्ञता का भाव नहीं प्रकट होता।

केशवदासजी के समय में हिन्दी के कवियों के प्रति विद्वानों का विशेष आदर-भाव नहीं था। स्वयं केशवदासजी को अपनी रचना के विषय में लज्जा थी। नहीं तो केशवदासजी यह न कहते—

केशव तुङ्गारन्य में नदी बेतवै तीर।
नगर ओड़छो बहु बसै पंडित मंडित भीर॥
तहाँ प्रकाश सो निवासु मिश्र-कृष्णदत्त को
अनेक पंडिताग्रणी सुदास विष्णु भक्त को।
सुकासिनाथ तासु पुत्र विज्ञ काशिनाथ को
सनाढ्य कुम्भवार अंस वंस वेदव्यास को।
तिनके केशवदास सुत, भाषा कवि मति-मन्द।

एक दूसरी जगह भी उन्होंने यही बात लिखी है—

उपज्यो तेहि कुल मंदमति सठ कबि केशवदास।
रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकास॥
भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति तेहि कुल केशवदास॥

हिन्दी में कितने ही मुसलमान कवियों ने रचनायें की हैं। उनमें रसखान की कविता विशेष लोकप्रिय है। प्रेमवाटिका नामक ग्रन्थ में उन्होंने अपने विषय में लिखा है—

देखि गदर हित साहबी,
दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बंस की,
ठसक छोड़ि रसखान॥

कृष्ण के प्रति उनकी अगाध भक्ति थी। उसी भक्ति के आवेश में आकर उन्होंने वैष्णव-धर्म को स्वीकार कर लिया था। उन्होंने इस सम्बन्ध में लिखा है—

तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी-मान।
प्रेम देव की छबिहिं लखि, भये मियाँ रसखान॥

प्रेम की यह छबि देख लेने पर भला रसखान को क्यों न यह अभिलाषा होती—

मानुष हौं तो वही रसखानि
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तौ कहा बसु मेरो,
चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि को,
जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं
मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

बिहारीलालजी के विषय में इतनी ही प्रसिद्धि है कि वे महाराज जयसिंह के सभा-कवि थे। अपने विषय में उन्होंने सतसई के अन्त में लिखा है—

जनम लियो द्विजराज-कुल, सुबस बसे ब्रज आय।
मेरे हरौ कलेस सब, केसव केसवराय॥

बिहारीलालजी का जीवन-काल राजसभा में व्यतीत हुआ था। उन्हें राज-सभा का पूरा अनुभव था। उन्होंने अपने अनुभव को अपनी कविताओं में प्रकट किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि उन्होंने श्रीमानों के वैभव और उनकी उदारता आदि गुणों की प्रशंसा की है तो उन्होंने उनकी विलास-प्रियता और दाम्भिकता आदि दुर्गुणों की निन्दा भी की है। उनके विषय में यह एक प्रसिद्ध कथा है कि जब राजा जयसिंह विलास में पड़कर कर्तव्य से पराङ्मुख हो गये थे तब उन्होंने निम्नलिखित पद्य से उनको चेतावनी दी थी—

नहिं पराग नहिं मधुर रस, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बिधो, आगे कौन हवाल॥

यह चेतावनी तो बड़ी कोमल है, परन्तु उन्होंने श्रीमानों की मदान्धता की सदैव तीव्र निन्दा की है।

कनक कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है, यह पाये बौराय॥

कितने ही श्रीमान् दुर्गुणों से युक्त होने पर भी यश के इच्छुक होते हैं। उनके सम्बन्ध में कवि का यह दोहा बिलकुल उपयुक्त है—

बड़े न हूजै गुननि बिनु, बिरद बड़ाई पाय।
कनक धतूरे सों कहत, गहनों गढ़ो न जाय।

राज-सभा में सभी तरह के लोग रहते हैं। सम्भव है कि कुछ लोग बिहारी के निन्दक रहे हों, उन्होंने उनकी कविता की उपेक्षा की हो। ऐसे लोगों के विषय में उन्होंने बड़ी अच्छी उक्तियाँ कही हैं—

सीतलता रस बास की, घटै न महिमा मूर।
पीनसवारे जो तजैं, सोरा जानि कपूर॥
कर लै सूँघि सराहि कै, रहे सबै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब के, गँवई गाहक कौन॥
चले जाहु ह्याँ को करत, हाथिन को व्योपार।
नहिं या पुर में हैं बसत, धोबी और कुम्हार॥

जान पड़ता है कि उन्हें अपने जीवन-काल के अन्त में भव-बाधा से ग्रस्त होना पड़ा। उनकी निम्न-लिखित उक्तियों से यही बात प्रकट होती है।

मेरी भवबाधा हरौ, राधानागरि सोय।
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होय॥
को छूट्यो इहि जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यो चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात॥

फिर भी उन्हें आशा थी—

इहि आशा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के फूल।
ह्वै हैं बहुरि बसंत रितु, इन डारनि वै फूल।

कहा नहीं जा सकता कि उनके जीवन में फिर वसन्त आया या नहीं। परन्तु उनके पद्यों से यह प्रकट होता है कि उन्हें संसार और सांसारिक वैभव से विरक्ति हो गई थी—

यह बिरिया नहिं और की, तू करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढ़ाय जिन, कीन्हें पार पयोधि॥
कोऊ कोरिक संग्रहो, कोऊ लाख हजार।
मो सम्पति यदुपति सदा, विपति विदारनहार॥

भूषण और मतिराम दोनों भाई थे। दोनों ही सत्कवि थे और दोनों ने राजाओं से कविता-द्वारा मान और वैभव पाया और दोनों ने अपने आश्रय दाताओं की मनस्तुष्टि के लिए रचनायें कीं। भूषण जातीय कवि कहे जाते हैं। परन्तु शिवाजी, साहू और छत्रसाल की प्रशंसा और औरङ्गज़ेब की निन्दा करने से कोई जातीय कवि नहीं हो सकता। इसमें सन्देह नहीं कि स्वयं शिवाजी और छत्रसाल अपने अपने देश के उद्धारक थे। उनकी कीर्ति का वर्णन करना सर्वथा उचित है। परन्तु भूषण की रचना में वे भाव नहीं हैं जिससे जाति जाग्रत हो सकती है। वे ज़ाति के प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी कवित्व-शक्ति असाधारण थी, परन्तु यह भी निस्सन्देह है कि उस शक्ति का उच्चतम विकास उनकी कविताओं में नहीं हुआ। क्या निम्नलिखित पद्यों से किसी में देश-भक्ति का सञ्चार हो सकता है या जातीयता के भाव जाग्रत हो सकते हैं?

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयंद दिग्गजन हिए साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताप होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को।
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हे,
'भूषन' भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को?

× × × × ×

बलख बुखारे मुलतान लौं हहर पारै,
कपि-लौं पुकारै कोऊ धरत न सार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूम रूँदि डारै खुरासान खूंदि मारै खाक
खादर-लौं झारै ऐसी साहु की बहार है।
कक्कर लौं बक्खर लौं मक्कर लौं चले जात,
टक्कर लेवैया कोऊ वार है न पार है।
भूषन सिरोंज लौं परावने परत फेरि
दिल्ली पर परति परिंदन की छार है।
चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठे बार बार
दिल्ली दहसति चित चाहै खरकति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपूर-पति,
फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है।
थर-थर काँपत कुतुबसाहि गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पातसाहन की छाती दरकति है।

मतिराम भूषण के छोटे भाई कहे गये हैं। वे बूँदी के महाराज भाऊसिंह के आश्रय में रहे। उन्हीं के मनोविनोद के लिए और उन्हीं की प्रशंसा से पूर्ण उन्होंने ललित-ललाम नामक ग्रन्थ की रचना की। एक दूसरे श्रीमान् महाराज शम्भुनाथ का आश्रय ग्रहण करने पर उन्होंने उन्हीं के नाम से एक ग्रन्थ बनाया। कहना नहीं होगा कि ऐसे ग्रन्थों में कवि अपने हृदय के सच्चे भावों को नहीं प्रकट करता। मतिराम ने भाऊसिंह की जो प्रशंसा निम्न-लिखित पद्य में की है वह क्या उनके हृदय का सच्चा भाव था!

सूबनि उमेड़ि दिली-दल दलिबे को चमू
सुभट समूहनि सिवा की उमहति है।
कहै मतिराम ताहि रोकिबे को संगर मैं
काहू के न हिम्मति हिए मैं उलहति है।
सत्रुसालनंद के प्रताप की लपट सब
गरवी गनीम बरगीन को दहति है।
पति पातसाह की इजति उमरावन की
राखी रैया राव भावसिंह की रहति है।

मतिराम की तरह देवजी भी सभा-कवि थे। इन्होंने भी अपने आश्रयदाता की प्रशंसा की है और इनकी भी रचना शृङ्गार-रस से पूर्ण है। परन्तु हमारी समझ में देवजी ने अपने अन्तःकरण का सच्चा भाव प्रकट किया है। निम्नलिखित पद्य में उन्होंने अपने एक आश्रयदाता की प्रशंसा की है। उसमें भोगीलाल की गुणज्ञता की प्रशंसा है और जिसने देव के समान कवियों का यथोचित सम्मान किया उसे गुणज्ञ होना ही चाहिए। अतएव देवजी ने जो कुछ लिखा है वह उनकी कृतज्ञता का द्योतक है, अनुचित प्रशंसा नहीं है—

भूलि गयो भोज बलि विक्रम बिसरि गये
जाके आगे और तन दौरत न दीये हैं।
राजा राइ राने उमराउ उनमाने उन
माने निज गुन के गरब गिरबीदे हैं।
सुबस बजाज जाके सौदागर-सुकवि
चलेई आवैं दसहूँ दिसान के उनीदे हैं।
भोगीलाल भूप लाख पाथर लिवैया जिन
लाखन खरचि रचि आखर खरीदे हैं।

देवजी की शृङ्गार-रस में विशेषता है। उन्होंने नायक-नायिका के रूप में श्रीकृष्ण और राधाजी का विशेष लक्ष्य रक्खा है—

सत्य रसायन कविन को, श्री राधा हरि सेव॥
माया देवी नायिका, नायक पूरुष आप॥
सबै दम्पतिन मैं प्रकट, देव करैं तेहि जाप॥

इसी से वे यह कह सके।

औचक अगाध सिंधु स्याही को उमड़ आयो,
तामें तीनो लोक बूड़ि गये एक संग में।
कारे कारे आखर लिखे जु कारे कागद,
सुन्यारे करि बाँचै कौन जाँचे चित्त भंग में॥
आँखिन में तिमिर-अमावस की रैनि जिम,
जम्बू नद बुन्द जमुना-जल-तरंग में
यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई,
श्याम रंग ह्वै करि समानो स्याम रंग में॥

कविता के सम्बन्ध में देवजी की बड़ी ऊँची धारणा थी।

जाके न काम न क्रोध विरोध न लोभ
छुवै नहिं छोभ को छाहौ।
मोह न जाहि रहै जग बाहिर
मोल जवाहिरता अति चाहौ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बानी पुनीत ज्यों देव धुनी रस
आरद सारद के गुन गाहौ।
सील ससी सविता छविता
कवि ताहि रहै कवि ताहि सराहौ॥

पद्माकर मध्ययुग के अन्तिम कवि कहे जा सकते हैं। उन्होंने भी कितने ही राजाओं से यश और धन दोनों प्राप्त किये और उसके बदले उनकी प्रशंसा भी खूब की। महाराज रघुनाथ राव के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है।

संपत सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि
तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
कहै पद्माकर सु हेम हय हाथिन के
हल के हजारन को ज़ितर विचारै ना।
गंज गज बकस महीप रघुनाथराव
यही गज धोके कहूँ काहू देय डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोय रही
गिरि ते गरे ते निज गोद ते उतारै ना।

दौलत राव सिंधिया की प्रशंसा में यह लिखा है—

मीनगढ़ बम्बई सुमंद मंदराज वंग
बन्दर को बंद कर बंदर बसावैगो।
कहै पद्माकर कटाके काश्मीर हू को
पिंजर सौ घेर कै कलिंजर छुड़ावैगो।
बाँका नृप दौलत अलीजा महाराज कवूँ
साजि दल पकरि फिरंगिन को दाबैगो।
दिल्ली दर पट्ट पटना हूँ को झपट्ट कर
कबहूँ कलत्ता कलकत्ता को उड़ावैगो॥

परन्तु निम्नलिखित पद्य में उन्होंने जैसा अपना आत्म-परिचय दिया है, वैसा कदाचित् किसी भी कवि ने नहीं दिया है—

भट्ट तिलंगाने को बुंदेलखंड वासी कवि
सुजस प्रकासी पदमाकर सुनामा हौं।
जोरत कवित्त छन्द छप्पय अनेक भाँति
संस्कृत प्राकृत पढ़े इ गुन ग्रामा हौं।
हय रथ पालकी गयंद गृह ग्राम चारु
आखर लगाये लेत लाखन की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हो जगतसिंह
तेरे जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हौं॥

उपर्युक्त पद्य में पद्माकर ने अपनी विद्वत्ता और वैभव और अपने आश्रयदाता की उदारता के साथ ही अपनी दीनता को बड़े अच्छे ढङ्ग से व्यक्त किया है। कृतज्ञता-द्योतक ऐसा पद्य कदाचित् हिन्दी में दूसरा नहीं है।

जिस कवि ने राज-वैभव का पूरी तरह अनुभव किया वह किस भाव की प्रेरणा से यह लिख गया—और मन और तन और बन ह्वै गयो। क्या यह सूचित नहीं करता कि उन्हें सांसारिक वैभव से कुछ विरक्ति हो गई थी। सच तो यह है कि पद्माकर के अन्तःकरण का आभास हमें उन्हीं पद्यों में मिलता है जहाँ उन्होंने अपने आश्रय-दाता को छोड़कर अपने जन्मदाता जगदीश्वर का स्मरण किया है—

राखत हैं राखेंगे रखैया रघुनाथ जन,
आपने की बात सदा राखते ही आये हैं।

अब हम आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी का आत्म-परिचय लिखकर लेख समाप्त करते हैं। हरिश्चन्द्रजी ने अपने हृदय के भावों को बड़ी स्वतन्त्रता से प्रकट किया है। अपने विषय में उन्होंने लिखा है—

जो गुन नृप हरिचन्द में जग हित सुनियत कान
सो सब कवि हरिचन्द में लखहु प्रतच्छ सुजान॥

एक दूसरी जगह अपने हृदय का चित्र सा अङ्कित कर दिया है—

सेवक गुनी जन के चाकर चतुर के हैं
कविन के मीत चित हित गुन गानी के
सीधेन सौं सीधे महा बाँके हम बाँकेन सौं
हरीचन्द नगद दमाद अभिमानी के
चाहिबे की चाह काहू की न परवाह नेही
नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के
सरबस रसिक के सुदास दास प्रेमिन के
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के

ऐसे ही सत्कवियों के सम्बन्ध में किसी ने कहा है—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्॥

हृषीकेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाया।

कौन कौन तुम परिहत-वसना,
म्लान-मना, भू-पतिता-सी,
बात-हता-बिच्छिन्न-लता-सी,
रति-श्रान्ता-ब्रज-वनिता-सी;
नियति-वञ्चिता, आश्रय-रहिता,
जर्जरिता, पद-दलिता-सी,
धूलि-धूसरित-मुक्त-कुन्तला,
किसके चरणों की दासी ?—

कहो कौन हो दमयन्ती-सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया है
क्या नल-सा निष्ठुर कोई !
पीले-पत्रों की शय्या पर
तुम विरक्ति-सी, मूर्छा-सी,
विजन-विपिन में कौन पड़ी हो
सजनि ! विरह-दुख-विधुरा-सी ? १६

गूढ़-कल्पना-सी कवियों की,
अज्ञाता के विस्मय-सी,
ऋषियों के गम्भीर-हृदय-सी,
बच्चों के तुतले-भय-सी;
भू-पलकों पर स्वप्न-जाल-सी,
स्थल-सी पर चञ्चल-जल-सी,
मौन-अश्रुओं के अञ्चल-सी,
गहन-गर्त में समतल-सी;
तुम पथ-श्रान्ता द्रुपद-सुता-सी
कौन छिपी हो अलि ! अज्ञात ?
हिम-जल मिस दृग-जल से गिनती
चौदह दुखद-वर्ष दिन रात !—२८

तरुवर की छायानुवाद-सी,
उपमा-सी, भावुकता-सी,
अविदित भावाकुल-भाषा-सी,
कटी छँटी नव-कविता-सी,
पछतावे की परछाँई-सी
तुम भू पर छाई हो कौन ?

दुर्बलता-सी, अँगड़ाई-सी,
अपराधी-सी भय से मौन !—३६

मदिरा की मादकता-सी औ,
वृद्धावस्था की स्मृति-सी,
दर्शन की अति जटिल-ग्रन्थि-सी,
शैशव की निद्रित-स्मिति-सी;
मुग्धा की मृदु-पुलकावलि-सी,
सजनि ! नियति-सी अन्तर्धान
कहो कौन तुम तरु के नीचे
भावी-सी हो छिपी अजान ?—४४

चिर-अतीत की विस्मृत-छवि-सी,
नीरवता की-सी झङ्कार,
आँख मिचौनी-सी असीम की,
निर्जनता की-सी उद्गार;
परियों की निर्जल-सरसी-सी,
बाल-वन-श्री जहाँ विहार
करती छिप छिप छाया-जल में,
अनिल-वीचियों में सुकुमार;
तुम त्रिभुवन के नयन-चित्र-सी
यहाँ कहाँ से उतरी प्रात ?
जगती की नेपथ्य-भूमि-सी,
विश्व-विदूषक-सी अज्ञात !—५६

किस रहस्यमय-अभिनय की तुम
सजनि ! यवनिका हो सुकुमार,
इस अभेद्य-पट के भीतर है
किस विचित्रता का संसार ?
निर्जनता के मानस-पट पर
बार बार भर ठण्डी-साँस,
क्या तुम छिप कर क्रूर-काल का
लिखती हो अकरुण-इतिहास ? ६४

सखि ! भिखारिणी-सी तुम पथ पर
फैलाकर अपना अञ्चल
सूखे-पातों ही को पा क्या
प्रमुदित रहती हो प्रतिपल ?
पत्रों के अस्फुट-अधरों से
सुन सुन कर सुख दुख के गान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुला चुकी हो क्या तुम अपनी
इच्छाएं सब अल्प, महान ? ७२
निर्मम झटिका के झोंकों से
बार बार कम्पित होकर,
निज जीवन के मलिन-पृष्ठ पर
नीरव-शब्दों में निर्भर
किस अतीत का करुण-चित्र तुम
खींच रही हो कोमलतर,
भग्न-भावना, विजन-वेदना,
विफल-लालसाओं से भर ? ८०
ऐ अशब्द निर्जन की भारति !
कम्पित-अधरों से अनजान
मर्म-मधुर किस सुर में गाती
तुम अरण्य के चिर-आख्यान ?
ऐ अस्पृश्य, अदृश्य-अप्सरसि !
यह छाया-तन, छाया-लोक
मुझको भी देदो मायाविनि !
उर की आँखों का आलोक ! ८८
ज्योतिर्मय शत-नयन खोल नित,
पुलकित-पलक पसार अपार
श्रान्त-यात्रियों का स्वागत क्या
करती हो तुम बारम्बार ?
थके चरण-चिह्नों को अपनी
नीरव-उत्सुकता से भर
दिखा रही हो अथवा जग को
पर-सेवा का मार्ग-अमर ? ९६
श्रमित, तपित अवलोक पथिक को
रहती क्या तुम दीन, मलीन,
ऐ विटपी की व्याकुल-प्रेयसि !
विश्व-वेदना में तल्लीन !
कभी लोभ-सी लम्बी हो, फिर
कभी तृप्ति-सी होकर पीन,
क्या संसृति की अचिर-भूति तुम
सजनि ! नापती हो स्थिति-हीन ? १०४
दिनकर-कुल में दिव्य-जन्म पा,
बढ़ कर नित तरुवर के सङ्ग,
सुरझे-पत्रों की साड़ी-से
ढँक कर अपने कोमल-अङ्ग,
सदुपदेश-सुमनों से तरु के
गूँथ हृदय का सुरभित-हार,
पर-सेवा-रत रहती हो तुम
हरती हो पथ-श्रान्ति अपार। ११२
हे सखि ! इस पावन-अञ्चल-से
मुझको भी निज मुख ढँक कर
अपनी विस्मृत-सुखद-गोद में
सोने दो सुख से क्षण भर;
सजनि ! शिथिलता-सी अँगड़ाकर
होने दो अपने में लीन
पर-पीड़ा से पीड़ित होना
मुझे सिखा दो, कर मद-हीन। १२०
गाओ, गाओ, विहग-बालिके !
तरुवर से मृदु-मङ्गल-गान,
मैं छाया में बैठ, तुम्हारे
कोमल-स्वर में करलूँ स्नान;—
—हाँ, सखि ! आओ, बाँह खोल हम
लगकर गले, जुड़ा लें प्राण,
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अन्तर्धान !

श्रीसुमित्रानन्दन पन्त

भाषा-विज्ञान।

कहा जाता है कि आज-कल भारतवर्ष में ज्ञानानुशीलन के लिए पाँच ही विषयों की चर्चा होती है—साहित्य, इतिहास, दर्शन, गणित और विज्ञान। भाषा-विज्ञान की चर्चा बहुत कम होती है; यह साहित्य के अन्तर्गत गिना जाता है। किन्तु साहित्य और भाषा दोनों एक नहीं। भाषा-विज्ञान साहित्य के अन्तर्गत नहीं हो सकता। सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ श्रम-विभाग की आवश्यकता होती है। श्रम-विभाग के बिना किसी विषय की उन्नति नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

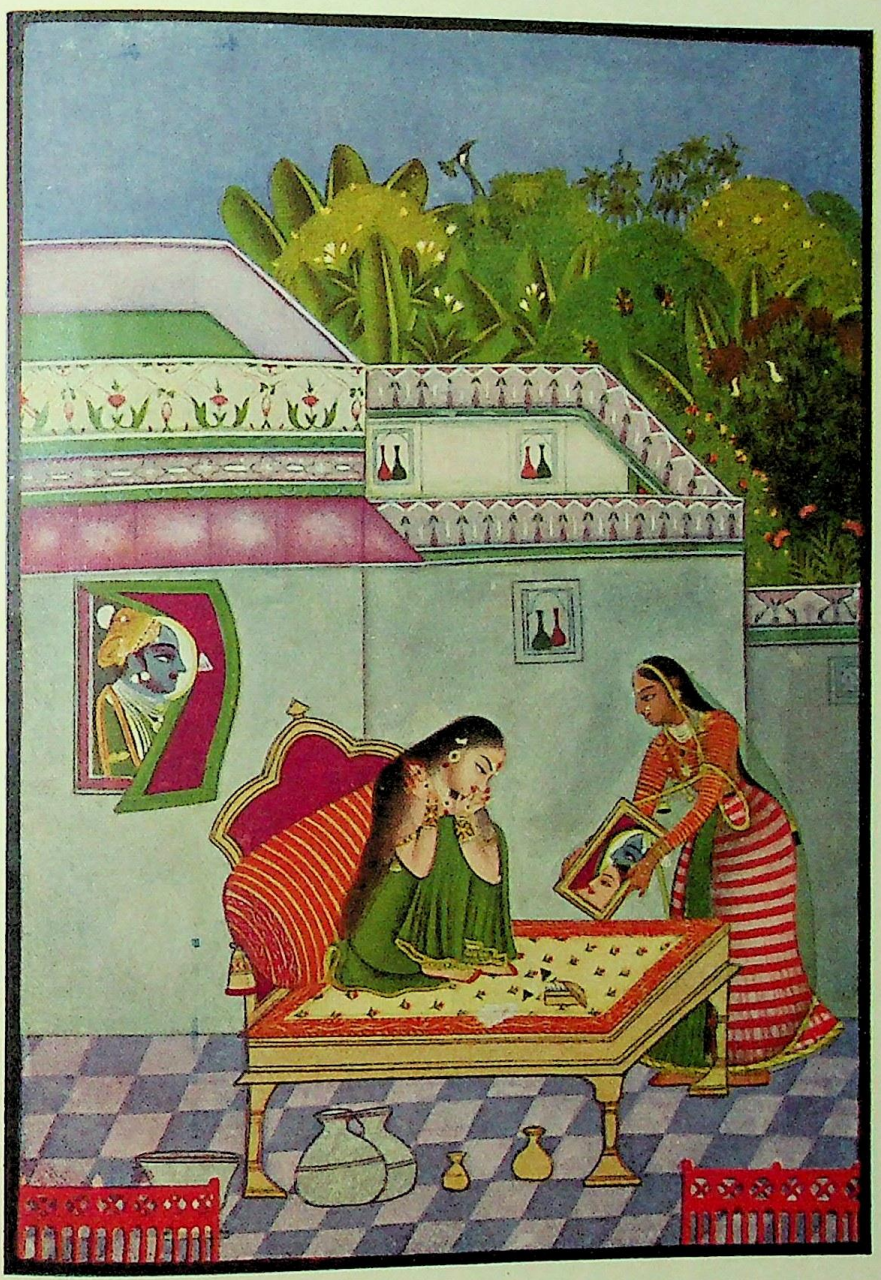

रहस्य-भेद ।

आलिकरस्थे मुकुरे स्वमुखं कान्तानुसंगतं वीक्ष्य ।
लज्जासंकुचितांगी राधा हरिहासहेतुरुल्लसति ॥

(श्रीमान् राजश्री ठाकुर साहब बदनोराधीश गोपालसिंहजी के संग्रह से
पण्डित रामचन्द्रजी के द्वारा प्राप्त)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती। समाज का हर एक मनुष्य हर एक कार्य्य में निपुण नहीं हो सकता। ज्ञानानुशीलन में भी कर्म्म-विभाग आवश्यक है। हमारे देश के शाकटायन, यास्क, मीमांसा-दर्शन, वेदान्त-दर्शन और प्रातिशाख्य के लिखने-वालों ने भाषा-विज्ञान की आलोचना की थी। पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि इत्यादि आचार्य्यों ने, यद्यपि वे नाना शास्त्रों में पारदर्शी थे, मुख्यतः भाषा-शास्त्र की ही आलोचना की थी। किन्तु परिताप का विषय है कि आज-कल इस विषय का सम्यक् अनुशीलन नहीं होता। कई एक वर्ष पहले से सर आशुतोष मुखोपाध्यायजी की चेष्टा से कलकत्ता-विश्वविद्यालय में इस विषय में शिक्षा देने के लिए एक पृथक् विभाग खोला गया है और उपयुक्त अध्यापक भी नियत किये गये हैं। ओरिएण्टल कानफ़रेन्स में भी, जिसकी बैठक हर साल भारतवर्ष के किसी न किसी शहर में हुआ करती है, इस विषय का पृथक् विभाग रक्खा गया है।

बहुतों की ऐसी धारणा है कि केवल शब्दों की भूल निकालना तथा ध्वनियों के परिवर्तनों के नियमों को जानना ही भाषा-विज्ञान का कार्य्य है। किन्तु इनके सिवा भाषा-विज्ञान के और भी बहुत से काम हैं। भाषा मनुष्य-जाति का विशेष अधिकार है। अतएव इसमें कुछ सन्देह नहीं कि मनुष्य-जाति के इतिहास के साथ भाषा के विकास के इतिहास का निकट सम्बन्ध है। इसलिए मनुष्य-जाति का इतिहास (Anthropology) न जानने से भाषा-विज्ञान की ठीक आलोचना नहीं हो सकती। प्रागैतिहासिक युग में मनुष्य-जाति का नाना स्थान में विस्तार किस प्रकार हुआ, इसके इतिहास का निर्णय तभी ठीक-ठीक हो सकता है जब हम भूतत्त्व (Geology) के मतों को भाषा की गवाही के द्वारा प्रमाणित कर सकें। नहीं तो बहुत से भ्रम रह जाते हैं। अतएव भाषा-विज्ञान की आलोचना के साथ नृ-विज्ञान की भी आलोचना होनी चाहिए, जिससे भाषा के बहुत से तत्त्व मिल सकते हैं। नाना जातियों के धर्म्मानुष्ठान तथा उनके पुराणों से भी भाषा के बहुत से रहस्य उद्घाटित हो सकते हैं। भाषाविज्ञान की नींव तो प्राचीन काल में भारतवर्ष में ही डाली गई थी, परन्तु इसकी परिपुष्टि इस नवीन युग में योरप में हुई है। जर्मनी ही इस विषय में अग्रणी है।

भारत के वैदिक युग के वैयाकरण शाकटायन ने दिखाया था कि जितने शब्द हैं, सब धातुओं से निकले हैं। गार्गीचार्य्य ने इस मत को स्वीकार नहीं किया, परन्तु यास्क ने इसका समर्थन किया और शब्दों को चार श्रेणियों में विभक्त किया—नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपातन। पाणिनि ने इस श्रेणी-विभाग को ग्रहण नहीं किया। उनके मत में शब्द तीन श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं—सुबन्त, तिङन्त तथा अव्यय। शब्द का धातु-मूलकत्व उन्होंने भी स्वीकार किया है, ऐसा मालूम होता है; क्योंकि शाकटायन के उणादि सूत्र उनके ग्रन्थ में पाये जाते हैं और उन्होंने कृत्तद्धितादि प्रकरणों में धातुओं से शब्दों को सिद्ध किया है। प्रातिशाख्य में ध्वनि-विचार तथा सन्धि प्रभृति का वैज्ञानिक विचार पाया जाता है। इसमें वर्णों का विश्लेषण, मात्रादि का विचार और उदात्तादि स्वरों की आलोचना ऐसी निपुणता से की गई है कि योरप का वैज्ञानिक ध्वनि-विचार (Phonetics) इससे हार जाता है। मीमांसा, न्याय तथा अलङ्कार शास्त्रों में शब्द-शक्ति का विचार अति निपुणता के साथ किया गया है। पतञ्जलि के महाभाष्य को व्याकरण न कह कर भाषा-शास्त्र ही कहना चाहिए। परन्तु इसमें एक-मात्र यह दोष पाया जाता है कि उन्होंने जहाँ छान्दस भाषा की रीति तथा उच्चारण का कोई विरोधी मत पाया, उसको त्याग दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके कृत्रिम व्याकरण को अमान्य करके बहुतेरी प्राकृत भाषायें बनीं।

यूनान-देश में भी प्राचीन-काल में भाषा की उत्पत्ति, शब्दों की व्युत्पत्ति और वर्णों तथा शब्दों के विभाग के विषय में प्लेटो के पहले अण्टिस्थिनिस, हीराक्लीटस, डेमोक्रीटस और पिथागोरस ने चिन्ता की थी। इनके पीछे प्लेटो हुए। उनके मत में चिन्ता ही भाषा है। वे कहते हैं कि आत्मा अपने साथ निःशब्द से जो बात-चीत करती है वह चिन्ता है और वही चिन्ता जब ओठों के भीतर से शब्दों के रूप में निकलती है तब वह भाषा अथवा Logos है और किसी विषय में मत देना ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलना है और वह मत ही वाक्य है। उन्होंने वर्णों का विभाग इस तरह किया है—स्वरवान् या नादवर्ण (voiced) और स्वरहीन या श्वास-वर्ण (Voiceless)। श्वास-वर्ण दो श्रेणियों में विभक्त हैं—ध्वनियुक्त, या अर्द्धव्यञ्जन (Hemiphons) और स्पर्शवर्ण (Aphthogga)। पीछे के युग में ग्रीस में ध्वनियों का श्रेणी-विभाग इस तरह हुआ था—(क) अकोष, (Psilla) (ख) घोषवत् (Mesa) और (ग) महाप्राण (Dasea)। प्लेटो का समय शब्दों के मूल निकालने की चेष्टा का आरम्भ युग-मात्र कहा जा सकता है। केवल ध्वनियों की समानता देख कर ही विभिन्न शब्द एकही मूल के माने जाते थे। उस समय के इस विषय के लेखों में बहुत कौतुक की बातें पाई जाती हैं। प्लेटो ने ही सबसे पहले शब्दों के श्रेणी-विभाग या (Parts of speech) के विषय में चिन्ता की थी। उद्देश और विधेय तथा कर्तृवाच्य और कर्म्मवाच्य की कल्पना उन्हीं ने की थी। अरिस्टाटल ने इस श्रेणी-विभाग को सम्पूर्ण कर शब्दों को आठ श्रेणियों में विभक्त किया था। उन्होंने कारकों की भी उपलब्धि की थी और (Case) शब्द अथवा (tense) लकार के भी अर्थ में प्रयोग किया था।

अलेक्ज़ैण्ड्रिया, यूनान तथा रोम के वैयाकरणों में नीचे लिखे हुए नाम उल्लेखयोग्य हैं—

(१) डाइओनिसियस थ्रैक्स (Dionysios thrax) पहले वैयाकरण हैं। इन्होंने खीष्ट-पूर्व्व दूसरे शतक में अरिस्टाटल के दिखाये हुए पथ का अनुसरण कर व्याकरण की रचना की थी।

(२) आपोलोनियस डिसकोलोस (Appolonius Dyskolos) ने शब्दविन्यास-प्रणाली (Syntax) की बहुत उन्नति की थी।

(३) लोरेण्डियस वल्ल (Laurentius Valla) का चौदहवीं शताब्दी में लिखित लाटिन-व्याकरण प्रामाण्य ग्रन्थ है।

(४) वारो (Varro) तथा प्रिस्कियन (Priscian) ने प्राचीन लाटिन का व्याकरण लिखा था। व्याख्यान-शास्त्र तथा अलङ्कार-शास्त्र में भी यूनानवासियों ने बहुत उन्नति की थी। यूनान के आदर्श पर लाटिन के बहुत से व्याकरण बने थे।

इस काल में भाषाशास्त्र की आलोचना का एक उद्दीपक कारण था धर्म्मानुशीलन। खीष्टीय धर्म्मशास्त्र बाइबल ग्रन्थ का पूर्व्व-भाग (Old Testament) हीब्रू-भाषा में लिखे रहने के कारण हीब्रू-भाषा ने यूनान और रोम में ऐसा आदर पाया था कि वहाँ के ईसाई लोग इसी को सब भाषाओं का मूल मान कर यूनानी और लाटिन शब्दों के मूल हिब्रू-भाषा में खोजने लग गये थे। इस खोज से अन्त में यह स्थिर हुआ कि हिब्रू, सिरियक तथा अरबी उस श्रेणी की नहीं, जिस श्रेणी की यूनानी और लाटिन भाषायें हैं।

योरप में संस्कृत-भाषा के आविष्कार के समय से ही तुलनामूलक भाषा-शास्त्र की चर्चा होने लगी। (१) कलकत्ता-हाईकोर्ट के प्रधान विचारपति सर विलियम जोन्स ने संस्कृत-भाषा सीख कर देखा कि संस्कृत के साथ यूनानी और लाटिन का बहुत सादृश्य है। इस विषय की आलोचना के लिए गत सन् १७८६ में उन्होंने कलकत्ते में एशियाटिक सोसाइटी नामक सभा स्थापित की। इसी काल से भाषा-विज्ञान की चर्चा के मध्ययुग का आरम्भ माना जा सकता है।

(२) इस युग के द्वितीय पण्डित हेनरी टामस कोलब्रूक (Henry Thomas Colebrook. 1765 1837) थे। इन्होंने संस्कृत-साहित्य के नाना विषयों पर लेख लिखे हैं।

(३) फ्रेडरिक श्लेगेल (Frederich Schlegel 1772–1829) ने जर्म्मनी में संस्कृत का प्रचार किया था।

(४) विलहेल्म वोन हमबोल्ट (Willhelm von Hombolt 1767-1835) बड़े भारी विद्वान् थे और इन्होंने भाषाशास्त्र के विषय में अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। इन्होंने भाषा-विज्ञान की आलोचना में ऐतिहासिक प्रणाली जारी की। इनका मत था कि मनुष्य-विषयक ज्ञान का एकांश भाषा-विज्ञान है। मनुष्य में निहित शक्ति-विशेष को इन्होंने भाषा नाम दिया है। यह भाषा ही मनुष्य में रहनेवाली ऐश्वरीय शक्ति का वा विकास है, मनुष्य के अतीत तथा भविष्यत् ज्ञान के बाहर है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव हम लोगों की आलोचना वर्तमान में ही सीमाबद्ध रहनी चाहिए। आलोचना ऐतिहासिक होनी चाहिए और इतिहास की सीमा के बाहर की कोई गवेषणा अनर्थक है। इन्होंने शब्दों का धातुमूलत्व स्वीकार किया है और इनको विश्वास था कि जितने प्रत्यय हैं, सब किसी न किसी समय स्वाधीन शब्द थे।

(५) अडोल्फ़ श्लेगेल (Adolf Shlegel 1767-1845) भी बड़े भारी विद्वान् थे। वे योरप में संस्कृत-भाषा-विज्ञान के प्रवर्त्तक थे।

(६) फ्रान्ज़ बौप (Franz Bopp 1791-1867) ने तुलनामूलक व्याकरण लिखकर भारी प्रसिद्धि लाभ की। इन्होंने संस्कृत के धातु-रूपों को यूनानी, लाटिन, जर्मनी तथा फ़ारसी रूपों से तुलना की; संस्कृत, यूनानी, लाटिन, ज़ेन्द, लिथुआनीय, गौथिक तथा जर्मन-भाषाओं का तुलनामूलक व्याकरण लिखा और यूनानी तथा संस्कृत स्वरों (Accents) की आलोचना की। इनके मत में प्रत्यय किसी समय सम्पूर्ण शब्द थे और भाषा-विज्ञान के नियम केवल निर्दिष्ट सीमा के भीतर प्रयुक्त हो सकते हैं, सर्वत्र बिना व्यतिरेक के इनका प्रयोग नहीं हो सकता।

(७) जैकोब ग्रिम (Jacob Grimm 1765-1863) ने जर्मनी के भाषा-समूह के ध्वनि-परिवर्तन का एक अपूर्व नियम बनाया था। उन्होंने अपने नियमों के लिए व्यञ्जनों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया था—प्रथम श्रेणी में वर्ग के प्रथम वर्ण, द्वितीय श्रेणी में वर्ग के तृतीय वर्ण और तृतीय श्रेणी में वर्ग के महाप्राण वर्ण (अर्थात् द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ण) रक्खे गये थे। उनके तीन सूत्र ये हैं—

(१) प्राचीन (Classical) भाषाओं के महाप्राण वर्ण = निम्न जर्मन के सध्वनि अल्पप्राण वर्ण = उच्च जर्मन के अध्वनि अल्पप्राण वर्ण। यथा संस्कृत भ्रातर, गौथिक ब्रोदर, पुरातन उच्च जर्मन ब्रुओदर।

(२) प्राचीन (Classical) भाषाओं के सध्वनि अल्पप्राण वर्ण = निम्न जर्मन के अध्वनि अल्पप्राणवर्ण = उच्च जर्मन के महाप्राण वर्ण। यथा संस्कृत—द्वि, अँगरेज़ी टू, जर्मन ट्वेर।

(३) प्राचीन भाषाओं के अध्वनि अल्पप्राण वर्ण = निम्न जर्मन के महाप्राण वर्ण = उच्च जर्मन के सध्वनि अल्पप्राण वर्ण—यथा संस्कृत पितर, गौथिक फादर, पुरातन उच्च जर्मन वतिर। संक्षेप में वर्ग के प्रथम वर्ण के स्थान में द्वितीय (या चतुर्थ वर्ण), द्वितीय या चतुर्थ वर्ण के स्थान में तृतीय वर्ण, तृतीय वर्ण के स्थान में प्रथम वर्ण का परिवर्तन वृत्ताकार सिलसिले से है। अँगरेज़ी-भाषा निम्न जर्मन वर्ग की है और आज-कल की जर्मन-भाषा उच्च जर्मन वर्ग की है। संस्कृत, आवेस्ती, यूनानी इत्यादि प्राचीन भाषाओं में गिनी जाती हैं। ग्रीक के सूत्रों में जो कसर थी उसको पीछे वर्नर ने पूरा किया।

इन सूत्रों के आविष्कार से भाषा-शास्त्र में युगान्तर उपस्थित हो गया। ग्रिम ने ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक उभय प्रणालियों को जारी किया। इनका मत था, हर एक शब्द के मूल का अन्वेषण करना चाहिए। ये कहते थे कि हम लोगों की जीवनधारा के प्रवाह-विशेष का नाम भाषा है और प्राकृतिक नियमों से भाषा की पुष्टि होती है।

उपकरण-सङ्ग्रह का युग सन् १८३३ से सन् १८५५ तक है।

(१) अगस्ट एफ़० पौट (August F. Pott 1802-1887) ने शब्दों का एक बड़ा भारी व्युत्पत्तिशास्त्र बनाया तथा बौप के व्याकरण का संस्कार किया।

(२) फ्रेडरिक मैक्समूलर (Fredrich Maxmuller 1823-1900) ने भाषा-विज्ञान का प्रचार किया। इन्होंने ऋग्वेद इत्यादि ४९ संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद किया। नाना जातियों के पुराण तथा धर्म्मानुष्ठान-पद्धति के विषय की तुलनामूलक आलोचना भी लिखी।

(३) रुडोल्फ़ रोथ (Rudolf Roth. 1821-95) और ओटो बौटलिंक (Otto Bohtlink-1895-1901) ने संस्कृत-भाषा का एक बड़ा भारी कोष-ग्रन्थ (St. Petersberg Dictionary) लिखा। इस ग्रन्थ में प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति (मूल) निकाली गई।

(४) अगस्टस श्लाइकर (Augustas Schleicher 1823-68) ने Compendum नामक ग्रन्थ लिखा। इन्होंने इस युग के भाषातत्त्व के कार्य्य में शृङ्खला स्थापन की। ब्रुगमान इनके शिष्य थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम वर्तमान युग में आ पहुँचे। नव्य मतवालों में नीचे लिखे हुए नाम प्रसिद्ध हैं।

(१) स्टीन्थल (H. Stienthal 1855-99)
(२) हर्मन ओस्टाफ़ (Herman Ostaff)
(३) कार्ल ब्रुगमान (Karl Brugman)
(४) हर्मन पौल (Herman Paul)
(५) ह्विटनी (W. D. Whitney 1857-94)
(६) डेलब्रूक (B. Delbruck)
(७) लेस्कीयन (Leskien)
(८) स्ट्रीट-बर्ग (Streitberg)

इन्होंने पूर्व-युग के पण्डितों के मत के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। लेस्कीन कहते हैं कि ध्वनि-विज्ञान के नियमों का कोई व्यतिक्रम नहीं होता और इस ध्वनि-विज्ञान से ही झगड़ा शुरू हुआ।

आरम्भ में नीचे लिखे हुए विषयों का विचार होने लगा—

(१) सजीव भाषाओं की आलोचना होनी चाहिए। केवल प्राचीन भाषाओं की आलोचना से भाषा-विज्ञान की उन्नति नहीं होती।

(२) 'भाषा की उत्पत्ति' इत्यादि कई एक विषयों का निर्णय नहीं हो सकता। अतएव उनका विचार परित्याग किया गया।

(३) शारीर-विज्ञान के तथा मनोविज्ञान के विषयों की आलोचनाओं में स्पष्ट प्रभेद माना गया।

(४) भाषा-विज्ञान में उपमान (Analogy) का महत्त्व माना गया।

(५) हर एक भाषा भिन्न भिन्न भाषाओं की रीतियों के मिलाप से बनी, कारण बहुधा भिन्न भिन्न जातियों का मेल होता गया। अब ध्वनि-विज्ञान का इतिहास दिया जाता है।

(१) ध्वनि-परिवर्त्तन।

(क) व्यञ्जन वर्ण। ग्रिम की ध्वनि-परिवर्त्तन-विधियों का प्रयोग सब स्थानों में नहीं हो सकता था। अतएव उनके बहुत से व्यतिरेक बनाये गये थे। परन्तु होते होते उन व्यतिक्रमों के कारण निर्णीत होने पर यह स्थिर हो गया कि ग्रिम के प्रदर्शित ध्वनि-परिवर्त्तनों के नियमों का कोई व्यतिक्रम नहीं है। ग्रासमान (Grassman) ने दिखाया कि यदि मूल-आर्य्य-भाषा में किसी धातु के आदि तथा अन्त में महाप्राण वर्ण रहे तो संस्कृत इत्यादि प्राचीन भाषाओं में उन वर्णों में एक वर्ण अल्पप्राण हो जाता है, दोनों महाप्राण नहीं रहते। अतएव ग्रिम की विधियों को इस प्रकार का व्यतिरेक नहीं ठहर सकता। वर्नर (Karl Verner 1877) ने देखा था कि ध्वनि-परिवर्तन-क्रिया में उदात्तादि स्वरों का यथेष्ट प्रभाव है। मूल-आर्य्य-भाषा में यदि किसी स्पर्श-वर्ण के पहले के वर्ण पर स्वर (Accent) हो तो ग्रिम की विधियां नहीं चलतीं। इससे यह पाया गया कि अघोष अल्पप्राण वर्ण के स्थान में घोषवत् अल्पप्राण वर्ण होता है। इससे ग्रिम के कई एक व्यतिक्रमों का समाधान हो गया। अस्कोली (Ascoli 1870) ने कहा कि मूल-आर्य्यभाषा में 'क' और 'च' यह दो वर्ण 'क' के उच्चारण में मिल गये हैं। इससे बहुत व्यतिक्रमों का समाधान हो गया। ब्रुगमान (Brugman) ने सानुनासिक विधि (Sonant nasal theory) का आविष्कार किया। इससे भी बहुत से व्यतिक्रमों का समाधान हुआ। अतएव यह स्थिर हो गया कि ध्वनि-परिवर्तन के नियमों में व्यञ्जन वर्ण-सम्बन्धी नियमों का कोई व्यतिक्रम नहीं।

(ख) स्वरवर्ण—कर्टियस (Cartius) ने यूनानी भाषा की आलोचना कर स्थिर किया कि जब मूल-आर्य्य-भाषा में जितने स्वरवर्ण थे, सब संस्कृत-भाषा में ज्यों के त्यों पाये जाते हैं, तब योरप की भाषाओं में संस्कृत के एक स्वर 'अ' के स्थान में तीन स्वर 'अ', 'ए', 'ओ' बने हैं। उन दिनों भाषा-शास्त्र के पांण्डतों में संस्कृत का बहुत ही आदर था; बौप, ग्रिम इत्यादि बड़े बड़े विद्वान् बहुत दिन तक इसी मत को मानते थे। अन्त में अमेलुङ्ग (Amelung), ब्रुगमान (Brugman), कोल्लिट्ज (Collitz) इत्यादि नव्य मतवालों के परिश्रम से स्थिर हो गया कि यूनानी भाषा में ही मूल-आर्य्यभाषा के सब स्वर वर्ण मिलते हैं, संस्कृत में नहीं। पीछे बारथौलोमे (Bartholomae), बेकटेब (Bechteb), फ़ौरटुनाटौव (Fortu-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

natov), मेइलेट (Meillet), ब्रुगमान (Brugman), स्ट्रीटबर्ग (Streitburg), हर्ट (Hert) इत्यादि विद्वानों के द्वारा गुण, वृद्धि, सम्प्रसारण, उदात्तादि स्वर-विधि इत्यादि विषय के नाना नियमों के आविष्कार होने पर स्थिर हो गया कि स्वरवर्णों के ध्वनि-परिवर्तन के नियमों का भी व्यतिरेक नहीं। अतएव यह निश्चय हो गया कि ध्वनि-परिवर्तन-विधियों का कोई व्यतिरेक नहीं है।

(२) ध्वनि-विज्ञान—

अब ध्वनि की उत्पत्ति, वाक्यन्त्र की प्रकृति इत्यादि के इतिहास के विषय में कुछ कहना उचित है।

ध्वनि-विज्ञान आधुनिक शास्त्र नहीं है। हज़ारों वर्ष पहले प्रातिशाख्यवालों ने ध्वनियों के विश्लेषण, उत्पत्ति, प्रकृति इत्यादि के विषय में जैसी गवेषणा और पाण्डित्य का परिचय दिया है, उससे ध्वनि-शास्त्र आधुनिक शास्त्र नहीं कहा जा सकता। किन्तु विज्ञान-शास्त्र के एक विभागस्वरूप इसकी आलोचना १६ वीं शताब्दी के मध्य-भाग में ही योरप में आरम्भ हुई। पौट (Pott) और बेनफ़ी (Benfy) के समय तक भाषा-शास्त्र के पण्डितों ने इस विषय की आलोचना की थी और भविष्यत् आलोचना के लिए बहुत उपकरण भी रख गये थे। धीरे धीरे इन विषयों में शृङ्खला तथा सुनियम स्थापित हुए। वाक्यन्त्र के द्वारा ध्वनि उत्पादन तथा वर्ण के द्वारा उसका ग्रहण कैसे कैसे होता है, इसकी वैज्ञानिक परीक्षा तथा आलोचना बहुत विशेषता से इसी युग में हुई है, पहले नहीं। पृथ्वी की किस किस भाषा में कौन-कौन सी ध्वनियाँ हैं, उनका सङ्ग्रह हुआ है। हर एक ध्वनि के उत्पादन-कार्य्य में वाक्यन्त्र की कैसी कैसी क्रियायें होती हैं, इसकी परीक्षा हुई है। भाषाशास्त्रवाले शरीर-तत्त्ववालों से मिलकर काम कर रहे हैं। श्रवणेन्द्रिय की परीक्षा नाना यन्त्रों की सहायता से हो चुकी है और अब भी हो रही है। ध्वनि से उत्पन्न वायु-तरङ्ग, उसकी वक्रता, दीर्घता, उच्चता श्रवणेन्द्रिय के स्नायुयों पर उनकी क्रिया इत्यादि की बहु आलोचना इस युग में हो चुकी है।

मनोविज्ञान की सहायता से ध्वनि-विज्ञान की प्रकृति के निर्णय की चेष्टा की गई है। शरीर-विज्ञान से सम्बन्ध रखती हुई ध्वनि-विज्ञान की विधियों के साथ मनोविज्ञान से सम्बन्ध रखती हुई ध्वनि-विज्ञान की विधियों का प्रभेद अति सूक्ष्मता के साथ निर्णीत हुआ है। लौकिक मनोविज्ञान (Volker psychology) के विषय में बहुत मतभेद चल रहा है। मनोविज्ञान की सहायता से ध्वनिविज्ञान की आलोचना होने के कारण नीचे लिखे हुए विषयों पर ध्यान पड़ा है—

(१) अलग अलग भाषाओं में किस प्रकार से वैयाकरण-सम्बन्ध प्रकाशित होते हैं, उसकी आलोचना।

(२) भिन्न भिन्न जातियों की चिन्ता-प्रणाली के प्रकाश करनेवाले शब्दों की आलोचना।

(३) शब्द-शक्ति के विषय में अनुसन्धान।

(४) उपमान या वागनुपात (analogy) पद्धति का विचार।

(५) गूँगापन, बहरापन इत्यादि रोगों की परीक्षा। यथा—

(क) उच्चारण करने की असमर्थता (Aphasia)

(ख) शब्दबोध की असमर्थता (Paraphasia)

(ग) अर्थबोध की असमर्थता (Apraxia)

(घ) शब्दबधिरता तथा शब्दान्धता (Sensory (Aphasia)

इन विषयों के निर्णय के लिए परीक्षामूलक मनोविज्ञान की आलोचना हो रही है। मस्तिष्क की वाक्-वियय्क क्रियाओं की परीक्षा हो रही है। शब्दोत्पत्ति का मानसिक केन्द्र कहाँ है, इस विषय का भी कुछ अनुसन्धान हुआ है। हिब्रू इत्यादि प्राचीन भाषाओं की आलोचना प्राचीन काल से ही होती आई है। इसके साथ असीरीय, बाबिलोनीय, सीरीय, अरबी और सेमेटिक भाषाओं की आलोचना भी आज-कल बहुत ज़ोर से हो रही है। इस विषय की आलोचना करनेवालों में हौपट् (Haupt), ज़िमोर्न (zimmorn), बार्थ (Barth) इत्यादि के नाम प्रधान हैं। ब्रौकेट मान (Brocket man) लिखित सेमिटिक भाषाओं का तुलनामूलक व्याकरण एक मूल्यवान् ग्रन्थ है। अँगरेज़ी, फ़्रांसीसी तथा जर्मन पण्डितों ने यहूदियों की बहुत प्राचीन लिपि का आविष्कार किया है। सेमेटिक तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य्य-भाषाओं में सम्बन्ध स्थापन करने की भी चेष्टा हो रही है।

रोसेटा प्रस्तर (Rosetta stone) के आविष्कार के पीछे से ही मिस्र की सेमेटिक भाषा की आलोचना चल रही है। मिस्र-विषयक पण्डितों (Egytologists) में चाम्पौलियन (champollian), लेपसियस (Lepsius), डिरूज़े (De Rouge) इत्यादि के नाम प्रसिद्ध हैं।

अफ़्रीका की भाषाओं को लेकर भी परिश्रम हो रहा है। रैनिश (Reinisch) ब्लीक (Bleek), स्टैन्थल (steinthal), क्राप (kraff), कोएल्ब (Koelb) तथा टौरेन्ड (Torend) इस विषय के पण्डित हैं। चीनी भाषा को लेकर तानिस्लास जुलियेन (Itanislas julien), विलियम्स (Williams), लेगे (Legge) श्लेगेल तथा गाइल्स (Sclegal and Giles), गेबेलेन्ज़ (Gabelentz), चवनेस (Chavannes) और हर्थ (Hirth) परिश्रम कर रहे हैं।

इन भाषाओं के अतिरिक्त (क) जापान, कोरिया, तिब्बत, तुर्किस्तान, मध्य तथा उत्तर-एशिया की भाषायें; (ख) हिटाइट और सुमेरोअक्कदी भाषायें, (ग) मेक्सिको तथा दक्षिण-अमेरिका की प्राचीन भाषायें, (घ) पौलिनेशिया की भाषायें, (ङ) अमेरिका की इस युग की भाषायें भी आलोचना के विषय हैं। इन सब भाषाओं की चर्चा में बहुसंख्यक बड़े बड़े विद्वान् अक्लान्त परिश्रम कर रहे हैं। आर्य्य तथा द्राविड़ी भाषाओं की चर्चा तो बराबर हो ही रही है।

पद-विन्यास-प्रणाली (syntax) की तुलनामूलक आलोचना कर डेलब्रुक (Delbruck) बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। पद-विन्यास की तुलनामूलक आलोचना आधुनिक युग में ही हो रही है। बौफ़ के समय तक इसकी चर्चा नहीं हुई। गत सन् १८५२ में लाङ्गे (Lange) ने पहले इस विषय में लेख लिखा। ब्रुगमान (Brugman) के आर्य्य-भाषा के व्याकरण के पञ्चम खण्ड का विषय पदविन्यास-प्रणाली (syntax) है।

छन्द-शास्त्र की तुलनामूलक आलोचना में वेस्टफ़ाल (West phal) तथा सीवर्स (Sievers) के नाम उल्लेखयोग्य हैं।

शब्द-शक्ति तथा शब्दार्थ की आलोचना में फ़्रान्सीसी पण्डित ब्रेअल (Braal) का नाम सबसे पहले लिखना चाहिए। मिसेस कस्ट ने इस पुस्तक का अँगरेज़ी में अनुवाद किया है। पाल का अनुवाद स्ट्रौंग साहब ने किया है। पाल (Paul), ह्विटनी (Whitney), टकर (Tucker), ओअर्टेल (Oertol) इत्यादि पण्डितों ने भी इस विषय में परिश्रम किया है। भारतवर्ष के मीमांसा, न्याय, अलङ्कार इत्यादि शास्त्रों में भी इस विषय की बहुत आलोचना हुई है।

कई एक हज़ार भाषाओं का आविष्कार हुआ है, परन्तु इनका सन्तोष-जनक श्रेणी-विभाग अभी तक नहीं हुआ। नृ-विज्ञान, भाषा-विज्ञान तथा जाति-विज्ञान के पण्डितों ने एक वाक्य से स्वीकार किया है कि जाति या शोणित के सम्पर्क के साथ भाषा का कोई सम्बन्ध नहीं। भाषाओं का श्रेणी-विभाग दो प्रकार से हो सकता है—एक आकृति-गठन के अनुसार, दूसरा प्रकृति या उत्पत्ति के अनुसार। कुछ वर्ष पहले आकृति के सादृश्य के अनुसार श्रेणी-विभाग होता था, परन्तु अब उत्पत्ति के अनुसार श्रेणी-विभाग ही अनुमोदित है। किन्तु प्रकृतिगत श्रेणी-विभाग में भी आकृतिगत उपादान लेकर विचार किया जाता है।

आर्य्य-भाषा-समूह नव श्रेणियों में विभक्त किया गया है। आठवीं भाषा आलबानीय है और ९ वीं भाषा तोखारीय है। नीचे लिखे हुए श्रेणी-विभाग औरों से नवीन हैं। योरप की कई एक भाषाओं के जिस स्थान में 'क' (C. K. या V) का उच्चारण होता है, उस स्थान में आवेस्ता, संस्कृत इत्यादि भाषाओं में 'श' का उच्चारण होता है। इसलिए आर्य्य-भाषायें 'शतेम्' और 'केन्तुम्' नामक दो श्रेणियों में विभक्त की गई थीं। संख्यावाचक 'शत' शब्द के उच्चारण को लेकर यह श्रेणी-विभाग किया गया है। यथा—(क) संस्कृत 'शतम्', आवेस्ता 'शतेम्', लिथुआनीय 'जिमतुस' (Szimtus); (ख); लाटिन 'केन्तुम', यूनानी 'हेकाटोन', केल्टिक 'केट', गौथिक 'हन्द', तोखारीय 'कन्द'। अतएव प्रथम (अर्थात् शतेम्) श्रेणी में हैं—(१) भारतीय-ईरानीय, (२) अरमेनीय, (३) आलबनीय और (४) लिथु-स्लावौनीय और द्वितीय (केन्तुम्) श्रेणी में हैं—(१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाटिन, (२) यूनानी, (३) जर्मन, (४) केल्टिक और (५) नूतन आविष्कृत तोखारीय।

आर्य्यों के आदि-निवास के विषय में भी बहुत मत-भेद है। (१) मध्यएशिया, (२) स्वीडेन से काकेशस तक के अन्तर्गत नाना देश, (३) उत्तर-योरप और (४) उत्तर-मेरु के निकट के कई देश आर्य्यों के आदि-निवास का दावा करते हैं। इस बात की मीमांसा अभी तक नहीं हुई।

विभिन्न भाषाओं में सादृश्य निकालने की चेष्टा हुई है। स्वीट (Sweet)-लिखित 'भाषा का इतिहास' (History of Language) नामक ग्रन्थ में इस विषय का सङ्केत है। ब्रुगमान ने जैसे अनुमान से मूल आर्य्य-भाषा को पुनर्गठन किया है, वैसे ही मोलर (Moller) ने सेमेटिक भाषा का आनुमानिक पुनर्गठन किया है। मूल-आर्य्य-भाषा के साथ मूल-सेमेटिक भाषा की तुलनामूलक आलोचना भी की गई है। चीनी-भाषा के साथ आर्य्य-भाषाओं का सम्बन्ध निकालने की भी चेष्टा हुई है।

जो बहुत से मत पहले ठीक माने जाते थे उन पर से अब श्रद्धा घट रही है। जो मत नृ-विज्ञान, भू-विज्ञान, उद्भिद्-विज्ञान इत्यादि शास्त्रों की गवाही के द्वारा पक्के नहीं किये गये वे अभ्रान्त नहीं गिने जाते।

नलिनीमोहन सान्याल, भाषा-तत्त्व-रत्न, एम० ए०

देश की बात।

हमारा देश किसानों का देश है। कोई तीन-चौथाई भारतवासियों का पेशा खेती ही है। अर्थात् अधिकांश भारतवासियों का मरना-जीना उसी पर अवलम्बित है। जो लोग खेती नहीं करते वे भी खेतिहरों ही की बदौलत जीते हैं। यदि खेती न हो या यदि खेती करने के साधन लुप्त हो जायँ तो बड़े बड़े तोंदवालों की तोंदें पिचक जायँ और कुरसियाँ तोड़नेवालों और लेक्चर झाड़नेवालों की दुर्गति थोड़े ही दिनों में होने लगे। अमीर आदमी और देशों से आये हुए अन्न की बदौलत कुछ ही समय तक मालपुवे उड़ा सकते हैं, सदा नहीं। अतएव खेती के अभाव और खेती की अनुन्नत दशा से सारे देश पर तबाही आ सकती है। कितने अफ़सोस, कितने दुःख और कितने परिताप की बात है कि सबका पेट पालनेवाली इसी खेती के पेशे को बहुत लोग हेय समझते हैं। खेतिहर ही सबसे अधिक पीसे या निचोड़े जाते हैं; उन्हीं के दुखदर्दों को दूर करने का बहुत कम यत्न किया जाता है। गवर्नमेंट भी खेती की उन्नति की ओर उतना ध्यान नहीं देती जितना कि उसे देना चाहिए।

इस सारी दुरवस्था का कारण खेतिहरों की अशिक्षा, निर्धनता और सङ्गठनहीनता है। इसमें खेतिहरों का भी दोष है, समर्थ भारतवासियों का भी दोष है, और सबसे अधिक दोष है गवर्नमेंट का। यदि किसान शिक्षित और सङ्गठित होते तो वे खुद ही अपनी उन्नति आप कर लेते। यदि समर्थ और शिक्षित भारतवासी उनका पक्ष लेकर उनके कष्ट दूर करने की काफ़ी चेष्टा करते तो भी उनकी दशा कुछ न कुछ सुधर जाती। और यदि गवर्नमेंट खेतिहरों को अपनी आमदनी का प्रधान साधन समझ कर उनकी दुर्गति को दूर करने की आयोजना कर देती तो फिर कहना ही क्या था। परन्तु देश के दुर्भाग्य से यह कुछ भी नहीं हो रहा है। जो कुछ होता भी है उससे खेतिहरों को विशेष लाभ नहीं पहुँचता।

जिस ज़मीन में और जिस ढङ्ग से खेती करके अन्य-देशवाले ५० मन अनाज पैदा करते हैं उसी ज़मीन में यहाँ, अज्ञान, अशिक्षा और साधनों के अभाव में, १० मन भी अनाज मुश्किल से पैदा होता है। खेती होती है देहात में और खेतिहर रहते भी देहात ही में हैं। परन्तु आज तक उन्हें कृषि-विद्या के मोटे मोटे उसूल तक समझाने और सिखाने की चेष्टा नहीं की गई। उनके जोत की बिखरी हुई ज़मीन को चक का रूप देने की कभी कोशिश नहीं की गई। उन्हें उनके जोत पर मौरूसी हक़ देने, बार बार बेदख़ली और इज़ाफ़ा बन्द करने और ज़मींदारों के पञ्जे का पेंच ढीला करने की ओर भी अब तक विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इस दशा में खेती की उन्नति हो कैसे सकती है? खेतिहरों की दशा सुधर कैसे सकती है? देश की समृद्धि बढ़ कैसे सकती है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रान्त की गवर्नमेंट ने कानपुर में खेती की विद्या सिखाने के लिए एक कालेज खोल रक्खा है। वहाँ की पढ़ाई पहले तीन ही वर्ष की थी। अब अधिक समय की हो गई है। जो लड़के वहाँ से पढ़कर निकलते हैं वे हाथ से हल थाम कर खुद खेत नहीं जोतते और खुद ही खेतिहर नहीं बनते। वे ठहरे अँगरेज़ीदाँ। फिर भला वे ऐसे नीच काम कैसे कर सकते हैं? वे तो निकल कर बनते हैं क़ानूनगो वग़ैरह। अतएव कृषि-विद्या-सम्बन्धी उनके ज्ञान से प्रकृत खेती को बहुत ही कम फ़ायदा पहुँचता है! सरकारी मुलाज़िमत पाकर अफ़सर बन जाने ही की आशा से लड़के इस कालेज में अब तक भरती होते रहे हैं। अब सरकार ने पुराने नियमों में कुछ परिवर्तन कर दिया है। उनके अनुसार अब सभी पासशुदह लड़कों को सरकारी नौकरियाँ न मिलेंगी। यह अच्छा ही हुआ।

बहुत बरसों तक तो सरकार इस कानपुर के कालेज ही को खोल कर अपने को कृतार्थ समझती रही। परन्तु जब उसने देखा कि उससे काम नहीं चलता तब उसने बुलन्दशहर में भी कृषि का एक स्कूल खोल दिया। इस बात को हुए अभी साल ही दो साल हुए। पर वहाँ भी विशेष पढ़े-लिखे ही लड़के भरती होते हैं। वे भी पास हो कर जब निकलेंगे तब छोटी-मोटी सरकारी नौकरी पाने ही के लिए अधिकतर दौड़-धूप करेंगे। खुद खेती करके और अपनी शिक्षा के सहारे फ़ी बीघा १० के बदले १५ मन अनाज पैदा करने की फ़िक्र न करेंगे। ये बातें इतनी मोटी हैं कि साधारण आदमी भी सहज ही समझ सकता है। परन्तु भारी और भड़कम तनख़्वाहें पानेवाले सरकारी अफ़सरों की समझ में अब तक नहीं आई थीं। चाहिए था कि कृषि सिखाने के लिए पहले गाँवों में मदरसे खुलते। देहाती किसानों को उनके मतलब की शिक्षा मिल जाने पर कहीं दो-चार बड़े बड़े स्कूल खुलते। तब अन्त में कालेज खोला जाता। पर सरकार बहादुर अब तक सभी उलटा करती आई। वर्णपरिचय कराने के पहले तो उसने वेदघोष कराना सिखलाया। फिर एक स्कूल खोल कर उपनिषदों और दर्शन-शास्त्रों की शिक्षा देना आरम्भ किया। वर्णज्ञान कराने की उसने मुतलक़ ज़रूरत नहीं समझी। वह माँ-बाप जो ठहरी। माँ-बाप अपनी सन्तान को इसी ढङ्ग से शिक्षा देते हैं न!

इतना दीर्घकाल बीत चुकने पर अब सरकार कुछ कुछ राह पर आती देख पड़ती है। यह बात हमें सरकार की उस समालोचना से मालूम हुई जो उसने महकमे ज़िरात की पिछली रिपोर्ट पर प्रकाशित की है। रिपोर्ट जून १९२४ में ख़तम होनेवाले साल की है। उसमें सरकार के डिपटी सेक्रेटरी रीड साहब लिखते हैं कि इस साल से डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों के स्कूलों के कुछ अध्यापक बुलन्दशहर भेजे जाया करेंगे। वहाँ वे कृषि के स्कूल में कृषि की शिक्षा पावेंगे। मतलब शायद यह है कि कृषि-विद्याविशारद होकर जब ये लोग लौटेंगे तब वही विद्या वे अपने अपने स्कूल के लड़कों को सिखावेंगे। ख़ैर, अब सही। देर आयद दुरुस्त आयद। परन्तु सरकारी समालोचना में सूत्रवत् सिर्फ़ सूचना ही सूचना है। यह नहीं लिखा कि कितने अध्यापक बुलन्दशहर भेजे जायँगे। लौट कर वे कहाँ कहाँ, कितनी, किस तरह की और किस प्रकार शिक्षा देंगे। इस ढङ्ग से भी कुछही—बहुतही कम—लाभ होगा। यथेष्ट लाभ तभी होगा जब हर देहाती मदरसे में लड़कों को कृषि की शिक्षा दी जायगी, उनके हाथ से खेती कराई जायगी और किसानों को जो तकलीफ़ें हैं वे दूर कर दी जायँगी।

कृषकों को अच्छा बीज और खेती के औज़ार देने तथा नमूनेदार खेती के दर्शन कराने के लिए सरकार ने कुछ फ़ार्म या चक खोल रक्खे हैं। उनमें से अधिकांश चकों से नुक़सानही नुक़सान होता रहा। इस पर बहुत हो-हल्ला मचा। तब सरकार जागी। उसने बहुत से चक अब बन्द कर दिये हैं। जो रक्खे हैं उनके प्रबन्ध में विशेष फेर-फार कर दिया है। सरकारी समालोचना से मालूम हुआ कि अब इन चकों में से एक आध को छोड़ कर और सभी अपना ख़र्च अपनी ही आमदनी से चला लेते हैं। कुछ ने मुनाफ़ा भी दिखाया है। इस ख़ुशख़बरी के लिए सरकार अभिनन्दनीय है।

सरकार ने कहीं कहीं अच्छे बीज के भाण्डार भी खोल रक्खे हैं। रिपोर्ट के साल इन भाण्डारों ने कृषकों के हाथ ५६,४८४ मन बीज बेंचा। ख़ूब किया। अच्छे बीज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बदौलत पैदावार बढ़ जाती है। यथासम्भव किसानों को इन भाण्डारों से गेहूँ, जौ, चना, मकई, ज्वार, बाजरा और गन्ने का बीज ज़रूर लेकर बोना चाहिए।

ज़मीन पथरीली होने या और कारणों से कहीं कहीं कुवें नहीं बन सकते। इसका भी इलाज सरकारी कृषि-विभाग करता है। उसने यंजिनियर और मिस्त्री रख छोड़े हैं। वे ख़ास तरह के औज़ारों की सहायता से पाताल-तोड़ कुवें तैयार कर देते हैं। आज तक सैकड़ों कुवें इस तरह के तैयार हो चुके हैं। ये मिस्त्री अपने साज़ोसामान समेत प्रायः हर ज़िले के सदर मुक़ाम में रहते और बुलाने से कुवाँ खोदने के लिए देहात में जाते हैं। हाँ खुदाई की उजरत, जो बँधी हुई है, देनी पड़ती है। इन लोगों ने, रिपोर्ट के साल, ४८ कुवें खोदे। इस समय, अर्थात् इस साल, रिपोर्ट लिखने के वक़्त तक, ८० कुवें खोदने का ठेका वे ले चुके थे। ख़ैर।

कितने ही किसानों को भाग्य-सूत्र ज़मींदारों और तअल्लुक़ेदारों के हाथ है। उनकी भी कुछ बातें सुनिए। अवध में ज़मींदारों और तअल्लुक़ेदारों की बड़ी भरमार है। आगरा-प्रान्त में भी बहुत सी ज़मींदारियाँ और रियासतें हैं; पर उतनी नहीं जितनी कि अवध में हैं। इन तअल्लुक़ेदारों और राजों में बहुत से ऐसे हैं जो सुशिक्षित नहीं, जो अपनी रियासतों का प्रबन्ध अच्छी तरह नहीं कर सकते, और जो अनेक व्यसनों में लिप्त रह कर हज़ारों-लाखों रुपया क़र्ज़ कर लेते हैं। यदि वे अपने मनमाने ही रास्ते चले जायँ तो कुछही दिनों में रियासतें बिक जायँ। इसके सिवा कुछ रियासतों के हक़दार नाबालिग़ और स्त्रियाँ भी होती हैं। वे अपनी जायदाद या राज का बन्दोबस्त आप नहीं कर सकतीं। यदि मैनेजर रक्खें तो उनके काम की देखभाल करनेवाला कोई नहीं। और निगरानी न करने से रियासत के चौपट हो जाने का डर रहता है। रियासतों को इन सब आपदाओं से बचाने के लिए गवर्नमेंट ने एक क़ानून बना रक्खा है। उसका नाम है—कोर्ट आफ़ वार्डस ऐक्ट। अयोग्यों, कर्ज़दारों और नाबालिगों वग़ैरह की रियासतों का प्रबन्ध उसी में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार होता है। ऐसी रियासतों की रक्षा और निरीक्षण का भार बोर्ड आफ़ रेविन्यू को सौंपा गया है। उसने कुछ अधिकार ज़िले के कलेक्टरों और डिप्टी कमिश्नरों को दे रक्खे हैं। इसके सिवा हर ज़िले की रियासतों का काम-काज देखने-भालने के लिए एक एक मैनेजर या असिस्टंट मैनेजर भी रहता है। उसके भी मातहत सरबराहकार और ज़िलेदार रहते हैं। यदि ये छोटे दरजे के मुलाज़िम ईमानदार हुए तो काश्तकारों को कष्ट नहीं मिलता। और यदि न हुए तो उनके कष्टों की सीमा नहीं रहती, बेचारों का बेतरह पीड़न होता है।

भगवान् की लीला तो देखिए। जिनमें बड़ी बड़ी रियासतों का प्रबन्ध करने की शक्ति है उनके क़ब्ज़े में बिस्वा भर भी ज़मीन नहीं; और जिनमें नहीं है वे लाखों रुपये की मालियत की रियासतों के मालिक बने बैठे हैं। यदि दया करके गवर्नमेंट इनकी रियासतों का प्रबन्ध अपने ऊपर न लेती तो आज तक अधिकांश रियासतें बिक गई होतीं।

जिनकी रियासतें "कोर्ट" हैं उनके पढ़ाने-लिखाने का भार गवर्नमेंट स्वीकार करती है। किन्तु पढ़ने में ये लोग बहुत कम जी लगाते हैं। सरकार की शिकायत है कि जिन लोगों को रियासत का काम सिखलाने की कोशिश की गई उन्होंने काम सीखने में बड़ी बेपरवाही की। अतएव वे अच्छे भू-स्वामी (Land-lord) न हो सकेंगे। पर अच्छे हों या बुरे राजा साहब को इसकी क्या परवा। उनके बुरे होने का फल भोगेंगे उनके काश्तकार। वे तो उनकी बदौलत ऐश करेहींगे।

भारतवर्ष के प्राचीन नरेशों की याद कीजिए—पृथु, मान्धाता, हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र आदि ही की नहीं—वे तो बहुत पुराने ज़माने के थे। उनके बहुत पीछे आविर्भूत विक्रम, चन्द्रगुप्त, अशोक, समुद्रगुप्त, हर्ष और भोज आदि के शासन-समय का भी स्मरण कर लीजिए। ये नरेश प्रजा को अपनी सन्तति समझते थे; उसके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझते थे; उसको शिक्षा देना और उसे नीरोग रखने का यथेष्ट प्रबन्ध करना अपना परम कर्तव्य समझते थे। आज-कल के शासक भी अपने को प्रजा का—कम से कम अपढ़, अशिक्षित और मूक प्रजा का—माँ-बाप क़रार देते हैं। और लोग इस बात को मानें चाहे न मानें,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर स्वयं शासक अपने ही श्रीमुख से इस बात को समय समय पर दुहराते कभी नहीं अघाते। उनकी यह घोषणा किसी हद तक सही भी है। प्रमाण—

देखिए, भारत के शासकों ने प्रान्त प्रान्त में शिक्षा-दान के लिए स्कूल और कालेज खोल रक्खे हैं। उनके सञ्चालन की देखभाल के लिए बड़े बड़े अफ़सर मुक़र्रर कर रक्खे हैं। विद्यार्थियों की एक निश्चित संख्या को वज़ीफ़े तक देकर उन्हें शिक्षित बनाने के प्रबन्ध कर रक्खे हैं। इसी तरह प्रजा के रोग-निवारण के लिए उन्होंने कहीं कहीं अस्पताल और दवाख़ाने खोल रक्खे हैं। प्रजा की तन्दुरुस्ती क़ायम रखने के लिए उन्होंने एक और भी महकमा खोल रक्खा है। उसका नाम है Public Health Department अर्थात् वह महकमा जो सर्वसाधारण की तन्दुरुस्ती में ख़लल न आने देने की तदबीरें करता है, कितने आदमी मरे और कितने बच्चे पैदा हुए, इसका हिसाब रखता है और यह भी देखते रहता है कि किस रोग से कितने आदमियों की जान गई। अगर कोई मारक रोग—हैज़ा, प्लेग, इन्फ़्लुयंज़ा आदि—उठ खड़े हुए तो उन्हें रोकने या उनके आक्रमण का वेग कम करने की योजना भी वह करता है।

यही इस बात के प्रमाण हैं कि शासक यहाँ की प्रजा के साथ मातृ-पितृवत् व्यवहार करते या करने की चेष्टा ज़रूर करते हैं। इस पर भी यदि अधिकांश प्रजा निरक्षर रह जाय; उसे सब कहीं, गाँव गाँव में, रोग-चिकित्सा के साधन प्राप्त न हों; उसके मरने-जीने का ठीक ठीक हिसाब तक न रक्खा जाय तो इसमें शासकों का क्या दोष? ३१ करोड़ भारतवासियों को पढ़ाना-लिखाना, रोगी होने पर उनका इलाज करना, प्लेग फैलने पर उसे झटपट निर्मूल कर देना कोई हँसी-ठट्ठा थोड़े ही है। जहाँ तक शासकों से बनता है, अपने कर्तव्य का पालन वे करते हैं। उनके इस सत्कार्य से यदि कोई असन्तुष्ट हो तो वह ख़ुद ही अपना प्रबन्ध आप कर ले। जो लोग बड़ी बड़ी बातें बनाते हैं और सरकार के कामों की नुक़्ताचीनी करते हैं वे बच्चे थोड़े ही हैं। ख़ुद स्कूल खोलें, ख़ुद दवाख़ाने खोलें, ख़ुद ही बस्तियों में सफ़ाई रखने का प्रबन्ध करें। न कर सकें तो अधिक कर देकर करोड़ दो करोड़ रुपये की सरकारी आमदनी ही बढ़ा दें। फिर देखें, सरकार के ये काम अधिक सहूलियत और अधिक ख़ूबसूरती के साथ होते हैं या नहीं। यह कोई अच्छी दलील नहीं कि सरकार यदि ये सब काम पूरे तौर पर नहीं कर सकती तो शासन क्यों करती है। यह काम वह भारतवासियों को क्यों नहीं सौंप देती; वे ख़ुद ही उसे कर लेंगे। इस तरह की दलील पेश करनेवाले यह नहीं सोचते कि शासन करना कितना कठिन काम है। शासन करने का इल्म एक दिन में नहीं आ जाता। उसके लिए सैकड़ों साल चाहिए। अभी कल से ही तो हम लोगों ने शासन-शास्त्र का ककहरा याद करना शुरू किया है। आजही उसमें पारङ्गत कैसे हो सकते हैं। पढ़ते जाइए, मिहनत करते जाइए, घबराइए नहीं। किसी दिन मनोवाञ्छित फल मिलही जायगा।

शासकों के कार्य में यदि असन्तुष्ट भारतवासी मीन-मेख़ करें तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। परन्तु यदि शासक या सरकार ख़ुद ही अपने किसी काम पर या अपने किसी महकमे के अधिकारियों के काम पर असन्तोष प्रकट करे और उनकी भूलों और भ्रमों पर टीका-टिप्पणी करके अपनी समालोचना को सर्व-साधारण के सामने पेश करे तो ज़रूर आश्चर्य की बात है। ऐसी समालोचना से यह प्रकट होता है कि प्रबन्ध में अवश्य त्रुटियाँ हैं।

तन्दुरुस्ती के महकमे के बड़े साहब डाइरेक्टर कहाते हैं। आपने दिसम्बर १९२३ में ख़तम होनेवाले साल की जो रिपोर्ट जनाब गवर्नर साहब के दरबार में पेश की है उसकी सरकारी समालोचना की सिर्फ़ दो ही एक बातों का उल्लेख हम नीचे करना चाहते हैं। उससे स्पष्ट हो जायगा कि यह महकमा किस ख़ूबी से अपना काम कर रहा है और इस ख़ूबी में सरकार का भी कुछ दोष है या नहीं।

सरकार का कहना है कि तन्दुरुस्ती के महकमे के लिए यह जानना बहुत ज़रूरी है कि साल में कितने आदमी मरे और कितने बच्चे पैदा हुए। पर इसकी ठीक ठीक रिपोर्ट ही नहीं होती। रिपोर्टों के अनुसार मरनेवालों की संख्या में फ़ी सदी ८ की कमी मालूम होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ कुछ यही हाल जनन-सम्बन्धी रिपोर्टों का भी है। उसकी भी ठीक ठीक ख़बर इस महकमे को नहीं मिलती। इन ग़लत रिपोर्टों से विशेष हानि नहीं। विशेष हानि तो इस बात के न जानने से है कि किस रोग से कितने आदमी मरे। लाखों आदमियों की मृत्यु का कारण मौसमी बुख़ार बता दिया जाता है। पर यह निःसन्देह ग़लत है। इस संख्या में और तरह के बुख़ार से भी मरे हुए लोग शामिल समझना चाहिए। यही हाल और रोगों से मरे हुओं का भी है। रिपोर्टों में दिखाये गये अङ्कों पर सरकार का विश्वास ही नहीं। यदि कहीं प्लेग फैल जाय और उससे लोग धड़ाधड़ मरें; पर रिपोर्टों में मरने का कारण बुख़ार बता दिया जाय तो तन्दुरुस्ती का महकमा क्या करे? वह अन्धा बना बैठा रहेगा और प्लेग को दबाने या दूर करने का कोई उपाय न कर सकेगा।

इस अन्धेरखाते में प्रकाश पहुँचाने की कोई सूरत सरकार को नहीं देख पड़ती। जनन-मरण की रिपोर्ट करते हैं चौकीदार साहब। उनकी संख्या में हज़ारों की कमी कर दी गई है। दो चार मुछन्दरों को बरख़ास्त न करके सरकार ने ३) महीना पानेवाले चौकीदारों ही पर हाथ साफ़ किया है। अब वह शिकायत करने चली है कि जनन-मरण की रिपोर्टें सही सही नहीं होतीं। दुहाई सरकार की, किफ़ायतशारी के लिहाज़ से, चौकीदारों की इतनी तख़फ़ीफ न होनी चाहिए थी। ख़ैर हुई भी थी तो जनन-मरण की रिपोर्टों का काम और ही लोगों को सिपुर्द करना था। और कुछ न किया था तो तन्दुरुस्ती के महकमे में कुछ इन्स्पेक्टर ही मुक़र्रर कर दिये जाते जो समय समय पर देहात में दौरा करके इस बात की जाँच करते कि कहाँ प्लेग है, कहाँ इन्फ़्लुयंज़ा है और कहाँ किस रोग से लोग अधिक मर रहे हैं। यह कुछ न करके तन्दुरुस्ती के महकमे की रिपोर्ट पर नुक़्ताचीनी करना सरकार को शोभा नहीं देता और रिपोर्टों की अविश्वसनीयता पर आँसू बहाना डाइरेक्टर साहब को भी शोभा नहीं देता। और क्या लिखें। यही हमारे देश की बात है।

समीक्षक

अम्बिकाऽपराध-क्षमा-प्रार्थना।

(१)

'शैशव' व्यतीत हुआ बहुत कुछ तो तुम्हारी गोद में;
कुछ गोद से नीचे उतर कर रंगने के मोद में।
'कैशोर' भी सारा गया आमोद और प्रमोद में;
योंही बिताया 'बाल्य' मैंने व्यर्थ बाल-विनोद में॥
कुछ भी नहीं सेवा तुम्हारी कर सका तब, हाय! मा!
है प्रार्थना मेरी यही—अपराध मेरा हो क्षमा॥

(२)

जब प्राप्त 'नवयौवन' हुआ, बदले विधान विहार के;
नित वेश-भूषा-हित जुटे साधन अनेक प्रकार के।
जाग्रत हुए सोते हुए कुछ भाव स्वेच्छाचार के;
जो कुछ सुहाये अर्थ मैं करते रहा 'अधिकार' के॥
पर कुछ नहीं मैंने किया तब भी तुम्हारे अर्थ, मा!
है प्रार्थना मेरी यही—अपराध मेरा हो क्षमा॥

(३)

'तारुण्य' में स्मर ही रहा स्वीकृत हृदय-नायक मुझे,
जँचते रहे अपने सुहृद् सौन्दर्य्य-गुण-गायक मुझे।
होते रहे शृङ्गार-रस-मय भाव सुखदायक मुझे;
सुख-दुःख देते ही रहे नित पञ्चशर-शायक मुझे॥
तब भी नहीं आया मुझे कुछ भी तुम्हारा ध्यान, मा!
है प्रार्थना मेरी यही—अपराध मेरा हो क्षमा॥

(४)

'वार्द्धक्य' ने फिर, जब मुझे पुरुषार्थ से वञ्चित किया,
क्षय नित्य होता ही गया जो द्रव्य था सञ्चित किया।
तब क्या नहीं मैंने, अहो! सन्तान-पालन-हित किया?
है याद मुझको भी न अब था क्या उचित-अनुचित किया॥
पर याद है, आया नहीं था मैं तुम्हारे काम, मा!
है प्रार्थना मेरी यही—अपराध मेरा हो क्षमा॥

(५)

अब, अन्त के इस काल में, निःशक्त होकर क्या करूँ?
नित काल सिर पर नाचता है, कौन जाने कब मरूँ?
हा! इस दुरन्त कृतघ्नता के सिन्धु को कैसे तरूँ?
कोई बतावे, इस दशा में, धैर्य्य मैं कैसे धरूँ?
सम्भव नहीं ऋण से तुम्हारे हो सकूँ निर्मुक्त, मा!
है प्रार्थना मेरी यही—अपराध मेरा हो क्षमा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

यद्यपि तुम्हारे ही उदर से जन्म यह मैंने लिया;
यद्यपि तुम्हारा ही दयामय दूध वर्षों तक पिया।
तो भी सुतोचित कार्य्य कोई भी नहीं मैंने किया;
उल्टा, तुम्हें मैंने निरन्तर कुछ न कुछ दुख ही दिया!
होगा नहीं मुझसे अधिक खोटा किसी का पुत्र, मा!
है प्रार्थना मेरी यही—अपराध मेरा हो क्षमा॥

(७)

मन्दिर तुम्हारा जीर्ण है, वह भी, कपाट-विहीन है;
भीतर तथा बाहर जहाँ देखो अतीव मलीन है।
सब साज पूजा-पाठ का खंडित तथा प्राचीन है;
सन्तान मुझ-सी हीनमति लोभादि में लवलीन है॥
यह देख कर भी कुछ नहीं मुझसे हुआ उद्योग, मा!
है प्रार्थना मेरी यही—अपराध मेरा हो क्षमा॥

(८)

मैं देखता था सब तरफ़ फैला हुआ अज्ञान है;
सन्तति तुम्हारी कर रही निज धर्म्म से प्रस्थान है।
उसको तुम्हारे मान का भी तो नहीं कुछ ध्यान है;
जैसा उसे सम्मान है वैसा उसे अपमान है॥
यह देख कर भी हाय! 'जड़वत्' मैं रहा निश्चेष्ट, मा!
है प्रार्थना मेरी यही—अपराध मेरा हो क्षमा॥

(९)

मैं जानता था ख्यात तुम संसार में सुख-मूल हो;
कंटकमयी इस सृष्टि में तुम कल्पतरु के फूल हो।
हैं धन्य उनके भाग्य जिनके तुम सदा अनुकूल हो;
चिन्ता नहीं, यदि दैव भी उनके कभी प्रतिकूल हो॥
यह जान कर भी मैं बना 'निर्मम' तथा 'निरपेक्ष,' मा!
है प्रार्थना मेरी यही—अपराध मेरा हो क्षमा॥

(१०)

मैं जानता था हो तुम्हीं जगदेक मङ्गल-कारिणी,
दुःखौघ-भव-भय-हारिणी, दुःखार्त्त-दुःख-निवारिणी।
पहचानता था हो तुम्हीं स्वर्गीय शान्ति-प्रसारिणी,
'षट्कर्म्म'*धर्म्मप्रचारिणी, 'षड्रिपु'† निचय-संहारिणी॥
तो भी न अपनाया कभी मैंने तुम्हारा पक्ष, मा!
है प्रार्थना मेरी यही—अपराध मेरा हो क्षमा॥

'सत्कविदास'

---

* स्वाध्याय, अध्यापन, अनुष्ठान करना,—कराना, दान और प्रतिग्रह। ये ब्राह्मणों के अनिवार्य्य कर्म्म हैं।

† काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य्य।—लेखक।

५००० वर्ष पूर्व का पञ्जाब।

(हरप्पा और महेंजोदारो में अद्भुत आविष्कार)

कोटि कोटि आस्तिक आर्यों का विश्वास है कि हमारी सभ्यता सबसे अधिक प्राचीन है और एक समय उसका सारे संसार में अखण्ड राज्य रह चुका है। वे डार्विन महाशय के विकास-सिद्धान्त को (कम से कम आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टि से) भ्रमात्मक समझते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि आज से १,९७,२९,४९,०२५ वर्ष पहले, सृष्टि के आरम्भ में, जगत्पिता ने अपनी प्रजा के पथप्रदर्शन के लिए वैदिक ज्ञान का प्रकाश आदित्य, अग्नि, वायु और अङ्गिरस नाम के चार महर्षियों के हृदयों में किया था, जिन्होंने उसे फिर आगे फैला दिया। प्रत्येक आर्य-सन्तान यह मानती है कि महाभारत-युद्ध को हुए ५००० से अधिक वर्ष हो चुके हैं, और राम-राज तो उससे भी बहुत पहले, त्रेतायुग में, था। परन्तु योरपीय विद्वान् आर्यों के इस विश्वास को केवल अन्ध-श्रद्धा समझते हैं। उनका भारतीय शिष्य-मण्डल भी उनकी हाँ में हाँ मिलाकर उनसे अपनी विद्वत्ता और निष्पक्षता का प्रमाण-पत्र पाता है। ईसाई और मुसलमानी धर्म-ग्रन्थ तो सृष्टि की उत्पत्ति को ही ६००० वर्ष से अधिक की नहीं मानते हैं, इसलिए उनके अनुयायियों के लिए आर्य-सभ्यता को इतनी प्राचीन मानना कठिन जान पड़ना स्वाभाविक है। परन्तु पक्षपात से रहित होकर शास्त्रीय अन्वेषण करने की डींग मारनेवाले पाश्चात्य संस्कृतज्ञ भी वैदिक ज्ञान को ईसा से १२०० वर्ष पूर्व से अधिक प्राचीन नहीं मानते। देखिए, श्रीयुत आर्थर एन्थनी मेकडानल महाशय क्या लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यहाँ ऊपर की सीमा ऋग्वेद के प्राचीनतम मन्त्रों की तिथि है। वह तिथि अनिश्चित है, परन्तु मेरा यह प्रत्यय है कि यह १२०० ईसा-पूर्व से अधिक प्राचीन नहीं। अभी तक वैसा ही दृढ़ है। प्रोफ़ेसर ह्यूगो विङ्क्लर ने एशिया-माईनर के अन्तर्गत बोग़ज़-कोई नामक स्थान में, सन् १९०७ में, जो आविष्कार किये हैं

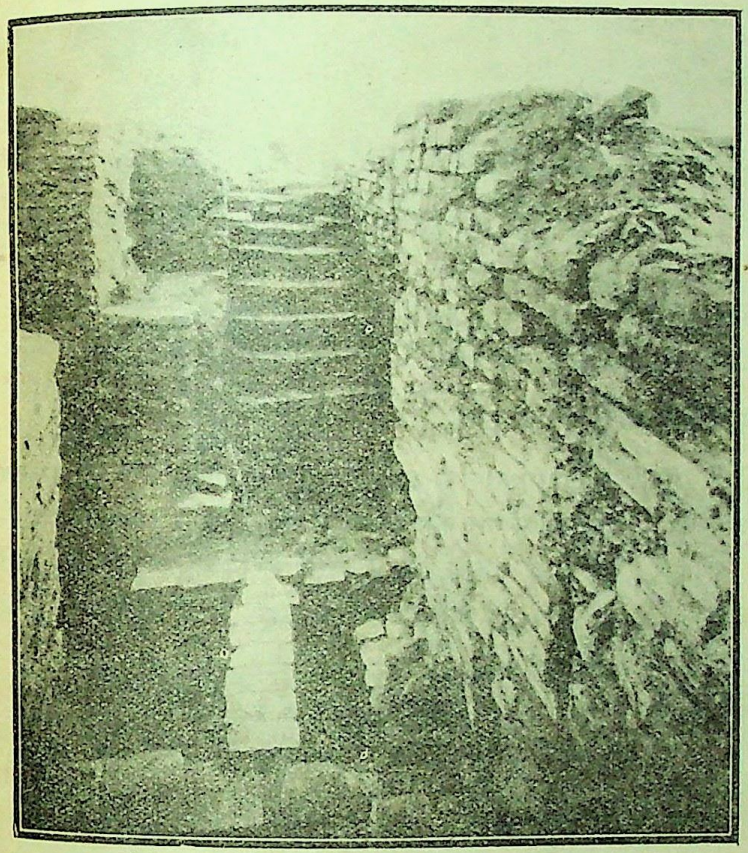

ईसा के तीन शताब्दी पहले का भग्नावशेष।

उनसे मेरा प्रत्यय तनिक भी डांवाडोल नहीं हुआ। उस विद्वान् को वहाँ एक शिला-लेख मिला है। वह कोई १४०० वर्ष ईसा-पूर्व का है। उसमें उन्होंने मि-ति-र, उरु-न, इन्-द-र, और न-स-अत-ति-इअ ऐसे कई देवताओं के नाम पढ़े हैं। ये नाम वेद के प्रसिद्ध देवता मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्यौ के नामों के अनुरूप हैं। इन नामों के मिलने से तीन अनुमान किये जा सकते हैं। सम्भव है, वे वैदिक भारत से लिये गये हों; उस अवस्था में वैदिक धर्म भारत में ईसा के १४०० वर्ष पूर्व से बहुत पहले फैला हुआ होगा, चाहे जो वैदिक मन्त्र हम तक पहुँचे हैं उनकी रचना उस काल से पहले न हुई हो। परन्तु ये नाम भारत से चल कर एशिया माईनर पहुँचे, यह एक ऐसी असम्भाव्य प्रतिज्ञा है जिसे अवश्यही दूर कर देना चाहिए। दूसरा अनुमान यह है कि हो सकता है कि ये नाम उस आदि ईरानी-काल के हों जब कि ईरानी भारतीयों से अलग हो चुके थे, परन्तु उनकी भाषा अभी अवस्ता की ध्वनि-अवस्था (phonetic stage) को नहीं पहुँची थी। यह वाद, भूगोल तथा कालगणना दोनों शास्त्रों की दृष्टि से, अतीव सम्भाव्य जान पड़ता है। इससे व्यक्त होता है कि भारतीय शाखा ईरानी शाखा से अलग हो चुकी थी, न कि भारत में प्रवेश कर चुकी थी। तीसरे, ये नाम ईरानी और भारतीय भाषाओं में समान होने से इण्डो-इरानियन काल के ठहराये जा सकते हैं जब कि दोनों शाखायें एक ही जाति के रूप में ईरान में रहती थीं। इसके बाद उनके अलग अलग होने, भारत में जाकर बसने और भारत के उत्तर-पश्चिम में वैदिक साहित्य के आरम्भ के लिए, दो शताब्दियाँ देनी पड़ेंगी।"

(Vedic Index of names and subjects, by Arthur Anthony Macdonell, M. A., Ph. D., and A. B. Keith. M. A., D. C. L. Preface, p. VIII.)

पाश्चात्य विद्वानों के उपर्युक्त मत का खण्डन करने के लिए आर्यों के पास अपने ऐतिह्यों और धर्म्म-ग्रन्थों के सिवा और कोई चीज़ न थी। उनके पास पुरातत्त्व-सम्बन्धी ऐसा कोई अकाट्य प्रमाण न था जिससे वे अपनी सभ्यता को १४०० वर्ष ईसा-पूर्व से अधिक प्राचीन सिद्ध कर सकते। परन्तु हाल में पञ्जाब के मिण्टगुमरी-ज़िले के अन्तर्गत हरप्पा में और सिन्ध के लरकाना-ज़िले के अन्तर्गत महेंजोदारो में भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातत्त्व-विभाग की ओर से जो खुदाई हुई है और उस खुदाई से जो जो प्राचीन वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं उन्होंने आर्य-सभ्यता की तिथि को पुरातत्त्व की दृष्टि से भी पाँच सहस्र वर्ष पीछे ले जा फेंका है। भारत में पुरातत्त्व-

मार्शल महाशय के इस लेख में उन पूर्व-ऐतिहासिक वस्तुओं का पूरा पूरा वर्णन है। उनके लेख का अनुवाद आगे दिया जाता है—

"जिस प्रकार शिलमेन (Schliemann) को टिराईन्स

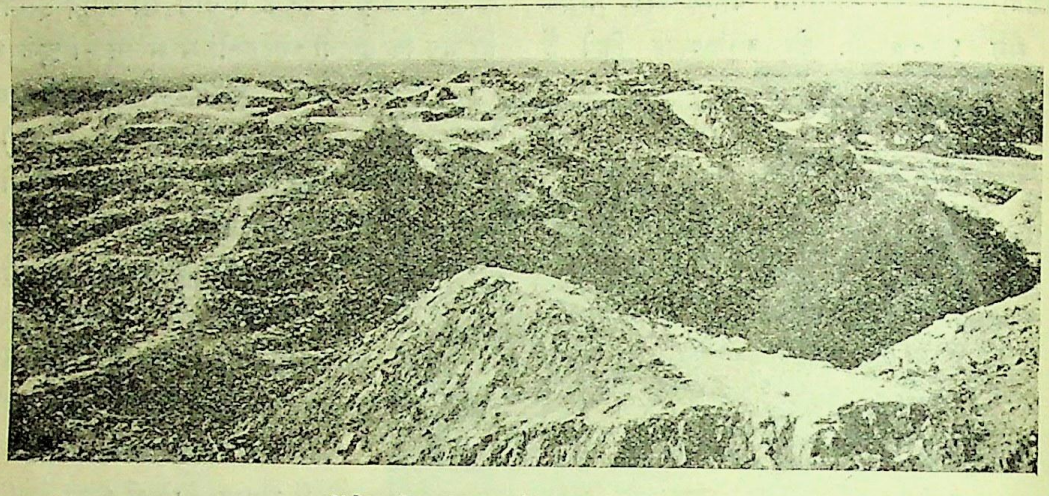

महेंजोदारो की खुदाई का एक स्थान।

विभाग के डायरेक्टर जनरल सर जॉन मार्शल, के-टी, सी० आई० ई० ने इँग्लैंड के 'इलस्ट्रेटेड लण्डन न्यूज़' नामक साप्ताहिक पत्र की २० वीं सितम्बर १९२४ की संख्या में उपर्युक्त दोनों स्थानों से निकली हुई पुरानी वस्तुओं के

(Tiryns) तथा माईसीनी (Mycenae) में या स्टाइन को तुर्किस्तान के मरुस्थल में चिरविस्मृत सभ्यता के अवशेषों पर प्रकाश डालने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वैसा सौभाग्य पुरातत्त्व-वेत्ताओं को बहुत बार नहीं प्राप्त हुआ

भिन्न भिन्न टूटे-फूटे खिलौने, महेंजोदारो।

आधार पर एक लेख लिखा है। उसका शीर्षक है 'चिरकाल से भूली हुई सभ्यता पर पहला प्रकाश—भीतर के अज्ञात पूर्व-ऐतिहासिक भूत के नवीन आविष्कार'।

करता। परन्तु इस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो हम सिन्धु-नदी के मैदानों में ऐसा ही आविष्कार करने को हैं।

इस समय तक हमारा भारतीय पुरातत्त्व-सम्बन्धी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

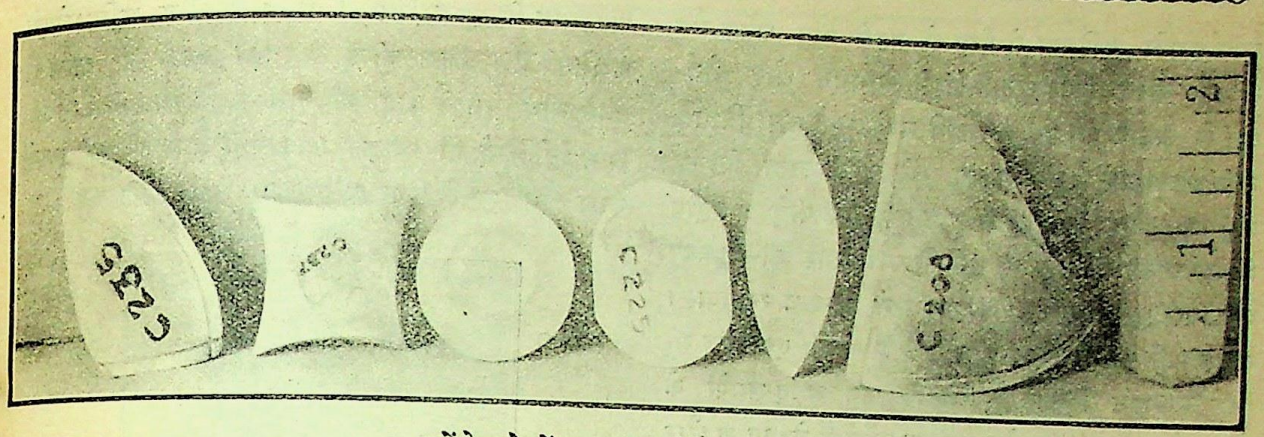

महेंजोदारो में प्राप्त शङ्ख के फुटकर आभूषण।

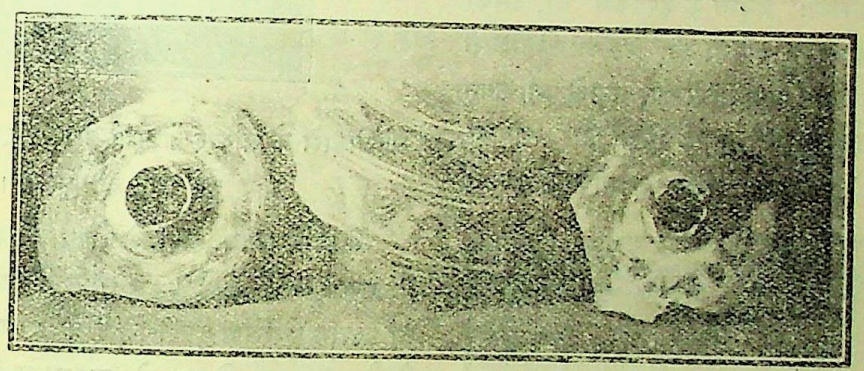

महेंजोदारो में प्राप्त मिट्टी के टूटे-फूटे बर्तनों के अंश।

क़बर में रक्खे जानेवाले कुछ पात्र, महेंजोदारो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान हमको कठिनता से ईसा से पहले तीन शतक तक ले जा सका है। यूनानियों के आगमन और मौर्य-वंश के उत्थान के पूर्व के लम्बे लम्बे युगों की; विशाल नदी-उपत्यकाओं में सभ्यता के जन्म तथा विकास की, उत्तर और पश्चिम से एक दूसरे के पीछे प्रायद्वीप में आनेवाली जातियों की संस्कृति के विस्तार की—इनकी और उस धुन्दले तथा अस्पष्ट भूत से सम्बन्ध रखनेवाली समस्याओं की पुरातत्त्व-शास्त्र ने हमें केवल एक मन्द सी झिलमिलाहट दिखाई है; क्योंकि उन आदि-समयों के प्रायः जो एक-मात्र अवशेष हम तक पहुँचे हैं वे पाषाण और ताम्रकालों के भद्दे यन्त्र, प्रायद्वीप के दक्षिण में पूर्व-ऐतिहासिक क़ब्रों के समूह और बिहार में राजगृह के निकट कुछ स्थूल विशाल दीवारें (cyclopian walls) ही हैं। इसके विपरीत ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर, सर्वतोभावेन, सामान्यतः मनुष्य के हस्तकर्म की, उसकी धर्म तथा गृह-सम्बन्धी वास्तुविद्या की, उसकी रचनाकारी कलाओं की, उसके शस्त्रों और पात्रों की, उसके व्यक्तिगत अलङ्कारों और आभूषणों की, उसके सिक्कों और रत्नों की, और उसके लिखने की वर्णमाला की ख़ासी स्पष्ट कल्पना

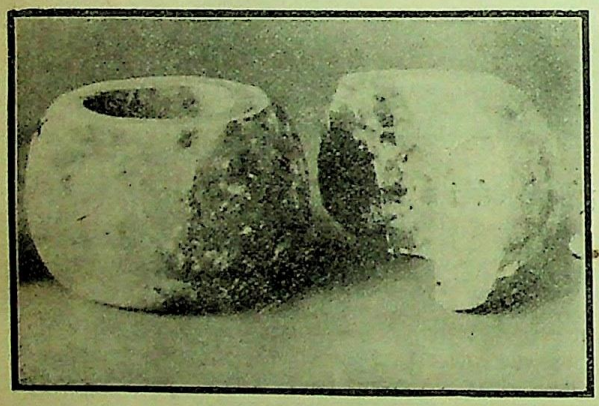

पत्थर के अद्भुत बर्तन।

हमें है। जब कभी पुरानी चीज़ें मालूम हो जाती हैं—इस बात का कुछ विचार नहीं कि वे किस जाति या किस धर्म की हैं—तो विश्वासपूर्वक और अपेक्षाकृत सङ्कीर्ण सीमाओं के अन्दर उनका समय या श्रेणी निरूपित करना सदा सम्भव होता है।

परन्तु, अब, पञ्जाब के दक्षिण में और सिन्ध में अकस्मात् बिलकुल निराली प्रकार की चीज़ें भूमि खोदने से मिली हैं। जिन चीज़ों का हमें पहले से ज्ञान है उनके साथ इनकी कोई भी बात नहीं मिलती। इनके साथ ऐसे कोई भी स्वीकृत तत्त्व नहीं मिले जिनसे इनके काल तथा मूल के स्थिर करने में सहायता मिल सके।

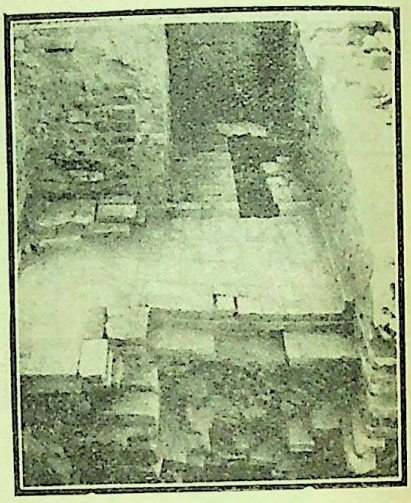

महेंजोदारो के मन्दिर के फ़र्श और चमकीली ईंटों से पटी हुई जल की मुहरी।

ये दोनों स्थान, जहाँ ये चौंका देनेवाली चीज़ें निकली हैं, एक दूसरे से कोई ४०० मील के अन्तर पर हैं। एक तो पञ्जाब के मिण्टगुमरी-ज़िले के हरप्पा नामक स्थान में है और दूसरा सिन्ध के लरकाना-ज़िले के महेञ्जोदारो नामक स्थान में। इन दोनों जगहों में दूर दूर तक "भिड़" अर्थात् बनावटी टीले फैले हुए हैं। ये किसी समय के आबाद शहरों के अवशेष हैं। इनके इर्द-गिर्द भूमितल से साठ साठ फुट ऊँचा मलवा इकट्ठा हो गया है। इससे अनुमान होता है कि ये नगर कई सौ वर्ष तक आबाद रहे होंगे। ऐसे टीलों के समूह सिन्धु-नदी के मैदान में, मेसोपोटामिया और नील-नदी की उपत्यका के सदृश ही, बहुतायत से पाये जाते हैं। वे प्रधान धारा तथा उसकी उपनदियों के पुराने, सूखे हुए पात्रों के किनारों के साथ साथ, न केवल सिन्ध ही में बरन बहावलपुर-राज्य तथा पञ्जाब में भी, विशेषरूप से सुस्पष्ट हैं।

इसलिए भारत के इस भाग में खुदाई के सुयोग प्राय असीम समझे जा सकते हैं; और जब यह खुदाई सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

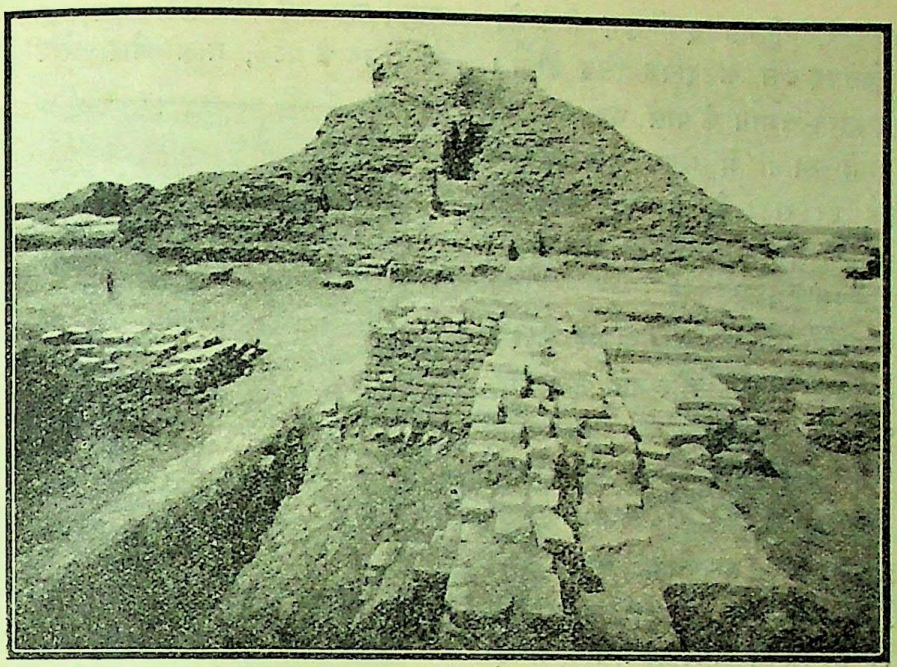

नदी के सूखे पेट के द्वीप पर बौद्ध-स्तूप, महेंजोदारो।

महेंजोदारो और बिलोचिस्तान के प्राचीय बर्तनों की तुलना। चित्र में नीचे की पंक्ति में बिलोचिस्तान में प्राप्त बर्तनों के खण्डांश हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सुव्यवस्थित रूप से होगी तब इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यह क्षेत्र विशेषरूप से फलदायक सिद्ध होगा। इस समय तक, पुरातत्त्व-विभाग के पास धन की कमी होने के कारण, दोनों स्थानों में केवल परीक्षारूप से बहुत थोड़ी खुदाई हो सकी है, इसलिए खोद कर निकाले हुए अवशेष भी अभी तक उतने ही परिमित हैं। परन्तु वे सब आशाजनक हैं।

महेञ्जोदारो में पुराने नगर का बड़ा बाज़ार नदी के दक्षिणी किनारे से दक्षिण-पूर्व की ओर जाते हुए राज-मार्ग के रूप में पहचाना जा सकता है। इसके दोनों किनारों पर मकान हैं। जहाँ यह राजमार्ग नदी की ओर घाटों पर जा कर निकलता है, वहाँ आविष्कारक श्रीयुत बनरजी के अनुमानानुसार राज्यभवन था। इसके मुक़ाबले में, नदी के पात्र में, जो इस समय सूखा पड़ा है, अनेक द्वीप हैं, जिनमें नगर के प्रधान मन्दिर थे। उनमें सबसे ऊँचा और निस्सन्देह सबसे मुख्य एक बहुत भारी बौद्ध स्तूप था। यह एक ऊँचे आयत चबूतरे पर बना हुआ था। इसके चारों ओर और छोटे छोटे मन्दिर और भिक्षुओं के रहने के कमरे थे।

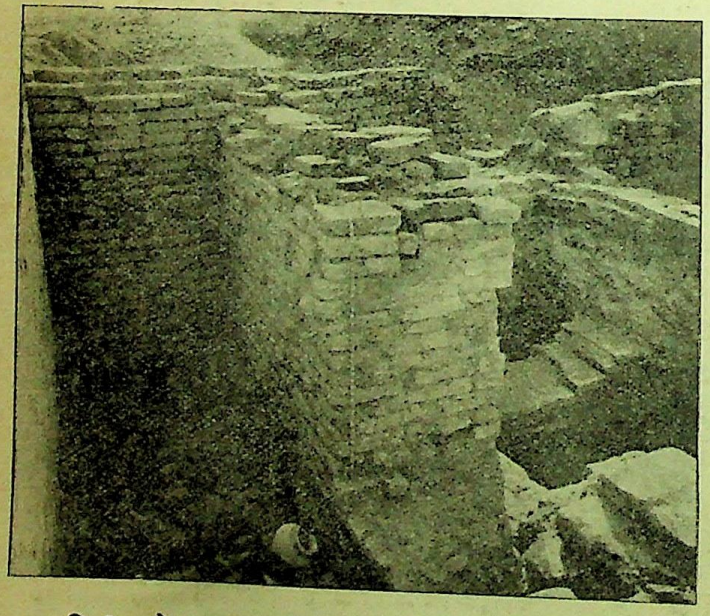

द्वितीय और तृतीय कालीन ईंट की दीवारें, महेंजोदारो।

ये खण्डहर लगभग ईसा की दूसरी शताब्दी के हैं जब कि भारत के पश्चिमोत्तर में कुशनों का प्राधान्य था; और जो वस्तुएँ अब तक मिल चुकी हैं—विशेषतः शव की राख को डालने के मटके, ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपि में अङ्कित

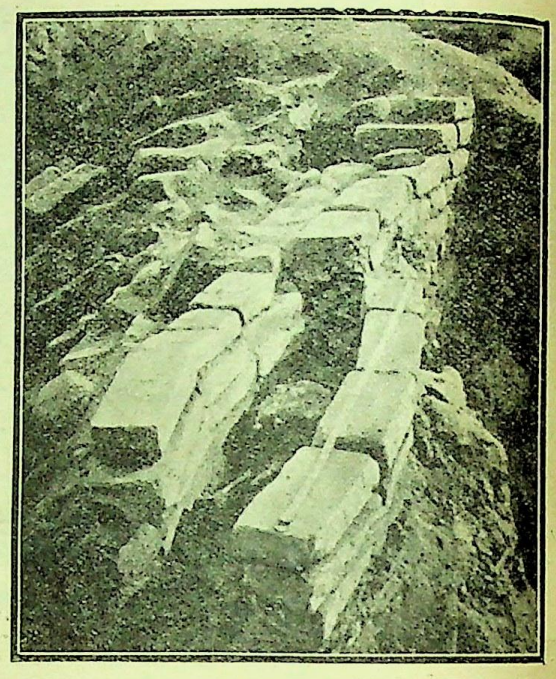

महेंजोदारो के एक कमरे की दीवार में तीन फ़ुट लम्बी एक क़ब्र।

मण्डोदक, चित्रों (painted frescoes) के अवशेष, नवीन प्रकार के सिक्के और अन्य अनोखी चीज़ें—उनसे अनुमान करने से इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता कि और अधिक अन्वेषण का परिणाम यह होगा कि भारतीय इतिहास के इस बहुत ही अस्पष्ट काल पर सुखद प्रकाश पड़ेगा।

इसमें सन्देह नहीं कि ये अवशेष सम्भवतः बहुमूल्य सिद्ध होंगे, परन्तु इस समय महेञ्जोदारो की वास्तविक दिलचस्पी इनके कारण नहीं। उपर्युक्त बौद्ध-स्मृति-चिह्नों के बहुत नीचे गहराई में या इस जगह के दूसरे भागों में स्वयं पृथ्वीतल के निकट दिखाई देनेवाली मकानों की कम से कम दो और तहें हैं। ये मकान और भी प्राचीन काल के हैं। इनकी ईंटों की बनावट ऐसी है कि उसके गुण और प्राचीनता के विषय में इस समय केवल अनुमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

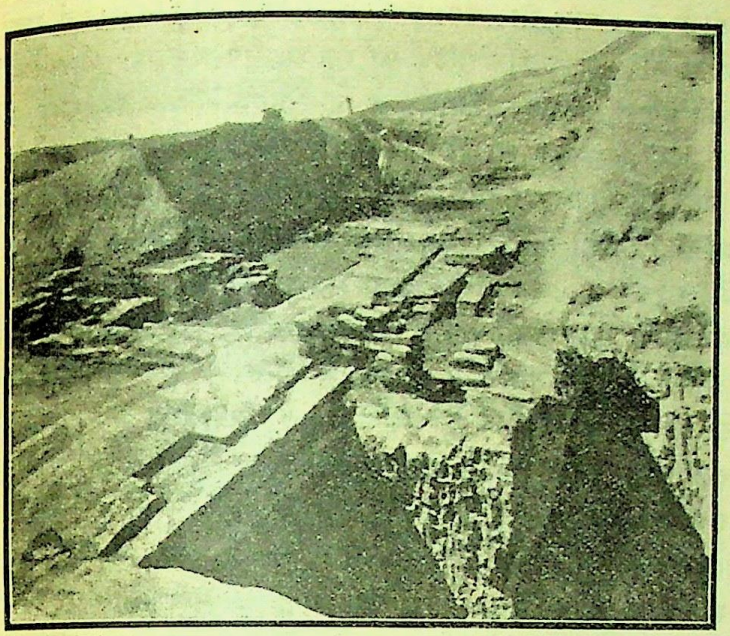

हरप्पा में खुदाई का स्थान।

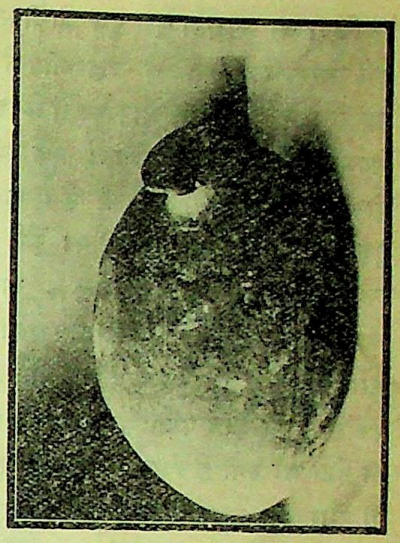

पानी ठंढा करनेवाली सुराही।

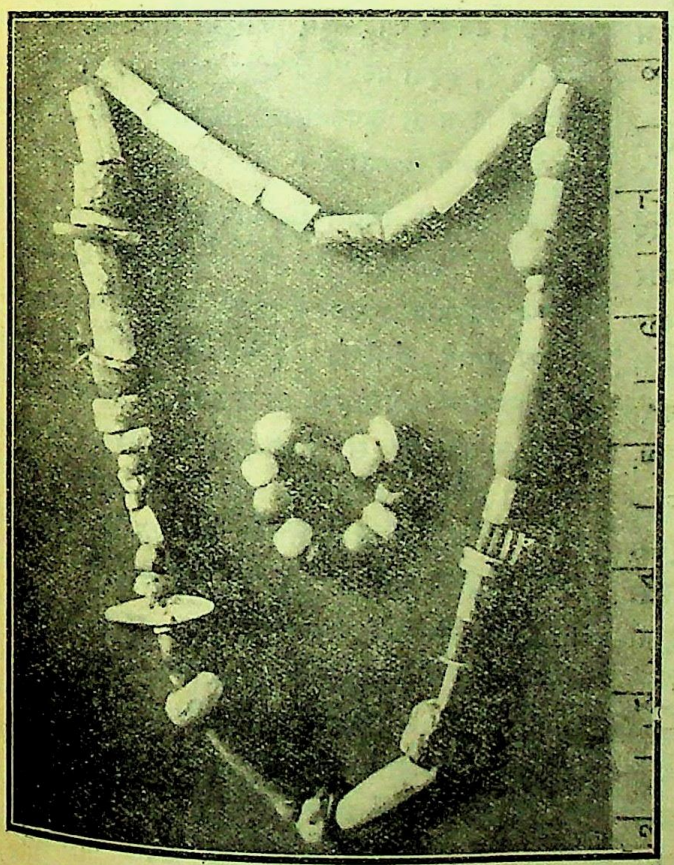

लाल पत्थर, सीप आदि का हार, महेंजोदारो।

हरप्पा में प्राप्त मिट्टी का एक बर्तन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही किया जा सकता है। इन प्राचीनतर रचनाओं में से एक समूह विशेषरूप से उल्लेखनीय है। नाना प्रकार की महाशालाओं, रास्तों और कमरों के अतिरिक्त इसमें एक पिण्डाकार रचना—विशेषतः एक मन्दिर—है। इसकी दीवारें सात-आठ फ़ुट मोटी हैं। उनमें से कई नालियाँ गुज़रती हैं। श्रीयुत बनरजी का मत है कि ये मन्दिर में रक्खी हुई मूर्ति को नहलाने के बाद पानी को बाहर निकालने के लिए बनाई गई थीं। इसी समूह के एक दूसरे भाग में छोटी छोटी ग्लेज़्ड या रोग़नी ईंटों की बनी हुई एक वेदी सी जान पड़ती है। इसकी नाली भी उसी प्रकार की ईंटों की बनी है। इन पुरानी इमारतों की शकल कैसी थी और इस समय वे किस रूप में सुरक्षित हैं, इसकी कुछ कल्पना इसी लेख में दिये हुए दो चित्रों से थोड़ी-बहुत की जा सकती है। इनमें से एक में उपर्युक्त मन्दिर के दक्षिण-पश्चिम की ओर एक सीढ़ी है, और सामने नाली है, जिस पर से संगमरमर की छत उठा ली गई है। दूसरे में उसी मन्दिर के पश्चिमी हर्म्यमुख पर एक खाड़ी में रोग़न की हुई ईंटों का फ़र्श दिखलाया गया है।

हरप्पा में श्रीयुक्त दयाराम साहनी की खुदाई ने सात-आठ क्रमिक तहें दिखलाई हैं। इनसे प्रकट होता है कि यह जगह ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी से कई सौ वर्ष पहले चिरकाल तक और निरन्तर आबाद रही है; और इस लम्बे काल के एक बहुत बड़े भाग में अच्छे प्रकार की पकी हुई ईंटें मकान बनाने के काम में लाई जाती रही हैं। परन्तु हरप्पा की इस जगह को रेलवे के ठेकेदारों और दूसरे लोगों की लूट-पाट से बहुत हानि पहुँची है; और जो रचनायें खोद कर निकाली गई हैं वे महेञ्जोदारो की अपेक्षा अधिक खण्डित अवस्था में हैं। दूसरी ओर छोटी छोटी पुरानी चीज़ें रूप में महेञ्जोदारो की चीज़ों से प्रायः अभिज्ञ हैं, वरन उनमें से कुछ तो अधिक अच्छी तरह से सुरक्षित हैं। दोनों जगहों से निकलनेवाली छोटी छोटी प्राचीन वस्तुएँ ये हैं—नये प्रकार के चित्रित और सादे मिट्टी के बर्तन, कुछ हाथ के बनाये हुए और कुछ चाक पर बनाये हुए; मटियाले लाल रङ्ग के पके हुए मिट्टी के बर्तन; खिलौने; नीले काँच, लेई और सीपी की चूड़ियाँ; नये नमूने के सिक्के या निशान; चाकू और चकमक की कीलें; पाँसे और शतरञ्ज के मुहरे; पत्थर की अँगूठियों का एक अद्भुत अनुक्रम; और, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, वे नाम-मुद्रायें जिन पर खोद का कुछ लिखा हुआ है। बहुत पीछे की तहों के सिवा, लोहा बिलकुल नहीं मिलता, और किसी भी प्रकार की धातु की चीज़ें, विशेषरूप से हरप्पा में, बहुत ही थोड़ी हैं।

इन प्राचीन वस्तुओं में से अधिकतम मूल्यवान् पत्थर की नाम-मुद्रायें हैं, केवल इसलिए नहीं कि उन पर एक अज्ञात चित्रमयी लिपि में उपाख्यान खुदे हुए हैं, वरन इसलिए कि उन पर खोदी हुई आकृतियाँ और खोदने की शैली ऐसी है कि वैसी अब तक पहले कभी भारतीय कला में देखने को नहीं मिली। उनमें से कुछ तो साबूनी पत्थर (steatite) की हैं, कुछ हाथी-दाँत की, और कुछ पत्थर और लेई की। अधिकांश मुद्रायें वर्गाकार हैं और उनकी पीठों पर एक एक कोका है, जिसमें धागा डालकर लटकाने के लिए एक एक बारीक छिद्र है। उन पर खोदे हुए जन्तुओं में से कई एक पर तो साँड़ हैं, कइयों पर "एक शृङ्ग" बैल; परन्तु यह बात द्रष्टव्य है कि न तो कूबड़वाला भारतीय साँड और न जल-भैंसा उनमें मिलता है।

इस अनोखी चित्रमयी लिपि के सम्बन्ध में, जो वर्णमाला का काम देती है, तीन बातें द्रष्टव्य हैं—पहली बात यह कि अनेक चित्रमय अक्षरों (pictographs) के साथ लगाये हुए निशान (जो व्यक्तरूप से स्वर-चिह्न हैं) विकास की अपेक्षाकृत उच्चावस्था को दिखलाते हैं; दूसरी महेञ्जोदारो से मिले हुए कुछ लेख हरप्पा के लेखों की अपेक्षा इस लिपि के विकास में बहुत पीछे की अवस्था को प्रकट करते हैं; तीसरी बात यह कि जितनी भी प्राचीन भारतीय लिपियाँ अब तक हमें ज्ञात हैं उनमें से ये किसी से भी नहीं मिलते। परन्तु इसके विपरीत ये भूमध्यसागर के क्षेत्र में मीसीनियन काल (Mycenæan age) के चित्रमय अक्षरों (पिक्टोग्राफ़ों) से कुछ सामान्य समता रखते हैं, यद्यपि इनमें से किसी एक चिह्न को वस्तुतः अभिन्न दिखलाना सम्भव नहीं।

इस चित्रमय लिपि के निदर्शन केवल नाम-मुद्राओं ही पर नहीं, वरन (महेञ्जोदारो में) ताँबे की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

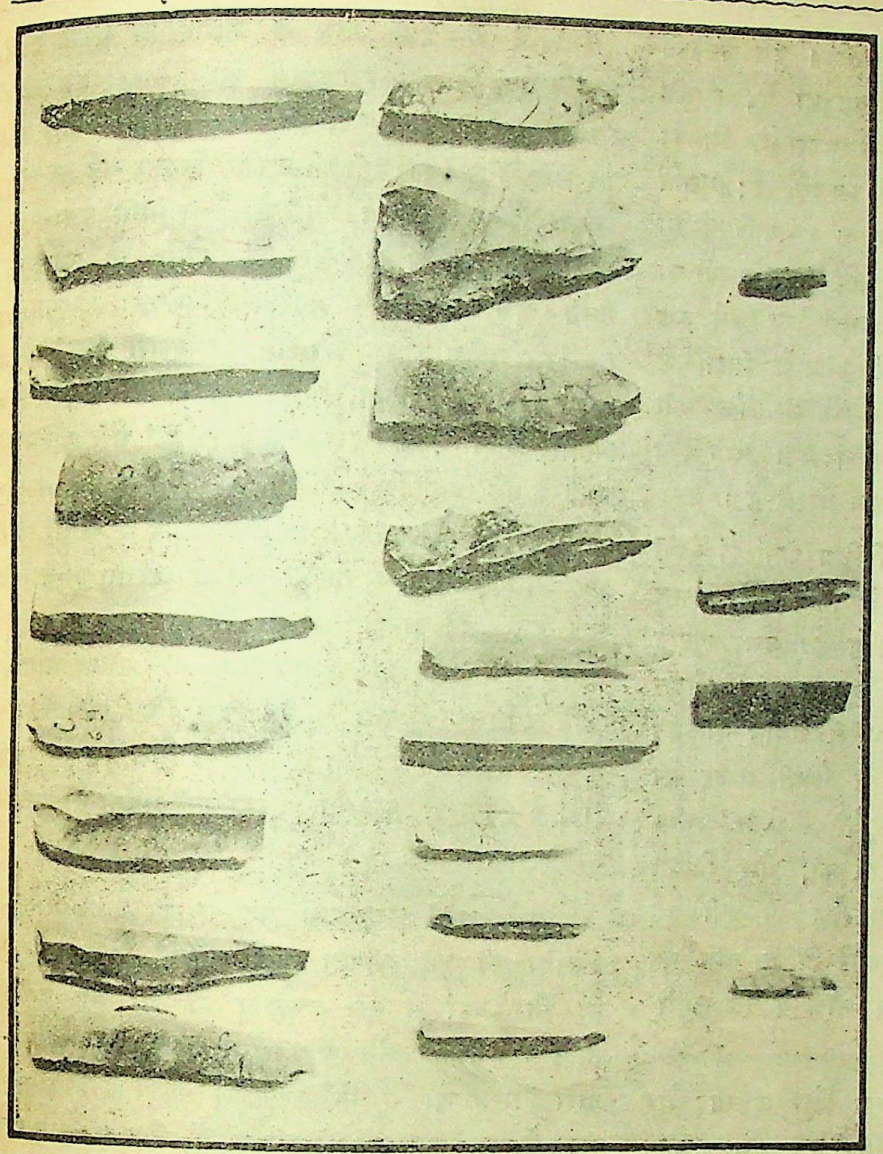

महेंजोदारो में प्राप्त अस्त्र-शस्त्र।

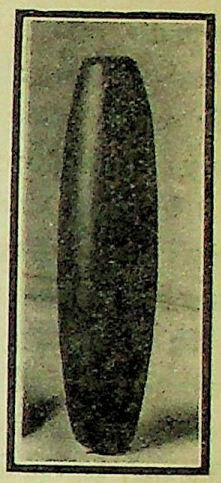

काले पत्थर का घुट्टा।

क़ब्र का एक लाल चमकीला बर्तन।

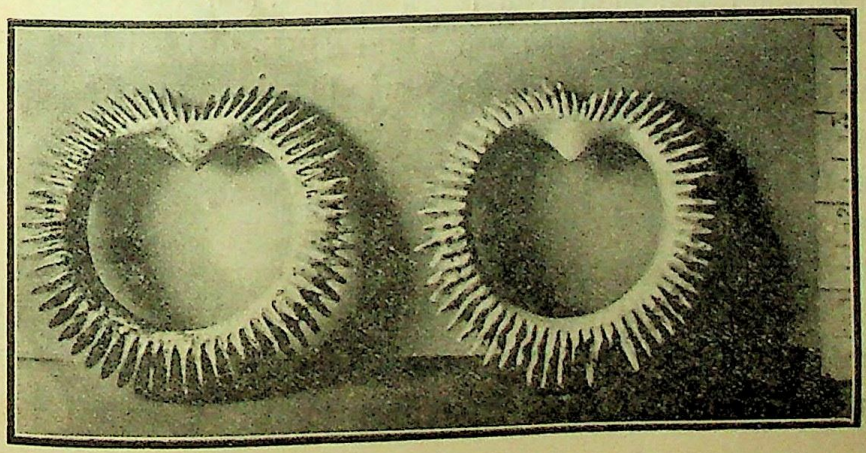

हरप्पा में प्राप्त नीले काँच की चूड़ियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ आयताकार सलाख़ों पर भी है। इन सलाख़ों को उनका आविष्कारक सिक्के मानता है, क्योंकि ये आदि भारतीय आयत सिक्कों के सदृश हैं, जिनको पंच-चिह्नित (punch-marked) कहते हैं; यद्यपि तोल में वे प्राचीन भारत में प्रयुक्त होनेवाले किसी भी स्वीकृत मान के अनुरूप नहीं। यदि श्रीयुत बनर्जी का यह प्रमेय सत्य प्रमाणित हो जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि ये सिक्के इस समय मिलनेवाले सिक्कों में प्राचीनतम सिद्ध हो जायँगे; क्योंकि अब तक किसी भी दूसरे देश में बने हुए जिन सिक्कों का पता लगा है वे सातवीं शताब्दी ईसा-पूर्व के लिडियन सिक्के हैं।

यद्यपि ऊपर कही पत्थर की विचित्र अँगूठियाँ दोनों स्थानों में बहुत बड़ी संख्याओं में निकली हैं, परन्तु वे किस काम में लाई जाती थीं, इसका उत्तर खुदाई करानेवालों को अभी तक नहीं सूझ सका। श्रीयुत बनर्जी का मत है कि इनका भर्तरी अर्थात् शाश्वत अग्नि के मन्दिरों के साथ किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध था। वे छोटे रूमाल के घेरे से लेकर पच्चीस सेर वज़न तक की, सभी डीलों की, और विविध प्रकार के रङ्गीन पत्थरों या संगमरमर की बनी हुई हैं; परन्तु उनके विषय में विशेषरूप से विचित्र बात यह है कि अनेक नमूनों में ऊपर और नीचे के तल लहरियादार हैं।

महेञ्जोदारो के स्थान का एक और द्रष्टव्य और अर्थान्वित रूप शव को दबाने की रीतियाँ हैं। आद्यतम काल में शव को ईंटों की समाधि में कूबड़ निकाल कर दबाया जाता था। यह समाधि प्रायः वर्ग या आयताकार होती थी। इसके बाद शव को जलाने की रीति चली जैसा कि आज-कल भारत में प्रायः किया जाता है। जलाने के पश्चात् राख को एक छोटे से कूज़े में डाल कर, दो तीन और कूज़ों के साथ, एक बहुत बड़े गोल मटके में रख दिया जाता था। इसके साथ और भी कई छोटे छोटे बर्तनों में भोजन, वस्त्र, इत्यादि डालकर दबा दिया जाता था।

ये अनोखी प्राचीन वस्तुएँ किस युग और किन लोगों की हैं, ये दो प्रश्न स्वभावतः ही पाठक के मन में उत्पन्न हो जाते हैं और इनके उत्तर भी बीसियों ही सूझते हैं। पहले प्रश्न के विषय में इस समय केवल इतना ही कहा जा सकता है कि सिन्धु-नदी की उपत्यका में जिस काल में यह संस्कृति फूल-फल रही थी उसका विस्तार कई शताब्दियों तक रहा होगा और उसकी समाप्ति ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी में मौर्य-वंश के उत्थान के पूर्व हुई होगी। एक ओर तो, आबादी की, विशेषतः हरप्पा के स्थान पर, अनेक क्रमिक तहों से, और दूसरी ओर, ताँबे के शस्त्रों की विद्यमानता, और दोनों जगहों में लोहे के सर्वथा अभाव से, और इस बात से कि ईंटों और कतिपय मिट्टी के पके हुए खिलौनों के सिवा, इन वस्तुओं में से किसी एक की भी मौर्यकाल या उसके बाद के कालों की ज्ञात प्राचीन चीज़ों से तुलना नहीं हो सकती; चित्रमय लेख उस आदि ब्राह्मी-लिपि से जिसका प्रयोग सम्राट् अशोक ने भारत के अधिकांश में किया था अथवा खोष्ठी-लिपि से जिसका प्रयोग उसने उत्तर-पश्चिम सीमान्त में अपने शिला-लेखों में किया था, पूर्णतः भिन्न है; इन सब बातों से इतना ही अनुमान किया जा सकता है, इससे अधिक नहीं।

दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में यह सम्भव है कि सिन्धु-उपत्यका की यह सभ्यता सुदूर पश्चिम में उत्पन्न हुई हो और वहाँ से इस उपत्यका में आ गई हो। मिट्टी के चित्रित बर्तन और दूसरी चीज़ें, जो महेञ्जोदारो और हरप्पा में निकलनेवाली चीज़ों के कुछ कुछ सदृश हैं, बलूचिस्तान में भी पाई गई हैं, और इस बात पर विश्वास करने के लिए भाषाशास्त्र-सम्बन्धी कारण हैं कि द्रविड़ जातियाँ (जो अनेक लेखकों के मतानुसार भूमध्य-सागर से सम्बद्ध थीं) बलूचिस्तान के रास्ते से भारत में आई थीं। स्वयं श्रीयुत बनर्जी के मत का झुकाव सिन्धु-उपत्यका की इस सभ्यता को पूर्वी भूमध्य-सागर की ईजियन संस्कृति (Ægean culture) के साथ प्रत्यक्ष-रूप से सम्बद्ध करने की ओर है, और वे समझते हैं कि क्रेट की माईनोअन प्राचीन वस्तुओं (Minoan antiquities of Cret) और उसके द्वारा महेञ्जोदारो में भूमि को खोद कर निकाली हुई प्राचीन वस्तुओं में— विशेषतः चित्रित मिट्टी के बर्तनों और चित्रमयी लिपि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

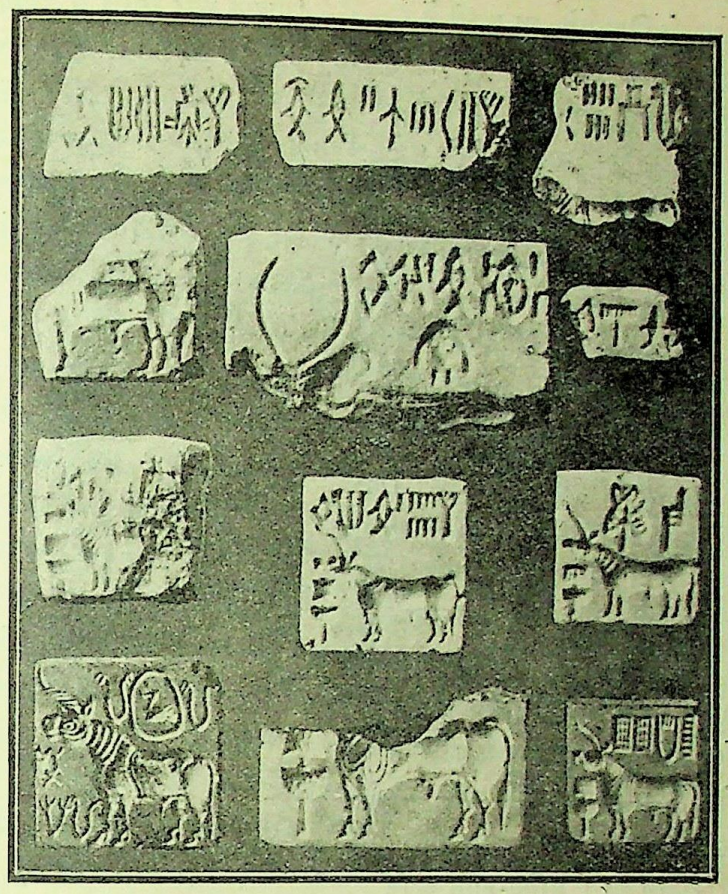

महेंजोदारो और हरप्पा में प्राप्त सीलें या ठप्पे।

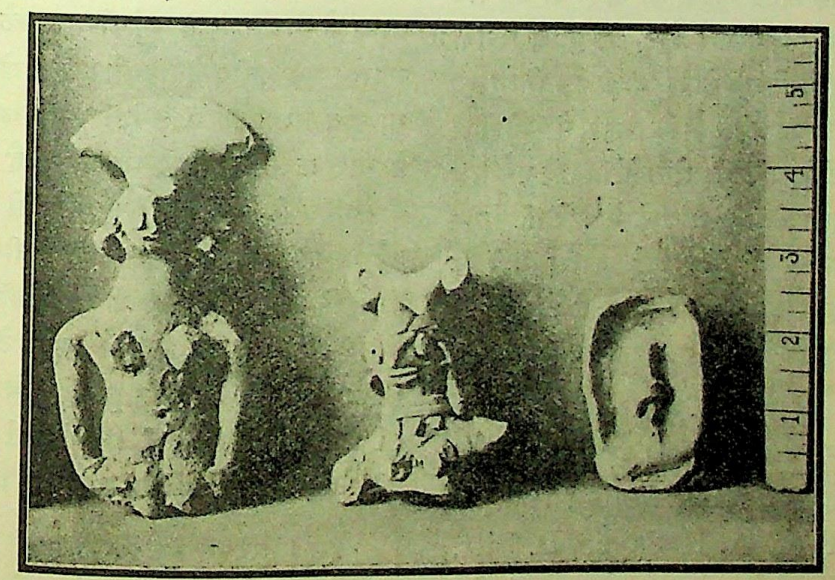

हरप्पा में प्राप्त कुछ आकृतियों के नमूने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिलालेखों में—विशिष्ट सम्पर्क दिखलाये जा सकते हैं। परन्तु ये सादृश्य सन्दिग्ध और वैकल्पिक हैं, और इतने हलके तथा अनुभव करने के इतने अयोग्य हैं कि इनसे दोनों क्षेत्रों के बीच के संस्कृति-विषयक सम्बन्ध का कोई अनुमान नहीं किया जा सकता।

जो बात सबसे अधिक सम्भाव्य जान पड़ती है वह यह है कि यह विस्मृत सभ्यता जिसकी पहली झलक हरप्पा और महेञ्जोदारो की खुदाइयों ने हमें दिखाई है, स्वयं सिन्धु-उपत्यका में ही विकसित हुई थी, और उस प्रदेश के लिए ठीक वैसी ही विशेष थी जैसी कि फरओनों की सभ्यता नील-नदी के लिए थी। मनुष्य-जाति ने पत्थर, तांबे, और पीतल के युगों में जो आश्चर्यजनक प्रगति की है उसमें संसार के उस समय के आबाद भागों की बड़ी बड़ी नदियों की उपत्यकाओं ने बड़ा ही महत्त्वपूर्ण भाग लिया है, क्योंकि इन्हीं उपत्यकाओं में घनी और बसी हुई आबादी का पालन-पोषण करने के लिए अतीव अनुकूल अवस्थायें—अर्थात्, भूमि की उर्वरता, जल की सदा बहुतायत और सुगम मेल-मिलाप—पाई गई थीं, और ऐसी ही बड़ी और बसी हुई जनता में सभ्यता के लिए प्रगति करने का सर्वोत्तम सुयोग था। मानव-जाति अपने विकास की प्रथम अवस्थाओं में जितनी नील, डेन्यूब, टिग्रिस, और यूफ़्रटीज़ आदि नदियों की ऋणी थी उसे सब कोई जानता है। परन्तु वह गङ्गा और सिन्धु की कितनी ऋणी थी, इसका अभी निश्चय होना बाक़ी है। सिन्धु की अवस्था में, सम्भवतः यह ठीक है कि बाहर से लोगों के एक दूसरे के बाद आते रहने से, मेसोपोटेमिया तथा मिस्र के सदृश, देशी संस्कृति को उन्नत करने में उपयोगी प्रभाव हुआ; परन्तु यह मानने के लिए कोई कारण नहीं कि इस प्रदेश की संस्कृति दूसरे देशों से लाई गई थी या बाह्य प्रभावों ने इसके रूप को बहुत अधिक बदल डाला था।"

सर जान मार्शल के इस लेख को पढ़ कर असिरिया-देश के पुरातत्त्व के विशेषज्ञ (Assyriologist) प्रोफ़ेसर ए० एच० साइस (Prof. A. H. Sayce, D. Litt., LL. D., D. D.) ने उसी पत्र के २७ वीं सितम्बर के अङ्क में यह लिखा—

"पञ्जाब और सिन्ध में होनेवाले अद्भुत आविष्कार, जिनका वर्णन सर जान मार्शल ने "सचित्र लन्दन समाचार" की २० वीं सितम्बर की संख्या में किया है, जितना वे समझते हैं उससे भी कहीं अधिक अद्भुत और चौंका देनेवाले हैं। हरप्पा और महेञ्जोदारो में जो खुदे हुए लेखोंवाली मुद्रायें मिली हैं वे सूसा में श्रीयुत डी० मॉर्गन-द्वारा आविष्कृत प्रोटो-एलमाइट तख़्तियों ("Proto-Elamite" tablettes) से हूबहू मिलती हैं। नाम-मुद्राओं का आकार और डील वही है, "एकशृङ्ग" बैल वही है और चित्रमय शब्द और अङ्क भी वही हैं। उनमें अभिन्नता यहाँ तक है कि मुद्रायें तथा तख़्तियाँ एक ही हाथ की बनी होंगी। ये तख़्तियाँ बहुसंख्यक हैं। इनको श्रीयुत शेई (Scheil) ने "Memoires de la Mission Archæologique de Perse VI 1905" and XVII : 1923) में प्रकाशित कर दिया है। वे ईसा-पूर्व तीन सहस्र वर्ष की हैं, और बाबुल के राजा मनिस्टूसू (ईसा-पूर्व २६००) के काल से लेकर उर के तीसरे कुल (ईसा-पूर्व २३००) के समय तक फैली हुई हैं। एक देशी राजा ने इसके थोड़े समय बाद उन्हीं चित्रमय शब्दों में एक फ़ाने-के-आकार का शिलालेख जोड़ दिया है। इसलिए यह स्पष्ट है कि ईसा-पूर्व तीन सहस्र वर्ष तक तो सूसा और भारत के उत्तर-पश्चिम के बीच सम्पर्क था। इस आविष्कार ने एक नवीन ऐतिहासिक क्षेत्र खोल दिया है। इससे भारतीय सभ्यता के काल तथा मूल-सम्बन्धी हमारे विचारों में भारी क्रान्ति होने की सम्भावना है। मुद्राओं के साथ के चित्रित मिट्टी के पात्रों के वर्णन से मैं इस परिणाम पर पहुँच सका हूँ कि ये सूसा की "द्वितीय रीति" से मिलते हैं जो कि इन तख़्तियों की समकालीन हैं। हरप्पा से मिली हुई लेखवाली एक मुद्रा टेरीन डी ला कूपरी (Terrien de la Couperie) ने "Proceedings of the Society of Biblical Archæology" की आदि संख्या में प्रकाशित की थी।"

इस महत्त्वपूर्ण नोट के निकलने पर उसी पत्र की ४ थी अक्तूबर सन् १९२४ की संख्या में एक मिस्री-पुरातत्त्ववेत्ता विद्वान् का इसी विषय पर एक लेख छपा। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

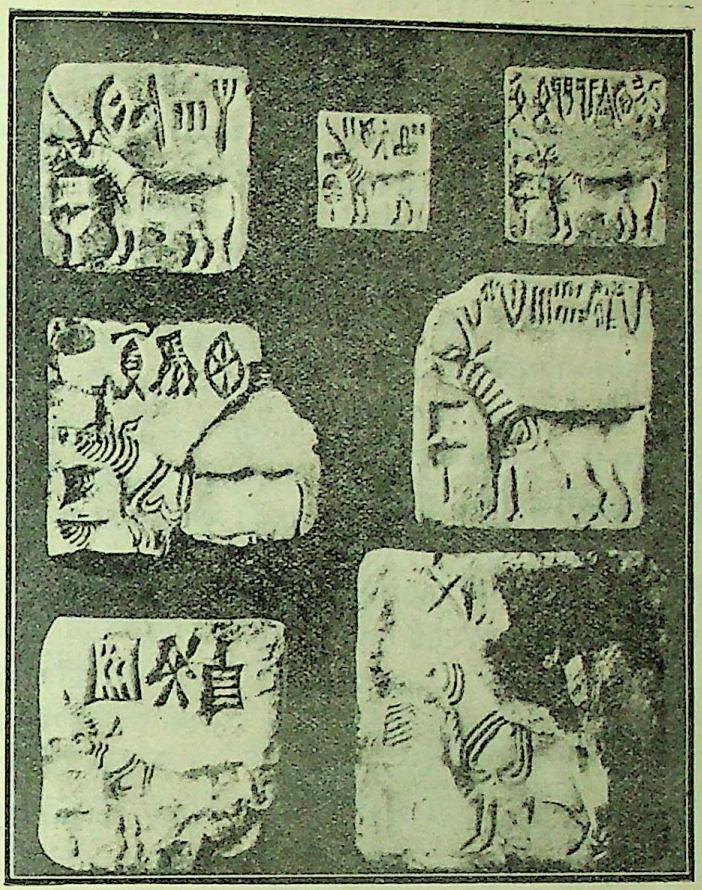

महेंजोदारो और हरप्पा में प्राप्त चित्रलिपि-अङ्कित सीलें या ठप्पे।

हरप्पा में प्राप्त एक बर्तन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों लेखों को पढ़ने के बाद सर मार्शल ने १८ नवम्बर १९२४ के लाहौर के "सिविल मिलिटरी गज़ट" पत्र में एक बड़ा उत्साहपूर्ण लेख लिखा। उसमें आपने स्वीकार किया कि 'भारतीय लोग अपनी अति प्राचीन सभ्यता पर सदा सच्चा ही अभिमान करते रहे हैं। उनका विश्वास है कि उनकी सभ्यता से एशिया की कोई भी दूसरी सभ्यता प्राचीनतर नहीं। वे आशा करते रहे हैं कि पुरातत्त्व-शास्त्र उनके विश्वास को ठीक सिद्ध करने के लिए किसी निश्चित स्मरणार्थक साक्ष्य का आविष्कार करेगा। उनकी यह आशा अब पूरी हो गई है।.....अब इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रह गया कि ये पञ्जाब और सिन्ध की प्राचीन वस्तुएँ दक्षिणी मेसोपोटेमिया की सुमेरियन पुरानी चीज़ों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती और उनके लगभग समकालीन हैं। इन सुमेरियन प्राचीन वस्तुओं (antiquities) का काल ईसा-पूर्व ३ या ४ सहस्र वर्ष है।

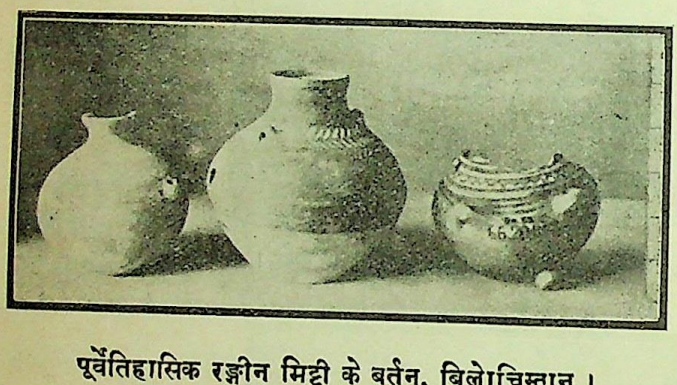

पूर्वेतिहासिक रङ्गीन मिट्टी के बर्तन, बिलोचिस्तान।

इस समय कोई नहीं कह सकता कि भारत के ये आविष्कार अन्त को किस परिणाम पर पहुँचेंगे, परन्तु इस देश के प्राचीन इतिहास के लिए उनके महत्त्व की अत्युक्ति करना सम्भव नहीं।.....इस समय निश्चयपूर्वक केवल इतना ही कहा जा सकता है कि हरप्पा में किये हुए राय साहिब दयाराम साहनी के और महेञ्जोदारो में श्रीयुत राखालदास बनर्जी के आविष्कारों ने यह बात दृढ़तापूर्वक प्रमाणित कर दी है कि ईसा से तीन सहस्र वर्ष पूर्व भारत-भूमि पर एक ऐसी सभ्यता विद्यमान थी जो उतनी ही उच्च और उन्नत तथा उपयुक्त रूप से उतनी ही विस्तृत थी जितनी कि मेसोपोटेमिया में सुमेरियन संस्कृति थी, और इन दोनों में बहुत निकट का सम्बन्ध था। जो लोग भारतीय सभ्यता की उत्पत्ति तथा विकास में दिलचस्पी रखते हैं उन्हें जो थोड़ी सी वस्तुएँ अब तक मिली हैं उनसे व्यक्त हो जायगा कि सिन्धु-उपत्यका के और अधिक अन्वेषण की कितनी बड़ी आवश्यकता है।"

हरप्पा में अभी बहुत थोड़ी खुदाई हुई है। अभी नीचे और बहुत सी पुरानी तहें खोदने को पड़ी हैं। राय साहब लाला दयाराम साहनी को आशा है कि उन पुरानी तहों में से और भी अधिक प्राचीन वस्तुएँ अवश्य मिलेंगी। कौन कह सकता है कि उनके आविष्कार से भारतीय सभ्यता, पुरातत्त्व की दृष्टि से ही, कितनी अधिक प्राचीन प्रमाणित हो जायगी।

मेसोपोटेमिया की उपर्युक्त सुमेरियन-सभ्यता के विषय में बहुत से विद्वानों का विश्वास है कि वह मेसोपोटेमिया की अपनी नहीं। वह वहाँ कहीं बाहर से आई थी। कहाँ से आई थी, इसका अब तक कुछ निश्चय न हो सका था। प्रोफ़ेसर ह्यूगो विङ्क्लर को एशिया माईनर में, सन् १९०७ में, जो मितानी देवताओं के—मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्यों के—नामवाले शिलालेख मिले थे, और जिससे यह सिद्ध होता था कि ये भारतीय नाम भारत से सीधे वहाँ पहुँचे हैं और उस प्रदेश में भारतीय सभ्यता के विस्तार के द्योतक हैं, उसको श्रीयुत मुरधानल ने यह कह कर रद कर दिया था कि ये देवता भारतीय नहीं, बरन उस समय के हैं जब कि आर्यों की ईरानी और भारतीय शाखाएँ एक ही जाति के रूप में मिलकर ईरान में रहती थीं। परन्तु अब हरप्पा और महेञ्जोदारो में मिलने वाली प्राचीन चीज़ों और एशिया माईनर की पुरानी चीज़ों के बिलकुल एक सी होने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सुमेरियन सभ्यता और कहीं से नहीं, भारत से ही सीधी वहाँ पहुँची थी। यदि वह ईरान से गई होती तो संस्कृत 'सप्ताह' का फ़ारसी 'हफ़्ताह' हो जाने के सदृश 'नासत्य' का भी 'स' 'ह' में बदल गया होता। परन्तु हम देखते हैं कि ऐसा नहीं हुआ। जर्मनी प्रसिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् विण्टरविट्ज़ भी यही मानते हैं कि सुमेरियन सभ्यता भारत से ही मेसोपोटेमिया में गई थी *।

प्राचीन शिलालेखों को पढ़ना बड़ा कठिन काम है। फ़ीरोज़शाह तुग़लक अशोक की लाट को तोपरा से उठवा कर दिल्ली ले गया था। उस समय उसने बहुत से पण्डितों को इकट्ठा करके उस लाट के लेख को पढ़वाने का भारी प्रयत्न किया था। परन्तु प्राचीन लिपि का ज्ञान न रखने से तत्कालीन कोई भी पण्डित उसे न पढ़ सका था। परन्तु अब वही लेख, उससे कई सौ वर्ष बाद, एक विदेशी श्रीयुत जेम्स प्रिंसप की कृपा से सारा का सारा पढ़ा गया है। प्रिंसप महाशय ने अपने भगीरथ प्रयत्न से ब्राह्मी और खोष्ठी लिपियों की पूरी पूरी वर्णमालायें तैयार की थीं। दस प्रकार के इण्डो-ग्रीक राजाओं के जो सिक्के मिले हैं उनके एक ओर तो ब्राह्मी अक्षर हैं और दूसरी ओर वही बात ग्रीक-लिपि में लिखी है। बस, इतने से ही उन्होंने धीरे धीरे ब्राह्मी और खोष्ठी के सारे वर्ण निकाल लिये, क्योंकि उन्हें ग्रीक-लिपि का ज्ञान था ही।

इसी प्रकार मिस्र की प्राचीन सभ्यता के विषय में आज हमें कुछ भी ज्ञान न होता यदि नेपोलियन का रोज़ेटा नामक सैनिक मिस्र से एक पत्थर न उठा ले जाता। उस पत्थर के एक ओर प्राचीन मिस्री चित्रमयी लिपि में कुछ अङ्कित था और दूसरी ओर वही बात ग्रीक-अक्षरों में खुदी हुई थी। बस, फिर क्या था। उसकी सहायता से प्राचीन मिस्री वर्णमाला का पता लग गया और वहाँ के सभी प्राचीन लेख साफ़ साफ़ पढ़ लिये गये। परन्तु हरप्पा और महेन्जोदारो में निकलनेवाली नाम-मुद्राओं पर एक ही ओर चित्रमयी लिपि में कुछ अङ्कित है, दूसरी ओर किसी ज्ञात वर्णमाला में कुछ भी लिखा हुआ नहीं। इसलिए इनको पढ़ना बहुत कठिन है। देखना चाहिए कि इस लिपि को समझने का सौभाग्य किस पुण्यशील विद्वान् को प्राप्त होता है।

सन्तराम

---

* But as a matter of fact the names Mittra, Varuna, Indra, and Násatyau are only known as Vedic gods and we have no right to speak of them as 'Aryan' or 'Iranian.' If the names have been correctly read we shall have to assume that Aryan Indians, perhaps only a band of warriors had, about 1400 B.C., by some chance, come so far west as Mitani.—M. Winternitz, Age of Rig Veda, in Calcutta Review, November, 1923.

एकादशी।

(१)

मैं आज अपना जीवन-वृत्तान्त कह रही हूँ। क्यों कह रही हूँ, यह शायद तुम समझ न सकोगे। मैंने अपने जीवन में एक ही बार ऐसा काम किया है जिसे लोग अच्छा कह सकते हैं। तब तुम्हें मैं अपना जीवन-वृत्त क्यों सुनाना चाहती हूँ? क्या यह पश्चात्ताप है अथवा परलोक का भय है? मैं स्पष्ट कहे देती हूँ कि मैंने कभी अपने किसी काम के लिए पश्चात्ताप नहीं किया है। सच तो यह है कि मैं अपने किसी भी काम को बुरा नहीं समझती। यदि मुझे परमेश्वर के सामने जाना पड़े तो मैं उससे भी यही बात कहूँगी। मुझे परलोक का भय नहीं है। मैं जानती हूँ कि मैं ऐसी स्त्री नहीं हूँ जिसे तुम लोग देवी कहोगे। मैंने कभी देवी होने की इच्छा नहीं की। क्यों नहीं की, यह बात दूसरी है। सम्भव है कि तुम मेरी कहानी पढ़कर वह बात समझ जाओ। मैं तुम्हें अपना हाल इसी लिए बतलाती हूँ कि तुम देख लो कि तुम्हारा यह संसार सचमुच कैसा है। जिस संसार को तुमने अभी तक देखा है वह बहुत छोटा है। जब तुम मेरा संसार देखोगे तब तुम समझोगे कि मनुष्यत्व क्या है। अच्छा तो मेरी कहानी सुनो।

मैं कौन हूँ, किस प्रान्त की हूँ, किस जाति की हूँ, यह अभी नहीं बतलाऊँगी। पर मैं सभी प्रान्तों और सभी जातियों में रह चुकी हूँ। कभी मैं कुछ थी तो कभी कुछ। मैं अनेक रूप धारण कर चुकी हूँ, पर्दे में रह चुकी हूँ और पर्दे के बाहर भी। जब जैसी ज़रूरत पड़ी तब मैंने वैसा रूप धारण कर लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं हमेशा बाहर घूमा करती थी। निर्जन गुफाओं की सैर करने का शौक़ मुझको पहले से ही था। उनके भीतर निस्तब्ध एकान्त में कुछ देर तक ठहरने से मुझे एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। किसी बड़ी कन्दरा के भीतर जाकर जब मैं यह सोचती कि मेरे सिर के ऊपर पृथ्वी का कितना भारी बोझ लदा है तब घबराने के स्थान में मेरा हृदय एक विचित्र प्रकार की प्रसन्नता से भर जाता है। वैसे आनन्द का अनुभव मुझे केवल घोर निशा के अन्धकार में ही प्राप्त होता है। अस्तु।

बम्बई में रहने से जब कुछ लाभ न हुआ और सारा समय व्यर्थ बीत गया तब मन बहलाने के लिए मैंने पास ही की कनेरी प्रसिद्ध गुफाओं की सैर करने का विचार किया। दूसरे ही दिन बी० बी० ऐंड सी० आइ० रेलवे की एक गाड़ी पकड़ी और बोरीवली स्टेशन पर जा उतरी। स्टेशन से गुफायें बहुत दूर नहीं थीं। मैं कनेरी यथासमय जा पहुँची। मिसेज़ सोहराब से इसी स्थान पर मेरा परिचय पहले-पहल हुआ।

पहली दृष्टि में ही वह मेरी निगाह में चढ़ गई। मैंने तुरन्त ताड़ लिया कि उससे मेरा मतलब हल हो जायगा। उसके साथ लम्बे क़द का एक पुरुष था जो मुझे उसका पति समझ पड़ा, पर वह मुझे कुछ जँचा नहीं। रङ्ग-रूप में वह कुलीन पारसियों जैसा सुन्दर था। शरीर दुबला-पतला होने पर भी सुडौल था। मुख की आकृति भी आकर्षक थी। कपड़े-लत्ते से सजा हुआ था।

मिसेज़ सोहराबजी एक देखने योग्य स्त्री थी, यद्यपि इस ओर मेरा ध्यान पहले न गया था। किन्तु बाद को मैंने मान लिया कि सचमुच ही वह ध्यान देने योग्य थी। वह युवावस्था में पदार्पण कर चुकी थी। निस्सन्देह वह अत्यन्त ही सुन्दर हुई होती, यदि उसकी आँखों में विषाद की छाया न होती। उसकी पूर्ण सुन्दरता में उसके सुघर-सुडौल शरीर की कृशता विघ्न सा डालती थी। यह व्यक्ति होता था मानो वह सदा दुःख से अभिभूत रहती है। वह एक सुन्दर बहुमूल्य पारसी साड़ी पहने हुए थी।

कनेरी की गुफाओं के दर्शकों में से उस दिन हमीं तीन जन थे। मुझे भीड़-भाड़ अधिक पसन्द भी नहीं। अतएव इस बात से मैं और भी प्रसन्न हुई। यदि दर्शकों की भीड़ होती तो मुझे उनके शोरगुल में विशेष आनन्द न प्राप्त होता। यों तो मुझे प्राकृतिक दृश्यों का निरीक्षण नहीं पसन्द है, पर गुफा की सैर को मैं अपवाद मानती हूँ।

हम लोगों के अपने अपने पथदर्शक भी साथ थे। मुझे इस बात का आश्चर्य हुआ कि हम दर्शकों में आपस में कुछ भी बात-चीत न हुई। यद्यपि हम लोग गुफाओं की सैर साथ ही साथ कर रहे थे, पर कोई किसी से कुछ न कहता था। हाँ, वह पुरुष अपनी स्त्री से बातें करता जाता था और उसकी स्त्री साथ साथ चुपचाप चली जाती और उसकी एक भी बात का उत्तर नहीं देती थी। मैं उनके पीछे पीछे जा रही थी, परन्तु अपना समय काटने के लिए उन पथदर्शकों में एक से गुफा के सम्बन्ध में बातें करती जाती थी।

मैं इस स्थान पर कनेरी की इन प्रसिद्ध बौद्धकालीन गुफाओं का कुछ मनोरञ्जक हाल अवश्य देती, पर यहाँ मुझे केवल मिसेज़ सोहराबजी का ही हाल लिखना है, इसलिए मैं गुफाओं का वर्णन छोड़े देती हूँ। वह आदमी जिसको मैंने उस स्त्री का पति अनुमान किया था अपनी स्त्री से गुफाओं की प्राचीनता और उनकी बौद्ध-मूर्तियों की बातें कहता और बार बार स्थान स्थान पर ठहर ठहर कर उनके सम्बन्ध में उसे समझाता जाता था। वह अपने को इस प्रकार प्रकट करता था, मानो उस स्थान के विचित्र दृश्यों से मन्त्र-विमुग्ध हो गया हो।

हम लोगों ने काफ़ी समय तक भिन्न भिन्न गुफाओं की सैर की।

हम लोगों के स्टेशन को लौटने का समय निकट आ गया था। इसलिए पिछली गुफा की सैर कर हम लोग बेडौल सीढ़ियों से लड़खड़ाते हुए नीचे को उतर रहे थे। हमारे आगे दोनों पथदर्शक और पीछे वे दोनों स्त्री-पुरुष थे। हम लोग एक दूसरे के पीछे बड़ी सावधानी से उतर रहे थे।

इसी समय मेरे पीछे आनेवाली उस स्त्री ने चीख़ कर बड़े ज़ोर से मेरा हाथ पकड़ लिया। यदि मैं पहले से सावधान न होती तो हम दोनों गिर जातीं और यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरने से बच जातीं तो मरणप्राय चोट तो ज़रूर लगती। पर मैंने स्वयं सँभल कर उसे भी सँभाल लिया। बात यह हुई कि मार्ग की विषमता के कारण वह लड़खड़ा गई। मैं आगे थी। इससे मेरा हाथ उसके हाथ में आ गया और वह गिर जाने से बच गई। सँभल जाने पर भी वह काँप रही थी।

यथासम्भव सान्त्वना देते हुए मैंने कहा—रास्ता विषम है। आप शरीर से भी दुर्बल हैं। इससे पैर लड़खड़ा गया। पर अब डरने की कोई बात नहीं। मैं आपको सँभाले रहूँगी। उसने धीरे से कहा—हाँ, मेरा पैर ठीक नहीं पड़ा। यदि आपका हाथ मेरे हाथ में न आ जाता तो मैं अवश्य गिर जाती। इस सहायता के लिए मैं आपकी कृतज्ञ हूँ। इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। इस क्षण भर की घबराहट में उसका चेहरा पीला पड़ गया था। यद्यपि अब कोई डर नहीं था तो भी वह काँप रही थी। मुझे आश्चर्य हुआ कि उसने अपने पति का हाथ न पकड़ कर मेरा हाथ क्यों पकड़ा। यह निस्सन्देह एक ताज्जुब की बात थी। परन्तु उस समय मैंने इस बात की ओर विशेष ध्यान न दिया। समझा, संयोग ही ऐसा हो गया होगा।

उसका मुख मुर्दे जैसा सफ़ेद था, परन्तु प्रकाश में आते ही जब हम लोग उस रास्ते को पार कर आये तब कहीं उस स्त्री की जान में जान आई। उसके चेहरे का पीलापन भी दूर होने लगा, उसकी कँपकपी भी बन्द हो गई। वह पहले जैसी फिर हो गई। हँसकर उसने मुझे फिर धन्यवाद दिया। उसने कहा—मैं घबरा गई थी। ऊँचे स्थान से नीचे देखने से मैं डर जाती हूँ। इस बार उसके पति ने भी मुझे धन्यवाद दिया। उसने कहा—मेरी स्त्री गिर कर मर गई होती। बीमारी से हाल में ही उठी है, अभी तक अच्छी तरह मज़बूत नहीं हुई है।

अब हम तीनों आदमी साथ ही बम्बई को लौटे। राह में बातचीत होने पर मालूम हुआ कि वे दिल्ली से आ रहे हैं। भारत-भ्रमण को निकले हैं। कनेरी की गुफाओं को देखने के लिए बीच में उतर पड़े थे। बम्बई में ताज-महल होटल में ठहरेंगे। यह जान कर कि मैं भी उसी होटल में ठहरी हूँ, हममें एक प्रकार की घनिष्टता सी होने लगी। यथा-समय बम्बई पहुँचे और होटल में जाकर अपने अपने कमरों में विश्राम किया। हम लोगों का आपस में अधिक परिचित हो जाना स्वाभाविक ही था। दो ही एक दिन की बातचीत में मुझे उनकी अनेक बातें मालूम हो गईं। मिसेज़ सोहराबजी से मालूम हुआ कि उनकी शादी हुए पाँच वर्ष हो गये। जब उसका एक-मात्र पुत्र मर गया तब वह कोई ७।८ महीने तक बीमार पड़ी रही। डाक्टरों की सलाह से वह यात्रा करने निकली है। अतएव कुछ दिन बम्बई में ठहर कर वह उत्तर-भारत को फिर लौट जायगी।

उन दोनों के रङ्ग-ढङ्ग से मैंने अनुमान कर लिया कि पति-पत्नी में प्रेम नहीं है। पर क्यों नहीं है, सो मैं नहीं जान सकी। मिसेज़ सोहराबजी ज़्यादा बातचीत भी नहीं करती थी। उसकी इस ख़ामोशी का कारण उसकी हाल की बीमारी भी हो सकती है। उसका पति मेरे सामने तो उसके प्रति खूब स्नेह व्यक्त करता था, यद्यपि जहाँ तक मैं समझती हूँ वह अपने ही विचारों में मस्त रहता था। परन्तु उसका सारा ढङ्ग मुझे बनावटी ही प्रतीत होता था। दो-एक बार मैंने उसे अपनी स्त्री को इस प्रकार देखते हुए भी देखा जिसे कोई स्त्री-प्रेम की दृष्टि कभी नहीं कह सकती। वह कभी कभी मेरी ओर इस प्रकार ताकता था जो मुझे नहीं पसन्द हुआ। उसका वह ताकना मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह मुझे चाहता हो। यदि उसे मेरी ओर से कुछ भी उत्साह मिलता तो वह अपने मन का भाव प्रकट कर देने में ज़रा भी न हिचकता। परन्तु मैं इन बातों की कुछ परवा नहीं करती। मैं ऐसी बातों से भली भाँति अभ्यस्त हूँ और किस प्रकार मुझे अपनी रक्षा करनी चाहिए, यह भी मुझे मालूम है।

दूसरे दिन हम लोग पूर्व-निश्चय के अनुसार बम्बई की सैर करने को रवाना हुए। मिसेज़ सोहराबजी को अपना बेग हाथ में लिये हुए होटल से बाहर निकलते देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। क्योंकि उसके स्वास्थ्य को देखकर उसका बेग लेकर चलना मुझे उचित न जँचा। अतएव मैंने उसे उसके हाथ से ले लेना चाहा, पर उसने मुस्कराकर देने से इनकार कर दिया। उसने कहा—इस कृपा के लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। मैं अपना यह बेग खुद लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलती हूँ, यहाँ तक कि जब मैं गाड़ी पर बैठी रहती हूँ तब भी इसे लिये ही रहती हूँ। मैंने हँसकर कहा—कौन सा ख़ज़ाना इसमें रक्खा जाता है? उसने गम्भीरता से जवाब दिया—हाँ, मैं अपना ख़ज़ाना ही इसमें रखती हूँ। वह मेरे लिए इतना अधिक बहुमूल्य है कि मैं उसे अपने से अलग नहीं होने देती। मैं इसमें वे चीज़ें रखती हूँ जिन्हें मैं इस संसार में अत्यन्त बहुमूल्य समझती हूँ।

दूसरे ही दिन उस ख़ज़ाने का भेद मुझे मालूम हो गया। यह निश्चय हुआ कि आज हम लोग थियेटर जायँगे। उस दिन एक विशेष खेल होने को था, जिसे देखने को शहर के बड़े बड़े लोग आनेवाले थे। अतएव मिसेज़ सोहराबजी ने भी खूब बन-ठन कर जाना उचित समझा। उसने बहुत ही सुन्दर जवाहिरात पहने। वैसे जवाहिरात और मोती मैंने पहले कभी नहीं देखे थे। मैं जवाहिरातों को पहचानती हूँ। निस्सन्देह वे सब बहुत ही मूल्यवान् थे। सिवा राजघराने तथा अधिक धनवानों के यहाँ वैसे हीरे अन्यत्र देखने में नहीं आते। अतएव कोई आश्चर्य नहीं है, यदि मिसेज़ सोहराबजी अपना पूर्वोक्त बेग अपने से अलग नहीं करती जब कि वह उसमें ऐसी मूल्यवान् चीज़ें रखती है। जब मैं थियेटर में उसके बग़ल में बैठी थी तब मैंने अपने मन में कहा—अब इस जीव से घनिष्ठता बढ़ानी चाहिए, मेरी चतुरता की परीक्षा का यही अवसर है।

मैं उस दिन वहाँ के आनन्द का उपभोग न कर सकी। मेरा सारा ध्यान उन्हीं जवाहिरातों की ओर लगा रहा। जिस समय मेरी निगाह पहले उन पर पड़ी थी तभी मेरा मन डोल गया था। परन्तु ज्यों ज्यों मैं उन्हें अधिक ग़ौर से देखती, त्यों त्यों मेरा मन उन्हें अपने हाथ में करने को और अधिक आतुर होता जाता था।

अब मैं उन दोनों से हेल-मेल बढ़ाने लगी। अपने प्रेम-पूर्ण व्यवहार से मैंने दो ही तीन दिन के भीतर मिसेज़ सोहराबजी को अपने वश में कर लिया। वह सीधी-सादी स्त्री थी। मेरे जाल में तुरन्त पड़ गई। वह मुझसे प्रेम करने लगी। मेरी अधिक रब्त-ज़ब्त उसके पति को अच्छी नहीं लगी, पर कहा उसने कुछ भी नहीं।

अब मैं इसी घात में रहती कि कब अवसर मिले और उस बेग को उड़ा दूँ। मैंने उनसे अपना असली नाम नहीं बताया था। मुझे पारसी जान कर वे मेरा अधिक प्रेम करते थे। मैंने उन्हें अपने को पोरबन्दर की रहनेवाली बतलाया था। होटल के जिस कमरे में ठहरे थे उसमें मैं प्रायः आती-जाती रहती थी। बेग उड़ा देने को मुझे प्रायः मौक़े मिलते थे। पर मैं यह नहीं चाहती थी कि उसके चुरा लेने का उनका सन्देह मुझ पर हो। क्योंकि मुझमें यह मूर्खता का भाव सदा से रहा है कि मैं अपने किसी स्त्री मित्र को अपना असली रूप न प्रकट होने दूँ। अतएव मैं अच्छे अवसर की घात में थी।

अपनी ताक-झाँक में एक दिन मुझे उन पति-पत्नियों के सम्बन्ध का भेद मालूम हो गया। एक दिन मैं मिसेज़ सोहराबजी के पास बैठने को अचानक उसके कमरे में जा पहुँची। मैंने देखा, वह सोफ़ा पर दबकी सी पड़ी है और उस पर उसका पति तना खड़ा है। सोहराबजी की पीठ दरवाज़े की ओर होने से उनमें से किसी ने मुझे न देखा और मैं वहाँ से चुपचाप सरक आई। जब सन्ध्या-समय मैं मिसेज़ सोहराबजी के पास फिर गई तब उसका पति वहाँ नहीं था, वह जुआ खेलने चला गया था। इस अवसर पर उसने मुझसे अपनी दुःख-गाथा कह सुनाई। उसने कहा—

मैं एक बड़ी भारी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी हूँ। मुझको मिस्टर सोहराबजी के साथ मजबूर होकर विवाह करना पड़ा है। सोहराब का जन्म एक पुराने कुलीन घराने में हुआ है। जब उसने अपनी सारी पैत्रिक सम्पत्ति फूक तापी तब वह एक धनी स्त्री की खोज में निकला। मेरे पिता कलकत्ते में करोड़पति हुए। उनकी कुछ ऐसी रहस्य-पूर्ण बातें हैं जो यदि प्रकट हो जायँ तो उनकी सारी सम्पत्ति ही नहीं, उनका भी सर्वनाश हो जाय। संयोगवश सोहराब को उनका रहस्य मालूम हो गया। अतएव मुझे अपनी पिता की रक्षा के लिए इसके साथ लाचार होकर शादी करनी पड़ी। वास्तव में यह शादी प्रेम की नहीं, धन की शादी है। भेद खोल देने की धमकी दे दे कर सोहराब समय समय पर मुझसे रुपये ऐंठा करता है। और तो और, अब तो वह मेरे प्राणों का भूखा है। क्योंकि उसने मुझसे यह भी लिखवा लिया है कि मेरी मृत्यु के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद मेरी सम्पत्ति के उत्तराधिकार का स्वत्व भी उसी को प्राप्त हो। मेरी सम्पत्ति का प्रबन्ध इस समय मेरा ममेरा भाई करता है। मैं उसी को अपनी सम्पत्ति देना भी चाहती थी। परन्तु हाय! मेरी मृत्यु के बाद वह अब उसे न पावेगा।

यह कहते कहते मिसेज़ सोहराबजी का गला भर आया। उसने फिर कहा—वह मुझे मार डालना चाहता है। अब वह इसी अवसर की ताक में रहता है। उसने दो बार प्रयत्न भी किये, पर उसका उद्देश सफल नहीं हुआ, उसके वार ख़ाली गये। बहन, तुम्हें याद होगा, कनेरी की गुफा में मैंने तुम्हारा हाथ क्यों पकड़ा था? मुझे विश्वास था कि वह मुझे थाँभने के स्थान में और ढकेल देता। उसके ढकेल देने का सन्देह ही कौन कर सकता था? मैं नहीं कह सकती कि अब तक मैं मृत्यु से किस लिए डरती रही। परन्तु अब मैंने अपने को भाग्य के हाथ सौंप दिया है। मैं मृत्यु के सिवा अब और कुछ नहीं चाहती। मैं मानती हूँ कि उस दिन मैंने प्राणों के मोह से तुम्हारा हाथ पकड़ लिया था, परन्तु भविष्य में—और मैं आशा करती हूँ कि बहुत शीघ्रही—अधिक साहस से काम लूँगी।

जिस करुण-स्वर में मिसेज़ सोहराबजी ने अपना हाल सुनाया उसे सुन कर मुझ जैसी कठोरहृदया का भी दिल दहल गया। मैंने कहा—तुम उस दुष्ट को छोड़ क्यों नहीं देती। ऐसे पति की अपेक्षा बिना पति रहना लाख दर्जे अच्छा है।

मेरी बात सुन कर मिसेज़ सोहराबजी अपने कन्धे हिलाकर पीठ के बल अपनी कुरसी पर उढ़क गई। उसने कहा—यदि मैं कुछ भी उसके विरुद्ध करूँ तो मेरे वृद्ध पिता की ख़ैर नहीं। वह निर्दय है। कुछ भी सोच-विचार न करेगा। तुरन्त ही भण्डाफोड़ कर देगा। पर अब तो मैं जीना भी नहीं चाहती। मैं मृत्यु का स्वागत करने को तैयार हूँ। मैंने अब तक आत्महत्या कर ली होती, परन्तु मैं उसी के हाथों से मरना अधिक पसन्द करती हूँ। मैं चाहती हूँ कि मेरी हत्या का पाप उसी के मत्थे लगे। उसने अपनी यह बात इस प्रकार कही, मानो वह अपना बदला इसी प्रकार लेगी। उसने फिर कहा—जब मेरा बच्चा मर गया, उसके साथ ही मेरा सारा सुख भी चला गया। मैंने तुमसे उसके सम्बन्ध में कभी कुछ नहीं कहा। वह सिर्फ़ ३ वर्ष का था। बड़ा सुन्दर था। अपने पिता से रूप-रङ्ग से बिलकुल ही नहीं मिलता था। इसके आगे वह कुछ न कह सकी। गला भर आया, पर उसकी आँखों से एक भी आँसू न निकला। यह समझ कर कि मुझे इस समय कुछ कहना चाहिए, मैंने पूछा—बच्चे की मृत्यु कैसे हुई थी?

उसने सँभल कर कहा—मेरे इसी पति ने उसे भी मार डाला। हाँ, इसी ने। दुनिया ने उसकी मृत्यु को साधारण दुर्घटना ही समझा। पर वास्तव में इसने उसे क्रोध के आवेश में पत्थर के फ़र्श पर पटक दिया था, सिर के फट जाने से वह तत्काल मर गया। अब मैं इसी के हाथों से अपने भी प्राण देकर इससे अपना पूरा बदला लूँगी। मेरी भी हत्या का पाप इसी को लगेगा।

मुझे अनेक विचित्र घटनाओं का अनुभव है, परन्तु मिसेज़ सोहराबजी की करुणाजनक कहानी सुनकर मेरा चित्त बेचैन हो गया। मैंने उसे बहुतेरा समझाया, पर वह अपने विचार पर अटल रही। यद्यपि मैं स्वयं एक दुष्ट स्त्री हूँ, तो भी मैंने समय समय पर लोगों का उपकार किया है, परन्तु इस अवसर पर मैं सर्वथा असमर्थ थी। यदि मैं किसी प्रकार उसके कार्य में बाधा देने का प्रयत्न करती तो बहुत सम्भव था कि वह आत्महत्या कर डालती और तब वह अपने इच्छानुसार अपने पति से बदला न ले पाती। वह अपने प्राण देने को सब प्रकार तुली बैठी थी, इस कारण मैंने किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना उचित न समझा।

सब तरह सोचकर अन्त में मैंने यह निश्चय किया कि अब इन लोगों का साथ छोड़ना चाहिए। परन्तु जिस मतलब से मैंने उनका साथ किया था उसे पूरा किये बिना मैं कैसे जा सकती थी? मुझे यह सोच कर आश्चर्य हुआ कि मिसेज़ सोहराबजी अपने जवाहिरात का इतना प्रेम क्यों करती है जब कि वे उसकी मृत्यु के बाद उसके पति को ही मिलेंगे। मैंने कहा—अच्छा है। यदि मैं उन्हें हड़प लूँगी तो उसके पति की ही हानि होगी, उसकी नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल आठ-दस दिन हम लोग 'ताजमहल' में ठहरे रहे। मिस्टर सोहराबजी बड़ा जुआरी था। वह रात रात भर जुआ खेलता रहता। दिन में अकेले में अपनी स्त्री को प्रायः डाँटता-डपटता रहता, पर मेरे सामने उसकी बड़ी ख़ातिर करता था। अब मुझे एक घड़ी उनका साथ न रुचता और मैं बेग उड़ा कर चम्पत हो जाने को तैयार बैठी थी। पर इस बीच में मुझे घात ही न लगी। क्योंकि वह अपने जवाहिरात प्रायः रोज़ पहनने लगी। उन्हें देख देख कर मेरे हृदय के आनन्द की सीमा न रहती, यहाँ तक कि मेरा मन मेरे हाथ में न रहता था।

एक दिन हम लोग अल्फ्रेड थिएटर देख कर देर में लौटे। इसके सिवा उस रात को मुझे नींद भी देर में लगी। इस कारण दूसरे दिन मैं देर तक सोती रही। जब सोकर उठी तब मालूम हुआ कि वे दोनों चाय-पानी कर बाहर निकल गये हैं। दोपहर के लगभग उनकी नौकरानी ने आकर मुझे मिसेज़ सोहराबजी की एक चिट्ठी दी। उसमें लिखा था—हम आज एल्फ़ेंटा जा रहे हैं। मेरे पति ने सवेरे ही मुझसे चलने का आग्रह किया। शीघ्रतावश मैं तुम्हें न बुला सकी। प्रिय बहन, मुझे विश्वास है कि मेरा समय अब समीप आ गया है। मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि मेरा ख़याल कर तुम यहाँ न आना। जिस बात का मुझे विश्वास है, यदि वह सच निकले तो तुम भी दूसरे लोगों की भाँति समझ लेना कि मेरी मृत्यु आकस्मिक हुई है। परमेश्वर तुम्हारा भला करे।

पत्र को पढ़ लेने के बाद उसे मोड़ कर अपनी जेब में रख लिया। पहले तो मैंने एल्फ़ेंटा जाने का विचार किया। परन्तु तुरन्त ही मेरी हिम्मत जाती रही। मैंने अपने मन में कहा—अब तो लौटने का समय हो गया है, जो कुछ होना है वह तो हो चुका होगा। अब मेरा ध्यान उसी बेग की ओर गया जिसमें मिसेज़ सोहराबजी अपने बहुमूल्य आभूषण रखती थी। मैं तुरन्त उसके कमरे की ओर गई। यह भी निश्चय कर लिया कि यदि आवश्यकता पड़ेगी तो सन्दूक़ तक तोड़ डालूँगी। यह सोच कर कि उनके लौटने का समय निकट आ गया है। मैं अपने काम में जल्दी करने लगी।

मैं कमरे में तुरन्त घुस गई। उक्त बेग पलँग के पास मेज़ पर रक्खा था। पहुँचते ही उसे मैंने अपने हाथ में किया। फिर उसके कुछ बहुमूल्य बढ़िया कपड़े तथा दूसरी चीज़ें भी लीं। यह सब कुछ लेकर मैं कमरे के बाहर निकलने लगी। पर दरवाज़े पर मेरी मुठभेड़ सोहराबजी से हो ही गई।

सोहराबजी के चेहरे का रङ्ग उड़ गया था। उसके ओठ काँप रहे थे। वह क्षण भर तक मेरी ओर टकटकी बाँधे देखता रहा, मानो वह मुझे देखता ही न हो। उसने कहा—हाय मेरी स्त्री! हाय! भयङ्कर घटना हो गई!

मैंने चिल्लाकर पूछा—मिसेज़ सोहराब कहाँ है? उसने कहा—समुद्र में गिरकर डूब गई। हम दोनों आज एल्फ़ेंटा गये थे। एक छोटी नाव की थी, लौटती समय नाव चट्टान से टकरा गई और धक्के से वह समुद्र में जा गिरी। फिर उसका पता न लगा। यहाँ तक कि लाश भी न मिली। उसके आभूषणों के लोभ से शायद मल्लाहों ने उसे और भी नीचे दबा दिया। धक्का लगने पर जब वह झिझकी थी तब मैंने उसे बचाने का प्रयत्न किया था.....ओह! बड़ी भयङ्कर दुर्घटना हो गई! काँपते हुए सोहराबजी ने यह सारा हाल कहा। फिर अपने हाथों से अपना मुँह छिपा कर वह रो पड़ा। क्षण भर के लिए तो मुझे यही विश्वास हुआ कि मिसेज़ सोहराबजी की स्वाभाविक मृत्यु हुई है।

सहसा मिस्टर सोहराबजी की निगाह उस बेग पर आ पड़ी। उसने चिल्लाकर कहा—उसमें तुम्हारा क्या रक्खा है? इस बेग में मेरी स्त्री अपने जवाहरात रखती थी। इसे तुम क्यों लिये हो? मैंने कड़ी नज़र से उसके चेहरे को घूरकर देखा और कहा—मैं इसे लिये जाती हूँ। मैं इसे ले लेना चाहती हूँ। मेरी बात सुनकर वह इस तरह चौंक उठा मानो उसने कुछ सुना ही न हो। तब मैंने अपनी बात फिर दोहरा दी। इस पर उसने कड़क कर कहा—तुम कभी नहीं ले जा सकती। क्रोध से उसकी आँखें अङ्गारे की तरह लाल हो गईं। उसने अपने लम्बे लम्बे पतले हाथ इस तरह बढ़ाये, मानो वह मुझसे उस बेग को छीन लेना चाहता हो। उसने कहा—तुम चोर हो—मैं तुम्हें पकड़ा दूँगा। मैंने धीरे से कहा—और तुम, तुम तो हत्यारे हो।

मेरी बात सुनते ही सोहराबजी के उठे हुए हाथ गिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये और विचित्र प्रकार से मुँह बनाकर वह पीछे को हट गया। वह चौंक सा उठा। उसने कहा—तुमने क्या कहा? मैंने कहा—तुमने अपनी स्त्री को मार डाला है। इसके पहले भी तुमने उसे मार डालने का प्रयत्न किया है, पर तुम सफल नहीं हुए। तुमने उसे नाव पर से समुद्र में ढकेल दिया है। वह स्वयम् जानती थी कि तुम ऐसा करोगे। वह तुम्हारे साथ जान-बूझ कर गई थी। वह यह बात अपनी चिट्ठी में मुझे लिखकर दे गई है। मेरे पास वह चिट्ठी मौजूद है। मिस्टर सोहराबजी, यह चिट्ठी तुम्हारे विरुद्ध एक पक्का प्रमाण है। क्या अब भी तुम मुझे न जाने दोगे?

उसने कहा—क्या तुमसे उसने ऐसा कहा है? उसकी मुखाकृति से उसका दुष्कर्म प्रत्यक्ष हो रहा था। मैंने कड़क कर पूछा—क्या तुम इनकार करते हो कि मेरी बात ठीक नहीं है। वह अपने को सँभाल न सका, भय-भीत हो गया और लज्जा के कारण उसके चेहरे का तेज जाता रहा। बड़ी कठिनाई से उसने धीरे में कहा—नहीं, मैं इनकार नहीं कर सकता। इसके बाद उसने अपने काँपते हुए हाथ की अँगुली से दरवाज़े की ओर इशारा करके कहा—अच्छा जाओ तुम चोर हो और मैं हत्यारा हूँ। हममें से कोई किसी को नहीं कह सकता। जाओ।

अपनी आँखें सोहराबजी पर गड़ाये हुए मैं कमरे की मेज़ की ओर चली। इसी बीच में एकाएक उस बेग का मुँह, जो शायद अच्छी तरह बन्द नहीं था, खुल गया और उसके भीतर की चीज़ें फ़र्श पर बिखर गईं। मैं क्षण भर तक उनकी ओर देखती रही। मैं आश्चर्य में पड़ गई और सोहराबजी तो उन्हें देखते ही भयभीत होकर धीरे से चीख़ उठा। यही नहीं, वह अपना सिर नीचा कर वहीं एक ओर बैठ गया।

बच्चों के दो छोटे छोटे जूते, कुछ टूटे-फूटे खिलौने, बच्चों की एक टोपी—यही कुछ चीज़ें उस बेग में निकलीं। अभी तक मैं उसमें बहुमूल्य हीरों का होना समझ रही थी। मिसेज़ सोहराबजी का कोष क्या था, यह बात अब मुझे मालूम हुई।

भारद्वाज

उर्दू-कविता।

इतिहासों में सबसे अधिक मनोरञ्जक इतिहास कविता का है। क्योंकि इससे यह पता लग सकता है कि भाषा किस प्रकार बनती है, किस प्रकार सँवरती है, किस प्रकार उन्नत होती है, किस प्रकार उसमें सरसता आती है और फिर किस प्रकार वह सरसता वास्तविक कविता में बदलती है। कुछ विद्वानों का कथन है कि कविता विचार-सृष्टि का एक स्वप्न है, जिसका वास्तविक जगत् के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता। किसी सुन्दर दृश्य को देख कर जब मानवीय हृदय में सुन्दर विचार उत्पन्न होते हैं, और वह उन्हें सुन्दर रीति से वर्णन कर देता है, तब एक ऐसी वस्तु का विकास हो जाता है जो संसार भर में दिखाई नहीं देती, प्रत्युत उससे सुन्दर, उससे ऊँची और उससे विस्तृत होती है। कवि किसी सुन्दरी को टहलते हुए देखता है तो कभी कहता है कि फूलों का बूटा बहता चला आता है, कभी कहता है कि चन्द्रमा पृथ्वी पर उतर आया। तारों भरी रात को देखता है तो कहता है कि प्राणवल्लभा की स्याह साड़ी पर सल्मा-सितारा जड़ा हुआ है। सूर्य्य को उदय होते देखता है तो कहता है कि किसी सुन्दरी ने अपने मुखमण्डल से बालों को हटा लिया है। सूर्य्यास्त को देखता है तो कहता है कि शहीदों के खून ने सुनहरी झलक ली है, और कभी कभी तो अपने आपको इतना ऊँचा समझ लेता है कि उसे निश्चय हो जाता है कि सूर्य्य की लाली उसकी आहों का धुँआ है, जो आकाश पर अग्नि के रूप में प्रकट हुआ है। यह लक्षण अन्य भाषाओं पर तो नहीं, पर उर्दू पर सोलह आने ठीक उतरता है, जहाँ पिद्दु को पद्म-चन्द्र बनाना कविता का विशेष गुण माना जाता है, और कभी कभी तो यह खींचातानी इतनी बढ़ जाती है कि लोग खिल्लियाँ उड़ाने लगते हैं। जैसे कि एक कवि का शेअ़र है—

सनम सुनते हैं तेरी भी कमर है,
कहाँ है किस तरफ़ को है किधर है?

अर्थात् सनम क्या है कोई भिड़ है कि उसकी कमर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धागे से भी पतली हो गई है। यह अवस्था क्यों हुई, इसलिए कि कमर का पतला होना स्त्रियों की सुन्दरता का चिह्न है। इस विषय में हिन्दी और उर्दू-कवि एक दूसरे से सर्वथा विपरीत मार्गों पर चल रहे हैं। हिन्दी-कवि जो कुछ देखता है, साफ़ साफ़ कह देता है और जिस दृश्य का वर्णन करता है उसका रङ्ग बाँध देता है। उर्दू-कवि एक वस्तु को लेता है और उसके गुण-वर्णन करने के लिए सारा संसार छान मारता है और उसे जो जो सुन्दर पदार्थ मिलता जाता है उन सबकी दुर्गत करता जाता है कि मेरे प्यारे के सम्मुख ये सब तुच्छ हैं और इनकी कोई गिनती नहीं। वह कल्पना के आकाश के तारे तोड़ लाता है और उनको ऐसे कटाक्ष के साथ काग़ज़ के पृष्ठ पर बखेरता है कि हृदय नाचने लग जाता है।

अमीर ख़ुसरो।

प्राचीन भारत में संस्कृत प्रचलित थी। परन्तु शनैः शनैः समय ने ऐसा पल्टा खाया कि यह भाषा केवल उच्च कोटि के मनुष्यों के लिए निर्धारित होगई, और साधारण जनों के लिए प्राकृत-भाषा की रचना हुई। उससे बिगड़ कर व्रज-भाषा बनी। परन्तु अभी वह पूर्ण रूप से उन्नत न होने पाई थी कि मुसलमान-शासक भारत में दाख़िल हुए और फ़ारसी-भाषा अपने साथ लाये। पहले-पहल ये दोनों भाषायें अपने अपने स्थान पर खड़ी रहीं, परन्तु कब तक निभती? धीरे धीरे हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे की ओर बढ़ने लगे, और अन्त में अकबर के समय में उधर मुसलमान डाढ़ियाँ मुँड़वाने लगे, इधर हिन्दुओं ने फ़ारसी पढ़ना आरम्भ कर दिया और दरबार में नौकरियाँ करने लगे। परिणाम यह हुआ कि दोनों की भाषायें मिल गईं, और शाहजहाँ के शासन में एक नवीन भाषा का विकास हुआ, जिसमें दोनों भाषाओं के शब्द एक स्थान में इकट्ठे हुए। यह भाषा उस समय लश्करों में बोली जाती थी, इसलिए इसका नाम उर्दू (लश्कर) प्रसिद्ध हो गया।

उर्दू-भाषा पहले-पहल तो दीन अवस्था में रही, परन्तु थोड़े समय के पश्चात् ही इसका सितारा चमकने लगा।

अमीर ख़ुसरो ने (जो १३२५ ईसवी में मरा) सबसे पहले उर्दू-कविता की ओर दृष्टि दी। उस समय तक मुसलमान-कवि उर्दू को घृणा की दृष्टि से देखते थे और अपने विचार फ़ारसी में प्रकट करते थे। उनका विचार था कि उर्दू एक तुच्छ सी भाषा है, इसलिए इस योग्य नहीं कि कविता की सरसता के बोझ को सहन कर सके। परन्तु अमीर ख़ुसरो ने हिन्दी-शैली पर दोहे बनाये और उनमें फ़ारसी के शब्दों को स्थान दिया। हम उनकी कुछ पहेलियाँ नीचे लिखते हैं, जिनसे उस समय की भाषा का कुछ न कुछ ज्ञान हो सकेगा।

आईना की पहेली।

फ़ारसी बोली आई ना, तुर्की सोची पाई ना,
हिन्दी बोलते आर्सी आए मुँह देखो जो इसे बताए।

नाख़ून की पहेली।

बीसियों का सर काट लिया,
ना मारा ना ख़ून किया।

लाल की पहेली।

अंधा गूँगा बहरा बोले गूँगा आप कहाए,
देख सफ़ेदी होत अंगारा गूँगे से भिड़ जाए।
बाँस का मंदिर वाह का बाशा बाशे का वह खाजा,
संग मिले तो सर पर राखें वाको वाओ राजा।
सी सी करके नाम बताया तामें बैठा एक,
उल्टा सीधा फिर फिर देखो वही एक का एक।
भेद पहेली में कही सुन तू मेरे लाल,
अर्बी हिन्दी फ़ारसी तीनों करो ख़याल।

इसके अतिरिक्त उन्होंने कई मुकरनियाँ भी कही हैं, उनमें से कुछ उदाहरणतः नीचे दी जाती हैं—

सगरी रैन मोरे संग जागा, भोर भई तब बिछुड़न लागा—
उसके बिछुड़े फाटत हिया, अय सखि साजन ना सखि दिया।
सर्व सलोना सब गुण नीका, वा बिन सब जग लागे फीका—
वाके सिर पर होवे कौन, अय सखि साजन, ना सखि लौन।
वह आवे तब शादी होवे, उस बिन दूजा और न कोये—
मीठे लागे वाके बोल, अय सखि साजन ना सखि ढोल।

अमीर ख़ुसरो कविता में प्रसिद्ध थे। एक बार उन्होंने एक कूयें पर जाकर पानी माँगा। वहाँ चार स्त्रियाँ घड़े भर रही थीं। उन्होंने पूछा तू कौन है? उत्तर दिया, ख़ुसरो। ख़ुसरो का नाम उस समय दिगन्तव्यापी हो रहा था। एक स्त्री ने कहा, मैं पानी तो पिला दूँगी, परन्तु तू मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खीर का एक शेर बना दे। दूसरी ने कहा, नहीं, चर्ख़े का बना दे। तीसरी बोली, मुझे कुत्ते का शेर चाहिए। चौथी ने ढोल के लिए कहा। अमीर ख़ुसरो ने कहा, पहले पानी तो पिला दो, पीछे कविता भी हो जायगी। परन्तु स्त्रियों ने कहा, नहीं पहले हमारी चीज़ बना दो। ख़ुसरो ने कुछ देर सोचा और तब कहा—

खीर पकाई यत्न से चर्ख़ा दिया जला।
आया कुत्ता खा गया तू बैठी ढोल बजा।

इसी प्रकार वे कभी कभी द्व्यर्थक भी कहा करते थे। उनमें विशेषता यह है कि प्रश्न दो करते हैं और उत्तर एक देते हैं। मगर उत्तर का एक शब्द दो अर्थों में लगता हुआ दोनों प्रश्नों का उत्तर दे देता है। जैसे—

(१) गोश्त क्यों न खाया ? / डोम क्यों न गाया ? } गला न था।

(२) जूता क्यों न पाया ? / सँबोसा क्यों न खाया ? } तला न था।

(३) अनार क्यों न चखा ? / वज़ीर क्यों न रखा ? } दाना न था।

(४) घोड़ा अड़ा क्यों ? / पान सड़ा क्यों ? } फेरा न था।

परन्तु यहीं पर बस नहीं, अमीर ख़ुसरो ने गीत बनाने में बड़ी श्लाघा प्राप्त की थी, और सर्वथा हिन्दी रङ्गत में। उनमें न बनावट है, न किसी प्रकार की खैंचातानी—साफ़ साफ़ बातें हैं और सीधे-सादे ढङ्ग से कह दी हैं। जैसे, नीचे जो गाना दिया जाता है वह एक लड़की की ओर से है जो ससुराल में है। वर्षा की ऋतु आती है, झूले पड़ जाते हैं। लड़की को मौक़ा याद आ जाता है। झूलती है और गाती है—

अम्मा मेरे बाबा को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा बाबा तो बुढ्ढा री कि सावन आया।
अम्मा मेरे भैय्या को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा भैय्या तो बाला री कि सावन आया।
अम्मा मेरे मामू को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा मामू तो बाँका री कि सावन आया।

अर्थात्—हे मा सावन की ऋतु आ गई है, मेरे पिता को भेज, वह मुझे आकर ले जाय। फिर आपही माँ की ओर से उत्तर देती है कि बेटी वह बूढ़ा है, कैसे आ सकेगा। फिर कहती है कि अच्छा तो भाई को भेज दो, पर वह छोटा है। अन्त में कहती है कि पिता बूढ़ा है, भाई बालक है, तो मामू को ही भेज दो, वह युवा है, समझदार है। परन्तु मा का उत्तर कैसा रसीला है कि वह बाँका है अर्थात् छैला है, मेरा कहा न मानेगा।

कैसे भाव हैं, मानो सामने चित्र खड़े कर दिये हैं। इन्हीं भावों को यदि आधुनिक कवि कविता-बद्ध करे तो कहे—

प्रातःकाल है और मैं स्वप्न देख रही हूँ कि प्रकृति ने मेरी बाल्यावस्था लौटा दी है, और मैं फिर से अपनी जन्मभूमि की बहारें लूट रही हूँ, जहाँ दिन-रात हँसी-खुशी है, प्रकाश है। वहाँ देवता गाते हैं, और अप्सरायें किरणें फेंक कर जादू कर रही हैं, इत्यादि।

निस्सन्देह ये शब्द बड़े ही रोचक हैं, और मनुष्य इनके रस में मग्न हो जाता है, परन्तु वास्तविकता से कोसों दूर हैं। जो कविता को समझता है वह यह मानेगा कि अमीर ख़ुसरो ने कुछ पङ्क्तियों में सचाई को बन्द कर दिया है, और कविता का हक़ चुका दिया है।

उर्दू-कविता का आरम्भ।

परन्तु अमीर ख़ुसरो ने अधिकतर हिन्दी दोहों की शैली पर कविता की है। उन्होंने फ़ारसी बहरों को उर्दू में लाने का प्रयत्न नहीं किया। यदि करते तो उर्दू के सबसे पहले कवि कहलाते। पर यह सेहरा परमेश्वर की ओर से शम्स ली उल्लाह के लिए तैयार हुआ था, कोई दूसरा क्योंकर ले जाता। हज़रत वली का जन्म अहमदाबाद गुजरात में हुआ। कहाँ पढ़े ? कहाँ पले ? कविता की चटक उन्हें कब लगी, यह सब बातें अन्धकार में हैं। परन्तु उन्होंने वह काम किया जिससे उनका नाम अमर हो गया। सच पूछो तो उन्हीं की कृपा से आज उर्दू-कविता फ़ारसी के साथ साथ चल रही है। और इसमें फ़ारसी की सारी बहरें, रदीफ़-क़ाफ़िये, मुसद्दस, मुख़मस, क़ित दाख़िल किये। उर्दू-कविता के साथ उनकी वही तुलना है जो अँगरेज़ी के साथ चासर की, फ़ारसी के साथ रोदकी की और हिन्दी के साथ सूरदास की है। उस समय तक उर्दू-कविता हिन्दी दोहों और कुतबों तक ही मर्य्यादित थी, परन्तु वली साहब ने उसके लिए नया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरवाज़ा खोल दिया और आनेवाले कवि-वंश के लिए एक महान् विस्तृत क्षेत्र तैयार कर दिया। उनका दीवान देखने से जान पड़ता है कि उस समय निम्नलिखित शब्द साधारणतया प्रयोग किये जाते थे—

से	के स्थान में	सों, सें, सेती।
को	,, ,,	कों।
हमको	,, ,,	हमन को।
दुनिया में	,, ,,	जग में।
कलाम	,, ,,	बचन।
हमेशा	,, ,,	नित।
मुँह	,, ,,	मुख।
तस्बीह	,, ,,	तस्बी।
तेरे दिल	,, ,,	तुझ दिल।
बेगाना	,, ,,	बगाना।
अन्दर के	,, ,,	भीतर।
माशूका	,, ,,	मोहन, सरीजन, पी, प्रीतम।
आँसू	,, ,,	अंझू।
भवें	,, ,,	भवाँ।
पलकें	,, ,,	पलकाँ।
आँखें	,, ,,	अंखड़ीयाँ, नैन।
यह	,, ,,	यो।
मुझे	,, ,,	मुझ।
को	,, ,,	के ताईं।
मैं	,, ,,	मों।
ख़ाके पा	,, ,,	ख़ाके चरण।
दिखाई देता	,,	दिस्ता।
आईना	,, ,,	आर्सी।
तरक करके	,, ,,	तज कर, तज।
ज़ुल्म	,, ,,	ज़ालनी।
दीदार दे	,, ,,	दरस दिखा।
वीरान	,, ,,	सुंजाँ।
भाव	,, ,,	भा।
दिल	,, ,,	मन।

कविता का नमूना देखिए—

बे वफ़ाई न कर खुदा सों डर,
जग हँसाई न कर खुदा सों डर।
है जुदाई में ज़िन्दगी मुश्किल,
आ, ज़ुदाई न कर खुदा सों डर।
आर्सी देख कर न हो मग़रूर,
खुद नुमाई न कर खुदा सों डर।

जिस वक्त अय सरीजन तू बे हजाब (१) होगा—
हर ज़री तुझ झलक सों जू आफ़ताब होगा।
मत जा चमनमों लाला बुलबुल पे मत सितम कर—
गर्मा सों तुझ निगह की गुल्गुल गुलाब होगा।
मत आईना को दिखला अपना जमाल रौशन—
तुझ मुख की ताब (२) देखे, आईना आब(३) होगा।
निकाला है वह सितम गर तेग़े (४) अदा कूँ लेकर—
सीने पे आशिकाँ के अब फ़तेहयाब (५) होगा।
रखता है क्यों जफ़ा को मुझ पर रवा अय ज़ालिम—
महशर (६) मों तुझ सें आख़िर मेरा हिसाब होगा।
हातिफ़ (७) ने यूँ दिया है मुझको बली बशारत(८)-
उसकी गली में जा तू मक़सद शताब होगा।
दिल वली का ले लिया दिल्ली ने छीन—
जा कहो कोई मुहम्मद शाह सों।

जब वली दिल्ली पहुँचे तब शोर मच गया। कविता के प्रेमियों ने उनको सिर-आँखों पर बिठाया। कवि पैदा हो गये, और कविता की महफ़िलें सजने लगीं। लेकिन जो स्वर निकलता था, वली के रङ्ग में रँगा हुआ, और जो गज़ल कहता था, वली के समर्थन में। ऐसा अनुमान है कि उस समय सैकड़ों लोगों को यह चाट लग गई होगी। पर काल के हाथों ने सबका नाम मिटा दिया, अब केवल आबरू, नाजी और यकरङ्ग के नाम शेष रह गये हैं। उनकी कविताओं के नमूने सिलसिलेवार दिये जाते हैं।

शाह आबरू की कविता का नमूना—

नयन से नयन जब मिलाये गया—
दिल के अन्दर मेरे समाये गया।
निगाहे गर्म सें मेरे दिल में—
आके इक आग सी लगाये गया।

१ बेपर्दा। २ चमक। ३ पानी पानी। ४ अदा की तलवार। ५ विजयी। ६ क़यामत। ७ आकाशवत्। ८ शुभ समाचार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरे चलने की सुन ख़बर आशिक़—
यही कहता मुआ कि हाय गया।
सहब कर बोलता था मुझ सेती—
बूझ कर बात को छुपाये गया।
आबरू हिज्र बीच मरता था—
मुख दिखा कर उसे जिलाये गा।

यह रस्म ज़ाल्मी की दुस्तूर है कहाँ का—
दिल छीन कर हमारा दुश्मन हुआ है जाँ का।
हरयक निगाह मों हमसों करने लगे हो नाकें—
कुछ यों तेरी आँखों ने पकड़ा है तौर बाँका।
मत कहर सेती हाथ में ले दिल हमारे कों—
जलता है क्यों पकड़ता है ज़ालिम अँगारे कों।
मैं आ पड़ा हूँ इश्क़ के ज़ालिम भँवर के बीच—
तख़्ता उपर चलावते हैं जी के आरे कों।
अपना जमाल आबरु कों टुक दिखाओ आज—
मुद्दत से आज़ू[6] है दरस की बिचारे कों।

जनाब नाजी साहब का कलाम देखिए—

देख मोहन तेरी कमर की तरफ़—
फिर गया मानी (१) अपने घर की तरफ़।
जिनने देखे तेरे लबे (२) शीरीं—
नज़्र उनकी नहीं शकर की तरफ़।
है मुहाल उनका दाम (३) में आना—
दिल है इज सब बुतां का ज़र (४) की तरफ़।
तेरे रुख़सार (५) की सफ़ाई देख—
चश्मे दाना (६) नहीं हुनर की तरफ़।
हस्त (७) में पाक बाज़ है ना जी—
बद अमल जाएँगे सक़र (८) की तरफ़।

यकरङ्ग साहब की कविता—

पारसाई[1] और जवानी क्यों कर हो?
एक जगह आग पानी क्यों कर हो?
न कहो यह कि यार जाता है,
दिल से सब्रो[10] क़रार जाता है।
गर ख़बर लेनी है तो ले सय्याद[11],
हाथ से यह शिकार जाता है।

१ प्रेमी। २ मीठे होंठ। ३ जाल। ४ धन। ५ गाल। ६ बुद्धिमान् की आँख। ७ प्रलय। ८ नरक। ९ नेकी। १० शान्ति। ११ शिकारी।

क्या सीधी-सादी बातें हैं, न सोचने की आवश्यकता है और न डिक्शनरी की। जो कहना था, साफ़ साफ़ कह दिया। न बुद्धि लड़ाते हैं कि कोई पेचदार बात कहें, न घण्टों परेशान होते हैं कि राई का पहाड़ बना कर खड़ा कर दें। आज-कल के कवि कहेंगे, यह क्या अनाप-शनाप कविता है, पर नहीं यह अनाप-शनाप नहीं, उर्दू-कविता का प्रथम युग है। उस समय के कवियों ने जो बीज बोये उनके फल आज लोग खा खाकर चटख़ारे ले रहे हैं। उन्होंने वह नींव रक्खी जिस पर आज विशाल भवन खड़े हैं अथवा यह कह लीजिए कि उन्होंने वह पटड़ी तैयार की जिन पर आज गाड़ियाँ चल रही हैं।

[असमाप्त

सुदर्शन

अन्तर्नाद।

१—प्रतीक्षा।

ब की खड़ी हूँ प्रियतम! पुकारते पुकारते थक गई, जीभ में छाले पड़ गये, पर तुम न आये।

इस विजन वन में अकेली मैं ही हूँ। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा छा रहा है। नदी का कलकल रव भी मन्द पड़ता जाता है। जान पड़ता है, हवा भी अठखेलियाँ बन्द कर सोने को जा रही है। सामने के काले भयावने पहाड़ी शिखरों की ओर तो आँख खोल कर देखा भी नहीं जाता। बड़ी सनसनाहट है। पेड़ों पर बसेरा लेनेवाली चिड़ियों के परों की फड़फड़ाहट ही रुक रुक कर इस घोर सन्नाटे को चीरती है। इसी से थोड़ा-बहुत धीरज बँधा है। नाथ! अञ्चल से ढका हुआ यह निस्नेह दीपक कब तक टिमटिमायगा?

पैर काँप रहे हैं। हृदय धक धक कर रहा है। पलकें भी भारी होती जाती हैं। शरीर पसीज उठा है। गला रुँध आया है। बड़ी घबराहट मालूम होती है। क्या करूँ, क्या न करूँ? न खड़ा ही रहा जाता है, न लौटते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही बनता है। लौटूँ भी तो कहाँ, किस ओर! अब न मेरा कहीं घर है, न द्वार। न सखी है, न सहेली। न सजन है, न परिजन। न कुल है, न कानि। फिर किधर जाऊँ, कहाँ रहूँ? पूरब-पच्छिम का भी तो ज्ञान नहीं। नाथ! तुम्हारे मन में आख़िर है क्या? यह देखो, दीपक भी बुझा चाहता है।

क्या यह शिला, जिस पर मैं खड़ी तुम्हारी बाट जोह रही हूँ, मोम की तो नहीं है? यदि नहीं, तो पिघलती क्यों जाती है? तारे क्यों रो रहे हैं? कौन कहता है कि पत्तियों पर ओस की बूँदें झिलमिला रही हैं। यह इन्हीं दुखिया तारों के आँसू हैं। काली साड़ी पहने यह अँधेरी रात मुझ निराशा में डूबी अभागिनी का दुख बटाने आई है। देखूँ, बेचारी कब तक साथ देती है! स्नेह-मयी प्रकृति का हृदय सचमुच ही बड़ा कोमल है। यह इतनी दया न दिखाती तो मैं किसके आगे अपना रोना रोती? पर तुम्हें तनिक भी दया न आई कठोरहृदय!

यह प्रतीक्षा है कि परीक्षा? प्रतीक्षा ही है, परीक्षा किस बात की होगी! तुम अनन्त, तुम्हारी प्रतीक्षा भी अनन्त! ठीक है न? कुछ तो कहो। किससे बात कर रही हूँ? क्या तुम सुनते हो? यदि हाँ, तो अपनी मन-मोहिनी झलक क्यों नहीं दिखाते मनमोहन!

लो, दीपक गया! आशा भी गई। अब भी दौड़ आओ प्रियतम! देर करने से प्राण-पखेरू भी उड़ जायँगे प्राणेश!

२—भीषण बाढ़।

"सावधान! सावधान!!"

"क्या है भाई?"

"देखते नहीं, दुनिया में उथल-पुथल करती हुई भीषण बाढ़ इधर बढ़ती आ रही है?"

"बाढ़! किस नदी की बाढ़? इन दिनों बाढ़ कहाँ से आई भाई?"

"आँख खोलो। पड़े-पड़े बर्राने से काम न चलेगा। वह किसी नदी या तालाब की बाढ़ नहीं है। इन दिनों—उन दिनों की बात छोड़ो।"

"फिर आख़िर वह है क्या बला? कुछ कहोगे भी?"

"हाँ! वह कराल क्रान्ति की भयङ्कर बाढ़ है। उसका वेग मन से भी अधिक प्रबल है। सुना है, वह संसार का काया-कल्प करती आ रही है। उसने अमरपुर जैसे नगरों के गगनचुम्बी सुरम्य राजप्रासादों को खण्डहर बनाकर छोड़ा है। जिन चित्रशालाओं में गजगामिनी बालाओं का कङ्कण-किङ्किणि-झणत्कार विलासियों को उन्मत्त बना देता था, वहाँ अब रोमाञ्चकारी शृगाल-रोदन ही आधी रात को सुनाई देता है। नन्दन-वनों का तो उसने नाम-निशान तक नहीं छोड़ा। आज न तो वहाँ रङ्ग-बिरङ्गी क्यारियाँ ही हैं और न रसाल की डाल पर कोकिल की कुहूक-ध्वनि ही। सारा राजसी ठाट-बाट उसने मिट्टी में मिला दिया है। वीणा और मृदङ्ग इधर से उधर लुढ़कते फिरते हैं। चौसर के पाँसे और मदिरा के प्याले न जाने क्या हुए! इत्र की शीशियाँ इधर-उधर टूटी-फूटी पड़ी हैं। चित्र-विचित्र रङ्गशालाओं में कुत्ते भूकते हैं। और छतों पर चमगादड़ों का एकछत्र राज्य जम गया है। संगमरमर की चौकियों और मख़मली गद्दों का तो कुछ पता भी नहीं। बाढ़ है या दानवी! हत्यारी ने देवालय और धर्म-ग्रन्थ तक नहीं छोड़े। कराल दाढ़ों के नीचे जो आया चबा गई!

सावधान हो जाओ। उठो। बिस्तर छोड़ो। औरों को भी उठा दो। सबसे पहले प्रसुप्त विलास-विभोर कामियों को जगाओ। निर्दयता से उनके हाथ से शृङ्गार-पिटारी छीन कर फेंक दो। उनकी बकुल-मालायें और कुसुम-कङ्कण कुचल डालो। वीणायें तोड़-ताड़ कर लतिया दो। जैसे बने तैसे शीघ्र ही उन कामान्धों को मृगनयनी के बाहु-पाश से छुड़ा कर अलग कर दो।

दौड़ो, सचेत कर दो उन पुरानी लकीर पीटनेवाले कूप-मण्डूक धर्मदम्भियों को। उनके आडम्बर-मण्डित ग्रन्थों और सामग्रियों को जला दो। हिचकते क्या हो? ऐसा करने में कोई पाप तो है नहीं। सड़े-गले खोखले धर्म-डम्बर को जला डालना ही अच्छा है। उन बकध्यानी धर्म-जन्तुओं को तुरन्त ही आराधना-मन्दिरों से हटा लो।

निर्जीव साहित्य पर माथापच्ची करनेवाले कवियों और साहित्यरसिकों को भी सजग कर दो। नखशिख और नायिकाभेद के कीचड़ से खींच लो उन बेचारों को। उन अन्धों को इस उथल-पुथल की ख़बर ही क्या होगी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमुखी ललनाओं के लावण्यमय अङ्ग-प्रत्यङ्ग निरखते निरखते ही उनका जीवन बीता है। कटि की सूक्ष्मता का निरूपण करने में ही उन काव्य-कलाधरों ने अपनी विमल बुद्धि का सूक्ष्म से सूक्ष्म परिचय दिया है। पीन पयोधरों और विकट नितम्बों के दुर्गम उत्तुङ्ग शृङ्गों पर ही उनकी आँखें टकराती फिरी हैं। उनकी दशा बड़ी ही दयनीय है। उनका वज्र-सा हृदय पिशाचिनी विषयान्धता ने छिन्न-भिन्न कर डाला है। इस बाढ़ में न जाने उनका क्या हाल होगा। हा! अनोखी उपमायें और अनूठी उत्प्रेक्षायें मन की मन में ही रह जायँगी। इस हलचल में बेचारों का नख-शिख-वर्णन भला कौन सुनेगा? नायिका-भेद की बारीकियाँ तो पहली ही लहर में साफ़ हो जायँगी। जाओ, उनकी थोथी पोथियों को अब भी चीर-फाड़ कर समुद्र-सात् कर दो।

भाई! धन-कुबेरों और सत्ताधारियों को भी सावधान कर देना। उच्चवंशीय महजनों को भी एक थप्पड़ जमा कर जगा देना। न्याय के नाम पर सत्य का खून करने-वाले न्यायाधीशों को भी हाथ पकड़ कर हटा लेना। उनकी क़लम तोड़ डालना, दावात उलट देना।

दौड़ो, बाढ़ आने के पहले ही उन सबों को सावधान कर दो। ख़बरदार! बाढ़ के प्रतिकूल न जाना, न जाने देना। उसके अनुकूल चलोगे तो बच जाओगे, नहीं तो नहीं। जाओ, अपना कर्त्तव्य करो। तुम्हें यह सब करना ही होगा। न करोगे तो ज़बरदस्ती—

'प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति!'

उठो, भागो। बाढ़ की घोर गर्ज्जना कानों को फाड़े डालती है। आकाश का हृदय कम्पित हो उठा है। ओह! यह दूसरा प्रलय तो नहीं है!

३—अनाथालय।

कभी अनाथालय में भी सैर करने गया है सैलानी? न गया होगा। वहाँ दिल बहलाने को रक्खा ही क्या है? रसिकों की रसीली आँखें उस नीरस स्थान से कोसों दूर भागती हैं।

अनाथालय का रोमाञ्चकारी दृश्य सचमुच ही रँगीले नेत्रों का आतिथ्य-सत्कार नहीं कर सकता। उस उजड़े हुए कोने में मनमौजी सैलानी के मन की एक भी चीज़ नहीं है। जहाँ-तहाँ टूटी-फूटी झोपड़ियाँ मिलेंगी, जिनमें डरावने अस्थि-कङ्काल पड़े हैं। भूख के मारे उनका पेट पीठ से जा लगा है। आँखें बैठ गई हैं। ओंठ सूख गये हैं। गले से आवाज़ नहीं निकलती। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हैं। किसी के तन पर एकाध फटा-पुराना चिथड़ा पड़ा है तो कोई बिलकुल नङ्ग-धड़ङ्ग ही गरमी-जाड़े से मर रहा है। दुधमुहे बालकों को दो घूँट भी दूध नसीब नहीं! सैकड़ों अछूते लाल असमय ही काल के गाल में जा रहे हैं। लाखों अनाथ कँगले बिना रोटी के तड़प-तड़प कर मर रहे हैं। चारों ओर चीत्कार ही चीत्कार सुनाई देता है।

अब एक आश्चर्य सुन। वह यह कि उन प्राणावशेष अस्थि-कङ्कालों पर शासन किया जाता है! वह शासन अनुपम और अपूर्व है। उन अनाथालय-वासियों के स्वर्ण-प्रासाद लुट चुके हैं। उनके मुँह का कौर छिन गया है। उनके गुलाब जैसे सुन्दर मुखड़ों की लाली फीकी कर दी गई है। अब उनकी जर्ज्जरित हड्डियों पर कड़ी नज़र रक्खी जाती है। उन बेचारे दीन-दुखियों के निर्बल हाथ-पैर खूब कस कर बाँध दिये गये हैं। हिलना-डुलना तो दूर रहा, ग़रीब चीं भी नहीं कर सकते, क्योंकि उनके मुँह पर ताले लगा दिये गये हैं! यह सब किसलिए? इसलिए कि वे अपने जन्मसिद्ध अधिकारों का स्मरण तक न कर सकें, अपना दुखड़ा किसी सहृदय के आगे न रोवें और अपने को 'जीवित मनुष्य' कहना भी भूल जायँ।

यह है अनाथालय की एक झलक। क्या तू वहाँ घूमने जायगा? पूछना व्यर्थ है। तेरा मन-मराल उस क्षार-समुद्र में कैसे रम सकता है! उसके रमने के सौन्दर्य-सरोवर तो और ही हैं। तेरी लावण्य-प्रिय आँख तो उन सुसज्जित प्रासादों पर जाती है, जहाँ संगमरमर के सफ़ेद फ़र्श पर तेरे नाज़ुक पैर फिसला करते हैं, जहाँ ख़सख़ानों की महक से तेरा दिल और दिमाग़ तर और मस्त हो जाता है, जहाँ कोकिल-कण्ठियों की सुमृदुस्वर-लहरी तेरे प्रकम्पित हृदय पर थिरका करती है, जहाँ कोमलाङ्गी चन्द्रमुखियों के नयन-बाणों से तेरा उन्मत्त मन-मृग बिध जाता है या जहाँ तू शराब के चटकीले रङ्ग से अपना दामन रँगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। तेरा चञ्चल चित्त-चञ्चरीक तो उन्हीं उद्यानों पर मँडराया करता है, जहाँ उन्मादिनी मल्लिका-वल्लरी के पल्लव-करों का तुझे कोमल स्पर्श मिलता है, जहाँ रङ्ग-बिरङ्गे फूलों की क्यारियाँ तुझे मुग्धकारी वासन्ती समीर के हिँडोले पर झुलाया करती हैं, जहाँ सुगन्धित फ़ौवारों के ठण्डे छींटे तेरी अधखुली मतवाली आँखों में एक निराली ही मस्ती भर देते हैं। ऐसा देव-दुर्लभ स्वर्ग भला किससे छोड़ा जायगा? अनाथालय देखने जाय तेरी बला!

न देखा। तेरा न देखना ही अच्छा है। तेरे-जैसे मदान्धों के देखने से होगा ही क्या? उन अनाथों का देखनेवाला तो एक अनाथबन्धु परमात्मा है। वही उनकी आह का ठीक ठीक मूल्य आँक सकता है। उसके करुणरस-पूरित नेत्रों में उनका आर्द्रचित्र अङ्कित है। एक न एक दिन वह अवश्यही उस अनाथालय की सुध लेगा। उन अनाथों को अपने अशरण-शरण अङ्क में स्थान देकर कृतार्थ करेगा।

४—अनाड़ी सुधारक।

क्या 'सुधार सुधार' चिल्लाता है सुधारक? कुछ अपना भी सुधार किया है? संसार का सुधार करने के पहले कभी इस पर भी विचार किया है कि सुधारक का सुधार कैसे होगा? न तो तुझे देश-काल-परिस्थिति का ही पर्याप्त ज्ञान है, और न विवेक और शक्ति का ही साक्षात्कार तूने किया है। फिर सुधार करने को क्यों कटिबद्ध हो रहा है?

तू तो केवल दो-चार बाहरी अधूरी बातों के आधार पर ही सुधार की हलचल मचा रहा है। तू अपने छोटे-से बन्द कमरे के भीतर बैठा हुआ खिड़की में ही समस्त ब्रह्माण्ड की छानबीन किया करता है। कभी कभी तो तू विधि-विधान की भी नुक्ताचीनी कर बैठता है! कपोल-कल्पनाओं की कच्ची नींव पर नवीन विश्व के निर्माण का आयोजन करना तो तेरा सहज व्यापार है। किसी भी घटना में तू अपने क्षुद्र व्यक्तित्व की छाप लगा देता है। यह नहीं समझता कि इससे सुधार होगा या बिगाड़? यदि तू अपने सुधार का उत्तरदायित्व जानता होता तो ईश्वरीय वाटिकाओं के उजाड़ देने की कभी दुश्चेष्टा न करता, विष-लताओं से पारिजात-पुष्प चुनने को खड़ा न हो जाता, अमृत-भरी कटोरियाँ करील की जड़ों में न उड़ेल देता, सुरभित सुमनों की मञ्जुल मालायें मतवाले हाथी के पैरों के तले न दबोच देता, प्रकृति-सुन्दरी के कोमल कलेवर को लोहे के काले कण्टकित आभूषणों से कलङ्कित न करता, सहज सामाजिक बन्धनों को ढीला करके स्वर्ग-भूमि पर रक्तपात न कराता, आराधना-मन्दिरों में धर्म-मूर्त्तियों पर मदिरा की धारा से अभिषेक न होने देता और शुक्लवसना सरस्वती को काली-कलूटी साड़ी पहना कर नर्त्तकी की तरह न नचाता फिरता।

सुधारक! सुधार का बीड़ा उठाते हुए क्या तूने कभी जनता के सरल वायुमण्डल में अपनी हृदय-तन्त्री की झीनी झनकार सुनी है? क्या तूने उत्तरदायित्व की दुधारी तलवार पर कभी फूँक-फूँक कर पैर रक्खा है? क्या तूने कभी अपने वर्तमान आन्दोलन के गर्भ में सदसत्-परिणाम की रेखायें भविष्य-पटल पर खचित देखी हैं? यदि नहीं तो तुझसे कौन कहने गया था कि तू आकाश के प्रशान्त अन्तःकरण में क्रान्ति की प्रलयङ्करी लहरें उठा दे। सुधार करने के पहले तुझे क्रान्ति और शान्ति के हृदय की धड़कन भी देख लेनी चाहिए थी। यदि तुझे कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान होता तो तू लोक-सत्ता को, नीरोग बनाने के बदले, सन्निपात जैसी असाध्य व्याधि से निष्प्राण करने की अनधिकार चेष्टा न करता।

तेरे दुष्कृत्यों के भयङ्कर परिणाम नरक की काली दीवार पर रक्त से अङ्कित किये गये हैं। दुर्दैव तेरी करतूतों पर खिलखिला कर हँस रहा है। इधर समस्त जन-समाज भी किङ्कर्त्तव्य-विमूढ़ता के अन्धकूप में पड़ा हुआ बिलख बिलख कर रो रहा है। इन सब अनर्थों का तू क्या उत्तर रखता है सुधारक?

वियोगी हरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर।

भारतवर्ष का वर्तमान पुनरुत्थान बङ्गाल से प्रारम्भ होता है। वङ्गवासी अपनी सहज आध्यात्मिक दृष्टि से जीवन के प्रत्येक पहलू पर विचार कर रहे हैं। उन्होंने भारतवर्ष की प्राचीन कला के पुनरुद्धार के लिए भी चेष्टा की है। इससे उनकी उन्नति में यथेष्ट वृद्धि भी हुई है। भारतवर्ष के नवीन युग के विकास में इस आन्दोलन के द्वारा असीम लाभ होने की सम्भावना है। इस आन्दोलन को जन्म लिये अभी बहुत दिन नहीं हुए। इसके सर्व-प्रथम नेता अवनीन्द्रनाथ ठाकुर हैं। इन्हीं के प्रोत्साहन से बहुत से कला-प्रेमी बङ्गाली नवयुवकों ने इस काम को अपने हाथ में लिया है। उनके किसी किसी शिष्य ने तो कला-क्षेत्र में असाधारण नाम भी कमा लिया है। अवनीन्द्रनाथ की शैली सर्वथा नवीन है, किन्तु यह भारतीय आदर्शों के सर्वथा अनुकूल है। इन्होंने भारतीय कला की प्राचीन शैलियों की अवहेलना नहीं की है, बरन उनकी विशेषताओं को लेकर उनमें एक अद्भुत सामञ्जस्य स्थापित किया है। उदाहरण के लिए इसमें मुग़ल और राजपूत-चित्र-शैली का जीवन और चमक-दमक पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है, साथ ही बौद्धकालीन कला के सूक्ष्म विश्लेषण तथा कुशल एवं नियमबद्ध चित्राङ्कण का भी इसमें यथेष्ट समावेश हुआ है। सारांश यह कि इनकी शैली कई एक शैलियों का केवल सङ्ग्रहमात्र नहीं है, किन्तु प्राचीन शैलियों के आधार पर सर्वथा एक नवीन शैली का संस्कार किया गया है। अतएव यह जानना कि किस परिस्थिति में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने ऐसी विलक्षण क्षमता प्राप्त की है, कुछ अरुचिकर न होगा।

अवनीन्द्रनाथ का जन्म सन् १८७१ में हुआ था। इनके माता-पिता की प्रतिष्ठा किसी राज-घराने से कम न थी। ये कलकत्ते के उसी सुप्रसिद्ध ठाकुर-परिवार में उत्पन्न हुए थे जिसका नाम प्राचीन काल में ही अपने धन और वैभव के कारण दूर दूर तक फैल गया था। किन्तु उस परिवार की सबसे बड़ी सम्पत्ति है उसकी उत्तम शिक्षा, परिष्कृत संस्कृति एवं असाधारण ज्ञान-जिज्ञासा। यही कारण है कि नित्यप्रति उस परिवार में एक से एक उज्ज्वल नर-रत्न निकल रहे हैं। अवनीन्द्रनाथ जगत्-विख्यात रवीन्द्रनाथ ठाकुर के भतीजे हैं। जिस प्रकार रवीन्द्रनाथ के ऊपर किसी आधुनिक विश्वविद्यालय का ऐहसान नहीं है, उसी प्रकार अवनीन्द्रनाथ की प्रतिभा के लिए भी कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय गर्व नहीं कर सकता। वे किसी विश्वविद्यालय में पढ़ने नहीं गये। उनकी प्रतिभा सर्वथा नैसर्गिक है और उसका विकास भी उन्हीं के अदम्य अध्यवसाय के द्वारा हुआ है। ईश्वरदत्त प्रतिभा का लक्षण भी यही है। वह अपनी आत्मा के अगाध ज्ञान-स्रोत से ही प्रेरणा ग्रहण करती है। परामुखापेक्षी होना उसका स्वभाव नहीं। अतएव उसके विकास के लिए आज-कल के विश्वविद्यालयों की आवश्यकता नहीं। शायद इनके द्वारा तो प्रतिभा को कुछ धक्का ही लगता है। जो हो, रवीन्द्र और अवनीन्द्र दोनों ही अपने अपने विषय में अद्वितीय हैं।

यदि कोई इन महान् पुरुष के दर्शन करना चाहे तो उसे अधिक कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं। एक ऐसे सीधे-सादे पुरुष की कल्पना कर ले जिसका स्वभाव अत्यन्त सरल हो, जिसमें न तो कोई दिखावट हो और न जिसकी दृष्टि में दिखावट का कोई मूल्य ही हो। इनका चेहरा एक-दम साफ़ रहता है, सिर में भी नाम-मात्र बाल हैं। नेत्रों में एक विशेष प्रकार की चमक है, जो इनके हृद्गत आनन्द को सूचित करती है। हम चाहे जिस समय चाहे जिस अवस्था में अवनीन्द्र को देखें उनके चेहरे से यह आनन्द की झलक कदापि दूर नहीं हो सकती। उनका मस्तिष्क सदैव मनोराज्य के तारतम्य में विचरण किया करता है और उसी को उनकी कल्पना-शक्ति एक अद्भुत रङ्गीन छटा प्रदान कर दिया करती है। मानो वे सदैव एक विलक्षण स्वप्न देखा करते हैं। ऐसे पुरुषों का शरीर तो अवश्य कालान्तर में वृद्ध हो जाता है, किन्तु मस्तिष्क और हृदय में कभी शिथिलता नहीं आती। सच पूछिए तो उनकी विचार-शक्ति और ज्ञान-पिपासा उल्टा बढ़ती जाती है। अवनीन्द्र केवल एक कुशल चित्रकार ही नहीं हैं, ये एक प्रतिभाशाली लेखक भी हैं। प्रौढ़ कल्पना और रस-मर्मज्ञता के कारण इनकी रचनाओं में एक विशेष मज़ा रहता है। वास्तव में संसार में ऐसे पुरुष बहुत नहीं हुए जो एक ही साथ कुशल चित्रकार और योग्य लेखक कहे जा सकें। इनकी संख्या उँगलियों पर गिनने लायक़ है। इनको सङ्गीत से भी गाढ़ प्रेम है।

प्रातःकाल अवनीन्द्र प्रायः अपने शाही महल के बाहरी बरामदे में काम करते हुए दिखाई देते हैं। बरामदे से ही मिला हुआ एक छोटा सा बाग़ है। उसकी सुन्दर हरियाली और चिड़ियों के मनोहर चहचहाहट से मन प्रसन्न हो जाता है। ऐसी अवस्था में अवनीन्द्र अपने चित्रपट को लेकर बैठते हैं। उनके सामने एक मेज़ रहती है और दाहने हाथ की ओर एक छोटा सा स्टूल, जिस पर पानी का प्याला रक्खा रहता है। कभी कभी वे अपने ब्रुश को उसका रङ्ग छुटाने के लिए इस प्याले में डुबो दिया करते हैं।

अवनीन्द्र को तम्बाकू पीने का बड़ा शौक़ है। वास्तव में वे एक घड़ी भर भी तम्बाकू के बिना नहीं रह सकते। हर समय उनके पास तम्बाकू रहती है। या तो वे सिगार पीते होंगे या सिगरिट या हुक्का। काम करते समय वे एकान्त नहीं चाहते। मित्र और सम्बन्धी उनके पास प्रायः आया करते हैं। वे काम भी करते जाते हैं और उनसे बातें भी। इसमें उन्हें कोई असुविधा नहीं मालूम पड़ती। उनकी दृष्टि चित्र पर रहती है और उँगलियाँ बड़ी तेज़ी से चलती हैं। बातचीत से उसमें कोई रुकावट नहीं पड़ती।

यह तो अवनीन्द्र के प्रौढ़ जीवन का हाल है। अपने विद्यार्थि-जीवन के विषय में स्वयं उन्होंने एक जगह लिखा है—

"जहाँ प्रातःकाल दस बजने को हुए, तहाँ लड़कों ने रोना-धोना शुरू किया। प्रत्येक घर में एक रण सा मच जाता था। मा-बाप एक ओर होते हैं और बच्चे दूसरी ओर। बचपन में तो रोना-धोना मेरा दैनिक कर्म था। मैं ज़िद के मारे धरती पर लोट जाता था और नौकर मुझे उठाकर गाड़ी में रख आता था। अच्छे मन से स्कूल जानेवाली गाड़ी में चढ़ना मैंने कभी सीखा ही नहीं।

नार्मल स्कूल—इस नाम से मुझे चिढ़ थी। क्योंकि मैं नार्मल स्कूल में ही पढ़ने भेजा गया था। सौभाग्य इतना ही था कि वह हमारे घर से बहुत दूर न था। अतएव यदि मुझे स्कूल से विशेष अरुचि न होती तो शायद उसमें और हमारे घर में कोई अन्तर न रह जाता। एक अँधेरे कमरे में पण्डित लक्ष्मीनाथ बैठे रहते थे। यही हमारे गुरु थे। इनका डेस्क कभी बेतों से ख़ाली नहीं रहता था। कुर्सी पर बैठे बैठे ऊँघना पण्डितजी का नित्य नियम था। किन्तु हम लोगों को क़ैदियों की भाँति क़तारों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुपचाप बैठना पड़ता था। जहाँ आध घण्टे की छुट्टी हुई, तहाँ जान में जान आई। कुछ जलपान किया और इधर-उधर घूमे। अन्तिम घण्टे में ड्रिल की बारी आई और फिर थोड़ी देर में महारानी विक्टोरिया की जय करते हुए लड़कों ने घर का रास्ता लिया।

इस प्रकार दिन भर उस अँधेरे कमरे में क़ैद रहने से मेरा दिल तो बहुत घबराता था। ज्यों ज्यों समय बढ़ता था, त्यों त्यों मुझे घर की धुन सवार होती थी। मेरा जी चाहता था कि कब छुट्टी पाऊँ और मैं अपने बाग़ की सैर करने जाऊँ। वहाँ तितलियाँ मज़े से इधर-उधर उड़ती फिरती होंगी, चिड़ियाँ मौज से गाती होंगी, गिलहरियाँ पेड़ों के खोखलों से डर डर कर देखती होंगी कि कहीं कोई उधर से आता तो नहीं है। जब कभी घर से गाड़ी आने में देर हो जाती थी तो मैं अधीर हो उठता था। नौकर से बेतरह खीझता था, या तो पैदल ही घर चल पड़ता था या फिर नौकर के कन्धे पर सवार होता था।

जैसे-तैसे मेरा स्कूल से पिण्ड छूटा। मैंने उसकी सब कक्षायें पास कर लीं। विश्वविद्यालय में प्रवेश करने का मुझे अधिकार मिल गया। मेरा हृदय घबराने लगा। मैंने उसको सलाम किया और सदा के लिए उससे पीठ फेर ली। यहाँ मैं यह कह देना चाहता हूँ कि मैं कभी अपने इस कृत्य पर लज्जित नहीं हुआ।"

उन्नीस वर्ष से उन्तीस वर्ष तक का समय अवनीन्द्र ने सङ्गीत में बिताया। इसके बाद उन्होंने ब्रुश अपने हाथ लिया। पहले-पहल वे चित्रकला की दीक्षा के लिए एक योरपीय चित्रकला-विशारद के पास गये। उनकी इच्छा थी कि वे पश्चिमी चित्रकला के सभी भेदों को समझ लें। योरपीय कला-विशारद ने अवनीन्द्र को जो कुछ सिखाया उसके लिए अवनीन्द्र अवश्यमेव उसके कृतज्ञ होंगे। किन्तु उसने उन्हें एक बात ऐसी बताई जिसके लिए न केवल अवनीन्द्र वरन समस्त भारत उसका कृतज्ञ हो सकता है। वह बात यह थी कि अवनीन्द्र के लिए पश्चिमी चित्रकला का अध्ययन करना सर्वथा निरर्थक है। उसने अवनीन्द्र को बहुत समझाया-बुझाया और इस बात के लिए बाध्य किया कि अवनीन्द्र उस कला-शैली को सीखने का यत्न करें जिसके संस्कार प्राचीन परम्परा से उनकी नस-नस में समा रहे हैं। अर्थात् वे केवल अपने ही देश की कला में कुशलता प्राप्त कर सकते हैं। उसने उनसे कहा कि तुम्हारे लिए एक ऐसी शैली पर अधिकार प्राप्त करना, जो तुम्हारे स्वभाव एवं परिस्थिति से कोसों दूर है, कोई हँसी-खेल का काम नहीं है।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने उसका कहना मान लिया और उसके आदेश के अनुसार ही काम किया। बहुत जल्दी उन पर उसकी सत्यता प्रकट हो गई। आज वही अवनीन्द्र आधुनिक चित्रकला के आचार्य माने जाते हैं। कहा जाता है कि वे अपने देश के आदर्शों को रङ्गों के द्वारा व्यक्त करते हैं। इनके चित्रों में योंही रङ्गों का जमघट नहीं होता, उसमें एक सूक्ष्म और गहन क्रम रहता है, जिसका समझना उसी प्रकार कठिन है, जैसे किसी दिव्य सङ्गीत का। हाँ, उसको देखकर हृदय में उल्लास अवश्य पैदा होता है।

योरपीय कला-मर्मज्ञ भी अवनीन्द्र के चित्रों को कला की दृष्टि से उच्च स्थान प्रदान करते हैं। तथापि योरपीय और भारतीय कला में मौलिक अन्तर है। योरपीय कला के पर तो मानो कटे हुए हैं, जिससे वह केवल पृथ्वी की ही वस्तुओं को देख सकती है। इसके विरुद्ध भारतीय कला उस स्वतन्त्र पक्षी के समान है जो परों के खुले होने से स्वेच्छापूर्वक आकाश में विचरण करता है और वहाँ भी स्वर्गीय वस्तुओं की छवि का अनुभव करके हमको दिव्य सौन्दर्य का दर्शन कराता है। पश्चिमी सभ्यता का उद्गम यूनानी सभ्यता से हुआ है। और यूनानी लोग स्थूल सौन्दर्य को ही सदैव सौन्दर्य की पराकाष्ठा मानते रहे। उन्होंने सदा शारीरिक सुन्दरता की ही उपासना की है। उनकी कला में हृदय के लिए स्थान नहीं रक्खा गया। किन्तु हिन्दू-चित्रकार का ढङ्ग ही निराला होता है। उसका विश्वास है कि सुन्दर से सुन्दर मनुष्य अथवा उत्तम से उत्तम प्राकृतिक दृश्य में आदर्श सौन्दर्य सन्निहित नहीं है, अतएव उनकी नक़ल या सङ्कलन करना चित्रकला का आदर्श नहीं हो सकता। उसका कहना है कि आदर्श सौन्दर्य तो साधारण स्थूल सुन्दरता से कहीं अधिक सूक्ष्म और कहीं अधिक गम्भीर है। हमको उसी की खोज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहिए। हिन्दू-कला आदर्श की ओर लक्ष्य रखती है और वह आदर्श विचारातीत, अलौकिक और अनुभव-गम्य है। इसलिए सच्चा चित्रकार वही हो सकता है जिसका हृदय काव्यमय और अन्तःकरण पवित्र हो।

अवनीन्द्र ऐसे ही चित्रकार हैं। किन्तु अवनीन्द्र का कहना है कि यद्यपि भिन्न भिन्न देशों की चित्र-शैलियों में बड़ी विभिन्नता देखी जाती है, तथापि उनके मूल में एकता है। सच्ची कला चाहे किसी देश में अभिव्यक्त हुई हो, उसका आधार सदैव भिन्न भिन्न नहीं हो सकता। इसी लिए उनका कहना है कि यद्यपि भारतीय चित्र-शैली निराली है, तथापि वह अन्य शैलियों से सर्वथा असम्बद्ध नहीं है। उसको हम एशिया के चित्र-मन्दिर का कलश कह सकते हैं। भगवान् बुद्ध के समय से लेकर मुग़ल-साम्राज्य के पतन-काल तक भिन्न भिन्न देशों की चित्र-शैलियाँ यहाँ आती रहीं, किन्तु धीरे धीरे भारतीय कला ने उन सबको आत्मसात् कर लिया।

भारतीय कला एशिया के कला-चक्र की धुरी कही जा सकती है और उसका तत्त्व एक शब्द के द्वारा प्रकट हो सकता है। वह शब्द है समाधि। इसी समाधि की व्याख्या करने के लिए एक जगह अवनीन्द्र ने लिखा है—

"गत पचास वर्ष से मेरे घर में मेरे पितामह का कोई चित्र न था। तो भी उसका अभाव कभी मेरे हृदय में नहीं खटका। उनके मित्रों और साथियों ने उनके विषय में जो कहानियाँ मुझे सुनाई थीं उन्हीं के आधार पर मैंने उनका एक चित्र कल्पित कर लिया था। उनका हँसता हुआ मुख और मधुर एवं प्रसन्न आँखें मेरे हृदय पर अङ्कित हो गई थीं। किन्तु कुछ दिनों बाद एकाएक एक दिन उनका एक तैल-चित्र बर्दवान के महल में मिल गया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस ख़बर से मुझे हर्ष हुआ, किन्तु मैं सच कहता हूँ कि जब मैंने उसे देखा तब मुझे दुख हुआ, क्योंकि मेरी कल्पना से यह चित्र एक-दम भिन्न था। न तो उसमें उनका कोमल और स्थूल शरीर था, न उनके चेहरे पर आनन्द और स्वास्थ्य की लहरें थीं और न उनके बदन पर देशी पोशाक। यथासमय वह बड़े समादर से हमारे परिवार की चित्रशाला में लटकाया गया। मैंने उसे कई बार देखा, चित्र बहुत उत्तम था, किन्तु वह यथार्थ और स्थूल चित्र किसी प्रकार मेरे कल्पित चित्र को न धो सका। मुझे जब अपने पितामह का ध्यान होता तभी वही कल्पित चित्र मेरी आँखों के सामने झूलने लगता। वही मेरे लिए उनका सच्चा और असली रूप हो गया। इसलिए हमारे धर्मशास्त्रों का कहना है कि हम सत्य को देख नहीं सकते, समाधि के द्वारा उसका अनुभव कर सकते हैं।"

इन्हीं आदर्शों को अवनीन्द्र ने अपनी कला में व्यक्त किया है। अवनीन्द्र ने एक नहीं सैकड़ों चित्र बनाये हैं, सब पर इस उच्च आदर्श की छाप लगी हुई है। इनके चित्रों में विषय-बाहुल्य बहुत है। जीवन के सभी पहलू अङ्कित किये गये हैं। पौराणिक, ऐतिहासिक, व्यङ्ग्य, सामाजिक, प्राकृतिक, भौगोलिक सभी प्रकार के चित्र हैं। किन्तु किसी चित्र को उठा कर देखिए उसमें भारतीय आदर्श की झलक विद्यमान है। यही इनकी विशेषता है। *

आलोचक

---

* सङ्कलित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—मनुष्य की उत्पत्ति के आदिम स्थान की खोज।

जिन लोगों को अपनी सभ्यता का गर्व है, जो अन्य देशवालों को अर्द्ध-सभ्य, असभ्य या जङ्गली समझते हैं, और जो अन्य मनुष्य-जातियों पर शासन करने के लिए अपने को परमेश्वर का पट्टेदार मानते हैं उनके विचारों और धर्मशास्त्रों के अनुसार तो मनुष्य-सृष्टि हुए कुछ ही हज़ार वर्ष हुए। परन्तु भारतवासी इस विचार या निष्कर्ष के क़ायल नहीं। उनके शास्त्र और पुराण कह रहे हैं कि मनुष्योत्पत्ति हुए अनेक युग बीत गये। रोज़ काम में आनेवाले हिन्दुओं के सङ्कल्प तक में करोड़ों वर्ष बीते हुए काल की गणना का उल्लेख है। इस दशा में निश्चयपूर्वक यह कहना कि पहले पहल मनुष्य-सृष्टि कब हुई थी, नितान्त असम्भव है। पर इसमें सन्देह नहीं कि उसे हुए अरबों नहीं तो करोड़ों वर्ष ज़रूर हुए होंगे।

बालू में यदि कोई कच्चा फल गाड़ दिया जाय तो वह महीनों तक न पकता है, न बिगड़ता है; ज्यों का त्यों बना रहता है। अधपके आम गाड़ देने से बहुत दिनों तक वे वैसे ही बने रहते हैं। निकाल कर खाने से उनमें कोई रूपान्तर हुआ नहीं जान पड़ता। उनका स्वाभाविक स्वाद पूर्ववत् अक्षुण्ण रहता है। बालू में कुछ ऐसा गुण है कि यदि वायु का स्पर्श न हो तो प्राणियों की लाशें तक उसमें गड़ी पड़ी रहती हैं और सड़ती नहीं। रेतीले मैदानों से खोद कर हज़ारों वर्ष की गड़ी लाशें जो निकाली गई हैं वे ज्यों की त्यों पाई गई हैं। मनुष्यों और पशुओं के कङ्कालों का तो कहना ही क्या है। जिन जीवधारियों का अस्तित्व नष्ट हुए करोड़ों वर्ष हो गये उनके कङ्काल योरप और अमेरिका के कितने ही अजायब-घरों में रक्खे हुए हैं। उन्हें जो चाहे जाकर देख सकता है। ये सभी कङ्काल पहाड़ों की खोहों और रेगिस्तानों से खोद कर निकाले गये हैं। इन आविष्कारों से पता चलता है कि सृष्टि के आरम्भ में इस भूतल पर बड़े ही भयङ्कर प्राणियों का निवास था। वे थल में भी रहते थे और जल में भी। ऐसे दानवासुर नामक एक प्राणी के कङ्काल का चित्र, सरस्वती में, बहुत समय पूर्व, निकल भी चुका है।

यह पृथ्वी किसी समय जलमयी थी। जल सूखने पर थल का आविर्भाव धीरे धीरे हुआ है। मङ्गोलिया और साइबेरिया में कुछ ऐसे जीवधारियों की ठठरियाँ मिली हैं जो उन ठठरियों से मिलती जुलती हैं जो उत्तरी अमेरिका की कुछ जगहों में पाई गई हैं। इससे यह अनुमान होता है कि किसी समय मध्य-एशिया की भूमि उत्तरी अमेरिका की भूमि से संलग्न थी। अर्थात् उनके बीच में समुद्र न था। जैसे थलचर और जलचर प्राणी अमेरिका में थे वैसे ही मङ्गोलिया में भी थे। दोनों भूमियों की स्थिति में समानता होने ही से यह बात हो सकती है, अन्यथा नहीं।

संयुक्त-देश, अमेरिका, के अजायब-घर के एक अफ़सर हैं ऐंड्रूज़ साहब। उन्हें मङ्गोलिया की सैर की सूझी। आपने अपने साथ और भी कई आदमियों को लिया। ऊँटों पर सामान लादा। कई मोटरें भी साथ लीं। दो वर्ष तक आपका यह काफ़िला मङ्गोलिया के गोबीनामक रेगिस्तान में घूमता और प्राचीन जन्तुओं की ठठरियों का पता लगाता फिरा। वहाँ उन्हें अनेक ठठरियाँ मिलीं। दानवासुर नामक प्राणी के बड़े बड़े अण्डे तक मिले। एक एक अण्डा मनों वज़नी था। वे सब बालू के भीतर गड़े हुए पाये गये। उनके भीतर से अपरिपक्व डिम्भ ज्यों के त्यों निकले। ऐसे ऐसे गैंड़ों के कङ्काल निकले जो आज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल पाये जानेवाले गैंड़ों से दस-बीस गुना बड़े रहे होंगे। उनकी ठठरियाँ देखकर मनुष्य अचम्भे में आजाता है। वह कैसा भयानक काल रहा होगा जब इतने बड़े बड़े गैंड़े, भीमकाय हाथी और दस-दस गज़ लम्बी गर्दन-वाले दानवासुर जङ्गलों और नदियों की तराइयों में घूमते रहे होंगे।

ऐंड्रूज़ साहब को अपने पहले दौरे में जो ठठरियाँ आदि मिली हैं उनको देखकर उन्हें विश्वास सा हो गया है कि मध्य-एशिया ही में पहले-पहल मनुष्य-सृष्टि हुई होगी। जहाँ पहले पशु पैदा होते हैं वहीं कुछ दिनों बाद मनुष्य भी पैदा होने चाहिए। क्योंकि पशुओं ही के अनन्तर मनुष्य का दरजा है। अतएव ऐंड्रूज़ साहब अब मङ्गोलिया के रेतीले मैदानों पर दूसरी चढ़ाई करने की तैयारी में हैं। इस दफ़े वे पहले की अपेक्षा अधिक साज़ो-सामान लेकर जायँगे, नृतत्त्व और पदार्थ-विज्ञान के बड़े बड़े विद्वानों को भी साथ ले जायँगे, और वहाँ के ख़ास ख़ास स्थानों की खुदाई करके मनुष्य-सृष्टि के आदिम मनुष्यों की खोप-ड़ियों और कङ्कालों का पता लगावेंगे।

साहसी, उद्योगी और विज्ञानवेत्ता क्या नहीं कर सकते? उनके लिए असम्भव कुछ भी नहीं। "असम्भव" शब्द तो काहिल, कापुरुष और कूपमण्डूक भारतवासियों ही के शब्दकोश के प्रत्येक पृष्ठ पर पाया जाता है। इसी से तो उनके देश के गौरीशङ्कर शिखर पर चढ़ जाने की कोशिश करने के लिए योरप के साहसी वीर बार बार यहाँ पधारते हैं। च—

२—नारी-महत्त्व।

१—ऐ नारी! तू घर की मालिक बन के जा, और वहाँ जितने पुरुष हों उनसे रानियों के समान बात-चीत कर।

ऋग्वेद।

२—पिता, भ्राता, पति और देवर यदि अपना कल्याण चाहें तो उन्हें चाहिए कि वे अपनी पुत्री, बहन, स्त्री और भाभी का कभी अपमान न करें। जहाँ स्त्री की पूजा की जाती है, वहाँ देवता निवास करते हैं, और जहाँ उनकी पूजा नहीं होती, वहाँ सकल प्रकार के उत्तम कर्म्म भी निष्फल हो जाते हैं।

मनुस्मृति।

३—नारी पुरुष की अर्धाङ्गिनी है। उसका सबसे बड़ा मित्र है। धर्म्म, अर्थ, काम का मूल है। जो इसका अपमान करता है, काल उसे नष्ट कर देता है।

महाभारत।

४—नारी वन को राजमहलों से भी सुन्दर बना देती है।

रामायण।

५—सारे विश्व का राज्य मिल जाय, परन्तु स्त्री न हो तो पुरुष भिक्षुक से भी बुरा है। इससे तो वह कङ्गाल लाख गुना प्रसन्नचित्त है जो सारा दिन परिश्रम करता है और सन्ध्या को स्त्री का मुँह देख कर सारा दुख भूल जाता है।

कूपर।

६—जब तक आदम अकेला था तब तक स्वर्ग भी उसके लिए काँटों का घर था। देवताओं के गीत, पक्षियों का कलरव, फूलों की मुस्कराहट, वायु के झोंकें, सबके सब उसके लिए नीरस थे। वह उदास रहता था और आहें भरता था। परन्तु जब उसे हौआ मिल गई, तब उसका सारा दुख दूर हो गया, और वन के काँटे स्वर्ग के फूलों में बदल गये।

कैम्बल।

७—कई मन्दबुद्धि कवियों ने स्त्री को योंही बदनाम किया है। वे कहते हैं, स्त्री एक महँगी विपदा है, स्वयं ख़रीदा हुआ रोग है, सर्प के समान विषभरी है, और घर को दुखमय बना देनेवाली काली रात है। परन्तु यह सब मर जानेवाली कविता के झूठे कटाक्ष हैं। इस असार संसार में और सब पदार्थ तो परिश्रम से प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु सुलक्षणा स्त्री केवल परमात्मा की कृपा ही से मिल सकती है। जिसके पास ऐसी स्त्री हो वह कभी दुख को दुख न समझेगा। मुझे तो यह विश्वास है कि यदि संसार स्त्रियों के कहने पर चलने लग जाय तो दुनिया स्वर्गपुरी बन जाय।

पोप।

८—स्त्री पालतू कुत्ते से अधिक नमकहलाल, नाव की पतवार से ज़्यादा पक्की, महल के स्तम्भ से बढ़ कर सुदृढ़ है। मँझधार में मौत के ग़ोते खानेवाले आदमी को किनारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितना प्यारा हो सकता है, स्त्री उससे भी प्यारी है। बूढ़े पिता की आँखों में छोटा पुत्र जितना सुन्दर दिखाई दे सकता है, स्त्री उससे भी सुन्दर है। काली रात के पश्चात् के सुप्रभात से भी बढ़कर स्त्री ज्योतिर्मयी है। रेगिस्तान में प्यास से विकल मनुष्य के लिए पानी जितना मीठा हो सकता है, यह उससे भी कहीं ज़्यादा मीठी है।

यङ्ग।

९—मैं नारी का महत्त्व इसलिए नहीं मानता कि विधाता ने उसे सुन्दर बनाया है, न उससे इसलिए प्रेम करता हूँ कि वह प्रेम के लिए उत्पन्न की गई है। परन्तु मैं उसे इसलिए पूजनीय मानता हूँ, क्योंकि मनुष्य का मनुष्यत्व केवल उसी से ज़िन्दा है।

लौविल।

१०—सौन्दर्य्य से स्त्री सदर्प होती है, उत्तम गुणों से उसकी प्रशंसा होती है, और लज्जावती होकर वह देवी बन जाती है।

शेक्सपीयर।

११—स्त्री के नयनों में परमात्मा ने अपने दो दीपक रख दिये हैं, ताकि संसार के भूले-भटके लोग उनके प्रकाश में अपना खोया हुआ रस्ता देख सकें।

विलिस।

१२—संसार में और कोई वस्तु ऐसी मनोहर नहीं, जितनी सुशीला, पुण्यात्मा और सुन्दर स्त्री।

हंट।

१३—तारे आकाश की कविता हैं तो स्त्रियाँ पृथिवी की। दुनिया के भाग्य का निस्तार इन्हीं के हाथ में है।

हारग्रेव।

१४—कवियों ने स्त्री के क्रोध की ईश्वर-कोप से तुलना की है, परन्तु मुझे अपनी स्त्री के क्रोध में वह विष कभी दिखाई नहीं दिया। जब वह क्रोध में होती है तब मेरी ओर नहीं देखती, क्योंकि उसे विश्वास है कि मेरी ओर देखते ही उसके क्रोध की आग प्रेम का पानी बनकर बह जायगी।

सौदे।

१५—स्त्री की पुस्तक संसार है। वह पुस्तकों से इतना नहीं सीखती जितना संसार से सीखती है।

रूसो।

१६—यदि तुम पत्थर हो तो पारस पत्थर बनो, यदि वृक्ष हो तो लाजवन्ती का पौधा बनो और यदि आदमी हो तो स्त्री से प्रेम करो।

विक्टर ह्यूगो।

१७—स्त्री परमात्मा का सबसे बड़ा जादू है।

आस्कर वाइल्ड।

१८—स्त्री इसलिए उत्पन्न हुई कि पुरुष की साथिन बने। प्रकृति यह चाहती है, और प्राकृत नियमों को पूर्ण करती हुई स्त्री ईश्वरीय शासन को पूर्ण करती है।

शिलर।

१९—आओ मेरी प्यारी आओ! मेरे पास बैठ जाओ। रात गुज़र गई है, और चारों ओर प्रकाश का साम्राज्य है। परन्तु तुम्हारे बिना मुझसे प्रार्थना के शब्द नहीं कहे जाते। आओ मेरे पास बैठो। तुम परमात्मा देव से मेरे लिए प्रार्थना करोगी, मैं तुम्हारे लिए करूँगा।

ऐलन किनंघम।

२०—हे सुकुमारी! विधाता ने तुझे पुरुषों को ठीक करने के लिए बनाया है। यदि तू न होती तो हम पशु-वत् होते। स्वर्ग में क्या है, जो तुझमें नहीं। अद्भुत ज्योति, पवित्रता, सत्य, अनन्त आनन्द, और अमर प्रेम सब कुछ तुझमें है।

आट्वे।

२१—विश्वास रक्खो कि जिस पवित्र प्रेम से पिता अपनी पुत्री को देखता है उससे कोई दूसरा नहीं देख सकता। स्त्री के प्रेम में कामना छिपी होती है, पुत्र के प्रेम में लोभ। परन्तु जो प्रेम हमें अपनी पुत्री से होता है वह दुनिया में और किसी से नहीं हो सकता।

ऐडिसन।

२२—पत्नी की सृष्टि में ईश्वरीय प्रकाश है। वह एक मधुर सरित् है, जहाँ पति अपनी तृषा निवारण कर सकता है, और अपनी चिन्ताओं-दुखों से मुक्त हो सकता है। पुण्यात्मा पत्नी परमात्मा की सब कृपाओं से बड़ी कृपा है। वह पति के लिए देवी है, सकल गुणों की मूर्त्ति है, हीरा है, मोती है, दौलत है। उसके स्वर में उसे मधुरता और उसकी मुस्कराहट में आनन्द दिखाई देता है।

जरमि टेलर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३—तेरा स्वर्ग तेरी मा के पैरों तले है।

हज़रत मुहम्मद।

२४—भारतवर्ष का धर्म्म भारतवर्ष के पुत्रों ने नहीं, पुत्रियों की कृपा से स्थिर है। यदि भारत-रमणियां अपना धर्म्म छोड़ देतीं तो अब तक भारत नष्ट हो गया होता।

स्वामी दयानन्द।

२५—जो पराई स्त्री को पाप की आँखों से देखता है वह परमात्मा के क्रोध को जगाता है और अपने लिए नरक का रास्ता साफ़ करता है।

स्वामी रामतीर्थ।

२६—किसी स्त्री का स्त्रीत्व-भङ्ग करने से पहले मर जाना बहुत ही उत्तम कर्म्म है। किसी स्त्री को पाप-कर्म्म से बचा लेना सबसे बड़ा तीर्थ है।

महात्मा गाँधी।

सुदर्शन।

३—पूर्वीय और पश्चिमीय दृष्टि-कोण।

हमारी जाति के गले में वैराग्य की फांसी बुरी तरह पड़ी हुई है। जीवन-शक्ति की प्रचण्डगति के सामने जातीय आत्मा कांप कांप जाती है। जीवन भय का विष हमारी आत्मा में ऐसा भिद गया है कि संसार-क्षेत्र में हम हाथ-पांव चलाने को बल्कि दम मारने को भी आपज्जनक समझने लगे हैं। त्याग को ही हमने जीवन-सिद्धि समझ रक्खा है। भागने का नाम हमने आगे बढ़ना रक्खा है। शून्य को हम पूर्त्ति समझने लगे हैं। हम डरने को साहस समझते हैं। हम में प्रशंसनीय वह समझा जाता है जिसके इनकारों की सूची अधिक से अधिक लम्बी हो। जिसके न खानेवाली चीज़ों की, न पहननेवाली चीज़ों की, जिसके काम में न आनेवाली चीज़ों की, जिसके न करने-वाले कामों की फ़िहरिस्त जितनी लम्बी होती है, जिसके जीवन से असहयोग का प्रोग्राम जितना लम्बा-चौड़ा होता है, वह उतना ही सराहनीय समझा जाता है। वह सज्जन खाने की फ़िक्र नहीं करता, कपड़े की परवा नहीं करता, घर की फ़िक्र नहीं करता, किसी से बोलता नहीं, कुछ चाहता नहीं, उसको किसी से कुछ मतलब नहीं, यही प्रमाणपत्र है जिसका पा जाना बहुत बड़ी बात समझी जाती है। इससे अधिक तारीफ़ किसी की नहीं की जा सकती। इन तमाम वाक्यों में जो एक शब्द कुल वाक्यों में मिलता है वह "नहीं" का शब्द है।

हम इतना नहीं सोचते कि यदि यह "नहीं" सचमुच प्रशंसनीय लक्षण होता तो संसार की मृतक और पददलित वस्तुएँ सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ चीज़ें कहलातीं, क्योंकि वे नहीं बोलतीं, किसी का कुछ नहीं करतीं और इच्छा-रहित अस्तित्व की तो मानो वे साक्षात् मूर्त्तियाँ होतीं। जो कुछ भी हो, इस महान् शून्य की नीरवता में तड़प तड़प कर नहीं बल्कि मूर्च्छित अवस्था में, बुरे हाल में नहीं बल्कि बेहाल होकर पड़े रहने को हमने जीवन का लक्ष्य समझ रक्खा है। जीवन पर आँख तक न उठाने का नाम, अदृष्ट हो जाने का नाम हमने समदृष्टि रक्खा है और यही पूर्वीय दृष्टि-कोण है।

सब कुछ खो देने का नाम हमने सब कुछ पा जाना रक्खा है। ग़लतियों से बचने के लिए हम स्वयं जीवन से बच कर निकल जाना चाहते हैं। इन्द्रियों को हमने अपना शत्रु मान रक्खा है। ईश्वर की फली-फूली दुनिया को हमने धोखे की टट्टी समझ रक्खा है। इस उदासीनता का घोर परिणाम उस भयङ्कर ह्रास में नज़र आरहा है जो एशिया को निगलता जा रहा है।

हमारे पश्चिमीय भाइयों ने भोग के सिंहासन पर दृढ़ आत्मा से पदार्पण किया है। निर्बल हृदयों को वह सिंहासन कभी कभी पाताल की ओर जाता हुआ नज़र आया, लेकिन निष्पक्ष होकर देखनेवाले जानते हैं कि उन्होंने उस सिंहासन को स्वर्ग में पहुँचनेवाला विमान बनाने का निश्चय कर लिया है। कभी कभी उस पर सवार होनेवालों की स्वाभाविक अल्पज्ञता और परिमित दृष्टि के कारण वह विमान डाँवाडोल होकर मँडराता है, लेकिन उनका निश्चय दृढ़ है और उनका सङ्कल्प अटल है।

स्वर्गलोक में पहुँचने के लिए उनके इस विमान के मार्ग का नक़्शा इनकारों की वह लम्बी-चौड़ी फ़िहरिस्त नहीं है जिसकी पूर्त्ति करके आज हम अपने आपको रसातल में पाते हैं। हमारे पश्चिमीय भाइयों का बल और उनका आधार इस पर है कि अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन से उदासीनता, दरिद्रता, मूढ़ता, अविद्या, रोग, अत्याचार, अस्वच्छता और बेढङ्गापन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिटाया जाय। उनका संयम प्याज़, लहसुन और छूत-छात में नहीं है। उनका संयम इसमें है कि उनका शरीर, उनके खाने-पीने की चीज़ें, खान-पान का स्थान और ढङ्ग, उनका घर पर और बाहर पहनाव-ओढ़ाव, उनके घरों की बनावट और घर के वस्तुओं की तरतीब, उनकी चाल-ढाल, उनकी सड़कें, उनके नगर, उनके बाज़ार, उनकी सब चीज़ें और उनके सब काम साफ़-सुथरे और सुन्दर प्रतीत हों। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को सर्वाङ्ग-सुन्दर बनाने, बनाये रखने और बनाते जाने को वे सबसे आवश्यक चीज़ समझते हैं। वे अपने कुत्तों और अन्य जानवरों के रहने के स्थान तक को, वे अपने पौधों और वृक्षों तक को स्वच्छ और सुन्दर रखना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। उनको इसी की धुन है, इसी की लगन है।

चार वर्ण और चार अवस्थाओं के निरर्थक और निर्मूल विभाग में वे नहीं पड़े रहते। उनके यहां एक ही वर्ण है—मनुष्यता, और एक ही आश्रम है—जीवन। उनमें प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह कोई काम करे, अपने पेशे में और अपनी छुट्टी की घड़ियों में सुविधा, स्वच्छता और सौन्दर्य प्राप्त कर सके, हर प्राणी का जीवन सुगम, सुलभ और स्वतन्त्र बन सके, यही उनके जीवन का मन्त्र है। इस मन्त्र की सिद्धि माला जप के, ईश्वर के नाम की रट लगा के, बेज़रूरत और भद्दे मन्दिर और शिवालय बनवा के, सदाव्रत की प्रथा चला के, वे नहीं करते। वे सच्चे पुरुषार्थ से समझदार आदमियों की तरह अपने गृहनिर्माण, नगर-निर्माण, राष्ट्र-निर्माण, अपने साहित्य, अपनी कला, अपनी संस्थाओं-द्वारा करते हैं।

वे जीवन से आँख नहीं चुराते, वे उस पर स्थिर दृष्टि डालते हैं। आदर्श सौन्दर्य जीवन के अनेक अङ्गों में साकार होकर उनकी आँखों में समा जाय, यही उनका दृष्टि-कोण है। हमको यह याद रखना चाहिए कि उनकी सभ्यता अभी बहुत हाल की है। अभी उनके आध्यात्मिक और मानसिक विकास को पूरा मौक़ा नहीं मिला है, लेकिन जब हम देखते हैं कि उनमें विचारशील, अध्ययनप्रिय, कलाप्रिय और कर्त्तव्यप्रिय आदमियों की संख्या बढ़ती जा रही है तब हमको उनका भविष्य उज्ज्वल नज़र आता है।

जीवन में अध्यात्म, सात्विकता, सरसता और रोचकता आसके, इसी का उद्योग करना सच्ची सभ्यता है। प्रत्येक मनुष्य सुख से जीवन व्यतीत करता हुआ उन्नति कर सके और यह उन्नति जाति की प्रत्येक पीढ़ी में बढ़ती चली चले और प्रत्येक प्राणी के जीवन का प्रत्येक अङ्ग प्रतिदिन सुसंस्कृत होता जाय, यही सच्चा धर्म है। सत्य एक है। मनुष्य-जाति एक है। सच्ची उन्नति एक है। कोई चीज़ पूर्वीय होने से अच्छी नहीं हो जाती और पश्चिमीय होने से बुरी नहीं हो जाती।

पश्चिमीय सभ्यता जानदार है। उसमें दम है। उसमें त्रुटियां अवश्य हैं। लेकिन वह समाजभाव जो प्रत्येक पश्चिमीय के हृदय में अटल रूप से विद्यमान होकर काम कर रहा है वह उस सभ्यता की रक्षा करेगा। पूर्वीय विचारों में कई एक बातें काम की हैं। आध्यात्मिकता और सात्विकता पर स्वाभाविक आधिपत्य पूर्वीय विचारों का है। सरसता, रोचकता, सौन्दर्य और उदारता को समझ लेने की शक्ति भी पूर्वीय मस्तिष्क में है। कर्त्तव्यविहीनता, समाजभाव की क्षीणता और जीवन की चहल-पहल से डर जाना, ये हमारी सबसे बड़ी कमज़ोरियां हैं।

पूर्व को अपने अन्दर से इस भय, इस अभाव, इस उदासीनता और विचार की सङ्कीर्णता को दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। ये प्रश्न उसके जीवन-मरण के प्रश्न हैं। जहाँ पूर्व में शक्ति-सञ्चार हुआ, वहाँ पश्चिम और पूर्व का सङ्गम अनिवार्य हो जायगा। पूर्व ह्रास से बच जायगा और पश्चिम अनेक त्रुटियों से बच जायगा; और पूर्व और पश्चिम मिलकर एक सरस, रोचक, उन्नतिशील, निर्विकार और निर्मल सभ्यता के निर्माण में एक हृदय से लग जायँगे।

यही स्वप्न पूर्व और पश्चिम की कुछ जाग्रत आत्मायें देख रही हैं। इसी स्वप्न में हमारे कल्याण का रहस्य छिपा हुआ है।

रघुपतिसहाय

४—माँवडे का मैदान।

(१)

हल जोत कर जीवन-निर्वाह करनेवाली जाट-जाति में 'चूड़ामणि' नाम का एक ऐसा व्यक्ति हुआ था जिसने जाट-जाति को उन्नतशील एवं बलप्रयुक्त होने के लिए सर्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम मार्ग बतलाया था। उसने फ़र्रुख़शियर सरीखे सम्राटों तक को लूट लेने का साहस किया था।

उसी 'चूड़ामणि' का भाई 'बदनसिंह' हुआ। उसको जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह (द्वितीय) ने जाट-जाति में राजा होने का सौभाग्य प्राप्त करवाया। और

सूर्यमल के जँवाहरमल, रत्नसिंह, नवलसिंह, नाहरसिंह और रणजीतसिंह ये पाँच पुत्र और एक हरदेववक्ष अनौरस छः पुत्र हुए। इनमें 'जँवाहरसिंह' राज्याधिकारी हुआ और सिंहासनासीन होने के बाद वह एक कारण से जयपुरराज्य को अपना शत्रु समझने लगा।

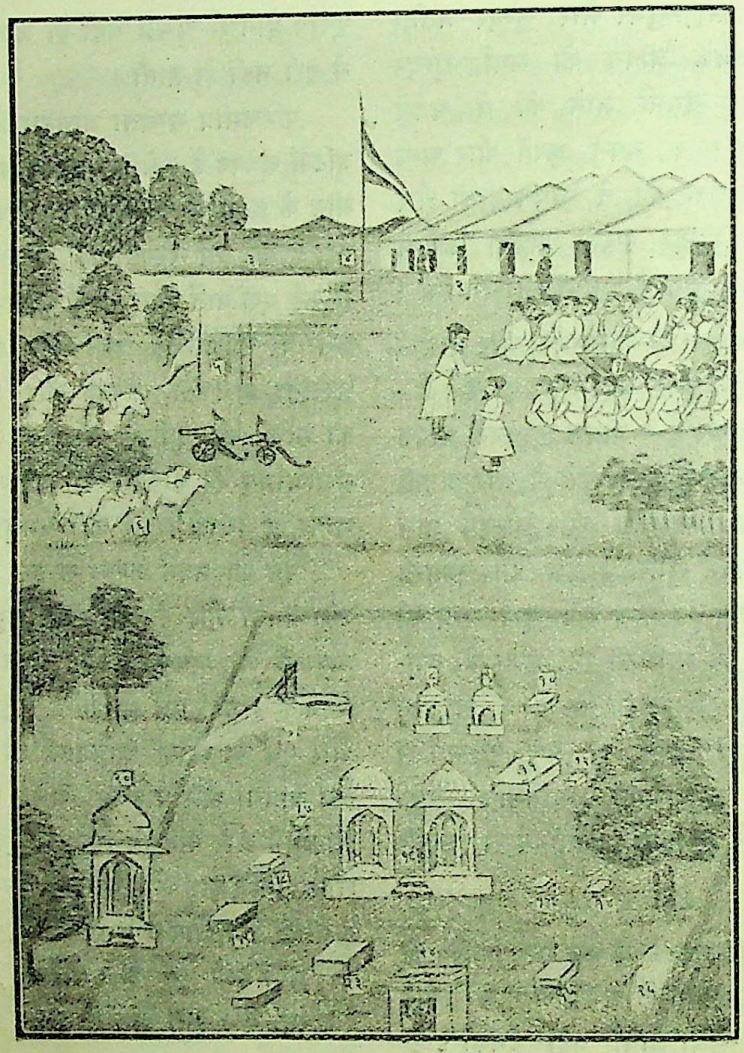

"माँवडे का मैदान"

वह 'डीग' का अधिपति हो सका। उसके कई पुत्रों में सूर्यमल, शोभाराम, प्रतापसिंह और वीरनारायण बड़े यशस्वी हुए। बदनसिंह ने अपने बड़े बेटे सूर्यमल को 'बेर' का अधिपति किया और पीछे वही 'भरतपुर' का अधीश्वर भी होगया।

जयपुरराज्य के प्रति जँवाहर का जिस कारण से दुर्भाव हुआ उसके प्रकट करने की यहाँ विशेष आवश्यकता नहीं है, किन्तु वीर जँवाहर के सराहनीय साहस को प्रकट करना यहाँ अवश्य आवश्यक है।

उन दिनों राजाओं में यह नियम प्रचलित था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कोई राजा अपने राज्य से दूसरी जगह जाते समय रास्ते में किसी दूसरे राज्य का अंश आता तो पहले वहाँ के राजा की अनुमति लेता था। किन्तु जाटराज जँवाहर ने संवत् १८२४ के हेमन्त में भरतपुर से पुष्कर जाते समय रास्ते में जयपुरराज्य के साथ उपर्युक्त नियम का रत्ती भर पालन नहीं किया और किसी प्रकार की सूचना आदि दिये बिना ही जयपुर की सीमा में होता हुआ निश्शंक रूप से पुष्कर चला गया।

उस समय तत्कालीन जयपुर-नरेश महाराजा माधवसिंह (प्रथम) उदरामय से पीड़ित थे। उनकी अनुमति से राजा गुरुसहाय-हरसहाय प्रधानरूप से शासन करते थे। गर्वयुक्त जाट-राज की ओर से नियमित नियम के तोड़े जाने की सूचना महाराज को दी गई। तब महाराज ने कहा कि उनको लिखो कि 'आगे ऐसी अवज्ञा न की जाय'। किन्तु जाट-राज ने महाराज की ओर के उस ख़ास रुक्के को रद्दी में फेंक दिया और तत्काल उत्तर दे दिया कि 'मैं उक्त नियमपालन के लिए बाध्य नहीं हो सकता'। इस सूखे उत्तर को सुनकर महाराज ने अपने राज्य-रक्षक सामन्तों की अनुमति ली और गर्व खर्व करने के आयोजन उपस्थित किये।

उस समय उपस्थित सरदारों में सर्वप्रथम 'धूला' के रावजी ने महाराज को आश्वासन दिया और अपनी सेनायें सजाने लगे। जाट-राज के प्रबन्ध से प्रकट होता था कि पुष्कर से वापस आते समय भी वह उसी मार्ग से जायगा। किन्तु जयपुर के दूरदर्शी सामन्तों ने दूसरे मार्ग का अवरोध किया और जयपुर-राज्य की उत्तरी-सीमा पर सब सामन्त दल-बल-सहित इकट्ठे हुए।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जयपुरराज्य की रक्षा के लिए चौमूँ-सामोद के नाथावत सदा से अग्रसर होते आये हैं और ऐसे अवसरों पर वही सेनापति भी रहते हैं। अतः जाट-राज से युद्ध करने के अवसर पर जयपुर-महाराज की आज्ञा पाकर उक्त दोनों ठिकानों के अधिपति सेनापति हुए, और अपने वीर नाथावतों की सेना को अग्रसर करके युद्धार्थ गमन किया।

चौमूँ-नरेश श्रीमान् ठाकुर रत्नसिंह और सामोद-नरेश श्रीमान् रावल सुलतानसिंह अपने 'खानाजात'—अर्थात् घर में उत्पन्न हुए घोड़ों पर आरूढ़ होके गमन करने लगे और चौमूँ के दरवाज़ों से बाहर निकले तब दोनों सरदारों के घोड़ों ने युद्ध की ओर से मुँह फेर लिया और उधर पीठ करके खड़े हो गये। तब वे दूसरे घोड़ों पर चढ़कर रणाङ्गण में गये और 'खानाजात' घोड़ों पर चढ़ना सदा के लिए निषेध कर दिया।

(२)

जाटराज के पास धन-बल, जन-बल, बाहु-बल और रक्षा-विधान के समयोचित आयोजन आदि सब कुछ थे। अतः उन्होंने पुष्कर से वापस लौटते समय जयपुर-राज्य की उत्तरी सीमा के समीप से मुड़कर आक्रमण करने का निश्चय किया था और एतन्निमित्त 'माँवडे के मैदान' में युद्ध का सामान सजाया था।

जयपुरराज्य की उत्तरी-सीमा के अन्त में माँवडा-मँढौली और नीम का थाना आदि कई गाँव पास पास हैं। और छोटे-बड़े पर्वतों तथा पहाड़ी नलों का भी वहाँ बाहुल्य है। कङ्कड़-पत्थर, टीले और कटीले वृक्षों का बीहड़-पना भी बहुत दूर तक है। और तालाब आदि के अतिरिक्त पानी का संयोग भी स्वल्प सुलभ है। किन्तु उन दिनों वहाँ बड़े बड़े तीन तालाब थे और उनमें पानी भी बहुत दिनों तक रहता था। ऐसे ही मैदान में युद्धस्थल नियत हुआ और जाटराज तथा जयपुर-राज्य की सेनाओं ने युद्ध किया।

जाटराज की अमिट इच्छा यह थी कि प्रबल वेग से आक्रमण करके जयपुरी सेनाओं का विध्वंस किया जाय और जयपुरी सामन्त इस प्रतिज्ञा पर अडिग थे कि किसी भी प्रकार से जयपुर-राज्य का अनिष्ट न होने दिया जाय। कुछ दिनों से जयपुर के खुशहाली रामबोहरा और माचेरी के अधीश्वर प्रतापराव नरूका जयपुर-राज्य से अलग होकर भरतपुर चले गये थे और जाटराज के आश्रयभूत होने के कारण वे माँवडे के मैदान में भी उसी पक्ष में थे। किन्तु अपने जातीय गौरव की उत्तेजना के अनुरोध से उन्होंने जाटराज का पक्ष त्याग दिया और जयपुर-राज्य के रक्षकों में संयुक्त हो गये।

यथासमय युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों ओर के वीरों ने शस्त्रास्त्र ग्रहण किये। अश्वारोही तथा पैदल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेनायें यथाक्रम आगे बढ़ने लगीं। तोपों की पंक्ति और हाथियों के जमघट से 'माँवडे का मैदान' घिर गया। परस्पर ग्रसने की इच्छा रखनेवाली दोनों ओर की सेनायें आपस में भिड़ गईं। जाटराज जँवाहरसिंह मदगर्वित तो था ही। साथ ही जयपुर-राज्य के पुराने वैर की आतप भी उसके हृदय में प्रदीप्त थी। अतः उसने उस समय युद्ध-सामग्री के भाण्डार खोल दिये और वीर जाटों को निस्सङ्कोच बना दिया।

कहा जाता है कि उस समय जाटराज की सम्पूर्ण बाइसी मौजूद थी और उसमें सुभट वीरों का प्रचुरतर आधिक्य था। उसके पास अनेक जङ्गी तोपें, अगणित बन्दूकें, बहुसंख्यक सेनादल और असंख्य गोले-गोलियाँ आदि थे। समरू नाम का एक फरासीस फिरङ्गी उनके जङ्गी सामान का अध्यक्ष था और उसी के आदेश से गोला-बारूद आदि उपयोग में लाये जाते थे। (भट्टकाव्यों में कहा गया है कि जाटराज के पास उस समय लोह-शृङ्खलाओं से जकड़ी हुई पाँच सौ तोपें थीं और गोले-बारूद में चाँदी के गोले ? भी बहुत थे।) अस्तु।

युद्धारम्भ होने पर तोपों की आवाज़, हाथियों की चिग्घाड़, बन्दूकों की बाढ़ और तलवारों के चाकाचक से माँवडे के मैदान ने भयङ्कर रूप धारण किया। वहाँ के जङ्गली जानवर इधर-उधर भाग गये। यही क्यों, उस समय समीप की बस्तियाँ सूनी हो गईं और जन-साधारण का आवागमन चारों ओर से रुक गया।

उस समय तोपों के धूआँधार में काले हाथी ऐसे मालूम हो रहे थे, मानो हलके रङ्ग के बरसाती बादलों में काले बादल खड़े हों। और तोप तथा बन्दूकों का गर्जन-तर्जन ऐसा दीख रहा था, मानो अति शीघ्र वृष्टि की द्योतक बिजली चमक रही हो। ऐसे उपकरणों में जाटराज की बाइसी और जयपुर-राज्य के सेना-दल आपस में ऐसे लड़ने लगे मानो पूर्व और पश्चिम के जलद बादल भिड़ रहे हों। और शस्त्रास्त्रों के परस्पर प्रहार भी ऐसे होने लगे मानो वर्षा के बीच की बिजलियों से दर्शकों की आँखों में पलकें पड़ रही हों। ऐसे युद्ध में माँवडे के मैदान में कदली-वन के वृक्षों की भाँति बहुसंख्यक वीर बारम्बार गिर रहे थे और उस अविच्छिन्न युद्ध में उनके छिन्न मस्तक पृथ्वी पर पड़ रहे थे।

एक ओर चौमूँ-सामोद के नराधिप अपने अपने नाथावतों के साथ सेना के अग्रभाग में खड़े हुए थे तो दूसरी ओर धूला के रावजी अपने बेटे और पोते सहित युद्धस्थल में अड़े हुए थे। एक ओर सीकर राव राजाजी के भाई वीर सेखावतों सहित शत्रुदल का संहार कर रहे थे तो दूसरी ओर मांवड़ा-मढौली और मूँडरो आदि के क्षत्रियगण अपनी लम्बी बन्दूकों से जाटों की बाड़ तोड़ रहे थे। एक ओर जयपुर की सेनायें जाटराज के ठाट को बिगाड़ रही थी तो दूसरी ओर 'समरू' की भीषण तोपें उनको छिन्न भिन्न कर रही थीं। कहां तक कहा जाय—

जिस भाँति वेग से आई हुई वर्षा से थोड़े ही समय में जल का ढेर हो जाता है उसी भाँति माँवडे के मैदान में रुधिर की धारायें बह निकलीं और हताहतों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग इधर-उधर बहने लगे। इस प्रकार जाट-राज की भयङ्कर गोलावृष्टि से भीरुजन भयभीत हो गये और जयपुर-राज्य के सामन्तगण सैन्य-रक्षा के उपाय सोचने लगे।

तटवर्ती निरीक्षकों के सिंहावलोकन से सूचित हुआ कि—(१) जिन्होंने जाटराज को परास्त करने के लिए सर्व-प्रथम प्रण किया था वे 'धूला' के राव दलेलसिंह अपने पुत्र लक्ष्मणसिंह और पौत्र भँवरसिंह सहित बड़ी वीरता से लड़कर भी रणक्षेत्र में ही रह गये; (२) जिन्होंने सेखावतों की सहायता से जाटराज की सेना का संहार किया था वे सीकर के रावराजाजी के भाई बुधसिंह अपने ४० वीरों सहित परलोक को चले गये और उनके डेढ़ सौ साथी घायल हो गये; (३) पचार के ठाकुर गुमानसिंह, धानोता के ठाकुर शिवदाससिंह और मूँडरो के ठाकुर रघुनाथसिंह भी उन्हीं के साथ रामशरण हो गये; (४) जिन्होंने जयपुर-महाराज की अनुमति से उन्मत्त जाटों का मद-भङ्ग करने में समुचितरूप से सेनाओं का सङ्गठन किया था वे हरसहाय-गुरुसहाय (अथवा हरसामल-गुरुसामल) भी रणाङ्गण में ही सदा के लिए सो गये; (५) जिन्होंने नाथावत नाम को कभी लजाया नहीं था वे पद्मपुरा, कृष्णपुरा, डहडू, डूँगरी, और चीतवाड़ी आदि के नाथावत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अपने बहुत वीरों को रणक्षेत्र को अर्पण कर चुप होगये; और (६) जिन्होंने सेनापति की हैसियत से अब तक जयपुरी सेनाओं का सिर ऊँचा रक्खा था वे चौमूँ-नरेश ठाकुर रत्नसिंह और सामोद-नरेश रावल सुलतानसिंह भी घायल होकर शिथिल हो गये।

ऐसी दशा में दूसरे पक्ष का उत्साह दूना हो गया। और वह विशेषरूप से आक्रमण करने लगा। तब बोहरा खुशहालीराम—और प्रतापी नरूका प्रतापराव के प्रबोध से ठाकुर रत्नसिंह और रावल सुलतानसिंह ने अपने वीर नाथावतों को फिर उत्साहित किया और जाटराज के सेनादलों पर फिर आक्रमण करवाया। इस बार रणाङ्गण का रङ्ग कुछ बदल गया था। जयपुर-राज्य की सेनायें इस बार किसी दुर्लभ लाभ को सुलभ समझ कर बड़ी फुर्ती से लड़ रही थीं। और जयपुरी पञ्चरङ्ग के समीप से युद्धोद्धत जाटों को हटा रही थीं।

इस समय 'समरू' की तोपों से भी बैठे हुए कण्ठ के वक्ता की भाँति मन्द आवाज़ आ रही थी और उनकी अविच्छिन्न गोला-वृष्टि भी थँभते हुए मेघ की भाँति कम होती जा रही थी। अब उनसे चाँदी के गोले तो न सही, लोहे के गोले भी बहुत कम निकलते थे और जाटों की घबराहट होठों तक आ गई थी। यह अचानक परिवर्तन क्यों हुआ? इस बात के विचार में जाटराज तल्लीन थे और इसका कारण जानना चाहते थे। तब जनश्रुति से विदित हुआ कि—

'अब तक जो युद्ध हुआ सो तो जयपुरी-सेनाओं के सिर्फ़ एक अंश से हुआ था। किन्तु उनके अविचल योद्धाओं के प्रबल समूह अब उपस्थित होंगे। अतः ऐसी परिस्थिति में निरर्थक नरनाश करना अनुचित प्रतीत होता है और यहाँ से स्वदेश चला जाना ही श्रेयस्कर है।'

इस कथन को सुन कर जाटराज ने स्वदेश का मार्ग लिया और जयपुर-राज्य की सेनायें विजयी हुईं। जाटराज की सेनाओं के चले जाने के बाद उपस्थित सामन्तों की सम्मति से इस विजयोपलक्ष्य में वहीं एक दरबार किया गया। और विजय की जयमाल रत्नसिंह को धारण कराई गई।

(३)

रणक्षेत्र के समीप ही वट वृक्षों के बीच उन दिनों एक बहुत बड़ा तालाब था। उसके तटवर्ती स्थान में सेना आदि के रहने का सुभीता था। वहीं जयपुर-राज्य के शूर-सामन्तों, सेनादलों और जङ्गी सामान के आयोजनों का निवास रहा और वहीं दरबार किया गया। शूर-सामन्तों, सेनादलों और सभासद लोगों के यथानियम उपस्थित होने पर सर्वसम्मति से चौमूँ-सामोद के नरेशों को प्रधान आसन प्रदान किया गया और अनेक सरदारों ने यथोचित रीति से उन नरेशों को वहीं नज़रें कीं।

इस जगह यह लिखना अनावश्यक न होगा कि चौमूँ-नरेश श्रीमान् रत्नसिंह महोदय ने उपर्युक्त विजयोपलक्ष्य में अनेक दान-पात्रों, चारण-भाटों, आशार्थियों और रण-क्षेत्र में मरे हुए वीरों के परिवारों को दान-मान, पुरस्कार और यथोचित जागीरें आदि यथायोग्य प्रदान की थीं और जयपुर-राज्य में अपना उज्ज्वल यश विस्तृत किया था। उनके उस समय के दिये हुए गाँव, कोठी, जागीरें और वस्त्र-शस्त्रादि बहुतों के पास अब तक हैं और वे उनका भोग करते हैं।

इस सेवा से सन्तुष्ट होकर जयपुर-नरेश श्रीमान् महाराजा माधवसिंह ने राज्य-रक्षक सामन्तों और युद्धनिहत वीरों के कुटुम्बियों को मान्य-सम्मान-पुरस्कार और बड़ी बड़ी जागीरें सदा-सर्वदा के लिए प्रदान की थीं और उन सबके प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट की थी। उसी अवसर पर चौमूँ-नरेश ठाकुर रत्नसिंह को तथा सामोद-नरेश रावल सुलतानसिंह को तीन तीन हज़ार रुपये वार्षिक आय की जागीरें दी गईं। और प्रतापराव नरूका एवं खुशहालीराम बोहरा की की हुई सेवाओं से सन्तुष्ट होकर महाराज ने उनको अपने अपने पूर्व-पदों पर फिर प्रतिष्ठित किया। इस कृत्य के पाँच दिन पीछे ही जयपुर-महाराज का परलोकवास होगया और उस अवसर की क्षति से कुछ दिन तक जयपुर-राज्य ग्रस्त रह गया।

"माँवडे के मैदान" को मैंने स्वयं देखा है। पर्वतों की बीहड़ भूमि के एकान्त भाग में होने से वह रणक्षेत्र सबके देखने में नहीं आता है। 'फुलेरा-रिवाड़ी रेल्वे' के 'नीम का थाना' स्टेशन से उतर कर उत्तर दिशा में ३॥ कोस पैदल जाने से "माँवडे का मैदान" मिलता है। वहाँ जाट-राज के युद्ध में मरे हुए जयपुर-राज्य के वीरों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुविशाल और क्षुद्रतम कई एक समाधि-मन्दिर हैं और उनमें मृत मनुष्यों के नाम-धामादि भी अङ्कित हैं।

"माँवडे के मैदान" का एक चित्र इस संख्या में दिया जाता है। इससे पाठक जान सकेंगे कि चित्र के (१) नंबर में चौमूँ-सामोद के सरदार उपस्थित सामन्तों से नज़रें ले रहे हैं और उनके समीप ही (२) नंबर में सेना-दलों के ख़ेमे-डेरे आदि हैं। उनके सामने वट-वृक्षों के बीच (३) नंबर में तालाब है, किन्तु अब वह सूखा और सङ्कुचित है। वहीं (४) नंबर में जयपुर का पञ्चरङ्ग, (५) में नाथावतों की पताका और (६) में हाथी-घोड़े आदि हैं। उनसे कुछ अन्तर पर सीमाबद्ध रणक्षेत्र है।

रणक्षेत्र में (७) नंबर में कुँए हैं, (८), (९) और (१०) में राजा हरसहाय-गुरुसहाय की छत्री और गढ़ के राव उमेदसिंह का चौकोर चबूतरा है। (११) नंबर में ठाकुरां उमेदसिंह पंचाणोत कामली का चबूतरा और उनके पासही (१२) में किसी अज्ञात नाम का चबूतरा है। (१३), (१४) और (१५) नंबरों में भी अज्ञात नामों के चबूतरे हैं। (१६) नंबर में २०-२२ हाथ लम्बे चौड़े चबूतरे पर धूला के राव दलेलसिंह और उनके पुत्र लक्ष्मणसिंह की दो विशाल छत्रियाँ हैं। ये मकराने के सुन्दर पत्थर की हैं। इन्हीं के दाहने हाथ (१७) नंबर में उनके पोते भँवरसिंह का तथा (१८) और (१९) में राणा और ढोली के चबूतरे हैं। सीमा के समीप (२०) नंबर में एक विशाल छत्री और भी है, किन्तु उसका पता नहीं कि वह किसकी है। छत्री के समीप (२१) नंबर में दो छत्रियाँ बनाने का बहुत सा सुन्दर सामान भी पड़ा हुआ है, किन्तु यह मालूम नहीं कि वह किसका है और क्यों योंही पड़ा है। इनके अतिरिक्त (२२), (२३) और (२४) नंबरों में अज्ञात चबूतरे तथा हनूमान्‌जी की एक गुमटी है, जो प्राचीनकाल की बतलाई जाती है। वहीं उनके पुजारी की ढानी है। (२५) नंबर में भट्टी है।

संवत् १८२४ के अन्त में यह युद्ध हुआ था। और उसके पीछे दोही वर्ष के भीतर उपर्युक्त समाधिस्थान बन गये थे। किन्तु अब तक न तो इनका कोई अङ्ग-भङ्ग हुआ है और न इनकी कोई आकृति विकृत हुई है। बल्कि उन वीर पुरुषों की स्मृति को लिये हुए ये सुरक्षित रूप में अविचल खड़े हैं और मृत वीरों की निःस्वार्थ लोक-सेवा तथा सच्ची राजभक्ति का पवित्र भाव दर्शकों को दिखा रहे हैं। 'फुलेरा रिवाड़ी रेल्वे'-द्वारा यात्रा करनेवालों को नीम का थाने से मांवड़ा जाते समय मार्ग में मँढोली नाम का एक गाँव मिलता है। उस गाँव से पश्चिम-दिशा में रेल्वे-लाइन से पौन कोस पर यह स्थान अवस्थित है और परिचय-प्राप्त पुरुषों को दिन के समय रेल में बैठे हुए भी देख पड़ता है। समीप में फ़ोटो खींचनेवाला उपस्थित न होने से यह चित्र चित्रकार से बनवाया गया है। "मांवडे के मैदान" का दृश्य दिखाने में यह भी तत्तुल्य है।

हनूमान शर्मा

५—लिखन की उत्पत्ति।

सुदूर प्रागैतिहासिक युग में जब मनुष्य ने अभी अभी मनुष्यत्व लाभ किया था, जब उसके मन में नाना प्रकार के भावों का उदय होता था किन्तु उनको प्रकाशित करने की शक्ति उसमें न थी, तब उनको व्यक्त करने के आग्रहातिशय के हेतु जिस प्रकार उसके वाक्‌यन्त्र का विकास हुआ था और उसी वाक्-यन्त्र की सहायता से जिस प्रकार वह निकट के लोगों के पास भाषा के द्वारा मनोभावों को व्यक्त करने को समर्थ हुआ था, उसी प्रकार परवर्ती समय में जब वह सभ्यता में अग्रसर हुआ था तब दूर के लोगों के पास मनोभाव व्यक्त करने के लिए उसमें एक व्यग्रता उत्पन्न हुई थी, और ऐसा होना ही स्वाभाविक है। निकट का मनुष्य दूसरों का मनोभाव कान के द्वारा ग्रहण करता है, परन्तु दूर के मनुष्य के लिए यह असम्भव है। तब किस उपाय से दूर के व्यक्ति के पास मनोभाव व्यक्त हो सकता है? उन दिनों के लिए इस समस्या की कठिनाई कम न थी। सम्भव है कि इसके समाधान के लिए सैकड़ों—कदाचित् हज़ारों—वर्ष लगे हों। अस्तु, क्रमशः यह अनुभूत हुआ कि किसी भूमि के ऊपर रेखापात के द्वारा मनोभाव कुछ कुछ व्यक्त हो सकता है, और जो इसे समझना चाहेगा उसे चक्षु की सहायता लेनी पड़ेगी।

मनोभाव इङ्गितों के द्वारा तथा कथित भाषा के द्वारा व्यक्त हो सकता है। यह आदिम मनुष्य को विदित था, परन्तु पहले उसने इस बात की उपलब्धि नहीं की थी कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखाओं के द्वारा भी भाषा व्यक्त हो सकती है। तब वह केवल भाव के प्रकाश के लिए ही व्यग्र था। पीछे उसने चित्रों के द्वारा भाव-प्रकाश की चेष्टा की। पहले-पहल चित्रों के द्वारा सम्पूर्ण घटना के प्रकाश की चेष्टा हुई। चित्र की भाषा निरी कृत्रिम नहीं है, इसको हम एक प्रकार की स्वाभाविक भाषा कह सकते हैं, क्योंकि सब जाति के लोग इसे समझ सकते हैं—मूक-बधिरों के लिए भी इसका समझना असम्भव नहीं है। पर चित्र यथा-सम्भव प्रकृति का अनुरूप होना चाहिए। चित्र-विद्या के द्वारा लिपिविद्या का काम चलाने के लिए चित्रकार में नैपुण्य तथा क्षिप्रकारिता आवश्यक हैं। तिस पर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि चित्र नाना व्यक्ति के पास नाना अर्थ प्रकाशित करता है। किन्तु क्रमशः विशेष विशेष समाज या जाति के भीतर एक एक प्रणाली के अनुसार चित्र अङ्कित तथा पठित होने लगे। तथापि इन प्रणालियों में स्थूल इन्द्रिय-ग्राह्य (concrete) वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य विषयों के भाव प्रकाशित होना असम्भव था। सूक्ष्म अव-च्छिन्न (abstract) भावों का प्रकाश सम्भव नहीं हो सकता।

क्रमशः एक एक चित्र एक एक भाव के लिए निर्दिष्ट हो गया। इसके पश्चात् चित्र क्रमशः संक्षिप्त तथा क्षुद्रा-यतन होने लगे और चिह्न के सदृश व्यवहृत होने लगे। ये चिह्न एक एक भाव के प्रतिनिधि के सदृश हो गये। क्रमशः वस्तुओं के साथ इनका कोई सादृश्य नहीं रहा। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक ही भाव के लिए भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न सङ्केत व्यवहृत होते थे। ऐसा भी अनुमान किया जा सकता है कि लेखक और पाठक दोनों के लिए इन सङ्केतों की शिक्षा आवश्यक होती थी। इस प्रकार की साङ्केतिक लिखन-प्रणाली को चित्रलेख-प्रणाली कहते हैं।

मनोभाव नाना प्रकार से प्रकाशित हो सकते हैं,—अङ्ग-भङ्गी के द्वारा, मुख के रेखा-परिवर्तनों के द्वारा, आँखों की दृष्टि के द्वारा, शब्दों के द्वारा और रेखाङ्कन के द्वारा। संक्षेप में, जिसके द्वारा मनोभाव प्रकाशित किया जाता है वही भाषा है। किन्तु साधारणतः लोग जिसको 'भाषा' कहते हैं, अर्थात् जो मनुष्य के वाक्-यन्त्र के द्वारा प्रकाशित होती है वह चित्र-लेख के द्वारा व्यक्त नहीं हो सकती। चित्र-लेख के द्वारा केवल भावों का प्रकाश हो सकता है। इसके सङ्केत केवल भावों के प्रतिनिधि का काम करते हैं, ध्वनियों के प्रतिनिधि का काम नहीं कर सकते।

भाषा कुछ वाक्यों की समष्टि है। एक एक वाक्य (sentence) ही भाषा का सबसे छोटा उपादान (unit) है। भाषा के शब्द या अक्षर उसके मूल नहीं हैं, क्योंकि भाषा में शब्दों वा अक्षरों की स्वाधीन सत्ता नहीं है। प्रत्येक शब्द के साथ कोई न कोई वाक्य सम्बद्ध है, चाहे वह प्रकाशित रहे, चाहे अप्रकाशित। असभ्य या अशिक्षित समाज वाक्य को शब्दों में विश्लिष्ट नहीं कर सकता—एक शब्द को उसके उपादानभूत ध्वनियों में विश्लेषण करना तो दूर की बात है। इसका प्रमाण यह है कि शिशु जब बोलने लगता है तब वाक्य को शब्दों में विश्लिष्ट न कर बे-रोक-टोक बोल जाता है। सभ्यता की वृद्धि के साथ और भाषा की उन्नति के साथ वाक्यों के उपादानभूत विभिन्न शब्दों की उपलब्धि होती है। भाषा का ज्ञान जब इससे अधिक परिपुष्ट होता है तब शब्दों की उपादान-भूत विभिन्न ध्वनियों पर दृष्टि पड़ती है।

असभ्य समाज की लिखन-प्रणाली में पहले-पहल एक समग्र घटना का चित्र अङ्कित कर उस घटना को प्रकाशित करने की चेष्टा देखी जाती है। चित्र के पीछे चित्र सजाकर असभ्य जातियाँ एक समाचार भेजती थीं। संवाद का अर्थ समझना बहुत कठिन होता था। कभी कभी समाचार विपरीत अर्थ में ग्रहीत होता था। सभ्यता की वृद्धि के साथ इन्द्रिय-ग्राह्य पृथक् पृथक् वस्तुओं के चित्र अङ्कित होने लगते हैं। बहुत पीछे अति सरल अव-च्छिन्न भावों के सङ्केत आविष्कृत होते हैं। तब चित्र संक्षिप्त और अल्पायतन होकर सङ्केतमात्र हो जाते हैं। परवर्त्ती अवस्था में जब वाक्यों का विश्लेषण होकर भिन्न भिन्न शब्दों की उपलब्धि होती है तब लिखन के द्वारा भाषा प्रकाशित हो सकती है और एक एक शब्द के लिए एक सङ्केत का व्यवहार हो सकता है। अन्त में जब मानसिक शक्ति की और भी अधिक उन्नति होकर शब्दों को ध्वनियों में विश्लिष्ट करने की शक्ति उत्पन्न होती है तब प्रत्येक ध्वनि के लिए एक एक रैखिक प्रतिनिधि निर्दिष्ट हो जाता है। इन रैखिक प्रतिनिधियों को वर्ण कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर-अमेरिका के आदिम निवासियों के एवं प्राचीन मिस्र-वासियों में चित्र-लिखन-प्रणाली प्रचलित रहने का उल्लेख मिलता है। पण्डितों का मत यह है कि वर्णों की व्यवहारयुक्त आधुनिक लिखन-प्रणाली की स्वाधीन उत्पत्ति नहीं हो सकती—यह चित्र-लिखन-प्रणाली की क्रमोन्नति है। पहले किसी प्रकार की लिखन-प्रणाली आविष्कृत न होने से ध्वनि-विश्लेषण की प्रयोजनीयता अनुभूत नहीं होती।

प्राचीन चीन-देश में और पेरु-देश में किसी समय रस्सी से लटकते हुए नाना वर्णों के तागों से उस रस्सी के साथ बनी हुई ग्रन्थियों के द्वारा राजादेश, ऐतिहासिक घटना इत्यादि लिपिबद्ध होती थी। पेरु-देश में इसका नाम क्विपुलिपि था। रस्सी में ग्रन्थि-संख्या, सूक्ष्म, स्थूल और नाना प्रकार की गिरहों के अवस्थान के द्वारा भाव प्रकाशित होते थे। किसी वस्तुवाचक भाव के प्रकाश के लिए रङ्गीन तागे का व्यवहार नहीं होता था। अवच्छिन्न (abstract) भावों के प्रकाश के निमित्त ही वर्णों का व्यवहार होता था, जैसे श्वेत वर्ण के द्वारा चाँदी वा शान्ति, लोहित वर्ण के द्वारा स्वर्ण या युद्ध प्रकाशित किया जाता था। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि ग्रन्थियों का व्यवहार शिक्षा-सापेक्ष था।

किसी बात को स्मरण कराने के लिए हमारे देश में अभी तक कपड़े के कोने में गाँठ बाँधी जाती है। कभी कभी दो या दो से अधिक गाँठें बाँधी जाती हैं। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि ग्रन्थि-लिखन-प्रणाली इसी की क्रमोन्नति है। इस विषय की आलोचना करते हुए कई एक प्रश्न आपसे आप मन में उदित होते हैं। क्या हमारे भारतवर्ष में भी किसी समय ग्रन्थि-लिखन-प्रणाली प्रचलित थी? पीछे जब शब्द ध्वनियों में विश्लिष्ट हुए तब उन ध्वनियों के रैखिक प्रतिनिधियों की 'वर्ण' संज्ञा क्यों हुई? क्या इस 'वर्ण' संज्ञा के साथ रज्जुलिपि के रङ्गीन तागों का कुछ सम्बन्ध है? 'ग्रन्थ' शब्द और सूत्र-ग्रन्थों में जो 'सूत्र' शब्द पाया जाता है, इनका ग्रन्थि-लिपि से कुछ सम्बन्ध है या नहीं? इन प्रश्नों के उत्तर अनुसन्धान सापेक्ष हैं।

प्राचीन चित्र-लिखन की अपेक्षा ग्रन्थि-लिखन-प्रणाली लिपि-विद्या की कुछ उन्नततर अवस्था ज्ञापन करती है। कुछ समय के पश्चात् चीनवासियों ने ग्रन्थि-लिखन छोड़ कर जिस उन्नततर चित्र-लिखन-प्रणाली का अवलम्बन किया था उसमें अथवा युफ्रेटिस-उपत्यका की आदि वाणमुख (cuneiform) लिखन-प्रणाली में अथवा मेक्सिको-देश के पुराने अधिवासी ऐज़्टेक लोगों की लिखन-प्रणाली में एक एक समग्र वाक्य के लिए एक एक चित्र अङ्कित नहीं होता था, प्रत्युत एक एक शब्द के लिए एक एक सङ्केत व्यवहृत होता था। अवश्य पहले पहल वस्तुओं की यथार्थ प्रतिकृति अङ्कित कर उनका उल्लेख होता था, परन्तु पीछे ये चित्र क्रमशः परिवर्तित होकर सङ्केतमात्र में पर्य्यवसित हुए थे। तब सङ्केत-शिक्षा-सापेक्ष हुए।

कहा जाता है कि खीष्ट के दो सहस्र वर्ष पहले से ही ये सङ्केत व्यवहृत होने लगे थे, और वैसे ही समय में सिमाईट जाति ने मिसरवासियों से लिपि-विद्या ग्रहण की थी। चीनियों में अभी तक शब्द ध्वनियों में विश्लिष्ट नहीं हुए हैं। चीनी लोग वर्ण-माला का प्रयोजन अनुभव नहीं करते। उनका कोई शब्द एकाधिक स्वरयुक्त नहीं है। अर्थात् प्रत्येक शब्द एकाच् (monosyllabic) है। उनके लिखन-प्रणाली में प्रत्येक एकाच् शब्द के लिए पृथक् पृथक् सङ्केत व्यवहृत होता है। जैसे अँगरेज़ी में & सङ्केत 'and' के लिए, % सङ्केत 'per cent' के लिए ',' यह सङ्केत कौमा के लिए इत्यादि। यद्यपि सङ्केतों की संख्या घटाने के लिए नाना प्रकार के कौशल अवलम्बन किये गये हैं, तथापि ५०० सङ्केतों से कम के द्वारा लिखने का काम नहीं चल सकता। जो हो, चित्र-लिखन-प्रणाली से, या चित्र से उत्पन्न साङ्केतिक प्रणाली से ही एकाच्पदात्मक लिखन-प्रणाली की उत्पत्ति, और एकाच्-पदात्मक लिखन से ही वर्ण-मूलक-लिखन-प्रणाली की उत्पत्ति होती है।

चीनी-भाषा के शब्दों को यथासम्भव संक्षिप्त करने की चेष्टा हुई है। शब्द छोटे होते होते एकाच् Monosyllabic) हो गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि एक ही शब्द नाना अर्थद्योतक हो गया है, अर्थात् विभिन्न अर्थवाचक बहुत से शब्द परिवर्तित होते होते एक ही आकारविशिष्ट हो गये हैं। किसी शब्द की आकृति देखने के साथ ही जो अर्थ मन में उदित होता है उसी अर्थ को प्रकाशित करने के लिए साधारणतः उस सङ्केत का व्यवहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। दूसरे अर्थों के प्रकाश के निमित्त उस सङ्केत के साथ ऋजु, वक्र, समतल, दण्डायमान, तिर्य्यक् इत्यादि नाना प्रकार की रेखायें संयुक्त की जाती हैं।

चीन-देश में भारतवर्ष की नाईं नाना भाषायें प्रचलित हैं; परन्तु एक ही प्रकार की लिपि के द्वारा सब भाषायें प्रकाशित होती हैं। इस लिपि की भाषा दर्शनेन्द्रिय-ग्राह्य है, श्रवणेन्द्रिय-ग्राह्य नहीं है। कान का काम आंख से ही होता है। आंखों से देखकर सङ्केतों का अर्थ बोध होता है। ये सङ्केत किसी निर्द्दिष्ट ध्वनियों के प्रतिनिधि नहीं हैं। ये सङ्केत चीन-देश की नाना भाषाओं के भिन्न भिन्न शब्दों के साधारण प्रतिरूप हैं। जैसे 'विड़ाल' वाचक चिह्न को देख कर हिन्दुस्तानी पढ़ेगा बिल्ली, बङ्गाली पढ़ेगा विड़ाल, मराठा पढ़ेगा मञ्जार, गुजराती पढ़ेगा विलाड़ी, संस्कृत-भाषी पढ़ेगा मार्जार, फ़ारसवासी पढ़ेगा गुर्बा, अरबवाला पढ़ेगा सिन्नोर, अँगरेज़ पढ़ेगा कैट, लाटिनज्ञ पढ़ेगा फ़ेलिक्स। यह लिपि वक्ता के मनोभाव का चित्रमात्र है, भाषा की प्रतिनिधि नहीं। योरप की कुछ भाषाओं से इसका उदाहरण दिया जा सकता है। इँगलैंड, फ्रांस, स्पेन, पोर्टुगल और इटली में रोमन-वर्णमाला का व्यवहार है। १, २, ३ इत्यादि संख्यावाचक सङ्केत इन देशों में एक ही आकार के होने पर भी प्रत्येक भाषा में उनके नाम भिन्न हैं। यदि चीनी लिखन-प्रणाली के सदृश, भाषा के साथ सम्बन्धहीन, भावमात्र-प्रकाशक कोई साङ्केतिक लिखन-प्रणाली समग्र पृथिवी में प्रहीत होती तो नाना देशों की नाना प्रकार की भाषायें सीखने की आवश्यकता न होती। विभिन्न देश के लोग एक ही लिपि से भावों का विनिमय कर सकते।

इस प्रकार का लिखन भाषा-निरपेक्ष है, केवल बुद्धि के द्वारा ग्राह्य है। अतएव हम इसको भाव-लिपि (ideograph) कह सकते हैं। इसका वाचनिक प्रतिरूप नहीं है। लिपि-विद्या की क्रमोन्नति में यह भाव-लिपि ध्वनिमूलक लिपि की पूर्ववर्त्ती है। बहु युग तक इस भाव-लिपि की सहायता से भाव-विनिमय हुआ था। चीन-देश में यह अभी तक चल रही है। अन्य देशों में इसकी असम्पूर्णता अनुभूत हुई थी। तब से बहुत समय तक इससे अधिक सुविधा पहुँचानेवाली लिपि-प्रणाली के उद्भावन की चेष्टा हुई थी। अन्त में जब शब्द ध्वनियों में विश्लिष्ट हुए तब ध्वनियों के प्रतिनिधि के स्वरूप वर्णों का आविष्कार हुआ और लिखन-प्रणाली वर्णात्मक हुई।

चीनी भाषा की लिखन-प्रणाली में एक एक समग्र एकाच् पद के लिए एक एक सङ्केत का व्यवहार करना ही लिखन-चातुर्य्य की शेष सीमा है। चीनी लोग नहीं समझते कि उनका एक एक एकाच् पद एक से अधिक ध्वनियों के योग से बना है और एक एक ध्वनि के लिए एक एक वर्ण व्यवहृत हो सकता है। उनकी भाव-लिपि में वर्णों का कोई स्थान नहीं है।

यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि पहले एक स्वर-विशिष्ट पदों वा पदांशों (syllables) की उपलब्धि होती है, पीछे वर्णों का ज्ञान उत्पन्न होता है। सामान्य के ज्ञान (generalisation) और जाति-विभाग (classification) के प्रयोग के द्वारा शेषोक्त ज्ञान उत्पन्न होता है। जिन सब पदों की आदि में एक ही प्रकार की ध्वनियां रहती हैं वे पहले एकत्र किये जाते हैं, जैसे गो, गज, गण, गुड़ इत्यादि; नौ, नल, नाक इत्यादि। यह प्रथम सोपान है।

परवर्त्ती सोपान लिखन-विद्या के विकास के इतिहास में बहुत गुरुत्व का है। ऊपर के लिखे हुए पदों की श्रेणियों के आदि में जो ध्वनि है उसका सङ्केत वा चिह्न निर्दिष्ट करने के लिए श्रेणी के भीतर जो शब्द बहुत साधारण है उसकी प्रतिकृति के द्वारा वह ध्वनि प्रकाशित की जाती है। प्राचीन फ़िनिसिया-वासियों की वर्णमाला में 'अलेफ' नामक वर्ण साँड़ के मस्तक की प्रतिकृति से प्राप्त है, क्योंकि उस भाषा में 'अलेफ' शब्द का अर्थ है साँड़। 'बेथ' शब्द गृहवाचक है। गृह के चित्र से 'बेथ' वर्ण मिला है। 'गिमेल' शब्द का अर्थ है ऊँट। ऊँट के चित्र से 'गिमेल' वर्ण मिला है। 'दालेथ' शब्द का अर्थ है शिविर-द्वार। शिविर-द्वार के चित्र से 'दालेथ' वर्ण उत्पन्न हुआ है इत्यादि। मिस्र-देश के साङ्केतिक लिखन के अनुकरण से प्राचीन फ़िनिसिया-देशीय वर्णमाला की सृष्टि हुई थी। फिनिस की वर्णमाला परिवर्त्तित होकर ग्रीक-वर्णमाला बनी थी। रोमन-वर्णमाला ग्रीक-वर्णमाला के अनुकरण से गठित है।

भारतवर्ष में जितने प्रकार की वर्णमालायें हैं, सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

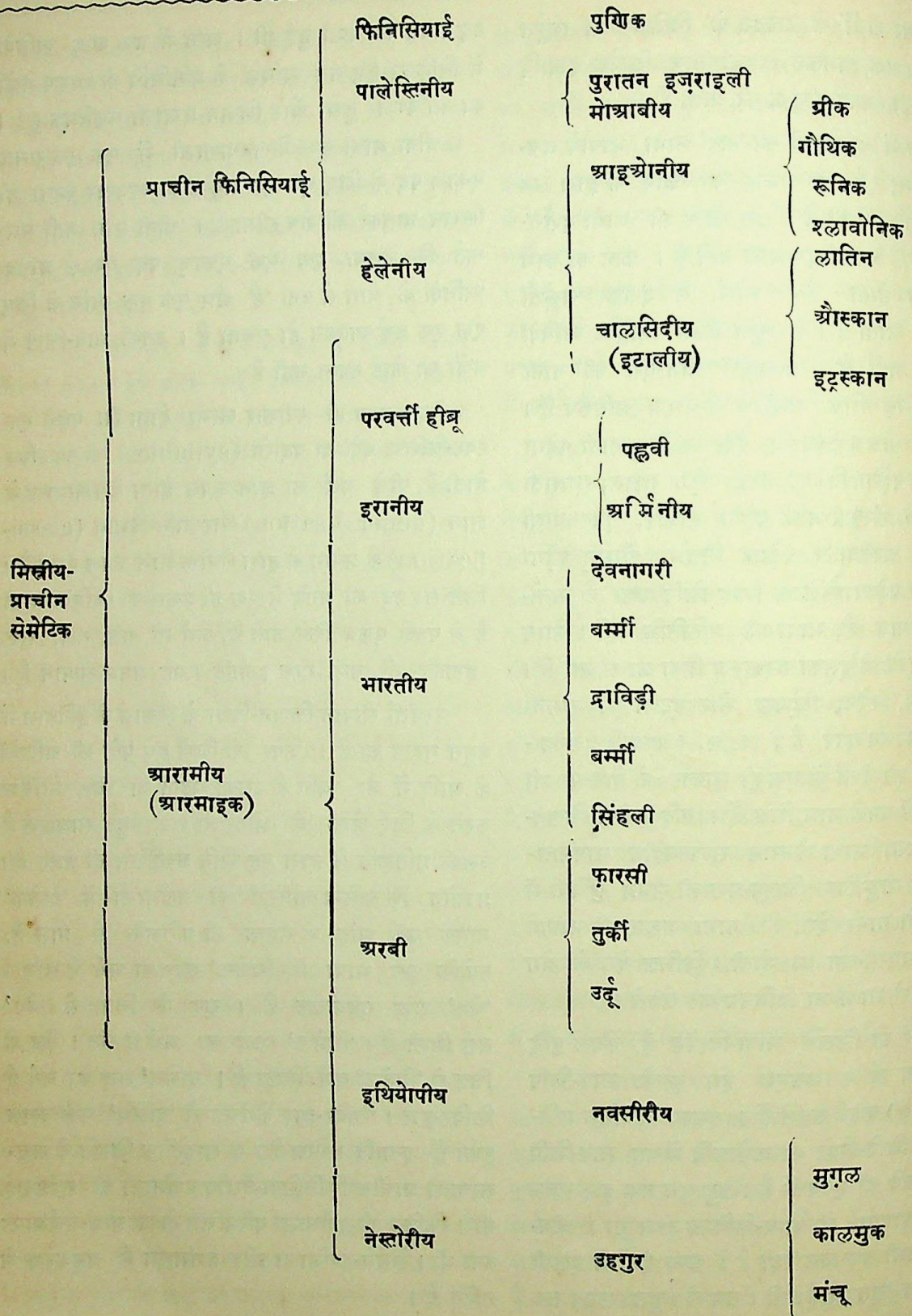

लिपि विद्या की उत्पत्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मी-लिपि के परिवर्तित आकार हैं। ब्राह्मी-लिपि के वर्ण कहाँ से आये? ब्राह्मी-लिपि क्या चित्र-लिपि और भाव-लिपि की परिणति है? यदि ऐसी ही हो तो किन किन वस्तुओं के चित्र के अनुकरण से अ, क, च, ट, त, प, य, र, स, ह इत्यादि उत्पन्न हुए? कनिंगहाम इत्यादि के मत में ब्राह्मी 'क' कर्त्तरिका के चित्र से, 'ध' धनु के चित्र से, 'र' रज्जु के चित्र से, 'व' वारि-वेष्टित भूमण्डल के चित्र से, 'ग' गगन के चित्र से, 'त' तालपत्र से, 'च' चमस से, 'व' वीणा से उत्पन्न हुए हैं। पण्डितों ने इस मत को ग्रहण नहीं किया।

योरपीय पण्डितों में से बहुतों का यह मत है कि सभ्य जगत् की प्रायः सब लिपियाँ ही फिनिसियाई २३ वर्णों से उत्पन्न हैं। खीष्ट के कम से कम सहस्र वर्ष पहले फिनिसियाई वर्णमाला से ग्रीक-वर्णमाला निर्म्मित हुई। योरप के विद्वान् लोग लिपि-विद्या की उत्पत्ति के विषय में जो वंश-वृत्त देते हैं वह पीछे दिया जाता है।

योरपीय पण्डित प्रातीच्य और प्राच्य वर्ण-मालाओं में निम्नलिखित प्रभेद प्रदर्शन करते हैं—

१ प्रतीच्य, अर्थात् ग्रीक, इटालीय इत्यादि वर्ण-मालाओं में, व्यञ्जन-ध्वनियों और स्वर-ध्वनियों के प्रतिनिधि के स्वरूप जो जो वर्ण हैं उनके सबमें आकारगत समता अर्थात् सबके सम्पूर्ण आकार देखे जाते हैं। ऐसा नहीं होता कि उनमें केवल व्यञ्जन वर्णों के ही सम्पूर्ण अवयव रहें और स्वर वर्णों के चिह्नमात्र रहते देखा जाय।

२ प्राच्य वर्णमालाओं में, अर्थात् हीब्रू, अरबी, नागरी इत्यादि वर्णमालाओं में व्यञ्जन वर्ण सम्पूर्णता से लिखे जाते हैं, परन्तु स्वरवर्णों के चिह्नमात्र व्यवहृत होते हैं, और कभी कभी चिह्न भी नहीं रहते, जैसे कविता शब्द लिखने में 'क', 'व', 'त' सम्पूर्णतया लिखे जाते हैं, परन्तु 'इ', 'अ' ये स्वरवर्ण चिह्नों के द्वारा व्यक्त होते हैं, 'अ' का तो कोई चिह्न ही नहीं रहता। यह सेमेटिक लिखन का अनुकरण है।

जिस जिस क्रम से वर्णमूलक लिपियाँ आविष्कृत हुई हैं, टकर साहब की पुस्तक से उनका सारसंग्रह नीचे दिया गया है:—

१ भावप्रकाशक लिपि—

(क) किसी घटना के समग्र भावों के चित्र, जैसे अमेरिका के आदिम अधिवासियों में प्रचलित था।

(ख) पृथक् पृथक् वस्तुओं से उत्पन्न भावों के चित्र (ideograph) जैसे मेक्सिकोवासियों और मिस्र के आदिम अधिवासियों में प्रचलित था।

२ ध्वनिप्रकाशक लिपि—

(क) शब्दलिपि (phonograph), अर्थात् एक ही चित्र के द्वारा बहुत से समोच्चारण शब्दों का लिखना, जैसे चीन की आधुनिक लिपि और प्राचीन मिस्र की लिपि।

(ख) एकाच् पदों या पदांशों (syllables) के सङ्केतों-द्वारा लिखने की प्रणाली और सेमेटिक बाणमुख (cuneiform) लिखन-प्रणाली।

(ग) वर्णमूलक लिपि, जिसमें एकाच् पदों या पदांशों की सब ध्वनियों का सम्पूर्ण विश्लेषण नहीं हुआ, केवल एकाच् पदों के आद्य व्यञ्जन प्रकाशित हुए हैं, जैसे सेमेटिक लिपि।

(घ) विशुद्ध वर्णमाला-मूलक लिखन-प्रणाली, जिसमें प्रत्येक ध्वनि के प्रकाश के निमित्त पृथक् पृथक् चिह्न हैं, जैसे ग्रीक वर्णमाला, इटालीय वर्णमाला, पीछे के समय की मिस्री वर्णमाला और फ़ारस की बाणमुख लिखन-प्रणाली।

नलिनीमोहन सान्याल

६—कविवर क़ुआनी।

फ़ारसी-साहित्य-भाण्डार में जहाँ हाफ़िज़, सादी, ख़य्याम जैसे प्रतिभा-प्रभा-पूर्ण कविरत्नों का स्थान बहुत ऊँचा है, वहाँ क़ुआनी का दर्जा कुछ कम गौरव-पूर्ण नहीं है। क़सीदागोई में तो उसने कमाल किया है। वैसे तो क़ुआनी के पूर्ववर्ती और परवर्ती कई शायरों ने क़सीदे लिखे हैं लेकिन जो चमत्कार और ओज उसकी कविता में हैं वह दूसरों को कहाँ नसीब! फ़ारसी कविता के अन्तिम युग में वस्तुतः क़ुआनी एक ऐसा शायर गुज़रा है जिसने सहसा फ़ारसी-शायरी की कायापलट कर दी। यह कहना अयथार्थ न होगा कि फरख़ी और मनूचहरी ने क़ुआनी का ही पदानुसरण किया है। मिर्ज़ा ग़ालिब का क़ौल है कि क़सीदे का आरम्भ ख़ाशनी से हुआ और अब क़ुआनी पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका पूरा नाम हबीब और क़आनी तख़ल्लुस (सङ्केत नाम) था। ख़ल्द में रँगना-घराने में जन्म हुआ था। बाप का नाम मिर्ज़ा अबुल हसन शीराज़ी था, जो स्वयं एक प्रसिद्ध शायर था। जब क़आनी ने होश सँभाला तब इसके पिता ने शिक्षा ग्रहण करने के लिए उसे एक मदरसे में बिठा दिया। कहा जाता है कि सात ही वर्ष की उमर में पिता की स्नेह-स्निग्ध छाया सदा के लिए उसके सिर से उठ गई।

क़आनी स्वभावतः एक बहुत ही प्रतिभाशाली और विद्यानुरागी विद्यार्थी था। थोड़े ही समय में मदरसे की पढ़ाई समाप्त कर अल्पवय में खुरासान की प्रसिद्ध विद्या-पीठ मशहद में आया और बड़े परिश्रम तथा अनुराग से वहाँ विद्याध्ययन करने लगा। धीरे धीरे वहीं उसे कविता से भी अनुराग हो गया। बुद्धि बड़ी प्रखर थी और कवित्व का बीज उसके हृदय में स्वाभाविक रूप से विद्यमान था, अतः छात्र-जीवन में ही उसकी रचनायें बड़ी सुन्दर और मनोहारिणी होने लगीं। देखते ही देखते उसकी ख्याति चारों ओर फैल गई और दिन दिन प्रतिष्ठा बढ़ती गई।

क़आनी के समय में खुरासान का शासन-सूत्र हुसेन-अली मिर्ज़ा के हाथ में था। जब क़आनी की चर्चा मिर्ज़ा के कानों तक पहुँची तब उस गुणग्राही और कविवत्सल शाहज़ादे ने फ़ौरन उसको अपने दरबार में बुला कर क़सीदा लिखने की फ़रमायश की। मिर्ज़ा क़आनी ने फ़ौरन एक क़सीदा लिख कर पेश किया। शाहज़ादा उस पर मुग्ध हो गया और उसको अपने दरबार में रख लिया। दरबार में धीरे धीरे क़आनी की इतनी पदोन्नति हुई कि कालान्तर में वह शाहज़ादे का अभिन्नहृदय मित्र बन गया। क़आनी ने भी उसकी दिल खोल कर प्रशंसा की और जितने ज़ोरदार क़सीदे शाहज़ादे की तारीफ़ में लिखे, किसी और की तारीफ़ में उसने कभी नहीं लिखा। हुसेनअली मिर्ज़ा की बदौलत उसका प्रवेश फ़तह अलीशाह क़ाचार के दरबार में भी हो गया, जो खुद एक ज़बर्दस्त शायर था। क़आनी ने एक उम्दा क़सीदा लिखकर पेश किया, जिसका उसे यथेष्ट पुरस्कार मिला। फ़तहअली शाह की मृत्यु के अनन्तर मोहम्मदशाह ग़ाज़ी सिंहासनारूढ़ हुआ। वह बड़ा ही न्यायप्रिय और साधु-वत्सल बादशाह था। क़आनी ने शेख़ सादी की तरह 'परेशान' कोइ सी बादशाह के नाम समर्पण किया है।

मोहम्मद शाह ग़ाज़ी के मरने के बाद जब उसका बेटा नासिरुद्दीन क़ाचार गद्दी पर बैठा तब अभिषेकोत्सव के उपलक्ष में क़आनी ने एक प्रशंसात्मक क़सीदा लिखकर पेश किया, जिसके पुरस्कार में वह 'कवि-सम्राट्' की पदवी से विभूषित किया गया। जब शत्रुओं ने नासिरुद्दीन शाह पर अचानक हमला कर दिया और बादशाह मृत्यु के मुख से बाल बाल बच गया तब क़आनी ने एक बहुत ही सुन्दर क़सीदा लिखा, जिसका मतला यह है—

साक़ी, इमशब मय पयापै देह, कि मन बर जाय आव
नज़्र, कर्दस्तम कज़ीं पस, मी न नोशम जुज़ शराब

अर्थात् ऐ साक़ी!—शराब पिलानेवाले—आज रात को तू मुझे खूब शराब पिला, क्योंकि आज से मैंने यह मिन्नत मानी है कि अब जल के स्थान पर शराब ही पीऊँगा।

क़आनी सिर्फ़ कवि ही न था, किन्तु तर्क-शास्त्र, भाषा-विज्ञान, गणित, ज्योतिष, पदार्थ-विज्ञान और धर्मशास्त्रों का भी पूर्ण ज्ञाता था। फ़ारसी के अलावा अरबी और तुर्की भाषा का भी पारगामी था। अपनी इस बहुलता और विद्वत्ता पर उसे अभिमान भी था। इसी ज़ोम में उसने कई ऐसे शेर लिख डाले हैं जिनसे अभिमान और गर्व टपकता है। फ़ारसी-भाषा पर उसकी निःसीम सत्ता थी। ऐसा मालूम होता है कि भाषा उसके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती थी। वह जैसा चाहता था, भाषा का उपयोग करता था। उसकी ज़बान में कितनी सफ़ाई और क़लाम में कितनी रवानी है, यह उसकी कविता पढ़ने से पता लगता है।

क़आनी परिहासरसिक भी एक ही था। उसने हकले, बूढ़े और गूँगे की बात-चीत को उन्हीं की भाषा में बड़े ही मनोरञ्जक ढङ्ग से वर्णन किया है।

वास्तव में यदि निष्पक्ष होकर देखा जाय तो पारसी कवियों में बहुत कम शायर उसकी जोड़ के मिलेंगे। अतः वह खुद एक क़सीदे में कहता है—

चूँ मन पस अज़ वसाल नयाबी कस
सद बार अगर बकावी ईरां रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् अगर तू मेरे बाद ईरान को सौ बार खोद डालेगा तो मुझ जैसा शायर फिर न मिलेगा।

किन्तु उसके कुछ पद्यों से यह भी विदित होता है कि कुछ समय तक फ़ारस में उसका यथेष्ट आदर नहीं हुआ और उसे आर्थिक चिन्ता से भी पीड़ित होना पड़ा था। एक क़ता में ख़ां निजामुद्दौला को सम्बोधन करके कहता है—

फ़ारस क़द्रे मन न दानद ज़ां कि मन ज़ादम दरां
दर सदफ़ फ़र्के नदारद बाशुबह दुर्रे खुशाब
खुद बया इंसाफ़ देह, बाक़द्रदाने हमचू तू
यावद इंसां क़द्र चूँ मन नुक्तासंजे नुक्तायाब

× × × × ×

रोज़ फ़र्शेमन ज़मीं व नुज़्ले ख्वानम खूने दिल
शब दवाजम आसमां व शमा बज़मम माहताब
ग़ैर आबे जारी अन्दर खान ए मन हेच नेस्त
वर न बूदे आब, बूदे अश्क मन जारी चू आब
बीस्त तन माही सिफ़त खुशदिल बआवस्तेम व बस
आब मा बाशद तआम व आब मा बाशद शराब

अर्थात् फ़ारस में मेरा यथेष्ट आदर-मान इसलिए नहीं है कि मैं यहाँ पैदा हुआ हूँ। सीप में आबदार मोती और साधारण मोती में अन्तर मालूम नहीं होता। ऐ बादशाह तू खुद आ और न्याय कर कि तुझसे बुद्धिमान् और गुणग्राही के रहते मुझ जैसे कवि और विद्वान् की ऐसी दुर्गति हो।

दिन के समय ज़मीन मेरा बिछौना है, रात को आकाश मेरा ओढ़ना और चांद मेरी महफ़िल का दीपक है। भोजन के लिए केवल दिल का खून है और बस।

मेरे घर में पानी को छोड़ कर और कुछ नहीं है। और यदि पानी भी न होता तो मेरे आंसू पानी की तरह बह निकलते।

अपने कुटुम्ब के हम बीस आदमी मछली की तरह पानी के ही साथ खुश हैं। बस पानी ही हमारा खाना और पानी ही हमारा पीना है।

क़आनी की कविता में जो सबसे बड़ी खूबी दिखाई देती है वह भाषा की प्रौढ़ता, सरसता और रवानी है। फ़ारसी-भाषा पर उसका असामान्य अधिकार था। वह जिस विषय का वर्णन करता, पाठकों के सामने उसका चित्र सा खींच देता। उसे प्रकृति के प्रसार और मानव-हृदय के भावों का बड़ा अच्छा ज्ञान था। उसके काव्य-सागर में जितना ही अधिक ग़ोता लगाइए, उतने ही अधिक भावरत्न हाथ आते हैं। सबसे अधिक गुण उसमें यह था कि वह प्रत्येक काव्योपयोगी सामग्री को बड़े कौशल से सुन्दर बना देता था। उसने अपनी कविता में फ़ारसी-भाषा के भाण्डार से चुन चुनकर ललित, भावपूर्ण और प्रसङ्गानुरूप शब्दों की योजना की है जिससे उसकी कविता-कामिनी का सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ गया है। भाषा उसकी सालङ्कार और सानुप्रास है, जिससे यह सिद्ध होता है कि वह अलङ्कार-शास्त्र का भी पूरा पण्डित था। उसका रचना-नैपुण्य देखने ही लायक़ है। उसकी कविता सहृदय जनों के कण्ठ का आभूषण है और जब तक संसार में फ़ारसी-साहित्य का अस्तित्व रहेगा, क़आनी का नाम अमर रहेगा।

क़आनी की विशेषताओं में से एक यह भी है कि उसकी उपमायें बहुधा स्वाभाविक होती थीं। सुन्दर और निर्दोष उपमाओं के लिए फ़ारसी-साहित्य-संसार में उसकी बड़ी ख्याति है। जिस उक्ति के स्पष्टीकरण के लिए उसने उपमा का प्रयोग किया है उसको खूब निबाहा है। क्या मजाल जो ज़रा भी अस्वाभाविकता आजाय! उत्प्रेक्षा और अलङ्कार में भी वह खूब बढ़ा-चढ़ा था। उसकी उपमायें कैसी सर्वाङ्गपूर्ण और सुन्दर हैं, पाठकों को इसका आभास कुछ कुछ इन पद्यों से मिल जायगा—

(१)

दो जुल्फ़े तावदार ऊ, बचश्मे अश्कबार मन
चू चश्म-ए कि अन्दर ऊ शना कुनन्द मारहा

भावार्थ—एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के विषय में कहता है कि मेरी अश्रुपूर्ण आंखों में माशूक की जुल्फ़ों—कुटिल अलकों—का अक्स—प्रतिबिम्ब—इस तरह पड़ता था मानो एक चश्मे में काले काले सर्प मँडला रहे हों।

(२)

दर पहलुए गुल ख़ार शिगुफ्ता बचे मानद
मानिन्द रक़ीबे कि हम आग़ोश निगारस्त

अर्थात् फूल के पहलू में कांटे ऐसे हैं जैसे माशूक की बग़ल में रक़ीब हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

गुल गश्ता निहाँ दर अक़ब शाखे शिगोफ़ा
चूँ शाहिदे दोशीज़ा अन्दर पशे चादर

अर्थात् फूल डाल और पत्तों में इस तरह छिप गया है जैसे एक कुमारी नायिका नायक को देखकर चादर में अपना मुँह छिपा लेती है।

(४)

ख़ाल बर चेहरा ऊ दर ख़मे गेसू हमचू
नक़ब बर गंज ज़नद दर शबे दुज़्दे अय्यार

अर्थात् उसके कपोल का तिल उसकी कुटिल अलकों के पेच में ऐसा मालूम होता है जैसे एक चोर रात को ख़ज़ाने में सेंध लगा रहा है।

(५)

व आँ नरगिस काँ चू हौज़े अज़ बिल्लौर
कश ज़ाद फ़व्वार-ए ज़र्द दीनार

अर्थात् वह नर्गिस्तान—पीले पीले रङ्ग के फूलोंवाला पुष्पोद्यान—ऐसा प्रतीत होता है मानो बिल्लौरी हौज़ से ज़र्द दीनार के फ़ौवारे छूट रहे हैं।

(६)

जुल्फ़ रुख़सार ऊ बूद चू बाग़ कि दर ऊ
इक तरफ़ सुम्बुल तर रूयद व इक सू गुलनार

अर्थात् उसकी अलकें और कपोल एक पुष्पोद्यान के सदृश हैं, जिसमें एक तरफ़ सुम्बुल (बालछड़) उगा हो और एक तरफ़ गुलाब का फूल खिला हो।

अहा! कैसी मनोहारिणी उक्ति है!

फ़ारसी कवियों ने यद्यपि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन बहुत ही कसरत से किया है, किन्तु उनमें तादृश सजीवता और चमत्कार नहीं है। उनकी रचना-चातुरी अधिकतर आशिक और माशूक की रसकेलि में ही दिखाई देती है। लेकिन क़आनी की कविता में यह बात नहीं। वह लकीर का फ़क़ीर नहीं था। उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। प्रकृतिपर्यवेक्षण में भी उसे कमाल हासिल था। उसने प्राकृतिक दृश्यों का ऐसा स्वाभाविक सुन्दर और सरस चित्र खींचा है कि मन मुग्ध हो जाता है। भाषा की प्रौढ़ता का तो कहना ही क्या है! एक स्थल पर वसन्त-ऋतु में मलय-मारुत का बहना दिखाता है—

नरमक नरमक नसीम ज़ेर गुलाँ मीवज़द
ग़बग़बे ईं मीमकद, आरिज़े आँ मीमज़द
सुम्बुले ईं मीकशद गर्दने आँ मीगज़द
गह बचमन मीचमद गह बसमन मीवज़द
गाह बशाखे दरख़्त गह बलबे जोयबार

अर्थात् धीमी धीमी हवा चली। फूलों की क्यारियों में घुसी। किसी फूल के कपोल को चूमा, किसी फूल की ढोढ़ी को चूमा, किसी के बाल खींचे, किसी की गर्दन को दाँतों से काटा। घूमती-फिरती बाग़ में गई, और वहाँ से मालती के पास पहुँची। फिर देखते देखते वृक्षों की डालियों के पास से नदी के किनारे पहुँच गई।

देखिए कैसी हृदयहारिणी और सरस रचना है!

बनफ़सा रुस्ता अज़ ज़मीं बतर्फ़ जोयबारहा
व या गुसस्ता हूर ऐन ज़ जुल्फ़ खेश तारहा
ज़े संग अगर न दीदई चेसाँ जहद शरारहा
बबर्गहाम लाला बीं मियाने लाला ज़ारहा
कि चूँ शरारा मीजहद ज़े संग कोहसारहा

अर्थात् नदी के किनारे ज़मीन से बनफ़शा उगा है या कि किसी मृगनयनी की कुटिल अलकों के काले काले बाल गिरे हैं। यदि किसी ने पत्थर से चिनगारियाँ निकलती हुई न देखी हों तो लाला के पुष्पोद्यान में जाकर देख ले कि कोपलों में लाला के लाल लाल फूल ऐसे खिले हुए हैं जैसे पत्थर में से चिनगारी निकल रही हो।

'क़आनी का पाण्डित्य' शीर्षक के अन्तर्गत प्राञ्जल भाषा के उदाहरण में उद्धृत "वगरदूं वीरा अब्रे बामहादाँ बर शुद अज़ दरिया" पद्य भी प्रकृति-पर्यवेक्षण का उत्कृष्ट नमूना है, जिसका भावार्थ यह है—

प्रातःकाल नदी से एक कृष्णकाय बादल आकाश की ओर उठा, जो देव की आँख की तरह तीव्र और हबशियों के चेहरे की तरह काला था। उसका बाह्य भाग काजल की तरह काला और अन्तःकरण दूध के सदृश श्वेत था। वह कभी रोता और कभी हँसता जैसे खुशी की महफ़िल में शराब के नशे से रिंद लोग कभी रोते हैं और कभी हँसते हैं। धूएँ की तरह आकाश में छाये हुए और देव की तरह मस्त और परेशान। मस्ती के आवेश में उसने बहुत से अनविधे मोती (ओले) पत्थर पर दे मारे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश फैलानेवाला सूर्य उस बादल में इस तरह छिप गया जैसे मित्र-नरेश कारागार में या चन्द्रमा अन्धकार में। वर्षा की बूँदें बाग़ में फूलों और पत्तों पर ऐसी मालूम होती हैं, जैसे छाले पड़े हुए हैं। फूलों के कपोल छील दिये और उपलरूपी बहुत से मोती बाग़ में बखेर दिये।

क़ुआनी एक बड़ा ही उदारचित्त और सरलप्रकृति कवि था। हास्य-प्रियता तो उसके स्वभाव में कूट कूट कर भरी थी। हर प्रकार की शान-शौक़त के सामान प्रस्तुत होने पर भी वह विलासप्रियता से दूर रहता। अभिमान का तो नाम भी उसमें न था। वह बड़ा दयालु भी था। एक दफ़े की बात है कि शीराज़ के बाज़ार में एक बुढ़िया स्त्री ने क़ुआनी की शकल-सूरत देखकर कहा कि बन्दे खुदा, मैंने कुछ माल ख़रीदा है। मैं बूढ़ी हूँ, इसलिए उठा नहीं सकती। अगर मज़दूर हो तो मज़दूरी पर, और अगर नहीं तो पुण्य में यह असबाब मेरे घर पहुँचा दो। क़ुआनी ने बिना सङ्कोच उसके असबाब को उठा लिया और अभी थोड़ी ही दूर गया था कि उसके मित्रों ने दौड़कर उसके सिर से बोझ उठा लिया और बुढ़िया को बुरा-भला सुनाने लगे। बुढ़िया बेचारी भौचक्की सी रह गई और पैरों पर गिर कर क्षमा माँगने लगी। क़ुआनी ने उस बुढ़िया के लिए एक दास और दासी रख दी और उनका ख़र्च खुद देता रहा।

मणिराम गुप्त

७—कपास का निर्यात।

कपास का निर्यात उन सभी देशों से होता है, जहाँ जहाँ उसकी खेती होती है। ग्रेटब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और जापान आदि देशों में अमेरिका, मिस्र, अफ्रीका, और हिन्दुस्तान से कपास जाती है। कपासवाले देशों के जहाज़ वर्ष भर में जितना माल भर कर ले जाते हैं, उसमें कपास का परिमाण सबसे अधिक होता है। ईश्वर की कृपा से युद्धकाल के अतिरिक्त समुद्र में भयङ्कर तूफ़ान के समय में भी उसके जहाज़ प्रायः नहीं नष्ट हुए हैं।

अमेरिका के बन्दरगाहों में जून से दिसम्बर तक बहुत काम होता है और उसका कारण कपास का निर्यात है। कपास की गाँठें नदियों के द्वारा बन्दरगाहों में पहुँचाई जाती हैं। यहाँ कपास उत्पन्न होनेवाली ज़मीन के क्षेत्र में मिसीसिपी सबसे बड़ी नदी है। यह नदी कपास की पैदावार में सबसे अधिक सहायता देती है। इसमें कपास ले जानेवाली अनेक नौकायें चलती हैं। इस विश्वविख्यात नदी के क्षेत्र में वर्ष भर में एक करोड़ से अधिक कपास की गाँठें तैयार होती हैं। यहाँ के जहाज़ अपने बन्दरगाहों से संसार की उत्पत्ति का पचास प्रति सैकड़ा माल ले जाते हैं। एक मौसम की फ़सल का औसत सत्तर लाख गाँठों से अधिक होता है। ग्रेटब्रिटेन में सबसे अधिक यहाँ की ही कपास की खपत है। इस प्रकार यहाँ की कपास की तीस लाख गाँठें इँग्लेंड में, सात लाख पचास हज़ार गाँठें फ्रांस में, एक लाख तीस हज़ार गाँठें कनाडा में और एक लाख तीस हज़ार गाँठें जापान में जाती हैं। महायुद्ध के पूर्व जर्मनी में अमेरिका से सत्रह लाख गाँठें जाती थीं।

कपास की धुनाई के उपरान्त भी बिनौलों में कपास चिपकी रहती है और वह दुबारा औटी जाती है। कई कारख़ाने विशेषरूप से इसीलिए खोले जाते हैं कि वे बिनौलों से दुबारा कपास निकालें। इन कारख़ानों को "साड मिल्स" कहते हैं। दुबारा धुनाई से अत्यधिक परिमाण में कपास निकलती है। यह बहुत क़ीमती होती है और उसकी बाज़ार में अधिक माँग रहती है। इस कपास से फ़र्श, दरी और रस्सी आदि अनेक उपयोगी वस्तुएँ बनती हैं।

पूर्वकाल की अपेक्षा अब कपास के जहाज़ बड़ी हिफ़ाज़त से जाते हैं। पहले खुली हुई गाँठें जाती थीं, इस कारण वर्षा और तूफ़ान से भीग जाती थीं। कपास तो बड़ी जल्दी नमी चूसती है। इसलिए अपने स्थान पर पहुँचते पहुँचते उसका बहुत सा अंश नष्ट हो जाता था। परन्तु अब इस त्रुटि को दूर करने के लिए जहाज़ में विशेष रूप से भीतर की ओर अतिरिक्त स्थान नियत किया गया है, जहाँ कपास की गाँठें सुरक्षित रहती हैं। इस स्थान पर अब कपास में नमी नहीं लगती है। यहाँ वायु-प्रवेश के लिए खिड़कियाँ भी होती हैं, जिससे कहीं अग्नि-प्रकोप न हो। इस प्रकार बड़ी सावधानी से कपास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गाँठें रख कर ले जाई जाती हैं जिससे कि बहुत कम समुद्र में कपास से लदे हुए जहाज़ों के नष्ट होने का समाचार सुनाई देता है। अमेरिका के जहाज़ कन्ट्रेक्ट पर माल लादते हैं। इस कन्ट्रेक्ट को सी० आई० एफ़० छः प्रति सैकड़ा शर्तवाला" कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ख़रीददार कपास की असली क़ीमत, बीमा और किराये का भार उठाता है; पर यदि कन्ट्रेक्ट की अवधि के भीतर उस समय के बाज़ार-भाव से रुपया दिया जाय तो वह छः प्रति सैकड़ा छूट पाता है।

मिस्र से कपास का निर्यात प्रायः माल के जहाज़ों से होता है। कभी कभी मुसाफ़िरी जहाज़ों से भी कपास भेजी जाती है। परन्तु अमेरिका के समान यहाँ से विशेष जहाज़ों-द्वारा कपास का निर्यात नहीं होता। इसका कारण यह है कि नील की तराई में मिसीसिपी के समान कपास की पैदावार नहीं होती। इसलिए परिमित उत्पादन की दृष्टि से मिस्रवासियों को कपास के अतिरिक्त जहाज़ रखना लाभदायक न होगा।

हिन्दुस्तान का जहाज़ी व्यवसाय अँगरेज़ों के अधिकार में है। यहाँ के कपास के जहाज़ अमेरिका के बराबर नहीं हैं। और माल भी बहुत कम निर्यात होने लगा है। इस देश की कपास के मुख्य बन्दरगाहों में पश्चिमी तट पर बम्बई और सूरत हैं और पूर्वी तट पर कलकत्ता, पाँडेचरी और मद्रास इत्यादि हैं। बन्दरगाहों तक कपास बैलगाड़ी और रेलवे के द्वारा पहुँचाई जाती है। यहाँ की कपास के रेशे छोटे होने से उसका ब्रिटेन और जापान के कारख़ानों में अधिक उपयोग नहीं होता। अतएव दिन पर दिन निर्यात घट रहा है। देश में भी कपड़े के बहुत से कारख़ाने खुलने पर उसका अधिक उपयोग होने लगा है। यहाँ इस बात का भी प्रयत्न किया जा रहा है कि सारी पैदावार का उपयोग देश में ही किया जाय। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार से भी निर्यात पर अधिक प्रभाव पड़ा है।

सीलोन में कपास के धन्धे में आशाजनक उन्नति हो रही है। वहाँ के उत्तरी भाग के अधिकांश हिस्से में कपास की खेती होती है। इस कपास का रेशा हमारे देश की कपास से बड़ा होता है। कोलम्बो और ट्रिंकोमाली से कपास के जहाज़ लदते हैं। यहाँ के इस धन्धे में "ब्रिटिश काटन ग्रोइंग एसोसियेशन" का अधिक अनुराग है।

अफ़्रीका में कपास के निर्यात में सबसे अधिक कठिनाई पड़ती है। नीगेरिया की सारी ज़मीन कपास की पैदावार के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। यहाँ का मौसम, यहाँ की ज़मीन, कपास की पैदावार के लिए इतनी अच्छी है कि यहाँ की कपास का रेशा अमेरिका की कपास का मुक़ाबला करता है। देश में लेगोज रेलवे खुल रही है, इससे कपास के बन्दरगाह तक लाने की भी सारी कठिनाई दूर हो जायगी। यहाँ बहुत बड़े पैमाने पर कार्य हो रहा है और इसमें सबसे अधिक अनुराग 'ब्रिटिश काटन ग्रोइंग एसोसियेशन' का है। यहाँ के इस प्रयत्न से आशा की जाती है कि नीगेरिया की सारी पैदावार से लङ्काशायर और मैंनचेस्टर के कारख़ाने अमेरिका और हिन्दुस्तान से मुक्त हो जायँगे। यहाँ की पैदावार एसोसियेशन की ही सारी मिलकियत है।

रोडेशिया की कपास विशेषतः इँग्लैंड को जाती है। यहाँ भी भीतरी प्रदेश में रेल न होने से बन्दरगाहों तक माल लाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। ब्लेंटटे और विक्टोरिया न्यान्ज़ा में कपास की खेती बड़ी सफलता से हो रही है। यहाँ से उच्च श्रेणी की कपास की हज़ारों गाँठें का निर्यात मुम्बासा और ज़ंज़बार के बन्दरगाहों से हो चुका है। युगंडा में भी सड़क और रेल की कठिनाई दूर होने पर अच्छी कपास का निर्यात बड़ी सुविधा से होने लगेगा। इस कार्य में उन लोगों का परिश्रम सफल होगा जो दक्षिण अफ़्रीका में कपास की अच्छी पैदावार के लिए अत्यधिक परिश्रम कर रहे हैं। कहना न होगा कि यहाँ हिन्दुस्तानियों का अनुराग दबाया जा रहा है और गोरे ही सारी ज़मीन पर अपना अधिकार कर रहे हैं। हिन्दुस्तानियों की भी इस ओर अभी सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हैं; कारण वे अपने देश में ही स्वतन्त्र नहीं हैं।

गौरीशङ्कर गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—वैदिक मन्त्र।

(ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १२९)

१

असत था आदि में सत भी नहीं था,
पवन, पय, व्योम यावत् भी नहीं था,
किया आच्छाद्य कब ? किसने ? किसे ? क्यों ?
गहन गम्भीर जलतल भी नहीं था।

२

मरण था या न तब अमरत्व ही था,
न दिन का, रात का, अस्तित्व ही था,
अकेला, वायु-विरहित, श्वास लेकर—
न कोई और था—जाग्रत वही था।

३

कहें, आच्छाद्य था वह तीव्र तम से,
कि था आवृत्त सब अम्बुधि अगम से,
रहा आच्छन्न माया में अगर वह,—
जगा प्रगटा स्वतप से वा स्वयम से।

४

जगी मन-कामना जो बीज जाया,—
नवाङ्कुर 'काम' वह मन का कहाया,
बिचारा बुद्धि से कवि-कोविदों ने,
यहीं सत ने असत से मेल खाया।

५

प्रसारित हो चली यह किरण-माला,
गया नीचे व ऊपर यह उजाला।
इधर को 'शक्ति' आई, बीज विकसे,
परे को 'प्रयति' ने स्वप्रकाश डाला।

६

कहाँ से यह हुआ सत का पसारा ?
किया किसने ? रचा क्यों विश्व सारा ?
हुए हैं बाद इसके देवगन भी,—
मिले किमि सृष्टि-कौतुक का किनारा ?

७

हुई यह सृष्टि कैसे कौन जाने ?
रची किसने ? रची भी या न जाने ?
बसा था व्योम में जो ब्रह्म व्यापक,—
वही जाने, न जाने, कौन जाने ?

भगवानदीन पाठक

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—कनाड़ी-रामायण।

भारत की प्रायः समस्त भाषाओं में रामायणीय कथा का अनुवाद हो चुका है। वास्तव में रामायण का भारतीय आर्य्य-सभ्यता पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। रामायण किसी एक प्रान्त या भाषा की सम्पत्ति नहीं है। वह भिन्न भिन्न भाषा-भाषी भारतीयों की अमूल्य पैत्रिक सम्पत्ति है। उत्तर भारत में जिन रामायणों का प्रचार है वे सब वैदिक धर्मावलम्बियों-द्वारा रची गई हैं। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि रामायण केवल हिन्दुओं की ही वस्तु है। अन्य धर्मावलम्बी भी उसे गर्व के साथ अपना सकते हैं। नव्य बङ्गाल के काव्यस्तम्भ माइकेल मधुसूधन दत्त क्रिश्चियन-धर्म की दीक्षा लेने के अनन्तर भी रामायण का भी उतनी ही श्रद्धा और प्रतिष्ठा से पारायण करते थे जितना कि बाइबिल का। 'मेघनाद-वध' के रचयिता की रामायण-भक्ति उनकी एक एक पङ्क्ति से टपकती है। उत्तरीय भारत की आर्य्य भाषाओं में लिखित रामायणों की चर्चा यहाँ नहीं की जायगी। दाक्षिणात्य द्राविड़ भाषाओं में भी रामायण के कई अनुवाद हुए हैं। इस लेख में हम कनाड़ी-भाषा की रामायणों का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

कनाड़ी-भाषा में भी रामायणीय कथा के आधार पर अनेक कवियों ने रचना की है। हम कनाड़ी-साहित्य को साधारणतः तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—जैन, लिङ्गायत, और वैष्णव। कनाड़ी का प्राचीन साहित्य इन्हीं तीनों धर्मों की कथा-वार्ताओं, गीतों और स्तोत्रों से बना है। इन्हीं तीन धर्मों का कर्नाटक-देश में अधिक प्रचार रहा। कनाड़ी-साहित्य अधिकांश में धार्मिक है।

वैष्णव-धर्म के लिए रामायण की जो महिमा है उसके वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। वैष्णवों को रामायण प्राण और जीवन से भी अधिक प्यारी है। इसलिए यदि वैष्णव-कवियों ने कनाड़ी-भाषा में राम-कथा को छन्दो-बद्ध किया तो कोई आश्चर्य्य नहीं। शोलापुर-ज़िले में स्थित तोरवे-नामक ग्राम में एक वैष्णव कवि ने 'तोरवे-रामायण' नामक ग्रन्थ लिखा। लेखक का नाम अज्ञात है, परन्तु उसकी उपाधि 'कुमार-वाल्मीकि' थी। इसकी रचना १६ वीं शताब्दी के अन्त में हुई। यह कवि तुलसीदास का समकालीन रहा होगा! इसके अतिरिक्त तिम्भार्य नामक कवि ने १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'आनन्द-रामायण', तिप्पनार्य ने 'हनुमद्विलास' और तिरुमल वैद्य ने 'उत्तर रामायण' की रचना की।

इन वैष्णव कवियों के अतिरिक्त जैन कवियों ने भी रामायण की रचना करके अपने औदार्य्य और काव्य-रसिकता का परिचय दिया है। कुमुदेन्दु कवि ने सन् १२७५ के लगभग षट्पदियों में रामायण की रचना की। देवचन्द्र ने सन् १७९७ के लगभग 'रामकथावतार' नामक ग्रन्थ में रामायण की कथा को गद्य में लिखा। 'चामुण्डराय-रचित 'चामुण्डराय पुराण', नयसेन का 'धर्मामृत', और नागराज का 'पुण्याश्रव' नामक ग्रन्थों में भी रामायणीय कथा संक्षेपरूप में विद्यमान है। ये सब लेखक जैन थे। परन्तु कनाड़ी-भाषा में सर्वोत्तम रामायण ग्रन्थ 'रामचन्द्र-चरित्र-पुराण' है। इसका रचयिता भी जैन है।

रामचन्द्र-चरित्र-पुराण के रचयिता का नाम नागचन्द्र अथवा अभिनव पम्प (द्वितीय पम्प) था। पम्प नामक एक प्रसिद्ध कवि ने १० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'विक्रमार्जुन-विजय' नामक काव्य में महाभारत की कथा वर्णन की है। इस ग्रन्थ को बहुधा 'पम्प-भारत' कहते हैं। इसी आदि-पम्प के ग्रन्थ 'पम्पभारत' को आदर्श मान कर नागचन्द्र ने अपने 'रामचन्द्र-चरित्र-पुराण' की रचना की। तभी नागचन्द्र को अभिनव पम्प अथवा द्वितीय पम्प और उसके ग्रन्थ को 'पम्परामायण' कहते हैं।

नागचन्द्र के जीवन के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अत्यन्त परिमित है। विद्वानों ने अनुमान से उसका समय ११ वीं शताब्दी के अन्त और १२ वीं के प्रारम्भ में माना है। यह भी अनुमान किया गया है कि नागचन्द्र बल्लालराज बिट्टिदेव अथवा बिट्टिग की सभा के कवियों में से था। बल्लालराज बिट्टिदेव इतिहास में सुप्रसिद्ध है। उसके समय में हौयसाल-वंश की अत्यन्त उन्नति हुई। उसने ३० वर्ष तक राज्य किया, अनेक सुन्दर भवन और देवालय निर्म्माण कराये। बिट्टिदेव ने इतिहास में अमर-पद प्राप्त कर लिया है। परन्तु इसका कारण दूसरा ही है। श्रीवैष्णव-धर्म के प्रवर्तक महात्मा रामानुजाचार्य्य उन्हीं दिनों अधिराजेन्द्र चोल के राज्य में धर्म-प्रचार कर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिराजेन्द्र शैव था। इसलिए उसने रामानुज स्वामी के प्रति शत्रुता प्रकट की। इसलिए चोलमण्डल त्याग कर उन्होंने कर्नाटक में बल्लालराज बिट्टिदेव के राज्य में शरण ली। बिट्टिदेव जैन था। श्रीरामानुजाचार्य्य के उपदेशों का उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह वैष्णव हो गया। उसने अब अपना नाम विष्णुवर्धन रक्खा और इसी नाम से यह हौयसालवंशी राजा इतिहास में अधिक प्रसिद्ध है।

नागचन्द्र इसी विष्णुवर्धन हौयसाल की सभा में था। उसने 'मल्लिनाथपुराण' नामक एक और ग्रन्थ लिखा है, जिसमें १९ तीर्थङ्करों के चरितों का उत्तम वर्णन है। परन्तु उसके यश का प्रधान आधार रामचन्द्र-चरित्र-पुराण ही है।

रामचन्द्र-चरित्र-पुराण जैन-कवि की रचना होने के कारण विशेष महत्त्व का ग्रन्थ है। इस रामायण का समस्त वातावरण जैनमय है। इसमें भारतवर्ष सर्वत्र जैन-देश की भांति दिखाया गया है, कहीं भी वैदिक-धर्म का उल्लेख तक नहीं है। अरण्यवासी यति सब जैन हैं। राम, रावण और अन्य सब पात्र जैन ही हैं। राक्षसों को कवि ने बहुधा विद्याधर कहा है। सुग्रीव, हनूमान् और उनकी सेना बन्दर-योनि में नहीं है, वे साधारण मनुष्य हैं। केवल वे बानर-ध्वज हैं। लङ्का जाने के लिए समुद्र पर पत्थरों से पुल नहीं बांधा गया है। नभोगमन-विद्या के द्वारा समस्त सेना वायु-मार्ग से समुद्र-पार करती है। रावण को दशानन तो कहा गया है, परन्तु इसलिए नहीं कि उसके वास्तव में १० सिर थे। जब वह पैदा हुआ था तब सौरि-ग्रह में दसपहली एक दर्पण-मणि थी। उसी में उसके सिर के १० प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण वह दशमुख कहलाया। राम और लक्ष्मण अवतार नहीं माने गये हैं। उनको कवि ने जैनों के कारण पुरुष-पद पर रक्खा है। लक्ष्मण पर कवि ने विशेष कृपा की है। वनवास के काल में लक्ष्मण ने ही राम की ओर से सब काम किये हैं। युद्धों में उन्हीं का प्रधान भाग है, यहां तक कि रावण को भी लक्ष्मण ने ही मारा है। लक्ष्मण और शत्रुघ्न एक माता के पुत्र नहीं हैं। राम की माता का नाम कौशल्या के स्थान में अपराजिता दिया गया है। सीता के एक यमज भाई है, जिसका नाम प्रभामण्डल है, जिसे बचपन में ही कोई चुरा ले गया था। जब सीता का स्वयंवर होता है तब वह भी सीता के साथ विवाह की इच्छा से जनकपुरी आता है। तब उसका पता लगता है। इन्हीं बातों में इस जैन-रामायण की कथा वाल्मीकि-रामायण से भिन्न है। समष्टिरूप से कथा का ढाँचा वही है।

पम्प-रामायण का रचना-काल लगभग सन् ११०५ अनुमान किया गया है। यह चम्पू (गद्य-पद्य-मिश्रित) है। नीचे राम-रावण युद्ध-वर्णन के एक भाग का हिन्दी भाषान्तर दिया जाता है। उससे इस रामायण का जैन-वायु-मण्डलमय और उपदेशप्रद होना प्रकट होगा—

"यह सुन कर कि लक्ष्मण के घाव पूर्णरूप से अच्छे हो गये हैं और वे फिर युद्ध की पूरी तैयारी कर रहे हैं, रावण के मन्त्रियों ने उसे यह सलाह दी कि सीता को आदर-पूर्वक राम के पास लौटा देने और उनसे सन्धि कर लेने में ही हित है। क्योंकि राम और लक्ष्मण उससे कहीं अधिक बलवान् और अजेय हैं। मन्त्रियों के ये वचन सुन कर रावण को बड़ा क्रोध आया। वह बोला—

मैंने जब इन्द्र तक को अपने पैरों पर गिरा कर छोड़ा, तब भला यह कहाँ हो सकता है कि इस छोटे से राजकुमार से डर कर मैं उसकी अधीनता स्वीकार करूँ? इससे तो यही अच्छा होगा कि मेरे प्राण चले जायँ। मुझ सरीखे वीरों को प्राण की तनिक भी चिन्ता नहीं है। मुझे केवल मान की परवा है। तो भी अपनी विजय पूर्णरूप से निश्चय करने के लिए मैं मन्त्रयोग से काम लूँगा। उसी के बल से मैं बहुरूपिणी शक्ति की सहायता से अनेक रूप धारण करूँगा।

मन्त्रयोग की सफलता में कोई रुकावट न पड़े, इस लिए रावण ने यह आज्ञा निकाली—समस्त लङ्का में किसी जीव की हिंसा न की जाय। हमारे समस्त योद्धा कुछ काल के लिए लड़ना बन्द कर दें। हमारी सब प्रजा जैन-पूजा में निरत हो जाय।

तब वह अपने महल में गया·····और वहाँ भगवान् शान्तीश्वर की वन्दना की।·····सविधि पूजा कर उसने मौनध्यान का व्रत किया। पद्मासन में बैठ कर उसने एकाग्रचित्त होकर इन्द्रियदमन किया।·····

जब विभीषण ने सुना कि रावण ऐसी कठिन तपस्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहा है तब राम के पास जाकर उसने प्रार्थना की कि कृपापूर्वक रावण को तपस्या के फलस्वरूप नवीन शक्ति प्राप्त करने के पूर्व ही मार डालिए। परन्तु राम ने कहा—रावण ने पूरी विधि से जिनेन्द्र की आराधना की है। यह उचित नहीं है कि धर्मनिरत पुरुष का हम वध करें जब कि उसने अपने अस्त्र-शस्त्र रख दिये हैं। मैं उसके मन्त्र-योग से नहीं डरता। जो आदमी किसी दूसरे की स्त्री को चुराता है उसे कोई मन्त्रयोग काम नहीं दे सकता।

इस उत्तर से विभीषण और अङ्गद को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने राम से छिपा कर कुछ वानरध्वज-सेना रावण की तपस्या भङ्ग करने के लिए भेजी। इन सैनिकों ने लङ्का में बड़ा उत्पात मचाया। खेत, मकान, मन्दिर आदि सब तोड़-फाड़ डाले और बड़ा हू-हा मचाया। परन्तु रावण अपने जप में मग्न रहा। वह निश्चल बैठा रहा।

\+ + + + +

तब किष्किन्धा का उत्तराधिकारी अङ्गद अपने किष्किन्धा-नामक हाथी पर बैठ कर रावण का व्रत तोड़ने के लिए लङ्का की ओर चला। वहाँ पहुँच कर रावण को उसने शान्तीश्वर के स्थान में ध्यानावस्थित देखा, क्रोध और आश्चर्य में होकर उसने रावण को दुतकारा—ऐ पाखण्डी! मूर्ख! दुष्ट! तुझे इस पवित्र स्थान में बैठ कर उपासना के ढोंग करने में लज्जा नहीं आती? रे अधमराज! रे कुलकलङ्क! तूने अनेक धर्मात्माओं को बन्दीगृह में डाल कर सड़ाया और निरपराधियों को सताया है। तूने अपने पड़ोसी की साध्वी स्त्री को चुराया। तू शान्तीश्वर के भवन में उपासना करने का कैसे दुःसाहस कर रहा है? अपने पापों का स्मरण कर। सुन, तू राम के पैने बाणों का शिकार होगा। कोई भी मन्त्रबल तेरी रक्षा नहीं कर सकेगा। जब तेरे महल के आस-पास अग्नि प्रचण्ड हो रही है तब तू उसे बुझाने के लिए कुआँ खोद रहा है!

यह कह कर अङ्गद ने रावण का वस्त्र खींच कर उसको मुष्टि-प्रहार किया! .....उसने सब प्रकार से रावण को तङ्ग किया। काँपती हुई स्त्रियाँ आईं और रावण को ध्यान से सचेत करने का प्रयत्न करने लगीं। वह उसके कान में दहाड़ मार कर चिल्लाया—तुम्हारे इस जप से क्या लाभ? उठो, और हमारे मान की रक्षा करो! परन्तु रावण ने कुछ न सुना। उसका कोई अङ्ग न डिगा। वह ध्रुव की भाँति अटल रहा।

तब आकाश में बिजली गड़गड़ाई और विद्युत् पर बैठ कर एक यक्षिणी उतरी और रावण के पास आ खड़ी हुई। उसने कहा—मैं तुम्हारी आज्ञा से यहाँ उपस्थित हुई हूँ। मैं तुम्हारे सब शत्रुओं को अभी रणक्षेत्र में मार कर सुला सकती हूँ, परन्तु राम, लक्ष्मण और हनूमान् को छोड़ कर, क्यों वे ऐसी शक्ति से सुरक्षित हैं जो हमसे कहीं बलवती है।

तब रावण ने मलिनमुख हो उत्तर दिया—शोक! यदि वे तीनों शेष बच रहेंगे तो और सबके मरने से क्या लाभ?

इस उद्धरण से पता लगेगा कि नागचन्द्र का वर्णन सजीव और रोचक है। वास्तव में उसके काव्य का यही प्रधान गुण है।

लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

(अँगरेज़ी से सङ्कलित।)

३—वियोगिनी।

(संस्कृत के श्लोकों के आधार पर)

(१)

कमनीय कला कल कोमल कलाधर की
बढ़ रही जैसे जैसे दृग-सुखकारी है।
वैसे वैसे उस मृग-लोचनी वियोगिनी का
हो रहा शरीर क्षीण मञ्जु मनोहारी है।
लेकर उसी का सार विधु को बनाता विधि
क्या न यह बात ठीक हमने विचारी है।
इसलिए जब तक पूर्णिमा न होवे सखे!
तब तक आओ यही विनती हमारी है।

(२)

वेणी से विभूषित है केश का कलाप यह,
जटाजूट जटिल नहीं है सत्य जान तू।
लगा मृगमद है गले में, है गरल नहीं
शीश के सुमन को सुधांशु मत मान तू।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरह-जनित मेरी देह की धवलता को
समझ न अङ्ग की विभूति रे अजान ! तू।
मञ्जु मदनारि मुझे मन में विचार कर,
मार ! मत मार कुसुमों के निज बाण तू।

गोपालशरणसिंह

४—काल।

(कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की पङ्क्तियों पर आश्रित)

हे प्रभु, काल, तुम्हारा अनुचर
आया है मेरे गृह-द्वार
लाया है सन्देश तुम्हारा
कर अज्ञात जलधि को पार
रजनी है अति अन्धकार-मय
और हृदय मेरा भयभीत
फिर भी, स्वागत क्यों न करूँगा
गाकर मैं स्वागत-सङ्गीत ?
आया है, प्रभु, दूत तुम्हारा,
फिर वह भी जब मेरे द्वार
दीपक लेकर, द्वार खोल कर
नत-मस्तक, करके उपचार,
लाऊँगा उसको अपने घर,
अश्रु-सहित, कर-बद्ध, अगर्व
और करूँगा उसको अर्पण
अपनी जीवन-निधि मैं सर्व

रामचन्द्र टण्डन

५—स्वर्ग में भूल।

वह बिलकुल बेकार था, अकर्मण्य था।

उसका कोई काम नहीं था, सिर्फ़ तरह तरह के शौक़ थे।

लकड़ी के छोटे छोटे चौकोर टुकड़ों पर मिट्टी डाल कर उन्हें सजाया करता था। यही एक उसका काम था।

घर में सभी उसका तिरस्कार करते थे। अपमान की हद नहीं थी। कभी कभी वह प्रतिज्ञा करता था कि मैं यह पागलपन छोड़ दूँगा, पर पागलपन उसको नहीं छोड़ता था।

(२)

कोई कोई लड़के साल भर तक बिलकुल नहीं पढ़ते। फिर भी वे परीक्षा में पास हो जाते हैं। ठीक यही दशा उसकी हुई।

सारा जीवन तो उसने बिना काम किये ही काट डाला। मृत्यु के बाद उसे ख़बर मिली कि वह स्वर्ग में स्थान पा गया है।

परन्तु भाग्य स्वर्ग-पथ में भी मनुष्य का साथ नहीं छोड़ता। दूतों ने भूल से उसे अकर्मण्यों के स्वर्ग में न ले जाकर कर्मण्यों के स्वर्ग में रख दिया।

उस स्वर्ग में सब कुछ था, सिर्फ़ अवकाश नहीं था।

यहाँ पुरुष कहा करते थे—दम लेने की फ़ुरसत नहीं। स्त्रियाँ कहती थीं—मैं तो चली, काम पड़ा है। सभी कहते थे कि समय का मूल्य है। कोई भी यह नहीं कहता था कि समय अमूल्य है।

सभी कहते थे—और तो हमसे कुछ नहीं हो सकता। फिर भी सब खुश रहते थे। 'काम करते करते हैरान हो गया', यही उनकी एक बात थी।

वह बेचारा कहीं भी फ़ुरसत नहीं पाता था। किसी से भी उसका मेल नहीं खाता था। रास्ते पर वह अन्य-मनस्क होकर चलता था, इससे कार्य-व्यस्त लोगों को बड़ी बाधा होती थी। चद्दर फैलाकर वह अगर कहीं बैठ कर आराम करना चाहता तो कोई न कोई आकर कहता—अरे भाई, यह खेत है। यहाँ बीज बो दिया गया है। तब उसे उठकर चला जाना पड़ता था।

(३)

रोज़ एक लड़की बड़ी व्यस्त होकर स्वर्ग के एक झरने से घड़े में जल भरने आती थी।

रास्ते पर वह सितार की द्रुतगति की तरह चलती थी।

वह जल्दी जल्दी बालों को सँभाल कर जूड़ा बाँध लेती थी। फिर भी दो चार अलकें उसके कपोल पर झुकी रहती थीं, मानो वे उसकी आँखों की कालिमा देखने के लिए झाँक रही हैं।

वह बेकार झरने के किनारे एक ओर चुपचाप वृक्ष की तरह खड़ा रहता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिड़की से किसी भिक्षुक को देखकर जिस प्रकार राज-कन्या को दया आती है, उसी प्रकार उस बेकार को देखकर लड़की का हृदय दया-पूर्ण होगया।

लड़की बोली—जान पड़ता है कि तुम्हें कोई काम नहीं है।

विश्वास देकर उसने कहा—काम तो करूँ, पर उसके लिए समय नहीं है।

लड़की कुछ समझ न सकी। बोली—मुझसे काम लोगे?

वह बोला—तुम्हीं से काम लेने के लिए तो मैं यहां खड़ा हूँ।

लड़की ने कहा—क्या काम दूँ?

वह बोला—तुम पानी भरने के लिए जो घड़े लाती हो उनमें से एक घड़ा हमको दो।

"घड़ा लेकर क्या करोगे? पानी भरोगे?"

"नहीं, मैं उस पर चित्र बनाऊँगा"। लड़की ने विरक्त होकर कहा—मैं जाती हूँ, मुझे फ़ुरसत नहीं।

परन्तु निठल्लों के साथ कार्य-व्यस्त लोगों का कार्य किस तरह चल सकता है। रोज़ उसी झरने के पास दोनों की भेंट होती थी और रोज़ वह यही कहा करता था—मुझे अपना एक घड़ा दो। मैं उस पर चित्र बनाऊँगा।

हार मान कर लड़की ने घड़ा दे दिया।

उसको लेकर वह उस पर चित्र बनाने लगा, कितने तरह के रङ्ग थे और कितने तरह की रेखायें।

चित्र बन जाने पर लड़की ने उसको खूब ध्यान से देखा, फिर भौंहें टेढ़ी कर पूछने लगी—इसका मतलब?

वह बेकार बोला—इसका कुछ भी मतलब नहीं।

घड़ा लेकर लड़की घर चली गई। दिन में सबकी आँख बचाकर वह उसे देखा करती थी। रात में बिछौने से उठकर दिया जलाकर वह उस चित्र को देखती थी। अपने जीवन में उसने पहली बार एक ऐसी चीज़ देखी जिसका कुछ अर्थ नहीं।

दूसरे दिन जब वह झरने के किनारे आई तब उसके पैरों की द्रुतगति में एक बाधा सी पड़ गई थी, मानो वे भी चलते चलते कुछ अनमने से हो रहे हैं, कुछ ऐसी बात सोच रहे हैं जिसका कुछ अर्थ नहीं।

उस दिन भी उस बेकार से भेंट हुई।

लड़की ने पूछा—अब क्या चाहते हो?

"तुमसे काम चाहता हूँ।"

"कौन सा काम दूँ?"

"यदि स्वीकार करो तो रङ्गीन सूत बुनकर मैं तुम्हारी बेणी बाँधने के लिए डोरा तैयार कर दूँ।

"उससे क्या होगा?"

"कुछ नहीं।"

अब तरह तरह के डोरे तैयार होने लगे। अब आइना लेकर बेणी बाँधने में लड़की को देरी होने लगी। काम पड़ा रहता था, समय चला जाता था।

(४)

देखते देखते कर्मण्यों के स्वर्ग में एक बड़ा भेद आ लगा।

विज्ञ लोग चिन्तित हुए। सभा की गई। वे बोले—पहले ऐसा कभी नहीं हुआ।

स्वर्ग-दूत ने अपना अपराध स्वीकार किया। बोला—मैं भूल से एक निठल्ले को ले आया!

वह बेकार सभा में बुलाया गया। उसकी रङ्गीन पगड़ी और कमरबन्द देखकर लोगों ने समझ लिया कि सचमुच बड़ी भूल हुई।

सभापति ने कहा—तुम्हें पृथ्वी पर लौट जाना होगा।

वह अपनी रङ्गीन झोली को हिलाते हुए बोला—तब मैं चला।

लड़की बोली—मैं भी जाऊँगी।

सभापति कुछ अन्यमनस्क सा हो गया। उसने भी पहली बार एक ऐसी घटना देखी जिसका कुछ मतलब नहीं।

(रवीन्द्र बाबू की एक कहानी)

हृषीकेश

६—वनस्पति के सजीव-तत्त्व।

वनस्पति का शरीर कई पेशियों के संयोग से बना हुआ है। वनस्पति के किसी अवयव को काट कर अनुवीक्षण-यन्त्र के नीचे रखने से ये पेशियां साफ़ दिखाई देती हैं। कुछ वनस्पति ऐसी भी हैं, जिनका शरीर एक ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेशी से बना होता है। एक पेशी-मय वनस्पति का जीवन-व्यापार इसी एक ही पेशी के अन्दर चला करता है। हर एक पेशी में तीन घटकावयव मौजूद रहते हैं। ये तीन घटकावयव हैं—१ पेशी-भित्तिका (cell-wall), २ पेश्यन्तर सजीव-तत्त्व (Protoplasm) और ३ पेशी-द्रव्य (cell-contents)। इन तीनों में सजीव-तत्त्व ही मुख्य है। यह सदा चञ्चल स्थिति में रहता है। पेशी का सजीव-तत्त्व साधारणतया तीन भागों में विभक्त रहता है। ये तीन भाग हैं—१ क्रेन्द्र (nucleus), २ जीवन-पिण्ड (plastid) और ३ जीवन-रस (cytoplasm)। जीवन-पिण्ड भिन्न भिन्न आकार के होते हैं और उनका रङ्ग भी जुदा जुदा होता है। कुछ हरिद्वर्ण होते हैं, इसी लिए उनको हरिज्जीवन-पिण्ड (chcoroplast) नाम दिया गया है। सफ़ेद रङ्ग के जीवन-पिण्ड को शुभ्र-जीवन-पिण्ड (Leucoplast) कहते हैं। अन्य रङ्गों के जीवन-पिण्ड रञ्जित-जीवन-पिण्ड (cromoplast) कहाते हैं। पेशी के घटकावयव दो स्थितियों में पाये जाते हैं। ये दो स्थितियां हैं सचेतन और अचेतन। पेशी में सजीव-तत्त्व सचेतन स्थिति में पाया जाता है और पेशी-भित्तिका और पेशी-द्रव्य अचेतन-स्थिति में रहते हैं। केंद्र, जीवन-पिण्ड और जीवन-रस सचेतन स्थिति में ही रहते हैं। सजीव-तत्त्व के विशिष्ट सङ्कीर्ण भाग को ही केन्द्र संज्ञा दी गई है। केन्द्र, जीवन-पिण्ड और जीवन-रस में से प्रत्येक अलग अलग वनस्पति के जीवन-व्यापार में भिन्न भिन्न कार्य सम्पादन करते हैं। केन्द्र और जीवन-पिण्ड के विभाजित हो जाने पर उनसे नवीन केन्द्र और नवीन जीवन-पिण्ड की उत्पत्ति होती है।

सजीव-तत्त्व रवादार होते हैं और उनका घनत्व शहद जैसा होता है। सजीव-तत्त्व पेशी-भित्तिका में से द्रव-रस को सोखता है। द्रव-रस के संयोग से कुछ समय के लिए सजीव-तत्त्व का घनत्व कम होजाता है। किन्तु बाद में यह रस सजीव-तत्त्व से जुदा होकर एक विशेष स्थान में जाकर जमा हो जाता है। जिस स्थान पर यह द्रव-रस जमा होता है उसे जड़स्थान (vacuole) कहते हैं। जड़स्थान के चारों ओर जीवन-रस का एक मोटा परदा-सा तैयार हो जाता है, जिससे उस स्थान पर द्रव-रस के जमा होने की व्यवस्था हो जाती है। पेशी-भित्तिका के पासवाला भाग भी बहुत मोटा हो जाता है। कारण कि भीतर की ओर से जीवन-रस भित्तिका तक आ पहुँचता है, जिससे उसे सहारा मिल जाता है। इससे यह बात साफ़ मालूम हो जाती है कि जीवन-रस का घनत्व सभी जगह एक-सा नहीं रहता। जड़-स्थान और भित्तिका के पासवाला भाग तो घनरूप में पाया जाता है और वह इन दोनों के बीच में द्रव अवस्था में रहता है। इस रस में ही केन्द्र या रञ्जित-जीवन-पिण्ड मुग्धावस्था में रहते हैं। पेशी के बढ़ते ही जड़-स्थान भी बढ़ जाता है। कभी कभी एक से अधिक जड़-स्थान भी पैदा हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में केन्द्र किसी निश्चित स्थान पर नहीं रहता। केन्द्र किसी भी स्थान पर क्यों न हो, किन्तु हर हालत में वह, महीन तन्तुओं-द्वारा, भित्तिका की ओर के जीवन-रस से सम्बद्ध रहता है। केन्द्र और जीवन-रस का यह सम्बन्ध कभी टूटता ही नहीं। केन्द्र-रस भी रवा-दार (कणदार) होता है। उसमें सूक्ष्म-तन्तुओं का जाल-सा फैला रहता है। केन्द्र-रस पर रङ्ग भी जल्दी चढ़ जाता है। अतएव जीवन-रस में उसका अस्तित्व स्पष्ट मालूम हो जाता है। केन्द्र-रस में केन्द्र-बिन्दु भी पाया जाता है। कभी कभी एक से अधिक केन्द्र-बिन्दु पाये जाते हैं।

सजीव-तत्त्व के घटकावयव नहीं बताये जा सकते। सजीव-तत्त्व का $\frac{3}{4}$ से भी अधिक भाग पानी है। शेष भाग में कुछ क्षार और दूसरे रासायनिक जैव-पदार्थ तथा प्रोटीड है। अनुमान किया गया है कि प्रोटीड ही धीरे धीरे भिन्न भिन्न रूप बदलता हुआ अन्त में सजीव-तत्त्व बन जाता है। केन्द्र और सजीव-तत्त्व के घटकावयव में ज़्यादा फ़र्क नहीं है। कार्बन, आक्सिजन, उज्जन (हायड्रोजन), नत्रजन आदि दोनों में ही पाये जाते हैं। परन्तु केन्द्र में फास्फरस भी रहता है।

प्रतिदिन सैकड़ों उलट-फेरों का होना ही पेशी का जीवित रहना है। सजीव-तत्त्वों की बदौलत ही ये उलट-फेर होते रहते हैं। सजीव-तत्त्व स्थिर अवस्था में कदापि नहीं पाया जाता। किन्तु उसकी चञ्चलता चर्म-चक्षु से भी दिखाई नहीं देती। इससे यह समझ बैठना कि सजीव-तत्त्व अचल है, भारी भूल है। अन्य कई लक्षणों-द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चञ्चलता का पता लग जाता है। नायटेला, चारा आदि जलज वनस्पतियों में उसकी गति दृष्टि-गोचर हो जाती है। ट्राडेस्कैंशिया (लाल-घास) के फूलों में पुंकेसर के रोओं में सजीव-तत्त्व की गति उत्तम प्रकारेण दृष्टि-गोचर हो जाती है। डेस्मिड, डायटम, युग्लीना आदि एक-पेशीय जलज वनस्पतियों की चलन-चालन क्रिया अच्छी तरह दिखाई देती है। यूलोथ्रिक्स नामक वनस्पति की जनन-पेशियों में (Zoo-Spores) गति होती है। इस गति को सुलभ रीति से साधने के लिए उनका आकार, परिस्थिति के अनुसार, जुदे जुदे प्रकार का हो जाता है। कभी कभी उन पर एक या दो महीन दुमें-सी निकल आती हैं, जिनकी सहायता से पेशी, जल में, इधर-उधर तैरती रहती है। ज़रूरत न रहने पर ये अवयव सङ्कुचित भी कर लिये जाते हैं।

खाद्य-पदार्थों का शोषण करना, उनको योग्य स्थान पर पहुँचा कर उनसे जैव-पदार्थ तैयार करना, आवश्यक पदार्थों का जुटाना, अनावश्यक वस्तुओं का विसर्जन करना, श्वासोछ्वास लेना, नई बाढ़ करना, पुनरुत्पादन-क्रिया को सञ्चालित करना, आदि सभी काम सजीव-तत्त्व ही सम्पन्न करता है। कहें तो कह सकते हैं कि सजीव-तत्त्व की ही बदौलत वनस्पति का जीवन-व्यापार सुचारु-रूपेण चला करता है। सजीव-तत्त्व का अभाव होते ही पेशी निर्जीव हो जाती है। पूर्ण बाढ़ को पहुँचे हुए सजीव तत्त्वों से नवीन सजीव-तत्त्व पैदा होते हैं। पेशी में, खाद्य-तत्त्वों से, प्रोटीड तैयार होता है और यही तब पूर्ण बाढ़ को पहुँचे हुए सजीव-तत्त्वों की सहायता से नवीन सजीव-तत्त्वों को उत्पन्न करता है। तब पूर्ण बाढ़ को पहुँचे हुए सजीव-तत्त्व धीरे धीरे पेशी-भित्तिका की वृद्धि में ख़र्च हो जाते हैं। नवीन तत्त्व, पुरानों का स्थान ग्रहण कर, इनकी क्षति-पूर्ति कर देते हैं। जड़, शाखा, पत्ते और फल-फूल आदि अवयवों को बनाने में पुराने सजीव-तत्त्व ख़र्च होते रहते हैं और उनका स्थान नवीन सजीव-तत्त्व ग्रहण करते रहते हैं।

पेशी-भित्तिका सजीव-तत्त्वों से ही उत्पन्न होती है। कारबन, आक्सिजन और उजन उसके घटक हैं। इसके घटक को सेल्युलोज़ (पेशी-घटक-द्रव्य) कहते हैं। सत्व और सेल्यूलोज़ में कार्बन का प्रमाण समान ही रहता है, किन्तु इनकी रचना में कुछ वैचित्र्य है। और इसी लिए इनके रासायनिक गुण-धर्म में समानता नहीं है। पेशी-भित्तिका की बाढ़ भीतर से बाहर की ओर को होती है। सजीव-तत्त्व का बाह्य भाग पहले कुछ कठिन और लचीला होता है। धीरे धीरे वह सजीव-तत्त्व से जुदा हो जाता है और भीतर के कारबन आदि घटक के कुछ द्रव्य भित्तिका-रन्ध्र में जम जाते हैं, जिससे वह (भित्तिका) पहले की अपेक्षा अधिक मोटी हो जाती है। पेशी-भित्तिका के उस भाग की, जो सजीव-तत्त्व से जुदा हो जाता है, सचेतनता शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। प्राथमिक अवस्था में भित्तिका सचेतन रहती है, किन्तु ज्यों ज्यों वह अधिकाधिक मोटी होती जाती है, त्यों त्यों भीतर के सजीव-तत्त्वों से उसका सम्बन्ध टूटता जाता है और तब वह निर्जीव हो जाती है।

पेशी-भित्तिका में निरेन्द्रिय तत्त्व सञ्चित हो जाते हैं, जिससे उसके जैव-तत्त्वों में सङ्कीर्णता पैदा हो जाती है। निरेन्द्रिय तत्त्व के कारण ही वह अधिक कड़ी हो जाती है। पेशी के सजीव तत्त्वों की रक्षा करना ही पेशी-भित्तिका का एक महत्त्व-पूर्ण काम है। इस उद्देश की पूर्ति के लिए पेशी के घटक-द्रव्यों में कई रासायनिक क्रियायें होती हैं, जिससे उसको अधिक कड़ी बनानेवाला द्रव्य—काष्ठ-तत्त्व (Liguin) तैयार होता है। तब उनसे गोंद के समान चिकट पदार्थ बनता है। अर्थात् काग में, जो एक विशेष प्रकार का तत्त्व पाया जाता है, वही उसमें उत्पन्न हो जाता है। यह तत्त्व उसका संरक्षण करने में काम आता है।

सभी जगह पेशी-भित्तिका की मुटाई एक-सी नहीं होती। आवश्यकता के अनुसार वह कम ज़्यादा मोटी तैयार हो जाती है। जिस परिमाण में भीतर से बाह्य भाग की ओर न्यूनाधिक पेशी-घटक-द्रव्य जमते जाते हैं, उसी परिमाण में वह न्यूनाधिक मोटी बन जाती है। प्रारम्भ में पेशी-भित्तिका पतली होती है और तब धीरे धीरे मोटी हो जाती है। मोटी पेशी-भित्तिका में परदों के स्तर-से जमे रहते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में पेशी-भित्तिका रन्ध्रमय होती है, जिससे बाह्य पदार्थों का भीतर की ओर को सोखा जाना सुलभ हो जाता है। इस रन्ध्र-मय पेशी-भित्तिका-द्वारा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सजीव-तत्त्व क्षार सोखते हैं। इसी रन्ध्र-मय पेशी-भित्तिका में होकर, शोषण-क्रिया-द्वारा, अन्न-रस वनस्पति के अवयवों में पहुँचता रहता है।

पेशी-द्रव्य भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। इनमें से कुछ जैव और कुछ निरेन्द्रिय होते हैं। कुछ द्रव्य पेशी-द्रव्य में घुल जाते हैं। शर्करा, नत्रजन, प्रोटीड आदि तत्काल उपयोग में आते हैं और इन्हीं से सजीव-तत्त्व का अस्तित्व बना रहता है। सत्व (Starch), टैनिन, तेल आदि द्रव्य पेशी-रस में अघुलनशील अवस्था में पाये जाते हैं। पेशी के जैव-तत्त्वों का परिमाण काल, अवस्था और स्थान पर अवलम्बित रहता है। उत्तम हरे रङ्ग के पत्तों में सूर्यप्रकाश में सात्विक जैव-तत्त्वों का परिमाण कुछ अधिक रहता है। परन्तु रात को यह तत्त्व अन्य स्थान को चले जाते हैं और तब उसका परिमाण घट जाता है। इसी प्रकार शाम की अपेक्षा सवेरे इनका परिमाण बहुत अधिक रहता है। पूर्ण बाढ़ को पहुँचे हुए पत्तों की अपेक्षा कोमल पत्तों में इसका अंश बहुत कम पाया जाता है। उसी प्रकार शीतकाल की अपेक्षा ग्रीष्मकाल में इसका अंश बढ़ जाता है। फूल आने पर या फल में बीज की बाढ़ शुरू होने पर अन्य भागों की अपेक्षा इस ओर सात्विक द्रव्यों का प्रवाह अधिक प्रवाहित होने लगता है।

निरेन्द्रिय तत्त्व, द्रव-अवस्था में ही, पेशी-भित्तिका में से सोखे जाते हैं। यह पहले पेशी के जड़-स्थान में सञ्चित होता रहता है और तब पेशीरस के साथ अन्य स्थान को चला जाता है। वहाँ रासायनिक क्रिया-द्वारा यह भिन्न रूप धारण कर लेता है। जिन क्षारों में गन्धक या फासफरस का अंश रहता है वे पेशी में सोख लिये जाते हैं और तब उनसे गन्धकाम्ल और फासफरिकाम्ल तैयार होता है। कुछ खनिज द्रव्यों के घुलनशील क्षार शुद्धावस्था में ही सोख लिये जाते हैं। पानी में घुले बिना इनका सोखा जाना एक-दम असम्भव है। पेशी को नीरोग बनाये रखने में ये अप्रत्यक्ष-रूप से सहायता पहुँचाते हैं। भीतर सोखे जानेवाले सभी निरेन्द्रिय द्रव्य पेशी के काम में नहीं आते। इन निरुपयोगी द्रव्यों को इधर-उधर भेजने में पेशी की शक्ति का अपव्यय होता है। यह निरुपयोगी द्रव्य पेशी-भित्तिका में सञ्चित होते रहते हैं। इन पदार्थों के विसर्जन के लिए विशिष्ट द्वार या अङ्ग न होने के कारण अन्य विसर्जन-कार्य समाप्त हो जाने पर निरुपयोगी द्रव्यों का विसर्जन-कार्य प्रारम्भ किया जाता है। निरुपयोगी माने जानेवाले द्रव्य कभी कभी, अप्रत्यक्ष-रूप में, पेशी का हित-साधन करते हैं। कुछ पेशियों की भित्तिका को मज़बूती की ज़रूरत होती है। निरुपयोगी निरेन्द्रिय (inorganic) तत्त्वों के सञ्चित हो जाने से उनको सहारा मिल जाता है, जिससे वे मज़बूत हो जाती हैं। उसी प्रकार निरुपयोगी तत्त्वों के कारण, कभी कभी, पत्तों में भिन्न भिन्न स्फटिकाकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन स्फटिकाकृति क्षारों के कारण कीड़े, चूहे, आदि के गले में खुजली होने लगती है और यही कारण है कि चूहे वग़ैरह उन पत्तों को नहीं खाते। इन्हीं क्षारों को दूर करने के लिए मनुष्य खाने के पहले भाजी को उबाल कर धो डालते हैं। परन्तु अन्य प्राणियों के लिए ऐसा करना एक-दम असम्भव है।

शङ्करराव जोशी

(मराठी 'नवयुग' से)

७--विश्व-भाषा।

भाषा-भेद की कठिनाई से सभी लोग परिचित हैं। यह कठिनाई आज की नहीं, किन्तु ज़माने की है। संसार अभी तक इसकी समस्या नहीं हल कर सका है। बहु-संख्यक भाषायें और दूसरे उनकी विशेषतायें भी उपर्युक्त मसले के हल होने में बहुत कुछ बाधक हैं। अगर कोई व्यक्ति भिन्न भिन्न भाषाओं के अध्ययन में अपना जीवन लगा दे तो वह शायद अपने सारे जीवन में कुछ ही भाषाओं में उत्कृष्टता प्राप्त करने में सफल हो। सभ्यता और राजनैतिक प्रगति ने भाषा-सम्बन्धी कुछ कठिनाइयों को कुछ कुछ दूर किया है। ग्रीक, लेटिन, अरबी और अँगरेज़ी भाषायें बारी बारी से संसार के एक बड़े भाग पर प्रचलित रही हैं। इन भाषाओं ने अपने उत्कर्षकाल में मनुष्य की भावना पर प्रभाव भी डाला है। परन्तु साहित्य-भाषा के सिवा इनमें से कोई विश्व-भाषा नहीं बन सकी। ऐसा होना असम्भव भी था। क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ओर तो भाषाओं की संख्या में वृद्धि होती रही और दूसरी ओर जातीयता के भाव भी भीतर ही भीतर अपना काम करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि भिन्न भिन्न भाषायें केन्द्र की ओर न झुककर उससे विलग ही रहीं। यही नहीं, दुनिया की साहित्यिक भाषाओं की संख्या आज कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी है। भिन्न भिन्न भाषाओं को अध्ययन कर उनकी अच्छी अच्छी बातें न ग्रहण कर लोग अपनी ही भाषा को समुन्नत करने में दिखाई पड़ते हैं। इसी कारण एक भाषा की अच्छी बातें दूसरी भाषा में नहीं आ पातीं। यह कमी अनुवाद-द्वारा किसी हद तक दूर की जाती है, परन्तु अनुवाद अनुवाद ही रहता है, उसमें मौलिक का आनन्द नहीं मिलता। अतएव एक विश्व-भाषा की आवश्यकता नित्यप्रति ज़ोर पकड़ती जाती है।

विश्व-भाषा के प्रश्न को हल करने के लिए पहली बात यह है कि प्रचलित भाषाओं में से कोई एक भाषा विश्व-भाषा बना दी जाय और सब लोग उसी के द्वारा अपनी अपनी जातीयता के भाव प्रकट करना प्रारम्भ कर दें। परन्तु वह भाषा हो कौन? क्या इसका चुनाव मुर्दा भाषाओं में हो या वर्तमान समुन्नत भाषाओं में से कोई एक चुनी जाय? परन्तु प्रचलित भाषाओं में से किसी एक का चुन लेना सरल काम नहीं है। इसमें राजनैतिक और सामाजिक भावनायें भारी बाधा डालेंगी। भारत की बात तो जाने दीजिए। यहाँ की प्रत्येक भाषा दूसरी से सर्वथा भिन्न है। उनका शब्द-भाण्डार भी उसी प्रकार भिन्न भिन्न है। स्वयं योरप में, जहाँ की भिन्न भिन्न भाषाओं में सादृश्य है, किसी एक भाषा को विश्व-भाषा के रूप में स्वीकार करने में जातीयता की भावनायें बाधा डालती हैं। इसी कारण एक बार यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया था कि नार्वे की भाषा योरप की सार्वजनिक भाषा बना दी जाय। नार्वे की भाषा में एक विशेषता यह है कि वह सरल है, दूसरी यह कि वह एक छोटे राष्ट्र की भाषा है। इसके सिवा उसके सार्वजनिक भाषा स्वीकार करने में राजनैतिक बाधा भी नहीं है।

यदि थोड़ी देर के लिए यह मान लें कि केवल साहित्यिक भावना की प्रेरणा से भिन्न भिन्न जातियाँ अपनी जातीय प्रतिद्वन्द्विता को भुलाकर किसी एक भाषा को सर्वसम्मति से सार्वजनिक भाषा स्वीकार कर लें तो दूसरे लोगों के लिए इस भाषा को आत्मसात् करना असम्भव होगा। कृत्रिम भाषाओं में तो एक भी ऐसी नहीं है जो सरल हो। उनमें से सभी कठिन हैं। और कुछ तो अपनी लिपि तथा वर्ण-विन्यास के कारण और भी कठिन हो गई हैं। इसके सिवा उनमें सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उनके द्वारा लोग अपने भाव भले प्रकार नहीं प्रकट कर सकते। इसका कारण यह है कि उनमें से प्रत्येक की रचना में बुद्धि का भाग बहुत कम है। किसी भाषा का महत्त्व-पूर्ण अङ्ग उसका शब्द-भाण्डार है। प्रत्येक भाषा के शब्दों की रचना कल्पना से होती है। ऐसे शब्द बहुत कम होते हैं जिनमें उनकी रचना और अर्थ में कोई सम्बन्ध हो। कहने को तो नियम बने हुए हैं, पर इनका प्रभाव भाषा पर बहुत कम पड़ता है। व्याकरण-सम्बन्धी विशेषतायें, अपवाद, लिङ्ग के झगड़े आदि ऐसी बातें हैं कि कोई एक वाक्य आदर्श शुद्ध वाक्य के रूप में नहीं उपस्थित किया जा सकता। ऐसी दशा में यही श्रेष्ठ मार्ग होगा कि प्रचलित भाषाओं में से कोई एक चुन ली जाय और विश्व-भाषा के रूप में उसका फिर से संस्कार हो। अर्थात् व्याकरण के नियमों के स्थान में वह विशेष नियमों के अनुसार संस्कृत की जाय, उसकी अनावश्यक कठिनाइयाँ हटा दी जायँ। इसका एक सरल उपाय यह हो सकता है कि कुछ शब्द चुन लिये जायँ और वे धातु के रूप में व्यवहृत हों। फिर इनसे नये नये शब्दों की रचना हो। यदि इस प्रकार नव-निर्मित शब्दों की संख्या आवश्यकता से अधिक हो जाय तो हम पूर्व-स्वीकृत अपने धातु-शब्दों पर फिर विचार करें और उनमें ऐसे परिवर्तन करें कि शब्दों के रूप और अर्थ में कोई अन्तर न हो और उनके उच्चारण में अनावश्यक कठिनाइयाँ न आने पावें।

कृष्णकुमार

('उर्दू' से)

८—हिन्दू-नाटकों में पुरुष-पात्र।

पुरुष और स्त्रियों का चरित्र तीन प्रकार का गिना जाता है—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। इनमें से प्रत्येक भाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के भी कई विभाग होते हैं। नाटकों में उत्तम अथवा मध्यम कोटि के चरित्र-युक्त तथा अन्य गुणों से अलङ्कृत नायक के चार भेद और किये जाते हैं; धीरोद्धत, धीर-ललित, धीरोदात्त और धीर-प्रशान्त। देवताओं की गणना पहले वर्ग में है, राजा दूसरे वर्ग में; अमात्य, प्रधान और सेनापति तीसरे वर्ग में तथा ब्राह्मण और व्यापारी चौथे वर्ग में रक्खे जाते हैं।

धीरोद्धत नायक को दर्प और ईर्ष्या-युक्त, अपने पराक्रम की बड़ाई मारनेवाला तथा जिस किसी स्थान पर वस्तु के होने की सम्भावना नहीं हो सकती, वहां माया और मन्त्र से वस्तु के बताने की शक्ति रखनेवाला होना चाहिए। उसे दूसरों पर प्रभुत्व जमाने में दक्ष, अहङ्कारी, क्रोधी, आत्मश्लाघा करनेवाला होना चाहिए।

धीर-ललित नायक निश्चिन्त, कलासक्त, सन्तोषी, दयालु और सुखी होता है।

धीरोदात्त नायक ऐसा गम्भीर, क्षमावान और दृढ़व्रत अर्थात् निश्चय किये हुए काम को पूरा करनेवाला होता है कि उस पर क्रोध अथवा दुःख का सहज ही प्रभाव नहीं पड़ सकता। वह आत्मश्लाघा-रहित और अहङ्कार को विवेक से ढक रखनेवाला होता है।

धीर-प्रशान्त नायक शान्ति और नम्रता आदि सामान्य गुणों से युक्त होता है और ब्राह्मण तथा व्यापारी आदि का उसे बराबर ध्यान रहता है।

राजमहल में निम्नलिखित पुरुष-पात्रों की आवश्यकता होती है। राजा, सेनापति, कुमार, मन्त्री, सचिव, प्राड्विवेक (प्रधान न्यायाधीश), प्रयोगाधिकृत मनुष्य (फुटकर काम करनेवाले नौकर), अन्य कई कर्मचारी (सभासद् अथवा दरबारी) और बाह्यचर अर्थात् महल के बाहर रहनेवाले।

राजा—राजा को दयालु, बुद्धिमान्, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, युक्तिवान्, दूरदर्शी, विद्वान्, शूरवीर, बलवान्, धैर्यशाली, धर्म्म में श्रद्धालु, गम्भीर, कृतज्ञ, दूसरों के साथ विवेक के साथ बोलनेवाला, प्रजाप्रिय, क्षमावान्, उदार, सावधान, कलाओं का उत्तेजक, अर्थशास्त्र और वार्तालाप में निपुण, शत्रु के छिद्र और उसके गुप्त अभिप्राय जानने की शक्ति रखनेवाला, राजनीति के छः भेद (परामर्श, सन्धि, विग्रह, आक्रमण, युक्ति और रक्षा करना) और उनका उपयोग करने में निपुण, प्रजा और राज्य की उन्नति, प्रगति और नाश का समय जान सकनेवाला, नाना शास्त्र-विशारद और दुर्व्यसनों से मुक्त होना चाहिए।

सेनापति—सेनापति को शीलवान्, सत्यवक्ता, परिश्रमी, दयालु, प्रियवादी, शत्रु का छिद्र जान सकनेवाला, सैन्य-सञ्चालन का योग्य समय जाननेवाला, अर्थशास्त्र-विशारद, राजा का हितेच्छु, उच्च कुलोत्पन्न और देश-कालानुसार चलनेवाला होना चाहिए।

मन्त्री—मन्त्री (प्रधान) को उच्च कुलोत्पन्न, बुद्धिमान्, धर्म्म में श्रद्धा रखनेवाला, पवित्र तथा राजनीति और अन्य शास्त्रों में निपुण होना चाहिए। उसे राजा के ही देश का अर्थात् स्वदेशी तथा राजा के ही हित में अनुरक्त होना चाहिए। सचिव (सलाहकार) को भी मन्त्री के समान गुणयुक्त होना चाहिए।

प्राड्विवेक—प्राड्विवेक (मुख्य न्यायाधीश) को क़ानून और अर्थशास्त्र में निपुण, बुद्धिमान्, समाधान करनेवाला, धार्मिक, राजा में प्रेम करनेवाला, सत्यासत्य का भेद समझनेवाला, क्षमावान्, निष्पक्षपाती, क्रोधरहित, शान्त और अनुद्धत होना चाहिए।

सभासद्—बृहस्पति के मतानुसार सभासद् अथवा दरबारियों को स्थिर बुद्धिवाला, प्रमादशून्य, आलस्यहीन और धैर्यशील, कोमल, दयालु, नम्र, पक्षपातहीन, चतुर तथा राजनीति और वार्तालाप करने में निपुण होना चाहिए।

नाटकों में भाग लेनेवाले पुरुष-पात्रों के निम्न प्रकार से विभाग किये जाते हैं—

(१) उत्तम (२) मध्यम और (३) निकृष्ट। पहले वर्ग में जितेन्द्रिय, कलाओं में निपुण, इतिहास तथा अन्य शास्त्रों में पारङ्गत, विद्वान्, नम्र, ईर्ष्यारहित, मनुष्य-स्वभाव परखने की शक्ति रखनेवाले और धर्माधर्म का ज्ञान रखनेवाले पुरुष-पात्र का समावेश है। व्यवहार कार्य के निपुण, भिन्न भिन्न कलाओं का ज्ञाता और मध्यम प्रकार के गुणों से युक्त पात्र की गणना दूसरे वर्ग में है। तीसरे वर्ग में जङ्गली, दुष्ट, निर्बल, सत्वहीन, मूर्ख, क्रोधी, कृतघ्नी, चञ्चल, पापी, व्यभिचारी, कलहप्रिय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोर, खूनी और दूसरे लोगों की मर्यादा तथा पदवी न समझ सकने वाले पात्र गिने जाते हैं।

कितने ही लोगों का मत है कि राजा, गन्धर्व, स्वर्ग में सुख से रहनेवाले, महामुनि, वासुकि (सर्प-राज), देवता और विद्वान् पहले वर्ग में हैं। किन्नर, राक्षस, यक्ष, वैताल, गण, भक्त, ब्राह्मण, दरबारी, अमात्य, प्रतिहारी, सूत्रधार, पारपद, विदूषक, पीठमर्द धर्माचार्य, मन्त्री, व्यापारी और व्याख्यान-दाता दूसरे वर्ग में गिने जाते हैं। तीसरे निकृष्ट वर्ग में शूद्र, पिशाच, कापालिक, चित्रकार, शिल्पी, दिगम्बर, वैद्य, क्षपणक (बौद्ध अथवा जैन भिक्षु), पतित, ज्योतिषी, नर्तक, प्रक्कास (निषाद पिता और शूद्र माता से उत्पन्न पुत्र), पुलिन्दक (म्लेच्छ), नट (पतित क्षत्रिय-पुत्र), सेवक, हजूरी, धूर्त, खूनी, परावलम्बी और दास की गणना है।

नट—नट अथवा सूत्रधार वेश-भूषा, गम्भीरता और उदारता में राजा से मिलता-जुलता होना चाहिए। उन दोनों की सज-धज, रीति-भाँति और बर्ताव भी एक सरीखा होना चाहिए। कारण, राज्य में जो स्थान राजा का है वही नाट्यशाला में नट का है। नट की स्त्री—सहधर्मिणी—नटी है। नाटक-मण्डली के प्रत्येक पात्र का रूप, वेश और कर्तव्य यथावत् अर्थात् अभिनीत पुरुष के अनुकूल होना चाहिए।

सूत्रधार—सूत्रधार अर्थात् नियामक को नाटक के नियम तथा संस्कृत-भाषा जाननेवाला और सङ्गीत-कला-विशारद होना चाहिए। जिसमें वह प्रसङ्ग के अनुरूप गायन चुन कर काम में ला सके। उसे सङ्गीत के स्वर आदि जाननेवाला तथा वाद्य के परखने और स्वयं बजा सकनेवाला होना चाहिए। उसे चालाक, नीतिशास्त्र, काव्य और कलाओं में निपुण, पात्रों का शृङ्गार करना जाननेवाला, भिन्न भिन्न दृश्यों का निर्माता, पिङ्गल, ज्योतिष और भूगोल-शास्त्र जाननेवाला, राज्य-वंशावली, भिन्न भिन्न प्रजा की रीति-रवाज तथा सभी मनुष्यों के स्वभाव का ज्ञाता, विचारशील और विनोदी स्वभाव का होना चाहिए। उसमें अनेक प्रकार के शास्त्रों का ज्ञान तथा उपयुक्त समय और स्थल पर उनका उपयोग करने का ज्ञान भी होना चाहिए। उसे उपदेशक, चतुर, बुद्धिमान्, धैर्यवान्, उदार, सत्यवादी, दृढ़, पवित्र, स्वस्थ, नम्र, क्षमावान्, मिताहारी, प्रियवादी और दयालु होना चाहिए। उसमें साधारण मनुष्यों के कोई दोष नहीं होना चाहिए। रत्नावली के कर्ता के मतानुसार तो सूत्रधार को मध्यम प्रकार के सङ्गीत में नान्दी-पाठ करके ही चला जाना चाहिए।

पारपद—पारपद में सूत्रधार के ही गुण का थोड़े-बहुत अंश में समावेश होना चाहिए। उसे मध्यम प्रकृति का होना चाहिए।

सेवक—सेवक को वेष-परिधान में कुशल, प्रियवादी, दयालु, कवित्व-शक्तिशाली, वादाविवाद करने में निपुण, वक्ता और बुद्धिमान् होना चाहिए। श्रीमान् और विलासी लोग सेवक को अपने पास रखते हैं। सेवक का मुख्य आधार अपने स्वामी पर रहता है और स्वामी से उसका गाढ़ सम्बन्ध रहता है। वह गृह-शिक्षक और विनोदी मित्र का काम देता है।

शकार—शकार शास्त्रार्थ, भिन्न-भिन्न लोगों की रीति-भाँति और स्वभाव जाननेवाला, उज्ज्वल वस्त्राभूषण धारण करनेवाला, बिना कारण क्रोध करनेवाला, निकृष्ट चरित्र-वाला और मागधी भाषा बोलनेवाला होना चाहिए।

विदूषक—विदूषक ब्राह्मण जाति का, छोटे क़द का, विरूप अङ्गवाला, बाँकी-टेढ़ी चालवाला, पीली आँखवाला, कुबड़ा और दाँत बाहर निकले हुए होना चाहिए। योरोपी नाट्यशालाओं में जो बफ़ून (Baffoon अर्थात् भांड़) का पार्ट होता है वह विदूषक से मिलता-जुलता है। विदूषक सर्वदा ब्राह्मण-जाति का होता है और उसका दरजा राजा या सरदारों के नौकर के समान नहीं होता, बल्कि कुछ उतरती श्रेणी के मित्र के समान होता है।

खेट—खेट को कुरूप, अधिक बोलनेवाला, इत्र आदि सुगन्धित पदार्थों का शौक़ीन, ललित कला-निपुण और लोगों की योग्यता, पदवी तथा श्रेणी के अनुसार उन्हें मान देनेवाला होना चाहिए।

पीठमर्द—पीठमर्द नायक का सहायक मित्र और मुख्य नाटक-विषय तथा गौड़ विषय में उप-नायक का कार्य करने-वाला होना चाहिए।

प्रतिनायक—प्रतिनायक, नायक का प्रतिस्पर्धी और नायक से बिलकुल विरुद्ध प्रकृतिवाला होना चाहिए।

(गुजराती 'रङ्गभूमि' से) प्रभुनारायण त्रिपाठी "सुशील"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

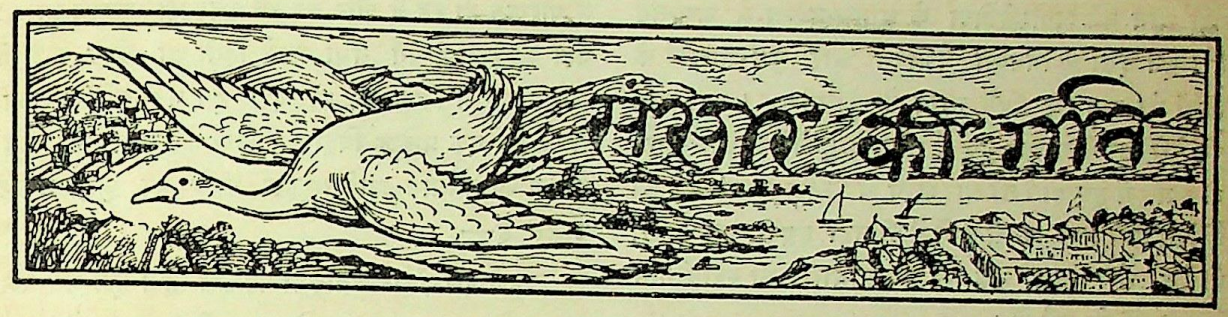

१—योरप में स्वाधीनता।

इटली के वर्तमान सर्वे सर्वा मुसोलिनी ने प्रश्न किया है कि क्या लोग स्वाधीनता से ऊब गये हैं। ऐसे ही व्यक्ति के सम्बन्ध में इँग्लेंड के समाचारपत्रों के दल-विशेष का एक प्रसिद्ध लेखक कहता है कि 'याद रक्खो, इसी मुसोलिनी ने बोल्शेवियों से योरप की रक्षा की है।' यह बात लिखते हुए इस लेखक ने इस बात की परवा नहीं की कि हमारे ऐसा लिख देने से मुसोलिनी की अन्याय-पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय धींगाधींगी का समर्थन हो जायगा। ऐसे ही लिक्खाड़ों को देख कर लार्ड हुग सेसिल को 'निन्द्य सम्पादन-कला का नारकीय पराभव' कहना पड़ा है।

मुसोलिनी का यह प्रश्न साधारण प्रश्न नहीं है। वास्तव में यह प्रश्न योरप के वर्तमान राष्ट्रों से पूछा जा सकता है। यह हँसकर टाल देने या उपेक्षा के योग्य नहीं है, क्योंकि इसका सम्बन्ध संसार के वर्तमान असन्तोष और दुरवस्था से है। अतएव इसका उत्तर नकार में न देकर कुछ वास्तविक बातें बतलानी होंगी। यह दिखलाना होगा कि योरप में स्वाधीनता का गला आज-कल कैसे दबोचा जा रहा है।

पहले इटली को ही लीजिए। मेज़िनी, गेरीबाल्डी की इटली, जो राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की ग़त शताब्दी के पिछले अर्द्धभाग में अखाड़ा बन गई थी, आज प्रसन्नता या आलस्यवश मुसोलिनी और उसके तीन लाख काली-कुर्तीवालों को गले लगाये है, जो अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए एक-मात्र पशु-बल को ही श्रेठ समझते हैं। जिस फ्रांस ने सर्व-प्रथम 'स्वाधीनता', 'समता' और 'भातृत्व' की घोषणा की थी उसके वे पुनीत सिद्धान्त आज कहाँ हैं? क्षणिक सन्धि के इधर उसने अपने जो हथकण्डे दिखाये हैं, क्या वे प्रजातन्त्र फ्रांस के अनुरूप हैं? रूर की नीति का देश के अधिकांश ने समर्थन किया था। परन्तु अभी फ्रांस में ऐसे लोग हैं जो सत्य के पक्ष का समर्थन करते हैं। नहीं तो अब तक वहाँ भी मुसोलिनी के प्रति-रूप की दुन्दुभी बज जाती।

स्पेन की ओर दृष्टिपात करने से वहाँ जनरल प्रिमोडी रिवेरा को ही सर्वे सर्वा बने देखते हैं। इस समय स्पेन में इन्हीं के जङ्गी शासन का बोलबाला है। पार्लियामेंट, यहाँ तक कि बादशाह की भी कुछ नहीं चलती। घूँस-लोलुप उच्चाधिकारियों, स्थानिक अव्यवस्थित सरकारी संस्थाओं, पादड़ियों और परम्पराओं के बन्धनों से जड़ीभूत राजा की निश्चलता ने स्पेन में वह स्थिति पैदा कर दी जिससे आज रिवेरा महोदय वहाँ शान्ति और व्यवस्था के ठेकेदार बन बैठे हैं।

इधर इटली-राज्य के समीप पुराने सर्बिया और वर्तमान जुगोस्लेविया के सर्ब, क्रोट, स्लेवेन आदि भिन्न भिन्न जाति के लोग उसके प्रधान मन्त्री के शासन से त्रस्त हो रहे हैं। प्रधान मन्त्री पैशिच वहाँ पूर्वी सुलतानों के रूप में सैनिक-बल पर देश के भाग्य-विधाता बन गये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। क्रोट-प्रजा के लोक-प्रिय नेता रेडिच को देश छोड़ कर इँग्लैंड भाग जाना पड़ा है। जुगोस्लेविया के अन्तर्गत क्रोटिया, अधिकांश डलमेशिया और बोस्निया-हर्ज़ेगोविना, सम्पूर्ण मांटीनीग्रो और सर्बी मेसीडोनिया का एक बड़ा भाग नये जुगोस्लेविया के शासन-प्रबन्ध से असन्तुष्ट है। इन देशों के निवासी हैप्सबर्ग और तुर्क-शासकों के दिनों को याद कर अपने भाग्य को कोसते हैं। यहाँ प्रजा पर ऐसे क्रूर अत्याचार हुए हैं जो यदि तुर्कों या आस्ट्रियनों के समय में हुए होते तो सारे योरप में 'क़तल आम' कह कर घोषित किये जाते। इन्हीं देशों में ही नहीं, हङ्गरी, रूमानिया, पोलैंड और रूस तक में सर्व-साधारण की स्वाधीनता अपहृत सी हो गई है।

योरप की यह परिस्थिति देख कर उन्मत्त मुसोलिनी के उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर भले प्रकार दिया जा सकता है।

स्वाधीनता का अर्थ क़ानून के अनुसार रहना है, पर किसी की अधीनता में नहीं। वह क़ानून जनता के अधिकांश को स्वीकृत हो या उसके प्रतिनिधियों-द्वारा निर्मित हुआ हो और जब आवश्यकता हो तब परिवर्तित भी हो सके। ऐसे ही क़ानून की अधीनता में रहना वास्तव में स्वाधीन जीवन व्यतीत करना माना जा सकता है। इसके विपरीत यदि जनता पर बाहर का क़ानून लादा जाय या शासकवर्ग स्वेच्छा से गढ़ कर उसके द्वारा उस पर शासन करें और जनता उसे स्वीकार न करे तो वह परतन्त्रता का जीवन कहलायगा। इस दृष्टि से आज योरप की स्वाधीनता ख़तरे में है। और इस परिस्थिति का दायित्व योरप के उन लोगों पर है जो अपने आप इसके सरपरस्त बने हुए हैं। इन्हीं की अवहेलना से आज योरप में स्वाधीनता की छीछालेदर हो रही है। नहीं तो आज पूर्वोक्त व्यङ्ग्य प्रश्न करने का साहस मुसोलिनी को कदापि न पड़ता।

२—मध्य-योरप के स्वतन्त्र राज्य।

महायुद्ध के कारण मध्य तथा दक्षिण-पूर्वी योरप का नक़शा ही बदल गया है। योरप के इस भू-भाग में जहाँ पहले कुल छः राज्य थे, वहाँ अब ९ राज्य हो गये हैं! इन राज्यों की राजनैतिक स्थिति में बड़े बड़े परिवर्तन हुए हैं। परन्तु इस समय इनमें भूमि-सम्बन्धी क़ानूनों में जो फेर-फार हो रहे हैं वे आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टि से क्रान्तिमूलक ही कहे जा सकते हैं। इनमें स्लाव जातीय राज्यों में तो बोलशेवियों जैसे सिद्धान्त ही कार्य में परिणत हो रहे हैं और वह भी सरकारी क़ानून-द्वारा। वहाँ के भूस्वामी-वर्ग तथा उसके हितों का लोप बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से किया जा रहा है। इन नव-निर्मित राज्यों में से हम एक प्रसिद्ध विद्वान् के लेख के आधार पर, यहाँ प्रत्येक की वर्तमान क्रान्तिमूलक नीति पर कुछ प्रकाश डालते हैं—

पहले हम ज़ेचो-स्लेवेकिया को लेते हैं। इस नये प्रजातन्त्र की रचना पुराने आस्ट्रिया-हङ्गरी-साम्राज्य के भाग-विशेष से हुई है। यह अपने राज्य की २८. २ प्रतिशत भूमि ज़ब्त करने को उद्यत है। इस योजना से १७३० भूस्वामियों की रियासतें छिन जायँगी। ये भूस्वामी बोहेमिया, मोरेविया, सिलेशिया, स्लोवेकिया और कार्पेथियन प्रान्तों में निवास करते हैं। यह नई योजना वहाँ के निवासी आस्ट्रियाई जर्मन-जाति के भूस्वामियों को अधिकार-भ्रष्ट करने के लिए उपयोग में लाई जा रही है। उनसे भूमि लेकर वह ज़ेच तथा स्लाव लोगों को बाँटी जा रही है, क्योंकि यही लोग वहाँ के मूल-निवासी हैं। इसके सिवा प्रजातन्त्र सरकार ने वहाँ की हज़ारों बीघे ज़मीन को गोचर-भूमि तथा जङ्गल घोषित कर दिया है और उसे सरकारी बना डाला है। इस योजना के फलस्वरूप प्रायः सभी जर्मन-भूस्वामी बड़ी कठिनाई में पड़ गये हैं।

मध्य-योरप के तीन राज्यों का एक सङ्घ सङ्गठित हुआ है। इसे लघु मित्र-त्रय कहते हैं। ज़ेचोस्लोवेकिया, रूमानिया और जुगोस्लेविया ही ये मित्र-त्रय हैं और एक नये सन्धि-द्वारा इस राजनैतिक सङ्घ में शामिल हुए हैं। इन तीनों राज्यों में पूर्ण मित्रता है। अतएव ज़ेचो-स्लोवेकिया की उपर्युक्त क्रान्तिमूलक योजना जैसी भूमि-सम्बन्धी नीति इन मित्र-राज्यों में भी ग्रहण की गई है।

सीबेनबर्गेन तथा बनात नामक दो प्रान्त आस्ट्रो-हङ्गरी के पुराने राज्य से निकाल कर रूमानिया को दे दिये गये हैं। इन दोनों प्रान्तों में आस्ट्रियाई जर्मन अधिक संख्या में बसते हैं। अतएव रूमानिया में इन प्रान्तों की ६८३५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रियासतें सन् १९२३ के नवम्बर तक ज़ब्त की जा चुकी हैं। इनका विभाजन धीरे धीरे सर्व-साधारण में हो रहा है। कृषि-भूमि के सिवा इसमें गोचर भूमि, जङ्गल आदि भी शामिल हैं। युद्ध के पूर्व बनात-प्रान्त योरप में अन्न का भाण्डार गिना जाता था। परन्तु राज्य की वर्तमान भूमि-सम्बन्धी नीति के कारण उसी प्रान्त की अन्न की पैदावार इस समय बुरी दशा में है। हज़ारों बीघा ज़मीन यों ही पड़ी है, जुताई-बुआई कुछ नहीं होती। आस्ट्रियाई जर्मन ज़मींदारों से भूमि लेकर जिन लोगों को वह दी जा रही है वे धनहीन हैं। खेती का साज-सामान उनके पास नहीं है। अतएव वहाँ कृषि-कार्य अवनति की दशा में हो गया है।

रूमानिया की भाँति जुगोस्लेविया के राज्य का भी क्षेत्रफल बढ़ गया है। यह पुराने सर्बिया राज्य का विकसित रूप है। भूमि-सम्बन्धी जो नये क़ानून बनाये गये हैं वे यहाँ भी आस्ट्रियाई जर्मनों के विरुद्ध पड़ते हैं। परन्तु इससे एक बात यह भी हुई है कि जो स्लाव अभी तक भू-स्वामी नहीं थे वे अब भू-स्वामी बनते जाते हैं। इस प्रकार भूमि विजातीय ज़मींदारों के चंगुल से निकल कर सर्वसाधारण के अधिकार में आ रही है। पूर्वावस्था में सर्व-साधारण स्लाव लोग भूम्यधिकार से वञ्चित थे। नये विधान के निर्माण से उनकी यह असुविधा दूर हो रही है। इसके अनुसार भूमि चार वर्ष के लिए कृषकों को दे दी गई हैं। ये लोग जो भूमिकर राज्य को देते हैं उसमें से चौथाई राज्य ले लेता है। शेष तीन-चौथाई उसके भूत-पूर्व भूस्वामियों को मिलता है। इस प्रकार ये अप्रत्यक्ष रूप से अपनी ज़मींदारियों के स्वामी बने हुए हैं, तो भी उन्हें उसकी आय से विशेष लाभ नहीं है। नये करों के लगा दिये जाने से इनकी सारी आय सरकारी ख़ज़ाने को खिँच जाती है। एक जर्मन विद्वान् का कहना है कि बाल्कन-प्रायद्वीप के भूस्वामियों की बड़ी बुरी दशा है, वे आर्थिक सङ्कट में पड़े हुए पिस रहे हैं। हाँ, कृषकों का भविष्य अवश्य आशाजनक प्रतीत होता है।

यदि इन राज्यों के साथ साथ पोलेण्ड के सम्बन्ध में भी कुछ उल्लेख कर दिया जाय तो अनुचित न होगा। युद्ध के फल-स्वरूप उसे भी स्वाधीनता प्राप्त हुई है। इसने अपने यहाँ प्रजातन्त्र की स्थापना की है। इसकी भी नीति उपर्युक्त राज्यों के समान है। इसकी पार्लियामेंट में भी भूमि-विभाजन-सम्बन्धी नये क़ानून पेश हैं और उन पर विचार हो रहा है। परन्तु पोलेंड बड़ी बड़ी रियासतों को तोड़ना नहीं चाहता। इस सम्बन्ध में उसका पूर्वोक्त राज्यों की व्यवस्था से अन्तर पड़ता है। परन्तु इसके साथ ही वह सर्वसाधारण लोगों में भूमि का विभाजन कर उन्हें भी भूम्यधिकार देना चाहता है। और ये दोनों उद्देश वह वहाँ के अल्पसंख्यक जर्मनों के अधिकार छीन कर पूर्ण करेगा। सन् १७७२ के लगभग जब रूस, प्रूसिया और आस्ट्रिया ने पोलेंड को आपस में बाँट लिया था तब उन्होंने स्वेच्छा से अपने अपने हिस्से की भूमि अपने आदमियों में बाँट दी थी। आज स्वाधीन होने पर वही पोलेंड तत्कालीन नवनिर्मित भूस्वामियों के वंशधरों को अधिकार-च्युत कर रहा है। यह बात बहुत कुछ स्वाभाविक भी है।

उपर्युक्त राज्यों की भूमि-सम्बन्धी नीति रूस के बोलशेवियों की नीति से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। और सर्वथा क्रान्तिमूलक है। उसके पूर्णरूप से कार्य में परिणत हो जाने पर उपर्युक्त राज्यों के समाज में वस्तुतः बहुत कुछ वैसा ही परिवर्तन होगा जैसा कि इस समय रूस में देख पड़ता है।

समीक्षक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

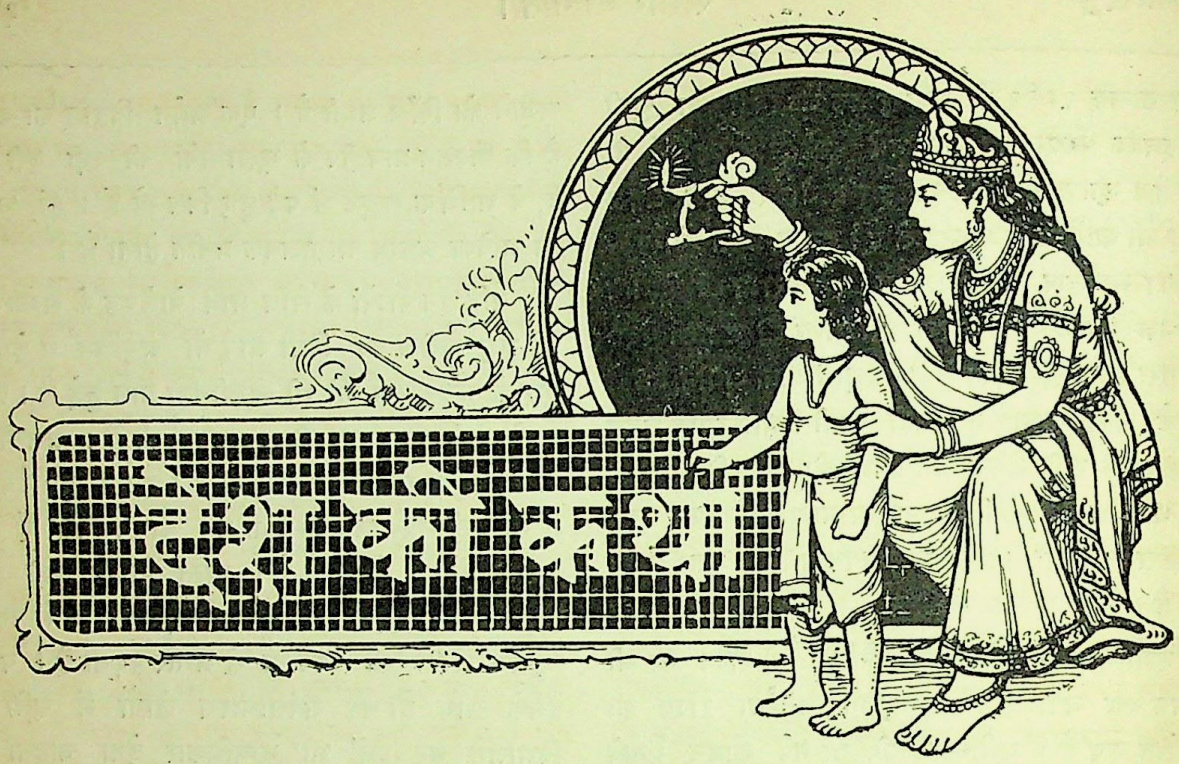

१—बेकारी और विज्ञान।

आज-कल संसार भर के राजनीतिज्ञों और अर्थ-शास्त्रविदों के सामने एक बड़ा जटिल प्रश्न उपस्थित हो रहा है। वह यह है कि दिन प्रति दिन उत्तरोत्तर बढ़नेवाली बेकारी किस प्रकार दूर की जाय। प्रत्येक देश में साधारण लोगों को जीवन-निर्वाह के लिए बड़ा कष्ट उठाना पड़ रहा है। यद्यपि विभिन्न देशों में इन कष्टों के रूप भिन्न भिन्न हैं, तथापि बेकारी के लक्षण सर्वत्र प्रकट दिखाई देते हैं। भारतवर्ष जैसे कङ्गाल देश का तो कहना ही क्या है। यहाँ तो शिक्षित-अशिक्षित सभी की दशा शोचनीय है। लोग काम करने को तैयार हैं, किन्तु यह नहीं सूझता कि कौन सा काम किया जाय। इसी कारण देश की सम्मिलित उपज से उसका सम्मिलित व्यय कहीं अधिक है। जो देश पैदा कम करता है और ख़र्च अधिक उसका दरिद्र होना स्वयं सिद्ध है। आयात-निर्यात के परिमाण से भी देश की आर्थिक अवस्था का पता चलता है। परन्तु यह कसौटी सर्वदा सच्ची नहीं उतरती। देश के वास्तविक अभ्युदय का तो केवल एक मार्ग है कि उसके निर्यात के बढ़ाने का उपाय किया जाय, अर्थात् वह दूसरे देशों को दे अधिक और ले कम। केवल एक इसी युक्ति से धन-सञ्चय हो सकता है। इसकी सिद्धि के दो उपाय हैं, १—यह कि व्यय को कम करने की चेष्टा की जाय और २—यह कि उपज—दोनों कृषि-सम्बन्धी और औद्योगिक—बढ़ाने का पूर्ण प्रयत्न किया जाय। महात्मा गांधी ने खद्दर-प्रचार का जो आन्दोलन उठाया है उसके कारण भी यही हैं। किन्तु कहना न होगा कि अकेला खद्दर ही हमको अपने गन्तव्य स्थान तक नहीं पहुँचा सकता। इसलिए देखना यह है कि हम किस प्रकार और विशेषकर आधुनिक विज्ञान की सहायता से अपनी कृषि, औद्योगिक धन्धों तथा वाणिज्य को कहाँ तक उन्नत कर सकते हैं। यदि इसमें सफल होने की कुछ भी आशा हो तो हमें विज्ञान को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए, क्योंकि इससे हमारे दोनों सङ्कट दूर हो सकते हैं १—बेकारी और तज्जनित बुराइयाँ और २—चिरकालीन दारिद्र्य।

इसी विषय की आलोचना करते हुए फ़ारवर्ड में प्रिंसिपल जे० सी० बोस ने कुछ उपाय सुझाये हैं जो सर्वथा विचारणीय हैं। अन्य देशों के जीवन-काल में भी ऐसी विकट समस्यायें उपस्थित हुई हैं। जो इँग्लेंड आज औद्योगिक और व्यापारिक दृष्टि से संसार के सभी देशों में अग्रगण्य हो रहा है वह योंही एक दिन में उन्नति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिखर पर नहीं पहुँच गया है। उसने चिरकाल में क्रमशः अपने उद्योग-धन्धों का विकास किया है। किन्तु उसकी उन्नति का मूलमन्त्र है उसकी शिक्षा-पद्धति का संशोधन। औद्योगिक धन्धों के विकास के लिए कुशल और उत्साही मज़दूरों की तो आवश्यकता है ही, किन्तु केवल उनसे काम नहीं चल सकता। सबसे बड़ी आवश्यकता है औद्योगिक मैनेजरों और नेताओं की। जब तक इन लोगों की शिक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध नहीं किया जाता तब तक देश कदापि अन्य देशों के साथ व्यावसायिक और औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा तथा प्रतिद्वन्द्विता में नहीं टिक सकता। भारतवर्ष में इस समय न तो कुशल मज़दूर हैं और न अनुभवी मैनेजर। इसलिए जहाँ म्युनिसिपलटियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का एक यह कर्त्तव्य है कि वे अपने आश्रित श्रमजीवियों की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध करें, जिससे प्रत्येक श्रमजीवी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार किसी न किसी काम को सीख ले, वहाँ शायद उनका यह एक और भी अधिक आवश्यक कर्त्तव्य है कि उच्चतर औद्योगिक शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध तुरन्त किया जाय, जिससे भावी श्रमजीवियों में से सुयोग्य नेता तैयार हो सकें। इसमें सन्देह नहीं कि वही लोग यह शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे जिनमें जन्म से ही औद्योगिक योग्यता का अङ्कुर विद्यमान होगा। वर्तमान सरकार उच्चतर शिक्षा के नाम से हमारे देश में जो व्यय करती है उससे हमें विशेष लाभ नहीं। क्योंकि कालेजों में विज्ञान की जो शिक्षा दी जाती है वह कभी पुस्तकों के बाहर नहीं निकल सकती। हमारे बी० एस-सी० और एम० एस-सी० उसको कार्यरूप में परिणत नहीं कर सकते। हम तो यहाँ तक कहने को तैयार हैं कि भारतवर्ष में आज-कल जो शिक्षा-प्रणाली जारी है वह एक-दम प्राणघातक है। यदि भारतवासी शीघ्र ही न चेते तो उनका नाश अवश्यम्भावी है, क्योंकि एक-मात्र साहित्यिक शिक्षा से कभी किसी देश का भला नहीं हुआ और न हो सकता है। क्या विज्ञान की सहायता से हमारी कृषि, उद्योग, शिल्प, वाणिज्य, स्वास्थ्य आदि में कुछ भी उन्नति नहीं हो सकती? किन्तु भ्रामक शिक्षा-पद्धति के प्रसाद से हम कोई उन्नति नहीं कर सकते। उस ओर हमारा ध्यान नहीं है।

किन्तु अधिकारी-वर्ग की बात जाने दीजिए। उनका तो एक-मात्र उत्तर हो सकता है अर्थाभाव। इसलिए प्रश्न केवल यह है कि क्या हम लोग मिल-जुल कर सहयोग और सहकारिता के द्वारा कुछ नहीं कर सकते। यदि बूँद बूँद करने से घड़ा भर सकता है तो हमारे सम्मिलित उद्योग से हमारी अत्यावश्यक आवश्यकतायें अवश्य पूरी हो जायँगी। अस्तु, यह काम हमको अपने व्यक्तिगत बल से ही करना होगा। और हर्ष का विषय है कि उदार महानुभावों ने यह काम शुरू भी कर दिया है। बङ्गलोर की टाटा की वैज्ञानिक संस्था और पूसा में एक अमेरिकन करोड़ाधीश की सहायता से सरकार-द्वारा निर्मित कृषि-कालेज इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। जो लोग स्वयं अपने पैरों नहीं खड़े हो सकते और जिनमें परस्पर सहयोग और विश्वास का अभाव है उनको उन्नति की आशा भी नहीं करना चाहिए। अतएव सरकार की आशा छोड़ कर देश के प्रमुख व्यक्तियों का यह सबसे प्रधान कर्त्तव्य है। उन्हें सम्मिलित परामर्श से यह स्थिर कर लेना आवश्यक है कि वे किस प्रकार विज्ञान के द्वारा देश के औद्योगिक विकास में सहायक हो सकते हैं। कार्य-क्षेत्र तो इस समय बहुत ही विस्तीर्ण है। उदाहरण के लिए कुछ कार्य नीचे दिये जाते हैं—

१—वैज्ञानिक कृषि-पद्धति (भूमियों और खादों का विश्लेषण, बीज, रेशे और पौधों की बीमारियों का सूक्ष्म निरीक्षण, पौधों के खाद्य पदार्थों का अध्ययन आदि)

२—नशीली वस्तुओं की वैज्ञानिक ढङ्ग से कृषि करना तथा पदार्थ-विज्ञान, प्राणिशास्त्र और कीटाणु-शास्त्र के द्वारा जङ्गल और कृषि-सम्बन्धी पैदावारों से अधिक से अधिक लाभ उठाना।

३—वैज्ञानिक पद्धति से पशुओं के चर्म को साफ़ करके उत्तम चमड़ा तैयार करना और उसके लिए वानस्पतिक सामग्री प्रस्तुत करना।

४—सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नति करना एवं पेय और खाद्य वस्तुओं के विश्लेषण-द्वारा रोगों के निवारण का उद्योग करना।

५—खून, पेशाब आदि की परीक्षा, 'फ़र्स्ट ऐड' शिक्षा के द्वारा सार्वजनिक स्वास्थ्य की वृद्धि करना।

६—खनिज पदार्थों के विश्लेषण और कच्चे माल को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध करके खनिज उद्योग और व्यवसाय की उन्नति करना।

७—वैज्ञानिक पद्धति से बिना चर्बी का नहाने और धोने का शुद्ध साबुन तैयार करना।

८—देशी जड़ी-बूटियों और पौधों की जैसे ब्लेडोना, सिनकोना, जिससे कुनैन बनती है, नक्सवोमीका आदि की जाँच और उपयोगी ओषधियों का निर्माण।

इसी प्रकार हम राष्ट्र-निर्माण के अन्य विषयों को भी खोज सकते हैं। क्योंकि राष्ट्र-निर्माण का प्रश्न एक-दो का प्रश्न नहीं है, बरन अधिक से अधिक मनुष्यों को अधिक से अधिक लाभ का समावेश उसमें होता है, इसलिए अब भारतवासियों को दोनों प्रकार की वैज्ञानिक शिक्षा—सैद्धान्तिक और व्यावहारिक की परमावश्यकता है। इसके बिना राष्ट्र का जीवन कठिन है। किसान लोगों को बोल-चाल की भाषा में वैज्ञानिक कृषि-पद्धति के मोटे-मोटे सिद्धान्तों के जानने की आवश्यकता है और होनहार व्यक्तियों को उच्चतर औद्योगिक शिक्षा की, जिससे वे श्रमजीवियों का सङ्गठन और सञ्चालन करके देश की उपज और सम्पत्ति को बढ़ा सकें।

द्विरेफ

२—देशी जड़ी-बूटियाँ।

हमारे देश में विलायती ओषधियों का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। किन्तु कुछ दिनों से देशी ओषधियों के पक्ष में एक लहर सी उठी है। यहाँ तक कि बड़ी और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं में भी इस विषय की आलोचना हुई है। प्रमाण में कहा गया है कि एक तो ये सस्ती हैं, दूसरे चिरकाल से लोग इनके अभ्यस्त हो रहे हैं और तीसरे ये इस देश के जल-वायु के भी अनुकूल हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि देश में पुनः देशी ओषधियों का व्यापक प्रचार हो जाय जिससे विदेशी ओषधियों का मूलोच्छेदन नहीं, तो कम से कम कुछ प्रचार ही कम हो जाय तो प्रत्येक भारतवासी इसे गर्व का विषय समझेगा। किन्तु प्रश्न यह है कि यह किस प्रकार सम्भव है। यह सच है कि कविराज, वैद्यराज और हकीम सैकड़ों वर्षों से जिन ओषधियों का प्रयोग करते आ रहे हैं उनमें से निस्सन्देह बहुत सी ऐसी हैं जो अत्यन्त लाभदायक हैं। किन्तु यह भी सच है कि उनकी कुछ ओषधियों में रोग-निवारण और स्वास्थ्य-लाभ की कोई शक्ति भी नहीं है। वे केवल इसलिए दी जाती हैं कि किसी प्राचीन पुस्तक में उनका उल्लेख हुआ है। पर वैज्ञानिक मस्तिष्क जब तक स्वयं किसी बात का अनुभव नहीं कर लेता तब तक वह कदापि उस तथ्य को स्वीकार नहीं कर सकता, चाहे प्रमाण कितना ही प्राचीन और उच्च क्यों न समझा जाता हो। उदाहरण के लिए अभ्रक-भस्म बहुमूत्र रोग की दवा बताई जाती है, किन्तु वह रोग नहीं, केवल लक्षण-मात्र है। वैज्ञानिक तो यह पूछते हैं कि शरीर को सहजावस्था में लाने में उसका क्या प्रभाव पड़ता है। इससे हमारा यह मतलब नहीं कि यह औषध व्यर्थ है, बरन यह कि सबसे पहले देशी जड़ी-बूटियों की वैज्ञानिक पद्धति के शोध और विश्लेषण की आवश्यकता है। रोग-निवारण के कौन कौन से मुख्य सिद्धान्त हैं, जड़ी-बूटियों का शरीर के विभिन्न अङ्गों पर क्या प्रभाव पड़ता है, और उससे स्वास्थ्य-लाभ कैसे होता है, इन सब बातों को पहले पशुओं के शरीरों पर प्रयोग करके ढूँढ़ निकालना होगा।

किन्तु यह कार्य बहुत ही बृहत् है। इसके लिए अदम्य उत्साह, वैज्ञानिक सत्यनिष्ठा, हज़ारों अनुभवी डाक्टरों और वैद्यों तथा सैकड़ों वर्षों के अथक परिश्रम की आवश्यकता है। इन लोगों को निम्न-लिखित उद्देशों को सामने रखकर काम प्रारम्भ करना चाहिए—

१—जिससे हम देशी जड़ी-बूटियों का शोध करके और उनको उपयुक्त विधान से तैयार करके देशवासियों के रोगों का निवारण कर सकें, हमें ओषधियों के लिए परामुखपेक्षी न होना पड़े। देश में सैकड़ों ऐसी जड़ी-बूटियाँ उत्पन्न होती हैं जिनका महत्त्व देशी और विदेशी सभी चिकित्साविदों को मान्य है, इसी लिए देश के बाहर के चिकित्सालयों में भी इनका यथेष्ट प्रचार है। ऐसी अधिकांश जड़ी-बूटियाँ तो भारतवर्ष में ढेरों पैदा होती हैं, यही एकत्र करके कौड़ी-मोल विदेश भेज दी जाती हैं और यही वहाँ के कारख़ानों में साफ़ होकर यहाँ रुपयों और अशरफ़ियों के भाव बिकती हैं। कुछ जड़ियाँ ऐसी हैं जो पैरों तले रुदती रहती हैं, इनको कोई पूछनेवाला ही नहीं है। यदि इन सबका पूरा पूरा शोध कर लिया जाय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि यह मालूम हो जाय कि इनमें से कौन सी जड़ी-बूटियाँ बोई जा सकती हैं, तो किस भूमि, किस ऋतु में इनकी उपज हो सकती है, उपज हो सकती है तो उन के गुणों में कोई अन्तर तो नहीं आता, तो इसमें कोई संशय नहीं कि देश का असीम उपकार हो। इनके अतिरिक्त भारतवर्ष में कुछ ऐसी बहुमूल्य ओषधियाँ भी आ रही हैं जो यद्यपि हमारे यहाँ पैदा नहीं होतीं, तथापि यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उसी गुण की और वही प्रभाव रखनेवाली जड़ी-बूटियाँ प्रचुर परिमाण में यहाँ विद्यमान हैं, किन्तु प्रमादवश किसी का इतना साहस नहीं होता कि इनकी वैज्ञानिक ढङ्ग से खोज करे।

ध्यान में रखने योग्य दूसरी बात यह है कि आयुर्वैदिक और तिब्बी प्रमाणों के अनुसार कुछ ऐसी जड़ी-बूटियों की खोज की जाय जिनकी उपयोगिता पश्चिमी चिकित्साविद् भी स्वीकार करने लगें। यह काम पहले की अपेक्षा कठिनतर है। देश में प्रायः जितने प्रकार की जड़ी-बूटियाँ पैदा होती हैं, उनमें से प्रत्येक में किसी न किसी रोग के निवारण की शक्ति बतलाई जाती है। किन्तु न तो कभी इनकी परीक्षा ही की गई और न इनके लिए कोई प्राचीन प्रमाण ही मिलता है। कभी किसी को किसी जड़ी से थोड़ा-बहुत आराम मिल गया और बस तुरन्त उसने उस जड़ी में वह शक्ति प्रदान कर दी। सुनते-सुनाते दो-एक आदमी और उसकी पुष्टि करने लगे और इसी प्रथा के अनुसार वह थोड़े ही दिनों में किंवदन्ती बन जाती है। इससे हित के स्थान में सदैव अहित होने की ही अधिक सम्भावना रहती है। वैज्ञानिक पद्धतिवाले डाक्टर इसको कभी स्वीकार नहीं कर सकते। अतएव इस बृहत् कार्य को हाथ में लेने के पहले यह आवश्यक है कि अनुभवी और सुयोग्य वैद्यों तथा हकीमों के अनुभवों से पूरा पूरा लाभ उठाया जाय, और प्रत्येक जड़ी-बूटी के गुण-दोष का प्रत्यक्ष अनुभव किया जाय। सबसे पहले क्रमानुसार महत्त्वपूर्ण ओषधियों की परीक्षा करनी चाहिए।

तीसरी विचारणीय बात यह है कि इनके द्वारा ओषधियाँ ऐसी विधि से तैयार की जाय कि उनका मूल्य स्वल्प हो और वे सर्वसाधारण तक पहुँच सकें। इसके अतिरिक्त उन पर स्थानीय जलवायु और ऋतु-विशेष का भी कोई विशेष प्रभाव न पड़ना चाहिए। तभी ये दवायें प्रामाणिक रूप में देश में व्यापक रीति से फैल सकती हैं। ओषधियों के निर्माण में एक और गड़बड़ी होती है कि वैद्य और हकीम मनमाने तौर से दवाओं का मिश्रण किया करते हैं। इससे हित की अपेक्षा अहित ही अधिक होता है, और यदि कहीं भूल से किसी प्रभावशाली दवा की मात्रा बढ़ गई, तब तो बेचारे रोगी को प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। अतएव ओषधियों के निर्माण में पदार्थ-विज्ञान और प्राणि-शास्त्र के स्थूल नियमों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार की प्रामाणिक दवाओं का देश में व्यापक प्रचार हो सकता है और वे ही व्यावसायिक दृष्टि से सस्ती पड़ सकती हैं। सारांश यह कि प्रयोगशाला में वैज्ञानिक देख-रेख में ही ओषधियाँ तैयार होना चाहिए।

अन्त में यह कह देना भी आवश्यक है कि कुछ लोग आयुर्वैदिक, तिब्बी और ऐलोपेथिक पद्धतियों में एक मौलिक अन्तर मान बैठे हैं अर्थात् इनका कभी कोई सहयोग नहीं हो सकता। पर यथार्थ में बात ऐसी नहीं है। केवल संकुचित दृष्टिवाले ही अन्य पद्धतियों पर आक्षेप के लिए कोई न कोई कारण ढूँढ़ निकालते हैं। चिकित्सा-शास्त्र तो एक विज्ञान है। विज्ञान के अनुसार ही उसका शोध होना चाहिए। अतएव यदि अन्य पद्धतियों में कोई उत्तमता है, तो सहर्ष हमको अपनी पद्धति में उसको समावेश कर लेना चाहिए। जब इस प्रकार देशी चिकित्सा-प्रणाली सर्वथा वैज्ञानिक हो जायगी, तब केवल भारतवर्ष में ही क्या सारे संसार में उसका प्रचार हो सकता है क्योंकि अन्त में सत्य की विजय होती है।

द्विरेफ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परिचय

१—बाग़वान—अँगरेज़ी में रवीन्द्र बाबू की कुछ कविताओं का सङ्ग्रह गार्डनर के नाम से प्रकाशित हुआ है। यह बाग़वान उसी का हिन्दी-रूपान्तर है। रूपान्तरकार हिन्दी के चिर परिचित कवि पण्डित श्रीगिरिधर शर्मा हैं। प्रकाशक है श्रीविजय-धर्म-लक्ष्मी ज्ञान-मन्दिर, बेलनगञ्ज, आगरा। यह मन्दिर विजयधर्म सूरि महाराज की स्मृति में स्थापित हुआ है। लेखक ने यह आशा प्रकट की है कि इस ज्ञान-मन्दिर से और भी अच्छे अच्छे काम होंगे। जहाँ ज्ञान और लक्ष्मी दोनों विद्यमान हैं वहाँ ऐसी आशा करना सर्वथा उचित है।

अँगरेज़ी का गार्डनर गद्यात्मक है। परन्तु पण्डित गिरिधरजी शर्मा ने उसका अनुवाद पद्यों में किया है। पद्य अन्त्यानुप्रास-हीन हैं। एक नमूना देखिए—

साँझ का समय चला—
आरहा है आह कवे।
होते चले जा रहे हैं
तेरे भी सफ़ेद केश,
सुन रहा है क्या ? तेरे—
एकान्त चिन्तन बीच
आयुष्य के परिपूर्ण—
हुए बाद के संदेश।

सभी कवितायें इसी छन्द में लिखी गई हैं। भाषा खूब सरल है। जो लोग रवीन्द्र बाबू की कविताओं को बँगला में पढ़ चुके हैं उन्हें कदाचित् यह अनुवाद अधिक सरस प्रतीत न हो। तो भी यह निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि इसमें पण्डित गिरिधरशर्माजी ने सरल भाषा में रवीन्द्र बाबू के भावों को खूब स्पष्ट कर दिया है। अनुवाद में मूल की सरसता लाना कठिन है। फिर यह तो अनुवाद का अनुवाद है।

हिन्दी में अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं के अनुवाद से बड़ा लाभ है। इससे साहित्य में नये नये भावों का प्रचार होगा और भाषा में भी अधिक ग्राहिका-शक्ति आ जायगी। पण्डित गिरिधर शर्माजी ने कई अच्छी पुस्तकों का अनुवाद किया है। इसके लिए हिन्दी-भाषा-भाषी उनके कृतज्ञ होंगे।

२—उषा—यह होलकर-हिन्दी-ग्रन्थ-माला का १७ वाँ पुष्प है। यह एक गुजराती पुस्तक का अनुवाद है। इसके भी अनुवादक पण्डित गिरिधर शर्मा हैं। मध्य-भारत-हिन्दी-साहित्य-समिति, तुकोगंज, इन्दोर से यह प्रकाशित हुआ है। मूल्य २) है।

इसके मूल-लेखक श्रीयुत नान्हालाल दलपतराय हैं। इसके पहले इनका एक दूसरा ग्रन्थ—जयाजयन्त—भी पण्डित गिरिधर शर्माजी की कृपा से हिन्दी में अनुवादित हो चुका है। यह एक 'अनुपम कल्पनामय भावपूर्ण गद्य काव्य' कहा गया है। यह अत्युक्ति नहीं है। ग्रन्थ की समाप्ति में लेखक ने अपने भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

तो अब समाप्त ? परन्तु ये कथनी कभी समाप्त हुई है या समाप्त होवेगी ? कवि व्यतीत हो जायँ और कविता लुप्त हो जावे, रसिकता सूख जाय और विश्व सहरा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रण की भाँति, रस जलहीन हो जलने लगे, और, मनुष्यों के हृदय के मधुपात्र मधुहीन होकर बन्द हो जायँ तब कहीं यह कथनी समाप्त हो जाय तो, कौन जाने! इस नर-नारी की कथा की समाप्ति का अभी तो भय नहीं है। चन्द्रकला को ऐसी उषायें नित्य जगत के मुकुट पर उगेंगी और अमृत की वर्षायें करेंगी। उषा का रस गोत्र सदा अमर ही है।

३—पाञ्चाली-परिचय—रचयिता साहित्याचार्य श्री सदाशिव दीक्षित, सनातन-धर्म-कालेज, लाहौर। आप ही इसके प्रकाशक और विक्रेता हैं। मूल्य ॥) है।

यह एक खण्ड-काव्य है। कम से कम एक साहित्याचार्य की रचना होने और एक साहित्याचार्य को समर्पित किये जाने से इसे खण्ड-काव्य मान लेने में कोई सङ्कोच नहीं करेगा, चाहे इसमें कवित्व का सर्वथा अभाव हो। पहला पद्य देखिए—

कुन्देन्दुरम्यद्युतिअब्जहंसा
सद्रत्नसंशोभिशुभावतंसा।
अधान्तका जह्नुसुता विलासा
है भारती की किसको न आसा।

४—वीराङ्गना वीरा—यह ठाकुर भगवतसिंह विशारद की रचना है और ओसवाल प्रेस, २६ सीनागोग स्ट्रीट, कलकत्ता ने इसका प्रकाशन किया है। मूल्य ॥) है।

यह काव्याकाश का उज्ज्वल नक्षत्र बतलाया गया है। गुप्तजी की शैली का अनुकरण कर, उनके शब्दों और भावों को लेकर हिन्दी में एक नहीं, अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। परन्तु हमारी समझ में विशारदजी की यह रचना उन सबमें निकृष्ट है। अच्छा होता कि इस उज्ज्वल नक्षत्र की प्रभा को विशारदजी अपनी आलमारी में ही बन्द रखते।

५—श्रीकृष्ण-चरित्र—लोक-प्रिय ग्रन्थों के प्रकाशन में कलकत्ते के पुस्तक-प्रकाशक आर० एल० वर्मन एण्ड को० (३७१, अपर चितपुर रोड) की बड़ी प्रसिद्धि है। यह कम्पनी कई ग्रन्थमालायें निकाल रही है। उनमें से एक रमणी-ग्रन्थ-माला का परिचय सरस्वती में दिया जा चुका है। उक्त ग्रन्थमाला के सिवा एक और ग्रन्थ-माला का प्रकाशन हो रहा है। उसका नाम है आदर्श ग्रन्थ-माला। श्रीकृष्ण-चरित्र इसी ग्रन्थ-माला का पाँचवाँ ग्रन्थ है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण का 'सुविस्तृत जीवन-चरित्र' है, इसके लेखक पण्डित लक्ष्मण नारायण गर्दे हैं। पुस्तक ३२१ पृष्ठों में समाप्त हुई है। बड़ी सुन्दर छपी है। काग़ज़ बढ़िया है। सुन्दर रेशमी जिल्द बँधी है। इसमें रङ्गीन और सादे ३२ चित्र हैं। मूल्य ४॥) है। सादी जिल्द की किताब ४) में ही मिल जाती है।

गर्देजी ने यह ग्रन्थ मराठी श्रीकृष्ण-चरित्र तथा अन्य कई ग्रन्थों के भाव लेकर लिखा है और अच्छे ढङ्ग से लिखा है। आपकी शैली चित्ताकर्षक और भाषा सरल है। भगवान् श्रीकृष्ण के लोक-पावन चरित्र को यों ही सब पढ़ना चाहते हैं। उसमें मनोरञ्जकता, सरसता है ही। गर्देजी की विशेषता यह है कि उन्होंने इस चरित्र को बड़ी अच्छी भाषा में लिखा है।

६—सुभाषित-मञ्जूषा—यह एक संग्रह-ग्रन्थ है। इसमें संस्कृत, हिन्दी, फ़ारसी, उर्दू और अँगरेज़ी-साहित्य के पद्य-रत्न उद्धृत किये गये हैं। पितृभक्ति, परोपकार, सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निन्दा, सत्सङ्गति आदि विषयों पर प्रसिद्ध कवियों और महात्माओं के वचन सङ्कलित किये गये हैं। सभी विषय अच्छे हैं और वचन तो दिव्य हैं ही। संग्रह-कार चौधरी रामसिंहजी का परिश्रम स्तुत्य है। पुस्तक की छपाई साधारण और प्रेस की अशुद्धियाँ खूब हैं। यदि यह दोष न रहता तो पुस्तक की उपयोगिता में सन्देह नहीं। मूल्य १॥) है। पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर वैदिक पुस्तकालय-घण्डरा, पो० इन्दौर, ज़िला काँगड़ा।

७—विधवा—यह एक काव्य है और, जैसे पुस्तक के नाम से सूचित होता है, इसमें हिन्दू-विधवाओं का चित्र अङ्कित किया गया है। हिन्दू-विधवाओं के जीवन में पवित्रता और कठोरता का जैसा सम्मिलन हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं। यह चित्र ही करुणरसोत्पादक है और पण्डित राजाराम शुक्ल यह चित्र अङ्कित करने में सफल हुए हैं। पद्य-रचना सरस है और भाव सरल। मूल्य ॥) है। पता—मैनेजर, स्त्री-दर्पण, कानपुर।

८—वीरश्रेष्ठ सावरकर—अनुवादक, श्रीयुत सिद्धनाथ माधव लोंढे, प्रकाशक, 'प्रणवीर' पुस्तकमाला-कार्यालय, धनतोली, नागपुर है। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ११० और मूल्य ॥=) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त पुस्तकमाला की यह तीसरी पुस्तक है। यह मराठी की मूल-पुस्तक का अनुवाद है। महाराष्ट्र-देश के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता का इसमें चरित वर्णित है।

९—लोरी—यह एक छोटी सी कविता-पुस्तक है। इसमें छोटे छोटे बच्चों के पढ़ने योग्य ३३ कविताओं का संग्रह किया गया है। इन कविताओं की रचयित्री अजमेर की श्रीसावित्री पाठशाला की लेडी सुपरिन्टेन्डेण्ट श्रीमती रामप्यारी चन्द्रिका हैं। कविताओं के भाव अच्छे हैं, परन्तु भाषा निर्दोष नहीं है। यदि इसकी भाषा-सम्बन्धिनी त्रुटियाँ दूर हो जायँ तो यह बालकों और बालिकाओं के लिए अच्छी किताब हो। एक कविता का कुछ अंश देखिए—

सुन सुपुत्र यह बात हमारी।
जो है सबको ही हितकारी॥
पर अवगुण से आँख बचाना।
अपने अवगुण गिनते जाना॥
शत्रु मित्र जग में नहिं कोई।
जो तेरे चित में है सोई॥
सच्चे शत्रु मित्र का डेरा।
तेरे ही चित में है चेरा॥

मूल्य ।-) है। पता—आर्य-साहित्य-मण्डल, अजमेर।

१०—बूबी—इस पुस्तक की भाषा मराठी, आकार मध्यम, छपाई सुन्दर, पृष्ठ-संख्या १०४ और मूल्य ।॥) है। यह एक जर्मन-भाषा की एक पुस्तक का अनुवाद है। अनुवादकर्ता हैं—श्रीयुत स० बा० हुदलीकर, एम० ए०, स्टेट जिआलजिस्ट, इन्दोर। यह एक कहानी है, जिसमें बच्चों के मनोरञ्जन की बहुत काफ़ी सामग्री है। यह कहानी की दृष्टि से भी अभिनन्दनीय है और स्वाभाविक शब्द-चित्रण की दृष्टि से भी। छोटे बच्चों के बुद्धि-विकास का बड़ा ही अच्छा चित्र इसमें दिखाया गया है। उन्हें किस तरह रखना चाहिए, उनके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए और उनकी ज्ञानोन्नति के लिए किन साधनों से काम लेना चाहिए, ये बातें इसमें बड़ी खूबी से दिखाई गई हैं। शायद अनुवादक से ही इसकी प्राप्ति हो सकती है।

११—मेघ-सन्देश—बम्बई के पास एक जगह अन्धेरी है। वहाँ के गुरुकुल में एक महाशय संस्कृत-साहित्य के अध्यापक हैं। आपका शुभ नाम है—पोपटलाल शर्म्मा। आप कवि हैं, आप साहित्यतीर्थ हैं, आप शास्त्री हैं। आपके एक मित्र के कथनानुसार आप नवयुवक भी हैं, विद्वान् भी हैं, रस-मर्मज्ञ भी हैं और नैसर्गिक काव्य-शक्तिवाले भी हैं। ऐसे आप अपनी पत्नी को "विदा कराने" अपनी ससुराल गये। पर ससुरजी ने अपनी लड़की न भेजी। तब आप निराश होकर वहाँ से लौट आये और पत्नी के बदले साथ लाये तीव्र वियोग-व्यथा। वह यहाँ तक बढ़ी कि आप विरह-विह्वल हो उठे। इस पर आपको कालिदास का मेघदूत याद आया। निदान इस रेल, तार, चिट्ठी-पत्री, रजिस्ट्री और पारसल के ज़माने में इनमें से किसी से काम न लेकर आपने एक मेघ का आह्वान किया। मालूम नहीं, उस समय कौन ऋतु थी और कोई मेघ आपकी नज़र के सामने था भी या नहीं। अस्तु, उसी से आपने अपनी बीती आरम्भ कर दी। यह अपनी बीती आपने पद्यबद्ध कह सुनाई। उसमें आपने अधिकतर कालिदास की उक्तियों से काम लिया और स्वल्पतर अपनी निज की उक्तियों से। कालिदास ने यक्षिणी के परिचय में कहा था—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी।

पोपटलालजी ने कहा—

तन्वी, श्यामा, विमलवदना, कोमलाङ्गी, रसीली।

इस तरह कह सुनकर आपने फ़रमाया कि उस "रसीली" से कह देना कि तेरा पति अन्धेरी में सकुशल है। इस छोटी सी ३२ सफ़े की पुस्तक में शास्त्रिपदभोगी एक संस्कृताध्यापक कवि की कही हुई यही कहानी है। इसकी और इसके कवि की तारीफ़ में जो "बे बोल" (दो शब्द) पुस्तकारम्भ में हैं वे कविजी ही के किसी मित्र के हैं; पर प्रकाशक इस पुस्तक के स्वयं कविजी ही हैं और शायद आपही अन्धेरी में बैठे हुए इसे ३ आने में बेचते हैं। गुजराती भाषा के कवियों की एक बात समझ में नहीं आती। वे लिखते तो हैं मन्दाक्रान्ता और शिखरिणी आदि छन्द, पर उनके लक्षणों पर वे बहुत ही कम ध्यान देते हैं। देखिए कविजी की मन्दाक्रान्ता—

धीरे धीरे गगन चढ़ी ने गाजतो तुं पयोद।

इस लाइन में 'ढ़ी' को ह्रस्व और 'तुं' को दीर्घ पढ़ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ही छन्द की गति ठीक हो सकती है, अन्यथा नहीं। पर इसकी कुछ भी परवा नहीं की गई। यह हाल इस पुस्तक के कविजी ही का नहीं, गुजराती भाषा के प्रायः सभी कवि ऐसा ही करते हैं। अतएव इन लोगों की कविता-सृष्टि में, इस सम्बन्ध में, एक प्रकार की अराजकता सी है।

१२—मेघदूत—इस छोटी सी पुस्तक में भी ३२ सफ़े हैं। पर इसका मूल्य ४ आने है। इसे जमनालाल बहेचरलाल पटेल बेचते हैं। आपका पता है—गोंडल (काठियावाड़) यह किसी विहारी नामक कवि का किया हुआ मेघदूत का समश्लोकी भाषान्तर है। हम जैसे काव्य-मर्मज्ञता-शून्य जन को तो इसकी अपेक्षा मेघ-सन्देश ही की पद्यरचना अधिक सरस जान पड़ती है। मर्मज्ञ और रसिक इसे कैसी समझेंगे, यह वही जानें।

छन्दो-रचना-विषयक वही दोष इसमें भी साद्यन्त विद्यमान हैं जो मेघ-सन्देश में हैं। इसके अन्तिम पद्य का पहला चरण देखिए—

वीयोगी कां प्रणयी मुजने कां कृपापात्र मानी

१३—ईशावास्योपनिषद्, भावार्थ—यह जिल्द-दार पुस्तक बड़े आकार में मोटे काग़ज़ पर छपी है। टाइप बड़ा है। पृष्ठ-संख्या ३५० के ऊपर है। पर मूल्य केवल १) है। आरम्भ में एक विस्तृत प्रस्तावना है। उसमें उपनिषदों, दर्शनों और जैनागमों का तारतम्य बताया गया है। तदनन्तर ईशावास्योपनिषद् की मूल-कारिकायें, देवनागरी टाइप में, देकर उनके नीचे उनका शब्दार्थ, थोड़े में, दिया गया है। सर्वान्त में अनुभवार्थ है। यह अनुभवार्थ बड़े विस्तार से लिखा गया है। उसमें जैनों के स्याद्वाद का मिलान इस उपनिषद् के वचनों से किया गया है। जैनाचार्य्य बुद्धि-सागर सूरि ने यह अनुभवार्थ लिखने में अपनी शास्त्रज्ञता और विद्वत्ता का अच्छा परिचय दिया है। अतएव दर्शन-शास्त्रों के प्रेमी जैनियों और अजैनियों, दोनों, के जानने की यथेष्ट सामग्री इसमें है। इसके प्रकाशक, शाह मोहनलाल भाइ हिमचन्द, वकील, हाईकोर्ट, स्थान पादरा हैं। उन्हीं से शायद यह पुस्तक मिल सकती है।

१४—बेनलाख्यान—विक्रम के सोलहवें शतक में भालण नाम का एक कवि गुजरात-प्रान्त में हो गया है। वह बड़ा काव्यप्रेमी और स्वयं कवि भी था। संस्कृत-भाषा में भी उसकी अच्छी गति थी। गुजराती भाषा में उसने अन्यान्य रचनाओं के अतिरिक्त दो नलाख्यान लिखे हैं। एक छोटा है, दूसरा बड़ा। उनमें राजा नल का चरित है। ये आख्यान उसने श्रीहर्षकृत नैषध-चरित तथा महाभारत आदि के आधार पर लिखे हैं, पर विशेष सहायता उसने श्रीहर्ष ही के काव्य से ली है। भालण की नलाख्यान-विषयक कविता सरस और प्रासादिक है। वह अब तक अप्रकाशित थी। अब महाराज गायकवाड़ के आश्रय से वह इस पुस्तक के रूप में प्रकाशित की गई है। प्रकाशक हैं—रामलाल चुनीलाल मोदी। आप ही ने इन आख्यानों का संशोधन किया है और एक उपोद्घात लिखकर इनका महत्त्व समझाया तथा भालण का संक्षिप्त चरित भी, पुस्तकारम्भ में, प्रकाशित किया है। विशेष विशेष स्थलों और नामों आदि पर टिप्पणियाँ भी आपने दे दी हैं। पुस्तक की पृष्ठ-संख्या १४४ और मूल्य २) है। ऊपर साधारण सी जिल्द है। सोनीवाडा, पाटल, के पते पर आपही को लिखने से यह पुस्तक मिलती है।

१५—हास्य-तरंग—इसके प्रकाशक बल्लभजी सुन्दरजी पुंजाभाई कवि को हँसना-हँसाना बहुत पसन्द है। हँसी-मज़ाक के लेख प्रकाशित करने ही के लिए आप "वांचन" नामक एक मासिकपत्र निकालते हैं। उसी से उद्धृत करके २७ विनोदात्मक लेख आपने इस पुस्तक में रख दिये हैं। कुछ आपके लिखे हुए हैं, कुछ औरों के। इनके सिवा पुस्तक में कितनी ही छोटी छोटी "टुचकाओं" (चुटके) भी हैं। पुस्तक सचित्र है। कोई कोई कहानी, सभी नहीं, हास्य-तरङ्ग की उद्भावना करने की ज़रूर शक्ति रखती है। पुस्तक का आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या २०० और मूल्य २) है। ऊपर कपड़े की जिल्द है। वल्लभ-विलास-पुस्तकालय, राजकोट, काठियावाड़, के पते पर प्रकाशक ही को लिखने से यह पुस्तक मिलती है।

१६—भयङ्कर भुजङ्ग—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या २२० और मूल्य १॥) है। इसके लेखक हैं—भीखाभाई पुरुषोत्तम व्यास। प्रकाशक भी आप ही हैं। आपका पता है—बाल-कार्य्यालय, गोधरा ४, यह एक उपन्यास तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या, कल्पित कहानी है। इसमें सामाजिक बातें भी हैं और राजनैतिक भी। पिछली बातों का बहुत कुछ सम्बन्ध योरप के पिछले युद्ध से है। इसका जो अंश हमने पढ़ा उसके सामाजिक शब्द-चित्र हमें कुछ जँचे नहीं। उनमें कहीं कहीं बहुत अधिक अस्वाभाविकता हमें देख पड़ी। यह दोष छोटा नहीं।

१७—**पुनर्जीवन**—मध्यमाकार के १४० पृष्ठों की इस पुस्तक का मूल्य ॥।) है। इसके लेखक, नहीं "अनुलेखक," हैं कुवेरभाई झवेरभाई पटेल। परन्तु किस पुस्तक के अर्थ या भावार्थ का यह अनुलेखन है, इसका पता ढूँढ़ने पर भी पुस्तक में कहीं न मिला। हाँ, इसके आरम्भिक "आमुख" के लेखक, कुँवरजी विट्ठलभाई, के कथनानुसार यह किसी हिन्दी-पुस्तक का अनुवाद है, इतना पता ज़रूर चल गया है। १९२१ ईसवी में महात्मा गांधी की कृपा से इस देश के असहयोग-सागर में देशभक्ति के जो कल्लोल उठे थे उन्हीं के आश्रय पर रची गई एक कहानी इस पुस्तक में है। उस समय का वह आन्दोलन भारत को पुनर्जीवन देनेवाला था। इसी से इस पुस्तक का नाम पुनर्जीवन रक्खा गया है। कहानी की दृष्टि से इसमें चाहे गुण कम, दोषही अधिक हों, पर बातें जो इसमें हैं वे मन में देशभक्ति का उन्मेष करनेवाली अवश्य हैं। प्रकाशक—अमीन ऐंड कम्पनी, सिनोर, बड़ोदा से यह पुस्तक मिल सकती है।

१८—**राष्ट्रीय-रत्नकणिका**—इसका आकार मध्यम और पृष्ठ-संख्या १०४ है। छपाई भी अच्छी नहीं और काग़ज़ भी अच्छा नहीं। यह "जन्मभूमि-ग्रन्थमाला" की पहली पुस्तक है। चार रुपया साल देने से लोग इस माला के ग्राहक हो सकते हैं। उन्हें साल में कई पुस्तकें देने का अभिवचन, इस माला के प्रकाशक—चन्दूलाल नन्दलाल देसाई—ने दिया है। आप नड़ियाद से यह माला निकाल रहे हैं। इस पुस्तक में राष्ट्रीय भावों के द्योतक छोटे-बड़े १९ लेख हैं।

१९—**ज्ञान पञ्चमी अने तेनुं उद्यापन**—जैनों में ज्ञानपञ्चमी नाम का एक त्योहार होता है। वह कार्तिक शुक्ल ५ को हर साल मनाया जाता है। उसके उद्यापन में धनवान् जैन हजारों रुपया फूँक तापते हैं। इस छोटी सी तीस चालीस सफ़े की पुस्तक में उसी त्योहार का महत्त्व, उसकी विधि, उसके सम्बन्ध की कथा आदि का सन्निवेश है। अन्त में यह सिफ़ारिश की गई है कि उद्यापन में जिस तरह रुपया आज-कल ख़र्च किया जाता है उस तरह ख़र्च न करके उसे जैन शास्त्रों के उद्धार अर्थात् ग्रन्थ-प्रकाशन में ख़र्च करना चाहिए। लेखक की यह सलाह सर्वथा स्तुत्य और देशकालोचित है। मावजी दामजी शाह, धार्म्मिक शिक्षक, बाबु पी० पी० जैन-हाईस्कूल, बम्बई, ने इसे लिखा और प्रकाशित किया है। मूल्य ४ आने है। वही शायद इसे बेचते भी हैं। आपने एक और भी ४० सफ़े की पुस्तक लिखकर प्रकाशित की है। उसका नाम है—

२०—**जैन-नीतिप्रवेश**—उसमें जैनों के तीर्थङ्करों, आचार्य्यों, कवियों और गुणवानों के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली ४४ नीति-परक घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। छोटे छोटे बच्चों के लिए यह नीति-प्रवेश ईसप-नीति आदि की कल्पित कहानियों से हज़ार दरजे अच्छा है। मूल्य इस पुस्तक का भी ।) है।

२१-२२—**गिजूभाई की दो पुस्तकें**—श्री दक्षिणामूर्ति-विद्यार्थि-भवन, भावनगर, ने गिजूभाई की लिखी हुई दो पुस्तकें भेजी हैं। पहली का नाम है, **वार्ता कहेनार ने**—इस १६ सफ़े की पुस्तक में लेखक ने यह बताया है कि विद्यालयों के छोटे छोटे बच्चों को जो क़िस्से-कहानियाँ पढ़ाई या सुनाई जाती हैं उन्हें किस तरह पढ़ाना या सुनाना चाहिए और उनसे जो सदुपदेश या शिक्षा मिलती है उसे उनके हृत्पटल पर किस तरह अङ्कित करना चाहिए। दूसरी पुस्तक का नाम है—**बालवार्ता, भागती जो**। उसमें गिजूभाई ने बच्चों के पढ़ने योग्य २७ कहानियों या वार्ताओं का सङ्ग्रह किया है। ये कहानियाँ मनोरञ्जक होने के साथही साथ शिक्षाप्रद भी हैं। इनमें बीच बीच लौकिक गीत भी, मौक़े मौक़े से, दिये गये हैं। पुस्तक का आकार बड़ा, छपाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ९२ और काग़ज़ मोटा तथा चिकना है। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं।

२३—**भाषण**—श्रीयुक्त पुरुषोत्तम विश्राम मावजी ने सातवीं गुजराती साहित्य-परिषद् के जलसे में एक भाषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया था। मालूम नहीं, परिषद् का यह जलसा कब और कहाँ हुआ था। उसी भाषण की एक छपी हुई कापी किसी ने भेजने की कृपा की है। श्रीयुत पुरुषोत्तमजी शायद बम्बई में रहते हैं। पर भाषण की कापी पर—"भावनगर, १९२४"—छपा है। यह भाषण हिन्दुओं या आर्य्यों के भौतिक शास्त्रों के सम्बन्ध में है और भाषणकर्ता की बहुज्ञता और योग्यता का परिदर्शक है। इसमें उन्होंने दिखाया है कि जिस समय और देश अज्ञान के अन्धकार में पड़े हुए लोट रहे थे उस समय भी भारत के आर्य्य अनेक शास्त्रों में पारङ्गत हो चुके थे। पीछे से तो उन्होंने शास्त्रज्ञता में ऐसी उन्नति की जिसकी सीमा नहीं। अकेले भौतिक शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाले उनके वैश्वानरतन्त्र, धूम्रप्रकरण, वायुतत्त्व प्रकरण, मेघोत्पत्ति-प्रकरण, अग्निशास्त्र, अण्डकौस्तुम्भ, ब्रह्माण्डसार, परकाय-प्रवेश, कलाशास्त्र आदि ग्रन्थों के नाममात्र से ही उनके विज्ञानवेत्ता होने में किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

ज्ञ

नीचे लिखी पुस्तकें मिल गईं। प्रेषकों को धन्यवाद।

१—दुर्जन-मुखचपेटिका और चन्द लेख।

२—अन्योक्ति-शतक—कविरत्न श्रीकालीप्रसाद त्रिपाठी।

३—सेवा-मन्त्र और महा० गांधीजी के आदेश—श्रीभैयालाल जैन, कांग्रेस-कमेटी, कटनी।

४—सच्चा स्वराज्य—विश्वधर्म-प्रचारक सङ्घ, १ डेकर्स लेन, कलकत्ता।

५—श्रीयुगुल-प्रिया-पदावली—श्री वियोगी हरि, प्रयाग।

६—जमाल-माला—श्री पन्नालाल भैया, लहरी प्रेस, बनारस।

७—श्रीगुरुविजय—श्री पं० खुमानशङ्कर शास्त्री, जपरा, हरदोई।

८—बारह खरी-महिमा—श्री पं० पन्नालाल यमुना-बल्लभजी, विहारीपुरा, वृन्दावन।

९—दान-विचार—श्री भगवान शर्मा, जरवाह, ठीकरी, रियासत धार।

१०—दान का अधिकारी कौन है—श्रीविष्णुशरणदेव, प्रमोद।

११—वियोगिनी सीता—श्रीकाशीप्रसाद दुबे, चंपक।

१२—विपलता—श्रीवैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद, यू० पी०

१३—एक नमूनेदार विद्यार्थी (मराठी)—श्रीकृष्णराव भाऊराव, बांबर।

१४—स्वराज्य-सङ्गीत—श्रीशोभाराम, धेनुसेवक।

१५—उदयउद्भट छटा-वर्णन—श्री अक्षयकीर्ति शर्मा, उदयपुर; (मेवाड़)।

१६—गऊवाणी—श्री ऋषभचरण जैन, देहली।

१७—स्वर्ग में महासभा—श्रीवैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद।

१८—श्राद्धगुणविवरण—श्री सोहनविजय महाराज।

१९—महात्मा भीष्म—श्रीदिनकर गंगाधर गोरे, बी० ए० हेड मास्टर ए० बी० एम० स्कूल, नीमच सिटी।

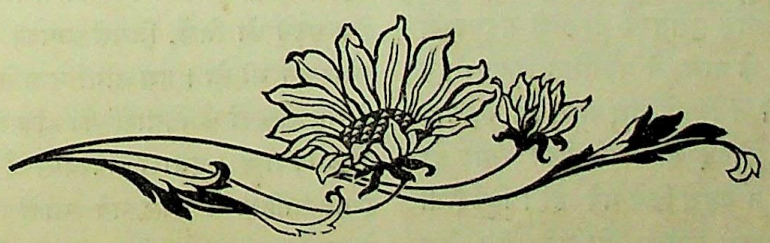

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

१—अपनी बात।

सरस्वती का पचीसवाँ वर्ष समाप्त हुआ। इन पचीस वर्षों में सरस्वती ने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है वह हिन्दी के प्रेमियों से छिपी नहीं है। सरस्वती का गौरव यही है कि उसने हिन्दी में सदैव सत्साहित्य का प्रचार किया है। इस गौरव के एक-मात्र कारण पूज्यपाद द्विवेदीजी हैं। उनके सम्पादन-काल में सरस्वती में कितने ही ऐसे लेख प्रकाशित हुए जो अब हिन्दी के स्थायी साहित्य में आ गये हैं। स्वयं द्विवेदीजी ने भिन्न भिन्न विषयों पर महत्त्व-पूर्ण लेख लिख कर हिन्दी में कितने ही नये विषयों का समावेश किया है। उनके लेखों की महत्ता का अनुमान केवल इसी बात से हो सकता है कि उनके कितने ही लेखों को कई पुस्तक-प्रकाशकों ने पुस्तकाकार प्रकाशित किया है। जबलपुर की शारदा-पुस्तकमाला से 'कालिदास' और 'रसज्ञ-रञ्जन' प्रकाशित हुए, गङ्गापुस्तकमाला से 'सुकवि-सङ्कीर्तन' और 'अद्भुत-आलाप' निकले, मुरादाबाद के मानसमुक्ता-कार्यालय ने उनके पुरातत्त्व-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण लेखों को 'अतीत-स्मृति' के नाम से प्रकाशित किया। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त हिन्दी में जितने गद्य और पद्य के संग्रह प्रकाशित हुए हैं उनमें शायद ही कोई ऐसा संग्रह हो जिसमें सरस्वती के लेख न उद्धृत किये गये हों। द्विवेदीजी की कृपा से सरस्वती आदर्श पत्रिका हो गई थी। उस आदर्श की रक्षा करना हम लोगों के लिए बड़ा कठिन कार्य है। हम अच्छी तरह जानते हैं कि गत चार वर्षों में हम लोगों की अल्पज्ञता के कारण सरस्वती में अनेक त्रुटियाँ हुईं, परन्तु हम लोगों ने अपनी ओर से कुछ भी उठा नहीं रक्खा। सरस्वती के कितने ही चिरपरिचित लेखकों के लेख प्राप्त करने में हमें सफलता नहीं मिली और इससे सरस्वती की शोभा बहुत कुछ घट गई। तो भी हिन्दी के कितने ही विद्वानों ने लेख-द्वारा सरस्वती की गौरव-वृद्धि की। यह हमारे लिए कुछ कम गौरव की बात नहीं है कि सरस्वती के कितने ही लेख बँगला, मराठी, गुजराती पत्रों में अनुवादित हुए। दो एक सज्जनों ने तो प्रति मास सरस्वती के लेखों का अनुवाद करने की इच्छा प्रकट की। तो भी हम जानते हैं कि हमें अपने कार्य में यथेष्ट सफलता नहीं हुई।

मासिक पत्रिकाओं का प्रधान उद्देश लोकरञ्जन है। परन्तु यदि मनोरञ्जन के साथ पाठकों की कुछ ज्ञान-वृद्धि नहीं हुई, यदि उन्हें कुछ शिक्षा नहीं मिली, यदि सत् की ओर उनका अधिक अनुराग नहीं हुआ, तो पत्रिका का उद्देश सफल नहीं हुआ। हम लोगों ने अपनी ओर से यही चेष्टा की है कि पाठकों को सभी तरह के विषयों पर लेख पढ़ने को मिलें, जिससे उनकी ज्ञान-वृद्धि भी और मनोरञ्जन भी हो। हम लोगों ने प्रति मास अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ लेखकों के विचारों को किसी न किसी रूप में प्रकट किया है। हमारा विश्वास है कि ऐसे लेखों से हमारे साहित्य में केवल नये भावों का ही प्रचार नहीं होता, किन्तु भाषा भी अधिक परिष्कृत और व्यापक होती है, उसमें अधिक ग्राहिका शक्ति आ जाती है। सरस्वती में साहित्य और कला-सम्बन्धी उच्च कोटि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखों के अनुवाद हमने प्रकाशित किये हैं। हमारी यह धारणा है कि हिन्दी में सत्साहित्य का आदर्श स्थापित करने के लिए हमें सभी देशों के श्रेष्ठ विद्वानों के विचारों की विवेचना करनी होगी। उनकी उपेक्षा करने से हमारे साहित्य की वृद्धि नहीं हो सकती। इसी उद्देश से कभी कभी हमने भिन्न भिन्न देशों के श्रेष्ठ चित्रकारों के चित्र भी दिये। यह सच है कि विदेशी भावों को ग्रहण करना सदैव रुचिकर नहीं होता। विशेषकर कला के सम्बन्ध में तो हमारी रुचि ऐसी बँधी रहती है कि विदेशी शैली और भाव हमें कम पसन्द आते हैं। सम्भव है कि ऐसे चित्रों से पाठकों का अधिक मनोरञ्जन न हुआ हो। इस वर्ष से हमने यह प्रबन्ध किया है कि स्वदेशी चित्रकारों के चित्र अधिक संख्या में निकलें। लाहोर के सुप्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत एम० ए० रहमान चग़ताई के चित्रों से सरस्वती के पाठक परिचित हैं। इसी अङ्क में उनके चित्र प्रकाशित हुए हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि चग़ताईजी के चित्र कितने भाव-पूर्ण और नेत्र-रञ्जक होते हैं। चग़ताईजी की गणना सर्वश्रेष्ठ चित्रकारों में है। उन्होंने कृपापूर्वक सरस्वती के लिए अनेक चित्र देना स्वीकार किया है। दूसरे चित्रकारों ने भी ऐसी ही प्रतिज्ञा की है। हमारा उद्देश यही है कि हम अपने सभी पाठकों को तुष्ट करें। हमें विश्वास है, यदि उनकी कृपा-दृष्टि पूर्ववत् बनी रही तो हम अपने उद्देश में अवश्य सफल होंगे।

२—भारतवर्ष की सभ्यता की प्राचीनता।

अनेक साहर भारतवासियों का ख़याल है कि मनुष्य-सृष्टि सबसे पहले इसी देश में—बहुत करके पञ्जाब या उसके आसपास कहीं—हुई थी। वे समझते हैं कि इस देश को आबाद करने के लिए कहीं बाहर से कोई नहीं आया। कुछ लोगों ने इस विषय में पुस्तकें तक लिख डाली हैं और उनमें अपने सिद्धान्त या विचार के पोषक प्रमाण भी दिये हैं। उनके वे प्रमाण यदि "प्रमाण" न भी माने जा सकें तो भी उनसे कुछ ऐसे अनुमान अवश्य किये जा सकते हैं जो भारतवर्ष की प्राचीनता के सूचक हो सकते हैं। ख़ैर, इन लेखकों की बात जाने दीजिए। भूगर्भविद्या एक नया शास्त्र है और उसकी सृष्टि पश्चिमी देशों ही के आधुनिक विद्वानों ने की है। उनका कहना है कि सबसे पहले इसी देश की भूमि मनुष्यों के रहने योग्य हुई थी। अतएव उनके इस सिद्धान्त से भी यही अनुमान निकलता है कि बहुत करके पहले-पहल यहीं मनुष्य-सृष्टि हुई होगी। क्योंकि बहुत पुरातन समय में जब अन्यत्र सब कहीं पृथ्वी अगाध पानी और कीचड़ के सागर के भीतर घुसी पड़ी थी तब भारतवर्ष ही एक ऐसा देश था जहाँ उसका कुछ अंश सूख गया था; अतएव वह प्राणियों के निवास-योग्य हो गया था।

भारत के प्राचीन ग्रन्थों—वेदों और पुराणों आदि—में लाखों वर्ष की पुरानी बातों का उल्लेख है। हमारे पूर्वजों ने काल-गणना के सम्बन्ध में प्रलय, महाप्रलय और कल्पान्त आदि की जो व्याख्या की है इससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि इस देश की सभ्यता अत्यन्त पुरानी है—इतनी पुरानी जिसकी सीमा या इयत्ता ठीक ठीक नहीं निश्चित की जा सकती!

यह सब होने पर भी आज-कल के विद्वान्—विशेष करके पश्चिमी देशों के विद्वान्—इन अनुमानों और उल्लेखों को बिलकुल ही महत्त्व-हीन समझते हैं। वे कहते हैं कि ब्रह्मा के इतने बड़े दिन की कल्पना और प्रलयान्त में भगवान् विष्णु का क्षीरसागर में शयन करना उन्मत्तों के प्रलाप के सदृश हँसकर उड़ा देने की बातें हैं। वे विश्वसनीय नहीं। अपनी प्राचीनता की पुष्टि में कोई दृग्गोचर प्रमाण लाओ। कोई शिला-लेख, कोई ताम्रपत्र, कोई सिक्का, कोई मूर्ति, पत्थर या लोहे इत्यादि का कोई औज़ार ही दस-पाँच हज़ार वर्ष का पुराना पेश करो। यह न सही, चार-छः हज़ार वर्ष की पुरानी किसी इमारत का ध्वंसावशेष ही दिखा दो। यह तुम कुछ नहीं कर सकते। अतएव हम भी तुम्हारी सभ्यता की विशेष प्राचीनता मानने को तैयार नहीं।

अब, बताइए, इतनी पुरानी चीज़ें कहाँ से लाकर कोई दिखा सकता है। अनुमान माना नहीं जाता, प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता नहीं। इस दशा में पश्चिमी देशों के पुरातत्त्ववेत्ता पहले तो भारत की सभ्यता के जन्म को खींच-खाँच कर अपने धर्म्म-ग्रन्थ बाइबिल के जन्म के इधर-उधर ही ला पटकते या पटकने की चेष्टा करते थे। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे धीरे उनके इस व्यापार में विघ्न उपस्थित होने लगा। पुरातत्त्वज्ञों के प्रयत्न और अध्यवसाय से उस समय से भी पहले के शिलालेख आदि यहां निकलने लगे। गवर्नमेंट के द्वारा पुरातत्त्व-विभाग की स्थापना होने पर, दिन पर दिन, नई नई बातें मालूम होने और अधिकाधिक पुरानी वस्तुओं की उपलब्धि होने लगी। इस तरह इस देश की सभ्यता की प्राचीनता के प्रमाण अट्ठारह-उन्नीस सौ वर्ष से पीछे खिसकते खिसकते आज से पचीस सौ वर्ष पीछे तक—अर्थात् मौर्य्य नरेशों के समय तक—पहुँच गये। यह बात तब मानी गई जब पत्थर और तांबे के इतने पुराने औज़ार और शस्त्र, पत्थर पर खुदे हुए लेख और पुरानी इमारतों के टूटे-फूटे अंश ज़मीन के नीचे गड़े हुए मिले।

ढाई हज़ार वर्ष की प्राचीनता के सूचक ये प्रमाण इतने ही मिल कर रह गये थे। परन्तु अब यह काल सहसा दूना हो गया है। अर्थात् कुछ समय पूर्व पञ्जाब और सिन्ध में कुछ ऐसे ध्वंसावशेष और कुछ ऐसी चीज़ें मिली हैं जो पांच हज़ार वर्ष की पुरानी हैं। अतएव भारत-वर्ष की जो सभ्यता सिर्फ़ अट्ठारह-उन्नीस सौ वर्ष की पुरानी मानी जाती थी वह खिसक कर पाँच हज़ार वर्ष पीछे तक जा पहुँची है। मतलब यह कि इतने प्राचीन काल में भी भारतवासी महलों में रहते थे। कलाकौशल में बढ़े-चढ़े थे, लिखना जानते थे और मनोमोहक अलङ्कार या आभूषण धारण करते थे। इस सभ्यता की निदर्शक वस्तुओं का आविष्कार हुए तो कुछ समय हो गया, परन्तु सूचना इसकी पुरातत्त्व महकमे के बड़े साहब, सर जान मार्शल, ने अभी हालही में दी है। इस विषय में उन्होंने एक लेख अख़बारों में प्रकाशित कराया है। सरस्वती के इस अङ्क में उसी के सम्बन्ध में एक सचित्र लेख दिया गया है। यहाँ उसका सारांश सुनिए—

पञ्जाब के मांटगोमरी ज़िले में एक जगह हरप्पा है। वहाँ रेलवे स्टेशन है। वहीं, कुछ समय पूर्व, दो रेल-गाड़ियाँ लड़ गई थीं और बहुत आदमियों की जानें भी गई थीं। वहाँ पर बहुत पुराने कुछ धुस्स हैं। इधर तो उनकी खुदाई का काम पुरातत्त्व महकमे ने जारी कराया, उधर सिन्ध में भी एक वैसी ही खुदाई आरम्भ करा दी। सिन्ध की उस जगह का नाम है महेंजोदारो। वह हरप्पा से कोई ४०० मील दूर है। दोनों जगहों का काम दो विशेषज्ञों के सिपुर्द हुआ। खोदने पर दोनों जगह प्रायः एकही सी वस्तुयें ज़मीन के भीतर से निकलीं। पहले तो ईंटों के बने हुए पुख़्ता मकानों और मन्दिरों के चिह्न मिले। पानी निकालने की ऐसी ऐसी मोरियां मिलीं जिन पर संगमर्मर की सुन्दर सुन्दर पटियायें बिछी हुई थीं। छोटी छोटी चीज़ों में मिट्टी के रङ्गीन और सादे बर्तन, खिलौने, शङ्ख और कांच की चूड़ियां, छुरियाँ और सिक्कों के सिवा कुछ सीलें (ठप्पे) ऐसी मिलीं जिन पर किसी अज्ञात भाषा या लिपि में कुछ खुदा हुआ है। यह लिपि एक प्रकार की चित्रलिपि है जिसे अभी तक कोई नहीं पढ़ सका।

यह सब सामग्री बहुत पुरानी निःसन्देह मालूम हुई। परन्तु कितनी पुरानी, इसका निश्चय मार्शल साहब न कर सके। तब उन्होंने विलायत के एक अख़बार में इस आविष्कार पर एक लेख प्रकाशित कराया। उसकी ओर योरप के कुछ पुरातत्त्वज्ञों का ध्यान जो गया तो उलझी हुई गांठ बहुत कुछ सुलझ गई। उन लोगों ने बताया कि इसी तरह के आविष्कार मेसोपोटामिया, अर्थात् इराक़े अरब, के उस प्रान्त में भी हुए हैं जो किसी समय प्राचीन बैबीलोनियां (बाबुल) के राज्य के अन्तर्गत था और जहाँ सुमेर नाम की जाति के मनुष्यों की बस्ती थी। वहाँ जो खुदी हुई सीलें मिली हैं वे भी वैसी ही हैं जैसी कि पञ्जाब और सिन्ध में मिली हैं। दोनों की चित्र-लिपि में भी सादृश्य है। बाबुल और आसीरिया बहुत पुराने राज्य हैं। वे यद्यपि नष्ट होगये हैं तथापि उनका बहुत कुछ इतिहास ज्ञात है। उस इतिहास से प्रकट है कि सुमेर-जाति की सभ्यता कम से कम पाँच हज़ार वर्ष की पुरानी है। अतएव भारत में सुमेरियों ही के समय की चीज़ों के सदृश चीज़ों का मिलना यह सिद्ध करता है कि यहाँ की भी सभ्यता उतनी ही पुरानी है जितनी कि प्राचीन सुमेरियों की है। सो अपनी प्राचीनता का हिसाब लाखों और करोड़ों में बतानेवाले बेचारे बूढ़े भारत के प्राचीन निवासियों के विषय में अब यह बात मान ली गई कि आज से पाँच हज़ार वर्ष पहले भी वे लोग लिखना-पढ़ना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानते थे, कपड़े-लत्ते ही नहीं अँगूठियाँ तक पहनते थे, महलों में रहते थे और शायद अपना राजपाट सँभालने के लिए दूसरों को न बुलाकर खुद ही उसे सँभाल लेते थे।

इस आविष्कार की कृपा से पुरातत्त्वज्ञ अब यह सोचने लगे हैं कि हो न हो, प्राचीन भारतवासी ही इराक़े अरब के सुमेर-प्रान्त में जा बसे हों। उन्होंने बैबीलोनियाँ को आबाद करके वहाँ राज्य-स्थापना की हो। यहाँ तक कि, बहुत सम्भव है, वही प्राचीन आसीरिया देश या प्रान्त तक बढ़ गये हों और वहाँ भी उन्होंने अपना नया राज्य स्थापित किया हो। आसीरिया, बैबीलोनियाँ और सुमेरिया में अभी बहुत कुछ खोज होनी बाक़ी है। भावी खोज से वहाँ और भी नये नये आविष्कार होने की सम्भावना है। हरप्पा और महेंजोदारों में जो सीलें मिली हैं उनकी लिपि जिस दिन पढ़ ली जायगी उस दिन, सम्भव है, भारतवर्ष की सभ्यता की सीमा दो चार हज़ार वर्ष और पीछे खिसक जाय। तब तक बैबीलोनियाँ और सुमेरिया आदि में यदि कोई महत्त्व के और भी आविष्कार हो गये तो शायद इस देश की सभ्यता की प्राचीनता को बहुत अधिक पुष्टि की प्राप्ति हो जाय।

पुरातत्त्वज्ञों की बात हम नहीं कहते। साधारण आदमियों के भी ध्यान में यह बात आये बिना नहीं रह सकती कि आसीरिया के प्राचीन निवासी भारतवासियों ही की किसी शाखा की सन्तति थे। उनके प्रधान देवता का नाम था असुर। वे स्वयं ही असुर-जातीय कहाते थे। इसी से उनके देश का नाम आसीरिया (या असुरिया) पड़ा था। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि सुरों के उपासक भारतवासी भारत ही में रहे और असुरों के उपासक ईरान, सुमेर और आसीरिया आदि में जाकर बस गये। असुर नाम का एक नगर भी आसीरिया में था। हमें याद पड़ता है कि किसी महाराष्ट्र-लेखक ने अपने किसी लेख में भारत और आसीरिया की अनेक बातों में समता प्रतिपादित की है।

३—सूक्तियाँ।

कृतघ्नता निर्बलता है। जो सचमुच सबल हैं वे कृतघ्न नहीं होंगे।

हम लोग अपने विचारों में इतने सङ्कुचित रहते हैं कि हम सब यही समझते हैं कि हम ठीक हैं। यही कारण है कि ऐसे भी बुद्धिमान् मनुष्य हैं जो भूल ही नहीं करते किन्तु भूल करने से जिन्हें सचमुच हर्ष होता है।

कितने ही लोग ऐसे हैं जिनसे भूल नहीं होती, परन्तु उसका कारण यह है कि वे कभी कोई अच्छा काम करने का निश्चय ही नहीं करते।

सच पूछो तो वही कुछ जानता है जो यह समझता है कि मेरा ज्ञान अल्प है। ज्ञान के साथ ही संशय की वृद्धि होती है।

जो मनुष्य हमारे पास आते हैं उन्हें हम नहीं जान सकते। उन्हें जानने के लिए हमें उनके पास जाना चाहिए।

कोई भी मनुष्य दूसरों से धोखा नहीं खाता। वह अपने आपको धोखा देता है।

उद्योगशील मनुष्यों को यही उचित है कि वे बड़ों की कृपा, शक्तिमानों की दया, कर्त्तव्यपरायण सज्जनों की आत्मोन्नति, सर्वसाधारण का स्नेह और व्यक्ति का प्रेम प्राप्त करने की चेष्टा करें।

जो हमें मुक्त करता है परन्तु आत्म-संयम की शक्ति नहीं देता वह श्रेयस्कर नहीं है।

आशा व्यथितों का दूसरा जीवन है।

न्याय कर्त्तव्यों के पालन पर ध्यान देता है और अनुशासन औचित्य पर। न्याय अच्छे और बुरे का विचार करता है और उनका विश्लेषण करता है। अनुशासन निर्दिष्ट करता है और आदेश देता है। न्याय का सम्बन्ध व्यक्ति से है, अनुशासन का समाज से।

ज्ञान का इतिहास क्या है, भिन्न भिन्न जातियों की आत्मोन्नति की पुनरावृत्ति है।

सबसे अच्छा शासन वह है जो हमें आत्मशासन की शिक्षा देता है।

ग्रामीणता और तुच्छता की निन्दा करना व्यर्थ है क्योंकि इनका अस्तित्व कभी मिटने का नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचार और स्वास्थ्य को छोड़ कर संसार में ज्ञान से अधिक मूल्यवान् वस्तु कोई दूसरी नहीं। वह सुलभ भी है। उसके लिए न तो अधिक परिश्रम की आवश्यकता है और न व्यय की। परिश्रम है चित्त को एकाग्र करना और व्यय है सिर्फ़ समय का, जिसे बिना ख़र्च किये हम बचा नहीं सकते।

४—हिन्दी-साहित्य का नव-युग।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी हिन्दी-साहित्य में नवयुग के प्रवर्तक हैं। उनके समय से लेकर आज तक हिन्दी-साहित्य का विस्तार बढ़ता ही गया है। परन्तु गत पचीस वर्षों में हिन्दी की विशेष उन्नति हुई है। कितने ही विद्वानों की राय है कि हिन्दी में मौलिक रचनाओं की उतनी वृद्धि नहीं हुई जितनी अनुवादित ग्रन्थों की। हिन्दी-साहित्य का यह युग एक प्रकार से अनुवाद-युग कहा जा सकता है। अँगरेज़ी, मराठी, बँगला और गुजराती के कितने ही ग्रन्थों के अनुवाद हुए हैं। इनमें अधिकांश उपन्यास और नाटक हैं। यदि इन अनुवादों की आवश्यकता न होती, यदि इनसे कुछ लाभ न होता, तो कदाचित् इनका इतना प्रचार न होता। विचारणीय यह है कि हिन्दी के इस नव-युग की क्या विशेषता है।

श्रेष्ठ विद्वानों की राय है कि प्रत्येक देश का इतिहास कई युगों में बटा रहता है। प्रत्येक युग में एक विशेष सभ्यता, कुछ विशेष विचारों और भावनाओं तथा उन्हीं के अनुकूल संस्थाओं का प्राधान्य रहता है। उनके द्वारा देश दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करता दिखाई देता है। किन्तु कालान्तर में वही विचार, वही भावनायें, वही संस्थायें ऐसी विकृत हो जाती हैं कि उनका प्रारम्भिक बल जाता रहता है। तब प्रकृति के विकास-नियम के अनुसार एक नवीन सभ्यता का उद्भव होता है, लोग उन्नति के नये नये मार्ग खोजते हैं, नये नये प्रयोग करते हैं। देश में प्रमाद, आलस्य और मिथ्याचार के स्थान में एक जाग्रति की लहर सी छा जाती है। इसी लहर को ऐतिहासिक एक नवीन युग का प्रादुर्भाव कहते हैं। १६ वीं शताब्दी में भारतवर्ष में एक इसी प्रकार के युग का जन्म हुआ था। बङ्गाल के प्रसिद्ध विद्वान् जदुनाथ सरकार का कथन है कि १८ वीं शताब्दी के मध्यकाल में ही मुग़ल-सभ्यता उस पहलवान के सदृश हो गई थी जिसकी शक्ति का ह्रास हो जाने के कारण बात बात में दम फूलने लगता है। यह क्षीणता समाज के अङ्ग अङ्ग में प्रवेश कर जाती है। किन्तु तत्कालीन भारतवर्ष के जीवन में इसके लक्षण सबसे पहले सैनिक और राजनैतिक दौर्बल्य के रूप में प्रकट हुए थे। देश में स्वयं अपनी रक्षा करने की शक्ति न रह गई थी, बादशाह के सिर पर ताज तो था किन्तु उसको सम्भालने के लिए न तो उसके बाहुओं में बल था और न मस्तिष्क में योग्यता। दरबारियों की भी बड़ी दुर्दशा थी, सबको अपनी अपनी पड़ी थी, स्वार्थ के मारे वे सामूहिक भलाई का अर्थ ही न समझ सकते थे। सौ बात की बात यह कि साम्राज्य में सर्वत्र मिथ्याचार, अनाचार, छल और कपट का दौरदौरा था। इस व्यापक और भयङ्कर गड़बड़ी के कारण लोग सत्साहित्य, शिल्प और कला, यहां तक कि धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों को भी भूल बैठे थे। ठीक इसी अवसर पर योरप ने इसके साथ मुड़भेड़ शुरू की। इसके वेग को रोकना भारतवर्ष के लिए असम्भव था। हार अवश्यम्भावी हो गई। पचास वर्षों के ही भीतर सारे भारत पर इँगलेंड का आतङ्क छा गया।

इसके पश्चात् जो समय आया उसको हम आधुनिक भारतवर्ष का अन्ध-युग कह सकते हैं। यह समय मोटे तौर से सन् १७६० से १८३० तक अर्थात् कार्नवालिस के शासन-काल से बेनटिङ्क के शासन-काल तक रहा है। इसको हमने अन्ध-युग इसलिए कहा है कि इस समय प्राचीन सभ्यता और संस्कृति तो एक-दम ठण्ढी पड़ गई थी और नवीन का जन्म नहीं हुआ था। लोग हैरान थे। यह कोई नहीं कह सकता था कि भावी भारतवर्ष का जीवन किस साँचे में ढाला जानेवाला है। किन्तु शायद इसको आधुनिक भारतवर्ष का वपन-काल कहना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि इसी समय में बीज पृथ्वी फाड़ कर अङ्कुर निकालने का उद्योग कर रहा था।

इसके समाप्त होते ही भारतवर्ष का आधुनिक युग चलता है। भारतवासियों ने अपनी दिशा निश्चित कर ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। इँग्लेंड में इन दिनों धड़ाधड़ सुधार हो रहे थे। भारतवासियों ने उन्हीं का अनुकरण किया। राष्ट्रीय जीवन किसे कहते हैं, देश के शासन में नागरिक के क्या अधिकार होने चाहिए, इन बातों की शिक्षा भारतवासियों को पश्चिम से ही मिली। उन्नतिशील भारतवासी इन्हीं विचारों के आधार पर देश के जीवन का संस्कार करने लगे। किन्तु इन भारतवासियों की कायापलट हो गई थी, ये एक दूसरे ही रङ्ग में रँगे हुए थे, इनका उपास्यदेव पूर्व नहीं, पश्चिम था। इनमें से अधिकांश अँगरेज़ी भाषा और साहित्य के पण्डित हो चुके थे। आधुनिक भारतवर्ष की आधार-शिला इन्हीं लोगों ने जमाई है। यही भारतवर्ष के प्रारम्भिक नेता हैं, राजा राममोहन राय नवयुग के सबसे बड़े गुरु और आचार्य थे। अन्ध-युग के अन्धकार से निकाल कर भारतवर्ष को पश्चिम के ज्ञान-सूर्य के दर्शन कराने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त हुआ है।

इस आन्दोलन का सबसे पहला सुफल हुआ विचार-स्वातन्त्र्य। भारतवासियों को विश्वास हो गया कि अब लकीर के फ़क़ीर बनने से काम नहीं चल सकता। बुद्धि और विवेक के आधार पर ही हमको अपने भावी जीवन का निर्माण करना होगा। इस आन्दोलन का जन्म और प्रचार सबसे पहले बङ्गाल प्रान्त में हुआ था। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि सबसे पहले इसी प्रान्त पर अँगरेज़ों ने अपना प्रभुत्व जमाया था, और दूसरा यह कि मुग़ल-युग में भी मुस्लिम सभ्यता से इसका बहुत कम सम्पर्क हुआ था। इसलिए इनको अपने प्राचीन विचार छोड़ने और पश्चिमी विचार अपनाने में अधिक कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। यही कारण था कि १९ वीं शताब्दी के पहले भाग में बङ्गाली लोग अँगरेज़ी शिक्षा और पद्धति पर बेतरह मुग्ध हो गये थे। उनके अग्रगण्य नेताओं का भी यही विचार हो रहा था कि यदि हम अपनी अवनत दशा से उन्नत होना चाहते हैं तो हमारे लिए अँगरेज़ी भाषा और साहित्य के अध्ययन के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है।

पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव सबसे पहले बङ्गाल पर पड़ा। उसी के कारण बङ्गाल-साहित्य का स्वरूप परिवर्तित हो गया। वङ्ग भाषा के सौभाग्य से उसके प्रारम्भ काल में कितने ही योग्य विद्वानों ने वङ्ग भाषा को अपने ग्रन्थ-रत्नों से पुष्ट किया। हिन्दी में ऐसे सेवकों का अभाव था। जो लोग देश के श्रेष्ठ विद्वान् थे उनका ध्यान हिन्दी की ओर नहीं था। उर्दू की ओर विद्वानों की विशेष अनुरक्ति थी। अभी तक कितने ही ऐसे विद्वान् हैं जो हिन्दी की सेवा करने की विशेष क्षमता रख कर भी इस ओर प्रवृत्त नहीं होते। हिन्दी का सेवा-भार उन लोगों ने उठाया जो मातृ-भाषा के सच्चे प्रेमी थे, यद्यपि उनकी प्रसिद्धि देश-व्यापी नहीं थी। हिन्दी के सेवकों ने आधुनिक भावों को ग्रहण करने के लिए बँगला और अन्य उन्नत भाषाओं का आश्रय लिया। हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों में ज्ञान का जो प्रचार हुआ है, उनमें नये भावों की जो जाग्रति हुई है उसके लिए हमारे प्रान्त के अग्रगण्य नेताओं और धुरन्धर विद्वानों ने बहुत थोड़ा काम किया है। काम किया है उन्हीं लोगों ने जिनकी शक्ति परिमित थी, विद्वत्ता अल्प थी परन्तु जिनका मातृ-भाषा के प्रति सच्चा अनुराग था। उनकी रचनायें क्षणिक भले ही हों, उनके नाम थोड़े ही दिनों में लोग भले ही भूल जायँ, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि स्वदेशोन्नति का यह विशाल भवन उन्हीं के दुर्बल कन्धों पर स्थित है।

५—लोक-रुचि।

कविता और कला के सम्बन्ध में सभी लोग कुछ न कुछ राय अवश्य रखते हैं और अपनी वह राय प्रकट करने में कभी किसी को सङ्कोच नहीं होता। अन्य विषयों के सम्बन्ध में लोग सहसा अपनी सम्मति नहीं देते। परन्तु कविता और चित्र पर बेधड़क अपनी राय दे डालना सभी अपना स्वयंसिद्ध अधिकार समझते हैं। इसका कारण यह है कि कविता और कला की परीक्षा में लोग एकमात्र अपनी रुचि को सर्वोत्तम कसौटी समझते हैं। हिन्दी में लोक-रुचि की बड़ी दुहाई दी जाती है। परन्तु लोक-रुचि का विश्लेषण थोड़े ही लोगों ने किया होगा। यहाँ हम लोक-रुचि के सम्बन्ध में एक विद्वान् की राय लिखते हैं।

कला की परख बड़ी टेढ़ी है। चाहे काव्य हो, चाहे चित्र, चाहे मूर्ति और चाहे सङ्गीत इनके विषय में यह कह देना कि कौन उत्तम काव्य है, कौन बढ़िया चित्र है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा कौन उच्च सङ्गीत है, बड़ा कठिन कार्य है। जो कला-विशारद चिरकाल तक सर्वमान्य और विश्व-विदित कला-चार्यों की सम्मति के अनुसार अपनी बुद्धि परिष्कृत करते रहते हैं उन्हीं को इस विषय में अन्तिम राय देने का अधिकार हो सकता है। साधारण व्यक्ति को ऐसे लोगों के विरुद्ध अपनी राय देना शोभा नहीं देता। हर्ष का विषय है कि आज-कल कलामर्मज्ञों और कला-समालोचकों की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। इसकी यथार्थता में किसी को सन्देह नहीं। किन्तु इसका एक बहुत ही आश्चर्यजनक परिणाम दिखाई दे रहा है। बात यह है कि ज्यों ज्यों आज-कल संसार में कलामर्मज्ञता बढ़ती जाती है, त्यों त्यों जनता कला के उन्हीं निम्नतर उदाहरणों की ओर अधिकाधिक आकृष्ट हो रही है। चाहिए तो यह था कि जब जनता को उच्चतर और निम्नतर कला से यथेष्ट परिचय हो जाता तब वह निम्नतर कला का तिरस्कार कर देती। किन्तु बात ठीक इससे उल्टी होती है। जिस समय में जिस देश में लोगों की कलामर्मज्ञता बढ़ी है उस समय और उस देश में अवश्य-मेव जनता में उत्तरोत्तर कुरुचि का प्रचार होता गया है। भारतवर्ष में भी इसके लक्षण दिखाई दे रहे हैं।

इस अद्भुत व्यापार का कारण बतलाना आसान नहीं। जर्मनी के गेटी जैसे सुप्रसिद्ध विद्वान् ने तो इसका यही कारण ठहराया था कि जनता का मन स्वभाव से ही साधारण और हलकी वस्तुओं की ओर आकृष्ट होता है, इसलिए उसने यहाँ तक कह डाला था कि जनता जिस प्रकार की कला से प्रेम करे, समझ लेा कि कला की दृष्टि से उस प्रकार की कला में कोई तथ्य नहीं है। यह उसकी सच्ची राय थी अथवा चिढ़ करके उसने जनता की रुचि पर ऐसा घोर आक्षेप किया था, यह नहीं कहा जा सकता। और सच तो यह है कि शायद ही कोई ऐसा कला-विशारद निकले जिसको अपने समय की कुरुचि को देख कर एक मार्मिक वेदना न हुई हो। पर केवल इतना कह देने से कि जनता कभी उच्च कला को नहीं समझ सकती अथवा जनता की स्वाभाविक रुचि सदैव निम्नकला की ओर रहती है, किसी प्रकार काम नहीं चल सकता। क्योंकि बहुत से काव्य, नाटक, चित्र ऐसे भी तो होते हैं जो गन्दे और कुरुचिपूर्ण होने पर भी जनता को पसन्द नहीं आते। यदि जनता वास्तव में इन्हीं गुणों पर मुग्ध है तो फिर क्यों इनको असफलता के अन्ध गर्त में डूब जाना पड़ता है।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि क्यों एक प्रकार की कुरुचि जनता को प्रिय होती है और क्यों दूसरे प्रकार की कुरुचि अप्रिय। जिस मनुष्य में कला के समझने की थोड़ी सी भी शक्ति आगई है उसके लिए तो दोनों ही कुरुचियाँ एक समान घृणास्पद हैं। भला, दो कलाओं के दो गन्दे उदाहरणों में अन्तर ही क्या हो सकता है? क्या गन्दा भी मीठा और कड़ुवा होता है, उसमें भी सुन्दरता और असुन्दरता देखी जाती है, उससे भी करुणा या प्रेम के भावों का उद्रेक होता है? गन्देपन में महत्ता-लघुता कैसी?

क्या यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि एक नाटक को लोग बिलकुल देखना नहीं पसन्द करते, और ठीक उसी कोटि के दूसरे नाटक पर लोग टूटे पड़ते हैं, जिससे उसका स्वामी मालामाल हो जाता है। समाचारपत्रों के विषय में भी जनता की यही हालत है, एक प्रकार के समाचारपत्र पर तो लोग लट्टू हो जाते हैं और ठीक उसी प्रकार के एक दूसरे को कौड़ी में भी नहीं पूछते। जनता की इस अद्भुत रुचि से जो प्रश्न उपस्थित होता है वह महत्त्वपूर्ण है। उस पर विचार करना समय का अपव्यय नहीं कहा जा सकता। निम्नकला में भला ऐसे कौन से गुण हैं और किन नियमों के अनुसार वे गुण काम करते हैं जो लोग उसको इतना अधिक पसन्द करते हैं? उच्च कला-विशारदों के लिए यह प्रश्न अनावश्यक नहीं है, बरन इस पर उनकी बहुत कुछ सफलता भी निर्भर है।

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि लोक-प्रिय निम्नकला में अव-श्यमेव कुछ ऐसे गुण विद्यमान हैं जिनके कारण वह इतनी अधिक लोकप्रिय होती है। यद्यपि इस समय हम उनसे अवगत न हों, तथापि हम उनका अस्तित्व नहीं अस्वीकार कर सकते। यदि हम उन्हें नहीं जानते तो कुछ लोग ऐसे अवश्य हैं जो जनता की रुचि से भले प्रकार परिचित होते हैं। न जाने वे किस प्रकार ताड़ लेते हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन सी वस्तु जनता को रुचिकर होगी और कौन सी अरुचिकर। इनके अन्तर्गत लोकप्रिय कवि, सफल लेखक, सफल नाट्यसञ्चालक आदि सभी आ जाते हैं। इनका अनुमान बहुत कम मिथ्या होता है और सच पूछा जाय तो केवल एक इसी शक्ति के द्वारा ये लोग लाखों रुपया कमा लेते हैं। यह बात नहीं है कि ये लोग यह न जानते हों कि जो चीज़ हम जनता को दे रहे हैं वह घटिया है। उन्हीं की देखादेखी और सैकड़ों लोग घटिया चीज़ें लेकर बाज़ार में खड़े होते हैं, किन्तु उन्हें कोई नहीं पूछता। बात यह है कि वे ठीक ठीक यह नहीं जानते कि माल कितना घटिया होना चाहिए। जहाँ माल उस इच्छित घटियापन से एक इञ्च भी इधर-उधर हुआ कि फिर वह नहीं बिक सकता। न उससे अधिक अच्छा होना चाहिए और न उससे अधिक ख़राब। दोनों दशाओं में वह लोकप्रिय नहीं हो सकता। जो लोग यह कहते हैं कि सफल और लोकप्रिय कला के विक्रेताओं की सफलता का रहस्य उनकी जनता की रुचि की बढ़ी-चढ़ी अभिज्ञता नहीं है, बरन उनकी कलाबाज़ी, धोखेबाज़ी अथवा विज्ञापनबाज़ी या अन्य कोई इसी तरह की चालबाज़ी है, वे बड़ी भूल करते हैं।

सबसे पहली बात तो यह है कि कला के लोकप्रिय उदाहरणों में कुछ उदाहरण तो ऐसे हो जाते हैं जो यद्यपि कला की दृष्टि से सर्वोच्च कोटि में नहीं रक्खे जा सकते, तथापि वे कला-हीन नहीं कहे जा सकते। उनमें कला की एक झलक रहती है, साथ ही उनमें ऐसे गुण होते हैं जो जनता के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। ऐसे उदाहरण कभी अप्रिय नहीं हो सकते। अधिकांश सामयिक पत्रों में प्रायः जो कवितायें या चित्र निकला करते हैं वे इस प्रकार की कला के उत्तम नमूने हैं। न तो हम उनको स्थायी साहित्य और चित्र-सङ्ग्रहालय में स्थान दे सकते हैं और न उनकी उपेक्षा कर सकते हैं। क्योंकि वे जनता को प्रसन्न करनेवाले हैं। भला इन चित्रों में रहता ही क्या है! स्त्री-पुरुषों के सुन्दर चेहरे भर अङ्कित कर दिये जाते हैं। दैनिक जीवन में हम जैसे भद्र स्त्री-पुरुषों से भेंट करते रहते हैं वही उस साधारण रूप में नहीं चित्रित किये जाते। चित्रकार तो उनको कल्पना के आधार पर बनाता है। किन्तु अपनी कल्पना के आधार पर नहीं बरन जनता की कल्पना के आधार पर। जनता भद्र पुरुषों को अपने से बड़ा तो समझती ही है, किन्तु जिन भद्रपुरुषों को उसे स्थूल जगत् में बड़ा मानना पड़ता है उन्हें वह नहीं चाहती। उनका एक काल्पनिक रूप स्थापित करके उनकी उपासना किया करती है। जो चित्रकार इस काल्पनिक रूप को दर्शा सकते हैं वही सफल होते हैं। उनकी न केवल सूरत-शक्ल ही सुन्दर होना चाहिए, बरन उनका ढङ्ग भी उत्तम और आकर्षक होना चाहिए। उनकी चाल-ढाल तो सर्वसाधारण से निराली होना चाहिए। हाँ, उनके हृद्गत भावों के स्पष्टीकरण पर अधिक ज़ोर देना आवश्यक नहीं है। सारांश यह कि जनता अपने हृदय में सौन्दर्य की एक कल्पित धारणा बाँधे रहती है। यद्यपि वह स्पष्ट और स्थिर नहीं होती, तथापि वह रहती अवश्य है। बस, चित्रकार को उसी कल्पित सौन्दर्य के आधार पर अपने नायक और नायिकाओं को गढ़ना चाहिए, तभी वह सफल हो सकेगा। उदाहरण के लिए नायिकाओं के कपोल कोमल होना चाहिए, मुख और नाक छोटी तथा गर्दन की दमक बिखरे हुए केशों के बीच तो स्पष्ट झलक ही जाना चाहिए। किन्तु साथ ही उनका तर्ज़ ऐसा होना चाहिए जिसको तत्कालीन स्त्रियाँ स्वप्न में सुन्दर, मधुर और सरस बनने के लिए ग्रहण करना चाहती हों। इसके अतिरिक्त चित्रकार को पोशिश की ओर भी यथेष्ट ध्यान देना चाहिए। जैसे—कपड़े कदापि रेशमी कपड़ों से घटिया न हों, उनके रङ्ग भी इन्द्रधनुष के रङ्गों से टक्कर लेते हों और आभूषण उतने आभापूर्ण हों जहाँ तक चित्रकार की कल्पना की पहुँच हो। तब चित्रकार लोकप्रिय नायिका चित्रित करने में समर्थ हो सकता है। यही हाल लोकप्रिय कविता और नाटक का है।

जनता उपन्यास या नाटकों में मनुष्य-स्वभाव का वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं चाहती। यदि नाटक की नायिका एक ऐसी मनोहर, सुन्दर और सुसज्जित रमणी है जिसका महत्त्व उसके हृदय पर कोई आतङ्क नहीं जमाता और साथ ही जिसमें विलक्षण कल्पना की भी कमी नहीं है तो वह नाटक अवश्य लोकप्रिय होगा। क्योंकि उस नाटक में उसे उन फ़ेशनेबिल स्त्री-पुरुष के चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखने को मिलेंगे जिनका वह स्वप्न देखा करती है। उसके आदर्श स्त्री-पुरुष कौन हुआ करते हैं? जिनको इस कठोर पृथ्वी के कार्य-कारण एवं दुख-दर्द से कोई सम्पर्क न हो; जिनमें सौन्दर्य हो, किन्तु इतना सरल हो कि उसकी श्रेष्ठता उन्हें असह्य न हो। बस ऐसे ही विलक्षण नाटक आज कल लोकप्रिय हो सकते हैं।

जनता कल्पना और विलक्षणता चाहती है, किन्तु वह यथार्थता की विरोधक न होना चाहिए। यदि कोई चित्रकार किसी असत्य तथ्य का चित्राङ्कण करता है तो राह चलता हुआ मज़दूर भी उसको नापसन्द कर देगा। चित्र में, कविता में, मूर्त्ति में, नाटक में, उपन्यास में चाहे जितने दोष हों, किन्तु अस्वाभाविकता का दोष न होना चाहिए। इसके विरुद्ध कलाविशारद को यह भी ध्यान में रखना होगा कि वह कहीं यथार्थता और सत्यता के पीछे न पड़ जाय, अर्थात् यथार्थता और सत्यता के जोश में आकर वह यथातथ्य की अक्षरशः प्रतिलिपि न कर दे। यथातथ्य का नङ्गा चित्र तो जनता स्वयं अपनी आँखों देखा करती है। उसके लिए कला और कला-विशारदों की क्या आवश्यकता? जिस यथार्थता और सूक्ष्मता से वैज्ञानिक डाक्टर शरीर की चीड़-फाड़ करता है, यदि उसी यथार्थता और उसी सूक्ष्मता से कोई औपन्यासिक किसी कारीगर, शराबी अथवा दुराचारी का चित्र अङ्कित करे तो वह क्या पठनीय होगा, उससे उल्टी घृणा उत्पन्न होगी। इसका तो यही अर्थ हुआ कि औपन्यासिक ने गन्दगी को एक सोने के थाल में सजाकर रख दिया। यदि सोने के थाल में आने के ही कारण वह गन्दगी रुचने लगे तब तो फिर धर्म और सदाचार का ईश्वर ही मालिक है! क्या मनुष्य-जाति के चिरन्तन आदर्श योंही मटियामेट न हो जायँगे।

यह तो ठीक है कि जनता यथार्थता की प्रेमी होती है, किन्तु वह संसार की वस्तुओं को ठीक उसी रूप में नहीं देखना चाहती जिसमें वे होती हैं। वह उनसे मेल करना चाहती है, अतएव एकाकी तथ्य से उसकी सहानुभूति नहीं हो सकती। तथ्य से ही क्यों, एकाकी सौन्दर्य से, एकाकी सत्य से, एकाकी बल से, एकाकी भयङ्करता से, एकाकी पूर्णता से उसका प्रेम नहीं हो सकता। वह उनकी वेदना चाहती है, किन्तु थोड़ी ही। अत्यधिक उद्वेलित हो जाना भी उसे सह्य नहीं। न तो चित्रण ऐसा हो कि उसके हृदय को प्रभावित ही न करे, न ऐसा हो कि उस पर आतङ्क छा जाय, बल्कि ऐसा हो कि उससे उसके हृदय में एक मधुर सहवेदना का भाव जाग्रत हो।

सर्व-साधारण कला में उन्हीं चीज़ों को नहीं देखना चाहते जो वे रात-दिन देखा करते हैं। उससे उनका मनोरञ्जन होना चाहिए। न तो नायिका पेंड़ जैसी मोटी और न बाल जैसी पतली, न अत्यधिक शुष्क और न अत्यधिक गम्भीर। सारांश यह कि अन्य बातों की तरह इस क्षेत्र में भी जनता माध्यम चाहती है, तभी उसे सन्तोष होता है। जैसे रणभूमि का वर्णन इतना अधिक रक्तमय न होना चाहिए कि उससे हृदय धड़कने लगे और रोंगटे खड़े हो जायँ, चिरकाल तक विस्मरण ही न हो, इसी प्रकार चैतन्य की समाधि जैसे धार्मिक चित्र भी उसको बहुत कम पसन्द आयँगे, उसको तो राम-वनवास जैसे चित्र ही अधिक आकर्षित कर सकते हैं। जनता केवल उन्हीं कलाविशारदों से प्रसन्न रहती है जो अपने आसन से उतर कर उसके पास जाता है, उससे मिलता है और उससे अपनी सहानुभूति जोड़ता है।

इसके विरुद्ध जो कलाविशारद अपने लक्ष्य पर स्थिर रहता है, अपने मार्ग से इधर-उधर नहीं होना चाहता, वह आध्यात्मिक अनुभव भले ही प्राप्त कर ले, किन्तु लोकप्रिय होना उसके लिए असम्भव है। जनता उसकी नवीन शैली को सन्देह की दृष्टि से देखती है। क्योंकि उसके पास उसकी नवीन बातों की सचाई जाँचने के लिए उपयुक्त बुद्धि ही नहीं होती। वह सोचती है, कहीं यह धूर्त न हो और मैं इसमें पड़कर कहीं धोखा न खा जाऊँ।

इसलिए जन-साधारण की सदैव यह धारणा रहती है कि प्राचीनकला ही आदर्श कला है। नवीन कला के प्रेमियों को उसी का अनुकरण करना चाहिए। जो लोग ऐसा नहीं करते उन पर वह क्षुद्रता, स्वच्छन्दता अथवा परिवर्तन-प्रियता आदि के दोष लगाता है। उसका कहना है कि प्राचीन कलाविशारदों से बढ़ जाना नवीन कला-प्रेमियों के लिए असम्भव सा है। भला, कला की ऐसी कौन सी शैली है जो इतने दिनों तक आविष्कृत नहीं हुई है। उसकी समझ में नवीनता का प्रचार करना ख्याति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करने का सबसे उत्तम ढङ्ग है। अतएव वह इस ढोंग को पसन्द नहीं करता। वह चाहे प्राचीनकला पसन्द करे, चाहे न करे, किन्तु यह उसकी निश्चित सम्मति रहती है कि नवीन कला प्राचीन कला से नहीं बढ़ सकती।

लोक-रुचि के इस विश्लेषण से यह भले प्रकार समझ में आ सकता है कि लोक-रुचि उत्तमता और आदर्श की कसौटी नहीं है। इन दोनों के मार्ग सर्वथा पृथक् पृथक् हैं।

६—अज्ञात कवियों की रचनायें।

हिन्दू-साहित्य-शास्त्र के विद्वानों की राय है कि कविता के द्वारा चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है। यश तो होता ही है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी लोग कविता के द्वारा चतुर्वर्ग को प्राप्त कर सकते हैं। यशस्वी भी कुछ ही लोग होते हैं। हिन्दी में एक दोहा प्रसिद्ध है—

सूर सूर तुलसी शशी उडगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करहिँ प्रकास॥

यह बात सच है कि जो रस-सिद्ध कवीश्वर हैं उन्हीं के यशःशरीर को जरा और मृत्यु का भय नहीं रहता। उन्हीं की रचना अक्षय होती है। साहित्याकाश में सूर्य और चन्द्रमा की भाँति उन्हीं की कीर्ति सदैव उज्ज्वल बनी रहती है। ऐसे कवि विश्व-कवि कहलाते हैं। उनकी कृति के द्वारा संसार का असीम कल्याण होता है। वे अपने कवित्व के आलोक से संसार का मोहान्धकार दूर कर देते हैं। कुछ कवि ऐसे होते हैं जिनकी ज्योति अल्प होती है। तो भी उनसे साहित्य की शोभा-वृद्धि होती है। परन्तु अधिकांश कवियों की रचनायें थोड़े ही समय में अज्ञात हो जाती हैं। यदि उनकी कुछ कीर्ति भी हुई तो वह थोड़े ही लोगों में, एक छोटे ही क्षेत्र में, अवरुद्ध रहती है।

ऐसे लोग कवितायें लिखते क्यों हैं? एक अँगरेज़ी कवि ने लिखा है—

There is a delight in singing though none may hear.

अधिकांश कवितायें स्वान्तःसुखाय लिखी जाती हैं। उनमें कवि अपनी बातों को अपने ही लिए लिख जाता है। उन्हें यश की कामना नहीं रहती, उन्हें चतुर्वर्ग-प्राप्ति का लोभ नहीं रहता।

संस्कृत के एक कवि ने बिलकुल ठीक कहा है—

न मोक्षस्याकाङ्क्षा न च विभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।

इस कवि ने जगज्जननी से कविता द्वारा और किसी वस्तु के लिए प्रार्थना नहीं की। माँगा तो यही कि मेरा जन्म हो और मैं तुम्हारा नाम लेता रहूँ—

There is a delight in singing though none may hear.

हमें किसी हिन्दी-कवि की ऐसी ही कोई उक्ति नहीं मिली। गर्वोक्तियाँ तो सैकड़ों कवियों ने लिखी हैं, परन्तु यह इच्छा किसी ने प्रकट नहीं की कि कोई मेरी कविता को न पढ़े, परन्तु मुझे लिखने में ही आनन्द आता है। क्या कविताओं का एक-मात्र उद्देश्य कीर्त्ति है? जिनके पास अल्प स्वर्ण-कमल नहीं है वे क्या भगवती सरस्वती के चरणों में क्षण भर में कुम्हला जानेवाले, कीचड़ में उत्पन्न होनेवाले, कमल नहीं रख सकते? क्षुद्रों का तिरस्कार तो संसार करता है। क्या कोई ऐसा नहीं है जो क्षुद्र को क्षुद्र जानकर भी सम्मानित करे? जगदीश्वर के सामने भी क्या कोई छोटा-बड़ा है? अतएव क्षुद्र कवि भी कविता द्वारा उसकी आराधना कर सकते हैं। वह उनकी क्षुद्र रचनाओं की अवहेलना नहीं करेगा।

हिन्दी में ऐसे कितने ही अज्ञात कवि हैं। उनकी रचना बिलकुल कवित्व-शून्य है, यह बात नहीं है। परन्तु श्रेष्ठ कवियों की समानता न कर सकने के कारण उनकी रचना का प्रचार नहीं होता। तो भी उनकी रचना सर्वथा उपेक्षणीय नहीं है, भले ही उच्च विद्वानों की मनस्तुष्टि न हो। परन्तु उनमें उनकी अन्तर्भावना निहित है। इसी से हमारी इच्छा है कि हम यहाँ प्रति मास किसी अज्ञात कवि के कुछ पद्य प्रकाशित किया करें। हमें विश्वास है कि हमारे पाठक गुदड़ी के इन लालों की उपेक्षा नहीं करेंगे। आगे एक कवि के कुछ पद्य दिये जाते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनय-सप्तक।

काह कहौं अरु जाउँ कहाँ,
केहिसे कहिकै निज काज सँवारो।
देखौं चितै जित तेरो तितै,
निरखौ नहिं दूसर केर पँवारो॥
आरत द्वार पुकारत है,
शिवधार कुदास कुपूत तिहारो।
मेटिए खोरि कहौं कर जोरि,
बिलम्ब भई जगदम्ब निहारो॥

(२)

बासर बीत गये कितने,
अजहूँ लगिलौं कछु काज सरो ना।
कौनसी चूक परी जन सों,
जेहि कारन लेस कलेस हरो ना॥
कीजै निहाल बिहाल निरेखि कै,
देखि कै मोहित मौन धरो ना।
हे जगदम्ब सुदेर भई,
शिवधार की बेर अबेर करो ना॥

(३)

तेरो भरोस परोस सदा,
अफ़सोस यही जो कि ख्याल करै ना।
टेरत टेरत देर भई,
अजहूँ लगि लौं कछु चित्त धरै ना॥
कौनसी चूक परी जन सों,
शिवधार को दारिद दुःख हरै ना।
तोहिं बिहाय न जाउँ कहूँ,
बहु देवन में विसवास परै ना॥

(४)

राम भजै घनश्याम कोई,
शिवशङ्कर को कोइ ध्यान चढ़ावै।
कोई दिनेश औ कोई गनेश को,
कोई रमेश को दास कहावै॥
कोई रटै हनुमान बली,
शिवधार कहाँ लगि भेद बतावै।
मोहि भरोस तेरो जगदम्ब,
बिलम्ब भई जन टेर लगावै॥

(५)

सोचत हौं कर मींजि दोऊ,
जल सोंचत नैनन सों अकुलाय कै।
व्याकुल हाल बिहाल महादुख,
दारुन देह फँस्यो मुरझाय कै॥
हा शिवधार जु छोड़ै अचार,
निहार रह्यो तोहि आस लगाय कै।
आरत हौं हो पुकारत हौं,
जगदम्ब उबारत काहे न आय कै॥

(६)

जान को देत अजान को देत,
जहान को देत न भूलत धोखे।
पील पपीलन कौन गिनै नित,
मुक्तन सो कल हंसन पोखे॥
जीव जहाँ जेहि लायक जौन,
तहाँ तेहि को तस राखत चोखे।
सो शिवधार कहै अजहूँ,
जगदम्ब कहाय न मोहि को तोखे॥

(७)

अम्ब कहाय बनात नहीं,
बिन मात कहाँ सुत आनँद पावत।
भाँति अनेक करै नित पोषण,
पूत कपूत नहीं मन लावत॥
सङ्कट कोटि हरै जन के,
शिवधार कहै यह वेद बतावत।
मोहि पुकारत बेर भई,
जगदम्ब सुनै नहिं देर लगावत॥

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २६, खण्ड १] फ़रवरी १९२५—माघ १९८१ [संख्या २, पूर्ण-संख्या ३०२

वह छवि।

(१)

मञ्जुल मयङ्क में, मयङ्कमुखी आनन में,
वैसी निष्कलङ्क कान्ति देती न दिखाई है।
दृग झप जाते देख पाते हम कैसे उसे,
ऐसी प्रभा किसने प्रभाकर में पाई है?
न्यारी तीन लोक से है प्यारी सुखकारी भारी,
सारी मनहारी छटा उसमें समाई है।
जिसको विलोक फीकी शरद-जुन्हाई होती,
वह मन भाई छवि किसको न भाई है?॥

(२)

नित्य नई शोभा दिखलाती ललचाती वह,
किसमें सलोनी सुघराई कहो ऐसी है?।
केतकी की, कुन्द की, कदम्ब की कथा है कौन,
कल्पलतिका में कहाँ कान्ति उस जैसी है?
रति में रमा में रमणीयता कहाँ है वैसी,
कनकलता में कमनीयता न वैसी है।
छहर छहर छहराती है छबीली छटा,
अहा! वह सुघर सजीली छवि कैसी है?॥

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

सुषमा उसी की अवलोक के सुधाकर में,
रूप-सुधा पीकर चकोर न अघाते हैं।
घन की घटा में नव निरख उसी की छटा,
मञ्जुल मयूर होते मोद मद माते हैं।
फूल में उसी की शोभा देख के मिलिन्द-वृन्द,
फूले न समाते "गुन-गुन" गुण गाते हैं।
दीप्यमान दीपक में देख वही छवि बाँकी,
प्रेम से प्रफुल्लित पतङ्ग जल जाते हैं॥

(४)

उसको विलोक दामिनी है छिप जाती शीघ्र,
अति मन भावनी भी भामिनी लजाती है।
उसके समीप दीप-मालिका न भाती ज़रा,
मञ्जु मणि-मालिका भी नेक न सुहाती है।
निज हीनता है मोतियों से सही जाती नहीं,
उनकी हँसी से छिद जाती क्या न छाती है?
वह छवि देख देख दृष्टि तृप्ति पाती नहीं,
मानो स्वयं प्रेम-वश उसमें समाती है॥

(५)

कञ्जकलिका में कमनीयता न इन्दु की है,
कोमलता कञ्ज की मयङ्क ने न पाई है।
चम्पक कली में न सुवर्ण की सुवर्णता है,
चम्पक की चारुता सुवर्ण में न आई है।
रत्न की रुचिरता में मणि की मनोज्ञता में,
एक दूसरे की आभा देती न दिखाई है।
सबकी निकाई सुघराई मोददायी महा,
ललित लुनाई उस छवि में समाई है॥

(६)

तेजधारियों में है कृशानु का भी मान बड़ा,
किन्तु भानु सबसे महान तेजवान है।
पादपों में पारिजात पर्वतों में हिमवान,
नदियों में जान्हवी मनोज्ञता की खान है।
मोर सा मनोहर न कोई खग रूपवान,
फूल कौन दूसरा गुलाब के समान है,
यद्यपि सभी हैं उपमान इन्हें मान चुके,
किन्तु उस छवि सा न कोई छविमान है॥

(७)

वन उपवन में सरोज में सरोवर में,
सुमन सुमन में उसी की सुघराई है,
चम्पक चमेलियों में नवल नवेलियों में,
ललित लताओं में भी उसकी लुनाई है।
पाई जाती वही रङ्ग रङ्ग के विहङ्गमों में,
कान्ति-पुञ्ज कुञ्ज कुञ्ज में वही समाई है।
जहाँ देखो वहाँ वही छवि दिखलाई देती,
उर में समाई तथा लोचनों में छाई है॥

गोपालशरणसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर और बिहारी।

महाकवि बिहारीलाल जैसे प्रतिभाशाली कवि थे वैसे ही उनका कला-कौशल भी उच्च कोटि का था। यह कहना कि 'सतसई' हिन्दी-साहित्य का भूषण है उसी बात को बार बार दुहराना है। बिहारीलाल के दोहों की सबसे बड़ी ख़ूबी यही है कि वे एक बड़ी सी बात थोड़े से शब्दों में ऐसी उत्तमता से कह डालते हैं कि चित्त प्रसन्न हो जाता है। भाव को समासरूप से अभिव्यक्त कर सकना बिहारीलाल की विशेषता है। इस विशेषता में वे प्रायः अद्वितीय हैं। दो-चार कवि ऐसे अवश्य हैं जिनके कुछ छन्द इस गुण में भी बिहारी के दोहों से सफलतापूर्वक टक्कर ले सकते हैं, पर उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। हिन्दी के उन पुराने कवियों में जिन्होंने दोहा-सदृश छोटे छन्दों में कविता की है, भाव को थोड़े शब्दों में जैसा बिहारी ने निभाया है वैसा और किसी से भी नहीं बन पड़ा है। उनके दोहों को सरसरी तौर से पढ़ते हुए यह बात स्पष्ट दिखलाई देती है। टीकाओं की सहायता से तो यह कवि-कौशल और भी समुज्ज्वल झलकता है। कृष्ण कवि के घनाक्षरी और सवैया छन्दों के साथ अथवा पठान सुलतान की कुण्डलियों के साथ बिहारी के दोहे पढ़िए तो आपको उनकी समासरूप से वर्णन करने की चतुरता का पता लगेगा। महाकवि के इस हस्तलाघव की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है।

जैसे महाकवि बिहारी समासरूप से वर्णन करने में प्रायः अद्वितीय हैं, वैसे ही महाकवि सूरदास व्यासरूप से वर्णन करने में अनुपम हैं। जिस किसी वर्णन को वे उठाते हैं उसके विषय में सब कुछ साङ्गोपाङ्ग कह डालते हैं। कोई बात कहने को बाक़ी नहीं छोड़ते और तारीफ़ यह कि पाठक या श्रोता का जी नहीं ऊबने पाता। वह इस व्यास-वर्णनरूपी विस्तृत सरोवर में बराबर डुबकियाँ लगाते रहने के लिए लालायित बना रहता है। कहने का तात्पर्य यह कि उनके ऐसे व्यास-वर्णनों में केवल कोरी रूखी-सूखी बातें ही नहीं गिना दी जाती हैं, बरन वे सभी बातें कवित्व-गुण से मण्डित रहती हैं, और इसी कारण हृदय को सदा अपने वश में रखती हैं। सूरदास का सुधारस घड़ों पीते चले जाइए, पर आपकी तृप्ति कभी भी न होगी और आश्चर्य इस बात का होगा कि पेट भी न फूलेगा। सूर और बिहारी की व्यास और समासरूप से वर्णन करनेवाली शैलियों में आकाश-पाताल का अन्तर है। इनका पार्थक्य, इनकी महत्ता और इनका कौशल देखने का एक सरल उपाय है और वह है कुछ सदृश वर्णनों को चुन लेना और उन पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करना। यहाँ हम पाठकों के मनोरञ्जन के लिए कुछ ऐसे वर्णन लेते हैं जिनमें वही भाव सूर ने व्यासरूप से और बिहारी ने समासरूप से प्रकट किया है। यह ठीक है कि सूर पूर्ववर्ती और बिहारी परवर्ती कवि हैं, पर दोनों प्रकार के वर्णनों को देखकर कोई यह नहीं कह सकता है कि बिहारी ने केवल सूर के वर्णन का संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित किया है। बात वही होने पर भी बिहारी ने अपने व्यक्तित्व की रक्षा की है और भाव-सहित दोहा बिहारीलाल की निजी सम्पत्ति है।

(१)

हरि हौं सब पतितन को राव,
को करि सकै बराबरि मेरी सोधौं मोंहि बताव;
व्याध गीध अरु पतित पूतना तिनमैं बढ़ि जो और;
तिनमें अजामील गनिका पति उनमें मैं सिरमौर;
जहँ तहँ सुनियत यहै बड़ाई सो समान नहिँ आन;
अब जो आजु काल्हि के राजा तिनमैं मैं सुलतान;
अब लौं तौ तुम बिरद बुलायो भई न मों सों भेंट;
तजौ बिरद कै मोंहि उधारो सूर गही कसि फेंट।

सूरदास

कौन भाँति रहिहै बिरद अब देखबी मुरारि।
बीधे मोंसों आनि कै गीधे गीधहितारि।

बिहारीलाल

सूरदास ने अपने को पतितों का राजा कैसे मज़े में कह डाला, अजामिल, गणिका, व्याध, गीध आदि सबका स्मरण करा दिया और फिर सबके सुलतान बन बैठे। फिर 'सुलतानी ऐंठ' का सहारा लेकर व्यङ्गपूर्ण और भक्ति में डूबी हुई वह बात कह डाली जो लाजवाब है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निम्नलिखित पक्तियों में जो ललकार भरी हुई है वह अपूर्व है—

अब लौं तौ तुम बिरद बुलायो भई न मों सों भेंट;
तजौ बिरद कै मोंहि उधारौ सूर गही कसि फेंट।

युद्ध के लिए 'सूर' का फेंट कसना कितना स्वाभाविक है? 'सूर' में शूरता (chivalry) का जो भाव है वह कितना सुन्दर है? उसी शब्द-द्वारा कवि नाम का भी निर्देश हो जाना कितना मार्के का है। सम्पूर्ण पद्य में सब बात खोल कर कही गई है, प्रत्येक पहलू से विचार किया गया है, खूब विस्तृत वर्णन है, पर क्या मजाल कि तबीयत ऊब जाय। यही लालसा बनी रहती है कि इस ललकार की लीला को बराबर देखते रहें। बिहारीलाल भी वही बात कहते हैं, परन्तु इनकी आनबान निराली है। बात वही है पर कहने का ढँग दूसरा है। सूर ने जो व्यास-रूप से कहा है, बिहारी ने वही समास-रूप से दिखलाया है।

(२)

तुम कब मोसो पतित उधारयो,
काहे को प्रभु बिरद बुलावत बिन मसकत को मारयो;
गीध, व्याध, गज, गौतम की तिय तिनको कहा निहोरो;
गनिका तरी आपनी करनी नाम भयो प्रभु तोरो;
अजामील तो विप्र तुम्हारो हुतो पुरातन दास;
नेक चूकते यह गति कीन्हीं फिर बैकुण्ठहि बास;
पतित जानि तुम सब जन तारे रह्यो न काहू खोट;
तो जानो जो मोंहि तारिहौ 'सूर' कूर कवि ढोट।

सूरदास

बन्धु भये का दीन के? को तारयो रघुराय?
तूठे तूठे फिरत हौ झूठे बिरद बुलाय।

बिहारीलाल

दोनों कवियों की एक ही शिकायत है। पहले के पतितों का उद्धार करने के कारण 'प्रभु' या 'रघुराय' की हँसी उड़ाई गई है। उस सम्बन्ध में उनकी जो प्रशंसा है वह एक कवि की राय में बिना मशक्कत (बिन मसकत) के—व्यर्थ में—मिल गई है। दूसरे कवि की राय में भी वह 'बिरद' झूठा है। दोनों कवियों ने दृढ़ता के साथ आह्वान किया है कि यदि सामर्थ्य हो तो आवो, हमारा उद्धार करो। एक कवि की लेखनी ने वही बात थोड़े से शब्दों में लिख डाली है और दूसरे ने उसी को बहुत से शब्दों में कहा है। पर बात एक ही है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

(३)

आजु हौं एक एक करि टरिहौं,
कै हम हीं कै तुम हीं माधव अपुन भरोसे लरिहौं;
हौं तौ पतित अहौं पीढ़िन को पतितै ह्वै निस्तरि हौं;
अब हौं उघरि नचन चाहत हौं तुम्हैं बिरद बिनु करिहौं;
कत अपनी परतीत नसावत मैं पायों हरि हीरा;
सूर पतित तब हीं लै उठि है जब हँसि देहौ बीरा।

सूरदास

मोहिँ तुम्हैं बाढ़ी बहस को जीतै जदुराज;
अपने अपने बिरद की दुहुन निबाहन लाज।

बिहारीलाल

उद्धार चाहनेवाले भक्त और भगवान् के बीच में कैसी प्रेममयी भावना है। भक्त अपने पापों को छिपाता नहीं है। उनके लिए पश्चात्ताप भी नहीं करता है। उसे अपनी सच्ची भक्ति पर इतना अधिक विश्वास है—वह समझता है कि भगवान् के श्रीचरणों में मैंने अपने आपको इतने निष्कपटरूप से अर्पण कर दिया है—कि उसकी समझ में यह बात आती ही नहीं है कि भगवान् मेरा मोक्ष क्यों न करेंगे। सूरदास ने इस भाव को अपूर्व कौशल से चित्रित किया है। 'बिहारीलाल' और उनके 'जदुराय' के बीच में भी यही उलझन है। दोनों—भक्त और भगवान्—अपने 'बिरद' को बनाये रखने के लिए सन्नद्ध हैं, यह नहीं कहा जा सकता कि जीत किसकी होगी। पर सूर को अपने 'निस्तार' के सम्बन्ध में कुछ अधिक आत्म-विश्वास दिखलाई पड़ता है।

(४)

नृत्यत स्याम स्यामा हेत,
मुकुट लटकनि भ्रकुटि मटकनि नारि मन सुख देनि;
कबहुँ चलत सुगंध गति सौं कबहुँ उघटत बैन;
लोल कुंडल गंड मंडल, चपल नैननि सैन;
स्याम की छवि देखि नागरि रही इकटक जोहि;
सूर प्रभु उर लाय लीन्हों प्रेम गुन करि पोहि।

सूरदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भृकुटी मटकनि पीत पट चटक लटकती चाल;
चल चख चितवनि चोरि चित लियो बिहारीलाल।

बिहारीलाल

दोनों ही पद्यों के भाव बिलकुल एक ही हैं। दोनों में 'श्याम' अथवा 'बिहारी' ने अपनी अङ्ग-भङ्गी के प्रभाव से मोहनी को वश में कर लिया है। सूर का वर्णन बड़ा है, पर क्या उसके पढ़ने से चित्त ऊबता है? नहीं। बिहारी का वर्णन छोटा है, पर क्या इससे आनन्द में कुछ कमी आती है? नहीं। अवश्य ही सूर के 'पद' में सङ्गीत का समावेश विशेष है।

(५)

आजु बनी वृषभानु कुमारी;
गिरिधर वर राधा तू नारी।
हम सों करत दुराव वृथा री;
इन बातन तू लहति कहा री।
आलस अंग, मरगजी सारी;
ऐसी छवि कहि काल्हि कहां री।
सूरदास छवि पर बलिहारी;
धन्य धन्य तुम दोउ बरनारी।

सूरदास

नटिन सीस साबित भई, लुटी सुखन की मोट;
चुप करिये चारी करत, सारी परी सरोट।

बिहारीलाल

इन दोनों पद्यों में भी बिलकुल एक ही बात का वर्णन है। 'मरगजी सारी' अथवा 'सरोट परी सारी' (जिस साड़ी में व्यवहार में आने से सिकुड़न पड़ गई हो) के द्वारा सखी को मालूम हो जाता है कि श्रीकृष्ण और राधिका का समागम हुआ है। पर राधिकाजी इस बात से इनकार करती हैं। तब हँसी से भरी हुई मीठी फटकार के आश्रय में सखी दली-मली साड़ी की ओर इशारा करके सब बात साफ़ साफ़ कह देती है। सूरदास का वर्णन परम मनोहर है, पर बिहारी का शब्द-सङ्गठन भी अनूठा है। दोनों वर्णनों को पढ़कर 'को बड़ छोट कहत अपराधू' वाली चौपाई याद आती है। हमें बिहारी के दोहे में व्यङ्ग्य का बल कुछ अधिक दीखता है, साथ ही उसमें एक अनोखा तीखापन भी है। सूर में माधुरी अधिक है और सखी के परिहास में लुनाई और आनन्द भी विशेष है।

महाकवि सूर और बिहारी की समास और व्यासरूप से वर्णन करने की जिन दो शैलियों का हमने ऊपर उल्लेख किया है, हमें आशा है कि ऊपर दिये हुए इन पाँच उदाहरणों से पाठकगण उनके भेद को भली भाँति समझ गये होंगे। उस विषय में हम अब और कुछ नहीं लिखना चाहते। हाँ, एक बात की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। सूरदास भक्ति-प्रधान कवि थे और बिहारी शृङ्गार-प्रधान। ऊपर हमने जो पद्य दिये हैं उनको यदि ध्यान से देखा जाय तो उनसे भी यह बात भली भाँति प्रमाणित होती है। सूर ने प्रथम तीन पदों में भक्ति की जो निर्झरिणी प्रवाहित की है उसमें बिहारी के दोहों की अपेक्षा कहीं अधिक वेग है। उधर अन्तिम दो पदों में जो शृङ्गारमय वर्णन है वह बिहारी के दोहों को शृङ्गार के विकास में दबा नहीं पाता। हाँ, एक बात अवश्य है। सूर की रचना में यह बात स्पष्ट झलकती है कि यह शृङ्गारमय प्रेम ईश्वर के प्रति है। बिहारी में यह बात स्पष्ट नहीं है। सो इन शृङ्गारमय वर्णनों से भी सूर की भक्ति-प्रधानता स्पष्ट हो जाती है।

भावों की मौलिकता के विषय में भी विचार कीजिए। माना कि सूर के पूर्ववर्ती कवि होने के कारण कुछ लोग बिहारीलाल की ओर अँगुली उठावेंगे कि उन्होंने सूर के भाव लिये हैं। ऐसा हो भी सकता है। पर यही भाव श्रीमद्भागवत जैसे संस्कृत के ग्रन्थों में भी मौजूद हैं। लोग सूरदास की ओर भी उँगली उठाकर कह सकते हैं कि सूर ने व्यासजी के भाव लिये हैं। सम्भव है बिहारी ने भी अपने भाव वहीं से पाये हों ऐसी दशा में उन पर भावापहरण का अभियोग न लगना चाहिए। एक समालोचक की ऐसे सदृश-वर्णनों के सम्बन्ध में कुछ और ही राय है। उनका कहना है कि ऐसे सदृश-वर्णनों से Spirit of the age का पता चलता है। सभी कवि अपने आप ऐसे वर्णन लिखने लगते हैं। कोई एक दूसरे की चोरी नहीं करता। सम्भव है, इस कथन में भी सार हो। पर तब ऐसे सदृश-वर्णनों से किसी कवि-विशेष की महत्ता नहीं दिखलाई जा सकती। एक बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और है। ऐसे सदृश-वर्णनों को अलग निकाल डालने से कई महाकवियों के अपने निज के वर्णन बहुत थोड़े रह जायँगे और वे सर्वतोभावेन Spirit of the age में डूब कर रह जायँगे। यह तो ख़ैर प्रकारान्तर की बात हुई। ऊपर हमने जो कुछ निवेदन किया है उसका सारांश यह है कि सूर-बिहारी के बहुत से भाव समान हैं। उनकी वर्णनशैली भिन्न भिन्न प्रकार की है। एक वही बात विस्तार के साथ कहता है और दूसरा संक्षेप से। पर ऐसी विषमता के रहते भी दोनों अपने व्यक्तित्व, कवित्व-चमत्कार तथा रोचकता की रक्षा करने में समर्थ होते हैं। इन दोनों कवियों की रचनाओं में भक्ति और शृङ्गार की प्रधानता है। सूर का शृङ्गार भक्ति-रस में स्पष्टरूप से सराबोर है। दोनों कवियों की मौलिकता के सम्बन्ध में विवाद न उठाना चाहिए। पाँच उदाहरण देकर यह सब बातें दिखलाई गई हैं।

कृष्णबिहारी मिश्र, बी० ए०, एल०-एल० बी०

महाराज मानसिंह।

अकबर पायो भगवंत के तनय सों मान
बहुरि जगतसिंह महा मर्दाने सों।
'भूषन' यों पायो जहाँगीर महासिंह जू सों
शाहजहाँ पायो जयसिंह जगजाने सों॥
अब अवरङ्गजेब पायो रामसिंह जू सों
औरौ दिन दिन पैहै कूरम के माने सों।
केते रावराजा मान पावैं पातसाहन सों
पावे पातसाह मान मान के घराने सों॥

स्तुतः कविता-कानन-केसरी महाकवि भूषण की उक्ति अक्षरशः सत्य है और इसके साक्षी कट्टर मुसलमानों-द्वारा लिखित फ़ारसी के इतिहास तक हैं। मुग़ल-सम्राट् अकबर के राज्य तथा साथ साथ उनकी सुकीर्ति का विस्तार समग्र उत्तरापथ तथा अफ़ग़ानिस्तान में महाराज मानसिंह ने किस प्रकार किया था यह उनके इस संक्षिप्त जीवन-चरित से पूर्णतया प्रकट हो जायगा। इनके प्रसिद्ध उत्तराधिकारियों की उन कृतियों का उल्लेख भी समय समय पर इस पत्रिका में अवश्य किया जायगा जिनसे इस कवित्त की अतिशयोक्ति का पूर्णरूप से समर्थन होता रहेगा।

जयपुर का राजवंश भारत के उन इने-गिने प्राचीन राजवंशों में है जिनका आरम्भ अँगरेज़ी इतिहासज्ञों के माने हुए पूर्वेतिहास-काल में हुआ होगा। वाल्मीकीय रामायण के जिन चरित्रनायक और अयोध्या-नरेश महाराज रामचन्द्र को हिन्दू-मात्र आदर्श पुरुष और ईश्वरावतार मानते हैं, उनके पुत्र कुश के वंशधर कुशावह या कछवाहा कहलाये। इस प्रकार यह राजवंश सूर्यवंश के अन्तर्गत है और चार सहस्र वर्ष से अधिक प्राचीन है। कहा जा सकता है कि भारत के ये प्राचीन राजवंश संसार के सभी अन्य राजवंशों से प्राचीनता में घट कर नहीं हैं, पर हाँ, इसी प्राचीनता के ही कारण से जराग्रस्त होने से शिथिल हो पड़े हैं।

जिस समय दिल्ली के राजसिंहासन पर सम्राट् अकबर आसीन हुए उस समय जयपुर की राजगद्दी पर राजा भारामल * शोभायमान थे। ये सूर्यवंशावतंस महाराज रामचन्द्र के पुत्र कुश के वंशधर होने के कारण कुशावह या कछवाहा कहलाते थे। इसी वंश में धौलराय हुए, जिन्होंने आमेर या जयपुर-राज्य की स्थापना की। इनकी १८ वीं पीढ़ी में पृथ्वीराज कछवाहा हुए, जिनके पुत्र राजा भारामल थे। कछवाहों में राजावत और शेखावत नाम के दो विभाग हैं, जिनमें जयपुर-राजवंश की शाखा राजावत कहलाती है। राजा भारामल ही प्रथम राजपूत

---

* उर्दू अक्षरों में जिस प्रकार यह नाम लिखा जाता है उससे यह नाम बिहारामल, बहारामल, भारामल आदि कितने ही प्रकार से पढ़ा जा सकता है। मौलाना आज़ाद ने तो 'दरबारे अकबरी' में भाड़मल तक लिख मारा है। बिहार भी जो एक प्रान्त का नाम है, ठीक उसी प्रकार लिखा जाता है। मुझे भी बिहारीमल नाम ही ठीक समझ पड़ता है, जैसा टाड साहब ने अपनी पुस्तक राजस्थान में लिखा है। परन्तु राजस्थान के निवासी इतिहासज्ञ विद्वानों—मुंशी देवीप्रसाद और पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—के कथनानुसार भारामल उच्चारण ही ठीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा थे, जिन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकार की थी। हुमायूँ की मृत्यु पर जब चारों ओर अशान्ति विराज रही थी उस समय शेरशाह सूरी के एक दास हाजीख़ाँ ने विद्रोह कर नारनौल घेर लिया, जहाँ के जागीरदार मजनूख़ाँ क़ाक़शाल से राजा भारामल की मित्रता थी। इनके मध्यस्थ होने से शान्ति स्थपित हो गई और हेमू के मारे जाने पर मजनूख़ाँ ने इनकी इस सेवा का वर्णन अकबर से कर दिया। अकबर ने इन्हें बुलाने के लिए आज्ञापत्र भेजा, जिस पर ये अकबर के जुलूस के प्रथम वर्ष के अन्त में दरबार पहुँचे। जिस दिन ये बिदा होकर अपने राज्य को लौटने को थे उस दिन अकबर एक मस्त हाथी पर सवार होकर सेना का निरीक्षण कर रहे थे और वह हाथी जिस ओर झूम कर आता था उस ओर के मनुष्य काई की तरह फटकर भागते थे। एक बार वह कछवाहों की ओर भी झुका, पर वे दृढ़ता से हिले तक नहीं, जिस पर अकबर को आश्चर्य और हर्ष दोनों हुए।

जब संवत् १६१६ में अकबर मुईनुद्दीन चिश्ती के रौज़ा का दर्शन करने अजमेर गये थे तब कलाली ग्राम में चग़त्ताख़ाँ ने बादशाह से प्रार्थना की कि मालवा के सूबेदार मिर्ज़ा शरफ़ुद्दीन ने आमेर पर चढ़ाई की है, जिससे राजा भारामल ने पर्वतों के घाटियों का रास्ता रोक लिया है। अकबरनामे में राजा भारामल के चारे भाइयों का नाम दिया है—पूरनमल, रूपसी, आसकरन और जगमल। पूरनमल राजा भारामल से बड़ा था। उसका पुत्र सूजा स्वयं आमेर की राजगद्दी पर बैठना चाहता था। उसी के बहकाने से शरफ़ुद्दीन ने यह चढ़ाई की थी और राजा के पुत्र जगन्नाथ, आसकरन के पुत्र राजसिंह और जगमल के पुत्र कंगार को क़ैद कर लिया था। अकबर ने राजा को आज्ञापत्र भेजा कि आप मेरे पास चले आवें। देवसा में पहले रूपसी का पुत्र जयमल बादशाह के पास आया और कहने पर अपने पिता को भी लिवा लाया। साँगानेर में राजा भारामल भी सपरिपार बादशाह के पास आया, जहाँ इनका अच्छा स्वागत हुआ। इसी वर्ष बादशाह के बहुत अनुरोध करने पर राजा भारामल ने अपनी पुत्री का बादशाह से विवाह कर दिया और इसी सम्बन्ध से अकबर मानसिंह के फूफा हुए। राजा भारामल को पाँच हज़ारी मंसब मिला और इनके पुत्र राजा भगवानदास तथा पौत्र कुँवर मानसिंह बादशाह के साथ आगरे गये।

राजा भारामल के कई पुत्र थे, जिनमें राजा भगवानदास, जगन्नाथ और सिलहदी ने बादशाह की सेवा की थी। तीन अन्य पुत्रों का नाम सूरतसिंह, माधोसिंह और जगतसिंह मिलता है। राजा मानसिंह जगतसिंह के पुत्र थे। राजा भगवानदास ने अकबर से और भी घनिष्ठता बढ़ाई तथा अपनी पुत्री का विवाह सुल्तान सलीम से कर दिया। इन्होंने ईडर के राणा को समझा कर अकबर की अधीनता स्वीकार कराई और उसके पुत्र अमरसिंह को दरबार में लिवा लाये। इन्हें संवत् १६४२ में पाँच हज़ारी मंसब मिला और ये ज़ाबुलिस्तान के सूबेदार नियुक्त हुए। जब ये ख़ैराबाद में ठहरे हुए थे तभी इन्हें उन्माद रोग हो गया और इन्होंने अपने को ही आप घायल कर लिया। शाही हकीमों की दवा से ये कुछ दिन में अच्छे हो गये। इसके दो वर्ष अनन्तर ये लाहौर में राजा टोडरमल की मृत्यु के चार ही दिन बाद स्वर्ग को पधार गये।

राजा भगवानदास या भगवन्तदास पुत्र-हीन थे। इससे इन्होंने अपने भ्रातृपुत्र कुँअर मानसिंह को दत्तक ले लिया और यही जयपुर की गद्दी के अधिकारी हुए। अकबर ने मानसिंह को, जब वे अपने पिता के साथ संवत् १६१६ में आगरे आये थे, तभी उनकी तीव्र बुद्धि और वीरता पर प्रसन्न होकर उन्हें सेनाध्यक्ष की पदवी दी थी और उन्होंने क्रमशः अपने सेनापतित्व की योग्यता का परिचय देते हुए अपना नाम मुग़ल-साम्राज्य के प्रधान स्तम्भों की सूची के सिरे पर लिखा लिया था।

वस्तुतः मानसिंह का सेनापतित्व और उनकी योग्यता इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि वे अकबरी नवरत्नों में परमोज्ज्वल हीरक समझे जाते थे। उस समय मुग़ल-साम्राज्य में उनके समान कोई रणकुशल सेनापति नहीं था। यद्यपि मुग़ल-साम्राज्य को दृढ़तर करने में उन्होंने बड़ी योग्यता दिखलाई, अपने स्वामी मुग़ल-सम्राट् अकबर पर प्राण तक निछावर करने को उद्यत रहे और कितने ही युद्धों में अपने रणकौशल और वीरता का पूर्ण परिचय दिया, तथापि उनका नाम उनके देश के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झिलमिलाता हुआ नहीं दिखलाई देता है। यद्यपि प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह उनसे पराजित हुए थे और राणा ने केवल अपने राज्य और अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा-मात्र अपने राज्य में ही बैठकर करने का प्रयत्न किया था, तो भी इनका नाम प्रत्येक भारतवासी के हृदय में आज भी अङ्कित है। परन्तु जिन राजा मानसिंह की तलवार की चमक से अफ़ग़ानिस्तान के कट्टर अफ़ग़ानों की आँखें झप जाती थीं, जिनकी विजयवाहिनी की लौह-झनकार हिरात से ब्रह्मपुत्र तक और काश्मीर से नर्मदा तक सुनाई पड़ती थी उनके नाम की कान्ति इस प्रकार क्यों फीकी पड़ गई? इसका कारण सहज में ही मालूम पड़ जाता है। राजा मानसिंह मुग़ल-सम्राट् अकबर के गले में पड़ी हुई नवरत्न की तख़्ती के केवल एक जटित परमोज्ज्वल पर निर्जीव रत्न-मात्र थे और महाराणा प्रताप अकबर के समान ही एक सजीव पुरुष थे, जो निर्धन होने के कारण नवरत्न की तख़्तियाँ नहीं धारण कर सकते थे।

संवत् १६२६ में जब बादशाह गुजरात विजय को गये थे तब वे राजा भगवानदास और मानसिंह को भी साथ ले गये थे। बादशाह सिरोही से आगे जब डीसा-दुर्ग पहुँचे, जो पाटन से बीस कोस इधर है, तब समाचार मिला कि शेरख़ाँ फ़ौलादी अपनी सेना और परिवार के साथ ईडर जा रहा है। बादशाह ने कुँवर मानसिंह को सेना-सहित उसका पीछा करने भेजा। बादशाह पाटन पहुँचे थे कि ये भी अफ़ग़ानों को परास्त कर बहुत लूट के माल के साथ वहाँ पहुँच गये *। उसी वर्ष के अन्त में पाटन में गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़र-शाह ने अपना राज्य बादशाह को सौंप दिया। गुजरात-प्रान्त के कुछ मिर्ज़े थोड़े सैनिकों के साथ सूरत-दुर्ग से निकल कर अपनी सेना से मिलने आ रहे थे, जिन्हें पकड़ने की इच्छा से बाहशाह ने उनका पीछा किया। सर्नाल ग्राम में मुठभेड़ होगई। बादशाह के पास केवल डेढ़ सौ सैनिक थे और शत्रु एक सहस्र के लगभग थे। दोनों सेनाओं के बीच में महीन्द्री नदी थी, इसलिए बादशाह ने मानसिंह को हरावल नियत करके पार उतरने की आज्ञा दी। कुल शाही सवार नदी-पार हो गये, जिन पर गुजराती मिर्ज़ों के मुखिया मिर्ज़ा इब्राहीम ने धावा किया। शाही सेना पीछे हट आई, पर नागफ़नी के झंखाड़ दोनों ओर होने के कारण शत्रु के तीन ही सवार आगे बढ़ सकते थे। इधर स्वयं बादशाह, राजा भगवानदास और कुँवर मानसिंह सबके आगे थे और द्वन्द्व-युद्ध में कई शत्रुओं को मार कर और एकाएक धावा करके शत्रु को भगा दिया। इसी के अनन्तर सूरत टूटा और गुजरात विजय हो गया। बादशाह ने ख़ाने आज़म मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया और स्वयं राजधानी लौट आये *।

१८ वें वर्ष में बादशाह ने कुँवर मानसिंह को ससैन्य ईडर के रास्ते से डूंगरपुर भेजा। यहाँ के तथा आस-पास के राजाओं ने विद्रोह किया था, जिन्हें दमन करने को यह सेना भेजी गई थी। इन्होंने वहाँ पहुँच कर उन लोगों को पूर्णतया पराजित किया और उन लोगों के बादशाह की अधीनता स्वीकार कर लेने पर ये आज्ञानुसार उदयपुर होते हुए आगरे को चले।† जब ये रास्ते में उदयपुर की सीमा पर पहुँचे तब महाराणा प्रतापसिंह को अपना आतिथ्य करने के लिए कहलाया। वे उस समय कुम्भलमेर दुर्ग में थे, पर मानसिंह के स्वागत के लिए उदय-सागर झील तक आकर उन्होंने वहाँ भोज का प्रबन्ध किया। राणा भोजन के समय स्वयं नहीं आये और अपने पुत्र को अतिथि-सत्कार करने के लिए भेज दिया। मानसिंह इसका अर्थ समझ गये थे तब भी एक बार कहलाया पर निष्फल। अन्त में इन्होंने भोजन नहीं किया और मेवाड़ पर चढ़ाई करने की धमकी देकर चले गये। बादशाह के पास पहुँचते ही इन्होंने कुल बातें कुछ नोन-मिर्च लगाकर कह दीं, जिस पर बादशाह बड़े क्रोधित हुए और यह विचार कर कि जिस जाति-द्वेषरूपी अग्नि को उन्होंने नम्रता पुरस्कारादि-रूपी सौ सौ पानी से बुझाने का प्रयत्न किया वह

* इलि० डाड० जि० ५ पृ० ३४२।

* तारीख़े गुजरात, अबूतुराब वसी कृत, पृ० ७४-६।

† अकबरनामा, इलि० डाड० जि० ६ पृ० ४२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं फिर न भड़क उठे, चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी*। सुलतान सलीम† कुँवर मानसिंह और सागरजी के वर्ण-शङ्कर पुत्र महावतख़ाँ‡ के अधीन भारी सेना मेवाड़ पर भेजी गई। प्रसिद्ध हल्दीघाट के मैदान में बड़ा घोर युद्ध हुआ, जिसमें महाराणा की बड़ी इच्छा मानसिंह से द्वन्द्व-युद्ध करने की थी। परन्तु उस घमासान में ऐसा अनुकूल अवसर नहीं प्राप्त हो सका। युद्ध के धक्कमधक्का में महाराणा सुलतान सलीम के हाथी के पास पहुँच गये और उस पर उन्होंने अपना बर्छा चलाया। यदि महावत और अम्बारी का लौह-स्तम्भ बीच में न पड़ जाता तो अकबर बादशाह को पुत्र-शोक अवश्य उठाना पड़ता। हाथी भागा और दोनों ओर के वीर यहाँ जी तोड़ कर लड़े। इसी समय राजा रामशाह ग्वालियरी ने स्वामिभक्ति का आदर्श दिखलाया था। जब उसने देखा कि मुसलमान-सेना बड़े वेग से राणा पर टूट पड़ी है तब उन्होंने राणा के छत्रादि राजचिह्न को बलात् छीन दूसरी ओर का रास्ता लिया। मुसलमानी-सेना महाराणा को उस ओर भागता समझ कर उधर ही टूटी, जिससे अत्यन्त घायल राणा प्रताप को युद्धस्थल से निकल जाने का अवसर मिल गया। रामशाह अपने पुत्रों के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ। अन्त में महाराणा की सेना को अगणित मुग़ल-सैन्य के आगे पराजित हो भागना पड़ा। बाईस सहस्र राजपूत वीरों में से केवल आठ सहस्र बच कर निकल जा सके थे। यह युद्ध श्रावण कृष्ण ७ संवत् १६३२ को हुआ था।

वर्षा के आजाने के कारण मेवाड़ का युद्ध रुक गया था, पर उसके व्यतीत होते ही फिर आरम्भ हो गया। बादशाह स्वयं ससैन्य अजमेर पहुँचे और कुँवर मानसिंह को सेना देकर मेवाड़ भेजा। माघशुक्ला ७ संवत् १६३३ को महाराणा फिर से परास्त होने पर कुम्भलमेर दुर्ग में जा बैठे, जिसे शहबाज़ख़ाँ कंबू ने घेर लिया। इसके साथ राजा भगवानदास, कुँवर मानसिंह आदि सरदार भी गये थे। दैवात् दुर्ग की एक बड़ी तोप के फट पड़ने से मैगज़ीन में आग लग गई। बादशाही सेना यह देखते ही झट घबरा कर पहाड़ी पर चढ़ गई। फाटक पर राजपूतों ने बड़ी वीरता से इन्हें रोका और घमासान युद्ध के अनन्तर वे वीरगति को प्राप्त हुए। दुर्ग पर अधिकार हो गया और शहबाज़ख़ाँ ने ग़ाज़ीख़ाँ को वहाँ का अध्यक्ष नियत किया*। कुम्भलमेर दुर्ग के टूटने पर मानसिंह ने मांडलगढ़ और गोघूंदा दुर्गों को जा घेरा, जहाँ महाराणा

---

* इस युद्ध का वृत्तान्त टॉड-कृत एनालस आव् राजस्थान से लिया गया है। फ़ारसी के इतिहासों में मेवाड़ पर चढ़ाई किये जाने के इस कारण का उल्लेख नहीं मिलता। अस्तु, जो कुछ हो, मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए महाराणा प्रताप की देशभक्ति पर्याप्त कारण कही जा सकती है।

† मिस्टर स्मिथ स्वकृत 'अकबर' में लिखते हैं कि 'राजपूतों के ख्यातों के अनुसार टॉड का कथन है कि सुलतान सलीम मुग़ल-सेना का अध्यक्ष था, पर यह असम्भव है। क्योंकि उस समय वह सात वर्ष का था'। सम्भवतः मिस्टर स्मिथ को यह ध्यान नहीं था कि मुसलमान बादशाह नाममात्र को अपने छोटे छोटे पुत्रों तक को सेनाध्यक्ष नियुक्त किया करते थे। गुलबदन बेगम के हुमायूँनामा और तुबक़ाते-अकबरी में लिखा है कि हुमायूँ के सहायतार्थ जो पारसीक सेना आई थी उसका अध्यक्ष शाह मुराद दूध-पीता बच्चा था।

‡ इतिहासों से तीन महावतख़ाँ का पता लगता है। इस महावतख़ाँ पर मिस्टर स्मिथ की यह टिप्पणी है कि 'राजपूत कथानक अशुद्ध है, क्योंकि जहाँगीर लिखता है कि मैंने ग़यूरबेग के पुत्र जमालबेग को, जिसने बचपन से मेरी सेवा की और अहदी से उन्नति कर ५०० की मंसबदारी प्राप्त की थी, महावतख़ाँ की पदवी और डेढ़ हज़ारी मंसब दिया।' पर आपने यह नहीं विचार किया कि जिस युद्ध का यहाँ उल्लेख है वह जहाँगीर की राजगद्दी के तीस वर्ष पहले हुआ था और जैसा आप एक टिप्पणी में लिख चुके हैं कि वह उस समय सात वर्ष का था। इस कारण ये दोनों महावतख़ाँ अवश्य भिन्न रहे होंगे कि जमालबेग को जहाँगीर ने राजगद्दी पाने पर महावतख़ाँ की पदवी दी थी। तीसरा महावतख़ाँ ज़मानाबेग का पुत्र लहरास्य था। ये दोनों पिता-पुत्र जहाँगीरी और आलमगीरी महावतख़ाँ कहलाते हैं।

* इलि० डाउ० जि० ६ पृ०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते थे। महाराणा भी तीन सहस्र राजपूतों के साथ इन पर ऐसे वेग से आ टूटे कि मुग़ल हरावल नष्ट-भ्रष्ट हो गया। हाथियों से युद्ध होने लगा, जिसमें मानसिंह का हाथीवान मारा गया। पर ये तनिक भी बिचलित नहीं हुए और हाथी को सँभालते हुए युद्ध करते रहे। इतने पर भी युद्ध बिगड़ता जा रहा था कि एक मुग़ल सरदार डङ्का पीटता हुआ यह कहता आया कि बादशाह आ गये हैं, जिससे मुग़ल-सेना का उत्साह बढ़ गया और महाराणा परास्त हो गये। गोघूंदा भी विजय हो गया और महावतख़ाँ ने उदयपुर पर भी अधिकार कर लिया। बादशाह की आज्ञा आने पर कुँवर मानसिंह लौट आये।

बिहार और बङ्गाल के कुछ मुग़ल-सरदारों ने उन प्रान्तों में विद्रोह मचा रक्खा था और अकबर के छोटे पर सौतेले भाई मिर्ज़ा हकीम को, जो काबुल में स्वतन्त्रतापूर्वक रहता था, यह लिख भेजा था कि यदि आप भारत पर चढ़ाई करें तो हम लोग आपका साथ देने के लिए तैयार हैं। मिर्ज़ा के सरदारों ने भी उसे उभाड़ा और उसकी भी मुग़ल-सम्राट् बनने की इच्छा प्रबल हो उठी, जिससे उसने एक सरदार को कुछ सेना-सहित आगे भेजा। यह सेना अटक तक आ पहुँची, पर वहाँ का जागीरदार यूसुफ़ख़ाँ कोका ने, जो मिर्ज़ा अज़ीज़ का बड़ा भाई था, उसे रोकने की कुछ भी चेष्टा नहीं की। भाग्यवश यूसुफ़ख़ाँ से, जो अहेर खेलने गया था, वहीं सामना हो गया और शत्रु परास्त होकर पेशावर भाग गया। बादशाह ने यूसुफ़ख़ाँ को बुला लिया और उसके स्थान पर कुँवर मानसिंह भेजे गये। इन्होंने स्यालकोट पहुँच कर युद्ध की तैयारी की और एक सरदार को दुर्ग अटक दृढ़ करने के लिए भेजा। इनके पिता राजा भगवानदास पञ्जाब के सूबेदार थे, जिन्होंने लाहौर में युद्ध की पूरी तैयारी कर ली थी।

मिर्ज़ा हकीम ने इस पराजय का वृत्तान्त सुन कर अपने धाय-भाई मिर्ज़ा शादमान को एक सहस्र सेना-सहित भेजा, जिसने पहुँच कर अटकदुर्ग घेर लिया। कुँवर मानसिंह इस समय सिन्ध-नदी पार करने में कुछ हिचकिचा रहे थे तभी अकबर ने शायद यह दोहा उन्हें लिख भेजा था—

सबै भूमि गोपाल की यामें अटक कहा।
जाके मन में अटक है सोई अटक रहा॥

अटक के घेरे का समाचार मिलते ही मानसिंह चढ़ दौड़े और वहाँ पहुँच कर ही उन्होंने साँस ली। घोर युद्ध के अनन्तर मानसिंह के भाई सूरजसिंह के हाथ शादमान मारा गया। मिर्ज़ा हकीम भी सेना-सहित उसी समय आ पहुँचा, पर शाही आज्ञा आ चुकी थी कि मिर्ज़ा को आगे बढ़ने से न रोकें और बादशाह के पहुँचने तक युद्ध बन्द रहे। मानसिंह लाहौर लौट आये और मिर्ज़ा ने भी वहाँ पहुँच कर दुर्ग को घेर कर युद्ध आरम्भ किया।

बादशाह ज्यों ज्यों सेना-सहित लाहौर की ओर बढ़ने लगे, त्यों त्यों मिर्ज़ा हकीम भी काबुल की ओर लौटने लगे। उसने रास्ते में दो एक नगरों को लूटने में वीरता दिखलाई, पर उसके बहुत से वीर सैनिक नदियों के पार करने में उनकी धाराओं के प्रबल वेग में पड़ कर बह गये। बादशाह के आज्ञानुसार मानसिंह पेशावर पहुँचे और सुलतान मुराद के अधीन कुछ सेना काबुल भेजी गई। बादशाह भी स्वयं पीछे पीछे काबुल की ओर चले। सुलतान मुराद के साथ की सेना के मुख्य सेनापति कुँवर मानसिंह ही नियुक्त हुए और जब ये खुद काबुल पहुँचे, जो काबुल से सात कोस इधर ही है, तब मिर्ज़ा हकीम का मामा फ़रेदूख़ाँ सेना के पिछले भाग पर छापा मार कर बहुत सा सामान लूट ले गया। मानसिंह वहीं ठहर गये, जिनके सामने पर्वत की उँचाई पर मिर्ज़ा हकीम मोर्चा बाँधे सेना-सहित डटा हुआ था। घोर युद्ध हुआ, पर अन्त में मानसिंह ने उसे परास्त किया। दूसरे दिन उसी स्थान पर फ़रेदूख़ाँ को पूर्णतया पराजित करके काबुल पहुँचे और उस पर अधिकार कर लिया। जब बादशाह काबुल पहुँचे तब राजा मानसिंह सरदारों के साथ अगवानी को आये। बादशाह ने मिर्ज़ा हकीम को काबुल का अध्यक्ष बनाया और मानसिंह को सीमान्त-प्रदेश पर नियुक्त किया। इन्होंने बड़ी योग्यता से सीमा पर के लड़ाकू जातियों का दमन किया*।

संवत् १६४२ में मानसिंह की धर्म-बहन का विवाह सुलतान सलीम के साथ हुआ, जिसकी अवस्था उस समय सोलह वर्ष की थी। इसी समय काबुल से मिर्ज़ा

* अकबरनामा जि० ३ पृ० ५४५-४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहम्मद हकीम की मृत्यु का समाचार आया, जिस पर मानसिंह को काबुल जाने की आज्ञा मिली। ये फुर्ती से वहाँ पहुँचे और झुण्ड के झुण्ड अफ़ग़ान सलाम करने के लिए इनके पास आने लगे। इन्होंने अपने सुप्रबन्ध से वहाँ की प्रजा को ऐसा प्रसन्न कर लिया कि फ़रेदूख़ाँ आदि विद्रोहियों की दाल नहीं गली और उन्हें भी अन्त में सीधे रास्ते पर आना पड़ा। बादशाह भी पञ्जाब में आ पहुँचे थे। इससे इन्होंने अपने पुत्र जगतसिंह को काबुल में अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर और मिर्ज़ा हकीम के पुत्रों, बहन और भाँजे को साथ लिये रावलपिंडी में पहुँच कर बादशाह से भेट की। मिर्ज़ा के दो पुत्र थे, जिनमें बड़ा अफ़रा सिआब ग्यारह वर्ष का था और छोटा कैकुबाद चार वर्ष का था। इनकी बहन मेहुन्निसा* का पुत्र मिर्ज़ा वली भी अल्पवयस्क ही था। बादशाह ने इन सब पर कृपायें कीं।

पहले-पहल राजा भगवानदास ही काबुल के अध्यक्ष नियुक्त हुए थे। पर वंश-परम्परा का उन्माद रोग जब उन्हें वहाँ हुआ तब मानसिंह उस पद पर भेजे गये। ये इस पद पर एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक रहे, पर इतने ही समय में इन्होंने वहाँ शान्ति स्थापित कर दी। अबदुल्लाख़ाँ उज़बेग ने भी भेंट भेज कर सन्धि कर ली थी। इधर बादशाह ने कुछ वर्षों के लिए लाहौर को ही राजधानी बना रक्खा था, जहाँ से राजा वीरबल और जैनख़ाँ कीका के अधीन एक सेना यूसुफ़ज़ई अफ़ग़ानों पर भेजी थी। पर वह सेना परास्त होकर लौट आई और इसी युद्ध में राजा वीरबल मारे गये। मानसिंह और राजा टोडरमल की सहायता से ये अफ़रीदी जातिवाले परास्त किये गये।

संवत् १६४५ में बादशाह ने मानसिंह को बिहार और बङ्गाल का सूबेदार नियुक्त किया। उसी वर्ष जब बादशाह काश्मीर जा रहे थे तब लाहौर का प्रबन्ध राजा भगवानदास को सौंप गये थे। ये बादशाह को पहुँचाने के लिए एक दिन तक साथ रहे, जहाँ से लौटते ही इनके पेट में शूल उठा और पाँचवें दिन उनकी मृत्यु हो गई। बादशाह ने शोक प्रकाश किया और मानसिंह को महाराजा की पदवी, ख़िलअत ख़ास, जड़ाऊ ज़ीन-सहित घोड़ा और पाँच हज़ारी मंसब देकर सम्मानित किया। मानसिंह, जो सीमान्त-प्रदेशों के अफ़ग़ानों का शमन करने में फँसे हुए थे, दूसरे वर्ष पटना पहुँचे और रास्ते में पड़ने से प्रथम बार काशी आये थे, जहाँ कुछ दिन ठहरे भी थे।

बिहार के मुग़ल-सरदारों का विद्रोहानल यद्यपि शमन किया जा चुका था, तिस पर भी उसका कुछ अंश कहीं कहीं सुलग रहा था जिसे इन्होंने वहाँ पहुँचते ही शान्त किया, हाजीपुर के ज़मींदार राजा पूर्णमल कन्धोरिया का दमन किया, जिसकी पुत्री का विवाह अपने भाई के साथ किया तथा भेट और दहेज में बहुत हाथी, रत्न आदि सामान लिये*। इन विद्रोहियों से लिये गये सामान और ५४ हाथी बादशाह को भेट में भेजे। बिहार में शान्ति स्थापित कर लेने के अनन्तर उड़ीसा विजय करने की इच्छा से सैन्य एकत्र करने लगे। बङ्गाल का जल-वायु राजा मानसिंह के स्वास्थ्य के लिए कुछ हानिकारक था, इससे इन्होंने बिहार में ही रहना निश्चित किया और अपने सहकारी सेनापति सईदख़ाँ को पूर्वी बङ्गाल पर नियुक्त किया। बिहार के अवस्थानकाल में इन्होंने रोहतासगढ़ का जीर्णोद्धार कराया, जिसके प्रस्तर-निर्मित सिंहद्वार और कमलदलशोभित बड़ा तालाब आज तक उनकी कीर्ति के स्मारक हो रहे हैं। इसी पार्वत्य प्रदेश में वायुसेवन के लिए राजा मानसिंह ने एक राजप्रासाद और बड़ा बाग़ भी निर्माण कराया था।

उड़ीसा का प्रान्त बिहार के दक्षिण में है, जिसके राजा प्रतापदेव को उसके पुत्र वीरसिंहदेव ने विष दे दिया और स्वयं राजा बन बैठा। प्रतापदेव के एक सरदार मुकुन्ददेव

---

* गुलबदन बेगम ने निज कृत हुमायूँनामा में मुहम्मद हकीम की माता माह चूचक बेगम को तीन पुत्रियों और दो पुत्र का होना लिखा है, जिनका नाम क्रम से बख़्तुन्निसा, सकीना बानू, अमीना बानू, मुहम्मद हकीम और फ़र्रुख़ फ़ाल था। बख़्तुन्निसा का ही नाम फ़ख़ुन्निसा या मेहुन्निसा हो सकता है, जो शाह अबुलम आली और ख़्वाजा हसन नक़्श बंदी से क्रम क्रम से ब्याही गई थी।

* मआसिरू अ उमरा जि० २ पृ० १६२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने इस सुअवसर को हाथ से जाने न दिया और स्वामि-भक्ति का ढोंग रच कर उसने राज्य पर अधिकार कर लिया। उड़ीसा के राज्य-विप्लव के वृत्तान्त को सुन कर बङ्गाल के सुलतान सुलेमान किरानी ने अपने पुत्र बायज़ीद और इसकन्दरख़ाँ उज़बेग को ससैन्य झारखंड के मार्ग से भेज कर उस प्रान्त पर अधिकार कर लिया*। बङ्गाल से निकाले जाने पर अफ़ग़ान इसी प्रान्त में आ बसे थे, जिनका सरदार उस समय क़तलूख़ाँ था। राजा मानसिंह ने उड़ीसाविजयार्थ जो सैन्यदल एकत्र किया था उसे द्वारिकेश्वर नदी के तीरवर्ती जहानाबाद नामक ग्राम में भेज कर वहीं छावनी स्थापित की। क़तलूख़ाँ ने अपनी सेना इसी समय धारपुर और पार्श्ववर्ती देशों को लूटने के लिए भेजी। जहानाबाद से पच्चीस कोस दूर पर अफ़ग़ानों के इस उपद्रव का समाचार सुन कर मानसिंह ने अपने बड़े पुत्र जगतसिंह को सेना-सहित उन पर भेजा। अफ़ग़ान परास्त हो दुर्ग में जा बैठे और कुमार के पास सन्धि का प्रस्ताव किया, पर नई अफ़ग़ान सेना के पहुँचने पर सन्धि भङ्ग करके रात्रि में ही मुग़ल-वाहिनी पर आक्रमण करके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और जगतसिंह को बन्दी करके वसन्तपुर भाग गये। राजा मानसिंह इस अवमानना-सूचक पराजय और अफ़ग़ानों के हाथ पुत्र के मारे जाने की आशङ्का से कुछ समय के लिए विचलित हो उठे। परन्तु दैवात् क़तलूख़ाँ की मृत्यु हो गई और अफ़ग़ान-सेना के मान्य सरदार ख़्वाजा ईसाख़ाँ कुमार को बन्धन से मुक्त करके उन्हीं से सन्धि का प्रार्थी हुआ। राजा मानसिंह ने क़तलूख़ाँ के पुत्रों को उनके पिता का राज्य दे दिया। अफ़ग़ानों ने बादशाह के नाम खुतबः पढ़ने, वार्षिक कर तथा भेट देने और आज्ञानुसार सैनिक कार्य्य करने की प्रतिज्ञा की और साथ ही राजा मानसिंह के सदय व्यवहार पर कृतज्ञ-हृदय होकर उन्होंने हिन्दुओं के पवित्र तीर्थ जगन्नाथपुरी† को उसके अधीनस्थ भू-सम्पति-सहित उन्हें समर्पण कर दिया। डेढ़ सौ हाथी और बहुत सा सामान दरबार में भेजा गया*।

इस सन्धि के दो वर्ष उपरान्त ईसाख़ाँ की मृत्यु हो गई और नये अफ़ग़ान सरदारों में मुग़ल-सेना से युद्ध करने की इच्छा प्रबल होने लगी। ख़्वाजा सुलेमान और ख़्वाजा उसमान नामक दो सर्दारों की अधीनता में अफ़ग़ान-सेना ने जगन्नाथपुरी लूट ली और बादशाही राज्य में उपद्रव मचाने लगे। इस अत्याचार से धर्मात्मा राजा मानसिंह क्रोधित हो ससैन्य चढ़ दौड़े। मुग़ल-सेनानी सईदख़ाँ ईर्ष्या के मारे साथ न देकर लौट गया। पर इन्होंने इसका कुछ भी विचार नहीं किया और अन्य सरदारों के अधीन कुछ सेना झारखंड के रास्ते से भेजकर स्वयं जल के रास्ते आगे बढ़े। एक ही युद्ध में अफ़ग़ानों को, पूर्णतया परास्त करके समग्र उड़ीसा पर अधिकार कर लिया और सुन्दरवन तक अर्थात् समुद्र-तट तक पहुँच गये। भागे हुए अफ़ग़ानों ने कटक-राज्य के प्रसिद्ध दुर्ग सारङ्गगढ़ में जाकर राजा रामचन्द्र की शरण ली तब उसे अवरोधित कर मानसिंह जगन्नाथजी के दर्शन को पुरी गये।

जब रामचन्द्र ने अपने दुर्ग में रक्षा कर सकने की शक्ति नहीं देखी तब अपने पुत्र को भेजकर शरण आने की आज्ञा माँगी। पर मानसिंह ने कहा कि वह स्वयं आवे तब सन्धि हो। घेरा कड़ा था और दुर्ग टूटने ही को था

---

* अकबरनामा जि० ३ पृ० ६४० में यह वृत्तान्त दिया है, पर प्रतापदेव और वीरसिंह के स्थान पर प्रतापराव और नरसिंह दिया है।

† मआसिरुल्उमरा में इस तीर्थस्थान का वृत्तान्त यों लिखा है कि "इससे चार सहस्र और कुछ वर्ष पहले नीलगिरि पर्वत के राजा इन्द्रमणि ने किसी महात्मा के कहने पर एक बड़ा नगर बसाया। राजा को एक रात्रि में स्वप्न हुआ कि 'अमुक दिन एक लकड़ी ५२ अङ्गुल लम्बी और डेढ़ हाथ चौड़ी मिलेगी जो ईश्वर के शरीर का अंश है और जिसे उसने सात दिन तक एक गृह में रक्खा तथा उसी में रखकर पूजन का प्रबन्ध किया।' निद्राभङ्ग होने पर उसने जगन्नाथजी नाम रक्खा। कहते हैं कि सुलेमान किरानी के सेनापति कालापहाड़ ने इस लकड़ी को आग में डाल दिया, पर वह नहीं जली। तब समुद्र में फेंकवा दिया। पर फिर लौट आई।" (जि० २ पृ० १६३-४)

* मआसिरुल्उमरा जि० २ पृ० १६२-३। अकबरनामा, इलि० डाउ० जि० ६ पृ० ८५-७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि बादशाह ने इस वृत्तान्त से अवगत होकर यह आज्ञा भेजी कि घेरा उठा लो, जब पुत्र आ गया तब पिता भी आ जायगा। मानसिंह ने घेरा उठा लिया और पुत्र को बुलाकर कटक-देश का शासन उसके पिता को सौंप दिया। संवत् १६४८ (१००० हि०) में उड़ीसा मुग़ल-साम्राज्य में मिला लिया गया और क़तलूख़ाँ के पुत्रों को ख़लीफ़ाबाद में जागीर दी गई*।

विजयोपरान्त उड़ीसा की सीमा पर कुमार जगतसिंह को कुछ सेना-सहित छोड़ कर बची हुई सेना को साथ लेकर राजा मानसिंह बिहार लौटे और दोनों प्रान्तों के एकत्र शासन की इच्छा से प्राचीन हिन्दू राजधानी राजमहल को अकबर-नगर के नाम से पुनः बसाया और दुर्ग, महल आदि बनवा कर उसे सुशोभित और सुरक्षित किया। शेरशाह सूरी भी बहुधा यहीं निवास करता था। इसी समय भाटी-प्रदेश विजय कर ब्रह्मपुत्र के पश्चिमीतट तक पूर्व-बङ्ग पर अधिकार कर लिया। शेरपुर अर्थात् मैमनसिंह के दुर्ग को सलीम-नगर के नाम से बनवाया। राजा मानसिंह बादशाही आज्ञानुसार संवत् १६४९ में राजधानी पहुँचे। बादशाह ने इनके भांजे और जहाँगीर के बड़े पुत्र ख़ुसरू को पाँच हज़ारी मंसब और उड़ीसा जागीर में दिया। भांजे की जागीर का प्रबन्ध और बङ्गाल की सूबेदारी मानसिंह को सौंप कर बिदा किया†।

कूचबिहार के राजा लक्ष्मीनारायण ने मुग़ल-अधीनता स्वीकारार्थ राजा मानसिंह से आकर भेट की थी, जिस कारण उसके आत्मीयगण और दूसरे राजों ने चिढ़ कर उसके विरुद्ध युद्ध की तैयारी की। इसने और कोई उपाय न देखकर मानसिंह से सहायता माँगी, जिसके पहुँचने पर शान्ति हो गई। इस उपकार के बदले में कूचबिहार के राजा ने अपनी बहन का विवाह मानसिंह से कर दिया। उसी वर्ष घोड़ा-घाट पर मानसिंह पीड़ित होगये, जिसे अच्छा अवसर समझ कर अफ़ग़ानों ने विद्रोह करने की चेष्टा की। पर इनके द्वितीय पुत्र हिम्मतसिंह ने उन्हें परास्त कर भगा दिया। दूसरे वर्ष संवत् १६५३ में इस योग्य पुत्र की मृत्यु हो जाने से इन्हें बड़ा शोक हुआ। उसी वर्ष अफ़ग़ान-विद्रोह-दमन के लिए अपने पुत्र दुर्जनसिंह के अधीन सेना भेजी, पर एक सरदार के मिल जाने से शत्रु ने अचानक एक स्थान पर आक्रमण करके सेना को परास्त कर दिया और दुर्जनसिंह मारा गया। कूचबिहार में नया षड्यन्त्र रचा जाने पर लक्ष्मीनारायण के विपद्ग्रस्त होने से मानसिंह ने हिजाजख़ाँ नामक सेनापति को ससैन्य वहाँ भेजा, जिससे शत्रु भाग गये।

संवत् १६५५ में जब बादशाह ने दक्षिण जाने की तैयारी की तब मेवाड़ पर सेना भेजने की इच्छा से राजा मानसिंह को बङ्गाल से बुला लिया और उनके स्थान पर उनके बड़े पुत्र कुमार जगतसिंह को नियुक्त किया। जगतसिंह, जो उस समय पञ्जाब के पार्वत्य प्रदेश पर नियत थे, आगरे पहुँचे, जहाँ उनकी एकाएक मृत्यु हो गई। तब उनके पुत्र मोहनसिंह (महासिंह) उस पद पर नियुक्त किये गये। संवत् १६५७ में अफ़ग़ानों ने ऐसे अच्छे अवसर पर वङ्ग-राज्य को निष्कण्टक समझ कर उसमान की अधीनता में विद्रोहानल प्रज्वलित कर दिया और चारों ओर चढ़ाई करने लगे। मोहनसिंह और उसके भाई प्रतापसिंह ने सेना एकत्र करके उड़ीसा की ओर चढ़ाई करने का साहस किया, पर भद्रक के पास अफ़ग़ानों ने इन्हें परास्त कर दिया और बङ्गाल के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया।

सुल्तान सलीम, जिसकी अधीनता में मेवाड़ पर सेना जानेवाली थी, बड़ा विषयी और सुख चाहनेवाला था, इससे वह बङ्गाल के विद्रोह का समाचार पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ और मानसिंह को विद्रोह दमन के लिए बङ्गाल भेज कर स्वयं आगरा होता हुआ अपनी जागीर इलाहाबाद अर्थात् प्रयाग को चला गया। सलीम के चाल-चलन में कुछ विद्रोह के चिह्न प्रकट हो चुके थे। इससे जब बादशाह को कुल वृत्तान्त का समाचार मिला तब वे इस विचार में निमग्न हो गये कि क्या इस घटना में मानसिंह का भी कुछ हाथ है? क्योंकि दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध था।

संवत् १६५९ में मानसिंह झट रोहतासगढ़ पहुँचे और शरीफ़ाबाद-सरकार के अन्तर्गत शेरपुर* के पास

---

* मआसिरुल्उमरा जि० २ पृ० १६२-३। अकबरनामा, इलि० डाउ० जि० ६ पृ० ८५-७।

† मआसिरुल्उमरा जि० २ पृ० १६३-४।

* अब यह मुर्शिदाबाद ज़िले के अन्तर्गत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ़ग़ानों को पूर्ण पराजय दी। उन्होंने सेनायें भेजकर अफ़ग़ानों के अधिकृत नगरों पर अधिकार कर लिया। बचे बचाये अफ़ग़ान उड़ीसा के दक्षिण में भाग गये। मानसिंह ढाका पहुँच कर सूबेदारी करने लगे। प्रकट में बादशाह का हृदय इनकी ओर से स्वच्छ ज्ञात होता था, परन्तु विद्रोही पुत्र के पास के प्रान्त में इनका रहना उन्हें खटक रहा था। विद्रोह दमन के अभिनन्दनार्थ और तुर्किस्तान पर आक्रमण करने के लिए मन्त्रणा लेने के बहाने बादशाह ने इन्हें आगरे बुलाया और इनके पुत्र भाऊसिंह को एक हज़ारी पाँच सौ सवार का मंसब दिया। अकबर ने इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर इन्हें सात हज़ारी छः हज़ार सवार का मंसब प्रदान किया। इसके पहले किसी हिन्दू या मुसलमान सरदार को ऐसा सम्मानसूचक मंसब नहीं प्राप्त हुआ था। इससे अकबर की उदारता और मुग़ल-साम्राज्य के सेनापतियों में अग्रणी होने की मानसिंह की योग्यता प्रदर्शित होती है। इसके अनन्तर इस पदवी को प्राप्त करनेवाले मुग़ल-राजवंशीय मिर्ज़ा शाहरुख़ और अकबर के धाय-भाई मिर्ज़ा अज़ीज़कोका थे। मानसिंह के समय से ही जयपुर-नरेशों को मिर्ज़ा राजा की भी पदवी प्राप्त है*। अकबर अब्दुर्रहीमख़ाँ ख़ानख़ाना को मिर्ज़ाख़ाँ, ख़ाने आज़म को मिर्ज़ा अज़ीज़ और इन्हें मिर्ज़ा राजा कहते थे। घर की रीति-रस्म और काम में इनके साथ अकबर अपने पुत्रों का सा व्यवहार करते थे।

कुछ दिन दरबार में रहकर मानसिंह बङ्गाल लौट गये और संवत् १६६१ पर्यन्त वहाँ न्यायपरता और नीति-कुशलता से राज-प्रबन्ध करते रहे। इसी बीच में उसमान ने फिर विद्रोह कर ब्रह्मपुत्र-नदी पार की। शाही थानेदार बाज़बहादुर ने उसे रोकना चाहा, पर परास्त हो भोवल लौट आया। राजा मानसिंह यह सुनकर रातोरात कूच कर वहाँ पहुँचे और शत्रु को परास्त कर भगा दिया। बाज़बहादुर को फिर नियुक्त कर ये ढाका लौट आये। उसने नदी पार कर अफ़ग़ानों के राज्य पर अधिकार करने का विचार किया तब अफ़ग़ानों ने तोप आदि से रास्ता रोका। मानसिंह ने सहायतार्थ चुनी हुई सेना भेजी, पर जब शाही सेना फिर भी नदी पार न कर सकी तब ये स्वयं गये और हाथी पर सवार हो नदी उतरे। अफ़ग़ान यह साहस देख कर भागे और मानसिंह सारीपुर तथा विक्रमपुर विजय कर लौट आये। संवत् १६६० में मघराजा ने विक्रमपुर के राजा कैदराय को मिला कर सुनारगाँव में सेना एकत्र की और पास के एक दुर्ग को घेर लिया। दुर्गाध्यक्ष सुलतान कुलीख़ाँ ने बलवाइयों को परास्त किया, पर एक दूसरे विद्रोही अहमद के ससैन्य आ जाने से फिर युद्ध आरम्भ हो गया। राजा मानसिंह ने यह सुनकर इब्राहीम अतका, रघूदास और दलपतराय के अधीन सहायक सेना भेजी, इन्होंने अन्त में विद्रोहियों को परास्त किया। इसी वर्ष राजा मानसिंह की बहन ने, जो जहाँगीर को ब्याही थी, अफ़ीम खाकर आत्महत्या कर ली*।

जब अकबर बादशाह मृत्युशय्याशायी हुए तब मानसिंह भी आगरे बुलाये गये और खुसरू को राजगद्दी देने के लिए कई बड़े बड़े सरदार इनसे मिल गये। यद्यपि ये इतने सबल थे कि जहाँगीर को सहज में ही सिंहासन पर अधिकार न कर लेने देते, पर वृद्ध सम्राट् के बुलाकर इन्हें जहाँगीर को मुग़ल-राज-सिंहासन का एकमात्र उत्तराधिकारी स्वीकार करने का आदेश देने और मृत्यु के अनन्तर उसका पक्ष अवलम्बन करके मुग़ल-साम्राज्य की रक्षा करने का अनुरोध करने पर ये स्वामिद्रोही या राजद्रोही कैसे हो सकते थे? बीस सहस्र वीर कछवाहे क्षत्री, जो इनके शरीररक्षक थे, सर्वदा इनके साथ रहते थे और उनकी वीरता तथा रणदक्षता बीसों युद्धों में भले प्रकार प्रदर्शित हो चुकी थी।

संवत् १६६२ में जहाँगीर बादशाह हुए और उन्होंने राजा मानसिंह को द्वितीय बार बङ्गाल का सूबेदार बना कर भेज दिया। परन्तु एक वर्ष भी व्यतीत नहीं

* मगारी रुयउक्करा जि० २ पृ० १६३-४।

* तकसीलै-अकबरनामा, इलि० डाउ० जि० ६ पृ० १६-११।

मानसिंह की धर्म-भगिनी मानबाई को विवाहोपरान्त शाह बेगम की पदवी मिली थी। इन्होंने अपने पुत्र खुसरो के पितृद्रोह से उत्तेजित होकर आत्महत्या की थी। (इनका मक़बरा प्रयाग में खुसरोबाग़ में पुत्र के पास ही है। स्मिथकृत 'अकबर' पृ० २२५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ था कि उन्हें लौट आने का आज्ञापत्र भेजा, क्योंकि जहाँगीर को नूरजहाँ के उड़ाने के लिए मनोनीत सूबेदार भेजने की बड़ी जल्दी पड़ी हुई थी। इस बार बङ्गाल से लौटते समय यशोहरेश्वर प्रतापादित्य को परास्त करके वहाँ से ये शिलादेवी को अपनी राजधानी में लाये, जहाँ सुना जाता है कि कुछ दिनों तक नरबलि दी जाती थी। दूसरे वर्ष खुसरो ने विद्रोह किया जिसके पकड़े जाने पर उसके साथवाले बलवाइयों को बड़ा कठोर दण्ड दिया गया। मानसिंह ने खुल्लमखुल्ला तो कुछ सहायता भी नहीं की थी और न वे इस योग्य ही थे कि उन्हें कुछ दण्ड दिया जाय। मानसिंह ने बङ्गाल से लौटने पर रोहतास के विद्रोह को दमन किया और राजधानी पहुँचने पर संवत् १६६५ में स्वदेश जाने की छुट्टी माँगी जो मिल गई और उन्होंने कुछ दिन अपने राज्य में जाकर शान्ति-सुख भोग किया *।

ख़ानेजहाँ आदि बादशाही सरदार दक्षिण में अपनी वीरता का परिचय दे रहे थे, पर उससे कुछ लाभ नहीं हो रहा था। तब जहाँगीर ने नवाब अब्दुर्रहीमख़ाँ ख़ानख़ाना और राजा मानसिंह को दक्षिण भेजा, जहाँ दो वर्ष के अनन्तर संवत् १६७१ में इन्होंने संसार त्याग दिया। जहाँगीर लिखता है कि "यद्यपि मानसिंह के सबसे बड़े पुत्र जगतसिंह का पुत्र मोहनसिंह राज्याधिकारी होता था, तो भी मैंने उस बात का विचार न करके मानसिंह के पुत्र भाऊसिंह को जिसने मेरे शाहज़ादगी में मेरी बड़ी सेवा की थी मिर्ज़ा राजा की पदवी और चार हज़ारी, तीन हज़ार सवार का मंसब देकर जयपुर का राजा बनाया।"

राजा मानसिंह के जीवन-चरित को पढ़ कर कहा जा सकता है कि उन्होंने जहाँगीर के समय में कुछ उन्नति नहीं की। परन्तु साथ ही यह विचार करना भी आवश्यक है कि सलीम के राज्याधिकार के समय की और ख़ुसरू के विद्रोहों की घटनाओं ने उनकी स्थिति कैसी निर्बल कर दी थी। साथ ही ख़ानेख़ाना और ख़ाने आज़म के चरित्रों की इनके चरित्र से तुलना कीजिए जिन्होंने इनके साथ साथ अकबरी समय में उन्नति-पथ पर घुड़-दौड़ लगाई थीं। इन लोगों ने जहाँगीर के समय में कैसे कैसे कष्ट झेले और किस प्रकार अप्रतिष्ठित हुए। यह इन्हीं की नीति का फल था कि अन्त समय तक अपनी प्रतिष्ठा अपने साथ लिये हुए स्वर्ग चले गये।

राजा मानसिंह बड़े मिलनसार और अच्छे स्वभाव के पुरुष थे। बात-चीत में भी ये कुशल थे। जिस समय ये दक्षिण गये थे उस समय ख़ानेजहाँ लोदी मुख्य सेनापति था, ख़ानेख़ाना, स्वयं राजा मानसिंह, आसफ़ख़ाँ जाफ़र, शरीफ़ख़ाँ अमीरुल उमरा आदि पन्द्रह पाँच हज़ारी और उससे ऊँचे मंसबदार वहाँ थे और इनसे छोटे छोटे सरदार तो एक सहस्र के लगभग उस सेना में सम्मिलित थे। जब सेना बालाघाट पहुँची और बीहड़ रास्तों के कारण अन्नादि का आना बन्द हो गया, जिससे सेना में अकाल पड़ गया, तब सरदारों ने एक समिति सङ्गठित कर इस पर विचार किया, पर कुछ फल नहीं निकला। अन्त में राजा मानसिंह ने आमेर से अन्नादि सभी सामान मँगा कर सेना में बाज़ार लगवा दिया और जो भाव आमेर में था वही यहाँ भी रक्खा। हर बोरों और थैलों पर इनकी मुहर रहती थी और यह क्रम तीन चार महीने तक लगातार चलता रहा। यह सब सुप्रबन्ध मानसिंह की राजमहिषी रानी कुँअर का था, जो गृह में बैठी हुई सब कार्य चलाती रहीं। यही नहीं, उन्होंने स्नान-घर तथा मसजिद के चाल के ख़ेमे भी तैयार करा कर भेजे थे।

राजा मानसिंह प्रसिद्ध दानी थे, इन्होंने एक लाख गाय का दान दिया था। एक बन्दी, जो एक सप्ताह तक कारागार में अभुक्त रहा था, घुटने टेकता हुआ भोजन माँगता हुआ इनकी अट्टालिका के नीचे आ पहुँचा, जहाँ ये बैठे हुए थे और उसी समय इनके सामने थाल लाया गया था। इन्होंने उसे भोजन देने की आज्ञा दी, पर रानी की सम्मति से अपना भोजन पहले उसे भेजवा दिया और दूसरा आने पर स्वयं भोजन किया। इनके दान पर हरनाथ कवि ने यह दोहा कहा है—

बलि बोई कीरति-लता, कर्ण कियो द्वैपात।
सींच्यो मान महीप ने, जब देखी कुँभिलात॥

इस दोहे पर राजा मानसिंह ने इन्हें हाथी, ख़िलअत आदि बहुत कुछ दिया था। ये स्वयं कवि थे और

* मआसिरुल उमरा जि० २ पृ० १६४५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवियों का यथेष्ट मान करते थे। इन्होंने कवियों-द्वारा 'मान-चरित्र' नामक एक ग्रन्थ बनवाया है, जिसमें इनके जीवन का विवरण दिया गया है। राजा मानसिंह काशी में कई बार आये थे और प्रत्येक बार एक एक कीर्ति स्थापित कर गये हैं, जिनमें मान-मन्दिर (मानेश्वर मन्दिर), मानसरोवर घाट आदि प्रधान हैं। संवत् १६४७ में महाराज मानसिंह ने वृन्दावन में गोविन्ददेव का विशाल मन्दिर बनवाया था और गिरिराज के पास मानसी गङ्गा के घाटों और सीढ़ियों का निर्माण भी इन्हीं ने कराया था*।

राजा मानसिंह उत्तर देने में भी बड़े पटु थे। इनका रङ्ग साँवला और शरीर बड़ा बेडौल था। जब ये प्रथम बार दरबार में आये तब बादशाह ने हँसी में इनसे पूछा कि 'जिस समय खुदा के यहाँ रङ्ग-रूप बँट रहा था उस समय तुम कहाँ थे?' इन्होंने तुरन्त उत्तर दिया कि मैं उस समय वहाँ नहीं था, पर जिस समय वीरता और दानशीलता बँटने लगी तब मैं आ पहुँचा और उसके बदले में इन्हीं को माँग लिया।

एक दिन मानसिंह और ख़ानख़ाना शतरञ्ज खेल रहे थे और यह शर्त ठहरी कि जो हारे वह विजेता के बतलाये हुए जानवर की बोली बोले। खेल आरम्भ हुआ और ख़ानख़ाना की चाल दबने लगी। चार-पाँच दाँव के अनन्तर इन्होंने समझ लिया कि मैं हारा। राजा मानसिंह हँसने लगे और कहा कि बिल्ली की बोली बुलवाऊँगा। ख़ानेख़ाना भी एक ही चालिये थे। एकाएक घबरा कर उठ खड़े हुए और फ़ारसी में कहा कि 'ओह! भूल गया था, अभी याद आया। मानसिंह ने कहा कि 'कहाँ चले?' तब उत्तर दिया कि 'बादशाह ने एक कार्य के लिए कहा था, जो अभी ध्यान पर चढ़ा है, जाकर उसका प्रबन्ध कर दूँ।' राजा ने कहा कि 'नहीं ऐसा नहीं हो सकता।' यह कह उनका दामन पकड़ लिया और कहा कि 'बिल्ली की बोली बोल कर जाइए।' इन्होंने कहा कि 'दामन छोड़िये, मिआयम, मिआयम, मिआयम, (मैं आता हूँ, मैं आता हूँ, मैं आता हूँ)। वे भी हँस पड़े और ये भी हँस पड़े। कैसा श्लिष्ट विनोद है कि दोनों बातें बन गईं।

* आर्कियोलौजिकल सर्वे, न्यू सीरीज़ जि० २ पृ० ६८ और १००।

ब्रजरत्नदास,
मन्त्री, नागरी-प्रचारिणी सभा,
काशी।

चीन पर भारत का ऋण।

कुछ समय हुआ रवीन्द्र बाबू चीन की सैर करने गये थे। वहाँ चीनियों ने आपका बड़ा आदरपूर्ण स्वागत किया। एक महती सभा में अध्यापक ल्याँग-ची-चाव ने चीनियों की ओर से रवीन्द्र बाबू का जिन शब्दों में स्वागत किया वह कार्तिक के 'विश्व-भारती' में प्रकाशित हुआ है। सरस्वती के पाठकों के विनोदार्थ उसका भावानुवाद यहाँ दिया जाता है।

योरप और अमरीका में अन्धी मनुष्य-पूजा का चलन है। हम चीनियों ने अभी इस मेल की मनुष्यपूजा करना नहीं सीखा है, हममें कुछ महाशय "जाकी रही भावना जैसी प्रभुमूरति देखी तिन तैसी", कविवर रवीन्द्रजी का शायद व्यक्तिगत ही स्वागत करने आये हों। परन्तु हम सबमें यह भाव अवश्य होगा कि आप उस भारतवर्ष नाम पुण्यभूमि के प्रतिनिधि हैं, जो हमारे देश का सगा और पूज्य भाई है।

भारतवर्ष को हम अपना भाई सिर्फ़ आपको ख़ुश करने के लिए नहीं कहते। इस कथन के लिए हमारे पास इतिहास का प्रमाण है।

प्राचीन काल में भूमध्यसागर के चारों ओर बसी हुई जातियों से सम्पर्क का चीन को सौभाग्य नहीं प्राप्त था। हम पूर्वीय एशिया के एक कोने में बसे थे, जहाँ से अन्य महती जातियों तथा उनकी सभ्यता के पारस्परिक सङ्घर्षण का कोई अवसर न था। पूर्व और दक्षिण में प्रशान्त महासागर के द्वीपों में जङ्गली बसे थे। अमरीका का हमें पता ही न था। पश्चिम और उत्तर की सरहद पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

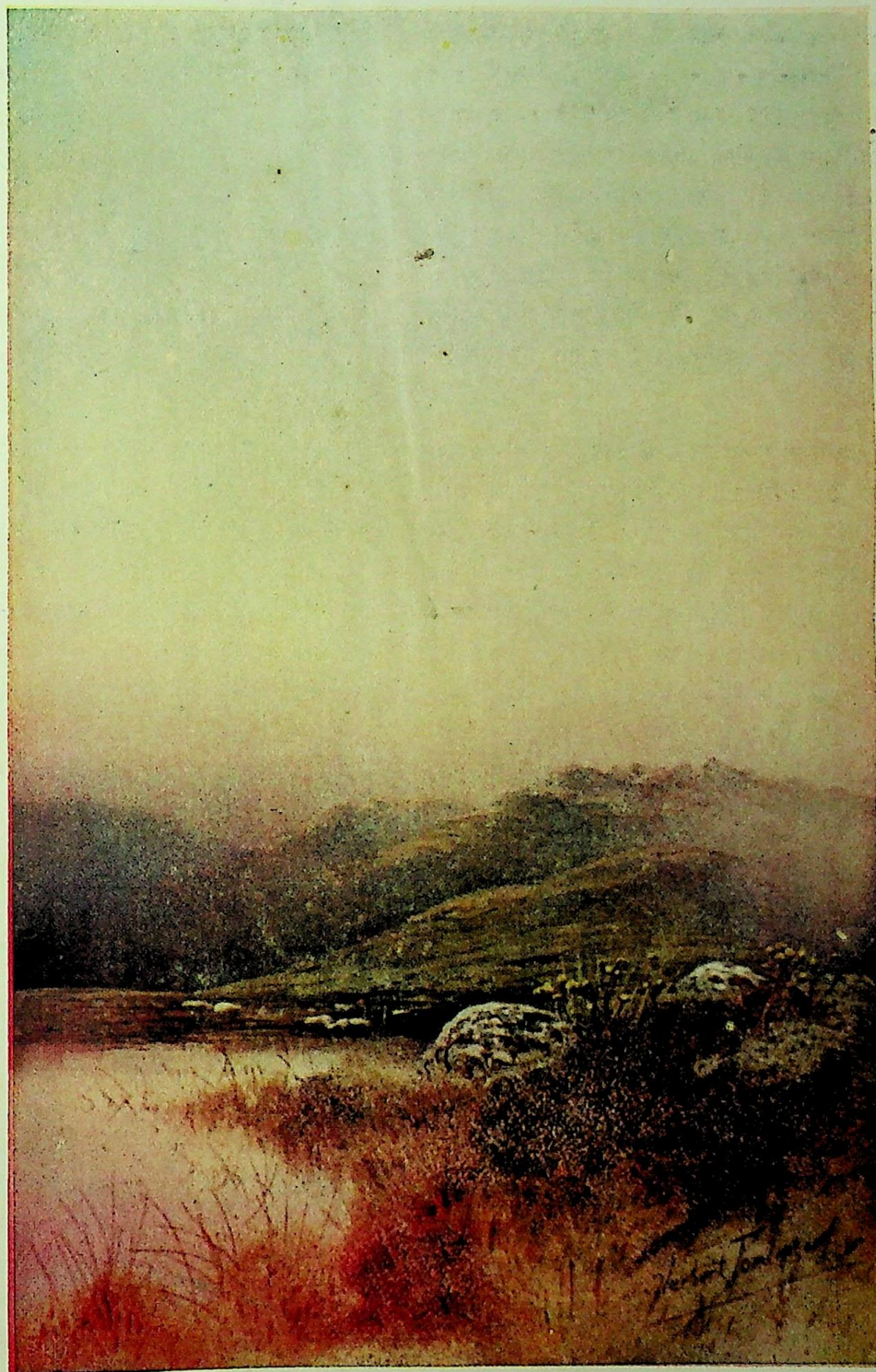

निस्तब्धता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे विरङ्कुश और असभ्य जातियाँ बसी थीं जिनका काम लूटना और नाश करना था, सहायता करना नहीं। अतः चीनी सभ्यता का बहुत कुछ विकास हमारे पूर्वजों के ही द्वारा हुआ। हाँ, यह फल इस पृथक्ता का अवश्य हुआ है कि हमारी सभ्यता में वैचित्र्य का आनन्द नहीं मिलता और नवीन विचारों का समागम नहीं मालूम होता।

परन्तु हमारे देश के ईशान-कोण-स्थित सीमा पर भारतवर्ष नाम का सभ्य तथा समृद्धिशाली देश था। प्राकृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से चीन तथा भारतवर्ष सगे भाई से भी बढ़ कर हैं। अन्य सभ्य जातियों ने कार्य-क्षेत्र में पद भी नहीं रक्खा था जब कि हमने मनुष्यमात्र के गहन प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया था। हम बहुत कुछ कर भी चुके थे। भारतवर्ष हमसे आगे था। और हम उसके छोटे भाई उसके पीछे।

परन्तु प्रकृति देवी हम दोनों के बीच बड़े बड़े पहाड़ों और जङ्गलों का परदा डाले हुई थी। बहुत दिनों तक हमें अपने बड़े भाई का पता ही न था। कोई दो ही सहस्र वर्ष से हमें मालूम हुआ कि हम अकेले ही नहीं थे। हमारा एक नेक और बड़ा भाई भी था।

तो फिर इन दो महान् देशों का पारस्परिक सम्पर्क क्योंकर आरम्भ हुआ?

भारतीय इतिहास का कहना है कि अशोक ने कुछ भिक्षुओं को बौद्धमत-प्रचारार्थ देशान्तरों में भेजा। शायद कुछ भिक्षु चीन तक पहुँचे हों। हमारे देश की दन्तकथा तो यही है कि चीन-शे-ह्वांग के समय में—इसी राजा ने चीन की दीवाल बनवाई थी—कोई दस हिन्दू चीन तक पहुँचे थे; वहाँ वे क़ैद हुए और मार डाले गये। अशोक और चीन-शे-ह्वांग समकालीन थे। इसलिए इस दन्तकथा में शायद कुछ सत्य का अंश भी हो।

हम इतिहासज्ञ की हैसियत से इस बात का साक्ष्य अवश्य दे सकते हैं कि हम लोगों का भाईचारा ईसा की पहली शताब्दी से शुरू हुआ। सन् ६७ से सन् ७८६ तक ८०० वर्ष के अन्दर लगभग २४ हिन्दू विद्वान् चीन आये और १३ काश्मीर गये। हमारे देश से कोई १८७ यात्री भारतवर्ष गये, जिनमें से लगभग १०५ के नाम भी मालूम हैं। भारतीय यात्रियों में कुमारजीव, बुद्धभद्र और जीनभद्र के नाम उल्लेखनीय हैं। इतने दीर्घ समय तक हमारा पारस्परिक प्रेम तथा आदरपूर्ण व्यवहार रहा।

और अब हम से कहा जाता है कि हाल ही में हमारा सभ्य जातियों से सम्पर्क हुआ है। अच्छा, तो यह सभ्य जातियाँ हमारे पास आईं क्यों? हमारे देश और धन की लालसा उन्हें यहाँ तक लाई है। ख़ून से रँगे हुए गोलों की नज़रें हमें इनसे मिलती हैं, और इनके कारख़ाने हमारे देशवासियों का उद्योग-धन्धा लूटते हैं। परन्तु हम दोनों भाई—चीन और भारतवर्ष—इस हेतु एक दूसरे से नहीं मिले। हम दोनों का एक ही आदर्श था। हम दोनों सत्य की खोज में थे, हम दोनों को मनुष्यमात्र का उद्धार करना था। इसलिए हमें मिलकर काम करने की आवश्यकता पड़ी। हमें भारत के नेतृत्व की आवश्यकता थी। हमारे पारस्परिक भावों में स्वार्थ का लेश भी न था।

शोक है कि हम इतने समय तक अपने बड़े भाई भारतवर्ष से लेते ही रहे। देना न नसीब हुआ। और हमारे बड़े भाई ने हमें वे अमूल्य भेंटें दीं जिन्हें हम कभी भूल नहीं सकते। जो कुछ हमें मिला उसका विवरण-मात्र करके ही हम ऋण के भार से हलके होना चाहते हैं।

(१) भारतवर्ष ने हमें निर्विकार स्वतन्त्रता का ज्ञान दिया। यह वह मन की स्वतन्त्रता है जो देश और काल के बन्धनों से मुक्त है। यह वह आत्मिक स्वतन्त्रता है, जो भौतिक संसार के बन्धनों से हमें मुक्त करती है। यह केवल वह स्वतन्त्रता नहीं है जो हमें सांसारिक अत्याचार तथा दासत्व से मुक्त होने की प्रेरणा करती है। स्वतन्त्रता-विषयक हमारे भाव इससे कहीं अधिक ऊँचे हैं। आत्मा के मुक्त होने ही में सच्ची स्वतन्त्रता है। और इसी से सच्चे आत्मिक बल की जाग्रति होती है।

(२) भारतवर्ष ने हमें निर्विकार प्रेम की भी दीक्षा दी। यह प्राणिमात्र के प्रति वह शुद्ध प्रेम है जिसमें काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, किसी प्रकार का विकार नहीं है; जो पापियों, मूर्खों और दुष्टों के प्रति सहानुभूति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा करुणारूप में प्रकट होता है, और पारस्परिक भेद को स्वीकार नहीं करता। "मित्र और शत्रु में कोई भेद नहीं है", "सब वस्तुओं में मैं ही हूँ", बौद्ध-ग्रन्थों में ऐसी ही शिक्षायें हैं। इन सप्त सहस्र पुस्तकों की शिक्षाओं का यही सार है कि करुणा और बुद्धि की वृद्धि करो। बुद्धि से सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त करो और करुणा से सच्चा प्रेम।

(३) हमारे बड़े भाई हमें इतना ही देकर नहीं चुप रहे। इन्होंने साहित्य और कला के क्षेत्र में भी हमें अमूल्य सहायता दी। कुछ सहायता हमें सीयू-द्वारा मिली, कुछ उन भारतीय भिक्षुओं-द्वारा जो भारतवर्ष से हमारे महाराज के लिए भेंट-रूप मूर्तियाँ, पुस्तकें और चित्र लाये। परन्तु अधिकतर सहायता हमें अपने ही देशवासी यात्रियों से मिली, जिन्होंने भारतवर्ष जाकर वहाँ की पुस्तकों का अनुवाद किया, और अपने देश को लौट आने पर वहाँ की कला, सामाजिक सङ्गठन तथा साहित्य का प्रचार किया।

(४) इन बड़ी भेंटों के अलावा भी बहुत कुछ मिला। इस मेल की थोड़ी ही भेंटों का यहाँ विवरण किया जाता है।

सङ्गीत—भारतीय सङ्गीत-शास्त्र की दीक्षा हमें सीयू-द्वारा मिली। हमें मालूम नहीं कि हमारा प्राचीन सङ्गीत किस मेल का था, क्योंकि उत्तरीय और दक्षिणीय घरानों के अन्त होने तक वह प्रायः क्षीण तथा लुप्तप्राय हो चुका था। शायद कुछ अंश यांगटसी नदी के दक्षिण में रहा हो, परन्तु उत्तरीय चीन में तो हमारे सङ्गीत पर भारतीय कला का पूरा असर पड़ा। उत्तरीय और दक्षिणी चीन के एक ही महाराज के छत्र में आ जाने पर चीनी सङ्गीत पर भारतीयता का और भी अधिक गहरा रङ्ग चढ़ने लगा। इस काल के सङ्गीत के कुछ अंश जापान के राज-घराने में अब भी प्रचलित हैं। हमारे साहित्य में जहाँ कहीं इस सङ्गीत की मधुरता का विवरण मिलता है उस से मालूम होता है कि उसमें यथेष्ट सौन्दर्य और कला का समावेश था। यह सौन्दर्य शायद भारतीय तथा चीनी स्वरों के सम्मिलन का फल हो।

भवन-निर्माण—यह मानी हुई बात है कि चीनी भवन-निर्माण-कला पर भारतीय भावों का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है, यद्यपि वे भवन जिनमें इस सम्मिश्रित कला का समावेश था प्रायः नष्ट हो चुके हैं। पैगोडा का आदि-स्थान भारतवर्ष ही है। भारतवर्ष और हमारे सम्मिलन से पहले पैगोडा-निर्माण हमारे यहाँ नहीं था। और सच पूछिए तो पैगोडा ही हमारे प्राकृतिक दृश्यों की शोभा बढ़ाते हैं। जहाँ देखिए, पैगोडाओं के शिखर ही भारत और चीन के प्राचीन प्रेम की याद दिलाते रहते हैं।

चित्रकला—हमें अब अपने देश के प्राचीन चित्र नहीं मिलते। कुछ पत्थर के चौकों या पत्थर पर खुदे हुए लेखों से ही हमें प्राचीन काल की चित्रकला की शुद्धता और सादगी का पता चलता है। हमारे देश के विख्यात चित्रकारों में कुओतान-वेई और कुओइतो थे। वे बुद्ध के चित्र बनाने में सिद्धहस्त थे। लोसान में बुद्ध की छाया का एक चित्र है। शायद यह चीन का पहला तैलचित्र है। वांगवाई और कूताओसे के कुछ चित्र अब भी मिलते हैं।

मालूम होता है कि पूर्वीय चीन राजघराने के समय से टंग के समय तक भारत और चीन के बीच व्यवहार रहा और अगणित भारतीय चित्रों का प्रचार हुआ, जिनका चीनी चित्र-कला पर पूर्ण प्रभाव पड़ा। हम इतना कह सकते हैं कि चीनी चित्र-कला का जन्म ही भारतीय कला से है। उत्तरीय सुंग-घराने के समय तक इस कला का प्रचार रहा और अब भी प्राचीन चीन की चित्रकला के आदर्श नमूने इसी काल के चित्रों में मिलते हैं।

मूर्ति-निर्माण—प्राचीन-काल में हम पत्थर पर नक्काशी का काम अवश्य करते थे, परन्तु बौद्ध-धर्म के प्रचार के पहले शायद मूर्ति-निर्माण से हम अनभिज्ञ थे। विख्यात भिक्षुओं की धर्म-पुस्तक से मालूम होता है कि सीन-घराने के समय ताईआनटाओ चित्रकार और कवि ही नहीं था, शिल्पकार भी था। उसने और उसके भाई ने बुद्ध की एक मूर्ति बनाई, जिसका उस समय बड़ा नाम था। इसके पश्चात् और भी मशहूर मूर्तियों के निर्माण किये जाने का हाल मिलता है। दुर्भाग्यवश बौद्ध-धर्म-विरोधी महाराजों के समय में बहुत कुछ मूर्तियाँ नष्ट हो गईं। परन्तु युंगकांग, दातुंग और शेंसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अब भी कोई एक सहस्र मूर्तियाँ हैं, जो हमें भारतीय कला की याद दिलाती हैं। कहा जाता है कि इनका ढङ्ग गान्धारीय है, जो यूनानी और भारतीय कला के सम्मिश्रण का फल है। यह अमूल्य रत्न-भाण्डार हमारे यहाँ क्योंकर होता, यदि भारत हमें यह भेंट-रूप न दे देता। काकिमोनो की कला भी उल्लेखनीय है। यह भी भारतवर्ष से ही यहाँ आई।

नाटक—मछली और देव के तमाशे से हम नाट्य-कला के इतिहास को आरम्भ कर सकते हैं। यह नाटक तो नाममात्र के लिए ही था। बहुत कुछ इसमें जादू के खेल और कहानी का अंश था। नृत्य और गायन का प्रचार प्राचीन समय में था। परन्तु दोनों का सम्मिलन शिंग-राजघराने के समय से ही हुआ। प्राचीनतम नाट्य का नाम पूटाओ है। खोज से मालूम हुआ है कि दक्षिणी भारत के एक स्थान बाटो से इसका सम्बन्ध है, जो दातुंग से दस सहस्र मील है। नाटक का नायक एक मनुष्य है, जो अपने पिता का बदला लेने के लिए पहाड़ों की ओर गया और वहाँ एक बाघ ने उसे मार डाला। अपने विचारों को वह भावपूर्ण गीत और नृत्य-द्वारा प्रकट करता है। इसके पश्चात् के कुछ नाटक पूटाओ के ही ढङ्ग पर लिखे गये हैं। इस तरह हम नाट्य-संसार में भी भारत के ऋणी हैं।

कविता तथा उपन्यास—यह सुनकर शायद आपको आश्चर्य हो कि भारत का हमारे काव्य तथा उपन्यास पर भी प्रभाव पड़ा है। मैं स्वयं यह नहीं कह सकता कि कहाँ तक यह प्रभाव पड़ा, परन्तु इतना अवश्य है कि अश्वघोष-रचित शाक्यमुनि की जीवनी तथा महायान-सूत्र के अनुवादों का हमारे साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा होगा कथानक काव्य का प्रादुर्भाव हमारे देश में भारतीय काव्यों के चीनी-भाषा में अनुवादित होने ही पर हुआ। उपन्यास-लेखन को भी महायान-धर्म के अनूदित ग्रन्थों ने उत्तेजना दी है।

ज्योतिष—इस विज्ञान का चीन में प्राचीन काल से प्रचार था, परन्तु टंग-काल में लिखे गये जूशूसी-ग्रन्थ से भारतीय प्रभाव का पता चलता है।

वैद्यक—इस शास्त्र का विकास चीन में ही हुआ। परन्तु भारत के सम्पर्क से इसको भी बहुत कुछ उत्तेजना मिली। सूर्य का इतिहास तथा टंग-राजघराने-विषयक ग्रन्थ इस कथन के साक्षी हैं।

वर्णमाला—चीनी-भाषा और भारतीय भाषाओं में गहरा भेद है। चीनी-भाषा में शब्दमाला है, वर्णमाला नहीं। इसलिए भारतीय साहित्यिकों को हमारी वर्णमाला सुधारने में विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई।

लेख-शैली—प्राचीन चीनी ग्रन्थों में न शब्दों का ठीक प्रकारान्तर है, न विषय की व्याख्या ही शुद्ध है। बौद्ध ग्रन्थों के प्रचार होने पर इस ओर चीनी साहित्य ने बहुत कुछ उन्नति की। हेतुविद्या तथा मीमांसा ने हमारी लेखन-शैली पर बड़ा प्रभाव डाला। युआनच्वांग ने जैन-बौद्धों की प्राचीन प्रणाली के मुक़ाबले में अपनी तर्कपूर्ण प्रणाली का प्रचार किया।

शिक्षा-विधि—प्राचीन चीन की क्या शिक्षा-प्रणाली थी, यह हमें नहीं मालूम है। परन्तु इतना निश्चय है कि कनफ़ूशियस तथा मेंशियस अपने सिद्धान्तों के प्रचारार्थ श्रोताओं को सभा में एकत्र कर वक्तृता नहीं दिया करते थे। लेक्चर-द्वारा शिक्षा देने की प्रथा भारतवर्ष से ही हमारे यहाँ आई। विशेष विषयों के अध्ययन के लिए पाठशालायें भी बौद्ध-धर्म के चीन में प्रचार होने पर ही खुलीं।

सामाजिक सङ्गठन—चीनी समाज का सङ्गठन पारिवारिक है। बौद्धधर्म के प्रचार होने पर परिवार से अलग और स्वतन्त्र सार्वजनिक सभायें स्थापित होने लगीं, जिनका उद्देश धार्मिक या साहित्यिक था। इनका इतना ज़ोर था कि कभी कभी सरकार का भी इनसे बस नहीं चलता था। पूडो-द्वीप-निवासियों को अब भी कुछ क़ानूनी अधिकार प्राप्त हैं।

भारतीय विचार हमारे अनुभव से सम्मिलित हो गये और हमारे जीवन के अङ्ग बन गये हैं। इनसे हमें अपने साहित्य और कला के उन्नत करने में सहायता मिली है। यहाँ तक कि वे अब अपने ही रङ्ग में रँगे हुए मालूम होते हैं। अब हम यह गर्व के साथ कह सकते हैं कि चीन के बौद्धधर्म में वैसी ही विशेषतायें हैं जैसी कि भारतीय में।

दुर्भाग्यवश लगभग एक सहस्र वर्ष से अब हम दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दूसरे से अलग अपने अपने ढङ्ग पर अपनी उन्नति कर रहे हैं। इतने दीर्घ समय तक हमें बहुत से कष्ट उठाना पड़े हैं। हम धमकाये गये हैं, हमारी हँसी उड़ाई गई है, हम कुचले गये हैं, हमारा बहुत कुछ निरादर हो चुका है; यहाँ तक कि अन्य देश के मनुष्य ही हमें घृणा की दृष्टि से नहीं देखते—हम खुद अपनी नज़रों में गिर गये हैं। परन्तु इतने परिवर्तन होने पर भी, इतनी आपदाओं के झेलने पर भी, हमें अपने उन सुकर्मों के अमरत्व का विश्वास है जो हमने संसार-हित किये हैं।

कनफ़ूशियस की समाधि पर एक पवित्र वृक्ष है जिसके पुराने और शुष्क अङ्ग की जड़ से अब भी वसन्त-ऋतु में नवपल्लव निकला करते हैं। हमारी सभ्यता में, उसके इतने जीर्ण होने पर भी, यौवन के अङ्कुर हैं। यदि ऐसा न होता तो क्यों भारतवर्ष में हमें ऐसी दो महान् आत्माओं के दर्शन होते जो रवीन्द्र और गांधी के नश्वर शरीर में हैं!

हज़ार वर्ष तक अलग रहने के पश्चात् यद्यपि इतने समय तक हम अपने पारस्परिक प्रेम को नहीं भूले हैं—आज हमारे बड़े भाई भ्रातृभाव से हमारे पास आये हैं। हम दोनों के ललाट पर शोक की रेखायें हैं। हम दोनों के बाल सफ़ेद हो गये हैं। हम एक दूसरे की ओर अबोध दृष्टि से ताक रहे हैं, मानों अभी घोर निद्रा से उठे हों। परन्तु थोड़ी देर तक एक दूसरे को देखने के पश्चात् यौवन-काल की कितनी स्मृतियाँ हमारे अन्तःकरण में उठती हैं! आज बहुत दिन बाद हम दोनों गले मिलते हैं। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि अब हम बिछुड़ने न पावें। हम रवीन्द्र बाबू का उसी भाव से आज स्वागत कर रहे हैं जिस भाव से लीयांग निवासियों ने शिमोदन का या लूसन-निवासियों ने शान्ती का स्वागत किया था।

रवीन्द्रजी यह कहते हैं कि न वे धर्म-सञ्चालक हैं, न शिक्षक हैं और न दार्शनिक। वे कवि-मात्र हैं। और वे उन महापुरुषों की बराबरी भी नहीं कर सकते जो भारत-वर्ष के उन्नतकाल में चीन गये। प्राचीन समय में महान् आदर्शों और महात्माओं का जन्म हो सकता था। यह समय परिवर्तन का है। विचारों की स्थिरता का इसमें कोई ठीक नहीं है। इसलिए महात्माओं का इसमें समागम भी नहीं है। आपके इस विचार से भी हम सहमत हैं।

परन्तु महाकवि होने के लिए कला में निपुणता प्राप्त करना ही यथेष्ट नहीं है—कवि को महान् आदर्शों के प्रदर्शक होने की भी आवश्यकता है। रवीन्द्रजी के व्यक्तित्व में तथा उनकी कविता में उस सात्विक प्रेम और उस निर्विकार स्वतन्त्रता के दर्शन मिलते हैं जो हिन्दू आचार तथा सभ्यता का प्रधान गुण है।

मुझे प्राचीन काल के भारतीय काव्यों का ज्ञान नहीं है। इसलिए तुलना कर नहीं सकता। परन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि रवीन्द्र बाबू हमारे लिए उतने ही ज़रूरी हैं जितने कि अश्वघोष, जिन्होंने बुद्ध-चरित्र लिखा। और हमें आशा है कि आपका कुमारजीव से कम प्रभाव नहीं पड़ेगा।

रवीन्द्रजी कहते हैं, प्रेम की भेंट के अलावा दीन भारत के पास अब कुछ नहीं है। हमें इतना ही कहना है कि यही हमारे लिए बहुत है। हमारे आनन्द की सीमा नहीं है।

हमें आशा है कि चीन और भारत के पारस्परिक प्रेम के भाव रवीन्द्रजी के साथ ही यहाँ से नहीं चले जायँगे। हमें भी एक महान् उद्देश की पूर्ति करना है। इसलिए हमें मिलकर काम करने की आवश्यकता है।

आशा है कि इस मिलन के साथ भारत और चीन की प्रेम-शृङ्खला का पुनर्मिलन होगा।

× × × ×

यहाँ तक अध्यापक ल्यांग-ची-चाव की वक्तृता का भावानुवाद हुआ। मुझे टीका-टिप्पणी नहीं करना है। हिन्दू-सङ्गठन के प्रेमियों के लिए यह विषय बड़े महत्त्व का है। अध्यापक महाशय के अन्तिम वाक्य के साथ हम भी कहते हैं "तथास्तु"।

कालिदास कपूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू-कविता।

दूसरा युग।

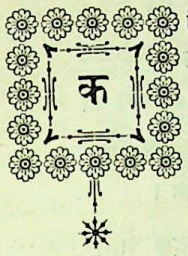

विता के रत्नों के जौहरियों ने उर्दू-कविता के दूसरे युग में शाहहातम, ख़ाने आर्ज़ू और नवाब फ़ुग़ान को रक्खा है। इनके समय में उर्दू-कविता का पैर आगे बढ़ा, नये शब्द दाख़िल हुए, पुराने छोड़ दिये गये, परन्तु फिर भी निम्नखिखित शब्द प्रयुक्त होते रहे—

से	के स्थान में सेती।		
जल गया	,,	,,	बल गया।
सदक़े	,,	,,	बलि।
दिल	,,	,,	मन।
पराठा	,,	,,	परोठा।
आहिस्ता	,,	,,	धीरा।
में	,,	,,	के बीच अथवा भीतर।
तरफ़	,,	,,	ओर।
हैरान होना	,,	,,	भिचक जाना।
जानेवाला	,,	,,	जानेहारा।
फ़र्माता है	,,	,,	फ़र्माईता है।
जाता है	,,	,,	जाइता है।
उन्हों	,,	,,	उन।
जिधर	,,	,,	जीधर।

इस युग की दो विशेषतायें हैं। पहली यह कि उनके शिष्यों ने उर्दू-कविता को शिखर पर पहुँचाया। दूसरे यह कि उन्होंने अपने समय में फ़ारसी के मुहाविरे फ़ारसी के विचार और फ़ार्सी के साखे उर्दू में दाख़िल किये, अर्थात् भारतवर्ष की श्यामला भूमि में फ़ारस के फूलों का दृश्य दिखा दिया। परन्तु इनमें आकर्षण इतना अधिक है कि मनुष्य मुग्ध हो जाता है। जो कुछ कहते हैं, सीधी-सादी रीति से कहते हैं। और ऐसे शब्दों में कहते हैं कि सुननेवाला कलेजा पकड़ कर रह जाता है।

इस युग के प्रथम कवि ज़हूरुद्दीन हातम थे। सन् १६३६ में शाहजहानाबाद में इनका जन्म हुआ, और बड़े होकर सेना में भर्ती हो गये। परन्तु जब हुकूमत की उच्छृङ्खलता देखी तब मन टूट गया और नौकरी छोड़ने के लिए अवसर ढूँढ़ने लगे। दैवयोग से उन्हीं दिनों में वली का दीवान दिल्ली पहुँचा और लोगों का ध्यान कविता की ओर झुका। शेख़ साहब के दिल ने भी चुटकी ली, फ़ौलादी तलवार के स्थान पर लेखनी का कर्तव दिखाने पर उद्यत हुए। रसिक मनुष्य थे, जब उनका दीवान लोगों के सामने आया तब कुछ मनुष्यों ने कहा, "शेख़ साहब आपका दीवान तो दीवानों का बाप मालूम होता है"। शेख़ साहब उस समय तो चुप रहे, पर थोड़े दिन पीछे उसको छाँट कर छोटा कर दिया। और उसका नाम रक्खा दीवानज़ादा। जब किसी ने कारण पूछा तो उत्तर दिया कि इसकी उत्पत्ति दीवान से हुई है, इसलिए दीवानज़ादा है। इनके ४५ शिष्य थे, जिनमें मीरज़ा सौदा, सआदत यारख़ाँ रंगीन और मुहम्मद अमान निसार विशेषतया उल्लेखनीय हैं। मीरज़ा सौदा से आपको अति प्रेम था और कहा करते थे कि यह शागिर्द मेरे नाम को अमर कर देगा। और समय ने बतलाया कि यह उनकी ग़लती न थी।

शेख़ साहब अपनी भूल मानने के लिए सर्वदा उद्यत रहते थे। एक बार कवियों की एक सभा हो रही थी, शिष्य अपनी अपनी कविता सुना रहे थे कि इन्होंने अपनी कविता पढ़ी—

सर को पटका है कभू सीना कभू कूटा है।
रात हम हिज्र की दौलत से मज़ा लूटा है।

सआदत यारख़ाँ रङ्गी ने कहा—"उस्ताद अगर यूँ कहें तो कैसा रहे—

सर को पटका है कभू सीना कभू कूटा है।
हमने शब हिज्र की दौलत से मज़ा लूटा है।

दूसरे शिष्यों को यह ढिठाई बहुत बुरी लगी, परन्तु शेख़ साहब का मुख उसी तरह प्रफुल्लित था। हँस कर बोले—बहुत अच्छा है, अभ्यास न छोड़ना, किसी दिन नाम पैदा करोगे। उनकी कविता वेदान्त के रङ्ग में रँगी हुई है, जैसे—

छुपा नहीं जाबजा हाज़िर है प्यारा,
कहाँ वह चश्म जो मारे (१) नज़ारा।

---

१ देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुदा नहीं सब सेती तहकीक़ (१) कर देख,
मिला है सबसे और सबसे है न्यारा।
मुसाफ़िर उठ तुझे चलना है मंज़िल,
बजे है कूच का हरदम नक़ारा।
मिसालेबहर (२) मौजें मारता है,
किया है जिसने इस जगह सों किनारा।
सयाने ख़लक़ (३) से यूँ भागते हैं,
कि जूँ आतिश (४) सेती भागे है पारा।
समझ कर देख सब जग बीच माहीं,
कहाँ हैगा सिकन्दर कहाँ है दारा।
सफ़ा कर दिल के आइने को हातम,
देखा चाहे सजन गर आशकारा।
कामलों (५) का यह सुख़न मुद्दत सों मुझको याद है—
जगमों बे महबूब (६) जीना ज़िन्दगी बर्बाद है।
आबेहयात (७) जाके किसूने पिया तो क्या—
मानिन्द ख़िज्र जग में अकेला जिया तो क्या।

सन् १७८६ में दिल्ली में इनका देहान्त हुआ।

ख़ान सराजुद्दीन अलिख़ान आर्ज़ू उर्दू की कविता में उतने ही ऊँचे हैं जितने तर्क-शास्त्र में अरस्तू। यदि यह सत्य है कि सम्पूर्ण तार्किक लोग अरस्तू के पुत्र कहलाने में अपना गौरव समझते हैं तो यह भी सत्य है कि समस्त उर्दू-कवि ख़ान आर्ज़ू के बेटे कहलाने में आत्मसम्मान समझते हैं। उनके शिष्यों में मीरज़ा जानजाना मज़हर, मीर तक़ी, ख़्वाजा मीर दर्द जैसे क्रान्तिदर्शी कवि प्रकट हुए, जिन्होंने उर्दू-कविता को पर लगा दिये और उसके लिए नया आकाश ढूँढ़ निकाला।

ख़ान साहब वस्तुतः उर्दू के कवि नहीं, न इस भाषा में शेअ्र कहना अपने लिए गौरव समझते थे। उनकी दृष्टि एक-मात्र फ़ारसी की ओर थी; और फ़ारसी में उनकी कविता इतनी ऊँची थी कि देखकर आश्चर्य्य होता है। जन्म का समय किसी को पता नहीं। हाँ, इतना मालूम हुआ है कि इनका सन् १७४८ में लखनऊ में देहान्त हुआ है।

१ खोज। २ समुद्र की नाईं। ३ लोगों से। ४ आग। ५ पहुँचे हुए मनुष्यों का। ६ प्रीतम के बिना। ७ अमृत।

उर्दू के शेअ्र कभी कभी कहा करते थे।

नमूना—

तुझ ज़ुल्फ़ में लटक न रहे तो दिल क्या करे।
बेकार है अटक न रहे दिल तो क्या करे।

आता है हर सहर (१) उठ तेरी बराबरी को—
क्या दिन लगे हैं देखो ख़ुर्शैद (२) ख़ावरी को।
उस तंदु ख़ू सनम से जब से लगा हूँ मिलने—
हर कोई मानता है मेरी दिलावरी को।

रखे सीपारा ये (३) दिल खोल आके इंदलीबों (४) के—
चमन में आज गोया फूल हैं तेरे शहीदों के।

इनके शिष्यों में एक नवयुवक अति सुन्दर था, जो प्रतिदिन आपकी सेवा में उपस्थित होता था। दैवयोग से वह कुछ दिन न आया। एक दिन ख़ाजा साहब बाज़ार में बैठे थे कि वह उधर से गुज़रा। इन्होंने बुलाया। उसे कदाचित् कोई आवश्यक कार्य्य था, जल्दी से गुज़र गया। ख़ान साहिब ने आदमी भेज कर बुलवाया और कहा—तुम्हारे लिए एक शेअ्र कहा है, सुनते जाओ,

यह नाज़, यह ग़ुरूर लड़कपन में तो न था।
क्या तुम जवान हो के बड़े आदमी हुए।

इस युग के तीसरे कवि नवाब आशफ़ अलि फ़ुग़ां थे। कुछ लेखकों ने उन्हें क़ज़ल बाशख़ाँ उम्मीद का शिष्य लिखा है। पर यह उनकी भूल है। नवाब साहब का अपना कथन है कि मैंने हजरत नदीम से शिक्षा ली। देखिए—

हर चन्द अब नदीम का शागिर्द है फ़ुग़ां।
दो दिन के बाद देखियो उस्ताद हो गया।

ये अहमदशाह दुर्रानी के समय में हुए हैं। देहली के शाही दरबार में नौकर थे। परन्तु जब अहमदशाह के हमलों ने देहली का सौभाग्य लूट लिया तब मुर्शिदाबाद चले गये। और वहाँ से अज़ीमाबाद पहुँचे, जहाँ राजा शताब-राय ने इनका बहुत सत्कार किया और आयु भर अपने पास ही रक्खा। एक दिन आपने एक ग़ज़ल पढ़ी, जिसका क़ाफ़िया था लालीयाँ, बालीयाँ जालीयाँ। राजा साहब के दरबार में एक मसख़रे मियां जुगनू भी थे। उन्होंने

१ प्रभात। २ सूर्य्य। ३ हृदय-खंड़। ४ बुलबुलों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—उस्ताद और सब काफ़िये आगये, परन्तु तालीयाँ रह गया। इन्होंने टाल दिया, पर मियाँ जुगनू कब टलने-वाले थे, फिर बोले और ज़ोर के साथ बोले। राजा शेतांबराय ने कहा—नवाब साहब, आपने सुना मियाँ जुगनू क्या कहते हैं। उत्तर दिया, जी हाँ सुना, मैंने जान-बूझ कर यह क़ाफ़िया छोड़ दिया था। राजा साहब ने कहा—अब कह दीजिए। नवाब साहब ने तुरन्त कहा—लीजिए,

जुगनू मियाँ की दुम जो चमकती है रात को,
सब देख देख उसको बजाते हैं तालीयाँ।

राजा साहब बहुत प्रसन्न हुए। उनकी कविता इस प्रकार की थी—

कहते हैं फ़स्ले(१) गुल तो चमन से गुज़र गई,
अय इंदलीब तू न क़फ़स(२) बीच मर गई।
शिकव ! तू क्यों करे है मेरे अश्के (३) सुर्ख़ का,
तेरी कब आस्तीं मेरे लोहू से भर गई।
मैं अपना हाल देख कर फ़ौरन भिचक गया,
दिल भी उधर गया मेरी जिधर नज़र गई।
तनहा अगर मैं यार को पाऊँ तो यूँ कहूँ,
इंसाफ़ को न छोड़ मुरौवत अगर गई।
आख़िर फ़ुग़ाँ वही है उसे क्यों भुला दिया,
वह क्या हुए तपाक वह उल्फ़त किधर गई।
मुझसे जो पूछते हो तो हर हाल शुक्र है,
यूँ भी गुज़र गई मेरी यूँ भी गुज़र गई।
मुफ़्त सौदा है अरे यार कहाँ जाता है,
आ मेरे दिल के ख़रीदार कहाँ जाता है।
लिये जाती है अजल जाने फ़ुग़ाँ को अय यार,
लीजियो ! तेरा गिरिफ़्तार कहाँ जाता है।

खा पेचो ताब मुझको उसें अब वह कालियाँ—
ज़ालिम इस लिए तैंने जुल्फ़ें थीं पालियाँ।
देखा कि यह तो छोड़ता मुमकिन नहीं मुझे—
चलने लगा वह शोख़ मेरा तब यह चालियाँ—
हर बात बीच रूठना हर दम में ना खुशी,
हर आन दूखना मुझे हर वक़्त गालियाँ।
था यह ख़याल ख़्वाब में हैगा यह रोज़े वस्ल(१),
आँखें जो खुल गईं वही रातें हैं कालियाँ।

इनकी मृत्यु सन् १७६८ में हुई।

१ फूलों की रुत। २ पिँजरा। ३ रक्त अश्रु।

तीसरा युग।

इस युग में मीरज़ा सौदा, मीर सोज़, ख़्वाजा मीर दर्द और मीर तक़ी चार कवि हुए, जिन्होंने अपने समय में उर्दू को पीतल से सोना बना दिया। और इसमें ऐसी सुन्दरता भर दी कि उर्दू भी अपना मस्तक ऊँचा करने के योग्य हो गई। इस समय तक फ़ारसी के विचार उर्दू में आते थे, परन्तु इस प्रकार जैसे मख़मल के ऊपर मोती रख दिये हों। इन योग्य सुकवियों ने उनको उर्दू में इस प्रकार खपाया, जैसे मिश्री दूध में घुल जाती है, और फिर उन्हें अलग करना कठिन हो जाता है। उन्होंने कल्पना की दौड़ में नये नये विचारों को शब्दों के साँचे में ढाला और कविता का रङ्ग बदल दिया। आपस में एक दूसरे पर चोटें भी करते रहे और अपने भर सक एक दूसरे के विरुद्ध भी लिखते रहे। यह एक बुराई थी, जो पैदा न होती तो अच्छी थी। कवि लोग संसार की परवा नहीं करते। उनका अपना राज्य होता है, जहाँ ताने उड़ती हैं, फूल महकते हैं, चन्द्रमा चमकता है और स्वर्गीय वायु चलता है। वे साधारण से घर में रहते हैं, पर महलों का आनन्द लूटते हैं। वे प्रायः निर्धनता का जीवन गुज़ारते हैं, परन्तु धनवान् उन्हें देख कर ईर्ष्या करते हैं; यश और कीर्ति उन पर निछावर होती है। फिर यदि आप ही एक दूसरे पर चोटें करने लगें तो उनका प्रभाव क्या ख़ाक बाक़ी रहेगा।

इस युग में उर्दू-भाषा और भी मार्जित हुई। परन्तु फिर भी ऐसे शब्द थे जो इस समय व्यवहार में आते थे, परन्तु अब छोड़ दिये गये हैं। उनकी सूची यह है—

तूने	के स्थान में	तैं।
हमेशा	,,	,,	नित।
मट्टी	,,	,,	माटी।
मिल	,,	,,	रल।
लगा	,,	,,	लागा।

१ मेल का दिन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे पास	के स्थान में		हम पास ।
एक	,,	,,	एकों ।
कहते हो	,,	,,	कही हो ।
उधर	,,	,,	तिधर और ऊधर ।
उनसे	,,	,,	उन कने ।
आती थीं	,,	,,	आतियाँ थीं ।
मेरी जान	,,	,,	मेरा जान ।
हिलना	,,	,,	हलना ।
घिसना	,,	,,	घसना ।
रूह	,,	,,	जिउड़ा ।
पत्थर	,,	,,	पथर ।
बजता	,,	,,	बाजता ।
नाम	,,	,,	नाओं
कब तक	,,	,,	कब लग ।
उसने	,,	,,	उने ।
टटोलता है	,,	,,	टटोले है ।
बात	,,	,,	बचन ।
ज़रा	,,	,,	टुक ।

इस युग के सबसे पहले कवि मीरज़ा मुहम्मद रफ़ी सौदा थे। इनका जन्म सन् १७०० में काबुल में हुआ। ये अपने पिता के साथ भारतवर्ष आये और यह देश ऐसा पसन्द आया कि यहीं के बन गये। इनका देहान्त सन् १७७७ में हुआ और यहीं इनकी हड्डियाँ भी दबाई गईं। इनकी बाल्यावस्था दिल्ली में गुज़री। जवान हुए तब कविता की लौ लगी, और ख़ाँ आर्ज़ू के शिष्य हुए। उस समय मीरज़ा फ़ारसी के शेअर कहते थे। ख़ाँ आर्ज़ू ने सम्मति दी कि तुम्हारा जन्म काबुल में हुआ है, मगर दिल्ली में पले हो, अब फ़ारसी तुम्हारी भाषा नहीं रही, इसलिए यदि तुम उर्दू में अपने विचार प्रकट करो तो अच्छा होगा, तुम्हारी कीर्ति सारे देश में फैल जायगी। यह बात मीरज़ा सौदा के मन लग गई। फ़ारसी का विचार छोड़ दिया और उर्दू की ओर दृष्टि दी। थोड़े दिन के अभ्यास से दिल्ली में आपके नाम का डङ्का बजने लगा और दूर दूर तक धूम मच गई। उसी समय मीर तक़ी मैदान में आये, लेखनी के धनी थे। मीरज़ा सौदा और मीर तक़ी का कई बार मुक़ाबला भी हुआ। निस्सन्देह मीर तक़ी की कविता मीरज़ा सौदा से अधिक लोकप्रिय है, परन्तु कई बार मीरज़ा सौदा मीर तक़ी को पीछे छोड़ जाते थे। जैसे कि एक बार मीर तक़ी ने कहा—

सरहाने मीर के आहिस्ता बोलो।
अभी टुक रोते रोते सो गया है।

मीरज़ा सौदा ने सुना, कहा—ऐसा मालूम होता है कि शेअर मीर साहिब का नहीं, उनकी मा का है। यदि मैं कहता तो यूँ कहता—

सौदा के सरहाने जो गया शोरे क़यामत।
ख़ुद्दामे अदब बोले अभी आँख लगी है।

पाठक दोनों शेअरों को ध्यान से देखें, उनका अन्तर मालूम हो जायगा। मीर साहिब के कथन से वास्तव में यही रङ्ग झलकता है कि कोई स्त्री रोगी के सिरहाने बैठी है और कह रही है कि ज़रा धीमे बोलो, बेचारा अभी अभी सोया है, जाग उठेगा। परन्तु मीरज़ा सौदा के कथन का रङ्ग निराला है। कहते हैं, जब प्रलय हुई और उसका कोलाहल सौदा के सिरहाने तक गया तब भृत्यों ने प्रार्थना की कि तब तक ठहर जाइए, अभी अभी आँख लगी है। बयान की ऐसी शोख़ी है कि दिल उछल पड़ता है। नीचे हम मीरज़ा सौदा और मीर साहिब के मुक़ाबले का एक और शेअर लिखते हैं, जिसमें मीरज़ा साहिब मीर साहिब को पीछे छोड़ गये हैं।

मीर—चमन में गुल ने जो कल दावए जमाल किया—
जमाले यार ने मुँह उसका ख़ूब लाल किया।

सौदा—बराबरी का तेरी गुल ने जब ख़याल किया—
सबा ने मार थपेड़ा मुँह उसका लाल किया।

अर्थ—मीर साहिब कहते हैं कि कल बाग़ में फूल ने दावा किया कि मैं भी सुन्दर हूँ। परिणाम यह हुआ कि मेरे प्यारे की सुन्दरता ने उसका मुँह (मार मार कर) लाल कर दिया। परन्तु सौदा साहिब इस विषय में जीवन डाल देते हैं, और कहते हैं कि जब फूल ने तुझसा सुन्दर होने का दावा किया तब पवन इस चेष्टा को सहन न कर सका, और उसने थप्पड़ मार मार कर उसका मुँह लाल कर दिया। इस प्रकार अनेक अलङ्कार बाँधे हैं, जिनमें सौदा साहिब की तुलना मीर साहिब नहीं कर सके। नीचे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwâr

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम मीरज़ा साहिब की चुनी हुई ग़ज़लें देते हैं, जिनसे मालूम होगा कि आप कितने क्रान्तिदर्शी और उन्नत विचार के कवि थे। परमात्मा की सर्वव्यापकता का बयान करते हुए लिखते हैं—

(१) ग़ैर के पास यह अपना ही गुमाँ है कि नहीं।
जल्वा गर यार मेरा वर्ना कहाँ है कि नहीं।

अर्थ—लोगों को यह वहम हो गया है कि उसमें यह गुण नहीं, अन्यथा सच तो यह है कि ऐसा कोई स्थान ही नहीं, जहाँ वह न हो।

(२) दिल के पुर्ज़ों को बग़ल बीच लिये फिरता हूँ,
कुछ इलाज उनका भी अय शीशागराँ है कि नहीं।

अर्थ—मैं हृदय के टुकड़ों को काँख में दबाये इधर-उधर ढूँढ़ता फिरता हूँ कि क्या शीशागर इन्हें भी जोड़ सकते हो या नहीं।

(३) जुर्म है उसकी जफ़ा का कि वफ़ा की तक्सीर,
कोई तो बोलो सियाँ मुँह में ज़बाँ है कि नहीं।

अर्थात्—सारा दोष मुझ पर आ रहा है, यद्यपि मैंने निभाई है और उन्होंने तोड़ डाली है। परन्तु कोई नहीं बोलता। कैसा अन्धेर है? क्या सबकी ज़बानें टूट गई हैं?

(४) पासे नामूस मुझे इश्क़ का है अय बुलबुल,
वर्ना याँ कौन सा अन्दाज़े फ़ुग़ाँ है कि नहीं।

अर्थ—ऐ बुलबुल, इस बात पर मत फूल कि तुझे ही रोना आता है। मुझे प्रेम की प्रतिष्ठा का विचार है अन्यथा इतना रोता और इतने प्रकार से रोता कि तेरी आँखें खुल जातीं। रोने की कौन सी विधि है, जो मुझे नहीं आती।

(५) पूछा सौदा से मैं इक रोज़ कि अय आवारा,
तेरे रहने का मुअय्यन भी मकाँ है कि नहीं।

अर्थ—एक दिन मैंने सौदा से पूछा कि तुझे कभी कहीं देखता हूँ, कभी कहीं, तूने यह क्या आवारगी पकड़ी है। क्या तेरे रहने का घर भी कोई है या नहीं।

एक और ग़ज़ल के कुछ शेर देखिए—

(१) अफ़यी को यह ताक़त है कि उससे बसर आवे।
वह ज़ुल्फ़ सियह अपनी अगर लहर पर आवे।

अर्थ—प्यारे की काली अलक की तारीफ़ करते हैं कि यदि वह लहराने लगे तो उसका मुक़ाबला करना असम्भव हो जाता है, यहाँ तक कि काले सर्प में भी यह शक्ति नहीं कि उसके सम्मुख सिर उठा सके।

(२) सूरत हमें उस मेह्र की पहचान अगर आवे।
हर ज़र्रे में कुछ और ही झमका नज़र आवे।

अर्थ—हम परमेश्वर के गुणों को नहीं जानते। यदि हम उस सूरज के गुणों को जान पाये तो आँखें खुल जायँ और परमाणु परमाणु चमकता हुआ दिखाई दे।

(३) कह कहके दुख अपना मैं किया मग्ज़ को ख़ाली।
इतना न हुआ सुनके तेरी चश्म भर आवे।

अर्थ—मैंने अपने दुख की कहानी सुना सुना कर अपना सिर ख़ाली कर लिया, परन्तु तू इतना पाषाण-हृदय है कि तेरी आँखों में एक अश्रु तक नहीं आया।

(४) गोया दिले आशिक़ भी है इक फ़ील सियह मस्त।
रुकता नहीं रोके से किसु के जिधर आवे।

अर्थ—प्यारे का दिल मस्त हाथी की नाईं है। जब किसी ओर चल पड़ता है तो किसकी शक्ति है कि रास्ता रोक सके।

(५) सब काम निकलते हैं फ़लक तुझसे व लेकिन।
मेरे दिले नाशाद की उम्मीद बर आवे।

अर्थ—हे आकाश! तू सबके काम निकालता है। परन्तु मेरे उदास मन की आशा पूरी नहीं होती। इसका क्या कारण है?

(६) देता है कोई मुर्ग़े दिल उस शोख़ को सौदा,
क्या क़हर किया तूने ग़ज़ब तेरे पर आवे।

(७) अब ले तो गया है पर उसे देखियो नादान,
पल में न उड़ाता वह अगर बालो पर आवे।

अर्थ—ऐ सौदा, यह तूने क्या किया, जो अपना मुर्ग़ा सा दिल उसको दे दिया। जान पड़ता है कि तुझ पर कोई वज्र टूटनेवाला है। नादान वह ले तो गया है, पर अब ध्यान रखना कि कहीं पल भर में ही उसके बाल और पर नोच कर न ले आवे।

इस युग के दूसरे प्रसिद्ध कवि ख़ाजा मीर दर्द थे, दिल्ली के रहनेवाले थे। इनका जन्म सन् १७१५ में हुआ। दिल्ली की हलचल और उसका पतन देख कर, जिधर जिसके सींग समाये भाग निकला, परन्तु ख़्वाजा साहिब ने दिल्ली को न छोड़ा, और कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़बान का स्वाद कौन छोड़े। इनका सारा समय कविता की भेंट हुआ। गानविद्या के भी बड़े प्रेमी थे; अपनी ग़ज़लें गाते थे और झूमते थे। एक बार अपने सम्बन्ध में कहा कि मैं तो मोर हूँ, जो अपनी सुन्दरता पर ही लट्टू होता है और उसे देख देखकर नाचता है। मीरज़ा सौदा आपकी कविता का आदर करते थे। यह प्रसिद्ध है कि एक बार कोई मनुष्य लखनऊ से दिल्ली चला, और मीरज़ा सौदा से बोला कि कोई सन्देशा देना हो तो दे दीजिए। मीरज़ा ने उत्तर दिया, भाई मेरा दिल्ली में कौन है? हाँ ख़्वाजा मीर दर्द की तरफ़ जा निकलो तो सलाम देना।

तनक विचारिए! मीरज़ा सौदा जैसे मनुष्य को सारी दिल्ली में केवल एक मनुष्य दिखाई दिया, जिसे उन्होंने सलाम भिजवाई। इससे पता लग सकता है कि उनकी दृष्टि में ख़्वाजा साहिब का कितना आदर था। ख़्वाजा साहिब की भाषा सौदा से मिलती-जुलती है। नमूना देखिए—

(१)

जग में आकर इधर-उधर देखा,
तू ही आया नज़र जिधर देखा।
जान से हो गये बदन ख़ाली,
जिस तरफ़ तूने आँख भर देखा।
नाला(१) फ़र्याद आह और ज़ारी(२)
आपसे हो सका सो कर देखा।
उन लबों ने न की मसीहाई(३),
हमने सौ सौ तरह से मर देखा।

(२)

जग में कोई न टुक हँसा होगा,
जो न हँसने में रो दिया होगा।
उसने क़सदन(४) भी मेरे नाला को,
न सुना होगा गर सुना होगा।
दिल ज़माने के हाथ से सालम(५),
कोई होगा कि रह गया होगा।
हाल मुझ ग़मज़दे का जिस तिसने,
जब सुना होगा रो दिया होगा।
दिल के फिर ज़ख़्म ताज़ा होते हैं,
कहीं गुञ्चा कोई खिला होगा।
यक बयक नाम ले उठा मेरा,
जी में क्या उसके आ गया होगा।
मेरे नालों पे कोई दुनियाँ में,
बिन किये आह कम रहा होगा।
लेकिन उसका असर ख़ुदा जाने,
न हुआ होगा या हुआ होगा।
दिल भी अय दर्द क़तराए(१) ख़ूं था,
आँसुओं में कहीं गिरा होगा।

(३)

मेरा जी है जब तक तरी जुस्तजू(२) है,
ज़बाँ जब तलक है यही गुफ़्तगू है।
ख़ुदा जाने क्या होगा अंजाम(३) इसका,
मैं बेसब्र इतना हूँ वह तुंद ख़ूं है।
तमन्ना(४) है तेरी अगर है तमन्ना,
तरी आर्ज़ू है अगर आर्ज़ू है।
किसू को किसू तरह इज़्ज़त है जग में,
मुझे अपने रोने से ही आबरू है।
नज़र मेरे दिल की पड़ी दर्द किस पर,
जिधर देखता हूँ वही रूबरू है।

कितनी विशद भाषा है, और भाव कितने अच्छे। सन् १७८१ में इनका देहान्त हुआ।

तीसरे कवि, जिनकी कविता ने इस युग को सूरज की भाँति चमका दिया, सय्यद उम्र मीर सोज़ थे। आप सन् १७२५ में उत्पन्न हुए। पहले मीर तख़ल्लुस करते थे, परन्तु जब मीर तक़ी ने भी यही तख़ल्लुस करना आरम्भ कर दिया तब इन्होंने उसे बदल कर सोज़ कर लिया। जन्म-स्थान दिल्ली था, परन्तु पूर्वज इनके बुख़ारा-निवासी थे। इनकी कविता भी बड़ी उच्च कोटि की है और भाषा ऐसी सुन्दर है कि सहसा हृदय को खींच लेती है। आपमें एक गुण और था, और वह यह कि नाट्य में बड़े

१, २ रुदन। ३ अमृत का काम। ४ जानबूझ कर। ५ पूरा।

१ रक्त का बिंदु। २ खोज। ३ परिणाम। ४ अभिलाषा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवीण थे। जब मुशायरे में ग़ज़ल पढ़ते तब शब्द शब्द पर हाव-भाव और कटाक्ष करते। एक बार आपने पढ़ा—

गये घर से जो हम अपने सबेरे,
सलाम अल्लाह ख़ाँ साहिब के डेरे।
वहाँ देखे कई तिल्फ़ परी रू,
अरे रे रे अरे रे रे अरे रे।

चौथा चरण पढ़ते पढ़ते इस तरह गिरे, मानो परियों को देखकर मन हाथ से निकल गया, और अचेत होकर गिर गये। मुशायरे में सन्नाटा छा गया।

सन् १७९५ में लखनऊ में इनका देहान्त हुआ। कविता का नमूना यह है—

(१)

भला रे इश्क़ तेरी शौकतोशां,
भाई मेरे तो उड़ गये औसां।
एक डर था कि जी बचे न बचे,
दूसरे ग़म ने खाई मरी जाँ।
बस ग़मे (१) यार एक दिन दो दिन,
इससे ज़ियादा न हो जीउ महमाँ।
न कि बैठे हों पाओं फैलाकर,
अपने घर जाओ ख़ाना आबादाँ।
और तो और कह के दो बातें,
सोज़ कहलाया साहबे दीवाँ (२)।

(२)

मेरा जान जाता है यारो बचालो,
कलेजे में काँटा गड़ा है निकालो।
न भाई मुझे ज़िंदगानी न भाई,
मुझे मार डालो मुझे मार डालो।
खुदा के लिये मरे अय हम नशीबो,
बह बाँका जो जाता है उसको बुला लो।
अगर वह ख़फ़ा होके कुछ गालियाँ दे,
तो दम खा रहो कुछ न बोलो न चालो।
न आवे अगर वह तुम्हारे कहे से,
तो मिन्नत करो घेरे घेरे मना लो।
कहो एक बंदा तुम्हारा मरे है,
उसे जान कंदज़ से चलकर बचा लो।

जलों की बुरी आह होती है प्यारे,
तुम इस सोज़ की अपने हक़ में दुआ लो।

(३)

दिल के हाथों बहुत ख़राब हुआ,
जल गया बल गया कबाब हुआ।
अश्क(१) आँखों से पल नहीं थमता,
क्या बला दिल है दिल में आब(२) हुआ।
यार अग़यार हो गये अफ़सोस,
क्या ज़माने का इन्कलाब(३) हुआ।
जिनको नित देखते थे अब उनका,
देखना भी ख़याल ख़्वाब हुआ।

ऊपर जिन तीन कवियों का उल्लेख किया गया है, मीर अम्द तक़ी मीर इन तीनों से बढ़ चढ़ कर हुए हैं, और सच तो यह है कि उर्दू-कविता में उनके जोड़ का कवि आज तक नहीं हुआ। बात से बात निकालना उनके बायें हाथ का कर्तब था। और ऐसी सुन्दरता से रूपक बाँधते थे कि सुननेवाला चकित रह जाता था। बात बात पर बिगड़ बैठते थे, और कवि तो अपने सिवा किसी को समझते ही न थे। लखनऊ में किसी ने पूछा, क्यों साहिब! आज-कल कवि कौन कौन हैं?

मीर साहब ने उत्तर दिया—"एक मैं, दूसरे मीरज़ा सौदा"।

—"और ख़्वाजा मीर दर्द?"।

"हाँ आधे शायर वह भी हैं।"

"और मीर सोज़ के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है?"

मीर साहब ने नाक सिकोड़ कर कहा—"क्या मीर सोज़ भी शायर हैं?"

"जी! आख़िर नवाब आसफ़ उद्दौला उनके शागिर्दों में हैं।"

"तो ख़ैर पौने तीन सही, मैं उनको पाओ शायिर मान सकता हूँ।"

इतना ही नहीं, वह शेख़ सादी की ग़ज़ल भी पढ़ी जाय तो सिर हिलाना पाप समझते थे। एक बार एक नवयुवक ग़ज़ल लेकर आया, और प्रार्थना की कि मैं शागिर्द हुआ चाहता हूँ। मीर साहिब ने उत्तर दिया—फ़ारसी

१ माशूक़ का ग़म। २ दीवान वाला शायिर।

१ आँसू। २ पानी। ३ परिवर्तन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कह लिया करो, उर्दू तुमको नहीं आयगी। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं, परन्तु विस्तारभय से छोड़ दिये गये हैं।

मीर तक़ी का जन्म सन् १७०७ में अकबराबाद में हुआ। पिता की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली में आ गये। उस समय वहाँ ख़ाँ आरज़ू की तूती बोल रही थी। मीर तक़ी उनके शिष्य बन गये और थोड़े ही समय में प्रसिद्ध हो गये। परन्तु जब दिल्ली के रङ्ग-ढङ्ग बदले तो मीर तक़ी को लखनऊ जाना पड़ा। पूरी गाड़ी का किराया दे न सकते थे, इसलिए एक और मनुष्य के साथ बैठ गये। थोड़ी दूर गये होंगे कि उस मनुष्य ने कुछ बात की, उन्होंने उधर से मुँह मोड़ लिया। उसने कहा,—साहिब! आप कैसे आदमी हैं, जो बातचीत से भी कतराते हैं। मीर तक़ी ने उत्तर दिया—आप बातें करते हैं, मेरी ज़बान ख़राब होती है। उस मनुष्य ने विस्मित होकर इनकी ओर देखा और फिर कोई बात न की। जब लखनऊ पहुँचे तब सन्ध्या हो गई थी। मीर तक़ी एक सराय में उतरे। वहाँ मुशायरा होनेवाला था, रह न सके। तत्काल ग़ज़ल लिखी और मुशायरे में जा पहुँचे। उनकी पुरानी चाल-ढाल देख कर लोग हँसे। मीर साहिब को बहुत बुरा मालूम हुआ, पर क्या करते, लहू का घूँट पीकर रह गये, और एक ओर को बैठ गये। जब उनकी बारी आई तब लोगों ने पूछा, हज़ूर का वतन कहाँ है। मीर साहिब ने उत्तर दिया।

क्या बूदो (१) बाश पूछो हो पूरब के साकिनों (२),
हमको ग़रीब जान के हँस हँस पुकार के।
दिल्ली जो एक शहर था आलम में इंतख़ाब (३),
रहते थे मुंतख़िब(४) ही जहाँ रोज़गार (५) के।
उसको फ़लक ने लूट कर वीरान कर दिया,
हम रहनेवाले हैं उसी उजड़े दयार(६) के।

क्या समयोचित कथन था, करुणा से भरा हुआ परन्तु अभिमानद्योतक। लोगों की आँखें खुल गईं। अब जाकर मालूम हुआ कि यह वह पुरुष है जिस पर उर्दू को मान है और जिसके नाम के भारतवर्ष में डङ्के बज रहे हैं। प्रातःकाल होते होते यह समाचार नगर में जङ्गल की आग की तरह फैल गया। नवाब आसफ़उद्दौला ने सुना और दो सौ रुपये मासिक नियत कर दिया। १०० वर्ष की आयु में सन् १८०७ में मरे। कविता का नमूना यह है—

(१)

कोफ़ (१) से जान लब पे आई है,
हमने क्या चोट दिल पे खाई है।
लिखते रुक़ा लिखे गये दफ़्तर,
शौक़ ने बात क्या बढ़ाई है।
दीदनी (२) है शिकस्तगी (३) दिल की,
क्या इमारत ग़मों ने ढाई है।
जिस मर्ज़ में कि जान जाती है,
दिलबरों ही की वह जुदाई है।
मर्गे मजनूं (४) से अक़्ल गुम है मीर,
क्या दिवाने ने मौत पाई है।

(२)

सुख़न मुश्ताक़ (५) है आलम हमारा,
बहुत आलम करेगा ग़म हमारा।
पढ़ेंगे लोग रो रो शेअर बैठे,
रहेगा देर तक मातम हमारा।
ज़मीनों आस्मां ज़ेरो ज़बर (६) हैं,
नहीं कम हश्र से ऊधम हमारा।
किसू के बाल बरहम (७) देखते मीर,
हुआ है काम दिल बरहम हमारा।

(३)

जान अपना जो हमने मारा था,
कुछ हमारा इसी में चारा था।
कौन लेता था नाम मजनूं का,
जब कि अहदे (८) जुनूँ हमारा था।
इश्क़ बाज़ी में क्या मुए हैं मीर,
आगे ही जी उन्होंने हारा था।

---

१ नगर। २ निवासियो। ३ चुना हुआ। ४ चुने हुए मनुष्य। ५ दुनिया। ६ नगर।

१ सङ्कट। २ दृश्य। ३ टूटना। ४ जनूं की मौत। ५ कविता का अभिलाषी। ६ नीचे ऊपर। ७ बिखरे हुए। ८ पागलपन का समय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

इश्क़ बुरे ही ख़याल पड़ा है चैन गया आराम गया।
दिल का जाना ठहर गया है सुबह गया या शाम गया।

(५)

वे दिन गये कि आँखें दरिया सी बहतियाँ थीं।
सूखा पड़ा है अब तो मुद्दत से यह दोआबा।

(६)

तोबा ज़ाहिद की तोबा तिल्ली है।
चिल्ले बैठे तो शेख़ चिल्ली है।
बिगड़ी अपनी सँभालियेगा मीर।
और बस्ती नहीं यह दिल्ली है।

[असमाप्त

सुदर्शन

क्या हिन्दुओं में जातीयता नहीं थी ?

हम अपने हिन्दूत्व नामक लेख में कह आये हैं कि आर्य लोगों ने अपनी सबसे पहली बस्ती सिंधु-नदी के पार्श्ववर्ती स्थानों में स्थापित की। तत्पश्चात् ज्यों ज्यों उनकी संख्या बढ़ने लगी, त्यों त्यों वे अधिकाधिक दक्षिण की ओर अग्रसर होते गये। इस प्रकार उनकी बस्तियों का विस्तार सिंधु से लेकर विन्ध्या तक होगया। तत्पश्चात् कालान्तर में समुद्र के उत्तर और सिन्धु के दक्षिण का समूचा देश उनके अधिकार में आगया और वे सारे देश में फैल गये। उनकी सभ्यता की लहरें पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक अरब-समुद्र, बङ्गाल-समुद्र तथा हिंदमहासागर की तरङ्गों के साथ अठखेलियाँ करने लगीं।

अभी बौद्धकाल का प्रारम्भ नहीं हुआ था। इस समय तक आर्यों ने सुदूरवर्ती विदेशों से भी अपना अन्तर्जातीय सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। तभी तो मनु महाराज कहते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।

हिन्दुस्तान के लिए यह वह समय था जब कि सहस्रों यात्री दूर देशों से इस पुण्य-भूमि के दर्शन के लिए आया करते थे और हिन्दुओं की सभ्यता से लाभान्वित होकर अपने अपने स्थानों को लौट जाते थे।

तदनन्तर बौद्ध-धर्म का दौरदौरा प्रारम्भ हुआ। इस धर्म के माननेवाले अशोक और कनिष्क सरीखे बड़े बड़े चक्रवर्ती नरेन्द्र होगये। कुछ काल के पश्चात् यह धर्म अपनी सङ्कीर्णता की सीमा को पहुँच कर हिन्दुओं की राष्ट्रीयता का बाधक होगया। हिन्दू-संस्कार ऐसी अवस्था में एक बार फिर प्रबल हो उठे। वर्णाश्रम-धर्म की व्यवस्था नये सिरे से फिर सुदृढ़ होने लगी। बौद्ध-काल में भी यह व्यवस्था नष्ट नहीं हुई थी। हिन्दू-समाज फिर व्यवस्था-बद्ध होगया। हिन्दुओं को केवल राष्ट्रीय दृष्टि से प्रेरित होकर बौद्ध-धर्म का बहिष्कार करना पड़ा, क्योंकि पीछे से इस धर्म का अहिंसा-सिद्धान्त अशास्त्रीय होकर राष्ट्रीयता का केवल बाधक ही नहीं, प्रत्युत घातक भी हो गया।

हूण और शक लोगों के पराभव के पश्चात् शान्ति और वैभव की गोद में हिन्दू-समाज आनन्द और उल्लास-पूर्वक अपने दिन बिताने लगा। इसी प्रकार कई शताब्दियाँ बीत गईं। राजकुमार और किसान दोनों को समान स्वतन्त्रता प्राप्त थी। दोनों एक समान सुखी और सन्तुष्ट भी थे!

ग्रामे ग्रामे स्थितो देवः।
देशे देशे स्थितो मखः।
गेहे गेहे स्थितं द्रव्यम्,
धर्मश्चैव जने जने॥

(भविष्य-पुराण)

उन दिनों सारा हिन्दुस्तान सिंहल से काश्मीर तक राजपूतों के धर्मसत्तात्मक शासन से शासित हो रहा था। राष्ट्र का सारा जीवन समन्वय-युक्त था। आर्यों की जातीय अभिलाषायें काव्य और कला के रूप में प्रकट होकर जातीय साहित्य की श्री-वृद्धि कर रही थीं। देवता अपने अपने स्थानों से हिन्दू-सभ्यता के इस उभरते हुए विकास को मुग्ध होकर देख रहे थे।

परन्तु एक समान दिन किसके बीते? मानव-जीवन का इतिहास इस प्रश्न का उत्तर देता है 'किसी के नहीं।' हिन्दू-जाति धर्म की नींव पर खड़े हुए इस शान्ति-सदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में विश्राम करती हुई ऊँचे ऊँचे स्वप्न देखने लगी। उसकी निश्शङ्कता अपनी सीमा को पहुँच गई। निश्शङ्क होकर रहने की इस अवस्था में वह असावधान भी हो चली। भारतवर्ष को स्वर्ग-लोक में परिणत करके वह इस बात को भूल गई कि चारों ओर से वह दुष्ट और आक्रमणकारी संसार से भी घिरी हुई है।

एक दिन प्रातःकाल का समय था। सूर्य की सुनहरी किरणें जल-तरङ्गों के साथ अठखेलियाँ कर रही थीं। सुन्दर सरोवर मज्जनोत्तर के मन्त्रपाठ से प्रतिध्वनित हो रहे थे। देव-मन्दिरों से शङ्ख और झालरों की ध्वनि उठ कर देवताओं को आग्रह-पूर्वक निमन्त्रण दे रही थी। यज्ञ-कुंड से निकले हुए सुवासित धुएँ से हिन्दू-गृहस्थों का वातावरण सौरभशाली हो रहा था। कुल-बालायें उल्लास-पूर्वक यज्ञ-सामग्री प्रस्तुत करने में तत्पर और तल्लीन हो रही थीं। इतने में भारतवर्ष के सिंहद्वार पर किसी ने ज़ोर से धक्का मारा, सिन्धु को पार करके महमूद गज़नवी की लुटेरी सेनायें सामने आ पहुँचीं। हिन्दुओं के सामने उस दिन जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया।

किसी भी मनुष्य-जाति को अपने जातीय और सामुदायिक अस्तित्व का ज्ञान तभी होता है जब उसे किसी दूसरी भिन्न जाति से सामना करना पड़ता है। जिस दिन महमूद गज़नवी सिन्धु को पार करके हिन्दुस्तान की चहारदीवारी के भीतर घुस आया उस दिन हिन्दुओं को अपनी जातीयता का जो अनुभव हुआ वह उन्हें पहले कभी नहीं हुआ था। क़ासिम हिन्दुओं पर आक्रमण कर चुका था, परन्तु उन्हें वह विशेष क्षति नहीं पहुँचा सका था। उसके किये हुए घाव उतने गहरे नहीं थे। हिन्दू-जाति के हृदय की ओर उसने अपना लक्ष्य भी स्थिर नहीं किया था। परन्तु महमूद के साथ हिन्दुओं को जो युद्ध छेड़ना पड़ा वह कुछ और ही था। वह हिन्दू-सभ्यता के प्राणों का ग्राहक था। यह रोमाञ्चकारी सङ्ग्राम एक बार जो छिड़ा, दिन बीत गये, महीने बीते, वर्ष बीते, नहीं, नहीं शताब्दियाँ बीत गईं; परन्तु हिन्दुओं को अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर दिन-रात अपने शोणित-सिक्त वस्त्रों में सज्जित रहना पड़ा। वस्त्र बदलने का भी अवकाश उन्हें न मिला।

अरबस्तान नष्ट हो गया। ईरानियों की जातीय नौका जलमग्न हो गई। मिस्र, सीरिया, अफ़ग़ानिस्तान, बलूचिस्तान—ग्रैनाडा से गज़नी तक—की मनुष्य-जातियाँ तथा उनकी सभ्यतायें इस्लाम के आघातों से कराहती हुई धराशायी हो गईं। वे सदैव के लिए मेदिनी-तल से मिट गईं। इस्लाम-सभ्यता की उस शान्तिदायिनी शम्शेर को धन्य है! यहाँ भी इस्लाम ने आघात किये, परन्तु हिन्दुओं के कठिन प्राण न निकले। वे जीते ही रहे। हिन्दुओं की कड़ी काया पर आघात कर करके मुसलमानों के शस्त्र कुंठित हो चले। इधर रक्त-स्राव भी बन्द न हुआ, पर प्राण बने रहे।

हिन्दुओं को केवल मुसलमानों का ही सामना नहीं करना पड़ा। यदि ऐसा होता तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। समूचा एशिया हिन्दुओं का विरोधी बन बैठा। और इसके पश्चात्? कौन नहीं जानता कि योरप भी उनके प्राणों का ग्राहक बन बैठा। तो भी हिन्दू-समाज आज विद्यमान है।

अरबनिवासियों ने सिन्ध की शरण ली, क्योंकि इसके अतिरिक्त वे कर ही क्या सकते थे। आत्म-रक्षा में असमर्थ होकर वे संसार से उठ गये। उनकी जातीयता के सम्बन्ध में संसार को फिर कोई बात सुनने में नहीं आई। परन्तु यहाँ अकेली हिन्दूजाति को अरब, ईरानी, पठान, बलूची, तातारी, तुर्क और मुग़ल, न जाने, कितनी जातियों का सामना करना पड़ा, कहना कठिन है।

केवल धर्म की ही प्रेरणा-शक्ति धर्मान्धों के लिए पर्याप्त हुआ करती है। परन्तु यदि धर्म के साथ उत्पात और लूट की संहारकारिणी शक्ति का योग हो गया तो फिर उससे मनुष्य-समुदाय का जो अनिष्ट होता है वह कल्पनातीत है।

बस, जिस दिन महमूद सिन्धु को पार कर चुका उस दिन स्वर्ग और नरक की सम्मिलित शक्तियाँ हिन्दुओं की विरोधी बन बैठीं। उस तिथि से शान्ति-प्रिय परन्तु वीर हिन्दुओं को जो जीवन-मरण का युद्ध छेड़ना पड़ा वह शताब्दियों तक समाप्त न हुआ।

जिस दिन अकबर सिंहासन पर आसीन हुआ और जिस दिन दारा का जन्म हुआ उस दिन हिन्दुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को एक प्रकार से नैतिक विजय प्राप्त हो गई। और इसके बाद फिर जिस समय औरङ्गज़ेब ने हठधर्मी से काम लिया उस दिन मुसलमानों की राजनैतिक प्रभुता भी अस्त हो गई। अन्त में उस दिन पानीपत के समराङ्गण में हिन्दू हार तो गये, पर मुसलमानें के पैर हिन्दुस्तान से उखड़ भी गये।

इस व्यापक युद्ध में हिन्दुओं की जातीयता ऐसी सुदृढ़ और सङ्गठित हो गई जैसी कि आगे उनके जीवन में कभी नहीं हुई थी। ध्यान रहे कि इस समय हम हिन्दुओं के धार्मिक मतमतान्तरों के सम्बन्ध में कुछ भी विचार नहीं करना चाहते हैं। इस समय हम इस जाति के इतिहास को केवल इसकी जातीयता के दृष्टिकोण से देख रहे हैं। हिन्दुओं के इस जातीय युद्ध में क्या सनातनी, क्या सतनामी, क्या सिक्ख, क्या आर्य, क्या अनार्य, क्या मराठा, क्या मदरासी और क्या पंचम, सभी सम्मिलित थे। धार्मिक मतमतान्तरों के क्षुद्र-भाव हिन्दू-जातीयता के विराट् भाव-सागर में विलीन हो गये थे। उनके सामने उस समय जो प्रश्न था वह राष्ट्रीय था। शेष बातें सब गौण और पारस्परिक थीं। इस युद्ध में ऐसे सब लोग सम्मिलित थे जो सिन्धु (नदी) और सिन्धु (समुद्र) के मध्यवर्ती भूमिखण्ड को अपनी जन्म-भूमि मानकर अपने को गौरवान्वित समझते थे।

विजातीय लोग हम सबको हिन्दू ही समझते थे और अभेदभावेन एक समान हमारा तिरस्कार भी करते थे। विदेशियों की यह द्वेष-बुद्धि हिन्दुओं को सङ्गठित करने में कुछ कम सहायक नहीं हुई।

हम यहाँ इतना कह देना आवश्यक समझते हैं कि १३०० और १८०० शताब्दियों के मध्यकाल में जितनी ऐतिहासिक घटनायें यहाँ हुईं उन पर अभी तक किसी भी योग्य इतिहास-लेखक ने सामान्य-दृष्टि से विचार नहीं किया, और यह तो आज तक किसी ने सोचा ही नहीं कि इन घटनाओं के गर्भ में हिन्दू-समाज का कौन सा जातीय रहस्य छिपा हुआ है। काश्मीर से सीलोन और बङ्गाल से सिन्धु तक प्रत्येक हिन्दू-हृदय में जो एक देश-व्यापी प्रेरणा काम कर रही थी वह केवल हिन्दूत्व और हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए ही थी। जिस जातीयता के सूत्र में हिन्दू-समाज पिरोया गया था वह एक काश्मीरी ब्राह्मण के सन्ताप से मलाबार के एक नायर को आठ आठ आँसू रुलाता था। हमारे कवि हिन्दू-जाति की हार पर करुणा के आँसू बहाते थे। हमारे वीर सिपाही हिन्दू-जाति की धर्म-रक्षा के लिए हँसते हँसते समर-यज्ञ में अपने अनमोल प्राणों की आहुति चढ़ा देते थे। हमारे साधु हिन्दू-जाति के उत्कर्ष-साधन में अपने आशीर्वचनों से हमारी सहायता करते थे। हमारे राजनीतिज्ञ हमारे भविष्य के सम्बन्ध में गम्भीर होकर चिन्ता किया करते थे। और हमारी मातायें अपने वीर-पुत्रों के घावों को देखकर अपने मातृ-जन्म को सफल मानती थीं।

अपने इन विचारों को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए यदि हम अपने पूर्वजों के लिखे हुए ग्रन्थों से ढूँढ़ ढूँढ़ कर प्रमाण देना चाहें तो यह विषय इतना बढ़ जायगा कि इसके लिए एक विशालकाय ग्रन्थ की आवश्यकता होगी। अभी हम इसका लोभ-संवरण करना ही उचित समझते हैं। परन्तु फिर भी जब कि यह विषय छेड़ ही दिया गया है तब हमारे लिए अपने सिद्धान्त को बिल-कुल प्रमाण-रहित रख छोड़ना भी अनुचित होगा।

हिन्दी-साहित्य में आज दिन जितने ऐतिहासिक ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें पृथ्वीराज-रासो निस्सन्देह सबसे प्राचीन और प्रामाणिक भी है। इस ग्रन्थ में एक छन्द ऐसा है जो और भी प्राचीन प्रतीत होता है। इसमें हिन्दुस्तान तथा हिन्दू-जाति के सम्बन्ध में जो भाव अङ्कित किये गये हैं वे स्वाभिमान और स्वदेश-भक्ति से ओतप्रोत हैं।

चंदबरदाई के पिता बेन कवि पृथ्वीराज के पिता अजमेर-नरेश के लिए इन शब्दों में अपनी कल्याण-कामना प्रकट करते हैं—

अटल-ठाट महिपाट,
अटल-तारागण-स्थानं।
अटल नग्र अजमेर,
अटल हिन्दव अस्थानं॥
अटल तेज परताप,
अटल लंकागढ़ डंडिय।
अटल आप चहुँआन,
अटल भूमि जस मंडिय॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभरी भूप सोमेस नृप,
अटल छत्र औपै सुसर।
कविराज बेन आसीस दें,
अटल जगां रजेसकर॥

चंदबरदाई को हम हिन्दी का आदि-कवि समझते हैं। इस कवि ने अपने ग्रन्थ में 'हिन्दू' 'हिन्दवान' और 'हिन्द' शब्दों का उपयोग इतना अधिक और स्वाभाविकतापूर्वक किया है कि इस बात में किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं रह जाता कि ११ वीं शताब्दी में इन शब्दों का देश-व्यापी प्रचार हो चुका था। इस समय तक मुसलमानों के पैर पञ्जाब में भी अच्छी तरह नहीं जम पाये थे। ऐसी अवस्था में स्वाभिमानी और स्वतन्त्र राजपूतों के लिए यह कब सम्भव था कि मुसलमानों के दिये हुए 'हिन्दू' नाम को वे स्वीकार कर लेते और गौरवपूर्वक उस नाम से वे अपनी जाति का सम्बोधन करते? यदि 'हिन्दू' शब्द सचमुच में मुसलमानों का दिया हुआ अपमान-सूचक नाम होता तो कम से कम उन दिनों इस नाम का स्वीकृत हो जाना सम्भव नहीं था।

जिस समय पृथ्वीराज ने क़ैदी शहाबुद्दीन को उदारता-पूर्वक बन्धन-मुक्त कर दिया उस समय का वर्णन चन्द-कवि अपने ग्रन्थ में इस प्रकार करते हैं—

राखि पञ्च दिन साहि अदब आदर बहु किन्नौ।
सुज हुसेन गाजी सुपूत हथ्थै ग्रहि दिन्नौ॥
किय सलाम तिनबार जाहु अपन्ने सुस्थानह।
भति हिन्दु पर साहि सज्जि आवौ स्वस्थानह॥
(पृ० रासो स० ६)

परन्तु शहाबुद्दीन पर पृथ्वीराज की उदारता का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उसने बार बार कई आक्रमण किये।

फिर,
जुरे हिन्दु मीर, बहे खग्ग तारं।
मुखे मारं मारं, बहे सूर सारं॥

फिर अन्त में
हिन्दु म्लेच्छ अघाइ घाइन।
नंचि नारत्त युद्ध चायन॥

शहाबुद्दीन फिर बन्दी हुआ। जब लोगों ने सुना कि पज्जूनराय ने शहाबुद्दीन को क़ैद कर लिया तो लोगों ने अपने नरेश का इन शब्दों में स्वागत किया—

आज भाग चहुआन घर,
आज भाग हिन्दुवान।
इन जीवित दिल्लीश्वर,
गंज न सक्कै आन॥

बन्दी शहाबुद्दीन ने इस बात का फिर विश्वास दिया कि अब से मैं दिल्ली पर आक्रमण न करूँगा, छोड़ दिया गया। परन्तु इस बार भी उसने विश्वासघात किया। दिल्ली के सिंहद्वार पर उसकी सेनायें फिर आ पहुँचीं। हिन्द-पति पृथ्वीराज ने अपने युद्ध-मन्त्रियों से सम्मति माँगी। मुसलमान दूत से कहा गया कि जाओ, अपने स्वामी से कह दो कि तुम निर्लज्ज हो।

निर्लज्ज म्लेच्छ लजै नहीं,
हम हिन्दु लजवान।

समस्या जटिल हो गई। जीवन-मरण का कठिन प्रश्न सामने उपस्थित हो गया। चन्दबरदाई दुर्गा के चरणों में मस्तक डाल कर प्रार्थना करते हैं—

दुग्गे हिन्दु राजान बन्दी न आयं।
जपै जाप जालधारं तूं सहायं।
नमस्ते नमस्ते इ जालंधरानी,
सुरं आसुरं नागपूजा प्रमानी॥

विजित पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को जिस कौशल से मारा उसका वर्णन करने के पश्चात् यह आदि-कवि हिन्द-पति को इन शब्दों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता है—

धनि हिन्दु प्रथिराज, जिने रजवट्ट उजारिय।
धनि हिन्दु प्रथिराज, बोल कुलमञ्झ उगारिय॥
धनि हिन्दु प्रथिराज, जेन सुविहान-हि-संध्यौ।
बार बारह ग्रहि मुक्कि अरकाल-सर-वंध्यौ॥

यह एक विचार करने योग्य बात है कि 'भारत' शब्द रासो में महाभारत के अर्थ में कई बार व्यवहृत हुआ है, परन्तु 'भारतवर्ष' के अर्थ में शायद ही एकाध बार आया हो। हिन्दी-साहित्य के इस आदि-ग्रन्थ में जो प्रमाण मिलते हैं उनका समर्थन अन्य भारतीय भाषा-साहित्यों के द्वारा भी होता है। स्वामी रामदास अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्न का वर्णन इस प्रकार करते हैं। यहाँ केवल भावार्थ दिया जाता है—

मैंने एक स्वप्न देखा। देखो, वे ज्यों के त्यों उतरे। हिन्दुस्तान कटिबद्ध हो गया है। उसकी आत्म-विस्मृति दूर हो गई है। हिन्दू-जाति को घृणा की दृष्टि से देखने-वाले और ईश्वरीय नियमों के उल्लंघन-कारी पराभव को प्राप्त हुए।

निस्सन्देह, यह भूमि पवित्र है, सुखी है।

क्योंकि ईश्वर हिन्दुओं के पक्ष में है। औरङ्गज़ेब हार मान चुका। जो राजसिंहासन पर था वह आज पदभ्रष्ट हो गया है। जो कल पृथ्वी पर खड़ा था वह आज सिंहासन पर आसीन है। शब्दों से कर्म अधिक प्रभाव-शाली होते हैं।

निस्सन्देह यह स्थान पवित्र है।

अब राजधर्म धर्म का सहायक होगा। अधिकारों की रक्षा शक्ति करेगी। अब भारतीय सरिताओं की पवित्रता विदेशियों के द्वारा नष्ट न होगी। हम आनन्द से तप और यज्ञों में तल्लीन हो सकेंगे। जो कुछ हो, चिन्ता नहीं।

भगवान् ने इस भूमि को पवित्र बनाया है।

हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय कवियों में हिन्दी-कवि भूषण का स्थान आदरणीय है। वे देश भर में घूम घूम कर अपनी प्रभावशालिनी कविताओं के द्वारा हिन्दुओं को जाग्रत किया करते थे। औरङ्गज़ेब की ओर सङ्केत करके वे कहते हैं—

लाज धरौ शिवजी से लरौ,
सब सय्यद सेख पठान पठाय कै।
भूषन ह्याँ गढ़ कोटन हारे,
उहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसाय के॥
हिन्दुन के पति सो न विसात,
सतावत हिन्दु गरीबन पाय कै।
लीजे कलंक न दिल्ली के बालम,
आलम आलमगीर कहाय कै॥

एक दूसरे स्थान पर भूषण कहते हैं—

जगत में जीते महावीर महाराजन तें,
महाराज बावन हूँ पातसाह लेवाने।
पातसाह बावनौ दिल्ली के पातसाह,
दिल्लीपति पातसाह जी सो हिन्दुपति सेवाने॥

और भी

दाढ़ी के रखैयन की दाढ़ी सी रहत छाति,
बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिन्दुवाने की।
कढ़िगई रैयत के मन की कसक सब
मिट गई ठसक तमाम तुरकाने की।
भूषन भनत दिल्लीपति दिल धमकत,
सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की।
मोटी भई चण्डी बिन चोटी के चबाइ सीस
खोटी भई सम्पति चकत्ता के घराने की।

शिवाजी के पराक्रम की प्रशंसा में भूषण कहते हैं—

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यौ,
स्मृति औ पुरान राख्यो वेद-विधि सुनी मैं
राखी रजपूती रजधानी राखी राजन की
धरा में धरम राख्यो राख्यो गुण गुणी मैं
भूषण सुकवि जनि हद्द मरहट्टन की,
देख देख कीरति बखानि तब सुनी मैं
साहि के सुपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्लीदल दाबि के दिवाल राखि दुनी मैं॥

शिवाजी तथा उनके अनुगामी वीरों के पराक्रम की प्रशंसा सारे हिन्दुस्तान में उन दिनों इसी जातीय दृष्टि से की जाती थी। भूषण कवि मराठा नहीं थे, तो भी हिन्दू पर शिवाजी का उत्कर्ष उन्हें उतना ही प्रियकर था जितना कि एक मराठा को हो सकता था। हिन्दू तो सभी थे। इस कवि की कवितायें जातीय भावों से सराबोर हैं। छत्रसाल बुन्देला-नरेश की वीरता का वर्णन इस कवि ने यों किया है—

हैवर हरट्ट साजि गैवर गरट्ट
सम पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की
भूषन भनत रायचम्पति को छत्रसाल
रोप्यो रनख्याल ह्वैके ढाल हिन्दवाने की

यह प्रशंसा थोथी नहीं थी। सचमुच ये छत्रसाल शिवाजी, राजसिंह तथा गुरु गोविन्दसिंह के समान ही 'ढाल हिंदवाने की' थे। वे भी अपने को हिन्दू-समाज के संरक्षक समझते थे। देखिए, वे क्या कहते हैं—

हिन्दू तुरक दलि ह्वै गाये।
तिन सों बैर सदा चलि आये॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख्यो सुर असुरन को जैसो।
केहरि करिन बखानो तैसो॥
जब ते शहा तख़्त पर बैठे।
तब तें हिन्दुन सों उर ठाढे।
सहजे कर तीरधनि लगाये।
वेद देबाले निदर ढहाये॥
सब रजपूत सीर नित नावे।
ऐड़ करे नित पैदल धावे॥
ऐड़ एक शिवराज निबाही
करै आपने चित की चाही॥

शिवाजी से जिस समय छत्रसाल मिलने आये उस समय शिवाजी ने उन्हें उत्साहित करते हुए कहा था :—

तुम छत्री सिरताज। जीत आपनी भूमि को,
करौ देश को राज॥

इसके पश्चात् छत्रसाल और सुजानसिंह से भेट हुई। सुजानसिंह ने हिन्दुओं की तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति का चित्र इन शब्दों में खींचा था—

पातसाह लागे करन, हिन्दु-धर्म को नासु
सुधि कर चम्पतराय की, लई बुन्देला सासु
जब ते चम्पत करथो पयानो।
तब ते परथो हीन हिन्दुवानो॥
लग्यो होड़ तुरकन को जोरा।
को राखे हिन्दुन को तोरा॥
अब जो तुम कटि कसौ कृपानी।
तो फिर चढ़ै हिन्दु-मुखपानी॥

इतना कह कर सुजानसिंह अपनी तलवार और हृदय दोनों को भेट में देते हुए छत्रसाल को इस प्रकार आशीर्वाद देते हैं—

यह कहि प्रीति हिये उमगाई।
दिये पान किरपान बधाई॥
दोऊ हाथ माथ पर राखे।
पूरन करौ काज अभिलाखे॥
हिन्दु-धरम जग जाइ चलावो।
दौरि दिली-दल हलनि हलावो॥
(छत्रप्रकाश लालकवि-कृत)

काश्मीर के ब्राह्मण मुसलमानों से बहुत तङ्ग हुए। उन्होंने गुरवर तेगबहादुर से सहायता माँगी। तेग-बहादुर कहते हैं—

तुम सुनो दिगेसु ढिग तुर्केसु अवैसु इम गावो।
इक पीर हमारा, हिन्दु मारा भाई चारा लख पावो॥
है तेगबहादुर जगत उजागर ता आगर तुर्क करो।
तिस पाछे तबहीं हम फिर सबहीं बन है तुरक भरो॥
(पंथप्रकाश)

इसके पश्चात् वे विधर्मियों को पुकार कर यों कहते हैं—

जितने सुन श्री तेग-बहादुर।
धर्म निबाहन विषे बहादुर॥
उतर भनयो धर्म हम हिन्दु।
अति प्रिय को किम करे निकन्दु॥
(सूर्य-प्रकाश)

उनके आत्मज गुरु गोविन्दसिंह में वीरता, कवि-प्रतिभा और महत्ता तीनों का विलक्षण मेल था। हिन्दू-सभ्यता का वह संरक्षणकारी महात्मा अपने हृदय के उद्गार इस प्रकार प्रकट करता है—

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे।
जगे धर्म हिन्दु सकल भन्ड भाजे॥
(विचित्र नाटक, गुरुगोविन्दसिंह-कृत)

'छत्रपती चें चरित्र' में शिवाजी का चरित्र-लेखक लिखता है—

परन्तु सूक्ष्म-दर्शी दादाजी ने यह सम्मति दी—

आपका जो प्रमाण है वह बहुत ठीक है। परन्तु उसे पूरा करना बहुत कठिन है। सबसे पहले अपनी शक्तियों को विशेष स्थानों में केन्द्रीभूत करना होगा। हिन्दू-राजाओं तथा उनकी सेनाओं को जगह जगह सहायता के लिए स्थापित करना पड़ेगा। और फिर इसके सिवा परमात्मा की कृपा और साधु-महात्माओं का आशीर्वाद चाहिए। तब कहीं यह काम सम्भव हो सकता है।

ईसा के १३४३ शताब्दी में शिवाजी अपने एक देश-भक्त मित्र को लिखते हैं—

तुम्हें शाह से विश्वासघात करना नहीं होगा। हमारे कुलदेव स्वयंभू हैं। अभी तक हम पर उनकी कृपादृष्टि होती आई है। भविष्य में भी वे हिन्दू-स्वराज्य स्थापित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके हमारा मनोरथ पूरा करेंगे। यथार्थ में उन देवाधिदेव की इच्छा भी यही है कि ऐसा स्वराज्य स्थापित हो।

जिस पत्र का अवतरण हमने ऊपर दिया है वह अभी हमारे मित्र श्रीयुत राजवाड़े के पास है। इस पत्र से यह प्रकट होता है कि १७ वीं और १८ वीं शताब्दियों में 'हिन्दवी स्वराज्य' की कामना वीर हिन्दुओं के हृदयों में कितना काम कर रही थी। शिवाजी तो अपनी बाल्यावस्था से ही इस स्वराज्य के लिए अधीर और उत्तेजित हो रहे थे। परन्तु जिस समय स्वयम् जयसिंह शिवाजी के विरुद्ध लड़ने को आया उस समय हिन्दुस्तान के दुर्भाग्य ने बड़ा दुर्धर्ष रूप धारण कर लिया। शिवाजी के खड्ग की धार उस समय स्वभावतः कुंठित हो गई। क्यों न होती! जिस दिन 'ढाल हिन्दवाने की, एक राजपूत वीर मुसलमानों का पक्षपाती होकर एक मराठे वीर के विरुद्ध समराङ्गण में खड़ा हुआ, जिस दिन एक हिन्दू दूसरे हिन्दू के प्राणों का प्यासा होगया, उस दिन हिन्दुओं के सर्वनाश का सूत्रपात हो चुका। उस दिन महाभारत की पुनरावृत्ति हो गई। परन्तु यह महाभारत अपने परिणाम में और भी अनिष्टकारी सिद्ध हुआ। उस दृश्य ने देवताओं को भी यदि आठ आठ आँसू रुलाया हो तो क्या आश्चर्य है।

देखिए, शिवाजी जयसिंह को क्या लिखते हैं। करुणा अपनी सीमा को पहुँच गई है। एक वीर हिन्दू का हृदय इस पत्र में रो रहा है।

"तुम्हांस जे किले पाहिजेत ते मी देतो निशाण चढ़वितो पण मुसलमानांस यश न देणें, मी हिन्दू, आपण राजपूत तेंव्हा हिन्दू च, राज्य मूल चें हिन्दूचें। हिन्दु धर्म रक्षका पुढें मी डोंके शतदां नमवीन पण हिन्दू धर्माची मानहानि हो ईल असें जधीहीं घडवार नाहीं।"

'आपको जो किले चाहिए, मैं देता हूँ। मैं स्वयम् आपका झंडा अपने हाथों से गड़ा दूँगा। परन्तु मुसलमानों को यश न दीजिए। मैं हिन्दू हूँ। आप राजपूत हैं, अतएव हिन्दू ही हैं। राज्य मूल में हिन्दुओं का ही है। हिन्दू-धर्म की रक्षा करनेवाले के सामने मैं सौ बार सिर झुकाऊँगा, परन्तु ऐसा काम मैं कभी न करूँगा जिसके परिणाम में हिन्दू-धर्म की मानहानि हो।"

जयसिंह के हृदय पर इन मर्मभेदी शब्दों का प्रभाव अवश्य पड़ा। उसने उत्तर दिया—

औरङ्गज़ेब प्रभावशाली है। उनसे आप सख्य-भाव रक्खें। उनसे शत्रुता रखकर इस ज़माने में पार लगना कठिन है। हम जयपुर के राजपूत सब हिन्दू ही हैं। आप भी हिन्दू हैं। हिन्दू-धर्म के स्थापन का बीड़ा जो आपने उठाया है उससे हमारी पूरी सहानुभूति है।

शिवाजी के सामर्थ्य से हिन्दुओं का जो उत्कर्ष हुआ उसने प्रत्येक हिन्दू-हृदय में एक विलक्षण चैतन्यता उत्पन्न कर दी। त्रस्त लोग उन्हें अवतार मानने लगे। मुसलमानों से त्रस्त होकर सावनूर ज़िले के लोगों ने शिवाजी को जो प्रार्थना-पत्र भेजा है वह पढ़ने योग्य है। पत्र मराठी में है। उसका आशय यह है—

"यह यूसुफ बड़ा दुष्ट है। वह स्त्री और बच्चों को बहुत तङ्ग करता है। वह गो-हत्या के समान भयङ्कर पाप करने में भी आगा-पीछा नहीं करता। हम लोग इतने त्रस्त हो गये हैं कि अब उसके शासन में रहना ही नहीं चाहते। आप हिन्दू-धर्म के संस्थापक और म्लेच्छों के संहार करनेवाले हैं। इसलिए हम आपकी शरण आये हैं। हम आपकी सहायता चाहते हैं इसी लिए पहरेदारों से हम घिरे हुए हैं। ये लोग हमें बिना अन्न-पानी के मार डालना चाहते हैं। इसलिए कृपाकर जल्दी आइए।"

जिस समय जिंजी पर आक्रमण हो रहा था, मराठा सिपाहियों ने मुसलमान-सेना को बेध कर उस पार जाना चाहा। इस उद्देश को सिद्ध करने के लिए मुसलमान-सेना में जो मराठा सिपाही काम कर रहे थे उन्हें अपनी ओर खींचने का प्रयत्न किया गया। इतिहास-लेखक लिखता है—

'गुप्त रीति से एक पत्र-द्वारा नागोजी राव से कहा गया कि इस समय यदि आप मराठों की सहायता करें तो हिन्दू-धर्म की रक्षा हो सकेगी। इस पत्र को पढ़ने के बाद नागोजी ने मुसलमानों की नौकरी छोड़ दी और अपने ५००० सिपाहियों के साथ युद्ध से विरत होकर वे शहर में चले आये।

संभाजी ने शिर्के के कुटुम्ब के लोगों को मरवा डाला था। इसलिए अप्रसन्न होकर शिर्के ने मुग़लों की नौकरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार कर ली। उस समय खंडोजी बल्लाल ने उससे कहा कि जिस प्रकार तुम्हारे कुटुम्ब के लोग मरवा डाले गये हैं, उसी प्रकार मेरे पूर्वजों में से तीन आदमी भी हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा दिये गये हैं। परन्तु तो भी मैं हिन्दू-स्वराज्य-संपादन में प्राणपण से प्रयत्नवान् हूँ। तुम्हें भी इस पुण्यकार्य में योग देना चाहिए। शिर्के की समझ में बात आगई। वह मराठों का सहायक हो गया। परिणाम भी अच्छा हुआ।

साहू और सवाई जयसिंह के मध्य एक बार इस विषय पर भी विवाद हुआ था कि हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए किसने क्या किया।

बाजीराव और नाना साहब के समय में भी यही हिन्दू-स्वराज्य की प्रेरणा काम कर रही थी। इतिहास-लेखक का कहना है—

प्रतीत होता है कि बाजीराव ने जो महत्त्व का काम हाथ में लिया था उसमें और लोगों ने भी सहायता पहुँचाई। 'हिन्दुपद-पादशाही' स्थापित करने में ब्रह्मेंद्र स्वामी और गोविन्द दीक्षित सरीखे साधु पुरुष भी प्रयत्नशील थे। वे लोग इस अभिप्राय से देश भर में भ्रमण करके परिस्थिति की जाँच किया करते थे। इसी उद्देश से वे अपने शिष्य तैयार करने में भी संलग्न थे।

(सरदेसाई)

माधुरबाई ने ब्रह्मेंद्र स्वामी को एक पत्र लिखा था। उसका आशय यह है—

'शंकराजी मोहिते, गणोजी शिंदे, खंडोजी नालकर, रामाजी खण्डे तथा कृष्णाजी इत्यादि बड़े बड़े सरदारों ने राज्य की रक्षा की और कोंकण से मुसलमानों का बहिष्कार किया। इस प्रकार हिन्दू-धर्म की रक्षा हो सकी।

इस वीराङ्गना ने जो पत्र लिखे हैं वे पढ़ने योग्य हैं। उनसे इस बात का पता लगता है कि हिन्दू-स्वराज्य की बलवती इच्छा से उन दिनों प्रत्येक वीर हिन्दू का हृदय कितना आन्दोलित हो रहा था।

जिस समय नादिरशाह ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया और दिल्ली पर अधिकार कर चुका, बाजीराव के मुख़बिरों ने उन्हें इस आशय का एक पत्र लिखा—

"नादिरशाह कोई देवता नहीं है। अतः वह ऐसा अजेय भी नहीं है। बलवान् शत्रु के सामने उसे सिर झुकाना ही पड़ेगा। इसलिए एक बड़ी सेना लेकर आप यहाँ आने की कृपा करें। सन्धि तो युद्ध के बाद ही हो सकती है, पहले नहीं। यदि आपकी और राजपूतों की सेनायें सम्मिलित हो जायँ तो हमें विश्वास है कि परिणाम हमारे लिए अच्छा ही होगा। हमें सब हिन्दुओं को सङ्गठित कर लेना चाहिए। बुंदेले वीर भी हमारी सहायता करें तो उत्तम हो। फिर तो कुछ कहना ही नहीं है। नादिरशाह की मंशा वापस जाने की नहीं है। प्रतीत होता है कि यहाँ से आगे बढ़कर वह हिन्दू-राज्यों पर भी आक्रमण करेगा। सवाई जयसिंह की इच्छा है कि उदयपुर के राना दिल्ली के सिंहासन पर बिठा दिये जायँ। सवाई और इतर हिन्दू-नरेश आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। बात तो यह है कि ज्योंही आपकी सहायता मिल सकेगी, त्योंही सवाई जयसिंह अपनी सेना दिल्ली की ओर रवाना कर देंगे और स्वयम् भी अग्रसर होंगे।"

(धोंडोगोविंद का पत्र बाजीराव को)

परन्तु बाजीराव समय पर न आ सके। वे लिखते हैं—

"हिन्दुओं के लिए यह समय बड़ी कठिनाई का है। हम लोगों ने अभी तक बसई पर अधिकार नहीं किया है। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि मराठों की सेनायें सम्मिलित होकर चमेली-नदी को पार कर जायँ। प्रयत्न इस बात का हो रहा है कि नादिर आगे न बढ़ने पावे।

(बाजीराव का पत्र ब्रह्मेन्द्र स्वामी को)

उन्होंने एक दूसरा पत्र भी इस आशय का लिखा। मूल पत्र मराठी में है। यहाँ उसका आशय दिया जाता है—

"हमें पारस्परिक विरोध-भाव को हृदय से निकाल देना चाहिए, क्योंकि सारे हिन्दुस्तान को इस समय अपने शत्रु का सामना करना है। मैंने तो नर्मदा पार करके अपनी सेना को चम्बल तक फैला देने का निश्चय कर लिया है। फिर हम देख लेंगे कि नादिर दक्षिण की ओर किस प्रकार अग्रसर होता है।"

सवाई जयसिंह बड़े स्वाभिमानी थे। हिन्दू-स्वराज्य-आन्दोलन के वे प्रमुख नेता थे। एक पत्र में वे लिखते हैं—

"सिद्धि श्री.....नन्दलालजी प्रधान व भाईजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठाकुर संस्थान इन्दोर अमरगढ़ सुमहाराजाधिराज सवाई जयसिंह कृत प्रणाम बांचो जो.....सो आपको लिखते हैं कि बादशहा ने चढ़ाई की है तो कुछ चिन्ता नहीं। श्री परमात्मा पार लगावेगा। बाजीराव पेशवे से हमने आपके निसबत कोल वचन कर लिया है।"

फिर लिखते हैं—

"हज़ार शाबास है आप सब मालवे सरदार एक रह के हिन्द्-धर्म का कल्याण होना और मालवे में हिन्दु-धर्म वृद्धि होना। इस बात बिचार कर मालवे में से मुसलमानों को नौमेद किये और हिन्दू-धर्म कायम रखा।"

हिन्दू स्वतन्त्रता के इस आन्दोलन ने जितने सामर्थ्यवान् पुरुषों को जन्म दिया उनमें बाजीराव के आत्मज नानासाहब बहुत आदरणीय हैं। अपने एक पत्र में वे ताराबाई को लिखते हैं—

मुग़ल हिन्दू-राज्य के शत्रु हैं। आप स्वयम् उनसे पत्र-व्यवहार कर रही हैं और मुझ सेवक पर कुटिलता का दोषारोपण करती हैं।

यद्यपि पानीपत के युद्ध में हिन्दू हारे तथापि नाना फड़नवीस और महादाजी शिंदे हिन्दू-जाति की गौरव-रक्षा के लिए बच रहे। एक बुद्धिमान् था, दूसरा वीर था। ये दोनों स्वाभिमानी हिन्दू पचास वर्ष तक अपनी सम्मिलित शक्ति का उपयोग करते हुए लड़ते रहे। पानीपत के युद्ध में हिन्दू हार गये थे। परन्तु इसी युद्ध के कारण मुसलमानों के भी पैर उखड़ गये थे। हिन्दू वस्तुतः स्वतन्त्र हो गये थे। इस घटना से सारे हिन्दुस्तान में जो प्रसन्नता लोगों को हुई वह गोविन्दराव काले के पत्र से प्रकट होती है। यह पत्र नाना फड़नवीस को लिखा गया था। पत्र मराठी में है। उसका भावार्थ हिन्दी में इस प्रकार होता है—

जिस समय मैंने आपका पत्र पढ़ा मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही।

सचमुच में मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। मैं इस पत्र में अपने भाव प्रकट नहीं कर सकता। मेरे मन में इस समय जो विचार आ रहे हैं वे वर्णनातीत हैं। अटक-नदी से लेकर दक्षिण में हिन्द-महासागर तक जितनी भूमि है वह सब हिन्दुओं की है, तुर्कों की नहीं। पांडवों से लेकर विक्रमादित्य के समय तक यही हमारी इस जन्म-भूमि की सीमा मानी गई है। उन्होंने इस भूमि का उपभोग किया और उसकी रक्षा भी की। उनके बाद जो हिन्दू-राजा हुए थे उन्होंने परिस्थिति का विचार नहीं किया। अतएव वे निकम्मे हो गये। परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों की प्रभुता बढ़ चली। उन्होंने हस्तिनापुर के राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया और अन्त में आलमगीर के समय तक हिन्दू इस हीनावस्था को पहुँच गये कि प्रत्येक यज्ञोपवीत धारण करनेवाले को जज़िया नामक कर देना पड़ गया और दूसरों का पकाया हुआ भोजन भी मोल लेकर खाना पड़ा, इत्यादि इत्यादि।

पत्र बहुत बड़ा है। परन्तु इतना पर्याप्त है।

इन ऐतिहासिक प्रमाणों के विद्यमान रहते हुए भी यदि कोई कहे कि हिन्दुओं में जातीयता नहीं थी तो कहना होगा कि या तो उसके बुद्धि और हृदय के द्वार इस विषय के लिए बिलकुल बन्द हैं या इस बात को स्वीकार करना उसके किसी स्वार्थ के बिरुद्ध है। इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ?

रामदयाल तिवारी

मुक्ति-पीठ ।

(१)

पूरे दो बरस होगये, इनमें क्या क्या परिवर्तन हुए और क्या क्या न हुए। कभी ऊपर चढ़ा तो कभी नीचे उतरा, बहुत कम साम्यावस्था का आनन्द उपभोग किया। अपनी इच्छा से, नहीं—किसी की आज्ञा से, किसी के इशारे से, बहुत समय तक वह हालत रही जब कि मैंने सबको देखा और मुझे किसी ने न देखा।

एम० ए० पास संस्कृत में, एक सम्मानित विश्वविद्यालय का प्रोफ़ेसर, घर का खाता-पीता एक हट्टा-कट्टा नवयुवक, फटा कुर्ता और मैली चादर पहने जब परिचितों में, नौकरी छोड़ कर अपने टूटे स्लीपरों की दुर्गति को बढ़ाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ एकान्त में बैठने के लिए घनी बस्ती से आया-जाया करता था तब पहले तो परिचितों में इस पर आश्चर्य्य होता था, बाद को उपेक्षा होने लगी और अन्त में वही दशा उपस्थित हो गई जिसके कारण मैं तो सबको देखता था और मैं किसी को दिखाई न पड़ता था। मुझे साधनों की समाप्ति-सूचना मिल रही थी—उपेक्षा—ही तो लक्ष्य था।

नौकरी छोड़ने पर अनेक मित्र मिलने आये और कारण पूछने लगे, उन्हें क्या बताता, उनमें प्रायः सभी धन पैदा करने के लिए नौकरी कर रहे थे, एक ऐसे थे जिन्होंने अपना जीवन दे रक्खा था किन्तु वे तारीफ़ के रूप में वेतन का बड़ा भाग पाने के सदा प्रयासी रहते थे, मैं उनसे क्या कहता कि मैंने क्यों नौकरी छोड़ दी। एक ने कहा—'भाई नौकरी छोड़ना जैसा आसान है छोड़ कर फिर पाना वैसा ही'—दूसरा हमदर्द बीच में ही बोल उठा—'उससे भी अधिक'—पहले ने ही पादपूर्त्ति की—'मुश्किल है।' उनमें जो महाशय अपने भतीजे को मेरी जगह नौकर कराने की चेष्टा कर रहे थे, मेरी नौकरी छोड़ने पर सबसे अधिक दुखी थे। बार बार कहते थे 'भाई ऐसा साथी नहीं मिलेगा। जैसी विद्या वैसी ही विनय, जैसा दिमाग़ वैसा ही दिल।' साथियों से मुख़ातिब होकर—'भई, पहले तो इनके घर सब कुछ है, नौकरी की ज़रूरत नहीं और मन बहलाने के लिए जी फिर चल आये तो इन जैसे सुयोग्य पुरुष के लिए नौकरी बेचारी पीछे पीछे हाथ जोड़े खड़ी है।' मेरे इन हमदर्द मित्र को किसी ने दिल्लगी से या सचमुच यह कह दिया था कि मैं रजिस्ट्रार महोदय के समझाने से फिर नौकरी की इच्छा रखता हूँ और मेरे मित्र मुझे मेरा त्यागपत्र लौटाने को बाध्य कर रहे हैं, इसलिए एल०-एल० बी० पास मेरे मित्र प्रोफ़ेसर ने जिस उपक्रम और उपसंहार से काम लिया और अपने सारे वाग्जाल को मन की मछली फाँसने के लिए जिस चतुराई से सहानुभूति के खारी पानी में डुबो दिया उसे देख कर मन मन में उनकी सराहना करने लगा।

ये आरम्भ की बातें हैं, उस समय मुझे वह शक्ति प्राप्त न हुई थी, उस समय मैं भी देखता था और लोग मुझे भी देखते थे। वह शक्ति आगे चल कर प्राप्त हुई, जिसकी कृपा से मैंने असार संसार के अनेक सारवान् रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया—पर स्वयं नहीं, किसी के इशारे पर, किसी की प्रेरणा से, नहीं मुझमें यह बल कहाँ था।

(२)

सावन का महीना था, मैं उनके साथ झूलों का मेला देखने मथुरा गया था। मथुरा के मन्दिर, पेड़े, खुरचन, चौबों और चतुर दूकानदारों का खूब आनन्द लिया। वृन्दावन भी गया, वहाँ के ठाठ और जमघट को देख कर मेरे होश ठिकाने आ गये। गुसाइयों की पवित्रता और छुआछूत को देख कर तो यही मालूम होता था कि यदि उनके मन में मैल हुआ तो ग़ज़ब है, उनकी सारी क्रियायें मानो कृष्णरूप थीं, ऐसी उनकी शान, ऐसा उनका दबदबा और ऐसे उनके भोगविलास, यहाँ भगवती भक्ति-मुक्ति पर नहीं हँसती थी किन्तु भोग का उद्दण्डदेव भक्ति और मुक्ति दोनों की नाक में दम किये हुए था—मैंने उनका ठाट देख और माहात्म्य सुन मन-मन भगवान् से कहा—'लीलामय, तुम धन्य हो, किसी को कोड़े से पढ़ा रहे हो तो किसी को लड्डू से सिखा रहे हो, किसी को भूखो मार रहे हो तो किसी को इतना खिला रहे हो कि मरने की यन्त्रणा का सूत्रपात हो रहा है, बस तुम धन्य हो, मैं नोन का पुतला भला दयासागर, तुम्हारी क्या थाह पा सकता हूँ—धन्य हो मेरे जीवनधन, अन्तर्यामी देवाधिदेव!'

उस समय मैंने उनसे कहा—'देखिए यहाँ के पुजारी और पंडे कैसी स्थिति में हैं, क्या इनका काम है और क्या इनका ढङ्ग है।'

उन्होंने गम्भीरता से कहा—'पागल, सब अपने अपने ढङ्ग से उन्नति कर रहे हैं। अभी तो मन में लीलामय की लीला बखान कर रहा था और अभी मल की मक्खी फूल से उड़ कर गन्दगी पर जा बैठी!'

मेरी आँखें खुल गईं। यह अन्तर्यामी धर्म! यह अद्भुत शक्ति, यह शाश्वत शान्ति, यह सूत्रधार के साथ अन्वारब्ध भाव! मूढ़ हम पर सारी सम्पत्ति न्यौछावर है,—सारी वासनायें न्यौछावर हैं। मैं उनके टूटे जूते को पकड़कर बैठ गया, उस समय वे एम० ए० में पढ़ते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मैं बी० ए० में था, मैं उन्हें अलौकिक तो समझता था किन्तु बचपन का साथी होने के कारण प्रायः अवज्ञा कर बैठता था, मैंने रोते हुए कहा—

'सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं—

उन्होंने मुस्कराते हुए अपना पाँव खींच लिया और बोले 'पागल, तू मुझे बहुत दिक् करता है, अब कभी तेरे साथ नहीं आऊँगा, तू ज़रा से इन्द्रजाल पर जान देने लगता है, मूर्ख तेरा बेड़ा कैसे पार लगेगा, देखता नहीं है, लोग देख रहे हैं, मन में क्या कहेंगे।

मैंने कुछ नहीं कहा—प्रकट। मन में कहा—'हे प्रभो, तू मुझे कभी इन चरणों से अलग न कीजियो। लीलामय, तूने मुझे कल्पवृक्ष के पास पहुँचा दिया है, मैं इसका पूरा लाभ उठाऊँ—हे दयामय यही वरदान माँगता हूँ।'

वे उसी तेज़ गति से चलने लगे। रास्ते में एक चबूतरे पर अनेक चौबे निश्चिन्तता से भाँग घोट रहे थे। खड़े हो गये, मुझसे बोले, 'इनका जीवन अपनी शान अलग रखता है, पढ़े-लिखे लोग इन्हें अकर्मण्य कहते हैं, इन्हें अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। पर जिनकी कर्मण्यता का केन्द्र परपीड़न और रक्तशोषण है उन सभाशिरोमणि नरपुङ्गवों से ये भोले-भाले मौजी कहीं अच्छे हैं। आज की बात याद रखना।'

मैंने सम्मति की सूचना के लिए अपनी गर्दन नीची कर ली। वास्तव में अभी तक मैं अपनी स्थिति में नहीं आया था, मेरे ऊपर मार्ग की घटना का रौब छाया हुआ था किन्तु मुँह नहीं खोल सकता था।

उनकी आज्ञा थी—'तू मुझे अपने मन में जो चाहे समझ सकता है, चाहे योगी समझ, चाहे देवता समझ, लेकिन तीसरे के सामने इस तरह के पागलपन का कोई लक्षण प्रकट किया तो अच्छा न होगा, वहाँ तू और मैं वही बाल्यसखा हैं, वही 'दो देहों में एक जीव' हैं।' मैं उनकी आदत को जानता था, इसलिए किसी के सामने कभी मैं उनका विशेष आदर नहीं करता था, हाँ नाम सदा पूरा लेता था, वह मुझे सदा एकवचन में पुकारते थे और मैं कुछ दिनों से आदर का इतना भाव तो सबके सामने दिखाने का 'लेसंस' प्राप्त कर चुका था—बड़ी मुश्किल से। क्या मैं उनका आधा नाम ले सकता था! उन्होंने मुझे बहुत समझाया किन्तु इस पर तो मैं गढ़ी ईंट पकड़ कर बैठ गया, मैंने कहा—'भगवन्, जो काम मैं नहीं कर सकता उसके लिए मुझे मजबूर न कीजिए। जितना करता हूँ वह क्या कम है, आपके साथ बराबरी के दावे से रहता हूँ, मैं तो आपके चरण छूने लायक़ भी नहीं हूँ, यह सब ढोंग तो किसी तरह चला रहा हूँ, पर यह न होगा, आप कहेंगे तो भी न होगा।' वह दिन याद है, मेरा कान पकड़ कर बोले—'अच्छा पागल, तूही अपनी जीत रख।' यह बनारस के बोर्डिंग की बात है।

उस दिन घूमते घूमते शाम हो गई थी। रास्ते में कहीं कुछ न बोले, तेज़ गति से, गर्दन सीधी किये, सचमुच जैसे शेर चलता है डेरे तक गम्भीर मुद्रा में चले आये। नौकर ने भोजन तैयार कर रक्खा था, वे तो अल्पाहार करके पढ़ने बैठ गये और मैं सो गया, चार बजे आँख खुली तो देखा कि महाराज आसन लगाये योगमुद्रा में स्थित हैं और उनकी सौम्य किन्तु तेजभरी मूर्त्ति देख कर मुझे पाठकजी की यह अमर पङ्क्ति याद आ गई—

'बलिहारौं त्रिभुवनधन इन पर वारौं काम करोर।'

मैं तो आठ बजे ही सो गया था और वे सदा १० बजे सो कर २ बजे उठ बैठते थे, फिर प्रातःकाल तक वही ध्यान योग और स्वाध्याय! यह उनका अटूट नियम था किन्तु सारे बोर्डिंग में मैं ही इस रहस्य को जानता था, अन्य साथी समझते थे, वे बहुत तड़के पढ़ना शुरू कर देते हैं।

(३)

मथुरा से लौट कर मैंने एक दिन उन्हें प्रसन्न देख कर—प्रसन्न तो वे सदा रहते थे किन्तु उस दिन कुछ कहना चाहते थे, जब कुछ कहने की इच्छा होती थी तो प्रातःकाल मेरे कमरे में आ जाते थे और मेरे तख़्त पर बैठ जाते थे, मैं इसे उनकी विशेष प्रसन्नता या बड़ा प्रसाद समझता था—पूछा—'भगवन् यह अन्तर्यामी धर्म जीव का तो नहीं है?'

उन्होंने कहा—'पागल कहीं का, तू सदा इन्द्रजाल में अटका रहता है, इन बातों में कुछ नहीं है। तू तो अपने मन की बात जानता ही है। यदि किसी दूसरे ने किसी तरह, अनुमान से, अटकल से या साथ रहते रहते तेरी आन्तरिक प्रकृति के विशेष परिचय से या किसी तरह उसे जान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया तो क्या हुआ, तू तो उसे जानता ही है। उससे तेरी अवस्था में तो कोई अन्तर नहीं पड़ता, तू कहता तो वह भी जान लेता। अब यदि तेरे बिना कहे ही उसने उसे जान लिया तो बात क्या हुई—एक तमाशा, इन्द्रजाल या कोरा कुतूहल! बस इसी के लिए नरशरीर की बलि देना चाहता है, मूर्ख कहीं का। अरे उस परमतत्त्व के जानने की अभिलाषा मन में उत्पन्न कर जिसे जान कर कुछ जानना बाक़ी रहता, उसके उद्देश में चल जिसका कहीं पता नहीं, उसे पकड़ जो पकड़ा नहीं जाता, उसे देख जो देखने की चीज़ नहीं है—उसके मार्ग पर चलते ही ऐसे न मालूम कितने तमाशे साधक को दिखाई पड़ते हैं, किन्तु समझदार विद्यार्थी स्कूल जाते समय रास्ते में बाज़ीगर का तमाशा देखने नहीं रुकता, उसके कान तो घण्टी की आवाज़ पर लगे रहते हैं, उसे नट का ढोल सुनाई ही नहीं पड़ता। हाँ, फलवाला आये तो मेरे लिए थोड़े से फल ले लेना, यह रुपया रक्खा है, आज एकादशी है। मैं गङ्गा-स्नान के लिए जा रहा हूँ।' इतना कह और रुपया मेरी मेज़ पर रख कर नंगे सिर नंगे पाँव धोती अँगोछा लिये मेरे कमरे के बाहर हो गये और मैं उन मोतियों को सँभाल कर रखने लगा जिन्हें वे इस उदारता से मेरे कमरे में बखेर गये थे।

मैं उस समय तक अपने विचारों में डूबा रहा, मेरे सहपाठी शिवनाथ ने आकर मेरे कमरे के किवाड़ खोले, वह आर्यसमाजी था, उसने उन्हें गङ्गा-स्नान को जाते देखा था, उसने हँसते हुए कहा—तुम पण्डितजी के साथ नहीं गये, कहते थे आज एकादशी है, भोजन नहीं करूँगा। भई, इन्हें देखकर तो आश्चर्य्य होता है, यद्यपि मैं आर्य्यसमाजी भावों में पला हूँ, फिर भी मेरा चित्त इनकी साधुता पर विवश हो खिँचा जाता है। तुम बड़े भाग्यशाली हो जो तुम्हारे ऐसे मित्र हैं।' कह कर वह तो दूसरे कमरे में चला गया और मैं देर तक यही सोचता रहा कि वास्तव में मैं कितना भाग्यशाली हूँ।

मैंने निश्चय कर लिया, आज जो काँटा दिल में खटक रहा है उसे सदा के लिए निकाल दूँगा। मैं उनके गङ्गा से लौटने की प्रतीक्षा करने लगा। कोई ९ बजे वे लौटे, देर हो गई थी, इसलिए शाम को ही जाने का मैंने निश्चय किया।

कोई ७ बजे मैं उनके कमरे में पहुँच गया। बैठे थे, मैंने कहा—'आज आपका व्रत है, मुझे अपने विषय में एक परामर्श लेना है, आप आज्ञा दें तो कहूँ।'

वे बोले—'अच्छा, कहो। संक्षेप में और समझ कर'।

मैंने कहा—'आप जानते ही हैं मुझे सुलोचना से प्रेम है और यह कि वह विधवा है। मेरा अब तक निश्चय यही था कि उसी के साथ विवाह करूँगा। किन्तु अब मेरा विचार यह है कि आपके साथ बातचीत करके इस प्रसङ्ग को सदा के लिए आज समाप्त कर दूँ। सुलोचना के माता-पिता विधवा-विवाह करना चाहते हैं, मेरे लिए ही वे रुके हुए हैं, मैं उन्हें आज उत्तर देना चाहता हूँ।'

उन्होंने कहा—'तुम्हें सुलोचना से प्रेम है या उससे विवाह करने की इच्छा है, ये दो बातें अलग अलग भी हो सकती हैं।'

मैंने खूब सोच कर कहा—'मुझे उससे प्रेम है, विवाह करने की इच्छा तो एक वर्ष से हुई है, पहले भी मैं उससे प्रेम करता था। मुझे यह बहुत भली लगती है।'

उन्होंने कहा—प्रेम का अर्थ है कि जिससे प्रेम हो उसके लिए कुछ स्वार्थत्याग करना या उसके स्वार्थ को अपने स्वार्थ से उत्तम समझना या उसे सदा सुखी देखने की अभिलाषा को अपने हृदय में परिपुष्ट करना। इसलिए अब यदि तुम यह समझते हो कि तुमसे विवाह होने पर ही वह अधिक सुखी हो सकती है तो सब काम छोड़ कर उससे विवाह कर लो और यदि बिना विवाह के वह और अधिक सुखी रह सकती है तो उसे समझा दो कि वह विवाह न करे या किसी दूसरे सुयोग्य व्यक्ति से विवाह होने पर वह तुमसे विवाह होने की अपेक्षा अधिक सुखी रह सकती है तो तुम कोशिश करके उससे उसका विवाह करा दो। उनके घर तो पर्दा नहीं है, अब तुम ईस्टर की छुट्टियों में जाकर उसके माता-पिता से मिलो और उससे भी मिलो और वहीं इस विषय का जैसा उचित समझो निबटारा कर आना।'

इस पर मैंने कुछ न कहा। चुपचाप अपने कमरे को लौट आया। मन में ही प्रणाम किया, बोर्डिंग के भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों काशी में भी चरण छूने की आज्ञा न थी। परदेश में जब कोई परिचित न हो तो मैं कभी कभी इस पुण्य को प्राप्त कर सकता था।

ईस्टर की छुट्टियों में जा कर मैंने देखा कि सुलोचना बिलकुल बदल गई है। उसने निश्चय कर लिया है कि वह विवाह न करेगी और चिरवैधव्य की कठिन तपस्या से अपने जीवन को पवित्रतम बनावेगी। सचमुच उसमें एक अपूर्व दृढ़ता थी और यह मालूम होता था कि वास्तव में वह अपने घर में देवी का अवतार है। मैंने उसे हाथ जोड़ कर कहा—'मातः प्रणाम, तुम साक्षात् जगदम्बा हो।'

उसने कहा—'मेरा तो तुमसे भाई-बहन का भाव रहना चाहिए।'

मैंने कहा—'जब जो जिस स्थिति में होता है, उसका वैसा आदर करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है। मुझे तुम साक्षात् अभयदा भगवती दिखाई देती हो, इसलिए तुम इसी सम्बोधन के योग्य हो मातः।'

बड़े हल्के चित्त से मैं इस बार कालेज को लौटा, जितने बन्धन थे सभी भगवान् की कृपा से कट गये थे।

(४)

गङ्गातट पर बिलकुल एकान्त में मैं उनके चरणों में बैठा था, उन्होंने संन्यास ले लिया था। उन्हें कोई नहीं पहचानता था, मुझे ही कृतार्थ करने काशी आये थे।

बोले—'तब नौकरी छोड़ने का निश्चय कर लिया है?'

मैंने कहा—"हाँ।"

बोले—नौकरी छोड़ कर एक वर्ष तक एकान्तवास करना, यहीं कोई छोटा सा स्थान ले लेना, कालेज से बचा हुआ हो। किसी ग़रीब विद्यार्थी को पढ़ा देना और पण्डितजी से ब्रह्मसूत्र पढ़ते रहना, बाक़ी कम से कम आठ घण्टे ध्यान में लगाना, सब तुम्हें मालूम ही है। खूब ग़रीब बन कर रहना, मानरहित होकर घूमना और दूसरों की उपेक्षा के उपहार को पाकर मन में प्रसन्न होना। मेरी तलाश मत करना। मैं जिस काम में लगा हुआ हूँ उससे निबट कर एक बार तुमसे मिलने की इच्छा है, उस समय उचित होगा तो तुम्हें हिमालय ले चलूँगा, अभी बहुत कसर है। घबराना मत, अच्छा चलूँ।

बाँस की फटी लकड़ी हाथ में लिये, गाढ़े की चादर ओढ़े, नंगे पाँव नंगे सिर मनुष्य-जाति का आभूषण, मेरा परमेश्वर वह महापुरुष उसी तेज़गति से भीड़ में मिल गया, मैं कई घंटे वहीं बैठा रहा, अब भी जब उधर निकलता हूँ, मन में उस भूमि को प्रणाम करता हूँ, वहीं तो मुझे नारायण मिले थे, वहीं तो मेरा पुनर्जन्म हुआ था, वहीं तो मेरा 'मुक्ति-पीठ' है।

ज्वालादत्त शर्मा

प्रकृति।

(१)

जब सत्त्व रज-तम त्रिगुण ये सम भाग मिलते हैं जहाँ,
मूलप्रकृति की अवकृति के सत्कार्य चलते हैं वहाँ।
जड़ है यदपि चेतन-सदृश पर सृष्टि रचती है वही,
उसके बिना जाने पुरुष को मुक्ति मिलती है नहीं॥

(२)

तम कृष्ण है रज लाल है, ज्यों सत्त्व-गुण त्यों श्वेत है,
तीनों गुणों में सत्त्व ही, पर श्रेष्ठ सौख्य-निकेत है।
सत्त्वप्रधाना प्रकृति है संसार में जिसको मिली,
सत्कीर्ति है उसको मिली, वर मुक्ति भी उसको मिली॥

(३)

आलस्य निद्रा हो न जिसमें और चञ्चलता न हो,
वपु-क्षीणता चाहे रहे, पर चित्त-दुर्बलता न हो
है क्रोध से जो हीन जिसमें मोह भी होवे नहीं,
वह सत्त्वगुण-सम्पन्न है, नरमान्य है जग में वही॥

(४)

है भोज्य जिनका स्निग्ध, मधुर क्षीर जिनका पेय है,
विद्या-व्यसन में मग्न हैं जो, सत्य जिनका ध्येय है।
संसार के उपकार में जो आत्म को अर्पण करें,
पर के दुखों ही से दुखी हैं सत्त्व-गुण से वे भरे॥

(५)

जो सब धनों से धर्म ही को हैं अधिकतर मानते,
विषयोपभोगों को सदा ही तुच्छतर हैं जानते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे सत्त्व-गुण की मूर्ति हैं जिनमें दया है दान है,
सम्मान सबका जो करें जिनमें नहीं अभिमान है॥

(६)

अपकारियों के साथ भी उपकार करने के लिए,
कटिबद्ध हैं जो हर घड़ी पर-दैन्य हरने के लिए।
वे सत्त्व-गुण के सिन्धु हैं पर-वृद्धि से जलते न जो,
प्रण से विचलते हैं न जो, छल-मार्ग पर चलते न जो॥

(७)

"संसार ही माता-पिता संसार ही सन्तान है—
कोई न मुझसे है अलग", जिनमें भरा यह ज्ञान है।
सत्त्वावतारी है वही निःशोक जो रहता सदा,
कहता जिसे करता उसे मृदु वाक्य ही कहता सदा॥

(८)

खाते न मनमोदक कभी, जाते नहीं दुःसंग में,
हैं खींच लाते नीच को भी शीघ्र अपने ढंग में।
जिनमें भरा है सत्त्व-गुण, होते न दुर्गुण-वश कभी,
वे ही सभी के अंग हैं या अंग उनके हैं सभी॥

(९)

निर्मल यथा आदर्श है, आदर्श जीवन है वही,
जिसके न मन में भोग-लिप्सा, रोग तन में है नहीं।
जिसमें प्रकृति है सात्त्विकी उसको मिली वर बुद्धि है,
उसके पगों के स्पर्श से होती मही की शुद्धि है॥

(१०)

है धीरता के साथ धीमत्ता मिली जिस व्यक्ति को,
वह शान्तिपूर्वक है चलाता सात्त्विकी निज शक्ति को।
त्रयकाल को है देखता हृन्नेत्र उसका हर घड़ी,
वह डाल सकता है जगत को प्रेम-निर्मित हथकड़ी॥

(११)

नवनीत सा पत्थर पिघलता देखकर उस रूप को,
अति रंक से भी हीनतर वह देखता है भूप को।
है वृत्ति जिसकी सात्त्विकी वह इन्द्र का भी ईश है,
उस पर किये शुभ छत्र छाया हर घड़ी जगदीश है॥

(१२)

सात्त्विक हृदय सा जह्नु-तनया-नीर भी न पवित्र है,
जो तेज सात्त्विक है न उसके अंश के सम मित्र[1] है।
वारिधि-लहरियों से लहर है सात्त्विकी बढ़कर कहीं,
सात्त्विक मनुज गिरता नहीं है स्वप्न में चढ़ कर कहीं॥

(१३)

जिसमें रजः प्राधान्य है वह क्यों नहीं चञ्चल रहे?
दुखप्रद विषय के भोग को कैसे न वह सुखप्रद कहे?
सन्तोष उसको स्वप्न में भी हो नहीं सकता कभी,
सुरभित सुशुन क्या आज तक भू पर कहीं उपजा कभी?

(१४)

सिद्धान्त स्थिर रहता नहीं है राजसी मति का कभी,
पथ एक होता ही नहीं है राजसी गति का कभी।
हैं विविध व्यसनों से ग्रसित राजस मनुज जग में स्वयम्,
जग-बन्धनों की बेड़ियाँ हैं डालते पग में स्वयम्॥

(१५)

रामा रमा रथ राग रङ्गों में निरन्तर हैं लगे,
निन्नानवे के फेर में हैं, जो रजोगुण से पगे।
दिन-रात चिन्ता में पड़े वे हैं, उन्हें क्यों शान्ति हो?
आक्रान्त हैं जो लोभ से उनको न कैसे भ्रान्ति हो?

(१६)

मोहाब्धि में होकर निमज्जित क्रोध से तपते रहें,
पर-धन परस्त्रों के लिए, जो मन्त्र को जपते रहें।
पुद्गल[1] बने वे हैं तमोगुण से मनो नर-रूप में,
गिर कर निकलते वे नहीं मण्डूक-सम भवकूप में॥

(१७)

कामाग्नि के इन्धन बने रहते सदा ही आपसे,
त्रयताप से सन्तप्त हो, डरते नहीं जो पाप से।
उनको नराधम या असुर जो चाहिए कह लीजिए,
मत साथ उनका दीजिए, विश्वास भी मत कीजिए॥

(१८)

स्वार्थान्ध हो हिंसा-निरत रहते सदा संसार में,
हैं सभ्य वे आकार में, पर क्रूर हैं व्यापार में।
उनको दया की या हया की छूत भी लगती नहीं,
वे हैं तमोगुण-लाड़ले, उनमें सुमति जगती नहीं॥

(१९)

वपु हो विशद उनका उन्हें, पर है हृदय काला मिला,
मानो रजत की खानि में काला धतूरा है खिला।

१ मित्र = सूर्य।

१ पुद्गल = आत्मा या सुन्दर देह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो हैं रजःसम्भूत भूतों से कभी वे कम नहीं,
उनमें तनिक शम-दम नहीं, परलोक का भी गम नहीं॥

(२०)

हैं नेत्र उनके चमकते, पर चित्त तमसाछन्न है,
सम्पन्न हैं तो क्या हुआ दिन-रात दुःखापन्न है।
सद्गुण मिले कैसे उन्हें जो हैं तमोगुण से भरे,
अविचार अत्याचार के अवतार हैं खल हैं खरे॥

(२१)

तमरूप नर विद्वान् भी हो, लाभ पर उससे नहीं,
मणि-युक्त विषधर क्रूरता करता कहाँ किससे नहीं।
सात्त्विक-जनो! खल-संग से अपयश न जग में लीजिए,
"कहना पड़े तो दूर से" गुड मार्निङ्ग कह दीजिए॥

(२२)

गुरुदेववत् नरदेव हैं, जो सत्त्वगुण से युक्त हैं,
उपयुक्त होकर लोक में वे अन्त में फिर मुक्त हैं।
जिसमें रजोगुण है वही मध्यम मनुज माना गया,
जो है तमोगुण से भरा वह नर दनुज माना गया॥

रामचरित उपाध्याय

ब्रिटिश-पार्लियामेंट।

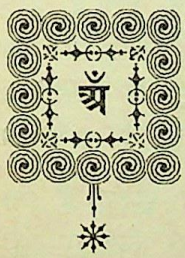

अँगरेज़ी-पार्लियामेंट संसार की एक महत्त्व-पूर्ण संस्था है। वह एक प्राचीन संस्था ही नहीं, किन्तु दूसरे देशों के लिए आदर्श भी है। संसार के भिन्न भिन्न देशों में जो लोक-निर्वाचित संस्थायें स्थापित हैं, प्रायः उन सबका सङ्गठन इसी के आदर्श पर हुआ है। एक इसी बात से इसके गौरव का अनुमान किया जा सकता है। जब कोई विदेशी यात्री पार्लियामेंट के दर्शनार्थ इसके सिंहद्वार पर जा खड़ा होता है तब उस पर इसका आतङ्क छा जाता है। वह इसकी शक्ति और क्षमता का स्मरण कर इसके प्रभाव से अभिभूत ही नहीं, किन्तु इसके सदियों के परम्परा-गत गौरव के आगे नतमस्तक हो जाता है, वह इसको स्वाधीनता की शक्ति के रूप में बार बार भक्तिपूर्वक नम-स्कार करने लगता है। ऐसी ही इस जगत्प्रसिद्ध संस्था के सम्बन्ध में मैं यहाँ कुछ बातें लिखता हूँ।

इँलेंग्ड की पार्लियामेंट की सबसे पहली बात उसके प्रतिनिधियों का निर्वाचन है। प्रतिनिधि-निर्वाचन जिस धूमधाम से यहाँ होता है उससे अँगरेज़ों के एक जीवित जाति होने का पूरा प्रमाण मिल जाता है। पार्लियामेंट के प्रमुख दल चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए जो आन्दोलन करते हैं वह इँग्लेंड के सार्वजनिक जीवन की एक ख़ास बात है। उस समय उनके नेताओं की कार्य-क्षमता, सङ्गठन-पटुता और अदम्य उत्साह का पूर्ण परिचय मिल जाता है। वास्तव में चुनाव का दृश्य दर्शनीय ही नहीं, किन्तु शिक्षाजनक भी होता है। उस समय सभा-समाजों की धूम-धाम, व्याख्याताओं की धमा-चौकड़ी और विज्ञा-पन-बाज़ी का विराट् आयोजन देखते ही बन पड़ता है। पर चुनाव समाप्त हुआ नहीं कि तत्सम्बन्धी सारी उत्तेजना जहाँ की तहाँ रह गई, फिर पूर्ववत् देश में शान्ति छा जाती है। मैंने देखा है कि अँगरेज़-जाति अपने अधि-कारों की कहाँ तक क़दर करती है। अतएव चुनाव के अवसर को वह महत्त्व-पूर्ण ही नहीं समझती, किन्तु उसमें सोत्साह भाग लेती है, पर वहाँ की यह स्थिति सदियों के अनुभव का फल है।

चुनाव की समाप्ति के बाद नव-निर्वाचित प्रतिनिधि विश्राम करते हैं। वे पार्लियामेंट के खुलने तक चुनाव-कालीन अपनी थकावट दूर करते हैं। इस समय वे निर्वा-चन-सम्बन्धी अपनी प्रतिज्ञाओं पर विचार करते हैं, चुनाव-सम्बन्धी अपने व्यय का हिसाब-किताब सुधारते हैं और अपने निज के काम-काज की व्यवस्था करने में लग जाते हैं। इस अवसर पर यदि उनके एकान्त में विघ्न पड़ता है तो डाकिये से। वह चन्दा माँगने और पेंशन पानेवालों के पत्रों के ढेर से इनके नाकोंदम कर देता है। सेक्रेटरी बनने-वाले तेज़-तर्रार नवयुवक अपने प्रशंसा-पत्रों के पुलिन्दे अलग भेजते रहते हैं। उधर मकानों के एजंट भी खोपड़ी चाटने लग जाते हैं। दर्ज़ी लोग भी दरबारी पोशक तैयार करने के लिए आर्डर की अपनी माँग पेश करते हैं। इस प्रकार इनका अवकाश-काल ऐसी ही बातों में व्यतीत होता है। नव-निर्वाचित प्रतिनिधियों में जो पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही पहल प्रतिनिधि निर्वाचित होते हैं उनके लिए ये सब बातें नई होती हैं, अतएव वे कभी कभी इनकी उलझन में पड़ कर व्यग्रता का भी अनुभव करते हैं।

पार्लियामेंट के खुलने के दिन की राह प्रतिनिधि ही नहीं, किन्तु साधारण लोग भी बड़ी उत्सुकता से देखते हैं। कब पार्लियामेंट खुले और कब उसका प्रारम्भिक

मिस्टर बाल्डविन और उनकी कन्या।

अधिवेशन देखने का सौभाग्य प्राप्त हो, उसके खुलने के दो दिन पहले से ही रह रह कर यह बात मेरे मन में उठती थी। उसके खुलने के दो-एक दिन पहले से ही नव-निर्वाचित प्रतिनिधियों के समूह उसके द्वार पर दिखलाई पड़ने लगे थे। वास्तव में उनका ऐसा करना बुद्धिमानी का भी काम है। वहाँ के पुलिस के जवानों से पहले से ही परिचित हो जाना उनके लिए अनेक बातों में सहायक होता है। इसके सिवा उनके लन्दन में पहले से ही आजाने से एक और भी लाभ होता है। उन्हें अपने अपने दल की सभा के अधिवेशनों में भाग लेने का भी अवसर मिल जाता है। दलविशेष के नेता पार्लियामेंट खुलने के पहले अपने अपने दल के नव-निर्वाचित प्रतिनिधियों की सभा करते हैं और पार्लियामेंट के अगले अधिवेशन में उनके दल की क्या युद्ध-नीति होगी इसका उद्घोष करते हैं। इस सभा के बहाने वह अपने दल के नवनिर्वाचित प्रतिनिधियों पर भी अपनी एक दृष्टि डाल देता है, यद्यपि उसकी वह दृष्टि उपेक्षापूर्ण ही होती है। इस अवसर पर नवनिर्वाचित प्रतिनिधि को अपने नेता से हाथ मिलाने का भी सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। परन्तु रँगरूट प्रतिनिधि पर उसके दल की सभा का अच्छा प्रभाव न पड़ता होगा, क्योंकि उसे अपने नेता का उपेक्षापूर्ण व्यवहार उचित नहीं जँच सकता। पर किसी को उचित जँचे या न जँचे, नेता को पार्लियामेंट-सम्बन्धी कार्यों के कारण हाथ मिलाने तक की फुर्सत नहीं रहती, वह प्रत्येक प्रतिनिधि से अलग अलग बात-चीत करने के लिए कहाँ से समय लावे। इस कारण उसे इस बात की परवा भी नहीं रहती कि प्रतिनिधि लोग उसके व्यवहार से सन्तुष्ट हैं या नहीं।

जिस दिन पार्लियामेंट खुलती है उस दिन लोगों की उत्सुकता का ठिकाना नहीं रहता। अधिकांश दो दो घण्टे पहले से ही पार्लियामेंट के द्वार पर जा डटते हैं। प्रवेश-द्वार ठीक आठ बजे सवेरे खुलता है, पर प्रतिनिधियों के समूह की पंक्ति उसके आगे पहले से ही आ डटती है। यदि ये लोग पहले से ही न आ जायँ तो अच्छी जगह बैठने को उन्हें मिले ही नहीं। दर्शक भी ऐसा ही करते हैं। दरवाज़े के खुलते ही बढ़िया जगह लेने के लिए लोग जिस प्रकार दौड़ पड़ते हैं वह भी देखते ही बन पड़ता है। भीतर जाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

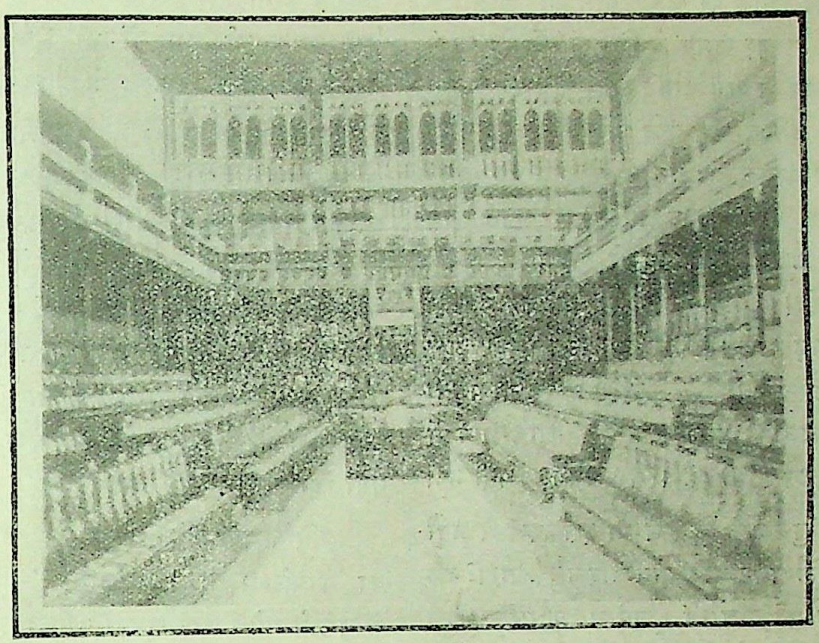

हाउस आव् कामन्स का एक दृश्य ।

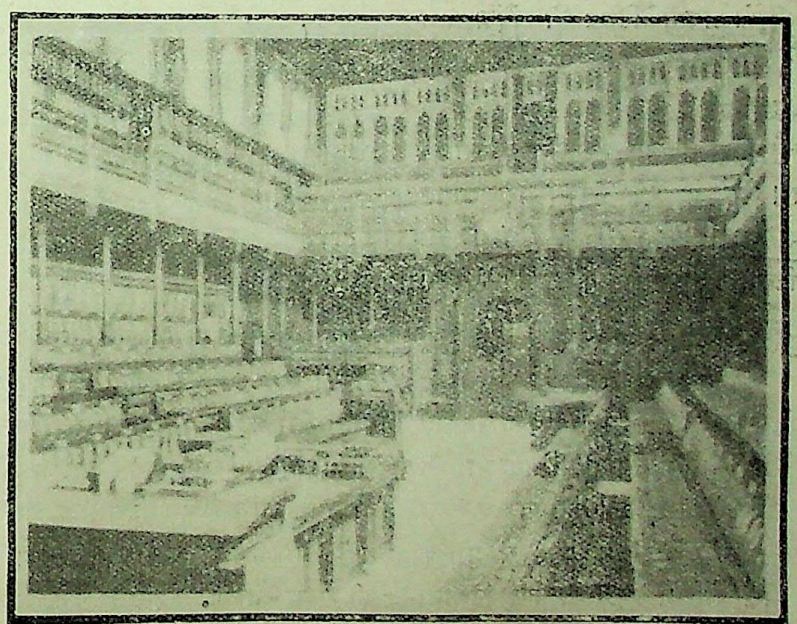

हाउस आव् कामन्स का दूसरा दृश्य ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिनिधि लोग अपने स्थान पर अपने नाम का कार्ड रख देते हैं और वह जगह कुछ समय के लिए उनकी हो जाती है। पर जो व्यक्ति अपने स्थान पर दिन भर के लिए अपना अधिकार चाहता हो उसे दोपहर बाद पौने तीन की प्रार्थना में शामिल होना आवश्यक है। प्रार्थना के बाद वह अपने स्थान पर आकर उसके पीछे स्लाट (slot) में अपने नाम का कार्ड रख दे तो वह जगह उसकी हो जायगी, चाहे वह वहाँ बैठा भी न रहे। स्थान-प्राप्ति का यह उपाय उसे प्रत्येक दिन करना पड़ता है। इसके लिए उसे सवेरे और दोपहर बाद पार्लिमेंट-भवन में उपस्थित रहना पड़ता है। जो लोग कामकाजी हैं उन्हें बार बार आने-जाने में बड़ी असुविधा प्रतीत होती है। पर नियम यही है।

पार्लियामेंट के खुलने के दिन मैं भी दर्शकरूप में वहाँ गया। मेरे लिए पार्लियामेंट का चुनाव और उसके प्रारम्भिक अधिवेशन बिलकुल नई बातें थीं। जब मैं कामन्स-भवन के प्रवेश-द्वार के सामने जाकर खड़ा हुआ तब एक पुलिस-मैन ने सौजन्यतापूर्वक कहा—कृपया टिकट दिखलाइए, आप सेंटस्टीफ़ेन-द्वार से जायँ। भीतर घुसते ही एक दूसरे पुलिसमैन ने कहा—कृपया बढ़े चलिए। दूसरे दर्शकों के साथ मैं एक विस्तृत बरामदे से होकर आगे बढ़ा चला गया। बीच बीच में मुझे अपना टिकट भी दिखलाना पड़ता था। अन्त में एक पुलिसमैन ने कहा—कृपया बाईं ओर ज़ीने से ऊपर चढ़ जाइए। चक्करदार ज़ीने से चढ़ते हुए जब मैं ऊपर जा पहुँचा तब मैं एक मेज़ के सामने जाकर खड़ा हो गया। मेज़ पर एक बड़ी भारी किताब रक्खी थी। उसके पास एक कर्मचारी खड़ा था। उस पुस्तक में मैंने अपने टिकट का नम्बर अङ्कित कर दिया। इसके बाद मैं पास ही एक कुर्सी पर डट गया। यह दर्शकों की गैलरी थी।

सुस्थिर होने पर मैंने नीचे निगाह डाली। देखा तो वहाँ के वायुमण्डल को उत्साह और जीवन से परिपूर्ण पाया। सदस्यों से सारा स्थान ठसाठस भरा था। कुछ खड़े थे, कुछ बैठे थे, कुछ इधर-उधर आ-जा और एक दूसरे से प्रेम के साथ हाथ मिला रहे थे। शोर-गुल का तो कोई ठिकाना ही न था। यह बात सम्भव भी तो नहीं कि ६१२ लोगों का समुदाय वहाँ गूँगा बना बैठा रहे। अपने मित्रों का स्वागत करना और हँस कर उनसे दो-एक बातें कर लेना इस महत्त्वपूर्ण स्थान में भी एक साधारण बात थी। परन्तु शोर-गुल सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ ज़रूर।

उस भव्य स्थान का जो प्रभाव मुझ पर छा गया था वह जब सुस्थिर होने पर दूर हुआ तब मैंने वहाँ की प्रक्रिया तथा प्रतिनिधियों के रङ्ग-ढङ्ग का निरीक्षण करने की ओर अपना ध्यान दिया। वास्तव में मैं वहाँ की प्रत्येक बात का पूरा पता जानना चाहता था। पर यह कम से कम मुझ जैसे विदेशी के लिए असाध्य नहीं तो कष्टसाध्य ज़रूर था। अतएव जो कुछ मैं जान सका हूँ अथवा जिस दृष्टि से मैंने इस संस्था का निरीक्षण किया है उसी का यहाँ दिग्दर्शन कराया गया है।

प्रतिनिधियों के स्थान ग्रहण करते ही पार्लियामेंट का कार्यारम्भ हुआ। 'कामन्स'-प्रतिनिधि लार्ड-भवन में बुलाये गये। वहाँ अपना स्पीकर चुनने को उन्हें शाही आदेश दिया जाता है। कामन्स-प्रतिनिधि विधि-पूर्वक लार्ड-भवन में एकत्र होते हैं। वहाँ चार दूसरे लार्डों के सहारे खड़े होकर लार्डों के प्रतिनिधिरूप से लार्ड-चैन्सलर उन्हें अपना स्पीकर चुनने के लिए शाही आज्ञा सुनाते हैं। उस समय लार्ड-भवन ख़ाली रहता है। तीन-चार ही लार्ड बेंचों पर बैठे देख पड़ते हैं। यह क्रिया अधिक प्रभावपूर्ण नहीं होती, पर सनातन से ऐसा ही होता आया है। अतएव वह अभी तक जैसी की तैसी चली जाती है। शाही आज्ञा ग्रहण कर कामन्स लोग अपने भवन को लौट आते हैं। वहाँ वे अपना स्पीकर मनोनीत करते हैं। यद्यपि स्पीकर का चुनाव पहले से ही हो जाता है, तथापि प्राचीन परिपाटी का न्याय्य अवश्य किया जाता है, जो देखने योग्य होता है, दर्शकों पर उसका प्रभाव भी पड़ता है। इस क्रिया के बाद सभा का कार्य मुलतबी हो जाता है और दूसरे दिन से प्रतिनिधियों के शपथ-ग्रहण करने का कार्य आरम्भ होता है, जो कई एक दिन तक जारी रहता है। ये दिन बड़ी मुश्किल से कटते हैं। प्रत्येक प्रतिनिधि राजभक्ति की शपथ ग्रहण करता है। इस समय उसे पार्लियामेंट के रजिस्टर में अपना नाम अपने निर्वाचन-क्षेत्र का नाम अङ्कित करना पड़ता है। यह कर चुकने पर एक व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

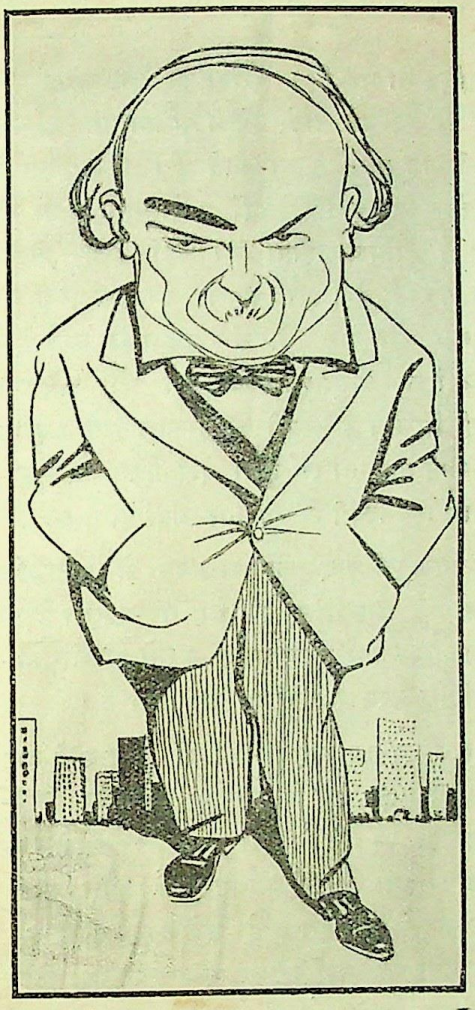

मिस्टर लायड जार्ज (चुनाव के समय) ।

मिस्टर एस्क्विथ (चुनाव के समय) ।

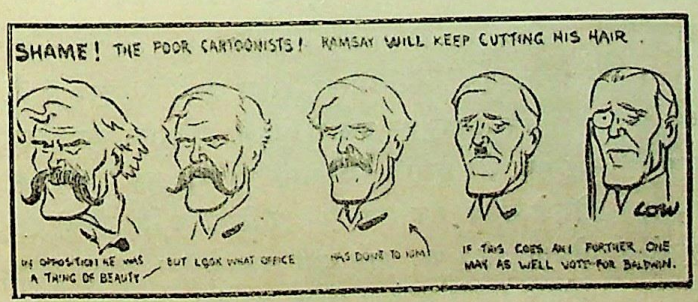

रामसे मैकडानल (चुनाव के समय) ।

बाल्डविन (चुनाव के समय) ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका परिचय स्पीकर को देता है, जो शिष्टाचार के रूप में दो एक शब्दों के साथ उससे हाथ मिलाता है। यह प्रक्रिया प्रत्येक प्रतिनिधि को करनी पड़ती है। प्रतिनिधियों का वेतन उसी दिन से आरम्भ हो जाता है जब वे शपथ-ग्रहण कर चुकते हैं। प्रतिनिधियों में स्वधर्मानुसार ईसाई या यहूदी पद्धति से शपथ-ग्रहण करते हैं।

शपथ-ग्रहण की प्रक्रिया की समाप्ति पर पार्लियामेंट का वह दिन आता है जिस दिन से उसका वास्तविक कार्यारम्भ होता है। बादशाह अपने दलबल के साथ इसी दिन पार्लियामेंट में आकर उसके कार्यारम्भ का श्रीगणेश करते हैं। यह दृश्य वास्तव में बड़ा प्रभावशाली होता है। और देखने ही योग्य होता है। इस अवसर पर कामन्स लोग फिर लार्ड-भवन में उपस्थित होते हैं। लार्ड-भवन लार्डों और उनकी पत्नियों तथा कामन्स लोगों से ठसाठस भर जाता है। सिंहासन के पास युवराज पहले से ही आ बैठते हैं। इस समुदाय का दृश्य वास्तव में नवागन्तुक के लिए अनोखा होता है। लार्ड लोग अपनी पत्नियों के सहित भेषभूषा-सज्जित होकर बड़ी आन बान के साथ आते हैं। उनकी तथा उनकी पत्नियों की सुन्दर बहुमूल्य पोशाकों तथा आभरणों से सारा स्थान जगमगा उठता है। इसके सिवा विदेशों के राजदूतों की पोशाकों की छटा भी निराली होती है। उनमें भी छोटे छोटे राज्यों के राजदूत तो और भी बनठन कर आते हैं। इस अवसर पर लोगों की टकटकी बँध जाती है। अन्त में जब बादशाह के आगमन का सङ्केत होता है तब एकाएक ऐसी निस्तब्धता छा जाती है कि कुछ क्षण के लिए दर्शक की सारी उत्सुकता और अधीरता अपने अपने स्थान में जहाँ की तहाँ दब जाती है। लो सम्राट् और महारानी आ गये। वे सीधा सिंहासन की ओर चले गये। वहाँ बादशाह ने खड़े होकर स्पष्ट स्वर में अपना भाषण पढ़कर सुनाया। लोगों का ध्यान उनके एक एक शब्द पर लग गया, पर सबकी निगाहें महारानी के बहुमूल्य रत्नजड़ित आभूषणों और मनोहर पोशाक पर ही बार बार जाकर ठहरती थीं। भाषण की समाप्ति के बाद सम्राट् राजमहल को पधारे। इधर कामन्स लोग अपने भवन को लौट आये।

सच पूछिए तो यह दिन दर्शकों का दिन होता है। इस अवसर पर बड़े बड़े लार्ड, उनकी पत्नियाँ तथा साधारण लोग भी खूब सज-धज कर आते हैं। राजा-रानी के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही नहीं। भोजन-गृह का भी दृश्य बड़ा ही अनोखा होता है। जहाँ देखो, स्त्रियाँ नाचती सी फिरती हैं। इस अवसर पर इस देश की सुन्दर से सुन्दर स्त्री तक के दर्शन सुलभ हो जाते हैं। चारों ओर यहाँ का वायुमण्डल सजीवता और उद्विग्नता से परिपूर्ण ही मिलता है। सभी की मुखाकृति से हृद्गत आनन्द का भाव उछलता सा हुआ देख पड़ता है, मुर्दादिली का नाम तक किसी के चेहरे पर नहीं होता।

शाही-भाषण के बाद कामन्स-भवन में प्रतिनिधि फिर एकत्र होते हैं और जिस दल का मत-बाहुल्य होता है उसकी सरकार अपना स्थान ग्रहण करती है और सरकार के प्रतिनिधि सरकारी बेंचों पर आ बैठते हैं।

इस बार का चुनाव मज़दूर-दल की सरकार के हार जाने पर हुआ है। इस दल की सरकार का जीवन उदारदल की सहायता पर निर्भर था। पर जब उसके नेता मिस्टर एस्क्विथ तथा मिस्टर लायड जार्ज प्रधान मन्त्री मिस्टर मैकडानल से सहमत न हो सके तब अनुदार दल ने उनकी सहायता का लाभ उठाकर सरकार को हरा दिया और नया चुनाव अनिवार्य हो गया। इस चुनाव में अनुदार दल को आशातीत सफलता हुई है। उसके बहुत अधिक सदस्य चुने गये। इसके विपरीत उदार दल का मटियामेट हो गया। यहाँ तक कि उसके प्रमुख नेता मिस्टर एस्क्विथ तक नहीं चुने जा सके।

जिस समय कामन्स-भवन में उदार दल के अल्पसंख्यक सदस्यों को मिस्टर लायड जार्ज के नेतृत्व में बैठे देखा उस समय उस दल के पिछले इतिहास का स्मरण कर बड़ा खेद हुआ। एक समय था और वह समय अभी पिछले समय तक था जब पार्लियामेंट में उसकी तूती बोलती थी। पर आज उसी दल के ३८ सदस्य उसकी वर्तमान स्थिति की स्पष्ट सूचना देते थे। उधर मज़दूरदल मिस्टर मैकडानल के नेतृत्व में था। इस चुनाव में उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनन्त पथ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwâr

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

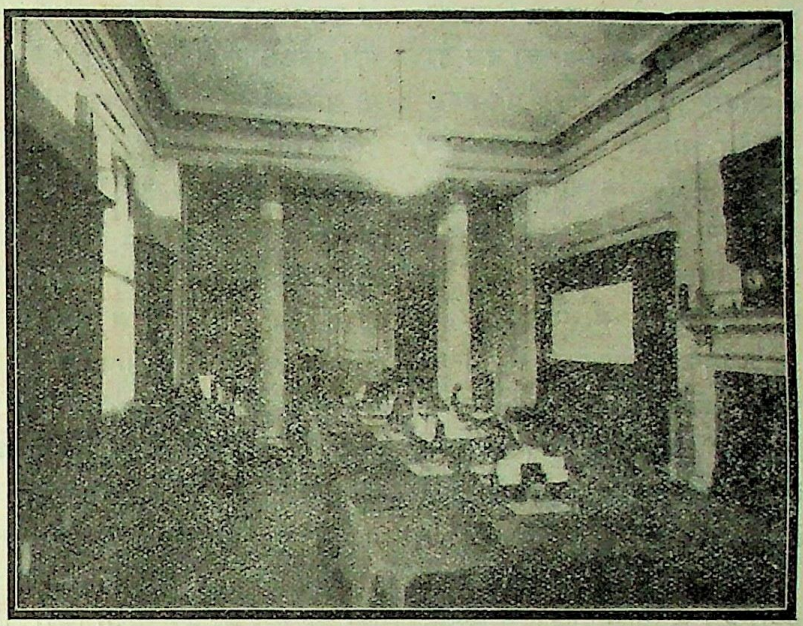

१० डाउनिंग स्ट्रीट में केबिनेट रूम ।

चेकर्स, प्राइम मिनिस्टर का ग्राम्य-निवास ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या में वृद्धि हुई है और उदारदल के एक प्रकार विनष्ट हो जाने से अब वह पार्लियामेंट में दूसरे नम्बर का दल हो गया है। तो भी अपनी वर्तमान स्थिति के कारण वह प्रबल विरोधी दल के आगे निस्तेज सा ही प्रतीत होता है। बात भी बहुत कुछ वैसी ही है। क्योंकि अगले पाँच वर्ष तक अनुदार दल का पाया मज़बूत देख पड़ता है। मिस्टर बाल्डविन की सरकार के पदच्युत होने की सम्भावना नहीं देख पड़ती है। इससे मज़दूर-दल में निरुत्साह छा गया है। मिस्टर बाल्डविन के मन्त्रि-मण्डल में मिस्टर चर्चिल की उपस्थिति तथा मिस्टर होर्न की अनुपस्थिति पर लोग टीका-टिप्पणी करते हैं। पर मिस्टर चर्चिल तो सदा परिवर्तन-शील रहे हैं। उनका अनुदार दल में शामिल हो जाना वैसा आश्चर्य-जनक नहीं है। हाँ, मिस्टर होर्न का न होना सबको खट-कता है। तो भी अनुदार दल के मान्त्रिमण्डल में उत्साह की मात्रा अधिक देख पड़ी। इतने बहुमत के साथ वह बहुत दिनों के बाद पार्लियामेंट में आया है। इस विशाल प्रतिनिधि-समुदाय का निरीक्षण करते समय जब मेरी दृष्टि पारसी प्रतिनिधि मिस्टर सकलतवाला पर जा पड़ी तब मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा। ये पिछली पार्लियामेंट में भी थे और भारत-सम्बन्धी मामले उपस्थित करने के अवसर को ये अपने हाथ से कभी नहीं जाने देते थे।

अब तक की सारी कार्रवाइयों का प्रभाव किसी दर्शक की अपेक्षा नवनिर्वाचित प्रतिनिधि पर दूसरे ढङ्ग का पड़ता है। वह उसे अधिक सावधानी के साथ अनुभव करता है। क्योंकि अभी उसे वहाँ की अनेक बातें सीखनी हैं। अब तक जो दृश्य उसने देखे वे आये और गये। यदि उसने पहले कभी उनका अनुभव किया भी होगा तो हम लोगों की तरह दर्शकरूप से ही। पर अब तो प्रतिनिधि हो जाने के कारण वह द्रष्टा के पद से ऊँचे पहुँच गया है। अतएव उसका यह अनुभव छात्रा-नुरूप ही अनुभव होगा।

भवन में प्रवेश करते या बाहर जाने से प्रत्येक प्रति-निधि को स्पीकर का अभिवादन करना पड़ता है। इसके लिए उसे सिर्फ़ अपना सिर कुछ झुका देना पड़ता है। इस क्रिया की विधि जानने के लिए रँगरूट-प्रतिनिधि को पुराने अभ्यस्त प्रतिनिधियों के ढङ्ग पर निगाह रखनी और उनकी नक़ल करनी पड़ती है। नहीं तो, जहाँ ज़रा भी त्रुटि हुई कि प्रतिनिधि 'आर्डर आर्डर' चिल्ला उठे। ऐसा करने का ख़याल वे प्रतिनिधि अधिक रखते हैं जो त्रुटि करने पर पकड़े जा चुके हैं और उनके व्यवहार पर आर्डर आर्डर की बौछार की जा चुकी है। हैट लेने और बोलने के तरीक़े की भी शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। इसके सिवा भवन के भिन्न भिन्न भागों तथा उनके सम्बन्ध की बातों का भी ज्ञान आवश्यक है। नहीं तो उसे अपने दल के 'ह्विप' का दफ़्तर ही न ढूँढ़े मिलेगा। किसी भी प्रतिनिधि के लिए अपने ह्विप के दफ़्तर में आना-जाना आवश्यक है, यहीं भिन्न भिन्न दल की रहस्यपूर्ण मन्त्र-णायें होती हैं। यहाँ का पुस्तक-भवन और इसकी लिखने की सामग्री नवागन्तुक प्रतिनिधि के आनन्द की वस्तु है। जब वह यहाँ बैठ कर अपनी चिट्ठी लिखता है और उसमें 'हाउस आव् कामन्स' लिख कर तारीख़ डालता है तब उसके हृदय में एक अभूतपूर्व गर्व का भाव उदय होता है। पुस्तक-भवन के कर्मचारी बड़े सुजन होते हैं, उनका व्यव-हार आकर्षक होता है। धूम्रपान-भवन तथा अनेक भोजनगृह अपनी अलग प्रसिद्धि रखते हैं। भोजन-गृहों में सस्ता और गरम भोजन मिलता है, पर अच्छा नहीं होता। इसके सिवा परोसनेवालों का परोसने का ढङ्ग भी रुचिकर नहीं होता, वे परोसते नहीं, बल्कि भोजन उड़ेलते सा हैं। इन सभी बातों में उसे कुछ दिनों तक अभिमान का अनुभव होता है, क्योंकि वह अँगरेज़ी पार्लियामेंट का प्रतिनिधि निर्वाचित हुआ है, जो वास्तव में एक गौरव की बात है। परन्तु अपनी इस दशा में उसे अपने आस-पास के वायुमण्डल से भी सतर्क रहना पड़ेगा, अन्यथा उसका जीवन उसके लिए भार बन जायगा। उसे शीघ्र ही मालूम हो जायगा कि किन किन लोगों का समूह किस किस स्थान में आता-जाता और खाता-पीता रहता है। उसे इनमें से किसी एक में शामिल हो जाना चाहिए। पार्लियामेंट में दलबन्दी का ज़ोर है और उसका सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध पर भी प्रभाव पड़ता है। अतएव जो शिष्ट-व्यवहार देखने में आता है वह शिष्टाचार-मात्र होता है। यहाँ तक कि विरोधीदल के प्रतिनिधि अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

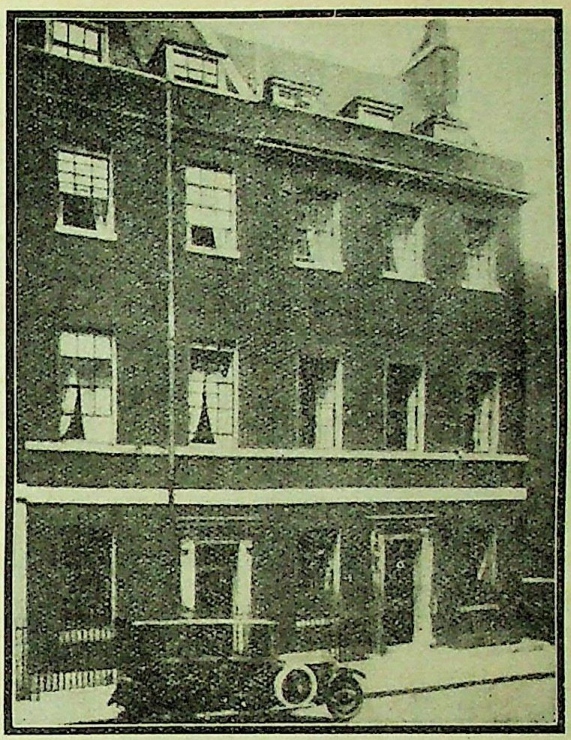

१० डाउनिंग स्ट्रीट । प्राइम मिनिस्टर का भवन ।

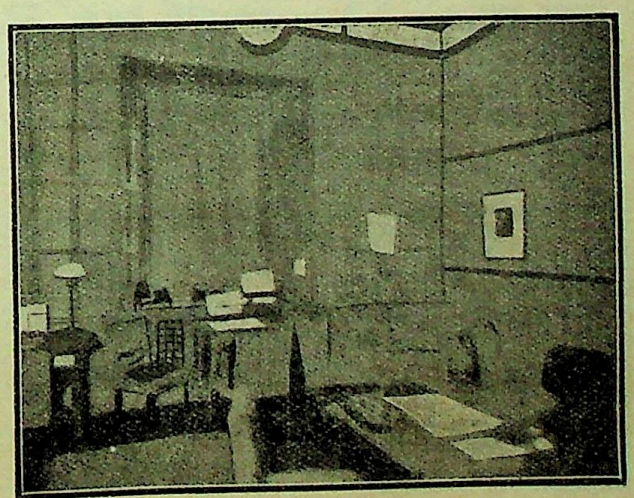

लेडी मेम्बरों का राइटिंग-रूम ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

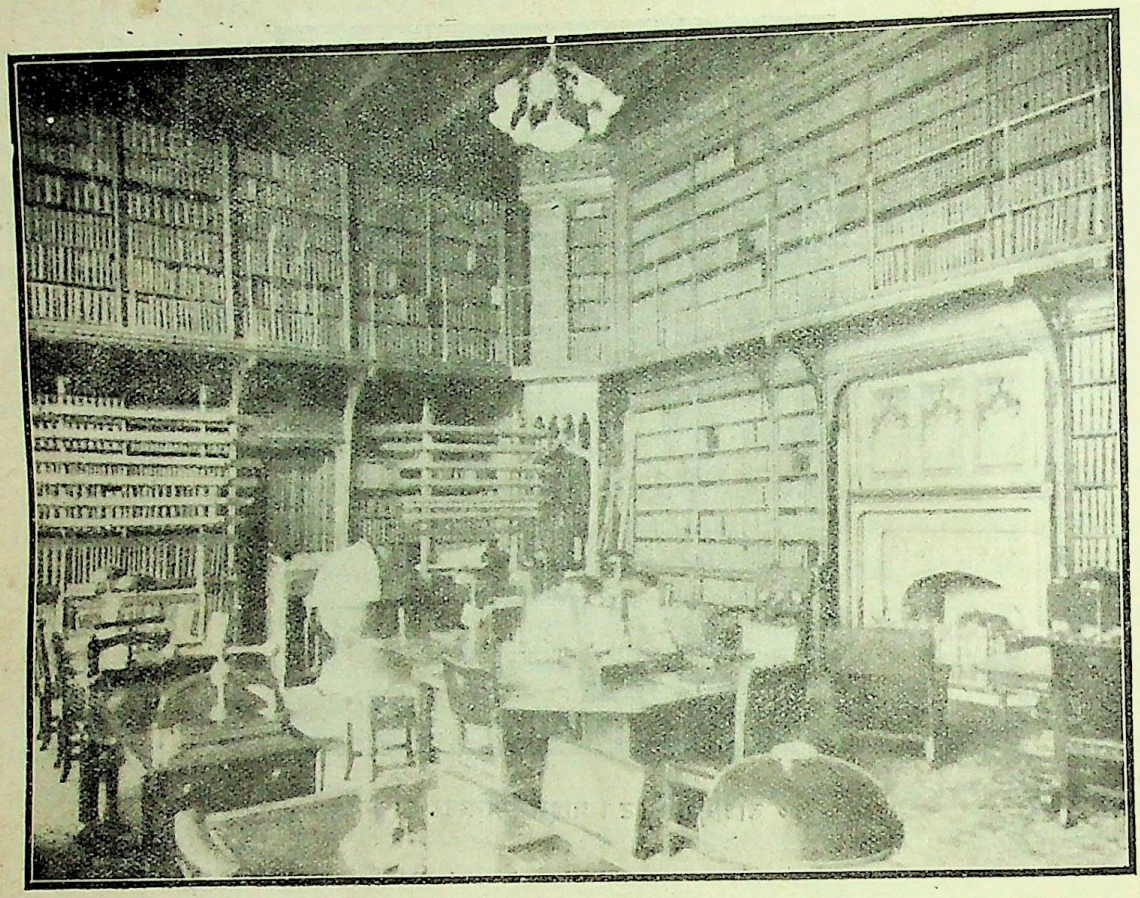

हाउस आव् कामन्स का पुस्तकालय।

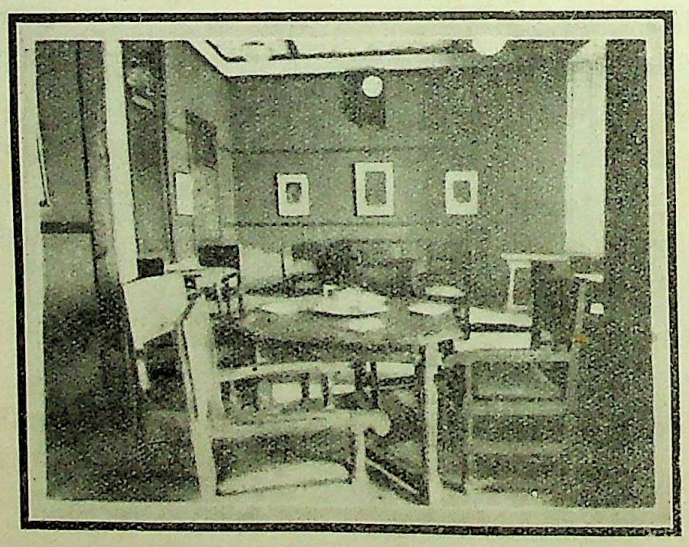

लेडी मेम्बरों का टी-रूम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपक्ष के दल के प्रतिनिधि का प्रेमपूर्वक स्वागत करते हैं। ऐसा शिष्ट व्यवहार पार्लियामेंट जैसी संस्था के लिए वाञ्छनीय भी है। परन्तु इस बाहरी शिष्टाचार के वायु-मण्डल में यदि किसी सदस्य का कोई मित्र हो सकता है तो या तो उसके दल का सदस्य या 'ए' विभाग का पुलिसमैन। वास्तव में ये पुलिसमैन दर्शकों के साथ भी सुजनता का व्यवहार करते हैं।

एक भारतीय

——

एकादशी।

(२)

अपनी स्वार्थ-सिद्धि में लगी रहने पर भी मुझसे लोगों का कुछ न कुछ उपकार हो ही जाया करता था। मेरी जीवन-लीला में यह एक विचित्र बात थी। तो भी मैं परोपकारी होने का दावा नहीं करती। संयोगवश ही मुझसे परोपकार का काम हो जाता था। पर जिस घटना का उल्लेख मैं यहाँ कर रही हूँ उसमें मैंने जान-बूझ कर ही भाग लिया था। वास्तव में बेचारे लालूराम से मेरी सहानुभूति हो गई थी। डाक्टर मेहता बड़ा निर्भीक आदमी था। और वह अपनी निर्भीकता का उपयोग स्वार्थ-साधन में दिल खोल कर किया करता था। जिस काम के करने में कुछ भी लाभ की सम्भावना होती उससे वह मुँह कभी नहीं मोड़ता था। तो भी वह सदा इसी प्रयत्न में लगा रहता कि लोग हमें ईमानदार ही समझते रहें। संसार में ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जो ऊपर से कुछ और भीतर से कुछ होते हैं। शरीर से वह दुबला-पतला था, पर डाक्टर होने से सफ़ाईपसन्द था। कपड़े-लत्ते भी हमपेशे जैसे पहना करता था। परन्तु मैं उसके सम्बन्ध में यहाँ अधिक लिखना नहीं चाहती, क्योंकि जिस घटना का उल्लेख मैं यहाँ कर रही हूँ उससे उसका विशेष सम्बन्ध नहीं है।

एक दिन डाक्टर मेहता ने मुझे अपने घर बुलाया। उसने अपने स्वाभाविक उजड्डपने से कहा—मैं तुमको एक बड़े लाभ का काम दे सकता हूँ। उससे हम दोनों के हाथ एक गहरी रक़म लग जायगी। वह काम सरल भी है। मैंने प्रसन्न होकर कहा—अच्छी बात है। बताओ तो, कौन सा काम है। उसने कहा—चोरी करनी है, पर चोरी से यह मतलब नहीं कि सेंध देनी होगी। मेरा मतलब उठा ले जाने से है। तुम्हें एक बच्चा उड़ा लाना होगा।

"बच्चा!" संसार भर की चीज़ों में बच्चों से मुझे सदा घृणा रही है। वे मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं। इसी लिए उसकी बात के समाप्त होने के पहले ही मैं चिल्ला पड़ी। शायद उसने भी पहले से ही अनुमान कर लिया था कि मैं उसकी बात अस्वीकार कर दूँगी। इसलिए मुझे कुछ कहने का अवसर न देकर वह अपनी बात कहता रहा—वह निरा गोदी का बच्चा नहीं है। दो वर्ष का हो चुका है। यदि उसकी मा राज़ी हो गई होती तो अब तक वह लाखों की सम्पत्ति का स्वामी होता। पर अभी तक वह राज़ी होती नज़र नहीं आती। यदि तुम उस लड़के को उड़ा दो तो वह तुरन्त मदरास भेज दिया जाय। उसके मदरास पहुँचने पर सब काम ठीक हो जयगा। और तब उसका हाल जानकर उसकी मा भी सन्तुष्ट हो जायगी।

बच्चे के पिता का नाम लालूराम था। मैं लालूराम को नहीं जानती थी। उसकी शादी हुए पाँच वर्ष हो गये थे। उसका जन्म एक कुलीन घर में हुआ था। उसका एक चाचा मदरास चला गया था। वहाँ वह चावल के व्यापार से थोड़े ही समय में लक्षाधीश हो गया था। उसका नाम मदनलाल था। यहाँ अहमदाबाद में नवयुवक लालूराम ने अपने पिता की राय के विरुद्ध एक सुन्दर कन्या पर मोहित होकर उसके साथ शादी कर ली थी। इससे उसके पिता ने नाराज़ होकर उसे अपने घर से निकाल दिया था और अपनी सारी जायदाद अपने भाई इच्छाराम के नाम लिख दी थी। उसने अपने पुत्र लालूराम को एक छदाम तक न दी। लालूराम के पास कुछ निज की पूँजी थी और कुछ ससुराल से भी मिली थी, जिसे उसने नई जवानी की उमङ्ग में कुछ ही दिनों में फूँक तापा।

लालूराम के दो पुत्र हुए थे। बड़े को उसके मदरासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाचा ने गोद ले लिया था। क्योंकि उसका एकमात्र पुत्र अपनी मा की मृत्यु के बाद ही समुद्र में डूब जाने से मर गया था और वृद्ध होने से उसने दूसरी शादी नहीं की थी। अतएव लालूराम के पुत्र को उसे लाचार होकर गोद लेना पड़ा था। क्योंकि वह भी अपने भाई की तरह लालूराम से कुछ सम्बन्ध न रखता था। वह कहता था कि जब तक तुम्हारी स्त्री तुम्हारे साथ है तब तक मैं तुमसे कुछ भी सरोकार नहीं रख सकता। गोद लेने के दो ही चार महीने पहले उसके इस दूसरे पुत्र का जन्म हुआ था। गोद की पक्की लिखा-पढ़ी हो गई थी। उसने लालूराम को माहवारी बन्धान बाँध दिया था। काफ़ी धन भी मिल गया था। अपने बड़े लड़के को एक भारी मिलकियत का अधिकारी होता देख कर उसकी स्त्री भी सन्तुष्ट थी। उस लड़के का नाम मदनलाल इच्छाराम रक्खा गया था। परन्तु दुर्भाग्य से मदन की हैज़े से मद्रास में हाल में ही मृत्यु हो गई। अतएव इच्छाराम को लालूराम के दूसरे पुत्र को गोद लेने की फिर आवश्यकता हुई है। इस बार वह लालूराम को एक भारी रक़म देने को तैयार है। इसके सिवा माहवारी बन्धान की रक़म भी बढ़ा देने को कहता है।

धन के लोभ के कारण लालूराम तो राज़ी हो गया है, पर उसकी स्त्री नहीं मानती। वह अपने एक-मात्र पुत्र को अपने से अलग तक नहीं करना चाहती, गोद देने की कौन कहे। उसने लालूराम से स्पष्ट कह दिया है कि आग लगे तुम्हारे लखपती चाचा की जायदाद में। मैं मज़दूरी करूँगी, भीख माँगूँगी, पर अपना बच्चा एक क्षण के लिए भी अपने पास से अलग न होने दूँगी।

जब इच्छाराम को लालूराम की स्त्री के निश्चय का हाल मालूम हुआ तब उसने पहले का बन्धान भी देना बन्द कर दिया। इससे लालूराम धनाभाव के कारण बड़े सङ्कट में पड़ गया है। धनी का पुत्र होने से उसका सारा समय अभी तक उठल्लूपन में ही बीता था। रोज़ी-धन्धे में लगने की ओर कभी ध्यान तक नहीं दिया था। तो भी उसने अपनी स्थिति का सामना वीरता से किया। शहर में एक महाजन की कोठी में उसे कुछ काम मिल गया। परन्तु वह अपना काम ठीक ठीक न कर सका। नौकरी कभी काहे को की थी। जब नौकरी छूट गई और जीविका का कोई सिलसिला न रह गया तब उसे अपना भविष्य अन्धकारमय देख पड़ने लगा। उसे अपने चाचा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने के सिवा और कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता था, पर इस बात में उसकी स्त्री बाधक थी और वह उसे रुष्ट करना नहीं चाहता था। वह अपनी स्त्री को बहुत प्रेम करता था। इसके सिवा धन के लोभ में अपने पुत्र को दूसरे को देकर वह अपनी स्त्री की निगाह में हलका भी नहीं जँचना चाहता था। उसके आगे बड़ी कठिन समस्या थी।

इसी परस्थिति में लालूराम ने डाक्टर मेहता से सहायता माँगी थी। वह मेहता के रङ्ग-ढङ्ग से वाकिफ़ था। वह जानता था कि रुपये के लोभ से मेहता सब कुछ करने को तैयार हो जाता है। वह चाहता था कि मेरा लड़का चुपचाप किसी हिकमत से उड़ा दिया जाय, पर यह न प्रकट हो कि उसमें मेरी साजिश है। बाद को देखा जायगा। जब लड़के के मदरास पहुँचने का हाल उसकी स्त्री को मालूम होगा तब तक उसका शोक भी कम पड़ जायगा और यह भी समझ जायगी कि जो हुआ वह अच्छा ही हुआ।

मेहता से सारा हाल सुन कर मैंने उस पर खूब विचार किया। अन्त में मैं तैयार हो गई। एक तो काम साधारण था, दूसरे लालूराम ने गहरी रक़म देने का वादा किया था। इसके सिवा यह बात भी थी कि लड़के को उड़ा देने से उसके तथा दूसरों के भी हक़ में सब प्रकार से लाभ ही लाभ था।

मैंने मेहता से कहा—बहुत अच्छा। मैं इस काम को करूँगी। पर यह तो बताओ कि लड़का उड़ाया कैसे जाय। क्या तुमने कोई तदबीर सोची है?

पर उसने कुछ भी उपाय न बताया। अतएव मुझे अपनी स्त्री-बुद्धि पर ही निर्भर करना पड़ा।

मैं इस काम को सरल समझे बैठी थी, पर वैसी बात नहीं थी। क्योंकि रमाबाई दिन-रात अपने लड़के को गले लगाये रहती थी। वह क्षण भर के लिए उसे अपनी निगाह से बाहर नहीं होने देती थी। वह किसी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास नहीं करती थी। यहाँ तक कि उसे खेलाने-कुदाने के लिए नौकरानी तक को छूने नहीं देती थी। ऐसी दशा में एक-मात्र उपाय यही था कि उसके हाथ से लड़का ज़बर्दस्ती छीन लिया जाय। पर यह बात लालूराम नहीं चाहता था। वह यह चाहता था कि लड़का मेरी अनुपस्थिति में ग़ायब कर दिया जाय। उसकी ख़बर मुझे तब हो जब मैं घर लौट आऊँ। बात यह थी कि वह अपनी प्रिय स्त्री को आवश्यकता से अधिक चोट पहुँचाना नहीं चाहता था। वह इस मामले में अपनी स्त्री का अपने ऊपर ज़रा भी सन्देह नहीं होने देना चाहता था।

मेहता ने मुझसे कहा—लो, मैं तुम्हारा मेहनताना तुम्हें पेशगी दिये देता हूँ। पर जितनी जल्दी हो सके तुम खैरा को रवाना हो जाओ। यहाँ मैं कोई ऐसी दाई ढूँढ़ रक्खूँगा जो उस लड़के को लेकर मदरास जाने को तैयार रहेगी। समझी। अगले शनिवार तक का समय तुम्हें दिया जाता है। उस दिन की डाक से लड़का अवश्य मदरास भेजा जाना चाहिए। अतएव तुम उस लड़के को शुक्र के दोपहर बाद ग़ायब कर दो, जिससे वह शनिवार की डाक-गाड़ी से मदरास भेज दिया जाय। हमें अपना काम करने के लिए इतना समय काफ़ी भी है। खैरा में लालूराम का घर गाँव के बाहर सड़क पर है और एकान्त स्थान में है। हाँ, एक प्रबन्ध यह भी हो सकता है। शुक्रवार को मैं मोटर से उधर एक मरीज़ देखने जाऊँगा। कहो तो उधर से ही होकर लौटूँ।

मुझे उसकी यह बात बहुत ठीक जँची। मोटर में कोई बच्चा चाहे कितना ही ज़ोर ज़ोर रोवे, पर किसी के कान में उसकी भनक तक न पड़ेगी। इसके सिवा मेरी ताक ही में कौन लगा होगा।

मैं दो दिन बाद खैरा गई और वहाँ की कन्या-पाठ-शाला की अध्यापिका के घर में जाकर ठहरी।

खैरा में लालूराम का अपना घर नहीं था। वहाँ उसकी ससुराल थी। शादी के बाद उसे कई हज़ार रुपये और एक मकान यहाँ मिला था। उसी मकान में वह अपनी ससुराल में रहता था। उसका मकान सड़क पर गाँव के बिलकुल बाहर था। मकान पुराने ढङ्ग का और टूटा-फूटा था, पर था पक्का। मकान के सामने एक छोटा बाग़ीचा भी था, पर उसकी दशा से यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि उसकी देख-रेख की कोई व्यवस्था नहीं है। घर से कुछ अन्तर पर एक सुन्दर झील भी देख पड़ती थी।

जिस दिन मैं खैरा पहुँची थी उसके दूसरे ही दिन मैंने रमाबाई से भेंट की। उस समय वह अपने घर के आँगन में एक पलँग पर पड़ी थी। मैं अपने मन में सोचने लगी कि अपने आने का क्या बहाना करूँ। परन्तु मुझे हीला-हवाला करने की कोई आवश्यकता ही न हुई। वह मेरी जान-पहचान की निकल आई। मुझे इस बात की कुछ भी आशा नहीं थी कि मुझसे उसका परिचय होगा। जब मैं राजकोट की कन्या-पाठशाला में अध्यापिका थी तब वह उस शाला में पढ़ती थी। मुझ पर उसकी निगाह पड़ते ही उसने मुझे पहचान लिया और तुरन्त उठ कर बड़े आदर के साथ बैठाया।

रमाबाई का क़द छोटा था। उसके भौंरे से काले काले बाल उसकी सुन्दरता को और भी बढ़ा रहे थे। वह सुकुमार बालिका लालूराम जैसे रसिक व्यक्ति को मुग्ध करने के लिए सर्वथा उपयुक्त थी।

हमारी मुलाक़ात अचानक हुई। अपने खैरा आने का मैंने बहाना कर दिया। कहा—मुझे देहात की सैर करने की बड़ी इच्छा थी। इसी से घूमती-घामती इधर आ निकली। उसने आश्चर्य से अपनी बड़ी बड़ी आँखों को मुझ पर गड़ा कर पूछा—आप जैसी शहराती पढ़ी-लिखी स्त्री को देहात में क्या आनन्द मिलेगा? कहाँ अहमदाबाद और कहाँ खैरा? मेरे लिए यहाँ रहना तो कोई बात नहीं। मैं तो देहात में ही पैदा हुई हूँ। ख़ैर, अच्छा ही हुआ। बहुत दिनों के बाद आपके दर्शन हुए हैं। क्या आज शाम को मेरे ही घर ब्यालू करने की आप कृपा करेंगी? मैंने उसका निमन्त्रण तुरन्त स्वीकार कर लिया। इस पर वह बड़ी प्रसन्न हुई।

अब रमाबाई दिल खोल कर अपनी बातें मुझसे करने लगी। उसने अपने विवाह का हाल बतलाया, अपने लड़कों का कच्चा चिट्ठा कहा। बड़े लड़के का हाल कहते समय वह रोने लगी थी। अन्त में उसने कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा घर पुराना हो गया है। हमारे पास अब धन भी नहीं रहा। जो कुछ था सब उन्होंने फूँक तापा। चचिया ससुरजी जो कुछ देते थे उसे भी उन्होंने हाल में बन्द कर दिया है। धनाभाव के कारण एक प्रकार से हम लोग सङ्कट में पड़ गये हैं। वे अहमदाबाद काम की खोज में गये हैं। यदि कोई सिलसिला जीविका का बैठ गया तो फिर हमारा काम चल निकलेगा।

मैंने पूछा—क्या तुम्हारा पति इस समय घर में नहीं है। उसने कहा—नहीं, वे अहमदाबाद गये हैं। आज ही कल में आनेवाले हैं। उसने यह बात उत्सुकता से कही। साथ ही उसके चेहरे के भाव ने यह प्रकट कर दिया कि वह अपने पति को कितना चाहती है। थोड़ी देर तक इधर-उधर की बात कर मैं उठ खड़ी हुई। वह मुझे घर के बाहर तक पहुँचाने आई। चलते समय शाम को आने की याद उसने फिर दिलाई।

सन्ध्या-समय मैं रमाबाई के घर गई। उसका पति दोपहर में ही अहमदाबाद से वापस आ गया था। पहुँचते ही उसने पहले मुझसे इसी बात की सूचना दी। उसने कहा—वे कहते थे आप वहाँ क्यों ठहरीं। जब तक खैरा में रहें यहीं आकर क्यों न रहें। अच्छा तो आप यहीं आ जायँ। कभी कभी मुझे अकेला रहना अखरता है। इधर जब तब उन्हें अहमदाबाद जाना पड़ा है। पर मुझे अब उतनी परवा नहीं है। मेरा बच्चा तो है। इससे मेरा समय मज़े में कट जाता है।

लालूराम को मेरा आना मालूम था। मेहता ने उससे सब बातें बता दी थीं। उसकी स्त्री के आग्रह से मैं उसके घर उठ आई। वहाँ आ जाने और लालूराम का रङ्ग-ढङ्ग देखने पर मुझे यह मालूम हुआ कि वह मन ही मन दुखी है। क्योंकि वह अपनी स्त्री के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहा था। उसके लिए उसके मन में कष्ट होना स्वाभाविक था। यह जान कर मुझे भी कुछ दुख हुआ। अपने अपराध के प्रायश्चित्त के रूप में वह अपनी स्त्री को और भी अधिक प्रेम करता समझ पड़ता था। कभी कभी ऐसा भी अवसर आ जाता जब वह भौचक्का सा होकर बैठा रहता और अपनी स्त्री से या मुझसे बोलता तक नहीं। उस समय मैं जान जाती कि उसे किस बात का दुःख है। वह सोचता कि जब मेरा पुत्र यहाँ से ग़ायब कर दिया जायगा तब घर में कैसी भयङ्कर दशा उपस्थित हो जायगी। मेरी समझ में वह मुझे घृणा से देखता, यद्यपि मैं वहाँ उसकी इच्छा से ही आई थी।

मुझे भी बड़ा दुःख था, क्योंकि रमाबाई मेरी सखी थी। यद्यपि इस परिचय से मुझे अपने काम के लिए पूरी सुविधा हो गई थी, तो भी विश्वासघात करने के विचार से मेरा मन बेचैन हो उठता था। मुझे ऐसा समझ पड़ता कि मैं रमाबाई की मृत्यु का उपक्रम कर रही हूँ। इन बातों को सोच सोच कर मेरा मन उस नीच काम के करने की गवाही नहीं देता था।

यदि मैं उसके घर में रह कर रमाबाई और उसके गुलाब के फूल जैसे सुन्दर बच्चे को प्रतिदिन न देखती रहती तो शायद मेरी ऐसी दशा न हुई होती। न तो मुझे इसी बात का अनुभव हुआ होता कि माता का प्रेम पुत्र पर कितना होता है और न यही जान सकती कि जो मैं करने जा रही हूँ वह हत्या करने के समान है। परन्तु उसके घर में आजाने से मैं दिन-रात दिल पिघला देनेवाले उन दोनों मा-बेटे के पारस्परिक प्रेम को देखती रहती। इसके सिवा मुझे यहाँ यह भी कह देना चाहिए कि मैं भी उस बच्चे को प्रेम करने लग गई थी। वास्तव में वह प्यारा लगनेवाला ही बच्चा था। देखते ही उसकी ओर मन अपने आप खिँच जाता था। हाल में ही दो एक टूटे-फूटे शब्द कहने और कुछ कुछ चलने-फिरने लगा था। सूर्योदय के बाद उसकी मा उसे घर के सामनेवाले अपने बाग़ में नित्य हवा खिलाने ले जाया करती। उस समय का दृश्य देख कर मेरा गला भर आता। मैं सोचने लगती कि मैं कैसा भयङ्कर काम करने जा रही हूँ। तो भी मैं उससे विरत हो जाने का कोई उपाय न सोचती थी।

बात की बात में शुक्रवार आ गया। बच्चे को उड़ा देने के लिए यही दिन नियत था। सब प्रबन्ध हो गया था। सड़क के पास एक एकान्त स्थान पर निश्चित समय में मोटर के भी आ जाने का इन्तिज़ाम हो गया था। उसे अहमदाबाद से मेहता का एक आदमी लाकर मेरी प्रतीक्षा करता था। मैंने उसके साथ खिलौने, मिठाई और एक बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुड़िया भी भेज देने की ताकीद पहले से ही कर दी थी। इसका प्रबन्ध इसलिए किया था कि राह में बच्चे का मन बहला रहे, वह रोवे नहीं।

सवेरा होते ही लालूराम उस दिन फिर अहमदाबाद चला गया। चलते समय उसके चेहरे का रङ्ग कितना उड़ा हुआ था, यह बात रमाबाई भी जान गई। वह उसे बहुत चाहती थी, उसने अपने मन में सोचा कि इन्हें जीविका की खोज में बड़ी परेशानी उठानी पड़ रही है। यह समझ कर उसने जाने से लालूराम को मना किया। पर नौकरी लगने की बात कह कर उसने चलने की तैयारी नहीं बन्द की। उस समय की सारी प्रक्रिया उसने किस कठिनाई से पूरी की इसका कुछ कुछ आभास कम से कम मुझे अवश्य हुआ, क्योंकि मुझे परिस्थिति का पूरा ज्ञान था।

रमाबाई को गृहस्थी के काम में अधिक व्यस्त देख कर मैंने कहा—लाओ, मैं तब तक बच्चे को बाहर ले जाकर खेलाऊँ-कुदाऊँ। तुम निश्चिन्त होकर काम-काज करो। बिना किसी तरह का मुझ पर सन्देह किये उसने अपने प्यारे पुत्र को मुझे सौंप दिया। जिस सरलभाव से उसने अपने प्यारे बच्चों को मुझे दिया था उसे देख कर मेरे हृदय को गहरी चोट पहुँची। मैंने अपने मन में कहा—निस्सन्देह मेरे समान दुष्ट प्राणी इस धरातल पर दूसरा न होगा।

मैंने लड़खड़ाती हुई आवाज़ से कहा—मैं इसे इधर-उधर बहला कर जल्द लौट आऊँगी। हद से हद बाग़ीचे तक जाऊँगी। और कहीं न ले जाऊँगी। मुझे ही अपनी आवाज़ बदली हुई मालूम हुई, पर उसको मुझ पर कुछ भी सन्देह न हुआ। प्रसन्नतासूचक ही उत्तर देकर वह अपने काम में लग गई।

जाड़े के दिन थे। धूप सुहावनी लगती थी। अभी दोपहर नहीं हुआ था। इधर-उधर ताक-झांक कर मैंने निश्चित स्थान की ओर अपने पैर बढ़ाये। बच्चा मेरी गोद में था ही—मेरा जल्दी जल्दी चलना शायद उसे अच्छा नहीं लगा। वह कुनमुनाने लगा।

मैंने धीरे से कहा—बेटा चल, मैं तुझे एक बड़ी सुन्दर गाड़ी पर चढ़ाऊँगी। वैसी गाड़ी तूने कभी न देखी होगी।

बच्चे ने अपनी तोतली बोली में कहा—हाँ! पर मा, क्या मा उस पर नहीं चढ़ेगी।

इतने में घर से कुछ दूर निकल गई। वहाँ से कुछ ही अन्तर पर मोटर तैयार खड़ा था। परन्तु न मालूम कि क्या बात हो गई। शायद बच्चे का 'मा' शब्द का उच्चारण करना हो। कह नहीं सकती कि मेरे मन पर किस बात का प्रभाव पड़ा। मैंने अपना इरादा छोड़ दिया, मुझे अपना काम करने की हिम्मत ही न हुई। मेरे पैर ही न आगे पड़े।

मैं बच्चे को लेकर तुरन्त लौट पड़ी। घर आकर मैंने उसे उसकी मा की गोद में दे दिया। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो मेरे सिर से कोई भारी बोझ उतर गया है। अब मैंने आराम से साँस ली।

जब मेरा दिल ठिकाने हुआ और मुझे घर से बाहर निकलने का मौक़ा मिला तब मैंने मोटर से खिलौने निकाल कर उसे वापस कर दिया। उन खिलौनों में एक बड़ा सुन्दर गुड्डा था। उसे किसी तरह कपड़ों में छिपा लिया। फिर मैंने मोटरवाले को मेहता के नाम एक चिट्ठी दे दी। मैंने उसे लिख दिया था कि मैं अपना काम नहीं कर सकी, इसी से वापस करती हूँ। मेरे हिम्मत हार जाने से अब नियत शनिवार को बच्चा मदरास न भेजा जा सकेगा, और रमाबाई अपने प्यारे बच्चे से वञ्चित हो जाने से बच गई। अब आगे क्या होगा, यह तो मैं नहीं कह सकती, पर मैं अब इस षड्यन्त्र में भाग नहीं लूँगी, यह निश्चित था।

मैंने रमाबाई से सब बातें खोल कर कह दीं और यह भी बता दिया कि तुम्हें अभी कैसी कठिनाइयों का सामना करना है। मेरा हाल जान कर वह मुझसे ज़रा भी रुष्ट न हुई, बरन मेरे गले से लग कर रोते रोते उसने कहा कि ऐसी दशा में तुम्हें छोड़ कर मेरा कोई मित्र नहीं है। उसकी बात सुन कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। वास्तव में उसका मामला टेढ़ा था और मैं उसकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकती थी। उसके लिए केवल दो ही बातें थीं। या तो वह अपने बच्चे का मोह छोड़ दे या भिक्षावृत्ति के लिए तैयार हो जाय।

उसने दुःख से कहा—अब मैं अपने बच्चे को ले कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ से चली जाऊँगी। और एक ऐसी जगह जा छिपूँगी जहाँ मुझे कोई न पा सकेगा। मेरे पास कुछ धन है। उससे कुछ समय तक मेरा काम चल जायगा। आगे भगवान् मालिक है।

बेचारी रमाबाई ने जो कहा उसे कर गुज़रने की हिम्मत उसमें थी। मुझे भी विश्वास हो गया कि वह मज़े में अपने पुत्र को लेकर निकल भागेगी।

उस रात को रमाबाई के घर में बड़ा भयङ्कर दृश्य उपस्थित हुआ। लालूराम शाम को लौट आया। वह उस दिन अहमदाबाद नहीं गया था। सारा दिन एक मित्र के घर काट कर लौट आया था। घर आने पर उसे मेरी असफलता मालूम हुई। मुझे रमाबाई ने जाने नहीं दिया था। मैं भी यह सोच कर न गई कि शायद मैं उसके किसी काम आ ही जाऊँ। मैं किसी पुरुष से डरनेवाली स्त्री नहीं थी। घबराये हुए लालूराम की टेढ़ी निगाह का मुझ पर रत्ती भर भी प्रभाव न पड़ा।

परन्तु उस दिन लालूराम ने अधिक साहस का परिचय दिया। अपनी स्त्री का रोषपूर्ण प्रतिवाद सुनने पर उसने लल्लोचप्पो से काम नहीं लिया। मुझे हट जाने को हाथ से इशारा कर उसने अपनी स्त्री को सम्बोधन करके कहा—अब लुकाने-छिपाने से कोई लाभ नहीं है। मैंने जो कुछ किया वह सब तुम्हारे लिए। अब काम चलता नहीं दीखता। मेरे पास एक टका नहीं है और बिना क़र्ज़ लिये अब गुज़र नहीं हो सकती। तेरा बच्चा लाखों की सम्पत्ति का अधिकारी होगा। तुम उसके भाग्योदय में क्यों बाधा देती हो। और रह गई बात हमारी-तुम्हारी सो मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूँगा। हम लोगों की भी काफ़ी आमदनी हो जायगी और हमारे भी दिन सुख से कट जायँगे। तुम बच्चे को जाने दो। अभी समय है। आज रात को मैं स्वयम् उसे अहमदाबाद ले जाऊँगा।

रमाबाई ने चिल्ला कर कहा—नहीं नहीं, तुम उसे नहीं छू सकते। तुमने मदन को अपने इच्छानुसार दिया लिया, पर यह बच्चा मेरा है, मेरे हृदय का लाल है। मैं इसे नहीं देने की। तुम्हारे चचा ने तुम्हें बुलाया है। मुझे छोड़ कर तुम मदरास जा और उसकी सम्पत्ति के अधिकारी बन सकते हो। तुम्हारा इस प्रकार चले जाना मुझको मंज़ूर है। पर मैं अपना बच्चा किसी को नहीं देने की और न किसी के धन की ही मुझे भूख है। मैं इस संसार में अपने बच्चे को छोड़ कर और कुछ नहीं चाहती।

पति-पत्नी का यह विवाद दुःखदायी था। वे दोनों आड़ में परस्पर झगड़ रहे थे। बच्चा दालान में पड़ा सो रहा था। जब लालूराम की बातों का कुछ असर न हुआ तब वह आपे से बाहर हो गया, जैसा कि ऐसी दशा में निर्बल पुरुष प्रायः किया करते हैं। उसने निश्चय कर लिया था और अपने निश्चय को कार्य में परिणत करने को वह तैयार था। उसने रोष में आकर कहा—बच्चा मेरा है। मैं उसका चाहे जो करूँ, किसी को बीच में बोलने का कोई अधिकार नहीं है। उसके निश्चय को जान कर रमाबाई चिल्ला उठी। उसने भी कड़क कर कहा—मैं अपनी भी जान दे दूँगी और साथ ही अपने प्यारे बच्चे को भी मार डालूँगी। पर उसे अपने से अलग न होने दूँगी। जब उन दोनों में इस प्रकार कहा-सुनी हो रही थी तब मैं चुपके से उस दालान से खिसक कर दूसरी ओर चली गई थी। मैं क्या कर सकती थी। मैं ही तो इस झगड़े का कारण थी। खड़ी खड़ी देखने के सिवा मेरे लिए कोई उपाय नहीं था।

लगभग एक घण्टा बाद मेरे कमरे के दरवाज़े पर ज़ोर का धक्का हुआ। मैं जानती थी कि लालूराम बच्चे को ले जाने की तैयारी कर रहा है। घर के बाहर की खटक से मुझे मालूम हो गया था कि उसकी गाड़ी दरवाज़े पर आ गई है। उस समय रमाबाई क्या कर रही थी, यह मैं न जान सकी। उसका कमरा मेरे कमरे से कुछ दूर भी था।

धक्के के साथ ही मैंने दरवाज़ा खोल दिया, देखा कि लालूराम खड़ा काँप रहा है। मैंने पूछा—क्या मामला है? उसने कहा—वह कहाँ गई? मैं गाड़ी के इन्तिज़ाम के लिए बाहर गया था। लौट कर देखा, वह नहीं है। मैंने घर भर ढूँढ़ डाला। इसके सिवा बच्चा भी ग़ायब है। वे दोनों कहाँ गये? यह कह कर उसने मेरी कलाई ज़ोर से पकड़ ली और कहा—सारे बखेड़े की जड़ तुम्हीं हो। बताओ, वे कहाँ गये।

मैंने अपना हाथ झिटक कर छुड़ा लिया। सहसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशङ्क के कारण मैं उद्विग्न हो गई। मैंने कहा—झील देखो! तुम्हारी स्त्री ने क्या कहा था? उसने कहा था, मैं खुद मर जाऊँगी और बच्चे को भी मार डालूँगी। कहीं वह झील में डूब मरने को तो नहीं गई।

इसके बाद किसी ने कुछ नहीं कहा। मैं भी उसके साथ तुरन्त झील की ओर झपटी। उसका एक नौकर भी उसके साथ था। झील मकान के समीप ही थी, अतएव हम शीघ्र ही जा पहुँचे और बिलकुल ठीक समय में।

रमाबाई झील के भीतर जाँघ तक गहरे पानी में पहुँच गई थी, और टटोलती हुई बीच की ओर, जहाँ एक बहुत गहरा कुण्ड था, जा रही थी। मैंने उसके पति से कहा—जल्दी करो जल्दी। पर वह भौंचक सा खड़ा का खड़ा ही रहा। मैंने फिर कहा—देखते नहीं कि दो चार क़दम के बाद छुट्टी है। इतने पर भी वह न टसका। उसने कहा—बच्चा कहाँ गया? उसने उसका क्या किया?

लालूराम को एक ओर ढकेल कर मैं पानी में धँस पड़ी। गहरे कुण्ड में वह पहुँचनेवाली ही थी कि मैंने उसे जा दबोचा। अपनी पूरी ताक़त लगा कर मैं उसे किनारे को घसीट लाई। वह बेचारी उस समय पागल सी हो गई थी। उसके सुन्दर बाल खुल कर सिर पर छा गये थे। उसकी आँखें देख कर डर लगता था। किनारे की ओर खींचते समय वह मुझसे हाथा-बाही सी करने लगी थी। उसने चिल्ला कर कहा—मुझे जाने दो। बस, अब मैं डूब मरना ही चाहती हूँ।

लालूराम ने ज़ोर से एक बार फिर पूछा—बच्चा कहाँ गया? वह बहुत घबरा गया था और अपने को सँभाल नहीं सकता था।

रमाबाई एक विचित्र ढङ्ग से हँस पड़ी। किनारे के समीप उथले पानी में पड़े हुए सफ़ेद कपड़ों से ढके हुए एक पुलिन्दे की ओर इशारा करके उसने ज़ोर से कहा—वहाँ देखो। मैंने अपने प्यारे लाल को मार डाला है और अब मैं खुद भी डूब मरूँगी। यह कह कर वह बेहोश हो गई। उस दशा में मैं उसे मुश्किल से किनारे पर ला सकी।

उधर जब लालूराम 'बच्चा' 'बच्चा' कह कर चिल्लाने लगा तब उसके साथ का आदमी झपट कर पानी से पुलिन्दे को बाहर निकाल लाया और किनारे पर रख दिया। लालूराम उसके पास बैठ कर हाय हाय करने लगा। इस समय मैं रमाबाई को सँभालने में लगी थी। परन्तु उस भयङ्कर स्थिति में भी मेरे ओठों पर एक हलकी मुस्कराहट दौड़ ही गई। मैंने अपने मन में कहा—मुझे रमाबाई की देख-रेख करने की ज़रूरत है, उस पुलिन्दे की नहीं। लालूराम को अपना किया भुगतना चाहिए।

लालूराम के साथ के आदमी ने पुलिन्दे के ऊपर के कपड़े को खोल डाला था और उसके ऊपर झुक कर वह ग़ौर से उसे देख रहा था। मोम के बने हुए चेहरे और सिर पर घुँघराले बालों को देखकर उसने कहा—क्यों साहब, यह क्या मामला है? मेरी तो समझ में ही कुछ नहीं आता। भगवान् कुशल करे। यह तो लड़का नहीं है। यह तो एक मोम का गुड्डा है।

अब मुझे अपनी हँसी छिपाने की कुछ भी आवश्यकता न रही।

जब लालूराम मेरे कमरे में आया था तभी मैं मामले को समझ गई थी। अतएव मुझे केवल रमाबाई की चिन्ता थी। इस रहस्य का विवरण स्वयम् ही स्पष्ट है। उस गुड्डे को, जो बहुत सुन्दर था और ठीक उस बच्चे के ही क़द का था, मैंने उन दूसरों खिलौनों के साथ ख़रीदा था जिनको लेकर मैं वहाँ आई थी। मैंने सोचा था कि जब मैं उस लड़के को ले भागूँगी तब ये खिलौने लड़के का मन बहलाने में काम देंगे। गुड्डे को बच्चे से मिलता-जुलता देखकर मुझे स्वयम् आश्चर्य हुआ था। जब पति-पत्नी में कहा-सुनी होने लगी थी तभी मैंने समझ लिया था कि आज बच्चे की कुशल नहीं है। यदि वह अपने पिता के हाथ पड़ जायगा तो वह उसे मदरास ले भागेगा और यदि माता के ही हाथ रहेगा तो न मालूम वह क्या कर बैठे। अतएव जब मैं उन दोनों को कमरे में झगड़ते छोड़ कर बाहर निकल आई थी तब मैंने एक कार्रवाई की थी। अपने कमरे में जाकर मैं गुड्डे को ले आई और उसे बच्चे के स्थान में कपड़े से ख़ूब अच्छी तरह लपेट कर रख दिया, फिर बच्चे को अपने कमरे में लाकर जैसा का तैसा सुला दिया।

यह काम मैंने केवल हँसी की ही प्रेरणा से किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने सोचा कि जब लालूराम उसे मदरास ले जाने को उसके कमरे में जायगा तब वह अँधेरे में गुड्डे को शीघ्रता के कारण बच्चा ही समझ कर ले जायगा। धोखा दिये जाने का उसे सन्देह तक न होगा। परन्तु हुआ इसके विपरीत। जब लालूराम गाड़ी लाने बाहर गया तब मौक़ा पाकर रमाबाई ही उसे और अच्छी तरह कपड़े से लपेट-लपाट कर झील में डूब मरने को ले भागी।

ईश्वर की कृपा से वास्तविक हानि किसी की न हुई। इसके सिवा फल यह हुआ कि लालूराम अपनी स्त्री को और अधिक प्रेम करने लगा। क्या वह अपनी स्त्री तथा बच्चे की मृत्यु का कारण नहीं हो गया था? मेरे हँसी की भावना से क्या बच्चा डूबने से नहीं बचा। यह भी एक बात हुई कि लालूराम ने उसे मदरास भेजने के विचार को भी छोड़ दिया।

इस घटना के कुछ दिन बाद लालूराम को एक कारख़ाने में नौकरी मिल गई। कुछ दिन तक कष्ट झेलने के बाद उसकी दशा सुधर गई। इसके सिवा उसका चचा भी उनकी सहायता पूर्ववत् फिर करने लग गया।

भारद्वाज

भगवान् ईसामसीह की छाया में।

"There is a plant grows in the soil of pain,
Guess ye its name? that drinketh tears for rain
And climbs most swiftly skywards when the rays
Of separation's sun all fiercely blaze
There is the potion can you name it true?
At taste whereof dead men gain life anew,
Dumb lips break forth in music past compare
And blind eyes ope on visions wondrous fair,
There is a spell so strange—guess yet again
It drives men frenzied though in heart most sane;
Its mystic wisdom knows nor "thou" nor "I"
And he who plumbs its secret scales the sky.
Guess ye my riddle! What is this so fair
That where it blossoms, God is always there?"

N. V. Tilak.

सच्चे धर्म का तत्त्व प्रेम है। ईश्वर प्रेम ही है। ईसामसीह मनुष्यरूप में संसार को प्रेमरूपी ईश्वर का दर्शन कराने के लिए प्रकट हुए। आओ क्षण भर के लिए हम उनके जीवनचरित पर विचार करें। उनका संक्षिप्त वर्णन सुसमाचार नामक चारों ग्रन्थों में दिया गया है। अपनी सामाजिक सेवा के कार्य-काल के केवल तीन वर्षों के भीतर ईश्वर के प्रेम को उन्होंने किस प्रकार प्रकट किया, यह बात उनके नित्य के सम्भाषण, उनकी नम्रता तथा दयालुता, उनके निर्मल तथा उदार कार्यों और अन्त में दूसरों के लिए अपने प्राण न्योछावर कर देने से प्रकट होती है।

भगवान् ईसा छोटे बच्चों को बहुत प्यार करते थे। एक बार उनके शिष्यों ने बच्चों को उनके पास आने से भगा ही दिया था, परन्तु प्रेम तथा दया के भाव से डाँट कर उन्होंने कहा—"छोटे बच्चों को मेरे पास आने दो। उन्हें मत रोको। क्योंकि स्वर्ग का राज्य ऐसों ही के लिए है"। एक समय जब उनके शिष्यों में आपस में इस बात का झगड़ा होने लगा कि हममें से कौन श्रेष्ठ है तब एक छोटे बच्चे को लेकर और उसे उनके बीच में बिठाकर उन्होंने कहा, "जो कोई इस छोटे बच्चे के समान अपने को दीन बना लेगा वही स्वर्ग के राज्य में सबसे बड़ा गिना जायगा। और जो ऐसे किसी छोटे बच्चे को मेरे नाम से स्वीकार करेगा वह मानो मुझे प्राप्त करेगा।" उनका हृदय एक प्रेमी विश्वासी बच्चे के हृदय के समान था, वे अपने पिता के हाथ में अपना हाथ पकड़ाने में ही आनन्दित थे। इसीलिए जो लोग उनको प्रेम तथा सत्कार करते हैं वे उसके छोटे बच्चों पर भी प्रेम रखते हैं और उन्हें पढ़ाने-लिखाने तथा शिक्षा देने में प्रसन्न होते हैं। इसी कारण संसार भर में छोटे बच्चे उनके नाम से प्रेम करते हैं। उनका स्पष्ट दर्शन, जो बूढ़े और बुद्धिमानों को दुर्लभ है, उन्हें प्राप्त है। छोटे बच्चे उन्हें अपना प्रेमी समझते हैं। उन्होंने कहा—"स्वर्ग का राज्य इन्हीं सरीखों का है।" यह कहकर उन्होंने छोटे बच्चों को अपनी गोद में लेकर आशीर्वाद दिया। इससे हम जानते हैं कि जगदीश्वर को छोटे बच्चों और उनका जैसा हृदय रखनेवालों से विशेष प्रेम है। ये उसको अत्यन्त शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं और अत्यधिक शुद्ध हृदय से प्रेम करते हैं—

"निर्मल मन जन सो मोंहि पावा।
... ...
तुम सारिखे संत प्रिय मोरे।
धरहुँ देह नहिं आन निहोरे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसामसीह विश्व-मात्र की मैत्री से आनन्दित होते थे। किसी गाँव में एक भाई और दो बहनों के घर में उन्हें प्रायः अतिथि-सत्कार मिला करता था। न तो उनका कोई निश्चित घर था और न कोई आमदनी ही थी। उनका निवास मनुष्यों के हृदयों में था और ईश्वर की इच्छा पर चलना ही आहार था। बड़े बड़े लोग उनसे एकान्त में भेंट करने की चेष्टा में रहते थे और साधारण लोगों का समूह तो उनको सारे दिन घेरे रहता था। एक समय जब वे उपदेश कर रहे थे तब उनके पास यह सन्देश आया, "देखो, तेरी मा और भाई बाहर खड़े हुए हैं, और तुझसे बातचीत किया चाहते हैं"। प्रेम की उमङ्ग में आकर उन्होंने उत्तर दिया, "मेरी मा कौन और कौन मेरे भाई हैं? जो कोई मेरे स्वर्गीय पिता की आज्ञा का पालन करते हैं वही मेरे भाई और बहन और मा हैं।" उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है। आज भी वे मैत्री के लिए लोलुप रहते हैं। उन्होंने कहा है, "देखो, मैं द्वार पर खड़ा हुआ दरवाज़ा खटखटाता हूँ। यदि कोई मनुष्य मेरा शब्द सुनकर दरवाज़ा खोल देगा तो मैं उसके पास आऊँगा।" वे हमारी मानवीय मैत्रियों को भी आशीर्वाद देते हैं। परन्तु डेमन और पिथियास की विचित्र कहानी के प्राचीन राजा डायनीसियस की भाँति वे कहते हैं—"अब से तीन मित्र हों—तू, तू, और मैं"।

ईसामसीह।

ईसा का प्रेम सार्वजनिक और स्वेच्छापूर्वक था। एक बार एक अत्यन्त श्री-सम्पन्न सुन्दर नवयुवक उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास आया और प्रणाम करके पूछा, "हे स्वामिन्! मैं कौन ऐसा काम करूँ जिससे अनन्त जीवन का अधिकारी बनूँ।" ईसा ने उसे प्रेम की दृष्टि से देखा और उस युवक की त्रुटि पहचान तथा धन के प्रभाव

मूक आह्वान।

में उसकी आत्मा दबी देखकर उन्होंने गम्भीरता से कहा, "जा! जो कुछ तेरे पास है सब बेच कर ग़रीबों को दे आ और फिर मेरे साथ हो ले।" वे प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त करने योग्य समझते थे, वे उसे एक ऐसा रत्न समझते थे जिसे सुधार कर ईश्वर के मुकुट में स्थान दिया जाय। क्या कोई सच्ची माता सभी छोटे बच्चों को प्यार नहीं करती? उसी प्रेम के कारण जो उसी के बच्चों ने उसमें उत्पन्न किया है उसकी सहानुभूति प्रत्येक बच्चे से हो जाती है। इसलिए जिन लोगों के जीवन पर उसके प्रेम के प्रकाश की झलक पड़ी है उनके चरित इस बात को सिद्ध करते हैं कि सभी मनुष्य प्रेम के पात्र हैं चाहे वे किसी भी स्थिति या जाति या राष्ट्र के हों।

प्रेम की भाषा किसी प्रयत्न या अध्ययन का फल नहीं है। वह तो ईश्वर की सन्तान-मात्र की मातृभाषा है। ईसामसीह ने, जो स्वयम् केवल तीस वर्ष के थे एक पीड़ित मनुष्य से कहा था, "बेटा, धैर्य को धारण करो"। इसी प्रकार एक व्याधिग्रस्त और पीड़ित स्त्री से कहा था—"बेटी, धीरज धरो"। उनका सरल प्रेम इतना पिता-सदृश था कि किसी को वैसा कहना असङ्गत नहीं लगा। प्रेम के ही कारण उन्होंने दुखियों के साथ साथ दुःख भोगा। जब एक कोढ़ी यह कहता हुआ उनके पास आया कि "प्रभु, यदि तू चाहे तो मैं नीरोग हो सकता हूँ" तब उन्होंने उसे केवल चङ्गा ही नहीं किया, किन्तु अपना हाथ बढ़ाकर उसे स्पर्श किया—उसके उस घृणित शरीर को स्पर्श किया जिसे देखकर दूसरे लोग मुँह फेर लेते थे। प्रेम के स्पर्श से केवल उसके शरीर की ही रक्षा नहीं हुई, किन्तु उससे अधिक मूल्यवान् आत्मा की भी रक्षा हो गई। हृदय में ईश्वर के प्रेम की स्थिति से स्वाभाविक घृणा लुप्त हो जाती है। इस बात को वे लोग सिद्ध कर रहे हैं जो ईसा के नाम पर भारत भर के कोढ़ियों के लिए चिन्तित रहते हैं।

ईसा का प्रेम सरलता से पूर्ण था। एक बार उन्होंने अपने शिष्यों के चरण धोये थे। उनके शिष्य अब आपस में एक दूसरे के चरण धोयँगे, भारतमाता के चरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

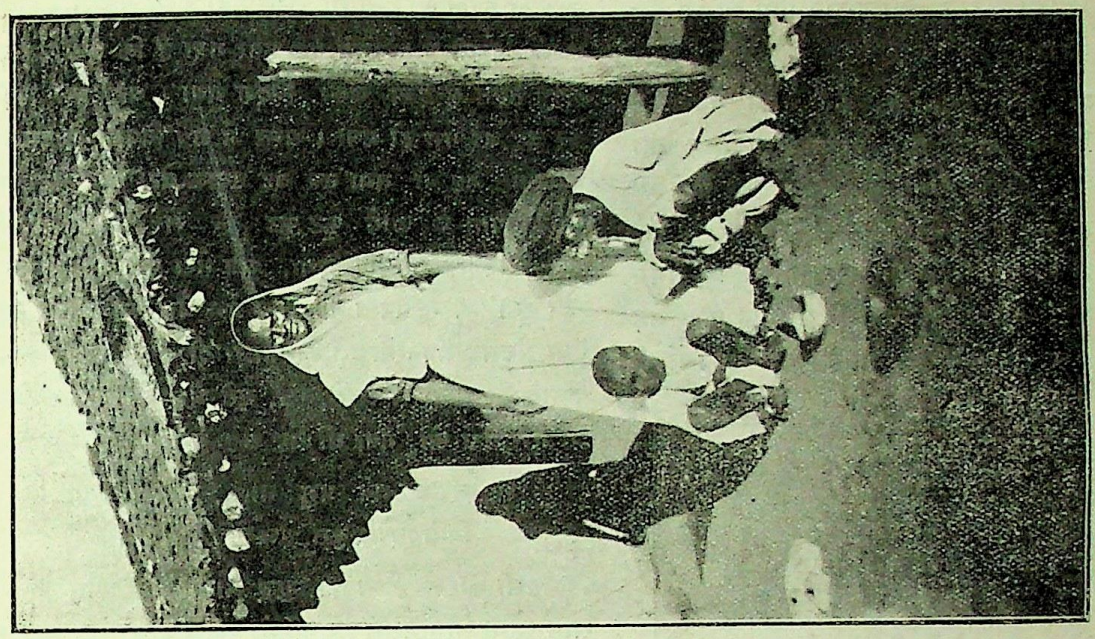

घाव धोना हमारा काम है, नीरोग करना ईश्वर का ।

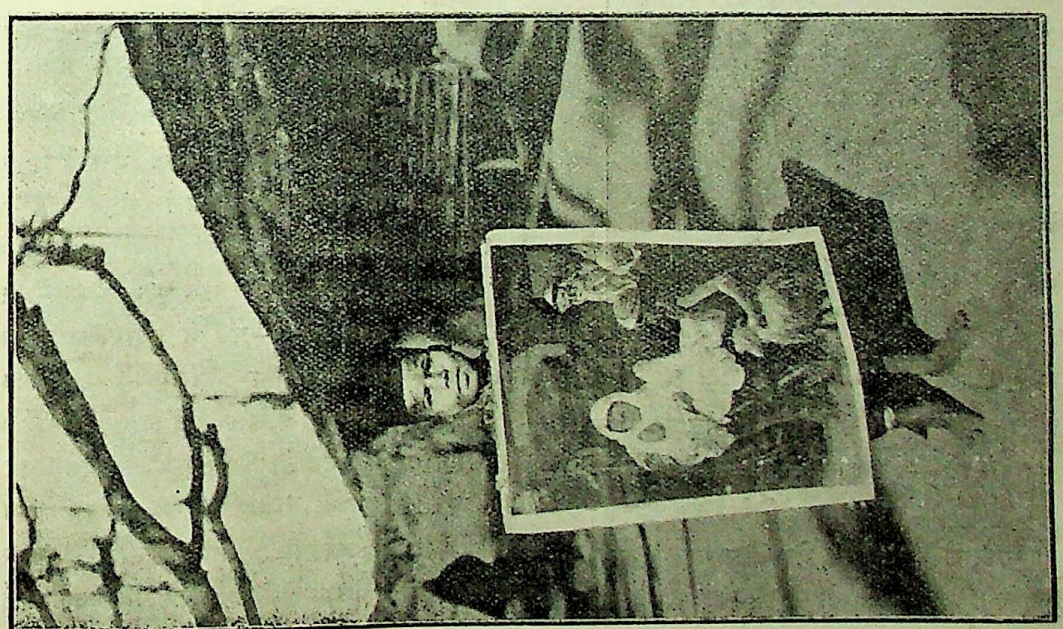

दिव्य-दर्शन ।

So Love itself in human form,
For love of me, He came.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोयँगे और यहाँ परब्रह्म के भाग्य-हीन पुत्रों की आध्यात्मिक शुद्धि करेंगे।

कितने ही लोग ईसामसीह को उनकी महत्ता न समझने के कारण नीचों और पापियों का मित्र कहा करते थे। और इसमें सन्देह भी नहीं है कि वे थे भी ऐसे ही। इसी बात को समझाने के लिए उन्होंने एक बार तीन कहानियाँ कही थीं। एक बार उन्होंने कहा—तुममें से ऐसा कौन है जिसकी सौ भेड़ों में से यदि एक भेड़ खो जाय तो उसी एक के पीछे निन्नानवे को जङ्गल में ही

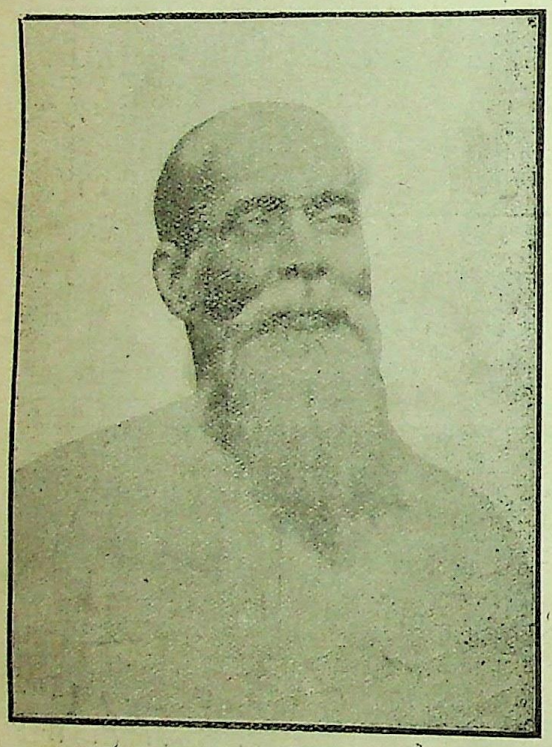

नारायण वामन तिलक।

छोड़ कर न चला जाय? किसी की खोई हुई भेड़ जब मिल जाती है तब वह उसे आनन्दित होकर अपने कन्धे पर लाद कर घर ले आता है और अपने पड़ोसियों को बुलाकर कहता है, देखो भाई, मेरी खोई हुई भेड़ मिल गई।" इसी तरह यदि किसी स्त्री के दस रुपयों में से एक रुपया खो जाय तो चिराग़ लेकर वह उसे घर के कोने कोने में ढूँढ़ती है। जब उसका रुपया उसे मिल जाता है तब वह अपनी सहेलियों से कहती है, "कैसी ख़ुशी की बात है कि मेरा जो रुपया खो गया था, मिल गया है।" तीसरी कहानी सबसे अच्छी है। उसमें यह कहा गया है कि एक लड़का अपने पिता से द्रव्य लेकर विदेश गया। वहाँ धन उड़ा कर वह बदनाम हो गया। अन्त में जब विपत्ति से उसका अभिमान नष्ट हो गया तब वह उड़ाऊ बेटा घर लौट कर अपने पिता के आगे फूट फूट कर रोने लगा। उसने कहा, "पिता, मैंने पाप किया, अब तेरा पुत्र कहाने योग्य नहीं हूँ।" परन्तु पिता का हृदय प्रेम और आनन्द से भर गया। उसने अपने नौकरों को आज्ञा दी, "मेरे बेटे के लिए पहनने को अच्छे से अच्छे वस्त्र, जूते और अँगूठी ला दो। जो मेरा बेटा खो गया था वह अब मुझे मिल गया है।

शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा
विश्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा।

इसी कारण ईसा की शुद्ध आत्मा दुष्ट पापियों के साथ रहती थी, जिससे मनुष्यों को पाप का ज्ञान हो जाय। क्योंकि पाप के ही कारण मनुष्य ईश्वर से पृथक् रहता है। ईश्वर की दृष्टि में मनुष्य का मूल्य कम नहीं है। और पश्चात्ताप का भाव उदित होने पर ही मनुष्य का हृदय स्वर्गीय आनन्द से पूर्ण होता है।

संसार में ही नहीं, इसी देश में ऐसे कितने ही मनुष्य होंगे जो पतित थे और जिन्हें ईश्वरीय प्रेम ने शुद्ध और पवित्र बना दिया। ईसा खोये हुओं को ढूँढ़ने और बचाने आये। इसी कारण जो उनके भक्त हैं वे पतित और अधम लोगों की खोज में फिरते रहते हैं।

ईसा के जीवन-चरित लेखकों में से एक का कथन है, "आत्मा पर प्रेम करने के कारण वे मनुष्य-मात्र को अन्त तक प्रेम करते रहे"—प्रेम है क्या चीज़? प्रेम तो त्याग है। पतितों और दीनों के लिए ही उन्होंने अपना जीवन दान कर दिया। प्राण त्यागते त्यागते उन्होंने अपने ऊपर अत्याचार करनेवालों के लिए भी प्रार्थना की कि "पिता, इन्हें क्षमा कर।" यही प्रेम की अन्तिम सीमा है। यही प्रेम की वह ज्वाला है जो मानवीय अहङ्कार को भस्म कर देती है। यह प्रेम की वह उज्ज्वल ज्योति है जो रूखे से रूखे हृदय में अपना प्रकाश फैलाती है। प्रेम की वशीकरण शक्ति के विषय में अनेक सच्ची कहानियाँ कही गई हैं। पुराने समय में एक बार एक मनुष्य को किसी बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

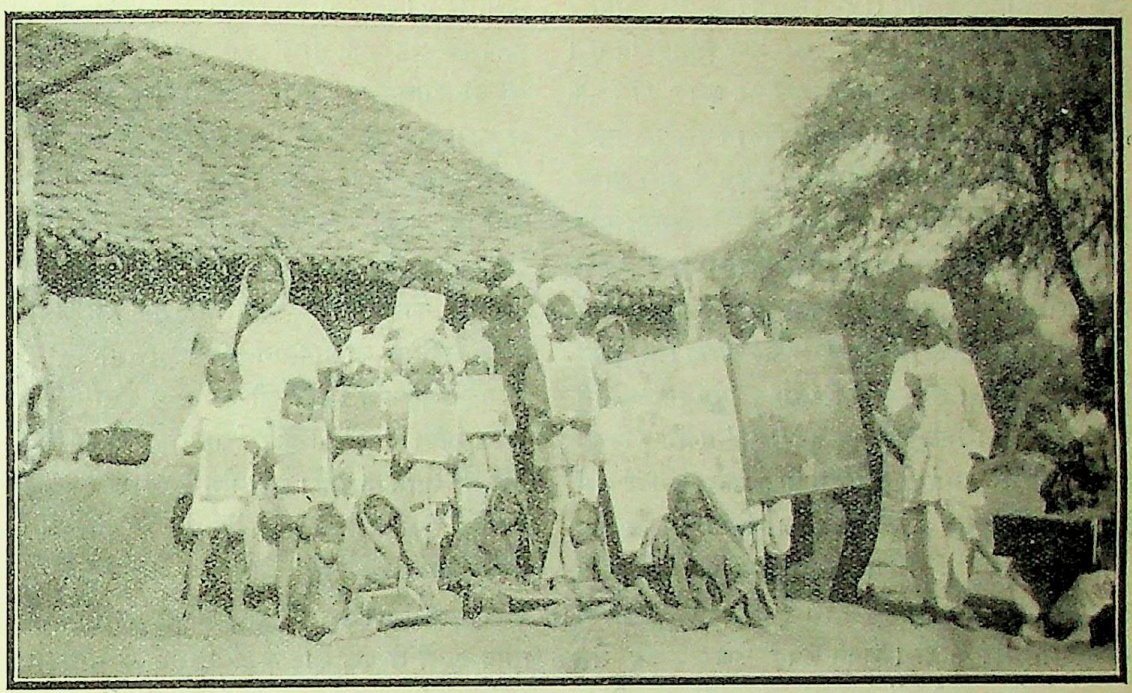

बालकों को मेरे पास आने दो।

ईश्वर का राज्य ऐसों का ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगर के क़ब्रस्तान के समीप से निकलने का अवसर आया। उसे किसी के फूट फूट कर रोने का शब्द सुनाई दिया। इधर-उधर दृष्टि डालने के बाद उसे एक नई क़ब्र के पास एक नवयुवक विलाप करता हुआ दिखाई दिया। इस पर उसको उस लड़के के ऊपर दया आ गई। उसने लड़के के पास जाकर पूछा, "क्यों भैया, क्या तुम अपने पिता के लिए इतना शोक कर रहे हो?" लड़के ने अपना सिर हिला कर 'न' कह दिया। उसने फिर पूछा—"तो क्या तुम्हारी प्यारी माता को यहाँ क़ब्र दी गई है?" लड़के ने फिर अपना सिर हिला कर 'न' कह दिया। तब उसने पूछा—"तो क्या किसी प्यारी बहन अथवा मित्र की मृत्यु हुई है?" इस पर लड़के ने अपना सिर उठा कर रोते रोते इस प्रकार कहा—"कल मैं अकेला नदी में स्नान करने गया था। किसी कारण मेरा पैर फ़िसल गया। नदी के प्रबल प्रवाह में पड़ जाने से मैं अथाह पानी में जाकर डूबने लगा। इतने में ही एक अनजान आदमी वहाँ आया। अपने कपड़े फेंक कर वह मेरी सहायता के लिए नदी में कूद पड़ा। उसने बड़े परिश्रम से मुझे तो गहरे स्थान से बाहर कर दिया, परन्तु थक जाने के कारण स्वयं न निकल सका और डूब गया।" इतना कह कर वह लड़का फिर फूट फूट कर रोने लगा। वह बार बार कहता जाता था, "हाय, उसने मेरे लिए अपनी जान दे दी।"

ईसा का प्रेम केवल एक सुन्दर सिद्धान्त अथवा उदाहरण ही नहीं है। वह एक जीवित प्रबल शक्ति है जो जीवन और स्वभाव में विलक्षण परिवर्तन कर देती है। उनका प्रेम कुटुम्बी जनों, मित्रों और देश के स्वाभाविक प्रेम को बढ़ाता और शुद्ध करता है। उनका प्रेम एक ऐसी शक्ति है जिससे निर्बल व्यथित, दीन और पतित मनुष्यों की रक्षा होती है। यह प्रेम अच्छे से अच्छे और बड़े से बड़े मनुष्यों को सेवा करने को उत्तेजित करता है। प्रेम की पुकार का उत्तर प्रेम ही देता है।

यही कारण है कि जिन्होंने अपना जीवन ईसा को समर्पित कर दिया है उन्हें ईसा के प्रेम ने महत्त्व-पूर्ण काम करने की शक्ति प्रदान की है। औरों को नहीं, मिस्टर कालीचरन बानरजी को ही देखिए। आप बङ्गाल के एक कुलीन ब्राह्मण थे। आप अध्यापक, वकील, देशभक्त और ईसाई थे। आरम्भ से ही आप भारत की राष्ट्रीय काँग्रेस के सभासद् थे। उसके प्रसिद्ध नेताओं में आपका उच्च स्थान था। आप एक श्रेष्ठ वक्ता भी थे। उस दयाशीला पण्डिता रमाबाई को ही लीजिए। उन्हें हिन्दुओं ने "सरस्वती" की उपाधि से अलङ्कृत किया था। जब ईसा के प्रेम का अङ्कुर उनके हृदय में फूट निकला तब क्रम क्रम से वह सेवा-रूपी एक सुन्दर पुष्प के रूप में विकसित हुआ, क्योंकि ईश्वर ने उन्हें दूसरों को राह दिखाने का प्रकाश दिया था। इसी कारण उन्होंने अपनी मातृभूमि की सेवा के लिए सैकड़ों युवतियों को पापमार्ग से बचाकर सात्विकता की राह दिखाई। आरम्भ से ही स्त्री-जाति को ईसा ने अपने हृदय में उच्च स्थान दिया था। और ईसाई-धर्म्म में आज भी उनको वैसा ही स्थान प्राप्त है। इसी प्रेम के कारण स्त्रियाँ भी नित्य प्रेम-पूर्ण सेवा और उपासना में तत्पर रहती हैं। क्या प्रेम की व्यग्रता कभी मन्द होती है? इस सम्बन्ध में ईसा का यह आदेश स्त्रियों को अनुप्राणित करता है, "क्योंकि तुमने इनमें से एक छोटे से छोटे भाई के साथ दया दिखलाई, इसलिए तुमने मुझ पर दया की।"

परन्तु जो सबसे अधिक प्रकाशवान् तारा अपनी प्रतिभा हम पर अपने दूर के मण्डल से डाल रहा है वह नारायण वामन तिलक है। ये भारत के एक पक्के देशभक्त, कवि और महात्मा थे। अपने जीवन के प्रारम्भ-काल में ही इनकी आत्मा चञ्चल हो उठी थी, तभी इनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ था कि यदि मेरा देश उन्नति के शिखर पर पहुँचेगा तो केवल धार्मिक जाग्रति के द्वारा ही। अतएव इन्होंने इस बात का प्रण किया था कि मैं एक नया धर्म स्थापित करूँगा। ऐसी ही अवस्था में एक बार यात्रा करते समय इनको एक सह-यात्री ने बाइबिल की एक पुस्तक दी। उसे लेते ही तिलक ने स्पष्ट कह दिया, "यद्यपि मैं इस पुस्तक को पसन्द नहीं करता तो भी मैं वादा करता हूँ कि इसे एक बार अवश्य पढ़ूँगा"। कुछ समय के पश्चात् उन्होंने लिखा—"मैंने बाइबिल को बड़े उत्साह से अन्त तक इस हेतु से पढ़ा कि मुझे ईसा के विषय में पूरा ज्ञान हो जाय। जब तक मैं हिन्दू था, मैं अपने गुरु को प्रेम तथा उनका सत्कार करता था। इस अवस्था में भी मेरा वह भाव बना हुआ है। जब से ईसा को मैंने अपना गुरु माना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तब से उनके प्रति मेरे हृदय में एक निराला ही प्रेम उत्पन्न हो गया है। इतना तो मैं कह सकता हूँ कि जब कभी वे मेरे साथ नहीं रहते तब मैं विकल हो जाता हूँ।"

तिलक के हृदय में विश्व-बन्धुत्व का भाव प्रारम्भ से ही था। तो भी वह उनके अपनी मातृभूमि के प्रेम में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालता था। उन्होंने लिखा है—

"हे भारतजननी, तुझ पर मेरा प्रेम इतना प्रबल है कि तेरे लिए मैं माड़ पीकर रहूँगा, चिथड़े पहन कर रहूँगा, अपना शरीर बलिदान कर दूँगा और जीवन न्योछावर कर दूँगा। इस प्रेम की उमङ्ग को देख कर कुछ लोग तो दाँत दिखायँगे, कुछ रोयँगे। हे देवि! मैं कितना ही तुच्छ क्यों न होऊँ, मैं अपने आपको तुझ पर अर्पण करता हूँ। तू स्वीकार कर। ऐसा करने में मैं अपने प्रभु ईसा से कुछ अधिक नहीं कर रहा हूँ, जो मेरा, तेरा और सबका मित्र है।"

महात्मा तिलक को साहित्य—विशेष करके कविता—से बड़ा प्रेम था। उन्होंने लिखा है—"मैं तुकाराम की कविता-रूपी सेतु को पार कर ईसा के पास पहुँचा हूँ"। "तत्त्व-ज्ञान हमको मनुष्यों के विश्वासों का, इतिहास उनकी राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति का मर्म समझाता है। परन्तु केवल उनकी कविता और गायनशास्त्र ही हमें उनके हृदय का परिचय दे सकती है"। "हम संसार के सब महात्माओं को ईश्वर के प्रेरित मान कर सत्कार करते हैं। उनकी सहायता से प्रभु और भी प्रत्यक्ष दिखाई देने और अपने समीप जान पड़ने लगा है। हमारा विश्वास इस कथन में दृढ़ हो गया है कि "Amicus Socrates, Amicus Ploto, Sed magis amica Veritas." साक्रेटीज़ मित्र है, प्लेटो भी है, परन्तु हमारा परम मित्र तो सत्य है।

"भक्ति-द्वारा "निःश्रेयस" की प्राप्ति की कल्पना हिन्दू-ज्ञानियों ने की है। उसका अनुभव हिन्दू-भक्तों ने किया है, समीपता, सलोकता, स्वरूपता और सयुज्यता उसी के भेद कहे गये हैं। भक्ति के इस विभाग से ईसा के वचनों का अर्थ समझने में मुझे बड़ी सहायता मिली है। उदाहरणार्थ, "मेरे पीछे हो लो", "मेरा जूड़ा अपने कन्धों पर लो", "मेरा अनुकरण करो", "मुझमें निवास करो" आदि सुन्दर वचनों का आशय भक्ति-भावना के द्वारा ही हृदयङ्गम किया जा सकता है।"

" As the moon and its beams are one
So may I be one with thee ;
This is my prayer to thee my Lord !
This is this beggar's plea. "

महात्मा तिलक एक विद्वान् कवि ही नहीं, बरन् वे राजनीति में भी निपुण थे। यद्यपि राजनीति के क्षेत्र में काम करने का अधिक अवकाश उन्हें नहीं मिलता था, तो भी वे 'होमरूल लीग' के सभासद थे और उन्हें भारत माता की एकता और स्वतन्त्रता से हार्दिक सहानुभूति थी। परन्तु उन्होंने अपने देश-बन्धुओं के हृदय पर इतना गहरा प्रभाव केवल अपनी कविता के द्वारा ही डाला है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि बच्चों और फूलों के विषय की उनकी कवितायें सबसे अधिक सरस हैं। फूलों के सम्बन्ध की एक सुन्दर उक्ति का उदाहरण इस प्रकार है—

" Tai, thou art my floweret bright
My planet beauteous in the night.

आत्मिक प्रेम आदि गम्भीर विषयों पर उनकी उक्तियाँ बहुत ही उत्कृष्ट हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने राष्ट्रीय और देश-भक्ति-सम्बन्धी कवितायें भी लिखी हैं। "प्यारा भारत-वर्ष," "सच्ची स्वतन्त्रता," "चिरन्तन युवावस्था"—नाम की रचनायें ऐसी ही हैं। इनकी धार्मिक कवितायें भी कम श्रेष्ठ नहीं हैं। उदाहरण के लिए यहाँ एक कविता का कुछ अंश इस प्रकार है—

Tenderest, Mother-Guru mine !
Saviour ! where is love like thine "

स्वर्गवासी होने के पूर्व उन्होंने अपने हृदय के उद्गार इस मधुर ध्वनि में व्यक्त किये थे—

" O Brother, on my shoulder rests Thy hand,
And fearless waits my soul,
O may, erect on thee I take my stand,
And radiant gleams my goal.
O Truth, within the warmth of thine embrace
All doubts dissolving die,
O Life before the sunshine of thy face,
Death perisheth, not I !
Thy servant Saith, To-day there draweth near
That latest valley—and
Wherefore should I fear ?

कमला किल्पेट्रिक

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-व्याप्ति।

(१)

स्पृहा के विश्व ! हृदय के हास !
कल्पना के सुख ! स्नेह-विकास !
फूल ! तुम कहाँ रहे अब फूल ?

(२)

अनिल में ? बनकर ऊर्म्मिल-गान,
स्वर्ण-किरणों में कर मुसकान,
झूलते हो झोकों की झूल ?
फूल ! तुम कहाँ रहे अब फूल ?

(३)

अवनि में ? बन अशोक का फूल,
विलम अलि-ध्वनि में, लिपटा धूल,
गये क्या मेरी गोदी भूल ?
फूल ! तुम कहाँ रहे अब फूल ?

(४)

सलिल में ? उछल उछल, हिल हिल,
लहरियों में सलील खिल खिल,
थिरकते हो, गह अनिल-दुकूल ?
फूल ! तुम कहाँ रहे अब फूल ?

(५)

अनल में ? ज्वाला बन पावन,
दग्ध कर मोह-मलिन-बन्धन,
जला सुधि मेरी चुके समूल ?
फूल ! तुम कहाँ रहे अब फूल ?

(६)

गगन में ? बन शशि-कला सकल,
देख नलिनी-सी मुझे विकल,
बहाते तुहिन-अश्रु या स्थूल ?
फूल ! तुम कहाँ रहे अब फूल ?

(७)

स्वप्न थे तुम, मैं थी निद्रित,
सुकृत थे तुम, मैं हूँ कलुषित,
पा चुके तुम भव-सागर-कूल,
फूल ! तुम कहाँ रहे अब फूल ?

श्रीसुमित्रानन्दन पन्त

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्नाद ।

१—सावधान !

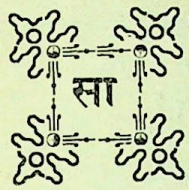

सावधान ! योंही हाथ न डाल देना ! वह एक अछूता कटोरा है। उसे वासंती समीर ने उल्लसित कुसुम-कलियों से रस ले-लेकर भरा है। रसिक मधुकर उस पर मँडराता ही है, ओठ लगाने का वह भी साहस नहीं करता। फिर तू क्यों उसमें अपना कोयले से रँगा काला-कलूटा हाथ डाले देता है ? क्या तू उस रस का निर्दयता और नीरसता के साथ उपभोग कर उसे अक्षुण्ण नहीं रखना चाहता ?

सावधान ! योंही न बिखेर देना ! वह एक अछूती डलिया है। उसमें भगवती उषा ने अपने सौभाग्य-शृङ्गार के लिए नन्दनवन से एक एक सुरभित सुमन चुन चुन कर रक्खा है। मन्द समीर उस सुमन-चय का धीरे से चुम्बन ही करता है, उलझी हुई उँगलियों से छूने का वह भी साहस नहीं करता। फिर तू क्यों उन्हें अपने कलुषित कठोर हाथों से बिखेरे देता है ? क्या तू निर्दयता और नीरसता के साथ उन फूलों का उपभोग कर उन्हें अक्षुण्ण नहीं रखना चाहता ?

सावधान ! योंही न खोल देना ! वह एक अछूती पिटारी है। उसमें प्रकृति-सुन्दरी ने अर्द्धविकसित लावण्य-कलिका को चाँदनी की धवल धारा से पखार पखार कर संपुटित कर रक्खा है। अनुराग-रञ्जिता किशोरावस्था उस पर धीरे से उन्माद-रस का छिड़काव ही करती है, उसे उलटने-पलटने का वह भी साहस नहीं करती। फिर तू क्यों उसे अपने सतृष्ण लोलुप नेत्रों से देखने के लिए अधीर हो उस पिटारी को खोले देता है ? क्या तू उस लावण्य का निर्दयता और नीरसता के साथ उपभोग कर उसे अक्षुण्ण नहीं रखना चाहता ?

सावधान ! यों ही न छेड़ देना ! वह एक अछूती वीणा है। उस पर वाग्देवी ने एक एक तार अपने निगूढ़ अन्तर्नाद के द्वारा अनुप्राणित कर चढ़ाया है। नीरवता में प्रतिध्वनित स्वर-लहरी उसके तरलतारों का, एक झीनी झनकार के साथ, स्निग्ध आलिङ्गन ही करती है, उन पर कठोर आघात पहुँचाने का वह भी साहस नहीं करती। फिर तू क्यों उस अन्तस्तल-वाहिनी वीणा को अपनी टेढ़ी-मेढ़ी मोटी-मोटी उँगलियों से छेड़े देता है ? क्या तू उसके नाद का निर्दयता और नीरसता के साथ उपभोग कर उसे अक्षुण्ण नहीं रखना चाहता ?

सावधान ! योंही न पैर रख देना ! वह एक अछूता आसन है। उसे प्रकृति ने अरुणोदय के हलके रङ्ग में रँग कर ओस की बूँदों के साथ कल्लोल करते हुए सुकुमार पल्लवों पर बिछाया है। अधीर भावना उस पर धीरे से बैठ कर साधना ही करती है, कामना-कलुषित पैरों से उसे प्रताड़ित करने का वह भी साहस नहीं करती। फिर तू क्यों उस सत्यालोक से आलोकित शुभ्र आसन को कुचलने के लिए अपने पाप-पङ्किल अपवित्र पैर रक्खे देता है ? क्या तू उसकी स्वच्छता का निर्दयता और नीरसता के साथ उपभोग कर उसे अक्षुण्ण नहीं रखना चाहता ?

सावधान ! योंही न जाने देना ! वह एक अछूता पाहुना है। उसे हमने अपने अर्द्धोन्मीलित पलकों पर प्यार कर कर सुलाया है। हमारा उद्भ्रान्त भाव अपने प्रेमाश्रु-जल से उसके परिश्रान्त कोमल चरणों का पखारना ही अपना सौभाग्य समझता है, उसकी ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखने का वह भी साहस नहीं करता। फिर तू क्यों उस प्यारे पाहुने को, बिना ही कुछ सत्कार किये, जाने देता है ? क्या तू उसके स्वागत के सौभाग्य का निर्दयता और नीरसता के साथ उपभोग कर उसे अक्षुण्ण नहीं रखना चाहता ?

२—कालिन्दी-कूल

खड़े खड़े आधी रात हो गई। चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा छा रहा है। ऊपर काली घन-घटा है और नीचे कालिन्दी का श्याम प्रवाह ! कहीं कुछ सूझता तक नहीं। तारे भी नहीं चमकते। बड़ा विकट सन्नाटा है। रात साँय साँय बोल रही है। रह रह कर यमुना की विक्षिप्त लहरें हृदय को और भी हिला देती हैं। बड़ा भय लगता है। अकेली खड़ी खड़ी क्या करूँ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सखी-सहेलियाँ छोड़ कर क्यों यहाँ अकेली चली आई ? न जाने, मुझे यहाँ कौन खींच लाया ? खड़ी खड़ी किसकी बाट जोह रही हूँ ? किस उलझन में पड़ी हूँ ? कुछ समझ में नहीं आता । कैसे धीरज धरूँ ! पैर थर थर काँपते हैं । आँखें तिलमिला रही हैं । घड़ा व्यर्थ ही भर कर सिर पर लाद लिया । अब गिरा ही चाहता है । क्या करूँ, कैसे सँभालूँ ?

क्या दिया भी बुझ जायगा ? इस तेज़ आँधी में, अञ्चल की ओट में, कब तक ठहरेगा ! कौन जानता है, कब बुझ जाय ! और तेल भी तो चुक गया है । क्या वश ! कौन जानता था कि मुझ अभागिनी के साथ प्रवंचना की जायगी । मैं तो यही समझ कर दौड़ी थी कि तट पर वह मर्मभरी रागिनी सुनने को मिलेगी, जिसने मेरे कल्पना-क्षेत्र में 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की स्वर-लहरी प्रति-ध्वनित की थी । पर सब धोखा ही निकला । वेदान्तियों ने कदाचित् इसी अभि-तृष्णा को मृग-जल कहा है ।

एक बार और वह उन्माद-रञ्जित रागिनी सुनी थी । उस दिन भी वह मुझ मुग्ध मृगी के अन्तस्तल में बाण-सी बिध गई थी । पर, तब इस तरह घर-बार छोड़ कर भागी नहीं । वहीं जी मसोस कर रह गई थी । आज की भाँति उस दिन दौड़ी नहीं थी । आज की दशा तो कुछ विचित्र ही हुई । घर वालों के रोकते रोकते ही घड़ा ले इधर चल पड़ी । भला, यह भी कोई पानी भरने का समय था ? सखी-सहेलियों की ओर देखा तक नहीं । करील की कँटीली डालों में वस्त्रों के उलझ जाने तक का ध्यान नहीं रहा । फूलों का हार तो वहीं टूट-टाट कर गिर गया । आँखें अपनी होतीं तो कुछ देखती । सुधि तो तन तक की न थी । वस्त्राभूषण कौन सँभालता ?

वह रागिनी क्या हुई ? अलापनेवाला कहाँ गया ? कहाँ जाऊँ, किससे पूछूँ ? सोचा था कि उस रागिनी की धवल-धारा से यह मलिन हृदय पखारूँगी, गायक को देख कर इस निस्तेज दृष्टि को सौन्दर्य-सुधा से अनु-प्राणित करूँगी । पर यह कुछ न हुआ । सुना क्या—उत्कंठित हृदय की धीमी प्रकम्पित-ध्वनि ! देखा क्या—अदृष्ट का धुँधला मानचित्र ! जान पड़ता है, यह विश्व-व्यापी अन्धकार मेरी ही निराशा का काला प्रतिबिम्ब है ! तो क्या वह मनोमोहिनी रागिनी भी मेरे ही विच्छिन्न अन्त-र्नाद की प्रतिध्वनि थी ? राम जाने, क्या था !

लो, दीपक भी गया ! रहा-सहा धीरज था, वह भी गया । अब देखूँ, इस अनन्त शून्यपट्ट पर मेरे अस्तित्व की क्षीण रेखा कब तक खचित रहती है !

वियोगी हरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् दयानन्द !

शुभ संवत्सर १८८१ विक्रमी में भगवान् दयानन्द ने अपने जन्म से इस जगतीतल को पवित्र किया था। काठियावाड़ के अन्तर्गत मोरवी-राज्य को महाराज का प्रथम दर्शन पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनका प्रादुर्भाव हुए आज एक सौ वर्ष हो गये। सरस्वती का यह अङ्क जिस समय पाठकों के पास पहुँचेगा, उस समय पुण्यश्लोका मथुरा-नगरी में समस्त भारत के आर्यसामाजिक नर-नारी—पंजाबी, गुजराती, युक्तप्रान्तीय, महाराष्ट्र, मदरासी और बंगाली—अपने आचार्य के जन्म-शताब्दी-महोत्सव में सम्मिलित होकर उनके उपकारों के प्रति कृतज्ञता का प्रकाश कर रहे होंगे। उन बहुसंख्यक स्त्री-पुरुषों के भक्ति-भाव को देख कर श्याम-सलिला यमुना को भी उस अद्वितीय गुरुभक्त दण्डी संन्यासी का स्मरण हो आया होगा जो आज से साठ वर्ष पूर्व अपने प्रज्ञाचक्षु गुरु स्वामी विरजानन्द के लिए, ब्राह्म मुहूर्त में, उसके जल की दर्जनों गागरें भर कर ले जाया करता था, और जिसकी वेद-ध्वनि से उसका पुलिन पवित्र हुआ करता था।

यों तो इस देश में समय समय पर अनेक महापुरुष जन्म ग्रहण करते रहे हैं, परन्तु दयानन्द की शान निराली ही है। शङ्कर के पचीस सौ वर्ष बाद भारत माता ने दयानन्द के रूप में एक ही बाल ब्रह्मचारी उत्पन्न किया है। श्रीयुत अरविन्द घोष लिखते हैं कि 'दयानन्द का व्यक्तित्व अपनी प्रणाली और अपने काम के कारण अद्भुत था। दृष्टान्त से यों समझिए कि कोई व्यक्ति देर तक एक पर्वत-माला के बीचोंबीच चला जा रहा है। पर्वतों में से कोई बहुत ऊँचे हैं और कोई कम, परन्तु अतीव सुन्दर, रमणीय और अपनी विशेष उँचाई के कारण चित्ताकर्षक हैं। फिर उनमें एक पर्वत बिलकुल अलग खड़ा है। बड़ा महत्त्वशाली और सुदृढ़ प्रस्तरमय है। उसकी चोटी पर हरियाली देख पड़ती है, और एक अकेला देवदारु का वृक्ष आकाश से बातें कर रहा है। इस पर्वत के अन्दर से स्वच्छ और उपजाऊ जल का प्रबल स्रोत बड़े वेग से बहता हुआ उपत्यका की ओर जा रहा है, मानो वह उस उपत्यका का जीवन-मूल है। यह संस्कार है, जो दयानन्द का व्यक्तित्व मेरे मन पर डालता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द का जीवन हमारे सामने दो पक्ष उपस्थित करता है। एक ओर वे जगद्गुरु हैं और दूसरी ओर जननी जन्म-भूमि के कट्टर भक्त। जगद्गुरु के रूप में उनकी शिक्षा और उनका परिश्रम सारे जगत् के कल्याण के लिए था। वे मनुष्यमात्र, बरन प्राणी-मात्र का भला चाहते थे। इस दृष्टि से वे विश्व-बन्धु थे। स्वदेश और विदेश उनकी दृष्टि में समान था। भारत-वासियों के मिथ्या-विश्वास और अविद्यान्धकार को देख कर उनका हृदय जितना व्याकुल होता था, उतना ही अन्य देश-वासियों के भ्रम-भूतों को देख कर भी होता था। इसी लिए आध्यात्मिक शस्त्रवैद्य बन कर जिस निर्दयता से उन्होंने इस्लाम और ईसाई-मत के गन्दे प्रवाद को ध्वंस करने का यत्न किया, उसी प्रकार पौराणिक और जैनमतों के गले-सड़े फोड़े को चीरने में कुछ कम निर्दयता से काम नहीं लिया। वे सारे संसार को झूठे विश्वासों और असत्य-मूलक मतों की बेड़ियों से मुक्त कराना चाहते थे। वे मनुष्यमात्र को मनुष्य-पूजा, मूर्ति-पूजा और धार्मिक दासता के गहरे गर्त से निकाल कर एक ईश्वर के उपासक और एक ही सत्य सनातनधर्म्म के अनुयायी बनाना चाहते थे। वे संसार में स्वतन्त्रता के देवता थे। सब प्रकार की दासता की ज़ंज़ीरों को काट कर मानव-समाज को स्वतन्त्रता के वायुमण्डल में ले जाना ही उनके जीवन का उद्देश था। वे वेद-रूपी ईश्वरीय वाणी केवल आर्यावर्त में उत्पन्न होने-वाले द्विजों के लिए ही नहीं मानते थे, बरन वे उसके उपदेश तथा पढ़ने का अधिकार भूमण्डल के नीच से नीच नर-नारी के लिए सिद्ध करते थे। विधवाओं, अनाथों, अछूतों और मूक गायों की दुर्दशा देख कर उनके हृदय में दया का समुद्र हिलोरें मारने लगता था। इसी लिए उन्होंने इन पीड़ितों के दुःखों को दूर करने का भगीरथ-उद्योग किया था।

देश-भक्त के रूप में भी दयानन्द का काम अद्भुत था। उनकी देश-भक्ति स्वार्थ-मूलक न थी, बरन वह उनके विश्वप्रेम का एक अङ्ग थी। भारत इस समय भूमण्डल के सब देशों में दीन-दुःखी है। इससे बढ़ कर दीन और दरिद्र देश शायद ही कोई दूसरा हो। ऋषि ने भी यहाँ का अन्न-जल खाया था, यहाँ के फल-फूल खाकर उनकी देह वर्द्धित हुई थी, इसलिए इसके दुःखों को दूर करना वे अपना विशेष कर्तव्य समझते थे। किसी दूसरे देश को हानि पहुँचा कर स्वतन्त्रता के नाम पर संसार का नाश करनेवाली आज-कल की स्वार्थी जातियों की देश-भक्ति से उनकी देश-भक्ति बिलकुल भिन्न थी। वे भारत का हित भी अधिकतर इसी लिए चाहते थे कि आर्यावर्त में सुख और शान्ति होने से ही सारे संसार में सुख और शान्ति का राज्य हो सकता है। महात्मा गांधी को आज यह बात सूझी है कि भारत की राष्ट्रभाषा आर्य-भाषा (हिन्दी) होनी चाहिए। परन्तु ऋषि दयानन्द ने इसी बात का आज से पचास वर्ष पहले प्रचार किया था, और अपनी मातृ-भाषा गुजराती को छोड़ कर हिन्दी में ही अपनी पुस्तकें लिखी थीं। एक बार एक महाशय ने उनसे कहा था कि पञ्जाब में हिन्दी जाननेवाले लोग बहुत कम हैं, इसलिए आप अपनी पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद करा दीजिए। इस पर महाराज ने उत्तर दिया कि 'अनुवाद विदेशियों के लिए हुआ करता है। आप तो अनुवाद की सम्मति देते हैं, परन्तु दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं, जब काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक देवनागरी ही के अक्षरों का प्रचार होगा। मैंने भारतवर्ष में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने ही के भाव से अपने सारे ग्रन्थ आर्यभाषा में बनाये और छपवाये हैं।'

राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता भी सबसे पहले स्वामी महाराज ने ही अनुभव की थी। गुरुकुल उसका ज्वलन्त प्रमाण है। इसके अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा, दलितोद्धार, शुद्धि, बड़ी आयु का विवाह, ब्रह्मचर्य, और स्वदेश-वस्तु-प्रचार आदि देशोन्नति के साधन, जिन पर हमारे राजनीति-नेता आज ज़ोर दे रहे हैं, सबसे पहले महर्षि को ही सूझे थे। आज भी उन पर जितना आचरण आर्य-समाज में हो रहा है, उतना भारत के और किसी भी दूसरे समाज में नहीं हो रहा है।

जिस स्वराज्य शब्द की गूँज आज भारत के कोने कोने से उठ रही है उसकी कल्पना सबसे पहले किसके मस्तिष्क में आई थी? वह कौन था जिसने सबसे पहले भारत के लिए स्वराज्य की आवश्यकता का अनुभव किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था ? इस विषय में महाराज के शब्द सुनिए—'कोई कितना ही करे, जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि होता है। (यदि) मत-मतान्तर के आग्रह से रहित, अपने पराये के पक्षपात से शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा करनेवाला, न्याय और दया से युक्त भी विदेशियों का राज्य हो, तो भी पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।'

परन्तु स्मरण रहे भारत का पथप्रदर्शक बनते हुए उन्होंने जगद्गुरु के पद का त्याग नहीं किया। उन्होंने भारत को सिद्धान्त बताये हैं, जिन पर अन्य देशवासी भी आचरण कर सकते हैं। उनके बतलाये सूत्रों में घृणा और द्वेष की गन्ध तक नहीं। बरन उन्हें अँगरेज़ों में भी जो गुण दिखाई दिये उनको उन्होंने स्पष्ट शब्दों में दर्शाया है—और भारतवासियों को उनका अनुकरण करने का अनुशासन किया है।

दयानन्द का ईश्वर-विश्वास चट्टान के सदृश दृढ़ था। वे सत्य के अनन्य उपासक थे। सत्य के प्रचार में वे किसी से न डरते थे। आप एक बार बरेली में ईसाई-मत का खण्डन कर रहे थे। लोगों ने कमिश्नर के कोप से डराया। तब महाराज ने व्याख्यान में कहा—"लोग मुझे सम्मति देते हैं कि सत्य का प्रकाश न करो। इससे कमिश्नर रुष्ट होगा, गवर्नर बिगड़ जायगा, परन्तु मैं तो किसी भी शक्तिशाली मनुष्य के भय से सत्य का प्रकाश त्याग नहीं सकता। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि आत्मा अमर और अविनाशी है। यदि कोई ऐसा माई का लाल यहाँ हो जो कहे कि मैं आत्मा का छेदन-भेदन कर सकता हूँ, तब ही मैं सोचूँगा कि सत्य का प्रकाश करूँ वा न करूँ। परन्तु इस क्षण-भङ्गुर देह की रक्षा के लिए, चार दिन के जीने के लिए, मेरा सत्य के प्रचार को बन्द करना असम्भव है।" अहा, कैसी सत्य-निष्ठा और कैसा दृढ़ ईश्वर-विश्वास है!

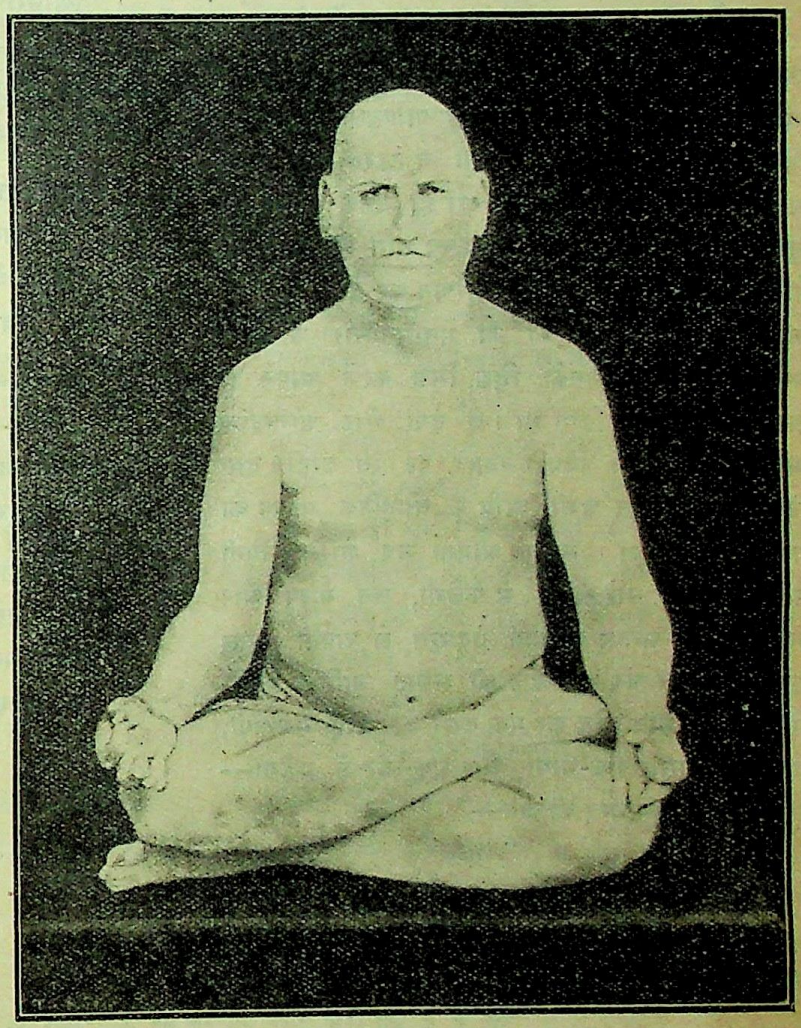

भगवान् दयानन्द।

परमहंस दयानन्द ने सत्य का आश्रय लेकर अहन्ता और ममता दोनों को त्याग दिया था। वे जिस बात को सत्य समझते उसी का प्रकाश करते। उन्होंने एक जगह लिखा है—"किसी नवीन कल्पना अथवा मत को चलाने का मेरा अभिप्राय लेशमात्र भी नहीं। मुझे तो सत्य को मानना-मनवाना अभीष्ट है। यदि मैं भी पक्षपाती होता तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यावर्त के किसी एक सम्प्रदाय का आग्रह करने लग जाता। परन्तु मैं तो जैसे पराये देश की अधर्मयुक्त बातों को बुरा समझता हूँ, वैसे ही अपने देश के अधर्ममय कर्मों का तिरस्कार करता हूँ। ऐसा करना मनुष्यत्व का कर्तव्य मानता हूँ।"

दयानन्द सर्वाङ्ग-पूर्ण थे। जैसे उनका मन और आत्मा बलवान् था, वैसे ही शरीर भी सुदृढ़ था। वे वेद के एक अद्वितीय विद्वान् थे। उनके प्रगाढ़ पाण्डित्य के सामने विपक्षी शास्त्रार्थ में एक पल भी न ठहरते थे। वैदिक सभ्यता और वैदिक धर्म का प्रचार ही उनके जीवन का मुख्योद्देश था। हिन्दू-धर्म के कच्चे धागे को सार्वभौम वैदिक धर्म्म की सुदृढ़ रस्सी में परिणत कर देना उन्हीं का काम था। वैदिक सूर्य को जो मत-मतान्तर के काले बादल ढक रहे थे उनको छिन्न भिन्न करके आपने ही सत्यार्थ का प्रकाश किया था। वे दया और आनन्द के अवतार थे। अपने विष देनेवाले पर भी उन्होंने दया दिखाई थी। संसार अभी ऋषि के वास्तविक महत्त्व को नहीं समझ सका। समय आयगा जब शान्तिदायिनी वैदिक सभ्यता सारे संसार में फैलेगी, जब योरप और अमरीका की सन्तप्त आत्मायें वेदामृत से अपनी प्यास बुझायँगी, और जब भूमण्डल की समस्त जातियाँ काले-गोरे का भेद-भाव छोड़ कर एक दूसरे को भाई समझेंगी, तब सारा संसार एक-भाषा और एक-स्वर में कहेगा—

भगवान् दयानन्द की जय—

यशो यदीयं जगतीतले ततं
तमो नितान्तं तनिमानमानयत्।
शरन्मृगाङ्कादधिकं विशोभते
विशोभितान्तःकरणैरभिष्टुतम् ॥१॥

गुणानुरागेण समस्तमानवै-
रमन्दसंदर्शितभव्यभावनैः।
सदा सदाराधितमेव यत्कृतं
प्रकामभक्त्या ध्रियतेऽनुशासनम् ॥२॥

तुषारपातोत्तरकाललालिता
नवीनवल्लीव लसद्दलोदया।
जगत्त्रये येन विकाशमापिता
विवर्धते वेदमयी सुवल्लरी ॥३॥

दयामयानन्दविशेषवर्धनाद्
भुवस्तले यो नितरामुदारधीः।
ततान नामानुगुणां निजाभिधां
गुरुर्दयानन्द इति प्रकल्पिताम् ॥४॥

समस्तलोकान्तरहर्षवर्धनो-
जवेन शुक्लीकृतविश्वमण्डलः।
ससार यस्माज्जगतीतले नवो-
गणो गुणानां गणनाशतैर्वृतः ॥५॥

सन्तराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—आत्म-दर्शन ।

(१)

किसी नगर में एक बेपरवा, अभिमानी नवयुवक रहता था ।

उसका नाम सईद था ।

वह बड़ा ही सुन्दर था—उसका रङ्ग गोरा था, चेहरा-मोहरा भी अच्छा था और आँखों में मोहनी थी ।

परन्तु वह मूर्ख था ।

(२)

वह बाज़ार जाता था, तो रस्ते में एक बूढ़े फ़क़ीर को देख कर हँसा करता था ।

उसकी कमर झुक गई थी, उसके सिर के और डाढ़ी के और मूँछों के बाल सफ़ेद हो चुके थे, और आँखों में जवानी की चमक के स्थान में बुढ़ापे का फीकापन था ।

वह बूढ़ा था ।

और सईद उसे देख कर हँसा करता था ।

(३)

एक दिन सईद ने स्वप्न में देखा कि वह बूढ़ा हो गया है और उसकी कमर झुक गई है । उसके सिर के और डाढ़ी के और मूँछों के बाल सफ़ेद हो चुके हैं, और आँखों में जवानी की चमक के स्थान में बुढ़ापे का फीकापन आ गया है ।

जब वह जागा तब अपने स्वप्न पर देर तक हँसता रहा ।

परन्तु बाज़ार जाते समय सहसा उसने बूढ़े फ़क़ीर के निस्तेज मुख के शीशे में अपनी जवान की छाया देखी और उसे पहचानने में भूल न की ।

और सईद वहाँ रुक गया और उस फ़क़ीर को देख कर उसके होठों की हँसी होठों पर मर गई ।

(४)

किसी नगर में एक मनुष्य रहता है ।

उसका नाम सईद है ।

वह बड़ा ही सुन्दर है । उसका रङ्ग गोरा है । चेहरा-मोहरा भी अच्छा है, और आँखों में मोहनी है ।

परन्तु अब वह मूर्ख नहीं रहा, न वह किसी बूढ़े को देख कर हँसता है ।

सुदर्शन

२—'रसरंग'-परिचय ।

पिछली गरमी की छुट्टियों में हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के काम से हमें व्रजभूमि में कुछ भ्रमण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । इसी भ्रमण में मथुरा के लाला पुरुषोत्तमदासजी से हमारा परिचय हुआ । आप काव्य-रसिक तो हैं ही, कवि भी हैं । मथुरा के सुप्रसिद्ध कवि चौबे नवनीतलालजी आपके काव्य-गुरु हैं । आपही के पास ग्वाल कवि का 'रसरंग' नामक ग्रन्थ हमको देखने को मिला ।

विक्रम की १९ वीं शताब्दी में होनेवाले कवियों में ग्वाल कवि का आसन बहुतों से ऊँचा है । ये पद्माकर के समकालीन थे । इनकी रचना-शैली भी पद्माकर की रचनाशैली से बहुत कुछ मिलती है । इन्हें साहित्य का ज्ञान बहुत अच्छा था । ये रहनेवाले व्रज के थे, किन्तु पीछे से पञ्जाब में जा रहे थे । कई राजाओं ने इन्हें आश्रय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था। 'रसरंग' के प्रारम्भ में ही इन्होंने अपने सम्बन्ध में कुछ बातें कही हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि ये वृन्दावन से मथुरा आ बसे थे। यह ग्रन्थ भी मथुरा ही में लिखा गया था।

'रसरंग' में रस, भाव, नायक-नायिका-लक्षण, अलंकार आदि वर्णित हैं। कुछ रचना भक्ति-विषयक भी है। हमें जिस प्रति को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ वह अपूर्ण है। किन्तु अपूर्ण से यह तात्पर्य नहीं कि अधूरी है; केवल उसमें अन्त के कुछ पृष्ठ नहीं हैं—सो भी बहुत ही थोड़े। हस्त-लिपि का सबसे अन्तिम पृष्ठ पढ़ने से तो यही अनुमान होता है।

'रसरंग' बहुत बड़ा ग्रन्थ है। जो प्रति हमने देखी उसमें सटाकर लिखे गये १६२ पृष्ठ हैं, और साँची भी छोटी नहीं; अतएव यदि यह अच्छे ढङ्ग से छपाया जाय तो $\frac{२० \times ३०}{१६}$ साँची के ३०० पृष्ठों से अधिक का बैठेगा।

ग्रन्थ आठ उमङ्गों में समाप्त हुआ है। प्रत्येक उमङ्ग के छन्दों की संख्या तथा विषय-परिचय, ग्रन्थ के ही शब्दों में, यों हैं—

उमंग	छन्द-संख्या	विषय
१	१६१	'विभावस्थायी भाव अनुभाव संचारी सात्विकभाव बर्नन'।
२	११२	'पदमित्यादि उत्तमादि दिव्यादि स्वकीयाभेद मान बर्नन'।
३	७४	'परकीयाभेद गनिका बर्नन'।
४	१०७	'अवस्थाभेदते पञ्चदस नायिका-बर्नन'।
५	३२	'सखी दूती दरसन बर्नन'।
६	८१	'संजोग वियोग सिङ्गारभेद हाव दस बर्नन'।
७	१३५	'नायक सखा उद्दीपन मद्धे षटरितु-बर्नन'।
८	७१	'रसवर्णन' और 'गुरोपदेस' के अतिरिक्त भक्तिविषयक छंद भी हैं। यह उमंग उस प्रति में अपूर्ण है।

पहली तरङ्ग के आरम्भ में श्रीराधिकाजी की स्तुति है। उसके आगे ग्रन्थ का सम्बन्ध श्रीकृष्णजी से बतलाते हुए फिर राधिकाजी की स्तुति की गई है। यह इस प्रकार है—

'नवरस में शृंगार की पदवी राज विसाल।
सो सिंगार रस के प्रभू हैं श्रीकृष्ण रसाल॥
सो श्रीकृष्ण रसाल की कहियै धनमन ग्रान।
जिनकी लीला गायकै तरत जुसकल जिहान॥
या ते श्रीमन राधिका सरवोपरि जुअभंग।
तिन पद प्रनमि सुग्वालकवि रचत ग्रन्थ रसरंग।'

आगे कवि अपने विषय में कहता है—

'वृन्दावन ते मधुपुरी किय सुख वास प्रमाति।
विदित विप्र बन्दी विसद नाम ग्वाल कवि जाति॥
नौहू रस के भेद सब बरनत सहित उमंग।
राधा कृष्ण चरित्र मय रसिकन कौं रसरङ्ग॥'

ग्रन्थ रचना की तिथि—

'संवत वेद प निधि ससी माधव सित पष संग।
पंचमि ससि कौं प्रगट हुअ ग्रन्थ जु यह रसरङ्ग॥'

अब विषय-प्रवेश है—

'बरनन करि हैं रसन कौ रस भावन ते होत।
याते आदिहि भाव को लच्छन करत उदोत॥

इसके आगे, उदाहरणसहित भावों के लक्षण अनेक छन्दों में दिये हुए हैं। बानगी के लिए यहाँ एक अवतरण दिया जाता है—

अथ हांसी स्थायी लच्छण—

'करन कुतूहल को जहाँ और वेष बचहोय,
तिहि लषि सुनि उपजै कलुक हांसी थिति सो जोय।'

उदाहरण—

'उठि भोर ही लाल जगाय लिये
दियौ माषन औ दुलरावत सी;
उन माय कौ आनन पोंछौ सबै
षरी षेल कला सरसावत सी;
कवि ग्वाल सिहाई सही हिय में
पै कछू इक भौंह चढ़ावत सी;
अलि आंख बचाय जसोमति की
मटकी मुष कौं विकसावत सी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी उमङ्ग में रस का लक्षण यों दिया हुआ है—

'जहँ विभाव अनुभाव अरु सात्त्विक औ संचारि।
ये मिलि थिति कों पूरहीं सो रस सुकवि उचारि।'

आगे रस के—लौकिक और अलौकिक—दो मुख्य भेद और अनेक उपभेद किये हैं। नायिका लक्षण, मान, उसके भेद और उनके लक्षण आदि दिये हैं।

सातवीं उमंग में नायक का लक्षण यह दिया है—

'चतुर कुलीन गुनी धनी जुत पुर सत्व उदार,
सुभ गरबी जुछमी बली नायक ताहि उचार।'

छः ऋतुओं के वर्णन में से वर्षा-वर्णन का एक छन्द यहाँ दिया जाता है—

'झूम झूम चलत चहुँधा घन घूम घूम
लूम लूम भूम छैं छैं धूम से दिखात हैं,
तूल के से पहल पहल पर उठे आवें
महल महल पर सहल सुहात हैं;
ग्वाल कवि भनत परम तम सम केते
छम छम छम डारैं बूँदैं दिन रात हैं,
गरज गये हे एक गरजन लागे देषौ
गरजत आवैं येक गरजत जात हैं।'

'गुरोपदेस' में से एक नमूना यह है—

'राम घनस्याम के न नाम तैं उचारे कभू
काम बस ह्वै कै वाम गरैं बाँह डाली है,
एक एक स्वास ये अमोल कढ़े जात हाय
लोल चित्त यहै ढोल फोरत उताली है;
ग्वाल कवि कहै तू विचारै वर्ष बढ़ैं मेरे
येरे घटै छिन छिन आयु की बहाली है,
जैसैं धार दीपत फुहारे की बढ़त आछैं
पाछै जल घटै हौज होत आवै षाली है।'

खेद है, प्राचीन कवियों के उत्तमोत्तम ग्रन्थों को अच्छे ढङ्ग से न छाप कर हिन्दी-सम्मेलन-कार्यालय, परीक्षाओं में जारी करने के लिए, सड़ियल पुस्तकें छापने में ही सारा उत्साह लगा रहा है। कोई राजा-महाराजा भी नहीं चेतते, जो विद्वानों से इन पुराने ग्रन्थों का सम्पादन करा कर प्रकाशित करावें।

बदरीनाथ भट्ट

३—टुक सोच तो सही।

(१)

अज्ञ जीव, जो तुझे नहीं प्राप्त है उसके लिए तू बड़ा लालायित है, किन्तु जितना कुछ तुझे मिला हुआ है, उसे भी सम्हाल कर रखता है? तू मनुष्य है, सब जीवों में श्रेष्ठ है, मर्त्यलोक में भगवान् का प्रतिनिधि है—ये क्या कुछ कम गौरव की बातें हैं। यदि तू इन पर ध्यान दे और अपनी महिमा से न गिरे। तूने खोया बहुत है, गँवाया बहुत है, नष्ट बहुत किया है, पर सब बेकार गया है। तूने मनुष्यत्व की रक्षा के लिए, सिद्धान्त की रक्षा के लिए, समझ-बूझ कर यदि कुछ नहीं छोड़ा तो तेरा जीवन पृथ्वी के लिए भार और समाज के लिए कलङ्क है। यदि तू गुलाब में बड़ा फूल देखना चाहता है तो तुझे उसकी डालियों का मोह छोड़ना पड़ेगा, बहुत काट-छाँट के बाद देखनेवालों के नेत्रों को तृप्त करनेवाला फूल खिलेगा। यदि तूने तुच्छ से नाता जोड़ा है तो महत् तुझसे बात न करेगा। यदि तू साईसों से मेल बढ़ाता है तो मालिक तुझे अपनी सङ्गति के लिए नहीं चुनेगा। तू अपने भीतर वह व्याकुलता उत्पन्न कर जो बनना चाहता है। यदि तू मनुष्य बनना चाहता है तो मनुष्यत्व पर मर मिट, यदि तू ईश्वर बनना चाहता है तो अपना 'यज्ञ' करके और अपने भीतर छिपे हुए पशु की 'बलि' चढ़ा दे। यदि तू शान्ति चाहता है तो सन्तोष करना सीख। यदि तू सुख चाहता है तो दुखियों के दुःख दूर करने की आदत डाल। यदि तू ज्ञानी बनना चाहता है तो यह जानने की चेष्टा में लगा रह कि तू क्या नहीं जानता है।

जब कोई तेरी थोड़ी सी हानि करता है तब तू कैसा बावला हो जाता है, अपनी थोड़ी हानि को न सह कर दूसरे को बड़ी हानि पहुँचाने के लिए तू कैसे कैसे फन्द डालता है, वह गाँठ तेरे दिल में कैसी मज़बूती से फँस जाती है। किन्तु तूने अपने भीतर छिपे हुए शत्रु को भी कभी जाना है, जो पद पद पर तुझे धोखा देने के लिए और तेरी प्रतिष्ठा को ख़ाक में मिलाने के लिए मौक़ा ताके तैयार खड़ा रहता है। तुझे इस आस्तीन के ज़हरीले साँप का ज़रा डर नहीं है। जो तेरे जड़ पदार्थों की थोड़ी बहुत क्षति कर देते हैं उनसे तो तू जूझ पड़ता है और जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरे जीवन को भ्रष्ट कर रहा है उससे तू सावधान न हो। इतना ही नहीं, बल्कि उसे अपना परम मित्र माने बैठा है। तभी तो तेरी यह दुर्गति है, तू न घर का है, न घाट का। ऊपर उठने की कौन कहे तू जहाँ खड़ा है वहाँ के लायक़ भी नहीं है। चेत रे अज्ञ जीव, अपने भीतर छिपे शत्रु को पहचान और उसे अच्छी तरह समझ कि उसकी दुष्टता से तेरा पीछा ही छूट जाय—आत्मैव रिपुरात्मनः।

यदि तू छत पर से गिरते गिरते बच जाता है तो तू बड़ी खुशी मनाता है, डूबते डूबते तिर जाता है तो तेरे आनन्द का पारावार नहीं रहता। किन्तु जब 'ईश्वरत्व' के ऊँचे आकाश से गिर कर 'पशुत्व' के गन्दे ख़न्दक में गिरता है तब चौंकता भी नहीं। संसार-सागर में सदा डूबते रहने का भय भूल से भी तेरे हृदय में उत्पन्न नहीं होता। मानसिक अधःपात का तुझे कभी ध्यान नहीं आता! यदि तू उस प्रसन्नता को भी प्राप्त कर सके कि जो मानसिक अधःपतन के होते होते न हो सकने पर उत्पन्न होती है और अपनी मुड़ जानेवाली ऐड़ी में वह लचक उत्पन्न कर ले कि वह मुड़े तो पर मुचे नहीं तो मुझे न गिरने में जो सच्चा आनन्द है उसका पता लग जाय। तू मोहर खोने पर खुश होता है और कौड़ी के लिए रोता रहता है।

तू आँख से देख और कान से सुन, आँख बन्द करके कान से देखने में अपनी शक्ति और अमूल्यनिधि समय का दुरुपयोग मत कर। विश्वास की जगह तर्क को मत बिठा, तर्क का स्थान विश्वास को मत दे। यदि तू जहाँ जो चाहिए या 'हर चीज़ अपनी जगह पर और हर चीज़ की ख़ास जगह' के इस मोटे सिद्धान्त की अवहेला करेगा तो सारा गुड़ गोबर हो जायगा। तू मनबहलाव के लिए तर्क किया कर, किन्तु विश्वास की बेल को हृदय के रक्त से सींच। तभी उसमें सुधारस भरे फल लगेंगे। तर्क का कँटीला पेड़ बाढ़ में लगा कि अनधिकारी न आ सकें। उसे हृदय-मन्दिर में मत रोप। वहाँ विश्वास के कल्पतरु के लगाने की ही आवश्यकता है, जिससे सारा घर महक जाय और कुछ अभाव न रहे। तू तर्क की उँगली मत पकड़। तू विश्वास का पंजा पकड़, जिससे उन सब पर तेरा अधिकार हो जाय। तू रस पी, रसभङ्ग न कर।

तू कर्त्तव्य पालन की आदत डाल, साथ ही इस बात की भी कि उसका पालन ठीक हो रहा है या नहीं। यह मत समझ कि वह बेगार है, यह समझ कि जीवन-ज्योति की शुभ्रता केवल उसी के स्नेह पर अवलम्बित है। हर समय यह ध्यान रख कि तू जो कुछ कर रहा है क्या उसे उससे बेहतर कर सकना तेरे लिए सम्भव नहीं है, यदि है तो कसर निकाल डाल, आगे चल कर मार्ग साफ़ हो जायगा और फिर तेरी उन्नति के मार्ग में कोई विघ्न न डाल सकेगा। लेकिन तू कमर कस ले और अपना काम दूसरे पर मत डाल। थोड़ा कर लेकिन बेहतर कर और किसी के लिए कर। जिस दिन तूने कर्त्तव्य के महत्त्व को समझ लिया और उसे ठीक रीति से निबाहने लगा, बस उसी दिन तू उस मार्ग पर पड़ जायगा जहाँ शेष में सब कर्त्तव्यों से छुट्टी मिल जाती है और शाश्वत शान्ति का सुख सदा हाथ जोड़े सामने खड़ा रहता है।

एक 'न सोचनेवाला'

४—नादिरशाह के समय भारत का धन।

नादिरशाह ने जब भारत पर आक्रमण किया था उस समय देहली में बादशाह मुहम्मदशाह राज करता था। उस समय राज्य का केवल नाम ही नाम था, तथापि दिल्ली से लक्ष्मीदेवी रूठी न थीं। नादिरशाह दिल्ली से जो सम्पत्ति ले गया उसके विवरण से दिल्ली तथा भारत की आर्थिक अवस्था पर बहुत कुछ रोशनी पड़ जाती है। नादिरशाह भिन्न भिन्न विभागों तथा लोगों से ५२ करोड़ ३८ लाख और ६० हज़ार रुपये का धन ले गया था। उसका विवरण निम्न-लिखित है—

८ करोड़ ५० लाख रुपये (राज-कोष से) नक़द।
१५ करोड़ के रत्न (राज-कोष से)।
एक करोड़ ५० लाख का सुनहरा सामान।
पन्द्रह करोड़ का तख़्त-ताऊस तथा अन्य वस्तुएँ।
चार करोड़ नवाब आसफ़जाह से।
दो करोड़ एक और नवाब से भेंट।
दो करोड़ का सामान जो कि अवध-राज्य के निमित्त था।
दो करोड़ ७० लाख मुज़फ़्फ़रख़ाँ आदि के यहाँ से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक करोड़ क़मरुद्दीन वज़ीर से।
नौ लाख लुतफ़ उल्लाख़ाँ दारोग़ा से।
दो लाख ७५ हज़ार नवाब मुहम्मदख़ाँ से।
दो लाख ५० हज़ार राय खुशहालचन्द पेशकार से।
दो करोड़ नगर के बड़े दफ़्तरवालों से।
तीन लाख ५० हज़ार शेख़ साद उल्लाः से।
तीन लाख राजा नागरमल से।
दो लाख ५० हज़ार सीताराम ख़ज़ानची से।
दो लाख ७५ हज़ार सुभानराय वकील से।
दो लाख ६० हज़ार नवनिधिराय से।

चालीस लाख के फुटकर रत्न कुछ नक़दी सहित कुल रक़म ५२ करोड़ ३८ लाख ६० हज़ार की हुई।

यह सूची उस काग़ज़ के आधार पर है जो भोपाल-राज्य के दफ़्तर में मौजूद है। अब इसी अवसर पर यह बतला देना भी उचित प्रतीत होता है कि इतना धन कैसे नादिरशाह के हाथ लगा था। एक ऐतिहासिक का कथन है कि लड़ाई में जब मैदान नादिरशाह के हाथ रहा और मुहम्मदशाह की सेना हार गई तब आसफ़जाह नवाब ने नादिरशाह को इस बात पर राज़ी कर लिया कि वह दो करोड़ रुपये लेकर दिल्ली में आये बिना ही हिन्दुस्तान से वापस चला जाय। बादशाह को यह बात बहुत पसन्द आई। नवाब को इस उद्योग के कारण एक सर्वश्रेष्ठ पद तथा पुरस्कार दिया। हिन्दुस्तान की फूट सुप्रसिद्ध है। सरदार सआदतख़ां ने जब यह सुना तब डाह के मारे जल गया। तुरन्त नादिरशाह के यहाँ पहुँचा। नादिरशाह को पट्टा पढ़ाई और कहा कि दो करोड़ रुपये पर जो आपने सन्धि कर ली है वह भारत की सम्पत्ति के सम्मुख कुछ भी नहीं है। इतना तो मैं अकेला ही हज़ूर की भेंट कर सकता हूँ। यदि आप दिल्ली पधारें तो बहुत सा धन मिल सकता है। नादिरशाह ने यह बात सुनकर नवाब आसफ़जाह को बुलाया और कारागार में डाल दिया, बाद को दिल्ली को चल पड़ा, बड़ी मार-धाड़ की और जाते समय नक़दी सहित ऊपर बतलाई हुई रक़म ले गया।

महेशप्रसाद

५—हमारा झंडा।

(१)

संहतिमूर्त्ति* तिरङ्गा प्यारा।
झंडा ऊँचा रहे हमारा।
उसकी कथा यही कहती है—
"शक्ति 'संघ' ही में रहती है"॥

(२)

उजला रङ्ग विलायत का है,
लाल रङ्ग सब भारत का है।
नीला रङ्ग मुसलमानी है;
एक दूसरे का सानी है॥

(३)

या यों समझो—यश उज्ज्वल है,
लाल लाल जो कुछ है स्थल है†
नीला नीला सारा जल है,
झंडा इस 'त्रिपुटी' का फल है॥

(४)

जिसमें श्वेत त्वचा छवि छाती,
रक्त-लालिमा भी सरसाती।
नीली नसों युक्त वह सारा
है नृपमूर्त्ति सु-राज्य हमारा॥

(५)

उसकी छवि दर्शनवाला;
स्वजनों को हर्षानवाला।
है हम सबका जो प्रिय झंडा।
महिमा उसकी रहे अखंडा॥

(६)

बन उसमें 'हिन्द का सितारा'‡
चमक रहा है भाग्य हमारा।
इसी लिए 'आँखों का तारा'
हुआ हमें यह झंडा प्यारा॥

---

* (The Union Jack') (दि यूनियन जैक)।

† नक़शों में ब्रिटिश-भूमि लाल दिखलाई जाती है और समुद्र, नदी, झील आदि नीले बने रहते हैं।

‡ हिन्दुस्तानी झंडे में "सितारा-ए-हिन्द" (Star of India) भी अङ्कित रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७)

वह (प्रभु-का-सा करुणामय कर)
रहे सदा हम सबके सिर पर।
बैरी उसके आगे थर थर।
काँपा करें सदा डर डर कर॥

(८)

उस झंडे की छाया में अब,
चलो, साथ ही बोलें हम सब—
"कैसर हिन्द, प्रजा के प्यारे
रहें सुखी सम्राट् हमारे" ॥

'सत्कविदास'

६—हिन्दी के अभिनेता।

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि अब हिन्दी-संसार में नाटकों की ओर लोगों का ध्यान अधिकाधिक आकर्षित होता जाता है। नये-नये नाटक लिखे जा रहे हैं। उर्दू की कम्पनियाँ भी अब शुद्ध हिन्दी के नाटकों का अभिनय करने लगी हैं। हिन्दी-साहित्य के एकाध मर्मज्ञ भी नाटक-रचना के लिए कम्पनियों में नौकर हो गये हैं और उन्हें अच्छी तनख़ाह भी मिलती है। इसके सिवा मनोरञ्जन के लिए भी स्थान स्थान पर नाटक-समितियाँ बन गई हैं और ये नाटक-कम्पनियाँ अपने रङ्ग-मञ्च पर जिन ऊँचे दर्जे के नाटकों की अभी पूछ नहीं है उनका अभिनय कर भावुक दर्शकों का मनोरञ्जन किया करती हैं। इस तरह की मण्डलियाँ पहले काशी और प्रयाग में ही थीं; पर अब तो बहुत से स्थानों में हो गई हैं। ऐसी ही एक हमारे मित्रों ने आरे में भी प्रतिष्ठित कर रक्खी है और उसमें इन पङ्क्तियों के लेखक को भी समय समय पर नाटकीय भूमिका ग्रहण करनी पड़ती है।

जो हो, मैं इस समय बँगला, गुजराती और मराठी रङ्ग-मञ्चों के साथ हिन्दी-रङ्गमञ्च की सभी बातों की तुलना-मूलक समालोचना करना नहीं चाहता। मुझे इस समय दो-चार शब्द हिन्दी के अभिनेताओं के विषय में ही कहने हैं और इनके सम्बन्ध में मैं जो कुछ विचार प्रकट करना चाहता हूँ वह बँगला के रङ्गमञ्चों पर उतरनेवाले अभिनेताओं को देख कर ही मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ है।

बङ्गाली सभी बातों में हम हिन्दीवालों से बहुत आगे बढ़े हुए हैं, यह तो मान ही लेना पड़ता है। उन्होंने अपनी प्रान्तीय बोली को इस उन्नत दशा को पहुँचा दिया है कि उनके साहित्य से इस समय हिन्दी, गुजराती और मराठी आदि कितनी ही भारतीय भाषाओं का पोषण हो रहा है। यद्यपि उसका प्राचीन साहित्य किसी सूर, केशव या तुलसी पर गर्व करने की योग्यता नहीं रखता, तथापि इस समय आधुनिक रुचि, आवश्यकता और स्थिति के अनुसार उसने अपने अङ्गोपाङ्गों की ऐसी पूर्त्ति कर रक्खी है कि जिसे देख कर वङ्ग-भाषा-भाषियों के मातृ-भाषा-प्रेम और साहित्य-सेवा पर न्यौछावर हो जाने की इच्छा होती है। बँगला के रवीन्द्र ने न केवल बङ्गाल का, बल्कि सारे भारतवर्ष का सम्मान-वर्द्धन जगत् की आँखों में कर दिया है, यह भला कौन नहीं स्वीकार करेगा?

अस्तु, मैं इस समय बँगला के रङ्गमञ्चों का प्राचीन इतिहास नहीं सुनाना चाहता। यह काम मैं फिर कभी किसी दूसरे लेख-द्वारा करूँगा। यहाँ मैं उसके अभिनेताओं की ही कुछ बातें आप लोगों को सुनाऊँगा। जब से बङ्गाल में—नहीं, नहीं, कलकत्ते में—आधुनिक ढङ्ग के बँगला-रङ्गमञ्चों की रचना हुई है तब से उसके अन्दर एक से एक बढ़कर नाटककार और अभिनेता पैदा हुए हैं। स्वर्गीय बाबू गिरीशचन्द्र घोष का नाम हिन्दीवालों को भी परिचित हो गया है; क्योंकि उनके दो-तीन नाटकों का अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित हो चुका है। वे एक बड़े ही प्रतिभाशाली और कुशल अभिनेता थे। उनके अभिनय की प्रशंसा करता हुआ बँगला-रङ्गमञ्चों के इतिहास का प्रत्येक लेखक उनका भाट बन जाता है। उनमें कवित्व-शक्ति थी, नाटक-रचना की योग्यता थी और जो कुछ वे क़लम से लिखते थे उसे अभिनय-द्वारा साक्षात् दर्शकों के नेत्रों के सम्मुख उपस्थित कर देनेवाली अभिनय-कुशलता भी। इसीलिए वे सफल नाटककार और कुशल अभिनेता के रूप में सभी दर्जे के लोगों से अपने जीवन-काल में ही सम्मानित हुए और मर जाने पर भी उनका नाम अमर है। उनके सहयोगी बाबू अमृतलाल वसु भी उन्हीं के समान न केवल सुयोग्य अभिनेता हैं, बल्कि एक अच्छे नाटककार भी हैं। गिरीश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबू की तरह ये भी प्रचुर ख्याति अर्जन कर चुके हैं। इस समय बहुत बूढ़े हो गये हैं और किसी रङ्गमञ्च से सम्बन्ध नहीं रखते। तो भी कभी कभी विशेष अवसरों पर लोगों के विशेष आग्रह या अनुरोध से रङ्गमञ्च पर उतरने का आयास स्वीकार करते हैं। इन लोगों के साथियों में स्वर्गीय बाबू अमरेन्द्रनाथ दत्त और स्वर्गीय बाबू अर्द्धेन्दुशेखर मुस्तफ़ी भी विशेष प्रसिद्धि-प्राप्त थे। इनमें पहले सज्जन भी बहुत से नाटक लिख गये हैं और किसी ज़माने में उन नाटकों के अभिनय की बड़ी धूम थी। आज भी उनकी नाटकावली बड़े चाव से पढ़ी जाती है। हाँ, मुस्तफ़ी महाशय की रचना कम से कम मेरे देखने में नहीं आई, पर उनके अभिनय-कौशल की बँगला-रङ्गमञ्च के इतिहासज्ञ आज भी भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। स्वर्गीय बाबू गिरीशचन्द्र घोष के सुयोग्य पुत्र बाबू सुरेन्द्रनाथ घोष, जो कलकत्ते में "दानी बाबू" के नाम से प्रसिद्ध हैं, अपने पिता की काव्य-प्रतिभा भले ही उत्तराधिकार में न पा सके हों; परन्तु उनके अभिनय-कौशल के सच्चे वारिस हैं। आज उनके समान अभिनेता कोई नहीं है। वे अभिनेतृ-वर्ग के शिरोमणि माने जाते हैं और इसके लिए बङ्गाली-समाज में उनका अच्छा आदर है। इधर कुछ दिनों से कलकत्ते के नाटक-प्रमियों में बाबू शिशिरकुमार भादुड़ी नाम के एक प्रतिभाशाली और विद्वान् अभिनता की बड़ी चर्चा है। आपकी सर्वप्रियता दिन-दिन बढ़ती जाती है और जो सम्मान दानी बाबू को युगों की तपस्या के बाद प्राप्त हुआ है वह इन्हें बहुत ही थोड़े दिनों में प्राप्त हुआ चाहता है। भादुड़ी महाशय कलकत्ता-विश्वविद्यालय के एम० ए० हैं। बहुत दिनों तक कालेज में प्रोफ़ेसरी भी कर चुके हैं; परन्तु आपको नाटकों से बहुत दिनों से प्रेम था। पढ़ते ही समय आप अक्सर 'अमेचर क्लबों' के अभिनयों में भाग लिया करते थे और उसी समय से आपके कौशल से लोग परिचित हैं। हाल में कलकत्ते की 'मदन थियेटर्स लिमिटेड कम्पनी' ने एक 'बङ्गाली थियेट्रिकल कम्पनी' खड़ी की थी। उसने उसी समय भादुड़ी महोदय को खूब अच्छी तनख़्वाह पर नौकर रक्खा। आपने भी प्रोफ़ेसरी छोड़ अभिनेतागिरी स्वीकार कर ली। सबसे पहले इस कम्पनी ने पण्डित क्षीरोदप्रसाद विद्या-विनोद का लिखा हुआ 'आलमगीर' नाम का नया नाटक खेला। उसमें भादुड़ी महाशय ने 'आलमगीर' का पार्ट लिया था। उस प्रथम अभिनय की महीनों पहले से बड़ी चर्चा थी और एक प्रोफ़ेसर को पेशेदार नाटक कम्पनी के रङ्ग-मञ्च पर उतरते हुए देखने के लिए जनता में बड़ी आकुलता थी। अभिनय में ख़ासी भीड़ हुई। भादुड़ी महाशय ने अपना पार्ट इस ख़ूबी से अदा किया कि लोग एक-स्वर से उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। यह कम्पनी साल डेढ़ साल चलने के बाद ही न-जाने क्यों उठ गई। तब भादुड़ी महाशय ने अपना एक नया दल जोड़ा और स्थानीय 'अलफ्रेड् थियेटर' के स्टेज पर यदा-कदा अभिनय दिखलाने लगे। इस कार्य में आपको अच्छी सफलता हुई और आपने अपना एक स्टेज स्थायीरूप से बना लेना चाहा।

बहुत ही शीघ्र आपको अवसर भी मिल गया। यहाँ के पुराने मनोमोहन थियेटर के मालिकों को इस व्यवसाय से हाथ खींच लेने का विचार हुआ और उन्होंने अपना थियेटर भादुड़ी महाशय के हाथ बेंच दिया। तब से आप इस नाट्य-मन्दिर के स्वत्वाधिकारी हैं और अच्छे अच्छे अभिनेताओं और अभिनेत्रियों का दल जोड़ कर अच्छे अच्छे नाटकों का अभिनय दिखलाया करते हैं। कुछ ही महीनों में आपको इस कार्य में जो सफलता हुई है उसका अधिकांश श्रेय आपके अभिनय-कौशल को है।

उधर 'स्टार थियेटर' नाम का एक दूसरा प्रसिद्ध और पुराना बँगला-रङ्गमञ्च है। इन दिनों उपर्युक्त दानी बाबू का सम्बन्ध इसी थियेटर से है। जो कम्पनी इस थियेटर का सञ्चालन करती है उसमें बङ्गाल के कितने ही नामी-गरामी साहित्यिक भी हैं। इसके मैनेजर बाबू अपरेशचन्द्र मुकर्जी एक अच्छे नाटककार और कुशल अभिनेता हैं। इसमें 'कर्णार्जुन' नाम का एक नाटक गत डेढ़ वर्ष से प्रति शनि और रविवार को खेला जाता है। यह अपरेश बाबू की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसका अभिनय २०० रात्रियों तक लगातार होते रहने पर भी इसमें जो आकर्षण है वह कम नहीं होता और प्रत्येक अभिनय में अपार भीड़ होती है। कहते हैं कि आज तक किसी बँगला-रङ्गमञ्च पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नाटक का लगातार सैकड़ों रात्रियों तक इस सफलता के साथ अभिनय नहीं हुआ। इसी लिए इसकी १०० वीं रात्रि के अवसर पर जुबिली मनाई गई थी। इस जुबिली के अवसर पर देशबन्धु चित्तरञ्जनदास आदि बङ्गाल के बहुत बड़े-बड़े गण्य-मान्य पुरुष स्टार थियेटर में पधारे थे। दास महोदय ने उस समय नाटक, नाटककार और अभिनेताओं की अच्छी प्रशंसा की थी। वास्तव में अर्जुन और कर्ण की भूमिकायें ग्रहण करनेवाले अभिनेता बरबस ही दर्शकों को मुग्ध और तन्मय कर देते हैं।

ऊपर इतने अभिनेताओं की चर्चा करने से मेरा मतलब यही दिखाने का है कि बँगला बोलनेवाले और नाटक देखनेवाले अपने अपने अभिनेताओं का कैसा आदर करते हैं। अब देखिए, हिन्दीवालों का क्या हाल है? कहते दुःख होता है कि हिन्दी के रङ्गमञ्चों पर बँगला के टक्कर के अभिनेताओं का सर्वथा अभाव है। स्वाभाविकता तो इनसे कोसों दूर रहती है। भावभङ्गी में कृत्रिमता भरी रहती है। एक एक बात ऐसे बनावटी स्वर में कही जाती है कि सुनकर दङ्ग रह जाना पड़ता है। मानो बनावटीपन ही नाटक के अभिनेता के लिए आवश्यक कर्त्तव्य है। शायद यही कारण हो कि लोग पैसे देकर इनके तमाशे देख आते हैं; पर ऊँचे दर्जे के लोगों से ये अभिनेता वह प्रशंसा और सम्मान नहीं अर्जन कर पाते जो बँगला के अभिनेता अर्जन कर सके हैं। यह देखकर और भी दुःख होता है कि पेशेदार कम्पनियों के इन बनावटीपन के अवतार अभिनेताओं का अनुकरण कितनी ही साहित्यिक मण्डलियों के पढ़े-लिखे अभिनेता भी करते हैं। इसी लिए जो लोग कला के परखैया हैं वे इनका आदर नहीं करते। दूसरे, अभी तक हिन्दी-पठित जनता में नाटक के अभिनेताओं के प्रति एक प्रकार के अनादर और अप्रतिष्ठा का भाव मौजूद है, जिसके डर के मारे अच्छे लोग 'अमेचर क्लबों में' पार्ट लेते हुए भी घबराते हैं। जगत् के सर्वश्रेष्ठ कवि डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर तो बोलपुर-विद्यालय की ओर से खेले जानेवाले नाटकों में सहर्ष पार्ट लें और हिन्दी पढ़नेवालों में जो ठाकुर महोदय की कुरसी के नीचे की धूल होने योग्य भी नहीं हैं वे किसी अभिनय में पार्ट लेना अप्रतिष्ठा की बात समझें—यह हमारी समझ की बलिहारी नहीं तो और क्या है? हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के बारहवें अधिवेशन के सभापति पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी केवल सुलेखक और सुकवि ही नहीं हैं, एक अच्छे अभिनेता भी हैं। यह बात आपने एकाध बार रङ्गमञ्च पर—निश्चय ही अमेचर-स्टेज पर—उतर कर दिखला दी है; परन्तु इस घोर अधर्म के लिए उनको बहुत बार व्यङ्ग्य-बाणों की बौछार ही उपहार में मिली है। कुछ पत्रों ने तो उन्हें 'भाँड़', 'नट' और न-जाने क्या-क्या भद्दी उपाधियाँ दे डालीं। योग्यता और कला-कुशलता का यह कैसा अनादर है, यह पाठक ही देखें और विचार करें कि इस तरह का भाव विद्यमान रहने से सच्चे प्रतिभावान् अभिनेताओं के हमें कैसे दर्शन हो सकते हैं? अपने यहाँ जब हम लोगों ने मण्डली स्थापित की और उसमें पार्ट लेना शुरू किया तब राह चलते लोग हम पर भी ताना मारने लगे थे कि ये भले आदमी होकर नाटक करते फिरते हैं! ऐसी बुद्धि रखनेवाले समाज के अन्दर नाटक के अभिनेताओं के प्रति आदर, सहानुभूति और सम्मान का भाव पैदा करना कितना कठिन काम है, यह आपही लोग सोच देखें। मैं सिनेमा और थियेटरों का स्वभावतः बड़ा शौक़ीन हूँ। अकसर "चार्लीचैपलिन" के अभिनयों के नमूने बायस्कोपों में देखने को मिलते हैं; परन्तु यह देखकर दुःख हुए बिना नहीं रहता कि हिन्दी के मास्टर मोहन जैसे हास्य-रस के कुशल अभिनेता की कभी कोई चर्चा भी नहीं करता। क्यों? इसीलिए कि वे बेचारे एक पेशेदार नाटक-कम्पनी के वेतनभोगी अभिनेता हैं। बँगलावालों से हम बहुत कुछ सीख रहे हैं। पर अपने अभिनेताओं—यथार्थ कुशल कलाविदों—के प्रति उनमें जो समादर-भाव है उसका शतांश भी हममें नहीं है।

बँगलावालों के इस सम्मान-प्रदर्शन का एक और नमूना मैं यहाँ दे देना चाहता हूँ। स्थानीय "शिशिर पब्लिशिङ्ग हाउस से" "नाट्य-प्रतिभा सीरीज़" नाम की एक ग्रन्थमाला निकलती है। इसमें बँगला के नामी-गरामी अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के जीवन-परिचय और उनकी कुशलता का विशद वर्णन दिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सीरीज़ में न केवल गिरीश आदि समाज के सम्मानित पुरुषों के ही सम्बन्ध में ग्रन्थ निकले हैं, बल्कि 'विनोदिनी' और 'तारासुन्दरी' प्रभृति उन वाराङ्गनाओं के भी प्रशंसात्मक जीवन-चरित निकले हैं जो यदि अपने समय की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री न होतीं तो समाज उन्हें कभी प्रतिष्ठा की दृष्टि से नहीं देखता। प्रसङ्गवश मैं यहाँ यह लिख देना भी उचित समझता हूँ कि श्रीमती विनोदिनी का अभिनय-कौशल देखने का मुझे अवसर नहीं मिला; क्योंकि मेरे कलकत्ते आने के बहुत पहले ही बँगला-रङ्गमञ्च की वह कोयल संसार के पींजरे से उड़ चुकी थी; परन्तु श्रीमती तारासुन्दरी के अभिनय-पटुत्व के निदर्शन देखने का मुझे कई बार अवसर प्राप्त हुआ है। तारासुन्दरी का पार्ट "रिज़िया" नाटक में जिसने नहीं देखा उसने मानो कुछ भी नहीं देखा, मालूम होता था, मानो सचमुच वह पठान-सम्राज्ञी हमारे नेत्रों के सामने खड़ी है। तारासुन्दरी अपने ज़माने में सदा सभी नाटकों की नायिका का ही अंश ग्रहण करती थी और प्रत्येक में सफल भी होती थी; परन्तु जिसने उसे रज़िया बनते देखा है वह उसे फिर किसी रूप में देखना पसन्द नहीं कर सकता। उसका रज़िया बेगम का पार्ट सर्वोत्तम होता था। उससे उतर कर उसका "चन्द्रशेखर" नाटक में "शैवलिनी" का पार्ट होता था। ये दोनों पार्ट उसके खूब मँजे हुए थे। तारासुन्दरी को "शैवलिनी" की भूमिका ग्रहण किये हुए देखने के लिए ही हज़ारों दर्शक उस नाटक के अभिनय के समय टूट पड़ते थे। मैं भी इसी लिए दर्जनों बार इस नाटक को देखने गया था। इधर कुछ वर्षों से तारासुन्दरी ने अभिनय-कार्य से अवकाश ग्रहण कर वैराग्यमय जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया है और बँगला-रङ्गमञ्च की एक विशेषता मानो नष्ट हो गई है। उसके जीवनी-लेखक ने अपने ग्रन्थ में लिखा था कि जिस दिन तारासुन्दरी न रहेगी उस दिन बँगला-रङ्गमञ्च की सारी शोभा जाती रहेगी। वह बात तारासुन्दरी के जीते ही जी सार्थक हो गई है। जो हो, इस समय भी कितनी ही अभिनेत्रियों की अभिनय-कुशलता पर लोग मुग्ध हैं; परन्तु जो प्रतिष्ठा तारासुन्दरी ने प्राप्त की है वह शायद ही किसी को नसीब हो। वैसी प्रतिभा लेकर शायद कोई अभिनेत्री नहीं जन्मी। मुझे तो उसके अभिनय के आगे किसी हिन्दी या बँगला-रङ्गमञ्च की अभिनेत्री का अभिनय पसन्द ही नहीं है।

जो हो, मेरे लिखने का आशय यही है कि हिन्दी-वालों को भी अपने अभिनेताओं के प्रति सहानुभूति और आदर का भाव हृदय में पोषण करने की आवश्यकता है। अभिनेता होना कोई पाप नहीं है। सभी अच्छे अभिनेता नहीं हो सकते। यह एक प्रकार की कला है और जिसे स्वभावतः नाट्य-प्रतिभा ईश्वर की ओर से मिली है वही इसमें कृतकार्य हो सकता है। इस कला और प्रतिभा का निरादर नहीं करना चाहिए। हम लोग विलायत की नक़्ल करने में अपना सोलह आने अपनापन भूलने को सदा तैयार रहते हैं; पर विलायत के अभिनेताओं और अभिनेत्रियों की प्रतिष्ठा का शतांश क्या, सहस्रांश भी हम हिन्दी-भाषी अपने अभिनेताओं को देने के लिए तैयार नहीं हैं। रुपये-पैसे देने की बात तो न्यारी है, उनके कर्तृत्व पर सन्तोष की दो दो बातें भी कहते हुए हमें कार्पण्य घेर लेता है। हमारे बङ्गाली भाइयों ने विलायतवालों की इस उदारता को थोड़ा बहुत अपनाया है और इसी लिए उनके शौक़ीन अभिनेताओं की ही नहीं, पेशेदार अभिनेताओं की भी प्रतिष्ठा होती है। उनके सम्बन्ध में अख़बारों में लेख लिखे जाते हैं, उनके चित्र छापे जाते हैं, उनके अभिनीत अंशों पर बड़े बड़े विद्वानों की विचारपूर्ण समालोचनायें निकलती हैं। क्या मैं आशा करूँ कि कभी हिन्दी की दुनिया में भी ये बातें दिखलाई देंगी? हाँ, इसके साथ-ही-साथ मैं अभिनेतृवर्ग से भी आशा करता हूँ कि वे लोग अपनी कला की उन्नति करने के लिए इस विषय का ज्ञान-सञ्चय करने की भी सदा चेष्टा करते रहेंगे और पड़ोस के भिन्न-भिन्न रङ्गमञ्चों पर उतरनेवाले कला-विदों की कुशलता से शिक्षा ग्रहण करने में न चूकेंगे।

ईश्वरीप्रसाद शर्मा

७—डूंगजी और जँवाहरजी।

ये दोनों आपस में काका भतीजे थे। आज से सौ वर्ष पहले शेखावाटी में इनके यश का सौरभ खूब फैल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था। इनके शरीर में वीरता का रक्त उबलता रहता था। ये 'बठौट' के निवासी थे। मिथ्याभाषण के भाव, विचार और शब्द इनके हृदय तथा जीभ पर कभी आतेही नहीं थे। आपत्ति के अवसर पर जासूसी (धूर्तता) का मायाजाल फैलाने में भी सत्य इनके साथ बना रहता था। लौटिया जाट तथा सांवतिया मीना इनके सहगामी थे। इनके साहचर्य से डूँगजी जँवाहरजी यद्यपि क्षात्रोचित धर्म से वञ्चित करनेवाली डकैती करते थे, तथापि दीनरक्षा और स्वदेश प्रेम से ये कभी शून्य नहीं रहते थे। ये बलवानों का सर्वनाश करने में जिस भाँति ज़रा भी नहीं चूकते थे, उसी भाँति दीन-दुखिया अथवा ग़रीब शब्द कह देनेवाले धनाढ्यों पर भी दया दिखाने या क्षमा करने में नहीं हिचकते थे। अपने उपार्जित द्रव्य से इन्होंने परमार्थ के लिए अनेक अनाथ कन्याओं के अच्छे विवाह किये थे, अनेक असमर्थ गृहस्थियों का पालन किया था और अनेक अबलाओं को आजन्म भोजन तथा वस्त्र देकर उनकी रक्षा की थी। ऐसे व्यक्ति इनके द्वारा कभी सताये नहीं गये थे।

ऐसे लोगों के अतिरिक्त और सब लोग इनसे सदैव भयभीत रहते थे। ये जिधर निकलते, उधर ही लोगों के हृदय में कँपकँपी चल जाती थी। इनकी कुछ धाक ही ऐसी जम गई थी कि शस्त्रों-सहित श्रेणीबद्ध खड़े हुए शत शत वीरों के बीच से भी ये यथेच्छ धन निस्सङ्कोच लूट ले जाते थे। और बिल्ली को अपने भक्ष्य के ले जाते समय जिस भाँति सैकड़ों पक्षी उड़ जाते हैं, उसी भाँति वे लोग भी तितर-बितर हो जाते थे। ये खड्ग-प्रहार में बड़े कुशल थे, किन्तु उसका उपयोग बहुत कम करते थे। इनके वाहन ऊँट और घोड़ों में भी अद्भुत गुण थे। आज-कल मोटर और साईकलों की प्रगति तथा सुविधाओं से सरदार लोग उनके सेवक बने जा रहे हैं। परन्तु डूँगजी की एक दुबली-पतली और थकी-माँदी घोड़ी भी अवसर पड़ने पर बीस गज़ गहरे और चौदह गज़ चौड़े नालों को अथवा दश गज़ ऊँची दीवारों को हिरनी की तरह कूद जाती थी। रात भर में सौ कोस पहुँचानेवाले ज़रा ज़रा से ऊँट भी बड़े कौतुक करते थे। इन साधनों के द्वारा ये नङ्गी तलवारों की पल्टनों के पहरों से भी धनराशि का अपहरण करने में कभी नहीं रुकते थे।

एक बार इन्होंने रामगढ़ के एक वीराश्रित सेठ के दस हज़ार रुपये और दूसरी बार नसीराबाद की छावनी से बावन हज़ार रुपये लूट लिये थे। इसके कारण ये आगरे के क़िले में बड़ी सावधानी से क़ैद किये गये। परन्तु वहाँ से ये बड़ी ही विचित्र रीति से निकाल लिये गये और अलक्षित कर दिये गये। इनकी क़ैद-कथा को रनी मूँगिया लोग बहुत गाते हैं। लोग इसे चाव से सुनते भी हैं। यहाँ हम उस क़ैद-कथा का कुछ अंश लिख देना उचित और उन दिनों की जासूसी का स्वरूप प्रकट कर देना आवश्यक समझते हैं।

डूँगजी के क़ैद होने की ख़बर सुनकर उनकी प्राणप्रिय पत्नी ने जँवाहरजी से व्यङ्ग्योक्ति में कहा कि—"तुम्हारे काका तो क़िले में क़ैद हैं और तुम अपने पुरुषार्थ को धाड़े देकर दिखा रहे हो। इसके बदले यदि मेरे लँहगा-लूघड़ी तुम पहनो और अपने खड्ग-पघड़ी मुझे दो तो मैं अभी उनको छुड़ा लाऊँ"। वीर ललना के वाक्य-बाणों से विद्ध होकर जँवाहरजी आगरे गये और अपने साथियों की सहायता से जासूसी बरात बना दी।

गणपतिया नाम के मीणे ने साधु के वेश में क़िले के द्वार-देश पर धूनी डाल के वहाँ की अवस्था-व्यवस्थायें देखीं और डूँगजी के निकालने के तरीक़े निश्चित किये। क़िले के समीप विदेशी लोग नहीं बसते थे। और जँवाहरजी की बरात में सभी भले आदमी थे। अतः उन्होंने ज्यों त्यों करके प्रथम रात्रि बिता दी, परन्तु प्रभात होते ही बरात में विघ्न पड़ गया। पूछने से मालूम हुआ कि ख़ास दूल्हा के सगे मामा 'मींढासिंह सरदार" मर गये। मरे हुए सरदार का शरीर सनाथी पर सफ़ेद वस्त्र से ढँका पड़ा था। लौटिया जाट और सांवतियाँ मीना इस दुःख से फूट फूट कर रो रहे थे। ऐसी अवस्था में क़िले के रक्षकों ने बरात को वहाँ से हटा देना उचित नहीं समझा। अतः बरातियों ने मुर्दे की रथी को उठाकर—"राम नाम सत्य है"—कहते हुए क़िले की एक तरफ़ ले गये और वहीं उसको जला दिया। उस दिन मुसलमान लोग मुहर्रम में मस्त थे। हिन्दू उसके देखने में व्यस्त थे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन कारणों से क़िले के रखवालों की संख्या सङ्कुचित हो गई थी। इसी समय उन्होंने मुर्दे मेढासिंह को—अर्थात् सचमुच मेंढे को जला दिया और वीर जँवाहर अपने साथियों सहित क़िले में घुस गये। वहाँ जाते ही पहले तो उन्होंने कुछ अन्य क़ैदियों को निकाला और फिर फौलादी छड़ों को तोड़ कर डूँगजी को ले गये।

कोई तीस वर्ष हुए इनके पोते एक बार जयपुर आये थे। चौमूँ के तत्कालीन नरेश ठाकुर गोविंदसिंह से भी मिले थे। इनके पूर्व-पुरुषों की कीर्ति-कथा ठाकुर साहब को ज्ञात थी और वे उनके वाहनों की अद्भुत कथायें भी सुन चुके थे। अतः डूँगजी के पोते से उन्होंने उनकी घोड़ी के कुछ कौतुक दिखाने को कहा। पोते महाशय ने ऊँघती हुई घोड़ी की पीठ पर बैठ कर थोड़ी दूर इधर-उधर चलाई। फिर ठाकुर साहब की हवेली के विशाल फाटकों को उस घोड़ी के द्वारा पल भर में उलटे और सुलटे दोनों प्रकार से लाँघ गये। उस दिन जिन्होंने इस दृश्य को देखा था उनमें अभी कुछ सज्जन मौजूद हैं और उनकी दृष्टि में उपर्युक्त कथा किसी अंश में असत्य नहीं है। हमने डूँगजी की संक्षिप्त जीवनी उनके डकैतीपन के लिहाज़ से नहीं—किन्तु उनकी निर्भीकता—विलक्षणता—और उनके वाहनों की अद्भुत गुणशालिता से लिखी है और उन दिनों भारतीय वाहनों में ऐसे अनेक गुण होते भी थे।

हनूमान शर्मा

८—भारत और रोम का व्यापारिक सम्बन्ध।

पिछले दिसम्बर मास की सरस्वती में हमने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि प्रयाग में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति की पङ्क्ति २४ में गरुत्मताङ्क...(गरुड़ के चिह्न-वाले ध्वजा देनेवाले) से प्रकट है कि उस सम्राट् ने जिसे अँगरेज़ी लेखक (Napoleon of India) हिन्दुस्तान का नेपोलियन कहते हैं ईरान जीत कर ईरान से मिले हुए रोम के एक प्रान्त को अपने अधीन कर लिया। इससे कुछ लोगों को बड़ा आश्चर्य होगा। कहीं ऐसा भी हो सकता है कि सदा के दास और जो कोई लूट-मार करता बाहर से आया उसके आगे सिर झुकानेवाले, भारतवासी योरप के प्रबल साम्राज्य पर अपना सिक्का जमा सकें। हज़ारों बरस हुए एक बार हिन्दुस्तान के एक राजकुमार ने अपने देश के बाहर लङ्का-टापू पर आक्रमण करके उसके राजा को परास्त किया था। उसकी कथा गाँव गाँव गाई जाती है, और लीला करके हर साल दिखाई जाती है। प्रतिद्वन्द्वी राक्षस कहा जाता और उसकी मूर्खता का चिह्नस्वरूप गधे का सिर उसके ऊपर रक्खा जाता है। ऐसी छोटी बातों पर अभिमान करनेवालों की मजाल है कि ख़ैबर के बाहर पाँव रक्खें? जो गोरे का रूप देख कर बच्चों से कहते हैं कि "लुकाय (छिप) रहो" उनका हिया ऐसा हो सकता है कि योरपवालों की ओर आँख उठा कर देखें या कभी देखा हो। परन्तु भारत और रोम के विषय में इतने प्रबल प्रमाण हैं कि उन पर विश्वास न करना एक आश्चर्य्य की बात होगी। आज हम इस लेख में कुछ अँगरेज़ी विद्वानों की कही बातें पाठकों को सुनाना चाहते हैं क्योंकि "क्या लुत्फ़ जो ग़ैर पर्दे खोलै, जादू वह जो सिर पर चढ़ के बोलै।"

(१) हिन्दुस्तान के भिन्न भिन्न प्रान्त में रोम के सिक्के निकले हैं। ये सिक्के हिन्दुस्तान में कैसे पहुँचे? रोम का राज्य ईरान से पूर्व बढ़ा ही नहीं। रोम का कोई पक्षपाती नहीं कहता कि जिस रोम ने सारा योरप उत्तर-अफ़्रीका और अनातोलिया अपने अधीन कर लिया उसको कभी हिन्दुस्तान-विजय करने का ध्यान आया हो। जगद्विजयी सिकन्दर बड़ा साहस करके पञ्जाब तक आया परन्तु विपासा के आगे न बढ़ा। क्या वही 'रोब' रोमियों पर भी जमा हुआ था? हिन्दुस्तान में रोमी सिक्कों का पाया जाना इस बात को सिद्ध करता है कि यहाँ के व्यापारी रोम जाकर अपना माल बेंचते थे। रोमवाले भी यहाँ आते हों परन्तु यहाँवाले बिना पूरा व्यवहार होने के अपने माल के बदले उनका सिक्का क्यों लेने लगे? आज दिन करोड़ों का अन्न योरप को जाता है परन्तु योरप के व्यापारी दाम में हमारा सिक्का हमको देते हैं पौण्ड शिलिङ्ग नहीं, राज्य अँगरेज़ों का है। अँगरेज़ी सिक्का लेने में कोई खटका नहीं है परन्तु सुभीता हमको अपने ही सिक्के चलन बाज़ार में पड़ता है। इससे कम से कम यह तो सिद्ध होता ही है कि रोम और भारत का किसी समय में घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिक्कों के विषय का पहला लेख ग्रेट ब्रिटन और आयरलैण्ड की रायल सोसाइटी के जनरल (पत्रिका) (J. R. A. S. 1904) में १९०४ में छपा था, इसमें विज्ञ लेखक ने सिक्कों की जाँच से इतने सिद्धान्त निकाले हैं।

(१) रोमन कांसलों (Consuls) (साम्राज्य-सभा के सभापतियों) के समय में रोम और भारत के बीच में व्यापार कम था।

(२) क़ैसर अगस्टस (Cæsar Augustus) के राज्य में रोमवालों को भारत से भोगविलास की सामग्री जाने लगी और नेरो (Nero) के समय तक (ई० पू० ४० ई० ६८) इसका व्यापार रहा।

(३) इस समय से कराकला (Caracalla) के समय (२१७ ई०) तक व्यापार घट गया।

(४) कराकला के समय के बाद नष्ट हो गया।

(५) बिज़न्टियन (Byzantian) साम्राज्य में इसकी फिर वृद्धि हुई। इस व्यापार का प्रयोजन भी यों बतलाया गया है।

(क) पहले साम्राज्यों के समय में भारत के मिर्च, मसाला, मलमल, सुगन्ध, मोती और रत्नों की बड़ी माँग थी।

(ख) नेरो और करकला के राज्य में इन भोग्य-विलास की वस्तुओं की माँग घट गई और कपास की माँग बढ़ी।

(ग) विज़ाण्टियों के समय में व्यापार दक्षिण देश ही से रहा।

ये अनुमान लेखक ने जिन जिन स्थानों पर सिक्के मिले हैं उनके आधार पर किये हैं। रोम के सुप्रसिद्ध लेखक प्लाइनी (Pliny) ने भी जो बातें लिखी हैं उनसे हिन्दुस्तान की व्यापारिक वस्तुओं की रोम में बड़ी खपत जान पड़ती है। अगस्टस सीज़र के राज्य में रोम-वालों ने एशिया जीतने का उद्योग किया। पश्चिम में सिक-न्दरिया (Alexandria) की बहुत बड़ी मंडी रोम के अधिकार में थी। इसी समय रोम संसार में सबसे शक्ति-शाली हो गया और विभव का साथी और उसका सर्वनाश करनेवाला भोग-विलास अपना रङ्ग जमाने लगा और विषय-वासना की तृप्ति की सामग्री की खोज में रोमी भारत पहुँच गये। उन दिनों भोग-विलास की वृद्धि देख कर प्लाइनी (१० ई०) से न रहा गया और उसने यह लिख मारा—"सुगन्ध उबटन, भूषण आदि में करोड़ों रुपये साम्राज्य के पूरब की वस्तुओं के मोल लेने में नष्ट किये जाते हैं। भोग-विलास और स्त्रियों के पीछे देश लुटा जा रहा है।"

रोम को भारत से मिर्च-मसाला, हाथीदाँत, मलमल, सूती कपड़े और रत्न जाया करते थे।

परन्तु हमको प्रयोजन गुप्तों के समय से है। इस समय में लेखक का मत है कि भारत के सम्राट् को रोम से लाभ ही की आशा थी। डर कोई न था। ई० सन् ३६४ में रोम-साम्राज्य के दो खण्ड हो गये, एक पूर्वी दूसरा पश्चिमी। यही समय समुद्रगुप्त का है। रोम के सम्राट् नाम-मात्र ही को थे। ४१० में गाथों (Goths) ने रोम पर आक्रमण किया और अलरिक (Alaric) ने अपना अधि-कार रोम पर जमा लिया और ५०० सेर काली मिर्च दण्ड में माँगी! ४५१ में हूणों (Huns) ने इटली उजाड़ दी। उसके तीन वर्ष पीछे वंडालों* (Vandals) ने रोम को लूटा। ४७६ ई० रोम-साम्राज्य की पूर्ण-आहुति हो गई। यह तो हुई पश्चिमी भाग की दशा। पूर्वी खण्ड की राजधानी कान्स्टैंटिनोपल (Constantinople) थी। यह नगर कान्सटैण्टैन (Constantine) ने ७३० ई० में बसाया था। इस राजधानी के बनने से भारत के व्यापार में फिर उन्नति हुई।

इस लेख के उत्तर में १९०७ ई० में सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर कीथ ने कहा कि भारत और रोम का व्यापारिक सम्बन्ध बहुत पुराना है और अगस्टस के समय में यहाँ से राजदूत गये थे जिसको उसने बड़े अभिमान के साथ लिखा है। अगस्टस को भारत के व्यापार

* These rulers Kshatrapas and Gup-tas appear to have been favourably dis-posed towards the Roman Empire from which they had nothing to fear and every thing to gain (J. R. A. S. 1904-603).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उन्नति की बड़ी चिन्ता रहती थी* । मोमसेन (Mommsen) ने लिखा है कि भारत के दूत अनेक बार रोम-सम्राट् के पास गये थे और अगस्टस ने भारत और रोम के बीच यात्रा की एक नई राह मिस्र होकर निकालने का उद्योग किया था। पहले व्यापारी अरब होकर जाया करते थे। भारत से दूत जाने पर अभिमान करना और भारत के व्यापार की उन्नति की चिन्ता करना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि रोम के सम्राट् के आगे भारत की भी उस समय कुछ गिनती थी और भारत को प्रसन्न रखने में वह अपना कुछ भला समझता था। हमारी समझ में तो यह आता है कि उस समय पृथिवी-मंडल में दो ही शक्तिमान् साम्राज्य थे एक भारतीय और दूसरा रोमन, और जब रोम में अगस्टस सम्राट् था उस समय भारत में जगत्प्रसिद्ध विक्रमादित्य का राज्य था। अगस्टस ई० पू० ४४ में सम्राट् हुआ और विक्रमादित्य का ५७ ई० पू० से संवत् चलता है। भारत और पश्चिम का सम्बन्ध बहुत पुराना है। मिस्टर पार्जिटर ने १९१४ में एक लेख में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि आर्यजाति का मूलस्थान प्रतिष्ठान था जिसकी जगह आज-कल प्रयागराज के सामने गङ्गा-पार एक उजड़ा गाँव झूसी है। उसी काल में उन्होंने लिखा है।

It will thus be seen that Indian tradition knows nothing of any Aryan invasion of India from the north-west, nor of any gradual advance of the Aryans from thence eastwards. It makes the Aryan power begin at Allahabad and spread its dominion thence in all directions except over Kosala, Videha, and Vaisali ; and tradition even says there was an Aryan outflow of the Druhyus through the north-west into Afghanistan and beyond (J. R. A. S. 1919 p. 277).

"इससे जाना गया कि भारत में आर्यों के पश्चिमोत्तर-प्रान्त के किसी देश से आने की कथा प्रसिद्ध नहीं है। इस कथा के अनुसार आर्य-राज्य का प्रयाग से आरम्भ हुआ और कोशल, विदेह और वैशाली (विशाला) छोड़कर सर्वत्र फैला। कथा तो यहाँ तक है कि द्रुह्यु की सन्तान अफ़ग़ानिस्तान होती हुई पश्चिम देशों में पहुँची थी।

एक बात यह भी जानने योग्य है कि ईसा से अनुमान डेढ़ सौ बरस पहले कुछ भारतवासी आर्मिनिया में जाकर बसे। इस उपनिवेश का वर्णन सिरिया-निवासी ज़िनब (Zenob) ने किया है। यह ज़िनब ईसाई पादरी था जो सेण्ट ग्रेगरी (St. Gregory) के साथ ३०४ ई० में आर्मिनिया में आया था। आर्मिनिया के तारों (दारों) नगर में हिन्दुओं का एक मन्दिर था और ईसाई सेण्ट महाशय मूर्तियाँ तोड़ने के लिए दारों पर चढ़ दौड़े थे। इस वृत्तान्त को सुनकर न कोई कहे कि मुसलमानों ही ने हिन्दू-मूर्तियाँ तोड़ी हैं। ईसाई उनसे कम न थे। ज़िनब नौ बरस तक एक ईसाई मठ का अधिकारी था जो मठ हिन्दू-मन्दिर

---

* We have satisfactory evidence of diplomatic visits of Indian envoys to Augustus, a fact which he proudly records in the *Monumentum Ancyranum* and of that Emperor's anxiety for the development of Indian trade (J. R. A. S. 1907 page 682.)

The visits of envoys to Augustus at Tarrago in B. C. 27 is only reported by Orosius, vi, 21, and is not usually accepted (Merivale, iv, 118). But the visit at Samos in B. C. 19 is referred to by Dio, liv, 9, and Strabo, xv, i, p. 720, and is accepted by all modern authorities, *e.g.* Shuckburgh, *Augustus*, p. 179. The *Monumemtum* refers to several visits, c. 31, where see Mommsen's note. This must mean more than one petty embassy, as suggested in Duff (Chronology of India, p. 19).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोड़कर बनाया गया था और आर्मिनिया में सबसे प्रसिद्ध था। इस उपनिवेश के स्थापन की कथा बड़ी रोचक है। इससे ज़िनब के लेख के अनुसार संक्षेपतः पाठकों के विनोद के लिए लिखते हैं।

भारत के दो राजा किसने (Kisane) और दमित्र (Demeter) अपने सम्राट् दिनसखे (Dinsakhe) से बिगड़ कर अपनी जमात के साथ पश्चिम को भागे और आर्मिनिया के राजा वलर्षक (Valarshak) की शरण में गये। वलर्षक ने उन्हें दारों-प्रान्त रहने को दिया और यहाँ उन्होंने विषप (Vishap) नगर बसाया और पड़ोस के अष्टिशत (Ashtishat) नगर में जहाँ आर्मिनिया के देवालय थे अपनी मूर्त्तियाँ भी स्थापित कीं। पन्दरह बरस पीछे आर्मिनिया के राजा ने दोनों को मार डाला परन्तु उनके बेटे कुँवर, मेघतेस, (Meghtes) और होडियन (Hodian) दारों में बने रहे, उस प्रान्त को आपस में बाँट लिया और अपने नाम से तीन गाँव बसाये। उन लोगों ने फ़रात नदी के तट पर एक हरी भरी पहाड़ी पर किसने और दमित्र के नाम के मन्दिर बनवाये। यहाँ सब लोग समय समय पर इकट्ठा होते थे। कुँवर मेघतेस और होडियन के लड़के इन मन्दिरों के पुजारी थे और इस मन्दिर के ख़र्च के लिये बारह गाँव लगा दिये गये थे। यहाँ यह लोग सुख से रहे। ३०४ ई० में सेण्ट ग्रेगरी बल से इनका धर्म नष्ट करने को चढ़ दौड़े। भारतवासी लड़े और सेण्ट महाशय को एक गढ़ में भाग कर शरण लेनी पड़ी। ग्रेगरी कुछ और सेना लेकर फिर चढ़ा, घमासान लड़ाई हुई। भारतीयों की वीरता देखकर रोमी दङ्ग हो गये। एक हज़ार आदमी मारे गये*। भारती दब गये परन्तु फिर भी मूर्तियों को बचाने की विनती करते रहे। ईसाइयों ने न माना। छः पुजारी मन्दिर के द्वार पर मरे और एक को पकड़ कर ईसाइयों ने बहुत कुछ सताया परन्तु उसने गड़ा धन न बताया। इसके बाद ईसाइयों ने मूर्तियाँ तोड़ीं। ये मूर्त्तियाँ १२ से १५ हाथ तक ऊँची थीं और ताँबे की बनी हुई थीं। मन्दिर धूर में मिला दिये गये और उस स्थान पर सेण्ट ग्रेगरी ने एक गिरजा बनवाया और किसने की मूर्त्ति के स्थान पर लकड़ी की सलीब (Cross) खड़ी की। पाँच हज़ार मूर्त्तिपूजकों को बपतिस्मा दिया गया और ४८३ हिन्दू जिन्होंने ईसाई-धर्म स्वीकार न किया सिर मुड़ा कर कास्पियन (Caspian) सागर के तट पर भेज दिये गये।"

इसके आगे लेखक महाशय का अटकल है। हमको तो इस उपनिवेश के स्थापन की कथा भी अटकलपच्चू ही जान पड़ती है। किसेन कृष्ण का रूपान्तर है, और दमित्र दमयन्त्रि है जो विष्णु का एक नाम है। हमारी समझ में यह आता है कि उस समय कुछ भारतीय आर्मिनिया में जाकर बसे थे जिन्हें पीछे ईसाइयों ने जो मुसलमानों के गुरु थे बलात्कार से ईसाई कर डाला। हमने यह वृत्तान्त इतना ही दिखाने के लिए लिखा है कि भारत के बाहर आर्मिनिया तक में भारतवासियों की बस्तियाँ थीं जिन्होंने अपनी वीरता से रोमियों के भी छक्के छुड़ा दिये थे। ऐसी दशा में इस घटना के पचीस बरस पीछे विजयी समुद्रगुप्त का दलबल-समेत उस प्रान्त पर धावा मारना कोई अनोखी बात नहीं।

श्री अवधवासी सीताराम

---

* Aztzan, the chief priest, and his son Demeter were slain in the combat having exhibited a courage worthy of heroes (J. R. A. S. 1904, p. 311).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—वाञ्छा।

[कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता के आधार पर]

मैं गा सकूँ तुम्हारे स्वर में
मुझे दीजिए वीणा-यन्त्र।
मैं सुन सकूँ तुम्हारी वाणी
मुझे दीजिए ऐसा मन्त्र॥
मैं कर सकूँ तुम्हारी सेवा
मुझे दीजिए ऐसी शक्ति।
मैं लख सकूँ तुम्हारे मुख को
मुझे दीजिए ऐसी भक्ति॥
सह जाऊँ आघात तुम्हारा
मुझे दीजिए ऐसा स्थैर्य।
उड़ा सकूँ मैं ध्वजा तुम्हारी
मुझे दीजिए ऐसा धैर्य॥
मैं अनुभव कर सकूँ विश्व को
मुझे दीजिए ऐसे प्राण।
मुझे प्रेम का दान दीजिए
मैं होऊँगा निधन निदान॥
मैं चल सकूँ तुम्हारे सँग में
मुझ पर रखिए दक्षिण हस्त।
मैं तब रण में युद्ध करूँगा
मुझे दीजिए अपना अस्त्र॥
मैं तब सत्य-मात्र से जाग्रत
होऊँगा, करिए आह्वान।
मैं सुख का दासत्व तजूँगा
मुझे दीजिए अपना ज्ञान॥

मङ्गलप्रसाद विश्वकर्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—पारसियों का समाधि-मञ्च ।

बँगला-भाषा के प्रसिद्ध मासिक पत्र "प्रवासी" में इस विषय का जो एक लेख निकल चुका है उसका आशय नीचे दिया जाता है। आशा है, लेख का विषय अधिकांश हिन्दी-पाठकों के लिए नया, अतएव मनोरञ्जक, होगा।

पारसी-जाति बड़ी उन्नतिशील है। कुछ समय से उसकी उन्नति की गति बहुत अधिक होगई है। व्यापार-व्यवसाय में ये लोग बहुत बढ़े-चढ़े हैं। शिक्षा-प्रचार भी इनमें खूब है। सैकड़ों पारसी ऊँचे ऊँचे पदों पर भी अधिष्ठित हैं। इनकी हर प्रकार की उन्नति देख कर अन्य लोगों को भी इनसे सबक़ सीखना चाहिए। पारसियों के कुछ रीति-रस्म आश्चर्य्यजनक और कौतूहलवर्द्धक हैं। इन रीति-रस्मों को ये लोग अपने प्राचीन वासस्थान ईरान अर्थात् फ़ारिस से अपने साथ इस देश को लेते आये हैं।

कई सौ वर्ष पहले पारसी-जाति के कुछ लोग, मुसलमानों के अत्याचार से पीड़ित होकर, फ़ारिस छोड़ कर गुर्जर-देश में आये। कालान्तर में उन्हीं लोगों के कुछ वंशज बम्बई में बस गये। धीरे धीरे इन लोगों की संख्या बढ़ गई। तब इन्हें अपनी जाति के मृत मनुष्यों के शवों के संस्कार के लिए एक विशेष स्थान की योजना करनी पड़ी। उसी स्थान अर्थात् समाधि-मञ्च के विषय में यहाँ पर कुछ लिखा जाता है।

पारसियों के धर्म्म-ग्रन्थ का नाम अवस्ता है। वह ज़ेन्द भाषा में है। इन लोगों के धर्म्मप्रवर्तक ज़रथुस्त के मत में पृथ्वी और अग्नि ही सबसे अधिक पवित्र हैं। उनको किसी तरह कलुषित, अपवित्र या मलिन करना इन लोगों को सह्य नहीं। ऐसा करना ये लोग पाप समझते हैं। मृत मनुष्य को जलाने से अग्नि अपवित्र हो जाती है। उसे पृथ्वी पर यों ही छोड़ देने या भीतर गाड़ देने से भूमि कलुषित हो जाती। इससे ये लोग शव को न तो जलाते हैं, न गाड़ते हैं और न भूमि पर ही पड़ा रहने देते हैं। गाड़ देने से भी भूमि अपवित्र हो सकती है। इन आपत्तियों से बचने के लिए वे किसी पहाड़ पर या किसी और ही ऊँची जगह एक ऐसा मञ्च बनाकर उस पर शव रख देते हैं, जिससे न तो पृथ्वी ही कलुषित होती है, न अग्नि ही अपवित्र होती है और न किसी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट ही होता है। समाधि-मञ्च पत्थर के बनाये जाते हैं। जहाँ पर पारसियों की संख्या अधिक होती है वहाँ ऐसे मञ्च का निर्म्माण ज़रूर ही किया जाता है। मञ्च-निर्म्माण में बहुत रुपया ख़र्च होता है। बम्बई में जो समाधि-मञ्च है वह बहुत बड़ा है।

पारसियों की मातृ-भाषा गुजराती में समाधि-मञ्च का नाम डोकमा है। समाधि-मञ्चों के निर्म्माण की प्रणाली सर्वत्र एक ही सी है। मञ्च समतल भूमि से प्रायः ५० फ़ुट ऊँचा होता है, किन्तु उसके ठीक बीच में एक कुवाँ होने के कारण वह वलयाकार देख पड़ता है। कुवाँ पुख़्ता होता है। वह पत्थरों से अच्छी तरह बाँधा जाता है। उसके चारों तरफ़ की दीवारें बहुत ऊँची होती हैं। उँचाई उनकी भी कोई ५० फ़ुट होती है। दीवारों में जँगलेदार दो ऊँची ऊँची खिड़कियाँ होती हैं। ऊपरवाली खिड़की से नीचेवाली कुछ बड़ी होती है। उसी में से शववाहक आते-जाते है। इन खिड़कियों में किवाड़ भी रहते हैं। उनमें ताला बन्द रहता है, जो ज़रूरत ही के वक़्त खोला जाता है। ऊपर की खिड़की से शववाहक भीतर का दृश्य अच्छी तहर देख सकते हैं।

मञ्च तीन भागों में विभक्त रहता है। इसका कारण है पारसियों के धर्म्मशास्त्र-निर्दिष्ट तीन प्रकार के सद्गुण। उनके नाम हैं—सत्कार्य्य, सद्वाक्य और सच्चरित्रता। इन्हीं तीनों सद्गुणों के अनुसार मञ्च में तीन भागों की कल्पना की गई है। पहले भाग में पुरुषों की, दूसरे में स्त्रियों की और तीसरे में बच्चों की लाशें रक्खी जाती हैं।

मञ्च में शवस्थापना के समय शव के आभूषण और वस्त्राच्छादन उतार लिये जाते हैं। फिर वे जला दिये जाते हैं। पारसियों के धर्म्म-शास्त्र का आदेश है कि मनुष्य नग्नावस्था ही में इस संसार में आता है। अतएव उसे इसी अवस्था में यहाँ से जाना भी चाहिए। इसी से नग्नीकरण की यह क्रिया की जाती है। जिस समय शव के वस्त्रादि जलाये जाते हैं उस समय उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मीय जन मृत व्यक्ति के विषय में अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट करते हैं। वे उसके गुणों का गान भी करते हैं। यह सब करके वे वहाँ से बिदा हो जाते हैं।

मञ्च में शव रख देने पर बहुत से मांसभक्षी पक्षी उस पर टूट पड़ते हैं। वे घण्टे ही दो घण्टे में उसका मांसादि खा जाते हैं। कुछ दिनों में सूर्य्य के ताप से शव का अस्थिपञ्जर सूख जाता है। तब शववाहक आकर उसे पूर्वनिर्दिष्ट कुयें में डाल देते हैं। वहाँ डाली जाने पर, कुछ समय के अनन्तर, शव की हड्डियाँ गलकर "फास्फर" के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। काल के प्रभाव से, इस तरह, शत्रु-मित्र और सधन-निर्धन सभी एक ही अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

जिस शिखर या ऊँची जगह पर मञ्च बनता है उसके नीचे चार अन्तःकूप भी होते हैं। ये चारों मञ्च में बने हुए बड़े कुवें से बहुत नीचे होते हैं। मञ्च का बड़ा कुवाँ नीचे तक पत्थरों से जुड़ा रहता है। उसमें वर्षा का एकत्र हुआ जल, चार पुख़्ता नालियों-द्वारा, चारों अन्तःकूपों में गिराया जाता है। बरसाती पानी सड़े-गले शव को धोकर साफ़ कर देता है। इसके अनन्तर वह नालियों की राह, अन्तःकूपों में गिरता है। कुवों का बाँध हड्डी इत्यादि के स्पर्श से कलुषित हो जायगा, अतएव पृथ्वी को अपवित्र होना पड़ेगा, इस डर से बरसाती पानी को बिना साफ़ किये हड्डी-युक्त नहीं गिरने देते। मञ्च के कूवें के जल को स्वच्छ करने के लिए हर साल, जलवाहक नलियों में झाँवा, बालू और कङ्कड़-पत्थर रख दिये जाते हैं। अन्तः-कूपों में भी बालू की कई तहें डाली जाती हैं।

लाश को ज़मीन में गाड़ देने से ज़मीन और हवा दोनों मलिन हो जाती हैं। कृमियों का भक्ष्य हो जाने और मांसादि के सड़ जाने पर भी, आसपास की वायु, बहुत समय तक, कुछ न कुछ अस्वास्थ्यकर बनी ही रहती है। परन्तु पारसियों के समाधि-मञ्च में घण्टे ही दो घण्टे में शव अस्थिमात्र ही रह जाता है। अतएव वायु में विशेष विकार नहीं उत्पन्न होता। हड्डियों के गलने से कुछ दुर्गन्ध अवश्य फैलती है। परन्तु मञ्च बहुत ऊँची जगह पर होने के कारण नीची जगहों में रहनेवाले मनुष्यों का अनिष्ट नहीं कर सकती। वह ऊपर ही ऊपर फैल कर कुछ समय में नष्ट हो जाती है।

अमीर और ग़रीब सभी का सत्कार या संस्कार एक ही समाधि-मञ्च में होता है। भेद-भाव नहीं रक्खा जाता! लोहे की छड़ों से बने हुए पलँग पर रखकर शववाहक लोग शव को उसके घर से समाधि-मञ्च तक लाते हैं। मञ्च से घर चाहे जितनी दूर हो, मृत व्यक्ति के कुटुम्बी और आत्मीय जन घर से पैदल ही आते हैं। वे लोग शव का स्पर्श तो नहीं करते, परन्तु उसकी शय्या या पलँग को हाथों पर बारी बारी से उठाते ज़रूर हैं। मातम करनेवाले अपने बायें हाथ में एक एक रूमाल रखते हैं।

शव लानेवाले लोग दो श्रेणियों में विभक्त हैं। एक श्रेणी के लोग खाड़िया और दूसरी के नाशादुलार कहाते हैं। पिछली श्रेणीवालों की गणना धर्म्माचार्य्यों में है। उन्हें कर्मकाण्डी समझना चाहिए। वही अन्त्येष्टि-संस्कार करने, शव को मञ्च के भीतर पहुँचाने और मञ्च के भीतर बाहर आने-जाने के अधिकारी होते हैं। मृत व्यक्ति के आत्मीय जन केवल समाधि-मञ्च के द्वार तक जा सकते हैं। खाड़िया श्रेणीवाले भी शव को वहीं तक पहुँचा सकते हैं। मञ्च में कोई धार्म्मिक कृत्य नहीं होता। हाँ, मृतक के घर अन्त्येष्टि-कार्य-सम्बन्धिनी उपासना ज़रूर होती है। बम्बई बहुत बड़ा शहर है। वहाँ हज़ारों पारसी रहते हैं। इस कारण शहर के कई भागों में शववाहक लोग नियुक्त हैं। ज़रूरत पड़ने पर वही शव-वहन करते हैं। महीने में सौ पचास मौतें हुआ ही करती हैं। वाहक नियुक्त रहने से समय पर उन्हें ढूँढ़ना नहीं पड़ता।

जो पारसी मरते और जिनकी लाशें समाधि-मञ्च में पहुँचती हैं उनके नाम-धाम एक रजिस्टर में दर्ज किये जाते हैं।

पारसियों के धर्म्मशास्त्र के लेखानुसार आत्मा अवि-नाशी, स्वाधीन और अपने कृत-कर्म्मों का फल भोगने-वाली है। कर्म्मों ही के विपाकानुसार मनुष्य सुख-दुःख भोग करता है। शुद्धात्मा सुख पाती है, दुष्टात्मा दुःख।

बम्बई में जो समाधि-मञ्च है वह बहुत बड़ा है। उसे देखने के लिए विभिन्न धर्म्मों और देशों के लोग जाया करते हैं। मञ्च मलाबार हिल नामक एक ऊँची पहाड़ी पर है। वह चारों तरफ़ दीवारों से घिरा हुआ है। चहार-दीवारी के भीतर एक प्राङ्गण है। उसी के बीच में समाधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मञ्च हैं। मञ्च एक नहीं, पाँच हैं। पर सब एक ही प्रकार के नहीं। तीन बड़े हैं, दो छोटे। एक तो आत्महत्या करनेवालों और चोट इत्यादि लगने से मरनेवालों के लिए है। तीन सर्व-साधारण के लिए हैं। और एक है केवल मोदी-नामक परिवार के लिए। मोदी-वर्ग के पारसी ही पहले-पहल बम्बई में आकर बसे थे। इसी से इस परिवार को यह विशेष सम्मान प्राप्त हुआ है। दर्शक लोग मञ्च के पास नहीं जाने पाते। उससे कोई ३० फुट दूर ही उन्हें ठहर जाना पड़ता है। वहाँ पर पारसी लोगों का एक कर्मचारी रहता है। वही दर्शकों को सब बातें बता देता है।

मञ्च के पास ही एक उद्यान है। उस उद्यान में एक मन्दिर है। जब से पारसी लोग बम्बई में आये तब से उन्होंने अखण्ड अग्नि की ज्वाला जला रक्खी है। तब से वह कभी एक क्षण के लिए भी नहीं बुझी। यह पवित्राग्नि उसी मन्दिर में है। उसमें अनवरत चन्दन-काष्ठ डाला जाता है। उसकी सुगन्धि दूर दूर तक फैला करती है। उद्यान के भीतर और बाहर भी ताड़ के सैकड़ों वृक्षों का झुरमुट है। उन्हीं पर और उद्यान की चहारदीवारी पर भी मांसाहारी पक्षी बैठे हुए शवागमन की राह देखा करते हैं। उद्यान बहुत मनोरम है। वह नाना प्रकार की पुष्पलताओं और प्रसून-पादपों से सङ्कुलित है। उसके दो तरफ़ समुद्र है। वहाँ से बम्बई-नगर की शोभा अच्छी तरह देखी जा सकती है।

समाधि-मञ्च देखनेवालों को दरख़्वास्त देकर पारसी-पञ्चायत से "पास" लेनी पड़ती है। बिना पास के मञ्च के कर्मचारी किसी को न वहाँ जाने देते हैं, न कुछ देखने ही देते हैं। जो वहाँ नहीं जा सकते वे बम्बई के "जादूघर" में मञ्च का नमूना देख सकते हैं। उस नमूने के पास ही उसका विवरण भी लिखा रक्खा रहता है। ऐसा एक नमूना और विवरण कलकत्ते के भी अजायब-घर में रक्खा है।

जयरामदास

३—टेरसा।

मैं तब मास्को के एक कालेज में पढ़ता था। मेरी स्थिति कुछ अच्छी नहीं थी। इसी से मैं एक छोटे होटल में रहता था। वहाँ सभी तरह के स्त्री-पुरुष रहते थे।

कोठे पर एक कमरे में मैं रहता था। मेरे कमरे के सामने ही एक दूसरा कमरा था। उसमें एक स्त्री रहती थी। वह पोलैंड की थी। स्त्रियों को कुरूपा कहना औचित्य की सीमा के बाहर है। तो भी वह ऐसी नहीं थी कि किसी पुरुष का चित्त उसकी ओर आकृष्ट हो। उसका लंबा शरीर था। शरीर में कोमलता नहीं थी। परन्तु वह खूब मज़बूत थी। आँखें बड़ी तीव्र थीं। आवाज़ भी तेज़ थी। उसका रङ्ग-ढङ्ग पुरुषों की तरह था। सच तो यह है कि उसे देखते ही मुझे कुछ डर सा लगता था। जब तक वह अपने कमरे में रहती थी तब तक मैं अपने कमरे का दरवाज़ा बंद रखता था। ग़नीमत इतनी थी कि वह अपने कमरे में कम रहती थी। कभी कभी सीढ़ी पर उससे भेंट हो जाया करती थी। और तब प्रायः वह हँसकर मुझसे पूँछ बैठती थी—कहो छोटे बाबू, क्या हाल है? अच्छे तो हो? उसका यह हँसना मुझे बड़ा बुरा लगता था। कह तो मैं कुछ सकता नहीं था, क्योंकि वह स्त्री थी। अपने मन के भाव को किसी तरह दबाकर मैं दूसरी ओर मुँह कर चला जाता था। मेरी घृणा बढ़ती ही जाती थी। कभी कभी यह इच्छा होती थी कि मैं कमरा बदल लूँ, परन्तु मेरा यह कमरा ऐसे अच्छे मौके पर था कि उसे छोड़ने को जी नहीं होता था। इसी से मुझे उस स्त्री की सभी बातें चुपचाप सह लेनी पड़ती थीं।

एक दिन मैं आराम से कोच पर लेटा हुआ था। एकाएक मेरे कमरे का दरवाज़ा खुल गया। मैंने चौंक कर देखा कि दरवाज़े पर मेरी वही प्रतिवेशिनी स्त्री खड़ी है। उसने उसी भद्दे स्वर से कहा—"कहो छोटे बाबू, क्या हाल है?" मैंने उत्तर दिया—आपको कुछ काम है क्या।

आज उसका चेहरा कुछ बदला हुआ था। वह उतना कठोर नहीं था। ऐसा जान पड़ता था कि उसमें कुछ कोमलता आ गई है। उसने कहा, तुमसे मुझे एक प्रार्थना करनी है। मानो तो कहूँ।

सुनकर मैं सोचने लगा कि इसका क्या मतलब है, कुछ बुरे उद्देश से तो यह नहीं आई है। इसी सोच-विचार में मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया, चुपचाप कोच पर लेटा ही रहा। वह स्त्री बड़ी नम्रता से कहने लगी—मुझे एक चिट्ठी लिखानी है, लिख दोगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तो कुछ उपाय न था। मैंने अपने मन में कहा—हरामज़ादी घड़ी भर आराम भी नहीं करने देती। परन्तु उठकर मैं टेबुल के पास बैठ गया और काग़ज़ लेकर बोला—कुर्सी पर बैठ जाइए। आप कहते जाइए मैं लिखता जाऊँगा।

वह एक कुर्सी पर बैठकर मेरी ओर कुछ ऐसे ढङ्ग से देखने लगी कि मानो वह कोई अपराध कर रही हो।

मैंने पूछा—किसको लिखना होगा?

वह बोली—बोल्सलाव कैसपुटक स्विट्सियाना वार्स-रोड?

मैंने कहा—अच्छा क्या लिखना होगा?

वह कहने लगी—लिखो—प्रियतम, प्राणेश्वर, हृदयेश्वर, तुम्हारी चिट्ठी नहीं आई। क्या तुम अपनी छोटी टेरसा को भूल गये। क्या वह तुम्हारी आँखों की पुतली नहीं है—

आँखों की पुतली से इस लंबी-चौड़ी स्त्री की तुलना कर मैं अपनी हँसी न रोक सका। मैंने हँसते हुए उससे पूँछा—यह बोलिस्ट कौन है?

"बोलिस्ट नहीं बोल्स, वह मेरा प्रेमी है"

"तुम्हारा प्रेमी!"

"हाँ, क्यों इसमें अचरज क्या है? मेरे समान कन्याओं के क्या प्रेमी नहीं हो सकते"।

कन्या! चालीस वर्ष पार कर लेने पर भी यह अपने को कन्या ही समझती है। परन्तु मैंने अपने मन के भाव को दबाकर कहा—अचरज क्या है। अच्छा कब से तुम्हारा उससे परिचय हुआ है?

"छः साल से"

"छः साल! ख़ैर, अब आगे कहिए।"

वह चिट्ठी लिखाने लगी और मैं लिखने लगा। चिट्ठी इस तरह लिखी गई कि यदि उसकी लिखानेवाली टेरसा न होती तो मुझे बोल्स बनने में कोई आपत्ति न थी।

चिट्ठी ख़तम हो जाने पर उसने मुझे धन्यवाद देकर कहा—आपने बड़ी दया की। अगर मेरे लायक़ कोई काम हो तो बतलाइए। अगर कमीज़ फट गये हों तो लाइए मैं सी दूँ।

उसकी यह घनिष्ठता देखकर मैंने कुछ विरक्त होकर कहा—मुझे कुछ ज़रूरत नहीं है, आप जायँ।

वह चली गई। दो सप्ताह बीत गये। एक दिन शाम को वर्षा के कारण मैं कहीं बाहर नहीं जा सका। खिड़की के पास बैठ कर मैं बाहर का दृश्य देखने लगा और तरह तरह की बातें सोचने लगा। कोई काम करने की तबीयत नहीं होती थी। यह नहीं जान पड़ता था कि समय किस तरह काटूँ। इसी समय दरवाज़ा खुल गया। जी में जी आया। समझा कि कोई दोस्त आया। परन्तु आँख उठाकर देखा तो टेरसा खड़ी है।

टेरसा कहने लगी—तुम कोई काम में तो नहीं लगे हो?

"नहीं। क्यों"?

"और एक चिट्ठी लिख दोगे"?

"क्यों नहीं। उसी बोल्स को तो लिखना होगा?"

"नहीं! इस बार बोल्स की ओर से लिखना होगा।"

"क्या कह रही हो"?

बात यह है कि यहाँ हमारे एक मित्र हैं। वे अपनी एक प्रेमिका को चिट्ठी लिखना चाहते हैं। उसका भी नाम टेरसा है। बस इसी तरह से चिट्ठी लिख दो।"

मैं उसकी यह बात समझ न सका। बोला—क्या बक रही हो, सब झूठी बातें हैं। तुम्हें छोड़कर और कौन यहाँ दूसरी टेरसा है।

यह सुनते ही उसका मुँह सूख गया। उसके दोनों हाथ काँपने लगे। ऐसा जान पड़ा कि वह कुछ कहना चाहती है, पर कुछ नहीं कह सकती। मैं सुनने की प्रतीक्षा में बैठा रहा। परन्तु इतना मैं समझ गया कि मुझसे भूल हो गई। उसकी बातों का कोई गूढ़ मतलब है। परन्तु वह बिना कुछ कहे दरवाज़ा खोलकर बाहर चली गई।

मुझे कुछ दुःख सा हुआ। यह तो मैंने समझ लिया कि टेरसा को बड़ा दुःख हुआ है। यही सोचकर मैं उसके कमरे की ओर चला। दरवाज़ा खोलने पर देखा कि वह टेबुल के ऊपर दोनों हाथों से मस्तक को पकड़े हुए बैठी है।

मैंने पास जाकर कहा—सुनती हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

मैंने फिर कहा—सुनिए तो।

वह कुर्सी छोड़कर खड़ी हो गई। उसकी दोनों आँखें मानो जल रही थीं। उसने अपने दोनों हाथ मेरे कंधे के ऊपर रख कर कहा—सुनो, मैं इस बार सच बात बतलाती हूँ। बोल्स नाम का कोई आदमी नहीं है और न यहाँ कोई टेरसा ही है। परन्तु इससे तुम्हारी हानि है। काग़ज़ पर दो-चार लाइन लिख देने में कौन सी बुराई है। बोल्स नहीं है तो न सही, परन्तु मैं तो हूँ।

उसके इस व्यवहार से मेरा आश्चर्य और भी बढ़ गया। मैंने कहा—यदि यही बात है तो तुम लिखाती क्यों हो? बोल्स तो कोई नहीं है।

"नहीं"।

"टेरसा भी और कोई नहीं है"।

"नहीं"।

तब तो मैं उसकी ओर चुपचाप ताकने लगा। समझा कि यह बिलकुल पागलपन की बात है। टेरसा ने टेबुल से मेरी हाथ की लिखी हुई चिट्ठी निकाल कर मेरे हाथ में दे दी और कहा कि अपनी चिट्ठी ले जाओ, मैं किसी दूसरे से लिखवा लूँगी।

मैंने चिट्ठी को देखकर कहा—तुम्हारा मतलब क्या है टेरसा, मैं कुछ समझ नहीं सका। चिट्ठी लिख लेने पर भी तुमने इसे भेजा क्यों नहीं?

"किसको भेजती"।

"क्यों, बोल्स को"।

"कह तो दिया कि बोल्स कोई नहीं है।"

तब भी मैं कुछ समझ न सका। टेरसा कहने लगी—नहीं समझ सके? बोल्स कोई नहीं है, परन्तु मैं चाहती हूँ कि कोई ऐसा ही आदमी रहता जो मुझे वैसा ही चाहता। मैंने समझ लिया कि वह बोल्स है और इसी से मैं उसके पास चिट्ठी लिखवा रही हूँ। तुम्हारा इसमें क्या बिगड़ता है?

तुरन्त सब बातें मेरी समझ में आगईं। इस कुत्सित नारी को कोई नहीं चाहता, इसी से उसने एक नायक की कल्पना कर उसी कल्पित नायक से पत्र-व्यवहार कर रही है—मानो बोल्स टेरसा को चिट्ठी लिख रहा है और टेरसा उसका उत्तर लिख देने के लिए मुझसे अनुरोध कर रही है।

टेरसा कहने लगी—अगर तुम चिट्ठी लिख देते तो मैं किसी दूसरे के पास उसे पढ़ाती और तब मुझे ऐसा जान पड़ता कि मानो स्वयं बोल्स ही अपनी मन की बातें मुझे लिख रहा है और तब फिर मैं उस चिट्ठी का उत्तर लिखाती। इससे कुछ तो जी हलका होता। घड़ी भर इसी कल्पित मोह में रहती कि कोई मेरा भी ख़याल रखता है।

मैं अपनी बुद्धि को धिक्कारने लगा। इतनी छोटी सी बात मैं नहीं समझ सका। प्रेम की आकांक्षा किसे नहीं होती, फिर चाहे वह सत्य हो या कल्पित। उस दिन से मैं बराबर हफ़्ते में दो बार टेरसा के लिए चिट्ठी लिखने लगा। एक चिट्ठी में मैं बोल्स की बातें लिखता और फिर दूसरी चिट्ठी में बोल्स को टेरसा की ओर से लिख कर देता। उस दिन से टेरसा दासी की तरह मेरा काम करने लगी। तीन महीने के बाद किसी अपराध में उसे जेल हो गया और फिर उसकी कोई ख़बर मुझे नहीं मिली।

हाय, हम लोग कितने निर्बोध हैं, कितने स्वार्थपर हैं। हम लोग मुख से तो यह कहते हैं कि सभी मनुष्यों के हृदय हैं। परन्तु सभी समय हम इसका ख़याल नहीं करते। दूसरों के साथ व्यवहार करते समय हम यह बात भूल जाते हैं। हम लोग अपने ही सुख-दुःख में विलीन रहते हैं*।

हृषीकेश

४—भारत में पारसियों का आगमन।

सन् ६४० में पारसियों के सासानिड राजवंश के अन्तिम राजा एज़्दीजर्द को ख़लीफ़ा उमर ने पदच्युत किया। इसके बाद मुसलमानों ने ज़ोरास्टर के प्राचीन अनुयायियों को बहुत वर्षों तक अपने अत्याचार से पीड़ित किया, हज़ारों लोगों को अत्याचार से मुसलमान बनाया। इस समय सारे संसार में पारसियों की संख्या एक लाख

* गोर्की की एक कहानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लगभग है। इनमें से अस्सी हज़ार के लगभग केवल बम्बई नगर में है। उक्त प्रान्त में पारसियों की संख्या इतनी अधिक क्यों है, इसका खुलासा निम्नलिखित वृत्तान्त से हो जायगा।

मुसलमानों का अत्याचार सह कर भी जो कुछ थोड़े से लोग अपने धर्म पर आरूढ़ रहे उनको भी जब अपने देश में सुख की आशा न रही तब वे स्वदेश का त्याग करके सन् ७१७ के लगभग आर्मुज़ बन्दर से चल दिये। भारत में काठियावाड़-प्रान्त के निकट दिव बन्दर में आकर वे पहले-पहल उतरे। वहाँ वे कुछ वर्षों तक रहे। परन्तु जब देखा कि हम यहाँ भी शान्तिपूर्वक अपने दिन नहीं व्यतीत कर सकते तब वे फिर जहाज़ में बैठकर दक्षिण की ओर चल पड़े। इसके बाद किनारे किनारे चलकर गुजरात के संजान बन्दर पर आकर उतरे। मार्ग में वे बड़े भारी तूफ़ान में फँस गये थे। उस समय कुछ भावुक और भक्त पारसियों ने यह मानता मानी कि यदि हम सुरक्षित रूप से ज़मीन पर जा उतरेंगे, तो अपने पवित्र अग्नि को, जो बुझ गया है, फिर विधिपूर्वक प्रज्वलित करेंगे। इस पर थोड़ी ही देर बाद तूफ़ान शान्त होगया और आकाश पहले की भाँति स्वच्छ हो गया। उस समय गुजरात में एक राजपूत राजा राज्य करता था। उसने पारसियों को अपने राज्य में बसने के लिए आज्ञा दे दी और एक शर्तनामा लिखकर उनके अधिकारों को निश्चित कर दिया। इस शर्तनामे के अनुसार उनको शस्त्र रखने का निषेध किया गया; उनके पहनावे का स्वरूप निश्चित कर दिया गया और यह बात भी जान ली गई कि उनकी धर्म-विधियाँ और सामाजिक उत्सव किस प्रकार मनाये जाते हैं। लगभग सात सौ वर्ष तक पारसी लोग उस राजा के राज्य में सुखपूर्वक रहे। इस समय में उनकी संख्या भी खूब बढ़ी और उनके वैभव की भी वृद्धि हुई। पर उनके दुर्भाग्य ने फिर उनको कष्ट दिया। अहमदाबाद के मुग़ल-सूबेदार मुहम्मद बेगड़ा ने संजान-प्रान्त के राजा पर चढ़ाई कर दी और उसको पराजित करना चाहा। राजा ने पारसी लोगों को शस्त्र देकर युद्ध पर भेजा। पारसियों ने अपने शूर सेनापति आर्देसर की अधीनता में तीन बार मुग़लों की सेना को मार भगाया, पर चौथी बार हारकर पारसियों को संजान-प्रान्त छोड़ भग जाना पड़ा। इसके बाद उन्होंने नवसारी और उद्वाड़ा में अपनी बस्तियाँ बसाईं। सन् ७२० में उन्होंने जो अपनी पवित्र अग्नि संजान में विधिपूर्वक प्रज्वलित की थी वह आज लगभग बारह सौ वर्ष से बराबर उद्वाड़ा में जल रही है। इसका नाम है सच्चा अग्नि-होत्र!

पारसी लोग जिस समय संजान बन्दर में आये उस समय वहाँ जाडेराना (जयदेव राना) राज्य करता था। उसके राज्य में बसने के लिए उन्होंने एक प्रार्थनापत्र दिया था। उस प्रार्थनापत्र में पन्द्रह संस्कृतश्लोक भी थे। इन श्लोकों में पारसियों के मोबेदों (पुरोहितों) ने अपने धर्म और रीति-रवाज इत्यादि बातों का उल्लेख किया है। इन श्लोकों का अनुवाद नीचे दिया जाता है—

(१) जो प्रतिदिन सूर्य, पञ्चमहाभूत और त्रिभुवन की, सुराधीश होरमज़्द और नैशमंत्रों के द्वारा, त्रिकाल पूजा-अर्चा करते हैं वे हम शौर्यवीर्य-धैर्यादि गुणों से युक्त और दयाशील पारसी लोग हैं।

(२) हम अपने धर्म की आज्ञा के अनुसार हवन, स्नान, ईश्वरचिन्तन, स्वाध्याय, भोजन और मल-मूत्र-विसर्ज्जन, इन सात अवसरों पर मौन धारण करते हैं। हममें से जो सम्पन्न होते हैं वे दानशूर होते हैं और सुगन्धित काष्ठ, पुष्प तथा स्वादिष्ठ फलों से अग्नि की पूजा करते हैं। ऐसे हम शौर्यवीर्य इत्यादि इत्यादि।

(३) जो शरीर में कुर्ता पहन कर उस पर कमर में ऊनी तागों की पवित्र मेखला धारण करते हैं और सिर पर दुकोनी टोपी लगाते हैं वे हम गौरवर्ण, धैर्यवान् पारसी लोग हैं।

(४) विवाह-समारम्भ, अन्य उत्सव और सदैव के त्योहारों के दिन हम गायन-वादन इत्यादि से आनन्द मनाते हैं। ऐसे अवसरों पर हमारी कन्यायें श्रीखंड चन्दन और अन्य सुगन्धित द्रव्यों के उबटन शरीर में लगाती हैं; हमें अपने धर्म पर, जो कल्याणदायक विधियों से परिपूर्ण है, अटल श्रद्धा है। ऐसे हम गौरवर्ण इत्यादि।

(५) हम अपने घरों को स्वच्छ रखकर उनमें स्वादिष्ठ अन्नों का संग्रहे करते हैं। सुपात्र भिक्षुकों को हम वापी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूपतड़ागादि का उदक अर्पण करके धन, वसन, इत्यादि से उनका सम्मान करते हैं। ऐसे हम इत्यादि।

(६) सुख दुःख, भयाभय, ज्ञानाज्ञान, सुगुण-दुर्गुण, न्यायान्याय, आरोग्य-व्याधि, प्रकाशान्धकार, उत्पत्ति-विनाश इत्यादि द्वन्द्व जिस प्रकार विश्व की रचना में पाये जाते हैं, वैसे ही परस्परविरोधी द्वन्द्व हमारे धर्ममत में भी हैं। ऐसे हम इत्यादि।

(७) गोमूत्र को अभिमन्त्रित करके, उसका त्रिवार पान करके, हम अपने शरीर की अन्तःशुद्धि करते हैं और इस प्रकार अन्तःशुद्धि तथा बाह्यशुद्धि करने के बाद हम अपनी मेखला फिर धारण करते हैं। मेखला धारण किये बिना जप, ध्यान, होम इत्यादि कर्म करने के लिए हमको अपने धर्म का प्रतिबन्ध है। ऐसा हमारा आचार है। वे हम इत्यादि।

(८) वेश्यागमन का हमारे धर्म में तीव्र निषेध है। हम अपने पूर्वजों को पूज्य मान कर उनका श्राद्ध करते हैं। अग्नि को अर्पण किये बिना हम मांस भक्षण नहीं करते। हमारी स्त्रियाँ अस्पृश्यावस्था और प्रसूतावस्था में पृथ्वी पर सोती हैं। हमारे विवाह सुमुहूर्त पर होते हैं; और गतभर्तृका स्त्रियों को हम शुद्ध नहीं मानते। ऐसे हम इत्यादि।

(९) हमारी स्त्रियाँ प्रसूत होने के बाद चालीस दिन तक रसोई नहीं बनातीं और स्नान भी नहीं करतीं। उन दिनों वे भाषण और निद्रासेवन में परिमित रहती हैं। ऐसी हमारी जाति उच्च और सर्वमान्य है।

(१०) छः महीने के सूखे हुए काष्ठ हम अग्नि को अर्पण करते हैं। मलयागिरि-चन्दन, अगर और धूप से हम रोज़ पाँच बार अग्नि पूजा करते हैं। अग्नि को हम एक बड़े ढक्कन से ढाँक कर रखते हैं, जिससे उस पर सूर्य की किरण न पड़े। हमारी वासनायें सदा शुद्ध रहती हैं। ऐसे हम इत्यादि।

(११) हम अपने गुरुओं के उपदेश के अनुसार और अपने धर्म की आज्ञा के अनुसार कमर के आसपास जो मेखला धारण करते हैं उसको धारण करने से हमको गङ्गा-स्नान का फल प्राप्त होता है। ऐसे हम इत्यादि।

(१२) हम यश, धर्मभाव और सद्वासना देनेवाले होरमज़्द प्रभु का ध्यान करते हैं। भोजन के पहले और भोजन के बाद हम प्रार्थना करते हैं, जिससे हमको अन्न का दुःख नहीं होता। ऐसे हम इत्यादि।

(१३) हम अपनी स्त्रियों को मासिक धर्म के बाद सात दिन में और प्रसूत होने के बाद एक महीने में शुद्ध मानते हैं। हम सुन्दर वस्त्र पहनते हैं। ऐसे हम गौरवर्ण इत्यादि।

(१४) पापक्षालनार्थ हम पश्चात्तापपूर्वक गोमूत्र से स्नान करके नौ दिन तक पञ्चगव्य का सेवन करते हैं। इसके बाद हम शुद्ध होते हैं। गुरूपदेश हम सदैव ध्यान में रखते हैं और तदनुसार आचरण करते हैं। ऐसे हम इत्यादि।

(१५) जिस ऋषि ने परमेश्वर की स्फूर्ति से ये विधियाँ मनुष्यमात्र के लिए बतला दी हैं उसी ने ऐसा आश्वासन दिया है कि जो लोग इन विधियों का पालन करेंगे उनका अक्षय कल्याण होगा; और इस बात पर हमारा दृढ़ विश्वास है कि इन विधियों के पालन करनेवालों को स्वर्ग में स्थान मिला है। उनके लिए भक्त पारसीजन चन्दन और दाल का आवाहन करते हैं।

राना जयदेव का उत्तर।

(१६) श्रद्धापूर्वक होरमज़्द प्रभु के पन्थ पर चलनेवाले लोगों का स्वागत हो! उनकी जाति की वृद्धि हो! उनकी प्रार्थनाओं से उनके पापों का क्षालन हो! लक्ष्मी उनको धनधान्य की समृद्धि देकर उनकी इच्छाओं को परिपूर्ण करे! और जिन शारीरिक और मानसिक गुणों से वे इस समय भूषित हैं उन्हीं गुणों से वे सदैव भूषित रहें!

—"विविध ज्ञानविस्तार" से।

लक्ष्मीधर वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

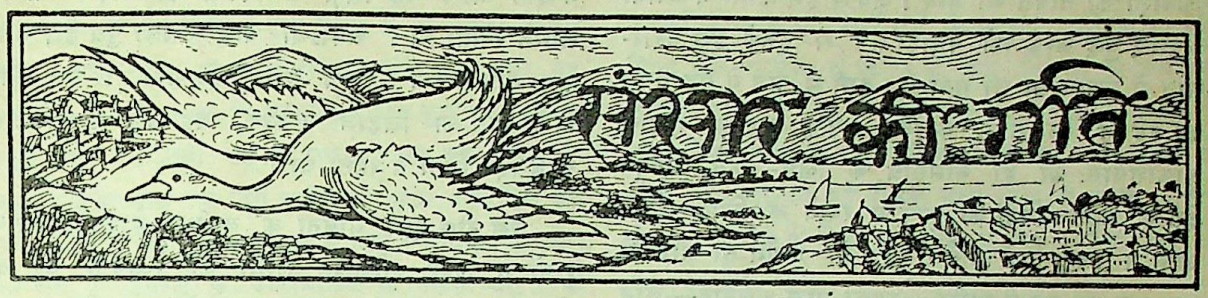

१—लीग आफ़ नेशन्स का ख़र्च और भारतवर्ष।

योरप के प्रायः सभी देश स्वतन्त्र हैं। स्वतन्त्र होने से, जान पड़ता है, मनुष्यों की तरह, देशों में भी विशेष उदारता आ जाती है। शक्ति होने ही से दूसरों की रक्षा करने और उनके दुख-दर्द दूर करने की प्रवृत्ति हृदय में जाग्रत होती है। जिसके बाहुओं में बल नहीं वह बेचारा ख़ुद अपनी ही आत्मा की सहायता नहीं कर सकता, दूसरों की भला वह क्या करेगा। शक्तिमत्ता और स्वातन्त्र्य-भोग के कारण ही योरप के अधीश्वर दूसरों की रक्षा करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। वे इतने दयावन्त हैं कि किसी अन्य देश के ऊपर किया गया अत्याचार नहीं सह सकते। जहाँ किसी ने सिर उठाया कि वे दौड़ पड़े। टर्की ने कुछ जातियों को सताया; बस उसकी ख़बर ले ली गई। जर्मनी ने फ़्रांस पर चढ़ाई की और बेलजियम पर अत्याचार किया। बस उसका गर्व खण्डित कर दिया गया। लगातार ५ वर्ष तक युद्ध करके उसकी सामरिक शक्ति ख़ाक में मिला दी गई। इसके साथ ही उससे अरबों रुपया हर्जाने का लेने की योजना भी कर दी गई। लो, करो अब दूसरों पर अत्याचार; टपकाओ अब औरों की धन-दौलत देख कर लार।

योरप के इन परोपकाररत देशों की दया का यह हाल है कि ये लोग असभ्यों, बर्बरों और जङ्गली आदमियों तक को उनकी वर्तमान अवस्था में नहीं देख सकते। वे चाहते हैं कि वे भी सभ्य हो जायँ, वे भी शिक्षित हो जायँ, वे भी सभ्यता के सुस्वादु फल चखने लगें, वे भी अपना राज-पाट आप ही सँभालने योग्य बन जायँ। इसी पर-दुःख-कातरता की प्रेरणा से योरपवाले आफ़्रिका, अमेरिका और एशिया में—कहीं कहीं सर्वत्र और कहीं कहीं यत्र तत्र—फैले हुए हैं। फ़िज़ी, गायना, समोआ, साइप्रस, मारीशश, मलयप्राय-द्वीप तक को इन लोगों ने नहीं छोड़ा। वहाँ जा जाकर ये लोग वहाँवालों के लिए सभ्यता के साधन सुलभ कर रहे हैं; उन्हें राज-काज करना सिखा रहे हैं; उन्हें अपने सदृश अच्छे कपड़े पहनना और अपने ही से खाद्य-पेय का उपभोग करने का सबक़ पढ़ा रहे हैं। इनकी यह आन्तरिक इच्छा है कि असभ्य देश ही नहीं, टापू तक, सभ्य हो जायँ। इन्होंने यह घोषणा कर दी है और इस घोषणा की याद भी ये समय समय पर दिलाया करते हैं कि तुम लोग राज करना सीख लो, जहाँ तुम्हें राज करने की तमीज़ आ गई तहाँ हम तुम्हारा घर-द्वार तुम्हीं को सौंप कर अपने देश चले जायँगे। हमें क्या करना है। हमें कमी किस बात की है। दयापरवशता ही के कारण हम तो कुछ समय के लिए तुम्हारे यहाँ आकर टिक गये हैं। ऐसा करने के लिए हमें ईश्वरादेश हुआ है। समय के पहले ही हमें यहाँ से चले जाने की हठ न कर बैठना। ऐसा करोगे तो बड़ी भूल करोगे। पास-पड़ोस के बलवान् देश तुम्हें निगल जायँगे। फिर कुछ भी करते धरते न बनेगा। तुम्हारी रक्षा का जो भार हम पर परमेश्वर ने रक्खा है उसे उठाने की योग्यता अभी केवल हममें है।

योरप के निवासियों का औदार्य तो यहाँ तक बढ़ा-चढ़ा है कि वे युद्ध को संसार से उठा ही देना चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे नहीं चाहते कि परस्पर कोई लड़ाई-झगड़ा करे और बमबाज़ी की नौबत आ जाय। जब से इन लोगों ने जर्मनी के साथ युद्ध करके उसे पछाड़ा तब से इनके इस उदार-भाव में उफान सा आ गया है। इसी से अब ये यह प्रयत्न कर रहे हैं कि तोपें, बन्दूकें, लड़ाकू जहाज़, लड़ाकू आकाशयान यों ही नाममात्र के लिए—केवल अपने देश के आततायियों को क़ाबू में रखने के लिए—रहें। बहुत न इकट्ठे किये जायँ। बहुत हो जायँगे तो औरों से युद्ध ठान कर उनकी ज़मीन—उनका माल-असबाब—छीन लेने को जी चाहेगा। सो न होना चाहिए—न रहे बाँस, न बाजे बाँसुरी।

इस सत्प्रवृत्ति से प्रेरित होकर इन देशों ने योरप में एक बड़ा न्यायालय खोल दिया है। अथवा यह कहना चाहिए कि एक महासभा या संस्था की स्थापना कर दी है। सभी महादेशों के कितने ही देश उस संस्था के मेम्बर अर्थात् सभासद बन गये हैं। उन्होंने मिल कर क़ायदे-क़ानून भी बना डाले हैं। उन्हीं की रू से पूर्व निर्दिष्ट न्यायालय खुला है। उसके न्यायाधीश और कर्म्मचारी भिन्न भिन्न देशों के प्रतिनिधि हुआ करते हैं। अमेरिका के संयुक्त-राज्य इस संस्था में शामिल नहीं। उनका कहना है कि हम अपने ही घर में भले हैं। हम पहले अपनी फ़िक्र तो कर लें। तुम लोग ठहरे परमोदार अथवा उदारशिरोमणि, तुम अपनी तथा औरों की; सभी की, फ़िक्र करो। हम बाज़ आये तुम्हारे औदार्य के इस प्रदर्शन से।

संस्कृत-भाषा के एक महाकवि ने एक राजा की न्यायनिष्ठा का वर्णन इस प्रकार किया है—

वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना
स्वधर्म्म इत्येव निवृत्तकारणः।
गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा
निहन्ति दण्डेन स धर्म्मविप्लवम्॥

जिस समय कोई मुलज़िम उसके सामने लाया जाता था उस समय वह केवल धर्म्म को प्रधानता देता था। इन्साफ़ करने में वह और सभी बातों और सभी कारणों को दूर ही रखता था। घूँस के रूप में रुपया-पैसा लेकर वह कभी किसी भी अपराधी को न छोड़ता था। और क्रोधावेश में आकर कभी किसी निरपराध को दण्ड भी न देता था। वह सिर्फ़ धर्म्मशास्त्र को अपने नेत्रों के सामने रखता था। अपराधी चाहे उसका पुत्र हो, चाहे शत्रु, यदि उसका अपराध साबित हो गया तो बस, और किसी बात का लिहाज़ न करके, वह उसे शास्त्रनिर्दिष्ट दण्ड दिये बिना न रहता था।

बस ठीक इसी भावना के वशीभूत होकर योरप के राष्ट्रों ने ऊपर उल्लिखित संस्था की स्थापना कर दी और नाम उसका रक्खा लीग आफ़ नेशन्स। परन्तु यह ऐसा नेक काम करने में उन्हें बड़े दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा। अच्छे काम में विघ्न आते ही हैं। मतलब तो यह था कि संस्था की बदौलत सभी देश प्रेम-सूत्र में बँध जायँ, आपस के झगड़े आपस ही में तय हो जाया करें, कोई किसी के देश पर दाँत न लगावे, आवश्यकता से अधिक फ़ौज-फाटा न रक्खे, इत्यादि इत्यादि। परन्तु इन सदुद्देशों की भावना पर सहसा सैकड़ों शत्रुओं ने धावा बोल दिया। ईर्ष्या-द्वेष, मद-मत्सर, स्वार्थपरता, लोलुपता, परस्वापहरण की तुमुल सेना न्यायशीलता, दयालुता और पर-दुःख-कातरता पर टूट पड़ी और लगी उसे छिन्न-भिन्न करने। तब से इस सैन्य के आक्रमण बराबर हो रहे हैं। जहाँ योरप के राष्ट्रों के दीन-वत्सल प्रतिनिधियों ने किसी अच्छे काम का प्रस्ताव किया तहाँ इस चतुरङ्गिणी चमू ने विघ्न डाला। अमेरिका यद्यपि इस संस्था में शामिल नहीं तथापि कुछ समय हुआ, उसने अपना एक कर्म्मचारी इस संस्था की एक शाखा के अधिवेशन में भेजा था। विचार होने लगा अफ़ीम की बिक्री और व्यापार बन्द करने के विषय में। अमेरिका के प्रतिनिधि ने कहा, अफ़ीम सिर्फ़ दवा के लिए बेची जाया करे; उसका व्यापार बन्द कर दिया जाय; अफ़ीमचियों को वह न मिल सके। परन्तु उसकी एक न चली। अफ़ीम के उत्पादक और विक्रेता देशों के प्रतिनिधियों ने, निन्दा और कुत्सा और भर्त्सना की कुछ भी परवा न करके, उस प्रस्ताव को न पास होने दिया। इस निषेधक पुण्यकार्य्य को पङ्गु बनाने में एक साहब भी शामिल थे, जिन्होंने भारतवर्ष के प्रतिनिधि बनकर बहस की थी। विपक्षी सेना-दल की कारपरदाज़ी का यह पहला नमूना हुआ। ईजिप्ट अर्थात् मिस्र भी इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्था का सभासद है। ब्रिटिश-गवर्नमेंट ने अभी उस दिन उसके साथ कुछ ऐसा सलूक किया जिसे उसने अन्याय समझा। इस पर मिस्र ने इस संस्था के सभासदों के द्वार पर दुहाई दी। परन्तु ब्रिटिश-गवर्नमेंट ने कहा, यह मामला हमारे घर का है; बाहर से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। यह यहाँ नहीं पेश हो सकता। बस वह न पेश हो सका। इसी तरह उस दिन नवीन स्वतन्त्रता प्राप्त किये हुए आयरलैंड ने संस्था के इजलास में एक दस्तावेज़ पेश की। नर-शार्दूल अँगरेज़ों के प्रतिनिधियों ने उसमें भी बाधा डाल कर उस मामले को अपनी फूँक से उड़ा दिया। इन उदाहरणों से प्रकट है कि जिस उद्देश से इस संस्था को जन्म दिया गया है वह उद्देश अच्छी तरह सफल नहीं हो रहा। कुछ बड़े बड़े राष्ट्रों की धाक जैसे और सर्वत्र अपना काम कर रही है वैसे ही इस संस्था में भी काम कर रही है। बात यह कि—ज़बरदस्त का ठेंगा सिर पर। बलवान् ही बाज़ी मार ले जाते हैं। निर्बलों की कोई नहीं सुनता।

भारतवर्ष की अपेक्षा अधिक शक्ति रखनेवाले देशों की भी बात जब कभी कभी नहीं सुनी जाती तब भला निर्बल भारत को यह संस्था कहाँ तक दाद दे सकती है। तथापि यहाँ, इस देश पर, प्रभुत्व है ब्रिटिश-गवर्नमेंट का। इस गवर्नमेंट के अधिकारियों ने भी भारतवासियों को सभ्य बनाने, उन्हें शिक्षा देने और उन्हें राजकाज सिखाने का भार अपने ऊपर लिया है। इसका एहसान भारत के सिर पर है। इसी से उसने योरप के पिछले युद्ध में, लाखों सिपाही देकर, अपने धन-जन का बहुत कुछ नाश कराया था। इसकी इस राजभक्ति पर प्रसन्न होकर ब्रिटिश-गवर्नमेंट के अधिकारियों ने उससे कहा—आओ अब हम-तुम भाई भाई का जैसा व्यवहार करें। तुम हमारी बराबरी के हो जाव। हम भी इस लीग—इस संस्था—के मेम्बर हैं, तुमको भी मेम्बर बनाये देते हैं। हाँ कुछ ख़र्च देना पड़ेगा, सो दे देना या हम ख़ुद ही दे देंगे, क्योंकि देना न देना बहुत कुछ हमारे ही हाथ में है।

इस बराबरी के व्यवहार की घोषणायें बड़ी धूमधाम से की गईं। भारत के सौभाग्य की प्रशंसा के पुल बाँधे गये। परन्तु आज तक इस लीग की बदौलत भारत को कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचा। भारतीय प्रजा के नायक तो यही कहते हैं, औरों की बात हम नहीं जानते। कहीं मज़दूरों के काम के घण्टों का नियन्त्रण, कहीं शराब की बिक्री और चालान के विषय के कुछ नियमों का प्रचलन अवश्य हुआ है। परन्तु प्रतिवादियों का कथन है कि ये काम बिना लीग की सहायता के भी शासक कर सकते थे और इनसे भी बड़े बड़े सैकड़ों काम वे करते ही हैं। लीग के चन्दे में देने के लिए भारतवर्ष का धन व्यर्थ ही बहाया जा रहा है।

ख़ैर, जहाँ सारे भूमण्डल के कोई पचास साठ राज्य लीग के मेम्बर बने तहाँ ब्रिटिश-गवर्नमेंट के कृपाकटाक्ष से भारत भी उसका मेम्बर बना दिया गया। अब तक इस लीग के कई अधिवेशन हो चुके हैं। उसने भिन्न भिन्न विषयों पर विचार करने के लिए जो छोटी छोटी कमिटियाँ बना दी हैं उनके भी, न मालूम कितने, अधिवेशन हो चुके हैं। परन्तु इस ऊहापोह, इस वाद-विवाद और इस दौड़-धूप से भारत को कितना लाभ पहुँचा है, यह वही बता सकते हैं जो उस लीग की उपयोगिता के क़ायल हैं। और वे बताते भी हैं। परन्तु उनके बताये वे लाभ अधिकांश भारतवासियों की दृष्टि में कुछ भी नहीं। उन्हें वे लाभ ही नहीं समझते। वे तो कहते हैं कि इन कल्पित लाभों के बदले दरिद्र भारत का रुपया अकारण ही नष्ट किया जा रहा है।

सितम्बर १९२४ में इस लीग का पाँचवाँ अधिवेशन हुआ था। उसमें भारत की तरफ़ से वकालत करने के लिए, सरकार बहादुर ने तीन प्रतिनिधि भेजे थे—लार्ड हार्डिंग, महाराजा बीकानेर और श्रीयुत एम० रफ़ीक़। यह अधिवेशन जनीवा-नगर में एक महीने तक हुआ। उसकी कारवाइयों की जो रिपोर्ट भारतवर्ष के प्रतिनिधियों ने की है वह कहीं अब प्रकाशित हुई है। रिपोर्ट भेजी गई है सेक्रेटरी आफ़ स्टेट को, जो लन्दन में रहते हैं। उसी को भारतीय गवर्नमेंट ने यहाँ भी अपने गैज़ट में प्रकाशित किया है। उसी को देखकर हम यह निवेदन लिख रहे हैं।

अच्छा तो अब ख़र्च की बात सुनिए। भिन्न भिन्न देशों के डाकख़ानों के अधिकारियों ने आपस में मिल कर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबका सम्मिलित ख़र्च चलाने के लिए, एक नया तरीक़ा ढूँढ़ निकाला है। उन्होंने अँशों की कल्पना कर ली है और प्रत्येक देश के लिए अंशों की संख्या नियत कर ली है। सम्मिलित ख़र्च को उन अंशों से बाँट कर वे सबसे यथा-संख्यक रुपया वसूल कर लेते हैं। लीग भी इसी ढंग से अपना ख़र्च अपने सम्मिलित देशों से वसूल करता है। उसने सबके लिए ६२५ अंश नियत किये हैं। फिर हर देश की सालाना आमदनी और मनुष्य-संख्या के हिसाब से उन अंशों को बाँटा है। अब तक उसने भारत को ६५ अंश ख़र्च देने का ज़िम्मेदार ठहराया था और इतना ख़र्च उसने कई साल तक दिया भी है। अब ज़रा देखिए, कुछ और देश कितने अंश ख़र्च देते हैं—

ग्रेट-ब्रिटन	८८
फ्रांस	७८
इटली	६१
जापान	६१
चीन	६५
स्पेन	४०
पोलैंड	२५
रूमानिया	२६

लीग के मेम्बरों से कहा गया कि भारत बहुत दूर है। लीग से उसे उतना लाभ नहीं जितना योरप के देशों को है। भारत दरिद्र भी है। करों का भार वहाँ बहुत अधिक हो गया है। आमदनी का औसत भी वहाँ फ़ी आदमी बहुत कम पड़ता है। इस कारण उससे ६५ अंश नहीं केवल ५० अंश ख़र्च लिया जाय। इस प्रयत्न का फल यह हुआ है कि भारत का हिस्सा ६५ से घटा कर ६० अंश कर दिया गया है। ५० अंश कर देने की मंज़ूरी नहीं हुई।

१६२५ ईसवी के ख़र्च का तख़मीना लगाया गया है २,२६,१८,१३८ फ्रैंक सोने के। इस हिसाब से भारत को २,२६,१८,१३८ ÷ ६२५ × ६० × १४,५३,६६७ फ्रैंक देने पड़ेंगे। फ्रैंक फ्रांस का सिक्का है। सोने के एक फ्रैंक का दाम कई रुपया है। पर यदि एक फ्रैंक को एक रुपये के भी बराबर समझें तो भी भारत का चौदह-पन्द्रह लाख रुपया इस एक ही साल में फूँक तापा जायगा। और लाभ क्या होगा? लीग के मेम्बर बनने का सौभाग्य और गवर्नमेंट के द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों के लिए सैर-सपाटे का सुभीता। जिस देश के करोड़ों आदमियों को पेट भर सूखी रोटी तक नहीं मिलती उसका इतना रुपया नष्ट कर देने-वालों का भगवान् भला करे!

ज्ञ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

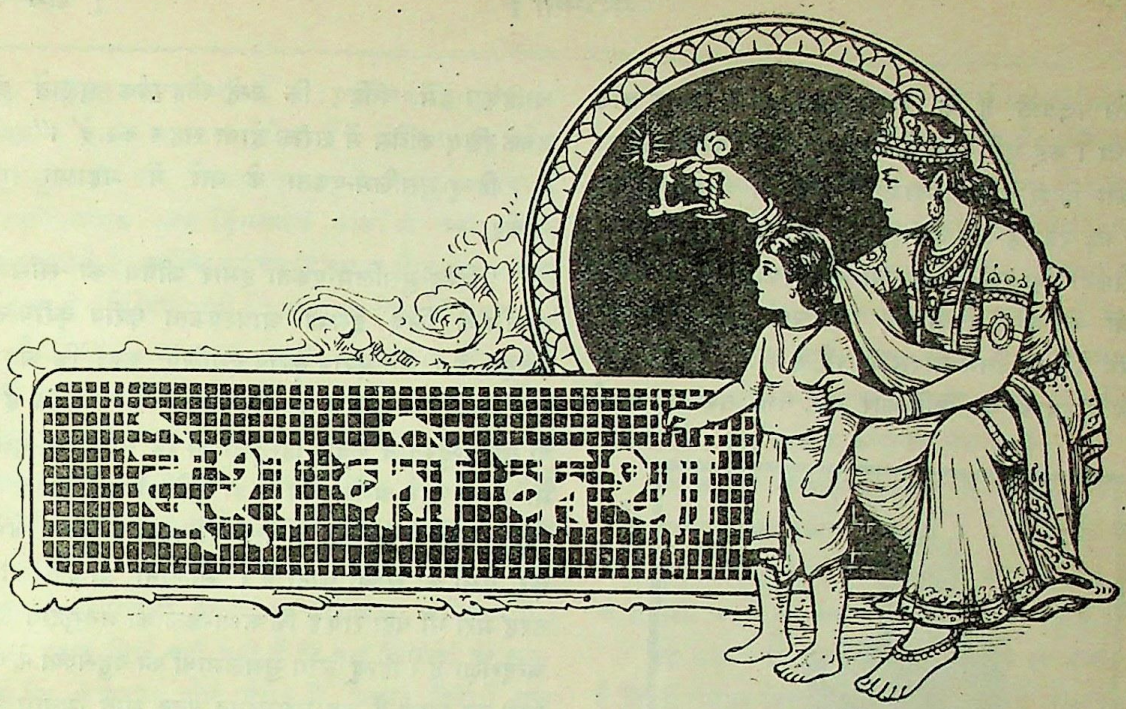

१—कांग्रेस।

हर साल दिसम्बर के आख़िरी सप्ताह में राष्ट्रीय जीवन के प्रायः सभी अङ्गों पर देश के सर्व-श्रेष्ठ नेता अपना मत प्रकट करते हैं। इस अवसर पर देश के किसी एक नगर में बड़ी धूम-धाम होती है। राष्ट्र की आशायें, उसके सङ्कल्प-विकल्प इसी सप्ताह में प्रतिवर्ष व्यक्त किये जाते हैं। जो सभायें इन दिनों होती हैं उनमें कांग्रेस को मुख्य स्थान प्राप्त है। इसका ३९ वाँ अधिवेशन इस साल बेलगाँव में महात्मा गांधी के सभापतित्व में हुआ है।

सभापति के रूप में महात्मा गाँधी ने अपना जो भाषण दिया है, वह कई दृष्टियों से अद्वितीय रहा। जिस शान्त, सरल और पवित्र भावना से राष्ट्रीय समस्या की इस भाषण में मीमांसा की गई है वह सर्वथा सराहनीय है। महात्माजी का संक्षिप्त भाषण शान्ति-पूर्ण क्रान्ति का एक सन्देश है। इस संक्षिप्त भाषण का एक एक शब्द राजनीतिज्ञता से सराबोर है। इस भाषण में महात्मा गाँधी ने स्वतन्त्रता-सङ्ग्राम की सबसे जटिल समस्या पर जिस सावधानी और जँची-तुली रीति से नज़र डाली है वह सारे भाषण की जान है और उसी में उसका महत्त्व है।

महात्मा गाँधी ने देश के राजनैतिक दलों, ख़ासकर कांग्रेस के दो दलों में, और सबसे बढ़ कर हिन्दू-मुसलमानों में मतभेद और विरोध एवं देशवासियों और प्रजा की उदासीनता, उनकी असङ्गठित दशा और निर्बलता को ही मुख्य समस्या मानी है। अतएव महात्माजी राष्ट्र के जाग्रत अङ्गों का पारस्परिक विरोध कम करके और हो सके तो मुख्यतः कांग्रेस के दो दलों को सुसङ्गठित करके राष्ट्र के निर्बल और उदासीन अङ्गों में शक्ति का सञ्चार करना चाहते हैं।

महात्माजी के भाषण में इस बात की ओर सङ्केत नहीं है कि हिन्दुस्तान के साथ न्याय किये जाने के लिए सरकार से प्रार्थना की जाय। भारत के अधिकारों के लिए वे अँगरेज़-सरकार के आगे अपने भाषण में भिक्षुक के रूप में उपस्थित नहीं हुए हैं।

कांग्रेस के दो दलों और अन्य राजनैतिक दलों का पारस्परिक विरोध मिटाने के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी ने कहा है—

"जहाँ एक तरफ़ असहयोग के प्रोग्राम में कुछ व्यक्ति प्रबल विश्वास रखते हैं, वहाँ दूसरी तरफ़ अधिकांश ऐसे लोग हैं जिनका पहले असहयोग से सम्बन्ध था, पर अब उसमें उनको विश्वास नहीं है। बीसों असहयोगी क़ानून पेशावालों ने अपना पेशा फिर से शुरू कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई तो पछताते हैं कि हमने अपना पेशा नाहक़ छोड़ दिया था। कई ऐसे लोग हैं जिन्होंने पहले कौन्सिलों का बहिष्कार किया था, कौन्सिलों में चले गये और ऐसों की संख्या बढ़ रही है जो कौन्सिल में जाने में विश्वास रखते हैं। सैकड़ों बालक-बालिकाओं ने सरकारी स्कूलों और कालेजों को छोड़ दिया था, पर अपने किये पर पछता कर अब वे फिर उनमें वापस जा रहे हैं।.....ऐसी दशा में इन संस्थाओं का बहिष्कार उस वक़्त तक व्यवहार्य

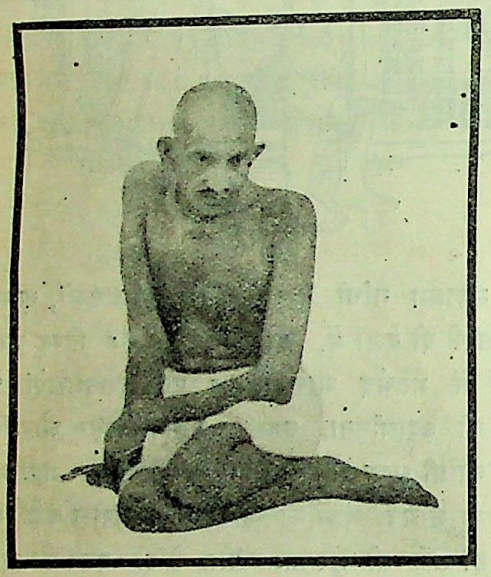

महात्मा गांधी।

नहीं हो सकता जब तक कांग्रेस उपर्युक्त ढङ्ग के लोगों के बिना अपना काम चला न ले। लेकिन मेरी सम्मति में ऐसे लोगों को कांग्रेस से बाहर रखकर काम करना उतना ही असाध्य है जितना कट्टर असहयोगियों को बाहर रख कर काम करना। दोनों दलों को कांग्रेस के भीतर रहना चाहिए। हमको परस्पर सहिष्णुता से काम लेना चाहिए। दूसरे मतवाले को अपने मत का बनाने के लिए समय व्यतीत होने देना चाहिए। बल्कि हमें इससे भी आगे जाना चाहिए। हमें नरम दल से और दूसरों से भी जिन्होंने कांग्रेस छोड़ दी है कांग्रेस में फिर आजाने की प्रार्थना करना चाहिए। जब असहयोग स्थगित कर दिया गया तब इन दलों को कांग्रेस से बाहर रहने का कोई कारण नहीं है। हम कांग्रेसवालों को इस मामले में आगे बढ़ना चाहिए। हमें चाहिए कि उन्हें स्नेहपूर्वक बुलावें और उनके लिए कांग्रेस में शरीक होना सहज कर दें।"

हिन्दू-मुसलिम-एकता के बारे में महात्मा गांधी ने कहा—

"हिन्दू-मुसलिम-एकता हमारे जीवन की साँस है। स्वराज के लिए इसकी आवश्यकता क़रीब क़रीब सर्व-स्वीकृत है। मैंने क़रीब क़रीब इसलिए कहा कि अब भी कुछ हिन्दू और कुछ मुसलमान ऐसे हैं जो चाहते हैं कि था तो हिन्दुस्तान केवल हिन्दुओं का रहे या केवल मुसलमानों का और अगर ऐसा न हो सके तो जैसा आज-कल इँगलिस्तान के पराधीन है वैसा ही पराधीन रहे। लेकिन ख़ैर, ऐसों की संख्या छोटी है। मौलाना शौक़तअली की तरह मेरी भी यही राय है कि आज-कल का मनमुटाव केवल चन्दरोज़ा है। हिन्दू लोग मुसलमानों की बहुसंख्या के बीच तभी रह सकते हैं जब मुसलमान उनके साथ मित्रता और बराबरी का व्यवहार करने को तैयार हों। इसी प्रकार जहाँ मुसलमान कम संख्या में हैं, वहाँ उनको इज़्ज़त के साथ रहने के लिए हिन्दुओं की मित्रता पर भरोसा करना चाहिए। कोई राज्य चोरों और डाकुओं से तो रक्षा कर सकता है, लेकिन स्वराज्य की सरकार भी सम्पूर्ण जाति के बहिष्कार से प्रजा की रक्षा नहीं कर सकती।..... स्वराज्य-गवर्नमेंट का अर्थ ऐसा राज्य है जो हिन्दू-मुसलमानों की स्वतन्त्र सम्मिलित इच्छा के अनुसार स्थापित किया गया हो। यदि हिन्दू-मुसलमान स्वराज्य चाहते हैं तो उन्हें मजबूर होकर अपने झगड़ों को मिलजुल कर तय करना पड़ेगा।"

महात्मा गांधी ने विदेशी कपड़े का बहिष्कार सब दलों और सम्प्रदायों के लिए अत्यन्त आवश्यक ठहराया। निर्बल और असङ्गठित जनता में शक्ति पैदा करने का मूलमन्त्र चरखे को बताया। सबसे ज़्यादा ज़ोर उनके भाषण में इसी पर डाला गया है।

"जिस प्रकार कुछ काम जैसे गाली, क्रोधजनक तरीक़े, मिथ्याभाषण, दुख देना, प्राण लेना, हिंसा के चिह्न हैं और जिस तरह नम्रता, किसी को बुरा न लगने-वाले तरीक़े, सचाई इत्यादि अहिंसा के चिह्न हैं, इसी तरह विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करना और कराना मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए अहिंसा का चिह्न है। क्रान्तिकारी जुर्म का अभिप्राय दबाव डालना होता है। लेकिन यह क्रोध और दुश्मनी का उन्मत्त दबाव है। मेरा दावा है कि अहिंसात्मक काम हिंसात्मक कामों से कहीं अधिक दबाव डालते हैं, क्योंकि यह दबाव नम्रता और शुभकामना का होता है। विदेशी कपड़े का बहिष्कार ऐसा ही दबाव है।

इँगलिस्तान का मुख्य लाभ हिन्दुस्तान में लङ्काशायर का व्यापार है। इसी व्यापार ने सबसे अधिक हिन्दुस्तान के किसानों का सर्वनाश किया है और सूत कातना जो उनका एकमात्र बालाई पेशा था उससे उन्हें महरूम करके उनको थोड़े समय के लिए मजबूरन बेकार बना दिया है। यदि हिन्दुस्तान के किसानों को जीवित रखना है तो विदेशी कपड़ों का बहिष्कार अनिवार्य है। इसका उपाय सिर्फ़ यही नहीं है कि हम किसानों को समझायें कि वे सस्ता और देखने में अच्छा विदेशी वस्त्र ख़रीदने से इनकार करें। बल्कि उन्हें यह सिखाना है कि बचे हुए समय में वे रुई धुन लें और उसे कात लें और गाँव में अपना काता हुआ सूत बुनवा लें और उसे पहिनें और इस प्रकार विदेशी बल्कि देशी मिलों का कपड़ा ख़रीदने के ख़र्च से बच जायँ। हाथ से कते और हाथ से बुने हुए खद्दर-द्वारा विदेशी कपड़े के बहिष्कार से सिर्फ़ किसानों का रुपया ही नहीं बचेगा, बल्कि इसके द्वारा हमें उत्तम से उत्तम समाज-सेवा का अवसर मिलेगा। इसके द्वारा ग्रामनिवासियों से हमारा सीधा सम्बन्ध हो जायगा। इसके द्वारा हम उनको वास्तविक राजनीति की शिक्षा दे सकेंगे और उन्हें स्वावलम्बन और स्वाधीनता सिखा सकेंगे।

चरखा चला कर खद्दर-द्वारा विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार की सफलता का सिर्फ़ राजनैतिक परिणाम ही नहीं होगा, इससे हिन्दुस्तान के दरिद्र स्त्री-पुरुषों को अपनी शक्ति का ज्ञान होगा और हिन्दुस्तान के स्वतन्त्रता-सङ्ग्राम में वे भाग लेंगे।.....

मैंने चरखे पर इतना ज़ोर दिया है क्योंकि मेरे पास राष्ट्र के लिए कोई दूसरा सन्देश नहीं है, अगर स्वराज्य शान्तिपूर्ण और मुनासिब तरीक़ों से हासिल करना है तो इसके अलावा मेरे नज़दीक कोई और उपाय नहीं है।"

अहिंसा, खद्दर, हिन्दू-मुसलिम-एकता, अछूतोद्धार और कांग्रेस के अन्दर परस्पर का विरोध मिटाना ही महात्मा गाँधी के भाषण के मुख्य आलोच्य विषय हैं। जातीय स्वावलम्ब इस भाषण का मूलमन्त्र है। खद्दर के काम का तुरन्त सङ्गठन आरम्भ कर देना और साल भर के भीतर विदेशी कपड़े का लगभग पूर्ण बहिष्कार करवा देना इस साल की कांग्रेस का मुख्य प्रोग्राम है। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव इस साल कांग्रेस में इसी सम्बन्ध में पास हुआ। इस प्रस्ताव को महात्मा गाँधी ने क्रान्तिकारी बताया है। इस प्रस्ताव के मुख्य अंश ये हैं—

यह कांग्रेस चरखा कातने को मेम्बरी की शर्त बनाने-वाले प्रस्ताव का स्वागत करती है। यह इस बात का चिह्न है कि हिन्दुस्तान की जनता में अपने राष्ट्रीय मक़सद के हासिल करने का उत्साह और दृढ़ निश्चय है।

यह कांग्रेस हर हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुष से आशा करती है कि वे तमाम विदेशी कपड़ों को त्याग दें और हाथ का कता और बुना कपड़ा पहनें और इस्तेमाल करें और दूसरी तरह के कपड़े पहनना और इस्तेमाल करना छोड़ दें।

इस उद्देश्य को तुरन्त कामयाब बनाने के लिए कांग्रेस आशा करती है कि कांग्रेस के तमाम मेम्बर हाथ से सूत कातने के प्रचार में तथा इसके पहले की प्रारम्भिक क्रियाओं के प्रचार में और खद्दर के बनने और बिकने में सहायता देंगे।

यह कांग्रेस हिन्दुस्तान के राजा-महाराजाओं, अमीरों, राजनैतिक और अन्य संस्थाओं के मेम्बरों से जिनके प्रतिनिधि कांग्रेस में नहीं हैं, म्युनिसिपैलिटियों से, स्थानीय बोर्डों और इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं से अपील करती है कि वे खद्दर का इस्तेमाल करें और दूसरे तरीक़ों से भी चरखा चलाने और खद्दर के प्रचार में सहायता दें। ख़ास कर उन कारीगरों की उदारतापूर्वक सहायता करें जो अभी तक मौजूद हैं और जो बारीक खद्दर पर सुन्दर कारीगरी का काम कर सकते हैं।

यह कांग्रेस हर एक मज़हब के रहनुमाओं और धर्म-गुरुओं से, चाहे वे हिन्दू, मुसलमान या दूसरे मज़हब के हों, अपील करती है कि वह अपने धर्मवालों को खद्दर का सन्देश सुनावें और उन्हें विदेशी कपड़ा छोड़ने की सलाह दें।

रघुपतिसहाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

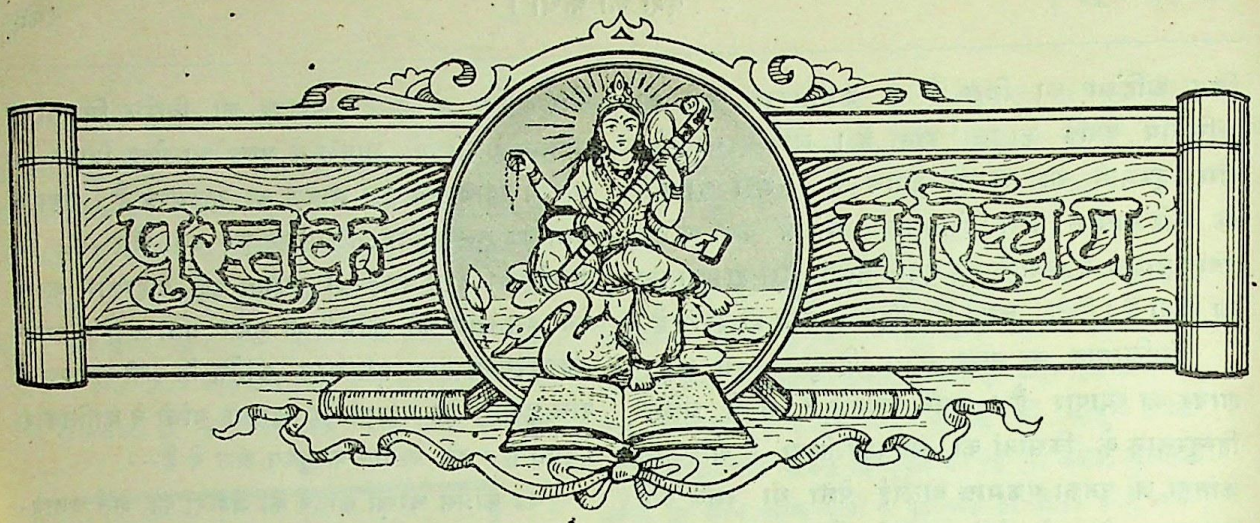

१—श्रीमध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर की होल्कर-ग्रन्थ-माला की चार पुस्तकें—

(१) कम्पनी-व्यापार-प्रवेशिका—लेखक श्रीयुत कस्तूरमल बाँठिया, आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ११३ और मूल्य १) है।

यह व्यापार-विषयक पुस्तक है। हिन्दी में ऐसी पुस्तकों का अभाव है। यदि आलोच्य पुस्तक के लेखक के सदृश कुछ साहित्यानुरागी व्यापारी लोग इस ओर अपना ध्यान दें तो यह कमी बहुत कुछ दूर हो जाय। इस पुस्तक में कम्पनी-व्यापार करने की विधि स्पष्ट रीति से संक्षेप में बताई गई है। इस प्रकार यद्यपि यह व्यापारियों के ही काम की है, तो भी इतर जन इसे पढ़ कर कम्पनी-व्यापार के आयोजन का मर्म समझ सकते हैं। इस पुस्तक में छापे की भूलें अधिक हैं।

(२) बर्क्ले और कैंट का तत्त्वज्ञान—लेखक, श्रीपशुपाल शर्मा, आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ९० और मूल्य ॥) है।

इस छोटी पुस्तक में योरप के प्रसिद्ध दार्शनिक बर्क्ले और कैंट के संक्षिप्त चरित और उनके तत्त्वज्ञान का परिचय दिया गया है। इसके पढ़ने से उपर्युक्त दार्शनिकों के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत ज्ञान हो जाता है।

(३) ग्राम संस्था—लेखक शङ्कर राव जोशी नायब अमीन हैं। छोटा आकार, पृष्ठ-संख्या १७३ और मूल्य १) है।

दो एक अँगरेज़ी और मराठी पुस्तकों के आधार पर इसकी रचना हुई है। इसमें पाश्चात्य तथा प्राच्य ग्राम-संस्था का वर्णन किया गया है। इसके पढ़ने से पाश्चात्य और प्राच्य ग्रामों के सङ्गठन का दिग्दर्शन हो जाता है। यह पुस्तक बहुत ग़लत छपी है, छपाई भी अच्छी नहीं है।

(४) हिन्दुस्तान की कर-संस्थिति—लेखक, श्रीयुत सियाराम दुबे, बी० ए०, आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १०७ और मूल्य ॥=) है।

यह एक अँगरेज़ी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से कर लगाने के नियम और अँगरेज़ी-भारत में वे किस प्रकार लगाये गये हैं, इस विषय की आलोचना इस पुस्तक में की गई है। उपसंहार में देशी रजवाड़ों में कर-व्यवस्था कैसी होनी चाहिए और युद्ध-काल में अँगरेज़ी भारत में प्रचलित कर-व्यवस्था में कैसा हेर-फेर हुआ था, इसकी पूर्ति के लिए अन्त में दो अँगरेज़ी लेख अनूदित कर दिये गये हैं। इस प्रकार इस पुस्तक में कर-व्यवस्था की संक्षेप में अच्छी व्याख्या की गई है।

२—भारत के हिन्दू-सम्राट्—लेखक, श्रीचन्द्र राज-भण्डारी विशारद, प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-मन्दिर, बनारस है। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या २७२ और मूल्य १॥) है।

उपर्युक्त मन्दिर की ग्रन्थमाला का यह २५ वाँ ग्रन्थ है। इसमें भारत के हिन्दू-सम्राटों का प्रामाणिक इतिहास सङ्कलित किया गया है। मौर्यवंशी सम्राट् चन्द्रगुप्त से लेकर महाराणा सङ्ग्रामसिंह तक मुख्यतः कुल चौदह भारतीय सम्राटों का परिचय इसमें दिया गया है। प्रत्येक सम्राट् के वर्णन के साथ साथ तत्कालीन भारत के इति-हास का भी यथास्थान दिग्दर्शन करा देने एवं ऐतिहा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिक क्रम क़ायम रखने के लिए बीच बीच में दूसरे राजघरानों तथा सम्राटों का उल्लेख हो जाने से इस पुस्तक में अधिक मनोरञ्जकता आ गई है।

३—सम्राट् अशोक—लेखक, श्रीयुत सम्पूर्णानन्द, प्रकाशक, प्रकाश पुस्तकालय, कानपुर, आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १६३ और मूल्य १) है।

इस पुस्तक में सम्राट् अशोक का चरित वर्णन किया गया है। इसके साथ ही उनके साम्राज्य की प्रजा की आर्थिक, साहित्यिक तथा राजनैतिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है। इस कारण इस पुस्तक का महत्त्व बढ़ गया है। छपाई और काग़ज़ साधारण है।

४—फुफ्फुस-सन्निपात-चिकित्सा—लेखक स्वर्गीय पण्डित हनुमत्प्रसादजी जोशी वैद्य, आरोग्याश्रम १६२-२०० कालबादेवी रोड, बम्बई, आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १५ + १८६ और मूल्य १॥) है।

इस पुस्तक में फुफ्फुस-सन्निपात या निमोनिया रोग का वर्णन है। इसमें इस रोग के निदान की साङ्गोपाङ्ग विवेचना और आयुर्वेदोक्त चिकित्सा-विधि का पूरा वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। दूसरी चिकित्सा-विधियों का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है। पुस्तक में चित्र देकर 'शारीरिक' मत से भी इस रोग पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। मतलब यह कि डाक्टरी मत से और आयुर्वेदीय मत से निमोनिया रोग की इस में काफ़ी आलोचना की गई है। प्रारम्भ में लेखक महोदय का चित्र और चरित्र भी दे दिया गया है।

५—सत्य की खोज—इसे श्रीयुत विसाहूराम ने लिखा है। आपने स्वयं भूमिका में इसका परिचय यों लिखा है—अपनी समझ में तो मैंने सत्य को ढूँढ़ निकाला, जिसे मैं झट प्रकट कर देना चाहता हूँ, जिससे दुनिया देख लेवे कि सत्य क्या है और कहाँ है। इसमें सृष्टि-रचना, जीवात्मा, अवतार आदि भिन्न भिन्न आध्यात्मिक विषयों की खोज की गई है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य ॥।) और सादी का ॥) है। पुस्तक पर उसके मिलने का पता नहीं लिखा है। शायद लेखक को धमतरी, रायपुर, सी० पी० के पते पर लिखने से मिलती हो।

६—साम्य-तत्त्व—लेखक, मास्टर चन्द्रिकाप्रसाद वाथम, प्रकाशक, श्री सरस्वती-साहित्य-मन्दिर-कार्यालय, ६६६, सआदतगञ्ज, लखनऊ, छोटा आकार, पृष्ठ-संख्या ८ + ११२ और मूल्य ॥=) है।

यह पुस्तक बङ्किम बाबू के 'साम्य' नामक बँगला पुस्तक का अनुवाद है। लेखक ने इसमें यथास्थान अपनी ओर से कुछ मिला कर इसे अवध-प्रान्त के अनुरूप बना दिया है। यह इस अनुवाद की विशेषता है। भाषा बोलचाल की है। पुस्तकान्त में बङ्किम बाबू का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया गया है। पूर्वोक्त मन्दिर की ग्रन्थ-माला की यह पहली पुस्तक है।

७—कन्या-शिक्षा—लेखक, पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री, प्रकाशक, हिन्दी पुस्तक भवन, १८१, हरिसन रोड, कलकत्ता, आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ६३ और मूल्य ॥) है।

उपर्युक्त भवन की पुस्तक-माला का यह १२ वाँ पुष्प है। इस छोटी पुस्तक में कन्याओं को उपयोगी बातों की शिक्षा दी गई है। उन्हें ससुराल में अपने गुरु-जन आदि से कैसा व्यवहार करना चाहिए तथा भोजन आदि किस प्रकार बनाना चाहिए इन बातों को लेखक ने बातचीत के रूप में समझाने की चेष्टा की है। भाषा सरल है।

८—ब्रह्मचर्य ही जीवन है—लेखक, स्वामी शिवानन्द, प्रकाशक, छात्रहितकारी पुस्तकमाला, डंकीनगंज, मिरज़ापुर, आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १६२ और मूल्य ।।।=) है।

यह पुस्तक उपर्युक्त पुस्तकमाला की ५ वीं पुस्तक है। इसमें ब्रह्मचर्य का महत्त्व तथा तत्सम्बन्धी नियमादि बतलाये गये हैं।

९—गृहिणी-गौरव—अनुवादक, कृष्णलाल वर्मा। प्रकाशक, ग्रंथ-भंडार, लेडी हार्डिंज रोड, माटुङ्गा बम्बई। पृष्ठ-संख्या २०८; छपाई-सफ़ाई, काग़ज़ सुन्दर। सादी का मूल्य १॥) और सुन्दर कपड़े की जिल्द सहित २।), आकार २०-३०-१६ पेजी।

७ गल्पों का यह संग्रह है। सभी गल्पें बँगला से अनुवाद हैं, किसी विद्या-प्रेमी श्रीमान् सेठ लखमीचंदजी को पुस्तक समर्पित की गई है और उनका सचित्र जीवन-चरित्र भी पुस्तक के प्रारम्भ में ७ पृष्ठों में दिया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri.

है। घटना-विशेष के ५ रङ्गीन साधारण चित्र भी दे दिये गये हैं। कहानियों में स्त्री-जाति के त्याग का चित्र खींचा गया है।

१०—**शान्ति-निकेतन**—लेखक, श्रीमान् मुन्शी नवजातिकलाल श्रीवास्तव, प्रकाशक, भारती-पुस्तकमाला २२ सरकार लेन, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या २४८, छपाई-सफ़ाई-काग़ज़ साधारतः अच्छा, आकार २० × ३० सोलह पेजी। मूल्य १।)

यह एक "बिलकुल मौलिक देशभक्तिपूर्ण सामाजिक उपन्यास" है और हिन्दी के ऐसे उपन्यासों में समाज का जैसे कल्पित चित्र रहता है वही इसमें भी है। इसमें नई पाश्चात्य सभ्यता के नशे में चूर एक बारिस्टर मि० हरनारायण के परिवार की कथा लिखी गई है। अपनी पतिव्रता, बुद्धिमती और सुशीला आदर्श पत्नी के बहुत अनुरोध करने पर भी उन्होंने अपनी कन्या को विलायती ढङ्ग से शिक्षा देने, रहन-सहन सिखाने में कोई कोर-कसर न की। पर इस दूषित शिक्षा और विलायती स्वतन्त्रता को 'शान्ति' जैसी भारतीय कन्या पर बहुत ही बुरा असर पड़ा। इसके फलस्वरूप हरिश्चन्द्र जैसा सुशील, विद्वान् और समाज तथा देशसेवक पति मिलने पर भी शान्ति उसकी तथा उसके परिवार आदि की सर्वदा निन्दा ही करती रही और उपेक्षा की दृष्टि से देखती रही, क्योंकि हरिश्चन्द्र विलायती सभ्यता का पक्षपाती नहीं था। अन्त में अपनी नासमझी और दूषित शिक्षा के प्रभाव से शान्ति हरिश्चन्द्र के ग्राम्यजीवन और लोक-सेवा की धुन से घबरा कर उसका त्याग करके पूर्व परिचित एक फ़ैशनेबुल व्यक्ति के साथ इधर-उधर मारी मारी फिरी और अन्त में फिर होश आने पर पति की ही शरण में आई। यही सारी कथा का मोटे रूप से सारांश है।

११—**अँगरेज़ी की तीन पुस्तकें**—(१) **लेक्चर्स आन कंडक्टिविटी**—लेखक, श्रीयुत आर० डी० गुप्त, प्रकाशक, वाटर क्योर इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद।

यह पुस्तक दो भागों में विभक्त है। पहले भाग की पृष्ठ-संख्या ३४ और मूल्य २) है। दूसरा भाग ४२ पृष्ठों में समाप्त हुआ है और मूल्य ३) है। पहले भाग में लेखक ने यह बतलाया है कि मनुष्यों का शारीरिक ह्रास किस प्रकार रोका जा सकता है। दूसरे भाग में यह बतलाया गया है कि मनुष्य का शरीर मृत्यु की बाधा से किस प्रकार बच सकता है। जरा और मृत्यु के भय को इस मर्त्य-लोक से दूर करने के लिए लेखक महोदय ने ये पुस्तकें लिखी हैं।

(२) **रिफ़ार्मेटरी स्कूल्स**—लेखक, एल० हरगोविन्दलाल, हेड मास्टर, गवर्नमेंट हाई-स्कूल, फ़ीरोज़पुर। कदाचित् आप ही इसके प्रकाशक हैं। यह पुस्तक चार भागों में विभक्त है। पहले भाग में अपराधों की व्याख्या की गई है और उसी में अपराधी बालकों की मानसिक स्थिति का विश्लेषण किया गया है। दूसरे अध्याय में उन अपराधों के दूर करने के उपाय बतलाये गये हैं। तीसरे में उन संस्थाओं का वर्णन किया गया है जो अपराधी बालकों के सुधार के लिए स्थापित किये गये हैं। चौथे में उन्हीं के सम्बन्ध में अन्य आवश्यक बातें बतलाई गई हैं। इसकी पृष्ठ-संख्या १६१ और मूल्य १) है।

(३) **ग्लिम्पसेज आव् दयानन्द**—लेखक, श्रीयुत चमूपति एम० ए०, प्रकाशक, राजपाल, मनेजर, आर्य पुस्तकालय, अनारकली, लाहौर हैं। पृष्ठ-संख्या १५८ और मूल्य १) है।

इस पुस्तक में २१ छोटे छोटे अध्याय हैं। उनमें स्वामीजी के चरित्र और उनके भिन्न भिन्न कार्य-कलापों का निरूपण किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

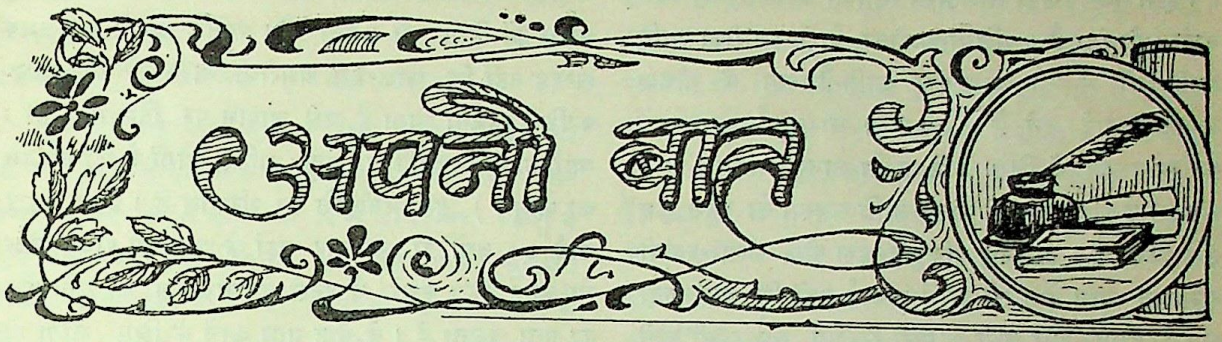

१—स्वाधीनता का रहस्य।

स्वाधीनता के दृढ़ उपासक टेरेंस मैक्स्विनी स्वाधीनता का दावा इसलिए करते हैं कि हमारी आत्मा उन्नत हो। उनका कहना है कि हमारे इस दावे, हमारी इस प्रबल इच्छा का प्रधान उद्देश कदापि सांसारिक उन्नति नहीं है। हमारी आत्मोन्नति स्वाधीन राज्य में ही सुलभ हो सकती है। प्रत्येक मनुष्य तथा समाज की पूर्ण समुन्नति के लिए समुचित परिस्थिति की सम्भावना स्वाधीन राष्ट्र में ही है। सद्गुण स्वतन्त्र राष्ट्र में ही फूल-फल सकते हैं। अन्यत्र उनका तिरोभाव हो जाता है। अतएव स्वतन्त्रता के ध्येय का यही रहस्य है कि कोई हमारी आत्मा का पशु-बल से दमन नहीं कर सकता। केवल एक ही व्यक्ति स्वतन्त्रता की रक्षा करके यह बात प्रमाणित कर सकता है कि वह उसके व्यक्तित्व से कोई भिन्न वस्तु नहीं है।

२—आधुनिक युग की सफलता।

आधुनिक युग के सम्बन्ध में एक विद्वान् का कथन है:—

जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि भावी इतिहास में हमारे समय का कैसा ऊँचा महत्त्व होगा तब हमारे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसके साथ ही सहसा हमारा ध्यान अपने कर्त्तव्यों की ओर आकर्षित होता है। यह वह समय है जिसमें यातायात के साधनों की द्रुतगति के कारण सारा संसार एक बृहत् कुटुम्ब में परिणत हो गया है। संसार के देशों में ऐसी भौगोलिक घनिष्टता पहले कभी नहीं स्थापित हुई थी। वास्तव में दूरी का नामावशेष सा हो जाना एक बड़ी भारी बात है। आधुनिक सभ्यता की यह सबसे बड़ी विजय है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या हमने स्थूल जगत् के इस महान् तथ्य के अनुरूप मानसिक जगत् में भी कोई उल्लेखनीय उन्नति की है? आधुनिक सभ्यता की इस त्रुटि को दूर करने का भार भारतवासियों के ऊपर है। भारतवासी तो जन्म से ही अध्यात्म-प्रेमी होते हैं। उन्हें अध्यात्म-जगत् में इस स्थूल तथ्य को उतार लेना चाहिए। यदि स्थूल जगत् में योरप अगुआ हुआ है तो मानसिक जगत् में भारतवर्ष को मार्ग-प्रदर्शक बनना उचित है। श्रद्धा और साहस के बल से यह बात कुछ असम्भव भी नहीं।

भारतवर्ष का इतिहास भी इस बात की पुष्टि करता है। भारतीय सभ्यता को अपने आदिकाल से जाति-सामञ्जस्य के विकट प्रश्न को हल करना पड़ रहा है। यहाँ सैकड़ों जातियाँ समय समय पर आती रही हैं और उन सबका एक ही बृहत् जाति के अन्तर्गत समावेश होता गया है। किन्तु अब यही प्रश्न अर्थात् एक ही परिमित क्षेत्र के भीतर विभिन्न जातियों के शान्तिपूर्वक रहने का विधान संसारव्यापी हो गया है, क्योंकि पृथ्वी का भौगोलिक विस्तार तो एक-दम परिमित सा हो गया है, उसमें अब किसी प्रकार की वृद्धि की सम्भावना नहीं। साथ ही यातायात के आधुनिक साधनों ने उसका विस्तार मानो बहुत कम कर दिया है। जिस यात्रा में पहले वर्षों लगते थे उसमें अब घंटों से अधिक समय नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता। विभिन्न जातियों का सङ्घर्षण अत्यधिक बढ़ गया है। इसी सङ्घर्षण में सामञ्जस्य स्थापित करना हमारा परम कर्त्तव्य हो रहा है। एशिया-अफ्रीका, योरप-अमरीका आदि सभी देशों में तो आज-कल जाति-वैमनस्य के भीषण उत्पात दिखाई देते हैं। अतएव भारतवर्ष को अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए। उसने अपने सङ्कुचित क्षेत्र के भीतर जाति-समस्या को बहुत कुछ हल किया है। इसलिए यदि वह इस ओर संसार-व्यापी समुचित ध्यान देगा तो इसमें आश्चर्य नहीं कि वह जल्दी सफल होगा और तभी हमारी सभ्यता सफल भी कही जा सकेगी।

३—आधुनिक राजनीति की एक समस्या।

पश्चिमीय देशों की राजनीति में एशिया को एक विशेष स्थान प्राप्त है। एशिया की समस्या को लेकर वहाँ के राजनीतिज्ञ घोर विवाद किया करते हैं। इसका मुख्य कारण है एशिया की उत्तरोत्तर उन्नति। कुछ लोगों की धारणा है कि योरप ज्यों ज्यों एशिया से अधिकाधिक परिचित होता जायगा, त्यों त्यों दोनों में प्रेम-भाव की वृद्धि होगी। अस्तु। किन्तु इस बात पर विचार करना अनावश्यक नहीं कि उक्त विश्वास कहाँ तक सफलीभूत हो सकता है।

विद्वानों की राय है कि पश्चिमीय सभ्यता-सम्पन्न देशों में अमरीका आज-कल शीर्षस्थानीय हो रहा है। उसके पास धन भी है और शक्ति भी। कहा तो यह जाता है कि उसकी राष्ट्रीयता योरप के अन्य राष्ट्रों के समान दूषणीय भी नहीं। उदाहरण के लिए वह अन्य योरपीय राष्ट्रों की भाँति अपने साम्राज्य-विस्तार के लिए पागल नहीं हो रहा है। उसने अन्तर्राष्ट्रीय महासभा (लीग आव् नेशन्स) का सदस्य होना भी स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उसकी दृष्टि में उसकी भित्ति न्याय की नींव पर नहीं स्थापित की गई है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या अमरीका अपने पूर्वी अधिकृत देशों को यों ही पूर्ण स्वराज्य का दान देने के लिए तैयार है? क्या स्वतन्त्रता के लिए उन देशों को तलवार न ग्रहण करना होगी? अमरीका को लीग आव् नेशन्स-द्वारा योरपीय राष्ट्रों के प्रति अत्याचार किये जाने पर जितना दुःख होता है क्या उतना ही दुःख एशियावासियों की यन्त्रणा पर भी होता है? इन प्रश्नों का उत्तर एक बड़े नकार में दिया जा सकता है। क्योंकि इसमें रत्ती भर सन्देह नहीं कि आज-कल अमरीका योरप की ओर अधिकाधिक झुकता जाता है, उसे जापान पर विश्वास नहीं। वहाँ का नवीन इमीग्रेशन एक्ट (बाहिरी लोगों के आवागमन का क़ानून) इस मनोवृत्ति का परिणाम है। इसके पहले कोई ३० वर्षों से लगातार वहाँ के क्षुद्रहृदय राजनीतिज्ञ जो चालें चला करते थे उनसे जनसाधारण की मनोवृत्ति का पता चलता है। वे वोट प्राप्त करने के लिए लोगों से कहा करते थे कि हम 'जापानियों को अमरीका से निकाल कर बाहर करेंगे। अमरीका को एक-दम स्वच्छ रखना हमारा सर्वोच्च ध्येय होगा। अमरीका अमरीकावासियों के लिए है, उससे कोई दूसरा लाभ नहीं उठा सकता। ऐसे उत्तेजक वाक्यों के फन्दे में लोग सहज ही में आ जाते हैं। प्रतिद्वन्द्वी के प्रति ईर्ष्या-भाव होना बिलकुल स्वाभाविक है, और अमरीकावासी जापान को अपना बड़ा भारी प्रतिद्वन्द्वी समझते हैं। हाँ, एशिया में एक देश ऐसा भी है जो उनकी आँखों में इतना अधिक नहीं खटकता। वह देश है चीन। चीन दीन-दुखी और असहाय सा है। उसके प्रति करुणा होना अमरीका के कोमल हृदय का परिचायक नहीं।

अमरीका क्यों चीन को इतना दयनीय समझता है? इसका कारण हैं वहाँ के इसाई पादरी। भारतवर्ष और जापान में तो अब उन लोगों की दाल नहीं गलती, किन्तु चीन से वे लोग अभी उतने अधिक हताश नहीं हुए हैं। इसी लिए अमरीकावासी चीनियों को करुणा की दृष्टि से देखते हैं। उनका विश्वास है कि चीनी एक न एक दिन अवश्य ईसामसीह का सन्देश सुनेंगे। जो कुछ भी हो, अमरीका में चीन के प्रति घृणा नहीं और न तब तक घृणा प्रकट होने के कोई लक्षण हैं जब तक पादरी लोग सर्वथा हताश नहीं हो जायँगे। क्योंकि पूर्वी देशों के विषय में जनता की ज्ञानवृद्धि करने के एक-मात्र साधन यही पादरी लोग हैं। अन्य लोगों को इतना अवकाश कहाँ कि वे इस ओर ध्यान दें।

किन्तु चीन के प्रति भी अमरीका के इस सदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार के अधिक टिकने की आशा नहीं। क्योंकि एशिया कि जाग्रति के साथ साथ चीन में भी प्रतिघात प्रारम्भ हो गया है। एक चीनी विद्वान् ने 'चीन रिव्यू' में इस नवीन आन्दोलन का वर्णन इस प्रकार किया है—

एक दिन था जब एशिया ऐसा भोला-भाला था कि यदि उसके दाहने गाल पर थप्पड़ मारो तो वह दूसरे थप्पड़ के लिए बायाँ गाल कर दिया करता था, किन्तु वे दिन चले गये। एक दिन था जब एशियावासी समझते थे कि सहनशीलता और सहिष्णुता से बढ़ कर संसार में और कोई सद्गुण नहीं हैं, वे कठिन से कठिन आपत्ति में भी इनको नहीं छोड़ना चाहते थे, किन्तु अब वह दिन नहीं है। एक दिन था जब एशिया को योरपीय चाल-ढाल और विचारों से अतिशय घृणा थी, वह केवल शान्ति की उपासना किया करता था, किन्तु आज वह दिन नहीं है। एशिया अफ़्रीका नहीं है। दोनों में बड़ा अन्तर है। एशिया ने मालूम कर लिया है कि जिसको वह अपना सबसे बड़ा शत्रु समझ रहा है उसको यदि चाहे तो अपना सबसे बड़ा मित्र बना सकता है। कैसे? मित्रता करना क्या आसान है? नहीं, उसका उपाय ही दूसरा है। एशिया को पश्चिमीय सभ्यता स्वीकार करनी होगी, उसी के समान बन्दूक़, तोप, जहाज़ और हवाई-जहाज़ बनाने होंगे। तभी उन दोनों में मित्रता हो सकेगी। यह बात तो बिलकुल प्रत्यक्ष है कि पश्चिम पूर्व पर कुछ इसलिए राज्य नहीं करता है कि उसमें धार्मिक या नैतिक बल अधिक है अथवा उसकी बुद्धि ही अधिक प्रखर है। नहीं, वह राज्य इसलिए करता है कि वह लड़ना और रुपया कमाना खूब जानता है। भगवान् बुद्ध और कन्फ़ूकस जिन चीज़ों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे उन्हीं को प्राप्त करके योरप एशिया को चिढ़ा रहा है। किन्तु अब वह दिन दूर नहीं है जब एशिया भी थप्पड़ का बदला थप्पड़ के द्वारा देने के लिए तैयार हो जायगा।

जिस भाव का इस विद्वान् ने उल्लेख किया है उसकी सबसे अधिक परिपक्वता जापान में हुई है। इसी लिए अमरीका के सिर पर जापान का भूत सवार हो रहा है। वे उसको भयङ्कर सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। वास्तव में शान्तमहासागर की ओर रहनेवाले शान्ति-भङ्ग के लिए बहुत उतावले हो रहे हैं। सच पूछा जाय तो जापान के विरुद्ध अमरीका में एक लहर सी उठ रही है। और पूँजीपतियों-द्वारा सञ्चालित समाचार-पत्र इस आग को भड़काने के लिए प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं। तरह तरह की झूँठी और उत्तेजक ख़बरों के द्वारा वे जनता के मस्तिष्क और हृदय दोनों को कलुषित करना चाहते हैं। यथार्थ में यही समाचारपत्र एक दिन अमरीका को ले डूबेंगे। यदि यही हाल रहा तो एक न एक दिन दोनों राष्ट्रों के बीच विद्वेष की ऐसी प्रबल ज्वाला भड़केगी कि वह बुझाए न बुझेगी। किन्तु आशा इतनी ही है कि जापान, जहाँ तक उससे बन पड़ेगा, वहाँ तक भूल कर भी अपनी ओर से आगे नहीं बढ़ेगा। वह जहाँ तक सम्भव होगा, वहाँ तक घोर से घोर अपमान भी सह लेगा, किन्तु स्वयं लड़ाई ठानने का बीड़ा नहीं उठावेगा। क्योंकि जापान यह अच्छी तरह जानता है कि अमरीका से लड़ाई छिड़ते ही इँग्लैंड तथा अन्य कई योरपीय देश उसकी सहायता करने को तैयार हो जायँगे और मुझको अकेले ही इन सबका सामना करना होगा। एशिया के तो अन्य किसी देश में अभी इतना सामर्थ्य ही नहीं जिससे मुझको थोड़ी-बहुत सहायता मिल सके। पड़ोसी चीन तो ऐसा निर्बल हो रहा है कि सहायता देना तो दूर रहा वह उल्टे हानि कराने का कारण बन जायगा।

किन्तु अमरीका और एशिया के बीच इस घटाटोप अन्धकार में भी दो एक उज्ज्वल किरणें दिखाई देती हैं, जिससे हमें संसार के उत्तरोत्तर विकास की दृढ़ आशा बँधी रहती है। पहली किरण तो जापान की दिनदूनी रात चौगुनी उन्नति है। दूसरी किरण यह है कि पूर्वी देशों में परस्पर मिल-जुल कर अपने सामान्य शत्रुओं का सामना करने की इच्छा जाग्रत हो रही है। तुर्की साम्राज्य की स्थापना भी पूर्व के उषः-काल का शुभचिह्न है। उसने अपने बाहुबल से इँग्लैंड जैसे शक्तिशाली साम्राज्य को उस हद तक नीचे झुकने के लिए बाध्य किया जिस तक वह पहले कभी नहीं झुका था। केवल एशिया ही में नहीं, योरप में भी इस शुभ आशा की किरणें झलक मारने लगी हैं। रूस में ज़ार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाही का अन्त हो गया है, जिसकी उद्दण्डता के कारण चीन, जापान, भारतवर्ष आदि देशों में लगभग एक शताब्दी तक बराबर आतंक छाया रहा। वहाँ सोवियट-सरकार का उदय हुआ है, जो श्रमजीवियों की सरकार है। इसी प्रकार इँगलेंड में भी एक बार श्रमजीवियों को मन्त्रि-मण्डल बनाने का सुअवसर भी प्राप्त हो चुका है। अतएव आशा है कि ऐसी अवस्था में अमरीका कुछ गम्भीर होकर एशिया की समस्यायों पर विचार कर सकेगा। इस पर भी यदि उसने योरपवासियों-द्वारा एशिया के उत्पीडन में सहायता दी तो उसका कारण जातिगत द्वेष उतना अधिक नहीं होगा जितना कि रुपया-पैसा और शक्ति की लालसा उसको इस दुष्कर्म में प्रवृत्त करेगी। यह तो निश्चित ही है कि यदि योरप और अमरीका शीघ्र ही न सँभले तो एक न एक दिन पूर्व और पश्चिम के बीच भयङ्कर युद्ध होगा, जिसमें एशिया का स्वतन्त्र होना अवश्यम्भावी है। परन्तु इसमें किसी का कल्याण नहीं है। दोनों की भलाई इसी में है कि वे एक दूसरे से प्रेम करने लगें। एशिया अपनी सुस्ती छोड़ दे और योरप और अमरीका अपना हठ। एशिया को राजनैतिक, सामाजिक अथवा मानसिक क्षेत्र में अपने से हीन समझना योरप और अमरीका की भयङ्कर भूल है।

४—फ्रांस के एक प्रसिद्ध विद्वान् की साहित्य-सम्बन्धिनी सूक्तियाँ।

लेखक के मन से—उसके अन्तर्गत भाव से—परिचित करा देने में ही समालोचक का नैपुण्य है। लेख में साहित्य-शास्त्र के अनुशासनों का यथोचित पालन किया गया है अथवा नहीं, उसमें व्याकरण की मर्यादा की रक्षा की गई है अथवा नहीं, यह समालोचक के व्यवसाय के अन्तर्गत अवश्य है, परन्तु यह सबसे कम आवश्यक है।

निर्दय समालोचना रुचि को विकृत कर देती है। वह सभी प्रकार की रचनाओं में विष मिला देती है।

जिसमें सुजनता और शान्ति नहीं उसमें साहित्य ही नहीं है। समालोचना में भी दाक्षिण्य भाव चाहिए, नहीं तो उसकी गणना यथार्थ साहित्य में नहीं हो सकती।

जिनका व्यवसाय समालोचना है वे बिना तराशे हुए हीरे अथवा खदान से निकले हुए सोने का ठीक मूल्य नहीं लगा सकते। टकसाल के ढले-ढलाये सिक्कों से ही उनका काम चलता है। उनकी समालोचना तराजू का काम कर सकती है, परन्तु वह कसौटी नहीं है जो सोने को खरा सिद्ध कर दे।

साहित्य में सहसा विचार-शक्ति उत्पन्न नहीं हो जाती है। न जाने कितने वर्षों के बाद वह जन्म लेती है। उसका विकास तो और भी विलम्ब से होता है।

भाषा के सम्बन्ध में समालोचक जिस ढङ्ग से अनुशासन देते हैं वह धर्मशास्त्र में ही शोभा दे सकता है। साहित्य मनोराज्य की वस्तु है। उसे मनोराज्य के ही आचार के अनुसार चलना चाहिए। क्रोध की उद्दीप्ति और पित्त का प्रकोप वहाँ असङ्गत है।

प्रतिभा महत् कार्य का आरम्भ करती है, परन्तु उसे पूरा करता है परिश्रम।

अच्छी रचना के लिए तीन वस्तुओं की आवश्यकता है—क्षमता, विद्या और नैपुण्य अर्थात् स्वभाव, परिश्रम और अभ्यास।

सत्साहित्य उन्मत्त नहीं बनाता, वह मुग्ध करता है।

जो विस्मयकर है वह केवल एक ही बार विस्मित करता है, परन्तु जो मनोहर है उनकी मनोहारिता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

अभ्यास से 'रीति' निर्मित होती है, परन्तु अन्तः-प्रकृति के अभ्यास से जिस रीति का निर्माण होता है वही आदरणीय है।

नवीन लेखक अपने मन को कल्पना-क्षेत्र में टहलाते खूब हैं, परन्तु उसे भोजन बहुत कम देते हैं।

५—कला पर अवनीन्द्रनाथ।

प्रकृति की प्रतिलिपि करने को कला नहीं कहते, जिससे उसका अर्थ प्रकट हो वही सच्ची कला है।

साधारण व्यक्ति अपनी स्थूल आँखों से जो कुछ देखता है उससे कहीं अधिक सच्चा चित्रकार अपने अन्तःकरण के प्रकाश से देख लेता है।

यद्यपि डाक्टर मेरी मा की अपेक्षा मेरे शारीरिक गठन की कहीं अधिक अच्छी व्याख्या कर सकता है, तथापि जब मेरे अन्तःकरण को पहचानने का प्रश्न उठता है तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाकृर को मा के आगे हार खानी पड़ती है। इसलिए कि डाकृर तो अपनी स्थूल आँखों से मुझे देखता है और मा अपने हृदय की आँखों से देखती है।

हम लोग कला से क्यों प्रेम करते हैं? क्योंकि उसमें हमें चित्रकार का हृदय दिखाई देता है।

चित्रकार के हृदय और प्रकृति में ऐसा सामञ्जस्य होना चाहिए कि उसकी हलकी से हलकी लहर से उसकी हृत्तन्त्री बज उठे। चित्रकार चाहे जिस अवस्था में हो, आनन्द भोग रहा हो या दुःख उठा रहा हो, सन्तुष्ट हो या असन्तुष्ट, उसको अपने हृदय को ब्रह्माण्ड के साथ तन्मय कर देना चाहिए। इस विराट् जगत् के भीतर, जिसमें हम रहते हैं और जिसमें हमें दौड़-धूप की अनन्त लहरें उठती दिखाई देती हैं, आध्यात्मिक लहरें उठा करती हैं। उन्हीं के इशारे पर उसका हृदय बजना चाहिए।

चित्रशालाओं और चित्र-पाठशालाओं से कोई चित्रकार नहीं बन सकता। यदि तुम सचमुच चित्रकार हो तो तुम चित्र-पाठशाला में सम्मिलित हो सकते हो, अन्यथा नहीं! यह बात बिलकुल उल्टी मालूम होती है, किन्तु क्या किया जाय, है सच्ची। थोड़े से विचार से स्पष्ट भी हो जाती है। यदि यह सच है कि युद्ध में तलवार चलाने की क्षमता प्राप्त करने के पहले मनुष्य को वीर हृदय की आवश्यकता है, यदि यह सच है कि कवि बनने के लिए मनुष्य को कल्पना-शक्ति की आवश्यकता है तो फिर इसमें क्या सन्देह है कि ब्रुश चलाना सीखने के पहले तुम्हें चित्रकार का हृदय प्राप्त करना चाहिए।

कला की कोई व्याख्या नहीं कर सकता। चित्रकार इसे अच्छी तरह जानता है। मा के वात्सल्य प्रेम की भी तो ठीक ठीक व्याख्या नहीं हो सकती। यही हाल कला का है। यदि कहीं सच्ची कला का निदर्शन होता है तो हम तुरन्त उसे पहचान लेते हैं। हृदय में उसकी अनुभूति होती है। तो भी हम दूसरों को यह नहीं समझा सकते कि वह है क्या चीज़।

६—पुस्तक-परिचय और समालोचना।

सरस्वती में पुस्तक-परिचय के नीचे पुस्तकों के जो परिचय छापे जाते हैं उनके सम्बन्ध में हमें हिन्दी के विद्वान् लेखकों और पुस्तक-प्रकाशकों से एक निवेदन करना है।

समालोचना का काम बड़े उत्तरदायित्व का है। जो किसी विषय के पारंगत विद्वान् होते हैं वही उस विषय के ग्रन्थों के सम्बन्ध में कुछ सम्मति देने का अधिकार रखते हैं। यही कारण है कि उन्नत भाषाओं के पत्रों में विशेषज्ञ ही पुस्तकों की समालोचनायें करते हैं। उनमें समालोचना-सम्बन्धी पत्र भी प्रकाशित होते हैं। हर्ष की बात है कि हिन्दी में समालोचना का काम विशेषज्ञ विद्वान् करने लगे हैं। समालोचना के लिए—पुस्तकों की सच्ची परीक्षा के लिए—लेखकों का यह उत्साह सचमुच प्रशंसनीय है। सच्ची समालोचना सदैव श्रेयस्कर होती है। उसमें दोषों के साथ साथ गुणों का भी निरूपण किया जाता है। हमें खेद यह है कि समालोचना के लिए जितनी योग्यता अपेक्षित है उसका शतांश भी हम लोगों में नहीं है। न हम लोगों के पास ऐसे साधन हैं और न सरस्वती में ऐसी विस्तृत आलोचनाओं के लिए स्थान ही है। इसी से सरस्वती में पुस्तकों का परिचय-मात्र छापा जाता है। पुस्तक-परिचय में हम सिर्फ़ इसी बात पर ध्यान देते हैं कि पाठकों को यह मालूम हो जाय कि हिन्दी के वर्तमान साहित्य की गति किधर है, उसमें किन किन विषयों की कैसी कैसी किताबें निकल रही हैं। क्यों किसी पुस्तक की आलोचना दस-पाँच सतरों में निकली, इसका एक-मात्र कारण यही है।

७—'कणिका' के कुछ कण।

ज्ञान की सीमा।

तृषार्त गदहा सरोवर के किनारे गया। वहाँ जल को देखकर उसने कहा—छिः छिः, कितना काला है। इतना कह कर वह लौट आया।

जल ने कहा—जो गदहे हैं वही कहते हैं कि मैं काला हूँ। पर बुद्धिमान् तो जानते हैं कि मैं काला नहीं, स्वच्छ हूँ।

समालोचक।

फूटी कौड़ी ने रुपये से तिरस्कार-व्यञ्जक स्वर में कहा—तुम हो क्या, सिर्फ़ सोलह आने। मोहर तो नहीं हो।

रुपये ने कहा—भाई, मैं जो हूँ सो हई हूँ। परन्तु तुम्हारा जितना मूल्य है उससे अधिक तुम्हारी बात है।

कलङ्क का कलङ्क।

हे धूल, तुम सभी की स्वच्छता को कलङ्कित करती फिरती हो। पर यह क्या तुम्हारे लिए कलङ्क की बात नहीं है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८—अज्ञात कवि की रचना ।

(१)

यह जन्म दियो जब से करतार
दुखै दुख बीते सबै दिन है ।
निजकर्म के अंक लिखे विधि भाल में
मेटि सकै अस को तिन है ॥
गणना नहिं औगुण कीन घने
नहिं अन्त अनन्त भरो ऋन है ।
इतने पर दुष्ट महातृषणा
यह बाढ़त जात छिनै छिन है ।

(२)

जानत हौ सबके हिय की
प्रभु व्यापक हौ सबके घट माहीं ।
कर्म अकर्म सबै तुम जानत
को अस जीव जहाँ तुम नाहीं
ता ते करौं इतनी विनती
भव बूड़त आय गहो मम बाहीं
पाप-समुद्र ते लेहु उबारि
तुम्हें तजि नाथ कहाँ अब जाहीं

(३)

अति शोच हि शोच किते दिन गे
कबहूँ दिन नीके तो आवहिंगे ।
करिकै किरपा रघुनाथ जबै
गहि बाँह हमैं अपनावहिंगे ॥
धनि भागि सराहि हिये अपने
सब शोच हि दूर बहावहिंगे ।
कबहूँ रघुनन्दन जानि अनाथ
दया करि आस पुरावहिंगे

(४)

कोइ नहीं अपनो जग में
मन खूब विचारि कै देखि लियो है ।
मात पिता पति पुत्र सुबान्धव
स्वारथ लागि सनेह कियो है ॥
संकट आय पड़े जब ही
तब कोई न आपनो साथ दियो है ।
रे मन भूलो वृथा भटकै
रघुनाथ के हाथ न देत हियो है ।

(५)

स्वारथ के सब मित्र बसैं
परमारथ को जग में नहिं कोई
धर्म की बात करैं उपहास,
जो दम्भ करै तपसी बड़ो सोई
वेद-पुरान की बात बिहाय,
करै अपने मन भावत जोई
मोहि तो और भरोस नहीं
सियराम कृपा करि हैं सोइ होई

(६)

नाथ अनाथन के तुम नाथ,
दयानिधि लोचन कोर चितैये ।
माया के जाल में आय फँसी,
करुणा करि कै मोंहि आय छुटैये ॥
जो तुम तार्‌यो है पापी महा
तिनकी गिनतीन में मोहू को लैये ।
मोहि महा अघपुंज बिचारि
डेराय कहूँ हरि भागि न जैये ॥

(७)

धीरज धारु बिचारु निरन्तर
अन्तर के दुख दूरि करैगो ।
कोशलपाल कृपाल सदा
विपदा क्षण में प्रभु तेरी हरैगो ॥
भाललिखा दुख ही दुख है
रघुनाथ कृपा सब दूरि टरैगो ॥
'रामसखी' सियराम कहौ
सियराम कृपा सब पूरि परैगो ॥

प्रेषक, एक ग्रामीण

———

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

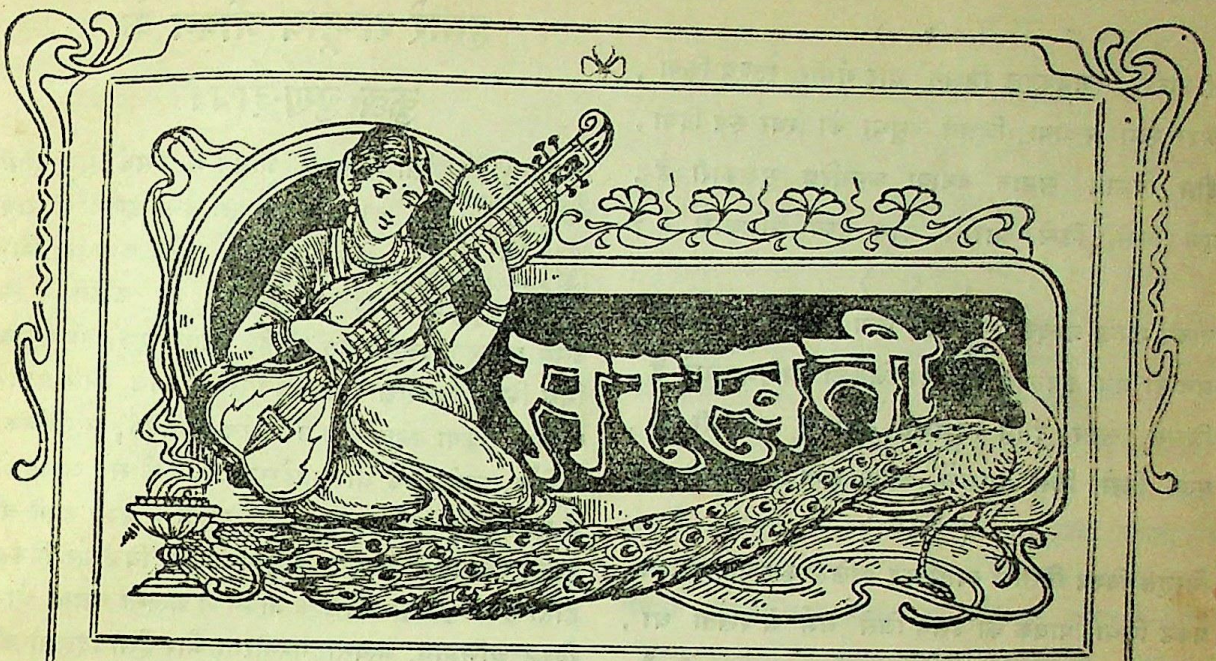

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २६, खण्ड १] अप्रिल १९२५—चैत्र १९८२ [संख्या ४, पूर्ण-संख्या ३०४

आराध्य-देव ।

ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त १२१

(१)

स्वर्णगर्भ था आदि सृष्टि में, स्वामि सृष्ट भूतों का जो,
विश्व जगत का एक परम पति, पिता प्राणि पूतों का जो,
निम्न अवनितल ऊर्द्ध व्योम रच, रचना सुथल सुधारी है,
पूजें किसे, किसे आराधें, कौन हव्य अधिकारी है ?

(२)

आत्मद और बलद है जग का, जिसका विश्व पुजारी है,
जो उपास्य देवों का जिससे सृष्टि सुशासित सारी है,
छाया मृत्यु और अमृत है, जो अनादि अविकारी है,
पूजें किसे, किसे आराधें, कौन हव्य अधिकारी है ?

(३)

जड़ जङ्गम सचराचर सबका सबल स्वामि सुखदायक जो,
ज्येष्ठ स्वयम्भू, सर्वश्रेष्ठ, जग-नायक विश्व-विधायक जो,
भूचर, जलचर, नभचर, सबका जो प्रभु पोषणकारी है,
पूजें किसे, किसे आराधें, कौन हव्य अधिकारी है ?

(४)

सरिता सिन्धु सरोवर के मिस प्रकटी जिसकी रस धारा,
उपजाया जिसकी महिमा ने गिरिवर का समूह सारा,
जिसकी बाहु दिशोपदिशायें, जो अनन्त अविकारी है,
पूजें किसे, किसे आराधें कौन हव्य अधिकारी है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

नीलाम्बर नभमण्डल जिसने धीर गँभीर स्तब्ध किया,
ऊपर स्वर्ग रचाया जिसने वसुधा को स्थिर रूप दिया,
दीप्त विमान समान बनाया अन्तरिक्ष सुखकारी है,
पूजें किसे, किसे आराधें कौन हव्य अधिकारी है?

(६)

पाकर शरण क्रन्दसी जिसकी धन्य सुभाग्य मनाते हैं,
मन ही मन इहलोक और पर जिसकी महिमा गाते हैं,
जिससे लेकर दीप्ति दिवाकर तेजोमय तमहारी है,
पूजें किसे किसे आराधें, कौन हव्य अधिकारी है?

(७)

विस्तृत विश्व विशाल व्याप्त कर सलिल रूप में रमता था,
प्रकट किया पावक को उसने जिसे गर्भ में रखता था,
जिससे पाकर प्राण जगा, सब सुर-समूह सुखकारी है,
पूजें किसे, किसे आराधें, कौन हव्य अधिकारी है?

(८)

जिसने उस जलमय स्वरूप से यज्ञ-अग्नि को उपजाया,
महिमा पूर्ण दृष्टि से देखा विपुल विश्व जो विरचाया,
जो देवाधिदेव देवों का ध्येय ज्ञेय अविकारी है,
पूजें किसे, किसे आराधें, कौन हव्य अधिकारी है?

(९)

जिसने रचा स्वर्ग, पृथ्वी का, पालक पिता पुराना है,
सत्यधर्म सर्वेश्वर जिसने हिंसाभाव न जाना है,
सुन्दर सिन्धु, सुधाकर शीतल रचा विमल छविधारी है,
पूजें किसे, किसे आराधें, कौन हव्य अधिकारी है?

(१०)

विश्व प्रजापति जो कुछ तुमने जड़ चेतन जग विरचाया,
नियमित विधिगत है तुमसे ही यह अपार महती माया,
मनकामना सहित प्रभु अर्पित हव्य इसे स्वीकार करो,
पूर्ण करो, लो चरण-शरण में विभुवर बेड़ा पार करो।

भगवानदीन पाठक (भगवन्त)

हमारे राष्ट्रीय जीवन के कुछ गुण-दोष।

किसी व्यक्ति के जीवन में उसके गुण-दोषों का वर्णन उत्तमता तथा पूर्णता के साथ कर सकना बड़ा कठिन कार्य है; और यह बतला देना भी कठिन है कि उसमें प्रधानता किस बात की है, क्योंकि एक ही मनुष्य भिन्न भिन्न अवस्थाओं और अवसरों में भिन्न भिन्न प्रकार के काम किया करता है। उसके व्यावसायिक, सामाजिक, धार्मिक, सार्वजनिक और गार्हस्थ्य जीवन के सब व्यवहारों में एकता और सदृशता देख नहीं पड़ती। कभी कभी तो उसका वर्तमान आचरण उसके पूर्वाचरण के बिलकुल विरुद्ध होता है। एक ही व्यक्ति के जीवन में अत्यन्त नम्रता और विकट अभिमान, अत्यन्त गम्भीरता और हँसी-दिल्लगी की आदत पाई जाती है। किसी किसी मनुष्य का आचरण तो बैरोमीटर यन्त्र का सा होता है, जो क्षण क्षण में परिस्थिति के परिवर्त्तन से रङ्ग और रूप बदलता रहता है।

यदि एक व्यक्ति के आचरणों को देखकर उसके जीवन के सिद्धान्तों और गुण-दोषों का ठीक ठीक और पूरा पूरा पता लगाना इस प्रकार कठिन है, तो फिर इस बात का अनुमान विचारशील पाठक स्वयं कर सकते हैं कि किसी मनुष्य-समूह अथवा राष्ट्र के जीवन-तत्त्वों और गुण-दोषों का माप करना कितना कठिन कार्य होगा। तथापि यह बात निर्विवाद है कि जैसे किसी व्यक्ति के कुछ प्रधान गुण-दोष स्वभाव-सिद्ध हुआ करते हैं, वैसे ही आचरण और स्वभाव में परस्पर-विरुद्ध करोड़ों मनुष्यों के समूह अथवा राष्ट्र में भी कुछ न कुछ गुणों की प्रधानता और व्यापकता अवश्य होती है। हज़ारों भिन्नताओं के समूह से एकता, सदृशता और समानता की कुछ बातों को ढूँढ़ निकालने के लिए सूक्ष्म निरीक्षण की और निष्पक्षभाव की आवश्यकता है। इस छोटे से लेख में हम अपने देश-बन्धुओं के राष्ट्रीय जीवन के कुछ गुण-दोषों का विवेचन करेंगे। सम्भव है कि इसमें हमसे कुछ भूल हो जाय और हम पर यह दोष लगाया जाय कि हम अपने राष्ट्रीय गुणों का वर्णन स्वयं कर रहे हैं। परन्तु जब इस बात पर ध्यान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जायगा कि क्या व्यक्ति की उन्नति और क्या राष्ट्र की उन्नति के लिए दोषों के साथ साथ अपने गुणों को भी जान लेना अत्यन्त आवश्यक है तब प्रत्येक मनुष्य को मानना पड़ेगा कि अपने राष्ट्रीय गुणों का वर्णन करना किसी प्रकार अनुचित नहीं है। इन गुणों के ज्ञान से ही हम अपनी उन्नति कर सकते हैं, अपनी सजीवता के कारणों को समझ सकते हैं और संसार की आवश्यकता के अनुसार उसे कुछ शिक्षा भी दे सकते हैं। जब तक कोई मनुष्य अपने राष्ट्र की विशेषताओं को भली भाँति जान नहीं लेता तब तक वह राष्ट्रोन्नति के अपने प्रयत्नों में पूरी तरह से सफल भी नहीं हो सकता।

भारत के राष्ट्रीय जीवन के प्रधान तत्त्वों को ढूँढ़ निकालना इसलिए कुछ कठिन सा हो गया है कि यहाँ जाति-भेद, वर्ण-व्यवस्था, साम्प्रदायिक पन्थ, धर्मभेद आदि ऊपरी विभिन्नता दिखानेवाली अनेक बातें हैं। इन्हीं कारणों से अल्पविचारवाले कुछ महाशय कभी कभी कह बैठते हैं कि भारत के राष्ट्रीय जीवन में एकता नहीं है अथवा भारतीय राष्ट्र कोई वस्तु ही नहीं है। और इसी लिए यहाँ कोई ऐसे विशेष गुण नहीं हैं जो राष्ट्रीय जीवन के तत्त्व या आधार समझे जायँ। परन्तु इस देश की गत तथा वर्तमान धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक स्थिति के जानकार लोग उक्त कथन से सहमत नहीं। वे पूछते हैं, क्या हज़ारों वर्ष के प्राचीन भारतवर्ष में कुछ भी ऐसी विशेषतायें नहीं हैं जिनका अन्य देशों अथवा राष्ट्रों में सर्वथा अभाव अथवा न्यूनता हो? जिन भारतवासियों ने जीवन के प्रत्येक अङ्ग में आदर्श के समान काम किया है क्या उनके वर्तमान वंशजों में किसी भी गुण की प्रधानता नहीं है? सारांश, क्या हमारे राष्ट्रीय जीवन का कोई उद्देश ही नहीं है? इन प्रश्नों पर विचार करने से मालूम होगा कि इस देश में रहनेवाले बृहत् मनुष्य-समाज का कुछ ध्येय अवश्य है—वह केवल आहार, निद्रा, भय इत्यादि पशुओं के आचरण में ही अपने जीवन की सफलता नहीं समझता। माना कि वह ध्येय या उद्देश बहुत समय तक सुषुप्तावस्था में था; पर अब उसकी जाग्रति के लक्षण चारों ओर देख पड़ रहे हैं। आज-कल भारतीय आकांक्षाओं के सम्बन्ध में जो बातें प्रकट हो रही हैं उनसे सिद्ध होता है कि इस देश के निवासी ऊपरी विभिन्नताओं को दूर कर अपने हृदयों में एक ही प्रधान उद्देश को स्थान दे रहे हैं।

ऐसी अवस्था में यह देखना चाहिए कि हमारे राष्ट्रीय जीवन के प्राण कहाँ हैं, भारतीय-जनता के कोई विशिष्ट गुण-दोष हैं या नहीं और हैं तो कौन से? विचार और अवलोकन से मालूम होता है कि भारतवासियों में सबसे पहला और प्रधान गुण नम्रता है। स्मरण रहे कि अपवाद सभी बातों और नियमों के हुआ करते हैं, परन्तु अधिकांश में जो बात सच होती है वही नियमस्वरूप मानी जाती है। भारतवासियों में यह गुण अधिकता से देख पड़ता है और उसका आचरण भी स्वाभाविक जान पड़ता है। नम्रता के दो भेद हैं—कृत्रिम और स्वाभाविक। कृत्रिम नम्रता के आचरण से मनुष्य के हृदय पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। उसकी आवश्यकता तो वर्तमान समय के केवल "सभ्य समाजों" और उनका अनुकरण करनेवाले लोगों में ही पाई जाती है, भारतवासी स्वभाव से ही नम्र और सज्जन हुआ करते हैं। उनकी नम्रता सिर्फ़ "रसूम अदाई" नहीं है; उसमें हार्दिक स्वार्थत्याग और दूसरों के सम्मान का उदार विचार सम्मिलित होता है। इस गुण का मूल आधार अध्यात्मविद्या के उस ऊँचे तत्त्व में है जिसके अनुसार आत्मा की एकता सिद्ध होती है। सात्त्विक नम्रता एक बड़ी भारी दैवी सम्पत्ति है। इसी लिए भारतवर्ष में व्यक्तित्व के अभिमान की मात्रा बहुत कम पाई जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि नम्रता का जो भाव अहम् के वृथा अभिमान से मुक्त हो वह सार्वजनिक तथा राष्ट्रीय जीवन के लिए बड़ा पोषक होता है।

भारतवासियों का दूसरा राष्ट्रीय गुण उनकी धैर्यशीलता और सन्तुष्टता है। इस गुण का आधार पूर्वजन्म के कर्म-सम्बन्धी सिद्धान्त में पाया जाता है। प्रत्येक मनुष्य भले-बुरे कर्मों का आचरण करने के लिए स्वतन्त्र है। इसलिए वह अपने भले-बुरे कर्मों के फलों को भोगने के लिए ज़िम्मेदार भी है। इन कर्म-फलों का भोग करते समय उसे धैर्य के साथ सन्तुष्ट रहना पड़ता है। इसका उदाहरण दक्षिण-आफ्रिका के भारतवासियों ने वर्तमान समय में स्पष्ट रीति से दिखा दिया है। इस गुण के विरुद्ध कहा जाता है कि यह मानवीय आकांक्षाओं का पोषक नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु प्राचीन और आधुनिक उदाहरणों को देखने से मालूम होता है कि भारतवासियों के इस गुण ने इस देश की भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में पूरी सहायता की है। सच्ची सहनशीलता, धैर्यशीलता और सन्तुष्टता वही है जिसमें उन्नति का मार्ग रुकने न पावे और मनुष्य के हृदय के ऊँचे भावों का विकास होकर उचित आकांक्षायें उत्पन्न होती रहें। धैर्यहीनता कमज़ोरी का लक्षण है। उससे मानसिक भय तथा सहनशक्ति का अभाव व्यक्त होता है। भारतवासी अपने बड़े बड़े दुखों को केवल इसी गुण के आधार से हँसते हँसते सह लेते हैं। इस गुण से मनुष्य इस बात की शिक्षा पाता है कि ईश्वर उचित समय पर संसार की व्यवस्था करने का संयोग ला देता है, अतएव विश्वास करना, मार्ग-प्रतीक्षा करना और सदा अपने कर्तव्य में लगे रहना ही उसका सच्चा धर्म है।

भारतीय राष्ट्र के जीवन में तीसरा और अत्यन्त पवित्र गुण धार्मिक तत्त्वों का समावेश है। भारतवर्ष के छोटे-बड़े सब लोगों में धर्मभीरुता, अध्यात्मज्ञान, तत्त्व-विचार, सांसारिक सुख-दुख के विषय में वेदान्त के सिद्धान्तों पर विश्वास इत्यादि बातों का इतना प्रचार है कि प्रत्येक व्यक्ति निरभिमान और निरपराध जीवन की उत्तमता तथा श्रेष्ठता को सहज ही समझता रहता है और फलतः अपने जन्म लेने की ज़िम्मेदारी को सदा के लिए कभी भूल नहीं सकता। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। इस देश की गलियों में भीख माँगनेवाला एक छोटा सा भिखारी भी अपने भजनों और गीतों से उच्च धार्मिक भावों का प्रचार किया करता है। किसी ग्रन्थ-कार ने सच कहा है कि भारतवासियों का जीवन धर्ममय है। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे त्रिकालाबाधित और सनातन धार्मिक तत्त्वों के कारण ही हम लोगों को सब सृष्ट पदार्थों की ओर देखने की उचित दृष्टि प्राप्त हुई है। इस उचित दृष्टि के आधार पर ही हम लोग अपने भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में मेल रखते हुए संसार के सब छोटे-बड़े कर्तव्यों का पालन कर सकते हैं और अपने मन को सुख-दुख, राग-द्वेष आदि विकारों से मुक्त भी कर सकते हैं।

इस पर कुछ लोगों का यह आक्षेप है कि धार्मिकता के कारण ही भारतवासियों में संसार के बड़े बड़े कामों के विषय में उदासीनता देख पड़ती है, ढोंगी संन्यासियों की संख्या बढ़ रही है, साहस के कामों की ओर रुचि देख नहीं पड़ती और प्रायः लोग मिहनत से घृणा करके आलसी हो जाया करते हैं। हाँ, यह बात सच है कि धर्म और अध्यात्म के नाम पर कुछ भ्रामक और मिथ्या विचारों का प्रचार हो जाने के कारण इस राष्ट्र का वर्तमान धार्मिक जीवन दूषित और कलङ्कित हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि सांसारिक तथा भौतिक कार्यों के प्रति अनुचित तिरस्कार प्रकट करके हम लोगों ने अब तक अपनी जो हानि कर ली है वह बहुत अधिक है और जब तक हम अपने उन मिथ्याविचारों को छोड़ न देंगे तब तक हमारा कोई कल्याण भी नहीं हो सकता। परन्तु स्मरण रहे कि इस दोष का अस्तित्व मान लेने से यह बात सिद्ध नहीं हो सकती कि इस देश के राष्ट्रीय जीवन में धार्मि-कता एक प्रधान गुण नहीं है। दोष को दोष और गुण को गुण मानना, दोषों को दूर करके गुणों का विकास करने का प्रयत्न करना सच्चे विचारशील मनुष्यों का कर्तव्य है। ऐसी अवस्था में, हमारे जिन भाइयों ने अपने धार्मिक जीवन के विषय में कुछ भ्रामक विचार कर लिये हैं उनसे हमारा यह नम्र निवेदन है कि जब कोई साध्य साधन की सहायता के बिना सिद्ध नहीं होता तब साध्य को ही सब कुछ समझ कर साधन की लापरवाही और तिरस्कार करना अथवा उद्दिष्ट स्थान में पहुँचानेवाले मार्ग की अवहेलना करना बुद्धिमानी का काम नहीं है। सफलता वर्तमान समय और अवस्था पर ध्यान देने से मिलती है, भविष्य-सुख का केवल स्वप्न देखने से नहीं। संसार-चक्र भारतवासियों को पुकार कर कह रहा है कि वे मनुष्य-जीवन को तुच्छ और संसार को झञ्झट कहनेवाले अपने भ्रामक सिद्धान्त का शीघ्र ही त्याग कर दें और अपनी प्राचीन कर्म-प्रधान धार्मिक शिक्षा के तत्त्वों के यथार्थ रहस्य को समझ कर कार्य-क्षेत्र में आशा के साथ प्रवेश करने का प्रयत्न करें।

चौथा उल्लेखनीय गुण है भारतीय गृहस्थाश्रम की पवित्रता और उच्चता। भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से उसका बड़ा भारी महत्त्व है। इस आश्रम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था के सङ्गठन के तत्त्वों में इतनी बुद्धिमानी और मनुष्य-स्वभाव का इतना उत्तम अनुभव भरा हुआ है कि उसकी प्रशंसा विदेशी और विधर्मी लोगों को भी करनी ही पड़ती है। परस्पर प्रेम, विश्वास, समानता और सहानुभूति के चिरस्थायी तत्त्वों पर भारतीय गृहस्थी की रचना की गई है। अपनी वर्तमान दरिद्रावस्था में भी सुखी कुटुम्ब और सरल जीवन का आदर्श भारतीय समाज में अधिकता से देखने को मिलता है। पश्चिमी देशों में पिता-पुत्र और पति-पत्नी का सम्बन्ध जैसा नाज़ुक होता है—वहाँ इनमें जिस तरह के झगड़े और मुक़द्दमेबाज़ी का दृश्य देखने में आता है—वैसा घरू बग़ावत का भीषण दृश्य भारतवर्ष में बहुत ही कम दिखलाई पड़ता है। भारतीय गृहस्थाश्रम त्याग और अतिथि-सत्कार की शिक्षा देनेवाली पाठशाला है। घर के प्रत्येक सदस्य को एक दूसरे के लिए समय समय पर कष्ट उठाना पड़ता है, सहिष्णुता रखनी पड़ती है और अनुचित व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को तिलाञ्जलि देकर समष्टि-कल्याण का भी ख़याल रखना पड़ता है। यहाँ थोड़ा विषयान्तर करने की आवश्यकता है। इसके लिए हमें प्रेमी पाठक क्षमा करें। आधुनिक शिक्षा-प्राप्त कुछ लोग कहा करते हैं कि त्याग मूर्खों का गुण है। हम इसे मानने के लिए तैयार नहीं। हमारा निवेदन है कि अकेला मनुष्य-प्राणी कोई बड़ा कार्य नहीं कर सकता—उसे पग पग पर दूसरों पर अवलम्बित रहना पड़ता है और दूसरों की सहायता की नितान्त आवश्यकता रहती है। इसलिए उदारता और सज्जनता के लिहाज़ से न सही, केवल विशुद्ध स्वार्थ के लिए भी कुछ न कुछ त्याग की आवश्यकता रहती ही है।

ऊपर हमने भारतीय राष्ट्र के कुछ ऐसे जीवन-तत्त्वों का उल्लेख किया है जिन पर इस गिरी हुई दशा में भी उचित अभिमान प्रकट किया जा सकता है। इस विषय का अधिक विस्तार न करके हम अब अपने राष्ट्रीय जीवन के कुछ दोषों पर दृष्टिपात कर यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि हममें इस समय ऐसी कौनसी कमज़ोरियाँ हैं जिनके कारण उच्च कोटि के सद्गुणों के रहने पर भी हमारा राष्ट्रीय जीवन फूलने-फलने नहीं पाता।

भारतीय राष्ट्र की जड़ में आज-कल जो प्रधान रोग पाया जाता है वह है धर्म के नाम पर अनर्थपूर्ण आचार-विचारों का प्रचार। अन्धाचार, अत्याचार, अविचार, स्वेच्छाचार आदि ने ही सच्चे धर्म का स्थान ले लिया है। धर्म के तात्त्विक अर्थ की ओर दुर्लक्ष्य होकर बाहरी आडम्बरों को ही धर्म का स्वरूप दे दिया गया है। ऊपर कहा जा चुका है कि उज्ज्वल धार्मिक तत्त्वों का समावेश भी हमारे राष्ट्र का एक बड़ा भारी गुण है। परन्तु काल की कुटिल गति के साथ बहुजन-समाज में धार्मिक सिद्धान्तों के विकृत अर्थ का प्रचार हो गया है। उदाहरण के लिए जात-पाँत के भेदभाव और छुआछूत का ही सिद्धान्त लीजिए। इसकी आवश्यकता का प्रतिपादन और नियमों की रचना करते समय हमारे प्राचीन धर्माचार्यों का यह उद्देश कदापि न था कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को निस्सीम घृणा का पात्र समझे अथवा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का नैसर्गिक शत्रु हो जाय। हमारे वेदान्त के संसार की असारता के सिद्धान्त को ले लीजिए। उसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि मनुष्य अपने दैनिक भौतिक कर्तव्यों की ओर ध्यान न दे और अपने उचित स्वार्थों की अवहेलना कर कोरे आदर्शवाद ही में बह जाय। त्योहारों, सामाजिक रीतियों और धार्मिक रूढ़ियों में समयानुसार नूतन दृष्टिकोण रखकर आत्म-संशोधन किये बिना राष्ट्र का मुर्दापन दूर नहीं हो सकता।

दूसरा प्रधान दोष है अधिकारों की माँग और चिल्लाहट। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अधिकार-पिपासा में लीन है। सभी अपनी अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं, सत्ता बढ़ाना चाहते हैं और अधिकारों को प्रबल करने की धुन में हैं। जिस क्षण हम अपने लिए कोई अधिकार चाहते हैं उसी समय इस बात की भी आवश्यकता तुरन्त उत्पन्न हो जाती है कि हम दूसरों के उचित अधिकारों का भी ख़याल रक्खें। ऐसे बहुत कम लोग होंगे जो अधिकार की चिल्लाहट के साथ अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्य की भी चिन्ता करते हों। नाई अपने को ब्राह्मण तो सिद्ध करना चाहता है, परन्तु उस्तरे को साथ भी रखना चाहता है। नौकर वेतन तो पूरा माँगता है, पर यह जानने की कोशिश नहीं करता कि उसे कौन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन से काम अवश्य करने होंगे। मालिक चाहता है कि नौकर तो मिल जाय ईमानदार, मिहनती और बुद्धिमान्, परन्तु वेतन बहुत न देना पड़े। मुसलमान चाहता है कि हिन्दुओं से मित्रता हो जाय, परन्तु गोहत्या बन्द न करनी पड़े। हिन्दू चाहता है कि मुसलमानों से मित्रता हो जाय, परन्तु उसे कुछ भी स्वार्थत्याग न करना पड़े। सारांश यह है कि हम कुछ लेना तो चाहते हैं, परन्तु उसके बदले में कुछ देना या करना नहीं चाहते। केवल अपरिमित व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और अधिकारवाद का भाव ज़ोर पकड़ रहा है और कभी न कभी इसका बुरा परिणाम अवश्य होगा। इस भाव की उद्दण्डता को सीमाबद्ध करने के लिए कर्तव्यों और ज़िम्मेदारियों पर भी पूरा ध्यान देना होगा।

भारतवासियों में जो तीसरा और भयङ्कर दोष है वह है आपस में मिलजुल कर काम न कर सकना। प्रभावशाली और स्थायी सङ्गठन करना, विश्वबन्धुत्व का सिद्धान्त माननेवाले आर्यों के वंशजों के लिए सदियों से गुलामी में पड़े रहने के कारण, इस समय असम्भव हो रहा है। ज़रा सा स्वार्थ-विरोध और मतभेद हो जाने पर हम किसी को मनुष्य ही नहीं मानना चाहते। दूसरों की अनुचित निन्दा करना, किसी पर व्यर्थ दोषारोपण कर डालना और निकटवर्ती लोगों का छिद्रान्वेषण करते रहना हमारे लिए मनोरञ्जन का साधन हो रहा है। सार्वजनिक हित के नये कार्यों में पहले जो उत्साह दिखलाई पड़ता है वह थोड़े समय के बाद काफूर हो जाता है। ये सब गुलाम-दिमाग़ी के चिह्न हैं। इन्हीं कारणों से निर्भीकता, स्पष्टवादिता, परस्पर की सच्ची सहानुभूति आदि उन उच्च गुणों का विकृत रूप बढ़ रहा है जिनके द्वारा एक विपत्ति-ग्रस्त मनुष्य अथवा जाति को असहाय अवस्था में दूसरे से सहायता मिल सकती है। हम लोगों को अपने जातीय जीवन में "आज्ञा गुरूणामविचारणीया" के अनुसार फ़ौजीढङ्ग से आज्ञापालकता (मिलिटरी डिसिप्लिन) बहुत कुछ सीखना है, क्योंकि कुछ न कुछ त्याग और आत्मसंयम के बिना सङ्घशक्ति कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकती। इस शक्ति के न रहने पर लोक-कल्याण की बातें करना, स्वप्न देखना है।

वीर-पूजा के भावों का क्षीण होना हमारे राष्ट्रीय जीवन का चौथा भयस्थान है। इसके बदले में हमारे यहाँ व्यक्तिपूजा अथवा किसी उच्च आचरणवाले मनुष्य को देवता बना डालने की ओर लोकरुचि बढ़ रही है। वीर-पूजा करनेवाले मनुष्य आदरणीय व्यक्तियों का अपमान कभी भी नहीं कर सकते, परन्तु यह सम्भव नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति—उपासक वीर-पूजक भी अवश्य हो। आदरणीय व्यक्ति के सिद्धान्तों के अनुसार चलने में ही उसका उचित सम्मान हो जाता है; सिद्धान्तों के अनुसार चलने पर फिर संयोग और सुभीता हो तो ऐसे व्यक्ति पर फूल-माला चढ़ा लेना भी अनुचित नहीं—यह न हो सके तो कोई हर्ज भी नहीं। परन्तु इसमें बड़ा भारी हर्ज है कि किसी महान् व्यक्ति का व्यक्तिगत सम्मान तो किया जाय और साथ ही उसके जीवन-सिद्धान्तों पर पानी फेर दिया जाय। सच्चा प्रेम व्यक्ति की अपेक्षा सिद्धान्तों पर रखने की आवश्यकता अधिक है।

अन्त में यह कह देना आवश्यक है कि भारतीय राष्ट्रीयता के सब व्यापक गुणों और दोषों का संक्षेप में पूरा पूरा वर्णन कर सकना बड़ा कठिन है। ऊपर जो थोड़े से सार्वत्रिक गुण-दोषों का विवेचन किया गया है उनके सम्बन्ध में कहीं कहीं कुछ अपवादों का मिलना असम्भव नहीं। सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक सभी कार्य-क्षेत्रों में आत्मनिरीक्षण और भ्रम-संशोधन की आवश्यकता है। उदासीनता, शिथिलता और ढोंगपूर्ण वैराग्य से काम न चलेगा। यदि ऊपर दिये हुए दोषों में कुछ सत्यांश हो तो धार्मिक तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार जीवन व्यतीत करनेवाले लोकहितैषियों को उन्हें दूर करने के लिए ध्यान देना चाहिए। प्राचीन काल का भारतवर्ष जगद्गुरु कहलाता है। ज़माने के फेर से अब चेले लोग उसी भारतवर्ष से ताना देकर कह रहे हैं कि 'Physician, heal thyself" वैद्यराजजी, पहले अपना रोग दूर कर लीजिए।

मावलीप्रसाद श्रीवास्तव

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात्त्विक जीवन ।

(१)

जीवन तुम्हारा पक्षियो ! सात्त्विक गुणों से युक्त है,
वह मुक्तभोगी है तदपि दृढ़ बन्धनों से मुक्त है ।
वह मानवों को तो कभी भी प्राप्त हो सकता नहीं,
उसके बिना कोई कभी सुख-नींद सो सकता नहीं ॥

(२)

संस्कार कोई भी कभी करना तुम्हें पड़ता नहीं,
लेकर किसी से ऋण कभी भरना तुम्हें पड़ता नहीं ।
स्वच्छन्द चरते हो सदा चिन्ताग्नि से जलते नहीं,
होते न मर्यादा-रहित दुर्मार्ग पर चलते नहीं ॥

(३)

अपनी सती स्त्री पर सदा सन्तोष रहता है तुम्हें,
सपने न पर-नारी-गमन का दोष लगता है तुम्हें ।
भूषण न सोने चाँदियों के चाहिए तुमको कभी,
सामान ही हैं सादगी के मिल गये तुमको सभी ॥

(४)

कुछ भी प्रयोजन है नहीं तुमको किसी भी वस्त्र से,
क्या काम लेते हो कभी तुम शास्त्र से या शस्त्र से ?
रस-हीन या रस-युक्त हो खाना तुम्हें कुछ चाहिए,
विश्राम भी बस रात में पाना तुम्हें कुछ चाहिए ॥

(५)

देना न पड़ता है किसी को कर तुम्हें संसार में,
रहना न पड़ता व्यग्र हो करके तुम्हें व्यापार में ।
नभ-यान के सम तुम जहाँ चाहो तहाँ जाओ चले,
हे पक्षियो ! सब भाँति ही तुम मानवों से हो भले ॥

(६)

पढ़ते नहीं तुम वेद हो संन्यास भी लेते नहीं,
अपना बना कर शिष्य पर को मन्त्र भी देते नहीं ।
निर्वाह वानप्रस्थ-आश्रम का तुम्हीं हो कर रहे,
दुष्कर्म की अपकीर्ति से जग में तुम्हीं हो डर रहे ॥

(७)

कोठे अँटारी से तुम्हें क्या स्वप्न में भी काम है ?
बस, वृक्ष-कोटर घोंसले सुन्दर तुम्हारे धाम हैं ।
तुमको किसी धनवान का मुख देखना पड़ता नहीं,
धन के बिना कोई तुम्हारा काम भी अड़ता नहीं ॥

(८)

धन जोड़ करके दुर्व्यसन में व्यय कभी करते नहीं,
खाते न मादकद्रव्य को अल्पायु में मरते नहीं ।
देखे गये तुम चाकरी करते नहीं संसार में,
जाते नहीं तुम पदवियों के लोभ से दरबार में ॥

(९)

लेकर किराया झूठ बकना भी तुम्हें आता नहीं,
रहना अदालत में खड़ा कर जोड़ कर भाता नहीं ।
पञ्चायतों में बैठ कर होता तुम्हारा न्याय है,
तुम पर अभी प्रभुता न पाते क्रूरजन निरुपाय हैं ॥

(१०)

सम्बन्ध अपनी जाति में रखना तुम्हारा धर्म है,
रहती न मर्यादा जहाँ तुमको वहीं दुष्कर्म है ।
सम्बन्ध क्या देखा गया है काक का कलहंस से ?
अतिशय तुम्हारे हृदय में है प्रेम अपने वंश से ॥

(११)

तुमको न पड़ता काम है कुछ डाक्टरों से भी कभी,
शिक्षा न लेते पक्षिगण ! तुम मास्टरों से भी कभी ।
निज पूर्वजों की चाल को सर्वस्व अपना मानते,
तुम अज्ञ हो या विज्ञ पर आचार अपना जानते ॥

(१२)

होकर कुटुम्बी भी न कुनबे का तुम्हें कुछ भार है,
रहते पराश्रित क्यों तुम्हें जब आत्मबल-आधार है ?
है एक-पत्नी-व्रत तुम्हारा श्लाघ्यतम इस लोक में,
घुलना नहीं पड़ता तुम्हें पड़कर पराये शोक में ॥

(१३)

सच्चे तुम्हीं हो साम्यवादी एकता में लीन हो,
धन-हीन होकर भी जगत में पक्षियो ! स्वाधीन हो ।
निज जाति को धन-हीन कर धनवान होते तुम नहीं,
होते प्रमादी तुम नहीं हो, स्वत्व खोते तुम नहीं ॥

(१४)

अपने मरण की या मरण की है तुम्हें चिन्ता नहीं,
स्तुति भी किसी की तुम न करते, भूल कर निन्दा नहीं ।
है शान्त जीवन योगियों के सम तुम्हारा, धन्य हो,
तुम सा सुखी संसार में कोई कभी क्यों अन्य हो ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१५)

होता नहीं जग मुग्ध क्यों सुन कर तुम्हारे गान को,
लेने लगो पञ्चम-सहित जब तुम सुरीली तान को ?
स्वाभाविकी यह गान-विद्या है तुम्हें कैसे मिली ?
मानो जवासे के गहन में आन कर जूही खिली ॥

(१६)

हैं अज्ञ ही तुमको बझाकर पींजड़े में पालते,
वे हैं नराधम जो तुम्हें हा मार कर चख डालते।
जग में निरीहों को दुखाना पामरों का पाप है,
पापी जनों को अन्त में होता बड़ा सन्ताप है ॥

रामचरित उपाध्याय

कवितावली।

ग्रन्थ-प्रशंसा।

तुलसीदास के ग्रंथों में रामचरितमानस को छोड़ कर कवितावली को सर्वोच्च नहीं तो एक उच्च पद अवश्य प्राप्त है—छन्दों के बाहुल्य तथा कविता की शैली के कारण वह कविता रसिकों का प्रीतिभाजन तो है ही, परन्तु तुलसीदास के जीवन-सम्बन्धी और सामयिक घटनाओं के वर्णन से हिन्दी-भाषा के इतिहासज्ञों में भी उसका आदर थोड़ा नहीं है। भाषा का माधुर्य्य उसके छन्दों में भरा पड़ा है। और प्राकृतिक वर्णन भी खूब है। कविता-प्रेमियों को इसमें छः रसों का स्वाद मिलता है। नमूने के लिए निम्नलिखित पद्य उद्धृत किये जाते हैं—

शृङ्गार।

शीश जटा उर बाहु विशाल
विलोचन लाल तिरीछी सी भौंहें।
तूण शरासन बाण धरे
तुलसी वन मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहिं बार सुभाइ चितै
तुम्हरो हमरो मन मोहैं।
पूछत ग्राम-बधू सिय सों कहो
साँवरो सो सखि रावरो को हैं ॥१॥
सुनि सुन्दर बानि सुधारस सानि
सयानि है जानकी जानि भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें
समुझाय कछू मुसिक्याय चली ॥
तुलसी तिहि अवसर सो हैं सबै
अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग तड़ाग में भानु उदय
निकसी मनों मंजुल कंज कली ॥२॥
दूलह श्रीरघुनाथ बनै
दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माँही।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि
वेद युवा जुरि विप्र पढ़ाहीं ॥
राम को रूप निहारति जानकि
कंकण के नग की परिछाहीं।
याते सबै सुधि भूलि गई
कर टेकि रही पल टारत नाहीं ॥३॥

करुणा।

पुर तें निकसी रघुवीर-बधू
धरि धीर दिये मग में पग द्वै।
झलकी भरि-भाल कनी जल की
पट सूखि गये मधुराधर वै ॥
फिरि बूझति हैं चलबौब कितौ
पिय पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की
अँखियाँ अति चारु चली जलच्वै ॥

रौद्र।

गर्भ के अर्भक काटन कों पटु
धार कुठार कराल है जाको।
सोई हौं बूझत राजसभा
धनु कै दलि हौं बल ताको ॥
लघु आनन उत्तर देत बड़े
लड़िहैं मरिहैं करिहै कछु ताको।
कोरो गरूर गुमान भरो कहौ
कौशिक छोटो सो ढोटो है काको ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक वितरित न की जाय NOT TO BE ISSUED

हास्य।

बिंध के वासी उदासी तपोव्रतधारी
महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो
कथा सुनि मै मुनिवृन्द सुखारे॥
ह्वै हैं शिला सब चन्द्रमुखी
परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्ह भली रघुनायकजू
करुणा करि कानन कों पगुधारे॥

शान्त।

न मिटै अब संकट दुर्घट है
तब तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि मैं न विराग न ज्ञान कहूँ
सब लागत होटक झूँठ जटौ।
नट ज्यों निज पेट कुपेटक
कोटिक चेटक कौतुक ठाठ ठटौ॥
तुलसी जो सदा सुख चाहिये तो
रसना निशि वासर राम रटौ।

बीभत्स।

लोथिन सों लोहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ
मानो गिरिन्ह गेरु झरना झरतु है।
श्रोणित भरत घोर कुंजर करारे भारे
कूल ते समूल बाजि बिटप परतु है॥
सुभट शरीर नीर चारी भारी भारी तहँ
शूरन उछाह क्रूर कादर डरतु है।
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात
काक कंक बालक कुलाहल करतु है॥१॥
ओझरीय झोरी काँधे आँतन की सेली बाँधे
मुंड के कमंडल खप्पर किये कोरिकै।
योगिनी जमात जोरि झुण्ड बनी तापस से
नीर तीर बैठी सो समर खोरि खोरि कै॥
श्रोणित सो सानि सानि गूदा खाति सतुआ
से एक प्रेत पीत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिये भूतनाथ
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ जोरि जोरि कै॥२॥

अद्भुत।

वल्कल बसन धनुबान पाणि तूण कटि
रूप के निधान घन दामिनी बरन हैं।
तुलसी सुतीय सङ्ग सहज सुहाये अङ्ग
नवल कमल हूँ तै कोमल चरण हैं॥
और सो वसन और रति और रतिपति
मूरति विलोकि तन मन के हरन हैं।
तापस वेष बनाये पथिक पंथे सुहाये चले
लोक लोचनन सुफल करन हैं॥१॥
लीन उखारि पहाड़ विशाल चल्यो
तेहि काल बिलम्ब न लाओ।
मारुतनन्दन मारुत को मन को
खगराज को वेग लजाओ॥
तीखे तुरा तुलसी कहते पै
हिये उपमा को सभाउ न आयो।
मानो प्रत्यक्ष पख्वत की नभ लीक
लसी कपि यों धुकि धायो॥२॥

भयानक।

जहाँ तहाँ बबकी बिलोकी बुबकारी देत
जरति निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात मात भ्रात भगिनी भामिनी भाभी
ढोटा छोरो छोहरा अभागे भागि भागि रे॥
हाथी छोरो घोड़ा छोरो महिष वृषभ छोरो
छेरी छेरो सोवैं सो जगावैं जागि जागि रे॥
तुलसी विलोकी अकुलानी यातुधानी कहैं
बार बार कह्यौ पिय कपि सो न लागि रे।

बीर।

जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत शूर
जाकी आँच अँजहूँ लसत लङ्क लाह सी।
सोई हनुमान बलवान बाँको बान इति
जोहै यातुधानु सैना चले लेत थाह सी।
कंपत अकंपन सुखाय अति काय काय
कुँभऊकरण आय रहो पाय आह सी।
देखे गजराज मृगराज ज्यों गर्जि धायो
वीर रघुवीर को समीर सनु साहसी।

यह पुस्तक वितरित न की जाय NOT TO BE ISSUED
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवितावली संग्रहमात्र।

कवितावली के बारे में किसी किसी का मत है कि वह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। समय समय पर जो कवित्त तुलसीदास ने कहे और जो समस्यापूर्तियाँ उन्होंने कीं, यह ग्रन्थ उन्हीं का सङ्ग्रह-मात्र है। इसका प्रमाण यह बतलाया जाता है कि कवितावली में कांडों के विस्तार में बहुत असमानता है। यथा—आरण्य और किष्किन्धा एक ही एक छन्द में समाप्त हो गये हैं। परन्तु यदि यह मत सही है तो उत्तरकाण्ड को छोड़ कर, जिसमें दुनिया भर के विषयों पर कविता है, शेष काण्डों के छन्दों की रचना का कुछ कारण विशेष होना चाहिए। सम्भव है कि रामचरित-मानस में यथास्थान रखने के लिए कुछ छन्दों का निर्माण किया गया हो और जब वे अच्छे न जान पड़े हों, या अन्य किसी कारण से उनका परित्याग कर दिया गया हो। (तुलसीदास ने दोहा आदि में भी रामायण रचा है) यह भी सम्भव है कि पहले सङ्कल्प उन्होंने इसी प्रकार का छोटा रामायण बनाने का किया हो—और जैसे जैसे कवित्व-शक्ति बढ़ती गई हो वैसे वैसे कथा बढ़ते देख रामचरितमानस का निर्माण किया गया हो।

रचना का कारण

कवितावली का निर्माण-काल संवत् १६६६ से १६७१ तक लोगों ने माना है। इसके प्रमाण में निम्न अवतरण दिया जाता है—

निर्माण-काल

एक तो कराल कलि-काल शूल मूल तामें
कोढ़ में की खाज सो शनीचरी है मीन की। इत्यादि।

कहा जाता है कि जब यह छन्द कहा गया होगा उस समय शनीचर मीन के रहे होंगे। बैजनाथदास ने यह काल संवत् १६३५ से १६३७ तक ठहराया है और लिखा है कि रामचरितमानस के पीछे पहला ग्रन्थ यही बना। नागरीप्रचारिणी सभा के छपाये हुए रामचरितमानस की भूमिका में यह काल अर्थात् जब शनीचर मीन के थे संवत् १६४० से १६४२ तक और संवत् १६६६ से १६७१ तक लिखा है। परन्तु रुद्रबीसी १६६६ से १६७१ तक होने से कवितावली का रचना-काल संवत् १६६६ से १६७१ तक माना है। यदि कवितावली एक संग्रह-मात्र है तो उसका रचना-काल ही क्या इस एक कवित्त का रचना-काल चाहे १६३५ से १६३७ तक अथवा १६६६-७१ तक रहा हो, परन्तु किसी एक कवित्त के काल से संग्रह के समस्त कवित्तों का रचनाकाल निर्धारित नहीं हो सकता। हमारी समझ में कवितावली के सब छन्द मानस के पीछे के बने नहीं प्रतीत होते। एक तो यही समझ में नहीं आता कि मानस के बन चुकने के पीछे ऐसे छोटे ग्रन्थ के रचने ही से तुलसीदास का क्या प्रयोजन हो सकता था। मानस जैसे ग्रन्थ से उनका यश दूर दूर तक फैल चुका था। फिर उसके होते हुए कवितावली ऐसे ग्रन्थ को निर्माण करके क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? हाँ, यह अवश्य समझ में आ सकता है कि जब कवितावली आदि छोटे ग्रन्थों से तुलसीदास की तृप्ति न हुई होगी तब अपनी शान्ति स्थिर करने को उन्होंने मानस का निर्माण किया हो। कवितावली के निम्नलिखित छन्द से भी यही अनुमान किया जा सकता है।

पाय सुदेह विदेह नदी तरणी
न लही करणी न कछू की
राम कथा वरणी न बनाय सुनी
न कथा प्रहलाद नछू की॥
अब जोर जरा जरि जात गये
मन मानि गलानि कुवानि न भू की।
नीके कै ठीक दई तुलसी
अवलम्ब बड़ी उर आखर धू की॥

पढ़ने से रामचरितमानस प्रौढ़ अवस्था का ग्रन्थ और कवितावली के अनेक छन्द उससे बहुत पहले के मालूम होते हैं। उदाहरणार्थ केवट के नाव लाने और बिना पग धोये उतारने से इनकार करने के अवसर पर रामचरितमानस और कवितावली में कही हुई कविता को देखिए।

कवितावली में लिखा है—

× × × × ×

बरु मारिए मोहि बिना पग धोए,
हौं नाथ न नाव चढ़ाहि हौं जू।

यह रामचन्द्र से केवट ने कहा है कि चाहे आप मार ही क्यों न डालें परन्तु बिना पग धोये नाव पर न चढ़ाऊँगा, परन्तु रामचरितमानस में जब तुलसीदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अनन्यभक्ति स्थिर हो चुकी थी तब अपने इष्टदेव की शान में केवट से ऐसी कड़ी बात कहलवाना उन्हें अनुचित ज्ञात हुआ, मानस में यही बात लक्ष्मण की ओर इंगित करके लिखी गई है—

× × × × ×

बरु तीर मारहि लखन पै जब लगि न पांय पखारिहहु,
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहहु।

यही गति परशुराम की कथा में है। यही बात नवरत्न के रचयिताओं ने लङ्काकाण्ड में देखी है, जहाँ हनूमान् की लड़ाई का बड़े ब्यौरेवार वर्णन है और श्रीरामचन्द्र की लड़ाई थोड़े ही में लिखी है।

भरत की महिमा का वर्णन कवितावली में नहीं है। इस पर किसी किसी को भ्रम हुआ कि कदाचित् यह तुलसीदास का ग्रन्थ ही नहीं है। परन्तु यदि हमारा अनुमान सही है कि इसके छन्द केवल मानस में सम्मिलित करने के लिए बनाये गये थे तो कुछ कथाओं पर छन्द न मिलने में कोई आश्चर्य्य नहीं। क्योंकि तुलसीदास को उनकी कथा चौपाई में ही लिखना मन्जूर रहा होगा, इसलिए इस कथा के छन्द नहीं लिखे गये। अथवा जो छन्द लिखे गये होंगे वे रामचरितमानस में ले लिये गये होंगे। और कवितावली के लिए बाकी नहीं रहे।

रामचरितमानस और कवितावली की भाषा पर विचार करने से भी हमारे अनुमान की पुष्टि होती है। कवि की प्रारम्भिक अवस्था में शब्दाडम्बर पर उसका विशेष ध्यान रहा करता है, वह बड़े बड़े क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया करता है या भाषा पर पूर्ण अधिकार न होने से शब्दों को तोड़मरोड़ कर उनका प्रयोग करता है। परन्तु जब उसका शब्दकोष बढ़ जाता है, भाषा पर अधिकार जम जाता है तब वह शब्दों को छोड़कर भावों की ओर ध्यान देता है। इसी लिए प्रौढ़ावस्था की कविता में उच्च भाव और अर्थ-गाम्भीर्य्य पाये जाते हैं। कवितावली में शब्द बहुत तोड़े-मरोड़े हुए, अनेक भाषाओं से भरे गये हैं। उसके कवि का शब्दकोष सङ्कीर्ण था। वह भाषा को बना बना कर लिखता था। तुकबन्दी और समस्यापूर्ति की ओर भी उसका ध्यान जाता था। मानस के तुलसीदास का शब्दकोष विस्तीर्ण था। वे भाषा पर अधिकार जमा चुके थे। शब्दों को तोड़ने-मरोडने की आवश्यकता उन्हें बाकी नहीं रही थी। समस्यापूर्ति से ध्यान हट चुका था। रूपक बाँधने के लिए प्राकृतिक निरीक्षण से काम लिया जाता था न कि मनगढ़न्त ख़यालों से।

संक्षेपतः शब्दाडम्बर से हटकर मन अर्थ-गाम्भीर्य्य, उच्च भावों, श्लिष्ट भाषा से महाकाव्य बनाने में लगा हुआ था। कवि की हीन दशा की गाथा समाप्त हो चुकी थी। समाज-सुधार ही लक्ष्य था। बुरा कहनेवालों को भी नमस्कार था। उन पर क्रोध न था। मन को पूर्ण शान्ति मिल चुकी थी। कवितावली में भी इन लक्षणों से युक्त छन्द मिलते हैं। ये प्रौढ़ावस्था के बने हैं। कदाचित् मानस के साथ या उसके पीछे लिखे गये हों। परन्तु भाषा के देखने से इसमें कुछ सन्देह नहीं रह जाता कि कवितावली का एक बड़ा भाग मानस के पूर्व का है। वह कवि की प्रारम्भिक नहीं तो मध्यावस्था का अवश्य द्योतक है। अपने इस कथन के समर्थन में हम निम्न उदाहरण देते हैं—

छन्द नं० १११, ११२, १०१, १०२, १०३, ५५, ५४, ५६, ६०, ६१, २६८, २७६, २५४, २३६, २४०, २४४, २३०, २३१ उत्तरकाण्ड

उर्दू के शब्द—फ़हम, खलक, जहाज़, फ़ौज, क़हर, निवाज़, दग़ाबाज़, ग़ुलाम, ख़ास, खसम, जहान इत्यादि ग्रामीण भाषा के शब्द,—कांडिगो, नाढ़े, साढ़े, झुकर, खपुआ, फंग, चटकन, बिसाहे, मजक इत्यादि। तोड़े-मरोड़े हुए शब्द—तिच्छन, तच्छन, सैसो, माहली, लसम, जरणी, जानपनी, डप्यम इत्यादि—

सामयिक वर्णन।

कवितावली में सामयिक अवस्था का वर्णन अनेक छन्दों में किया गया है—

(१) जाहिर जहान में जमानो एक भांति भयो,
बेचिपे विविध धेनु रास भी विसाहिये।
ऐसेहू कराल कलि काल में कृपाल आदि—

× + + ×

(२) स्वारथ सयानप प्रपञ्च परमारथ
कहायो रामरावरो हौं जानत जहान है
नाम के प्रताप बाप आजु लौं निवाही नीकी
आगे को गुसाईं स्वामी सबल सुजान है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलि की कुचाल देखि दिन दिन दूनी देव
पाहरुई चोरि हेरि हिय हहरान है
तुलसी को बलि बार बार सम्हार कीयो
यद्यपि कृपानिधान सदा सावधान हैं

(३) दिन दिन दूनी देखि दारिद दुकालदुख
दुरित दुराज सुख सुकृत सँकोच है
मागे पै न तपाव प्रचारि पातकी प्रचण्ड
काल की करालता भले को होत पोच है
आपने तो एक आदि + +
+ × + ×

(४) राजा रंक रागी औ विरागी भूरि भागी ये
अभागी जीव जरत प्रभाव कील काम को
× × × × +
× × + + +

(५) वरन धरम गयो आश्रम निवास तजो
त्रासन चकित सो परावनो परोसो है
करम उपासना कुवासना विनासो ज्ञान
वचन विराग वेश जगत हरो सो है
गोरख जगायो योग भगति भगाबो लोग
विगम नियोग ते सो कलिहिं छरो सो है
काय मन वचन सुभाय तुलसी है
जाय राम नाम को भरोसो ताही को भरसो है

(६) वेद पुराण विहाय सुपन्थ
मारग कोटि कुचाल चली है
काल कराल नृपाल कृपाल न
राज समाज बड़ो ही छली है
वरन विभाग न आश्रम धर्म
दुनी दुख दोष दरिद्र दली है
स्वारथ को परमारथ को कलि
राम को नाम प्रताप बली है

(७) खेती न किसान को भिखारी को न भीख
बलि बणिक को बणिज न चाकर को चाकरी
जीविकाविहीन लोग विद्यमान शोच वश कहैं
एक एक न सों कहाँ जाय का करी
वेद हू पुराण कही लोक हू विलोकियत
साँकरे सबै को राम रावरे कृपा करी
दारिद दशानन दवाई दुनी दीनबन्धु
दुरित दहत देखि तुलसी हहा करी

(८) कुल करतूति भूत कीरति सरूप गुण
यौवन ज्वर जरत परत न कछू कही
राज काज कुपथ कुसाज भोग रोग ही के
वेद बुध विद्या पाप विवश बलकही
गति तुलसीश की लखति नहिं जो तुरत
पवि ते करत छार पवि सों पलक ही
कासों कीजै रोष दोष दीजै काहि पाहि राम
कियो कलिकाल कुल खलल खलकही

(९) बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत
रूँधिबे को सोऊ सुरतरु काटियतु है
गारी देत नीच हरिचन्द हू दधीचि हूँ कों
आपने चना चबाय हाथ चाटियतु है
आप महा पातकी हँसत हरिहरहूँ को
आप हैं अभागी भूरि भागी डाँटियतु है
कलि की कलुष मन मलिन किये कहत
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियतु है

उपर्युक्त सामान्य व्यवस्था के वर्णन के अतिरिक्त तुलसीदास ने कवितावली के उत्तर-कांड में १५ कवित्तों में काशी में महामारी का वर्णन किया है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सङ्ग्रह संवत् १६७५ के पश्चात् किया गया है। आगरे में सन् १६१८ ईसवी अर्थात् संवत् १६७५ में महामारी थी और उसी समय के लगभग वह काशी में रही होगी।

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय समाज की बड़ी दीन और हीन अवस्था थी। न वर्णाश्रम-धर्म का पालन होता था और न कर्म था। प्रत्येक मनुष्य अपना अपना पन्थ चलाने को उतारू था। कोई किसी का आदर नहीं करता था। बदमाशों का ज़ोर था, धनवानों को शोच। जीविका तो एक ओर रही लोगों को भीख भी न मिलती थी। पण्डित लोग परस्पर विवाद में समय बिताते थे। अकाल बारम्बार पड़ते थे। दरिद्रता संसार में छाई हुई थी। राजा कृपालु न थे, राज-समाज छली। वैरागी वेष-धारी रागी थे, गृहस्थों को भोग न प्राप्त था।

समाज की ऐसी हीन दशा में यदि तुलसीदास को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीख के लिए भी कष्ट उठाना पड़ा तो क्या आश्चर्य्य है। समाजवर्णन के अतिरिक्त कवितावली में इन विषयों का भी वर्णन है—

(अ) मूर्तिपूजा का वर्णन ३ छन्दों में किया है। एक छन्द में तो मूर्त्तिपूजा की उत्पत्ति यों दी गई है—

काढ़ि कृपान कृपा न कहूँ पितु
काल कराल विलोकि न भागे।
राम कहाँ? सब ठाउ, हैं खंभ में?
हाँ, सुनि हाँकनि केहरि जागे।
वैरी विदारि भए विकराल कहै
प्रहलादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी
तब ते सब पाहन पूजन लागे।

(इ) छेमकरी शकुनवर्णन—१ छन्द
(उ) प्रहलाद-चरित्र—४
(ए) उद्धव-गोपी-संवाद—३
(ओ) चित्रकूटवर्णन—२
(क) बाहुपीड़ावर्णन—२
इत्यादि—

जीवनी।

तुलसीदास की जीवनी-सम्बन्धी सामग्री के दो भाग हो सकते हैं। एक तो वह जिसका प्रमाण मौजूद है। दूसरे वह जो प्रचलित कहावतों पर आश्रित है। अब तक जो जीवनी तुलसीदास की छपी है उसका अधिकांश कहावतों के आधार पर लिखा गया है। उन पर कहाँ तक विश्वास किया जा सकता है, यह प्रत्येक मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है। अतः इस सामग्री को छोड़ कर हम केवल उसका ही ज़िक्र यहाँ करेंगे जिसका कुछ न कुछ प्रमाण मिलता है। इसके भी दो भाग हैं। एक तो अन्तरङ्ग दूसरा बहिरङ्ग। पहले बहिरङ्ग को लीजिए। उसमें मुख्य ये हैं—

बहिरङ्ग साक्ष्य की समालोचना।

(अ) नाभाजी का भक्तमाल, और उस पर प्रियादासजी की टीका। नाभाजी ने केवल एक छप्पय तुलसीदासजी की प्रशंसा में लिखा है—

त्रेता काव्य निबन्ध करी सतकोटि रमायन
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन।
अब भक्तन सुख देन बहुरि बपु धरि विस्तारी,
राम-चरन-रस मत्त रहत अहनिशि व्रत धारी।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो
कलि कुटिल जीव निस्तार हेत वाल्मीकि तुलसी भयो॥

इससे यह तो सिद्ध हुआ कि नाभाजी के अनुसार तुलसीदास प्रसिद्ध भक्त थे और रामायण बना चुके थे। परन्तु और उनका कुछ पता इससे न चला।

इस पर प्रियादासजी ने सुनी सुनाई कहावतों के आधार पर अद्भुत टीका रच डाली—

निसा सो सनेह बिन पूँछे पिता गेह गई
भूली सुधि देह भजे वाही ठौर आए हैं।
बधू अति लाजमई रिस सों निकस गई
प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाए हैं॥
सुनी जब बात तब है गयो प्रभात वह
पीछे पछिताय तजि काशीपुरी धाए हैं।
कियो तहँ वास प्रभु सेवा लै प्रकाश कीनो
लीनो दृढ़ भाव नेम रूप के तिसाये हैं॥१॥

शौच जल शेष पाय भूतहू विशेष कोऊ
बोल्यो सुख मानि हनुमान जू बताए हैं।
रामायन कथा सो रसायन है कानन कों
आवत प्रथम पाछे जात घृणा छाए हैं॥
जाइ पहिचान संग चले उर आनि आए
वन मध्य जानि धाइ लपिटाए हैं।
कहैं सीताकार कही सकोगे न टारि मैं तो
जानि रस सार रूप धरयो जैसे गाये हैं॥२॥

माँगि लीजै वर कही दीजै राम भूप रूप
अति ही अनूप नित नैन अभिलाखिए।
कियो लै संकेत वाही दिन ही सो लाग्यो हेत
आई सोई समै चेत कवि छवि चाखिए॥
आए रघुनाथ साथ लक्ष्मण चढ़े घोड़े
पटरङ्गवारे हरे कैसे मन राखिए।
पाछे हनुमान आए बोले देखे प्रान प्यारे
नेकु न निहारे मैं तो भले फेरि भाखिए॥३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हत्या करि विप्र एक तीरथ करत आयो
कहै मुख राम हत्या डारिये हत्यारे को।
सुनि अभिराम नाम धाम में बुलाय लियो
दियो लै प्रसाद कियो सुद्ध गायो प्यारे को॥
भई द्विज सभा कहि बोलि कै पठायो आप
कैसे गयो पाप संग लैकै जैये न्यारे को।
पोथी तुम बाँचो हिए भाव नाहिं साँचो अजू
ताते मतिकांचो दूरि करै अंध्यारे को॥४॥
देखी पोथी बांचि नाम महिमा हू कही साँच
ए पै हत्या करै कैसे तेरे कहि दीजिए।
आवै जो प्रतीत कही याके हाथ जेवैं जब
शिव जू के बैल तब पंगति में लीजिए॥
थार में प्रसाद दियो चले तहाँ पान कियो
बोले आप नाम के प्रताप मति भीजिए।
जैसी तुम जानौ तैसी कैसे के बखानो अहो
सुनि कै प्रसन्न पायो जै जै धुनि रीझिए॥५॥
आए निशि चोर चोरी करन हरन धन
देखे श्यामघन हाथ चापसर लिए हैं।
जब जब आवै न साधु डर पावै एतो
अति मँडरावै एपै बली दूरि किए हैं॥
भोर आए पूँछे अजू साँवरो किशोर कौन
सुनि कर मौन रहै आँसु डारि दिए हैं।
दई सब लुटाय जानी चौकी रामराय दई
लई उन दिक्षा शिक्षा शुद्ध भए हिए हैं॥६॥
कियो तनु विप्र त्याग लागी चली संग तिया
दूर ही तें देखि कियो चरन प्रनाम है।
बोले यो सुहागवती, मरयो पति हेाहुँ सती
अब तो निकस गई जाहु सेवो राम है॥
बोलिकै कुटुम्ब कही जो पै भक्ति करौ सही
गही तब बात जीव दियो अभिराम है।
भए सब साध व्याधि मेटी लै विमुख ताकी
जाकी वास रहै तो न सूझै श्याम धाम है॥७॥
दिल्लीपति बादशाह अहदी पठए लेन
ताकों सेा सुनायेा सूनै विप्र ज्यों ओ जानिए।
देखिबे कों चाहै नीके सुख सेा निबाहे आय
कही बहु विनय गही चले मन आनिए॥
पहुँचे नृपति पास आदर प्रकाश कियेा
दियेा उच्च आसन लै बोल्यो मृदु बानिए।
दीजै करामाति जगख्यात सब मात किए
कही झूठी बात एक राम पहिचानिए॥८॥
देखौ राम कैसे कहि कैद किए रहिए
हूजिए कृपालु हनुमान जू दयाल हेा।
ताही समय फैलि गए कोटि कोटि कपि नए
नीचे तन खैंचे चीर भया येा विहाल हेा॥
फोरै कोट मारै चोट किए डारै लोट पोट
लीजै कौन ओट जाय मानेा प्रलयकाल हेा।
भई तब आँखें दुख सागर को चाखें अब
वेही हमें राखें भाखैं वारौं धन माल हेा॥९॥
आइ पाइ लिए तुम दिए हम प्रान पावैं
आपु समुझावैं करामाति नेक लीजिए।
लाज दबि गयेा नृप तब राखि लयेा कह्यो
भयेा घर राम जू को वेगि छोड़ दीजिए॥
सुनि तजि दियेा और कह्यो लैकै कोट नयेा
अबहूँ न रहै कोऊ वामे तन छीजिए।
कासी जाय वृन्दावन आप मिले नाभा जू सों
सुन्यो हेा कवित्त निज रीझ मति भीजिए॥१०॥
मदनगोपालजू को दरशन करि कही
सही राम इष्ट मेरे दृग भाव पागी है।
वैसेाई सरूप कियौ दियेा लै दिखाइ रूप
मनु अनुरूप छवि देखि नीकी लागी है॥
काहू कह्यो कृष्ण अवतारी जू प्रशंस महा
राम अंस सुनि बोले मति अनुरागी है॥
दशरथ सुत जानों सुंदर अनूप मानो
ईसता बताई रति कोटि जुग जागी है॥

इस टीका के पढ़ने और प्रियादासजी के स्वयं लिखने से ज्ञात होता है कि प्रियादासजी ने इन छन्दों में जो कुछ सुनी सुनाई बातें थीं वे भर दी हैं। वे स्वयं लिखते हैं—

इनही के दास दास प्रियादास जानो
तिन लै बखानेा मानेा टीका सुखदाई है।
गोवर्धननाथजू के हाथ मन परयो जाको
करयो वास वृंदावन लीला मिलि गाई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मति अनुसार कह्यो लह्यो मुख संतन के,
अंत को न पावै जोई गावै हिय आई है।
घट बढ़ि जानि अपराध मेरो छमा कीजै,
साधु गुन ग्राही यह मानि कै सुनाई है।

संतों के मुख से जो कुछ सुना था वही प्रियादास जी ने लिख दिया है। साधुओं की बाबत ऐसी अनेक गाथायें प्रचलित हो जाया करती हैं। उनको कहाँ तक प्रामाणिक माना जा सकता है, यह पाठकगण स्वयं विचारें। प्रियादासजी के अनुसार ही "भक्ति विश्वास जाके ताही को" इनका प्रकाश होता है। इतिहास या जीवनी के प्रमाण ढूँढ़नेवालों को यह आधार बहुत ही कमज़ोर दिखाई देता है।

(आ) संवत् १६६६ में तुलसीदास जी ने एक टोडर नामी व्यक्ति के पौत्रों के झगड़े की पंचायत की थी। इससे यह साबित है कि संवत् १६६६ में तुलसीदासजी विद्यमान थे।

अन्तरङ्ग-वर्णन

तुलसीदास जी विरक्त थे। उन्होंने नरकाव्य नहीं रचा। न किसी राजा का आश्रय लिया, न किसी आश्रय-दाता का वर्णन ही आपने किसी भाँति किया, यद्यपि उस समय के कवियों में कविवंश और राजवंश निरूपण की प्रथा प्रचलित थी। उदाहरण के लिए केशवदास का नाम लिया जा सकता है। परिणाम यह हुआ कि गोस्वामीजी की जीवनी का अधिकांश संदिग्ध अवस्था में है। कवितावली में कुछ जीवन-सम्बन्धी बातों का उल्लेख है। निम्नलिखित छन्दों में ऐसा उल्लेख पाया जाता है—

(१) पातक पीन कुदारिद दीन मलीन धरै कथरी करवा है,
लोक कहै विधिहूँ न लिख्यो स्वपनेहु नहीं अपने बरवा है,
राम को किंकर सो तुलसी समुझै ही भलो कहिबो न रवा है,
ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिनु वानर को चरवा है।

(२) मातु पिता जग जाय तज्यो
विधिहू न लिख्यो कछु भाल भलाई।
नीचनिरादर भाजन कादर,
कूकर टूकनि लागि ललाई।
राम-स्वभाव सुन्यो तुलसी,
प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को,
रघुनाथ सो साहेब, खोरि न लाई।

(३) पाप हरे परिताप हरे तनु, पूजि सो हीतल शीतलताई

* * * *

(४) चार ते सँवार के पहारहू ते भारी कियो,
गारो भयो पाँच में पुनीत पच्छ पाय के।
हो तो जैसे तब तैसो अब अधमाइ कै
कै भरों पेट रावरोई गुण गाय के॥

* * * *

(५) अपत उतार अपकार को अगार जग,
जाके छाँह छुए सहमत व्याध बाध को।
पातक पुहिमि पालिबे को सहसानन सो,
कानन कपट को पयोधि अपराध को।
तुलसी से नाम को भी दाहिनो दयानिधान * *
* * * *

(६) जाति के कुजाति के अजाति के पेटागि बस,
खाय टूक सब के विदित बात दुनी सो।
* * * *
राम-नाम को प्रभाव बाउ महिमा प्रताप,
तुलसी सो जग मानियत महामुनी सो।

(७) जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हों चारि फल चारिहि चनक को
* * * *
* * * *

(८) साहेब सुजान जिन स्वान हू को पच्छ कियो
रामबोला नाम हों गुलाम राम साहि को।

(९) धूत कहौ अवधूत कहौ
रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ
काहू की बेटी से बेटा न ब्याहि हौं
काहू की जात बिगार न सोऊ।
* * * *
माँगि के खाइबे मसीत को सोइबे

(१०) मेरे जाति पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति * *
* * * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अति ही अयाने उपखाने नहीं बूझे लोग
साहेब के गोत गोत होत है गुलाम को

बाल्यावस्था

उपर्युक्त अवतरणों के पढ़ने से स्पष्ट विदित होता है कि तुलसीदास बालकपन से ही अति दरिद्र थे। उनकी संपदा कथरी (फटा लिहाफ और बिछौना) और करवा (मिट्टी का लोटा) ही भर थी। विधि ने भी कोई और सम्पत्ति जैसे बिरवा (वृक्ष) इत्यादि उनके भाल में न लिखी थी। यहाँ तक कि 'बरवा' (बाल) तक भी वे अपने न समझते थे। माता-पिता ने उन्हें उत्पन्न होते ही छोड़ दिया था। वे रोटी के टुकड़े द्वार द्वार माँगते फिरते थे। उसी समय राम का नाम उन्हों ने सुना, (कदाचित् राम-मंत्र लिया अथवा किसी राम-नामी साधु का नाम सुना) जिसके द्वारा स्वार्थ और परमार्थ दोनों की प्राप्ति उनको हो गई। 'जन्मते ही छोड़ जानें' से दो प्रकार के अर्थ लगाये जाते हैं। (१) कुछ लोग कहते हैं कि तुलसीदास अभुक्त मूल में उत्पन्न हुए थे, अतएव मुहूर्त-चिन्तामणि के निम्न-लिखित वचन के अनुसार तुलसीदास के माता-पिता ने उन्हें फेंक दिया था—

"जातं शिशुं वा परित्यजेद्वा मुखं पिताऽस्याष्ट समा न पश्येत्"। मुहूर्तचिंतामणि तुलसीदास का सम-कालीन ग्रंथ कहा जाता है। यही क्यों, इस कथन के अनुमोदन में विनयपत्रिका का "जननि जनक तज्यौ जनमि" भी पेश किया जाता है।

(२) और कुछ लोगों का कथन है कि तुलसीदास के माता-पिता उनकी बाल्यावस्था ही में मर गये थे।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इन दोनों कथनों में से कौन अधिक माननीय है। यह कि अभुक्त मूल में उत्पन्न होने के कारण तुलसीदास के माता-पिता ने उन्हें छोड़ दिया था अथवा यह कि तुलसीदास की बाल्यावस्था ही में उनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था? यदि स्वर्गवास की बात सही है तो प्रश्न यह होता है कि यह बात तुलसीदास ने स्पष्ट क्यों नहीं लिखी? "मातु पिता जग जाय तज्यो" ही लिख कर क्यों मौनावलम्बन किया? तुलसीदास ने कलि-वर्णन करते समय अनेक बुरी प्रथाओं का वर्णन किया है। सभी वर्णों और आश्रमों को अनेक स्थानों पर फटकारा है। गोरखनाथ पर कठिन आक्षेप किया है। बाहुपीड़ा का विस्तृत वर्णन किया है। अपने क़ैद होने पर छंद रचे हैं। महामारी का भी वर्णन किया है। यदि अभुक्त मूलवाली बात सच्ची है तो फिर क्या कारण है कि ऐसी बुरी प्रथा के प्रतिकूल या अनुकूल उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, जिसकी बदौलत स्वयं उनकी यह दशा हुई कि "द्वार द्वार बिललात फिरे"। एक बात और भी इस विषय में ध्यान देने योग्य है। मुहूर्तचिन्तामणि से उद्धृत श्लोक में केवल पिता ही से तजे जाने की व्यवस्था है। 'मुखं पिताऽस्याष्ट समा न पश्येत्', क्योंकि यही 'पिता' 'त्यजेत्' क्रिया का भी कर्ता है। परन्तु तुलसीदास तो माता-पिता दोनों ही से अपना छोड़ा जाना बतलाते हैं, सो क्यों? यदि यह मानें कि उनके माता-पिता का स्वर्ग-वास हो गया था तो उनसे 'तजा' जाना उन्होंने क्यों लिखा? उनके स्वर्गवास का उल्लेख करना तो उचित और स्वाभाविक होता। अतः यही कहना पड़ता है कि कविता-वली से उपर्युक्त दोनों कथनों में से एक का भी समर्थन नहीं होता।

कुल-जाति—'जायो कुल मंगन बधावनों बजायो सुनि भयो परिताप पाप जननी जनक को' को यदि "मातु पिता जग जाय तज्यो" के साथ रख कर पढ़ें तो अर्थ निकलता है कि माता-पिता को, जो मंगन कुल के थे, बधावा बजता सुन, अर्थात् पुत्रोत्पति की ख़बर पाकर, पाप का परिताप हुआ और उन्होंने बालक को जन्मते ही छोड़ दिया। इसमें तुलसीदास ने अपने छोड़े जाने का कारण स्पष्ट 'पाप परिताप जननी जनक को' बताया है। हरिहरप्रसाद की कवितावली में पहली पंक्ति का पाठ यों है "जायो कुल मंगन बधाओ न बजायो" आदि इससे और भी स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि पुत्रोत्पत्ति से तुलसीदास के माता-पिता को 'पाप का परिताप' ऐसा हुआ कि बधावा तक न बजाया और पुत्र को छोड़ दिया, जिससे पुत्रोत्पत्ति की ख़बर तक किसी को नहीं। इससे यह नतीजा निकलता है कि तुलसीदास किसी 'पाप' कर्म की संतान थे। और पाप भी ऐसे घोर जिससे उनके मातापिता को उन्हें छोड़ देना पड़ा और जिसके स्पष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखने में तुलसीदास स्वयं समर्थ न हुए। अभुक्त मूल में जन्म होना ऐसा 'पाप' नहीं हो सकता जिसके लिखने में तुलसीदास को अथवा किसी को संकोच होता। न बाल्यावस्था में माता-पिता की मृत्यु ही कोई ऐसा पाप है जिसको लिखने में कोई हिचके। इसमें यह आपत्ति बताई जाती है कि यदि तुलसीदास के माता-पिता ने उन्हें जन्मते ही छोड़ दिया था तो उन्हें यह ज्ञान कैसे हुआ कि वे अपने माता-पिता से छोड़े गये थे या यह कि उनके जन्म-काल में बधावा नहीं बजा था। परन्तु बड़े होने पर इसका ज्ञान होना कोई कठिन बात नहीं। जिस किसी ने उन्हें पाला हो अथवा जहाँ बालपन में रहे हों वहाँ यह बात आसानी से प्रचलित हो गई होगी और तुलसीदास को भी बड़े होने पर उसका ज्ञान हुआ होगा।

८ वें अवतरण के आधार पर तुलसीदास का जन्म-नाम 'रामबोला' बतलाया जाता है। परन्तु यदि "मातु पिता जग जाय तज्यो" सत्य है, यदि अभुक्त मूल के कारण माता-पिता ने तुलसीदास को जन्मते ही छोड़ दिया था, तो उनका नाम-करण किसने किया? मा-बाप ने मुँह न देखा होगा। फिर 'रामबोला' नाम भी अद्भुत है। गृहस्थों में ऐसा नाम कम सुनने में आता है।

नाम से तो जान पड़ता है कि बालक तुलसी के मुँह से पहले 'राम' शब्द निकला होगा, जिससे उसका नाम रामबोला पड़ गया। अथवा तुलसी राम-नाम लेकर भीख माँगता रहा है, जिससे 'रामबोला' नाम से प्रसिद्ध हो गया। परन्तु १० वें अवतरण से यह अवश्य जान पड़ता है कि तुलसीदास को स्वयं अपनी 'जाति-पाँति' का कुछ पता न था। "मेरे जाति-पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति" और "साहेब के गोत गोत होत है गुलाम को" स्पष्ट बताते हैं कि अपनी जाति-पाँति और गोत्र का उनको कुछ पता न था। यदि जन्म ही से वे माता पिता से परित्यक्त थे, "वारे से ललात बिललात द्वार द्वार दीन" रहे, यदि "चारि फल चारिहि चनक को" जानते रहे, और उन्होंने "जाति के कुजाति के अजाति के" (चांडाल के) "टूक" "पेटागिवश" खाये थे, तो उनकी जाति-पाँति और गोत्र हो ही क्या सकते थे। हिन्दी-नवरत्न के सुयोग्य लेखकों ने तुलसीदास को ब्राह्मण मान कर उनके कान्य-कुब्ज अथवा सरयूपारीण ब्राह्मण होने के विषय में अच्छी बहस की है। वह पढ़ने योग्य है। उसमें निर्णय किया गया है कि तुलसीदास कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनके ब्राह्मण होने के तीन प्रमाण प्रायः दिये जाते हैं (१) तुलसीदास ने स्वयं "जायो कुलमंगन और (२) "सुकुल जन्म" लिखा है तथा (३) तुलसीदास ने ब्राह्मणों की बड़ी प्रशंसा हर जगह की है। अंतिम प्रमाण तो निरर्थक है। क्योंकि भारतवर्ष में, अद्यावधि, कदा-चित् ही कोई हिन्दू होगा, जो ब्राह्मणों की बड़ाई न करता हो। फिर तुलसीदास तो वर्णाश्रम-धर्म के बड़े पक्षपाती मालूम होते हैं। ब्राह्मणों की क्यों? उन्होंने तो कुल वर्णाश्रम-प्रणाली की बड़ाई की है और उसके नष्ट हो जाने पर शोक प्रकट किया है। यदि ऐसा कहनेवालों का कहना सत्य है तो अपने कुल को उन्होंने "मंगनकुल" भी तो बतलाया है। कोई ब्राह्मण अपने कुल को "मंगनकुल" न कहेगा। "मंगन" तो ब्राह्मणों को अन्य कुल के लोग अनादरार्थ अब कहने लगे हैं। कोई ब्राह्मण अपने आपको मंगन-कुल का नहीं कह सकता है। ब्राह्मण स्वभावतः कुलाभिमानी होते हैं। 'सुकुल' से अर्थ किसी जाति के 'सु' (अच्छे) 'कुल' से हो सकता है। यदि ऐसे कुल को खोज करना है जो 'सुकुल' भी हो 'मंगन-कुल' भी और जिसमें "जाति-पाँति" न हो, बल्कि जिस "अपत-उतार" की "छाँहछुए" "जग" "व्याध वाध का" सहमत है, जिसमें "पेटागिवश" "जाति के कुजाति के अजाति के" 'टूक' खाये जा सकते हैं तो ब्राह्मणों में ऐसी जाति का मिलना कठिन है। कौन ब्राह्मण ऐसा होगा जिसे परवा न हो कि "धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ"? इससे और अधिक प्रमाण इस बात का क्या हो सकता है कि उनकी जाति-पाँति का कुछ पता नहीं था, कोई उन्हें जुलाहा कोई रजपूत कोई अवधूत बताता था, कहीं जगह न मिलने पर मसजिद तक में उनको सोना पड़ा "माँगि के खाइबो मसीत को सोइबो" यानी जब उन्हें कोई धर्मशाला इत्यादि में भी घुसने नहीं देता था तब वे मसजिद ही में पड़े रहते थे। जन्म से जिसने सब प्रकार के लोगों के 'टूक' खाये हों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अपने को 'मंगन-कुल' का अवश्य बतलावेगा। कोई कोई कहते हैं कि तुलसीदास ने अपने लिए अहंकार-रहित होने से, ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। परन्तु यदि ऐसा होता तो वे हर जगह ऐसा न लिख कर कहीं तो अपने को ब्राह्मण लिखते? अपने कुल को जो 'सुकुल' बतला सकता है वह अहंकार-रहित होते हुए भी अपने आपको ब्राह्मण लिखने में न चूकता, यदि उसे अपने ब्राह्मण होने का पूर्ण ज्ञान होता। तुलसीदास को तो अपने कुल का पता ही न था, केवल इतना सुना सुनाया जानते रहे होंगे कि किसी भले घर की सन्तान हैं, इसी लिए सुकुल तो कहा, परन्तु स्पष्ट कह दिया कि हमारी कोई जाति-पाँति नहीं है।

खेद है, बाबू शिवनन्दनसहाय जैसे विद्वान् ने, जिन्होंने तुलसीदासजी की निरपक्ष बृहद् जीवनी लिखी है, यह आदि ही से मान लिया कि वे ब्राह्मण थे। वे लिखते हैं कि "गोस्वामी जी ने जन्म ग्रहण कर किसी ब्राह्मण ही कुल को पवित्र किया था, इसमें तो संदेह नहीं"। यह कह कर फिर उन्होंने यह निश्चय करने की चेष्टा की है कि वे कान्यकुब्ज थे या सरयूपारीण? हमें तो कवितावली पढ़ कर तुलसीदास के 'ब्राह्मणकुल' में उत्पन्न होने में बड़ा संदेह हो गया। जन्म ही से जिसने "जाति के कुजाति के अजाति के" टूक खाकर अपना पेट भरा हो वह अपने आपको "जायो कुल मंगन" अवश्य कहेगा। दोनों से यही ज्ञात होता है कि तुलसीदास की जाति का कुछ पता उन्हें स्वयं नहीं था। अतः अब उसकी तलाश खरहा के विषाण की सी खोज है।

माता-पिता—तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी लोग बताते हैं। कवितावली के निम्न छन्द से 'रामबोला' नाम होने का पता तो चलता है, परन्तु माता-पिता के नाम का कुछ पता नहीं चलता।

"साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो 'रामबोला' नाम हौं गुलाम राम साहि को।"

माता का नाम हुलसी होने का प्रमाण यह कहा जाता है कि तुलसीदास ने लिखा है कि "शम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी" अथवा ख़ानख़ानाँ ने कहीं लिखा है कि "गर्भ लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय"। परन्तु इन दोनों अवतरणों से हुलसी माता का नाम होने का पता नहीं चलता है। दोनों में हुलसी से 'प्रसन्न' होने का अर्थ स्पष्ट निकलता है। अपनी माता का नाम कोई नहीं लिखता है फिर जिसने पिता का नाम कहीं न लिखा हो वह माता का क्यों लिखता? दोनों (माता और पिता) ही ने तो 'जग जाय' तज दिया था, फिर उनका ज्ञान ही तुलसीदास को क्योंकर होता?

इनकी जाति के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमाण दिये जाते हैं—

(अ) काष्ठजिह्वा स्वामी—"तुलसी पराशर गोत्र दुबे पत्यौजा के।"

(आ) तुलसीराम अगरवाला कृत उर्दू 'भक्तमाल'
(इ) राजा प्रतापसिंहकृत 'भक्त-कल्पद्रुम'
} कान्यकुब्ज होना बताते हैं।

(ई) ठाकुर शिवसिंह
(उ) पण्डित रामगुलाम द्विवेदी
(ऊ) डाक्टर ग्रियर्सन
} सरयूपारीण मानते हैं

इन सबकी युक्तियों और उनके खंडन के लिए बाबू शिवनन्दनसहायकृत श्रीगोस्वामी तुलसीदास देखना चाहिए। बाबू साहब ने इस झंझट को मिटाने के लिए एक नई युक्ति निकाली है कि सरवरिया ब्राह्मण भी अपने आपको कान्यकुब्ज कहते हैं, इसलिए इनको सरवरिया कान्यकुब्ज कहना चाहिए।

हमारी समझ में तो यह सब झंझट है। जब तक कोई पूरा प्रमाण किसी एक बात के निश्चय करने को न मिले, इन्हें किसी जाति का न मान कर तुलसीदास के लिखने को ही सार्थक करना चाहिए।

पिता, पुत्र आदि कुटुम्बियों के प्रमाण में डाक्टर ग्रियर्सन साहब ने निम्न-लिखित दोहे दिये हैं। परन्तु उनका पता किसी प्रामाणिक किताब में नहीं चलता, अतः वे प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। न मालूम किसने कब बनाये और यदि तुलसीदास ने स्वयं रचे तो उनके ग्रन्थों में उनका पता क्यों नहीं है।

दुबे आत्माराम है पिता नाम ज्ञान जान।
माता हुलसी कहत सब तुलसी के सुन कान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रहलाद उधारन नाम है गुरु का सुनिए साथ।
प्रगट नाम नहीं कहत जो कहत होय अपराध ॥
दीनबंधु पाठक कहत ससुर नाम सब कोइ।
रत्नावलि तिय नाम है सुत तारक गति होइ ॥

विवाह—तुलसीदास के विवाह के सम्बन्ध में अनेक कथायें प्रचलित हैं। एक अवतरण ऊपर दिया गया है, जिसमें उनके ससुर का नाम दीनबंधु पाठक और उनकी स्त्री का नाम रत्नावली दिया है। दूसरा प्रियादासजी वाला अवतरण है जिसमें उनकी स्त्री का घर जाना और तुलसीदास का पीछा करना, फिर उसके ताने पर वैराग्य होना आदि अनेक दंतकथायें मिलेंगी। तीसरे महादेव-प्रसादकृत भक्तिविलास में निम्न कहानी मिलेगी।

इहि विधि कछुक काल सुख पाए,
मातु पिता परलोक सिधाए।
तिनके कर्म कीन्ह बहु भाँती,
मन में सोच करत दिन राती।
तहँ गुरु कही पुनि कथा पुरानी,
नर हरिदास मनोहर बानी।
सुन तुलसी अब सोच विहाई,
सब के मातु पिता रघुराई।
सो तुम मानहु विप्र वर, राजापुर को जाहु।
चेतहु मेरे बचन अब, करहु आपनो ब्याहु
यह सुनि तुरत चले ननियावर,
पहुँचे गृही भरे सब चांवर।
पुनि सुन्दर कुल देख बराबा,
मातुल ने त्यहि ब्याह करावा।
करहि रमन गुरु ज्ञान भुलाना,
पत्नी सहित परम सुख माना।

इन्हीं कथाओं के ऊपर युक्ति जमा कर लोगों ने अनेक और ऐसी ही जोड़ ली हैं। परन्तु तुलसीदास के सामयिक किसी ग्रन्थ में इनकी चर्चा अभी तक नहीं मिली है। कदाचित् प्रियादासवाली बात की पुष्टि ही में यह सब लिखा और कहा गया है। प्रियादासवाली बात पर हम पहले ही कह चुके हैं कि वह कोई प्रमाण नहीं कहा जा सकता है। अतः हमारी समझ में तो इन सबके स्थान में तुलसीदास का लिखना कि 'ब्याह न बरेषी' ही को प्रामाणिक मानना चाहिए।

बाज़ लोगों ने यह कह कर प्रियादासवाली बात को सच्चा मान लिया है कि यदि तुलसीदास को गृहस्थ-अवस्था का अनुभव न हुआ होता तो वे उसका ऐसा अच्छा वर्णन न कर सकते। यह कोई बात नहीं है, तुलसीदास ने अनेक बातों का ऐसा उत्कृष्ट वर्णन किया है जो उन्होंने प्राकृतिक चक्षु से तो कभी न देखा होगा, यथा रावण का अखाड़ा अथवा जनक की राजसभा आदि। कवि के मानसिक प्रज्ञा होती है और उसी धारणा से वह अनेक चीज़ों का अनुभव कर लेता है। परन्तु जब तक वे बातें न बताई जायँ जो तुलसीदास बिना गृहस्थावस्था का अनुभव किये नहीं लिख सकते थे तब तक उनकी बाबत क्या कहा जाय। हमारी समझ में तो 'ब्याह न बरेषी' अथवा "ब्याहे न बरात गये" उन्हीं के लिए कहा जायगा जिनका ब्याह न हुआ है। यह कहना कि कवि अनेक बातें अपने ऊपर रखकर संसार की कहता है अथवा संसार रखकर कहता है, एक ऐसी बात है जो अपनी बातें सब प्रमाण को झूठा करती हैं। जो स्पष्ट कवि के लिए कही दिखाई देती है वह कवि के लिए ही मानना चाहिए और जो आम बात मालूम होती है उसे आम समझना चाहिए।

गुरु—तुलसीदास के गुरु नरहरिदास बताये जाते हैं। इसका आधार उनका निम्न दोहा है।

बंदौ गुरु पद कंज कृपासिन्धु नररूपहरि।

परन्तु यह कोई साफ़ प्रमाण नहीं है। नर-रूप-हरि गुरु का विशेषण माना जा सकता है। कवितावली से तो केवल इतना पता चलता है कि इनके गुरु कोई रामानन्दी थे। तुलसीदास अपने गुरु के पास बालकपन ही में पहुँच गये थे। माता-पिता से तजे जाने पर जब "नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकनि लागि" लालायित फिरते थे उसी समय "राम स्वभाव सुन्यो तुलसी" अर्थात् बालकपन ही में 'राम' चर्चा इनको सुनाई पड़ गई थी। उस समय ही 'प्रभु सों' 'बारक पेट खलाई' 'कह्यौ' से तात्पर्य मालूम होता है कि पेट के अर्थ भीख माँगने गये थे, पर वहीं रह गये। क्योंकि 'रघुनाथ से साहब' ने स्वार्थ (भोजन)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और परमार्थ (राम-भक्ति) दोनों ने देने में 'खोरि न लाई' । माँगने गये थे भीख पागये स्वार्थ और परमार्थ दोनों, कदाचित् किसी बड़े रामानन्दी साधु के यहाँ बालकपन ही में जाने से साधु की कृपा से वहीं रहने और रामकथा सुनने लगे, जिससे अनन्यभक्त होकर इतना बड़ा यश प्राप्त किया । यही अभिप्राय मानस में यह लिखने से ज्ञात होता है कि "मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सुसूकर खेत, समुझि परी नहि बालपन तब अति रहेउ अचेत" अब यह प्रश्न होता है कि यह 'रघुनाथ से साहब' रामानन्दी साधु कौन और कहाँ के थे और तुलसीदासजी से उनसे कहाँ भेट हुई ? कवितावली में इन प्रश्नों के उत्तर के लिए कुछ मसाला नहीं है । कोई कोई लोग 'सूकर खेत' को सोरों का अर्थ लगा कर बड़ी व्याख्या करते हैं । परन्तु यदि मणिकर्णिका घाट नीमसार में और हरिद्वार काशी में और सीता-कुण्ड-खेरी में हो सकता है तो 'सूकरखेत' कहीं पर भी होना सम्भव है । घाटों के नाम से स्थानों का नाम निश्चित नहीं हो सकता है ।

कुछ हो, जब तक कोई और अच्छा प्रमाण नहीं मिलता है उस समय तक तुलसीदासजी की जीवनी ऐसी ही संदिग्ध अवस्था में रहेगी । जो जिसको सूझता है वह वही लिखता है और फिर एक बात की पुष्टि के लिए अनेक कथायें खोज निकालता या पैदा करता है । हमारी समझ में तो सबको छोड़ कर तुलसीदास के अपने कहे हुए पर ही उसे आश्रित रखना चाहिए, जब तक कुछ प्रमाण और न मिले ।

खड्गजीत मिश्र

आबकारी के महकमे के काम की सरकारी समालोचना ।

हामुनि भरत से लेकर अब तक जितने साहित्याचार्य्य, इस देश में, हो गये हैं—और उनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँची होगी—उन्होंने अपने अपने ग्रन्थों में इस शास्त्र के तत्वों का विवेचन करते समय खूब ही बाल की खाल खींची है । रसों के निरूपण में तो उन्होंने अपनी सूक्ष्म-दर्शिता की हद ही कर दी है । मन में उठनेवाले तरङ्गों या भावों के इतने सूक्ष्म भेद उन्होंने कर डाले हैं कि साधारण विद्या-बुद्धि के मनुष्य के लिए यह समझना बहुत कठिन हो रहा है कि किस भेद की सीमा का अन्त कहाँ पर होता है और कौन बात बढ़ या घट जाने से वह किसी दूसरे भेद के भीतर घुस जाता है । पहले तो उन्होंने एक दो की नहीं, नौ रसों की कल्पना की । फिर उन्होंने यह दिखाया कि कौन कौन या किस किस प्रकार के छोटे छोटे "स्थायी" भावों के जमघट से उनकी उत्पत्ति होती है और कौन कौन उनसे भी छोटे "सञ्चारी" भाव उनके भीतर क्षण भर के लिए घुस कर लोप को प्राप्त हो जाते हैं । इन सूक्ष्मदर्शियों को इतने से भी सन्तोष न हुआ । इन्होंने और भी बहुत आगे क़दम बढ़ा कर विभावों और अनुभावों की भी सृष्टि कर डाली । इस प्रकार इन्होंने साहित्य-शास्त्र के रस-प्रकरण को अपनी शक्ति भर जटिल से भी जटिल बनाने में कुछ भी कसर न की । परन्तु मनुष्य की बुद्धि ही कितनी । वह स्वल्प ही है—परिमित ही है । मुनि हो चाहे महामहोपाध्याय, भूल सभी से हो सकती है । साहित्याचार्य्यों से भी भूल हो ही गई । इन लोगों के ध्यान में यह बात न आई कि यदि एक ही प्रसङ्ग या प्रकरण में एकाधिक रसों का—दो दो तीन तीन का—मिश्रण हो जाय तो उस रस का नाम क्या होगा । पाठक शायद यह कहें कि उसका नाम होगा सङ्कर । बहुत दुरुस्त । परन्तु उसके स्थायी, सञ्चारी, विभाव, अनुभाव आदि का भी तो विवेचन होना चाहिए था । सो नहीं किया जा सका । इसका कारण, सम्भव है, असामर्थ्य हो; क्योंकि मिश्रित रसों के घटक अवयवों आदि का निरूपण छोटी बुद्धि के मनुष्य की शक्ति के बाहर सा जान पड़ता है । अथवा आचार्य्यों ने शायद यह समझा हो कि रसों का इस प्रकार मिश्रण सम्भव ही नहीं । जो रोवेगा सो रोवेगा । रोते ही समय उसे हँसी भी साथ ही न आवेगी । यदि बात ऐसी ही हो, तो कहना पड़ेगा कि उनकी यह सरासर भूल थी और उसका मार्जन अब तक किसी से नहीं हो सका । इसका एक पक्का प्रमाण आज हमें मिला है । इसे प्रमाण को इस प्रान्त की गवर्नमेंट ने प्रस्तुत किया है । उसने मानवी प्रकृति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिकूल हर्ष, शोक और आश्चर्य आदि को एक ही साथ प्रकट करने का एक दृश्य दिखाया है। यह दृश्य सरकार की की हुई उस समालोचना में देखने को मिला है जो उसने आबकारी के कमिश्नर साहब की सालाना रिपोर्ट की की है। रिपोर्ट का सम्बन्ध १ अप्रेल से ३१ मार्च १९२४ तक के १२ महीनों से है। रिपोर्ट बहुत बड़ी है। अतएव इस छोटे से नोट में उस पर कुछ लिखना हमारे लिए अशक्य है। रही, सरकारी समालोचना, सो वह छोटी भी है और उसकी बातें भी बहुत साफ़ और समझ में आने लायक़ हैं। इसके सिवा उसकी बहुत बड़ी विशेषता है—हर्ष, शोक आदि के सरकारी भावों का साङ्कर्य्य। इसी से हम उसकी दो चार बातों का उल्लेख नीचे करते हैं।

युद्ध के पहले, अर्थात् १९१४ ईसवी के पहले, जब देश में अमन-चैन की तूती बोल रही थी, मादक वस्तुओं की खूब बिक्री होती थी। युद्ध बन्द हुए कई वर्ष हो चुके। १९२३-२४ में वर्षा भी खूब हुई। ख़रीफ़ और रबी की फ़सलें भी फट पड़ीं। ग़ल्ले की गरानी भी बहुत कुछ दूर हो गई। अतएव सरकार को यह आशा हुई—और ऐसी आशा का होना बहुत स्वाभाविक भी था—कि इस साल अफ़ीम और चरस, गाँजा और भङ्ग, ताड़ी और शराब की खूब ही बिक्री होगी; अतएव सरकारी आमदनी भी खूब बढ़ जायगी। परन्तु—

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ न चातोऽधिकम्

वाली बात हुई। सरकार की आशालता पर तुषार-पात होगया। नशीली चीज़ों का सेवन करनेवालों ने उसे बेतरह निराश कर दिया। उन्होंने इन चीज़ों का इतना कम सेवन किया जितना पहले कभी भी उन्होंने न किया था। देशी शराब की बिक्री १९२२-२३ में ४,७३,००० गैलन हुई थी; वह गिर कर, रिपोर्ट के साल, ४,३०,००० गैलन ही रह गई। ४३ हज़ार गैलन की कमी! इसके तीन ही वर्ष पहले इससे दूनी से भी अधिक शराब पियक्कड़ों ने पी डाली थी। हाय हाय! यह हो क्या गया! शराब ही की खपत में कमी हुई होती तो विशेष चिन्ता की बात न थी। परन्तु इस कमी ने तो प्रायः किसी भी नशीली वस्तु की बिक्री का पीछा नहीं छोड़ा। जहाँ देखो वहीं कमी, कमी, कमी। पिछले साल किस चीज़ की कितनी बिक्री हुई थी और रिपोर्ट के साल कितनी, इसका हिसाब तो ज़रा देखिए—

	१९२२-२३ में	१९२३-२४ में
(१) गाँजा	१२०० सेर	८०० सेर
(२) भङ्ग	१,३०,६०० सेर	१,२०,००० सेर
(३) अफ़ीम	२९,००० सेर	२४,००० सेर

बात यहीं तक नहीं, विदेशी शराब भी कम बिकी। हाँ, ताड़ी अधिक अवश्य पी गई; परन्तु यह चीज़ देशी शराब की अपेक्षा $\frac{1}{10}$ (एक दशांश) ही मुज़िर है। सरकार के शब्द हैं—

"But *Tari* is only one-tenth
As noxious as country liquor."

यह वाक्य सरकार के सिकत्तर न लिखते तो अच्छा था। इससे तो यह ध्वनि निकलती है कि नशे की जितनी ही अधिक मुज़िर चीज़ें खाई या पी जायँ उतना ही अच्छा। ऐसी ध्वनि निकले चाहे न निकले, हम विश्वास दिलाते हैं कि सरकार का यह मतलब कदापि नहीं कि अधिक मुज़िर चीज़ों के सेवन से लोग अपनी तन्दुरुस्ती खो बैठें। उसने यह कलमा यों ही लिख दिया है कि शराब के मुक़ाबले में ताड़ी $\frac{1}{10}$ ही नुक़सानदेह है। अतएव अधिक बिक्री या ख़र्च हुई तो हर्ज या चिन्ता की बात नहीं।

नशे की इन सब चीज़ों की बिक्री में कमी हो जाने का नतीजा यह हुआ कि सरकार को ७$\frac{1}{8}$ लाख रुपये से भी अधिक का घाटा रहा। इस घाटे का औसत ५$\frac{1}{3}$ रुपया सैकड़ा पड़ा। सरकार की बहुत बड़ी हानि हुई, इसमें सन्देह नहीं। ये सब रोने की—शोक करने की—बातें हैं। अतएव इनमें करुण-रस को ओतप्रोत भरा हुआ समझिए।

अब हर्षमूलक बातें सुनिए और हँसी लानेवाले रस का आस्वादन कीजिए।

सरकार का कथन है कि इस इतनी आश्चर्य-जनक कमी के कारणों का पता भी तो लगाना चाहिए। अच्छा, लीजिए—

कुछ समय से समाज-सुधार की जो हवा चल पड़ी है उसने ज़रूर अपना असर डाला है—कमी का एक-मात्र कारण यदि वह नहीं, तो उसके कुछ अंश का कारण वह अवश्य ही है। नीच जाति के लोगों ने अपना सुधार करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए दृढ़ता से कमर कसी है। वे अपने पुरतैनी रीति-रवाज छोड़ रहे हैं। शादी-ब्याहों में और तिथि-त्योहारों में वे सदा शराब पीते रहे हैं। पर वे अब अपनी इस शराबख़ोरी को बन्द करते जाते हैं। यह सुधार उन्होंने किसी के कहने सुनने से नहीं, बहुत कुछ अपने ही मन से किया है। यद्यपि यह अभी सर्वत्र व्यापक नहीं, तथापि जितना है उतने ही को सरकार सन्तोष-जनक समझती है और उसका स्वागत करती है।

सरकार के इस कथन की जड़ में हर्ष है। अतएव उसके इन वचनों में वह रस समझिए जिसका आधार हँसी-खुशी मानी गई है।

अब ज़रा अन्य विरोधी रसों का स्वाद लीजिए। सरकार का अनुमान ही नहीं, उसे विश्वास है, कि यह जो इतनी अधिक कमी और इतना अधिक घाटा उसे हुआ है उसका प्रधान कारण उसी की निज की नीति है। अर्थात् उसने, जानबूझ कर इन चीज़ों की बिक्री के विषय में, जो नई नीति स्वीकार की है उसी के कारण नशे की चीज़ें कम बिकी हैं। मतलब यह कि जैसा वह कहा करती है कि इन चीज़ों का ख़र्च कम होना चाहिए; पर उसके अनुपात को ध्यान में रखकर आमदनी अधिक से अधिक होनी चाहिए, वही हुआ है। कुछ समय से उसने आबकारी के ठेके नीलाम किये जाने की प्रथा में परिवर्तन कर दिया है। इससे चढ़ा-ऊपरी नहीं होती। दाम सब चीज़ों के बढ़ा दिये गये हैं। दुकानों की संख्या घटा दी गई है। उनके खुले रहने के समय में भी कतरब्योंत कर दिया गया है। बात वह कि नशा करनेवालों के मार्ग में उसने इतनी विघ्नबाधायें और इतने अड़ङ्गे लगा दिये हैं जो नशीली चीज़ों की बिक्री बन्द कर दी जाने की सीमा के पास पहुँच गये हैं। इस सबका अर्थ हुआ कि सरकार की यह इच्छा है कि नशे की चीज़ों का ख़र्च एक-दम ही बन्द न हो जाय तो बहुत कम ज़रूर ही हो जाय और वही हो भी रहा है। सो इस कमी का प्रधान कारण ("Main Cause") सरकार ही की कृपा है। पर याद रखिए, अपनी समालोचना के दूसरे ही पाराग्राफ़ में, ऊपर, वह कह आई है—"Social reforms certainly account for not a little"—अर्थात् बिक्री की बहुत कुछ कमी के कारण सामाजिक सुधार हैं। पहले तो उसने कमी के अधिक अंश का श्रेय नीच जाति के लोगों में हुए समाज-सुधार को बताया, फिर अनुक्षण ही उसने वह श्रेय अपनी नीति को दे दिया। इन विचार-विवर्तन-विषयक वाक्यों में साहित्य-शास्त्रियों के निर्णीत रसों में से शायद ही कोई रस हो। पर तार्किकों—न्यायशास्त्रियों—के शास्त्र के नियमों पर लगाने के काम आनेवाला हरताल-रस अवश्य ही है और खूब गाढ़ा है।

अब अद्भुत-रस का एक घूँट आपको पिलाकर हम रसाभास उत्पन्न करनेवाली इस कथा का समापन कर देंगे। सरकार जब नशे की चीज़ों की बिक्री बन्द या बिलकुल ही कम करके प्रजा को संयमशील और तन्दुरुस्त बनाना चाहती है तब उसे रिपोर्ट के साल की कैफ़ियत सुन कर सन्तुष्ट हो जाना चाहिए था; चूँ व चरा न करना चाहिए था। पर उस बेचारी को एक और बला ने आ घेरा है। नशे की चीज़ों की बिक्री कम हो जाने पर भी जुर्मों की संख्या बढ़ गई है। लोग खूब लुक छिप कर शराब बनाने लगे हैं और पीने भी लगे हैं। यहाँ तक कि उसे बेचकर वे माल भी खूब जमा कर रहे हैं। बात यह कि शराब बनाना बहुत सहज जो है। बस कुछ महुवे और मिट्टी के घड़ों के एक भपके की ज़रूरत पड़ती है। शराब बहुत महँगी होने के कारण पासियों, कोरियों, चमारों, लोधों और लुनियों की बन आई है। वे खूब बनाते, पीते और बेचते हैं। पकड़े जाते हैं और अदालतों से सज़ा पाते हैं। लाखों नहीं तो हज़ारों रुपया, जुर्माने के तौर पर, सरकारी ख़ज़ानों में भरते हैं। पर अपनी आदत से बाज़ नहीं आते। उन्होंने पुलिस के लाल पगड़ीवालों और मैजिस्ट्रेटों की नाक में दम कर रक्खा है। वे लोग कहाँ तक मुलज़िमों को पकड़ें और कहाँ तक उन्हें सज़ा दें। बहुत वक्त व्यर्थ ख़र्च होता है। हैरानी भी बहुत उठानी पड़ती है। बस वह यही बला है जिसमें सरकार मुबतिला हो रही है। अफ़ीम और कोकेन के भी चालान रेलों से होते हैं, यह और भी उसके लिए चिन्ता की बात है। कच्ची अफ़ीम भी अब बहुत पकड़ी जाती है। अफ़ीम के दाम भी बढ़ गये हैं न। जिन्हें असली अफ़ीम नहीं मिलती या जो नहीं ख़रीद सकते वे नक़ली या कच्ची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ़ीम खाकर ही अपना काम चलाते हैं। नशे की चीज़ें कम बिकें या उनका बिकना ही बन्द हो जाय, सरकार बहुत खुश है। पर इतने जुर्म उसे बरदाश्त नहीं। वह नहीं चाहती कि लोग लुक-छिपकर शराब बनावें और बेच कर अपना घर भरें। अजी अब तो सरकार की राय में भले आदमी—ऊँची जातिवाले—भी इस तरह के जुर्म करने लगे हैं।

इसका इलाज क्या? इलाज सरकार ने यह सोचा है कि उसने एक कमिटी बना दी है। उसके मेम्बर एक कान-फ़रन्स करेंगे। वे सरकार की बदली हुई वर्तमान नीति को विचार की कसौटी पर कसेंगे और जुर्मों की अधिकता के कारणों की भी छानबीन करेंगे। फिर वे सब बातें लिखकर सरकार के दरबार में भेज देंगे। तब जैसा कुछ मुनासिब होगा, सरकार काररवाई करेगी।

इस कानफ़रन्स की बात सुनकर कुछ लोगों को सन्देह हुआ है कि आमदनी घट जाने के कारण ही सरकार ने यह चाल चली है। वे समझते हैं कि अब कोई काररवाई ऐसी की जायगी जिससे ऊपर ही ऊपर तो बिक्री न बढ़ाने के बहाने किये जायँगे, पर आमदनी बढ़ने के कोई नये मार्ग अवश्य ढूँढ़ निकाले जायँगे। इन लोगों की टीकायें सुन कर सरकार ने अपनी समालोचना में यह कह कर उन्हें आश्वासन दिया है कि "मा भैषीः"—ऐसा कभी न होगा। तुम्हारा सन्देह निर्मूल है। डरने और सन्देह करने का कोई कारण नहीं। तथास्तु।

च—

मानव-जाति और राष्ट्रीयता।

पृथ्वी पर आज अनेक राष्ट्र और अनेक जातियाँ दिखाई दे रही हैं। इनकी आकृति-प्रकृति, आकार-प्रकार, हाव-भाव, आचार-विचार, चाल-चलन आदि सभी बातों में कुछ न कुछ विभिन्नता और विशेषता पाई जाती है। मनुष्य-जाति क्यों और किस प्रकार इन छोटे छोटे दलों में विभक्त होगई? यह प्रश्न, वास्तव में, बहुत ही मनोरञ्जक है। किन्तु जितना ही मनोरञ्जक है उतना ही कठिन भी है। क्योंकि मनुष्य-जाति कुछ सहस्र दो सहस्र वर्षों से इस प्रकार विभक्त नहीं है, बरन उस काल से विभक्त चली आ रही है जिसका इतिहास संसार के किसी भी ग्रन्थ के पृष्ठों पर आज तक ठीक ठीक नहीं लिखा जा सका। अतएव इस प्रश्न के युक्तियुक्त उत्तर के लिए हमें अधिकतर इतिहास के आदि-पृष्ठों एवं पुरातत्त्व के अविशिष्ट चिह्नों की ओर ही अधिक ध्यान देना पड़ेगा। उत्तरी मिस्र की बहुसंख्यक प्राचीन क़ब्रों के अनुसन्धान से पुरातत्त्ववेत्ताओं ने यह स्थिर किया है कि लोगों को ईसामसीह के कम से कम ६००० वर्ष पहले कृषि-विद्या का ज्ञान प्राप्त होगया था। सम्भव है, इस समय हमें कृषि-विद्या का आविष्कार एक साधारण और बिलकुल अनुल्लेखनीय बात जान पड़े किन्तु यथार्थ में बात ऐसी नहीं है। इतना ही नहीं, यह आविष्कार तो शायद संसार के इतिहासातीत काल के अलिखित इतिहास की सबसे प्रधान घटना है। क्योंकि केवल इस एक घटना ने तत्कालीन मनुष्यों की जीवन-धारा ही पलट दी थी। जो भूमि पहले अपनी प्राकृतिक पैदावार के द्वारा केवल एक या दो मनुष्यों का भरण-पोषण कर सकती थी वही इस विद्या के प्रचार से थोड़े ही दिनों में प्रायः सौ कुटुम्बों के पालन में समर्थ होगई। आज जो हमारा पृथ्वी-मण्डल मनुष्यों से इस प्रकार हरा-भरा दिखाई दे रहा है उसका अधिकांश श्रेय इसी कृषि-विद्या को है। सच पूछा जाय तो इसी घटना से हमारे आधुनिक एवं ऐतिहासिक जगत् का श्रीगणेश होता है।

योरपीय विद्वानों ने मोटे तौर से संसार के इतिहास को दो भागों में विभक्त किया है। एक ऐतिहासिक काल और दूसरा इतिहासातीत काल। इन दोनों कालों को पृथक् करनेवाला, जैसा ऊपर उल्लेख हो चुका है, कृषि-विद्या का आविष्कार है। इसके पहले मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह के लिए पूर्णतः प्रकृति और प्राकृतिक पैदावारों पर अवलम्बित रहते थे। वे लोग पत्थरों के हथियारों का भी थोड़ा-बहुत प्रयोग करते थे, किन्तु उससे उनके जीवन-साधनों में अधिक उन्नति नहीं हुई थी। मनुष्य-जाति ने इस नग्नावस्था में अपने जीवन के कितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन बिताये, यह किसी प्रकार ठीक ठीक नहीं ज्ञात हो सकता। कोई तत्त्ववेत्ता १ लाख वर्ष बतलाता है तो दूसरा १० लाख वर्ष बतलाने में किसी तरह का सङ्कोच नहीं करता। पर इस बात पर सभी पुरातत्त्ववेत्ता सहमत हो गये हैं कि ईसा के छः-सात हज़ार वर्ष पहले संसार में कृषि-विद्या का जन्म हुआ था, साथ ही उसके थोड़े दिनों बाद मनुष्य पत्थर-युग से निकल कर क्रमशः ताम्र और लौह-युग में प्रवेश करता गया। अर्थात् मनुष्य-जाति का सम्पूर्ण ऐतिहासिक जीवन आठ-दस हज़ार वर्षों से अधिक नहीं। इस काल में मनुष्य ने अपने जीवन-निर्वाह के लिए प्राकृतिक साधनों की अपेक्षा कृत्रिम उपायों से अधिक काम लिया है। और इसी लिए शायद यह काल अधिक घटनापूर्ण एवं वर्तमान तथा भावी मनुष्य-जाति के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण भी है। किन्तु राष्ट्रीय जीवन के प्रादुर्भाव पर विचार करने के लिए हमें ऐतिहासिक काल से निकल कर इतिहासातीत काल में प्रवेश करना पड़ता है। क्योंकि उसी आदि-काल में मनुष्य-जाति जातीय वर्गों में विभक्त हो गई थी और सच पूछा जाय तो आधुनिक राष्ट्र उन्हीं प्राचीन वर्गों के रूपान्तर-मात्र हैं। प्राचीनकाल में ही मनुष्य-जाति के विभिन्न दलों की मानसिक स्थिति और शारीरिक गठन में अन्तर हो चला था। आधुनिक-काल में वह और भी अधिक स्पष्ट हो गया है।

यह हमारे लिए विशेष हर्ष का विषय है कि आज भी हम इन इतिहासातीत काल की बहुत सी परिस्थितियों का अध्ययन कर सकते हैं। इसके लिए सबसे उपयुक्त क्षेत्र आस्ट्रेलिया-महाद्वीप है। क्योंकि दो सौ वर्ष पहले कोई इस देश के नाम से भी परिचित नहीं था। इसलिए उस इतिहासातीत काल से आज तक वहाँ उसी प्राचीन युग का स्वच्छन्द साम्राज्य चला आया। वहाँ के मूल-निवासी आज भी उसी प्रकार अपना जीवन व्यतीत करते हैं जिस प्रकार कृषि-विद्या के आविष्कार के पहले सम्पूर्ण मनुष्य-जाति अपना जीवन-यापन किया करती थी। मनुष्य-जाति किस प्रकार पहले मुख्य मुख्य वर्गों में विभक्त हुई और फिर किस प्रकार धीरे धीरे उन वर्गों के परस्पर सम्मिश्रण से बहुत सी वर्णसङ्कर जातियाँ उत्पन्न हो गईं, यदि कोई इन बातों का प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहे तो उसको आस्ट्रेलिया के मूल-निवासियों से प्रारम्भ करना चाहिए। वास्तव में आज यही उस इतिहासातीत कालीन मनुष्य-जाति के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। यदि हम ध्यानपूर्वक इन काले लोगों का निरीक्षण करें तो हम इनमें कुछ तो हबशियों की विशेषतायें और कुछ मंगोलों की और कुछ काकेशियनों की विशेषतायें पायँगे, मानो आदि में ये जातियाँ इन्हीं की जाति से निकली हैं।

जिस समय कप्तान कुक ने आस्ट्रेलिया में प्रवेश किया था उस समय यहाँ के निवासियों की कुल संख्या २-३ लाख से अधिक नहीं थी, किन्तु ये बहुत सी जातियों और उपजातियों में बँटे हुए थे। यहाँ की प्रत्येक जाति अपने अपने प्रदेश में सीमाबद्ध रहती है। सीमा को अङ्कित करने के लिए चाहे कोई प्राकृतिक बन्धन हो चाहे न हो, किन्तु सीमायें सदैव सुनिश्चित सी रहती हैं। यहाँ तक कि उपजातियों के प्रान्त भी, जिनमें अधिकतर एक ही परिवार और उसके सम्बन्धी सम्मिलित रहते हैं, पृथक् पृथक् बँटे हुए हैं। प्रत्येक जाति की बोली भी अलग अलग है। प्रत्येक जाति अपने अपने त्यौहार भी मनाती है, जिनमें सभी उपजातियाँ सम्मिलित होती हैं और इस प्रकार जाति का सङ्गठन और जाति-प्रेम सदैव अविच्छिन्न रहता है। सारांश यह कि प्रत्येक जाति की विहार-सीमा, भाषा, धार्मिक विश्वास, उत्सव, चाल-ढाल में थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य रहता है, जिससे उनका पार्थक्य और व्यक्तित्व सदैव स्पष्ट रहता है। ये लोग अपनी जाति के बाहर विवाह भी नहीं करते। यद्यपि इनकी जातियों में परस्पर सङ्घटित रूप से युद्ध कभी नहीं होते, तथापि सीमान्त पर रहनेवाली उपजातियों में द्वन्द्व-युद्ध हो जाना बिलकुल साधारण बात है। शायद जातियों के व्यक्तित्व को पृथक् रखने के लिए ये द्वन्द्वयुद्ध हो जाते हैं। यदि ये न होते तो जातियों के सम्मिश्रण में देर भी न लगती। ये लोग अपने जीवन-निर्वाह के लिए एक-दम प्रकृति पर निर्भर रहते हैं। कोई कोई जाति तो मरुभूमि में रहती है, जहाँ न फल-फूल का कोई बड़ा सहारा है और न पानी का ही। शहरों में पले हुए किसी सभ्य मनुष्य का तो शायद एक ही दिन वहाँ रहने से प्राणान्त हो जाय। किन्तु इन लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को कोई कष्ट मालूम होता नहीं दिखाई देता। पर सफलता और असफलता का प्रश्न इनमें भी रहता है। जो जाति अधिक उद्यमशील और बहुसंख्यक होती है वह कालान्तर में छोटी और आलसी जातियों को दबा देती है।

ऊपर जिस मानव-जीवन का संक्षेप में उल्लेख किया गया है, आज से कोई ८००० वर्ष पहले संसार में सर्वत्र वही दृश्य दिखाई देता था। इसी आदिम परिस्थिति से धीरे धीरे संसार की सभी आधुनिक जातियों और उपजातियों का विकास हुआ है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी ऐसी जातियाँ विकसित हुई थीं जिनके अस्तित्व का पता हमें अब केवल ज़मीन की भीतर दबी हुई मानवीय आकार से मिलती-जुलती हुई हड्डियों से लगता है। कहना न होगा कि क्यों कुछ जातियाँ जीवित रहीं और क्यों कुछ जातियों का लोप हो गया। इसका कारण यही है कि जिन्होंने प्राकृतिक नियमों का पालन किया वे जीवित रहीं और जिन्होंने उनकी अवहेलना की वे सदैव के लिए अन्धकार के गर्त में लुप्त हो गईं। यदि ऐसा न होता तो शायद प्रकृति मनुष्य-जाति को किसी महासागर के बीच बहुत से द्वीपों में बन्द कर देती और इस प्रकार थोड़े ही दिनों में अपने आप बहुत सी जातियाँ उत्पन्न हो जातीं। किन्तु ऐसा न करके प्रकृति ने पहले से ही मनुष्यों के हृदय में जातीयता का बीज बो दिया। उसी के फल-स्वरूप आस्ट्रेलिया के मूल-निवासी आकार-प्रकार, मुखाकृति, शरीर-गठन और मानसिक गुणों में एक दूसरे से पृथक् हो गये। प्रत्येक मनुष्य अपनी जैसी सूरत-शक्ल एवं अपने जैसे स्वभाववाले मनुष्य से प्रेम करता है। इसी को जातीयता का भाव कहते हैं। पहले मनुष्य परिवार के बन्धन में आता है, क्योंकि परिवार के मनुष्यों में सबसे अधिक समानता रहती है, उसके बाद जाति के और यही जातियाँ अनुकूल परिस्थिति में राष्ट्र का रूप धारण कर लेती हैं। यदि जातीयता का भाव मनुष्यों के हृदय में इतनी दृढ़ता से जमा होता तो शायद संसार में जाति-भेद न दिखलाई पड़ता और न हमें पृथ्वी पर काले, गोरे और पीले आदि रङ्ग का भेदभाव भी देखने को मिलता।

विकासवाद का तो यह एक प्रतिष्ठित सिद्धान्त है कि मनुष्य-जाति के विकास के अध्ययन करने में हमें मनुष्यों से मिलते-जुलते पशुओं की आलोचना से बड़ी सहायता मिलती है। गोरीला, चिम्पानज़ी और ओरङ्ग ये तीन वन्य पशु ऐसे हैं जो आकृति में न्यूनाधिक मनुष्यों से मिलते-जुलते हैं, किन्तु स्वयं उनकी शारीरिक और मानसिक गठन में इतना अन्तर है कि हम उनको पशुओं की एक ही श्रेणी में सम्मिलित नहीं कर सकते। इसी प्रकार समय समय पर पृथ्वी के भीतर से मनुष्याकृति से मिलते-जुलते ऐसे बहुत से अस्थि-पञ्जर निकलते रहते हैं जो समान होने पर भी मनुष्यों से उतने ही पृथक् हैं जितना एक कुत्ता एक लोमड़ी से। मतलब यह कि मनुष्य-जाति जिस क्रम से विकास पाती हुई इस अवस्था को पहुँची है, अभी तक विज्ञानवेत्ताओं ने उसका ठीक ठीक पता नहीं लगा पाया है। यह निर्विवाद है कि वर्तमान मनुष्य-जाति के उन पूर्वजों में जो इतिहासातीत काल के अन्त में नैसर्गिक उपायों से अपना जीवन व्यतीत करते थे, अवश्यमेव कुछ न कुछ ऐसी विशेषता थी जिसके कारण उन्होंने मनुष्यों से मिलते-जुलते प्राणियों पर विजय प्राप्त करके संसार भर में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। किन्तु प्रश्न तो यह है कि उन लोगों ने वर्तमान रूप कैसे धारण कर लिया। यह तो एक मोटी बात है कि भिन्न भिन्न परिस्थितियों में रहनेवाले मनुष्यों में पार्थक्य हो ही जाना चाहिए। पर दूसरा प्रश्न यह भी हो सकता है कि जब एक ही बृहत् जाति से सब जातियों का विकास हुआ है तब अफ़रीका के रहनेवालों में नीग्रोपन, पूर्वी एशिया के रहनेवालों में मंगोलपन तथा योरप के निवासियों में काकेशीयन का जन्म कैसे हुआ।

विज्ञानवेत्ताओं ने इसके लिए भी एक सिद्धान्त स्थिर कर रक्खा है। उनका कहना है कि मनुष्य-शरीर के भिन्न भिन्न स्थानों में पाँच ऐसे स्नायुचक्र हैं जो देखने में बहुत छोटे हैं, किन्तु उनकी जटिलता का भेद बड़ी से बड़ी वैज्ञानिक प्रयोगशालायें भी नहीं पा सकतीं। उनमें छोटे छोटे परमाणु जिन्हें हारमोन्स कहते हैं निरन्तर बनते रहते हैं। और ये हारमोन्स रक्त में प्रवेश करके शरीर एवं मस्तिष्क की गठन पर अपना प्रभाव डालते हैं। वास्तव में इन्हीं के सञ्चालन के अनुसार मनुष्य का शरीर घटता-बढ़ता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

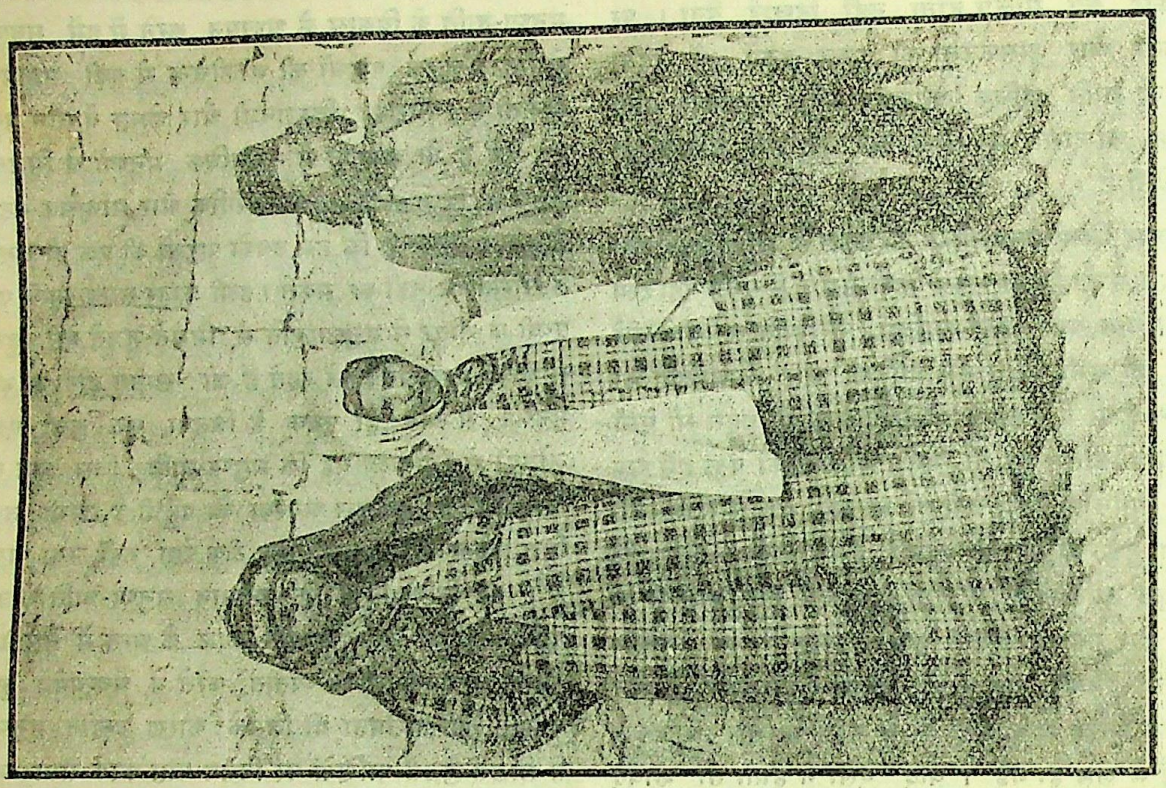

यहूदी जाति के लोग।

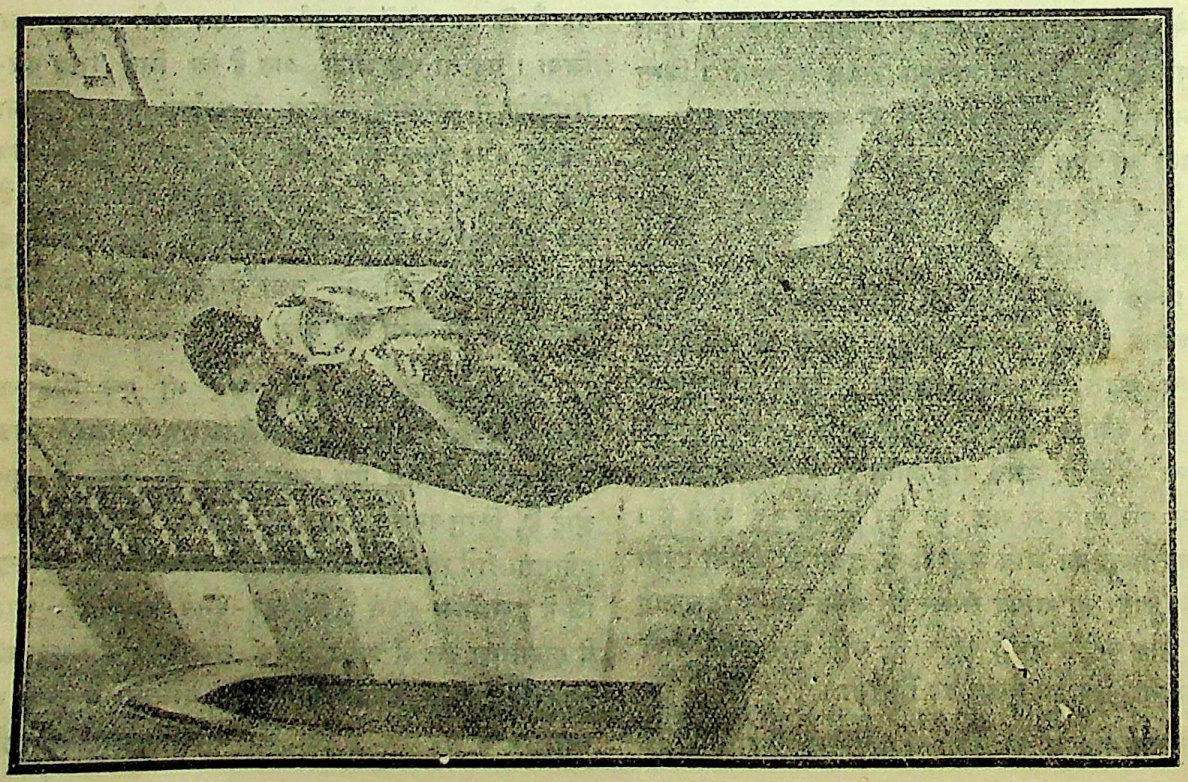

मिस्र देश की रमणी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

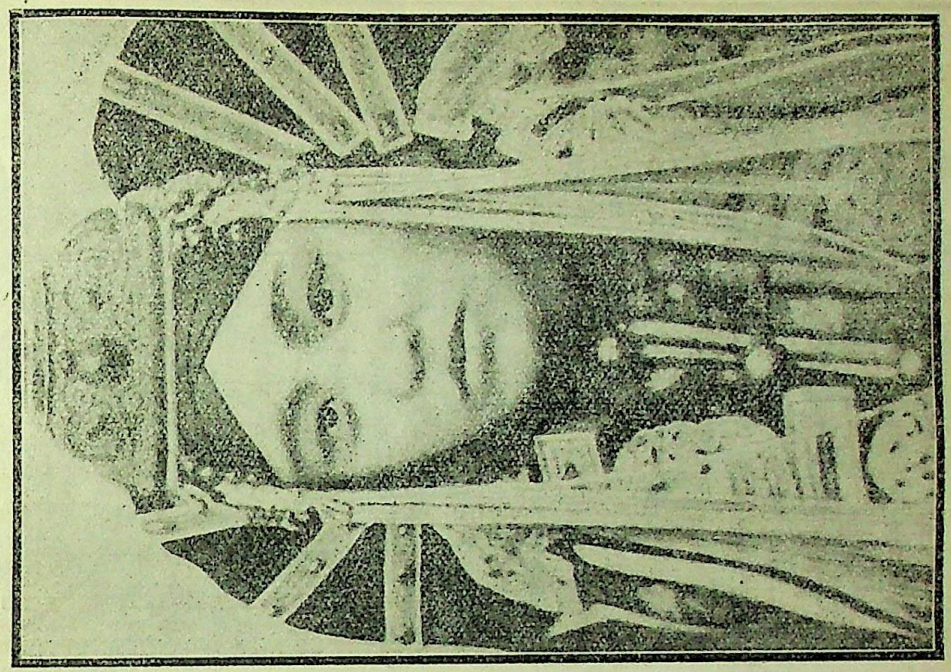

मंगोल-सुन्दरी ।

मलाया देश की लड़कियाँ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

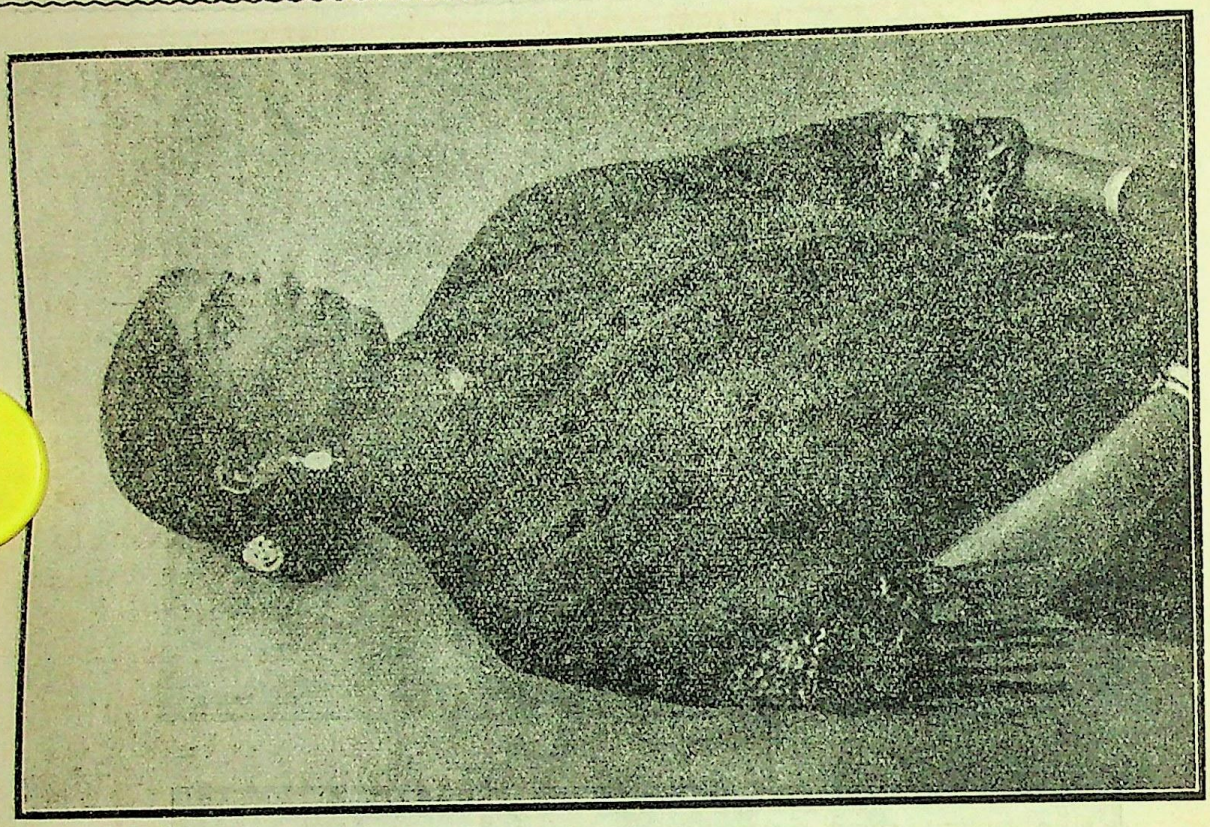

सीलोन में आर्य-जाति के वंशधर हैं। इस रमणी के रङ्ग-रूप में इन पूर्वजों के लक्षण दिखाई देते हैं।

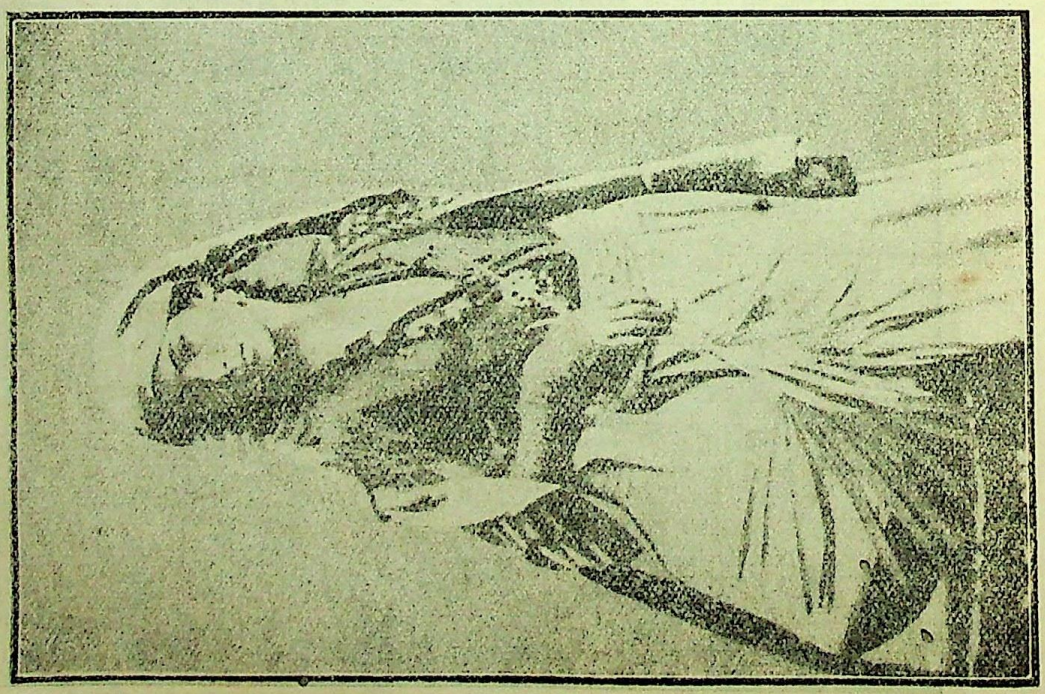

अरब जाति की स्त्री।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोहिया में आर्य और मंगोल जाति का सम्मिश्रण ।

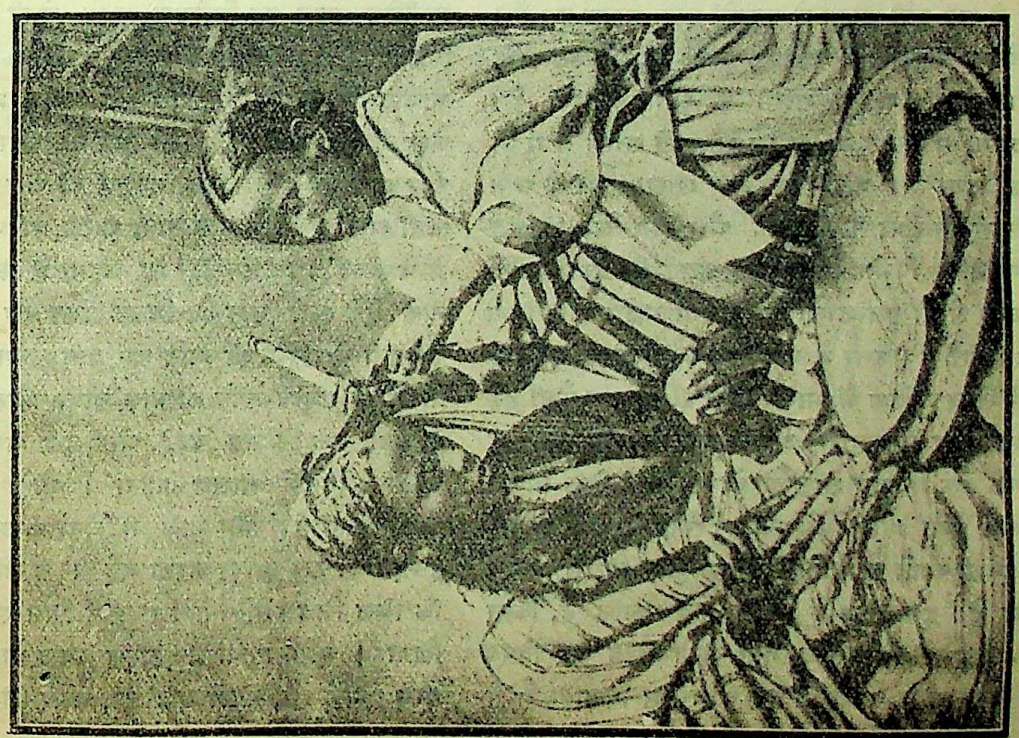

मेडागास्कर द्वीप की रमणियां ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर के कालापन या गोरापन, बालों की कोमलता या कठोरता और मुखाकृति पर भी इनका प्रभाव पड़ता है। इतना ही नहीं, मनुष्य के स्वभाव और मानसिक भावनायें भी इसी के अनुसार बनती-बिगड़ती हैं। उन्होंने तो इस बात का भी पता लगा लिया है कि किस प्रकार के भोजन से हारमोन्स की उत्पत्ति में कितनी सहायता मिलती है।

सारांश यह कि इन्हीं प्राकृतिक नियमों के अनुसार ऐतिहासिक युग के आदिकाल में आदिम मनुष्य-जाति ने ये तीन रूप धारण कर लिये थे—(१) काकेशीय (२) मंगोल और (३) नीग्रो। यद्यपि आज मनुष्य-जाति की इन तीनों शाखाओं में महान् अन्तर दिखाई देता है, तथापि हमें यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि ये तीनों शाखायें प्रारम्भ में उसी काले बाल और लम्बे सिरवाली मनुष्य-जाति की सन्तान हैं जिनका उदाहरण आज भी हम आस्ट्रेलिया में कहीं कहीं देख सकते हैं। मनुष्यों की इन तीनों शाखाओं में काकेशियाई शाखा ने सबसे अधिक योग्यता प्राप्त की है। ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ से आज तक संसार में जितने महत्त्वपूर्ण आविष्कार हुए हैं वे सब इसी शाखा के मनुष्यों-द्वारा सम्पन्न हुए हैं। कृषि-विद्या, धातुओं का प्रयोग, बाष्प और विद्युत्-शक्ति का आविष्कार सब इसी शाखा के लोगों ने किया है। धर्म, ज्ञान, सदाचार का विकास भी इसी शाखा में सबसे अधिक हुआ है। आज-कल यह शाखा पृथ्वी के अति विशाल भू-भाग पर फैल गई है और इसी लिए यह कई उपशाखाओं में विभक्त हो गई है। इसके विस्तार पर दृष्टिपात करने से ही इस शाखा की महत्ता भले प्रकार समझ में आ सकती है। उत्तर में यह योरप के स्कैनडेनविया प्रायद्वीप से लेकर दक्षिण में भारतवर्ष के दक्षिण तक फैली हुई है। उत्तर ओर जानेवाली उपशाखाओं का यह दावा है कि उनके रक्त में अन्य शाखाओं के रक्त का अधिक सम्मिश्रण नहीं हुआ और भारतवर्ष के रक्त में मंगोल और नीग्रो हबशी-जाति के रक्त का कुछ न कुछ मिश्रण अवश्य हो गया है। इस कथन में बहुत कुछ सत्यांश है, किन्तु यह भारतवर्ष के लिए लज्जा नहीं, बरन गौरव का विषय है। भारतवर्ष के आर्यों ने वह काम कर दिखाया है जो संसार में आज तक कोई अन्य देश नहीं कर सका है। उन्होंने जिस युक्ति से हबशियों, मंगोलों और आदिम जाति के वंशजों को अपने समाज में मिला लिया है वह बहुत ही भव्य और श्लाघनीय है। यदि संसार के किसी देश में मनुष्य-जाति की चारों शाखाओं—काकेशियाई, मंगोल, हबशी और आस्ट्रेलियाई—का सामञ्जस्यपूर्ण सम्मिलन दिखाई दे सकता है तो वह केवल भारतवर्ष है। बस, भारतवर्ष का यही सबसे बड़ा कार्य है और यही कारण है कि आज भी संसार में भारतवर्ष का नाम अक्षय है और जब तक सृष्टि-क्रम चलेगा तब तक, यदि भारतवर्ष ने अपनी नीति की अवहेलना न की तो, बराबर अक्षय बना रहेगा।

सभ्यता की दृष्टि में तो समस्त भारतवर्ष आज एक हो रहा है, किन्तु उसमें किन किन जातियों का समावेश हुआ है, यह उसके निवासियों की मुखाकृति और शारीरिक गठन पर दृष्टिपात करने से भले प्रकार ज्ञात हो सकता है। उदाहरण के लिए वेड्डा-जाति में आस्ट्रेलियाई, दक्षिण-भारत की जङ्गली जाति में हबशीपन, दारजिलिङ्ग के भूटियों में मंगोलपन और राजपूताना के राजपूतों में काकेशीपन स्पष्ट दिखाई देता है। मुखाकृति और शारीरिक गठन का निरीक्षण करने से ही हमें योरपीय विद्वानों की इस कल्पना में विश्वास करना पड़ता है कि काकेशियाई शाखा का प्रारम्भिक स्थान मध्यएशिया के केन्द्र में था। वहाँ से उसकी कुछ उपशाखाएँ योरप की ओर चली गईं और कुछ दक्षिण की ओर भारतवर्ष में चली आईं एवं शेष तुर्किस्तान, फ़ारस, अरब आदि देशों में फैल गईं। विज्ञानविदों का कहना है कि मुखाकृति में नाक एक ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा हम सबसे अधिक आसानी से मनुष्य की जाति का पता लगा सकते हैं। प्रारम्भिक मनुष्य-जाति की नाक चौड़ी और चपटी होती है, यहाँ तक कि शेष चेहरे और इस अवयव में कोई अन्तर ही नहीं मालूम पड़ता। धीरे धीरे जातियाँ उन्नति करती गईं और नाक भी चेहरे के ऊपर एक स्पष्ट इन्द्रिय का रूप धारण करती गई। इसमें सन्देह नहीं कि भिन्न भिन्न परिस्थितियों में उसने भिन्न रूप धारण कर लिया। परिस्थितियों के कारण केवल नाक में ही नहीं, बरन देह के रङ्ग, बालों के प्रकार, सिर की बनावट आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी बातों में न्यूनाधिक परिवर्तन होता गया है। उदाहरण के लिए योरप में ही किसी देश के निवासियों का सिर लम्बा है तो किसी का गोल। किन्तु इन सूक्ष्म भेदों से हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि ये काकेशियाई शाखा के अन्तर्गत नहीं हैं। दक्षिणी भारत से लेकर स्कैंडेनेविया के बीच के आयताकार क्षेत्र में, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, अधिकतर कोकेशियाई-जाति ही का निवास है। किन्तु भिन्न भिन्न देशों में रहने से उनमें वही भेद आगया है जो किसी बृहत् जाति की उपजातियों में पाया जा सकता है। इस बृहत् क्षेत्र में अधिकतर कोकेशियाई जाति का ही निवास रहा है, इसके लिए एक और प्रमाण दिया जाता है। वह यह कि भारतवर्ष से लेकर आयर्लैंड तक जितनी भाषायें बोली जाती हैं उनमें इतनी अधिक समानता पाई जाती है कि वे किसी एक पैत्रिक भाषा की पुत्रियाँ जैसी मालूम होती हैं। जैसे जैसे आदिम जाति देश-देशान्तरों में फैलती गई, वैसे वैसे उसकी भाषा में परिवर्तन और परिवर्द्धन होता गया।

प्रश्न यह हो सकता है कि काकेशियों की आदिमजाति, जिसका निवास-स्थान मध्यएशिया बताया जाता है, किस प्रकार एक ओर सारे योरप में और दूसरी ओर एशिया के दक्षिणी-पश्चिमी भाग एवं सारे भारतवर्ष में फैल गई। किन्तु इसका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। उसमें केवल एक बात जोड़ देना शेष है कि सबसे पहले मध्य-एशिया-वासियों ने कृषि-विद्या का आविष्कार किया था या कम से कम उन्होंने ही सबसे अधिक उसका प्रयोग किया था। कहना न होगा कि इस प्रकार थोड़े ही दिनों में उनकी संख्या में सैकड़ों और हज़ारों गुना वृद्धि हो गई। इसीलिए उनको बाहर फैलने की आवश्यकता हुई। अतएव जाति-विस्तार के साथ साथ भाषा-प्रचार का होना बिलकुल स्वाभाविक है। कृषि-विद्या के आविष्कार के तीन-चार सहस्र वर्ष बाद मनुष्य-जाति के इतिहास में एक और बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना हुई थी। लोग बड़े बड़े जहाज़ बनाने लगे थे, जिनके द्वारा लोग दूरस्थित देशों में भी आसानी से पहुँच सकते थे। यद्यपि इस नूतन आविष्कार के द्वारा मनुष्य-संख्या में कोई वृद्धि नहीं हुई, तथापि एक विषय में कृषि-विद्या और जहाज़-निर्माण का एक ही सा परिणाम हुआ। कृषि-द्वारा वृद्धि पाई हुई जातियाँ जब अपने निवासस्थान से निकलकर दूसरे देशों में प्रवेश करती थीं तब उनसे कमज़ोर और सङ्गठनहीन जातियों को स्वभावतः उनके आगे झुकना पड़ता था। कहीं कहीं पर तो वे बिलकुल नेस्तनाबूद ही हो गई हैं। ठीक यही परिणाम जहाज़ों के आविष्कार का भी हुआ। प्राचीन बात जाने दीजिए। विगत तीन शताब्दियों में ही योरपीयों ने अपने सुदीर्घ जहाज़ों की सहायता से सारे भूमण्डल पर आतङ्क छा दिया है। उनके सङ्घर्ष से अमेरिका, दक्षिणी अफ़रीका, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड के मूलनिवासी तो नष्टप्राय से हो रहे हैं। सारांश यह कि संसार सबलों के लिए है। जो निर्बल होगा वह कुचल दिया जायगा।

इसी नैसर्गिक सिद्धान्त के अनुसार इतिहासातीत काल के अन्त में मनुष्यों की चार श्रेणियाँ ऐसी रह गई थीं जो एक दूसरे को कुचलने में असमर्थ थीं। भिन्न भिन्न परिस्थितियों में रहने के कारण इनमें इतना पार्थक्य आगया था कि हम कदापि इनको फिर एक ही जाति में परिगणित नहीं कर सकते थे। ये चार श्रेणियाँ इस प्रकार हैं—(१) मूल आस्ट्रेलियाई (२) हबशी (३) मंगोल और (४) काकेशियाई। इनकी विशेषतायें इतनी स्पष्ट हैं कि यदि इन चारों श्रेणियों के कुछ व्यक्ति एक झुण्ड के रूप में खड़े कर दिये जायँ तो साधारण मनुष्य भी उनको पुनः अपनी अपनी श्रेणी में बाँट सकता है। ये श्रेणियाँ या मनुष्य-जाति की प्रधान शाखायें एक दूसरे से उसी प्रकार भिन्न हैं जैसे अरबी और योरपीय घोड़ा। किन्तु यदि हम भूमध्यसागर के समीपवर्ती देशों के निवासियों में से कुछ व्यक्तियों को ले कर एक साथ खड़ा कर दें तो साधारण व्यक्ति क्या विज्ञानविदों के लिए भी यह बतलाना कठिन होगा कि कौन व्यक्ति किस देश का निवासी है। इसी प्रकार यदि फ़ारस, स्पेन, नारवे, पोलैंड आदि देशों के निवासियों में विभिन्नता तो अवश्य है, तथापि इन देशों में कम से कम २० या ३० फ़ी सदी ऐसे हैं जिनमें जातीयता का चिह्न पूर्णरूप से प्रस्फुटित नहीं हुआ है। वास्तव में ये जातियाँ प्रधान शाखाओं की उपजातियाँ मात्र हैं। ये उपजातियाँ क्रमशः बनती-बिगड़ती रहती हैं, इसलिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

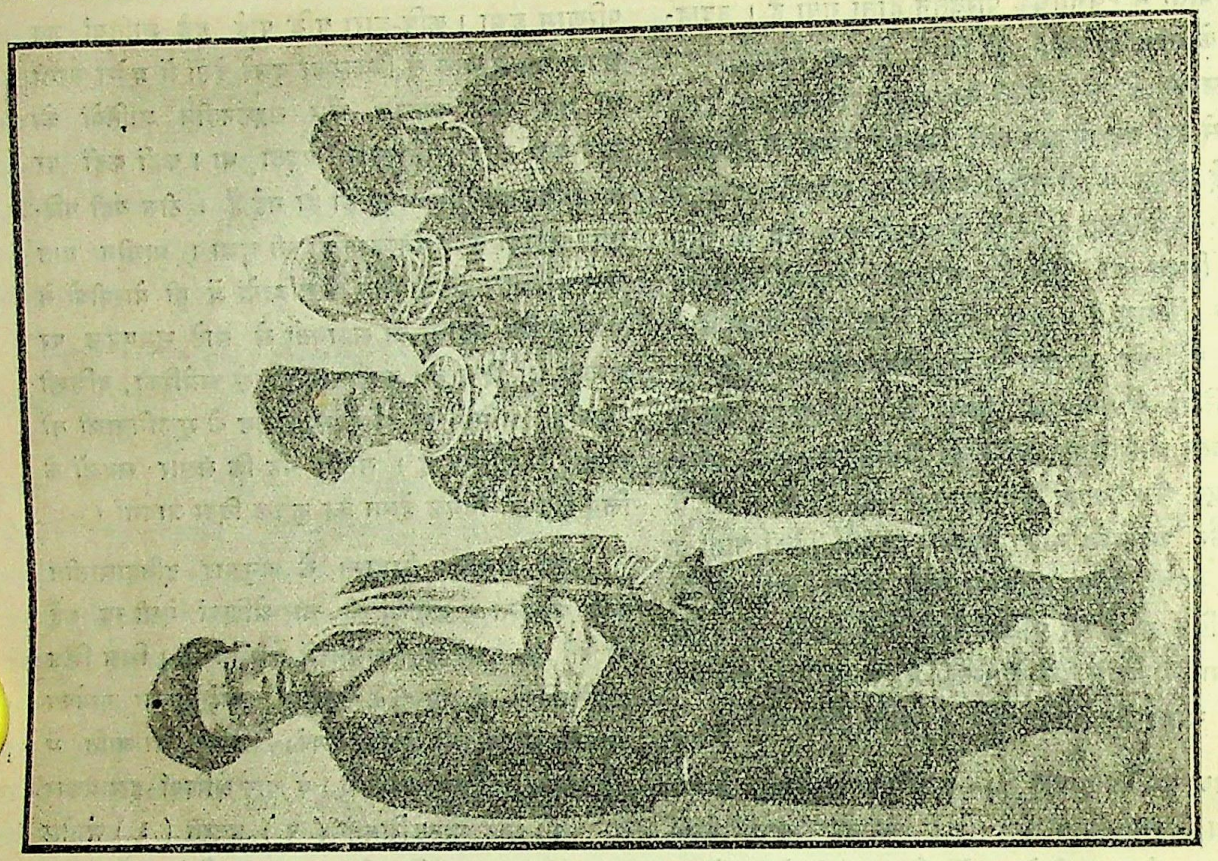

लाहू जाति के कुछ लोग । ये पहले स्वतन्त्र थे, परन्तु चीनियों ने इनके राज्य को अधिकृत कर लिया । अब ये लोग बर्मा में रहते हैं ।

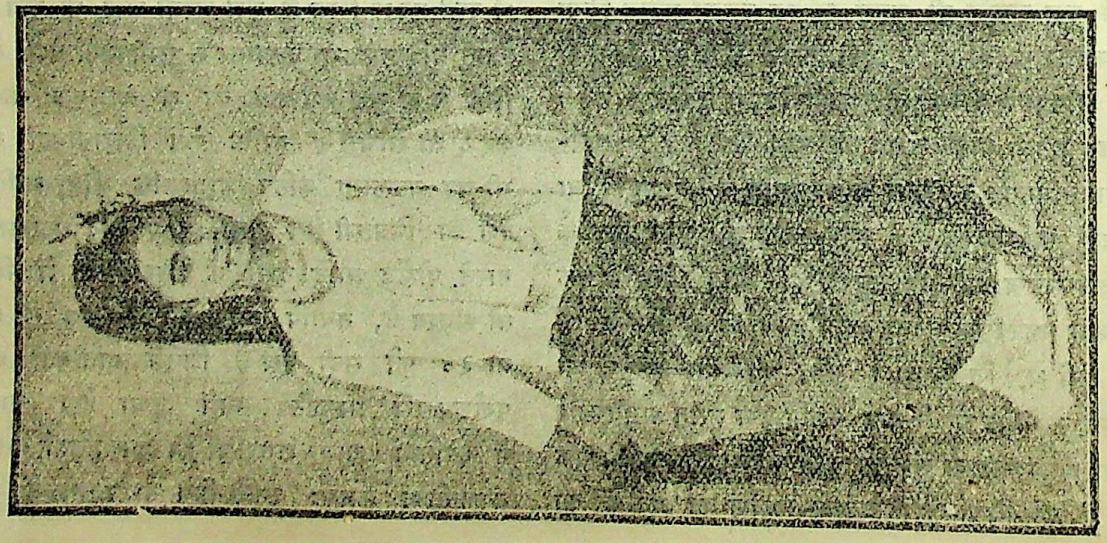

बर्मा की एक रमणी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूदान का दरवेश।

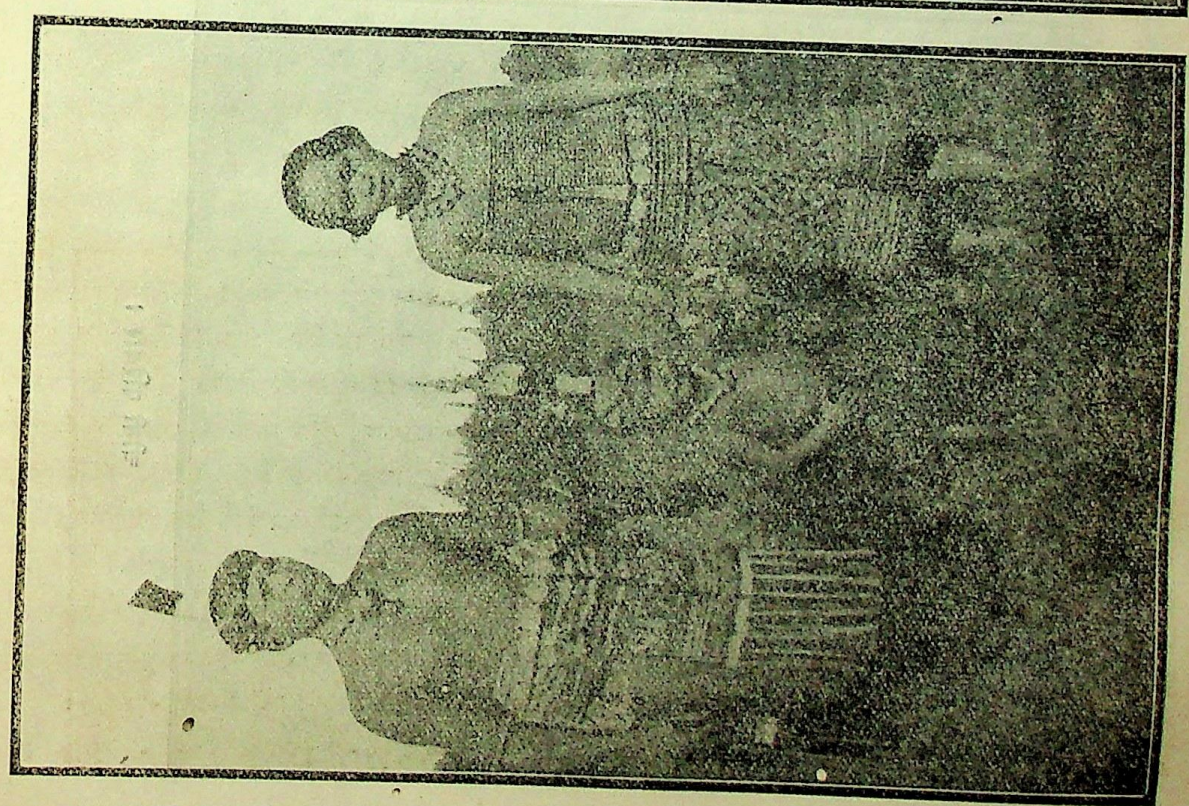

बोनिंयो की एक जङ्गली जाति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

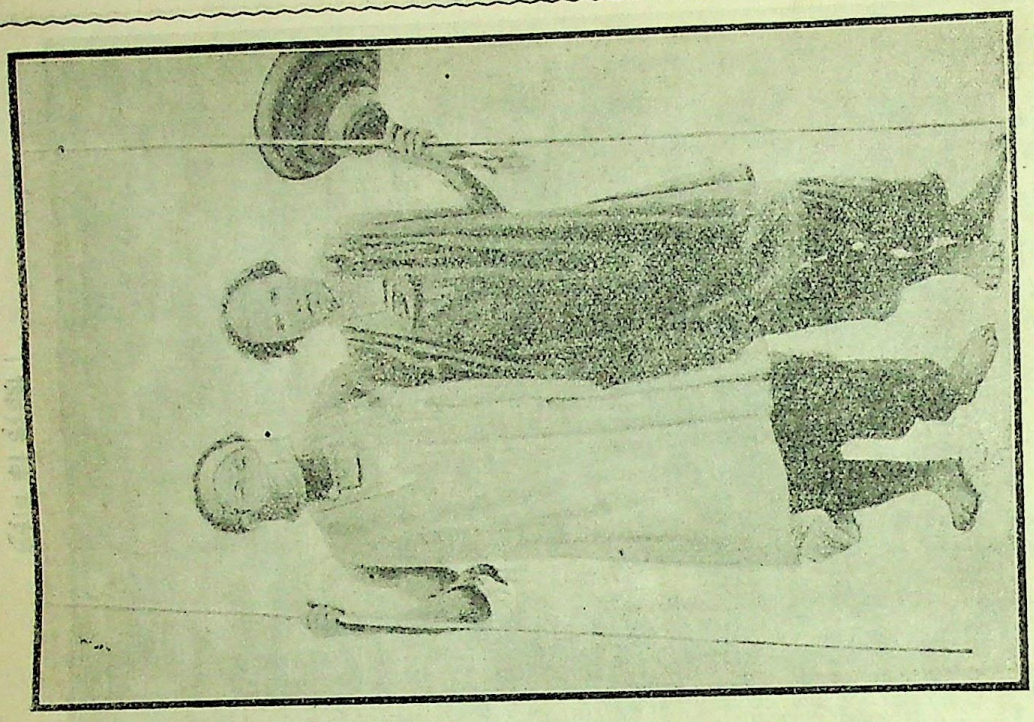

सहारा के निवासी—टिम्बकटू का प्राचीन शहर मध्य अफ्रीका की जातियों का प्रधान अड्डा है। मूर और टूरग जाति के दो मित्र हाथ पर हाथ रक्खे घूम रहे हैं।

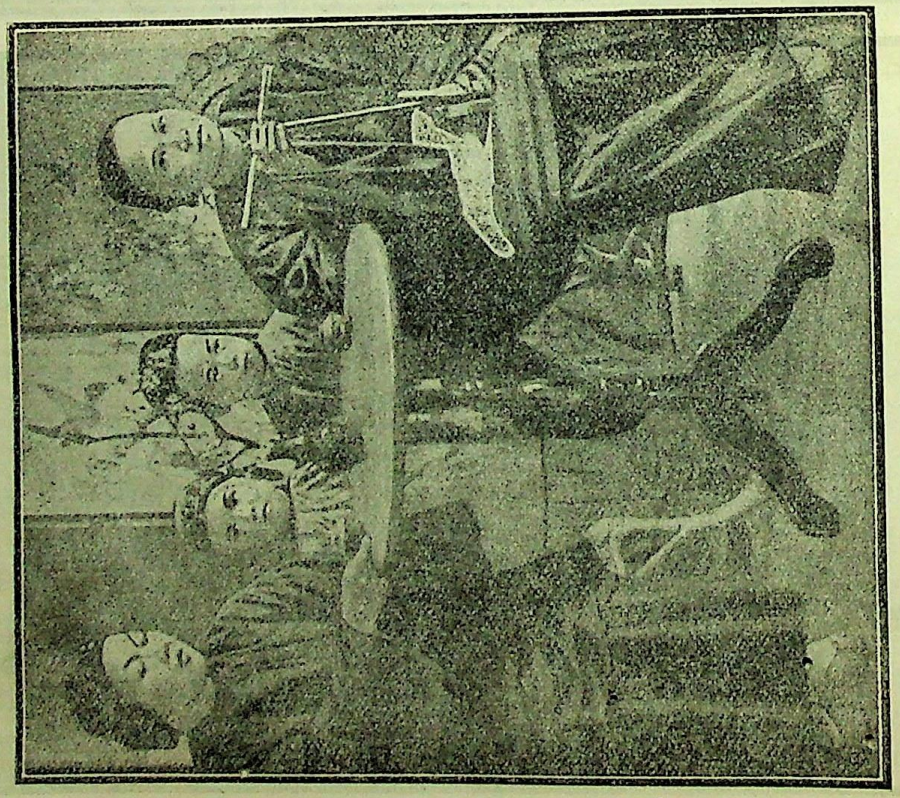

चीनी परिवार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

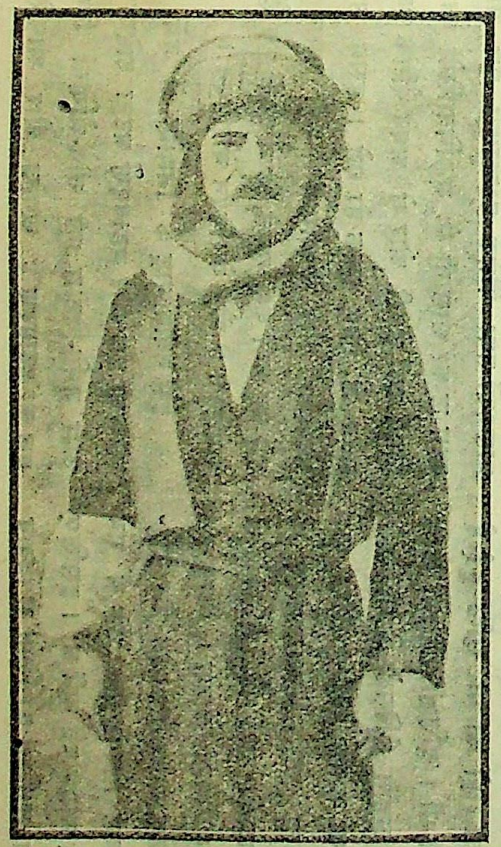

फ़ारस देश का निवासी, किन्तु यह विशुद्ध फ़ारसी नहीं है। चेहरे के चौड़ेपन और उभार में मङ्गोल जाति के लक्षण दिखाई देते हैं।

तुर्की-महिला।

उज्ज्वल रङ्ग, बढ़िया बाल और बड़ी बड़ी काली आँखें तुर्की महिला की विशेषताएँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनको हम अपूर्ण जातियाँ भी कह सकते हैं। सम्भव है कि कालान्तर में ये स्वतन्त्र उपजातियाँ बन जायँ या किसी अन्य स्वतन्त्र उपजाति में पूर्णरूप से मिल जायँ और अपना व्यक्तिगत अस्तित्व ही खो बैठें। कुछ ऐसी उपजातियाँ भी हैं जिनके शारीरिक गठन में केवल नाम-मात्र का अन्तर है। वे केवल चाल-ढाल, स्वभाव, भाषा या परम्परा के ही कारण भिन्न जातियाँ समझी जाती हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण हमें इँग्लैंड में मिल सकता है। लन्दन की किसी भी सड़क पर आपको अँगरेज़, आयरिश, स्काच और वेल्सवाले एक ही साथ घूमते मिलेंगे। होशियार से होशियार व्यक्ति के लिए यह जानने में कुछ कठिनाई होगी कि इनमें कौन अँगरेज़ है और कौन स्काच। पहनावे के ढङ्ग अथवा बोली के प्रकार से ही यह जाना जा सकता है। किन्तु इसकी पहचान बहुत ही सूक्ष्म है। बात यह है कि स्काच, वेल्सवासी या आयरिश में जातीयता का इतना विकास नहीं हुआ कि वे अँगरेज़ों से सर्वथा पृथक् दिखाई पड़ें। सम्भव है, एक दिन ये बिलकुल स्वतन्त्र राष्ट्र बन जायँ।

मनुष्यों की वृद्धि, आवागमन के साधनों के आविष्कार एवं सभ्यता के विकास के दो परिणाम होते हैं, या तो धीरे धीरे नवीन जातियों की सृष्टि होने लगती है या जातियों के परस्पर मिश्रण से वर्णसङ्कर जातियाँ बनने लगती हैं। दो-तीन शताब्दी पहले पश्चिमी योरप के निवासियों ने अमरीका के दोनों महाद्वीपों में प्रवेश किया था। वहाँ उक्त दोनों प्रकार के परिणाम सङ्घटित हुए हैं। अर्थात् नवीन जातियों अथवा राष्ट्रों की भी सृष्टि हुई है और वर्णसङ्कर जातियों की भी। दक्षिणी-पश्चिमी योरप से जो लोग वहाँ गये थे उन्होंने मेक्सिको के नीचेवाले प्रदेशों में प्रवेश किया था क्योंकि यही अमेरिका का सबसे उपजाऊ अंश है। किन्तु उत्तरी-पश्चिमी योरप के एँग्लोसेक्शन् लोग, जो बाद को वहाँ गये, मेक्सिको के ऊपर यूनाइटेड स्टेट्स और केनाडा में बसे। किन्तु इन दोनों के बसने में एक मौलिक अन्तर है। स्पेन और पोर्तुगाल के लोग तो वहाँ केवल सिपाहियाना ढङ्ग से गये थे। उनके साथ स्त्रियाँ और बाल-बच्चे नहीं थे। इसलिए विवश होकर विजेताओं को पराजितों की स्त्रियों से विवाह करना पड़ा और कालान्तर में इन्हीं लोगों की सन्तति से वहाँ एक वर्णसङ्कर जाति की सृष्टि हो गई। इस जाति में न तो पूर्णरूप से योरपीयों के गुण पाये जाते हैं और न अमरीका के मूल-निवासियों के ही।

किन्तु सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इँग्लैंड, फ्रांस आदि देशों के जो मनुष्य अमरीका के उत्तरी प्रदेशों में जा बसे थे उनका ढङ्ग बिलकुल दूसरा था। ये अपने साथ स्त्रियाँ और बालबच्चे भी लिवा लाये थे। प्रारम्भ में ये अमरीका के पूर्वी भागों में ठहरे थे, किन्तु तीन ही शताब्दियों के भीतर ये एटलाण्टिक महासागर के किनारे से लेकर दूसरी ओर शान्तमहासागर के किनारे तक फैल गये हैं। इन्होंने मूल-निवासियों से कोई सम्पर्क नहीं रक्खा, यहाँ तक कि उनको बिलकुल नेस्तनाबूद कर दिया। असल बात यह है कि स्त्री-समाज में जातीयता के भावों का सर्वोत्तम विकास होता है। उनकी उपस्थिति में मनुष्य के लिए जातीय भावों को त्याग कर दूसरी जातियों में मिल जाना बड़ा कठिन होता है। किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि स्त्रियों के अभाव में जातीयता के घोर से घोर अभिमानी भी अपने आपको नहीं सँभाल सकते। जाति-मर्यादा की भित्ति को लाँघ कर अन्य जाति में प्रवेश करना उनके लिए अनिवार्य सा हो जाता है। यही कारण है कि इन लोगों ने एक ऐसे बृहत् और शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण किया है जिसकी तुलना संसार के इतिहास में कठिनाई से मिलेगी।

एँग्लोसेक्शन लोगों ने जहाँ एक ओर स्त्रियों और बालबच्चों तथा पैत्रिक परम्पराओं एवं भाषा को अपने साथ लाकर आसानी से मूलनिवासियों का उच्छेदन कर दिया, वहाँ दूसरी ओर वे अपने पैत्रिक देश एवं राष्ट्र से सदैव के लिए पृथक् हो गये। इसमें सन्देह नहीं कि अमेरिकनों और योरपीयनों में बड़ी समानता है, तथापि हम यह नहीं कह सकते कि वे दोनों एक हैं। अमेरिकन अमेरिकन है और योरपियन योरपियन।

इस नवीन राष्ट्र के निर्माण में हमें जाति-विकास-सम्बन्धी एक और महत्त्वपूर्ण घटना दृष्टिगोचर होती है। ऊपर जाति-विकास की तीन-श्रेणियाँ दिखाई गई हैं। एक का उदाहरण है अँगरेज़ और आयरिश, दूसरी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योरपियन और यहूदी और तीसरी का काकेशियाई और हबशी। परिस्थिति के अनुसार इन तीनों श्रेणियों में सङ्कलन और विकलन का नियम कम रहा है। योरप में तो यह सम्भावना है कि कालान्तर में भी अँगरेज़ और उत्तर-पश्चिमी योरप की जातियाँ कभी न मिलें, सदैव स्वतन्त्र राष्ट्र बनी रहें, किन्तु यही लोग जब अमेरिका में पहुँचे तब एँग्लोसेक्शन जाति ने इनको अपने अन्तर्गत कर लेने में कोई आपत्ति न की। दोनों एक हो गये। पर उन जातियों के साथ एकता स्थापित करने में, जिनको हमने 'अपूर्ण' के नाम से अभिहित किया है, अधिक कठिनाई हुई। क्योंकि उनमें जातीयता का भाव कुछ अधिक जाग्रत हो चुका था। जैसे एँग्लोसेक्शन और इटेलियन माता-पिताओं की सन्तानें आज भी कई पीढ़ियों के बाद अलग दिखाई देती हैं। किन्तु जब मनुष्य-जाति की भिन्न भिन्न शखाओं के मिलाने की बात आती है तब कठिनाई हद से अधिक बढ़ जाती है। कोई कोई इसे असम्भव कहते हैं।

किसी किसी जाति में उपर्युक्त एकता और सौहार्द के भाव अधिक जाग्रत होते हैं, जिसके कारण वह अन्य जातियों को अपने अन्तर्भुक्त कर लेती और किसी किसी में कम। उदाहरण के लिए हम पोर्तुगीज़ एवं एँग्लोसेक्शन जाति को ले सकते हैं। प्राचीन समय में पोर्तुगीज़ लोगों ने अफ़रीका, भारतवर्ष, मलाया और चीन आदि कई देशों में अपने उपनिवेश बसाये थे। थोड़े ही दिनों में वे इस प्रकार वहाँ के मूल-निवासियों से मिल गये कि आज-कल कोई उन्हें पोर्तुगीज़ नहीं कह सकता किन्तु एँग्लोसेक्शन जाति ने यूनाइटेड स्टेट्स, केनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलेंड, दक्षिणी अफ्रीका आदि जिन जिन देशों में अपने उपनिवेश स्थापित किये, वहाँ वह सब प्रकार से मूल-निवासियों से पृथक् रही। फल यह हुआ कि या तो आदिम निवासियों का एक-दम मूलोच्छेदन ही हो गया या दोनों में वैमनस्य बढ़ता गया।

वास्तव में रक्त-मिलाप एक ऐसी समस्या है जो एक या दो दिन में नहीं हल हो सकती। इसके लिए शताब्दियों की ही नहीं, बरन युगों की आवश्यकता है और तिस पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि जातियों का इस प्रकार परस्पर शारीरिक मिलाप मनुष्य-जाति के लिए कहाँ तक श्रेयस्कर होगा। किन्तु उसकी गति रोकना भी महान् कठिन है। उदाहरण के लिए भूमध्यसागर की समीपवर्ती योरपीय जातियों में उत्तर-पश्चिमी योरपीय जातियों की अपेक्षा अफ़रीकीय जातियों के साथ अधिक सादृश्य है। ज्यों ज्यों हम उत्तर की ओर बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों यह सादृश्य घटता जाता है।

किन्तु इस शारीरिक समस्या का एक मानसिक पहलू भी है। मतलब यह कि किसी राष्ट्र में जातीयता का भाव अधिक जाग्रत एवं उग्र है और किसी में कम। जातीयता के भाव का अर्थ यह है कि राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को अपना साथी, मित्र अथवा भाई समझे और सदा उनकी सहायता करने के लिए तैयार रहे। वास्तव में जिसे हम राष्ट्रीयता कहते हैं वह इससे कोई पृथक् वस्तु नहीं। एक समय था जब योरप भी आस्ट्रेलिया की भाँति आदिम निवासियों की छोटी छोटी टुकड़ियों में विभक्त था। उस समय जो जातीय-भाव उन टुकड़ियों के भीतर काम करते थे वही भाव वर्तमान राष्ट्रों का सञ्चालन कर रहे हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि इन टुकड़ियों का घेरा छोटा होता था और राष्ट्रों का बड़ा है। वास्तव में बहुत सी छोटी छोटी टुकड़ियों के सम्मिलन से राष्ट्रों का निर्माण हुआ है। जर्मन-राष्ट्र की उत्पत्ति पर दृष्टि-पात करने से यह बात आसानी से समझ में आ सकती है। आधुनिक जर्मन-साम्राज्य में योरप की तीन उप-जातियों के मनुष्य सम्मिलित हैं—(१) सेल्प (२) ऐलपाइन और (३) नारडिक। इन लोगों को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए तरह तरह की युक्तियों से काम लिया गया। सबसे पहली बात एक भाषा का प्रचार करना था। राज्य की सीमाओं पर क़िले बनवाये गये और देश के बाहर माल भेजने के लिए प्रतिबन्ध लगाये गये। विदेशों के साथ युद्ध करने से भी इस काम में सहायता मिली। उनके साथ वैमनस्य बढ़ता गया और परस्पर सहानुभूति की वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त आधुनिक आविष्कारों—जैसे रेल, तार, सड़कें और टेलीफ़ोन—से लोगों में यातायात और व्यवहार बढ़ गया। जिस यात्रा में पहले सात दिन लगते थे वह अब सात घंटे में पूरी होने लगी। फल यह हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि साम्राज्य के अन्तर्गत सभी लोगों में आत्मीयता बढ़ने लगी। समाचारपत्र, विश्वविद्यालय, राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों के प्रतिपादन और प्रचार ने जर्मनी को थोड़े ही दिनों में एक सुदृढ़ और शक्तिसम्पन्न राष्ट्र बना डाला। यथार्थ में संसार के और विशेषकर योरप के प्रत्येक राष्ट्र की रचना इसी प्रकार हुई है।

राष्ट्रों का निर्माण संसार के आधुनिक इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। इससे मनुष्य-जाति का बड़ा हित और मानवीय सभ्यता का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। किन्तु प्रकृति का नियम निरन्तर उत्तरोत्तर उन्नति करना है। सम्पूर्ण प्रकृति निरन्तर विकास की ओर अग्रसर होती रहती है। यहाँ पर जो मनुष्य या जो संस्था एक स्थान पर खड़ी होना चाहती है अथवा आगे बढ़ने से इनकार करती है वही नीचे ढकेल दी जाती है। आदिम जाति की टुकड़ियों में भी परस्पर एक दूसरे से उतना ही प्रेम था जितना कि आज-कल किसी सभ्य राष्ट्र के नागरिकों में देखा जाता है, किन्तु उनमें एक दुर्गुण यह था कि वे विदेशी और अपरिचित व्यक्तियों को अपना शत्रु समझते थे। इतना ही नहीं, यदि उनका वश चलता था तो वे उनको मारने या भगाने में भी सङ्कोच नहीं करते थे। प्रश्न यह कि इस विषय में राष्ट्रों की क्या अवस्था है। वे दूसरे राष्ट्रों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। क्या जर्मनों को जापानियों से उतना ही सौहार्द है जितना वे अपने देशवासियों के साथ करते हैं। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को अपना मित्र समझता है या शत्रु। इसका उत्तर हमारी समझ में इस समय नकार में ही दिया जा सकता है।

यही कारण है कि हमें योरप के वर्तमान राजनैतिक

दक्षिण अमेरिका की एक प्राचीन जाति के वंशधर।

क्षेत्र में दो प्रकार के आन्दोलन दिखाई दे रहे हैं। एक के द्वारा छोटे छोटे राज्यों का एक बृहत् साम्राज्य में सङ्कलन हो रहा है और दूसरे के द्वारा बृहत् साम्राज्यों का पुनः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः छोटे छोटे राज्यों में विकलन हो रहा है। विकलन होने का कारण केवल जाति-पार्थक्य ही नहीं। भिन्न भिन्न स्थानों में रहने और स्वार्थों में सङ्घर्ष होने के कारण एक ही साम्राज्य के अङ्ग कालान्तर में पृथक् पृथक् हो जाते हैं। यूनाइटेड स्टेट्स के निवासी हैं तो ब्रिटिश ही, किन्तु आख़िर में मातृभूमि से पृथक् हो ही गये। नारवे और स्वीडेन के निवासी भी एक ही जाति के हैं। इसलिए इनको एक ही राज्य के अन्तर्गत रहने से लाभ ही हो सकता था। क्योंकि एकता में बहुत गुण हैं। किन्तु उनकी एकता केवल एक शताब्दी तक चली। स्वार्थों के सङ्घर्ष से विवश होकर उनको पृथक् होना पड़ा। प्राकृतिक जगत् में सङ्कलन और विकलन का नियम सर्वत्र काम में आ रहा है। जब तक किसी देश में इतने मनुष्य नहीं हो जाते जिनका निर्वाह उस देश में आसानी से हो सके तब तक उस देश के निवासियों में सौहार्द बढ़ता रहता है, किन्तु जिस समय मनुष्य-संख्या उस सीमा का उल्लङ्घन कर जाती है उस समय स्वतः मनुष्यों के हृदय में नैसर्गिक शक्तियों-द्वारा ऐसी प्रेरणा होती है कि यदि कुछ मनुष्य यहाँ से हट जायँ तो अच्छा हो। मनुष्य-संख्या की गति को रोकने अथवा उत्पत्ति के साधनों में वृद्धि करने की चेष्टा करना दूसरी बात है। किन्तु यदि मान भी लिया जाय कि अतिरिक्त मनुष्यों को एक दूसरा उपनिवेश बसाना ही पड़ा तो क्या यह मनुष्योचित नहीं है कि उनके साथ वही बर्ताव किया जाय जो मनुष्य अपने देशवासियों के साथ करना उचित समझते हैं। संसार में आज-कल जो विभिन्न राष्ट्र दिखाई दे रहे हैं, क्या वे एक ही आदिम जाति से नहीं निकले हुए हैं? फिर क्या हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार को किसी प्रकार सभ्यतापूर्ण कह सकते हैं? मान भी लिया जाय कि मानवीय सभ्यता के विकास के लिए मनुष्य-जाति का इस प्रकार अनेक राष्ट्रों में बँटना आवश्यक एवं अनिवार्य था, किन्तु यह कदापि नहीं माना जा सकता है कि राष्ट्रों के बीच परस्पर द्वेष-बुद्धि भी किसी प्रकार मानवीय सभ्यता के लिए हितकर सिद्ध हो सकती है। असल बात यह है कि जिस समय राष्ट्रीय प्रेम की उग्रता का अर्थ विदेशियों से द्वेष करना हो जाता है उसी समय प्रतिघातस्वरूप नैसर्गिक नियमों के द्वारा उस राष्ट्र में विकलन प्रारम्भ हो जाता है। वास्तव में यह हमारे लिए एक नैसर्गिक चेतावनी है। यदि हम इसकी ओर ध्यान नहीं देते तो हम कदापि उन्नति नहीं कर सकते। उन्नति न करने का नाम ही मृत्यु है। सच पूछा जाय तो संसार के वर्तमान नेता आधुनिक सभ्यता की चाहे जितनी डींग हाँके, अभी तक हम सभ्य कहलाने के अधिकारी नहीं। विकास-मार्ग में जो स्थान आदिम जङ्गलियों को दिया जायगा, उन्हीं की पङ्क्ति में हमको भी बैठना पड़ेगा। हम किसी उच्च श्रेणी का दावा नहीं कर सकते। आख़िर जङ्गलीपन इतना निन्द्य क्यों है? क्योंकि उसका केन्द्र और परिधि व्यक्तिगत स्वार्थ से बाहर नहीं जाती। आदिम निवासियों में भी, जो गुफाओं में रहते थे, हृदय था और हममें भी हृदय है। अन्तर केवल इतना है कि उनका हृदय केवल अपनी व्यक्तिगत चिन्ता में तल्लीन रहता था। आत्मरक्षा प्रकृति का सबसे पहला नियम है। जंगली मनुष्य उससे ऊपर नहीं उठ सका था। उसे अपने शरीर की रक्षा और एक-मात्र अपनी इच्छाओं की पूर्ति का ध्यान रहता था। किन्तु जब उसने किसी स्त्री से सम्बन्ध जोड़ लिया और उसके बाल-बच्चे हुए तब क्रमशः उसका हृदय फैलने लगा। उसका विकास होने लगा। वह अपनी स्त्री और बालबच्चों की रक्षा के लिए उसी प्रकार प्राण न्यौछावर करने के लिए तत्पर होने लगा जिस प्रकार स्वयं अपने शरीर के लिए होता था। धीरे धीरे उसके बाल-बच्चों ने भी विवाह किया, तब उसकी सहानुभूति-परिधि कुछ और फैल गई। उसका हृदय अपने परिवार के हित के लिए उसी प्रकार तड़पने लगा, जिस प्रकार कभी अपने दैहिक स्वार्थ के लिए व्यग्र होता था। परिवार के घेरे से निकल कर उसकी सहानुभूति ने जाति-प्रेम का रूप धारण किया और जाति-प्रेम के बाद राष्ट्र-प्रेम। राष्ट्र-प्रेम के बाद साम्राज्य-प्रेम की दुहाई दी जाने लगी। किन्तु देश-प्रेम या साम्राज्य-प्रेम अन्तिम पड़ाव नहीं है। यह तो केवल बीच का स्टेशन है। यदि इसी को हम अपना अन्तिम लक्ष्य बना लेंगे तो उससे उसी प्रकार की दूषित हवायें निकलेंगी जो जङ्गलियों के व्यक्तिवाद से निकलती थीं। इनमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है।

जब तक हम अपने अन्तिम लक्ष्य पर नहीं पहुँचते तब तक हम सभ्य कहलाने के अधिकारी नहीं। हमको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीयता से आगे बढ़ना होगा। क्योंकि हृदय का अन्तिम आधार मनुष्य-जाति है। जब तक आपका हृदय इतना विशाल नहीं हो जाता कि आप सारे विश्व के साथ एकाकार हो जायँ तब तक आप उसे सत्य और न्याय की कसौटी नहीं मान सकते। अन्तिम स्थान पर पहुँच कर ही हम कह सकते हैं कि वास्तविक न्याय क्या है, चिरन्तन सत्य किसे कहते हैं। जिस दर्जे तक हम मनुष्यों के प्रति चाहे वे कहीं के निवासी हों, अपना कर्तव्यपालन के लिए तैयार हैं, उसी दर्जे तक हम सभ्य हैं। जिस दर्जे तक अपने और पराये का हमारा विचार हमारे कर्तव्य-निर्धारण पर अपना प्रभाव डालता है उसी दर्जे तक हम असभ्य और जङ्गली हैं।

मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य मनुष्य-जाति है। आर्य, काकेशियाई, मंगोल, अमेरिकन, हबशी आदि सब मध्यवर्ती स्टेशनें हैं। प्रकृति तो निरन्तर हमको आगे बढ़ाने की चेष्टा करती रहती है। इस समय संसार की सभी घटनायें ही इस बात की सूचना दे रही हैं। संसार के विद्वान् भी एक-स्वर से यह घोषणा कर रहे हैं कि यदि संसार में शान्ति हो सकती है तो उसका केवल एक उपाय है। वह यह कि प्रत्येक राष्ट्र ने सत्य, न्याय, समता और सहिष्णुता की जो परिभाषा अपने देशवासियों के लिए नियत की है, ठीक उसी के अनुसार उसको अन्य राष्ट्रों के साथ भी व्यवहार करना चाहिए। मनुष्य-जाति की शारीरिक एकता चाहे हो और चाहे कभी न हो, किन्तु अब उसकी मानसिक एकता में विलम्ब करने का अवसर नहीं है। पश्चिमी जन-समुदाय और राष्ट्रवाद कब इसके लिए तैयार होगा, यह नहीं कहा जा सकता, किन्तु भारतवर्ष को तो कम से कम इसके लिए कटिबद्ध ही हो जाना चाहिए। और वह उसमें सफल भी होगा, क्योंकि यह उसके लिए कोई नई बात नहीं है।

दीनदयालु श्रीवास्तव

विचित्र विचार।

(१)

अहो! आज क्यों सभ्य-सभा में
हम असभ्य कहलाते हैं?
कुछ न समझ पड़ता है क्यों हम
कहीं न आदर पाते हैं।
हमने मन में इसका कारण
यही एक ठहराया है,
हुआ मति-भ्रम है लोगों को,
सबमें मोह समाया है।

(२)

यद्यपि हम मन से मलीन हैं,
लीन पाप में रहते हैं।
पर अकुलीन नहीं, कुलीन ही
क्या न हमें सब कहते हैं?
जो काले उरवाले बादल
ओलों को बरसाते हैं,
कौन जानता नहीं कि वे भी
सदा जलद कहलाते हैं।

(३)

क्या चिन्ता है जो हमने सब
अपना नाम जमाया है?
उसके बदले में क्या हमने
अपयश नहीं कमाया है?
बतलाइए हुई क्या इससे
कोई हानि हमारी है,
क्या न हमारी चर्चा जग में
नित्य हो रही भारी है?

(४)

हाँ, यह सच है शेष न हममें
अब रह गई सचाई है?
पर क्या हमने सीख नहीं ली
अच्छी तरह झुठाई है?
अदालतों में यह हरदम ही
काम हमारे आती है,
झूँठे को सच्चा सच्चे को
झूठा कर दिखलाती है।

(५)

हुई हमारी हानि भला क्या
जो खो गई बड़ाई है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस की अस्थिरता तो जग में
सबको ही दुखदायी है।
और एक के बदले हमने
अब दो चीजें पाई हैं,
क्या न खुटाई और छुटाई
हममें खूब समाई हैं ?

(६)

हमें अशिक्षित समझ सभी जन
हँसी हमारी करते हैं,
अहो ! हमारी कुलीनता पर
ध्यान नहीं वे धरते हैं।
विद्या को तो मेहनत करके
सभी लोग पढ़ लेते हैं,
पर कुलीनता किसी किसी को
जगदीश्वर ही देते हैं।

(७)

गई सरलता और विमलता
किन्तु कुटिलता आई है,
खोकर सज्जनता को हमने
दुर्जनता तो पाई है।
नहीं सभ्यता है, पर हममें
उसकी सभी बुराई है,
नहीं जुन्हाई रही शेष, पर
घोर निशा तो छाई है।

(८)

लुप्त पुरानी सभी कलायें
अब होगईं हमारी हैं,
पर कितनी ही नई कलायें,
सीखी हमने न्यारी हैं।
हमें खूब आई मक्कारी
बदकारी ऐयारी है,
चटुल चाटुकारी में हमको
हुई निपुणता भारी है।

(९)

विभव-हीन हो गये, किन्तु हम
विभव-गर्व से अकड़े हैं;
घोड़ा गया, मगर हम उसकी
पूँछ अभी तक पकड़े हैं।
अपने हाथ-पैर हम रहते
स्वयं सदा ही जकड़े हैं,
हैं मनुष्य, पर बने हुए हम
निरे काठ के लकड़े हैं।

(१०)

हम अवश्य छल कपट आदि को
सदा काम में लाते हैं,
कभी कभी निज देश-भाइयों
का भी रुधिर बहाते हैं।
हम सतीत्व-रूपी अमूल्य धन
अबलाओं का हरते हैं,
पर सदैव हम धर्म-हेतु ही
ये अधर्म सब करते हैं।

(११)

भला पूर्वपुरुषों की हमसे
तुलना हो सकती कैसे ?
रहती है संस्थिति जब जैसी
होते हैं नर तब तैसे।
उनकी और हमारी बातें
बिलकुल न्यारी न्यारी हैं,
वे थे धीर वीर बलधारी
क्रूर कुटिल हम भारी हैं।

(१२)

मरे वीरता प्राण-नाशिनी,
वह किसको सुखकारी है ?
हमको अपनी कादरता ही
सबसे बढ़ कर प्यारी है।
अहो ! घोर अपमान सहा हम
मान गँवा कर सहते हैं,
किन्तु हमारे अतिशय प्यारे
प्राण बचे तो रहते हैं।

(१३)

यद्यपि शक्तिमान् लोगों से
हम मुँह सदा छिपाते हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु दीन बल-हीन जनों को
हम भी खूब सताते हैं।
हाँ, यह सच है हम लड़ने को
नहीं समर में जाते हैं,
पर अपने आश्रित लोगों पर
हम शूरता दिखाते हैं।

(१४)

जीवन के दुर्दान्त समर में
नहीं विजय हम पाते हैं,
पर विशेष कौशल हम गृह के
कलहों में दिखलाते हैं।
क्या चिन्ता है जो न और सब
मान हमारा करते हैं?
यह क्या कम है जो हमसे सब
घरवाले तो डरते हैं।

(१५)

यद्यपि अपने शौर्य आदि गुण
हमने सब खो डाले हैं,
पर तो भी क्या हम न जगत् में
सबसे विपट निराले हैं?
गुण-विहीन होने पर कोई
क्या निज गौरव खोता है?
अखिल चराचर का स्वामी भी
निर्गुण ही तो होता है।

(१६)

यह क्या थोड़ी देश-भक्ति हम
हर-दम ही दिखलाते हैं?
जो न छोड़ निज देश कभी भी
और कहीं हम जाते हैं।
यह क्या कम उपकार लोक का
हम सदैव ही करते हैं?
लेते हैं हम जन्म उसी में
और उसी में मरते हैं।

(१७)

इससे क्या मतलब है कैसे
हम धन सदा कमाते हैं?
यही मान लो हम औरों का
द्रव्य लूट कर लाते हैं।
पर क्या हम भी नहीं देश का
वैभव सदा बढ़ाते हैं?
और साथ ही इस दुनिया में
सुख से मौज उड़ाते हैं।

(१८)

हम स्व-देश के लिए कभी भी
करते हैं कुछ त्याग नहीं,
यह भी सच है हमें तनिक भी
उस पर है अनुराग नहीं।
पर हम भी अवश्य ही इतना
भला देश का करते हैं,
यद्यपि उसके लिए नहीं पर
सदा उसी में मरते हैं।

गोपालशरणसिंह

---

२१ अगस्त १९०३।

(१) मिनर्वा लाज
२ जून १९०३

माई डियर लालचंद!

ब तक लौटोगे? मेरा जी तो अभी से घबराने लगा। जब तक तुम यहाँ थे तब तक मैं तुम्हें न समझ सका था। परन्तु अब पता लगा कि तुम्हारे और हरदयाल के बिना जीवन नीरस होगया है, जैसे बिमक-मिर्च के बिना भाजी बेस्वाद हो जाती है। अब न सबेरे घूमने का आनन्द आता है, न साँझ को बेटिङ्ग का। सारा दिन चित्त उदास रहता है, जैसे कोई क़ीमती वस्तु गुम हो गई हो। पता नहीं यह लम्बा समय कैसे व्यतीत होगा। मेरी मानो तो जल्द वापस आ जाओ, फिर कभी अवकाश के समय चलेंगे। अब इस समय अकेले में तुम्हें कराची की सैर का क्या आनन्द आता होगा।

एक समाचार लिखता हूँ, निस्सन्देह पढ़कर आनन्द से उछल पड़ोगे। राय साहब हीरालाल के यहाँ मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सगाई होगई है। २१ अगस्त को ब्याह हो जाना सम्भव है। तुम्हें इसका विश्वास ही न आवे और मैं स्वयं समझता था कि ऐसा होना असम्भव है। तुम्हें स्मरण होगा, हमारे बी० ए० के कोर्स में जो संस्कृत का नाटक पढ़ाया जाता था उसमें एक स्थल पर विदूषक कहता है कि मैं प्रायः यही सोचता रहता हूँ कि आकाश का चन्द्रमा मुझे किस प्रकार मिल सकता है? ठीक यही अवस्था मेरी है। बरन मेरे लिए कौशल्या चन्द्रमा से भी बढ़ कर है। मैंने उसे एक-दो ही बार देखा है, परन्तु मूर्ति हृदय-पट पर अङ्कित हो गई है, वह ऐसी सुन्दर और शर्मीली है कि देख कर आँखें प्रसन्न हो जाती हैं। और इतना ही नहीं, पढ़ी लिखी है। आज सारे जेहलम में उसके ज़ोड़ की पढ़ी-लिखी कोई लड़की नहीं। मैं कब सोच सकता था कि मेरा भी ऐसा सौभाग्य होगा। सारा शहर इस पर विस्मित हो रहा है। सुना करते थे कि परमात्मा जब देने पर आता है, तब छप्पर फाड़ कर देता है। अब इस पर विश्वास होगया।

मैं राय साहब से मिला था। मुझे देख कर बहुत प्रसन्न हुए। मैंने साफ़ साफ़ कह दिया कि मैं बहुत ही निर्धन हूँ। इस सम्बन्ध के योग्य नहीं। परन्तु उन्होंने केवल एक बार सिर हिला दिया। फिर बोले, तुम इस बात की कुछ भी चिन्ता न करो कि तुम्हारे पास रुपया नहीं है। मैं तुम्हारी योग्यता और भलमन्सी पर लट्टू हूँ। और मुझे पूरा भरोसा है कि तुम कौशल्या को प्रसन्न रख सकोगे। उन्होंने इशारे से यह भी कह दिया है कि मैं अब तुम्हें वकालत न करने दूँगा। ब्याह के पश्चात् कोई व्यापार आरम्भ कर दो। लाला धनपतराय वकील को उन्होंने मेरी ओर से प्रबन्ध करने के लिए कहा है। सुना है, उनको कुछ रुपया भी दिया है। तुम जानते हो, मेरे माता-पिता तो कोई हैं ही नहीं, जो प्रबन्ध करें।

मैं चाहता हूँ कि तुम पत्र देखते ही जेहलम पहुँच जाओ। क्या समुद्र की सैर मेरी बातचीत से अधिक सुख देनेवाली है?

तुम्हारा शुभचिन्तक—
किशोरचन्द

(२)

बंदर रोड, कराची
६ जून १९०३

ज्योतिषीजी महाराज!

प्रणाम! रात को लालचन्द के नाम आया हुआ किशोरचन्द का पत्र देख कर तन-मन को आग सी लग गई। राय साहब की बुद्धि पर क्या पर्दा पड़ गया, जो किशोरचन्द के साथ अपनी लड़की का नाता करने को तैयार होगये। इतना तो आप जानते ही हैं कि वे कौशल्या के लिए लड़का बहुत देर से खोज रहे हैं। परन्तु अन्त में दो लड़कों को उन्होंने चुना, जिनमें से एक मैं और दूसरा किशोरचन्द है। किशोरचन्द इस बात को जानता तक न था, परन्तु मैं प्रायः टोह लेता रहता था। पिछले सप्ताह तक यही आशा थी कि इस दौड़ में जीत मेरी रहेगी। परन्तु अब एकाएक भाग्य ने पाँसा पलट दिया, और किशोरचन्द ने इस मैदान में भी मुझे हरा दिया। मैं स्कूल और कालेज में सदैव उससे दबता रहता था। परन्तु यह पता न था कि प्रेम की परीक्षा में भी वह मुझसे आगे निकल जायगा। तथापि मैं इस पराजय को सहज ही में स्वीकार नहीं करूँगा। मैं इसके लिए अन्तिम श्वास तक लड़ूँगा।

किशोरचन्द का पत्र पढ़ कर मुझे ऐसी चोट लगी है जैसे किसी के सारे जीवन की कमाई लुट गई हो। सारी रात नींद नहीं आई। अब आप ही का आश्रय है। यदि कुछ करें तो आशा हो सकती है, नहीं तो चारों ओर अथाह अन्धकार है। मैं आपसे केवल यही चाहता हूँ कि किशोर-चन्द जब आपसे मिलने आये तो उससे कह दें, कि २१ अगस्त बहुत ही बुरा दिन है। उस दिन विवाह न होना चाहिए। किशोरचन्द बहमी मनुष्य है, राय साहब से अवश्य कहेगा कि इस तारीख़ पर विवाह नहीं होना चाहिए। राय साहब स्वतन्त्र विचार के मनुष्य हैं। वे इस बात की कभी परवा नहीं करेंगे। इससे आगे जो कुछ होगा, मैं समझ लूँगा।

सौ रुपये का नोट आपकी भेंट भेजता हूँ, स्वीकार कीजिएगा।

आपका दास—
हरदयाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

मिनर्वा लाज, जेहलम
१६ जून १९०३

माई डियर हरदयाल !

मैं बहुत कठिनाई में पड़ गया हूँ। राय साहब ने ब्याह की तारीख़ २१ अगस्त नियत की है। परन्तु ज्योतिषी हरदत्तसिंहजी कहते हैं कि यह दिन बड़ा अशुभ है। और यदि इस दिन ब्याह होगया तो तुममें से किसी को भी सुख प्राप्त न होगा। मैंने बहुत प्रयत्न किया है कि राय साहब इस तारीख़ को बदल दें। परन्तु वे किसी प्रकार भी नहीं मानते। आज़ाद ख़याल के आदमी हैं। वे इस बात की क्या परवा करते हैं कि मेरे हृदय पर ज्योतिषी की बातों का क्या प्रभाव हुआ है ? यदि उनसे कह दूँ कि मेरी शङ्का का कारण ज्योतिषी की भविष्य-वाणी है तो निस्सन्देह उनका प्रेम घृणा में बदल जायगा। तुम्हारा विचार सत्य है कि अब राय साहब को मुट्ठी में करने का एक ही उपाय है कि मैं प्रत्येक काम उन्हीं के इच्छानुसार करूँ। परन्तु यह कैसे हो सकता है। उनकी इच्छा है कि ब्याह २१ अगस्त को अवश्य हो जाय। परन्तु मेरे कान में कोई कह रहा है कि यदि उस दिन ब्याह हो गया तो मेरे लिए यह भारी सङ्कट होगा और कौशल्या की भी कुशल न होगी। अब तुम्हीं बताओ कि मैं क्या करूँ। मुझे तो कल्पना भी न थी कि इस विवाह में कोई बाधा आ पड़ेगी। परन्तु अब पता लगा कि यह मेरी भूल थी। तुम जानते हो, फूल तक पहुँचने के लिए काँटों में हाथ डालना ही पड़ता है। प्रकृति के नियम का विरोध करने की किसमें सामर्थ्य है ?

अब लिखो, कब तक वापस आओगे। तुम्हारे और लालचन्द के बिना जीवन दूभर हो गया है। लालचन्द ने मुझे लिखा है कि वह अभी तीन चार मास तक न आ सकेगा। क्या यह हँसी तो नहीं ? तुम तो शीघ्र लौट सकोगे न ? जिस प्रकार हो सके, तुम्हें शीघ्र ही यहाँ पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए। तुम्हारे यहाँ आ जाने से मेरी चिन्ता आधी रह जायगी और हर्ष दुगुना हो जायगा। मेरे पत्र का उत्तर वापसी डाक से दो कि कब तक आ सकोगे। मिस्टर लालचन्द से मेरा नमस्ते कहना और यह पत्र उन्हें दिखा देना। और सब प्रकार से कुशल है।

तुम्हारा शुभचिन्तक—
किशोरचन्द।

(४)

टैम्पल रोड, लाहौर
८ जुलाई १९०३

चिरञ्जीव हरदयाल ! परमात्मा तुम्हें प्रसन्न रक्खे !

पत्र तुम्हारा मिला, पढ़ कर आश्चर्य हुआ और आँखों के सामने से पर्दा सा हट गया। मुझे स्वप्न में भी यह विचार न था कि किशोरचन्द में ये गुण भी होंगे। तुम जानते हो, चेहरे-मोहरे से तो वह ऐसा भलामानस और भोलाभाला प्रतीत होता है, मानो मुँह में दाँत ही नहीं। मुझसे कई बार मिला है, परन्तु हर बार मुझ पर नया प्रभाव छोड़ कर गया है। तुम जानते हो, मैं तो अपने भाग्य को सराह रहा था कि ऐसा सच्चरित्र और भलामानस लड़का हाथ आ गया। परन्तु तुम्हारे पत्र से पता लगा कि वह कितना भयानक मनुष्य है। तुम लिखते हो कि यह सूचना मित्रता के नियम के विरुद्ध है। बेटा ! संसार में मित्रता से बढ़ कर भी एक वस्तु है। और वह वस्तु सचाई है, जिसे किसी समय और किसी अवस्था में हाथ से न जाने देना चाहिए। तुमने यह सूचना देकर मुझ पर ऐसा उपकार किया है जिसका बदला मैं किसी प्रकार भी नहीं दे सकता। तुमने मेरी लड़की का जीवन बचा लिया है। तुम जानते हो, मैंने उसे कैसे लाड़-प्यार के साथ पाला है। तो क्या अब उसकी हत्या होती देख कर तुम्हें कष्ट न होता ?

अब मैं तुमसे एक बात खोल कर कह देना चाहता हूँ। तुम जानते हो, मेरे पास रुपये की कमी नहीं। मैं तो केवल सच्चरित्र लड़का चाहता हूँ, जिसके साथ मेरी लड़की का जीवन सुख से कट जाय। जेहलम में लड़कों की कमी नहीं। परन्तु मैंने केवल दो लड़कों को पसन्द किया था। यदि इसमें कुछ दोष है तो मैं बेटी का ब्याह दूसरे के साथ कर दूँगा। वह दूसरा लड़का कौन है ? यह तो तुम भले प्रकार जानते होगे। मेरा तात्पर्य्य तुम्हीं से है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चिन्त रहो, तुम्हारे पत्र का पता किशोरचन्द को नहीं होगा। मैं उससे कोई बात भी नहीं कहूँगा। इसकी आवश्यकता ही क्या है? यदि २१ अगस्त का व्याह वह नहीं मानता और इसे अस्वीकार करने का समुचित कारण नहीं बतलाता तो स्पष्ट बात है कि कारण ऐसा है, जो कहने के योग्य नहीं। तुम जानते हो, मेरे स्वतन्त्र विचारों के कारण मेरी बहुत निन्दा हो चुकी है। अब इस आयु में थोड़ा सा बुरा-भला और सुन लूँगा। बहुत हुआ सम्बन्धी लोग दो-चार दिन गुन गुन करते रहेंगे। कर लें। मेरा इससे क्या बिगड़ जायगा। परन्तु कौशल्या इसे सुनकर बहुत व्याकुल हुई है। वह कहती है, मैं अब किसी दूसरे पुरुष से व्याह न करूँगी। परन्तु तुम जानते हो कि मैं उसकी रत्ती भर भी परवा नहीं करूँगा, और उसकी एक-दो दिन की प्रसन्नता के लिए उसकी सारी आयु नष्ट न होने दूँगा। मैं तुम्हारे पिता से मिल चुका हूँ। वह इस नाते को स्वीकार करते हैं। अब तुमको उचित है कि १० अगस्त तक जेहलम पहुँच जाओ। मैं आवश्यक काम से यहाँ आया था। कल जेहलम चला जाऊँगा। तुम्हारा उत्तर वहीं आना चाहिए।

हितचिन्तक—
हीरालाल।

(५)

मिनर्वा लाज, जेहलम
२५ जुलाई १९०३ ई०

माई डियर हरदयाल!

काम बिगड़ रहा है। राय साहब की प्रकृति में आश्चर्य्यजनक अन्तर आ गया है। पहले मुझे देखकर आनन्द से उछल पड़ते थे, परन्तु अब जाता हूँ तो मुँह फेर लेते हैं, जैसे मुझसे अप्रसन्न हों। पता नहीं, इस अप्रसन्नता का कारण क्या है। कल मैंने उनसे साफ़ साफ़ कह दिया है कि २१ अगस्त को व्याह कदाचित् नहीं हो सकेगा। इसे सुनकर उनका चेहरा इस प्रकार तमतमा उठा जैसे गर्म किया हुआ ताँबा हो। कुछ देर चुप रहे। फिर एकाएक कुर्सी से उठ खड़े हुए और यह कहते कहते कमरे से निकल गये कि यदि २१ अगस्त को व्याह नहीं हो सकता तो फिर किसी और तारीख़ पर भी नहीं हो सकता, मेरी ओर से जवाब समझो। इस जवाब से मुझ पर मानो वज्रपात हुआ। मैं पत्थर की मूर्ति के समान वहीं बैठा रह गया। नौकर से पूछा, तो पता लगा कि राय साहब बाहर चले गये हैं। हरदयाल! तुम्हीं बतलाओ, इसका क्या तात्पर्य्य हो सकता है। मैं निर्धन सही, परन्तु निर्लज्ज नहीं हूँ। चोट खाये हुए सर्प की नाईं उठ खड़ा हुआ, और वापस चलने को था कि एकाएक चिक उठी और कौशल्या कमरे में आ गई। मेरा कलेजा धड़कने लगा। पाँवों में बेड़ी पड़ गई। सोचता था कि यदि कोई देख ले तो क्या कहे। सारे शहर में मिट्टी उड़ने लगेगी। मेरे मस्तक से पसीना टपकने लगा। परन्तु कौशल्या ने अपनी मीठी वाणी में कहा, "क्षमा कीजिए। मुझे यह निर्लज्जता शोभा नहीं देती। परन्तु मेरा आपसे मिलना आवश्यक था।" मैंने अपने हृदय की सारी शक्ति लगा दी, परन्तु सौन्दर्य्य के तेज ने मुख न खोलने दिया। हठात् भूमि की ओर देखने लगा, यद्यपि मेरे जीवन की समस्त आशायें उसके चेहरे पर जमी हुई थीं।

कौशल्या ने पूछा, "पिताजी आपसे अप्रसन्न हैं क्या?"

यह कहते समय उसकी जिह्वा काँप रही थी, जैसे सितार के तार थरथरा रहे हों।

मैंने यत्न करके उत्तर दिया, "हाँ! ऐसा ही जान पड़ता है।"

"परन्तु क्यों?"

"इसका कारण अभी तक मैं नहीं समझ सका।"

"आपके विरुद्ध एक पत्र आया है।"

मेरा श्वास होंठों तक आ गया। समझा कि रहस्य खुल गया। अधीर होकर बोला, "किसने लिखा है?"

"कौशल्या ने उत्तर दिया, "यह मुझे भी पता नहीं।"

"क्या लिखा है?"

"मैं यह भी नहीं जानती। परन्तु जिस दिन से पत्र आया है उसी दिन से पिताजी बावले से हो रहे हैं। दिन भर आपके विरुद्ध बोलते रहते हैं। कहते थे कि यह व्याह नहीं हो सकेगा, परन्तु मैंने साफ़ साफ़ कह दिया है कि मैं किसी और से व्याह न करूँगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कहते कहते उसकी आँखें नीचे झुक गईं और मुँह अनार के दाने की तरह लाल हो गया। मेरे हर्ष की कोई थाह न थी, जैसे कुबेर का ऐश्वर्य्य मिल गया हो। सहसा मैंने पूछा, "परन्तु पत्र में क्या लिखा है?"

कौशल्या ने इसका कोई उत्तर न दिया। प्रत्युत प्रश्न के उत्तर में मुझसे प्रश्न कर दिया, "खुरशीद बेगम कौन है? क्या आप उसे जानते हैं?" मैंने उत्तर दिया, "मैं किसी खुरशीद बेगम को नहीं जानता।"

कौशल्या मेरी ओर इस प्रकार देख रही थी, जैसे कोई अनुभवी पुलिस का अफ़सर किसी चोर डाकू की ओर देख रहा हो। और देखने ही देखने में उसके आचार का अनुमान कर रहा हो। मुझ पर उसका अत्यधिक प्रभाव हुआ। चित्त भयभीत सा हो गया। मैं सोच रहा था कि इस प्रश्न का अभिप्राय क्या हो सकता है कि इतने में कौशल्या ने दूसरा प्रश्न कर दिया, "२१ अगस्त के दिन आपको क्या काम है?"

मैंने उत्तर दिया, "कोई काम नहीं।"

"कोई काम नहीं?"

"हाँ, कोई काम नहीं।"

"तो आप उस दिन कहाँ होंगे?"

"यहीं जेहलम में।"

"कौशल्या ने कुछ घबराहट से पूछा, "जेहलम में। परन्तु कहाँ?"

"घर पर।"

"परन्तु उस दिन आपको शङ्का किस बात की है?"

"शङ्का है।"

"परन्तु क्या? क्या आप मुझे भी नहीं बता सकते?"

मैं कुछ देर चुप रहा। मेरा चुप रहना कौशल्या के लिए असह्य था। उसने अपनी आँखें फिर मेरे चेहरे पर गाड़ दीं, और मेरे अन्तःकरण के अन्दर की बात जानने का प्रयत्न करने लगी। हरदयाल! उस समय उसका मुख ऐसा प्यारा लगता था, उस पर ऐसी सुन्दरता छाई हुई थी कि मैं मतवाला हो गया। क्या तुमने कभी चकोर देखा है? चन्द्रमा को देख कर जो दशा उसकी होती है वही दशा उस समय मेरी थी। सोचता था, मैं कैसा भाग्यवान् हूँ। परन्तु सहसा विचार आया कि पता नहीं इस स्वप्न का फल क्या हो? प्रसन्नता पर पानी फिर गया। कौशल्या ने फिर पूछा, "आप क्या सोच रहे हैं?"

मैंने लज्जित हो कर उत्तर दिया, "कुछ नहीं, आप ही के प्रश्न पर विचार कर रहा था।"

तो बतलाइए न, आपको किस बात की शङ्का है?"

मेरे मन में विचार आया कि कौशल्या से कह दूँ कि ज्योतिषी ने कहा है कि वह दिन ब्याह के लिए अच्छा नहीं। परन्तु फिर तुम्हारे पत्र ने मुँह बन्द कर दिया। सोचता था कि यह लड़की भी मेरे बहम पर हँसेगी, मैं चुप रहा, और थोड़ी देर बाद बोला, "मैं नहीं बता सकता"।

कौशल्या को जान पड़ता है कि इस उत्तर से बड़ा दुख हुआ। अधीर सी होकर बोली, "मुझे भी नहीं बता सकते?"

"इस समय तुम्हें भी नहीं बता सकता, परन्तु कुछ दिन ठहर कर बता सकूँगा। उस समय तुम हँसोगी।"

कौशल्या ने लम्बी साँस ली और कहा, "अच्छा न बतलाओ। परन्तु एक बात स्मरण रखना। उस दिन कहीं घर से बाहर न निकलना।"

मैंने उत्तर दिया, "बहुत अच्छा।"

अब सोच रहा हूँ, न जाने होनहार क्या होनेवाली है। जब तक इस सम्बन्ध की बातचीत न हुई थी उस समय तक मेरा कौशल्या की ओर ध्यान भी न था। परन्तु अब तो उसी की लगन लगी रहती है और मुझे कभी कभी तो यहाँ तक ख़याल आता है कि मैं उसके बिना रह न सकूँगा, क्या तुम जानते हो कि व्याह के पहले पत्नी से भेंट करने में क्या आनन्द है। यहाँ आओगे तो बताऊँगा। ऐसे सूक्ष्म भावों के वर्णन करने की शक्ति लेखनी में नहीं। तुम्हारे पिता से पता लगा कि तुम पहली दिसम्बर तक आ सकोगे। क्या इससे पहले नहीं आ सकते और लालचन्द को भी साथ नहीं ला सकते। यह पत्र उसे भी दिखा देना। और सोच समझकर लिखना कि मुझे क्या करना चाहिए?"

तुम्हारा शुभचिन्तक—
किशोरचन्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

बन्दर रोड, कराची
१० अगस्त १९०३

प्यारे किशोरचन्द !

आज हरदयाल यहाँ से चला गया है। जब से उसे गाड़ी पर चढ़ा कर आया हूँ तभी से जी उदास हो रहा है। जन्मभूमि से किननी दूर समुद्र के किनारे पड़ा हूँ, और कोई मित्र नहीं। जी चाहता है, पर मिल जायँ तो उड़ कर तुम्हारे पास पहुँच जाऊँ। परन्तु क्या करूँ, विवश हूँ। काम-काज ने रास्ता रोक रखा है। तुम्हारे पत्र स्वयं तुमसे अधिक रसभरे हैं। उनके पढ़ने से तुम्हारी सङ्गति का रस आ जाता है। अब तो सौ बिस्वे राय साहब की अप्रसन्नता दूर हो गई होगी। और तुमने मेरी सम्मति के अनुसार राय साहब से साफ़ साफ़ कह दिया होग कि ज्योतिषी ने २१ अगस्त का दिन अशुभ बताया है और यही कारण है कि मैं उस तारीख़ पर ब्याह का विरोध कर रहा हूँ। मेरे विचार में जो बात होनी चाहिए साफ़ साफ़ होनी चाहिए। ऐसी साधारण बातों को छिपा कर रखना कभी कभी बड़ा भयानक हो जाता है। यही होगा न कि वह तुम्हें पुराने विचारों का सिड़ी समझेंगे, समझें। परन्तु उनको यह तो पता लग जायगा कि तुम अपनी और उनकी बेटी ही की भलाई के लिए यह सब कुछ कर रहे हो। आशा है, वे इससे अप्रसन्न न होंगे। उनकी अप्रसन्नता का कारण मेरे विचार में तुम्हारा २१ अगस्त को अस्वीकार करना और उसका कारण न बताना है।

जब वास्तविक बात को वे जान लेंगे तब वह अप्रसन्नता दूर हो जायगी। वापसी डाक से पता दो कि परिस्थिति कैसी है, और तुम दूल्हा कब बनते हो। मैं कैसा अभागा हूँ कि इस मङ्गल-समय में भी तुम्हारे पास नहीं आ सकता। तो भी विश्वास रक्खो, मेरा हृदय तुम्हारे पास है। और तुम्हारे कल्याण के लिए प्रार्थना कर रहा है। मेरी ओर से अग्रिम धन्यवाद स्वीकार करो।

तुम्हारा भाई
लालचन्द।

(७)

मिनर्वा लाज, जेहलम
२५ अगस्त १९०३

माई डियर लालचन्द !

अन्त में जो भयानक नाटक हो रहा था वह हो गया, और अब मैं इस योग्य हूँ, तुमको सारी घटनायें क्रमशः लिख दूँ। इससे तुम्हें उपन्यास का आनन्द आयेगा। पत्र तनिक लम्बा है, परन्तु कहीं अधिक मनोहर है।

सबसे पहली बात मैं यह लिखना चाहता हूँ कि एक या किसी दूसरे कारण से मुझे तुम्हारा कराची से केवल एक ही पत्र मिला है, यद्यपि तुम्हारे १० तारीख़ के पत्र से जान पड़ता है कि तुमने इससे पहले भी मुझे कोई पत्र लिखा है। तुम्हारा वह पत्र मुझे क्यों नहीं मिला, इसका कारण कदाचित् यही है कि वह पत्र हरदयाल ने डाक में छोड़ने से पहले ही उड़ा लिया था।

अब २१ अगस्त की कहानी सुनो।

उस दिन मैं बहुत बेचैन था। कभी अन्दर जाता, कभी बाहर आता ! परन्तु हृदय को शान्ति न थी। ऐसा प्रतीत होता था कि मुझ पर कोई विपत्ति आनेवाली है। बार बार सोचता था कि क्या यह दिन कुशल से बीत जायगा ? कौशल्या के कथनानुसार मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं उस दिन घर से बाहर न निकलूँगा। परन्तु जो होना होता है उसे कौन रोक सकता है। लगभग दो बजे मैं आफ़िस में बैठा ला की पुस्तकें उलट-पलट रहा था कि चिक उठी और हरदयाल अन्दर आया। इस समय उसका मुख फूल से बढ़ कर खिला हुआ था। आते ही बोला, राय साहब से मिल कर आ रहा हूँ। उनसे मैंने सारी बात खोल दी है। वे कहते हैं कि यदि यह बात पहले से उनको बता दी जाती तो वे कदाचित् अप्रसन्न न होते। अब अगले सप्ताह में ब्याह का निश्चय हुआ है। यह सुन कर मेरी जो दशा हुई होगी उसे तुम जान सकते हो। आनन्द से मतवाला हो गया। और कमरे में टहलने लगा। परन्तु हरदयाल आराम से कुर्सी पर लेटा हुआ मेरी ओर देख रहा था। मैं समझता था कि वह मेरी बावलों की प्रसन्नता को देखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रफुल्लित हो रहा है। परन्तु नहीं, वह दुष्ट—वह रास्कल किसी और ही विचार में था। कदाचित् मैं उस समय उसके चेहरे से उसके विचारों को समझ सकता, तो एक भयानक रात्रि से बच जाता।

घड़ी ने छः बजाये। हरदयाल चौंक कर खड़ा हो गया। और बोला—"आओ! थोड़ा बाहर घूम आयँ।"

मैं बाहर न जाना चाहता था। परन्तु हरदयाल ने मेरी एक न सुनी। और मुझे बलात् घसीट कर बाहर ले गया। कौशल्या के शब्द कानों में गूँजते थे। ज्योतिषी की भविष्यद्वाणी मुझे रोकती थी। परन्तु हरदयाल मेरी एक न सुनता था, और हठ करता था कि मैं उसका साथ दूँ। अन्त में मैं मान गया। मैं उसे रुष्ट करना न चाहता था। वह मेरा मित्र था। कम से कम मैं उसे ऐसा ही समझता था। हम दोनों बाहर गये। मौसम बहुत ही अच्छा था। हरदयाल धीरे धीरे गुनगुना रहा था।

कर्मन की गति न्यारी रे ऊधो।

क्या समय था। शीतल वायु, चारों ओर सन्नाटा, आकाश निर्मल, मीठी रागनियों का आलाप कानों में, और अथाह सुख हृदय में। मुझ पर जादू सा हो गया। मैं मतवालों की तरह झूमने लगा, मानो किसी दिव्य शक्ति से हृदय की चिन्तायें क्षण-मात्र में दूर हो गई थीं। मैंने हरदयाल की ओर देखा। वह स्वतन्त्र पक्षी की नाईं प्रसन्न था, और उसकी आवाज़ आकाश तक जा रही थी—

कर्मन की गति न्यारी रे ऊधो!

सहसा हम उस मोड़ पर पहुँचे, जहाँ से उस पुरानी गुफा को रास्ता जाता है, जो लोगों में भूतनिवास के नाम से प्रसिद्ध है। तुम्हें भूला न होगा कि हम कई बार उसके अन्दर जा चुके हैं। वह स्थान कैसा भयानक है। अन्दर पाँव रखते ही हृदय धड़कने लगता है। परन्तु मैं कई बार उसके अन्दर बहुत दूर तक जा चुका हूँ। हरदयाल ने उस ओर मुड़ते हुए कहा, "आज भूत-निवास की ओर चलेंगे"। पता नहीं क्यों मेरा हृदय काँप गया। परन्तु मैं मुँह से कुछ न बोल सका और चुपचाप हरदयाल के पीछे चला गया, जिस प्रकार स्वामिभक्त कुत्ता अपने स्वामी के पीछे पीछे चला जाता है। यहाँ तक कि हम उस पुराने समय की गुफा के पास पहुँच गये। कोई साढ़े सात बजे होंगे, सूर्य्य अस्त हो रहा था, प्रकाश अन्धकार को दबा रहा था। ठंडा वायु चलने लगा। हरदयाल एकाएक उछला, और लोहे की सीखों का दरवाज़ा खोल कर गुफा के अन्दर चला गया। प्रकाश थोड़ी दूर तक जाता था। परन्तु उसके आगे अथाह अन्धकार था। हरदयाल तेज़ी से उसके अन्दर घुस कर लोप हो गया, और कुछ क्षण पश्चात् बोला, "किशोर, देखो मैं कितनी दूर आ गया हूँ।"

आवाज़ की गूँज ने उसका समर्थन कर दिया। उसके साथ ही भारी पाँव की चाप सुनाई दी, और थोड़े समय पश्चात् हरदयाल रूमाल से पसीना पोंछता हुआ बाहर निकल आया, और मुझसे बोला, "तुम भी जाकर देख आओ! ओह! कितना अँधेरा है।"

लालचन्द! मैं डर सा गया था। इसलिए मैं न चाहता था कि उस भयानक गुफा के अन्दर पैर रक्खूँ। परन्तु विचार आया कि हरदयाल क्या कहेगा। मुझे कायर समझने लगेगा। चार मित्रों में खिल्ली उड़ायगा। यह असह्य है। मैं गुफा के अन्दर घुस गया। उसके अन्दर भयानक अन्धकार था। मुझे सन्देह होने लगा कि दिन के प्रकाश को निगल जानेवाला अन्धकार कदाचित् रात को यहीं से निकलता होगा। मेरा श्वास घुटने लगा। चारों ओर से डर लग रहा था। परन्तु मनुष्य अपनी निर्बलता दूसरों पर प्रकट नहीं करना चाहता। मैंने हृदय को कड़ा किया और शनैः शनैः वापस हुआ।

पर बाहर आकर हृदय बैठ गया। दरवाज़ा बाहर से बन्द था, और उस पर ताला पड़ा हुआ था।

मैंने सिर पीट लिया।

लालचन्द! तनिक विचार करो। मैंने चिल्ला चिल्ला कर हरदयाल को बुलाया। परन्तु उसने मेरी और मेरी आवाज़ दोनों की कोई परवा न की। हाँ, दूर से उसकी आवाज़ गाती हुई सुनाई दी।

कर्मन की गति न्यारी रे ऊधो!

इस समय यह आवाज़ कैसी भयानक प्रतीत होती थी। एक एक शब्द हृदय के लिए हथौड़ा बन गया। मैं सोचने लगा, यह क्या हो गया है? और इसका कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या हो सकता है। परन्तु कुछ न समझ सका। हरदयाल की आवाज़ धीरे धीरे निस्तब्धता के समुद्र में डूब गई। उसके साथ ही मेरा धैर्य्य भी डूब गया। आँखों में आँसू भर आये। मैंने चीख़ चीख़ कर पुकारा। परन्तु कोई सहायता को न पहुँचा। यहाँ तक कि रात होगई, और आकाश पर चन्द्रमा चमकने लगा। कभी यही चन्द्रमा देख कर मेरा मन मोर की नाईं नाचने लगता था। परन्तु इस समय घावों पर नोन छिड़का गया।

दस बज गये थे। मैं दरवाज़े के साथ लेटा हुआ निराशा में डूबा हुआ था। चन्द्रमा की किरणें मेरे निर्जन क़ैदख़ाने में आ रही थीं। एकाएक सरसराहट का शब्द सुनाई दिया। मैं चौंक पड़ा। आँख उठा कर देखा तो लहू सूख गया। मुझसे एक गज़ की दूरी पर एक भयङ्कर नाग रेंगता हुआ आ रहा था। मेरी आँखों में मृत्यु का चित्र फिर गया। सोचने लगा, क्या करना चाहिए। कोई लाठी, कोई ईंट, कोई पत्थर पास न था। यहाँ तक कि बूट भी पाँवों में न थे। क्रोध से मैंने उन्हें भी उतार कर परे फेंक दिया था, और वह काली मृत्यु शनैः शनैः निकट सरक रही थी, मानो उसे निश्चय हो चुका था कि अब मेरा भागना असम्भव है। मेरी बुद्धि मुझे छोड़ रही थी। इन्द्रियाँ शिथिल हो रही थीं। बल क्षीण हो रहा था; जैसा कभी कभी स्वप्न में हो जाता है। मैंने आँख उठाई। नाग और भी निकट आ गया था। मैं घबरा गया। कोई उपाय न सूझा। सोचने लगा, क्या मेरी मृत्यु इसी निर्जन गुफा में होने को है। सहसा अन्धकार में बिजली चमक गई। विचार आया, क्या यह उचित न होगा कि मैं चित लेट जाऊँ, और सर्प मेरे शरीर के ऊपर से निकल जाय। सोचने का समय न था। मैंने शरीर ढीला छोड़ दिया, और समय की प्रतीक्षा करने लगा, एकाएक सर्प का शरीर मुझे अपने समीप लहराता हुआ दिखाई दिया। और एक क्षण पश्चात् मेरे कलेजे के साथ कोई कोमल सी वस्तु आ कर लगी। मेरा रक्त वेग से चलने लगा। शरीर पसीने से भीग गया। मस्तिष्क खौलने लगा। संसार एक स्वप्न सा प्रतीत होने लगा—सर्प शनैः शनैः सरकता हुआ मेरी छाती पर चढ़ आया, और वहाँ कुण्डली मार कर बैठ गया। मैंने यह देखा और प्राण होंठों पर आ गये। इसके पश्चात् मैं अचेत हो गया।

प्रातःकाल जब मेरी आँख खुली उस समय सूरज निकल चुका था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे रात को भयानक स्वप्न देखा है। आँखें मलता हुआ उठ बैठा। परन्तु गुफा का दरवाज़ा बन्द देख कर फिर वास्तविक अवस्था सामने आ गई, और आह! पास ही साँप पड़ा सो रहा था। वही काली मृत्यु, इस समय तक मेरी आँखों के सामने पड़ी हुई थी। मुझ पर फिर भय छाने लगा। सहसा किसी के पाँव की चाप सुनाई दी। मेरा हृदय धड़कने लगा। सामने हरदयाल खड़ा देख रहा था। क्या एक साँप मेरे मारने के लिए थोड़ा था, जो परमात्मा ने एक और भेज दिया। मैंने घृणा से मुँह फेर लिया। मैं मर रहा था, परन्तु मेरा अभिमान अभी तक जीता था।

हरदयाल ने साँप को देखा तो ठिठक गया। इस समय उसका मुख हलदी से अधिक पीला था, लाश से अधिक भयानक, वह तेज़ी से भागता हुआ चला गया, और आध घन्टे के पश्चात् वापस हुआ। यह आध घन्टा मेरे लिए आधी शताब्दी से भी लम्बा था। इस समय उसके एक हाथ में दूध का बरतन था, दूसरे में पिस्तौल। उसने धीरे से दरवाज़ा खोला। मेरा लहू सूख गया। साँप का जागना मृत्यु का जागना था। तब उसने दूध का बरतन साँप के निकट रख दिया, और हाथ से ताली बजाई। साँप न जागा। फिर बजाई, फिर भी न हिला। अन्त में ज़ोर से चिल्लाया, और पूरे ज़ोर से ताली बजाई। साँप की नींद खुल गई। उसने दूध के बरतन को देखा, राजाओं के समान आगे बढ़ा, ग्रीवा उठाई, और दूध के बर्तन में झुक गया। तत्काल पिस्तौल चला, और साँप की देह लोटने लगी। दूध की लौ में आगे बढ़ा था, मौत का निशाना बन गया। मैंने छलाँग मारी, और क़ब्र से जीता बाहर आया।

हरदयाल रोता हुआ मेरे पैरों से लिपट गया, और बोला, "मुझे क्षमा कर दो।"

मैंने आश्चर्य्य से पूछा, "पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। फिर क्षमा माँगना।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरदयाल ने उत्तर दिया, "पूछिए।"

मैंने प्रश्न किया, "यह जो कुछ हुआ है, क्या है ?"

"अकारण पाप का तमाशा।"

"नहीं खोल कर कहो।"

"मैं चाहता था कि कौशल्या से मेरा ब्याह हो। इसलिए मैंने कराची से ज्योतिषी को लिख दिया था कि तुम्हें भ्रम में डाल दे, और २१ अगस्त को अशुभ दिन बतला दे। उधर मैंने राय साहब हीरालाल को सूचना दी कि किशोरचन्द के आचार अच्छे नहीं हैं, और खुरशीद बेगम से उसका सम्बन्ध है। खुरशीद को पता लग गया है कि २१ अगस्त का दिन ब्याह के लिए नियत हो गया है, परन्तु किशोर उसे नहीं मानता। अन्त में निश्चय यह हुआ है कि वह रात भर किशोरचन्द खुरशीद बेगम ही के यहाँ रहेगा, और आपसे वह तारीख़ बदलने की प्रार्थना करेगा। राय साहब ने यह पढ़ा तो लाल-पीले हो गये, और उन्होंने निश्चय कर लिया कि यदि यह बात सच निकली तो कौशल्या का ब्याह मेरे साथ कर देंगे।"

"तुम्हारे साथ ?" मैंने चिल्ला कर पूछा।

"हाँ मेरे साथ! इसी लिए मैंने यह सब कुचक्र रचा, और तुम्हें यहाँ बन्द करके राय साहब के यहाँ पहुँचा। परन्तु कौशल्या ने हठ किया कि जब तक राय साहब अपनी आँखों से तुम्हें खुरशीद के यहाँ न देख आयेंगे तब तक वह इस पर विश्वास न करेंगे। परिणाम यह हुआ, कि उस रात राय साहब खुरशीद बेगम के यहाँ पहुँचे, और भण्डा फूट गया।"

मैंने कहा, "यह सब बातें राय साहब के मुँह पर कह सकोगे ?"

"कह सकूँगा।"

"कब ?"

"अभी चल कर।"

"तो चलो।"

यह कह कर हरदयाल मेरे साथ आया और हम दोनों राय साहब के पास पहुँचे। उस समय वे बड़े चिन्तित थे। मुझे देख कर इस प्रकार खिल गये जैसे दीपक में तेल पड़ जाता है। परन्तु हरदयाल को देख कर वे फिर उदास से हो गये। कड़क कर बोले, "तू यहाँ क्यों आया है ?"

मैंने उत्तर दिया, "इसका आना आवश्यक था।"

राय साहब कुर्सी पर बैठ गये। हरदयाल ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया, और अपने अपराध को स्वीकार किया। इस समय राय साहब की आँखों में आँसू छलक रहे थे। मुझे गले लगा कर बोले, "मुझे क्षमा कर दो, मैंने तुम्हें समझा नहीं था।"

हरदयाल उठ कर बाहर निकल गया। मैं चुप था। आनन्द ने मेरी जीभ बन्द कर दी थी। राय साहब बोले, "आज आराम करो, परन्तु यह ब्याह अगले महीने अवश्य हो जाना चाहिए। यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा है। तुम्हें अब कोई आपत्ति तो नहीं ?"

मैंने सिर हिला दिया।

तुम्हारा शुभचिन्तक—
किशोरचंद

नोट—कल से हरदयाल का कोई पता नहीं। लोग कहते हैं कि वह अपने पापों का प्रायश्चित्त करने गया है। परन्तु मुझे इस पर विश्वास नहीं आता।

(८)

नागभूमि
२१ अगस्त १९०५

माई डियर किशोरचंद!

दो वर्ष बीत गये। मैं अपने पाप का प्रायश्चित्त करने में लगा हुआ हूँ। मैं कहाँ रहता हूँ, यह नहीं लिखूँगा। परन्तु इतना लिख देता हूँ कि यह स्थान सर्पों का घर है। इस ओर आने का लोग साहस नहीं कर सकते। आस-पास के लोग इसे हत्यारी भूमि के नाम से पुकारते हैं। परन्तु मैं इसे नागभूमि कहता हूँ। दिन-रात बड़े विषधर सर्प आँखों के सामने रहते हैं। प्रतिक्षण भय रहता है कि कोई सर्प काट न खाय। रात को सोता हूँ, तो यह नहीं कह सकता कि प्रातःकाल उठूँगा या नहीं। मृत्यु सदैव सामने रहती है, परन्तु निकट नहीं आती—यह दुख मौत से बढ़ कर है। लोग एक बार मरते हैं, मैं प्रति क्षण मरता रहता हूँ। परन्तु मुझे इस बात का सन्तोष है कि मैंने इसी जन्म में अपने कर्मों का फल पा लिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज २१ अगस्त है। वही जेहलम की गुफा याद आ रही है। ओह! मैं कितना निर्दयी, कितना पापी, कैसा मित्रमार हूँ, उस दिन मुझे क्या हो गया था? मेरी बुद्धि पर पर्दा क्यों पड़ गया था? मैंने कितना नीच कर्म किया था? अब तक उसकी स्मृति है। उसकी कल्पना से लहू सूख जाता है। आह! वह काला साँप जब तुम्हारी छाती पर बैठा होगा, उस समय तुम्हारा प्रेम से भरा हुआ हृदय क्या कहता होगा? जब इसका विचार करता हूँ, तो मस्तिष्क में आग सी लग जाती है। परन्तु प्यारे किशोरचंद! दो वर्ष से इसी प्रकार के काले साँपों में जीवन बिता रहा हूँ। जी चाहता है कि एक बार तुम्हें देख लूँ। परन्तु क्या करूँ, साहस नहीं पड़ता। तुम्हारे सम्मुख आँखें नहीं उठ सकेंगी। कभी इनमें प्रीति खेलती थी, आज क्रोध बैठा होगा। वह क्रोध देख कर मेरी आँखें सहन न कर सकेंगी। इसी से तुम्हारे सामने नहीं आऊँगा। यहीं रहूँगा, जब तक जीता रहूँगा, उन्हीं सर्पों को, मृत्यु की प्रत्यक्ष मूर्तियों को देखूँगा, और अंत में उन्हीं में से किसी एक के विष से मर जाऊँगा।

परन्तु एक लालसा है और रहेगी कि तुम दोनों मुझे क्षमा कर दो, ताकि मरते समय शान्ति से मर सकूँ। मैंने जो गढ़ा तुम्हारे लिए खोदा था, उसमें स्वयं गिरा। और २१ अगस्त का दिन मेरे ही लिए अशुभ सिद्ध हुआ। ओह! परमेश्वर ने मेरी जीवन-पुस्तक में यह कैसा काला पृष्ठ रख दिया?

तुम्हारा अभागा मित्र—

हरदयाल।

सुदर्शन

—०—

मुग़ल-सभ्यता में हिन्दूत्व की छाप।

भारतीय इतिहास में भिन्न भिन्न युगों में अनेक प्रतापी राजाओं और राज-वंशों के वैभवशील शासनों का वर्णन है। ऐसे अनेक 'राम-राज्यों' की स्मृति हम लोगों के मस्तिष्क-पटल पर सूत्कीर्ण है। मौर्य्य-सम्राट्, गुप्त-नृप, हर्षवर्धन, राजा भोज आदि के विक्रम और प्रताप की कथायें सर्वविदित हैं। इन शासकों ने विशाल साम्राज्यों पर चिरकाल तक प्रबल शासन, प्रजा का पालन और देश को समृद्ध किया। विद्या, कला और विज्ञान की भी उनके समय में विशिष्ट उन्नति हुई। पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता के प्रचार के कारण देश की नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति भी खूब हुई। शान्ति के कारण राष्ट्र की प्रायः समस्त शक्तियों को पूर्ण स्फूर्ति का सुअवसर मिला। मुग़लों का शासन भी भारतीय इतिहास में कुछ कम महत्त्व का नहीं है, उसमें भी 'राम-राज्य' के बहुत से लक्षण विद्यमान थे। प्रस्तुत लेख में मुग़ल-राज्य के मुख्य तथ्यों पर विचार किया जायगा।

पानीपत के प्रथम युद्ध की महत्ता इस बात पर स्थित नहीं है कि उसके कारण लोदी-राजवंश की समाप्ति होगई और एक नये मुसल्मान-वंश के हाथ में भारतीय शासन की बागडोर आ गई। इस प्रकार से तो कई बार पहले भी अनेक मुसल्मान-राजवंशों का परिवर्तन हो चुका था। संसार-चक्र में ऐसी घटनायें साधारणतः हुआ ही करती हैं। युद्ध भी होते रहते हैं और राजा भी बदला करते हैं। पानीपत के युद्ध के वास्तविक महत्त्व का सम्बन्ध जितना राजनैतिक क्षेत्र से है उससे कहीं अधिक उसका सम्बन्ध भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास से है। १५२६ ई० में एक युग का पटाक्षेप हुआ और दूसरे युग का सूत्रपात हुआ। मुग़लों के भारतीय विजय का प्रभाव राष्ट्र के अन्तस्तल तक व्याप्त हुआ। उन्होंने भारत के भौगोलिक मानचित्र की अपेक्षा संस्कृति के मानचित्र पर अधिक गहरा प्रभाव डाला।

मुग़लों के पूर्व मुसल्मान विजेताओं के अनेक दल भारत में बस चुके थे। अरब-वासियों ने आठवीं शताब्दी ही में सिन्ध पर अधिकार कर लिया था। परन्तु उनका प्रभाव एकदैशिक और स्थानीय रहा। तदनन्तर महमूद ग़ज़नवी के समय से लेकर लोदी-वंश के उत्कर्ष और पतन तक ५ शताब्दियों से भी अधिक समय बीत चुका था। इस बीच में अनेक मुसल्मान शासकों ने भारत में राज्य किया। परन्तु दिल्ली के इन सुल्तानों ने उदात्त नीति की खोज न कर पाई। वे अंधकार में खोज करने के लिए इधर-उधर टटोलते और भटकते रहे। कभी बलबन, अला-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्दीन आदि ने "रक्त और लौह" की विकराल नीति का अनुसरण किया और कभी नासिरुद्दीन फ़ीरोज़शाह आदि सुल्तानों ने नरम—या दूसरे शब्दों में क्लीब—नीति का अवलम्बन किया। परन्तु हिन्दुओं के प्रति सबने प्रायः एक ही नीति से काम लिया। अलाउद्दीन ने हिन्दुओं के साथ विशेष उद्दण्डता का बर्ताव किया। उनसे ५० प्रति शत कर लिया जाता है। ज़ियाउद्दीन बरनी ने अपने इतिहास में ख़िराज गुज़ार हिन्दुओं की शोचनीय दशा का वर्णन किया है। जिस भारतभूमि में प्रायः सदा से पूर्ण धार्मिक सहनशीलता और उदारता का प्रचार रहा था, जहाँ "रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्" का सिद्धान्त प्रचलित था, जहाँ नानात्व में एकत्व का अन्वेषण होता था, वहीं अब देवालय ध्वस्त, तीर्थ भ्रष्ट और भस्मीभूत किये जाने लगे। हिन्दुओं को अपनी मातृभूमि में भी अपने धर्म के आचरण में बाधा होने लगी।

परन्तु इन ५ सौ वर्षों के परस्पर सम्पर्क, और सहवास का प्रभाव दोनों जातियों पर पड़ा। मुसल्मानों ने हिन्दू-स्त्रियों से विवाह किया। अनेक हिन्दुओं ने इस्लाम की दीक्षा ले ली। कट्टर से कट्टर मुसल्मान शासक भी हिन्दुओं को सर्वथा बहिष्कृत न कर सकता था। भारत में मुसल्मानों की संख्या सागर में बूँद के समान थी। समस्त देश के शासन के लिए अनेक छोटे बड़े पदाधिकारियों की आवश्यकता होती थी। बड़े बड़े पद मुसलमानों को दिये गये। परन्तु छोटे छोटे पदों पर फिर भी हिन्दू ही नियुक्त किये गये। विशेष कर मालगुज़ारी के महकमे में हिन्दू-क़ानूनगो और पटवारी ही काम कर सकते थे, क्योंकि वही उस काम को समझते थे। मुसल्मान हिन्दुओं से फ़ारसी, अरबी या तुर्की में बोलकर अपना काम न चला सकते थे। उन्हें विजितों की भाषा के प्रयोग करने पर बाध्य होना पड़ता था। शनैः शनैः विजेता अपनी मातृ-भाषाओं को भूलने लगे और आपस में भी हिन्दी में ही बोलने लगे। यहाँ तक कि अनेक मुसल्मानों ने हिन्दी में मधुर कवितायें भी रचीं। शासन के क्षेत्र में विजेताओं ने कोई विशेष नवीन अन्वेषण नहीं किये। जज़िया आदि कुछ नये करों के अतिरिक्त अधिकतर प्राचीन हिन्दू-पद्धति से शासन का कार्य्य होता रहा। शासन का ढाँचा वही बना रहा, यत्र-तत्र केवल कुछ परिवर्तन कर दिये गये। ग्राम्य पञ्चायतें सदा की भाँति अपना कार्य्य करती रहीं। क़ानूनगो और पटवारी भी अपनी प्राचीन विधि का अनुसरण करते रहे। सुल्तानों ने शासन-पद्धति में कोई क्रान्तिकारी, दूरगामी और चमत्कार-पूर्ण परिवर्तन नहीं किये। उन्होंने केवल अनुदारता, कट्टरता और असहिष्णुता के रङ्ग में रँग कर प्राचीन शासन-प्रणाली को पूर्ववत् अपनी धारा में बहने दिया। इसी प्रकार इस समय की निर्मित इमारतों में भी हिन्दू-चिह्न विद्यमान हैं। सम्भव है इनमें से कुछ का मसाला विनष्ट हिन्दू-मन्दिरों से लिया गया हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन इमारतों को अधिकतर हिन्दू-कारीगरों ने ही बनाया था। कुतुब-मीनार, कुतुबी मसजिद आदि में हिन्दू-कारीगरों के हाथ के चिह्न पाये जाते हैं।

तात्पर्य्य यह है कि यद्यपि दिल्ली के सुल्तानों ने अधिकतर कट्टर धार्मिकता की नीति का प्रयोग किया, तथापि वे हिन्दुओं और उनकी संस्कृति—भाषा, कला, विद्या, शासन-प्रणाली—का सर्वथा बहिष्कार करने में सफल न हो सके। उन्होंने इस बात का पूर्ण रूप से अनुभव कर लिया था कि हिन्दू-सभ्यता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कई बातों में विजित हिन्दुओं के चरणों के नीचे बैठकर वे उनका शिष्यत्व ग्रहण कर सकते थे। इस भावना का प्रतिबिम्ब उस समय के हिन्दी-साहित्य में अक्षुण्णरूप से विद्यमान है। अमीर ख़ुसरू आदि मुसल्मान विद्वानों और कवियों का हिन्दी में कविता करना इस बात का प्रमाण है।

इन ५ सौ वर्षों के मुसल्मानी शासन में विजेताओं को यद्यपि हिन्दुओं और उनकी सभ्यता की अनिवार्य्यता स्वीकार करनी पड़ी थी, परन्तु फिर भी अपनी प्रतिष्ठा और मर्य्यादा के रक्षार्थ और विजय-गर्व से परिपूर्ण सुल्तानों ने अनुदार नीति का अनुसरण न छोड़ा। लोदियों के राजत्व-काल में इस भावना ने व्यक्तरूप धारण कर लिया था। इधर हिन्दू-धर्म में आत्म-रक्षा के निमित्त अहिंसात्मक प्रतिक्रिया का जन्म हुआ था। इस समय रामानन्द, कबीर आदि धर्मोपदेशकों ने अपने उपदेशों से उदारता, सहनशीलता और एकता का शंखनाद किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच शताब्दियों के परस्पर संघर्षण, घात-प्रतिघात, सम्पर्क और सहवास का अन्तिम परिणाम यह हुआ कि दोनों जातियों ने नानात्व और वैषम्य में से महत्तम समापवर्तक को ढूँढ़ कर निकाल लिया। दोनों अब एक दूसरे के अत्यन्त निकट आगये। परन्तु लोदी-सुल्तानों ने एकता की इस प्रबल धारा के पथ को सुगम करने के स्थान में उसकी गति को अवरुद्ध करना चाहा। कहते हैं, कबीर को सिकन्दरशाह लोदी ने उनकी निष्पक्ष और कटु आलोचना और अपार उदारता के लिए अनेक प्रकार से कष्ट दिया। इस जनश्रुति में सत्य की मात्रा चाहे जितनी हो, किन्तु सिकन्दर लोदी की अनुदार और कट्टर नीति का साक्षी इतिहास है। इब्राहीम लोदी भी इसी श्रेणी का शासक था।

लोदियों का अन्त हुआ और मुग़ल-वंश की स्थापना हुई। पुराना ज़माना गया और नया ज़माना आया। मुग़लों के आगमन के साथ साथ एक नवीन सभ्यता ने भी प्रवेश किया। मुग़लों ने पठानों की भूलों और निर्बलताओं से लाभ उठाया। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती शासकों की मूर्खता और अनौचित्य से बचने का प्रयत्न किया। पठान और भारतीय मुसल्मान ही अधिकांश में उनके शत्रु और राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वी थे। उनको दबाये रखने ही में उनका कल्याण था। निदान अब राजनीति का तख़्ता पलटा। हिन्दू जो अब तक राजनैतिक दृष्टि से अस्पृश्य गिने जाते थे अब नवीन साम्राज्य के स्तम्भ हो गये। उनका महत्त्व बढ़ गया। हिन्दू-मुसलिम संसर्ग से जो नवीन लहर उठ रही थी उसकी धारा अब उन रुकावटों से रहित हो गई जो पूर्व सुल्तानों के समय में उसके मार्ग में थीं। हुमायूँ को देश से बाहर निकाल कर शेरशाह सूर ने साढ़े चार वर्षों के बीच में वह काम कर दिखाया जो अभी तक किसी मुसल्मान शासक से न हो सका था। उसने भारत की राजनैतिक नाड़ी की परीक्षा कर उसके रोग का निदान कर लिया। वह अफ़ग़ान था। इसलिए वह अपनी जाति के दोषों का स्वयं अनुभव कर चुका था। उसने दिल्ली जाकर बाबर के दरबार में कुछ दिन व्यतीत कर अपनी तीव्र दृष्टि-द्वारा मुग़लों के दोषों को भी परख लिया था। इस प्रकार उसने दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ होते ही नये युग और नई नीति का सुनिश्चितरूप से अनुष्ठान किया। उसके मरने के कुछ समय के अनन्तर उसका राज्य विनष्ट हो गया, और उसका वंश समाप्त होगया, परन्तु उसका कार्य्य चिरस्थायी रहा। उसके शत्रु मुग़लों ने उसी की नीति का अवलम्बन और उसी का पथ-प्रदर्शन स्वीकार किया।

इस नवीन नीति के अनुसार दलित हिन्दू-जाति राज्य का एक प्रधान अंग गिनी जाने लगी। उसके स्वत्वों का गला घोंटना बन्द होगया, उसकी आकांक्षाओं के मार्ग से रोड़े हटा लिये गये, उसकी शक्तियों की उन्नति का पथ खुल गया और उसकी नवीन जागृति को प्रोत्साहन मिला। लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक इसी विशद नीति का प्रचार रहा। इस युग में भारत की भाग्य-लक्ष्मी प्रचुर वैभव से सम्पन्न हुई।

जो संस्कृति मुग़लों की छत्र-छाया में अविच्छिन्नरूप से पालित-पोषित हुई वह प्रधानतः हिन्दू-संस्कृति थी। उसका अनुष्ठान दिल्ली के सुल्तानों के समय में ही हो चुका था। परन्तु उस समय उसकी गति अवरुद्ध थी। परन्तु मुग़लों ने, कुछ अपने हित के लिए, कुछ अपनी हार्दिक उदारता के कारण, कुछ अपनी मध्य-एशिया-वाली विभिन्न सभ्यता के प्रभाव से और कुछ समय की गति की पक्की जाँच करने के कारण, उसकी गति को निर्बाध ही नहीं कर दिया, किन्तु उसका पालन और प्रोत्साहन किया। तभी तो मुग़ल-सभ्यता में हिन्दू-सभ्यता का ही अधिक भाग था।

मुग़ल-संस्कृति के विश्लेषण करने से उसके अंग अंग में हिन्दूत्व की प्रधानता दृष्टिगत होती है। "मुग़ल-सभ्यता" का नाम लेने से हमारे मन में कई बातों का स्मरण आता है। मुग़ल-सभ्यता की विशेषता कई बातों पर स्थित है। मुग़लों की श्लाघनीय धार्मिक सहनशीलता और उदारता, उनका भारतीय साहित्य (विशेष कर हिन्दी-साहित्य) का प्रतिपालन, उनके समय में उन्नति के उच्चतम शिखर तक पहुँची हुई ललित कलायें (चित्रकला, संगीत), स्थापत्य और उनका प्रबल और पक्षपातरहित शासन,—यहाँ बातें हमें मुग़ल-सभ्यता का स्मरण दिलाती हैं। इन सबकी विवेचना करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि मुग़ल-सभ्यता में हिन्दू-सभ्यता की असंदिग्ध छाप लगी हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक सहनशीलता भारतीय शासन-परम्परा का सर्वमान्य सिद्धान्त रहा है। इस सिद्धान्त को पूर्णरूप से व्यवहार में लाने का श्रेय भारत ही को है। हिन्दू-शास्त्र और दर्शन भी इसका बार बार गीत गाते हैं। भारतीयों की नस में इसका प्रभाव व्याप्त है। जितने प्रसिद्ध और महान् शासक हमारे देश में हुए हैं उन्होंने धार्मिक सहनशीलता का व्यवहार किया है। इस नियम में अपवाद भी हुए हैं, परन्तु वे नगण्य हैं। ऐसा कौन नियम है जिसमें अपवाद न हों? मुसल्मान शासक सर्वदा असहिष्णु नहीं रहे हैं। ख़लीफ़ों का शासन उदारता और सहिष्णुता के लिए प्रसिद्ध है। परन्तु भारत के प्राक् मुग़ल मुसल्मान-सुल्तान इन गुणों से कभी सम्पन्न नहीं रहे। स्वयं समकालीन मुसल्मान लेखक उनकी अनुदारता और कट्टरपन की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुग़लों की सहिष्णुता अधिकतर उस भावना का चरम रूप थी जो प्राचीनकाल से भारत में प्रचलित थी और जो उत्तर-सुल्तान-काल में अनेक उपदेशकों और कवियों के द्वारा समस्त देश में प्रतिध्वनित हो रही थी। अकबर ने अशोक, गुप्त-सम्राटों, हर्ष आदि की विशद और सुपरीक्षित उदार नीति का ही अनुसरण किया।

भारतीय साहित्य के प्रोत्साहन और उत्कर्ष के कारण भी मुग़लों की स्मृति अक्षुण्ण रहेगी। प्रायः सब मुग़ल-सम्राट् स्वयं फ़ारसी और तुर्की के पण्डित थे। उनके रचित ग्रन्थों का स्थान बहुत ऊँचा है। बाबर के आत्म-चरित की तुर्की-भाषा में बड़ी प्रतिष्ठा है। जहाँगीर का 'तुज़क' विशद और ललित फ़ारसी में लिखा गया है। औरंगज़ेब के 'रुक़ों' से उसकी प्रगाढ़ विद्वत्ता का परिचय मिलता है। मुग़ल-राजकुमारियाँ भी अपनी विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं। गुलबदन बेगम, रोशनारा, जहानारा, ज़ेबुन्निसा आदि की साहित्य-सेवा सुप्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त मुग़लों की छत्र-छाया में अनेक लेखकों और कवियों ने सुसाहित्य की अभूतपूर्व वृद्धि की। यह सब होते हुए भी मुग़लों ने भारतीय साहित्य की उपेक्षा नहीं की। संस्कृत के अनेक ग्रन्थ (महाभारत, रामायण, लीलावती, नलोपाख्यान, अथर्ववेद आदि) अकबर की आज्ञा से फ़ारसी में अनूदित हुए। संस्कृत के अन्तिम श्रेष्ठ कवि पण्डितराज जगन्नाथ ने शाहजहाँ की छत्र-छाया में साहित्य-सेवा की। परन्तु हिन्दी की उन्नति तो सर्वथा मुग़लों के समय में ही हुई। यह बात अत्यन्त चमत्कार-पूर्ण है कि हिन्दी-साहित्य का उत्कर्ष और अपेक्षाकृत ह्रास मुग़लों के उत्कर्ष और ह्रास के साथ ही हुआ। इन दोनों के भाग्यों का यह परस्पर ग्रन्थिबन्धन कदापि काकतालीयन्याय का परिणाम नहीं कहा जा सकता। सूरदास और तुलसीदास आदि सन्तों को चाहे कुछ भी "सिकरी सन काम" न हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मुग़लों की साधारण नीति, उनकी उदारता, सहिष्णुता और उनके साहित्य के प्रोत्साहन के कारण एक ऐसा शान्तिमय, स्वच्छन्द और अनुकूल वायुमण्डल बन गया था जिसमें निःश्वास लेकर और परिपुष्ट होकर सूरदास और तुलसीदास ने निर्द्वन्द्वता-पूर्वक वाग्देवी की उपासना की। तभी उनकी रचनायें इतनी शीतल, शान्तिपरिपूर्ण और निर्मल हैं। परन्तु जब औरंगज़ेब के समय में राष्ट्र में उथल-पुथल मची, तब हिन्दू-जाति की धारा के मार्ग में फिर कठिन चट्टानें डाल दी गईं और जब फिर धर्मान्धता और पक्षपात का झंझावात उठा, तब उसकी मन्द और प्रशान्त गति भंग होगई। अब उसमें उत्ताल तरंगें और भँवर देख पड़े। भूषण, लालकवि और सूदन की रचनाओं में इस क्रान्ति और विप्लव का भाव अंकित है। अब "कवितासरित" की "गति क्रूर" होगई। मुग़ल-साम्राज्य म्रियमाण और छायावत् होगया। प्राचीन प्रतिष्ठा तो बनी रही परन्तु उसका वैभव, प्राबल्य और सामर्थ्य जाता रहा। इस समय हिन्दी-साहित्य की भी दशा प्रायः ऐसी ही रही। अब सूर, तुलसी, केशव, देव, बिहारी आदि महाकवियों के आलाप बन्द हो गये। वह प्रौढ़ता और उत्कर्ष अब विलीन होगया। अब जिस प्रकार अकबर और औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी विलास में रत और नृत्य-वाद्य में मग्न होगये, उसी प्रकार "अब के कवि खद्योत" नायक-नायिका के विवाद और नख-शिख के झमेले में ही फँस गये। कविता भी म्रियमाण और छायावत् होगई। वाग्-जाल रचकर अलंकार-सागर में से कुछ सीप और घोंघों के एकत्र करने ही के निमित्त अब सरस्वती की आराधना होने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्पर्य्य यह है कि मुग़ल-सभ्यता के मन्दिर में हिन्दी-साहित्य को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसके अतिरिक्त मुग़ल-कालीन ललित कलाओं की सूक्ष्म विवेचना करने से भी इसी मत की पुष्टि होती है कि मुग़ल-सभ्यता में हिन्दूत्व का प्राधान्य था। "तानसेन की तान" की प्रशंसा किसने नहीं सुनी? तानसेन हिन्दू-संगीत की चरमोन्नति के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि और आचार्य्य गिने जाते हैं। महात्मा हरिदास, बैजू बावरे और शेख़ मोहम्मद गौस ग्वालियरवाले संगीताचार्य्यों का शिष्यत्व ग्रहण कर तानसेन ने हिन्दू-मुस्लिम-संस्कृति का अत्युत्तम सम्मिश्रण किया। वे अन्त में यद्यपि मुसलमान होकर मिर्यां तानसेन कहलाये, परन्तु वे विदेशी संगीत के आचार्य्य न थे। उनके संगीत में मुसलमान-गुरु का स्पष्ट प्रभाव अवश्य प्रतीत होता था, और इस विदेशी प्रभाव के कारण कई देशी गायनाचार्य्यों ने भारतीय संगीत को भ्रष्ट करने का लाञ्छन तक उनके मत्थे मढ़ा है। परन्तु अब सभी आलोचकों के मतानुसार तानसेन ने भारतीय संगीत को चरम सीमा तक पहुँचाया। चित्रकला में भी दसवन्थ, बसावन आदि आचार्य्य हिन्दू थे। उनके चित्रों में फ़ारसी और भारतीय क़लमों का अच्छा सम्मिश्रण है।

इसी प्रकार मुग़ल-स्थापत्य में भी भारतीयता की सन्देहरहित छाप देख पड़ती है। यहाँ विस्तार-पूर्वक विवेचन के लिए स्थान नहीं। परन्तु सभी श्रेष्ठ कलाविद मानते हैं कि मुग़लों की इमारतों में बौद्ध और ईरानी स्थापत्य का अलौकिक सामञ्जस्य है। ताज पर वेनीशियन-प्रभाववाले सिद्धान्त का अब स्फोटन हो गया है। हैवेल स्टीला क्रैमरिश आदि कलानिष्णातों का मत है कि ताज और अन्य मुग़ल-इमारतों में भारतीयता की ही प्रधानता है।

शासन के क्षेत्र में भी इसी मत का समर्थन होता है। भारतीय शासन-पद्धति के क्रमानुगत समन्वय का ऐतिहासिक अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि मुग़ल-शासन-प्रणाली भारतीय शासन-परंपरा की धारा का ही एक विकसित रूप थी। मौर्य्यों, गुप्तों, हर्ष और अन्य हिन्दू सम्राटों की शासन-पद्धति की तुलना मुग़ल-पद्धति से करने से अपार आश्चर्य्य इस बात पर नहीं होता कि मुग़ल-पद्धति उन पूर्ववर्ती पद्धतियों से कुछ भिन्न थी, किन्तु इस बात पर कि उन सबमें इतनी अधिक समानता है। सम्राट् हर्षवर्धन और अकबर के मध्य कितना साम्य है? दोनों की शूर-वीरता, विद्याभिरुचि, धार्मिक उदारता, दानवीरता, प्रगाढ़ धार्म्मिकता, शासन-पटुता आदि गुण कितने मिलते-जुलते हैं। इसी प्रकार इबादतख़ाने में एकत्र विभिन्न मतों के आचार्य्यों की समता कन्नौज के धार्मिक सम्मेलनों से की जा सकती है। मुग़लों का भूमि-कर-प्रबन्ध प्रसिद्ध हिन्दू अर्थ-सचिव राजा टोडरमल द्वारा व्यवस्थित हुआ। परन्तु वह वास्तव में प्राचीन हिन्दू-राजाओं की प्रथा का ही सुव्यवस्थित रूपान्तर था। हर्ष-चरित में उल्लिखित मण्डलेश्वर (राज्यस्थानीय), विषय-पति, अक्षपटलिक, करणिक, चौरोद्धरणिक आदि का कार्य्य आईन अकबरी में वर्णित क्रम से सूबादार, फ़ौज-दार, अमीन (आमिल), पटवारी, कोतवाल आदि द्वारा होता था। केवल नामों में रूपान्तर है, कार्य्यों में नहीं। अधिक विस्तृत तुलना के लिए स्थान नहीं है, परन्तु जो कुछ कहा गया है उससे स्थालीपुलाक-न्याय-द्वारा यह स्पष्ट है कि मुग़ल-सम्राट् शासन-पद्धति के लिए प्राचीन हिन्दू-सम्राटों के ऋणी थे। परन्तु मुग़लों ने उसमें यथेष्ट परिवर्तन भी किये। मन्सबदार-प्रथा ईरानी थी। उसी पर मुग़ल-सेना का आधार था। यही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन उन्होंने किया। और सब बातें अधिकांश में वही रहीं जो पहले प्रचलित थीं। ग्राम्य पञ्चायतें अपनी पर-म्परा के अनुसार कार्य्य-सञ्चालन करती रहीं। मुग़लों ने उनके अधिकारों पर अतिक्रमण नहीं किया। न्यायालयों का विधान अधिकतर पूर्ववत् रहा। एक वंश आया, दूसरा गया, फिर अन्य वंशों के हाथ में शासन की बाग-डोर गई, परन्तु ग्राम के किसानों को इससे क्या प्रयोजन। उनके लिए तो "कोइ नृप होइ हमें का हानी। चेरि छोड़ि नहि होउब रानी" उन्हें तो अपने बाप-दादों की भूमि को बाबाराज के समय के हल से जीतने-बोने से काम। फ़सल काटने पर पोत उगाहनेवाले पोद्दार भी वंश-परम्परा से वही चले जाते हैं। जब तक राजा धर्म से राज्य करता जाता है और किसी को धर्म के आचरण में बाधा नहीं डालता, तब तक उन्हें और किसी बात से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतलब नहीं। "राजा करै सो न्याव। पांसा परै सो दाँव।"

संक्षेप में हमारे कहने का तात्पर्य्य यह है कि मुग़ल-संस्कृति यद्यपि-हिन्दू-मुस्लिम-संस्कृतियों के सम्मिश्रण और सम्मिलन का परिणाम थी, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उसमें हिन्दूत्व का ही प्राधान्य था। मुसल्मानों के आक्रमण से बचने के लिए हिन्दू-संस्कृति की जो नवीन लहर उठी थी उसको सुल्तानों ने रोकने के लिए बाँध बाँध दिये थे और उसके मार्ग में रोड़े अटका दिये थे, परन्तु वह इन रुकावटों के होते हुए भी शनैः शनैः शान्तिपूर्वक वृद्धि को प्राप्त होती गई और मुग़लों के आने पर, जब वे रुकावटें हट गईं और उसका रास्ता साफ़ और सरल हो गया तब वह अनर्गल और अविच्छिन्न धार से प्रस्फुटित हुई। मुग़ल-साम्राज्य के उत्कर्ष के समय ही वह चरम सीमा तक पहुँची। मुग़लों ने उसमें अपना प्रभाव भी सञ्चारित कर दिया। उसमें मुग़लपन का रंग अवश्य चढ़ गया, पर वास्तव में हिन्दूत्व और भारतीयता का प्राधान्य उसमें बना रहा।

औरंगज़ेब ने मुग़ल-सभ्यता के इस हिन्दूत्व-प्रधान लक्षण को पसन्द नहीं किया। वह उसे इस्लामीयत के रंग में सराबोर करना चाहता था। उसने अकबर के राष्ट्रीय एकीकरण को इस्लामी सभ्यता के लिए अहितकर समझकर फिर उल्टी गंगा बहाना आरम्भ किया। परन्तु पूरे सौ वर्षों के समय में उसकी धार अत्यन्त प्रबल और द्रुत होगई थी। उसको रोकना खेल न था। औरङ्गज़ेब ने पूरे ज़ोर से उसे बन्द करने का उद्योग किया। फिर जज़िया लगाई गई, फिर गोवध होने लगा, फिर मन्दिर ध्वस्त हुए। ललित कलाओं का लालित्य उसे विष-तुल्य था, क्योंकि वे धर्म्म के विरुद्ध थीं। शासन-पद्धति में भी अकबर के प्राचीन नियमों में परिवर्तन किये गये। तात्पर्य्य यह है कि उसने मुग़ल-सभ्यता के वास्तविक तत्त्व, भाव अथवा प्रवृत्ति के विरुद्ध पूर्ण उद्योग किया। परन्तु उसका प्रयत्न निष्फल हुआ। हिन्दूत्व-प्रधान मुग़ल-सभ्यता का पौधा पूरे सौ वर्ष के पालन-पोषण से इतना प्रौढ़, विशाल और स्वस्थ होगया था कि अब उसे निर्मूल करना बड़ा दुर्घट था। उसे काटकर गिराने के प्रयत्न में औरङ्गज़ेब ने मुग़ल-राज्य की ही जड़ पर कुठाराघात किया। उधर उस वृक्ष की रक्षा के लिए चारों ओर शत्रु उत्पन्न होगये। मराठों, सिक्खों और राजपूतों ने प्राण-पण से उसकी रक्षा की। औरंगज़ेब को उल्टी मुँह की खानी पड़ी। उसके जीवन ही में मुग़ल-साम्राज्य डाँवाडोल हो रहा था। जब वह मरा तब मुग़ल-साम्राज्य भी म्रियमाण और जर्जरित हो गया। उसके दिन अब समाप्त हो गये थे। अब दूसरा युग प्रारम्भ हुआ। मुग़ल-सभ्यता का ह्रास हो गया। इतिहास के विद्यार्थियों के लिए यह घटना बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

एकादशी।

(४)

ग्रेगरी का न तो स्वभाव अच्छा था और न वह देखने-सुनने में सुन्दर था। उसका क़द नाटा और शरीर की गठन बेडौल थी। उसके बदसूरत चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। पूरा जवान होने पर भी वह ढलती उमर का जँचता था। मैं उसे अच्छी तरह नहीं जान सकी थी तो भी मैं इतना अवश्य कहूँगी कि वह मुझे भीतर-बाहर से दुष्ट ही जँचा था।

जिस स्त्री से उसकी शादी हुई थी वह बड़ी भोली थी। संसार का छल-प्रपञ्च उसको छू तक न गया था। वह सुकुमार और बहुत निर्बल मालूम पड़ती थी। रूप-रंग और शरीर की गठन के अनुसार वह एक ही सुन्दरी होती, यदि उसके चेहरे पर दुःखसूचक भाव की छाया सदा न बनी रहा करती। उसका नाम एलिस था।

इन दोनों से मेरी भेंट मदरास के एक होटल में हुई थी। मैं उस होटल में कुछ हफ़्ते तक रही थी। पहले तो मैंने अनुमान किया कि वे पिता-पुत्री हैं। परन्तु जब मुझे सच्चा रिश्ता ज्ञात हुआ तब मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उस अल्पवयस्का लड़की की शादी ग्रेगरी जैसे बड़ी उमर के व्यक्ति के साथ होना मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभाविक नहीं जँचा। मैंने तुरन्त समझ लिया कि इसमें कुछ न कुछ भेद की बात अवश्य है।

अपनी स्वाभाविक उत्सुकता-वश मैंने उस स्त्री से परिचय करने का प्रबन्ध किया। मिलने पर पहले तो वह मुझसे झेपी और कुछ कुछ झिझकी भी। मुझसे बातें करते समय सहसा वह विचित्र प्रकार से झिझक कर इधर-उधर देखने लगी थी और उसके चेहरे से प्रायः भयसूचक भाव सा व्यक्त होने लगा था। मुझे उसके इस ढङ्ग से यह जान पड़ा कि मानो वह यह समझती थी कि उसका पति उसकी बग़ल में ही खड़ा हो और उसकी बातचीत सुनता हो। इससे मैं उससे सिर्फ़ साधारण बातें ही कर सकी।

उसका भेद जानने के लिए मैं उससे हेलमेल बढ़ाने लगी। एक दिन मैं उसके कमरे में एकाएक जा पहुँची। मैंने देखा कि एलिस रो रही है। यह स्पष्ट था कि उसका पति उससे निष्ठुर व्यवहार करता था। पर मुझको देख कर ग्रेगरी सँभल गया। उसने मुस्करा कर कहा—मिस रायन, क्या कहूँ। ज़रा सा भी इस प्रकार सिर में दर्द होने पर एलिस इसी तरह रो पड़ती है। यह कह कर वह अपने कमरे में चला गया। इसी दिन मुझे उन दोनों का रहस्य-भेद कुछ मालूम हो सका।

एलिस को दिलासा देते हुए मैंने पूछा—आज ही नहीं, तुम्हें मैं सदा दुःखी ही देखती रहती हूँ। बताओ न, शायद मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूँ। पहले तो उसने सदा दुःखी रहने की बात को स्वीकार ही नहीं किया। केवल यही कह दिया कि कभी कभी मैं अकेले में ऊबने लगती हूँ। मुझे कोई ऐसी स्त्री-मित्र चाहिए जो मुझसे प्रायः बातें किया करे। मेरा पति उमर में मुझसे कहीं ज़्यादा बड़ा है। वह मुझे मूर्ख समझता है। न तो मुझको उसके कामों से दिलचस्पी है और न उसको इसका ज्ञान है कि मैं उन्हीं बातों को पसन्द कर सकती हूँ जो मेरी जैसी उमर की लड़कियाँ किया करती हैं। मैंने पूछा—तब तुमने इस प्रकार के व्यक्ति के साथ शादी ही क्यों की? मेरा प्रश्न उसे बुरा लगा होगा, पर सच्ची बात मैं ऐसी ही चोट मार कर निकाल लेती हूँ। पर वह अपने उत्तर में अधिक स्पष्ट न हुई। तो भी मुझे उसका बहुत कुछ हाल मालूम हो गया।

उसके पिता डाक्टर मर्लिन को कौन नहीं जानता था। वे बँगलोर में रहते थे। डाक्टरी के पेशे और सोने की खान में हिस्सा होने से वे धनाढ्य होगये थे। उन्हें पुरातत्त्व से बड़ा प्रेम था। इधर कुछ समय से सब कुछ छोड़-छाड़ कर इसी के पीछे हाथ धोकर पड़ गये थे। एक साल हुआ, वे पुरातत्त्व की खोज में ब्रह्मदेश गये थे। वहाँ सीमावर्ती पार्वत्य देश में जंगली लोगों के हाथ से उनकी मृत्यु हो गई थी। देश के पत्रों में उनकी मृत्यु पर बड़ा शोक प्रकट किया गया था। एलिस के अपने पिता का नाम लेते ही मुझे ये सब बातें एक-एक करके याद आ गईं।

एलिस की मा बहुत पहले ही मर गई थी। इसलिए जब डाक्टर मर्लिन ब्रह्मदेश को जाने लगे थे तब वे अपनी कन्या अपनी बहन को सौंप गये थे। वह एलिस के साथ बंगलोर में मर्लिन के घर में ही रहती थी।

एलिस एकान्तप्रिय और शान्त स्वभाव की लड़की थी। लोगों के पास उठने-बैठने की उसकी आदत नहीं थी। इसके सिवा अपने पिता के सेक्रेटरी ग्रेगरी को छोड़ कर उसके साथ उठने-बैठनेवाला घर में कोई था भी नहीं। वह उसके पिता का पुराना नौकर था। जब डाक्टर मर्लिन डाक्टरी करते थे तब वह उनका कम्पाउण्डर था। सदा उनके साथ रहने से वह डाक्टरी और उनके प्रिय विषय पुरातत्त्व-सम्बन्धी वस्तुओं की भी देख-रेख करता था। यही नहीं, अपने मालिक की सोहबत से वह इन दोनों में निपुण होगया था। जब डाक्टर मर्लिन ब्रह्मदेश जाने लगे थे तब अपनी सारी सम्पत्ति का प्रबन्ध उसे सौंप गये थे।

इसमें सन्देह नहीं कि ग्रेगरी उस अबोध बालिका को पहले से ही अपने हाथ में करना चाहता था। उसके पिता के न रहने से उसको पूरा अवसर मिल गया। वह जानता था कि मर्लिन को एक-मात्र इस लड़की को छोड़ और कोई सन्तान नहीं है और अपने पिता की विशाल सम्पत्ति की अधिकारिणी अन्त में यही होगी।

जब मर्लिन की मृत्यु का समाचार बँगलौर पहुँचा तब उसके दो ही तीन दिन बाद उसकी बहन भी एकाएक इस संसार से चल बसी। वह एक स्वस्थ स्त्री थी। उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकस्मिक मृत्यु की जाँच भी हुई, पर कोई ऐसा परिणाम न निकला, जिससे किसी प्रकार का सन्देह हो।

इन दोनों दुर्घटनाओं के कारण एलिस बड़ी विचित्र स्थिति में पड़ गई। उसके आगे-पीछे कोई न रह गया। उसके दूर तक का भी कोई सम्बन्धी न था। एकाएक अपने ऊपर बड़ा भारी उत्तरदायित्व पड़ता देख कर वह भयभीत हो गई। इसी परिस्थिति के कारण वह ग्रेगरी के चङ्गुल में अनायास ही जा फँसी।

एलिस का प्रेम ग्रेगरी पर नहीं था। यह बात स्वयं उसने भी मुझसे स्पष्ट कह दी थी। अधिक मेल-जोल हो जाने पर ही वह अपने हृदय की बात कह देने पर प्रवृत्त हुई थी। वह मुझसे स्नेह सा करने लगी थी। जब से उसने स्कूल छोड़ा था तब से अब तक उसे ऐसा कोई भी न मिला था जिससे वह अपना दिल खोल कर बातें करती। उसकी बुआ का स्वभाव रूखा था और पिता रात-दिन पुरातत्त्व के चक्कर में पड़ा रहता था। घर में और कोई नहीं था जिससे वह घुल-घुल कर बातें करती।

एक दिन अपनी बातें करते-करते उसने रुँधे कंठ से मुझसे कहा—जब मैं अनाथिनी हो गई तब सारा कारबार मेरे सिर आ पड़ा। मुझे मालिक समझ कर नौकर-चाकरों ने मुझे आ घेरा। मैं कुछ जानती-बूझती नहीं थी। ऐसी दशा में मुझे अपने पिता के विश्वासी नौकर ग्रेगरी का आश्रय लेना पड़ा। उसने सारा प्रबन्ध बात की बात में सँभाल लिया। तुरन्त मुझे ज्ञात हो गया कि उसके बिना मेरा काम क्षण-भर नहीं चल सकता। यही नहीं, धीरे धीरे मैं इतना अधिक उसके प्रभाव में आ गई मानो उसने मुझ पर जादू कर दिया हो। यद्यपि मैं उसे नहीं चाहती तो भी मुझ पर उसका आज भी वैसा ही प्रभाव है। मैं किसी तरह उसकी बात टाल नहीं सकती। जो कुछ वह कहेगा वही करने को मैं बाध्य हूँगी। इतना कहकर उसने अपना सिर दोनों हाथों से थाम लिया और नीचे को मुँह करके रोने लगी। मैंने उसे बहुतेरा समझाया और दिलासा देकर पूछना चाहा। पर वह टस से मस न हुई। वह क्यों इस प्रकार ग्रेगरी के वशीभूत है, यह मैं कोशिश करने पर भी न जान सकी।

एक विशेष कार्यवश मुझे मदरास से ८-१० दिन के लिए बाहर चला जाना पड़ा। लौटती बार बँगलौर होकर आई। उसकी सैर करने की इच्छा से वहीं उतर पड़ी। स्टेशन पर एलिस से भेंट हो गई। मैंने पूछा—तुम कब आईं? उसने कहा—मेरे पिता जीवित हैं। अख़बारों में झूठी ख़बर छपी थी। यह सुनकर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई और उसे बधाई दी। मैंने पूछा—कैसे पता लगा। क्या उनकी कोई चिट्ठी या तार आया है? उसने कहा—हाँ, चलो, मेरे ही यहाँ ठहरो। वहाँ सब हाल बताऊँगी। उसके घर पहुँचने पर उसने अपने पिता का हाल कहना शुरू किया। उसने कहा—बात यह हुई कि वे क़ैद हो गये थे। बड़ी कठिनाई से बच सके, क़ैद से निकल भागे।

इस समय रंगून में हैं, शीघ्र ही मदरास आ जायँगे। शायद जहाज़ पर सवार भी हो गये हों। उन्होंने अपनी चिट्ठी में लिखा है कि मेरी मृत्यु की झूठी ख़बर पाकर तुमको बड़ा कष्ट हुआ होगा। मैं घर आने को उत्कण्ठित हो रहा हूँ। मैं वादा करता हूँ कि अब मैं घर ही में रहूँगा। कभी बाहर जाने का नाम भी न लूँगा।

उसकी बात-चीत से मालूम हुआ कि उनमें से किसी ने अपने विवाह की सूचना नहीं दी। ग्रेगरी ने तो एलिस को न लिखने को मना भी कर दिया था।

ऐसा करने का क्या मतलब था? एलिस जानती थी कि जब मेरे पिता को मेरी शादी की बात मालूम होगी तब वह सख़्त नाराज़ होगा, क्योंकि ग्रेगरी नीच कुलोत्पन्न है। इसके सिवा उसमें कुछ वैसे गुण भी नहीं थे। इसी से उसने भी इस मामले को कुछ समय तक छिपा रखना ही उचित समझा। एलिस की बात तो मेरी समझ में आ गई, पर ग्रेगरी ने अपनी शादी की बात गुप्त रखने के लिए अपनी स्त्री को क्यों बाध्य किया यह मैं न समझ सकी। क्या वह भी अपनी स्त्री की ही भाँति मर्लिन से डर गया था? एलिस से स्नेह हो जाने के कारण ही उसकी निज की बातों में मैं अधिक दिलचस्पी लेती थी। इसी से मेरे मन में कुछ सन्देह हुआ।

बँगलौर दक्षिण-भारत का ही नहीं, किन्तु सारे भारत के सुन्दर नगरों में गिना जाता है। यहाँ का जलवायु तो और भी बढ़कर है। एक इस कारण और दूसरे एलिस के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग्रह से मैं वहाँ तीन-चार दिन के लिए ठहर गई। एक दिन बाहर से घूम कर आई तब देखा कि एलिस बैठी रो रही है। कारण पूछा तो उसने कहा कि पिता जी आज-कल ही में यहाँ आ जायँगे। ग्रेगरी कहता है कि तुम पेंटन-हाल को चली जाओ। मैं अकेला यहाँ तुम्हारे पिता से पहले मिलूँगा। उस समय उनसे मैं अपनी शादी की बात कहूँगा। जब सब ठीक हो जायगा तब तुम मिलना। उसके पहले नहीं।

कहना तो उसका ठीक था। पर न मालूम क्यों मुझे सन्देह हो गया। और मेरे सन्देह की पुष्टि एलिस ने स्वयं कर दी। उसने सिसकते हुए कहा—उसकी यह बात सोचकर मुझे डर लगता है। मेरे पिताजी बड़े क्रोधी हैं। और ग्रेगरी—ओह! वह बड़ा भयङ्कर आदमी है। वह तरह-तरह के विषों का हाल जानता है। रात-दिन इसी सम्बन्ध की पुस्तकें पढ़ा करता है। आज सवेरे भी वह एक ऐसी ही पुस्तक में लीन था। यह कहते कहते वह मेरी ओर खिसक आई और आँसुओं से भरा अपना चेहरा उसने मेरी छाती पर रख दिया। उसने कहा—मुझे बड़ा डर लग रहा है। मैं इस समय सर्वथा निस्सहाय हूँ।

विष का नाम सुनते ही मुझे एलिस की बुआ की याद हो आई। उसकी मृत्यु एकाएक और विचित्र रूप से हुई थी। मैंने सोचा आश्चर्य्य नहीं, कहीं डाक्टर मर्लिन अपने घर पहुँचने पर किसी जोखिम में न पड़ जायँ। क्योंकि ग्रेगरी अपनी शादी की बात उससे छिपाना चाहता है। सम्भव है कि वह अपने रास्ते के इस काँटे को भी उसी प्रकार निकाल बाहर करे जैसे शायद उसने एलिस की बुआ को हटा कर अपना काम बनाया था।

मैंने कहा—एलसी, डरो मत। मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। अब मैं, जैसा कि सोचा था, कल नहीं जाऊँगी। मैं तुम्हारे पास रह कर तुम्हारी सहायता करूँगी। तुम ग्रेगरी से कहना कि मैं मिस रायन को अपने साथ पेंटन-हाल ले जाऊँगी। इस बात पर वह राज़ी भी हो जायगा।

मैंने ठीक अनुमान किया था। ग्रेगरी कुछ कहने-सुनने के बाद राज़ी हो गया।

डाक्टर मर्लिन का मकान बड़ा अद्भुत था। यहाँ उसका कुछ विवरण दे देना भी मैं उचित समझती हूँ। उसका एक कोना तक ख़ाली नहीं था। जहाँ देखो वहाँ पुरातत्त्व-सम्बन्धी नाना प्रकार की वस्तुएँ क़ायदे से रक्खी थीं। उस घर के दो कमरे अजायबघर में ही परिणत कर दिये गये थे। जिस दिन हम लोगों का पेंटन-हाल जाना ठीक हुआ था उसके एक दिन पहले एक बड़ा भारी पार्सल आया। इसे डाक्टर मर्लिन ने रंगून से भेजा था। ग्रेगरी ने मुझसे कहा—इसमें बड़ी अद्भुत वस्तु है। मैं समझता हूँ, तुम इसे देखना पसन्द करोगी। जब खोलूँगा तब तुमको अजायबघर में बुलाऊँगा।

ग्रेगरी को मैंने मदरास में ही अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। ग्रेगरी जैसे भोंदुओं को अपनी मुट्ठी में कर लेना मेरे बायें हाथ का खेल था। वह मुझसे बातें करने को लालायित सा रहता था। वैसे तो वह अपनी स्त्री तक से भी मुश्किल से दो-एक बात करता था। पार्सल खोलने पर उसने मुझे और साथ ही अपनी स्त्री को भी बुलाया। उस अजायबघर में एक मेज़ रक्खी थी। उस पर नई आई हुई वस्तुओं का वर्गीकरण किया जाता था। इसी मेज़ पर वह पार्सल रक्खा था। उसका ढकना हटा कर अलग रख दिया गया था। मैंने उसमें झाँक कर देखा तो बुद्ध भगवान् की एक शिला-मूर्त्ति देख पड़ी। वह एक अद्भुत मूर्त्ति थी। मैंने वैसी मूर्त्ति पहले कभी नहीं देखी थी। अन्य बातों के सिवा एक विशेषता यह थी कि उसके बीच माथे में एक बहुमूल्य रत्न जड़ा हुआ था। ग्रेगरी ने बताया कि यह एक ऐतिहासिक रत्न है, मूल्यवान् तो है ही। यह मूर्त्ति और रत्न उस ज़माने के हैं जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं—यह कह कर वह बड़ी गम्भीरता के साथ उसके इतिहास के सम्बन्ध में व्याख्यान सा झाड़ने लगा। परन्तु मैंने उसे ध्यान देकर नहीं सुना। मुझे ऐसी बातें पसन्द भी नहीं हैं। मेरा ध्यान एक-मात्र उसी पत्थर पर लगा था। उसे देखकर मेरी यही इच्छा हुई कि ऐसा कौन सा उपाय करूँ जिससे यह अद्भुत रत्न मेरे हाथ आ जाय।

ग्रेगरी कह रहा था—परसों आते ही मिस्टर मर्लिन सबसे पहले इसी को देखेंगे, विशेष कर इस माथेवाले रत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को। जब यह मूर्त्ति उन्हें मिली थी तब उनके एक बर्मी नौकर ने इस रत्न को चुरा लिया था, जिससे वह मर गया। उसने मरते समय इसे उनको लौटा दिया और उन्होंने इसे यथास्थान जड़ दिया। इस मूर्त्ति के साथ उन्हें एक शिला-लेख भी मिला था। उसे वे पढ़ नहीं सके। मैं उसको बड़ी कठिनाई से पढ़ पाया हूँ। उसमें लिखा है—जो कोई इस मूर्ति के साथ किसी प्रकार की छेड़-छाड़ या इसे अपवित्र करने का दुस्साहस करेगा उसकी तत्काल मृत्यु हो जायगी।

उसकी बातें सुन कर एलिस डर सी गई। वह वहाँ से कुछ हट कर जा खड़ी हुई।

उसने घबराकर कहा—अरे, वह बर्मी जिसने इस रत्न को चुरा लिया था शायद इसी कारण मर गया! अच्छा हो, यदि पिताजी इस भयङ्कर वस्तु को न छूवें। ग्रेगरी, उन्हें न छूने देना—यह कहते समय उसकी बोली लड़खड़ा सी रही थी।

ग्रेगरी ने कहा—अरे क्या कहती हो। ऐसे मिथ्या विश्वासों की हम लोग परवा नहीं करते। हाँ, मैं उनको शिला-लेख की बात बतलाऊँगा। जो मुनासिब समझेंगे, वही करेंगे। इन मामलों में उन्हें आज्ञा देना मेरा काम नहीं है। यह बात उसने कुछ मुँह बना कर कही। उसने फिर कहा—यदि किसी को एकाएक मरना ही था तो पहले मुझे मरना चाहिए। क्योंकि मैंने इसके साथ छेड़-छाड़ की है और अभी करूँगा। परन्तु मैं बात से कुछ भी नहीं डरता।

एलिस कुछ न बोली, वह घबरा गई थी। अतएव उसे वहाँ से हटा लाना ही मैंने मुनासिब समझा। मैं खुद भी आना चाहती थी।

बड़ी मुश्किल से मैं एलिस को धैर्य दे सकी। उसे मैंने जब उससे वादा कर लिया कि मैं उसके पिता को इस सम्बन्ध में सावधान कर दूँगी तब उसे कुछ ढाढ़स हुआ। हम दोनों ने आपस में तय कर लिया था कि पहले मैं ही मिस्टर मर्लिन से मिलूँगी। मैंने ठीक किया था कि मैं एलिस के साथ पेंटन हाल चली जाऊँगी। परन्तु यथासमय वहाँ से लौट कर गाड़ी आने के पहले ही स्टेशन पर जा बैठूँगी और वहीं मिस्टर मर्लिन से मिल कर सारी कथा कह सुनाऊँगी। मैं जानती थी कि ग्रेगरी उनका स्वागत करने के लिए स्टेशन पर नहीं जायगा। क्योंकि उनकी यह आज्ञा थी कि मुझसे मिलने के लिए कोई स्टेशन पर न आया करे।

उसी दिन दोपहर के बाद एक बात हो गई। ग्रेगरी के नाम एक तार आया। तार लेकर मैं उसे ढूँढ़ती-ढाँढ़ती अजायब घर में जा पहुँची। वह मेज़ के आगे कुर्सी पर बैठा हुआ था और एक तश्तरी में रक्खी हुई कुछ चीज़ों को मिला रहा था। तश्तरी के इधर-उधर दो बोतलें भी रक्खी थीं। वह अपने काम में इतना तन्मय था कि उसे मेरे आने तक की ख़बर न हुई। वह कुछ बुदबुदा रहा और अपना मुँह बना रहा था।

इसी बीच में एक असम्भव बात होगई। एलिस की एक काली बिल्ली थी। वह भी मेरे साथ अजायबघर में चली आई थी। इसका नाम निक था। मैं ग्रेगरी से कुछ कहूँ कि इतने ही में निक मेज़ पर उछल गई, जिससे ग्रेगरी के सामने रक्खी हुई बोतलें तथा दूसरी चीज़ें उलट-पुलट हो गईं। यही नहीं, उसके अगले पैर तश्तरी पर जा पड़े जिससे वह भी उलट गई और उसमें की चीज़ें गिरकर बिखर गईं। यह हाल देख कर ग्रेगरी को इतना अधिक क्रोध हुआ कि बिल्ली की गर्दन पकड़ कर वह उसे निर्दयता से हिलाने लगा। बेचारी बिल्ली बेतरह चीख़ रही थी, तो भी वह उसे मुक्कों से पीटता ही रहा। यदि मैं बीच में न पड़ जाती तो वह उसे मेज़ पर पटक कर मार डालता। बिल्ली को छोड़ कर वह मेरी ओर मुख़ातिब हुआ। उसने डाट कर कहा—तुमने यहाँ आने का साहस क्यों किया? तुम्हारी इस ताक-झाँक का क्या मतलब है? उसने अपनी काँपती हुई अँगुली से दरवाज़ा बता कर कहा—बस, जाओ।

मैंने कुछ नहीं कहा, यद्यपि क्रोध मुझे भी हो आया था। वह उस तश्तरी में क्या मिला रहा था, वे बोतलें और दूसरी चीज़ें किस मतलब से वहाँ रक्खी थीं, क्या कोई पैशाचिक कार्य तो नहीं कर रहा था, यही प्रश्न मेरे सिर में आकर चक्कर लगाने लगे। इतने में ही वह सँभल गया और एक प्रकार से उसने मुझसे क्षमा सी माँगी। उसने कहा—मैं एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक खोज कर रहा था। अपने कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में विघ्न हो जाने से मैं अपने को सँभाल न सका। परन्तु मुझे विश्वास हो गया कि अवश्य कुछ दाल में काला है। यह जान कर मुझे खुशी भी हुई। मिस्टर मर्लिन को सावधान कर देने के लिए मैं अब अधिक व्यग्र हो गई।

घटना-चक्र के इस परिवर्त्तन में भी मैं उस रत्न की बात न भूल सकी। सूर्यास्त के बाद जब कुछ रात हुई तब उसकी लालसा और भी अधिक बढ़ गई। मैं उसे चुरा लेने के लिए रह-रह कर बेचैन सी होने लगी। क्योंकि उसका उड़ा लेना भी सरल ही था। रात में अजायब-घर ख़ाली ही पड़ा रहता था। मैंने सोचा, इसके चुराने का सन्देह मुझ पर न होगा। मिस्टर मर्लिन जब आ जायँगे तब वे अपनी कन्या के विवाह की बात सुन कर इस ओर उतनी जल्दी ध्यान भी न देंगे। और जब स्वस्थ-चित्त होने पर अजायबघर में आवेंगे तब रत्न न पाकर उसके चुराने का सन्देह इसी दुष्ट ग्रेगरी पर ही होगा। इसके सिवा तब तक मैं यहाँ बैठी भी न रहूँगी।

काफ़ी रात बीत जाने पर मैं अजायबघर को रवाना हुई। मैंने एक छोटी लालटेन और एक बढ़िया चिमटी भी ले ली। इनके सिवा और मुझे किसी चीज़ की आवश्यकता भी नहीं थी। घर में सर्वत्र सन्नाटा था। नौकर दूर अलग कमरों में सो रहे थे। ग्रेगरी और उसकी स्त्री के कमरे भी अजायबघर से दूर ही थे। किसी प्रकार की बाधा की सम्भावना नहीं थी।

यद्यपि मैं मिथ्या बातों में विश्वास नहीं करती, तो भी जब मैं उस अजायबघर के पास पहुँची तब मैं कुछ कुछ काँपने लगी। मुझे उस शिला-लेख का स्मरण हो आया। परन्तु जब मैं किसी काम को करने के लिए तैयार होती हूँ तब मैं फिर पीछे पैर नहीं रखती। यह मेरी पुरानी आदत है। अजायबघर में घुस जाने पर एकाएक मैं ठहर गई। क्योंकि मेज़ पर मुझे एक प्रकार का हलका हरा प्रकाश देख पड़ा। मैंने अनुमान किया कि शायद यह उस रत्न का ही प्रकाश है। परन्तु शीघ्र ही मेरा अनुमान ग़लत साबित हुआ। मुझे कुछ आहट सुनाई पड़ी। इसके बाद एक भयङ्कर दृश्य मैंने देखा, प्रकाश के एक नहीं, दो हरे-हरे दाग़ मेरी ओर ताक रहे हैं। वे दोनों उतने ही अन्तर पर एक दूसरे से थे जितने अन्तर पर आँखें होती हैं। मुझे ऐसा समझ पड़ा, मानो वह पत्थर की मूर्त्ति उठ कर खड़ी हो गई है और घूर कर मुझे धमका रही है।

मैं भौचक सी होकर अपनी जगह पर खड़ी रह गई। यही नहीं, भय से मेरे मुँह से ज़ोर की एक चीख़ भी निकल गई। मैं बदहवास सी हो गई। मैं नहीं जानती कि मैं क्या करती रही। जब मुझे अपने पास प्रकाश का ज्ञान हुआ और ग्रेगरी को खड़ा देखा तब मुझको होश आया।

इसके बाद की बातें इतनी शीघ्रता से होती गईं कि मैं उनका वास्तविक रूप तक नहीं वर्णन कर सकती। हम दोनों मेज़ के किनारे खड़े थे। ग्रेगरी के लैम्प के प्रकाश से मुझे मालूम हो गया कि वह कौन चीज़ थी जिससे मैं इतना डर गई थी। वे दोनों हरे प्रकाश बिल्ली की आँखें थीं। निक उस पार्सल के पास दबकी बैठी हुई गुर्रा रही थी। पर ग्रेगरी ने उसे नहीं देखा था। वह भी उत्तेजित था। मेज़ के पास से मुझे ढकेल कर वह चिल्ला उठा—क्या तुमने उस रत्न को निकाल लिया है? यह कह कर वह क्रोध से अनाप-शनाप बकने लगा। निक ने उसे पहचान लिया था। वह एकाएक झपट पड़ी, ग्रेगरी अपना बचाव नहीं कर सका और उसने उसका गला जा दबोचा। मैं नहीं कह सकती कि इसके बाद क्या हुआ। क्योंकि वह दृश्य देख कर मैं भयभीत हो कर बेहोश हो गई।

* * * *

अब मैं थोड़े ही शब्दों में इस हाल को समाप्त किये देती हूँ। मैं भले ही बेहोश हो गई थी, क्योंकि मैं एक अत्यन्त भयङ्कर दृश्य देखने से बच गई। मृत्यु की पीड़ा में ग्रेगरी का फ़र्श पर लोट-लोट कर तड़फड़ाना मुझे नहीं देखना पड़ा। बात यह हुई थी कि ग्रेगरी उस तश्तरी में कोई अमोघ विष तैयार कर रहा था। वह विष उस बिल्ली के पञ्जे में लगा रह गया था। इसी से ग्रेगरी की तत्काल मृत्यु हो गई, क्योंकि बिल्ली के नाखून उसके गले में अच्छी तरह धँस गये थे।

ग्रेगरी ने उस रत्न को इसी भयङ्कर विष से तर कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था। उसने उसके आस-पास के सुवर्ण की निकली हुई नोकों को इस प्रकार ठीक किया था कि जो कोई उस रत्न को निकालने का प्रयत्न करता उसकी अँगुली उनसे अवश्य छिद जाती और वह उस अमोघ विष का शिकार हो जाता। इस प्रकार वह मिस्टर मर्लिन के प्राण ले लेता और उस पर कोई सन्देह भी न करता। क्योंकि तब यह दलील उपस्थित की जाती कि विष तो उसमें पहले ही से मौजूद था। परन्तु धन्यवाद है निक को जिसकी बदौलत मैं बाल-बाल बच गई।

अन्त में सभी बात ठीक हो गई। एलिस उस दुष्ट के चङ्गुल से निकल गई और मैं भी किसी प्रकार घाटे में न रही।

भारद्वाज

जू।

धीरे धीरे संसार से प्राचीन जीव-जन्तुओं का लोप होता जा रहा है। यहाँ तक कि उनमें कुछ के नाम भर शेष रह गये हैं। पूर्वेतिहासिक काल में मैमथ नाम का एक प्राणी था। इसका संसार में अब नाम-मात्र ही रह गया है। रूस के पेट्रोग्राड (लेनिन ग्राड) नगर के अजायब-घर में इसके अस्थिपञ्जर रक्खे हैं। इसका जो शव सैबेरिया के हिमावृत भूभाग में बर्फ़ के नीचे दबा हुआ मिला था उसी का यह अस्थि-पञ्जर है। उसका पता रूसी सैनिकों को लगा था। एक बार जब वे वहाँ गश्त लगा रहे थे तब उन्होंने भेड़ियों के एक दल को एक ग्लैसियर के टीले पर एकत्र देखा। उन्हें खदेड़ कर जब उन्होंने उस टीले को ध्यान से देखा तब वह उनको कुछ विचित्र सा मालूम हुआ, वह भूरा मायल और चमड़ीला सा जान पड़ा। इसके सिवा उसमें एक बड़ा भारी छिद्र भी देख पड़ा। सैनिकों का सरदार कुछ पढ़ा-लिखा था। उसने सोचा, सम्भव है, इसमें मैमथ की लाश हो। अतएव उसने वहाँ पहरा बिठा दिया और सारा विवरण राजधानी को लिख भेजा। शीघ्र ही वैज्ञानिक लोग वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने बर्फ़ के नीचे से मैमथ की एक समूची लाश खोद निकाली। बर्फ़ के नीचे दबी रहने के कारण वह नष्ट नहीं हुई थी। उसके बाल, चमड़ा, मांस, दाँत ज्यों के त्यों सब मौजूद थे। केवल सूँड़ का छोर, जिसे भेड़ियों ने खुरच खाया था, नदारद था। वैज्ञानिकों ने उसकी खाल खींच और अस्थि-पञ्जर निकाल कर उन्हें पेट्रोग्राड भेज दिया, जहाँ खाल लगा कर वह जैसा का तैसा फिर खड़ा कर दिया गया। इस प्रकार इस नामशेष पूर्वेतिहासिक-काल के एक अद्भुत जन्तु का आकार-प्रकार जानना सभ्य संसार को सुलभ हो गया। इस अतीतकाल के जन्तु के दाँतों का व्यापार अभी तक होता है। पियानो बाजे की चाभी और दाँत साफ़ करने के ब्रुश के दस्ते इसकी हड्डी के बनाये जाते हैं।

यह तो हुआ उन जानवरों में से एक का उदाहरण जिनका अस्तित्व संसार में नहीं है। अब उनका हाल सुनिए जो धीरे धीरे संसार से लोप हो रहे हैं। सभ्य देशों की जू अर्थात् पशु-शालाओं में इनके नमूने हमें देखने को मिल सकते हैं। पहले ग्रेटब्रिटेन में एक प्रकार की जङ्गली बिल्ली बहुतायत से मिलती थी। शिकार के पक्षियों को मार खाने में ये बिल्लियाँ बड़ी तेज़ होती हैं। इस कारण लोगों ने इन्हें फाँस फाँस कर मार डाला। पिछले समय में इनका एक-मात्र अड्डा स्काटलैंड का पहाड़ी भूभाग रह गया था। पर शिकारियों ने इसको यहाँ से भी निःशेष सा कर दिया है। यदि ये शीघ्र ही पड़ोस के किसी ऐसे निर्जन टापू में न कर दी जायँगी, जिसमें ख़रगोश ख़ूब पाये जाते हों, तो शायद इस जाति का वंश और दो एक पीढ़ी तक न चल सकेगा। लन्दन के जू में हम इनका नमूना देख सकते हैं।

इसी प्रकार न्यूज़ीलैंड के कीवी नामक अद्भुत पक्षी का भी विनाश हो गया है। यह बेचारा उड़ नहीं सकता। इसके पर बाल जैसे मालूम पड़ते हैं। इसके नथुनों के छिद्र चोंच के सिरे पर होते हैं, दूसरे पक्षियों की तरह चोंच की जड़ के पास नहीं होते। घ्राण-शक्ति इसमें अद्भुत होती है। ज़मीन में अपनी चोंच गाड़ कर यह कीड़े-मकोड़े खोज खोज कर खाया करता है। सदा छीकता सा ही रहता है, बारहों महीने ज़ुकाम सा बना रहता है। परन्तु अब यह दुर्लभ सा हो गया है। इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनाश का कारण इसका अण्डा है। यह एक ही अण्डा देता है, जो आकार में इसके शरीर के बराबर होता है। अब तक तो इसका अस्तित्व मिट गया होता। पर यह रात में ही निकलना पसन्द करता है और अपने परों के रंग के कारण अन्धकार में दिखाई भी नहीं देता। इसी से आज भी इसका अस्तित्व बना हुआ है। इसके सिवा न्यूज़ीलैंड की सरकार ने भी इसकी रक्षा का प्रबन्ध कर दिया है। इस कारण यह वहाँ आज भी अपना अस्तित्व बनाये हुए है। लन्दन के ज़ू में यह अद्भुत और दुर्लभ पक्षी अपने तृण के बिस्तरे में इस प्रकार छिपा सा बैठा रहता है कि दर्शकों को दिखाई ही नहीं देता।

वास्तव में आस्ट्रेलेशिया का विशाल भू-मण्डल विचित्र जीवों की निवास-भूमि है। बत्तख़ की चोंचवाला और चिउँटीख़ोर जन्तु यहीं पाये जाते हैं। ये दोनों अण्डे देनेवाले जन्तुओं की श्रेणी में गिने जाते हैं। लन्दन के ज़ू में जो चिउँटीख़ोर रहता है वह यहाँ दस वर्ष से है। तो भी वह अपने स्थान में छिपा सा पड़ा रहता है। कभी किसी को अपना मुँह नहीं दिखाता। जब देखो तब सिर छाती से लगाये पड़ा सोया करता है। खाने की भी उसे सूर्यास्त की घंटी के समय ही चिन्ता होती है। बस चुपचाप अपने घास के बिस्तरे पर पड़ा रहता है। बत्तख़ की चोंचवाला जानवर पानी में रहता है। इसके ज़हरीले काँटे होते हैं, पर उनका प्रयोग वह मनुष्य पर नहीं करता। अभी तक यह लन्दन के ज़ू में नहीं पहुँचा है। इसका कारण इसके भोजन का प्रबन्ध न हो सकना है। पर इस पर विचार हो रहा है। वालरस नामक जो ध्रुव-देशीय जन्तु ज़ू में है उसके लिए भोज्य सामग्री उत्तरी ध्रुव से मँगाई जाती है। अतएव ज़ू के अधिकारियों के लिए इस जन्तु के भोजन का प्रबन्ध कर लेना असम्भव नहीं है। जो वालरस ज़ू में है उसके खाने में २५ शिलिंग रोज़ का ख़र्च बैठता है! उसका नाम ओल्डबिल रक्खा गया है। यह पहला ही वालरस है जो इँग्लैंड का ग्रीष्म-ऋतु पार करने में समर्थ हुआ है।

परन्तु ये अद्भुत जन्तु अत्यधिक सावधानी रखने पर भी ज़ू में प्रायः मर जाते हैं। ऐसे अप्राप्य जीवों का इस प्रकार मर जाना वास्तव में ज़ू में एक खेदजनक घटना होती है। पैटागोनिया से ऐसे हंस का एक जोड़ा लाया

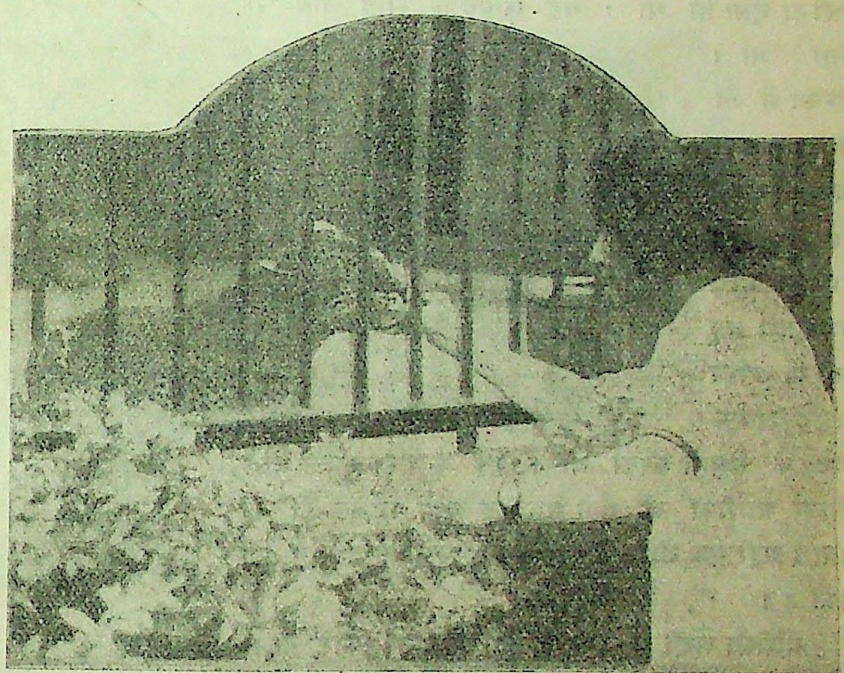

चीता और मिस कैलो।

गया था जो अब अप्राप्य है। वहाँ वे पक्षी जनवरी महीने में अण्डे देते थे। उस समय वहाँ ग्रीष्म-ऋतु होती है। अतएव यहाँ भी उन्होंने जनवरी में ही अण्डे दिये। जिसका फल यह हुआ कि शीत के कारण अण्डे न पके और उनकी वंश-वृद्धि न हो सकी। यह भी ज़ू के लिए एक प्रकार की दुर्घटना ही हुई।

गोरीला का स्वभाव बड़ा तीखा होता है। ज़ू में भी उसका कटु स्वभाव जैसा का तैसा ही बना रहता है। यहाँ तक कि उसके छोटे छोटे बच्चे भी लाकर रक्खे गये, पर उनके स्वभाव में भी अन्तर नहीं हुआ। शिम्पान्ज़ी का बच्चा तो अपने रक्षकों को बहुत ही तङ्ग करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह यही चाहता है कि कोई न कोई उसके पास हर वक़्त बैठा रहे। अतएव जब कभी रक्षकों को किसी कार्यवश बाहर जाना होता है तब वे बेचारे उसके पींजड़े में बन्दर बिठाकर अपने काम को जाते हैं। पर गोरीला के बच्चे को इसकी रत्ती भर परवा नहीं रहती। कोई उसके पास रहे या न रहे। यदि उसके पास कोई आदमी सदा बना रहे और उसके साथ प्रेम का व्यवहार किया करे तो धीरे धीरे वह सध भी जाता है। जू का जान डेनियल नामक गोरीला ऐसा ही था। वह क़ायदे के साथ चाय पी लेता था। वास्तव में जो स्त्री उसकी रक्षक थी उसके वह वशीभूत हो गया था। जो आज्ञा वह देती थी उसका पालन वह एक बच्चे के समान करता था। एक अमेरिकन उसे मोल लेकर अमरीका ले गया था, पर वहाँ पहुँचते ही मर गया। यही एक गोरीला अब तक मनुष्य के वश में आ सका है।

ईगल पक्षी और मिस कैलो।

गोरीला श्रेणी के बन्दरों का भी धीरे धीरे नाम-निशान मिट रहा है। ये अब केवल पूर्वी अफ़्रीका के कीयू नामक देश में मिलते हैं। इनका विनाश न हो जाय, इस बात की व्यवस्था की ओर सरकार का ध्यान गया है। युद्ध के पहले यह देश जर्मनों के अधिकार में था। गोरीला फल खा कर रहता है और वह मनुष्य पर चोट नहीं करता।

परन्तु संसार में जिन जन्तुओं का नामशेष हो रहा है और जिनके लिए देश के भागविशेष रक्षित कर दिये गये हैं वे स्वयं कभी कभी अपने अनाचार से मनुष्य के इस प्रबन्ध में गड़बड़ कर बैठते हैं। उदाहरण के लिए दक्षिण-अफ़्रीका के अडोबुश नामक स्थान के हाथियों को ही लीजिए। सरकार-द्वारा ये रक्षित ठहरा दिये गये थे, उनका शिकार करना वर्जित कर दिया था। पर जब वे पड़ोस की खेती उजाड़ने लगे तब उनके मार डालने का हुक्म अन्त में सरकार को दे ही देना पड़ा। फलतः वहाँ के सब हाथी मार डाले गये। जिसमें उनका पूर्णरूप से विनाश न हो जाय, सरकारी आज्ञा से १६ हाथी मार डालने से बचा दिये गये हैं। अफ़्रीका के हाथी, हिरन और जङ्गली भैंस पाले जा सकते थे और इस प्रकार इनकी रक्षा सम्भव थी, पर वहाँ के मूल-निवासियों में ऐसी मानव-बुद्धि आज तक पैदा ही नहीं हुई।

मिस्र-देश के प्रसिद्ध बगले की रक्षा तो लार्ड किचनर की बदौलत हुई थी। नहीं तो इस पक्षी का आज अस्तित्व ही मिट गया होता। देश के जिस भाग में यह पक्षी बच गया था, वहाँ उन्होंने पहरा बिठा दिया और इसका शिकार करना वर्जित कर दिया। इसके सिवा भिन्न भिन्न स्थानों में अनेक सभायें की गईं, जिनमें लोगों को यह बताया गया कि यह बगला उन कीड़ों को खाता है जो कपास की खेती के विनाशक हैं। फिर क्या पूछना था। सर्व-साधारण स्वयं इसकी रक्षा को उतारू हो गये। परिणाम यह हुआ कि पर के लोभी व्यापारियों को अपना व्यापार बन्द कर देना पड़ा और मिस्र के इस सुन्दर पक्षी का संसार से अस्तित्व लोप हो जाना आगे के लिए टल गया।

जू में हम भिन्न भिन्न प्रकार के अद्भुत जीव-जन्तुओं को देख कर अपना कौतूहल दूर कर सकते हैं। पर सबसे अधिक आश्चर्य हमें उस समय होता है जब हम यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

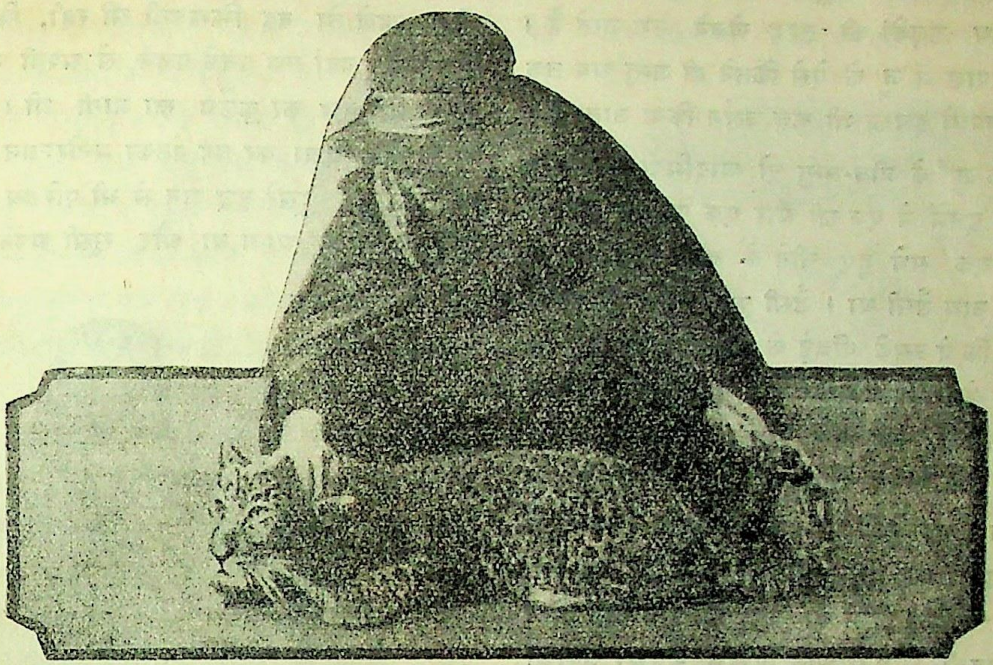

चीता और मिस कैलो।

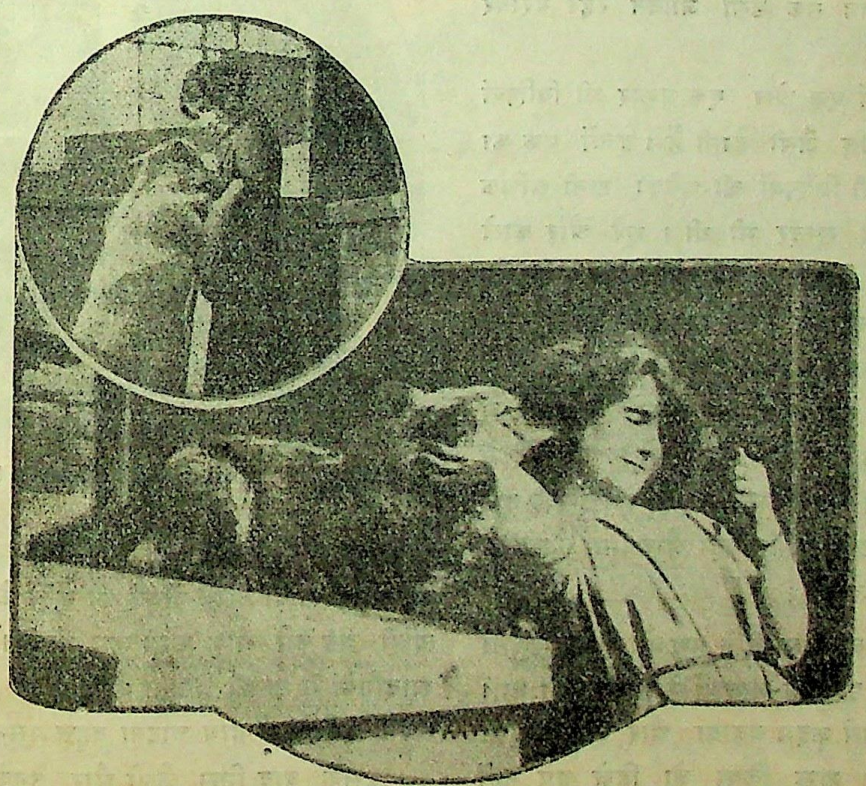

भेड़िया और मिस कैलो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखते हैं कि शेर जैसे भयङ्कर हिंस्रक जन्तु यहाँ आकर मनुष्यों के साथ लड़कों की तरह खेलने लग जाते हैं। मनुष्य के प्रेमपाश में ज़ू के ऐसे कितने ही जन्तु अब तक आ चुके हैं। आगे इसका भी कुछ वर्णन किया जाता है।

लन्दन के ज़ू के जीव-जन्तु दो आदमियों से बे-तरह हिल गये हैं। इनमें से एक स्त्री और एक पुरुष है। पहले पहल इन्होंने एक सधे हुए चीते के बच्चे से मित्रता की थी। इसका नाम डैसी था। डैसी कुछ लोगों से इतना हिल गया था कि वे उसके पींजड़े के खुले द्वार पर खड़े रह कर उसके सिर को थपथपा सकते थे। पूर्वोक्त स्त्री, जिनका नाम मिस कैलो है, जब तक उसका लाड़-प्यार करती रहती तब तक वह अपने स्थान से हटने की इच्छा तक नहीं करता था। यही नहीं, वह अपने रक्षक के कन्धे से अपना पंजा हटा कर मिस कैलो के कन्धे पर रख देता था। इस बात से मिस कैलो को कुछ भी भय नहीं होता था। यद्यपि उनकी मित्रता अन्य हिंस्रक भयङ्कर जन्तुओं सी थी, तो भी चीते की मित्रता उनके लिए नई बात थी और यह मित्रता जब तक डैसी जीवित रहा बराबर बनी रही।

डैसी के ही घर में एक ओर एक प्रकार की बिल्लियाँ रक्खी गई हैं। ये रीछ जैसी होती हैं। इनमें एक का नाम टानी था। दूसरी बिल्लियों की अपेक्षा टानी अधिक सीधी-सादी थी। बड़ी सुन्दर भी थी। भूरे और काले बालों का ढेर सा थी, जिसमें इसके छोटे छोटे सुफ़ेद पैर खूँटी से लगे जैसे थे। वास्तव में यह लड़कों का खिलौना सी मालूम पड़ती थी। बच्चे इसे प्रायः दुलराया भी करते थे और जब तक इसकी दुम कोई खींच नहीं लेता था, चूँ नहीं करती थी। एक बार मिस कैलो इसे अपनी गोद में लिये खड़ी थीं। इतने में किसी लड़के ने इसकी दुम खींच ली। इस पर टानी बिगड़ पड़ी और मिस कैलो की छाती बे-तरह खरोच डाली।

मिस कैलो और उनके साथी ने पशुओं से मेल करना पहले-पहल सधे हुए ही जीव-जन्तुओं से शुरू किया था। इसके बाद उन्होंने आगे क़दम बढ़ाया और उन जन्तुओं से मेल-जोल बढ़ाना शुरू किया जो हिले हुए नहीं थे। पहले उन्होंने दक्षिणी अमरीका की सूसी नामक एक जङ्गली बिल्ली से जान-पहचान की। सूसी बड़ी सुन्दर थी। पहले तो वह झिझकती सी रही, किन्तु बाद को हिल गई। यहाँ तक उनके कहने से अपनी टाँगों के बीच अपना सिर रख कर कुलेंच खा जाती थी। इस प्रकार अपना खेल दिखा कर वह उनका मनोरञ्जन करती थी। सूसी से एक दूसरे वृद्ध जन से भी परिचय था। प्रत्येक शनिवार को वह आता था और सूसी अपने दोनों पञ्जों

बिनी, केनाडा का भालू।

से उसकी लम्बी सफ़ेद डाढ़ी झाड़ दिया करती थी। ज्योंही वह अपनी डाढ़ी उसके पींजड़े की छड़ों के बीच कर देता, त्योंही वह उसे साफ़ करने लग जाती। बस, उन्हीं तीन आदमियों से उसकी मित्रता थी। सूसी को कूदना और अपने साथियों के हाथ चाटना बहुत पसन्द था।

इसके बाद मिस कैलो और उनके साथी ने अल-फ़ोन्सी नामक एक नेवले की जाति के जन्तु को हिलाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहा। उसके रक्षक ने उनसे बता दिया था कि अलफ़ोन्सी दुष्ट है और काट खाता है। तो भी वे दोनों पशु-प्रेमी दुष्ट अलफ़ोन्सी को हिलाने लगे। एक दिन उन्होंने उसे ख़रगोश की टाँग दिखाई। उसे देखते ही वह उस पर बाज़ सा आ टूटा। बस उसी दिन से वह उनका मित्र बन गया। फिर क्या था। मिस कैलो उसके पींजड़े में जा घुसतीं और अलफ़ोन्सी उनके कहने पर उनकी देह पर चढ़ आता और अपना एक हाथ उनके गले में डाल कर प्रेम दिखाने लगता। यह सच है कि पहले-पहल एक बार उसने उनके साथी के हाथ में काट खाया था। पर जब वह हिल गया तब उसने काटने की आदत ही छोड़ दी। फिर कभी उसने किसी को नहीं काटा। अलबत्ता एक बार उसने एक चूहे के दो टुकड़े कर डाले थे जो उसके पींजड़े में घुस गया था।

राजा की तो बात जाने ही दीजिए, मिस कैलो के मित्र ने अब्दुल्ला और फ़ातिमा नामक दो शेरों से भी

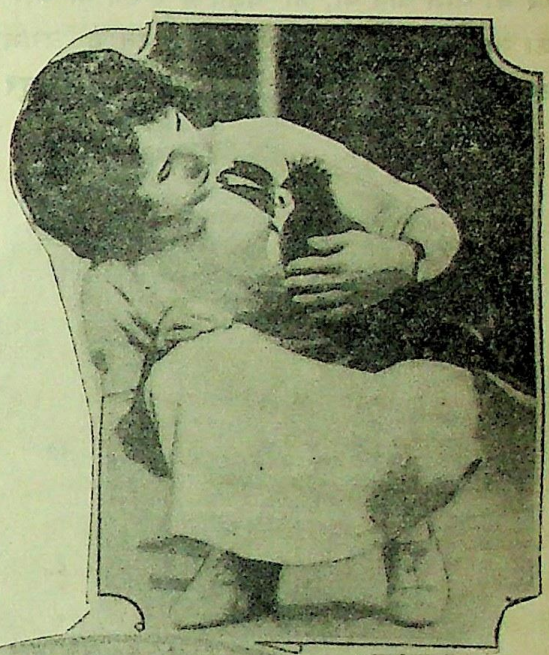

मिस कैलो और हार्नबिल नाम का एक पक्षी।

यह बात सच है कि जू के कुछ जन्तु मनुष्यों से बिलकुल ही रब्त-ज़ब्त नहीं रखना चाहते। ध्रुवदेशी भालू, कुछ व्याघ्र, कुछ गैंड़े और कुछ बड़ी चिड़ियाँ इस श्रेणी में हैं। पर दूसरे जन्तु ऐसे नहीं होते। वे बुलाने पर आ जाते हैं। हाँ, व्यवहार करने में स्वतन्त्रता नहीं देते, यह सच है। पर धैर्य और उद्योग से अधिकांश जन्तु मनुष्य का विश्वास करने लग जाते हैं। जू के राजा नामक एक बड़े भारी व्याघ्र को उसके रक्षक हापगुड ने इतना साध दिया था कि अनेक दर्शक तक उसके मस्तक को थपथपा सकते थे और वह चूँ नहीं करता था। लोगों से वह इतना अधिक हिल गया था और उसका स्वभाव इतना शान्त हो गया था कि एक बार जब मिस कैलो के साथी उसका चित्र ले रहे थे तब उन्होंने उसे लात से ढकेल कर सीधा बिठाया था, पर उसने अपने उग्र स्वभाव का ज़रा भी परिचय नहीं दिया था।

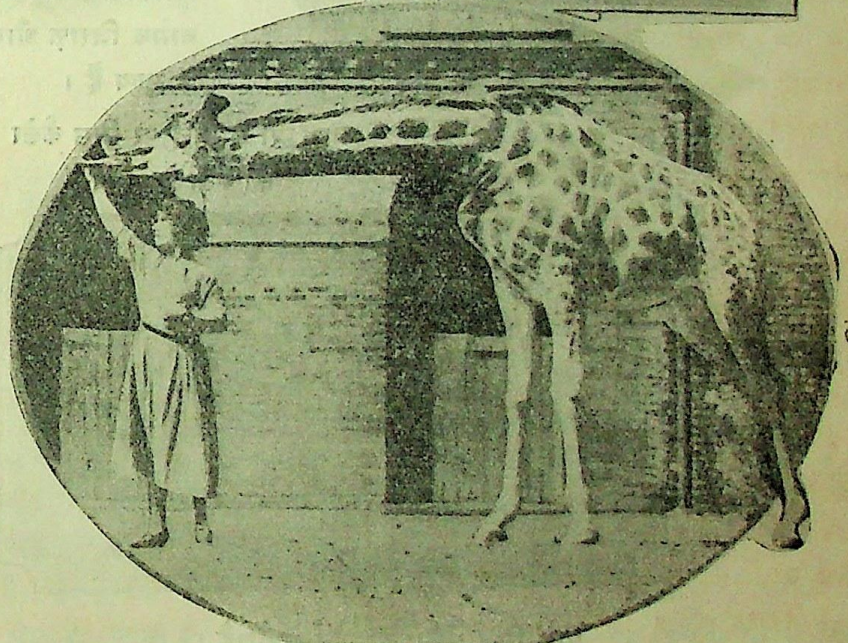

मिस कैलो और जियाफरे।

मित्रता की थी। ये दोनों भी सधे हुए थे। वे इनके पींजड़े में घुस जाते और इनकी पूछ पकड़ कर खींचा करते थे। जू में जार्ज नामक एक और शेर था। यह बहुत ही सध गया था। मिस कैलो इस पर सवार तक हुई थीं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके साथी ने इसके साथ रस्सा खींचने का खेल खेला था। वहाँ के दो दरियाई घोड़ों से भी उनकी मित्रता थी। इनमें नर का नाम बाब था, जो वज़न में ३ टन था और मादा का नाम जोन था, जो वज़न में एक टन के लगभग या उससे कुछ ऊपर होगी। वे पहले जोन से दूर ही दूर रहते

पाण्डेचेरी के गिद्ध पर मिस कैलो का बड़ा प्रेम है।

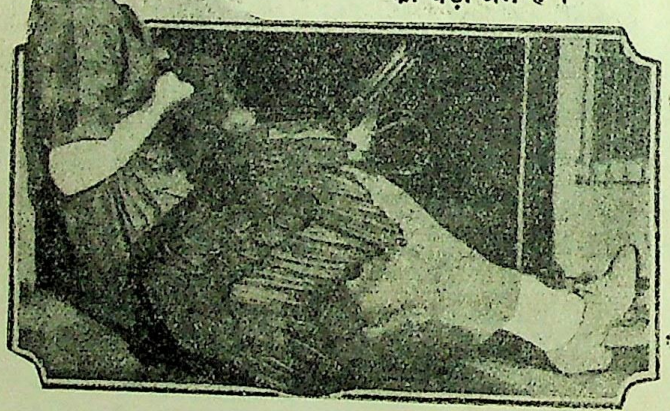

गिद्ध मिस केलो की गोद में बैठा है।

थे, पर बाब की पीठ पर मिस कैलो के साथी ने बैठ कर एक मुलायम गद्दे का सुख प्राप्त किया था। मिस कैलो जोन के घर में पहले-पहल उसके रक्षक के साथ गई थीं। उनके सदा आते-जाते रहने से जोन उनकी आवाज़ से परिचित थी। अतएव जब उन्होंने उससे अपना मुँह खोलने को कहा तब उसने तुरन्त मुँह खोल दिया। इस पर मिस कैलो ने उसके मुँह में एक नारङ्गी डाल दी, जिसे वह खा गई। उसे नारङ्गी का स्वाद अच्छा लगा जैसा कि उसके ढङ्ग से प्रकट हुआ। थोड़ी देर में मिस कैलो की उससे घनिष्ठता हो गई। नारङ्गी ने अपना पूरा काम कर दिखाया। फिर क्या पूछना था। दूसरी बार जब ये लोग उनके घर में गये तब मिस कैलो तो सीधे-सादे बाब की गर्दन पर सवार तक हुईं और बड़े मज़े के साथ उसकी स्त्री जोन को वहीं बैठी खिलाती रहीं। ये दोनों उन्हें पहचान गये थे, इसी से कुछ नहीं बोलते थे। अपरिचितों को इतनी स्वतन्त्रता देने को ये तैयार नहीं थे और यदि कोई दुस्साहस कर बैठता तो उसके हक़ में अच्छा होने की सम्भावना न थी।

मिस कैलो और उनके साथी ने जू के विभिन्न पशुओं को अपना मित्र बना लेने में कमाल कर दिखाया है। बक और बेना नामक भेड़िये, पंच नामक लकड़बग्घा, एक भारतीय नील गाय, जार्ज नामक बुलबुल, मैगी तथा माड नामक जिराफ़ और बिल नामक चीता उनके मित्र-पशुओं में मुख्य हैं।

अफ़्रीका से एक पहाड़ी चीते का बच्चा आया था। वहाँ के पहाड़ी चीते अधिक भयङ्कर होते हैं। उसका स्वभाव बड़ा उग्र था, सदा गुर्राता ही रहता था। अतएव उसके रक्षक ने मिस कैलो से उसके सम्बन्ध में सावधान कर दिया था। पर जब ये जू जाते तब उसके पास अवश्य हो लेते। उसको जू में आये तीन हफ़्ते हो गये थे। एक दिन उसको देख कर जाते समय जब उन्होंने लौट कर उसे फिर देखा तब उसे छड़ों के पास खड़ा पाया। वह अपनी पूछ सीधी किये हुए धीरे धीरे गुर्रा रहा था। उसके ढङ्ग से उन्हें प्रकट हो गया कि दूसरे जन्तुओं की तरह वह भी थपथपवाना चाहता है। यह बात जानकर पशु-प्रेमी भला कैसे थम सकते हैं। मिस कैलो तुरन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौट पड़ीं और उसके पास जाकर उसकी टुड्ढी के नीचे सुहलाने लगीं। परन्तु वह अपनी पीठ सुहलवाना चाहता था। अतएव वह पीछे आगे आकर अपनी देह उनके अँगुलियों से अपने आप रगड़ने लगा। इस प्रकार यह भयङ्कर चीता भी उनका मित्र बन गया। दूसरे लोगों को तो वह अपने पास नहीं फटकने देता था, उन्हें डाँट बताने से वह कभी नहीं चूकता था। पर उन लोगो से उसका प्रेम हो गया था। वे उसे मांस के छोटे छोटे टुकड़े खिलाया करते थे। और जब कभी हड्डी लगा मांस उसे देते तब वह उन्हें हड्डी लौटा कर दे देता। यही नहीं, हड्डी देने-लेने का खेल भी कुछ देर तक उनमें होता रहता। यह खेल विशेष मित्र-भाव का सूचक था। दो एक वर्ष बाद जब वह अधिक हिल गया तब मिस कैलो उसका भारी सिर अपने हाथों में लेकर आमने-सामने बैठ जाया करती थीं। पर वे उसके घर के भीतर कभी नहीं गईं।

जू में कनाडा का बिनी नामक एक भालू था। लोगों से यह बहुत हिल गया था। इसके घर में राजघराने के लोग भी हो आये हैं, जिनको इसने अपने खेल-कूद से प्रसन्न किया था। यह एक खेल किया करता था। इसका रक्षक अपने मुँह में गाजर लेकर खड़ा हो जाता और यह उसे अपने मुँह से लेकर खा जाता। पहले-पहल जब मिस कैलो इसके घर में गईं और इसका यह खेल देखा तब उन्होंने भी वैसा ही करना चाहा। जब वे भी गाजर अपने ओंठों से दाब कर इसके सामने खड़ी हुईं तब इसने उनके भी मुँह से गाजर लेली।

गिद्धों को लोग कम पसन्द करते हैं। ये सुन्दर भी नहीं होते। पर यदि इनसे किसी का मेल हो जाता है तो उनके प्रेम-भाव का पूरा पता लग जाता है। जू में पाँडेचरी का एक गिद्ध था। पहले मिस कैलो ने उसे पींजड़े के बाहर से ही हिलाना शुरू किया। बाद को जब वे इसके पींजड़े में गईं तब उसे उठा कर अपनी गोद में ले लिया और उसकी छाती सुहलाने लगीं। वह बड़े आराम से चित पड़ा रहा, मानों पींजड़े में बैठा हो। फिर तो उन्होंने और भी कई एक गिद्धों को साध लिया। इनमें एक का नाम मैक था। मैक का स्वभाव ख़राब था। एक बार उसने एक आदमी पर चोट भी की थी। इस कारण

हिपोटोमस और मिस कैलो।

उसके पास कोई नहीं जाता था। वह अपने घर से मिस कैलो और उनके साथी को दूसरे गिद्धों के साथ खेलते हुए देखा करता था। इसका प्रभाव उस पर अच्छा पड़ा। शीघ्र ही वह उनसे भी हिल गया। उसका दिया हुआ मांस वह उनके हाथ से चुपचाप खा लिया करता था।

जू के जीवजन्तु शत्रु-मित्र का भेद जानते हैं। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानते हैं कि कौन उनका प्रेमी है। अतएव वे उसकी आवाज़ सुनते ही पहचान जाते हैं। वहाँ के जीव-

खा जाना चाहते हैं। वास्तव में वे डर कर शब्द करने लगते हैं। वे डरते हैं कि कहीं दर्शक उन्हें कष्ट न पहुँ-

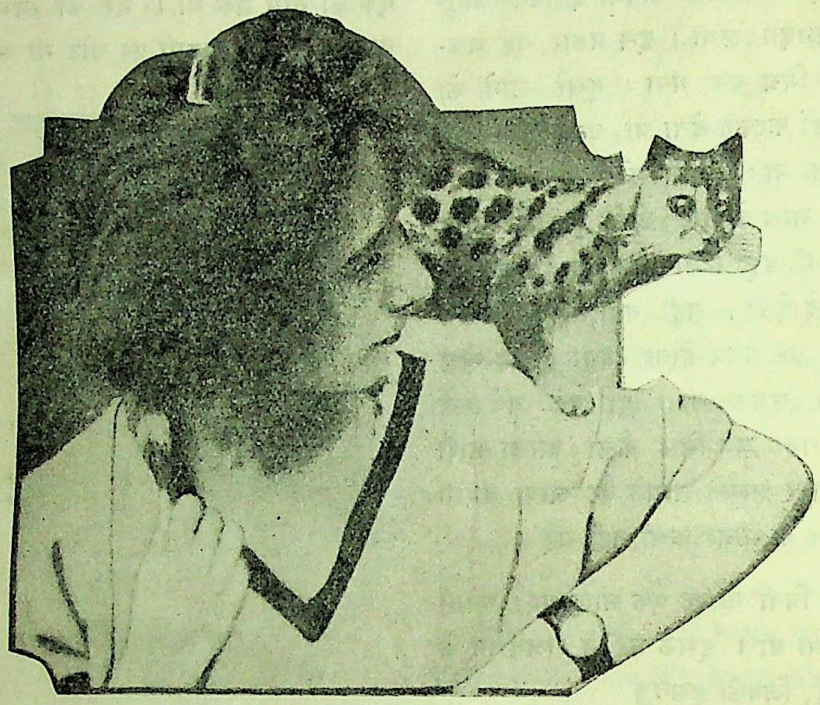

जंगली बिल्ली और मिस कैलो।

जन्तु किसी दर्शक को देख कर जब आवाज़ करते हैं तब उसका मतलब यह नहीं है कि वे उसको मार कर

चावें। पर वे अपने प्रेमियों को चाहते हैं, यह बात निश्चित है।

रमाशङ्कर उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

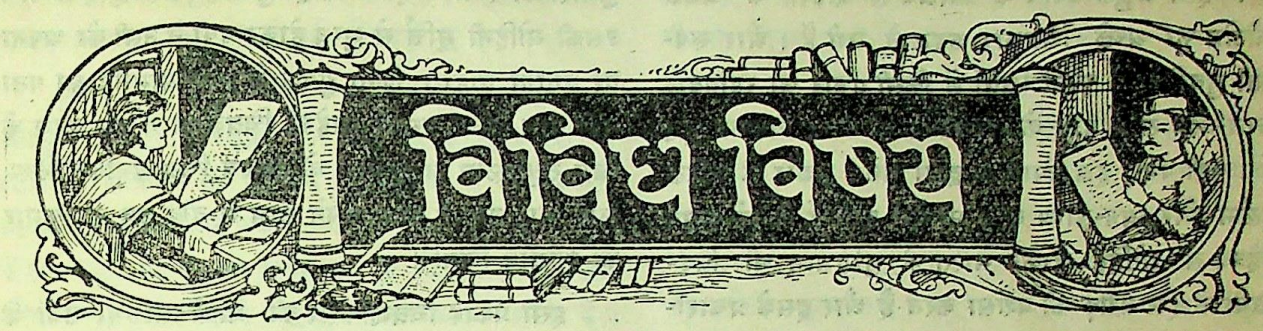

१—राजपूताने की प्राचीन कला।

(१)

प्राचीन काल में इस देश के कला-कौशल का काम कैसा था, इस बात का ज्ञान राजपूताने की पुरानी वस्तुएँ देखने से मालूम हो जाता है। विदेशी वस्तुओं के चकाचौंध में मोहित रहने से जिन लोगों को अपने घर की कोई वस्तु नहीं सूझती वे अगर राजपूताने की धूल से ढँके हुए पुराने सामानों को आँखें खोल कर देखें तो उन्हें मालूम होगा कि पुराने ज़माने में इस देश के कला-कौशल का कैसा रूप था। उन दिनों के गढ़-क़िले, महल-मकान, बाग़-बग़ीचे; वस्त्राभूषण; यानासन, अस्त्र-शस्त्र, पुस्तक-पन्ने और चित्र आदि जो इस समय विद्यमान हैं उनकी विलक्षण कारीगरी और समयोचित गुणों को देखकर आज भी आश्चर्य होता है। यही नहीं, उनसे उन दिनों की आर्थिक, पारमार्थिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और व्यावहारिक आदि सभी प्रकार की परिस्थितियाँ सजीव पुरुष के बतलाने की भाँति स्वयं विदित हो जाती हैं। आज जो काम बहुत पढ़े-लिखे लोगों के प्रयत्न करने पर बहुमूल्य मशीनों और बढ़िया औज़ारों से होते हैं वे उन दिनों इसी देश के सुलभ पदार्थों और साधारण कारीगरों के परम्परागत अनुभव से किये जाते थे।

ऐतिहासिक ज्ञान और आधुनिक अनुसन्धान के अनुरोध से यह उचित प्रतीत होता है कि राजपूताने की प्राचीन कला के प्रत्येक अंश का क्रम क्रम से उल्लेख किया जाय और उसके महत्त्व-सम्पन्न गुण प्रकट किये जायँ। ऐसा करने से अधिकांश लोगों को प्राचीन कला के अद्भुत गुण ज्ञात हो सकेंगे और यथासम्भव स्वदेशी वस्तुओं के प्रति उनका अनुराग भी हो सकेगा। एतदर्थ यहाँ राजपूताने की प्राचीन चित्र-कला के विषय में कुछ उल्लेख किया जाता है।

वर्तमान समय की चित्र-कला में फ़ोटो का आसन सबसे ऊँचा है। प्रत्यक्ष पदार्थों के तत्तुल्य चित्र तैयार करने में इस समय फ़ोटो ही सरल-सुगम और सर्वोपरि उपाय है। विदेशियों के बनाये हुए यन्त्र, तरीक़े और सामान आदि से स्वल्पज्ञ भी आँखों दीखनेवाले दृश्यों को हूबहू चित्र फ़ोटो से खींच सकता है। और यदि आवश्यक हो तो एक के अनेक चित्र तैयार कर सकता है। तत्तुल्य चित्र तैयार करने में फ़ोटो और अनेकों चित्र छापने में ब्लाक अथवा प्लेटों से बढ़ कर अच्छा उपाय दूसरा नहीं है। नियमित बातों का जाननेवाला कोई भी आदमी इन तरीक़ों से तत्तुल्य चित्र तत्काल तैयार कर सकता है। विदेशी यन्त्र, विदेशी सामान और विदेशी क्रियाओं के द्वारा भारतीय सज्जनों के हाथों से ऐसे स्वदेशी चित्र तैयार हो सकते हैं जिनमें कराङ्कन के अनुभव की कुछ भी ज़रूरत नहीं है।

बारीक से बारीक और मोटे से मोटे सभी प्रकार के जीव-जन्तु, वस्तु-पदार्थ, खेल-तमाशे, नगर-ग्राम, गढ़-क़िले और जनसमूहादि के कैसे भी दृश्य केमरा के द्वारा पल भर में उतर आते हैं। और उनसे तैयार किये हुए ताँबे अथवा सीसे के ब्लाकों से किसी भी प्रेस में वैसे चित्र इच्छानुसार लाखों छप सकते हैं। दृष्टिगत दृश्यों के अङ्कन करने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा सरल-सुलभ और सस्ता उपाय दूसरा नहीं दीखता है। इसी अद्भुत उपाय के आश्रय से शहरों के अनेक फ़ोटोग्राफ़र अच्छे चित्रकार कहलाने लगे हैं। और रूपवती युवतियों के फ़ोटो चित्रों में किसी प्रकार का रद्दोबदल करने-मात्र से वे हाथ के चित्रकार भी अच्छे विख्यात हुए हैं। यही क्यों, इस उपाय के द्वारा अनेक प्रकार के जटिल दुर्लभ और व्यय-साध्य कार्य भी ऐसे होते हैं जिनके अपूर्व महत्त्व से मोहित होकर भारत के बुद्धिमान् भी विदेशियों के इस तरीक़े की प्रशंसा करते हैं और इसके प्रचाराधिक्य से (अपना अहोभाग्य नहीं तो) हित अवश्य मानते हैं। वास्तव में इस तरीक़े से बहुत से अज्ञात विषय ज्ञात हुए हैं और साहित्यिक ज्ञान के प्रचार में सहायता भी मिली है।

सावयव पर्वतों के सरसों-सम चित्र बनाकर उनके बड़े बड़े अङ्गों को अलक्षित कर देना और अति सूक्ष्म कीटाणुओं के विशाल चित्र बना कर उनके अदृष्ट अङ्गों को बड़े आकार में दिखा देना कैमरा से सहज ही हो सकता है। चित्र-सम्बन्धी जो काम किसी दिन दस हज़ार रुपये में भी दश वर्ष में न होते थे वही आज दस कौड़ी में दस ही मिनट के अन्दर हो सकते हैं। यह सब कुछ होने पर भी राजपूताने की प्राचीन चित्र-कला का महत्त्व अभी लुप्त नहीं हो गया है और उसके देव-दुर्लभ चित्रों के नमूने अभी सबके सब नष्ट नहीं हुए हैं।

इस देश में चित्र-लेखन-कला का प्रादुर्भाव प्राचीन काल में हुआ था। वर्तमान समय के पुरावस्तु-निर्णेता जिन ग्रन्थों को हज़ारों वर्ष पहले के बतलाते हैं उन ग्रन्थों से जान पड़ता है कि आज से कई हज़ार वर्ष पहले भी इस देश में चित्र-लेखन-कला बड़ी समुन्नत दशा में थी।

इस देश के चित्रकारों का अनुभव इस विषय में उन दिनों इतना व्याप्त और पर्याप्त था कि वे दृष्टादृष्ट और परोक्षापरोक्ष आदि सभी प्रकार के दृश्यों के चित्र बनाने में अद्भुत और आश्चर्यजनक कर-कौशल दिखलाते थे। और ऐसे चित्रों में व्यक्तिगत अथवा प्राकृतिक दृश्यों के तादृश अङ्कन करने में किसी प्रकार की कोर-कसर नहीं होने देते थे।

पुराणों की एक कथा है कि उषा नाम की एक राजकुमारी को स्वप्न में एक अदृष्टपूर्व युवक दिखलाई दिया था। उसकी मोहिनी मूर्त्ति से मुग्ध होकर उषा ने उसी को अपना वर बनाना चाहा। किन्तु युवक के नाम-धामादि का पता नहीं था। अतः उसकी सहेली चित्रलेखा ने इस काम के लिए तत्कालीन राजकुमारों के तत्तुल्य चित्र बनाकर दिखलाये और उषा ने उनमें अपने स्वप्न में देखे हुए राजकुमार को पहचान लिया।

इसी प्रकार चित्रण-कला की प्राचीनता पाण्डवों के सभा-भवन से भी सिद्ध होती है। उसमें छत, खम्भे और प्राङ्गण आदि में हीरे-सीसे, मुक्ता-मणि और स्फटिक आदि के संयोग से कुछ ऐसे चित्र विचित्र बनाये गये थे कि उनकी परछाईं आपस में एक की दूसरों पर सब जगह पड़ती थी, जिससे सभा-भवन में बने हुए प्राङ्गणों के मार्ग, सोपान, पुष्पोद्यान और जलाशय आदि के स्वाभाविक स्वरूप विलोम रूप से अवलोकित होते थे और जल में स्थल तथा स्थल में जल स्वतः दीखता था। ऐसे अद्भुत चित्र इसी देश के कारीगरों ने बनाये थे और उनमें ऐसे कामों के करने की समुचित कुशलता मौजूद थी। पुराण और इतिहासों के अतिरिक्त कालिदास आदि के समय में भी इस देश की चित्र-लेखन-कला का महत्त्व कम नहीं था। काव्य-ग्रन्थों में ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं जिनसे तत्कालीन चित्र-कला का उत्तम स्वरूप दृष्टिगत होता है।

यद्यपि यह बात सत्य है कि मुसलमान-आक्रमण के प्रारम्भ-काल में रात-दिन के युद्ध से यहाँ के कारीगर अपनी विद्याओं से विमुख होगये थे और भयचकित चित्रकार लोग भी विचित्र चित्रों का बनाना भूल सा गये थे, तथापि अकबर के समय से मुग़ल-काल में भारतीय चित्र-कला को फिर आश्रय मिला था। और इस कला के बचे-खुचे चित्रकारों ने अपने काग़ज़-क़लम और रङ्ग-रोग़न आदि को फिर हाथ में लिया था। उस ज़माने के हस्तलिखित रङ्गीन चित्र बहुमूल्य होते थे और उनमें कई प्रकार की विशेषतायें भी होती थीं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय कला-कौशल के कैसे भी कारीगर किञ्चिन्मात्र उत्तेजना मिलते ही अपने कामों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतः निपुणता प्राप्त कर लेते हैं और परम्परागत अनुभव को अति शीघ्र समुन्नत कर बढ़ा लेते हैं। इसी बात का प्रत्यक्ष प्रमाण राजपूताने की चित्रकला है।

मुग़ल-काल में इस देश के कारीगरों ने राजपूताने के जयपुर, जोधपुर, भरतपुर और उदयपुर आदि राज्यों में रहकर चित्रकला के बड़े बड़े काम किये थे और अपनी विद्या की भले प्रकार उन्नति की थी। उन दिनों की चित्र-लेखन-कला को देखकर आज-कल के विज्ञान-वेत्ता कला-कौशल ज्ञाता विदेशी विद्वान् आश्चर्य-चकित होते हैं। और इस देश की प्राचीन चित्रकला के प्रति अपना हार्दिक प्रेम प्रकट करते हैं। प्राचीन काल के देवमन्दिरों, दर्शनीय संस्थानों; प्रसिद्ध राज-प्रासादों; गढ़-क़िलों और स्मृति-चिह्नों, अथवा अस्त्र-शस्त्र, वस्त्राभूषण और पुस्तकों आदि में काष्ठ-पत्थर और काग़ज़ आदि पर जो चित्र अंकित किये हुए हैं उनसे इस समय भी प्राचीन काल की अलौकिक चित्र-कला का अद्वितीय रूप मालूम होता है। उनसे अनेक प्रकार की शिक्षाप्रद, लाभदायक और ऐतिहासिक बातें ज्ञात होती हैं।

यदि हम उन दिनों के व्यवहार, रीति-रवाज, रण-कौशल, व्यक्तिगत सुन्दरता और उद्यानादि के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो प्राचीन काल के चित्रों से ये सब बातें मालूम हो सकती हैं। सम्राट् अकबर के राजत्व-काल के पचास वर्ष पहले से लेकर इस देश में कैसी बल-बुद्धि के व्यक्ति वर्तमान थे, उन लोगों की आकृति-प्रकृति, वैभव-विभूति, वेशभूषा और विद्या-व्यवसाय आदि कैसे थे, और चातुर्वर्ण्य के स्वाभाविक व्यवहार तथा विशेष प्रकार की कर्मनिष्ठा आदि किस ढंग की थी, यही क्यों, उन दिनों सम्पूर्ण भारत में सूत, रेशम और जरी आदि के सादे और रंगीन वस्त्र कितने प्रकार के और किस किस भाँति के होते थे, और उनमें बेल-बूटे धारे-सितारे और छींटों की छपाई आदि कैसी होती थी, उनकी बारीकी, मज़बूती, मोटापन काट-छाँट और सिलाई आदि कैसी उत्तम और नयनाभिराम होती थी, ये सब बातें हम 'राजपूताने की प्राचीन चित्र-कला' से भली भाँति जान सकते और उनके आयोजन-प्रयोजन अथवा अनुभव आदि का भी पता लगा सकते हैं। जयपुर के चित्रों से बहुमूल्य वस्त्राभूषणों और राजसी ठाठ में सुसज्जित रहनेवाले राजाओं और राजवर्गियों के स्वरूप आभासित होते हैं। नागौर आदि के चित्रों से सुभट राठोरों की विपुल वीरता मालूम होती है। उदयपुर-राज्य के अनेक चित्रों में मेवाड़ियों की प्राचीन मान-मर्यादा का महत्व और उनकी निर्भीक गम्भीरता ज्ञात होती है। करौली आदि के चित्रों में उनके बेढब बाने की झलक स्वतः दिखाई देती है। जाट-राजाओं के चित्रों से उनकी स्फुरण और उन्नतिशीलता जानी जाती है। ग्वालियर के चित्रों में मुखाकृति आदि की दर्शनीय सुन्दरता तथा रत्नादि के यथार्थ स्वरूप बहुत स्पष्ट प्रकट होते हैं।

उपर्युक्त राजधानियों के प्राचीन चित्रों को मर्मज्ञ पाठक स्वयं देखें तो वे निस्सन्देह स्वीकार कर सकते हैं कि—'अवश्य ही उन निर्जीव चित्रों से अनेक प्रकार की सजीव शिक्षा मिलती है'। और जो बातें बहुत से ग्रन्थों को कई दिनों तक पढ़ने पर भी ज्ञात नहीं हो सकतीं वे सब 'राजपूताने की प्राचीन चित्र-कला' देखने-मात्र से विदित हो सकती हैं। उन दिनों के हस्तलिखित रंगीन चित्र जो देखने में आये हैं उनके आधार पर यह दृढ़ता से कहा जा सकता है कि उन दिनों हस्ताङ्कित रंगीन चित्र सर्वोत्कृष्ट गुणों से युक्त होते थे और उनकी मनोरम सुन्दरता, सुस्पष्ट बारीकी, तथा रंग-रोग़न ऐवं सोना-चाँदी और मणि-मुक्ता आदि की चमक-दमक बेहद बढ़िया होती थी। उनके देखने के लिए दर्शकों का मन स्वतः उस ओर आकर्षित होता है। कई सौ वर्ष के पुराने होने पर भी आज भी वे नये मालूम होते हैं।

उन चित्रों की स्पष्ट बारीकी बहुत बारीक होती थी। यह बात उनके फ़ोटो से बनाये हुए ब्लाकों-द्वारा नहीं व्यक्त हो सकती है। सरसों पर पर्वत बना देना और चावल में चौपाई लिख देना उन्हीं चित्रकारों का काम था जिनके हाथ शायद सजीव सोने के होते थे और आँखें निर्जीव दूर-वीक्षण यंत्र की। चित्राङ्कन-कला और ग्रन्थ-लेखन-कला, ये दोनों ही उन दिनों सजीव और समुन्नत दशा में थीं। उन दिनों के शुद्ध-सुवाच्य और सुन्दर अक्षरों में लिखे हुए सचित्र ग्रन्थों से आत्मा को अतीव आनन्द होता है और टाईप के छपे ग्रन्थों की अपेक्षा हाथ के लिखे प्राचीन ग्रन्थ आज भी आश्चर्यजनक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारीकी के विषय में संवत् १७४५ की लिखी हुई भागवत एक पुस्तक अतीव आश्चर्यजनक है। वह आठ अंगुल चौड़े और तीन सौ अस्सी अंगुल लम्बे काग़ज़ में एक ही ओर लिखी गई थी। सुन्दर देवनागरी अक्षरों में उसके संस्कृत-श्लोक ऐसे शुद्ध-स्पष्ट और बारीक थे कि सहसा देखे भी नहीं जाते थे। और खिंची हुई रेखाओं के समान मालूम होते थे। परन्तु कुछ देर देखने पर उनका सुन्दर स्वरूप स्पष्ट हो जाता था। और वे पढ़ने में आ जाते थे। क्या यह कम आश्चर्य की बात है कि सम्पूर्ण भागवत एक छोटे काग़ज़ में लिख दी जाय और उसके अठारह हज़ार श्लोकों में एक भी अशुद्धि न हो। दुःख है कि एक अदूरदर्शी ने उसे एक दूरदर्शी अँगरेज़ के हाथ दस हज़ार रुपये में बेंच डाला और वह यहाँ से विलायत को भेज दी गई। ऐसी ही बारीकी हाथ के चित्रों में भी पाई जाती है।

इस लेख के लिखते समय हमारे सामने ऐसे ही कुछ प्राचीन चित्र उपस्थित हैं। इन चित्रों में पुष्पोद्यान, महल-मकान, पशु-पक्षी, क्रीड़ास्थल, और बापी-कूप-तड़ागादि के दृश्य बड़े बारीक* बनाये गये हैं और उनके अवयव अति सूक्ष्म करके भी सुस्पष्ट अंकित किये हुए हैं। ऐसे चित्रों में एक आठ खम्भे की छतरी का चित्र है। इस चित्र में छतरी के बाह्य और आभ्यन्तरीय अवयव सब स्पष्ट दिखाई देते हैं। किन्तु चित्र बारीक इतना है कि वह मटर की दाल के तले दब छिप जाता है। एक दूसरे चित्र में दो अश्वारोही सैनिक बनाये गये हैं। उनकी रंगीन पोशाक और चमकते हुए शस्त्रास्त्र सब दीखते हैं। परन्तु वे भी इतने बारीक हैं कि घोड़ों सहित दोनों दाल के तले दब जाते हैं। इसी प्रकार महीपतियों के अंग उपांग और पोशाकों में भी ऐसी ही बारीकी की गई है। उदाहरणार्थ किसी राजा के चित्र के मस्तक को लीजिए। उस पर रत्नों की जड़ी हुई रेशमी मंदील है। उसमें एक तरफ़ तो तुर्रे-कलँगी और पक्षीपंख लगे हुए हैं और एक तरफ़ बहुमूल्य हीरों का सरपेंच तथा चाँदनी चौक का चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा है। इतने पर भी बारीकी ऐसी है कि वे सब हाथ की अँगुली के नीचे दब जाते हैं। यही क्यों, उनके वस्त्र-शस्त्र-आभूषण और पान-पत्रादि की गढ़ाई-जड़ाई तथा खुदाई आदि भी उनमें हाथ से लिख कर ही दिखलाई गई है, जिससे स्वतः मालूम होता है कि उन दिनों शिल्प-कला के कैसे कैसे विलक्षण कारीगर थे और उनके किये हुए काम कैसे नयनाभिराम और मज़बूत होते थे।

शीरीं फ़रहाद, ज़ेबुन्निसा, हुमायूँ, औरंगज़ेब, शाहजहाँ, बहादुरशाह, माधवसिंह, जगतसिंह, चन्द्रदर्शन, वन-विचरण, आतिथ्यसत्कार, अढ़ाई दिन का झोंपड़ा और स्वर्गीय महल आदि चित्रों में उन दिनों के विलक्षण चित्रकारों की अद्वितीय चित्रकला के आश्चर्यजनक दृश्य अंकित किये गये हैं। और बारीकी के विषय में अवश्य ही उनमें 'गागर में सागर भरने' का कमाल किया है। यदि 'बाल की खाल निकालने' की कहावत को सत्य समझने में सन्देह हो तो उक्त चित्रों से उसकी सत्यता का प्रमाण मिलता है। और सुन्दरता तथा मज़बूती की पराकाष्ठा भी उनमें परखी जा सकती है।

प्राचीन चित्रकला के कई एक चित्रों में अंगोपांगों की बनावट यथार्थ न होने से बहुत लोग इस बात की शिकायत करते हैं कि उन चित्रों में बारीकी तो बहुत होती थी, परन्तु अंगोपांगों की बनावट तत्तुल्य नहीं होती थी यह बात सब चित्रों में घटित नहीं हो सकती। अनेक चित्र अब भी ऐसे मौजूद हैं जिनके तत्तुल्य होने में कोई न्यूनता नहीं है। बहुत वर्षों पहले चौमूँ के एक तपोधन और श्रीसम्पन्न महन्तजी का चित्र बनाया गया था। चित्र सेवा-पूजा के समय का था। चित्र बनाते समय चित्रकार ने महन्तजी को केवल एक बार अच्छी तरह देखा और अपनी याद

---

* ऐसे बढ़िया और बारीक कामों के उपयोगी सब सामग्री उन दिनों भारतवर्ष ही के काम में ली जाती थी। और उसी से ऐसे अद्भुत काम होते थे। सरकंडे अथवा मयूरपंख की लेखनी—और लाख के जल की स्याही से सद्ग्रन्थों का सुन्दर और सुवाच्य लेखन होता था।

गिलहरी के बालों का क़लम, हिरमच, हींगलू-हरताल, गौगोली, पतंग और वृक्ष के पत्तों के संयोजन आदि के रंगों से ऐसे उत्कृष्ट श्रेणी के चित्र तैयार किये जाते थे। आज के अद्भुत साधनों का उन दिनों यहाँ आह्वान तक नहीं हुआ था। तो भी कैसे अलौकिक काम होते थे, यह ज़रा सोचने की बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए कुछ संकेत भी लिख लिया। इसके बाद वह जयपुर चला गया और वहीं परोक्ष में रह कर उसने चित्र तैयार किया। चित्र-परीक्षकों ने महन्तजी का और चित्र का निरीक्षण करके तत्तुल्यता में उसे ज्यों का त्यों पाया और सुन्दरता तथा दृढ़ता में वह फ़ोटो से भी उत्तम समझा गया। महन्तजी का नाम गोविन्ददासजी था और बहुत वर्ष हो गये, उनका स्वर्गवास भी हो गया।

आरम्भ में लिखा गया है कि प्राचीन काल में काग़ज़-क़लम और रङ्ग आदि की भाँति ही अन्यान्य प्रकार की व्यवहार्य वस्तुओं से भी चित्र बनाये जाते थे। उदाहरणार्थ चौमूँ की सचित्र तलवार देखना चाहिए। वह संवत् १८०२ की है। उसकी केवल मूठमात्र पर भगवान् के चौबीसों अवतारों के रङ्गीन चित्र बनाये गये हैं। चित्र बहुत बारीक और बढ़िया होने पर भी बड़े मज़बूत हैं और सोने-चाँदी के तारों के संयोग से बनाये गये हैं। इस प्रकार के सचित्र फ़र्से, भाले, ढाल, सेल और बन्दूक़ आदि भी कई एक राजधानियों में हैं। महाराज मानसिंह के समय की एक लाठी में भी चित्रकला का उत्कृष्ट रूप अंकित हुआ था। उसमें किसी प्रकार की खुदाई लिखाई और रंगाई आदि के बिना ही विलक्षण ढङ्ग से चित्र बनाये गये थे और उनके देखने से दर्शकों को कौतुक सा दीखता था। कार्ड साइज़ के चौकोर काग़ज़ की एक जाली है। किसी कारीगर ने उसको क़ैंची से काट कर बनाया था। उसमें सामोद-नरेशों के तिमञ्ज़िले महलों के सब मकान सांगोपांग सुन्दर रूप में दिखाये गये हैं। ऐसी ही एक इमली के पत्तों की पत्तल भी सचित्र देखने में आई है। उसमें सामोद के एक चतुर नाई ने अपने कर-कौशल की करामात दिखलाई है। वह इमली के अगणित पत्तों को बड़ी अच्छी व्यवस्था के साथ बारीक सींकों से जोड़ कर बनाई गई है। और उसमें फूल पत्ते और चौक आदि भी दिखलाये गये हैं। ये दोनों वस्तुएँ क्रम से ८० और ५० वर्ष पहले की हैं।

उन दिनों जन्मोत्सवादि के अवसरों पर ऐसी वस्तुएँ बनाकर राजपूताने के राजाओं को भेंट में दी जाती थीं और उदार राजा लोग भी उनको आदर-पूर्वक सुरक्षित रखते थे। विज्ञान के बल से आज चित्र-कला के जो आयोजन इकट्ठे किये जा रहे हैं क्या उनसे भारतीय प्राचीन चित्रकला की क्षति-पूर्ति हो सकती है? हमारा तो यह अनुमान है कि कदापि नहीं हो सकती। ऐसे साधनों के धन-साध्य आयोजनों से तो भारत के कारीगरों का परम्परागत अनुभव उलटा हीन होता जा रहा है। और अनेक विद्याओं के विलक्षण कारीगर इन साधनों के अवलम्ब से उलटे अपनी वंश-परम्परागत विद्याओं का विसर्जन करते जा रहे हैं।

दुःख के साथ हताश होकर लिखना पड़ता है कि उपर्युक्त प्रकार देव-दुर्लभ चित्र भारत से चले गये हैं। और जो कुछ बच रहे हैं उनके भी यहाँ रह जाने की सम्भावना नहीं है। अनाथ बालकों को ईसाई लोग जिस प्रकार आदर-पूर्वक ले जाते हैं और हम लोग अपनी जाति का इस प्रकार ह्रास होता हुआ टुकुर टुकुर देखा करते हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल के बहुमूल्य चित्रों की संख्या दिनों दिन कम होती जाती है और हम लोग उनकी रक्षा का यथासामर्थ्य भी विचार तक नहीं करते। प्रसिद्ध स्थानों के अधिकांश चित्र कालातिक्रमण के कारण स्वयं नष्ट हो गये हैं। इसके सिवा ऐसे चित्रों की आज-कल के नवयुवकों तथा रईसों में चाह भी नहीं है। वस्त्र-शस्त्र और पाषाणादि के कुछ चित्र तो व्यक्ति-गत हीनता से स्वतः नष्ट हो गये हैं और कुछ का चोरी और असावधानी आदि से अपहरण होगया है। रहे पुस्तक-पत्रे और परवाने आदि के चित्र, सो उनमें से अधिकांश तो आग और जल आदि के आघातों से नष्ट हो गये और अधिकांश और और कारणों से बिगड़ गये। किन्तु जो चित्र किसी प्रकार बच गये हैं उनकी संख्या बहुत कम है और उनके भी सर्वथा बचे रहने में सन्देह है।

भारतीय चित्रों के लोकोत्तर गुणों से मोहित होकर उनके संग्रह करने के लिए दूरदर्शी विदेशियों ने एक ऐसे मार्ग का अवलंब लिया है जिसके द्वारा भारत में भारतीय चित्रों का अभाव हो जाना सर्वथा सम्भव है। प्राचीन कला के नष्टप्राय हो जाने के साथ ही उसके उपजीवी जीवों का निर्जीव हो जाना भी स्पष्ट प्रतीत होता है। प्राचीन पुस्तकों अथवा वस्त्र-शस्त्रादि व्यावहारिक वस्तुओं में या किसी भी प्रकार के चित्राकार रूप में जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं प्राचीन काल के लिखे हुए रंगीन-चित्र इस समय मिल सकते हैं उनको विदेशी लोग बड़े आग्रह के साथ मित्रभाव से या मुँहमाँगा मूल्य देकर तुरन्त ले लेते हैं। प्रथम तो इन विदेशियों के सुजनोचित व्यवहार में फँसकर हम लोग अपनी देवोपम वस्तुओं के देने में भी अपना अहोभाग्य समझते हैं और दूसरे ये लोग मूल्य भी इतना अधिक देते हैं कि जिसके प्रलोभन से बड़े से बड़े बुद्धिमान् भी अपने यहाँ के ओने कोने और तहख़ाने तक के प्राचीन चित्रों को ढूँढ़-ढाँढ़ कर स्वतः उनको देते रहने में राज़ी हैं। ऐसी दशा में राजपूताने की प्राचीन चित्रकला के संरक्षण का उपाय ही क्या है।

विदेशियों ने देखा कि भारत के हस्तलिखित प्राचीन चित्र लोकोत्तर गुणों से संयुक्त हैं। और उनके देवोपम दर्शन अनेक कारणों से अति दुर्लभ होते जाते हैं। ऐसी स्थिति में उन्होंने स्वार्थ और परमार्थ दोनों भावों को हृदय में रखकर उसका विचित्र रक्षा-विधान किया है। उसके संरक्षण के लिए उन्होंने सचित्र साहित्य का सहारा लिया है। अतएव यहाँ इस सम्बन्ध में भी कुछ लिखना आवश्यक है।

सचित्र साहित्य की सृष्टि नवीन बात नहीं है। यह तो भारत की प्राचीन परिपाटी है। इसके प्रचलित करनेवाले दूरदर्शियों ने इसके प्रचार में बहुत लाभ सोचे हैं। जिस प्रकार दर्शकों पर नाटकों का प्रभाव अति शीघ्र और सुगमता से पड़ता है उसी प्रकार सचित्र साहित्य का प्रभाव भी पाठकों पर अतिशीघ्र पड़ता है और उसके दुर्बोध्य आशय हृदयङ्गम हो जाते हैं। जो बात बहुत बार पढ़ने-पूछने और याद करने से भी ध्यान में नहीं आती वह सचित्र साहित्य की सहायता से सहसा समझ में आ जाती है और उससे पाठकों तथा अध्यापकों को अनेक सुविधायें होती हैं। यही सोचकर प्राचीन काल के सत्पुरुषों ने सचित्र साहित्य की सृष्टि की थी। और इसका सैकड़ों वर्ष पहले से ही इस देश में प्रचार है।

प्राचीन काल के छोटे बड़े अनेक सचित्र ग्रन्थ अब भी जहाँ-तहाँ पाये जाते हैं। और उनमें बहुत से चित्र बढ़िया और बहुमूल्य भी हैं। जिस भागवत का अन्यत्र उल्लेख हुआ है वह भागवत भी सचित्र थी और उसके सम्पूर्ण बारह चित्र बहुत बारीक थे। महाराज सवाई जयसिंह को एक सचित्र महाभारत उपलब्ध हुआ था। उसके लिखवाने में सम्राट् अकबर के छः लाख रुपये लगे थे। कई एक राजधानियों में योगाभ्यास, स्तोत्रपाठ, सदनुष्ठान और मनोरञ्जन आदि के भी अनेक ग्रन्थ सचित्र हैं, जो कई सौ वर्ष पहले के हैं और उनके चित्रादि बहुत बढ़िया हैं।

वर्तमान समय के विदेशी विद्वानों ने सचित्र साहित्य के लिए इस समय कुछ सरल साधन उपस्थित किये हैं। उनके द्वारा पुस्तकों और समाचार-पत्रों आदि को सचित्र छापने की बड़ी सुविधा हो गई है। छापेख़ानों में जिस प्रकार मामूली टाइप से पुस्तकादि छापते हैं उसी प्रकार फ़ोटो के चित्रों से बनाये हुए ब्लाक अथवा प्लेटों से चित्र भी छापे जाते हैं। सादे चित्र छापने में कुछ विशेषता नहीं की जाती। किन्तु रङ्गीन चित्र छापने में दो एक विशेषतायें हैं। इस काम के लिए विशेष प्रकार के फ़ोटो से लाल-पीले और नीले रङ्गों के जुदे जुदे ब्लाक बनवाने पड़ते हैं। और पृथक् पृथक् ब्लाकों से प्रत्येक चित्र को तीन तीन बार छापने से रङ्गीन चित्र तैयार होते हैं।

कलकत्ता, बम्बई और प्रयाग आदि के लब्धप्रतिष्ठ प्रेसों ने जब पुस्तकों और समाचार-पत्रों में प्रसंगानुकूल रङ्गीन चित्र छापना आरम्भ किया था तब बड़ी आशा हुई थी कि इस प्रकार के सचित्र साहित्य से साहित्य का साम्राज्य समुचित रूप से बढ़ेगा और प्राचीन चित्रकला के दुर्लभ एवं बहुमूल्य चित्र किसी भी रूप में सुलभ होने से वर्तमान समय की चित्र-कला का अनेक अंशों में उपकार होगा। परन्तु इस प्रकार की आशा दुराशा में परिणत होगई। और देखा-देखी करनेवाले स्वार्थी लोग सचित्र साहित्य के द्वारा भी प्राचीन चित्रकला के शेषांश को नष्ट करने पर उतारू हो गये।

यह सत्य है कि भारत की प्राचीन वस्तुओं को जिस प्रकार विदेशी लोग अधिकाधिक धन देकर भी बड़े आग्रह से ग्रहण करते हैं, उस प्रकार यहाँवालों में न तो उतना धन देने का सामर्थ्य अथवा उदारता है और न उनमें स्वदेशी वस्तुओं के प्रति वैसी प्रीति ही है। वे सचित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य में सादे और रङ्गीन चित्रों की सिर्फ़ संख्या बढ़ाना चाहते हैं। इसके लिए बहुत से सज्जन तो और और स्थानों में अनेक बार के छपे हुए अप्रासङ्गिक चित्रों में प्रसङ्गान्तर और नामान्तर आदि की क्रिया करके सचित्र साहित्य को सुलभ बना रहे हैं। और बहुत लोग पौराणिक और ऐतिहासिक ग्रन्थों में मनमानी कल्पना से काम लेते हैं। यही क्यों, अधिकांश ग्रन्थों के चित्रों में प्राचीनकाल के सत्पुरुषों, साध्वी स्त्रियों, आदर्शचरित्रों और आराध्य देवों तक को ऐसा बदल दिया है कि उनके वेश-भूषा और रूप, वर्तमान काल के सामान्य नाटकपात्रों, रूपवती वेश्याओं, जेंटलमेनों और दुराचारी कापुरुषों जैसे प्रतीत होते हैं और उनके उच्च भाव अतितुच्छ दीखते हैं।

सीता, राम, राधा, श्याम,—पृथ्वीराज, जयसिंह,—और दुर्गादास, आदि के चित्रों में उनके असली भाव और स्वरूपादि ऐसे अस्तव्यस्त बनाये गये हैं कि उनके देखने से चित्त को खेद होता है और इतिहास के सत्यत्व में सन्देह एवं आराध्य देवों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होती हैं। ऐसे सचित्र साहित्य से लोगों का कहाँ तक उपकार होता है और प्राचीन चित्रकला की कहाँ तक रक्षा होती है, यह हम नहीं कह सकते। इससे तो सद्ग्रन्थों के सदाशय उल्टे रूपान्तरित हो रहे हैं और आदर्श चित्रकला में उलटी वर्णसंकरता बढ़ रही है। ऐसे चित्रों से अवश्य ही 'चोर का शाह'—और 'शाह का चोर' साबित होता है और 'दादे का स्थान पोते को' तथा 'पोते का आसन दादे को' मिलता है।

परम सौभाग्य की बात है कि सचित्र साहित्य के सभी प्रकाशक ऐसा नहीं करते। कई एक सज्जन ऐसे भी हैं जो प्राचीन काल के दुर्लभ और बहुमूल्य चित्रों को यथाविधि मान-सम्मान और धन देकर प्राप्त करते हैं और उनको सब प्रकार से सांगोपांग सुन्दर छापते हैं। इसी प्रकार कल्पनागत चित्रों के तैयार करने में भी वे पौराणिक और ऐतिहासिक वेश-भूषा आदि का ध्यान रखते हैं और उनको यथोचित रीति से उत्तमरूप में प्रकाशित करते हैं। ऐसे सज्जनों द्वारा अवश्य ही प्राचीन चित्रकला की रक्षा होती है और सचित्र साहित्य सचमुच ही गौरवान्वित होता है।

——

हनूमान शर्मा,

२—जबलपुर में।

समय की महिमा बड़ी विचित्र है। जहाँ किसी समय गाँव का कूड़ा-करकट पड़ता है, वहीं एक दिन राजमहल खड़ा हो जाता है। यह बात जबलपुर पर भले प्रकार चरितार्थ होती देख पड़ती है। त्रिपुरी के हैहयवंशी नरेश को यह नहीं मालूम था कि जिस जाबालि को हम आज अपने नगर से निकाल रहे हैं उसी के आश्रय की भूमि एक दिन एक विशाल सुन्दर नगर का रूप धारण करेगी और हमारी देवोपम राजधानी का लोप होकर यहाँ कुछ देहातियों की बस्ती-मात्र रह जायगी। लोगों का कहना है कि त्रिपुरी से निकाले जाने पर जाबालि ही पहले-पहल यहाँ आ बसे थे, उन्हीं से जबलपुर के बसने का प्रारम्भ होता है।

परन्तु जबलपुर के वर्तमान रूप का प्रारम्भ मरहठों ने किया था। पहले-पहल सागर के मरहठा राजा ने इसे अपनी राजधानी बनाया था। परन्तु इसकी समृद्धि वर्तमान समय में ही बढ़ी है। यहाँ का जलवायु अधिक स्वास्थ्यकर तथा अँगरेज़ों के भी उपयुक्त होने के कारण सरकार ने इसे सैनिक छावनी का केन्द्र बना दिया है। यहाँ की सड़कें खूब चौड़ी और साफ़-सुथरी हैं। सरकारी इमारतों की अधिक संख्या के कारण इसकी शोभा अधिक बढ़ गई है। यदि किसी ऊँचे स्थान से चढ़ कर इस नगर की शोभा देखी जाय तो यह एक सुन्दर उद्यान सा दिखाई देता है। वर्षा अधिक होने के कारण वृक्षों तथा हरियाली की बहार प्रायः बारहों महीने बनी रहती है।

एक विशेष कार्यवश मुझे जबलपुर जाना पड़ा। मध्य-प्रदेश का यह एक बड़ा नगर है। व्यापारी नगर होने के कारण सेठ-साहूकारों के भव्य भवनों से नगर की शोभा और भी बढ़ गई है। यहाँ आने पर एक दिन मैं फ़ौज की छावनी की ओर गया। जब लौटा, सूर्यास्त हो रहा था। छुट्टी हो जाने पर फ़ौज के एक कारख़ाने से कुलियों की भीड़ उमड़ पड़ी। उन्हें बेतहाशा अपने घरों को भागते देख कर मैं सड़क के किनारे खड़ा हो गया। बेचारे अस्थिचर्मावशिष्ट मज़दूरों का समूह वास्तव में दयनीय था। मेरे मन की अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

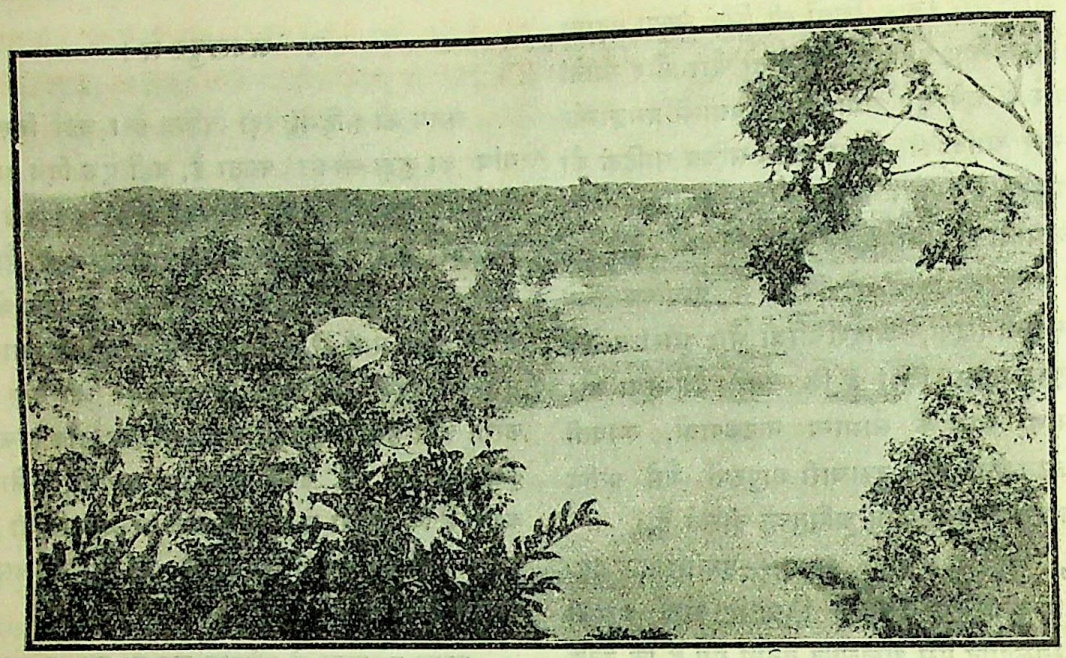

नर्मदा-प्रवाह ।

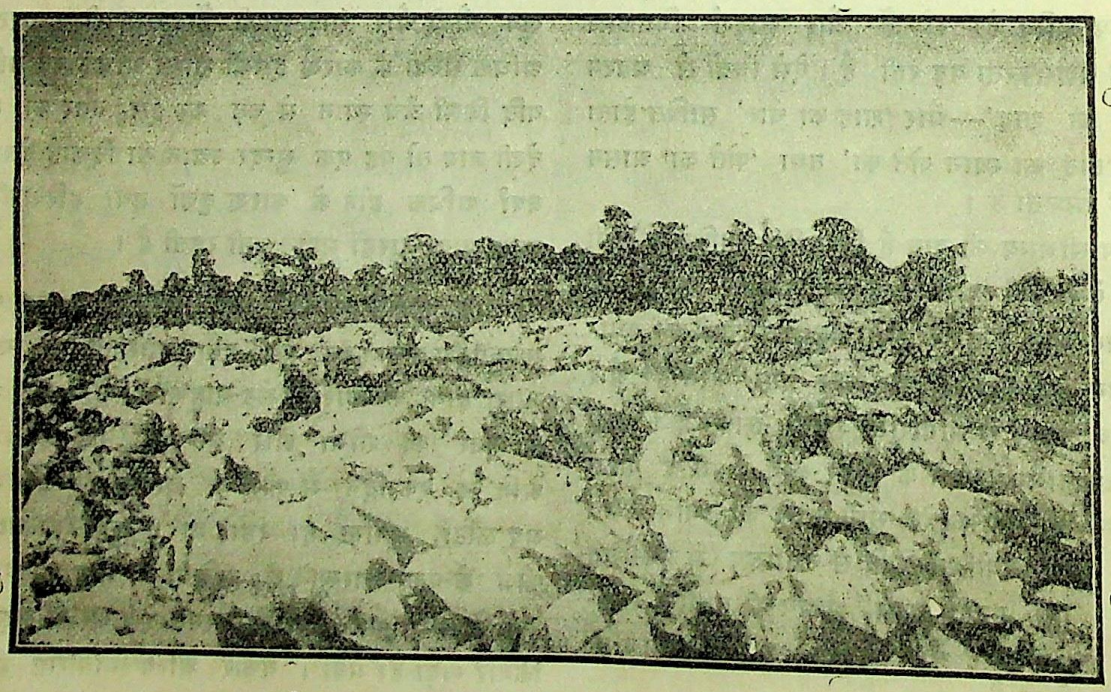

नर्मदा-तीरस्थ संगमरमर के पहाड़ का पहला दृश्य ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्ता उसे देखकर भाग गई। मज़दूरों की दुरवस्था के चित्र ने वहाँ अपना अधिकार कर लिया। ये मज़दूर हमारे ही भाई-बन्धु थे। दिन भर कारख़ाने में काम करते रहने के कारण इनकी मुखाकृति से थकावट टपकी पड़ती थी, ये परिश्रम से चूर चूर सा हो रहे थे। इनकी वेश-भूषा इनकी दीनता की सूचना अलग दे रही थी। फटे कपड़े और फटे जूते उसकी गवाही पूर्ण रूप से दे रहे थे। मैंने अपने मन में सोचा—भगवन्, क्या बारहों घंटे परिश्रम करके भी मनुष्य खाने-पहनने को मुहताज रह सकता है। यदि ऐसा ही है तो तेरी लीला अपरम्पार है। उन मज़दूरों की निरीहावस्था पर राह भर विचार करता हुआ मैं अपने स्थान को लौट आया।

जबलपुर को हम नया नगर कह सकते हैं। इसकी इतनी उन्नति, इसका यह सारा वैभव, हमारे ही ज़माने में हुआ है। जब काम-काज से छुट्टी मिल गई तब एक दिन हवा खाने की सूझी। शहर से बाहर निकल गया और मदनमहल पर जा चढ़ा।

वास्तव में किसी स्थान की शोभा ऊँचे स्थान से ही खड़े होकर देखी जा सकती है। जब मैंने मदनमहल से इस जनाकीर्ण तथा धवलशिखरविभूषित उत्तुङ्ग प्रासादों से पूर्ण नगर पर अपनी दृष्टि डाली तब तो ऊपर की बात बिलकुल ही ठीक साबित हुई। इस नगर की सौन्दर्यच्छटा का पूरा अनुभव मुझे मदनमहल से ही हुआ। वहाँ से यह नगर एक विशाल उद्यान सा प्रतीत होता था। आँखों के सामने मुग़ल-उद्यानों का सा चित्र खिंच गया। यह समझ पड़ता था, मानो हम किसी स्वर्गीय उद्यान का अवलोकन कर रहे हैं। चारों ओर जिधर निगाह डालो, लतामण्डपों तथा वृक्षकुञ्जों से आवृत बड़े बड़े ऊँचे

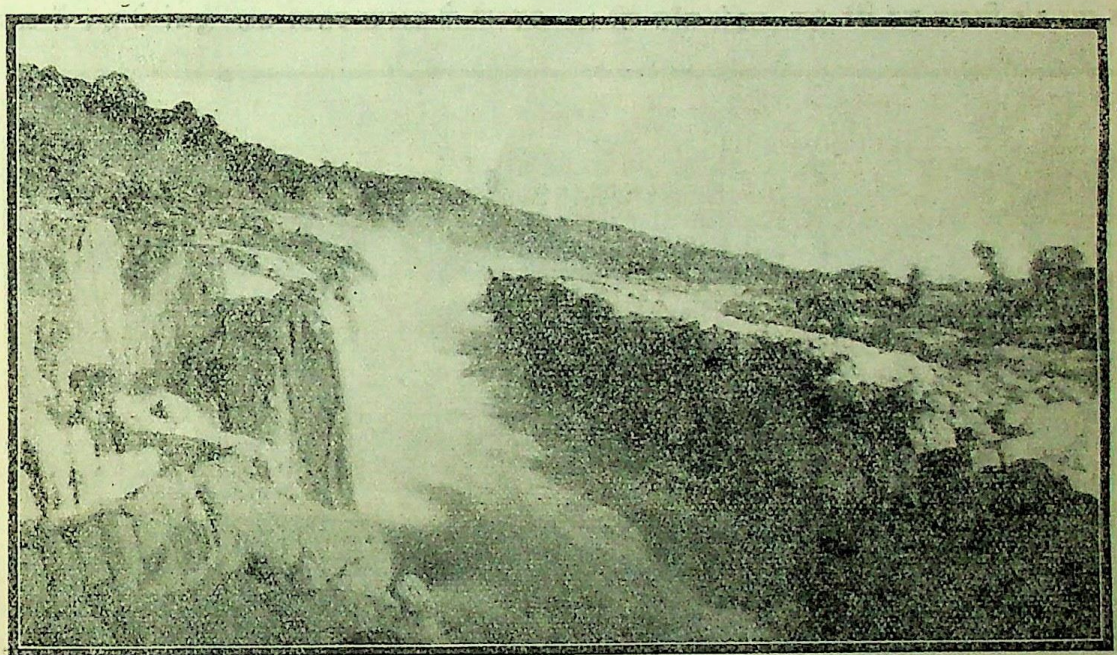

नर्मदा-प्रपात।

शुभ्र प्रासाद निस्तब्ध शान्ति में अलौकिक शोभा का निदर्शन कर रहे थे।

मैं खड़ा हुआ नगर की मनोरम छटा का आनन्द ले रहा था। इसी समय मुझे मदनमहल की याद आ गई। यह स्थान गोड़-राजाओं का बनवाया हुआ था। यह याद आते ही भूतकाल का चित्र आँखों के सामने खिंच गया। सोचा, भारत की वीर नारियों में अग्रगण्य महारानी दुर्गावती किसी समय इस भूभाग में शासन करती थीं। उस समय यहाँ के वैभव के लोभ में आकर मुग़ल-सम्राट् अकबर के प्रियपात्र सूबेदार आसफ़ख़ाँ ने किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार रानी दुर्गावती का सर्वस्व हरण किया था, उसकी कथा मानो मुझे यहाँ का एक एक कण सुनाने लगा। संसार का हाल ही यह है। वह अमर आत्मा का निधन नहीं होने देता। जिसमें ऐसी आत्मा रहती है उसे वह स्थायी रखता है। महारानी दुर्गावती में वैसी ही आत्मा निवास करती थी। इसी से आज भी यहाँ का एक एक रेणु-कण उनकी अमर गाथा गाता रहता है। जिसके हृदय में आँखें हों वह गढ़ा जा कर उनके शुभ्र कृत्यों के प्रकाश से उन्हें पवित्र कर आवे। अपने सामने सौन्दर्यराशि की ओर एक बार दृष्टि-निपात कर मैंने एक गहरी साँस ली। मैंने अपने मन में कहा—यह जनाकीर्ण नगर है। इसमें लाखों की संख्या में मनुष्य रहते हैं। क्या उन्हें कभी अपने देश के भूतकाल की बात न याद आती होगी। कृष्ण के प्रतिद्वन्द्वी शिशुपाल के चेदि के इन निवासियों का ध्यान क्या अपने भूतकालीन गौरव की ओर न जाता होगा। इस तरह की बातें सोचते सोचते मेरा मन उद्विग्न हो उठा। वहाँ की अद्भुत प्राकृतिक शोभा भी मेरे विक्षुब्ध मन को न शान्ति कर सकी। मैं चल पड़ा। गया था मन बहलाने, किन्तु लौटा खिन्न-हृदय लेकर। मदनमहल से दिखाई देनेवाली नगर की अलौकिक शोभा मनोरम होने पर भी मदनमहल की विद्रूपता के आगे मेरे मन को प्रसन्नता प्रदान करने में समर्थ न हो सकी, मैं वहाँ के आनन्द का उपभोग नहीं कर सका।

जबलपुर छोड़ने के एक दिन पहले मैं भेड़ाघाट गया था। यहाँ नर्मदा का जलप्रपात है। इसे देखने के लिए दूर दूर से लोग आते हैं। चालीस फुट ऊँचे से नर्मदा का जल एक गड्ढे में गिरता है। इस प्रपात को धुआँधार कहते हैं। क्योंकि जल की धारा के चट्टानों से टकराने के कारण उसका जल धुआँ के रूप में ऊपर उड़ता है, जो वहाँ छाया रहता है। प्रपात के आगे नदी की धारा बहुत तङ्ग हो गई है। कोई दो मील तक वह सौ सौ फुट ऊँची सफ़ेद पत्थर की चट्टानों के बीच से बहती है। यहाँ जल का बहाव बहुत तेज़ रहता है। चाँदनी रात में इस मार्ग से नाव से जाने में बड़ा आनन्द मिलता है। वास्तव में भेड़ाघाट की नैसर्गिक शोभा निराली है, अत्यन्त अद्भुत है। मैंने अपने जीवन में ऐसा सुन्दर दृश्य पहले कभी नहीं देखा था।

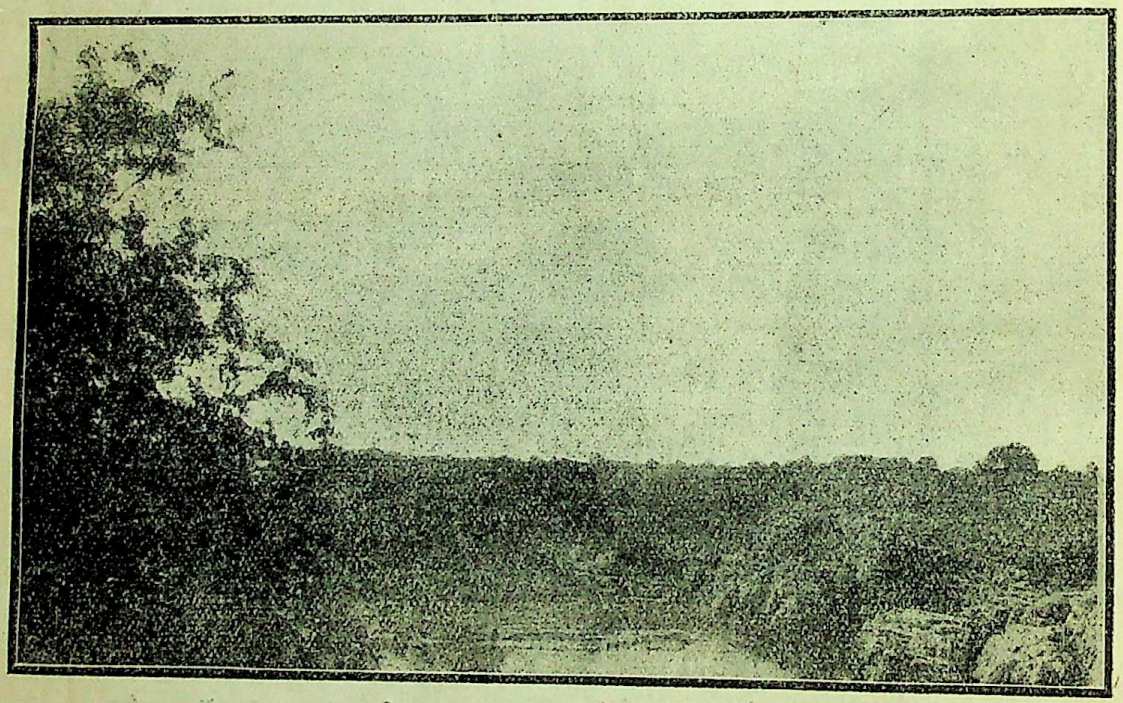

नर्मदा-तीरस्थ संगमरमर के पहाड़ का दूसरा दृश्य।

जिस समय मैं तट पर खड़े हो कर प्रपात के भयङ्कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

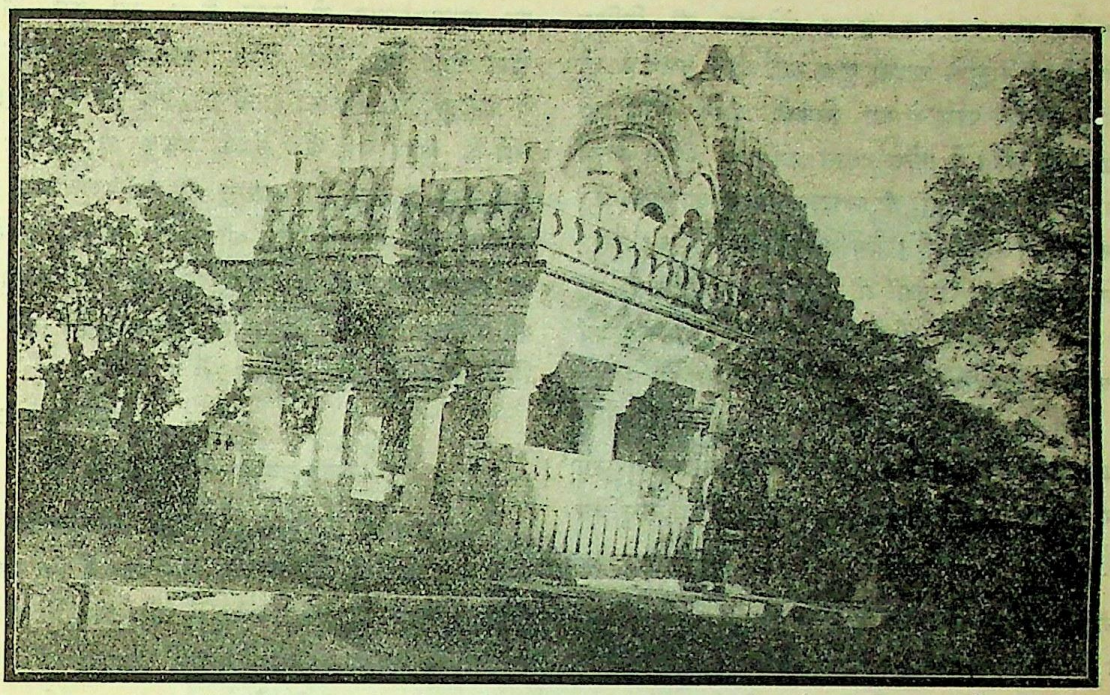

चौंसठ-योगिनी का मन्दिर।

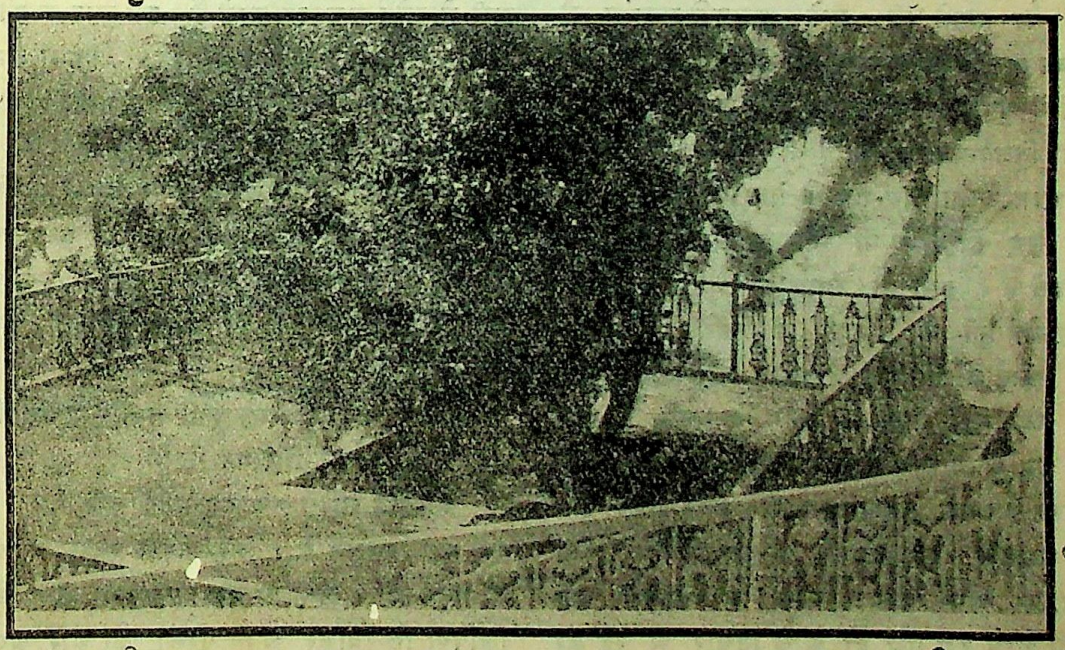

भृगु मुनि की तपस्या का स्थान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृश्य को देख रहा था उस समय मेरे मन की विचित्र दशा हो गई थी। मुझे अपनी सुध नहीं थी। इतने में ही कुछ अमरीकन मेरे पास से आ निकले, उनके साथ दो तीन स्त्रियाँ भी थीं। ये लोग प्रपात का दृश्य देखने आये थे। इन विदेशी स्त्री-पुरुषों के स्वच्छन्द भाव को देख कर मुझे उनसे ईर्ष्या सी हुई। मैंने सोचा, एक इनको देखो, जो मौज से स्त्री-पुरुष विदेशों में प्रकृति के सौन्दर्य का उपभोग करते फिरते हैं और एक हम हैं, जो न स्वयं उसका आनन्द लेते हैं और न अपनी स्त्री-जाति को उसका उपभोग करने देते हैं। देखें, हम लोगों में यह मानव-बुद्धि कब उत्पन्न होती है, जब हम लोग भी सामाजिक दुर्गुणों का त्याग कर स्वाधीन भावना को अपने लोगों में समुचित स्थान देंगे।

भगवती नर्मदा को बार बार नमस्कार कर मैं चौंसठ-योगिनी के मन्दिर में आया। यह मन्दिर भेड़ाघाट के पास ही है। चेदि-देश के कलचुरि-राजवंश के महाराज गय-कर्णदेव की महारानी अल्हणदेवी ने इसे बनवाया था। इसका अधिकांश टूट-फूट गया है। इसी राजवंश की राजधानी त्रिपुरी में थी, जो अब जबलपुर से पाँच मील पर तिअर नाम का एक गाँव-मात्र रह गया है। मन्दिर में पैर रखते ही मुझे कलचुरि-राजवंश के इतिहास का स्मरण हो आया। समय समय पर इस वंश के राजाओं ने अपने देश के बाहर मिथिला और कन्नौज तक अपनी विजय-पताका उड़ाई थी। परन्तु समय के प्रभाव से आज उनका नाम-शेष हो गया है। उनका हाल जानने के लिए इतिहासप्रेमी ध्वंसावशेषों की छान-बीन में लगे रहते हैं। इसी को समय की गति कहते हैं। इस चौंसठ-योगिनी के मन्दिर में प्रतिवर्ष हज़ारों भक्त जन आते-जाते रहते हैं, पर कोई कलचुरियों की बात तक नहीं करता। कौन कलचुरि? होंगे कलचुरि। हमें अपने काम से काम। आज हमारा ऐसा ही भाव हो रहा है। हम अपने काम से काम रखते हैं। हमें अपने घरवाले, यहाँ तक कि स्त्री-पुत्र तक की परवा नहीं। बस, हमें अपने काम से काम। आज हमारी यही धारणा है। आज हम ऐसे ही ओछे विचार में रह कर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अध्यात्मवादी भारत का अध्यात्मवाद से काम है। उसे इस बात की ख़बर नहीं कि किसी समय जबलपुर के इस अञ्चल में कलचुरि-राजवंश का राज्य था, उस वंश के नरेश हिन्दू-धर्म के कट्टर भक्त और उसके रक्षक थे, उन्होंने अपना संवत् तक चलाया था। परन्तु हमको अपने काम से काम के आगे इन बातों की ज़रा भी परवा नहीं। अपने लोगों की इसी धारणा पर दो आँसू बहा कर और उस मन्दिर की परिक्रमा कर मैंने महारानी अल्हण देवी को प्रणाम किया और जबलपुर की राह ली।

रमाशङ्कर उपाध्याय

३—समुद्रगुप्त की प्रशस्ति।

इलाहाबाद के क़िले के भीतर एक पत्थर की लाट गड़ी है। अँगरेज़ी विद्वानों का अनुमान है कि यह लाट जगत्-प्रसिद्ध महाराज अशोक ने कौशाम्बी में खड़ी करा के उस पर अपनी ६ धर्म-लिपियाँ खुदवाई थीं। पीछे यह लाट इलाहाबाद लाई गई। परन्तु कब लाई गई, क्यों लाई गई और कौन लाया इसका पता नहीं चलता। दिल्ली में फ़ीरोज़शाह की लाट अशोक ही की लाट है। यह लाट पहले सिवालिक पर्वत में टोपरसूल में थी। इसे फ़ीरोज़शाह लाये थे। एक दूसरी लाट मेरठ से आई थी। इसी से लोग अनुमान करते हैं। इस लाट के कौशाम्बी से लानेवाले भी फ़ीरोज़शाह ही होंगे जिनका शासन-काल १३५१ ई० से १३६१ था। पर हमारा अनुमान यह है कि जब समुद्रगुप्त की प्रशस्ति खोदी गई तब भी यह यहीं थी। समुद्रगुप्त ही ने गङ्गा उस पार झूसी में क़िला बनवाया जिसका एक बड़ा कुआँ अब भी वर्तमान है और जिसके पत्थर वहीं इधर-उधर पड़े हैं। एक पत्थर का घोड़ा बाँध पर खड़ा है जो समुद्रगुप्त का घोड़ा कहलाता है।

यह लाट "नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण"

'ऊपर उठावत गिरावत धरनि पर
चक्रनेमि सरिस नचावत सबहि हरि।'

का पूरा दृष्टान्त है। जहाँगीर के समय में यह धरती पर पड़ी रही। उसने अशोक की तीसरी और चौथी धर्म-लिपियाँ छिलवाकर अपने पुरखों का और अपना नाम खुदवा कर १६०५ ई० में इसको खड़ा किया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

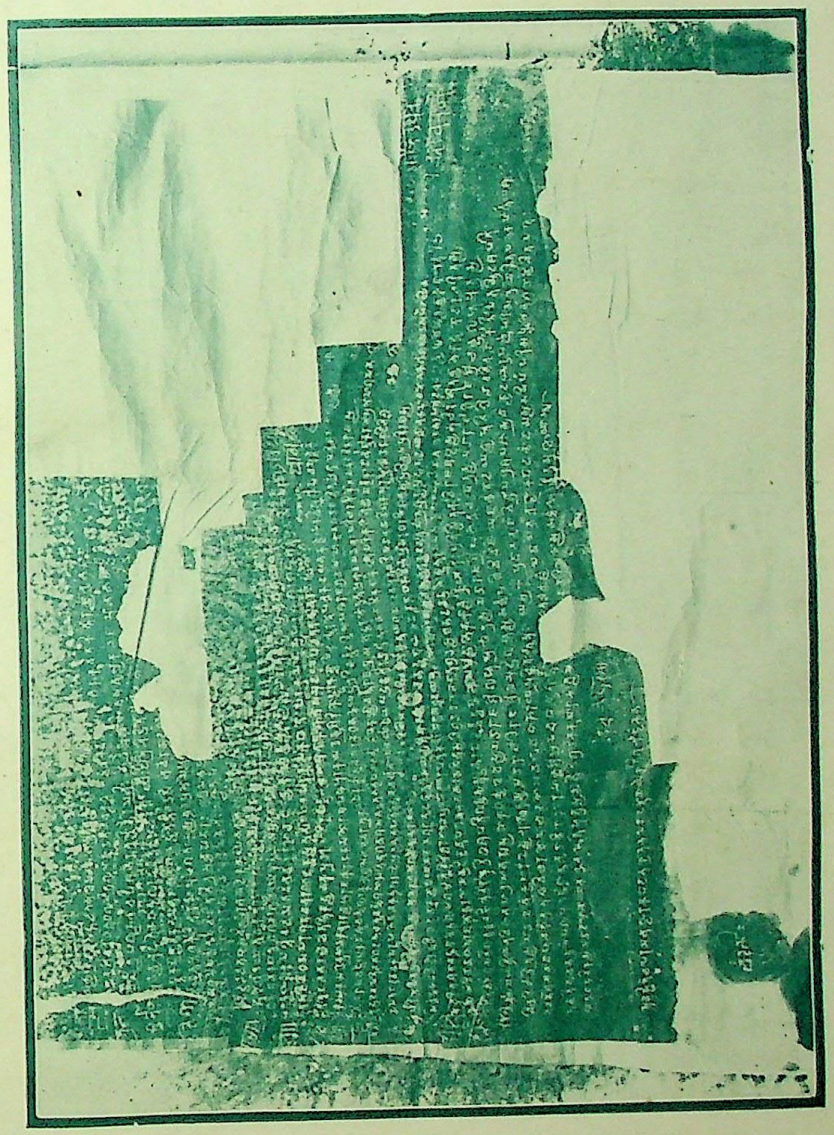

समुद्रगुप्त की प्रशस्ति।

सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके ऊपर पत्थर का एक गोला और गोले पर एक सूची रखवा दी। यह मुकुट पादरी टिफ़िनथेलर (Tiffen thaler) ने देखा था। उस समय यह क़िले के बीचों बीच में खड़ी थी।

सौ बरस हुए यह लाट फिर धरती पर पड़ी देखी गई। उसका वर्णन कैप्टन पोगसन Captain Pogson ने अपने बुन्देलों के इतिहास (History of the Boondelas) में यों किया है—

"यह लाट ४० फुट १० इंच लम्बी है। आधार पर इसकी परिधि ६ फुट ६ इंच और सिरे पर ६ फुट ७ इंच है। नीचे का भाग जो धरती में गाड़ने के लिए माँठा नहीं गया था वह ७ फुट ६ इंच है। इस पर सम्राट् जहाँगीर का नाम उभरे हुए अक्षरों में बहुत ही सोहावनी रीति से खुदा है पर इससे यह न समझना चाहिए कि यह खंभा जहाँगीर ने बनवाया था। इस पर कुछ ऐसे अक्षरों में खुदा है जिन्हें आज-कल के लोग पढ़ नहीं सकते * (इसके पीछे पोगसन ने ब्राह्मीलिपि के कुछ नमूने दिये हैं) फ़ारसी का लेख जो पड़े हुए खंभे पर पोगसन ने पढ़ाया था यह है।

مقدر ابن سلطان ابوسعید - یانور ابن سلطان
محمد میرزا یاهادي ابن میران شاه ابن عمر
شیخ میرزا الهواکبر - نورالدین محمد جهانگیر
بادشاه عالي حافظ ابن اکبر بادشاه غازي
یاحفیظ مشکیں قلم کتبه عبدالله -

"शक्तिमान् सुल्तान अबूसईद के बेटे—हे ज्योति-सुल्तान अहमद मीरज़ा के बेटे—हे पथदर्शक-मीराँशाह के बेटे उमर शेख मीरज़ा के बेटे—अल्लाह अकबर—नूरुद्दीं महम्मद जहाँगीर बादशाह महान हाफ़िज़ अकबर बादशाह ग़ाज़ी के बेटे—हे रक्षक-काला लिखनेवाले अब्दुल्ला का खोदा हुआ"।

* पोगसन की पुस्तक १८२६ ई० में छपी थी। और ब्राह्मी अक्षरों को जिनमें महाराज अशोक की धर्म-लिपियाँ लिखी हैं सबसे पहले १८३३ में जेम्स प्रिंसेप (James Princep) ने पढ़ा था। तब से भारत के इतिहास में कायापलट हो गई है।

जहाँगीर के पीछे यह खंभा अपनी जगह पर खड़ा रहा। १७९८ ई० में जेनरल किड ने (General Kyd) जिनके नाम पर कीडगंज (Kydganj) बसा० है इसे फिर गिरा दिया और १८३८ ई० में फिर खड़ा कर दिया गया। कनिंघम साहब ने इसे गड़ा हुआ देखा था तो इसकी उँचाई ३५ ही फुट रह गई थी ५ फुट धरती में दबा हुआ है। इसके ऊपर का व्यास २ फुट २ इंच और नीचे का व्यास २ फुट ११ इंच है। इस पर यात्रियों के अनेक लेख खुदे हैं। इनमें सबसे पुराना १२९७ संवत् का है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि समुद्रगुप्त के समय से ख़िलजियों के राज तक यह खंभा खड़ा ही रहा पीछे गिरा दिया गया। सबसे प्रसिद्ध यात्री जिनका नाम इस खंभे पर खुदा है महाराज वीरबल थे। उनका लेख यह है।

संवत् १६३२ शाके ९४९३ मार्ग वदी पंचमी
सोमबार गंगादास सुत महाराज बीरबर श्री
तीर्थराज प्रयाग के यात्रा सफल लेखितम्

इलाहाबाद का क़िला १५७२ ई० में बनकर तैयार हुआ उसके तीन बरस पीछे वीरबल ने प्रयाग की यात्रा की थी। समुद्रगुप्त की प्रशस्ति अशोक की धर्म-लिपियों के नीचे खुदी है। यह प्रशस्ति बड़े गौरव की है और प्रत्येक मनुष्य को जिसे भारतवासी होने का अभिमान है इसे बड़े ध्यान से पढ़ना चाहिए। जो लोग हमको सदा के कायर और विदेशी लुटेरों के आगे सिर झुकानेवाले समझते हैं उनकी आँखें खुल जायँगी। डाक्टर विंसेण्ट-स्मिथ ने बहुत ठीक कहा कि सम्राट् समुद्रगुप्त ऐसे ही दिग्विजयी थे जैसे कि ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अन्त और उन्नीसवीं की आदि में यूरप में नेपोलियन (Napoleon) हो गया है और उनका राज्य आक्सस (Oxus) नदी तक फैला हुआ था। हमारा विचार तो यह है कि कुछ दूर आगे बढ़ कर रहनेवाले भी इनका लोहा मान गये थे। परन्तु समुद्रगुप्त नेपोलियन से कहीं बढ़ कर था। नेपोलियन (Napolean) की अन्त में बड़ी दुर्गति हुई और एक सुदूर द्वीप में बन्दी होकर मरा। समुद्रगुप्त सदा विजयी रहा और अपने उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिए एक विशाल राज छोड़ गया, जो अपने पिता के पाँव पर पाँव रख कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चला। उसका पोता कुमारगुप्त भी बड़ा प्रतापी राजा था। मन्दसोर के शिलालेख में लिखा है।

चतुःसमुद्रान्तविलोलमेखलां
सुमेरुकैलासबृहत्पयोधराम्।
वनान्तवान्तस्फुटपुष्पहासिनीं
कुमारगुप्ते पृथिवीम् प्रशासति॥

"महाराज कुमार-गुप्त ऐसी पृथ्वी के शासक थे जिसकी मेखला चारों ओर का समुद्र है, जिसकी छातियाँ सुमेरु और कैलास हैं और जो वनों में फूल खिलने से मुसकाती सी जान पड़ती है"

ऐसे समुद्रगुप्त की समता संसार में कौन कर सकता है?

इस प्रशस्ति की कुछ बातों की व्याख्या हम माधुरी और सरस्वती के लेखों में कर चुके हैं परन्तु इसमें कितने विषय ऐसे हैं जो अभी तक किसी की समझ में नहीं आये। हम योरपियन विद्वानों के कृतज्ञ हैं जिन्होंने हमें अपना भूला हुआ गौरव दिखाया। परन्तु ये योरपियन विद्वान् सब कुछ करें हिन्दुस्तानियों को तेली का बैल ही मानते हैं। इनके मत में पहले तो हिन्दुस्तान में जो कुछ बड़ाई हुई है सब बाहर से आई है और दूसरे यहाँ के रहनेवाले गूलर के कीड़ों की भाँति यहीं जिये और यहीं मरे। परन्तु अब कुछ भारतवासी भी समझने लगे हैं और विदेशियों ही के इतिहास से यह सिद्ध होता है कि कभी भारत का सिक्का यूनान और रोम पर तक जमा हुआ था।

आज इस लेख के विषय में विशेष न कह कर उसी प्रशस्ति का छाया-चित्र पाठकों को भेंट किया जाता है। यों तो इसकी कई छापें ली गईं परन्तु सबसे पिछली बार १९१६ ई० में लखनऊ म्यूज़ियम (अजायबघर) के क्यूरेटर (अध्यक्ष) पण्डित हीरानन्द शास्त्री ने अपने प्रबन्ध से इसकी अत्यन्त शुद्ध छाप ली थी। उसी का फ़ोटो हमारे द्वितीय पुत्र प्रोफ़ेसर कौशलकिशोर बी० ए० एल० टी० एफ० आर० जी० एस० ने लिया है।

यह प्रशस्ति १५०० बरस पहले प्रचलित देवनागरी अक्षरों में लिखी है। आधुनिक देवनागरी में इसकी नक़ल हमने माधुरी की २५ वीं संख्या में छपाई थी और उसका स्वतन्त्र अनुवाद दे दिया था।

श्रीअवधवासी सीताराम

४—मेसोपोटामिया।

मेसोपोटामिया दो यूनानी शब्दों से बना है, एक मेसोस (Mesos) अर्थात् बीच, दूसरा पोटेमस (Potamus) अर्थात् नदी—तात्पर्य यह कि वह भूमि जो दो नदियों के बीच में हो अर्थात् दोआबा। पहले-पहल मेसोपोटामिया उस भूमि को कहते थे जो दजला और फ़रात नदी के बीच में वर्तमान मेसोपोटामिया के उत्तर में है और जिसकी सीमा पश्चिम की ओर शाम देश की सीमा से मिलती है। परन्तु अब इस शब्द का प्रयोग उस सारी भूमि के लिए होता है जिसमें दजला और फ़रात नामी दो नदियाँ बहती हैं और जिसमें बसरा, बग़दाद, मूसल और कर्बला आदि सुप्रसिद्ध नगर स्थित हैं। अरबवालों ने इस देश के निचले भाग का नाम 'इराक़ अरब' अथवा 'इराक़' रक्खा था। अरबी भाषा में 'इराक़' शब्द का अर्थ है—नदी का तट। किन्तु बाद को नदी के पास की भूमि के अर्थ में 'इराक़' शब्द प्रयोग किया गया। फिर दजला और फ़रात नदियों के समीप की भूमि के लिए उपयुक्त समझा गया। परन्तु अरब-देश से मिले जुले होने के कारण इस देश को 'इराक़ अरब' भी कहा जाता था। सारे मेसोपोटामिया तथा इससे कहीं और अधिक भाग में मुसलमानों के बहुत से प्रतापी राजे हो चुके हैं।

हज़रत अबूबकर साहब मुसलमानों के पहले ख़लीफ़ा थे। ६३२ ई० से अगस्त ६३४ ई० तक राज्य किया था। इन्होंने ही पहले-पहल इस देश को विजय करने के लिए सेना भेजी थी। ख़ालिद सेनापति थे। परन्तु बाद को ख़ालिद के पास ख़लीफ़ा का यह हुक्म पहुँचा कि तुम आधी सेना लेकर शाम (Syria) देश की ओर चले जाओ और बाक़ी आधी मुसन्ना की अधीनता में छोड़ जाओ। अब मुसन्ना ने मुसलमानी सेना को ठीक करके बाबुल में मोरचा बनाया। ईरानी लोग भी यहीं आये और घोर युद्ध हुआ।

ईरानियों की संख्या दस हज़ार थी। उनकी सेना में हाथी भी बहुत थे। इन्हीं हाथियों के द्वारा वे मुसलमानों पर आक्रमण करते थे। लड़ाई का स्वरूप बड़ा भयङ्कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, किन्तु थोड़े से ही मुसलमान ईरानियों पर ऐसे टूटे कि उनके छक्के छूट गये। वे युद्धस्थल छोड़ कर भाग निकले। परन्तु इस पर भी बहुत से ईरानी मारे गये और क़ैद भी किये गये। मुसलमानों के हाथ में इस देश का एक भाग आगया। इसके पश्चात् फ़ारस के राज्य में बड़ा गड़बड़ मच गया। मुसन्ना ने चाहा कि इस बात से ख़लीफ़ा को स्वयं सूचित करें। किन्तु उसके मदीना पहुँचने से पहले ही ख़लीफ़ा ने हज़रत उमर साहब को ख़लीफ़ा बना दिया था।

ख़लीफ़ा अबूबकर साहब की मृत्यु रात्रि में हुई थी। परन्तु इससे पहले जब उन्हें फ़ारसवालों की बाबत समाचार मिला तब उन्होंने हज़रत उमर साहब से कहा कि कल सबसे पहले लोगों को इराक़ की ओर रवाना करना और ख़ालिद को शाम से इराक़ की ओर वापस जाने की आज्ञा देना। अस्तु, हज़रत उमर साहब ने लोगों को इराक़ की ओर भेजा और अबूउबैद को सेनापति नियुक्त किया। मुसलमान लोग वहाँ पहुँच कर फिर मैदान में जा डटे। ईरानी भी मुक़ाबिले के लिए आये किन्तु उनका बहुत बुरा हाल हुआ। सारा देश मुसलमानों के अधिकार में आगया और इसके बाद विजय-पताका और दूर देशों तक लहराई।

विजय होने के पश्चात् यहाँ पहले मुसलमान गवर्नर ही रहते थे। किन्तु ईसा की आठवीं सदी के मध्य में जब दमिश्क-राज्य का पतन हुआ तब इस देश में एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना हुई, जो 'अब्बासी' राज्य के नाम से संसार में विख्यात है। अब्बासी राजघराने ने लगभग ५०० वर्ष तक इस देश में राज्य किया।

इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमानों से बहुत पहले अति प्राचीन काल में भी यह देश सभ्यता का केन्द्र रह चुका है। उसके चिह्न आज भी पाये जाते हैं। भारत के साथ दूसरा व्यापारिक सम्बन्ध भी था। ईरानी, यूनानी और रोमन आदि लोग बड़ी धूमधाम के साथ यहाँ राज्य कर चुके हैं। बड़े बड़े प्रतापी राजे और पुण्यात्मा भी यहाँ हो चुके हैं। परन्तु मुसलमान ख़लीफ़ाओं ने इस देश पर जैसा महत्त्वपूर्ण राज्य किया है वह भी इतिहास में चिरस्थायी रहेगा। इनकी बदौलत सारा देश विद्या, धन तथा बल से परिपूर्ण था। यही नहीं, वैसी प्रभुता उस समय शायद ही संसार के देश को प्राप्त रही हो। परन्तु बाद को इस देश की अवस्था जैसी बिगड़ी वह भी स्मरणीय रहेगी, तातारियों ने इसे बहुत बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। किन्तु अब जब से यह अँगरेज़ों के अधिकार में आ गया है, इसकी दशा फिर सुधरने लगी है और नवीन सभ्यता के चमत्कार दिखाई पड़ रहे हैं।

विश्वव्यापी महायुद्ध से पहले मेसोपोटामिया तुर्कों के हाथ में था, किन्तु यहाँ का बाहरी व्यापार अधिकांश अँगरेज़ों के हाथ में था और पीछे से जर्मन लोग भी इसमें भाग लेने लगे थे। एक अँगरेज़ी स्टीमर-कम्पनी भी बसरा में थी। परन्तु युद्ध के फलस्वरूप मेसोपोटामिया तुर्कों के हाथ से बिलकुल निकल गया। अब वहाँ के उत्तराधिकारी अमीर (राजा) फ़ैसल बनाये हैं। ये हिजाज़ (अरब) के वर्तमान राजा हुसैन इब्नअली के पुत्र हैं।

मेसोपोटामिया में गर्मी बहुत ज़्यादा पड़ती है। जाड़े के दिनों में जाड़ा भी बहुत अधिक होता है। वर्षा बहुत कम होती है और जाड़े के दिनों में ही होती है। इस कारण अँगरेज़ी युद्ध-काल में सेना को यहाँ बड़ा कष्ट भोगना पड़ा था। यहाँ जो सेना भेजी गई थी उसमें अधिकांश भारतीय सैनिक थे। समय की गति तो देखो कि ख़लीफ़ाओं के समय में यहाँ के सिपाहियों ने भारत पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की थी। वही इस बार भारतीयों-द्वारा सर्वांश में पराजित किया गया। यहाँ के युद्ध में जिन अँगरेज़ सेनापतियों ने प्रशंसनीय कार्य्य किया है उनमें एक स्वर्गीय लेफ्टनेण्ट जनरल सर स्टैनली माड हैं। १८ नवम्बर सन् १९१७ ई० में जब हैज़ा से बग़दाद में इनका देहान्त हो गया तब इनके स्थान पर सर विलियम रेने मारशल नियुक्त हुए। शेष कार्य्य को इन्होंने पूरा किया और फिर वहाँ से छुट्टी पाने के बाद सन् १९१९ के अन्त में आप भारत में दक्षिणी सेना-दल के प्रधान सेनापति बनाये गये।

निवासी और भाषा।

मेसोपोटामिया का क्षेत्रफल लगभग १,५०,००० वर्ग मील है और जनसंख्या ३० लाख के लगभग। यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अधिकांश निवासी सुसलमान हैं, किन्तु बड़े बड़े नगरों तथा कुछ अन्य स्थानों में यहूदी और ईसाई भी बसते हैं। सन् १९२० ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार भिन्न सम्प्रदायों की जन-संख्या इस प्रकार है:—

सुन्नी मुसलमान	११,४६,६८५
शिया मुसलमान	१४,९४,०१५
यहूदी	८७,४८८
ईसाई	७८,७९२
अन्यमतावलम्बी	४२,३०२

सुन्नी मुसलमान हर भाग में पाये जाते हैं, किन्तु अधिकांश शिया दक्षिणी भाग में ही हैं। यहूदी और ईसाई विशेषतः उत्तरी भाग अथवा बड़े बड़े नगरों में हैं।

पश्चिम तथा कुछ कुछ दक्षिण की भूमि बहुत कुछ उजड़ी है। इसमें अरब लोग ही अधिक बसे हैं। ये लोग साधारण घरों या ख़ेमों में रहते हैं। इनकी भाषा अरबी है। इस अरबी में अँगरेज़ी या फ्रेंच के शब्द भी बहुत से मिल गये हैं। उत्तर में पश्चिमी कोने पर तुर्क बसे हैं। उनकी भाषा आज़रबीज़ान देश से बहुत मिलती-जुलती है, जो शुद्ध तुर्की भाषा नहीं है। उत्तर और पूर्व की ओर के निवासी कुर्द और यज़ीदी हैं। इनकी भाषा कुर्दी है, जो एक प्रकार की फ़ारसी भाषा ही है। परन्तु यह भी जान लेना चाहिए कि मेसोपोटामिया में कुछ भारतवासी भी पहुँच गये हैं। ये लोग रेलों में हैं अथवा किसी अन्यविभाग में काम करते हैं।

सन् १९२० ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार इस देश के बड़े बड़े नगरों की जन-संख्या इस प्रकार थी:—

नगर	जन-संख्या
बसरा	१,६५,६००
अमारा	३,००,०००
मुन्तफ़िक	३,२०,०००
बग़दाद	२,५०,०००
समारा	८,९७०
दियाला	१,०४,०३६
कुत्त	१०,७,०९८
दिवानिया	२,०४,५००
शमिया	१,९०,०००
हिल्ला	१,७३,०००
दुलैम	२,५०,०००
मूसल	३,५०,३७८
अरबील	१,०६,०००
किरकक	९२,०००
सुलैमानिया	१,२५,०००

दो प्रधान नदियाँ।

इस देश में दो प्रधान नदियाँ दजला (Tigris) और फ़रात (Euphrates) हैं। दोनों आर्मेनिया से निकलती हैं और उत्तर से दक्षिण की ओर बहती हैं। अन्त में दोनों मिलकर फ़ारस की खाड़ी में गिरती हैं। जिस स्थान में दोनों नदियाँ मिलती हैं वह 'शत्तुल अरब' कहलाता है। इन नदियों के किनारे की भूमि बड़ी उपजाऊ है। इनसे व्यापार में भी बड़ी सुविधा मिलती है। इनमें कई प्रकार की नौकायें चलती हैं। इनके किनारों पर कई ऐतिहासिक और रमणीक स्थान भी हैं। जैसे दजला के तट पर—मूसल, ननीवा, बग़दाद, अमारा आदि और फ़रात के तट तथा समीप में ही—बाबुल, कर्बला, कूफ़ा और नज़फ़, अशरफ़ आदि।

दजला और दो कविवर।

समरक़न्द के एक नामी लेखक दौलतशाह का कथन है कि तेरहवीं शताब्दी ईसवी में बुख़ारा के कविवर 'नासिर' हज्ज करने के विचार से मक्का जा रहे थे। मार्ग में बग़दाद में ठहरे। यहाँ के सुप्रसिद्ध कवि सलमान सावजी की कीर्ति सुन चुके थे। इस कारण मिलने के इच्छुक हुए। कविवर नासिर बड़े सीधे-सादे ढङ्ग से रहते थे। अतः उसी रूप में सलमान के पास पहुँचे। सलमान उस समय दजला नदी के तट पर घूम रहे थे। सलमान ने साहब-सलामत के पश्चात् नाम और पता पूँछा। उत्तर दिया कि मैं कवि हूँ। दजला नदी में उस समय बाढ़ थी। और बड़ा फेन उठ रहा था। इस पर सलमान ने एक पद कहा—

दजला रा इमशाल रफ़्तारी अजब मस्ताना एस्त।

भावार्थ—दजला की चाल इस वर्ष बड़ी ही मस्तानी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्पश्चात् नासिर से कहा कि इसकी पूर्ति कीजिए। नासिर ने तुरन्त कहा—

पाय दर ज़ंजीर कफ़ बर लब मगर दीवाना एस्त।

भावार्थ—पैरों में ज़ंजीर पड़ी है और मुँह पर झाग है। शायद यह दीवाना है।

ऐसा सुनकर सलमान ने नासिर को गले लगाया और फिर अपने यहाँ ही कई दिनों तक ठहराये रक्खा।

पैदावार और कारबार।

मेसोपोटामिया के उत्तरी भाग में गेहूँ बहुत होता है और दक्षिणी में रामजाई तथा धान। परन्तु जो सबसे अधिक और बढ़िया चीज़ होती है वह खजूर है। बसरा के इलाके में तो लगभग सौ मील तक खजूर ही के वृक्ष हैं। इसकी बदौलत बहुत से लोगों की जीविका चलती है और बहुत सी खजूर बाहर भी भेजी जाती है।

उत्तरी भाग के लोग भेड़ें भी पालते हैं और उनके चमड़े और ऊन का व्यापार करते हैं। इस प्रकार के भिन्न भिन्न उद्योग-धन्धे हैं जिनकी बदौलत लोगों का निर्वाह होता है।

मिट्टी का तेल।

मेसोपोटामिया का भाग जो ईरान-राज्य से मिला हुआ है उसी के समीप ईरान में मिट्टी का तेल बहुत निकलता है। इस प्रकार यह नतीजा निकाला गया है कि मेसोपोटामिया की सीमा के अन्तर्गत भी मिट्टी का तेल बहुत निकलेगा और यह भूमि अमरीका के मेक्सिको की भूमि साबित होगी, परन्तु इस विषय में अभी तक बहुत ज़्यादा सफलता नहीं हुई।

यहाँ के व्यापार में अँगरेज़ों का बहुत बड़ा हाथ था। ईरान की मिट्टी के तेल से भी अँगरेज़ों को बहुत लाभ था और भारत से भी मेसोपोटामिया का बहुत सम्बन्ध था। इसलिए तुर्क लोग, जो जर्मनों के साथी थे, चाहते थे कि मेसोपोटामिया से अँगरेज़ों का सम्बन्ध बिलकुल टूट जाय। मिट्टी का तेल ईरान से इन्हें न मिल सके। फलतः मेसोपोटामिया का युद्धस्थल भयङ्कर स्वरूप धारण कर बैठा और दोनों ओर से सिरतोड़ कोशिश हुई।

कुछ बातों का प्रबन्ध और व्यापार।

किसी काल में जब मेसोपोटामिया में सिंचाई का प्रबन्ध अच्छा था तब यहाँ की भूमि बहुत उपजाऊ थी। अन्य सुविधायें भी लोगों को प्राप्त थीं। इस प्रकार देश की दशा बहुत अच्छी थी। अतएव देश को फिर अच्छी दशा में लाने के लिए निम्नलिखित बातों का प्रचार किया गया है—

१—सिंचाई का विभाग खोला गया है। नहरों की उन्नति तथा उनकी दशा सुधारने की ओर ध्यान दिया गया है।

२—खेती के लिए नये ढङ्ग के हल आदि की ओर किसानों का ध्यान आकर्षित किया गया है और कुछ वस्तुओं की पैदावार के निमित्त विशेष-रूप से उद्योग किया जा रहा है।

३—स्थानीय शिल्प-कला की उन्नति का भी ध्यान रक्खा गया है। कई स्थानों में प्रदर्शनियाँ हुई हैं। इस प्रकार केवल शिल्प-कला ही नहीं, बल्कि अन्य समुचित बातों में भी लोगों को उत्साहित किया गया है जैसे—घुड़-दौड़ पशुओं की प्रदर्शनी और डेरी आदि के कार्य।

४—बैंक का कारबार भी बढ़ाया गया है।

५—नदियों की दशा सुधारी गई है।

६—रेलों का जाल बिछा दिया गया है।

फलतः इन सब बातों का यह परिणाम हुआ है कि इस देश का व्यापार बहुत बढ़ गया है। बसरा और बग़दाद दोनों के आयात और निर्यात माल-विषयक कुछ अंक नीचे दिये जा रहे हैं। उनसे स्पष्टरूप से पता चल सकता है कि विश्वव्यापी महायुद्ध से पूर्व तथा बाद के व्यापार में कितना अन्तर हो गया है।

दोनों नगरों का संयुक्त आयातमाल।

वस्तु	सन् १९१८ ई०	सन् १९१९ ई०
चीनी	२,९३,०००	१४,५३,०००
धातु	७,३३,०००	१,६६,०००
टेक्सटाइल	१३,२०,०००	६३,८०,०००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों नगरों का संयुक्त निर्यातमाल।

वस्तु	सन् १९१२ ई०	सन् १९१९ ई०
खजूर	४,६६,०००	१४,७०,०००
ऊन	३,००,०००	१,६०,०००
बारली	११,२०,०००	१,९०,०००
गेहूँ	२,४०,०००	
धान	३,२६,०००	

अब यह भी ज्ञात रहे कि सन् १९१९ के बाद से और अब तक के बीच में इस देश के प्रबन्धादि के विषय में विशेषरूप से ध्यान दिया जा चुका है। इस कारण यह नतीजा निकलता है कि इस देश के कारबार और व्यापार में अधिक वृद्धि होगई होगी।

रेलवे और धार्मिक यात्री।

मेसोपोटामिया में सन् १९१४ में केवल ७० मील लम्बी रेलवे-लाईन थी, किन्तु बाद में सन् १९२० में रेलवे-लाइन का एक जाल बिछ गया। समस्त आवश्यक स्थानों तक रेल पहुँच गई। इससे व्यापार और आने जानेवालों के लिए भी बड़ा सुभीता हुआ। मेसोपोटामिया में कई स्थान जैसे—कर्बला, नजफ़ अशरफ़ आदि—विशेषतः शिया मुसलमानों के लिए धर्मानुसार आदरणीय और द्रष्टव्य स्थान हैं। इसलिए ऐसे लोगों के लिए उचित प्रबन्ध भी किया गया है। बसरा बन्दर से बग़दाद तक प्रति दिन मुसाफ़िर-गाड़ियाँ आती-जाती हैं। ३५४ मील का सफ़र है। सप्ताह में तीन डाक-गाड़ियाँ भी जाती हैं।

भारत के समान तीन वर्ष से कम आयुवालों का किराया कुछ नहीं लगता। ३ से अधिक और १२ वर्ष तक आयुवालों का किराया आधा और १२ से अधिक आयुवालों का किराया पूरा लगता है। धार्मिक यात्रियों के लिए किराया में रियायत रक्खी गई है। भारत से जानेवालों को बम्बई से भी टिकट मिल सकता है। जो लोग अपने माल असबाब की रक्षा विशेषरूप से चाहें उन्हें—डिपुटी ट्रैफ़िक मैनेजर रेलवे बसरा—से पत्र-व्यवहार करना चाहिए। इस प्रकार केवल थोड़ी सी ही अधिक रक़म के देने पर माल-असबाब रेलवे-नौकरों की निगरानी में आगे पहुँचाया जा सकता है। धार्मिक यात्रियों के लिए जो टिकट होते हैं उनकी मियाद ९० दिनों की होती है अर्थात् तीन मास के भीतर ही भीतर यात्री उसी टिकट से वापस आ सकता है। हिल्ला अथवा मुसअब स्टेशन से लोग 'कर्बला' या 'नजफ़ अशरफ़' जाते हैं। इन दोनों स्टेशनों का रियायती पूरा किराया बसरा से २९ रुपया ही है।

महेशप्रसाद मौलवी फ़ाज़िल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—स्वर्ण-धूलि।

(श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की पङ्क्तियों का अनुवाद)

(१)

कलाविद् प्रकृति का प्रेमी है, अतएव वह उसका दास भी है और स्वामी भी।

(२)

झूठी प्रशंसा करके तुम अपने मित्र को अपमानित न करो।

(३)

बड़े लोग छोटों का साथ निःशंक होकर करते हैं। मध्यम श्रेणीवाले ही अलग रहते हैं।

(४)

शक्तिमान् अपने द्वारा पीड़ित मनुष्यों की वेदना को उनकी अकृतज्ञता समझते हैं।

(५)

प्रेम! जब तुम वेदना का जलता हुआ दीपक लेकर आते हो तब मैं तुम्हारा मुख उसके प्रकाश में देख सकता हूँ और तुम्हें आनन्द-स्वरूप मानता हूँ।

(६)

जो दूसरों का उपकार करने में अत्यधिक रत रहता है उसे अपना भला करने का अवकाश नहीं मिलता।

(७)

निष्फल प्रेम ने जीवन को और भी मूल्यवान् बना दिया है।

(८)

बालक की अँगुलियों की भाँति, इस वृक्ष की, कंपन करती हुई पत्तियाँ मेरे हृदय को स्पर्श करती हैं।

(९)

हे संसार के छोटे-छोटे पथिकों के दल, मेरे शब्दों में अपने पद-चिह्न छोड़ जाओ।

(१०)

वृक्ष, पृथ्वी की आकांक्षाओं की भाँति पादाग्र पर खड़े होकर आकाश को झाँक रहे हैं।

(११)

यदि तुम क्षुधित न हो तो भोजन को दोष मत दो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२)

यदि तुम सर्वांश सत्य नहीं बोलना चाहते हो तो तुम स्पष्ट-वादी सरलतापूर्वक हो सकते हो।

(१३)

तुम्हारे स्पर्श से सम्भव है वह मर जाय, दूर रह कर सम्भव है तुम उस पर अधिकार प्राप्त कर लो।

(१४)

छोटा फूल धरती में पड़ा हुआ है।
उसने तितली का अनुकरण करना चाहा था।

(१५)

मृत लोगों को अमर ख्याति चाहिए।
जीवित लोगों को अमर प्रेम।

(१६)

नहर यह समझ रही है कि नदियों की स्थिति केवल उसमें पानी पहुँचाने के लिए है।

(१७)

वर्षा से भीगी हुई पृथ्वी की महक मूक और तुच्छ जनता की प्रशंसा की ध्वनि की भाँति ऊपर उठती है।

(१८)

जब मेरे जीवन की सभी तन्त्रियों का स्वर ठीक हो जायगा तब, हे मेरे स्वामी, तेरे प्रत्येक स्पर्श से प्रेम-सङ्गीत निकलेगा।

(१९)

क्या यह पर्वत भी, पुष्प की भाँति, अपने शिखररूपी पँखड़ियों से सूर्य्य की ज्योति का पान नहीं कर रहा है?

(२०)

वसुधा के अश्रु ही उसके स्मित को विकसित करते हैं।

(२१)

मेरा दिवस समाप्त हो गया है। मैं उस नौका की भाँति हूँ जो सन्ध्या-समय तट पर खींच लाई जाती है और वहाँ कोमल लहरों के नृत्य-संगीत को सुना करती है।

(२२)

बड़ों की कुछ क्षमता हम उस समय कर पाते हैं जब हम अत्यन्त विनय धारण करते हैं।

(२३)

लकड़हारे की कुल्हाड़ी ने वृक्ष से मूँठ का दान माँगा।

वृक्ष ने यह दान उसे दे दिया।

(२४)

मनुष्य अपने आपको स्वयं बन्धन में डालता है।

(२५)

जो उपकार जताने का इच्छुक है वह द्वार खटखटाता है। जिसे प्रेम है उसके लिए द्वार खुले हैं।

(२६)

पुष्पों में तथा सूर्य्य के आलोक में मैंने तेरी मन्द वार्ता का सरल अर्थ समझा है।

मुझे ऐसी शिक्षा दे कि मैं वेदना में तथा मृत्यु में तेरे शब्दों का अर्थ समझ सकूँ।

(२७)

प्रेम-वेदना मेरे जीवन के चारों ओर अथाह सागर की भाँति सङ्गीत कर रही है, प्रेम-आनन्द कुसुमित उद्यानों के पक्षियों की भाँति।

(२८)

सत्य अपने विरुद्ध एक आँधी पैदा कर देता है और यही आँधी उसके बीजों को दूर दूर तक फैला देती है।

(२९)

जिस प्रकार कुहरे के दूर हो जाने पर प्रभात-सूर्य्य की रोशनी पृथ्वी पर अधिकार कर लेती है उसी प्रकार जब मैं अपने आपको भूल जाता हूँ तब मेरा हृदय तेरे नाम की मृदुता से परिपूर्ण हो जाता है।

(३०)

ईश्वर अपने प्रेम में परिमित को ग्रहण करता है; मनुष्य अनन्त को।

(३१)

जलती हुई आग तो अपनी ज्वाला के प्रकाश से मुझे सचेत कर देती है। मुझे राख में छिपे हुए बुझते अङ्गारों का डर है।

(३२)

भिड़ समझती है कि उसकी पड़ोसिनी शहद की मक्खियों का छत्ता बहुत छोटा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहद की मक्खियाँ कहती हैं, तू इससे भी छोटा एक बना देख।

(३३)

मेरा हृदय अपने सङ्गीत की लहरों की थपकियों से इस सूर्यालोकित हरित संसार का दुलार करना चाहता है।

(३४)

यह जीवन समुद्र-यात्रा के सदृश है, जिसमें हम लोग एक ही सङ्कीर्ण नौका में मिलते हैं।

मृत्यु तट पर पहुँचने की भाँति है, जहाँ से हम लोग अपने अपने लोक को चले जाते हैं।

(३५)

सत्य का स्रोत भूलों के बीच से होकर बहता है।

(३६)

सूर्य के बिदा होने पर यदि तुम आँसू बहाओगे तो तुम नक्षत्रों को भी न देख पाओगे।

(३७)

एक बार मैंने स्वप्न में देखा कि हम लोग परस्पर अज्ञात हैं।

परन्तु वास्तव में हम लोग एक दूसरे को बहुत प्रिय हैं—यह मैंने जाग्रत होने पर पाया।

(३८)

मूक वृक्षों के बीच में जिस प्रकार सन्ध्या शान्त है उसी प्रकार मेरा शोक मेरे हृदय के बीच में शान्त हो गया है।

(३९)

सृष्टि का रहस्य अँधेरी रात्रि की भाँति बहुत गहन है।

(४०)

आज प्रातःकाल मैं अपनी खिड़की पर बैठा हूँ, संसार पथिक की भाँति आकर यहाँ क्षण भर ठहरता है, मुझे प्रणाम करता है और फिर चला जाता है।

(४१)

तुम अपने आपको नहीं देख सकते, जो तुम देख रहे हो वह केवल तुम्हारी छाया है।

(४२)

मेरी आकाङ्क्षायें मूढ़ हैं। हे स्वामिन्, तेरे सङ्गीत को भङ्ग कर देती हैं। मुझे केवल सुनने की आकांक्षा है।

(४३)

उस सर्वोत्तम को मैं नहीं ढूँढ़ पाता।

परन्तु वह सर्वोत्तम मुझे ढूँढ़ लेता है।

(४४)

जो दीपक को अपने पीछे रखते हैं वे अपने मार्ग में अपनी ही छाया डालते हैं।

(४५)

तुम मुस्कराये, तुमने अकिञ्चित् विषय पर दो बातें कर लीं। परन्तु मैंने यह अनुभव किया कि मैं इतने ही की चिरप्रतीक्षा कर रहा था।

(४६)

ईश्वर सृष्टि रच कर प्रकट होता है।

(४७)

मुझे अतीत काल की असफल वाञ्छाओं से मुक्त करो। ये मुझसे लिप्त होकर मेरी मृत्यु को कठिन बना रही हैं।

(४८)

सूर्यास्त के सङ्गीत में रात्रि का उपक्रम आरम्भ होता है;

यह सङ्गीत अनिर्वचनीय अन्धकार का स्तुति-गीत है।

(४९)

छोटी छोटी वस्तुएँ हम अपने प्रियजनों के लिए छोड़ जाते हैं;

हमारी बड़ी वस्तुएँ तो समस्त संसार के लिए होती हैं।

(५०)

पालतू कुत्ता समझता है कि उसका स्थान लेने के लिए सकल विश्व षड्यन्त्र कर रहा है।

(५१)

ईश्वर मनुष्य से कहता है, "मैं तुम्हें त्राण देता हूँ, इसी कारण तुम्हें त्रस्त करता, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ इसी से दंड भी देता हूँ।"

(५२)

दीपक की ज्योति को उसके प्रकाश के लिए धन्यवाद दो, परन्तु जो दीपक लिये हुए छाया में स्थिरता और धैर्य्य के साथ खड़ा हुआ है उसे मत भूल जाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५३)

काल-रूपी खँडहरों में एक विषाद-मयी वाणी निवास करती है।

रात्रि में वह मुझसे गाकर कहती है—"मैं तुम्हें प्यार करती थी।"

(५४)

आकाश में मेरे लिए नक्षत्र है।

परन्तु शोक है, मेरे घर का छोटा दीपक नहीं जला है।

(५५)

स्त्री, तूने संसार के हृदय को अपने अथाह अश्रुओं से उसी तरह घेर रक्खा है जिस प्रकार समुद्र पृथ्वी को घेरे हुए है।

(५६)

एक खिड़की, एक जलता हुआ दीपक, उसके पीछे प्रतीक्षा—सन्ध्या का आकाश मेरे लिए इसी भाँति है।

(५७)

हमारी आकांक्षा जीवन-रूपी बाष्प को इन्द्रधनुष का रङ्ग दे देती है।

(५८)

मित्र, मेरी मदिरा मेरे ही प्याले में ग्रहण करो।

दूसरों के प्याले में उड़ेलने से इसके फेन की माला नष्ट हो जाती है।

(५९)

परमात्मा बड़े बड़े साम्राज्यों से विमुख हो जाता है परन्तु, छोटे छोटे पुष्पों से कभी खिन्न नहीं होता।

(६०)

ठोकर मारने से पृथ्वी से केवल धूल उड़ सकती है, खेती नहीं उग सकती।

(६१)

जो जीवन हमें प्राप्त हुआ है उसे देकर ही हम उसके अधिकारी हो सकते हैं।

(६२)

अन्याय पराजय नहीं सहन कर सकता, धर्म कर सकता है।

(६३)

पत्नी की कामना है, "मैं बादल होता"
बादल की कामना है, "मैं पत्नी होता"।

(६४)

झरना कहता है, "जब मुझे स्वतन्त्रता मिलती है तभी मैं गीत गा सकता हूँ।"

(६५)

पवित्रता वह सम्पत्ति है जो प्रेम के बाहुल्य से उपजती है।

(६६)

बादल दूरस्थित पहाड़ियों में छिपकर नदी के जल-पात्र को भरते हैं।

(६७)

मनुष्य जिस समय पशु-तुल्य आचरण करता है उस समय पशुओं से भी गिर जाता है।

(६८)

असिधार को इस बात पर नहीं हँसना चाहिए कि मूठ कुंठित है।

(६९)

असत्य चाहे जितना बलवान हो, सत्य नहीं बन सकता।

(७०)

अंधकार में मैं एक बालक हूँ।

मा, मैं रात्रि के परदे के भीतर से तेरे लिए अपने हाथों को फैलाता हूँ।

(७१)

मृत्यु का स्रोत जीवन के स्थिर जल को नर्तन कराता है।

(७२)

मेरे मित्र, प्राची के सूर्योदय में तुम्हारा महान हृदय उसी प्रकार चमक उठा जिस प्रकार कि उषा में किसी एकाकी पर्वत का हिमाच्छादित शृंग चमक उठता है।

(७३)

हमारे नाम उन दीपकों की भाँति हैं जो सागर की लहरों पर कुछ काल तक प्रदीप्त रहते हैं फिर अपना चिह्न छोड़े बिना ही बुझ जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७४)

हमारे देश का वही कमल यहाँ एक विदेश के सरोवर में भी उसी मृदुता से विकसित है परन्तु यहाँ इसका नाम दूसरा है।

(७५)

मार्ग के किनारे उगनेवाली दूब, नक्षत्रों से प्रेम करो; तब तुम्हारे स्वप्न पुष्प-रूप में विकसित होंगे।

अनुवादक, रामचन्द्र टण्डन

——

२—प्रेम-साधना।

जो प्रेम के साधक हैं उनकी साधना जैसी सुन्दर है वैसी ही कठिन है। यद्यपि सती अग्नि में फाँद कर मर जाती है, वीर लड़ाई में खेत हो जाता है, तथापि ये कार्य प्रेम की साधना के समीप कुछ भी नहीं हैं।

साधक की साधना भीषण और रमणीय है। तब सती और शूर की साधना इसके समीप क्या है? वीर का सङ्ग्राम दो-चार पलकों का और सती की प्रचण्ड साधना तो केवल एक पल-मात्र के लिए है। बहुत हुआ तो इनकी जय होगी अन्यथा जय होगी मृत्यु की। किन्तु साधक की साधना—उसका युद्ध दिन-रात होता रहता है। सती के समान अग्नि में फाँद कर एक बार प्राण दे देने से—पल-मात्र में उसकी साधना शेष नहीं हो जाती। कामना, तृष्णा आदि कितनी रमणीय हैं? ये अपने साथ एक हो रही हैं। इन्हें भी उसे नष्ट करना होगा। अपने को प्रतिदिन क्षत-विक्षत करने के लिए यह वेदना है। ये सब मानो अपने अङ्ग में सम्मिलित हो गई हैं। जब तक एक परमाणु भी शेष रहेगा तब तक यह युद्ध चलता रहेगा। वस्तुतः यह युद्ध बड़ा ही कठिन है।

अपने को क्षय करना होगा, किन्तु सम्पूर्णतः क्षय कर डालना उचित न होगा। अन्यथा किसको लेकर साधना होगी? वह तो साधन न हुआ। वह तो मानो निधन हुआ।

बच्चे आम की गुठली बजाते हैं। पहले घिसते हैं, फिर बजाते हैं। घिसते घिसते जब स्वर बज उठता है, तब वे उसे और नहीं घिसते। अधिक घिसने से वह बजेगी ही क्या? साधक भी जब अपनी असार कामना प्रभृति प्रवृत्तियों को क्षय करके, प्रेम के स्वर में विश्व की रागिनी बजा देता है तब उसे अपनी आत्म-हत्या करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

इसी काम का नाश करके उस प्रेम को प्राप्त करना होगा जिससे विश्व की रागिनी बजती है।

काम को क्षय करके प्रेम को प्राप्त करना एक बड़ी साधना है। यदि पृथ्वी पर आकर उसने प्रेम न पाया तब किया ही क्या? यदि इस प्रकार आनन्द के सागर में आकर प्यास से मरण हुआ तब पाया ही क्या? प्रेम-रस भरा हुआ है। अतएव प्रत्येक श्वास श्वास पर उसका पान कर।

"सुधा-सागर के पास आकर प्यासा न लौट। इस सागर में निर्मल सुधा भरी हुई है। श्वास श्वास में इस परमानन्द रस का पान कर। पागल होकर, मृग-तृष्णा के पीछे पीछे दौड़ना छोड़। अमृत-रस की तृष्णा तेरे जीवन में जाग्रत हो उठेगी। ध्रुव, प्रह्लाद, शुकदेव, रविदास आदि सभी लोगों ने इसी प्रेम-रस का ही पान किया है। साधकगण केवल इसी प्रेम-रस के ही प्यासे रहते हैं। इसी में ही वे सदा मत्त रहते हैं। इस प्रेम-रस-सागर को पाकर मेरा सब भय दूर हो गया है। इस प्रेम को जान कर मैं अब निर्भय हो गया हूँ।"

इस प्रेम को प्राप्त किये बिना मानव-जीवन का मूल्य ही क्या है? भर्तृहरि ने कहा है—"जिसने मानव-जन्म पाकर, केवल पेट भर कर ही उसे व्यतीत कर दिया उसे मैं क्या कहूँ? उसने निस्सन्देह सोने का हल लेकर आनन्दमूल की खेती की। उसने मूल्यवान् रत्न-भाण्डार को चन्दन की लकड़ी जला कर ख़ाक कर डाला। उसने कपूर के टुकड़े टुकड़े करके उसे ऊसर में बो दिया। उसने मानव-जन्म पाकर केवल क्षणस्थायी सुख के अतिरिक्त और क्या पाया?"

इतनी महान् आत्मा को पाकर तुमने क्या किया? क्या परमात्मा को प्राप्त न करोगे? यदि तुम उन्हें बिना प्राप्त किये हुए बैठे रहे तो तुम्हारा जन्म व्यर्थ गया। उपनिषद् कहते हैं—"जो उनको जानकर इस संसार से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चला गया वह धन्य हो गया; और जो उनको बिना जाने हुए चला गया वह बेचारा कृपा का पात्र हो गया।"

सामान्य यश, सामान्य मान, धन, गौरव इन सबके लिए तुमने ऐसा अमूल्य जीवन फूँक दिया! उस परम सत्य को जानने के लिए तुमने कुछ भी नहीं किया!

"हाय, यह अमूल्य जीवन! एक कौड़ी के लिए तुमने इसको बाज़ी पर लगा दिया!"

मैं तुम्हारे साथ प्रेम का खेल करने के लिए बैठा हुआ हूँ। मैं यदि पराजित होऊँ तो तुम्हारा हूँ। तुम यदि पराजित होते हो तो तुम मेरे हो। किसी दशा में पराजय नहीं है। मेरे अन्तःस्तल में जो प्रेम भरा हुआ है—उसे, उसकी वरण-माला यदि मैंने तुम्हें न पहिनाई तो मेरी समस्त पवित्रता मानो नष्ट हो गई। दमयन्ती की कथा ही लीजिए। जिसने परमात्मा के गले में माला डाल दी उसका जीवात्मा पवित्र हो गया। उसका मान रह गया। यदि परमात्मा को बिना पहचाने संसार के गले में माला डाली तो जीवात्मा की पवित्रता—सतीत्व आदि सभी गया। जीवन-स्वामी विश्वनाथ के घर आये हुए हैं। उन्हें यदि बिना देखे हुए चले गये तो सभी वृथा हुआ। युग युग में तुम्हारा ही राजत्व है। विश्व तुम्हारे ही अधिकार में है। जगन्नाथ भी स्वयं तुम्हारे ही हैं। इस प्रेम के उत्पन्न होने से सब सार्थक हो जायगा। उन्हें वरण-माला पहिना कर तुम्हारा संसार-धर्म आदि सभी सार्थक हो जायगा। अन्यथा सब ही वृथा है।

"स्वामी ने सब कुछ दिया है। कुछ भी बाक़ी नहीं रक्खा। मैं ही अभागिनी नारी हूँ जो सुख छोड़ कर दुख उठा रही हूँ। पिय के धाम में आने पर भी उनके साथ मेरा मिलन न हुआ। कबीर कहते हैं, "हृदय में समझ देख। युग युग में तुम्हारा ही तो राजत्व है। अतएव दुर्बुद्धि छोड़ दे।" स्वामी को छोड़ कर अन्य सब कुछ पाने की चेष्टा ही तो यथार्थ दुर्बुद्धि है।

"आज प्रेम से भरे हुए यौवन ने मुझे उनकी ख़बर दी है। उनको ही वरण-माला पहनानी होगी—ज्ञान ने मुझे यह समाचार दिया है। मानो यह उनका पत्र है। मैं व्याकुल हो रही हूँ। हे अविनाशी, हे प्रियतम, इस निष्ठुर काल से तुम्हारा तो कुछ आना-जाना नहीं है। हे अनादि अनन्त, तुम तो अपेक्षा कर सकते हो और मैं कहाँ कर सकती हूँ?"

"हे सखियो, मैं भी प्रियतम की प्यासिनी हुई हूँ। यौवन उभर रहा है। दुख दे रहा है। क्या अब मैं ज्ञान-गली में भटक भटक कर मरूँगी! तो भी ज्ञान को धन्य है। कारण, यही तो प्रियतम का पत्र है। इस पत्र में अपरूप सन्देश है। उसे किस प्रकार समझाऊँ? तथापि यह तो निश्चित ही है कि अब मैं मरने को भी नहीं डरती। अब तो अविनाशी वर मिल गया है।"

हे अविनाशी, कदाचित् तुम्हारे समय का अन्त नहीं है, इसी लिए उसकी कोई सूचना नहीं है। किन्तु मेरा समय तो परिमित है। यह जीवन आज कमल के समान विकसित हो उठा है। यह अस्थायी सौन्दर्य जो जीवन में फूट रहा है उसको यदि तुम धन्य न करोगे तो तुम्हारे लिए कोई दण्ड न हो सकेगा। किन्तु, मेरे लिए तो कोई उपाय ही नहीं है।

"हे भ्रमर, चल चल, अपने कमल के पास चल। तेरा कमल बड़े उदास स्वर में गान गा रहा है। बारम्बार वह तेरी खोज कर रहा है। उसका तन-वन डाल डाल में फूलों से लद गया है। किन्तु हाय, वह मनोहर कुसुम केवल चार दिन के लिए खिला है। इसी लिए तो वेदना हो रही है। यह फूल बासी होकर सूख जायगा। तब हे भ्रमर, यह दुख कैसे मिटेगा? इतना दुख रखने के लिए कहाँ स्थान मिलेगा?"

इस जीवन की डालें डालें फूलों से लद गई हैं। किन्तु जीवन का भ्रमर कहाँ है? इसी लिए उसके मन में व्यथा हूक मार रही है। यह आज विकसित हुआ है, कल बासी हो जायगा—सूख जायगा। तब हे भ्रमर, मैं यह दुःख कहाँ रक्खूँगा? यही तो असीम के लिए ससीम का क्रन्दन है। यदि वे वैरागी तथा अनासक्त होकर रहते तो कोई आशा ही न थी। मैं ससीम हूँ और वे असीम। किन्तु यहाँ तो छोटे-बड़े की बात नहीं है। यह तो प्रेम है। मेरी उपेक्षा करके वे नहीं रह सकते।

अपनी विश्व-प्रकृति के सम्राट् होने पर भी मेरे बिना उनका प्रेम-स्वरूप असम्पूर्ण है। मेरे बिना उनका नहीं चल सकता—इस तत्त्व को मध्य-युग के कवि ज्ञानदास ने भी चमत्कारपूर्ण कवित्व में प्रकाशित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लोक-लोकान्तर के अधीश्वर महोत्सव में रत हैं। प्रकृति उनका दूत है। मैं उनका एक-मात्र अतिथि हूँ। अन्यत्र दूत इतने आडम्बर से आता है कि मैं उसके ऐश्वर्य-मात्र को ही देखता हूँ। जिस हिरण्मय पात्र में उसके सत्य को ढाँक रक्खा है उसे मैं देख रहा हूँ।

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम् मुखम्"

इस पात्र को बिना दूर किये वह कैसे दिखाई देगा? तब तो दूत का आडम्बर ही बाधक हुआ।

"हे दूत जब तुम प्रातःकाल में आये तब तुम्हारा सुनहरी पहनावा था। उस समय पुष्प-गन्ध से भरी हुई पवन के सुरभि-निश्वास ने मेरे मन को जगा दिया। तुम्हारी मध्याह्न-किरणों ने मुझे उदास कर दिया। दिग-दिगन्त में तुमने कैसी एक व्यथा भर रक्खी थी! (प्रातः-काल) तुम्हारे सुनहरी पहनावे और पुष्प-सौरभ से मुग्ध हुआ। किन्तु तुमसे सम्भाषण करने का मुझे अवसर नहीं मिला। मध्याह्न में तुम्हारे उदास आकाश को ही देखता रहा। इस समय मेरा मन वैराग्य से भर गया। जब सन्ध्या के समय गोधूली-बेला में पश्चिमाकाश में तुम्हारे गाने से मानो मरण के समान काल-रात्रि आई तब तुमने एक पत्र दिया। उसका काग़ज़ काला था, जिस पर अग्नि के समान अक्षर चमक रहे थे। हे दूत, तुममें इतना आडम्बर क्यों है? तुमको देखकर ही मैं जैसे आत्म-विस्मृत हो गया! तुम जिनके दूत थे उनकी बात तो मैं कुछ भी न समझ सका।"

दूत (विश्व-प्रकृति) ने कहा—"उनकी सभा विराट् है। वे महामहोत्सव कर रहे हैं, जिनके तुम एक-मात्र अतिथि हो। अतः लोक-लोकान्तरों में मैंने पत्र छोड़ दिये हैं, केवल इसी लिए कि तुम्हारी नज़र उन पर पड़े। मैं अपने को, प्रभु के एक-मात्र अतिथि का दूत समझ कर आत्म-गर्व का अनुभव कर रहा हूँ। यही कारण है कि मेरा इतना आडम्बर है। तुम्हीं कहो, क्या मैं तुम्हारे पास दीन-वेश में आ सकता?"

अब मैं समझ सका कि मेरे बिना ही उनका विश्व-महोत्सव रुका हुआ है। मेरे लिए ही वे व्यग्र हैं। मैं उन्हें प्राप्त हो सकूँगा, इसी लिए वे भिखारी होकर निकल पड़े हैं।

हे फ़क़ीर, दोनों ही प्रेम के बन्धन में बँधे हुए हैं। मैं अपने घर में सो रहा था। स्वर के आघात से अनायास ही जाग उठा हूँ। भवसागर में डूब रहा था। हाथ पकड़ कर तुमने मुझे बचा लिया। हे फ़क़ीर, बिना एक बात कहे हुए, दूसरी बात भी नहीं, मेरे सब बन्धन टूट गये। हे फ़क़ीर, मेरे प्राण से तुम्हारे प्राण लग गये हैं।

यद्यपि उन्हें देखा नहीं, तथापि उनका स्वर सुनकर मैं उदासीन हो गया। मेरा फ़क़ीर जो मेरे लिए ही भिखारी होकर निकल पड़ा है उसे क्या मैं उपेक्षा के भाव से देख सकता हूँ? मेरे पास, उनके लिए क्या कुछ अदेय हो सकता है?

मेरा फ़क़ीर भिक्षा माँगकर चला जा रहा है। मैंने तो उसे देख भी नहीं पाया। भिक्षुक के समीप भिक्षा का प्रतिदान कैसा? मैं तो उन्हीं का हूँ। जो होना हो सो होता क्यों नहीं।"

तुम मेरा सब कुछ लेकर—भिखारी बनाकर, आज मुझसे भिक्षा माँग रहे हो। अब मेरे पास तो कुछ नहीं है। अतः आज आत्म-समर्पण ही करना होगा। वे कितने युगों से जीवन के द्वार पर खड़े होकर भिक्षा माँग रहे हैं। आज आनाकानी करने का अवसर नहीं है।

आज आनाकानी करने का अवसर नहीं है। आज उनकी सेवा कर। प्रेम-वैराग्य के बिना तू उस परमानन्द-सागर को नहीं देख सकेगा। आज उनको सब कुछ देकर धन्य हो। शिखा से प्रदीप आत्म-दान करके धन्य होता है। समुद्र में नदी लीन होकर धन्य हो जाती है। कुसुम खिलकर अपना सौरभ लुटाकर धन्य है। सूर्य अपने को जलाकर धन्य है। आहा, इस दान के बिना—इस ज्वाला के बिना जीवन व्यर्थ है। आज सर्वस्व देकर धन्य हो।

"आज के दिन बलिहारी जाऊँ। आज प्रियतम मेरे घर पर अतिथि हैं। घर में, आँगन में, सभी स्थानों में कैसी शोभा हो रही है। सब तृष्णा आज तृप्त होकर मङ्गल-गान कर रही है। उनका मनोहर रूप देखकर मन आपे में नहीं है। आज उनके चरण धोऊँगा, सुन्दर स्वरूप को देखूँगा और तन, मन, धन सब उन्हीं पर उत्सर्ग करूँगा। प्रेम से ही सत्य-नाम की तृष्णा जाग्रत हुई है।

यही तो साधना है। मेरा प्रेम उनके प्रेम से परिपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उनका प्रेम भी मेरे बिना अपूर्ण है। इसी लिए वे असीम धैर्य के साथ मेरे द्वार पर खड़े हुए हैं। यदि एक बार उस भिखारी की करुणापूर्ण आँखें देखोगे तो घर-बार छोड़कर भिखारी होना होगा। कितने युगों तक उनको इस तरह खड़ा रक्खोगे? देखो, मेरा फ़क़ीर आज मेरी भिक्षा माँगकर उदासी गान गाता हुआ चला जा रहा है। मेरे हृदय के अन्तस्तल में जाकर आज वही स्वर बज रहा है।*

मङ्गलप्रसाद विश्वकर्मा

३—वनस्पति के सजीव तत्त्व के सम्बन्ध में कुछ और बातें।

एक-पेशीय वनस्पति को साधारणतया तीन चीज़ों की ज़रूरत होती है। ये तीन चीज़ें हैं १ जल २ शुद्ध वायु और ३ भोजन। पानी के बिना किसी सचेतन शरीर का ज़िन्दा रहना सम्भव नहीं। यह मानी हुई बात है कि सजीव तत्त्व का अधिकांश भाग पानी है। इस पानी में से ही सजीव-तत्त्व, अन्तर्शोषण और विसर्जन का कार्य सम्पन्न करते हैं। पानी में घुल जाने के बाद ही एक पेशी में के जैव और खनिज द्रव्य दूसरी पेशी में प्रवेश पा सकते हैं। पानी में घुले बिना कोई पदार्थ वनस्पति के शरीर में प्रवेश नहीं पा सकता। कई दिन तक पानी न मिलने पर वनस्पति का भीतरी व्यापार बन्द हो जाता है और तब वह मर जाती है। वनस्पति के शरीर में पानी का अभाव हो जाने के बाद, जड़ों में कितना ही पानी क्यों न दिया जाय, वह पुनः जीवित हो ही नहीं सकती। पानी से पेशी में एक प्रकार की शक्ति उत्पन्न होती है। यही शक्ति पेशी को मज़बूत बनाती है। सचेतन पेशी की किसी अवस्था में जड़स्थान पाये जाते हैं। इन जड़स्थानों में पेशी-रस पाया जाता है। अर्थात् सजीव-तत्त्व को जड़स्थान के पानी अर्थात् पेशी-रस की अत्यन्त आवश्यकता रहती है।

जलज वनस्पतियों की पेशियों को चारों ओर से पानी मिलने की सुविधा रहती है। इन वनस्पतियों की पेशियों के जड़-स्थान स्थलज वनस्पति की पेशी के जड़स्थान से छोटे होते हैं। परन्तु उनके अस्तित्व से यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि सजीव तत्त्व के लिए पानी एक अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। कारण कि यदि ऐसा न होता तो वनस्पति को, बाहर से पानी मिलने का सुभीता रहने पर भी, अपने शरीर के अन्दर पानी सञ्चित कर रखने की कोई ज़रूरत न थी।

दूसरी आवश्यक वस्तु हवा है। प्रत्येक सचेतन शरीर को शुद्ध हवा की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। शरीर-रचना की भिन्नता के कारण वनस्पति को, जुदी जुदी रीति से, शुद्ध हवा, अपने शरीर के अन्दर पहुँचाना पड़ती है। वनस्पति के शरीर में, अभिसरण करनेवाले जल के साथ, हवा भी खेलती रहती है।

तीसरा आवश्यक पदार्थ अन्न है। अन्न भी पानी के साथ ही वनस्पति-शरीर में प्रवेश करता है और उसी के साथ सभी अवयवों में फैल जाता है। अन्न जल में घुलकर ही वनस्पति-शरीर में प्रवेश करता है। वनस्पति की देह में खाद्य-पदार्थों से जैव अन्न तैयार होता है और इसी से वनस्पति के शरीर का पोषण होता है। अन्न की बदौलत ही सजीव-तत्त्व का अभाव नहीं होने पाता। नवीन अन्न का बनना बन्द हो जाय या तैयार हुए अन्न का वनस्पति-शरीर में फैलना रुक जाय तो वनस्पति की देह की सब क्रियायें बन्द हो जायँगी। शरीर के सजीव तत्त्वों के ख़र्च हो जाने पर, यदि नव-जात सजीव-तत्त्व उनका स्थान ग्रहण न कर लें, तो वनस्पति की अवश्य ही मौत हो जायगी। सारांश में पानी और शुद्ध हवा के समान अन्न भी वनस्पति के लिए अत्यावश्यक है।

एक-पेशीय और बहु-पेशीय वनस्पति की स्थिति एक सी ही समझना चाहिए। जो पदार्थ एक सचेतन पेशी में पाये जाते हैं वही न्यूनाधिक परिमाण में अन्य पेशियों में भी पाये जाते हैं। एक-पेशीय वनस्पति को अपना जीवन-व्यापार एक ही पेशी के अन्दर चलाना पड़ता है और बहु-पेशीय वनस्पति में यही कार्य भिन्न भिन्न पेशियों-द्वारा सम्पन्न होता है। एक पेशी से दूसरी पेशी उत्पन्न होती रहती है, जिससे उनकी संख्या बढ़ती जाती है। समान आकार की पेशियों का सङ्घ मिलकर एक

* प्रवासी से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशिष्ट जीवन-कार्य सम्पादन करता है। इस पेशी-समूह को पेशी-जाल (Tissue) कहते हैं। कई पेशी-जालों के मिल जाने से एक विशेष भाग उत्पन्न होता है, जिसको अवयव या इन्द्रिय (Organ) नाम दिया गया है। एक-पेशीय क्षुद्र वनस्पति में भी अवयव-रचना दृष्टिगोचर होती है। अवयव में पेशी-जाल की किसी निश्चित संख्या का होना आवश्यक नहीं है। भिन्न भिन्न वनस्पति के अवयवों में पेशी-जाल की संख्या न्यूनाधिक हो सकती है। किसी अवयव का कोई निश्चित आकार होना भी ज़रूरी नहीं है। भिन्न भिन्न वनस्पति का आकार और विस्तार जुदा जुदा होता है। सभी वनस्पतियों में चार मुख्य अवयव होते हैं। ये चार मुख्य अवयव हैं—जड़, तना, पत्ते और पुष्प। इनमें से प्रत्येक जुदा जुदा कार्य सम्पादन करता है। प्रत्येक अवयव में जुदे जुदे पेशी-जाल हैं, जो हमेशा अपने काम में निरत रहते हैं। जड़ में भी कई पेशी-जाल रहते हैं। प्रत्येक के ज़िम्मे जुदा जुदा काम रहता है। कुछ पेशी-जाल जड़ों की रक्षा करते हैं। कुछ ज़मीन से खाद्य-पदार्थ ग्रहण कर उसे भीतर के भाग में सुरक्षित रखने का कार्य करते हैं। कुछ शोषण किये हुए खाद्य-पदार्थों को वनस्पति के शरीर में पहुँचाते हैं। और कुछ केवल रस लाने ले जाने का काम करते हैं। कुछ पेशी-जाल जड़ों को ज़मीन में गहरा प्रवेश कराकर पौधे को मज़बूती से खड़ा रखते हैं। कुछ मुख्य मुख्य जड़ों पर दूसरी जड़ें उत्पन्न करने का काम करते हैं। इस प्रकार अनेक पेशी-जाल भिन्न भिन्न काम करने में लगे रहते हैं। इन सभी पेशी-जालों-द्वारा सम्पादित कार्यों का एकीकरण ही जड़ों का सङ्कलित कार्य है। भिन्न भिन्न जाति की वनस्पति की जड़ें भिन्न भिन्न प्रकार की होती हैं। कुछ वनस्पतियों की जड़ें 'मूसला' और कुछ की 'झाँकरा' होती हैं। कुछ वनस्पतियाँ ऐसी भी हैं, जिनकी शाखा, तने, आदि ज़मीन से बाहरवाले अवयवों पर भी जड़ें निकल आती हैं। ये जड़ें तब धीरे धीरे बढ़ती हुई ज़मीन के अन्दर घुस जाती हैं। इन जड़ों से पौधा अधिक मज़बूत हो जाता है। कुछ पौधों को खड़े होने के लिए दूसरों का सहारा लेना पड़ता है। इन पौधों के तने, शाखा आदि से जड़ें निकल कर आश्रय-स्थान में प्रवेश करती हैं, जिससे पौधे को ऊँचा चढ़ने में मदद मिलती है। कुछ पौधे दूसरे पौधों पर उग आते हैं और उसके (पोषक) पौधे के शरीर में अपनी जड़ें प्रवेश कर उसके शरीर से भोजन ग्रहण करते हैं।

तने के ज़िम्मे भी एक विशेष काम रहता है। जड़ों-द्वारा पहुँचाये हुए क्षारों को पत्तों तक पहुँचाना, पत्तों-द्वारा तैयार किये हुए भोजन को वनस्पति के सभी अवयवों तक भोजन या उसको सञ्चित कर सुरक्षित रखना आदि काम स्कंध-तने को ही करना पड़ता है। नवीन शाखा या पत्ते उत्पन्न करना, उनका बोझ सँभालना, पत्तों को काफ़ी प्रकाश मिलने की व्यवस्था करना आदि कामों का भार भी स्कंध पर ही रहता है। सब पदार्थों का आवागमन स्कंध से ही होता है। स्कंध की अन्तर्रचना इन कामों के उपयुक्त ही होती है। शाखा, पत्ते आदि का भार तने को ही उठाना पड़ता है और यही कारण है कि उसमें काष्ठ-तत्त्व अधिक पाया जाता है। इसी काष्ठ-तत्त्व की बदौलत तना मोटा और मज़बूत बना रहता है। परिस्थिति के अनुरूप स्कंध भिन्न भिन्न आकार ग्रहण कर लेता है। उसी प्रकार कभी कभी स्कंध को अन्य अवयवों का भी काम करना पड़ता है।

हवा से कारबन-आम्ल सोखकर उससे सात्त्विक जैव पदार्थ बनाना, जड़ों-द्वारा सोखे हुए पानी को वाष्पीभवन-द्वारा हवा में छोड़ देना, आक्सिजन वायु ग्रहण कर श्वासोच्छ्वास की क्रिया में मदद करना आदि काम पत्तों को करने पड़ते हैं। इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए पत्ते भिन्न भिन्न आकार ग्रहण कर लेते हैं। पत्तों का छोटा-बड़ा होना, पत्तों के डंठल का होना न होना आदि बातें पत्तों में नैसर्गिक हैं। इनसे पत्तों को अपना कार्य सम्पन्न करने में बहुत मदद मिलती है।

मूल, स्कंध और पत्तों के कार्यों से ही वनस्पति के शरीर का पोषण होता है। शरीरपोषण के लिए उपयुक्त तीनों अवयव अपना अपना काम स्वतन्त्र रीति से करते रहते हैं। इन्हीं के परिश्रम से शरीर पुष्ट बनता है। ज्यों ज्यों शरीर मोटा होता जाता है त्यों त्यों उसको अधिकाधिक अन्न की ज़रूरत होती है। इस अन्न-प्रवाह को जारी रखने के लिए अवयवों को भी ज़्यादा मेहनत करना पड़ती है। पौधे की वृद्धि के साथ ही अन्न भी काफ़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता रहा तो नवीन बाढ़ होती रहती है। अन्न कम मिला तो एक आध भाग सूखने लगता है। और यह अवस्था अधिक समय तक बनी रही, तो वनस्पति की मृत्यु हो जाने का डर रहता है।

वनस्पति का प्रत्येक अवयव अनेक पेशी-जालों का बना होता है और हर एक पेशी-जाल में कई पेशियाँ रहती हैं। एवं प्रत्येक पेशी सार्वजनिक कार्य में यथाशक्ति सहायता पहुँचाती है। इस पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि एक शरीर के पोषण के लिए सैकड़ों पेशियों को अनवरत परिश्रम करना पड़ता है। अतः पोषण-कार्य क्लिष्ट और परिश्रम-साध्य है।

बनस्पति का चौथा अवयव पुष्प है। इसे जननेन्द्रिय भी कह सकते हैं। फूलों से फल तैयार होता है और फलों में बीज रहता है, जिसको 'बालतरु' कह सकते हैं। बीज या मुग्धावस्थास्थित 'बाल-तरु' योग्य परिस्थिति प्राप्त होते ही अङ्कुरित होकर बढ़ने लगता है और तब वह एक स्वतन्त्र वृक्ष बन जाता है। बीजोत्पत्ति के लिए स्त्री-तत्त्व और पुंस्तत्त्व का संयोग होना आवश्यक है। पुंकेसर में के पराग-कण पराग-वाहिनी के अग्रभाग पर पड़कर भीतर की ओर बढ़ता जाता है। उसके पुंस्तत्त्व-केन्द्र का गर्भाण्ड से संयोग होते ही गर्भधारण हो जाता है। गर्भी-कृत गर्भाण्ड से ही बीज की वृद्धि होती है। सारांश में, पुष्प ही पुनरुत्पादन के साधन हैं।

जिन वनस्पतियों में फूल नहीं आते, उनमें फूल के समान दूसरी जननेन्द्रियाँ होती हैं। उनकी जनन-पेशी, (spores) बढ़कर प्रजोत्पादन साधन करती हैं। कभी कभी स्त्री-पुरुष-व्यञ्जक भाग अलग पैदा होते हैं और उनके तत्त्वों के संयोग से गर्भधारणा होती है। गर्भ-स्थित पेशी कुछ काल विश्रान्ति लेने के बाद योग्य परिस्थिति प्राप्त होते ही नवीन वनस्पति बन जाती है।

वनस्पति के शरीर को लाखों पेशियों का उपनिवेश कह सकते हैं। इस उपनिवेश के कुछ निवासी अहर्निश अनवरत परिश्रम करते करते थक कर मर जाते हैं। और उनसे सैकड़ों नवीन पेशियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। मृत पेशियों के कङ्कालों के एकत्र हो जाने से उपनिवेश को एक प्रकार की शक्ति प्राप्त हो जाती है। कुछ दिन के बाद मृतपेशी गलकर नष्ट हो जाती है। प्रत्येक पेशी अपना अपना काम व्यक्तिशः स्वतन्त्र रीति से करती है और उसका लाभ सार्वजनिक संस्था उपनिवेश को देती है। प्रत्येक पेशी को शुद्ध हवा, पानी और अन्न की आवश्यकता होती है। यदि एक पेशी में इन पदार्थों का अभाव होता है, तो दूसरी पेशी से लिये जाते हैं। अर्थात् एक पेशी दूसरी पेशी की आवश्यकता पूर्ण करती रहती है। प्रत्येक पेशी अपने निज के जीवन-कार्य में पूर्ण स्वतन्त्र है, परन्तु सार्वजनिक कार्यों में वह दूसरे पर अवलम्बित रहती है। एक पेशी के मर जाने से शरीर को कोई हानि नहीं पहुँचती।

शरीर के मान से पेशी की संख्या भी न्यूनाधिक रहती है। कई शरीर इतने छोटे होते हैं कि वह एक ही पेशी से बना होता है। कहें तो कह सकते हैं कि बहु-पेशीमय शरीर समाज-प्रिय पेशियों का उपनिवेश है। और एक पेशी-मय वनस्पति में अभी तक समाज-तत्त्व का उत्क्रमण नहीं हो पाया है।

सारे शरीर की प्रत्येक पेशी समान महत्त्व रखती है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह नहीं कहा जा सकता कि वनस्पति का कोई विशेष अवयव अधिक महत्त्व रखता है। सभी पेशियों का सजीवतत्त्व एकसा होता है। यह माना कि स्थान-भिन्नता के कारण भिन्न भिन्न पेशियों का काम जुदे जुदे प्रकार का होता है; किन्तु मूलतत्त्व में बिलकुल अन्तर नहीं है। और यही कारण है कि वनस्पति के शरीर को लाखों पेशियों का उपनिवेश कहा है। भिन्न भिन्न शरीरों की अवयवरचना में भिन्नता का होना अनिवार्य है। पूर्ण बाढ़ को पहुँचे हुए पौधे में सभी अवयव पाये जाते हैं, किन्तु शरीर के प्रत्येक अवयव की पूर्ण बाढ़ होना शक्य नहीं। एक पेशीमय वनस्पति से ही, उत्क्रान्तिवाद के सिद्धान्तों के अनुसार, बहुपेशीमय वनस्पति की सृष्टि हुई है। प्रारम्भ में सभी पेशियाँ स्वतन्त्र थीं। धीरे धीरे, उत्क्रान्तिवाद के तत्त्वों के अनुसार, समय पाकर सङ्घ-शक्ति का आश्रय मिल जाने से शरीर-वैचित्र्य उत्पन्न हो गया। और यही कारण है कि आज वनस्पति-संसार वैचित्र्य-पूर्ण दृष्टिगोचर होता है।

आदि अवस्था में सूक्ष्म-वनस्पति और सूक्ष्म-प्राणियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कुछ भी अन्तर नहीं था। परन्तु बाद में परिस्थिति के अनुरूप अन्तर पड़ता गया। और अब हम उनको दो-तीन कोटि के मानने लगे हैं। परन्तु यह निर्विवाद है कि उन दोनों का मूल-स्वरूप एक ही है। एक पेशी-मय वनस्पति में धीरे धीरे आकार, रचना, पुनरुत्पादन आदि में वैचित्र्य उत्पन्न होता गया और यही कारण है कि एक पेशीमय वनस्पति में भी अनेक प्रकार की विचित्रता दृष्टिगोचर होती है। प्लूरो कोकस, किण्व, युग्लीना, डेसमिड, डायटम, व्हॉलव्हॉक्स आदि वनस्पतियाँ एकपेशीमय हैं। किन्तु उनकी रचना, पुनरुत्पादन आदि में पुष्कल अन्तर पाया जाता है। इससे कुछ ऊँचे दरजे की बहुपेशीमय अवस्था में स्थित वनस्पतियों पर नज़र डालिए तो वहाँ भी ऐसी ही विचित्रता नज़र आएगी। प्रारम्भिक अवस्था में बहुपेशीमय वनस्पति और एकपेशीय वनस्पति में उतना अन्तर नहीं पाया जाता। किन्तु क्रमशः यह स्थिति बदल जाती है और अधिकाधिक तीव्र भेद उत्पन्न हो जाता है। नॉस्टाक बहुपेशीय वनस्पति हैं, किन्तु उसकी प्रत्येक पेशी दूसरी पेशी से बिलकुल स्वतन्त्र है। पेशियों का पारस्परिक सम्बन्ध इतना ही है कि वे एकत्र रहती हैं। जीवन-कार्य में वे एक दूसरी से पूर्ण स्वतन्त्र हैं। इस वनस्पति का शरीर बहुपेशीमय है, तो भी नॉस्टाक और एकपेशीय वनस्पति के शरीर एक-से ही हैं। अवयवरचना-सम्बन्धी अन्तर तो इनमें अवश्य ही है और होना भी चाहिए। इस प्रकार की सादी बहुपेशीय वनस्पति से ज्यों ज्यों ऊँचे दरजे की वनस्पति पर नज़र डालते जाते हैं—त्यों त्यों शरीरभिन्नता अधिकाधिक दृढ़ होती हुई नज़र आती है। उसी प्रकार उत्पादनस्थिति में भी फ़र्क़ पड़ता जाता है। युलोथ्रिक्स व्हावचेरिया, स्पायरो गायरा, फ्यूक्स, नायटेला, चारा आदि वनस्पतियों में क्रम क्रम से होनेवाला फ़र्क़ साफ़ नज़र आता है।

व्यापक दृष्टि से विचार करने पर यह बात साफ़ मालूम हो जाती है कि वनस्पतियों का शरीर एक दूसरे से साम्य रखता है। पत्ते, मूल, तना आदि भाग उनमें नहीं होते। इससे ऊँचे दरजे की वनस्पति में पत्ते और तने दृष्टिगोचर होने लगते हैं। फ्यूकस का शरीर बहुत बड़ा होता है, परन्तु उससे भिन्न भिन्न अवयव स्पष्ट नहीं दिखाई देते। शेवार के वर्ग की वनस्पति में पत्ते आदि अवयव कुछ कुछ स्पष्ट होते जाते हैं। इनके जीवन-क्रम में जननपेशी (shore) और संयोगपेशी (Gamete) उत्पन्न होकर एक ही पेशी में एक के बाद दूसरी स्थिति दिखाई देती है। हंसराज और फर्न इससे ऊँचे दरजे की वनस्पतियाँ हैं। इस वर्ग में पत्ते, तने, मूल आदि अवयव पूर्ण बाढ़ को पहुँचे हुए पाये जाते हैं। जननेन्द्रिय की स्थिति-मात्र भिन्न होती है। इस वर्ग में भी जनन-पेशी और संयोग-पेशी उत्पन्न होती है। किन्तु उक्त शेवारवर्ग के समान वे दोनों एक ही स्थिति में पैदा न होकर भिन्न भिन्न स्थिति में उत्पन्न होती हैं।

इसी वर्ग से सपुष्पवर्ग की वनस्पति का उत्क्रमण हुआ है। फूलों के समान विशिष्ट और स्पष्ट जननेन्द्रिय-स्थिति इससे पहले के वर्ग में नहीं पाई जाती है। सपुष्प-वर्ग में ही फूलों का विकास हुआ। इस सपुष्प-वर्ग में भी एकदल, द्विदल और बहुदल नामक तीन उपवर्ग पाये जाते हैं। इस वर्ग में फल और बीज बनने की स्थिति स्पष्ट होगई है। पहले के वर्ग में जनन-पेशी और संयोग-पेशी का पारस्परिक संयोग होने से गर्भजात पेशी बनती है। इस गर्भजात पेशी और बीज में पुष्कल अन्तर पाया जाता है। बीज गर्भजात पेशी की आगे की स्थिति है। पेशी के गर्भ में आते ही उसमें फ़र्क़ पड़ने लगता है। और तब उससे धीरे धीरे बीज तैयार होता है। हमारे मत से गर्भजात पेशी से ही बीज-स्थिति का उत्क्रमण हुआ है।

इस लेख में सब पेशियों के सजीव तत्त्व का वर्णन कर—उनका और एकपेशीय वनस्पति का पारस्परिक सम्बन्ध बताया गया है। और वनस्पति-उत्क्रमण में, प्राथमिक अवयव-रचना और उनमें पाई जानेवाली विचित्रता किस प्रकार उत्पन्न हुई, यह बात भी संक्षेप में दिखाई गई है*।

शङ्कर राव जोशी

---

*नवयुग के एक मराठी लेख के आधार पर—लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

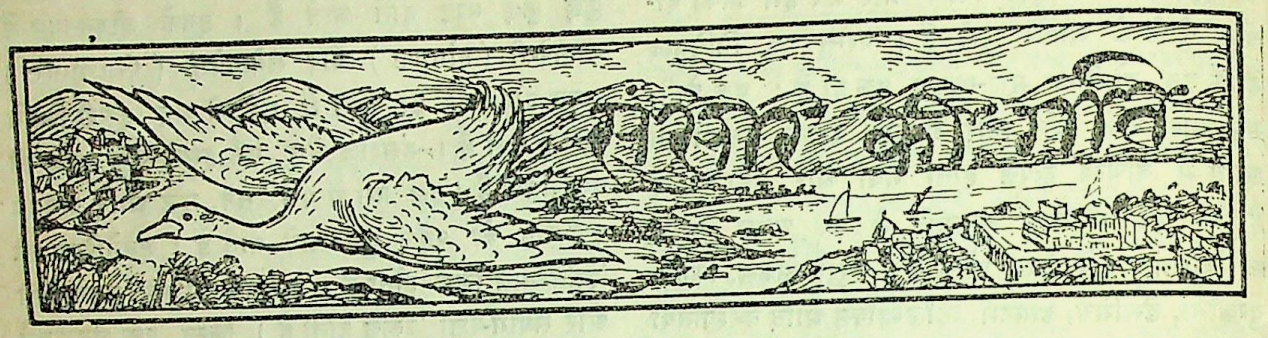

१—विश्व-सङ्घ।

संसार में चिरन्तन शान्ति की इच्छा इस समय जितनी तीव्र हो रही है, शायद उतनी तीव्र पहले कभी नहीं थी। अधिकांश लोगों की इच्छा हो रही है कि संसार से युद्ध का नाम सदैव के लिए उठा दिया जाय। यह इच्छा कुछ नई नहीं है, समय समय पर इसका सदा प्रादुर्भाव हुआ है। आज से २,३०० वर्ष पहले सम्राट् अशोक ने युद्ध के प्रति ऐसी ही घृणा प्रकट की थी। अठारहवीं शताब्दी में योरप के प्रसिद्ध तत्ववेत्ता कान्ट ने भी संसार के सामने जीवन का सर्वोच्च आदर्श रक्खा था—संसार में सार्वभौमिक रूप से चिरन्तन शान्ति के लिए चेष्टा करना। विगत योरपीय महायुद्ध के अन्त में प्रेसीडेन्ट विलसन ने इसी इच्छा से प्रेरित होकर वर्सेलीज़ के सन्धिपत्र के साथ राष्ट्र-संघ की स्थापना का प्रस्ताव किया था। राष्ट्र-संघ स्थापित तो हो गया, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को निपटाना तथा राष्ट्रों में परस्पर सहकारिता का भाव जाग्रत करना, जो उसका असली उद्देश था सफल नहीं हुआ। उसकी स्थापना के बाद भी संसार में छोटे-मोटे युद्ध बराबर होते रहे हैं और वह उनको नहीं रोक सका।

जब तक संसार में युद्ध होते रहेंगे तब तक विश्व-सङ्घ या विश्व-राष्ट्र की सम्भावना अत्यन्त कठिन है। माडर्न रिव्यू में एक विद्वान् ने युद्ध-समाप्ति के अतिरिक्त कुछ ऐसे उपाय सुझाये हैं जो विश्वराष्ट्र की स्थापना में सहायक हो सकते हैं। राष्ट्र की एकता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसके विभिन्न भागों में व्यापार बिना किसी रुकावट के चलता है या नहीं अर्थात् राष्ट्र के अन्तर्गत एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल पर किसी प्रकार की चुंगी या कर तो नहीं लगाया जाता? यदि हम चाहते हैं कि सारा विश्व एक राष्ट्र बन जाय तो संसार के सारे राष्ट्रों को आयात और निर्यात करों की प्रथा को एकदम उठा देना चाहिए। वास्तव में इस प्रथा से मनुष्य-जाति में बहुत ही अस्वाभाविक भेद-भाव फैल गये हैं। भाषा की एकता से राष्ट्रों में प्रेम बढ़ता है, किन्तु यह प्रथा उस पर भी कुठाराघात करती है। बड़े बड़े राष्ट्रों और साम्राज्यों की अपेक्षा छोटे छोटे राज्यों का तो इससे बड़ा अहित होता है। पेरिस से लीज़ बहुत दूर नहीं है, और इन स्थानों में एक फ्रेंच-भाषा ही बोली जाती है, तथापि ये कर इनको पृथक् कर देते हैं। अमरीका जैसे बृहत् राष्ट्र में उतना अहित नहीं होता।

संसार के राष्ट्र क्यों इस प्रथा को नहीं उठाना चाहते? इसके दो कारण हैं। कुछ लोग कहते हैं कि देश के अनुन्नत उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देने के लिए आयात-निर्यात कर लगाना आवश्यक है। इसका उत्तर यही है कि सरकार स्वयं अपने कोष से सहायता देकर उन धन्धों को प्रोत्साहित कर सकती है। इसमें अन्तर केवल इतना ही होगा कि यह कर राष्ट्र के समस्त नागरिकों पर समान रूप से पड़ेगा और आयात-निर्यात कर केवल उन लोगों पर पड़ेगा जो उन उद्योग-धंधों-द्वारा बनी हुई चीज़ों का व्यवहार करते हैं। किन्तु यह कोई बड़ी आपत्ति नहीं। यदि सचमुच कोई पदार्थ बुरा नहीं तो उसकी उत्पति में प्रोत्साहन देना सभी नागरिकों का कर्त्तव्य होना चाहिए, चाहे वे उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयोग करते हों या न करते हों। दूसरी आपत्ति यह है कि इन करों के छोड़ देने से राष्ट्रों की आमदनी कम हो जायगी। ये कर तो जनता से मानो अज्ञात-रूप से वसूल कर लिये जाते हैं। जान-बूझ कर देने में लोगों को बड़ी असुविधा और आपत्ति होती है। इसका उत्तर यह है कि जनता को शिक्षा देने एवं सब बातें स्पष्टरूप से समझाने से यह कठिनाई भी दूर की जा सकती है। दूसरी बात यह है कि इन करों के उठा देने से संसार में भ्रातृ-भाव की वृद्धि होगी, युद्धों की सम्भावना कम रह जायगी, इस-लिए राष्ट्रों को शायद बड़ी बड़ी फ़ौजें रखने का कष्ट और व्यय भी न उठाना पड़े।

जो लोग विश्व-राष्ट्र या सङ्घ की कल्पना किया करते हैं वे प्रायः ब्रिटिश-साम्राज्य में उसका आभास देखते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि समस्त भूमण्डल के स्थल-धरातल का चौथाई से अधिक अंश इस साम्राज्य के अन्तर्गत है। एक बड़ा भारी जन-समूह अपने आपको इस साम्राज्य की प्रजा कहता है। उसमें जंगली से जंगली भी हैं और सभ्य से सभ्य भी। धन-धान्य और मान-सम्मान में भी कोई दूसरा साम्राज्य इसकी बराबरी नहीं कर सकता। पर क्या इसमें सचमुच एक-राष्ट्रीयता है? शायद इस बात को छोड़ कर इसके अन्तर्भूत सभी लोग एक ही सम्राट् को सिर झुकाते हैं, इनमें और कोई विशेष प्रेम-बन्धन नहीं है। ऐसी अवस्था में ब्रिटिश-साम्राज्य के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह इसके विभिन्न अंगों के बीच खड़ी होने-वाली आयात-निर्यात के करों की दीवार को तोड़ने का प्रयत्न करे। कुछ दिनों से इसमें इम्पीरियल प्रिफ़ेरेन्स की चर्चा होने लगी है, इससे आशा होती है कि शायद कालान्तर में लोग इम्पीरियल प्रिफ़ेरेन्स से आगे बढ़कर साम्राज्य के अन्तर्गत समस्त आयात-निर्यात करों को उठाने के लिए भी आतुर हो जायँ। यदि ऐसा हुआ तो उससे न केवल ब्रिटिश-साम्राज्य को वरन सारे संसार को असीम लाभ होगा। ब्रिटिश-साम्राज्य तो इस प्रकार एकता के सूत्र में बँध जायगा, फिर किसी को उसका सामना करने का साहस न होगा। जब यह महान् शक्ति युद्ध को निःशेष करने पर तुल जायगी तब संसार की शान्ति-प्रिय शक्तियाँ अपने आप उससे मिल जायँगी। उदाहरण के लिए इँग्लैंड में युद्ध के प्रति आज जितनी घृणा है उतनी ही घृणा अमरीका-वासियों को भी है। वास्तव में ये हैं भी दोनों एक ही परम्परा के। इसलिए यदि ये दोनों इस बात पर कमर कस लें कि संसार के राष्ट्रों को परस्पर लड़ने न देंगे तो उनके लिए यह कठिन नहीं। समझा-बुझाकर और आवश्यकता पड़ने पर बल-पूर्वक भी ये इस बात को अच्छी तरह सम्पन्न कर सकते हैं।

आयात-निर्यात करों को उठा देने के अतिरिक्त विश्व-राष्ट्र की ओर अग्रसर होने में एक बात और सहायक हो सकती है। वह है कुछ देशों का अनुचित इमीग्रेशन ला अर्थात् कुछ देश सब लोगों को स्वतंत्रता-पूर्वक अपने यहाँ आने-जाने नहीं देते। यह भी सर्वथा अमानुषिक मालूम होता है। हाँ, यदि किसी में कोई ऐसा शारीरिक, मानसिक या नैतिक दोष हो जिससे दूसरों के हानि होने की सम्भावना हो तो दूसरी बात है। किन्तु रंग और रक्त को इसका आधार बनना एक-दम अनुचित है। शोक तो इस बात का है कि अम-रीकन लोग ही, जो और सब बातों में बड़े सभ्य और उदार हैं, इस विषय में सबसे अधिक दोषी हैं। इस पर तुर्रा यह कि उनकी नीति दिन प्रति दिन और भी अनुदार होती जाती है। उनका नया इमीग्रेशन ला अयोरपियनों के प्रति पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बुरा है। ब्रिटिश-कोल-म्बिया और आस्ट्रेलिया के निवासी भी इसी के पक्षपाती हो रहे हैं। दक्षिण-अफ़्रीका के श्वेताङ्गों में भी यह छूत ज़ोरों से फैल रही है। सच तो यह है कि जब तक अँग-रेज़ी भाषा-भाषी जातियों के हृदय से यह भाव दूर नहीं होता तब तक विश्व-सङ्घ की कल्पना ही व्यर्थ है। इस विषय में फ़्रेंच लोग अँगरेज़ी-भाषा-भाषियों से कुछ आगे हैं। यदि सभ्य संसार इस विषय में इनका अनुकरण करे तो विश्व-सङ्घ की कल्पना जल्दी सत्य हो सकती है। अस्तु।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

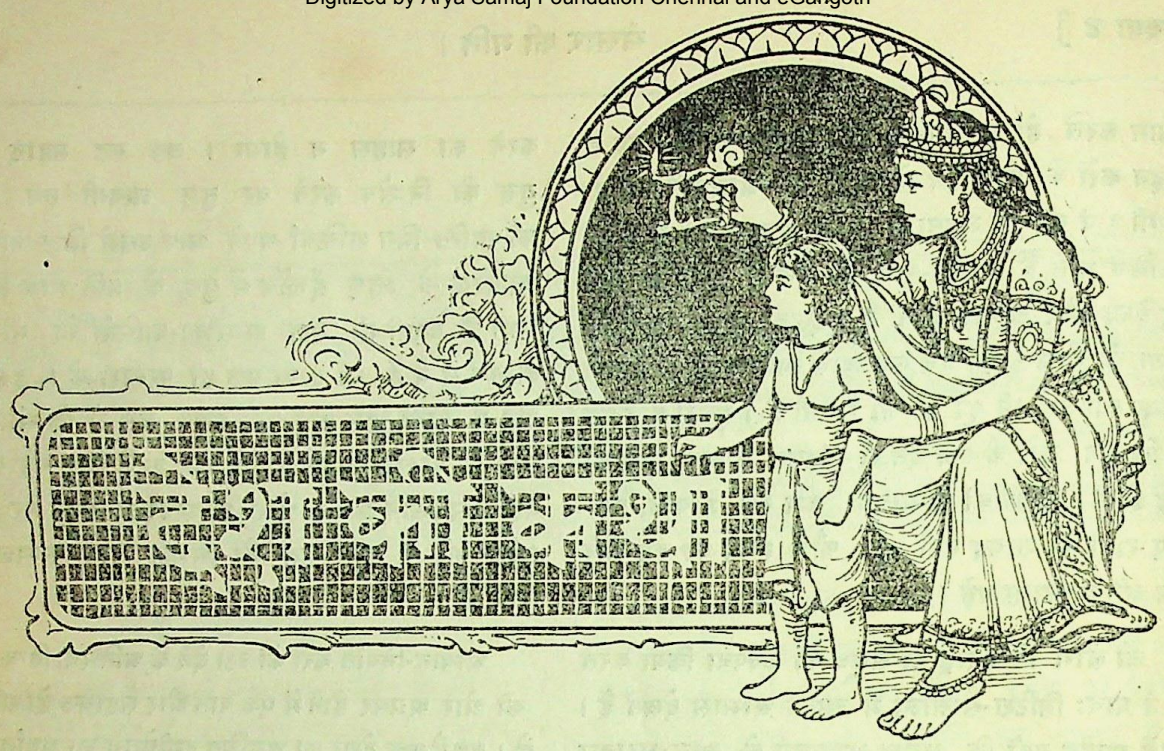

१—सरकारी बाग़ात।

बाग़ात से मतलब उद्यानों से है। उद्यानों में लताओं और गुल्मादि के सिवा फूलों और फलों के भी पेड़ या पौधे होते हैं। बहुत प्राचीन काल में भी भारत में उद्यान थे। धराधिपों और धनिकों को उद्यानों से बड़ा प्रेम था। उनके वर्णन प्राचीन पुस्तकों में मिलते हैं। चन्द्रगुप्त और अशोक के समय में तो छायादार ही नहीं, फलदार भी, वृक्ष राजमार्गों के भी दोनों तरफ़ लगाये गये थे। यह उद्यान-प्रेम मुसल्मान-बादशाहों के ज़माने में पराकाष्ठा को पहुँच गया था। लाखों रुपये ख़र्च करके उन लोगों ने अच्छे से अच्छे उद्यान प्रस्तुत किये थे। उनके भीतर आलीशान इमारतें भी उन्होंने बनवा दी थीं। बेगमों और शहज़ादियों तक ने अपने अपने उद्यान अलग अलग बनवाये थे। अमीरों और बड़े बड़े राज-कर्मचारियों के उद्यान भी अलग ही थे। इन पुराने उद्यानों में से दस-पाँच अब तक बने हुए हैं। उनमें से कुछ ही की हालत अच्छी है। आज तक शाही बाग़ात कितने नष्ट हो गये, इसकी गिनती ही नहीं।

इस सूबे की गवर्नमेंट ने भी कई उद्यान बना रक्खे हैं। ये उद्यान—ख़ासकर बड़े बड़े शहरों में—बड़े काम की चीज़ हैं। उनसे शोभा-वृद्धि भी होती है, पुष्पादि की सुगन्ध से हवा भी सुगन्धित होती है, और दिन भर के थके-माँदे नगर-निवासियों को सायङ्काल उद्यानों में जाकर घड़ी दो घड़ी दिल बहलाने का मौक़ा भी मिलता है। अतएव सर्व-साधारण के लाभ के लिए देश की गवर्नमेंट का यह कर्तव्य है कि वह हर क़सबे या शहर में न सही, बड़े बड़े और घने बसे हुए शहरों में तो उद्यानों की योजना ज़रूर ही करे।

संयुक्त-प्रान्त के आगरा, इलाहाबाद, लखनऊ, सहारनपुर और नैनीताल आदि शहरों में ही अच्छे अच्छे उद्यान हैं, अन्यत्र नहीं। अन्यत्र हैं भी तो वे बहुत ही साधारण स्थिति में हैं और उनका अधिकतर प्रबन्ध गवर्नमेंट के हाथ में नहीं, किन्तु वहीं की कुछ संस्थाओं के हाथ में है। दो-तीन साल पूर्व तक सरकारी उद्यानों का प्रबन्ध बहुत बुरा था। उनका ख़र्च बेहद बढ़ा हुआ था। कोई महकमा उनका ज़िम्मेदार न था। उद्यान के प्रधान बाग़वान या सुपरिण्टेण्डेण्ट ही सर्वे सर्वाः थे। इस कारण बहुत सा रुपया फ़िज़ूल ख़र्च हो जाता था। सभी उद्यानों का प्रबन्ध भी एक सा न था। उनके प्रधान निरीक्षक किसी एक अफ़सर या महकमे के मातहत न थे।

इस कुप्रबन्ध को दूर करने के लिए प्रायः सभी सरकारी उद्यान अब महकमा ज़िरात के मातहत कर दिये गये हैं। इस एक सूत्रीकरण का आरम्भ हुए दो-तीन वर्ष हो गये। अब इनका काम निश्चित ढङ्ग से होता है। सबको एक ही तरह के नियमों का पालन करना पड़ता है। हिसाब रखने की प्रणाली भी सबके लिए एक सी नियत कर दी गई है। महकमे ज़िरात के डिपटी डाइरेक्टर साहब उद्यानों के निरीक्षक बना दिये गये हैं। उन्होंने १९२३-२४ से सम्बन्ध रखनेवाली जो रिपोर्ट लिखकर प्रकाशित की है उससे सूचित होता है कि सरकारी उद्यानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जो फ़िज़ूल ख़र्ची अब तक होती आ रही थी वह बहुत कुछ बन्द हो गई है। अनेक मदों के ख़र्च में किफ़ायत भी हुई है।

जितने उद्यान इस समय इस सूबे में हैं सब दो भागों में बाँटे गये हैं। एक तो वे जो केवल तक़रीर अर्थात् मनोरञ्जन या शोभावर्धन के लिए हैं और ऐसे ही उद्यानों की संख्या अधिक भी है। किसी किसी शहर में तो—उदाहरणार्थ आगरा, लखनऊ और इलाहाबाद में—इस तरह के दो दो, तीन तीन, उद्यान हैं। दूसरे वे जो व्यापारिक ढङ्ग के हैं। इस दूसरे प्रकार के उद्यानों में उत्पन्न फल, फूल, घास, पौधे और बीज आदि बेचे जाते हैं। प्रयत्न इस बात का किया जाता है कि इनसे कम से कम इतनी आमदनी हो जाय जिससे इनका ख़र्च निकल जाया करे। इस तरह के अभी दो ही उद्यान हैं। एक तो सहारनपुर में, दूसरा चौबट्टिया में। परन्तु कुछ और उद्यानों को भी व्यापारिक उद्यान बनाने की चेष्टा की जा रही है।

महकमे ज़िरात ने उद्यानों की नाप-जोख करके सबके नक़शे तैयार कर लिये हैं। उन सबको उसने एक ही जगह एकत्र करके पुस्तकाकार प्रकाशित किया है। इन नक़शों से इन उद्यानों के रक़बे, इनकी हदबन्दी, सींचने के कुवों और पम्पों की स्थिति तथा कर्मचारियों के रहने के मकान आदि का पता झट मालूम हो जाता है।

अब तक उद्यानों में बहुत ज़मीन परती या बेकार पड़ी थी। अब उसमें पेड़, पौधे आदि लगा दिये गये हैं और ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि उसकी पैदावार से कुछ आमदनी भी हुआ करे। अब तक उद्यानों के अफ़सर अधिकतर ऐसे ही पेड़-पौधे लगाते थे जो तैयार तो जल्द हो जाते थे, पर न तो वे अधिक बिकते ही थे और न उनके फलों-फूलों की बिक्री से अधिक आमदनी ही होती थी। अब उनका यह अन्धेर दूर कर दिया गया है। जहाँ जो पेड़-पौधे अच्छे हो सकते हैं और जिनकी जहाँ चाह है वही वहाँ लगाये जाते हैं। ध्यान इस बात का रक्खा जाता है कि कोई ऐसा पौधा कहीं न लगाया जाय जो वहाँ के मौसिम या आबोहवा के मुआफ़िक़ न हो।

अच्छा अब आमदनी और ख़र्च का हिसाब सुनिए। लड़ाई के पहले इन उद्यानों के लिए गवर्नमेंट को कुछ कम ख़र्च करना पड़ता था। सन् १९१४-१५ में कुल ख़र्च हुआ था २,२५,३६० रुपया। लड़ाई के कारण जैसे और सब ख़र्च बढ़ गये वैसे ही उद्यानों के भी ख़र्च बढ़ गये। नौबत यहाँ तक पहुँची कि पाँच ही छः वर्ष बाद, अर्थात् १९२०-२१ में, सरकारी ख़र्च बढ़कर ३, २१, ६२४ रुपया हो गया। अर्थात् कुछ कम एक लाख रुपया हर साल सरकारी ख़ज़ाने से और ख़र्च होने लगा। इस बढ़ते हुए ख़र्च को देखकर कौंसिल के मेम्बरों और मिनिस्टरों ने भी हल्ला मचाया। जब लिखा-पढ़ी बहुत बढ़ी और सरकार का ध्यान इस ओर बार बार दिलाया गया तब उसने उद्यानों के प्रबन्ध में फेर-फार करके उन्हें महकमे ज़िरात के सिपुर्द कर दिया। सरकार की आज्ञा के अनुसार इस महकमे के अफ़सरों ने यथासम्भव ख़ूब काट-छाँट की। अतएव ख़र्च में कुछ कम १२ हज़ार रुपये की कमी हो गई। उधर फल, फूल, पौधों इत्यादि की बिक्री से भी पहले की अपेक्षा कोई १४ हज़ार रुपये की आमदनी अधिक हुई। इस तरह ये दोनों मदें मिलाकर २६,३०५ रुपये बच गये। बच क्या गये, जहाँ ये उद्यान साल में कुछ कम सवा तीन लाख रुपया खा जाते थे वहाँ अब तीन ही लाख खाने लगे।

ऊपर जो हिसाब दिया गया यह तीन वर्ष पहले का है। १९२३-२४ में बिगड़ी हुई दशा कुछ और सुधर गई। उस साल के अन्त में ख़र्च पड़ा २,४४,७३६ रुपया और आमदनी हुई १,१७,२९८ रुपये की। इसका अर्थ यह हुआ कि उद्यानों की रक्षा के लिए कर के रूप में सर्वसाधारण से प्राप्त हुए रुपये में से १,२७,४३८ रुपये पिछले साल सरकार को फिर भी ख़र्च करने पड़े। सम्भव है, सुप्रबन्ध के कारण भविष्यत् में आमदनी और बढ़े; अतएव ख़र्च धीरे धीरे और भी कम होता जाय। यदि इन उद्यानों के सम्बन्ध में इतना शोरोगुल न मचता और नया प्रबन्ध न किया जाता तो जैसे हर साल अब तक हज़ारों रुपया फ़िज़ूल ख़र्च होता रहा है वैसे ही क़यामत तक होता चला जाता। हिन्दुस्तानी घिस घिस थोड़े ही हैं। शाही ख़र्च ऐसेही हुआ करते हैं! हिन्दुस्तानियों में तो इतनी भी तमीज़ नहीं कि वे बाग़वानी तक कर सकें। इन सरकारी उद्यानों के सुपरिंटेंडेंट ही नहीं, ओवरसियर तक, अँगरेज़ हैं। हिन्दुस्तानी इस काम के लायक़ होते तो सरकार क्यों इन बेचारों को इँग्लैंड से इतनी दूर बुलाकर यहाँ इन्हें नौकर रखती। इँगलिस्तान में ये भूखों थोड़े ही मरते थे। हिन्दुस्तानी तो, सुनते हैं, जी लगाकर बाग़वानी का काम भी नहीं सीखते। सहारनपुर के बाग़ में चौधरी क्लास खुले थे। वहाँ हिन्दुस्तानी लड़कों को माली का काम सिखाया जाता था। मगर इस काम को हेय या नीच समझ कर बहुत कम सीखनेवाले भरती हुए। अब शायद वह क्लास भी टूट गया है। सुपरिंटेंडेंटी सिखाने का कोई क्लास खुलता तो शायद भरती होने के लिए उम्मेदवार टिड्डी-दल की तरह टूट पड़ते। क्यों न?

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

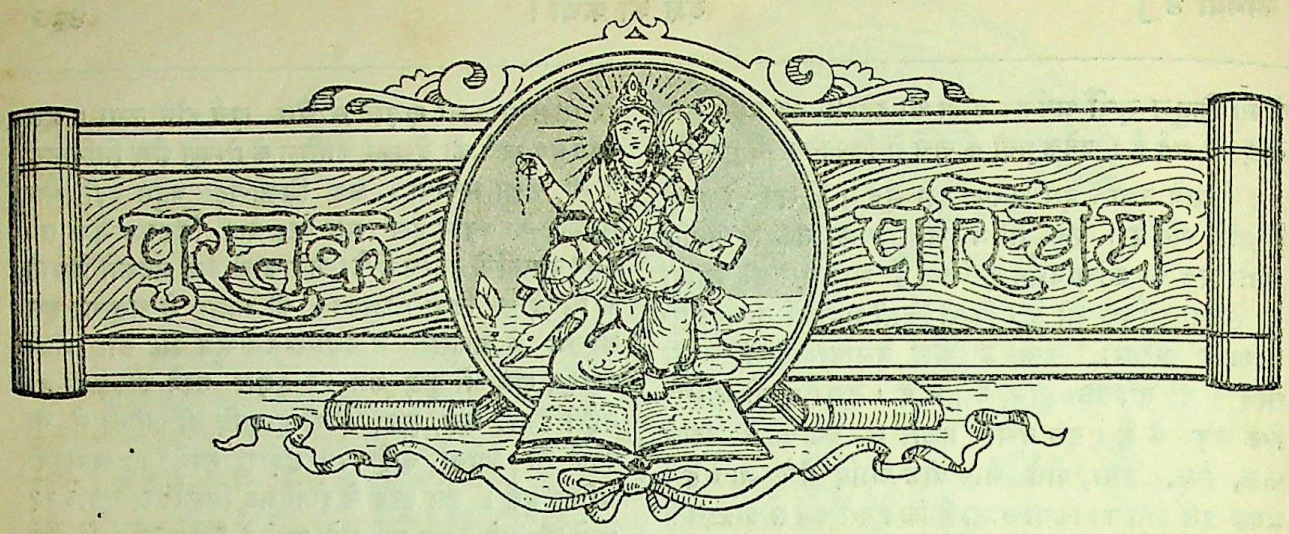

१—**शुद्धोपयोग आदि चार ग्रन्थ।** श्रीबुद्धि-सागर सूरि नाम के एक जैन विद्वान् हैं। उन्होंने गुजराती और संस्कृत-भाषाओं में बहुत ग्रन्थरचना की है। प्रस्तुत पुस्तक में उनके चार ग्रन्थ समाविष्ट हैं। उनके नाम हैं—

	श्लोक-संख्या
(१) शुद्धोपयोग	८०३
(२) दयाग्रन्थ	४१६
(३) श्रेणिकसुबोध	१३४
(४) कृष्णगीता	३३३

इस तरह कुल मिलाकर सूरिजी के १,६८६ श्लोकों का सङ्ग्रह इसमें है। ये चारों ही ग्रन्थ संस्कृत-भाषा में हैं। तीसरे ग्रन्थ में प्रयुक्त वृत्त है उपजाति और सबमें अनुष्टुप्। अनुवाद किसी का भी नहीं। अतएव केवल संस्कृतज्ञ ही इनसे लाभ उठा सकेंगे। पहले ग्रन्थ में विशेष करके शुद्धाचरण का, दूसरे में दया का, तीसरे में जैनियों के लिए जैन-धर्म्म के तत्त्वों का और चौथे में भी उसी धर्म्म के सार-अंश का विवेचन किया गया है। चौथे के विषय में लिखा है कि नेमिनाथ ने श्रीकृष्ण को अहिंसाधर्म्म-विषयक जो उपदेश किया था और श्रीकृष्ण ने जिसका उपयोग और प्रचार महाभारत-युद्ध के समय खूब ही किया था वह यही है। श्रीमद्भगवद्गीता के पाठकों को सूरीश्वरजी की इस उक्ति का विचार करना चाहिए। क्योंकि उसमें तो "युद्धस्व" की घोषणा है। पुस्तक मोटे टाइप में चिकने काग़ज़ पर छपी है। ऊपर बड़ी सुन्दर जिल्द है। पृष्ठ-संख्या १२६ और मूल्य ।।।) है। प्रकाशक—अध्यात्मक-ज्ञान-प्रसारक मण्डल, स्थान पादरा (गुजरात) से मिलती है। सूरिजी की वाणी रसाल और रचना सरल है। एक नमूना लीजिए—

त्वमाशु हे श्रेणिक चेत चेत,
कालः स्ववेगं शिरसि प्रदत्ते।
कालोऽपि नात्मानमहो भुनक्ति,
स्यादात्ममोदेन सुखं यथार्थम्॥

२—**काव्यप्रकाश**—संस्कृत-भाषा के ज्ञाता प्राचीन विद्वान् जिस विषय का अध्ययन करते थे उसकी तह तक पहुँचने की चेष्टा करते थे। एक एक शास्त्र के अध्ययन में वे सारी उम्र ख़र्च कर डालते थे। जो तर्कशास्त्र का अध्ययन करता था वह उसी में लगा रहता था; जो व्याकरण पढ़ता था वह उसी का चूडान्त ज्ञाता हो जाता था; जो वेदान्ती बनना चाहता था वह उसके सभी प्रधान प्रधान ग्रन्थों का मन्थन कर डालता था। साहित्य या अलङ्कार-शास्त्र कोई बड़ा गहन शास्त्र नहीं; उससे लौकिक-कार्य्य-सिद्धि भी विशेष नहीं होती। परन्तु, इस देश में, ऐसे भी कितने ही आचार्य्य हो गये हैं जिन्होंने उसके आकलन के लिए भी अपनी आयु का बहुत बड़ा अंश ख़र्च कर दिया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों ही के ग्रन्थों का मनन नहीं किया, अपनी तरफ़ से भी उन्होंने बहुत कुछ मसाला एकत्र करके इस शास्त्र की सीमा और महत्ता बढ़ा दी है। उन्होंने बात-बात में बात पैदा की है। जिसे बाल की खाल निकालना कहते हैं वह उन्होंने खूब कर दिखाया है। शब्द में कितनी शक्तियाँ होती हैं; किस तरह मन का भाव व्यक्त करने से बात में चमत्कार आ जाता है और कितनी तरह से आ सकता है; रस किसे कहते हैं, उसके भेद कितने हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें अस्तित्व में आने के लिए कौन कौन सी सामग्री कहाँ से मिलती है; कवित्व क्या वस्तु है और उसके गुण-दोष क्या हैं—यही बातें साहित्य-शास्त्र की आधार हैं। जिनमें इनका निरूपण रहता है उन्हीं की गणना साहित्य-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों में होती है।

अपने देश में साहित्य-शास्त्र की उत्पत्ति हुए बहुत ज़माना गुज़र गया। भरत मुनि तक के निर्म्मित ग्रन्थ इस शास्त्र की प्राचीनता की गवाही दे रहे हैं। परन्तु अनेक ग्रन्थों की विद्यमानता में विरले ही सौभाग्य-शाली ग्रन्थकार के ग्रन्थ का विशेष आदर और विशेष प्रचार होता है। काश्मीर-निवासी मम्मट भट्ट ऐसे ही विरले ग्रन्थकारों में से हैं या थे। उनके पहले भी इस विषय के बहुत से ग्रन्थ थे और उनके बाद भी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई; पर जो आदर उनके काव्यप्रकाश का है वह औरों को नसीब नहीं हुआ। अपने विषय का यह माननीय ग्रन्थ है। औरों की अपेक्षा इसका प्रचार बहुत अधिक है। जिसने काव्यप्रकाश नहीं पढ़ा—और गुरुमुख से उसका मर्म्म अच्छी तरह नहीं समझा—वह काव्य-शास्त्र का पारङ्गत ज्ञाता नहीं माना जाता। कम से कम पुरानी प्रथा के पण्डित उसे काव्यशास्त्रज्ञ नहीं मानते। यह ग्रन्थ है भी प्रामाणिक। इसमें छोटी छोटी कारिकाओं के द्वारा मम्मट-भट्ट ने साहित्य-शास्त्र के मूल-तत्त्व समझाये हैं। फिर उनकी "वृत्ति" लिख कर अपने कथन का विस्तार किया है। यह सब काम उन्होंने तुले हुए शब्दों की सहायता से किया है। उनका एक भी शब्द बेकार या अकारण नहीं। उन्होंने दूसरों के रचे हुए श्लोकों के जो अवतरण, उदाहरणार्थ, दिये हैं वे भी यथेष्ट समर्पक हैं।

इसी इतने महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ का यह अनुवाद, गुजरातो-भाषा में, किया गया है। अनुवादक हैं—रामनारायण विश्वनाथ पाठक और रसिकलाल छोटालाल परीख। प्रकाशक है—गुजरात-विद्यापीठ, अहमदाबाद। उसी से यह पुस्तक १॥) में मिल सकती है। पुस्तक जिल्ददार है और अच्छे काग़ज़ पर अच्छे ही टाइप में छपी है। यत्र तत्र मूल से मिलाकर देखने पर हमें यह अनुवाद बहुत ठीक जान पड़ा।

मम्मटाचार्य्य को हुए आठ नौ सौ वर्ष हो चुके। उनके इस ग्रन्थ की पचास साठ टीकायें सुनी जाती हैं। यह बात इसकी महत्ता की सूचक है। प्रस्तुत पुस्तक मूल-ग्रन्थ के पहले ६ उल्लासों ही का अनुवाद है। अगले उल्लास शायद दूसरे भाग में कभी प्रकाशित किये जायँ। इसमें मूल के अनुवाद के सिवा टिप्पणियों में और भी बहुत सी बातें लिखी गई हैं। उनसे मूल का आशय समझने में बहुत सहायता मिलती है। उदाहरणों का अनुवाद पद्य में भी किया गया है और गद्य में भी। गद्यात्मक अनुवाद टिप्पणियों के अन्तर्गत दिया गया है। इससे पद्यात्मक अनुवाद में जहाँ कहीं कुछ न्यूनता रह गई है उसकी पूर्त्ति हो गई है। सारांश यह कि अनुवाद योग्यतापूर्वक किया गया है। और गुजराती भाषा जाननेवाले काव्यरसिकों के बड़े काम का है। ऐसे अनुवाद की हिन्दी में भी बड़ी आवश्यकता है।

३—भवभूति—मूल-लेखक, महामहोपाध्याय स्वर्गीय सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम०, ए०, पी० आर० एस०; अनुवादक ज्वालादत्तशर्मा. प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ। पृष्ठ-संख्या १०३। छपाई-सफ़ाई उत्तम। सादे संस्करण का मूल्य ॥=) और सजिल्द का ।=) है।

हिन्दी में कालिदास के विषय में काफ़ी चर्चा हो चुकी है और होती है, किन्तु भवभूति के विषय में, जो कि उसी कोटि के संस्कृत-कवि थे, बहुत कम चर्चा हुई है। प्रस्तुत पुस्तक बँगला के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय सतीश बाबू के एक समालोचना-ग्रन्थ का अनुवाद है। हिन्दी में भी कभी कभी छोटे-मोटे समालोचना-ग्रन्थ प्रकाशित होते रहते हैं। किन्तु हमारी समझ में यह उनके लिए आदर्श का काम कर सकता है। क्योंकि इसमें समालोचक ने यह दिखाने की कोशिश की है कि तत्कालीन परिस्थिति और समाज का कवि के व्यक्तित्व एवं प्रतिभा पर क्या प्रभाव पड़ा है। उसने किस उद्देश से अपनी रचनाओं की सृष्टि की है तथा वह कहाँ तक इस कार्य में सफल हुआ है। तुलनामूलक दृष्टि से अन्य कवियों के साथ यत्र-तत्र जो उसकी तुलना की गई है वह बहुत ही विचार और शोध-पूर्ण है। सारांश यह कि आलोचक को सबसे पहले अपने आलोच्य विषय से पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त कर लेना चाहिए। हिन्दी के समालोचक भी यदि इसी आदर्श को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने सामने रक्खें तो उनके ग्रन्थ अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। अनुवाद की भाषा उत्तम है।

४—बुद्ध-चरित्र—मूल-लेखक, स्वर्गीय गिरीशचन्द्र घोष, अनुवादक, श्रीयुत रूपनारायण पांडेय कविरत्न, प्रकाशक, गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ। पृष्ठ-संख्या ११६। छपाई-सफ़ाई उत्तम। सादे संस्करण का मूल्य ।।।) और सजिल्द संस्करण का १।) है। पुस्तक में ४ चित्र भी हैं।

हिन्दी में कई एक बँगला के नाटकों का अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। बँगला-साहित्य में स्वर्गीय गिरीश बाबू एक उच्च कोटि के नाट्यकार समझे जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं के बुद्ध-चरित्र-नाटक का हिन्दी-रूपान्तर है। बुद्ध भगवान् के जीवन-चरित की कथा बहुत प्रसिद्ध है। किन्तु ग्रन्थकार ने अपने नाटक का निर्माण एडविन् आर्नल्ड की सुप्रसिद्ध पुस्तक लाइट् आव् एशिया के आधार पर किया है। अतएव नाटक पठनीय अवश्य है। अनुवाद भी उत्तम हुआ है।

५—व्यापार-सङ्गठन—लेखक, पण्डित गौरीशङ्कर शुक्ल "एक", प्रकाशक, अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी अग्रवाल महासभा, १६० हरिसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या, ५३०, छपाई-सफ़ाई उत्तम, जिल्द सुन्दर और मज़बूत, मूल्य २) है।

अब तक हिन्दी में व्यापार-सम्बन्धी बहुत थोड़ी पुस्तकें निकली हैं और जो निकली भी हैं वे छोटी छोटी हैं। ऐसी अवस्था में महासभा का यह प्रयत्न अवश्यमेव स्तुत्य कहा जा सकता है। कहना न होगा कि बिना शिल्प और वाणिज्य के कोई देश उन्नति नहीं कर सकता और हमारा देश इस विषय में आज-कल अनुन्नत दशा में है। बात यह है कि भारतीय व्यापारी-समाज सविधि इस विषय का अध्ययन करना ही नहीं चाहता, अधिकतर वह पुराने ढर्रे पर ही काम करता है। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अब इतना विस्तृत और जटिल होगया है कि उसकी इस प्रकार अवहेलना करना देश के लिए सङ्घातक है। इस। हमारे व्यावसायिक कालेजों में जो शिक्षा दी जाती है वह केवल सिद्धान्तरूप से होती है। इस पुस्तक की विशेषता यही है कि इसमें न केवल व्यापार के सिद्धान्तों की चर्चा की गई है, बरन इसके अध्ययन से व्यापारियों को व्यावहारिक क्षेत्र में यथेष्ट सहायता मिल सकती है। इसकी अध्याय-सूची पर दृष्टिपात करने से हमारा कथन स्पष्ट हो सकता है—व्यापारिक सफलता के आवश्यक साधन, व्यापार तथा व्यवसाय का क्षेत्र, उत्पादन व्यवसाय की नींव, सङ्गठन का प्रारम्भिक वर्णन, कम्पनी का सञ्चालन, कम्पनी-सङ्गठन और सेक्रेटरी के कार्य, दूकानों का सङ्गठन और प्रबन्ध, विक्रय-कला, निर्यात, आयात, समुद्री बीमा, अग्नि का बीमा।

पुस्तक की भाषा सरल और सर्व-साधारण के समझने योग्य है।

६—अखिल भारतवर्षीय लेखक-मण्डल के उद्देश और नियम—प्रयाग में एक लेखक-मण्डल स्थापित हुआ है। उसके सभापति हैं पण्डित अयोध्या-सिंह उपाध्याय। भिन्न भिन्न विद्वानों की सहयोगिता से हिन्दी में सत्साहित्य की सृष्टि और प्रचार करना इसका उद्देश है। इसी की नियमावली हमें इसके मंत्री पण्डित गिरिजादत्त शुक्ल, बी० ए० से प्राप्त हुई है। कुछ मुख्य मुख्य नियम नीचे दिये जाते हैं—

१—सदस्यों को मण्डल के संचालन और सुधार के विषय में प्रस्ताव करने का अधिकार होगा।

२—यह मण्डल अपनी उद्देश-पूर्ति के लिए निम्न-लिखित साधनों का उपयोग करेगा—

अ—लेखकों से उनकी रचनायें संग्रहीत करके उनके प्रकाशनार्थ पुस्तक-प्रकाशकों तथा सम्पादकों से पत्र-व्यवहार करना।

ब—लेखकों की लेखन-सम्बन्धी सुविधा के लिए प्रयाग में एक पुस्तकालय स्थापित करना।

स—समय पाकर स्वयं भी अपनी ओर से प्रकाशन-कार्य करना।

द—समय समय पर विद्वानों के भिन्न भिन्न विषयों पर व्याख्यान कराना।

ऐसी संस्थाओं से लाभ होने की बड़ी सम्भावना है। हिन्दी के साहित्य-सेवियों में सहयोगिता का एक प्रकार से अभाव ही है। इस संस्था के द्वारा यदि उनमें सहयोगिता का भाव उत्पन्न हो जाय तो यह छोटी बात नहीं। भगवान् करे मण्डल अपने जन्म को सार्थक करे।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

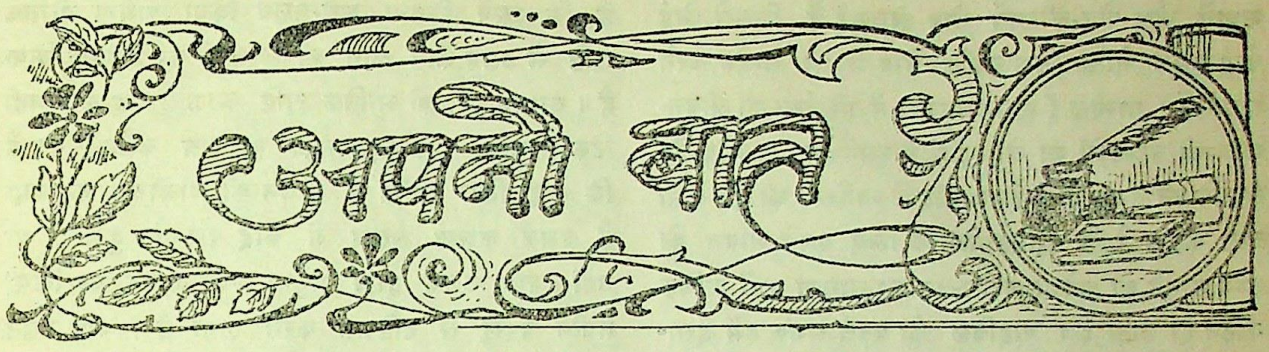

१—संसार के सर्वश्रेष्ठ महात्माओं के सम्बन्ध में वेल्स के विचार

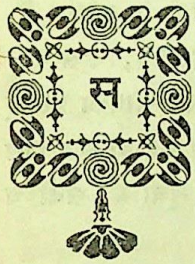

संसार भी देशों और सभी जातियों में महान् आत्मायें जन्म लेती हैं। यद्यपि उनके विचारों को सब लोग नहीं मानते परन्तु उनके माहात्म्य को सभी स्वीकार करते हैं। तब माहात्म्य है क्या, उसका क्या लक्षण है? किन कारणों से हम महात्मा को महात्मा मानते हैं? क्या जिसके अनुयायी अधिक हों, वह महात्मा है? क्या अधिक लोगों का अनुयायी होना माहात्म्य है? अथवा माहात्म्य कोई दूसरी ही चीज़ है? कुछ समय पहले इँग्लेण्ड में एक प्रश्न उठा था कि संसार के सर्वश्रेष्ठ छः महा पुरुष कौन से हैं। एक संवाददाता के पूछने पर वेल्स साहब ने भी अपने विचार प्रकट किये थे। उस पर इँग्लेण्ड में बड़ा विवाद हुआ था। यद्यपि बात पुरानी पड़ गई है तथापि विषय महत्त्वपूर्ण होने के कारण उसकी चर्चा यहाँ की जाती है। हिन्दी में अभी तक इसकी चर्चा नहीं हुई है। मिस्टर वेल्स इँग्लैंड के विख्यात लेखकों में हैं। वास्तव में इनका स्थान इतना ऊँचा हो गया है कि कोई इनकी राय से घोर मतभेद रखते हुए भी सहसा उसकी अवहेलना नहीं कर सकता। अभी हाल में इन्होंने 'आउटलाइन आव् हिस्ट्री' अर्थात् 'इतिहास की भूमिका' के नाम से कई भागों में एक बृहत् ग्रन्थ लिखा है, और पाश्चात्य देशों में इसका अच्छा स्वागत भी हुआ है। सारांश यह है कि ये एक उच्च कोटि के इतिहास-लेखक हैं। साथ ही इन्हें निष्पक्ष होने का दावा भी है। समय समय पर पश्चिमी सभ्यता की इन्होंने तीव्र आलोचना की है।

ईसा का माहात्म्य।

शीर्षस्थानीय महापुरुषों में सबसे पहला स्थान वेल्स साहब ने महात्मा ईसामसीह को दिया था। उनका कहना है—संसार के इतिहास में ये मुझे सबसे अधिक चित्ताकर्षक व्यक्ति मालूम होते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मैं एक ऐसे देश में रहता हूँ जहाँ लाखों-करोड़ों स्त्री-पुरुषों की दृष्टि में ईसामसीह मनुष्य नहीं, बरन उससे कहीं उच्च माने जाते हैं। किन्तु ऐतिहासिक को इस बात से कोई सरोकार नहीं। उसको तो केवल उन्हीं तथ्यों से प्रयोजन रहता है जिनकी प्रामाणिकता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता। केवल ऐसे ही ऐतिहासिकों के विचार संसार में सर्वत्र एकसमान-रूप से माननीय हो सकते हैं। प्राचीन काल के ऐतिहासिकों ने तो ईसामसीह को महत्त्व नहीं दिया, मानो उनकी शिक्षाओं के प्रचार एवं विकास से हमारे ऊपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा। उनकी राय में ईसामसीह का सम्बन्ध केवल रविवारों से रहता है, जिस दिन हमारे ऐहलौकिक सभी कार्य बन्द रहते हैं। ऐसी दशा में हमारे सांसारिक जीवन और ईसामसीह से कोई प्रकृत सम्बन्ध हो ही क्या सकता है। किन्तु क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि आज १,९०० वर्षों के बाद मुझ जैसे इतिहास-प्रेमी को यह स्वीकार करना पड़ता है कि नेज़रथ के इस सीधे-सादे व्यक्ति का व्यक्तित्व इतना ऊँचा था कि आज सबसे पहले वही मेरा ध्यान आकर्षित करता है।

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें सन्देह नहीं कि उसके जीवन के साथ बहुत सी दन्त-कथायें और पोप-लीलायें जोड़ दी गई हैं, जिससे कोई कोई उसके ऐतिहासिक व्यक्ति होने में भी सन्देह करने लगते हैं। गास्पेल (सुसमाचारों) में भी ईसा की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं का जो उल्लेख है उसमें बड़ा मतभेद है। तथापि उन घटनाओं में ईसामसीह के व्यक्तित्व की एक ऐसी स्पष्ट झलक है कि ऐतिहासिक के लिए उसके जीवन को तथ्य मानने की अपेक्षा कपोल-कल्पना मानना कहीं अधिक कठिन हो जाता है। बाइबिल को पढ़ते समय हमें ईसा-मसीह का वह आकर्षण प्रत्यक्ष मालूम होने लगता है जिसके द्वारा वे राह चलते हुए लोगों को अपनी ओर खींच लिया करते थे। उन्होंने लोगों के भीतर नवजीवन और प्रेम का सञ्चार किया था। उनके दर्शनमात्र से दीन-दुःखी अपना दुःख भूल जाते थे। किन्तु संसार में ऐसे अनेक महात्मा हो गये हैं। इसलिए केवल इन्हीं गुणों के कारण ईसा इतिहास में सर्वोच्च स्थान नहीं पा सकते। मैं क्यों उनको सर्वोच्च स्थान देना चाहता हूँ, इसका कारण उनकी एक सीधी-सादी तथापि गम्भीर शिक्षा है, जो उन्होंने सबसे पहले संसार को दी है। शिक्षा यह है कि ईश्वर हम सबका पिता है और दयालु पिता है। पृथ्वी पर स्वर्ग के राज्य (Kingdom of Heaven) के आने का सन्देश भी पहले-पहल उन्होंने ही दिया है।

यह एक ऐसी शिक्षा है जिससे मनुष्य की विचार-धारा की कायापलट हो सकती है, किन्तु ईसा के अनुयायियों ने उसको ठीक ठीक नहीं समझा। यदि लोग उनकी शिक्षा का यथार्थ मर्म समझ लेते तो संसार की आज ऐसी दयनीय अवस्था न होती। तथापि जिस दिन से उन्होंने अपने पवित्र सन्देश को सुनाना प्रारम्भ किया था उसी दिन से संसार में परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया है। संसार में धीरे धीरे सहानुभूति, सहिष्णुता और सहकारिता के जो भाव जाग्रत हो रहे हैं उनसे आशा है कि एक दिन अवश्य पृथ्वी पर सार्वभौमिक भ्रातृ-भाव की प्रतिष्ठा हो जायगी और यही उनकी शिक्षा का असली मर्म है।

यहाँ मैं यह भी बतला देना चाहता हूँ कि ऐतिहासिक किसी व्यक्ति को बड़ा और किसी को छोटा क्यों कह सकता है। ऐतिहासिक की कसौटी यह नहीं है कि उसने कितना अर्थ-सञ्चय किया अथवा भौतिक सृष्टि में उसने कौन कौन सी वस्तुओं का निर्माण किया है। वास्तव में, जो भौतिक सृष्टि आज है वह कल नहीं टिक सकती, इसलिए उसकी एकमात्र कसौटी यह है कि वह जिस व्यक्ति के जीवन की आलोचना कर रहा है उसके कारण संसार में कोई परिवर्तन हुआ है या नहीं। क्या उसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन पर किसी नवीन पहलू से दृष्टिपात करने लगा है? क्या उसने मनुष्यों में ऐसी स्फूर्ति और उमङ्ग का सञ्चार कर दिया है जो उसके बाद भी स्थायीरूप से टिक सके? इसी कसौटी पर कसने से हमको ईसामसीह का स्थान सर्वोच्च मालूम होता है। वे ईसाई-मत के प्रवर्तक हैं, इसलिए वे मुझे सबसे बड़े मालूम होते हैं, इस बात में कोई तथ्य नहीं, क्योंकि मैं तो अपने आपको ईसाई कहने को भी तैयार नहीं। केवल शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से ही ईसामसीह महान् पुरुषों की सूची में सर्वोच्च स्थान पाने योग्य हैं।

बुद्ध का माहात्म्य।

इस सूची में ईसामसीह के बाद दूसरा स्थान गौतमबुद्ध को मिलना चाहिए। किन्तु गौतमबुद्ध के विषय में भी हमें उसी कठिनाई का सामना करना पड़ता है जो ईसामसीह के विषय में थी। क्योंकि गौतम-बुद्ध के भक्तों ने भी उनके जीवन को अपने भावावेश में अनेक किंवदन्तियों से आच्छादित कर दिया है। परन्तु गौतमबुद्ध का जीवन इस प्रकार की किंवदन्तियों से चाहे जितना अधिक क्यों न ढक जाय, किन्तु उससे उनके व्यक्तित्व का लोप कदापि नहीं हो सकता। कहानियों के भीतर सदैव हमें एक शुद्ध, भक्त, जिज्ञासु एवं शक्तिसम्पन्न आत्मा की झलक दिखाई देती रहेगी। गौतम के जीवन को हम कदापि कहानी नहीं कह सकते।

गौतम को क्यों हम इस सूची में स्थान दे रहे हैं, इसका कारण यह है कि उन्होंने भी संसार को एक सार्वभौमिक सन्देश सुनाया था। उसमें देश और काल के लिए कोई स्थान नहीं। उनके विचार इतने प्रौढ़ थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि आधुनिक काल के उत्तम से उत्तम विचार भी उनसे आगे नहीं निकल सके हैं। जो सिद्धान्त उन्होंने स्थिर किये थे वे सर्वथा अक्षय हैं। उनका सार यह है कि संसार के समस्त दुःखों और यातनाओं का मूल कारण हमारी कभी तृप्त न होनेवाली स्वार्थमूलक वासना है। इस वासना के मुख्य तीन रूप हैं और तीनों अतिशय दुःखदायी हैं। पहला रूप इन्द्रिय-तृप्ति और काम-लिप्सा है और दूसरा है व्यक्तिगत रूप से अमर हो जाने की इच्छा। और सबसे अन्त में सांसारिक अभ्युदय और ऐश्वर्य पाने की इच्छा प्रबल होती है। मनुष्य को इन तीनों प्रकार की वासनाओं को जीतना होगा। मतलब यह कि यदि मनुष्य को शान्ति की इच्छा है तो उसे व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़ देना चाहिए। बस, इसी का नाम निर्वाण है। निर्वाण का अर्थ, वास्तव में, विनाश नहीं है, जैसा कुछ लोग भूल से समझ बैठे हैं। उसका अर्थ तो केवल यही है कि हमारी क्षुद्र वासनाओं का नाश हो जाना चाहिए, क्योंकि वासना-नाश से ही आत्मा को चिराभिलषित शान्ति प्राप्त हो सकती है।

गौतमबुद्ध के पाँच सौ वर्ष बाद ईसामसीह ने भी ठीक यही बात कही थी। 'मनुष्यों को सबसे पहले ईश्वरीय नियम का अनुसन्धान करना चाहिए। जो मनुष्य अपनी जान बचाना चाहेगा उसी को उससे हाथ धोना पड़ेगा।' भला इस वाक्य का और क्या अर्थ हो सकता है। यही न कि हमको अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के ऊपर विजय पाना चाहिए। ईसामसीह के जीवन की भाँति गौतमबुद्ध का जीवनचरित पढ़ते समय हमें पग पग पर उनके विशाल हृदय और प्रखर बुद्धि का अनुभव होता है। उन्होंने लोगों को एक दिव्य ज्योति के दर्शन कराये थे। यद्यपि वे हमारे इतिहास के एक कोने में खड़े हुए हैं तथापि उन्होंने समकालीन लोगों के हृदय में जो क्रान्ति मचा दी थी उसका सिलसिला आज तक चला जाता है और अनादि काल तक चला जायगा।

संवाददाता ने यह समझ कर कि शायद मिस्टर वेल्स संसार के महापुरुषों में केवल धर्म-संस्थापकों और धर्म-प्रचारकों को ही स्थान देना चाहते हैं, एकाएक यह प्रश्न किया कि आपकी इस आदरणीय सूची में हज़रत मुहम्मद और कन्फ्यूसियस को भी आसन मिल सकता है या नहीं। इसके उत्तर में मिस्टर वेल्स ने जो कुछ कहा उससे उनका उपर्युक्त वर्णन और भी स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने कहा—चीन के विषय में तो मुझे इतना अधिक ज्ञान नहीं कि मैं कन्फ्यूसियस को इन शीर्षस्थानीय महापुरुषों की श्रेणी में परिगणित कर सकूँ। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि उसका मस्तिष्क भी प्रौढ़ था और उनकी आत्मा विशाल थी। लोगों का तो यह विचार है कि चीनी लोगों के चरित्र-गठन पर जितना प्रभाव कन्फ्यूसियस का पड़ा है उतना चीन के बहुत से शहन्शाहों का भी नहीं पड़ा। यह कथन भी यथार्थ मालूम होता है, किन्तु उनकी शिक्षायें ईसामसीह अथवा गौतमबुद्ध की शिक्षाओं की भाँति सार्वभौमिक नहीं। पर दूसरे व्यक्ति अर्थात् मुहम्मद के विषय में मेरी अति उच्च धारणा नहीं है। मेरी समझ में तो मुहम्मद की अपेक्षा उनके दो साथियों का स्थान ऊँचा है। उनमें से एक का नाम तो अबूबकर है, जो मुहम्मद के बड़े घनिष्ठ मित्र थे और दूसरे ख़लीफ़ा ओमर हैं, जो पीछे से उनके उत्तराधिकारी हुए। मुहम्मद के चरित्र में बहुत से उज्ज्वल गुणों का समावेश हुआ था, किन्तु उसकी कमज़ोरियाँ भी स्पष्ट हैं। एक तो उन्होंने कई स्त्रियों के साथ विवाह किया था और दूसरे उनको स्त्रियों के कारण दुःख भी बहुत उठाना पड़ा। इसी लिए उन्होंने गृह-कलह से बचने के लिए कई बार अल्ला से प्रार्थना की है। मुझे तो उनमें मिथ्या गर्व, अहङ्कार और उद्दाम वासना की भी थोड़ी-बहुत गन्ध आती है। इसलिए मैं उनको संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुषों में नहीं रख सकता। इतना ही नहीं, मुझे तो उनका कुरान भी स्वर्गीय एवं अधिक आनन्दोत्पादक ग्रन्थ नहीं मालूम होता। मैंने उसके दो भाषान्तर देखे, साथ ही इस बात का प्रयत्न भी किया कि मुझको उसमें मज़ा आने लगे, किन्तु मेरा हृदय उसकी प्रशंसा के लिए कभी उन्मत्त नहीं हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि मुहम्मद के द्वारा एक ऐसी शक्ति का जन्म हुआ है जो मुहम्मद से कहीं बड़ी थी। वह शक्ति इस्लाम की शक्ति है। वास्तव में इस्लाम-धर्म अपने प्रवर्तक की अपेक्षा कहीं अधिक सारगर्भित था और है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरिस्टाटल का माहात्म्य ।

अतएव कन्फ्यूसियस अथवा मुहम्मद की जगह जिसको मैं इस सूची में स्थान देना चाहता हूँ वह एक प्राचीन यूनानी है । इनका नाम अरिस्टाटल अथवा अरस्तू था । इन्होंने भी संसार को एक नया पाठ पढ़ाया था । इनके पहले लोगों के हृदय में ऐसे प्रश्न उठा करते थे—मैं क्या हूँ और यह संसार क्या है । किन्तु किस प्रकार इनको हल कर सकते हैं, यह कुछ भी उनकी समझ में नहीं आता था । इन्होंने बतलाया था कि इसके लिए हमें सबसे पहले उन बातों और तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण करना चाहिए जो हमें अपने प्रश्नों और जिज्ञासुओं के उत्तर में मालूम होते हैं । ये सिकन्दर के गुरु थे । अतएव उसकी सहायता और सहानुभूति के सहारे इन्होंने बड़ी तत्परता से यही काम करना प्रारम्भ कर दिया । एक समय तो इनके पास एक हज़ार शिष्य हो गये थे, जो प्राकृतिक तथ्यों का सङ्ग्रह करने के लिए समस्त एशिया और यूनान में फैले हुए थे । प्रसिद्ध तो यह भी है कि इन्होंने अपने कुछ अनुयायियों को मिस्र को भी भेजा था और उन्होंने नील-नदी के पूरब का एक नक़शा भी तैयार किया था । इसी प्रकार इनके शिष्यों ने विभिन्न देशों के लगभग १५० राजनैतिक सङ्गठनों का भी विश्लेषण किया था । सारांश यह कि राजनैतिक और प्राकृतिक विज्ञान के यही सबसे पहले प्रवर्तक हैं । इसमें सन्देह नहीं कि सिकन्दर की आकस्मिक मृत्यु से इनका काम रुक गया और लोगों ने फिर वही अपनी पुरानी चाल ग्रहण कर ली । किन्तु अरस्तू ने जिस वैज्ञानिक शैली का आविष्कार किया था वह ऐसी महत्त्वपूर्ण थी कि लोग उसे कदापि भूल नहीं सकते थे । यद्यपि अफ़लातून आदि जैसे तत्त्ववेत्ताओं ने उसकी अवहेलना करना चाही, तथापि लोग लौट लौट कर इन्हीं के सिद्धान्त पर आते थे । अफ़लातून का सिद्धान्त था—अपने जीवन पर ध्यान दो और उसको आदर्श जीवन बनाओ । किन्तु अरस्तू का कहना था कि सबसे पहले हमें तथ्यों को एकत्र करना चाहिए । उनके एकीकरण और विश्लेषण के बिना काम नहीं चल सकता । संसार कैसा होना चाहिए, इसकी अपेक्षा हमें इस बात पर अधिक ध्यान होगा कि संसार कैसा है । युवावस्था में मैं अफ़लातून का प्रेमी था । उसके दर्शन की कल्पना और कवित्व ने मेरे हृदय को वशीभूत कर लिया था । किन्तु जब 'इतिहास की भूमिका' लिखते समय मुझे तथ्यों के कार्य-कारण की खोज करना पड़ी तब मुझे मालूम हुआ कि अरस्तू के जमाये हुए वैज्ञानिक अङ्कुर का महत्त्व संसार के इतिहास में कहीं अधिक महत्त्व-पूर्ण है । असली बात तो यह है कि यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि संसार के विकास में आधुनिक विज्ञान का हाथ है तो हमें यह मानने में भी कोई आपत्ति न होना चाहिए कि अरस्तू संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुषों में स्थान पा सकते हैं, क्योंकि वही तो वास्तव में इस वैज्ञानिक शैली के आदि-प्रवर्तक हैं ।

अशोक का माहात्म्य ।

इस पर संवाददाता ने यह प्रश्न किया कि अरस्तू को तो आप महान् पुरुषों की सूची में ले रहे हैं, किन्तु सिकन्दर आदि जैसे सम्राटों को, जिनको ऐतिहासिकों ने एक स्वर से 'महान्' की उपाधि दी है, जिनकी कीर्ति से इतिहास के सैकड़ों सफ़े रँगे हुए हैं, वे क्या आपकी इस सूची में स्थान नहीं पा सकते । मिस्टर वेल्स ने स्पष्ट रूप से उत्तर दिया—नहीं, मेरी सम्मति में सिकन्दर, सीज़र, नेपोलियन आदि सम्राट् इस सूची में रक्खे जाने योग्य नहीं, क्योंकि इन्होंने संसार की भलाई के लिए कोई ऐसा काम नहीं किया जिसका प्रभाव उनकी मृत्यु के बाद स्थायीरूप से बना रहता । हाँ, सम्राटों में केवल एक सम्राट् ऐसा हुआ है जिसको हम इस सूची में ले सकते हैं । वह सम्राट् सीज़र और नेपोलियन से कई शताब्दी पहले हुआ था । उसका साम्राज्य अफ़ग़ानिस्तान से लेकर मदरास तक फैला हुआ था । संसार के इतिहास में केवल एक यही सम्राट् ऐसा हुआ है जिसने विजय प्राप्त करने के बाद युद्ध को सदैव के लिए तिलाञ्जलि दे दी । यह सच्चा युद्धवीर था । उसने अपने जीवन में एक ही युद्ध किया और उसमें सफलता प्राप्त की । किन्तु उसकी यातनाओं को देखकर उसने प्रण कर लिया कि मैं अब आजीवन कभी युद्ध नहीं करूँगा और उसी दिन से वह अपनी प्रजा की भलाई में तल्लीन हो गया । उसने स्थान स्थान पर कुएँ खुदाये और सड़कों के किनारे पथिकों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आराम के लिए छायादार वृक्ष लगवाये। दान-संस्थाओं के सुप्रबन्ध और देख-भाल के लिए उसने बहुत से निरीक्षक भी नियुक्त किये। उसने जड़ी-बूटियों के बाग़ और औषधालय खोले और स्त्रियों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया। इतना ही नहीं, उसने अपने वृहत् साम्राज्य में गौतमबुद्ध की शिक्षाओं के प्रचार के लिए अनवरत उद्योग किया। उसकी इच्छा थी कि लोग बुद्ध की शिक्षाओं का मर्म समझ लें और उसके अनुसार चलकर आदर्श जीवन व्यतीत करें। इस प्रकार वह लगातार २८ वर्ष तक अपनी प्रजा के हित-चिन्तन में संलग्न रहा। उसके हृदय में स्वार्थ की गन्ध न थी। इसलिए अशोक आज भी संसार के सैकड़ों-हज़ारों राजाओं और सम्राटों के मण्डल में देदीप्यमान नक्षत्र की तरह चमक रहा है। यही कारण है कि जब हम उसका स्मरण करते हैं तब हमारे हृदय में एक विशेष प्रकार की श्रद्धा उमड़ पड़ती है जो सिकन्दर, सीज़र या नेपोलेयिन के स्मरण से नहीं होती।

"इतिहास की भूमिका' पढ़ने के पहले संवाददाता ने कभी अशोक का नाम नहीं सुना था, इसलिए अशोक को इस सूची में स्थान पाते देखकर उसको महान् आश्चर्य हुआ। उसने कहा यदि आप प्रजाहित को ही सम्राट् की योग्यता का प्रमाण समझते हैं तो योरप के सम्राट् नहीं तो कम से कम यहाँ के सुप्रसिद्ध मन्त्री जैसे रिचलू, टेलीरेण्ड, पिट इत्यादि आसानी से आपकी सूची में आ सकते हैं। मिस्टर वेल्स ने कहा—नहीं, इनके व्यक्तित्व में कोई महत्त्व नहीं, इनके सब काम काम-चलाऊँ हैं।

बेकन का माहात्म्य।

पर हाँ, एक अँगरेज़ भी ऐसा है जो मेरी समझ में इस गणना में आ सकता है। यद्यपि इस व्यक्ति में महापुरुषों के योग्य बहुत से गुणों का अभाव था, तथापि इसने मानवीय जगत् को विकास-मार्ग की ओर बढ़ाने में बड़ी सहायता दी है। हमारा संकेत रोजर बेकन की ओर है। हमें इसके व्यक्तिगत जीवन के विषय में अधिक ज्ञान नहीं और यद्यपि इसकी पुस्तकों की भाषा उद्दण्ड एवं कहीं-कहीं अशिष्टतापूर्ण भी है तथापि उनसे एक ही ध्वनि निकलती है—तथ्यों का ज्ञान और प्रयोग, आज से ६०० सौ वर्ष पहले इसने कहा था कि यदि मनुष्य अपने आपको अज्ञान एवं साक्ष्य के अनुचित प्रभावों से छुड़ा लें तो मैं दावा करता हूँ कि तथ्यों के विश्लेषण एवं प्रयोग से मनुष्य-जाति का असीम लाभ हो सकता है। इसके कथन का निम्न-लिखित अवतरण तो न जाने कितनी बार उद्धृत हो चुका है—बिना पतवारों के नावों के खेने के लिए मशीनें बनाई जा सकती हैं। नावें ही नहीं, मेरी समझ में तो मशीनों की सहायता से नदियों और समुद्रों के ऊपर जहाज़ भी एक या दो व्यक्तियों-द्वारा बड़ी तेज़ी से चलाये जा सकते हैं। इसी प्रकार ऐसी गाड़ियाँ भी बनाई जा सकती हैं जिनमें पशुओं को जोतने की आवश्यकता नहीं होगी। मेरा कहना तो यहाँ तक है कि मनुष्य उड़नेवाली मशीनें भी बना सकता है, जिन में बैठ कर कोई भी मनुष्य साधारण युक्ति के द्वारा कृत्रिम बाज़ुओं के सहारे हवा में पक्षियों की भाँति उड़ता चला जायगा।

इस प्रकार रोजर बेकन ने मनुष्यों की विचारधारा को एक नई दिशा में प्रवाहित कर दिया था। यह उसी का फल है कि आज हम लोग मशीनों में इतनी अधिक उन्नति कर गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि बहुत से लोगों को बेकन की महत्ता में सन्देह होगा और बहुत से लोग इस सूची में बेकन के आसन पर किसी दूसरे सज्जन को प्रतिष्ठित करना चाहेंगे। किन्तु इसमें संशय नहीं कि हमारी सभ्यता के विकास पर बेकन का प्रभाव चिरस्थायी है। हाँ, इस बात का निर्णय करना अवश्य कठिन है कि इस प्रभाव में बेकन के समकालीन व्यक्तियों का कितना हाथ है, क्योंकि कभी कभी यह देखा गया है कि मनुष्य केवल संयोगवश विशाल कार्यों के हेतु बन जाते हैं। यदि परिस्थिति में थोड़ी सी भी प्रतिकूलता होती तो वे कदापि उस कार्य को सम्पादित न कर सकते। किन्तु कुछ भी हो बेकन का कार्य बेकन का ही कार्य है, और इसी लिए इतिहास में उनका स्थान सदैव अक्षुण्ण हो गया है।

लिंकन का माहात्म्य।

अपनी सूची को पूरा करने के लिए अब हमें अपने ही युग के समीप आना पड़ेगा। मेरी समझ में नूतन युग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सबसे बड़ा कार्य अमेरिका का विकास और उत्थान है। वास्तव में अमेरिका का विकास और उत्थान इतना उच्च, इतना विशाल और इतना आशाप्रद है कि उससे हमारी सूची में कम से कम एक व्यक्ति को जोड़ने का अधिकार हमें मिलना ही चाहिए। इसलिए प्रश्न केवल यह है कि वह व्यक्ति कौन सा है वाशिङ्गटन या इब्राहीम लिंकन। यदि वाशिङ्गटन का जन्म न होता तो शायद हमको अमेरिका के इस रूप में दर्शन ही न होते। तथापि मैं वाशिङ्गटन को असली अमेरिकन नहीं कह सकता, क्योंकि उसका हृदय एक अँगरेज़ी हृदय था। उसका स्वभाव, चाल-ढाल, आचार-विचार उसकी मातृ-भूमि इँग्लेंड से बहुत मिलते-जुलते थे। कहने का तात्पर्य यह कि अमेरिका को बाहर से तो बहुत से वाशिङ्गटन मिल सकते थे, किन्तु लिंकन को और कोई देश पैदा नहीं कर सकता था। इसी लिए मैं उन्हें पक्का अमेरिकन कहता हूँ। उनमें अमेरिकनों की सभी विशेषताओं का समावेश हुआ है। उनका सिद्धान्त था कि सबको बराबर अवसर मिलना चाहिए, अर्थात् ग़रीब से ग़रीब मनुष्य के बच्चे को भी राष्ट्र का उच्च से उच्च पद प्राप्त करने में एक समान अधिकार और सुयोग होना चाहिए। उनकी यह पक्की धारणा थी कि अन्त में सदैव सत्य की विजय होती है। उनको यह विश्वास भी था कि संसार धीरे धीरे विकास की ओर अग्रसर हो रहा है, हमारी विकट से विकट समस्यायें काल-चक्र के अनुसार अपने आप सुलझती जाती हैं। इसी लिए उनके हृदय में सदैव प्रसन्नता रहती थी। इसी लिए हमें उनके विचारों में गम्भीरता, कार्यों में स्थिरता, वक्तृताओं में सरसता और स्वभाव में मृदुलता का अनुभव होता है। जिस मनुष्य में ये गुण हों उसको हम आदरणीय और पूजनीय न समझें तो क्या समझें! इनसे बढ़ कर और दिव्य गुण कौन से हो सकते हैं। यही कारण है कि लिंकन को मरे हुए यद्यपि पचास ही वर्ष के लगभग हुए हैं तथापि उन्होंने न केवल अमेरिकनों बरन संसार भर के मनुष्यों के हृदयों में एक उच्च और स्थायी आसन ग्रहण कर लिया है। मेरी समझ में उनको इस सूची में सम्मिलित करने में किसी को भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती। वे तो स्वयं उच्च थे ही, किन्तु उनकी उच्चता की विशेषता यह है कि उनका अमेरिका की अन्तरात्मा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। लिंकन में इस आत्मा का जैसा विकास हुआ था वैसा अन्य अमेरिकनों में नहीं पाया जाता।

इतना कह कर वेल्स चुप हो रहे। संवाददाता मन ही मन उस सूची को दोहराने लगा—ईसामसीह, गौतम-बुद्ध, अरिस्टाटल, अशोक, बेकन और लिंकन। उसको आश्चर्य्यचकित सा देख कर वेल्स ने फिर कहा—मेरी सम्मति में मनुष्य लेने से बड़ा नहीं होता है, बरन देने से बड़ा होता है। मैंने जिन मनुष्यों को इस सूची में रक्खा है उन्होंने अपने जीवन में त्याग-वृत्ति का जो उदाहरण दिखाया है उसका प्रभाव आज तक लाखों और करोड़ों मनुष्यों के जीवन एवं विचारों पर पड़ता रहा है और अनादि काल तक पड़ता रहेगा।

Printed and Published by K. Mitra, at the Indian Press Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २६, खण्ड १] मई १९२५—वैशाख १९८२ [संख्या ५, पूर्ण-संख्या ३०५

तुम और मैं।

(१)

रहता हूँ मैं सर्वथा, सतत तुम्हीं में लीन,
हो प्रभु प्रेम-पयोधि तुम, मैं हूँ उसका मीन।
मैं हूँ उसका मीन प्रेम-रस को पीता हूँ,
पीकर ही बस उसे मोद-युत मैं जीता हूँ।
प्रेम-सिन्धु की तरल तरङ्गों में बहता हूँ,
तो भी हरदम हाय तृषित ही मैं रहता हूँ॥

(२)

होता कभी न म्लान जो, हो तुम वह अरविन्द,
रूप-सुधा, रस का रसिक, मैं हूँ एक मिलिन्द।
मैं हूँ एक मिलिन्द प्रीति तुममें रखता हूँ,
सतत सरस मकरन्द तुम्हारा मैं चखता हूँ।
बहता रहता सदा तुम्हारे रस का सोता,
पर तो भी सन्तोष न मुझ लोलुप को होता॥

(३)

गगनविहारी भानु हो, प्रभु तुम तेज-निधान,
एक सितारा क्षुद्र मैं, दीन मलीन महान।
दीन मलीन महान अँधेरे में बसता हूँ,
पाता हूँ जब ज्योति तुम्हारी तब हँसता हूँ।
पर मेरे हित क्या न यही गौरव है भारी,
मैं भी हूँ हे नाथ! सदा ही गगनविहारी॥

(४)

आते तुम जब तक नहीं, मुझ पर उड़ती धूल,
वर वसन्त तुम हो प्रभो, मैं छोटा सा फूल।
मैं छोटा सा फूल छिपा रहता हूँ वन में,
आओ जल्दी नाथ! यही जपता हूँ मन में।
जब तुम आकर रूप-रङ्ग से मुझे सजाते,
तब सब स्वार्थी मधुप स्वयं मेरे ढिग आते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

सुखकारी तुम हो सजल, स्वाति जलद गम्भीर,
प्यासा चातक एक मैं, हूँ सर्वथा अधीर।
हूँ सर्वथा अधीर भरोसा मुझे तुम्हारा,
हरती मेरी प्यास नहीं अविरल जल-धारा।
होती मुझ पर नाथ! किन्तु जब कृपा तुम्हारी,
एक बूँद ही मुझे तृप्त करती सुखकारी॥

(६)

जल कर मरता हूँ सदा, रहती तदपि उमङ्ग,
हो प्रभु प्रेम-प्रदीप तुम, मैं हूँ एक पतङ्ग।
मैं हूँ एक पतङ्ग, ढङ्ग है निपट निराला,
करती मुझको भस्म प्रेम-दीपक की ज्वाला।
तो भी उसमें तनिक न जलने से डरता हूँ,
लेता जब जब जन्म सदा जल कर मरता हूँ॥

गोपालशरणसिंह

पाश्चात्य देशों में वेदों का अध्ययन।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में योरप में एक बड़ी अश्रुतपूर्व और अद्भुत क्रान्ति उपस्थित हुई थी। जिन दो विशाल पूर्वी और पश्चिमी साम्राज्यों में योरप पहले बँटा हुआ था वे मटियामेट हो चुके थे। कुस्तुनतुनिया पर तुर्कों का अधिकार हो गया था और रोमनचर्च एक छोटी सी ज़मींदारी भर रह गया था। पञ्चम निकोलस ने वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के बहिष्कार और नई पोपीय नीति की घोषणा करवा दी थी। इसी समय पहले-पहल छापे के प्रेस का भी आविष्कार हुआ। इस बाहरी क्रान्ति के फलस्वरूप एक दूसरी भीतरी क्रान्ति की उत्पत्ति हुई जिसके प्रभाव से मध्य-युग के लोगों के धार्मिक और सामाजिक विश्वास डिग गये, लोग पुरानी बातों को घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे, प्राचीन साहित्य के पढ़ने और विद्योपार्जन करने का सर्वत्र उन्माद सा छा गया। मध्ययुग ने नवयुग को स्थान दिया, जो केवल योरप के ही नहीं, संसार के समस्त ईसाई-मण्डल के भूत और भावी इतिहास की एक अमर घटना है।

इसके बाद संसार की मानसिक और नैतिक अभि-वृद्धि के इतिहास में यदि कोई दूसरी सर्वव्यापक घटना हुई है तो वह पाश्चात्य देशों में संस्कृत-भाषा का प्रचार है। यद्यपि योरपीयों को अब से बहुत पहले भी, सिकन्दर और मेगस्थनीज़ के समय में, भारत के साहित्य और ज्ञान का कुछ कुछ परिचय प्राप्त होगया था, तथापि उनके स्थायी परिज्ञान और तुलनामूलक अध्ययन का बीज भारत में अँगरेज़ों के आने के बाद ही बोया गया। इस बीज से थोड़े ही समय के भीतर इतना बड़ा वृक्ष उत्पन्न हो गया है कि अब स्वयं सर्वज्ञ ऋषियों की हिन्दू-सन्तान को अपने प्राचीन साहित्य का अध्ययन करने के लिए इसी वृक्ष की छाया के नीचे बैठना पड़ता है। बात गम्भीरता से सोचने की है कि जहाँ अँगरेज़ी और जर्मन-भाषाओं में वेदों के एक से अधिक अनुवाद मौजूद हैं, वहाँ हम भारतीय अपने 'वेद' शब्द के यथार्थ तात्पर्य को भी नहीं जानते। जर्मन-भाषा में संस्कृत का एक ऐसा कोष है जिसकी रचना इतिहासमूलक और तुलनात्मक रीति पर की गई है। किसी और प्राचीन भाषा का ऐसा कोष अभी तक नहीं बना है। अच्छा आओ हम पहले इस विदेशी उत्कर्ष का आरम्भ और विकास देखें।

धर्म-प्रचार के अभिप्राय से ईसाई-पादरियों का भारत में आना पहले-पहल सोलहवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ। यहाँ उन्होंने शङ्कराचार्य और बौद्धों में होनेवाले पुराने शास्त्रार्थों की बात सुनी। शास्त्रार्थ आरम्भ होने से पहले एक बहुत बड़े कड़ाह में तेल भर कर आग के ऊपर रख दिया जाता था और जो आचार्य हारता वह या तो प्रतिपक्षी के मत को ग्रहण कर लेता था या अपने को उस जलते कड़ाह में डालने के लिए बाध्य होता था। इस प्रकार शङ्कराचार्य ने असंख्य बौद्धों को अपने मत में मिला लिया या वे उनकी मृत्यु का कारण बने। यह किंवदन्ती सुनकर ईसाई-पादरी ब्राह्मणों की विद्वत्ता से बड़े भयभीत हुए। अतएव उन्हें भारतीय साहित्य से परिचित हो लेने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

भारत में आये हुए इन धर्म-प्रचारकों में से राबर्टस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डिनोबिलिटस नामक एक पादरी ने, वाद-विवाद में हिन्दुओं के प्राचीन ग्रन्थों से हवाले देने की ज़रूरत समझी उसने 'यजुर्वेद' शब्द के अनुकरण पर 'एजूर-वेदम्' नाम की एक पुस्तक लिखी। इसमें ईसाई-सिद्धान्तों का समर्थन किया गया था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ध्वनि और तात्पर्य में यह पुस्तक मुसलमानों के अल्लोपनिषद् का अग्रगामी ईसाई-अवतार थी। परन्तु राबर्टस की धूर्त्तता प्रकाशित होने से पहले ही उसका योरप में प्रचार हो चुका था और उसे पढ़ कर वाल्टेयर जैसे विद्वान् लेखक ने हिन्दुओं के ज्ञान और अध्ययन की प्रशंसा में लेख लिख कर योरप के पण्डितों की जिज्ञासा को जाग्रत कर दिया था।

योरप में वैदिक साहित्य के अध्ययन का आरम्भ संस्कृत से ही हुआ है। भारत में शासन की आवश्यकताओं से प्रेरित होकर वारेन हेस्टिंग्स ने मुख्य मुख्य हिन्दू-धर्म-शास्त्रों का एक सार तैयार करने के लिए कुछ पण्डितों को नियुक्त किया। इन्होंने जो पुस्तक तैयार की, सन् १७७६ में उसका अँगरेज़ी में अनुवाद प्रकाशित हुआ। धीरे धीरे भारत में आये हुए अँगरेज़ लोग भी संस्कृत पढ़ने लगे। सन् १७८५ में चार्ल्स विल्किन्स ने अपना भगवद्गीता का अनुवाद प्रकाशित किया। परन्तु पश्चिम को भारतीय साहित्य से परिचित कराने में सबसे बड़ा काम सर विलियम जोन्स ने किया। ये भारत में ग्यारह वर्ष तक रहे, सन् १७८४ में इन्होंने एशियाटिक सोसायटी आव् बङ्गाल की स्थापना की और सन् १७८९ में शकुन्तला का अनुवाद कर जर्मनी के अमर कवि गेटी के मुख से वे गौरवभरे शब्द * कहलाये जिन्हें भारतीय कभी नहीं भूल सकते।

अगली शताब्दी के आरम्भ में एक और महत्त्व की बात हुई। सन् १८०२ में एलेक्ज़ेंडर हैमिल्टन नाम का एक अँगरेज़ फ्रांस होता हुआ भारत से इँग्लैंड जा रहा था। परन्तु उन्हीं दिनों फ़रासीसियों और अँगरेज़ों में लड़ाई छिड़ जाने के कारण नेपोलियन ने फ्रांस-स्थित तमाम अँगरेज़ों को नज़रबन्द कर लेने की आज्ञा घोषित करवा दी। हैमिल्टन पेरिस में रोक लिया गया, जहाँ उसे बहुत समय तक रहना पड़ा। यहाँ उसने अपना अधिकांश समय फ़रासीसी विद्वानों को संस्कृत पढ़ाने में बिताया। इन संस्कृत सीखनेवालों में जर्मन-कवि श्लीगल भी था, जिसने अपने अध्ययन के बाद, १८०८ में, 'भारतवासियों की भाषा और उनके ज्ञान' पर एक महत्त्व-पूर्ण लेख लिखा। इस लेख से पाश्चात्य पण्डितों में खलबली मच गई और उसके परिणाम-स्वरूप फ्रांज़ बाप्प-द्वारा तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का उदय हुआ।

ऊपर लिखे विद्वानों की कार्यशीलता संस्कृत के क्षेत्र तक ही सीमित रही। परन्तु उससे वैदिक अध्ययन का मार्ग खुल गया। सन् १८०५ में हेनरी टामस कोलब्रुक के वेद-सम्बन्धी लेख * ने उसका द्वार दिखा दिया। कोलब्रुक १७८२ में, बङ्गाल-सर्विस में राइटर होकर आये थे। फिर १७८६ में तिरहुत के असिस्टेन्ट कलेक्टर हो गये। उन्हें भी शासन की आवश्यकता से संस्कृत पढ़ने की ज़रूरत पड़ी, जिसमें उन्हें बाद को रुचि होगई। १७९५ में जब बनारस के समीप मिर्ज़ापुर में वे मजिस्ट्रेट होकर गये तब उनके संस्कृत पढ़ने के सुभीते बहुत बढ़ गये। काशी के पण्डितों से उन्हें संस्कृत-ग्रन्थों की अनेक हस्तलिखित पुस्तकें प्राप्त हुईं, जिन्हें १८१४ में, घर लौटने पर, उन्होंने इण्डिया हाउस को भेट कर दीं। सन् १८०१ में सरकारी ज़िम्मेदारियों के साथ साथ वे फ़ोर्ट-विलियम-कालेज में हिन्दू-धर्म और संस्कृत पढ़ाने के रुचिकर भार को भी धारण किये हुए थे।

कोलब्रुक ने वेदों पर जो लेख लिखा उसकी अभी तक बड़ी प्रतिष्ठा है, होनी भी चाहिए। क्योंकि वह अँगरेज़ों का पहला प्रयास था। परन्तु कोलब्रुक वैदिक साहित्य के विद्वान् नहीं थे। साधनों की कमी के कारण वे वेदों का पूरा पूरा ज्ञान नहीं प्राप्त कर सके और उनमें अधूरे और ऊपरी अध्ययन की त्रुटियाँ रह गईं। उन्होंने जो कुछ वेदों के बारे में लिखा उससे वैदिक अध्ययन की वृद्धि

* Wouldst thou Heaven and Earth in one Sole name combine?
I name thee, O Sàkuntalā! and all at once is said."

* On the Vedas, the sacred writings of the Hindus.',

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होनी तो दूर रही, उलटी उसमें रुकावट हो सकती थी। उनकी राय थी कि वेदों के पढ़नेवाले को उसके परिश्रम का फल नहीं प्राप्त हो सकता, केवल दिल-बहलाव के लिए उनका कभी कभी अवलोकन किया जा सकता है। फिर भी उनके लेख ने पश्चिमी विद्वानों का जो कौतूहल जाग्रत कर दिया था उसने वेदों के पढ़े जाने में सहायता ही दी। कोलब्रुक वैदिक साहित्य के प्रथम ज्ञाता गिने जाने लायक़ हैं।

बीस वर्ष बाद जर्मन-विद्वान् फ्रेड्रिक रोज़ेन ने कोलब्रुक की इकट्ठा की हुई हस्तलिखित पुस्तकों को पढ़ा और उनसे वैदिक साहित्य के सच्चे महत्त्व का पता लगाया। बड़े उत्साह से उन्होंने ऋग्वेद का सम्पादन करना आरम्भ किया और शायद वे बहुत कुछ काम करते परन्तु अभी पहला अष्टक और उसका लेटिन अनुवाद प्रकाशित भी न हो पाया था कि सन् १८३७ में उनकी मृत्यु हो गई।

सन् १८४६ में रुदल्फ़ रोत के लेख * ने वैदिक अध्ययन में एक नया युग उपस्थित किया और तभी से वेदों के पठन-पाठन का वास्तविक कार्य ज़ोर-शोर से शुरू हुआ। रुदल्फ़ रोत वैदिक अध्ययन की वैज्ञानिक रीति के जन्मदाता हैं। अब तक वेदों के बारे में जो कुछ पढ़ा-लिखा गया था वह सब देशी भाष्यकारों पर निर्भर रह कर। परन्तु रुदल्फ़ ने अपने लेख में यह कहा कि वेद का सबसे अच्छा भाष्य स्वयं वेद ही है। सायण के भाष्य से सहायता न लेकर उन्होंने ऋग्वेद के समझने के लिए भिन्न भिन्न प्रयोगों के समान उदाहरणों को इकट्ठा किया और उनके द्वारा कठिन तथा अस्पष्ट वाक्यों के अर्थ निर्धारित किये। बोथलिंक के सहयोग से उन्होंने एक बृहत् संस्कृत जर्मन-कोष † की रचना की, जिसमें उन्होंने अपने वैज्ञानिक ढङ्ग से ही काम लिया है। इस कोष का वैदिक अंश स्वयं रोत ने बनाया और उसका संस्कृत-अंश बोथलिंक ने। रोत ने निघण्टु और निरुक्त का भी सम्पादन किया, जिसमें उन्होंने स्थान स्थान पर अपनी टिप्पणियाँ दी हैं और यास्क की अनेक वैदिक परिभाषाओं को, भिन्न भिन्न शब्दों के यथार्थ वैदिक प्रयोगों के आधार पर, शुद्ध करने की चेष्टा की है।

रोत के बाद आज़ेन ब्यीरनूफ़ का नाम स्मरणीय है। ब्यीरनूफ़ फ़रासीसी विद्वान् थे। परन्तु इन्हें हम इनके लिखे हुए बहुत अधिक ग्रन्थों के अथवा रोत की भाँति किसी नये अध्ययन-तत्त्व का आविष्कार करने के कारण नहीं जानते हैं। ये वैदिक साहित्य के पण्डित थे और मैक्समूलर के गुरु थे।

इसके बाद ह्वेबेर और बेनफ़े वैदिक साहित्य के अखाड़े में उतरे। दोनों जर्मन थे और समकालीन थे। ह्वेबेर ने सन् १८५२ में 'भारतीय साहित्य' पर एक पुस्तक लिखी, जिसका अनुवाद अँगरेज़ी में होगया है। इस ग्रन्थ को पढ़ने से मालूम होता है कि ह्वेबेर का वेद-सबन्धी ज्ञान कितना अधिक था और उन्होंने कितने परिश्रम के साथ वैदिक साहित्य के एक एक ग्रन्थ को देखा था। शायद उनके अनुमानों से हम कहीं कहीं सहमत न हों, तथापि उनके विस्तृत अध्ययन और भारी पाण्डित्य की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। वे एक रिसाला ‡ भी निकालते थे, जो भारतीय साहित्य के वेद-व्याकरण-दर्शन आदि भिन्न भिन्न अङ्गों की दृष्टि से एक अमूल्य निधि के समान है।

ह्वेबेर ने शुक्ल यजुर्वेद का भी तीन भागों में सम्पादन किया है। पहले भाग में संहिता, महीधर का भाष्य और माध्यन्दिन तथा काण्व शाखाओं के पाठ-भेद दिये गये हैं। दूसरे भाग में शतपथ-ब्राह्मण और स्थान स्थान पर उसका भाष्य है। तीसरे भाग में कात्यायन श्रौतसूत्र तथा कर्क-भाष्य के अंश दिये हुए हैं। शुक्ल यजुर्वेद का यह संस्करण एक बहुमूल्य वस्तु है। अपने रिसाले में ह्वेबेर ने तैत्तिरीय संहिता का भी सम्पादन किया है।

बेनफ़े ने अधिकतर संस्कृत-व्याकरण, वैदिक व्याकरण और स्वर तथा दर्शन के ऊपर लिखा है। उनके अनेक निबन्धों के अतिरिक्त उनका लिखा हुआ एक संस्कृत-साहित्य का इतिहास और एक संस्कृत-कोष भी विद्यमान है।

* Zur Literature and Geschichte des veda Sanskrit worter buch.

† Academische Vorlesungen uber Indische Literature geschichte.

‡ Indische Studien.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेनफ़े और ह्वेबेर के बाद उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े संस्कृतज्ञ मैक्समूलर थे। मैक्समूलर का नाम भारत में बहुतों को ज्ञात है। उनके नाम का हिन्दू रूप मोक्षमूलर है, जिसकी प्रोफ़ेसर ब्लूमफ़ील्ड ने बड़ी अच्छी व्याख्या की है। यह नहीं कहा जा सकता कि मैक्समूलर हिन्दुओं के 'मोक्ष' में विश्वास रखते थे; परन्तु यदि 'मोक्ष' का अर्थ मन और बुद्धि की निर्मलता तथा स्वतन्त्रता हो सकता है तो वे अवश्य मोक्षमूलर थे*। प्रोफ़ेसर मैक्समूलर किस प्रकार इतने बड़े संस्कृतज्ञ हुए और किस भाँति उन्होंने ऐसा लोकविश्रुत नाम पाया, यह एक मनोरञ्जक कथा है।

फ़्रेड्रिक मैक्समूलर ने सन् १८२३ में एक जर्मन-परिवार में जन्म ग्रहण किया था। मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास करने के बाद लीपसिग-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर ब्राकहैन्स की प्रेरणा से इन्होंने संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। जब इनकी आयु इक्कीस साल की थी तब ये बर्लिन-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर बॉप्प की कृपा से तुलनात्मक भाषाविज्ञान के एक अच्छे वेत्ता हो गये थे। इसके बाद ये पेरिस जाकर आज़ेन ब्यीरनूफ़ के शिष्य हुए। उनसे ज़ेन्द पढ़ते थे। एक वर्ष बाद, अर्थात् १८४५ में, इन्होंने तुलनात्मक धर्मगवेषणा के कार्य में लगकर पूरे ऋग्वेद का सम्पादन करने का विचार किया। सन् १८४६ में ये अपने इरादे को पूरा करने के विचार से इँग्लैंड गये और वहाँ बड़े बड़े विद्वानों से मिले। उनकी सहायता करने के लिए बन्सेन और प्रोफ़ेसर विल्सन ने मिल कर ईस्ट इंडिया कंपनी को ऋग्वेद के प्रकाशन का व्ययभार वहन करने के लिए राज़ी कर लिया। सन् १८४८ में आक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस में पुस्तक छपने लगी और मैक्समूलर को उसकी देखभाल के लिए वहाँ ठहरना पड़ा। इस बीच में उन्होंने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया और दो वर्ष बाद वे वहीं आधुनिक भाषाओं के प्रोफ़ेसर हो गये। सन् १८६० में जब प्रोफ़ेसर विल्सन की मृत्यु हुई तब उन्हें आशा थी कि उनके स्थान पर वही संस्कृत के प्रोफ़ेसर बनाये जायँगे। परन्तु अँगरेज़ों के जातीय पक्षपात के कारण उनकी यह आशा सफल न हुई और संस्कृत की प्रोफ़ेसरी मानियर विलियम्स को दे दी गई। फिर सन् १८६८ में मानियर विलियम्स के मरने पर वह पद उनको मिला।

प्राचीन भारतीय साहित्य का ऐसा कोई अङ्ग नहीं है जिस पर मैक्समूलर ने न लिखा हो। उनमें खूबी यह थी कि उनके हृदय में काफ़ी सहानुभूति थी। बिना सहानुभूति के, किसी भी जाति के साहित्य, उसके रस्मो-रिवाज आदि का अध्ययन उचित प्रकार से नहीं हो सकता। सायण-भाष्य के सहित ऋग्वेद का प्रकाशन करके मैक्समूलर ने वैदिक अध्ययन को बड़ी सुदृढ़ नींव पर स्थापित कर दिया था। उनका "प्राचीन संस्कृत-साहित्य" अभी तक एक प्रामाणिक ग्रन्थ है।

मैक्समूलर ने अपने सम्पादकत्व में 'सेक्रेड बुक्स आव् दि ईस्ट' नाम की एक ग्रन्थमाला निकालनी आरम्भ की थी। इस माला में हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुसलमान, चीनी आदि जातियों के धार्मिक तथा प्राचीन ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित होते हैं। स्वयं मैक्समूलर के किये हुए उपनिषदों के तथा ऋग्वेद के मरुतों और अग्नि के सूक्तों के अनुवाद इसमें निकले हैं। मैक्समूलर ने धर्म और देवता-विषय पर भी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं और 'धर्म की उत्पत्ति और विकास' पर दिये हुए उनके व्याख्यान* हिन्दू-धर्म का एक ख़ासा संक्षिप्त इतिहास हैं।

अँगरेज़ वैदिक विद्वानों में, इस स्थान पर, मुइर का नाम उल्लेख-योग्य है। मुइर बड़े परिश्रमी और तेज़-तबीयत थे। भिन्न भिन्न बातों को इकट्ठा करने और उनसे सिद्धान्त निकालने में ये बड़े पटु थे। इनकी 'ओरिजिनल संस्कृत टेक्स्ट' संस्कृत पढ़नेवालों के लिए बड़ी अमूल्य चीज़ है। पुस्तक पाँच भागों में है और प्रत्येक भाग एक एक विषय को लिये हुए है। पहले भाग में वर्णविभाग की उत्पत्ति और वैदिक-युग में उसकी सत्ता या असत्ता पर विचार किया गया है। दूसरे भाग में हिन्दुओं के हिमालय-पार से आने तथा आर्य्य-जाति की पश्चिमी शाखाओं के साथ उनकी समानताओं की चर्चा है। तीसरे भाग में वेदों

* Bloomfield : Religion of the Veda.

*Hibbert Lectures on the Origin and Growth of Religion, as illustrated by the Indian Religion.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा उनकी उत्पत्ति और प्रामाणिकता आदि के सम्बन्ध में वेदकारों तथा उनके बाद के ग्रन्थकारों की सम्मतियों का ज़िक्र है। चौथे भाग में वैदिक देवताओं तथा उनके उत्तरकालिक प्रतिनिधियों की तुलना की गई है। पाँचवें भाग में वैदिक आर्यों के रहन-सहन, रीति-रवाज, धार्मिक विश्वास तथा सृष्टि-सम्बन्धी विचारों आदि का वर्णन है। पुस्तक में सर्वत्र उदाहरण और पुष्टि के लिए ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक, हर जगह से, उद्धरण और उनके अँगरेज़ी अनुवाद दिये गये हैं।

इस स्थान पर डाक्टर हॉग के ऐतरेय ब्राह्मण के संस्करण का भी ज़िक्र कर देना उचित होगा, विशेषतः इसलिए कि उसमें दी हुई पाण्डित्य-पूर्ण भूमिका के कारण यह पुस्तक बहुत उपयोगी हो गई है। डाक्टर हॉग का मत है कि यजुर्वेद ऋग्वेद से पुराना होना चाहिए; परन्तु इस विषय में उनके अनुयायी बहुत कम हैं।

विल्सन साहब ने ऋग्वेद का अनुवाद किया है। यह अनुवाद सब से पुराना है। विल्सन की राय थी कि कोई योरपीय विद्वान् वेदों को देशी भाष्यकारों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह नहीं समझ सकता। अतएव सायण-भाष्य की त्रुटियों को समझते हुए भी उन्होंने ऋग्वेद का अनुवाद सायण के आधार पर ही किया है। इससे इस अनुवाद में मौलिकता का यद्यपि कोई गुण नहीं है, तथापि सायण को समझने के लिए वह विशेषरूप से उपयोगी है। विल्सन के दो अन्य ग्रन्थ, हिन्दू-थियेटर और विष्णुपुराण का अनुवाद भी प्रसिद्ध हैं, परन्तु उनका वर्णन यहाँ असङ्गत होगा।

ऋग्वेद के अनुवादों में लुदविग् और ग्रासमैन के जर्मन-अनुवादों को न भूलना चाहिए। लुदविग् का अनुवाद गद्य में है और ग्रासमैन का पद्य में। ये दोनों अनुवाद इस विश्वास पर किये गये हैं कि देशी भाष्यकार आलोचनात्मक दृष्टि से शून्य हैं, अतएव उनके भाष्य अशुद्ध हुए बिना नहीं रह सकते। इसी से इन अनुवादकों ने कहीं कहीं बड़े अद्भुत अनुमानों से काम लिया है, जिन्हें ग्रहण करते समय बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। ग्रासमैन ने १८७३-७५ में ऋग्वेद का एक संस्कृत-जर्मन-कोष भी प्रकाशित कराया, जिसमें प्रत्येक शब्द के साथ साथ उन तमाम स्थलों के उद्धरण दिये गये हैं, जहाँ जहाँ ऋग्वेद में उसका प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद के पढ़नेवालों के लिए यह कोष बड़े काम का है।

ऋग्वेद का एक संस्करण रोमन में भी मौजूद है। एक दूसरा रोमन-संस्करण ऐतरेय ब्राह्मण का भी है। इन दोनों का श्रेय आडफ्रेश्त को प्राप्त है। ऋग्वेद पर एदॉल्फ़ कॅगी की एक छोटी सी पुस्तक है, जिसका अँगरेज़ी में अनुवाद होगया है। पुस्तक विचारशीलता और सहानुभूति के साथ लिखी गई है।

गेल्दनर और पिशेल ने 'वैदिक स्टडियन' नामक एक पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक तीन भागों में है और चिरकाल के परिश्रम का फल है। ऋग्वेद के बहुत से मुख्य शब्दों का, जिनका अभिप्राय सन्दिग्ध या अस्पष्ट है, वैदिक तथा वेद-सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों के भिन्न भिन्न उदाहरणों-द्वारा अर्थनिर्णय किया गया है। गेल्दनर ने भारतीय धर्म पर भी एक पुस्तक लिखी है। वे और एक दूसरी पुस्तक* प्रकाशित कर रहे हैं, जिसमें ऋग्वेद के चुने हुए सूक्त दिये गये हैं। इसके दो भाग निकल गये हैं। पहले में चुने हुए अंशों का एक कोष है और दूसरे में उन पर लेखक की टिप्पणी आदि। तीसरा भाग, जिसमें मूल अंश दिये होंगे, शीघ्रही छपनेवाला है। हाल में ही उन्होंने समस्त ऋग्वेद का अनुवाद करना भी आरम्भ किया है और इसका पहला भाग, जिसमें पहले चार मण्डलों का अनुवाद है, छप गया है। गेल्दनर अवेस्ता के भी विद्वान् हैं।

किसी साहित्य में पारदर्शी होने के लिए उसके व्याकरण का ज्ञान बड़ा ज़रूरी है। पाश्चात्यों ने अभी तक जितने संस्कृत-व्याकरण के ग्रन्थ लिखे वे सब इकतरफ़ा थे—केवल वेदों के बाद की संस्कृत से ही सम्बन्ध रखते थे। प्रोफ़ेसर ह्विटनी का व्याकरण-ग्रन्थ अपने ढङ्ग का पहला है। सबसे पहली बार इस व्याकरण में संस्कृत-मुहावरों को वैदिक मुहावरों के साथ मिला कर रक्खा गया है और शब्दों के रूपों की विवेचना इतिहास-मूलक दृष्टि से की गई है। वैदिक स्वरों पर जो परिच्छेद हैं वे भी बड़े काम के हैं।

ह्विटनी और गार्बे ने मिलकर अथर्ववेद-संहिता का

*Rigveda in Auswahl.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादन किया है और ह्विटनी ने हारवार्ड ओरिएण्टल सिरीज़ के लिए उसका अनुवाद किया है, जो प्रकाशित हो गया है। ह्विटनी ने अन्य वैदिक विषयों पर भी कई निबन्ध लिखे हैं।

हाल में ही प्रोफ़ेसर ओल्डेनबर्ग ने दो भागों में ऋग्वेद पर अपनी टिप्पणी* प्रकाशित की है। अब तक जो कुछ भी जिस किसी भाषा में ऋग्वेद के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है उस सबके उन्होंने स्थान स्थान पर हवाले दिये हैं। इससे पुस्तक बड़े महत्व की हो गई है। उन्होंने वैदिक धर्म पर भी एक पुस्तक लिखी है और सेक्रेड् बुक आव् दि इस्ट ग्रन्थमाला के लिए गृह्यसूत्रों तथा ऋग्वेद के अग्नि-सूक्तों के अनुवाद किये हैं। हिन्दू तथा वैदिक विषयों पर उनकी और भी अनेक किताबें हैं तथा उन्होंने वैदिक छन्दों के ऊपर भी एक ग्रन्थ लिखा है। प्रोफ़ेसर ओल्डेनबर्ग पाली और बौद्ध-धर्म के भी ज्ञाता हैं।

प्रोफ़ेसर बेलर के नाम से सब संस्कृतज्ञ परिचित हैं। ये हिन्दुस्तान में भी कई वर्ष तक रह चुके हैं। इन्होंने सेक्रेड बुक आव् दि ईस्ट ग्रन्थमाला के लिए, अन्यान्य ग्रन्थों के अतिरिक्त, कई वैदिक धर्म-सूत्रों के अनुवाद किये हैं। इसके सिवा इन्होंने हिन्दू-आर्य-सम्बन्धी एक ग्रन्थमाला† की स्थापना की और स्वयं उसके खोज के सम्पादक बने।

आधुनिक विद्वानों में प्रोफ़ेसर मैकडॉनेल, प्रोफ़ेसर कीथ और प्रोफ़ेसर ब्लूम्फ़ील्ड विशेष ख्याति को प्राप्त हैं। मैकडॉनेल ऑक्सफ़र्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के बोडेन प्रोफ़ेसर हैं और अभी, दो साल हुए, वे कलकत्ते में व्याख्यान देने के लिए आचुके हैं। कीथ उनके शिष्य हैं और एडिनबरा में प्रोफ़ेसर हैं। गुरु और शिष्य ने मिल कर एक बहुत ही उपयोगी ग्रन्थरत्न प्रकाशित कराया है, जिसमें वैदिक साहित्य में आये हुए प्रत्येक शब्द, नाम और विषय का उसके हवालों के सहित पूरा पूरा वर्णन है। वास्तव में यह पुस्तक कीथ ने ही लिखी है। मैकडॉनेल ने केवल इधर-उधर जोड़-तोड़ करके मसाले को सिलसिलेवार लगा दिया है। इन्होंने वैदिक विषयों पर बहुत से ग्रन्थ‡ लिखे हैं। इस समय मैकडॉनेल हावर्ड ओरियंटल सिरीज़ के लिए ऋग्वेद का एक अनुवाद तैयार कर रहे हैं।

प्रोफ़ेसर कीथ ने ऐतरेय आरण्यक और शाङ्खायन आरण्यक का सम्पादन और अनुवाद किया है। उन्होंने हावर्ड ओरियंटल सिरीज़ के लिए तैत्तिरीय संहिता, ऐतरेय ब्राह्मण और शाङ्खायन ब्राह्मण के भी अनुवाद किये हैं। बाद की संस्कृत और दर्शन आदि पर भी कीथ ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

प्रोफ़ेसर ब्लूम्फ़ील्ड अमरीकन हैं। इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति वेडिककान्कार्डेंस है। सेक्रेडबुक आव् दि ईस्ट ग्रन्थमाला के लिए इन्होंने अथर्ववेद का अनुवाद किया है। वैदिक धर्म पर इनकी एक पुस्तक अमरीका में छपी है। एक पुस्तक में इन्होंने ऋग्वेद की पुनरुक्तियों का सङ्ग्रह किया है, जो हावर्ड ओरियंटल सिरीज़ में छपी है। ब्लूम्फ़ील्ड ने वैदिक विषयों पर बहुत से लेख भी लिखे हैं। इस समय ऋग्वेद का अनुवाद करने का इनका विचार है।

संस्कृत तथा वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में जितना काम जर्मनी के विद्वानों ने किया है उतना किसी दूसरे ने नहीं। कुछ काम फ़्रांसवालों ने भी किया है। परन्तु जर्मन और फ़्रेञ्च भाषा में लिखा गया साहित्य छोटी सीमाओं के ही भीतर बन्द रहा, इसलिए उसके लेखकों के नाम को हर कोई न जान सका। मैक्समूलर की प्रसिद्धि इसी

---

* Rigveda, text Kritische und exegetische Noten.

† Gumdriss der Indo-arischen Philologic und Athums Kunde.

‡ उनके कुछ ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

1. Sarvānu kramaṇi of the Ṛigveda
2. Vedic Mythology (Gumdriss Series.)
3. Edition of the Brihaddevata of Saunaka (H. D. S.)
4. Vedic Grammar (Gumdriss Series) यह एक बहुत बड़ी पुस्तक है।
5. Vedic Grammar for Students.
6. Vedic Reader for Students.
7. History of Sanskrit Literature.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण हुई कि वे इँग्लेंड में रहे और उन्होंने अँगरेज़ी में लिखा। परन्तु कई सच्चे विद्वानों के नाम से हम बिलकुल भी परिचित नहीं हैं। मैकडानेल का "संस्कृत-साहित्य का इतिहास" यदि देखा जाय तो वायना के प्रोफ़ेसर श्रोदर की पुस्तक* का ही रूपान्तर है। प्रोफ़ेसर श्रोदर ने कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी और काठक संहिताओं का सम्पादन किया है और इनसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर अनेक लेख लिखे हैं।

प्रोफ़ेसर हिलेब्रैन्त ने बिब्लियोथिका इण्डिका में शाङ्खायन श्रौत सूत्र को सम्पादित किया है। उनकी वैदिक मैथालोजी (Vedische Mythologie), जो तीन भागों में है, बड़ी ही श्रेष्ठ पुस्तक है। उनके किये हुए ऋग्वेद के कुछ सूक्तों के अनुवाद गोतिंगेन से प्रकाशित हुए हैं। उनका रटुअल लिटरेथर (Ritual Literathur) नामक ग्रन्थ बेंलर की ग्रन्थमाला में छपा है।

हालेंड के प्रोफ़ेसर कालान्द वैदिक काल की रस्मों के विशेषज्ञ हैं। बिब्लियोथिका इण्डिका में उन्होंने बौधायन श्रौत सूत्र का सम्पादन किया है तथा कुछ धार्मिक रस्मों के ग्रन्थों का भी अनुवाद किया है। इस समय वे शतपथ-ब्राह्मण का सम्पादन कर रहे हैं। प्रोफ़ेसर कालान्द सामवेद के साहित्य में भी प्रामाणिकता के आसन को प्राप्त हैं। फ्रांस के प्रोफ़ेसर विक्टर हेनरी की सहयोगिता में उन्होंने अग्निष्टोम याग के ऊपर एक पुस्तक लिखी है।

फ़रासीसी विद्वान् बरगें की ला रिलीजन वेडीक (La Religion Vedique) और रेग्नो की वेडीक लिंग्विस्टिका Vedique Linguisti तथा विंटरनिज़ का "भारतीय साहित्य का इतिहास" प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। सिमर का Altindisches Leben, वैदिक भूगोल, वैदिक जीवन, वैदिक सभ्यता आदि के सम्बन्ध में एक बहुमूल्य ग्रन्थ है। एगलिंग ने सेक्रड बुक आव् दि ईस्ट के लिए शतपथ ब्राह्मण का अनुवाद किया है। प्रोफ़ेसर लैनमैन की नाउन इन्फ्लेक्शन इन दि ऋग्वेद भी अपनी तरह की एक किताब है। डाक्टर आरनोल्ड ने हिस्टारिकल वेडिक ग्रामर लिखी है और उनकी वेडिक मीटर उनके अध्यवसाय और धैर्य का नमूना है। वैदिक छन्दों का छानबीन के साथ अध्ययन करनेवालों के लिए यह पुस्तक परमावश्यक है।

यही नहीं कि पश्चिमी पण्डितों की जिज्ञासा केवल पढ़ने और ग्रन्थ लिखने में ही समाप्त होगई हो। पश्चिम में पौर्वात्य सभ्यता और साहित्य का अध्ययन करने के लिए बड़ी बड़ी सुसङ्गठित संस्थायें स्थापित हैं और वहाँ से केवल प्राच्य विषयों से ही सम्बन्ध रखनेवाले बड़े बड़े और बहुमूल्य पत्र निकलते हैं*।

भारत से जो दो एक इस तरह के पत्र निकलते हैं उनके जन्मदाता भी विदेशी ही हैं। उनका परिचय देना इस लेख का विषय नहीं है। प्रसङ्गवश उनकी याद आ जाना स्वाभाविक है और वह याद आत्मग्लानि उत्पन्न करनेवाली है। अपने ही घर में अपना काम ग़ैरों-द्वारा होता देख कर हमको अब उसे अपने हाथ में लेना चाहिए। हमें अपनी इस हेय दशा की ओर ध्यान देना चाहिए। हमारे धर्म-मुल्ला की दौड़ 'पुराण और शास्त्र' की मसजिद से आगे नहीं बढ़ती। किसी ब्राह्मण के धार्मिक विश्वास में ज़रा सी आपत्ति करो और वह कहेगा, "क्या शास्त्र और पुराण झूठ कहते हैं?" यहाँ 'शास्त्र' का तो अर्थ ही अव्यक्त है और 'पुराण' के शायद उसने कभी दर्शन तक नहीं किये हैं। तथापि 'शास्त्र और पुराण'

* Indiens Literature and kultur. उनकी अन्य दो पुस्तकों के नाम हैं—Arische Religion Mysterinn and Mimus in Rigveda.

* यथाः—

१, Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland का पत्र

२. जर्मन-प्राच्य-समिति का पत्र (Z. D. M. G.)

३. वाइना-प्राच्य-समिति का पत्र (Z. K. M. G.)

४. American Oriental Society का पत्र (J. A. D. S.)

५. American Philological Association का पत्र

६. तुलनात्मक भाषाविज्ञान का पत्र। इसका पूरा नाम है—Zeitschift fur verglei chende Sprachforscung इत्यादि।

इँग्लेंड की रायल एशियाटिक सोसाइटी की एक शाखा बम्बई में भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी समझ में हिन्दुओं के अति प्राचीन धर्मग्रन्थ हैं। वेदों का नाम केवल भक्तिभाव से सुनने भर के लिए रह गया है। अतएव अपने ऋषियों और प्राचीन गौरव के नाम पर झूठ-मूठ का मरना छोड़ कर हमें अब अपनी प्राचीन निधि को सच्चे दिल से ढूँढ़ने की कोशिश में लग जाना चाहिए। नहीं तो बाहर के लोग चाहे जो कुछ कर लें, हमारी चीज़ हमारे लिए खोई हुई के ही समान सदा बनी रहेगी।

"शिलीमुख"

योग-मीमांसा।

बम्बई के पास लोनावला नाम का एक नगर है। वह पहाड़ी स्थान है और स्वास्थ्यप्रद है। वहाँ एक जगह कुञ्जवन है। उसी में कैवल्य-धाम-नामक एक आश्रम है। उस आश्रम के अधिष्ठाता जे० जी० गुणे उप-नाम कुवलयानन्द महाशय हैं। आपने योग-मीमांसा नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका, अँगरेज़ी-भाषा में, निकालना आरम्भ किया है। इस पत्रिका का आकार बड़ा, छपाई और काग़ज़ अत्युत्तम, पृष्ठ-संख्या ८० और वार्षिक मूल्य ७) है। इसका प्रथम अङ्क अभी, कुछ ही दिन हुए, निकला है। इस अङ्क में जो कुछ है उसे अच्छी तरह समझाने के लिए अनेक फोटो-चित्र भी हैं। उनमें से कितने ही पूर्ण-पृष्ठ-व्यापी हैं। यह पत्रिका एक अद्भुत वस्तु मालूम होती है। जिन विषयों के विवेचन और प्रचार के लिए इसका जन्म हुआ है उनके अनेक अंश प्राचीन होने पर भी उनको समझाने और उनसे होनेवाले लाभों को प्रकट करने का ढङ्ग इसमें एक-दम ही नया है। योग का सम्बन्ध भी आधुनिक विज्ञान से है, यह बात ऊपर ही ऊपर देखने से अटपटी सी मालूम होती है—वह समझ में नहीं आती। परन्तु इस पत्रिका के सञ्चालकों ने यौगिक क्रियाओं और यौगिक आसनादि की उपयोगिता को विज्ञान से सिद्ध कर दिखाने का बीड़ा उठाया है। इसके सञ्चालक या सम्पादक—फिर चाहे वे श्रीयुत कुवलयानन्दजी हों, चाहे और कोई—अनेक विषयों या शास्त्रों के ज्ञाता मालूम होते हैं। भारतीय योगशास्त्र के ज्ञाता होने के सिवा वे आधुनिक रसायनशास्त्र, शरीर-शास्त्र, प्राणिगुण धर्म्मशास्त्र और रोगनिवारणशास्त्र के भी सम्पूर्ण नहीं तो स्थूल स्थूल तत्त्वों के ज्ञाता भी अवश्य ज्ञात होते हैं; क्योंकि अपनी पत्रिका के इस पहले ही अङ्क में उन्होंने इन शास्त्रों के भी ज्ञान से अन्वित होने के प्रमाण दिये हैं।

योग की जिन सिद्धियों का वर्णन महर्षि पतञ्जलि ने अपने ग्रन्थ में किया है उन सभी की प्राप्ति तो किसी विरले ही को हो सकती है और अब तक हो सकी है। उनके विषय में कुछ कहना-सुनना हमारे लिए अनधिकार-चर्चा है। जो योगी हैं और गुरु की कृपा से जिनको योग के साधन प्राप्त हो चुके हैं तथा जिनको उनमें कुछ सफलता भी मिली है वही इस विषय में कुछ कह सकते हैं और उन्हीं का कथन मान्य भी हो सकता है। परन्तु इस विषय के व्याख्याता जो ग्रन्थ आज तक प्रकट हो चुके हैं उनकी बातें निराधार नहीं, इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि अब भी कहीं कहीं ऐसे साधक पाये जाते हैं जो इस शास्त्र के कितने ही अंशों की सत्यता की गवाही स्वयं ही, अपनी यौगिक-क्रियाओं और शक्तियों-द्वारा, दे रहे हैं। भूतकाल में तो ऐसे सिद्ध पुरुष बहुत से हो गये हैं। उनके दिखाये हुए चमत्कारों का वर्णन अब भी पुस्तकों में पढ़ने को मिलता है। अस्तु।

ऊपर की बातें राजयोग के सम्बन्ध में कही गई हैं। योग के अन्तर्गत एक हठयोग भी है। योगियों को उसका भी अभ्यास करना पड़ता है। शरीर को स्वस्थ और नीरोग रखने के लिए हठयोग के अभ्यास की आवश्यकता होती है। शरीर सबल और रोगरहित होने ही से योगी को राजयोग की साधक-क्रियाओं का अभ्यास करने में सहायता मिलती है। इस हठयोग की कितनी ही क्रियाओं से बड़े बड़े असाध्य भी रोग दूर हो सकते हैं। अतएव जो लोग योग का उच्च अभ्यास नहीं करना चाहते—केवल रोगनिवृत्यर्थ ही उसकी, कुछ विशिष्ट क्रियाओं से लाभान्वित होना चाहते हैं—उनको चाहिए कि वे इस पत्रिका को एक बार अवश्य देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगशास्त्र में कितने ही आसनों और कितनी ही मुद्राओं आदि का वर्णन है। उनसे क्या लाभ होता है, इसका उल्लेख उस विषय के ग्रन्थों में तो है ही; पर योगियों की कृपा से वे लाभ प्रत्यक्ष देखने को भी मिल सकते हैं। ख़ैर उन्हें जाने दीजिए। हठयोग की बहुत ही साधारण क्रियायें—उदाहरणार्थ धोती, नौली, वस्ति आदि—से तो मामूली गृहस्थ भी लाभ उठाते देखे गये हैं और ऐसे कई सज्जनों को हमने स्वयं भी इन क्रियाओं को करते देखा है। इस प्रकार की क्रियाओं से क्या लाभ होते हैं, क्यों होते हैं और कितने समय में होते हैं, इसके उत्तर प्रस्तुत पत्रिका के सञ्चालकों ने विज्ञान की सहायता से देने का विचार या प्रतिज्ञा की है। इसीलिए उन्होंने पत्रिका के प्रत्येक अङ्क को तीन भागों में विभक्त करने की घोषणा की है। जिस विषय की वे विवेचना करेंगे उसे पहले वे विज्ञान की कसौटी पर कसकर उसका फल प्रकट करेंगे। दूसरे भाग में वे उसी पर अपने विचार साधारण तौर पर व्यक्त करेंगे, पर विज्ञान का लगाव न छोड़ेंगे। तीसरे भाग में विज्ञान को बिलकुल ही अलग रखकर वे, सीधी-सादी भाषा में, उन्हीं बातों का विशद विवेचन करेंगे। इस वर्गीकरण से उनका वक्तव्य सभी प्रकार के पाठकों की समझ में अच्छी तरह आ सकेगा।

इस पत्रिका के इस पहले अङ्क में उड्डियान, नौली, सर्वाङ्गासन और मत्स्यासन का वर्णन है। तत्सम्बन्धी अनेक चित्र देकर लेखक ने इन आसनों या क्रियाओं के प्रकार, उनसे होनेवाले शरीरावयवों में फेरफार तथा लाभ, और जिन जिन अवयवों पर उस फेरफार से असर पड़ता है उनकी रचना तथा उनके कार्य्य आदि का वर्णन किया है। जिन अवयवों पर पहली दोनों क्रियाओं का असर पड़ता है उनके, असर पड़ने की हालत में लिये गये, चित्र भी दिये गये हैं। ये चित्र उन अवयवों के भीतरी भागों के दृश्य दिखानेवाले हैं और एक्स-रे (X-Rays) नामक किरणों के प्रयोग के लिए निर्म्मित यन्त्र की सहायता से लिये गये हैं। बात यह कि इन यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से शरीर में जो गति, आकुञ्चन या प्रसारण आदि होते हैं वे इन किरणों के द्वारा लिये गये चित्रों से प्रत्यक्ष देखने को मिल जाते हैं।

शरीर में जितने रोग होते हैं, अधिकांश इस कारण होते हैं कि आमाशय और मलाशय अपना काम ठीक ठीक नहीं कर सकते। अधिक संख्या ऐसे ही रोगों की देखी जाती है जो अँतड़ियों के ठीक ठीक काम न करने अर्थात् मल सञ्चित रह जाने से होते हैं। इस बात को अच्छी तरह समझाने के लिए पत्रिका-सम्पादक ने कोलन (Colon) नामक बड़ी आँत की बनावट, उसके विभाग और उसके कार्य्य आदि का विशद-वर्णन, साधारण भाषा में, अच्छी तरह किया है। यह उन्होंने इसलिए किया है जिससे उड्डियान और नौली से होनेवाले लाभों का कारण सबकी समझ में आजाय। उड्डियान के अभ्यास से पेट या तलपेट की मांस-पेशियों में लाभदायक गति और आन्दोलन उत्पन्न होते हैं। वे उनकी सजीवता को बढ़ा देते हैं। इन गतियों का असर कोलन नामक बड़ी आँत पर पड़ता है। अतएव उसकी शिथिलता दूर हो जाती है। यही बातें प्रकारान्तर से नौली नामक क्रिया से होती हैं। यह वह क्रिया है जिसे वस्ति कह सकते हैं और जिसमें योगिजन मल-द्वार से जल को ऊपर खींच कर अपनी आँतें धो डालते हैं। इस क्रिया की बदौलत आँतों में मल का नामो-निशान तक नहीं रह जाता।

इस देश में फ़ी सदी कम से कम ५० आदमी कोष्ठ-बद्धता अर्थात् क़ब्ज़ से पीड़ित रहते हैं। यह रोग और भी कितने ही रोगों को बुला लाता है और रोगी के जीवन को बहुत ही सङ्कटापन्न कर देता है। इससे होनेवाले कष्टों का काफ़ी वर्णन वही कर सकते हैं जिनको अभाग्यवश इससे पाला पड़ जाता है। कितने ही रोगी रेचक ओषधियों की सहायता से किसी तरह जीवन-धारण करते हैं। कितने ही डाक्टरों की एनिमा नामक पिचकारी का आश्रय लेते हैं। परन्तु इन उपायों से जितना लाभ होता है उससे अधिक हानि भी होती है। योग-मीमांसा के लेखक का कथन है कि उनके बताये हुए उड्डियान और नौली से यह रोग सदा के लिए निर्म्मूल हो जाता है। और मलाशय, प्राकृतिक रीति से, अपना काम फिर करने लगता है।

मानव-शरीर में जो शिरायें, धमनियाँ और रगें आदि हैं उनका भी वर्णन पत्रिकाकार ने इस अङ्क में किया है। मेरुदण्ड का भी चित्र देकर उसकी रचना का वर्णन भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने किया है। फिर उन्होंने सर्वाङ्गासन के कितने ही प्रकार सचित्र बताये हैं, उनकी क्रियाओं के विवरण दिये हैं और उनसे होनेवाले लाभों का उल्लेख किया है।

इस आसन के अभ्यास से शरीर सुदृढ़ और तेजस्क हो जाता है, रगों में रुधिर अच्छी तरह दौड़ने लगता है और अनेक रोगों की जड़ उखड़ जाती है। कुष्ट के सदृश भयानक और महादुःखदायी रोग तक से पीड़ित मनुष्य इसकी बदौलत फिर नीरोग हो सकते हैं। इस विषय में पत्रिका-सम्पादक ने प्रत्यक्ष देखे हुए रोगियों के आराम होने के प्रमाण भी दिये हैं। इसी तरह उन्होंने मत्स्यासन से होनेवाले लाभों का भी वर्णन किया है। उससे भी कितने ही रोग दूर हो सकते हैं। इन आसनों से स्त्री और पुरुष दोनों ही लाभ उठा सकते हैं। सम्पादक महाशय ने पत्रिकान्त में बहुत से कठिन कठिन रोगों की एक सूची दी है, जो योगशास्त्र की क्रियाओं के अभ्यास से सहज ही नष्ट हो सकते हैं।

सम्पादक ने इस पत्रिका में यह भी लिखा है कि जो लोग योगसाधन की शिक्षा प्राप्त करना चाहें वे खुशी से उनके आश्रम में चले आवें। वहाँ उन्हें योग की शिक्षा मुफ़्त दी जायगी। हमें आशा है कि कुवलयानन्दजी महाराज अपने आश्रम के शिष्यों को हठयोग ही की नहीं, राजयोग की भी शिक्षा, यदि वह वहाँ सुलभ हो तो, दी जाने का प्रबन्ध करेंगे।

हम इस पत्रिका के प्रकाशन का अभिनन्दन करते हैं। यह योग-सम्बन्धिनी अनोखी पत्रिका है और बड़े महत्त्व की है। यौगिक क्रियाओं की महत्ता को विज्ञान-द्वारा सिद्ध कर दिखाना बहुत बड़ा काम है। ईश्वर करे यह चिरकाल तक जीवित रह कर अपने उद्देश की सिद्धि में सफलमनोरथ हो। सभी समर्थ जनों को इसे आश्रय देना चाहिए।

दिनकर शर्म्मा

आन्दोलन।

जब से इस सृष्टि की रचना हुई है तभी से मनुष्य-प्राणी ने अपने धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन के लिए कुछ न कुछ आदर्श बना रक्खा है। इन्हीं आदर्शों तक पहुँचने के लिए वह कुछ न कुछ प्रयत्न करता रहता है। इसके साथ ही पिछले अनुभव और भावी आवश्यकताओं के कारण उसका आदर्श भी सदैव बदलता रहता है। अखिल विश्व की इस स्वाभाविक परिवर्तन-परम्परा के कारण यह आवश्यक हो गया है कि मानव-समाज सदा कुछ न कुछ काम सफलता-पूर्वक करता रहे तो भी उसके लिए कुछ न कुछ काम सदा बाक़ी भी रह जाय। तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य-जीवन में हाथ-पैर चलाते रहने की—क्रियाशीलता की—आवश्यकता मरण-पर्यन्त बनी रहती है। मनुष्य की इसी क्रियाशीलता में आन्दोलन का अविनाशी बीज छिपा हुआ है। इस लेख में हम आन्दोलन के तात्त्विक पहलुओं पर कुछ विचार प्रकट करने का प्रयत्न करेंगे।

आन्दोलन एक प्रकार की ज़बर्दस्त लहर, संघर्षण-जनित ज्वाला अथवा जीवन-संग्राम का नाम है। हमारे आध्यात्मिक ग्रन्थों में कहा है कि सुख-दुःख, पाप-पुण्य, अमीर-ग़रीब, छोटा-बड़ा आदि परिवर्तन-जनित द्वन्द्वभाव का ही नाम संसार है। जिस दिन ये द्वन्द्वभाव नष्ट हो जायँगे उस दिन प्राचीन आचार्यों के मतानुसार इस संसार का ही पता न रहेगा। अतएव आन्दोलन जीवित संसार का एक स्वाभाविक और अनिवार्य धर्म है। इस दृष्टि से देखने पर सहज ही मालूम हो सकता है कि गतिहीनता, स्थिरता और अकर्मण्यता—आन्दोलन के निस्सीम विरोधी गुणों का नाम है अर्थात् जब तक मनुष्य-प्राणी जीवित रहेगा तब तक वह कुछ न कुछ क्रिया, इच्छा रहने और न रहने पर भी, करता ही रहेगा। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कर्मयोग का सिद्धान्त प्रतिपादन करते समय इसी तत्त्व का समर्थन किया है और आगे कहा है कि कर्मत्याग की इच्छा और सामर्थ्य रखनेवाले भी कर्म का सर्वथा त्याग नहीं कर सकते। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेचन से जब यह स्पष्ट है कि मनुष्य-प्राणी स्थिर, गतिहीन अथवा क्रियाहीन रह ही नहीं सकता तब थोड़ा विचार करने पर यह विदित हो जाता है कि या तो वह उन्नति करेगा या अवनति; अपनी वर्तमान दशा में वह ज्यों का त्यों कदापि नहीं रह सकता।

स्वार्थ-साधन ही संसार के समस्त व्यक्तिगत और सार्वजनिक आन्दोलनों अथवा कार्यों का प्रथम कारण है। "ज़र, ज़मीन और जोरू" ही स्वार्थ के प्रधान अंग हैं। कौरव-पाण्डवों का भयंकर युद्ध, राम-रावण का प्रबल संग्राम और विगत विश्वव्यापी योरपीय महासमर इन्हीं स्वार्थों के कारण हुआ था। स्वार्थ के दो स्वाभाविक विभाग हैं—मानवीय और दानवीय। मानवीय स्वार्थों पर ध्यान न देनेवाला मनुष्य पशु कहलाता है और दानवीय स्वार्थों पर ध्यान देनेवाला मनुष्य राक्षस कहलाता है। मानवीय आन्दोलन लोक-कल्याण करते हैं और दानवीय आन्दोलन से अनावश्यक प्रलय की उत्पत्ति होती है। परन्तु संसार में दोनों प्रकार के आन्दोलन होते आये हैं और होते भी रहेंगे। आन्दोलन ही संसार है, आन्दोलन ही जीवन है। पत्ते का हिलना, बच्चे का रोना, युवकों का पठन-पाठन, अर्थार्थी का नौकरी करना, उद्योगियों का व्यवसाय, कृषक की खेती का काम, साधुपुरुष का धर्म-प्रचार, योगी की मोक्ष-पिपासा, परोपकारी की दया-शीलता, वीरों का संग्राम, चुगलख़ोर की निंदा-वृत्ति, परस्पर की मुक़द्दमेबाज़ी, चोर की चोरी, व्यभिचारी का उन्माद सभी भिन्न भिन्न कोटि के आन्दोलन हैं। इस तरह के करोड़ों—नहीं, नहीं असंख्य—आन्दोलन संसार में प्रति क्षण हो रहे हैं।

यह एक मानी हुई बात है कि बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। प्रत्येक कार्य के लिए किसी न किसी कारण की आवश्यकता रहती है और पता लगाने पर वह मालूम भी हो जाता है। मनुष्य-प्राणी उन्नति-शील है—ईश्वर ने उसे बुद्धि दी है, इसलिए वह अपनी अवनति होने देना पसन्द नहीं करता। दरिद्री सम्पत्तिशाली होना चाहता है, प्रभावहीन व्यक्ति या समुदाय सत्ता प्राप्त करना चाहता है और कमज़ोर बलवान् बनने की चिन्ता में है। जिसकी दशा बिगड़ी हुई है वह उसको सुधारना चाहता है; जिसकी दशा अच्छी है वह उससे भी अधिक अच्छी अवस्था में जाना चाहता है। सारांश यह है कि स्वार्थ, आवश्यकता, असन्तोष, दुःख, कमी, उन्नति-पिपासा आदि ही आन्दोलनों की उत्पत्ति के कारण होते हैं।

आवश्यकताओं को पूरी कर लेना, दुःखों को दूर कर लेना, असन्तोष को मिटा लेना और उचित अधिकारों को प्राप्त कर लेना इस स्वार्थी और विचित्र संसार में कोई सहज काम नहीं है। भूख लगने पर बालक जब रोने लगता है तब कहीं माता को भी दूध पिलाने की याद आती है। रास्ते में दुश्मन के हाथ से मार खाने पर जब किसी का सिर फूट जाता है तब भी उसे पहले अदालत तक जाना ही पड़ता है और पास से चार पैसे ख़र्च करना पड़ता है तब कहीं उसे न्याय मिलता है। गाँठ से वाजिब पैसा देकर भी वसूली के लिए साहूकार को ऋणी की ख़ुशामद करनी पड़ती है और उसके पीछे मारा-मारा फिरना पड़ता है। आन्दोलन की आवश्यकता प्रत्येक परिस्थिति में है। जब किसी मनुष्य या समुदाय के प्रयत्न से दूसरे मनुष्य या समुदाय के हित और स्वार्थ में कुछ अन्तर पड़ने की सम्भावना रहती है तब तो आन्दोलन की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है, क्योंकि मनुष्य-स्वभाव ही ऐसा है कि वह अपने स्वार्थों की हानि को सहकर दूसरे का हित साधन नहीं करना चाहता। उपर्युक्त बातों से हमें व्यक्तिगत आन्दोलन की अनिवार्यता, स्वाभाविकता, उत्पत्ति-कारण और आवश्यकता मालूम हो गई। यही बातें सामूहिक और सार्वजनिक आन्दोलनों पर भी घटित हैं।

आन्दोलन दो प्रकार के होते हैं—व्यवहारवादी और आदर्शवादी। व्यवहारवादी आन्दोलन में मनुष्य उन कार्यों का साधन करना चाहता है जो उसके प्रतिदिन के जीवन में नितान्त आवश्यक होते हैं। उनमें से मुख्य कार्य हैं रोटी के प्रश्न को हल करना; जान-माल की सुरक्षा का प्रबन्ध करना; न्यायसंगत सीमा के भीतर स्वतंत्रता-पूर्वक विचार और विचरण कर सकना; उचित और सच बातों को बोल और लिख सकना; अपनी सभ्यता, धार्मिक-भाव और आत्म-सम्मान की रक्षा के उपायों को सदा के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भव बना लेना। मनुष्य केवल रोटी पाकर ही सन्तुष्ट और जीवित नहीं रह सकता, वह अपने सद्विचार और सदाचरण की मात्रा के अनुसार बहुत से अन्य कार्य भी करना चाहता है। इसीलिए नितान्त आवश्यक समझे जानेवाले उसके कार्यों की सूची बहुत लम्बी हो जाती है। जब तक उसे इन कार्यों को सफलतापूर्वक करते रहने की स्वतन्त्रता और क्षेत्र नहीं मिल जाता तब तक वह अपनी शक्ति के अनुसार आन्दोलन और उपाय करता ही रहता है।

जब मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है, भोजन-वस्त्र की चिन्ता दूर हो जाती है, जान-माल की हिफाज़त में कोई संदेह नहीं रह जाता तब भी वह ख़ाली नहीं बैठ सकता। भौतिक इच्छाओं की पूर्ति होने पर उसके सिर में आध्यात्मिक और अन्य प्रकार की अनेक प्रबल महत्त्वाकांक्षायें चक्कर मारने लगती हैं। पेट भर जाने पर या तो उसे वेदान्त और दर्शन-शास्त्र की बातें सूझने लगती हैं या वह नीचता और अत्याचार करने में ही सुख मानता है। इन्हीं कारणों से भिन्न भिन्न प्रकार के आदर्शवादी आन्दोलनों का जन्म होता है। कोई साधु और योगी बनना चाहता है, कोई परोपकार, दया और न्याय का पालन कर अमरकीर्ति छोड़ जान चाहता है, कोई मोक्ष की चिन्ता में लगा रहता है, कोई अपने अनुभव और विचार-रत्नों को विश्व के उपदेश के लिए एकत्रित और सुरक्षित कर देना चाहत है, कोई भक्ति और ज्ञान के अपने सिद्धान्तों का क्रियात्मक-रूप प्रकट करता है, कोई अपने पड़ोसी की सम्पत्ति और स्त्री पर नज़र डालता है।

दोनों प्रकार के आन्दोलनों के दो और उपभेद होते हैं—रचनात्मक और संहारात्मक। पहले से अन्तरङ्ग की पुष्टि होती है और दूसरे से बाहरी विकारों का निराकरण होता है। शरीर में जब कोई रोग हो जाता है तो वैद्य को दो काम करना पड़ता है; एक तो बीमारी का विध्वंस करना और दूसरा उससे पैदा होने वाली हानि की पूर्ति करना। रचना और संहार अखिल सृष्टि के प्राकृतिक नियम हैं और वे प्रतिक्षण सर्वत्र अपना कार्य कर रहे हैं। संसार में रोज़ हज़ारों मर रहे हैं और रोज़ हज़ारों पैदा हो रहे हैं। एक बन रहा है तो दूसरा बिगड़ रहा है; एक बिगड़ रहा है तो दूसरा बन रहा है। सृष्टि-शक्ति को स्थायी और तुली हुई रखने के लिए उचित सीमा तक रचना और संहार दोनों की आवश्यकता है।

आन्दोलन की सफलता उसके जन्मदाता की सर्व-मान्यता पर अवलम्बित रहती है फिर वह जन्मदाता एक व्यक्ति हो अथवा व्यक्तियों का समूह हो। जन्मदाता का यह कर्तव्य होता है कि वह इच्छित आन्दोलन के वास्तविक मूल कारणों का ज्ञान प्राप्त करे, विकास के उपायों का विचार कर ले और अपने उद्देश, नियम, सिद्धान्त, कार्य-क्रम और आदर्श की स्पष्ट घोषणा कर दे। सर्व-साधारण की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए व्याख्यान, लेख और आचरण-द्वारा मत प्रचार करने की बड़ी आवश्यकता रहती है। जब तक लोक-समूह आन्दोलन को उपादेय समझकर उसका पक्ष नहीं लेगा तब तक उसमें कोई शक्ति नहीं आ सकती। उसे सुसंगठित और सुचारु-रूप से चलाने के लिए कार्यकारिणी समिति, शाखा-प्रशाखा, कोष, कार्यालय, वेशभूषा का कोई बाहरी चिह्न आदि की भी ज़रूरत होती है। सदस्यों में जिस दर्जे तक का उत्साह, कर्तव्यज्ञान, उत्तरदायित्व की ग्रहण-शक्ति, परिश्रम-शीलता, आज्ञापालकता और त्याग-शक्ति रहेगी उस दर्जे तक आन्दोलन की सफलता निश्चित है। संगठन की उत्तमता और नीतिमत्ता की उच्चता उसके प्राण हैं।

जो आन्दोलन अकारण किया जाता है, जिसकी नीतिमत्ता का मूल आधार द्वेष होता है, जिसका सूत्र-धार पक्षपाती होता है या प्रलोभनों में फँस सकता है, जो दूसरों की अवनति कर अपने पक्ष की अनुचित उन्नति चाहता है, जिसका नायक नाज़ुक परिस्थितियों को सँभाल लेने में अयोग्य होता है अथवा जो नई परिस्थितियों को अनुकूल नहीं बना सकता और जिसका उद्देश दूसरे व्यक्ति या समाज के उचित अधिकारों का इच्छा-पूर्वक अपहरण करना होता है उस आन्दोलन का शीघ्र असफल होना निश्चित है। साध्य को ज्यों का त्यों रखकर साधन में समयानुसार उचित परिवर्तन किये बिना काम नहीं चल सकता। जिस आन्दोलन की दशा संसार के कल्याण और मानवीय जीवन-स्रोत के विरुद्ध रहेगी उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतन होना भी अनिवार्य है। जिस आन्दोलन के मूलत्व वैज्ञानिक और आध्यात्मिक विवेचन की अग्नि-परीक्षा में न टिक सकेंगे उसको स्थायी-स्वरूप मिलना असम्भव है। विचार, उच्चार और आचार की एकता के अभाव में कोई भी आन्दोलन कभी भी कृतकार्य नहीं हो सकता।

प्रत्यक्ष और पूर्ण परिणाम प्राप्त कर लेना और अपने साध्य को करतलगत कर लेना ही सफलता का सच्चा माप नहीं है। संसार में असफल सफलता के भी बहुत से उदाहरण देखे जाते हैं। दार्शनिक ग्रन्थ-रत्न श्रीमद्भगवद्गीता के सिद्धान्तों के अनुसार मनुष्य-प्राणी का अधिकार कर्म करने में है—फल-प्राप्ति कर लेने में नहीं। मनुष्य सभी कामों में सम्पूर्ण अंश तक अपने भाग्य का विधाता हर्गिज़ नहीं है—उसके भाग्य-निर्णय में अन्य कई प्रत्यक्ष और परोक्ष शक्तियों का भी प्रबल हाथ रहता है। हाँ, उत्तम प्रयत्न-शीलता, दुर्दमनीय उत्साह, भयंकर बाधाओं के आने पर भी आशावाद, मानसिक प्रसन्नता तथा सन्तोष और ध्येय का निष्पाप होना पुरुषार्थी मनुष्य की अधीनता के गुण हैं। मनस्विता, स्वाभिमान, आत्म-सम्मान और कर्तव्य-परायणता की वेदी पर अपने प्राणों तक को न्यौछावर कर देनेवाले क्या असफल कहे जा सकते हैं?

संकुचित दृष्टिवाले कुछ लोग आन्दोलन-रूपी अग्नि को तभी तक जीवित समझते हैं जब तक उन्हें उससे उत्पन्न होनेवाला धुआँ और लपट दिखलाई पड़ती है; इन बाहरी लक्षणों के दिखलाई न पड़ने पर वे समझने लगते हैं कि आन्दोलन ही बुझ गया। यह बड़ी भूल है। धुएँ और लपट के दूर होते ही क्या कहीं आग भी बुझ जाती है?

मनुष्य त्रिगुणात्मक प्राणी है, अतएव उसके आन्दोलनों का स्वभाव भी सात्त्विक, राजस और तामस होता है। साधु-प्रकृति और दैवी संस्कारवाले जीव सात्त्विक आन्दोलन करते हैं, मनस्वी और स्वाभिमानी राजस आन्दोलन करते हैं और कपटी तथा नीच स्वभाववाले तामसी आन्दोलन करते हैं। आत्म-बलिदान और कायिक, वाचिक तथा मानसिक अहिंसा के तत्त्व प्रथम कोटि के आन्दोलन में पाये जाते हैं, निर्भीकता-पूर्ण वीरता और प्रकट नीति की कार्यपद्धति दूसरी कोटि के आन्दोलन में दिखाई पड़ती है तथा तीसरी कोटि में खूनख़राबी, गुप्त पाप और गुन्डेपन की अधिकता रहती है। संसार की रचना को देखकर वही आन्दोलन उत्तम कहा जा सकता है जिसमें इन तीनों गुणों का उचित मेल हो। किसी भी एक या दो गुणों की अधिकता अथवा न्यूनता से उचित परिणाम पर पहुँच सकना कठिन है। मनुष्यता के नाते विजयी होने पर पराजित शत्रु को क्षमा की दृष्टि से देखना, सम्मानपूर्वक समझौता हो जाने पर परस्पर के मन के मैल को धो डालना और अपमानित होने पर असन्तोष प्रकट करना आवश्यक होता है।

प्रत्येक आन्दोलन की तीन अवस्थायें होती हैं; प्रारंभिक, माध्यमिक और अन्तिम। प्रारंभिक काल में लोग अच्छे से अच्छे आन्दोलन को अगण्य समझते हैं, उसकी हँसी उड़ाते हैं, घृणा करते हैं और उसकी सहायता करते समय उस पर अविश्वास रखते हैं। इस समय उसका कोई प्रभाव नहीं होता—उसे न तो सहायकों की सहानुभूति का गर्व रहता है, न विरोधियों की प्रबलता का भय। यह पूर्व-तैयारी का समय है। माध्यमिक काल में जब कोई बड़ा आन्दोलन पदार्पण करता है तब उसमें अनेक विशेषतायें आ जाती हैं। उसका स्वरूप प्रबल हो जाता है। बहुत से लोग उसकी सफलता के लिए अदम्य कटि-बद्धता के साथ तैयार हो जाते हैं और उसके लिए तन, मन, धन सबकी आहुति देने को प्रस्तुत रहते हैं; इसी समय बहुत से ऐसे लोग भी दिखाई पड़ने लगते हैं जिनके स्वार्थों में उस आन्दोलन के कारण भयंकर चोट पहुँचने की सम्भावना रहती है। अतएव वे तन, मन, धन से उसकी असफलता के लिए प्रयत्न और विरोध करने लगते हैं। प्रत्येक आन्दोलन की क़िस्मत का फ़ैसला इसी काल में होता है। विरोध के सामने जो आन्दोलन सिर झुका देता है उसकी समाधि इस दूसरी अवस्था में ही बन जाती है और जो उससे पार पा सकता है वह तीसरी और विजय की अवस्था का दर्शन करता है।

माध्यमिक काल आन्दोलन की शक्ति, भीतरी सचाई, नीतिमत्ता आदि की कड़ी परीक्षा का समय होता है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय उसमें शिथिलता भी आ सकती है और प्रचण्डता भी। शिथिलता आने के कारण होते हैं घरू झगड़े, उच्छृङ्खलता, मदान्धता, अकर्मण्यता, सैद्धान्तिक मतभेद, नैतिक शक्ति का ह्रास इत्यादि। यह संग्राम का समय होता है। अतएव आन्दोलन-कारियों की संख्या चाहे जितनी बड़ी हो उन्हें इस तरह से काम करने की आवश्यकता रहती है जैसे कि कोई एक व्यक्ति काम कर रहा हो—अपना अपना राग अलापने से केन्द्रस्थ शक्ति बँट कर क्षीण हो जाती है। जिस महान् आन्दोलन की भीतरी शक्ति का उद्गमस्थान व्यक्तिविशेष होता है वह ऐसे समय में नीचा देखने लगता है। इस समय व्यक्ति-पूजा का सिद्धान्त नहीं—वीर-पूजा का सिद्धान्त उस आन्दोलन को ज़िन्दा रख सकता है; व्यक्ति मर सकता है, परन्तु त्रिकालसत्य-सिद्धान्त सदा जीवित रहते हैं। किसी क्षणिक नूतन विपत्ति अथवा क्षणिक नूतन विजय के समय साध्य और साधनों का पुनर्निरीक्षण उत्तमता से करना कठिन परन्तु आवश्यक कार्य है। जिस आन्दोलन की उत्पत्ति के मूल-कारणों में कोई जान नहीं रहती, जो केवल कल्पनाप्रसूत होता है अथवा जिसमें शिथिलता के कारणों की पराकाष्ठा हो जाती है वह मध्यम अवस्था में ही अनन्त के गर्भ में विलीन हो जाता है।

यदि आन्दोलन के आधारभूत कारण सच्चे होते हैं और योग्यता-पूर्वक संचालित होने के कारण यदि उसमें शिथिलता तथा निराशा की वृद्धि होने ही नहीं पाती तो उसमें प्रचण्डता आने लगती है। फलतः प्रतिपक्षियों का विरोध प्रबल होने लगता है और अनेक रूपों में प्रकट होकर वह उस आन्दोलन को नष्ट करने लगता है। विरोधी शक्तियों में जिस अंश तक नीचता और अत्याचार की मात्रा हो उस अंश तक आन्दोलन को नया और ईश्वरीबल मिलता है। ऐसे समय में एक ओर जहाँ अज्ञानजनित आवेश तथा शब्दाडम्बर की ओट में काम करनेवाले अनुयायियों की पोल खुलती है वहाँ दूसरी ओर अत्यन्त तटस्थ लोगों का भी ध्यान आकर्षित होने लगता है। यह विचार क्रान्ति का समय होता है। संसार को शिक्षा, इतिहास और अनुभव की मूल्यवान् सामग्री यही समय देता है। इस समय की घटना-परम्परा को देखकर विद्वान् लोग उसके भविष्य का बहुत कुछ ठीक अनुमान तुरन्त कर सकते हैं। यह आन्दोलनकारियों की त्याग-शक्ति और संकट-सहिष्णुता की परीक्षा का समय है। तन, मन और धन का मोह जितना अधिक रहेगा उतना ही कम आन्दोलन सफल होगा। क्षणिक पराभव के समय अत्यधिक निराश हो जाना उतना ही घातक होता है जितना क्षणिक विजय के समय की मदान्धता; दोनों परिस्थितियों में सुविचार और शान्त मस्तिष्क की बड़ी आवश्यकता रहती है। इस बात का कोई नियम नहीं कि सच्चे कारणों, अच्छे सिद्धान्तों और श्रेष्ठ कार्य-पद्धतिवाला प्रत्येक आन्दोलन तुरन्त सफल भी हो जाय—इसके लिए बलाबल की तुलना और परमात्मा की अनुकूलता की आवश्यकता रहती है। आन्दोलन का पक्ष यदि अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ होगा तो उसकी सफलता निश्चित ही है—फिर उसका विरोधी चाहे स्वयं परमात्मा भी क्यों न हो। इसका प्रमाण भारतीय इतिहास का कृष्णार्जुन युद्ध है, जिसमें स्वयं परमात्मा श्री कृष्ण को हार माननी पड़ी थी।

बहुत से ऐसे मनुष्य भी होते हैं जिनके मन पर किसी बड़े आन्दोलन के प्रति न तो प्रेम ही उत्पन्न होता है, न घृणा। इस तटस्थ समुदाय में लोग कई प्रकार के स्वभाव और विचारवाले होते हैं। इनमें से कुछ की तटस्थता का कारण व्यक्तिगत स्वार्थ, कुछ का अज्ञान, कुछ का भय, कुछ का आन्दोलन के प्रति अविश्वास और कुछ का कारण सचमुच असमर्थता होता है। आन्दोलन को जितना भय शत्रुओं से होता है उससे अधिक भय घर के विभीषणों और कपट-वेष-धारी मित्रों से होता है। जिनका किसी आन्दोलन में आन्तरिक विश्वास न हो, जो किसी निजी परिस्थिति के कारण उसमें भाग लेने में स्वेच्छा अथवा लाचारी से असमर्थ हों और जिन्हें उसके आदि-अन्त की उलझनें न सूझ सकती हों उनके लिए उस आन्दोलन से सज्जनतापूर्वक अलग रहना ही सर्वथा उचित है। नादान दोस्त से जिस तरह दाना दुश्मन कई दर्ज अच्छा होता है, उसी तरह दंभी हितैषी की अपेक्षा निष्पक्ष तमाशबीन भी कई गुना बढ़कर है। अज्ञान-जनित आवेश, अनुतापजनक प्रेरणा और किराये के बहादुरों से गाढ़े समय पर बड़ा धोखा खाना पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आन्दोलन में अवश्य ही बड़ा भारी बल होता है। समुद्र में कंकड़-पत्थर के टुकड़े डालने से लहर पैदा हुए बिना न रहेगी। बड़ी चट्टान को फेंकने से बड़ी और देर तक ठहरनेवाली लहर दिखाई देगी। अग्नि में जितनी अधिक आहुति पड़ती या डाली जाती है उतने अधिक परिमाण और समय तक उसकी ज्वाला दिखाई पड़ती है। यह पहले कहा जा चुका है कि आन्दोलन का भीतरी और यथार्थ बल उसके मूल कारणों और साधनों का औचित्य ही है। जिस व्यक्तिगत सामाजिक, राजनैतिक अथवा धार्मिक आन्दोलन के साथ ईश्वर नहीं रहता, जिसमें आध्यात्मिकता के तत्त्वों का किसी विशेष सीमा तक समावेश नहीं रहता उसकी स्थायी सफलता असम्भव है। आन्दोलन में महान् शक्ति तो है अवश्य परन्तु कब? जब उसमें जगन्नियन्ता का—विश्व के अचल नियमों का—भी सहयोग हो। समर्थ रामदास स्वामी भी इसी सिद्धान्त का समर्थन करते हैं, परन्तु उनका कथन स्पष्ट है। वे कहते हैं—

"जो कोई आन्दोलन करेगा उसमें शक्ति है; परंतु उसमें ईश्वर का अधिष्ठान होना चाहिए।"

अब विचार करने के लिए एक ही मुख्य प्रश्न रह गया है। वह है—आन्दोलन करे कौन? उत्तर सरल है। जिसकी गरज़ हो वही आन्दोलन करता है। जिसका काम होता है वही उसे करता भी है। अपने मरे बिना स्वर्ग दिखलाई नहीं पड़ता। Knock and ye shall get; जो ढूँढ़ेगा उसे हीरा भी मिल सकता है—जो घर बैठा रहेगा उसे काँच का टुकड़ा भी नहीं मिल सकता। जिस को भूख लगती है वह बिना कहे-सुने धन कमाने में लग जाता है। जिसको अच्छा थप्पड़ लगता है वह आप ही चीख़ उठता है। रोगी के लिए दवा उसके मित्र अथवा माता-पिता नहीं खाते। पाण्डवों को मख़मली शय्या में सुला कर महाभारत का युद्ध करने अकेले श्रीकृष्ण नहीं गये थे—यद्यपि वे समूचे कौरव-दल के लिए बस थे; अर्जुन को पहले सम्मुख होना पड़ा था। जो अपनी मदद आप नहीं कर सकता उसकी मदद ईश्वर भी नहीं करता। जो अपने कामों के लिए हाथ-पैर हिलाता है उसे ईश्वर की भी सहायता मिलती है।

मावलीप्रसाद श्रीवास्तव

महावीर स्वामी।

(१)

जय महावीर, जिनेन्द्र! जय, भगवान्! जगद्रक्षा करो,
निज सेवकों के भव-जनित सन्ताप को कृपया हरो।
हैं तेज के रवि आप, हम—अज्ञान-तम में लीन हैं
हैं दयासागर आप, हम—अतिदीन हैं बलहीन हैं॥

(२)

दानी न होगा आप सा हम सा न अज्ञानी कहीं,
अवलम्ब केवल हैं हमारे आप ही दूजा नहीं।
भव-सिन्धु के भ्रम-भ्रमर में हम डूबते हैं हे प्रभो,
झटपट सहारा दीजिए हम डूबते हैं हे प्रभो॥

(३)

गिरि को अँगूठे से हिलाया आपने तो क्या किया?
यदि इन्द्र के मद को मिटाया आपने तो क्या किया?
यदि कमल को गज ने हिलाया तो प्रशंसा क्या हुई?
यदि सिंह ने गीदड़ भगाया तो प्रशंसा क्या हुई?

(४)

अपकारियों के साथ भी उपकार करते आप थे,
मन में न प्रत्युपकार की कुछ चाह रखते आप थे।
वडवाग्नि वारिधि के हृदय को है जलाती नित्य ही,
पर जलधि अपनाये उसे है क्रोध कुछ करता नहीं॥

(५)

शुभ स्वावलम्बन का सुपथ सबको दिखाया आपने,
दृढ़ आत्मबल का मर्म भी सबको सिखाया आपने।
समता सभी के साथ सब दिन आपकी रहती रही,
इस हेतु सेवा आपकी निश्छल मही करती रही॥

(६)

यद्यपि अहिंसा-क्रम सभी ने श्रेष्ठतम माना सही,
पर वास्तविक उसके विधानों को कभी जाना नहीं।
किस भाँति करना चाहिए जग में अहिंसा-धर्म को
अतिशय सरल करके दिखाया आपने इस मर्म को॥

(७)

करके कृपा यदि अवतरित होते न भू पर आप तो,
मिटता नहीं संसार का त्रयकाल में त्रयताप तो।
जितकाम हो निष्काम होकर शान्ति के सुखधाम हो,
योगीश भोगों से रहित गुणहीन हो गुणग्राम हो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

जय जय महावीर प्रभो ! जग को जगाकर आपने,
संसार के हिंसा-जनित भय को भगा कर आपने।
इस लोक को सुरलोक से भी परम पावन कर दिया,
अज्ञान-आकर विश्व को प्रज्ञान का सागर किया ॥*

रामचरित उपाध्याय

कौटिल्य की कुटिल नीति।

कौटिल्य अपनी कुटिल नीति के कारण प्रसिद्ध है। फ़र्क़ इतना ही है कि लोग "कौटिल्य" के नाम के स्थान में "चाणक्य" का नाम जानते हैं और इसके उल्लेख कई ग्रन्थों में मिलते हैं। बाण की ही उक्ति देखिए—

किं वा त्वेषामसाम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणं, अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिपरासन्धानपरा मन्त्रिणः उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः मरणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः।

"जो लोग अति दुष्ट उपदेशों से परिपूर्ण और निर्घृण कौटिल्य-शास्त्र को प्रमाण मानते हैं, छल-कपट के व्यवहार से क्रूर-स्वभाव के बने पुरोहित जिनके गुरु हैं, दूसरों के छिद्र ढूँढ़ने में प्रवीण मन्त्री जिनके उपदेशदाता हैं, जिस लक्ष्मी को हज़ारों राजाओं ने दूर फेंक दिया उसमें ही जिनकी आसक्ति है, मृत्युकारक शास्त्रों में जिन्हें अभिरुचि है, और स्वाभाविक प्रेम से परिपूर्ण आर्द्र हृदय से अनुराग करनेवाले भाइयों को मार डालना जो अपना कर्तव्य समझते हैं, उन्हें अब क्या (धर्माधर्म) रहा।"

जिन्होंने "मुद्रा-राक्षस" नाटक में चाणक्य को पढ़ा है उन्हें कौटिल्य की कुटिल नीति का कुछ स्वरूप अवश्य ज्ञात होगया होगा। इस नाटक की तथा 'अर्थशास्त्र' में बतलाई गई नीति इतनी मिलती-जुलती है कि अन्य सब उल्लेख नष्ट भी हो जायँ तो भी बहुत साधारण मनुष्य भी दोनों को पढ़कर यही कहेगा कि चाणक्य और कौटिल्य में केवल नाम-भेद है, पुरुष एक ही है। बड़ी भारी सेना से जो काम कोई राजा नहीं कर सका वह काम चाणक्य ने अपनी कुटिल नीति से कर डाला। कामन्दक ने क्या ही वास्तविक बात कही है—

यस्याभिचारवज्रेण वज्रज्वलनतेजसः।
पपात मूलतः श्रीमान् सुपर्वानन्दपर्वतः॥
एकाकी मन्त्रशक्त्या यशक्त्या शक्तिपरोपमः।
आजहार नृचन्द्राय चन्द्रगुप्ताय मेदिनीम्॥

अर्थात्—जिसका तेज वज्र-समान था और जिसके अभिचार-वज्र से नन्दरूपी बड़ा भारी पर्वत जड़मूल से उखड़कर गिर पड़ा, इन्द्र जैसे अकेले वज्र से काम सिद्ध करे उस प्रकार जिसने केवल मन्त्रशक्ति के ज़ोर से नरों में चन्द्र जैसे चन्द्रगुप्त को पृथ्वी दे दी। यहाँ नाम के लिए तो चाणक्य की समता इन्द्र से की गई है, परन्तु वास्तव में उसे बढ़ाकर ही बतलाया है। इन्द्र तो कम से कम एक शस्त्र का भी उपयोग करता है, परन्तु चाणक्य एक का भी नहीं—केवल बातों का। वास्तव में यह स्तुति ठीक भी है। षाड्गुण्य के लिए यानी परराज्य के संबन्ध के लिए ही नहीं तो निज राज्य की शान्तता के लिए भी चाणक्य ने उसी कुटिल नीति का उपदेश किया है।

कौटिल्य की कुटिल नीति के आधार-स्तम्भ गुप्तचर हैं। उनके द्वारा राज्य की तमाम बातें जाननी चाहिए। राज्य में राजा के नीचे प्रभावशाली पुरुष मन्त्री होते हैं। वे यदि राजद्रोही हो जायँ तो बड़ा अनर्थ हो सकता है। इसलिए उन पर खूब दृष्टि रखनी चाहिए। "यदि उनमें कोई राजद्रोही हो जाय तो कोई गुप्तचर उसके भाई से जाकर कहे कि राजा ने तुम्हें अमात्य बनाने के लिए बुलाया है। भेंट के बाद राजा उसे ऊपरी तौर से उसके भाई का पद और धन-द्रव्य दे दे और भाई पर आक्रमण करने को फुसलावे। जब वह अपने भाई को मार डाले तब भ्रातृघातक कहकर वह भी उसी स्थान पर मार डाला जाय। अथवा उस राजद्रोही मन्त्री का

---

* श्रीवैष्णव होने के कारण अहिंसा का मैं भी पक्षपाती हूँ।

लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई आनुवंशिक सम्पत्ति पर हक़ दिखलाने के लिए गुप्तचरों-द्वारा फुसलाया जाय। दावेदार पुरुष भाई के घर या अन्यत्र सोया रहे तब वह मार डाला जाय और फिर वह गुप्तचर यह प्रकाशित कर दे कि दावेदार को उसके भाई ने मार डाला है। और तब मृत भाई का पक्ष लेकर राजा उसके भाई को दण्ड दे। अथवा उस राजद्रोही मन्त्री को कोई पुत्र हो तो उसके मन में यह बात भर दी जाय कि तुम तो वास्तव में राजा के पुत्र हो, परन्तु शत्रुओं के डर से यहाँ रख दिये गये हो। राजा इस पुत्र का मान-सम्मान करे और यह कहे कि इस मन्त्री के डर के कारण तुम्हारा यौवराजाभिषेक मैं नहीं करता, यद्यपि तुम्हारी अवस्था इस योग्य हो गई है। फिर गुप्तचर उसे अपने पिता को मार डालने के लिए फुसलावें। मार डालने के बाद वह पुत्र भी उसी स्थान पर पितृघातक कहकर मार डाला जाय। नहीं तो कोई भिक्षुणी वशीकरण के उपायों-द्वारा राजद्रोही मन्त्री की पत्नी को अपने वश में कर ले। फिर उसके द्वारा मन्त्री को विष दिला दे। यदि ये उपाय न चल सकें तो उस मन्त्री के साथ बेकार सेना तथा तीक्ष्ण जासूस करके उसे आगे लिखे कामों पर भेज दे—विप्लवकारी जंगली जाति या ऐसे किसी गाँव को दबाने के काम पर अथवा राष्ट्रपाल या अन्तपाल की स्थापना के लिए या किसी विद्रोही नगर का निमन्त्रण करने या पास के किसी राज्य से कर लानेवाले लोगों की रक्षा करने के लिए क्योंकि इन कामों के करने में झगड़े ज़रूर होंगे। उस समय तीक्ष्ण गुप्तचर अथवा लुटेरों के रूप में रहनेवाले गुप्तचर मन्त्री का वध कर डालें और कह दें कि वह लड़ाई में मारा गया।"

अथवा "यात्रा या विहार के समय राजा विद्रोही मन्त्रियों को भेंट के लिए बुलावे। तीक्ष्ण गुप्तचर सशस्त्र होकर मन्त्रियों के साथ चलें और अन्दर जाने की आज्ञा माँगें। द्वारपाल बीच में उनकी तलाशी लें और उन्हें शस्त्र-सहित पकड़ लें। तब वे गुप्तचर कह दें कि हमें यह विद्रोही मन्त्री ही अमुक काम के लिए लाया है। यह बात फिर लोगों पर प्रकट कर दी जाय और वह मन्त्री मार डाला जाय। और उन तीक्ष्ण गुप्तचरों के स्थान में किसी दूसरे को फाँसी दे दी जाय"।

"अथवा वैद्य का भेषकर कोई गुप्तचर विद्रोही मन्त्री के पास जाकर कहे कि आपको अमुक अमुक असाध्य रोग हो गया है और फिर औषध अथवा भोजन-द्वारा विष खिलाकर उसे मार डाले।"

इसी तरह कौटिल्य ने और भी उपाय बतलाये हैं, जिनके द्वारा राजा विद्रोही मन्त्रियों से छुटकारा पा सकता है।

यदि जनता में कोई विद्रोही हो जाय और राजा और राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र करे तो उसके लिए कौटिल्य ने ये उपाय बतलाये हैं—

"यदि किसी विद्रोही मनुष्य से छुटकारा पाना है तो किसी दूसरे विद्रोही पुरुष को बेकार सिपाहियों तथा तीक्ष्ण गुप्तचरों की सेना दे दी जाय और उससे कहा जाय कि तुम अमुक क़िले अथवा देश में जाकर सेना अथवा रुपये एकत्र करो, अमुक राजपुरुष का द्रव्य छीन लो अथवा अमुक राजपुरुष की कन्या हरण कर लेआओ, क़िला बनाओ, बग़ीचा लगाओ, रास्ते बनाओ, नया गाँव बसाओ अथवा अमुक खानि खोद डालो, वन-रक्षकों से अथवा हस्ति-रक्षकों से लकड़ी या हाथी माँग लाओ या राष्ट्रपाल और अन्तपाल नियुक्त करो। और जो तुम्हारे काम में बाधा डाले अथवा तुम्हें सहायता न दे उसे क़ैद कर लो। उधर दूसरों से यह कह दिया जाय कि यह गुस्ताख़ी किया करता है, इसकी अच्छी ख़बर लो। इस प्रकार दोनों पक्षों में जब झगड़ा खड़ा हो जाय तब तीक्ष्ण गुप्तचर अपने हथियार फेंककर उन्हें मार डालें। और इसके लिए कोई तीसरा ही पकड़ा जाय।"

"जब कभी विद्रोहियों में झगड़ा हो तब तीक्ष्ण गुप्तचर उनके खेतों या खलियानों या घरों में आग लगा दें, उनके, रिश्तेदार, मित्र या भारवाहक जानवरों को शस्त्र चला कर मार दें और कह दें कि उन्होंने विद्रोहियों के कहने पर ही ऐसा किया और किसी तीसरे को ही उसके लिए सज़ा दी जाय।" "गुप्तचर ऐसा काम करें कि विद्रोही लोग एक दूसरे के घर मेहमान बनकर जायँ और उनको विष खिला दिया जाय। इसके लिए किसी दूसरे को ही दण्ड दिया जाय।"

"भिक्षुणी किसी विद्रोही अधिकारी को यह विश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करा दे कि अमुक अधिकारी की पत्नी या लड़की या बहू तुम पर प्रेम करती है। फिर वह फँसा हुआ अधिकारी जो कुछ अलङ्कारादि उस स्त्री को देने के लिए उसे दे उन्हें ले वह दूसरे अधिकारी को दिखला कर यह कह दे कि अमुक अधिकारी इतना धृष्ट हो गया है कि वह आपकी स्त्री या लड़की या बहू से प्रेम करना चाहता है। फिर जब रात को उनमें झगड़ा हो तब पहले से ही ठीक किये हुए गुप्तचर उन्हें मार डालें।"

इसी प्रकार के कुछ और भी उपाय कौटिल्य ने बतलाये हैं।

ये तो विद्रोही मन्त्री या जन-साधारण के लिए उपाय हुए। पर यदि राष्ट्र-मुख्य (यानी किसी भाग विशेष का नायक) या अन्तपाल (यानी सीमा का रक्षक) या आटविक (जङ्गली लोगों का मुखिया) बिगड़ पड़े तो इनके लिए किस प्रकार के उपाय अवलम्बन किये जायँ? सबसे सरल बात यह है कि वे आपस में ही लड़ा दिये जायँ। यदि इनमें से किसी ने पक्के दुर्ग बना लिये हों तो किसी सीमान्त राजा, आटविक या कुलीन या अवरुद्ध (यानी क़ैद में डाले हुए) पुरुष के द्वारा वह पकड़ा जाय। अथवा वह किसी मित्र के द्वारा पकड़ा जाय, अथवा गुप्तचर उसे (उसके विरुद्ध) अनेक बातें कहकर शत्रु से न मिलने दे।" ऐसे उपद्रवों के लिए भेद-नीति का अवलम्बन करने के लिए कौटिल्य ने कहा है।

विद्रोहियों से अथवा शत्रु से जो लोग जा मिलें उनकी क्या व्यवस्था की जाय? वे किस प्रकार सीधे रास्ते पर लाये जायँ?

यदि नागरिक अथवा देहाती लोग विद्रोहियों से जा मिलें तो दण्ड का अवलम्बन करना ठीक नहीं, अन्य उपायों का भले ही उपयोग किया जाय। वज़नदार लोगों को दण्ड देना बड़ा कठिन कार्य है। दण्ड दे भी दिया तो उसका इच्छित परिणाम होगा, यह नहीं कह सकते। शायद विपरीत परिणाम उत्पन्न हो जाय। परन्तु विद्रोहियों के मुखियों को उचित दण्ड देना ठीक हो सकता है।

शत्रु से अपने लोगों को अलग करने के लिए सामादि उपायों का अवलम्बन करना चाहिए, ताकि शत्रु के प्रधान लोगों अथवा शत्रु के कार्यकर्त्ताओं का कुछ न चल सके।

यदि कोई मित्र (शत्रु से जा मिले और) जल्दी सन्धि न करता हो तो भेद-नीति का अवलम्बन किया जाय। जासूसों के द्वारा शत्रु से वह अलग किया जाय। शत्रु से मिले हुए मित्रों में से या अन्तस्थायी (यानी अन्त में रहनेवाले) को अपनी ओर कर लेने का प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि अन्तस्थायी को मिला लेने पर मध्यस्थायी (यानी बीच में रहनेवाले) जल्द ही अलग अलग हो जाते हैं। अथवा मध्यस्थायी को ही मिलाने का प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि उसके अलग होने पर बाक़ी लोग मिल कर नहीं रह सकते। सारांश, मित्र-सङ्घ तोड़ने के लिए सब प्रयत्नों का अवलम्बन करना चाहिए।

यदि दो राजाओं को परस्पर का यह डर हो कि दूसरा मुझसे शत्रुता करना चाहता है अथवा मेरी ज़मीन लेना चाहता है तो उनमें भेद-नीति से कलह करा देना चाहिए। उनमें से जो डरपोंक हो उसे यह कह दिया जाय कि वह राजा तुमसे सन्धि करके तुम्हारे विरुद्ध कार्रवाई करना चाहता है; देखो उस राजा के मित्र को खुलम-खुल्ला (उससे) सन्धि करने की परवानगी मिल गई है।

अथवा (शत्रु-दल में) जो लोग सबसे अधिक विद्रोही हों उन्हें पहले धन और आदर-सत्कार से खुश कर ले और फिर शत्रु के पास सदैव शस्त्र, विष और अग्निसहित रहने को कहे। फिर शत्रु का कोई अमात्य मार डाला जाय और उससे उसके पत्नी-पुत्र-द्वारा यह कहला दिया जाय कि अमुक अमुक ने अमात्य को मार डाला है।.....तदनन्तर राजा का जिस पर विश्वास हो उसके द्वारा उस राजा को बतला दिया जाय कि अमुक अमुक अमात्य से होशियार रहिए। फिर वह भेदिया अमात्य को फुसलाकर राजा को मरवा डाले।

या जिन राजाओं में विशेष उत्साह-शक्ति हो उन्हें यह झाँसा दिया जाय कि अमुक राज्य पर धावा बोल दो, इससे आपसे हमारी सन्धि में कोई विघ्न न पड़ेगा। फिर जासूस जाकर उस राज्य के राजा से इन राजाओं की हलचल का हाल बता दें और उनमें से किसी के धन-धान्य और लोगों का सत्यानाश करवा दें। फिर दूसरे जासूस मित्र बनकर जायँ और उस राजा का घात करने के लिए उन्हें सलाह दें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौटिल्य ने यह भी बतलाया है कि जासूसों के द्वारा अपने शत्रु को मरवा डालना चाहिए। नाना तरह के भेद के उपाय भी कौटिल्य ने बताये हैं। यहाँ तक कह डाला है कि यदि देश में अनेक शत्रु उत्पन्न हो जायँ तो उन्हें विषैली चीज़ें पिलाकर इस संसार से दूर कर देना चाहिए। या यदि शत्रु चालाक हो तो उसे (तीक्ष्ण) जासूसों-द्वारा मरवा डालना चाहिए या विषयुक्त मांस खिला देना चाहिए।

"कोई जासूस ज्योतिषी बनकर शत्रु के प्रधान मन्त्री के पास जाय और धीरे धीरे उसके मन में यह भर दे कि तुममें राजा के सब लक्षण हैं। इसी प्रकार भिक्षुणी उसकी पत्नी के मन में यह भर दे कि तुममें रानी के सब लक्षण हैं और तुमसे जो पुत्र होगा वह राजपुत्र ही होगा। (इस प्रकार राजा से उसे लड़ा दे।)"

"नहीं तो कुछ जासूस जाकर शून्यपाल के पास नौकरी करलें और लोगों से हेल-मेल बढ़ावें। पश्चात् यह कहते फिरें कि शून्यपाल कहता था कि राजा सङ्कट में पड़ा है और शायद ही बचेगा, इसलिए धन-द्रव्य का सञ्चय करके शत्रुता न बढ़ाओ, यदि ऐसा करोगे तो तुम सब मार डाले जाओगे। जब कभी लोग इकट्ठा हो जायँ तब उन्हें तीक्ष्ण जासूस शहर के बाहर किसी प्रकार ले जायँ और उनके नेताओं को मार डालें और यह कह दें कि शून्यपाल की आज्ञा जो नहीं मानता उसको यही होना है। फिर उस ऊसर-भूमि में जगह जगह पर वे खून से भरे, शस्त्र, द्रव्य, रस्सी आदि फेंक दें। फिर दूसरे जासूस यह ख़बर उड़ा दें कि शून्यपाल लोगों को मारकर उनका धन लूटा करता है। इसी प्रकार समाहर्ती और लोगों को आपस में ही लड़ा दें।"

"कुछ जासूस राजा या राजपुरुषों के पास जाकर नौकरी कर लें। कभी मौक़ा पाकर अपने मित्रों से कहें कि राजा पैदल-सेना, अश्वसेना, रथसेना और हस्ति-सेना से क्रुद्ध है। फिर जब ये लोग एकत्र मिलें तब रात्रि के पहरेदारों की आँख बचाकर राजा की आज्ञा का निमित्त करके उन्हें किसी घर में ले जायँ और वापस आते समय उन्हें वहीं मार डालें। फिर दूसरे जासूस यह ख़बर उड़ा दें कि वे राजा के हुक्म से मारे गये हैं। जिन्हें देश-निकाले की सज़ा हो उन्हें वे यह बतावें कि हमने यह बात पहले ही बतला दी थी, अगर सुरक्षित रहना हो तो और कहीं चले जाओ, यहाँ रहने में धोखा है।"

जासूस लोग पका मांस, भात, शराब और रोटी बेचनेवालों का भेष कर लें और इस बात की खूब चर्चा छेड़ दें कि हमारे पास अभी कई नई चीज़ें आई हैं और उन्हें हम बहुत सस्ती बेचते हैं। जब शत्रु के लोग लेने आवें तो उन चीज़ों में विष मिलाकर उन्हें दे दें।"

इसी प्रकार शत्रु के जानवरों को भी मारने की तरकीबें कौटिल्य ने बताई हैं। धोखा देने की भी एक युक्ति देखिए। "रात्रि को लड़ाई हो तो जासूस लोग बन-ठन कर शत्रु की राजधानी में घुस पड़ें और यह ख़बर उड़ा दें कि राजा हार गया है और देश पर दूसरे का अधिकार हो गया है। इस गड़बड़ में वे राजमहल में घुसकर राजा को मार डालें। अथवा राजा इधर-उधर भागने लगे तो .....वह मार डाला जाय। ..... अथवा यदि वह किसी.....स्थान में सुरक्षित जा बैठा हो तो स्फोटक पदार्थ अथवा सर्प-द्वारा वह मार डाला जाय।" "पूजास्थान में अथवा नित्य के अड्डे में शत्रु को मारने का उपाय करना चाहिए।" इसके लिए कौटिल्य ने अस्त्रशस्त्र से लगा कर विष देने और धोखे से दूसरे स्थान में ले जाकर मार डालने तक सभी उपाय बताये हैं।

धोखा देने का एक और उपाय देखिए। "मित्र का बहाना करके बाहर के किसी को यह ख़बर भेज दे कि शत्रु के दुर्ग में अनाज, तेल, गुड़ और नमक समाप्त हो चुका है। और नया किराना अमुक समय पर क़िले के अमुक स्थान पर पहुँचेगा। फिर इसके लिए ..... ख़ास लोगों को नियत करके उस समय उस स्थान पर विषयुक्त अनाज, तेल, गुड़ और नमक भेज दिया जाय"। इस प्रकार शत्रु और उसके लोग नष्ट हो जायँगे।

यदि हारने का मौक़ा आपड़ा हो तो राजा क्या करे? पहले तो खूब लड़कर देखे। सफल न होते देख..... कुछ लोगों को लेकर परिव्राजक के भेष में भाग जाय। अथवा जासूस लोग उसे मुर्दे के समान उठा ले जायँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा स्त्रीवेश में (मानो पति के शव के साथ स्त्री जाती है) किसी शव के पीछे चला जाय। .....यदि दुर्ग में बन्दी हो जाय तो किसी मूर्ति को पोली करके उसमें..... जा छिपे। अथवा दीवार में पोली जगह बनाकर वहाँ जा बैठे।.....और जब उसका ख़याल सब लोग भूल जायँगे तब चुपचाप किसी गुप्त सुरंग के द्वारा निकल कर महल में जाय और शत्रु को सोता पाकर मार डाले अथवा उस पर किसी यन्त्र का प्रहार करे। यदि शत्रु किसी विषाक्त या स्फोटक पदार्थों से बने स्थान में हो तो वहाँ आग लगा दी जाय। या (विजय के बाद) जब शत्रु आमोद-प्रमोद में मग्न हो तब तीक्ष्ण जासूस ज़मीन के नीचे बने घरों में अथवा सुरङ्गों में छिपे रहकर एकाएक उस पर धावा कर दें और उसे मार डालें।"

"सङ्घों (की सहायता) के लाभ सेना-मित्र के लाभ से कहीं अधिक हैं। (इसलिए) साम और दान से राजा ऐसे सङ्घों को सदा मिलाये रहे जिनसे शत्रु का कुछ बस न चले और जिनकी प्रवृत्ति अपनी ओर हो। परन्तु जो प्रतिकूल हों उन्हें भेद और दण्ड के द्वारा दबाना चाहिए।"

इसके बाद कौटिल्य ने बतलाया है कि उन्हें भेद और दण्ड के द्वारा कैसे दबाना चाहिए। इनमें से कई प्रकार वैसे ही हैं जैसे ऊपर बतला चुके हैं। इसकी चुग़ली उसके पास और उसकी चुग़ली इसके पास करके दोनों को लड़ा देना और बने तो इस प्रकार उन्हें नष्ट करवा डालना बहुत मामूली उपाय है। यदि उनके बीच पहले से किसी कारण मत-भेद हो तो उसे बढ़ाकर उनमें लड़ाई करवा देना भी उचित होगा। हीनों की प्रशंसा करके उन्हें बढ़ावा देना भी एक उपाय हो सकता है। पहले बतलाये गये उपाय के अनुसार किसी के पुत्र को राजपुत्र कहकर उसे अपनी ओर कर लेना और फिर उसके द्वारा दूसरों को नष्ट करके उसका नाश करना भी एक उपाय हो सकता है। किसी न किसी बहाने विष खिला देना तो मामूली बात है। इसी प्रकार जब कभी स्त्रियों का उपयोग हो सके तब स्त्रियों-द्वारा उनका नाश करना अथवा किसी सुन्दर स्त्री के लिए लड़ाई खड़ी करवा देना भी मामूली उपाय है। एक उदाहरण लीजिए। "भिक्षुणी" (वेष का जासूस) किसी श्रेष्ठ मुखिया से कहे, "देखिए यह मुखिया जवानी की उमङ्ग में आपकी स्त्री को फँसाना चाहता है। उसके कहने से मैं (आपकी स्त्री के लिए) यह पत्र और आभरण लेते आई, (परन्तु) आपकी पत्नी का (इसमें) कोई दोष नहीं। आप चुपचाप इसका प्रतीकार करें। और (मैं चाहती हूँ कि) आप इसमें सफल हों।" इस वर्ग के कई उपाय कौटिल्य ने सङ्घों के मुख्यों को लड़ाने के लिए बताये हैं।

ऊपर हम बतला चुके हैं कि शत्रुओं अथवा दुष्टों को दूर करने के लिए विष खिलाने के कई उपाय कौटिल्य ने बताये हैं। इसलिए एक अध्याय में नाना प्रकार के विषों के भेद भी बता दिये गये हैं, और उन्हें किस प्रकार खिलाना चाहिए इसका सविस्तर वर्णन कर दिया गया है। शत्रु अथवा दुष्ट लोगों को दण्ड देने की रीतियाँ इतने में ही नहीं समाप्त होतीं। आगे और भी कई अद्भुत उपाय, जादूगरी के उपाय और मन्त्रोपाय भी बताये गये हैं। कहीं कई दिनों तक कुछ चीज़ों को खाकर कैसे उपवास कर सकते हैं यह बताया है तो कहीं यह बताया है कि किसी वस्तु या जानवर के रंग कैसे बदल सकते हैं। कहीं ज्वालाग्राही पदार्थों के बनाने की रीतियाँ दी हैं तो अग्नि से सामना करने अथवा अग्नि को बुझाने के उपाय दिये हैं। मुँह से धुआँ और अग्नि उगलने की तदबीरें इसी अध्याय में हैं। इस प्रकार के जादूगरी के कई प्रकारों का वर्णन इसके साथ है। बिना थके-माँदे मीलों तक जा सकने के उपाय भी यहाँ दिये गये हैं। शत्रु अथवा दुष्ट लोगों से सामना करने के लिए इन सब उपायों के उपयोग की आवश्यकता है। इन उपायों को देखकर ऐसा जान पड़ता है कि कौटिल्य ने इन्द्र-जाल-विद्या अच्छी तरह सीखी थी। वह यह भी जानता था कि दूसरे का नाश करने के लिए जिन उपायों का खुद उपयोग करेंगे उनका अपने पर दूसरा भी उपयोग करेगा। इसलिए नाना तरह के विषों से या किसी चीज़ के खाने पर होनेवाली व्यथा या बीमारी से बचने के लिए भी आवश्यक उपायों का बतलाना ज़रूरी है। और इसलिए कौटिल्य ने वे भी बता दिये हैं। कुटिल नीति में इन सबकी आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार के सैकड़ों उपाय कौटिल्य ने बताये हैं। उसका सारांश में कहना यह है कि काम, क्रोध, डरपोकपन, कारुण्य, लज्जा, अनार्यभाव, मान, दयाभाव, परलोक की चिन्ता, धार्मिक, अत्याहितत्व, दैन्य, असूया, हाथ की वस्तु की बेपरवाही, औदार्य, अविश्वास, भय, शीत-उष्ण-वर्षा सहने की शक्ति का अभाव, तिथि-नक्षत्र-ग्रहों के शुभाशुभ परिणामों का विश्वास आदि लाभ के विघ्नकर्ता हैं।

नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यति तारकाः॥
साधनाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् नरा यत्नशतैरपि।
अर्थैरर्थाः प्रबन्धन्ते गजाः प्रतिगजैरिव॥

"जो बालिश मनुष्य नक्षत्रों के (शुभाशुभ परिणामों के पीछे) लगा रहता है उसके पास धन नहीं जाता। क्योंकि धन ही धन का नक्षत्र है, तारे (बेचारे) इसमें क्या कर सकते हैं? जिसमें योग्यता है वह हज़ार उपायों से धन की प्राप्ति कर सकता है। क्योंकि जिस प्रकार हाथी से हाथी पकड़ा जाता है, उसी प्रकार धन की भी बात है।" रुपये के पास ही रुपया जाता है! क्या ही मौक़े की बात कौटिल्य ने यहाँ बता दी है!

इन सब बातों को पढ़कर कोई कहेगा कि राजनीति की ये बातें किसी सभ्य राष्ट्र को शोभा नहीं देतीं। इस पर हमारा यह उत्तर है कि कौटिल्य ने यह ग्रन्थ चन्द्रगुप्त के लिए लिखा था। चन्द्रगुप्त बड़ी कठिनाई से, अनेक छलबल के साथ, पाटलिपुत्र के सिंहासन पर विराजमान हो सका। उसके पहले इस देश में राजा लोग आपसी झगड़ों में फँसे रहते थे। अपने अपने बचाव का उपाय प्रत्येक को करना आवश्यक था। और आत्मरक्षा के समय राजनीति अत्यन्त कुटिल हो जाती है, फिर उसे धर्माधर्म का विचार नहीं रहता। चन्द्रगुप्त ने जिस प्रकार सिंहासन प्राप्त किया था, उस प्रकार उसे उसकी रक्षा भी करनी थी। इस कारण रातदिन आत्मरक्षा का विचार करना आवश्यक था। और उसके लिए यदि नीति की सूक्ष्म उलझनों में राजा पड़ता तो उसे अपनी रक्षा करना असम्भव हो जाता। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि कौटिल्य ने उसे ऐसी कुटिल नीति का उपदेश किया है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या आज-कल के सभ्य कहे जानेवाले राष्ट्र इन दोषों से परे हैं? क्या इँग्लेण्ड की पार्लियामेंट को यह अधिकार नहीं है कि वह चाहे तो बिल आव् अटेण्डर-द्वारा किसी भी पुरुष को फाँसी के हवाले कर दे? शत्रु को नष्ट करने के जितने उपाय कौटिल्य ने बताये हैं, क्या उनका उपयोग आज-कल भी शान्ति और युद्ध दोनों समय में नहीं हुआ है? क्या भेद-नीति के तमाम सूक्ष्म उपायों का उपयोग योरप में अब भी नहीं होता? क्या जिन राष्ट्र के लोगों में हमेशा झगड़े-फ़िसाद चुपचाप पैदा करते रहना आज-कल के सभ्य राष्ट्रों का काम नहीं देख पड़ता? कमज़ोर राष्ट्रों के टुकड़े नोचते रहने में क्या योरपीय राष्ट्र किसी से पीछे रहे हैं? सार बात यह है कि स्वार्थ सब कुछ आज भी कराता है। शुद्ध नीति से कौटिल्य की कुटिल नीति का समर्थन होना कठिन है। परन्तु शुद्ध नीति का साम्राज्य न पहले कभी हुआ था और न आज देख पड़ता है, आगे कभी हो तो कह नहीं सकते। कौटिल्य में और आज-कल के कुटिल मुत्सद्दियों में भेद इतना ही है कि कौटिल्य ने एक राजा को उपदेश देने की आवश्यकता के कारण अपनी बातें एक ग्रन्थ में लिख कर बता डालीं; आज-कल के मुत्सद्दी बताते-बोलते नहीं, प्रत्युत बड़े सुहावने तत्त्वों को लोगों के सामने पेश किया करते हैं। परन्तु अपनी करनी से वे चूकते भी नहीं, और उन कार्यों पर शुद्ध उच्च तत्त्वों का मुलम्मा लगाने का प्रयत्न करते हैं। चाणक्य ने ऐसी बातें क्यों लिखीं, यह जानना हो तो योरप के मैकी-वेली ने जो ग्रन्थ लिखा है उसे पढ़ना चाहिए, और वह किस कारण लिखा गया इस बात पर ध्यान देना चाहिए। मैकीवेली और कौटिल्य के कथनों में बहुत कुछ सादृश्य है, इस कारण कौटिल्य को कई लोगों ने "भारतीय मैकीवेली" कह डाला है। शान्ति-स्थापन के लिए कभी कभी शासकों को नीति और धैर्य के सब तत्त्व ताख़ पर धर देने पड़ते हैं और जो कोई उपाय सूझ पड़ता है उसी से काम चलाना पड़ता है। ऊपर-ऊपर देखने में तो ऐसा जान पड़ता है कि कौटिल्य ने ये बातें सब काल और सब देश के लिए कही हैं, परन्तु हम अपनी इस समझ से कौटिल्य के साथ बड़ा अन्याय करेंगे। हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कभी न भूलना चाहिए कि कौटिल्य ने यह ग्रन्थ एक ख़ास राजा के लिए लिखा था और उस समय यदि किसी बात की अत्यन्त आवश्यकता थी तो वह शान्ति की और आत्मरक्षा की। इन दो बातों के लिए उसे उस समय के उपाय बताने पड़े। यह हम न समझ बैठें कि कौटिल्य को शुद्ध नीति के तत्त्व स्वीकार न थे। राजा कैसा होना चाहिए, उसे क्या क्या करना चाहिए, इत्यादि बातों के कौटिल्य ने जो नियम प्रारम्भ में दिये हैं उन्हें ख़याल में लाते ही कौटिल्य की नीति के विषय का हमारा भ्रम दूर हो जायगा।

गोपाल दामोदर तामसकर

अफ़ग़ानिस्तान।

अफ़ग़ानिस्तान का क्षेत्रफल २ लाख ४५ हज़ार वर्गमील है अर्थात् यह बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के सम्मिलित प्रान्त से लगभग दुगना होगा। प्रकृति ने इसको पर्वतों से चारों ओर से इस प्रकार घेर रक्खा है कि विदेशी लोगों के लिए इसमें प्रवेश करना बड़ा कठिन है। तिब्बत को छोड़कर शायद पृथ्वी में ऐसा और कोई देश नहीं जो इतना बड़ा होने पर भी बाहिरी आक्रमणों से इतना सुरक्षित हो। किन्तु केवल इस बात को छोड़कर अफ़ग़ानिस्तान और तिब्बत के देशों में कोई विशेष समानता नहीं। अफ़ग़ानिस्तान के निवासी स्वभावतः युद्धप्रिय और राजनीति-निपुण होते हैं और तिब्बत के लामाओं को शान्ति और तपश्चर्या अधिक प्रिय है।

अफ़ग़ानिस्तान के प्रवेश-मार्ग में केवल दुर्गम पहाड़ों की ही कठिनाई नहीं है। यदि केवल एक यही कठिनाई होती तो शायद योरप की अर्थ-लोलुप और वाणिज्यप्रिय गौरवर्ण जातियाँ, जिन्होंने संसार के प्रत्येक कोने में अड्डा जमा लिया है, इस देश में प्रवेश करने से कभी न चूकतीं। किन्तु उच्च पर्वतों के अतिरिक्त एक तो यह समुद्र से भी बहुत दूर है और दूसरे इसका अधिकांश भाग बालूमय होने के कारण अगम्य है।

इसकी एक सीमा पर पामीर पर्वत है। लोग इसे 'संसार की छत' के नाम से पुकारते हैं। ब्रिटिश-सैन्य ने कई बार इसके ऊपर अपना झण्डा गाड़ देना चाहा है, किन्तु उसके सभी प्रयास व्यर्थ हुए। इतना ही नहीं, अफ़ग़ानों ने अनेक बार उसको बुरी तरह परास्त किया। पर शायद यह ब्रिटिश-सैन्य के लिए कोई विशेष लज्जा की बात नहीं। क्योंकि प्रायः सभी आक्रमणकारियों ने समय समय पर ऐसी ही हार खाई है। रूस के प्रसिद्ध सम्राट् ज़ार महोदय ने भी एक बार एक बड़ी भारी सेना के साथ तुर्किस्तान के विशाल देश को पार करके अफ़ग़ानिस्तान में प्रवेश करना चाहा था, किन्तु युद्धप्रिय और युद्धकुशल अफ़ग़ानों के सामने उन्हें भी विफलमनोरथ होकर वापस जाना पड़ा था।

पर्वतों से परिवृत होने का अफ़ग़ानिस्तान के विकास पर एक और प्रभाव पड़ा है। वह यह कि अफ़ग़ानिस्तान में न तो अभी तक रेल का प्रचार हुआ और न तार का। अफ़ग़ान इन बातों से उदासीन से हैं, वे दूसरे राज्यों को भी अपने देश में रेल-तार के प्रचार का अधिकार नहीं देते। मानो यहाँ एक करोड़ निवासी अन्य देशों की सभ्यता-आचार-विचार से पृथक् निरन्तर एक गुफा में बन्द रहते हैं। वास्तव में अफ़ग़ानिस्तान एक-दम प्रकृति का क्रीड़ास्थल है, यहाँ क्या राजा और क्या प्रजा सभी सानन्द उसकी गोद में खेला करते हैं।

यहाँ की शासन-व्यवस्था भी सर्वथा विचित्र है। अफ़ग़ानिस्तान के अमीर जिस स्वच्छन्द और निर्भय ढङ्ग से आज-कल अपने राज्य का सञ्चालन कर रहे हैं उतना स्वच्छन्द और निर्भीक संसार में शायद ही कोई दूसरा शासक हो। उनके अधिकार बहुत बढ़े-चढ़े हैं। वही पर-राष्ट्र-नीति का निश्चय करते हैं और धर्म-विषयक मामलों में भी उनकी राय प्रधान मानी जाती है। इतना ही नहीं, वे अपने देश की कृषि और वाणिज्य-व्यवसाय की भी देख-रेख करते हैं। वे 'हमारा अफ़ग़ान' नामक एक पत्र का सञ्चालन भी करते हैं और स्वयं उसकी परीक्षा करते हैं। उनके पर-राष्ट्र-सचिव और राजदूत उनको सदैव संसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की महत्त्व-पूर्ण घटनाओं एवं मुख्य मुख्य विचारधाराओं से परिचित कराते रहते हैं। संक्षेप में, वर्तमान संसार में आज यही एक उल्लेखनीय स्वच्छन्द शासक शेष रह गये हैं। भूतकाल में सभी देशों में स्वच्छन्द शासक हुए हैं। किन्तु उनमें और इनमें बड़ा अन्तर है। ये एक ओर शान और शौकत और दूसरी ओर सहृदयता और तत्परता से देश का शासन कर रहे हैं।

अफ़ग़ानिस्तान चार राजनैतिक विभागों में विभक्त हैं—१. अफ़गान, २. तुर्किस्तान, ३. काबुल और ४. कन्धहार और हिरात। किन्तु भौगोलिक दृष्टि से उसके ये विभाग नहीं किये जा सकते। उत्तर-पूर्व दिशा में अफ़ग़ानिस्तान उच्च पर्वतमालाओं से घिरा हुआ है, जिनमें एक से एक सुन्दर प्राकृतिक दृश्य हैं। यही पर्वतमालायें आगे चलकर हिन्दूकुश पर्वत से जा मिली हैं। इन्हीं पर्वत-मालाओं से होकर कई एक अति विचित्र और अति प्राचीन मार्ग निकले हैं, जिनका ऐतिहासिक महत्त्व भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है। प्राचीन काल में जब भारतवर्ष और तुर्किस्तान के बीच व्यापार चलता था तब व्यापारी इन्हीं दारुण पर्वत-मार्गों से होकर आया-जाया करते थे। इन मार्गों में गाड़ी-बैल की गुज़र तो हो नहीं सकती, इस-लिए बोझा लादने का काम अधिकतर ऊँट, घोड़े और ख़च्चरों से लिया जाता है। प्रतिवर्ष प्रायः करोड़ों की संख्या में ये पशु अफ़ग़ानिस्तान से आते-जाते रहते हैं।

यूनान के सुप्रसिद्ध बादशाह सिकन्दर ने हिरात और कन्धार नगरों की स्थापना की थी। काबुल को भी प्राचीन यूनानी अधिवासियों ने ही बसाया था। क्योंकि उसके खण्डहरों और भग्नावशेषों के खोदने से इस बात का स्पष्ट पता चलता है। अफ़ग़ानिस्तान के बहुत से स्थानों में प्राचीन अग्निपूजक पारसियों के देवमन्दिरों के खण्डहर भी पाये गये हैं। इन वर्तमान शोधों में बलख़ का 'तोप-ए-रुस्तम' नामक खण्डहर सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इसी के समीप इतिहासातीत काल की बहुत सी गुफायें भी आविष्कृत हुई हैं। इनकी दीवारों पर सुन्दर और बड़े बड़े सूर्यमुखी के पुष्प अङ्कित हैं। वास्तव में बलख़ के भग्नावशेषों से भी हमें एक अति-प्राचीन मानवीय सभ्यता का पता चलता है। किसी प्राचीन काल में यहाँ एक बड़ा भारी नगर बसा हुआ था, उसी के खण्डहरों के ऊपर वर्तमान बलख़ की स्थापना हुई है। किन्तु प्राचीनतम वंशावशेषों की सूचना यही है कि किसी समय पृथ्वी के इस प्रान्त में अग्निपूजक पारसी

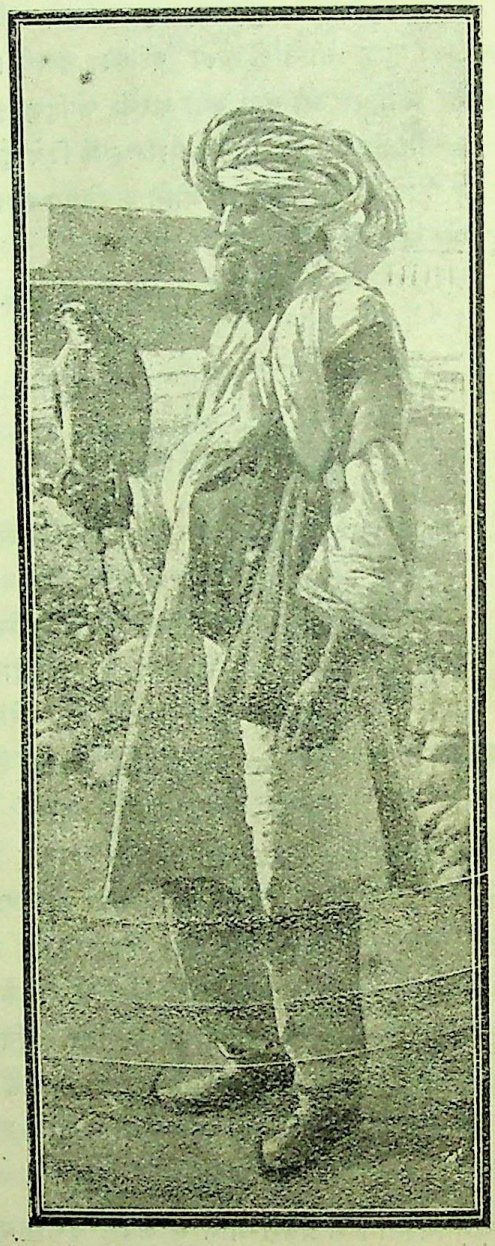

ख़ैबर घाटी में एक सिक्ख।

जाति का ही प्राधान्य था, क्योंकि अधिकतर इन्हीं के देव-मन्दिरों के खण्डहर पाये जाते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान कई सम्प्रदायों और भाषाओं का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

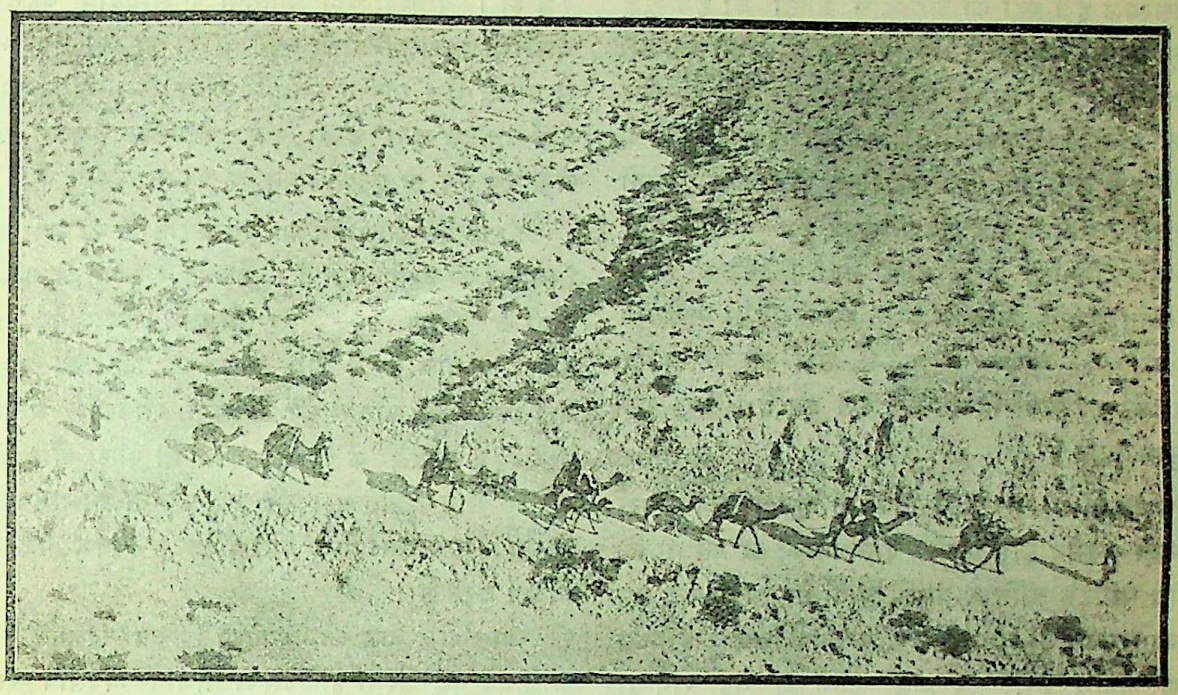

बोलन-घाटी।

बोलन-घाटी के बलोची।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवासस्थल है। यहाँ की अधिकांश जनता को हम शुद्ध अफ़ग़ानी नहीं कह सकते। आर्य-जाति के ईरानी व्यापारी अधिकतर बड़े बड़े ग्रामों और शहरों में रहते हैं और मङ्गोल-जाति के हज़ारा लोग मध्यवर्ती पहाड़ी भागों में अधिक पाये जाते हैं। इसी प्रकार तुर्क और उज़बेग लोगों की उत्तरी अफ़ग़ानिस्तान में अधिकता है। बस, देश के अधिकांश निवासी इन्हीं तीनों वर्गों में बाँटे जा सकते हैं। किन्तु शुद्ध अफ़ग़ान या पठान लोग पूर्व में सुलेमान पर्वत से लेकर पश्चिम में ग़ज़नी और कन्धार आदि स्थानों को पार करके हिरात तक फैले हुए हैं। यही यहाँ की मुख्य जाति है।

अफ़ग़ानों की उत्पत्ति के विषय में ऐतिहासिकों में परस्पर बड़ा मतभेद है। प्राचीन ऐतिहासिकों का मत था कि ये लोग सेमेटिक जाति के वंशजों में से हैं, आज-कल इस मत का खण्डन हो गया है, क्योंकि उसके लिए कोई यथेष्ट प्रमाण नहीं। हाँ, अब कुछ लोगों की यह राय हो रही है कि तूरानी जाति के सम्मिश्रण से इस जाति की उत्पत्ति हुई है। इनमें जो परस्पर विभेद दिखाई दे रहा है उसका कारण यह है कि उस आदिम जाति से बिछुड़े हुए इनको युग-युगान्तर हो गये। इसी बीच में इन्होंने बड़े बड़े ग्राम और नगर बसा डाले, परिस्थिति के अनुसार नई नई बातों का अनुसन्धान किया। संक्षेप में, एक नई सभ्यता का निर्माण कर एक नई जाति का रूप धारण कर लिया।

डील-डौल और रूप-रङ्ग में भी अफ़ग़ानी लोग तुर्की-ईरानी जाति के मनुष्यों से मिलते-जुलते हैं। पूर्व की ओर रहनेवाली किसी किसी उपजाति में भारतीय रक्त भी मिला हुआ मालूम पड़ता है। वास्तव में यह अफ़ग़ान या पठान शब्द भी बहुत प्राचीन नहीं है। अफ़ग़ानिस्तान में अब भी ऐसी बहुत सी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं कि वंशानुवंश से अफ़ग़ानों में इसराइल या सैयदों का भी रक्त प्रवाहित होता चला आ रहा है। अफ़ग़ानिस्तान के राजाओं का भी यह दावा है कि हम सालेर-वंश की सन्तान हैं। लोगों का कहना है कि किसी समय पेलेस्टाइन से बहुत से लोग बन्दी करके यहाँ लाये गये थे, वर्तमान अफ़ग़ान-जाति उन्हीं लोगों के वंशज हैं। जो कुछ हो। ये बड़ी बड़ी जातियाँ या सम्प्रदाय बहुत सी छोटी छोटी उपजातियों में बँटी हुई हैं, जो 'खेल' के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्राचीन समय में प्रत्येक खेल जीवन-निर्वाहार्थ यत्र-तत्र घूमा करता था। गाय-बैल, बकरी और भेड़ें, एवं ऊँट ही इनके जीवन के प्रधान साधन थे।

हमारे देश के समान अफ़ग़ानिस्तान में भी सर्पों और बिच्छुओं की कमी नहीं है। सैकड़ों मनुष्यों को प्रतिवर्ष इन्हीं के कारण अपने प्राण विसर्जन करने पड़ते हैं। पहाड़ों के बीच में तो लोगों को नाना प्रकार के विषधर जीव-जन्तु चारों ओर से घेर लेते हैं। शीतकाल में अफ़ग़ानियों के कम्बलों के बने हुए ख़ीमे भी पाला और जीव-जन्तुओं से ढक जाते हैं। किन्तु अफ़ग़ानी स्वभाव से ही निर्भय और स्वातन्त्र्यप्रिय होते हैं, वे सुखपूर्वक पर्वतों में बिचरा करते हैं।

जाखाखेल नाम की एक ऐसी विचित्र उपजाति है कि आजीवन युद्ध करना ही उसका प्रधान व्यवसाय रहता है। यह निरन्तर आपस में लड़ा-झगड़ा करती है। यहाँ तक कि गृह-कलह के मारे इन खेल लोगों के बीच में वैवाहिक सम्बन्ध भी बहुत कम स्थापित हो पाता है।

अफ़ग़ानिस्तान की वर्तमान भाषा ईरान की प्राचीन भाषा से निकली है। किन्तु आज-कल उस पर कुछ भारतीय प्रभाव भी पड़ता दिखाई देता है। उसकी लिपि एक प्रकार से अरबी-लिपि से मिलती-जुलती है। प्रारम्भ में अफ़ग़ानी भाषा बहुत ही अनुन्नत थी। पारसी भाषा और साहित्य की धाराओं से परिपुष्टि पाकर उसने वर्तमान रूप धारण किया है। किन्तु आधुनिक अफ़ग़ानी-साहित्य पर इस्लाम की पूरी पूरी छाप है। प्राचीन काल में बहुत दिनों तक पारसी-सभ्यता अफ़ग़ानी सामाजिक जीवन पर अपना प्रभाव डालती रही है। वास्तव में मध्यएशिया के समस्त मुस्लिम-साम्राज्य पर पारसी रीति-नीति, आचार-विचार का निरन्तर न्यूनाधिक प्रभाव पड़ता रहा है। यहाँ तक कि शिया-सुन्नियों की पारस्परिक घृणा इससे शून्य नहीं। किन्तु अफ़ग़ानी पारिवारिक जीवन पारसी जीवन की अपेक्षा कुछ अधिक घनिष्ठ और निविड़ है।

अफ़ग़ानियों की विवाह-पद्धति भी हिन्दुओं की विवाह पद्धति से मिलती है। वहाँ भी वर और वधू विवाह के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काबुल के राज-कर्मचारी।

काबुल की एक भीड़ का दृश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले एक दूसरे को नहीं देख सकते। वैवाहिक सम्बन्ध वर और वधू के माता-पिता अथवा अभिभावकों पर ही निर्भर करता है। स्त्रियों के परदा के विषय में अफ़ग़ानिस्तान अन्य मुस्लिम देशों की अपेक्षा भी अधिक कट्टर है। यहाँ की स्त्रियों के मुँह ढकने का ढँग भी बड़ा विचित्र है। अफ़ग़ान लोग अपनी स्त्रियों के परदा के विषय में शायद आवश्यकता से अधिक सतर्क रहते हैं, यहाँ तक कि अपने घर की परिचारिकाओं पर भी वे कड़ी निगाह रखते हैं, किसी बाहर के आदमी के लिए अफ़ग़ानी महिलाओं का मुख-दर्शन कर लेना बड़ा कठिन है। दरिद्र से दरिद्र अफ़ग़ानी स्त्री तक से उसके मुख का परदा हटवा लेना असम्भव बात है। निम्नश्रेणी की स्त्रियाँ एक सूती लम्बा कुर्त्ता और उसके ऊपर एक ढीला जामा पहनती हैं, कोई कोई एक चादर या पर्दा भी ओढ़ती हैं। उच्च घरानों की रमणियों के सिर पर एक ज़रीदार एवं रङ्ग-बिरङ्गी गोलाकार टोपी देखी जाती है। सभी स्त्रियों के सिर में माँग रहती है और उसके ऊपर एक काले रेशमी धागे से वेणी बँधी रहती है। सौभाग्यवती स्त्रियों के मस्तक पर एक विशिष्ट प्रकार की झालर रहती है, जो उनके सौभाग्य की सूचना देती है।

शिक्षा की दृष्टि से अफ़ग़ान-जाति पिछड़ी हुई है, किन्तु कुछ दिनों से इस निरक्षरता को दूर करने के लिए स्त्री और पुरुष—दोनों समाजों में बड़े ज़ोर से आन्दोलन हो रहा है। इसमें वे बहुत कुछ सफल भी हो रहे हैं। यद्यपि स्त्री-समाज में पुरुषों की अपेक्षा शिक्षा और विद्या का अधिक अभाव है, तथापि सामाजिक और पारिवारिक जीवन में उनका ख़ासा प्रभाव दिखाई देता है। उनको दो बातें इष्ट हैं, पारिवारिक सुख और मर्यादा। निःसन्तान होने को वे जीवन का सबसे बड़ा दुःख मानती हैं। अफ़ग़ानी बालक-बालिकाओं का बाल्य-काल बड़ी प्रसन्नता से कटता है। साधारणतः जिस अवस्था में बालक पाठशाला में प्रवेश करते हैं, प्रायः उसी अवस्था में बालिकायें घूँघट काढ़ना प्रारम्भ कर देती हैं। बालकों को सबसे पहले घोड़े पर चढ़ना सिखाया जाता है। उसके पश्चात् वे निशाना लगाना, शिकार खेलना, बन्दूक चलाना आदि बातों का अभ्यास करते हैं। अफ़ग़ानियों को घोड़ा बहुत ही प्यारा होता है। वे सदैव उसे अपने पास रखते हैं।

स्वर्गीय अमीर हबीबुल्लाख़ाँ बड़े विद्वान् थे। इतिहास और विज्ञान के तो वे पण्डित माने जाते थे। इन्हीं के

काबुल का व्यवसायी।

भाई सरदार नसरुल्लाख़ाँ अफ़ग़ानों में सर्वश्रेष्ठ पर्यटक माने जाते हैं। उन्होंने सन् १८९५ में इँग्लेण्ड की यात्रा की थी। किन्तु वर्तमान अमीर महोदय अपने देश के बाहर भ्रमण करना अधिक पसन्द नहीं करते। हाँ, इनके भाई कई बार भारत में भ्रमण करने आये हैं। आज-कल तो साधारणतः प्रत्येक अफ़ग़ानी के हृदय में विद्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ़ग़ान-सेना।

अफ़रीदी योद्धा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सञ्चय की एक तीव्र लालसा जाग्रत दिखाई देती है। वे इस समय न केवल भारतवर्ष बरन टर्की, जर्मनी, रूस आदि सभी सभ्य देशों की रीति-नीति और आचार-विचार का ज्ञान प्राप्त कर अपने देश की संस्कृति को समुन्नत करना चाहते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान की भाषा का नाम पश्तो है। किन्तु स्कूलों, कालेज और राजकीय संस्थाओं में सर्वत्र फ़ारसी-भाषा का प्रचार है और साधारणतः सभी अफ़ग़ानी फ़ारसी-भाषा को अच्छी तरह जानते भी हैं। किन्तु पश्चिमी और मध्यवर्ती अफ़ग़ानिस्तान में जो तुर्की-मंगोलीय उपजाति के लोग हैं वे सदैव अपनी मातृ-भाषा का ही प्रयोग करते हैं। वर्तमान अमीर अमीनुल्लाख़ाँ को तो फ़ारसी, तुर्की आदि कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान है। वे अपने देश के साप्ताहिक, मासिक आदि सामयिक पत्र-पत्रिकायें तो पढ़ते ही हैं। इसके अतिरिक्त वे देश-देशान्तरों के प्रतिष्ठित पत्रों को भी ध्यानपूर्वक देखते हैं। जिन भाषाओं को वे स्वयं नहीं जानते उनकी पुस्तकों और समाचार-पत्रों को सुनने और समझने के लिए उन्होंने वैतनिक अनुवादक रख छोड़े हैं। अमीर साहब को चित्र-कला से भी विशेष प्रेम है, वे सचित्र मासिक पत्रिकाओं को ख़ूब पसन्द करते हैं। उनके पास एक कुशल फ़ोटोग्राफ़र भी है।

आमोद-प्रमोद के अवसरों पर अफ़ग़ानिस्तान में धनी और दरिद्र एक साथ बिना किसी भेद-भाव के सम्मिलित होते हैं जैसे शिकार, घुड़दौड़, मल्लयुद्ध में। सारांश यह कि वे शारीरिक व्यायाम के बड़े प्रेमी होते हैं। आज-कल वहाँ उच्च श्रेणी के लोगों एवं विद्यार्थि-समाज में फ़ुटबाल, क्रिकेट, टेनिस आदि खेलों का चलन बढ़ता जाता है। किन्तु मेढ़ों, मुरग़ों, तीतरों और बटेरों आदि पशु-पक्षियों की परस्पर लड़ाई कराने और देखने का प्राचीन कालीन शौक़ अब भी नहीं छूटा है। गाने-बजाने में अफ़ग़ानी लोग बढ़े-चढ़े हैं, शहरों में कहीं न कहीं गाना होता ही रहता है, कहीं कहीं लोग सुन्दर अलङ्कारिक भाषा में कथा-वार्ता कहते हुए भी दिखाई देते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान में पोशाक का ढङ्ग सर्वत्र बिलकुल एक समान नहीं है। प्रान्त-प्रान्त में न्यूनाधिक अन्तर अवश्य है। पूर्वी प्रान्तों की पोशाक पश्चिमी भारत की पोशाक से कुछ कुछ मिलती-जुलती है। किन्तु आज-कल कुछ लोग पाश्चात्य ढङ्ग के कपड़े भी पहनने लगे हैं। साधारणतः ये लोग सिर को तीन प्रकार से ढकते हैं। कोई कोई रङ्ग-बिरङ्गी छोटी दीवार की टोपी पहनते हैं और कोई धूप से बचने के लिए श्वेत या फिरोज़ी रङ्ग की कुछ लम्बी और ऊँची टोपी पहनते हैं। तीसरे प्रकार का परिधान का नाम कुला है। यह नीचे गोल और क्रमशः सँकरा होता जाता है। प्रायः कुछ तुर्की लोग भी इसी से मिलती-जुलती टोपी पहनते हैं। एक सूती लम्बा जामा, सादा पायजामा और एक सुन्दर हरे रङ्ग का, रेशम या ज़री आदि के काम से सुसज्जित मेढ़े के चमड़े का कोट एवं जूता अफ़ग़ानियों की आदर्श जातीय पोशाक है। कोई कोई कोट के ऊपर भी एक ढीला-ढाला लाल रङ्ग का चोग़ा भी पहनते हैं। इसी प्रकार स्त्रियों की पोशाक भी सादी है। चाहे काम-काज का समय हो और चाहे आराम का वे एक लम्बा कुर्ता और रङ्गीन पिशबाज़ पहनती हैं। सिर पर उनके मर्दों के ही समान एक टोपी सी रहती है। बाहर निकलने पर वे एक ढोलनुमा पायजामा लेती हैं। इनको आस्मानी या काला रङ्ग अधिक पसन्द है। सबके ऊपर ये एक बुरका पहनती हैं, जो उनको सिर से पैर तक ढक लेता है। स्त्रियाँ अधिकतर लाल रङ्ग का जूता पहनती हैं।

अफ़ग़ानियों का भोजन भी बड़े सीधे-सादे ढङ्ग का होता है। रोटी, फल-फूल, तरकारी, चाय, दूध और पनीर इनके मुख्य खाद्य पदार्थ हैं। चावल, मेढ़ा, बकरा, मुर्ग़ आदि पशु-पक्षियों का मांस और विविध प्रकार के मिष्टान्न अधिकतर बड़े लोगों को ही प्राप्त होते हैं। अफ़ग़ानी गाँजा, भङ्ग आदि नशीली वस्तुओं को, सेवन करना तो दूर, छूते तक नहीं हैं। हाँ, वे तम्बाकू का प्रयोग अवश्य करते हैं। किन्तु अफ़ग़ानिस्तान की तम्बाकू अच्छी नहीं होती, इसलिए ये लोग फ़ारस, रूस, भारतवर्ष, मिस्र आदि देशों से तम्बाकू मँगवाते हैं। युवा और वृद्ध सभी इसका नास लेते हैं। अफ़ग़ानी लोग चाय के भी बड़े प्रेमी हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

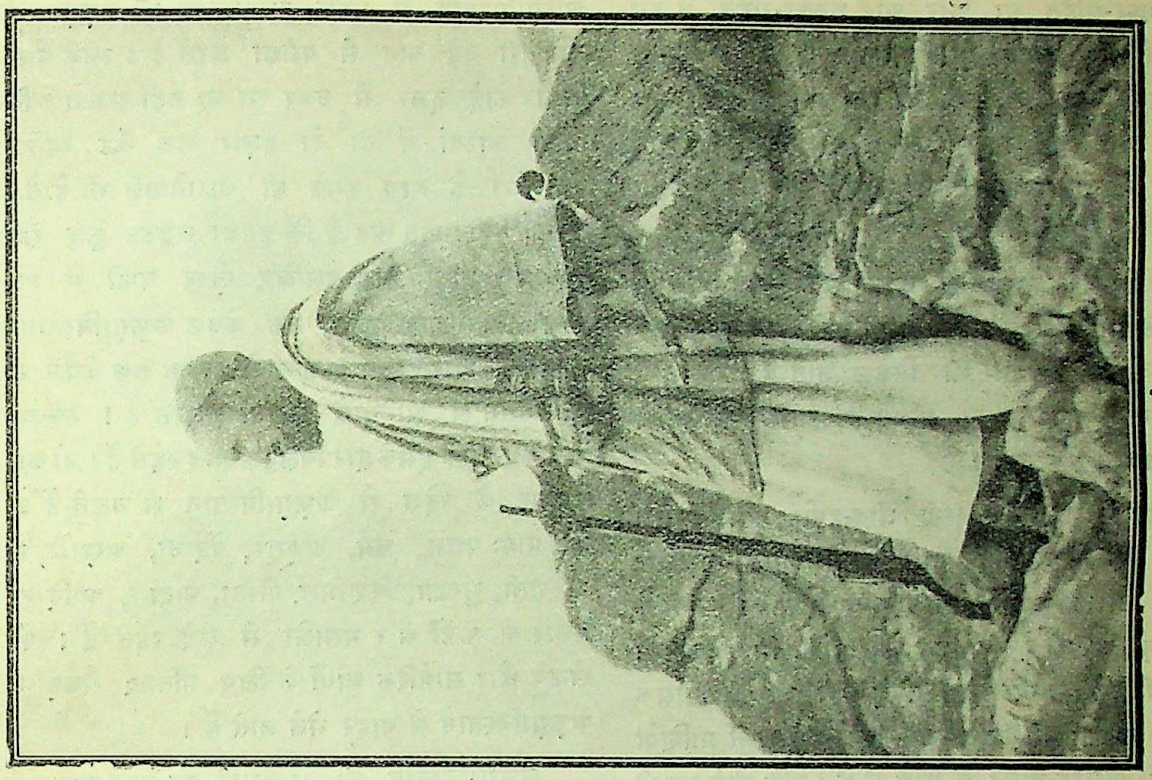

अफ़रीदी।

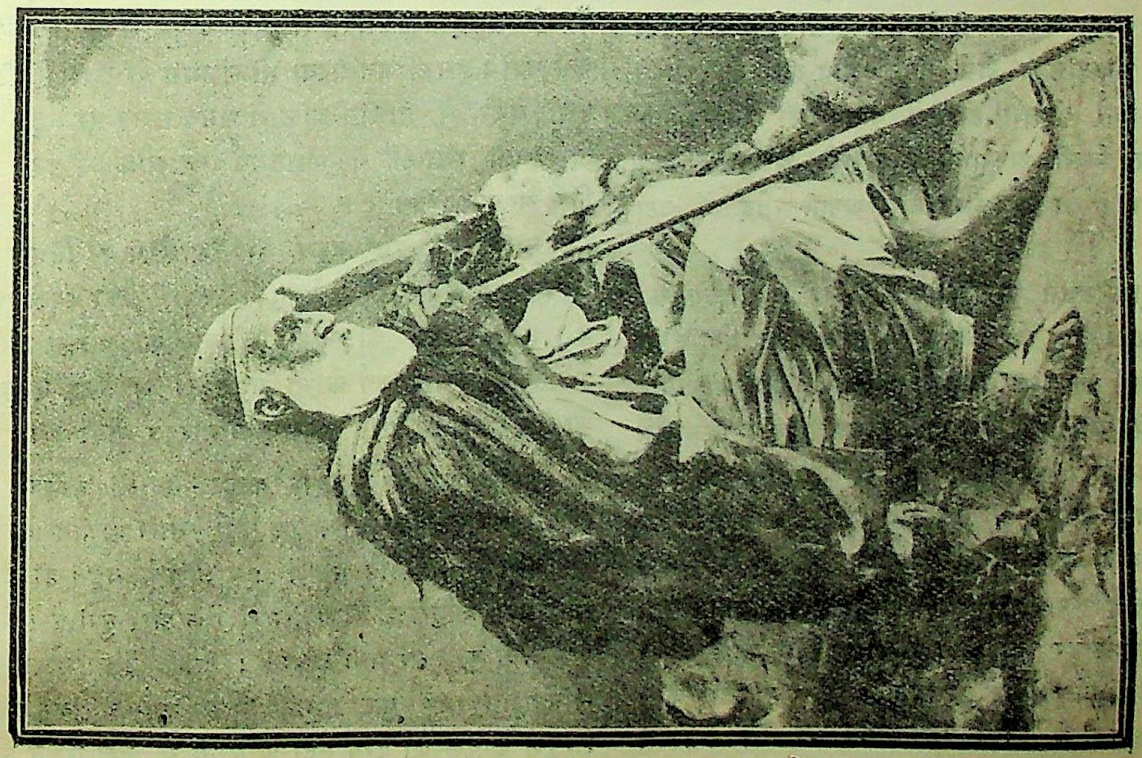

एक वृद्ध पठान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहे शक्कर-सहित हो और चाहे शक्कर-रहित, वे उसे खूब पीते हैं। यदि दो मित्र बाज़ार में अकस्मात् मिल जाते हैं तो जब तक वे एक दूसरे को चार-पाँच प्याला चाय नहीं पिला लेते हैं तब तक पीछा नहीं छोड़ते। ये लोग केवल खाना खाने में ही नहीं, खाना बनाने में भी दक्ष होते हैं।

इस देश में कुत्तों की अच्छी संख्या है, जहाँ-तहाँ घूमते दिखाई देते हैं। इतना ही नहीं, इनसे अफ़ग़ानियों के बहुत से काम भी निकल जाते हैं। किन्तु ये लोग उनको अपवित्र ही मानते हैं, धार्मिक वृत्तिवाले तो इनको छूते तक नहीं।

अफ़ग़ानी कभी अकारण जीव-हत्या नहीं करते। उदाहरण के लिए यदि कभी किसी का जानवर चोट खा जाय या लँगड़ा हो जाय अथवा किसी को पर्वतों के बीच बर्फ़ के शीत से पीड़ित कोई प्राणी मिल जाय तो वह कभी उसे भाग्य-भरोसे छोड़ नहीं जायगा। उसके मुख से सहसा निकल पड़ेगा—छोटे-बड़े सभी प्राणियों की जान अल्लाह-ताला के हाथ में है। यदि कोई उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे सताने का दुस्साहस करेगा तो अवश्यमेव पाप का भागी होगा। इसी लिए अफ़ग़ानी अकारण भी मक्षिका जैसे तुच्छ जीव तक को मारते नहीं देखे जाते। इतना ही क्यों, यदि कभी कोई छोटा-मोटा जीव किसी अफ़ग़ानी के सामने असहाय होकर गिर पड़ता है तो वह झट उसे अपनी गोद में उठा लेता है।

अफ़ग़ानिस्तान के व्यापार और वाणिज्य का मुख्य साधन ऊँट हैं, जिनके समूह को कारवाँ कहते हैं। यहाँ का अधिकांश व्यवसाय हिन्दुओं और अफ़ग़ानियों के हाथ में है। इसका मुख्य द्वार है हिमालय का सुप्रसिद्ध दर्रा ख़ैबर। भारतवर्ष से अफ़ग़ानिस्तान जाने के लिए यही सर्वश्रेष्ठ पथ है। इससे ऊँटों और ख़च्चरों पर माल-असबाब लादे हुए व्यापारी बहुधा आते-जाते दिखाई देते हैं। यह दर्रा सप्ताह में केवल दो दिन खुलता है, एक मङ्गलवार को और दूसरा शुक्रवार को। किन्तु ग्रीष्मकाल में केवल एक ही दिन अर्थात् शुक्रवार को। अफ़ग़ानिस्तान से बाहर जानेवालों की और बाहर से अफ़ग़ानिस्तान में प्रवेश करनेवालों की अफ़ग़ान-राज-कर्मचारी बड़े यत्न से परीक्षा करते हैं। उनके पास के बिना कोई इधर से उधर आ जा नहीं सकता। किसी किसी कारवाँ में दो दो हज़ार तक ऊँट रहते हैं, इन ऊँटों के साथ इतने ही चलानेवाले भी होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि इनका सङ्गठन कुछ सैनिक ढङ्ग पर होता है। इसलिए ख़ैबर घाटी में प्रातः-काल से मध्याह्न काल तक केवल अफ़ग़ानिस्तान को जानेवाले और मध्याह्न-काल से सन्ध्या तक केवल अफ़-ग़ानिस्तान से आनेवाले कारवाँ गुज़रते हैं। सन्ध्या से प्रातःकाल तक इसके द्वार बिलकुल बन्द रहते हैं। जो कारवाँ व्यापार के उद्देश से अफ़ग़ानिस्तान से चलते हैं उनके ऊँट प्रायः पशम, चर्म, अङ्गूर, बेदाना, अख़रोट, सेव, नास्पाती, मुनक्का, किशमिश, पोस्ता, बादाम, आदि नाना प्रकार के फलों और मसालों से लदे रहते हैं। पोलो खेलने और सामरिक कार्यों के लिए प्रतिवर्ष सैकड़ों घोड़े अफ़ग़ानिस्तान से बाहर भेजे जाते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान की राजधानी का नाम काबुल है। यह शहर इसी नाम की नदी पर बसा हुआ है। इसकी उँचाई समुद्र की सतह से ७,००० फुट से किसी प्रकार कम नहीं। इसकी जन-संख्या भी लगभग दो लाख होगी। इसी नगर से प्राचीन काल में समय समय पर बहुत से दिग्विजयी सम्राटों ने भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया है।

काबुल में एक बहुत ही उच्च श्रेणी का निःशुल्क औषधालय है। इसमें कई तुर्की डाक्टर नौकर रक्खे गये हैं। अमीर साहब को स्वयं चिकित्सा का अच्छा ज्ञान है। उन्होंने भारतवर्ष के भी बहुत से सुप्रसिद्ध डाक्टरों को अपने देश में बसने के लिए आमन्त्रित किया है।

ग्रीष्मकाल में बहुत से काबुल-निवासी तम्बुओं में रहने लगते हैं। काबुल में एक बड़ा भारी प्राचीन क़िला है। एशिया महाद्वीप भर में इस जोड़ के बहुत ही कम निकलेंगे। काबुल के ही पड़ोस में एक और दुर्ग है। यह एक ऊँची कुर्सी पर बना हुआ है। इसकी उँचाई धरातल से लगभग १५० फुट होगी। इसके ऊपर चढ़ कर आप सम्पूर्ण काबुल का दृश्य बड़ी आसानी से देख सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

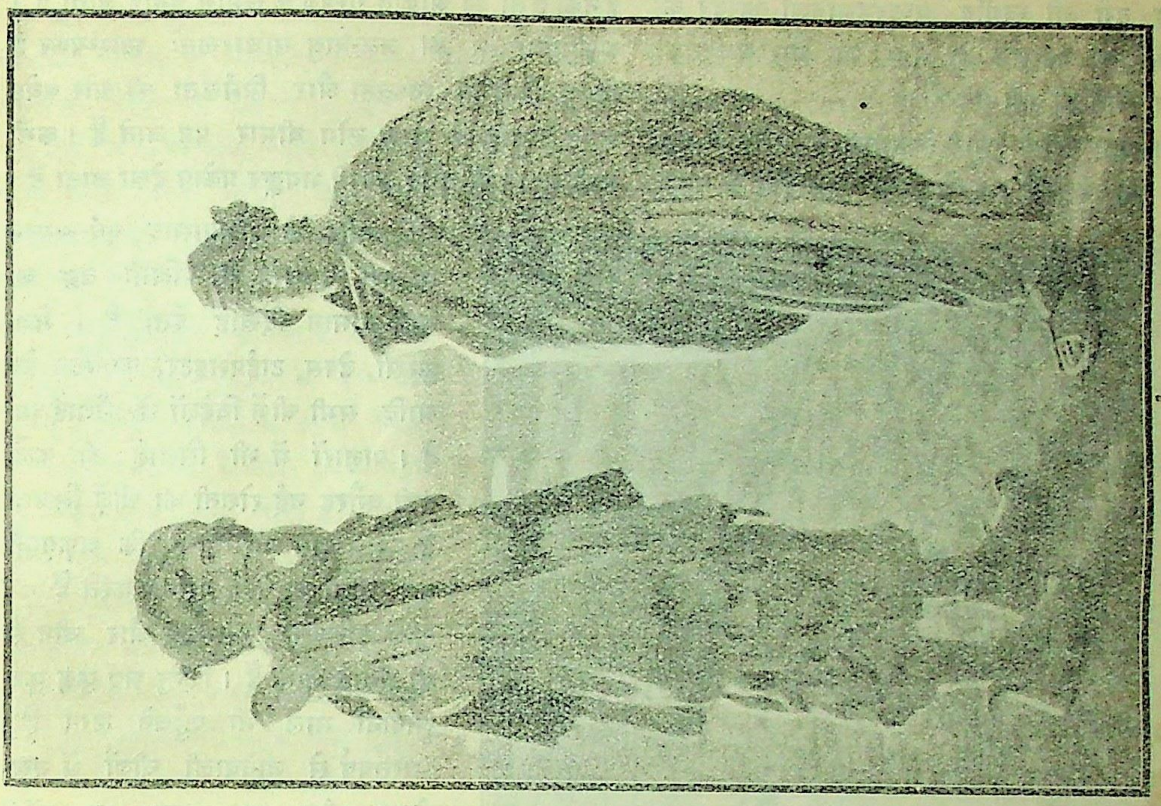

अफ़ग़ान-युवक।

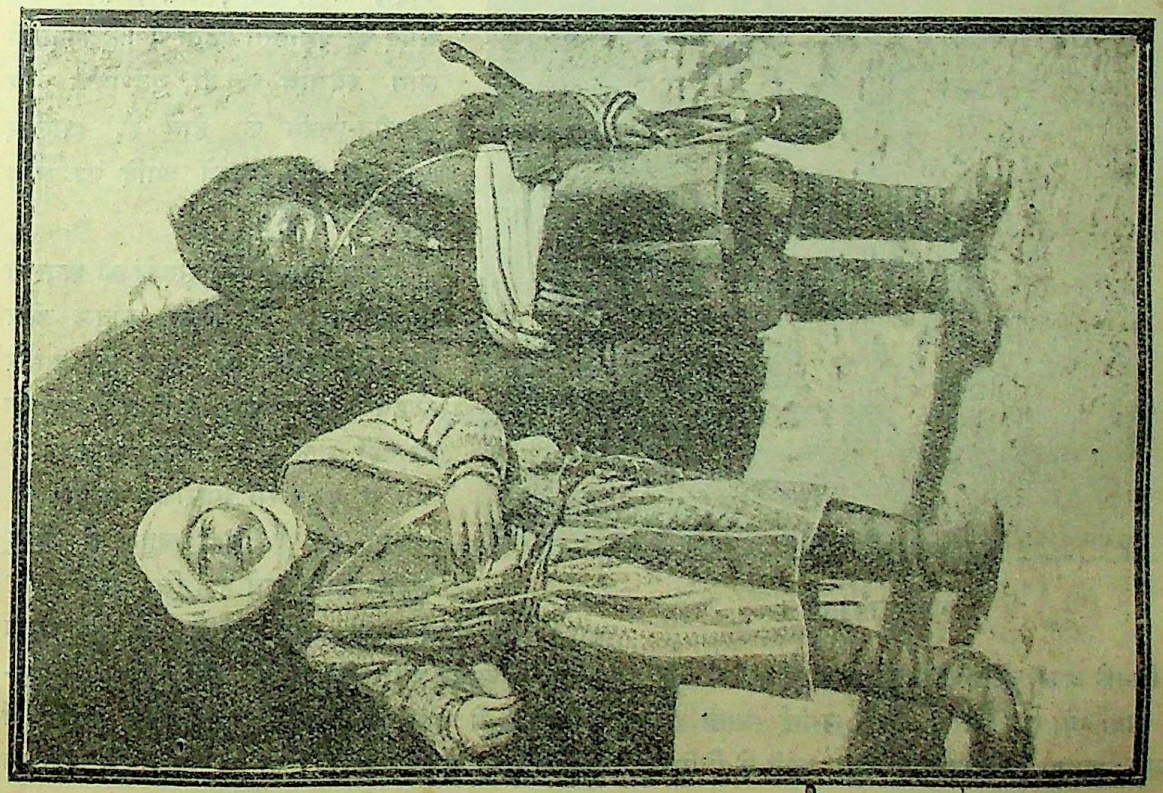

जलालाबाद-सड़क के मार्ग-रक्षक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु यह दुर्ग भी स्वर्गीय अब्दुर्रहमानख़ाँ बहादुर के शासन में कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो गया था और अब तक उसकी दशा वैसी ही बनी हुई है।

साधारणतः ग़रीबों और निम्नश्रेणी के लोगों के घर मिट्टी के बने होते हैं। उनके ऊपर लकड़ियों के बरगे

अफ़ग़ान-रमणी।

रहते हैं जिनके ऊपर चटाइयाँ बिछी रहती हैं। चटाइयों के ऊपर प्रायः दो इञ्च मोटी मिट्टी लगाई जाती है। वर्षा के जल अथवा तुषार-वर्षा से रक्षा करने के निमित्त इनकी छतों की आकृति गुम्बज के समान बनाई जाती है। अफ़ग़ानिस्तान का जल-वायु साधारणतः स्वास्थ्यकर है किन्तु लोगों का स्वच्छता और निर्मलता की ओर यथेष्ट ध्यान न होने से प्रायः लोग बीमार पड़ जाते हैं। कभी कभी महामारी आदि का भी भयङ्कर प्रकोप देखा जाता है।

अमीर के राजप्रासाद एवं समस्त सरकारी दफ़्तरों में पश्चिमी ढङ्ग का साज-सामान दिखाई देता है। मेज़, कुरसी, डेस्क, टाईपराइटर, फ़ाउन्टेन पेन आदि सभी चीज़ें विदेशों से मँगाई गई हैं। बाज़ारों में भी सिलाई की कलें, घड़ी वग़ैरह नई रोशनी की चीज़ें मिलती हैं। सच बात तो यह है कि अफ़ग़ानी इन चीज़ों को बेहद पसन्द करते हैं। ये चीज़ें अधिकतर भारतवर्ष और चीन से ही मँगाई जाती हैं। किन्तु अब कुछ कुछ जापानी माल भी पहुँचने लगा है। भारतवर्ष से जानेवाली चीज़ों में वस्त्र, लोहा, ताँबा, चाय, शक्कर, रङ्ग, चाँदी आदि की प्रधानता रहती है। अफ़ग़ानी लोग स्वभाव से ही युद्ध-प्रिय और स्वाधीन-प्रकृति के होते हैं, इसलिए अस्त्र-शस्त्र और बन्दूकों आदि की माँग तो स्वयंसिद्ध है।

अफ़ग़ानिस्तान में सड़कों की अवस्था तो साधारण है, किन्तु काबुल और पेशावर के बीच की सड़क को अमीर साहब ने बहुत उन्नत कर दिया है। इतना ही नहीं, माल ढोने के लिए सरकार की ओर से बहुत सी अमरीकन गाड़ियाँ भी चलाई गई हैं। यहाँ बहुत से हिन्दू दलाल काम करते हैं। जिन सड़कों पर कारवाँ या यात्री बहुत आते-जाते हैं उन पर स्थान स्थान में सुन्दर और पक्की सरायें बनी हुई हैं। अफ़ग़ानिस्तान से बाहर के देशों को जानेवाली सड़कों में निम्नलिखित सड़कें मुख्य कही जा सकती हैं—पश्चिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हिरात से मशहद को, पूर्व में काबुल से पेशावर को और दक्षिण में कन्धार से क्वेटा को। ये सड़कें बहुत ही चौड़ी और प्रशस्त हैं, इन पर मोटर-गाड़ियाँ बड़े मज़े से इधर-उधर दौड़ सकती हैं। किन्तु काबुल और उसके आस-पास की सड़कें बहुत ही उत्तम हैं। राजप्रासाद से चारों दिशाओं को मोटर-गाड़ियाँ बेखटके दौड़ा करती हैं।

अफ़ग़ानिस्तान में पहले बड़े ही भयङ्कर चोर और डाकुओं के दल थे। किन्तु वर्तमान सरकार के स्तुत्य प्रयत्नों से ये सब पकड़े गये हैं और इनको बहुत ही कठोर दण्ड दिया गया है, जिससे आज-कल निर्जन स्थानों में भी व्यापारी लोग निश्चिन्त होकर अपना काम कर सकते हैं। केवल सीमान्त-प्रदेशों में कुछ ऐसी उपजातियाँ शेष रह गई हैं जिनको अब भी रात-दिन कलह और युद्ध के सिवा और कोई काम नहीं रहता।

इस देश में डाक-विभाग स्थापित हो गया है। अभी तक द्रुतगामी अश्वारोहियों से काम लिया जाता रहा है, किन्तु अब मोटर-सर्विस से काम होने लगा है। पर अभी तक विदेशी डाक-विभागों से इसका सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया है। बात यह है कि अमीर साहब अपने देश में विदेशियों के अन्धाधुन्ध प्रवेश को अधिक पसन्द नहीं करते, इसी लिए अभी तक इस देश में रेल और तार का प्रचार नहीं हुआ है। किन्तु अब काबुल और जलालाबाद के बीच रेल बनाने का प्रस्ताव हो रहा है।

इसमें सन्देह नहीं कि आज-कल अफ़ग़ानिस्तान बड़ी ही तेज़ी से उन्नति कर रहा है, किन्तु व्यवसाय-वाणिज्य एवं कृषि को सभ्य देशों की बराबरी तक लाने के लिए उसे अभी बहुत कुछ करना बाक़ी है। एशिया के अन्य देशों की भाँति यहाँ के भी छोटे-मोटे जातीय व्यवसाय मिटते जा रहे हैं और उनके स्थान में लोग पश्चिम की सस्ती और भड़कीली चीज़ों का प्रयोग करने लगे हैं। लकड़ी की नक़्क़ाशी, स्त्रियों के आभूषण, रेशमी और पशमी एवं कमख़्वाब के कपड़ों को छोड़ कर बाज़ारों में देशी शिल्प की कोई बहुमूल्य वस्तुएं नहीं दिखाई देतीं। कहीं कहीं, जैसे कन्धार में कुछ लोग तसबीरें (मालायें) बनाकर अपना पेट पालते हैं, परन्तु वास्तव में इस प्रकार के शिल्प में कोई महत्त्व नहीं है। ये

भारत में अफ़ग़ानी जासूस।

मालायें अधिकतर हज-यात्रियों के लिए मक्काशरीफ़ भेज दी जाती हैं।

अफ़ग़ानिस्तान के युद्ध-विभाग में तुर्क लोगों का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। सेना में बहुत से तुर्की अफ़सर और सिपहसालार युद्ध-सम्बन्धी शिक्षा देने के लिए नौकर रक्खे गये हैं। अफ़ग़ानिस्तान का सैनिक सङ्गठन बड़ा ही विचित्र है, एशिया के और किसी देश में प्राचीन और नवीन युद्ध-पद्धतियों का ऐसा विलक्षण सम्मिलन आपको और कहीं नहीं मिल सकता। मुख्यतः सैनिकों के दो विभाग हैं, एक उष्ट्रारोही और दूसरा अश्वारोही। कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च कोटि की अश्वारोही सेनाओं की रचना ब्रिटिश भारतीय सेनाओं के ढङ्ग पर की गई है। अफ़ग़ान-फ़ौज में सिपाहियों की संख्या लगभग ८१,००० के होगी। यद्यपि सेना-विभाग ने पहाड़ों आदि जैसे दुर्गम स्थानों में व्यवहार करने योग्य बन्दूकें मँगा ली हैं; तथापि तोपों और गोलन्दाज़ों की संख्या पर्याप्त नहीं कही जा सकती।

अफ़ग़ानी लोग सुन्नी हैं। फ़ारस के शिया लोगों अथवा मध्यवर्ती पहाड़ी प्रान्त के हज़ारा-शिया लोगों से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। तुर्की लोग अपने आपको सुन्नी मतावलम्बी बतलाते हैं, इसलिए अफ़ग़ानी इनको विशेष आदर की दृष्टि से देखते हैं। धार्मिक वृत्तिवाले अफ़ग़ानी प्रतिवर्ष हज करने के लिए मक्काशरीफ़ जाते हैं। हज़ारा-शिया और उत्तर-पूर्व-दिशा में रहनेवाले कुछ सुन्नी लोग भी इमाम रेज़ा साहब की माज़ार-शरीफ़ की यात्रा करने के लिए मशहद शहर जाया करते हैं। कोई कोई सैकड़ों कठिनाइयों का सामना करते हुए फ़ारस के सङ्कट-पूर्ण मार्गों को पार करके मेसोपोटामिया के कर्बला को भी जाते हैं। अग्निपूजक पारसियों के समय से उत्तर-अफ़ग़ानिस्तान के माज़ारशरीफ़ नामक स्थान में एक मन्दिर बना हुआ है। उसकी यात्रा के लिए सैकड़ों यात्री वहाँ जुटते हैं। सच पूछा जाय तो अफ़ग़ानिस्तान में ऐसे बहुत कम ग्राम होंगे जिनमें छोटी-बड़ी किसी प्रकार की मसजिद या जियारतगाह न हो।

सामूहिक रूप से अफ़ग़ान-जाति आज भी अपने पश्चिमवर्ती मुस्लिम भाइयों की अपेक्षा कुरान-शरीफ़ की आज्ञाओं का अधिक पालन करती है। स्वभाव से ही ये लोग विदेशियों को उदासीन भाव से देखते हैं। यह अमीर साहब की कुशल राजनीति का ही फल है कि विदेशियों ने यहाँ अपना आवश्यकता से अधिक प्रभाव नहीं जमा पाया है और न भविष्य के लिए ही इसकी कोई आशङ्का हो सकती है। इसका यह अर्थ नहीं कि अमीर या उनके सहकारी राजनीतिज्ञ अपने देश से बाहर के कोलाहल-पूर्ण जगत् से अथवा उसकी युगान्तरकारी घटनाओं से सर्वथा निश्चिन्त रहते हैं। यद्यपि अफ़ग़ान लोग निरक्षर हैं, तथापि आधुनिक इतिहास अथवा भौगोलिक परिस्थितियों का उन्हें इतना अधिक ज्ञान है कि कभी कभी उसको सुनकर अवाक् रह जाना पड़ता है। विगत महायुद्ध में किस देश ने कैसा भाग लिया है तथा हवाई जहाज़ों और गोताख़ोर जहाज़ों ने किन किन भयङ्कर रीतियों से नरनाश किया है, यह आप किसी भी अफ़ग़ानी से पूछ सकते हैं।

इस समय समस्त मुस्लिम-संसार में एक नवीन जाग्रति का सञ्चार हो रहा है। अफ़ग़ानिस्तान इससे शून्य नहीं। संसार में यद्यपि इस समय प्रकृत रूप से कोई युद्ध नहीं चल रहा है, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि इस ऊपरी शान्ति के भीतर भयङ्कर अशान्ति की अग्नि धधक रही है। पूर्व और पश्चिम के महान् शक्तिशाली राष्ट्र सम्प्रति अपनी अपनी आत्मप्रतिष्ठा में संलग्न हो रहे हैं, किन्तु थोड़े ही दिनों में देखेंगे कि अफ़ग़ानिस्तान के रूप में उनका एक प्रबल प्रतिद्वन्द्वी उठ खड़ा हुआ है। प्रश्न यह है कि लोग प्रतिद्वन्द्विता का भाव छोड़ कर सहकारिता का भाव कब ग्रहण करेंगे ?*

दीनदयालु श्रीवास्तव

मनःसंयोग।

सुशिक्षित कहलानेवाले बहुत से लोगों का यह स्वभाव है कि जो बात उनकी समझ से परे हो उसकी वे खिल्ली उड़ाते या उसको मानने से बिलकुल इनकार कर देते हैं। यद्यपि उनकी यह प्रवृत्ति दिन पर दिन कम हो रही है, तो भी आध्यात्मिक बातों की हँसी उड़ानेवालों की—विशेषतः पश्चिमी भौतिक विज्ञान के पाण्डित्य-मद से उन्मत्त लोगों की—संख्या इस देश में अभी बहुत अधिक है। आध्यात्मिक चमत्कार, योग-सिद्धि और ऐसे ही किसी अन्य विषय का नाम सुनकर ये लोग चट नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं और छिः छिः करते नहीं थकते। क्योंकि पदार्थ-विज्ञान की दृष्टि में मनुष्य अपने भौतिक शरीर के व्यापारों और चेष्टाओं का समुच्चय-

* सङ्कलित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र है—वह एक ऐसी कल है जो खा, पी, सो, सोच, इच्छा और अनुभव कर सकती है। पदार्थ-विज्ञान जड़ प्रकृति को छोड़कर किसी सूक्ष्म अध्यात्म-तत्त्व-आत्मा—का स्वीकार ही नहीं करता। सो वह इन्द्रियातीत विषयों का अन्वेषण करने का कष्ट ही नहीं सहन करना चाहता।

परन्तु कुछ समय से इसके भाव में परिवर्तन होने लगा है। एक्स रे (X-Ray) और रेडियम, विद्युत्-कण (electron) और मार्कोनी के बेतार समाचार भेजने की रीति ने इन्द्रियगोचर विषय को ही सब कुछ माननेवाले वैज्ञानिकों के विश्वास को भारी धक्का पहुँचाया है। इसी लिए सर विलियम क्रूक्स, सर आलीवर लॉज, प्रोफ़ेसर बैरट, डाक्टर एल्फ्रेड, रसल, वालस और कमीले लफेमेरियन जैसे अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की ओर झुके हैं। इन लोगों ने उन क्षेत्रों में अन्वेषण करना आरम्भ कर दिया है जो आज से कुछ समय पूर्व केवल मूर्खता की बात समझे जाते थे। अब वैज्ञानिकों को मालूम हो गया है कि उनके माने हुए जड़ जगत् के परे भी कोई अभौतिक जगत् है, जिसके विषय में उन्हें अभी कुछ भी ज्ञान नहीं।

वर्तमान युग आविष्कार का युग कहा जाता है। इस युग में अनेक नवीन और आश्चर्यजनक आविष्कार हुए हैं। परन्तु वास्तव में इस युग का सबसे बड़ा आविष्कार यह है कि मनुष्य की पाँच ज्ञानेन्द्रियों का क्षेत्र बड़ा ही संकुचित है। विद्युत्-शास्त्र इस युग में छलाँगें मारकर आगे बढ़ा है। उसकी इन लम्बी-चौड़ी छलाँगों ने प्रकृति के क्षेत्र में ऐसी सम्भावनाओं का उद्घाटन किया है जिनका कभी स्वप्न में भी विचार न था। अब कोई भी विचार-शील सच्चा वैज्ञानिक मनुष्य का लक्षण एक हाड़-मांस का पुतला नहीं करेगा। मनोविज्ञान के क्षेत्र में, प्राचीन तथा अर्वाचीन काल में, जो अनुसंधान हुए हैं वे सब इसी बात की पुष्टि करते हैं कि केवल प्रकृति ही सब कुछ नहीं।

मनुष्य भौतिक देह और अभौतिक आत्मा के संयोग का नाम है। देह नश्वर है और आत्मा अमर है। आत्मा पर शरीर के अच्छा या बुरा होने का भी प्रभाव पड़ता है। जिन लोगों ने मनुष्य के कपाल की बनावट से, उसके हाथ से, मुखाकृति से, और रेखाओं से उसके मन की अवस्थाओं का अध्ययन किया है वे जानते हैं कि शरीर से चरित्र और प्रकृति में बड़ा भेद पड़ जाता है। अनेक लोग ऐसे हैं जो मनुष्य की मुखाकृति, नेत्रों की स्थिति, और चाल-ढाल को देखकर चटपट उसके चरित्र को ताड़ जाते हैं। इसी लिए कहा जाता है कि नीरोग शरीर में नीरोग मन निवास करता है।

मान लीजिए कि दो मनुष्य ऐसे हैं जिनके मन, अनेक दृष्टियों से, एक समान तुले हुए हैं, परन्तु उनकी शारीरिक इन्द्रियाँ असमान रूप से बलवती हैं—उनमें से एक का हृदय दुर्बल, या पाचन-शक्ति मन्द, या पित्ताशय अव्यवस्थित है।

अब सोचने की बात है कि क्या अव्यवस्थित पित्ताशय का उसके मन पर कुछ प्रभाव न होगा? इतना ही नहीं, इसका दूसरे लोगों पर भी प्रभाव पड़ेगा।

परन्तु कहा जा सकता है कि चरित्र इन ऊपर की बातों में नहीं, वह इनसे अधिक गहरा है। पित्ताशय, आमाशय, और हृदय चाहे कितने ही महत्त्व-पूर्ण अवयव क्यों न हों, परन्तु केवल इनकी दशा को जान लेने से ही आप मनुष्य का चरित्र नहीं जान सकते। यह बात ठीक है, चरित्र इन अवयवों से बहुत गहरा है। परन्तु फिर भी सारे शरीर-यन्त्र से ही चरित्र का गठन होता है।

मनुष्य के कपाल का आकार शेष सभी जन्तुओं से भिन्न है। यह उन सबके कपालों की अपेक्षा, क्या कानों के ऊपर और क्या उनके सामने की ओर, बहुत अधिक विकसित है। दूसरे जन्तुओं के कानों के इर्द-गिर्द तथा उनके पीछे का भाग मनुष्य के सदृश ही विकसित होता है; परन्तु उनमें से किसी के भी—बन्दरों तक के भी—मनुष्य का ऐसा विकसित माथा या उन्नत खोपड़ी नहीं होती।

यह बात बड़े महत्त्व की है, क्योंकि मस्तिष्क के ऊपरी भाग में स्थित अवयवों (organs) के व्यापारों के विषय में जो आविष्कार हुए हैं उन पर इससे बहुत प्रकाश पड़ता है। प्रोफ़ेसर ह्यूस्टन का कथन है कि प्रत्येक सकर्मक या चैतन्य मस्तिष्क से विचार-ज्योति निःसृत होकर उसके इर्द-गिर्द के अन्तरिक्ष में फैलती रहती है।

अब यह बात मालूम हो चुकी है कि मस्तिष्क के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक भाग का विशेष मानसिक क्षमताओं की अभिव्यक्ति के साथ सम्बन्ध है।

मस्तिष्क के ऊपरी प्रदेश में महानुभावता, वदान्यता, आदर्शता और आध्यात्मिकता के करणों की स्थिति है। जिस मनुष्य के कपाल का यह भाग—चोटी—जितनी अधिक ऊँची होगी उसमें उसी अनुपात से ये मनःशक्तियाँ अधिक होंगी। जिन लोगों की अध्यात्म-विषय में प्रवृत्ति होती है उनमें यह बात स्पष्ट-रूप से देखी जा सकती है। ऋषि दयानन्द और महात्मा बुद्ध के चित्रों को ध्यान-पूर्वक देखने से ऊपर के कथन की सत्यता मालूम हो जायगी। यह नहीं कहा जा सकता कि मस्तिष्क मानसिक झुकाव या धार्मिक प्रवणतायें उत्पन्न करता है; परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि जिस प्रकार मूर्ख और मन्द-बुद्धि लोगों की खोपड़ी नीची होती है, उसी प्रकार सब आध्यात्मिक और कुशाग्रबुद्धि लोग अपेक्षाकृत उन्नतसिरोंवाले मिलेंगे।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि विशेष-लक्षणों, और ख़ास कर प्रकृति-सम्बन्धी गुणों का शरीर में रुधिर की राशि, हृदय के व्यापार और पित्ताशय के साथ गहरा सम्बन्ध है। निम्न कोटि के जन्तुओं के सदृश, शरीर के विशेष करणों को काम में लाने से मन की विशेष शक्तियाँ बनी हैं। खाना, पीना, व्यायाम, बोलना, गाना, हाथ से काम करना, देखना, चित्तक्षोभ और मनोविकार मस्तिष्क के विशेष प्रदेश को उत्तेजित तथा विकसित करते, एवं उनके अनुरूप भौतिक करणों को पुष्ट बनाते हैं।

परन्तु खोपड़ी (सिर का सबसे ऊपर का भाग) और आध्यात्मिक शक्तियाँ किन शारीरिक करणों या व्यापारों के अनुरूप हैं?

जहाँ तक हमारा ज्ञान पहुँचता है, ये किसी के भी अनुरूप नहीं।

हृदय मस्तिष्क के निचले प्रदेश (basilar) के सदृश ऊपरी मस्तिक को भी रुधिर देता है, यद्यपि उतनी राशि में नहीं। अपनी चेष्टायें बनाये रखने के लिए शरीर को किसी प्रकार के भौतिक साधनों को आधार बनाने का प्रयोजन है, परन्तु न केवल (मस्तिष्क के सबसे ऊपर के coronal region) ये करण शरीर से सबसे अधिक परे हैं, बरन यह एक सर्वविदित बात है कि संमोहन या समाधि-अवस्था और चेतनता के ऐसे ही अन्य रूप एक बड़ी सीमा तक शारीरिक जीवनी शक्ति से सर्वथा स्वतंत्र ही प्रतीत होते हैं। ये अवस्थायें वस्तुतः उसी समय पैदा होती हैं जब इस जीवनी शक्ति की लहर बहुत ही नीचे उतरी हुई होती है।

अब यदि शरीर का इन आध्यात्मिक शक्तियों (faculty) के साथ अपेक्षाकृत थोड़ा सम्बन्ध है—यदि शरीर चिरकाल से अपनी शक्तियों के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुका है, और यदि मस्तिष्क की खोपड़ी का यह प्रदेश शरीर से लगभग सर्वथा स्वतंत्र-रूप से व्यापार करता है—तो हमें किन परिणामों पर पहुँचना पड़ता है? इस सार से हमें क्या अनुमान करना चाहिए?

हम समझते हैं वे अनुमान ये हैं—

(क) मनुष्य में ऐसी शक्तियाँ हैं जो उसे पाँच ज्ञानेन्द्रियों की सहायता के बिना ही संस्कार ग्रहण करने में समर्थ बनाती हैं।

(ख) ये शक्तियाँ उसे आध्यात्मिक उन्नति में समर्थ करती हैं, और इनकी सहायता से वह मेधावी, सूक्ष्मेन्द्रिय, सूक्ष्मदर्शी और सूक्ष्मश्रोता (clairvoyant and clairaudient) हो सकता और दृश्य साधन होने के बिना देख, सुन और संदेश भेज सकता है।

(ग) ऐसी शक्तियाँ, भीतरी रूप से, पाँच ज्ञानेन्द्रियों के समतल से ऊपर क्रिया करती हैं, इसलिए उनके लिए एक ऐसे जगत् की आवश्यकता प्रतीत होती है जिसमें वे वर्तमान भौतिक जगत् के निकटस्थ अवसरों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र विस्तार और प्रभाव प्राप्त कर सकें।

यह परिणाम मनुष्य का सम्बन्ध अभौतिक जगत् के साथ स्थापित करता है। मनःसंयोग (टेलीपेथी) भी उसी सम्बन्ध का एक अंश है।

मनःसंयोग की कारण-विवृति—हम ऊपर कह आये हैं कि विकास-सिद्धान्त की दृष्टि से मनुष्य-देह पूर्णरूप से विकसित हो चुकी है। अब उसके ह्रास का आरम्भ हुआ है। मनुष्य की बहुत निम्नकोटि की जातियों, बरन उनसे भी निम्न जन्तुओं में अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी विशेष इन्द्रियाँ हैं जो अतीव सभ्य मनुष्यों में, उनसे काम न लिये जाने के कारण, अंशतः या पूर्णतः सूखकर काम देने से बन्द हो गई हैं। अब भाफ, यंत्रविद्या और विद्युत्-शास्त्र की उन्नति से मनुष्य को सूँघने या सुनने या देखने की इन्द्रियों से, जो किसी समय उसके लिए यथासम्भव सबसे अधिक काम की चीज़ें थीं, अपेक्षाकृत कम काम लेने का प्रयोजन होता है।

किसी पशु को और किसी जङ्गली मनुष्य को अपने नेत्रों की सहायता के लिए चश्मे की, और न अधिक सन्तोषजनक रीति से सुन सकने के कारण एयर ट्रम्पट की आवश्यकता नहीं पड़ती; परन्तु मनुष्य के लिए ऐसे सहाय की बार बार आवश्यकता होती है। मनुष्य 'एप बन्दर और बाघ' की अपेक्षा बड़ा मस्तिष्क रखने के कारण देखने या सुनने या सूँघने की इन्द्रियों-द्वारा प्राप्त होनेवाली जानकारी पर कम निर्भर रहता है; इसलिए सभ्य मनुष्य में इन इन्द्रियों की शक्ति का क्षय देख पड़ता है।

इस क्षति के बदले में प्रकृति ने मनुष्य को ऐसी मनःशक्तियाँ दी हैं जिन्होंने पशु और जङ्गली मनुष्य के तीक्ष्ण इन्द्रिय-अनुभव की कमी को पूरा कर दिया है। मनुष्य का मस्तिष्क, अपने आयतन और त्वक् (cortex) की ऐंठनों की मिश्रता की दृष्टि से, निम्नश्रेणी के पशुओं से बहुत बढ़ा हुआ है। इस कारण वह उनकी अपेक्षा उच्चतर बुद्धि और अधिक विशेषक मनःशक्तियाँ दिखला सकता है*। यह बात प्रायः मानी हुई है कि मस्तिष्क के विशेष प्रदेशों का सम्बन्ध मन की विशेष विशेष शक्तियों की अभिव्यक्ति के साथ है।

यह देखा गया है कि कान को नाप का केन्द्र मानकर सब "बौद्धिक" क्रियायें सामने के भाग में होती हैं और सब "पशु"-प्रवृत्तियाँ कानों के इर्द-गिर्द और उनके पीछे रक्खी हुई हैं; नैतिक, धार्मिक और रसज्ञान-सम्बन्धी भाव मनुष्य में उतने ही अधिक होते हैं जितनी कि कानों से ऊपर की ओर उसके मस्तिष्क की उँचाई अधिक होती है।

* देखो "Scientific Phrenology" p. 4. Grant Richards, 1902.

यह भी मालूम किया गया है कि क्योंकि कपाल का आकार उसके भीतर बन्द मस्तिष्क के प्रायः बराबर होता है, इसलिए मानसिकता का निश्चय कपाल से किया जा सकता है। इसी प्रकार "चरित्र" भी मस्तक की जाँच से जाना जा सकता है।

इस प्रकार मोटे तौर पर सहज ज्ञानवाले जीवों में (basilar developments) मस्तिष्क के निचले भाग का विकास सबसे अधिक पाया जाता है। इसके विपरीत बुद्धि के लिए विख्यात मनुष्यों में कानों के आगे की ओर मस्तिष्क का आयतन सबसे अधिक होता है। जिन लोगों में आध्यात्मिक और धार्मिक भाव बहुत अधिक होते हैं उनके मस्तिष्क का उपरि भाग ऊँचा उठा हुआ और भरा-पूरा देखा जाता है। ऊँचे दरजे की मानसिक ग्रहण-क्षमता के साथ सदा ही खोपड़ी की सामान्य उँचाई और सिर के इस भाग के नीचा होने के साथ 'आध्यात्मिक' विषयों को ग्रहण करने की शक्ति और अदृष्ट चीज़ों में श्रद्धा की अनुरूप न्यूनता पाई जाती है।

प्रायः देखा गया है कि जिन लोगों के मस्तिष्क का यह प्रदेश विकसित होता है उनके अङ्ग पतले, कोमलता से गढ़ी हुई आकृति, सूक्ष्म त्वचा और क्षीण मूर्ति होती है। दूसरे शब्दों में कोमल इन्द्रियविन्यास ही उच्चतर वेग के साथ कम्पन करने के लिए उपयुक्त जान पड़ता है; यही उस प्रकृति के साथ सम्पर्क कर सकता है जो हमारे विचार से परे है। इन सूक्ष्म शक्तियों के विकास के लिए पहले शरीर की स्थूलता को कम करना परमावश्यक है।

जिस प्रकार शब्द की तरङ्गें वायु में चलती हैं, वैसे ही विचार-तरङ्गें ईथर (आकाश) में चलती हैं। जैसे शब्द-तरङ्गें वास्तविक और उपपादनीय हैं वैसे ही विचार-तरङ्गें भी वास्तविक हैं। सूचक-चिकित्सा (Suggestive treatment) और विचार-स्थानान्तरकरण (Thought-transference) आदि घटनाओं का समाधान इन तरङ्गों को माने बिना नहीं हो सकता। ईथर (अर्थात् अतीव सूक्ष्म रूप में प्रकृति) से कोई स्थान ख़ाली नहीं। इसलिए विचार-तरङ्ग भी सर्वत्र जा सकती है, जिससे मन विश्वव्यापक हो जाता है।

मन की चेष्टा आवश्यक रूप से केवल दो व्यक्तियों तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही परिमित नहीं। यह एक ही समय में दो या दो से भी अधिक जातियों पर भी प्रभाव डाल सकता है। वायु की तरङ्गों के सदृश विचार-स्पन्दन भी एक मन से दूसरे मन में ढकेले जाते हैं।

क्रियात्मक मनोविज्ञान की दृष्टि से मानव-मन दुहरा माना जा सकता है। संमोहन, निद्राभ्रमण (सोमनेबुलिज्म), मोहन-विद्या (मेस्मरिज़म), मनःसंयोग (टेलीपेथी), स्वतश्चल लेख (Automatic writing) और स्वप्न आदि इस बात को दिखलाते हुए प्रतीत होते हैं कि यह प्राथमिक और गौण चेतना (Consciousness) का बना है। प्रत्येक चेतना स्वतन्त्र-रूप से कार्य करती है। बरन एक को दूसरी का ज्ञान तक नहीं रहता।

साधारण जाग्रत चेतना को हम सब थोड़ा-बहुत जानते हैं। इसके द्वारा हमारा अपनी समीपस्थ परिस्थिति से सम्बन्ध होता है; इसके बीच में पड़ने से हम इन्द्रिय-संस्कारों को प्राप्त करते और आनुमानिक रीति से तर्क करने में समर्थ होते हैं। परन्तु चेतना के जिस रूप को अनाविष्कृत मन (Sub-conscious mind) कहा जाता है वह साधारण लोगों को स्पष्ट नहीं होता। परन्तु यही मन है जिस पर "सूचना" अपना प्रभाव डालती है, जो हमारी जाग्रतावस्था में छिपा रहता है, और जो "दिवास्वप्न" के समय, "कल्पना" की दौड़-धूप में, और उस समय सकर्मक होता है जब निद्राभ्रमण, हिप्नोटिज्म, और माध्यमता (Medium-ship) के कार्यों की अनुभूति हो रही होती है।

इस "अनाविष्कृत मन" की एक बड़ी विशेषता यह है कि "सूचना" जितना भी चाहे इस पर प्रभाव डाल सकती है। और क्योंकि शरीर के व्यापार, अनुभव (Sensation) और अवस्थायें इसके वश में होती हैं, इसलिए इच्छा-शक्ति-द्वारा रोगों की चिकित्सा बहुत अधिक सफल होती है। विचारों को एक स्थान से दूसरे स्थान में भेजने या दूरी पर से अनुभव करने का काम इसी के द्वारा सम्पन्न होता है। पागलपन में निस्सन्देह विषयाश्रित (Objective) मन रुक जाता और अनाविष्कृत मन बाहर निकल आता है।

प्रत्येक विचार, अपने स्वरूप के अनुसार, एक स्पन्दन उत्पन्न करता है, और यह कम्पन मानसिक कणिकाओं की एक रेखा के साथ साथ ले जाया जाता है, और (यदि कोई दूसरे कम्पन बीच में रुकावट न पैदा कर दें) दूसरे व्यक्ति की मनोरचना में वैसाही कम्पन उत्पन्न कर देता है। इसी कारण विचार को दूसरे व्यक्ति के पास भेजने में सफलता होना सम्भव होता है। परन्तु सन्तोष-जनक परिणामों की प्राप्ति के लिए पहले विशेष अवस्थाओं का उपस्थित होना आवश्यक है।

मनःसंयोग के द्वारा किस प्रकार एक मनुष्य के विचार दूसरे तक पहुँचते हैं, यह बात बाजे के एक स्वर तथा काँच के एक सादे उदाहरण से स्पष्ट हो सकती है। शब्द पवन की तरङ्गों-द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचता है। ये तरङ्गें बाजे के उस स्वर के अनुसार कम या अधिक शीघ्रता से थरथराती हैं। इस प्रकार उत्पन्न हुई लहरों का ऐसी प्रत्येक वस्तु पर प्रभाव पड़ता है जो कम्पनों के वैसेही वेग से स्वर उत्पन्न करती है।

यही दशा मन की है। ईथर, जिसमें मन क्रिया करता है, कोई कल्पित वस्तु नहीं, यह विचार-स्पन्दनों का वाहक सिद्ध हो चुका है। अब मान लीजिए कि दो मन, एक दूसरे से दूर, किसी विशेष समय में एकही शिखर पर पहुँचे हुए हैं, अर्थात् वे एक समान वेग से कम्पन कर रहे हैं, तो ऐसी दशा में जो कुछ होता है वह यह कि वे परस्पर विचार-धाराओं का सङ्ग्रह कर लेते हैं।

मनःसंयोग के अभ्यास के लिए जिन अवस्थाओं का होना ज़रूरी है अब उन पर अल्प विचार किया जाता है।

विचार-धाराओं को भेजते समय भेजनेवाले तथा ग्रहण करनेवाले दोनों में यथासम्भव किसी प्रकार का मज्जा-तन्तुगत तनाव (Nervous tension) नहीं होना चाहिए। स्थिरता और पूर्ण निस्तब्धता इसके लिए अपरिहार्य हैं। दूसरे इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए यह भी आवश्यक है कि दोनों की इस क्रिया में सहानुभूति-पूर्ण रुचि हो। इस प्रयोग में भाग लेनेवाले लोगों को चाहिए कि आत्म-संयम से काम लें, और किसी प्रकार के संशय, उपहास या चपल वृत्ति को मन में स्थान न लेने दें। अनुसन्धान-कर्त्ताओं के मन में इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोगों की सचाई की परीक्षा के लिए प्रबल अभिलाषा ही काम कर रही हो।

इन अवस्थाओं को प्राप्त कर लेने के बाद, मान लीजिए कि क और ख दो व्यक्ति इस प्रकार मनःसंयोग-द्वारा संलाप करना चाहते हैं। क कमरे के एक कोने में बैठ जाता है और ख दूसरे में। क बलपूर्वक "विचार करता" है और ख अपने मन को यथासम्भव ख़ाली करके "ग्रहण करने" के भाव से बैठता है, यहाँ तक कि वह क से किसी प्रकार का "संस्कार" प्राप्त करता है।

क में अपनी किसी प्रकार की श्रेष्ठता का भाव नहीं उत्पन्न होना चाहिए। उसका यही यत्न होना चाहिए कि अपने तथा ख के बीच संलाप की एक रेखा स्थापित करे।

इन प्रयोगों में, सबसे बढ़कर, विश्राम का भाव होना चाहिए। इन बातों से बचना चाहिए—

शीघ्रता,
अधीरता,
व्यग्रता
लघुता,

यत्न यह होना चाहिए कि इर्द-गिर्द की चीज़ों से भी शान्ति और प्रसन्नता टपके। क अब किसी सादी सी बात का, जैसा कि ख को उसकी कुरसी पर से उठाने का, "विचार" करता है। उसे अपने विचार का संस्कार ख पर डालने के लिए इस प्रकार यत्न करना चाहिए।

क (अपने मन में) कहता है—"मैं तुम्हें अपने सामने बैठा हुआ देखता हूँ।" (इस समय उसे ख का मानसिक चित्र तैयार करना चाहिए, जिसमें ख का प्रत्येक अंग स्पष्ट देख पड़े); "मैं अब चाहता हूँ कि तुम उठो; मैं तुम्हें उठता हुआ देखता हूँ; तुम अपने पाँव को दृढ़तापूर्वक भूमि पर रखते हो; तुम अपने शरीर को कुरसी पर से उठाते और मेरे सामने सीधे खड़े हो जाते हो।"

इस सारे समय में क कल्पना करता रहता कि ख इस काम में भाग ले रहा है। अब यदि अवस्थायें सन्तोषजनक हों तो ख के मन में सचमुच क के इच्छानुसार उठकर खड़े हो जाने का आवेग उत्पन्न होगा। फलतः वह सहज बुद्धि से ही ऊपर कही रीति से अपनी कुरसी पर से उठ खड़ा होगा।

प्रारम्भ में सादी आकृतियों और मूर्तियों को ही दूसरे के पास भेजने का अभ्यास करना चाहिए। उदाहरणार्थ, भेजनेवाला वृत्त, त्रिकोण, चेहरा, अक्षर आदि कोई चीज़ चुन ले, और ध्यानपूर्वक दीवार पर—या कोई काला परदा हो तो और भी अच्छा है—टकटकी लगाकर देखे; और ग्रहण करनेवाला आनेवाले संस्कारों का "संग्रह" करने का यत्न करे; वह भी इन क्रियाओं में उसी स्थान पर अपना ध्यान लगाये रक्खे।

इस काम के लिए कुछ सामान्य वस्तुओं की सूची आगे दी जाती है—

एक मेज़	एक कुत्ता	एक चित्र
" घोड़ा	" तारा	" ताश का पत्ता
" फूल	" अँगूठी	" कोड़ा
" पेड़	" घड़ी	इत्यादि
" सुई	" मकान	
" खिड़की	" गाड़ी	
" टोपी	" चिमटा	
" कुरसी		

कहने का प्रयोजन नहीं कि विचार भेजनेवाला वस्तुओं के चित्र न कि शब्दों के चित्र भेजने का अभ्यास करे। पहले (१) क्रियाओं के, फिर (२) विचारों के, और तत्पश्चात् (३) भावों के संस्कार भेजने का अभ्यास करना चाहिए।

स्वाद का संस्कार भेजने के लिए भेजनेवाला फल का टुकड़ा, शक्कर, नमक, मिर्च या अचार अपने मुँह में रख-कर उसके स्वाद को ग्रहण करनेवाले के पास भेजने का अभ्यास करता है। इस रीति से कई बार ग्रहण करनेवाले को ऐसा प्रबल अनुभव होता है कि उसे वस्तुतः पानी से कुल्ला करना पड़ता है।

ऊपर कहा गया है कि विचार भेजनेवाले तथा ग्रहण करनेवाले दोनों को एक कमरे में होना चाहिए। यह केवल आरम्भिक अभ्यास के लिए है। अन्यथा विचार-तरङ्गों के मार्ग में तो कोई भी चीज़ बाधा नहीं दे सकती। अभ्यस्त मनुष्य अपने किसी भी मित्र के पास,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहे वह कितनी ही दूरी पर क्यों न हो, संदेश और संस्कार, मानसिक संयोग-द्वारा, भेज सकता है।

आगे लिखा वृत्तान्त १७ जुलाई १९०३ के डेली एक्सप्रस नामक पत्र से लिया गया है। यह मनःसंयोग-द्वारा दूर स्थानों के बीच संलाप का एक उदाहरण है—

"कल साँझ को छः मनुष्यों की एक समिति के सामने रिव्यू आव् रिव्यूज़ के कार्यालय में विचार के स्थानान्तरकरण के कुछ प्रयोग किये गये थे। ३९ हार्ले स्ट्रीट के डाक्टर वालसे और श्रीयुत डब्ल्यू० टी० स्टड भी उस समिति में उपस्थित थे। लन्दन से नाटिङ्घम को जो कि ११० मील की दूरी पर है मनःसंयोग-द्वारा संदेश भेजे गये थे।

संयुक्त-राज्य (अमरीका) के श्रीयुत रिचर्डसन, एम० डी० को यहाँ लन्दन में संख्यायें, नाम और समय दिये गये, और उन्होंने मज्जातन्तुओं को बहुत से झटके देकर उन संख्याओं आदि को नाटिङ्घम में एक माध्यम के पास भेज दिया। कमरे के प्रत्येक द्वार पर पहरा लगाया गया था ताकि कोई साथी परिणाम को सुनकर टेलीफोन-द्वारा नाटिङ्घम न भेज दे, और श्रीयुत रिचर्डसन समिति के किसी सभ्य को भी पहले से नहीं जानते थे।

ऐसा प्रबन्ध किया गया था कि श्रीयुत फ्राङ्क्म नाम के एक व्यक्ति नाटिङ्घम में साँझ के ६ और ८ बजे के बीच मनःसंयोग-द्वारा संदेश पाने की आशा करेंगे। संदेशों के पहुँचते ही उन्होंने तत्काल तार-द्वारा वह संदेश तथा उसके पहुँचने का समय भेज दिया। इन साधनों-द्वारा एक दूसरे से सैकड़ों मील के अन्तर पर बैठे हुए दो मनुष्यों के आपस में गाँठ-साँठ कर लेने की कोई सम्भावना नहीं हो सकती थी।

छः बजने के कुछ ही मिनट पूर्व श्रीयुत रिचर्डसन एक विशेषरूप से निरुपद्रव देख पड़नेवाली कुरसी पर बैठे हुए समिति के सभ्यों के साथ मज़े से बातें कर रहे थे। उनके मुखमुण्डल पर कोई भी बात ऐसी नहीं देख पड़ती थी जिससे यह सूचना मिलती कि वे अपने विचारों को ढाई घंटे की रेल की यात्रा की दूरी पर फेंक सकते हैं। वे अपनी उँगलियों को निरन्तर थपथपा रहे थे। बस यही एक बात उनके उच्च तनाव की द्योतक थी।

ज्योंही घड़ी ने छः बजाये कि श्रीयुत रिचर्डसन में एक भारी परिवर्तन पैदा हो गया। वे अपनी कुरसी पर से उछल पड़े, और दाँई बाँह को ऊपर उठाये हुए एक-दम पीछे हट गये, जैसे किसी आक्रमण से अपने को बचा रहे हों। पक्षाघात के रोगी के सदृश उनका बायाँ पक्ष और सिर कड़ा हो गया। परन्तु उनके स्वर में कोई अन्तर नहीं पड़ा। उन्होंने अक्षुब्ध स्वर से कहा—'श्रीयुत फ्रांक्स ने मुझे बुलाया है'।

कहीं कोई आपस में मिले हुए न हों, इस विचार से समिति ने पर्चे (ballot) डालकर इस बात का निश्चय किया कि जाँच कौन करे। संख्या पाँच सौ पचपन, पाँच सौ उनासी, छः सौ छयासठ, सात सौ सतहत्तर, और आठ सौ अठासी में से अन्ततः ५७९ चुनकर श्रीयुत रिचर्डसन को दी गई। अक्षुब्ध होने के उद्देश से वे अकेले पास के कमरे में चले गये, और उनके सब ओर पहरा रक्खा गया।

छः बजकर ३४ मिनट पर श्रीयुत रिचर्डसन ने कहा कि मेरा संदेश नाटिङ्घम पहुँच गया, और ६३८ पर उन्होंने घोषणा की कि श्रीयुत फ्रांक्स ने तार-द्वारा समिति को संदेश भेज दिया है। तब उनसे पूछा गया कि श्रीयुत फ्रांक्स के घर से निकटतम तार-घर में तार ले जाने के लिए कितना समय लगेगा। उन्होंने उत्तर दिया कि "आठ और दस मिनिट के बीच"।

उचित समय में निम्नलिखित संदेश समिति को पहुँचा—

नाटिङ्घम, ६.४८ सायंकाल

संख्या ५७९ सात बजने में बीस मिनट पर पहुँची।

इस प्रकार ठीक-ठीक संख्या पहुँच गई और श्रीयुत रिचर्डसन के दिये हुए समय के अनुसार संदेश के स्थानान्तरकरण में छः मिनट लगे।

सबसे असाधारण परीक्षा वह थी जो समिति के विवरण के शब्दों में ही आगे दी जाती है।

पाँच बजे श्रीयुत लोज्ञ ने श्रीयुत फ्रांक्स को तार-द्वारा समय, अङ्क और स्थान का नाम भेजा। ये सब मनःसंयोग-द्वारा वापस भेजे जाने के लिए थे। श्रीयुत रिचर्डसन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को यह तार नहीं दिखलाया गया। समय की जाँच के लिए ७.२० निश्चित हुआ।

सात बजे श्रीयुत रिचर्डसन अपने कमरे में चले गये।

७.२२ पर वे वापस आकर कहने लगे, "समय ७.२० है। मुझे यह ७.२२ पर मिला है।"

अङ्क-परीक्षा—निश्चित की हुई संख्या ७७७ थी। ७.४० पर श्रीयुत रिचर्डसन ने लौटकर कहा, "यह ७७७ है।"

स्थान का निश्चित नाम "स्काटलेंड" था। ७.५८ पर श्रीयुत रिचर्डसन ने आकर कहा, "मुझे यह स्काट-लेंड समझ पड़ता है।"

इन सारे लम्बे-चौड़े प्रयोगों में श्रीयुत रिचर्डसन तथा उनके माध्यम (subject) से केवल एक ही भारी भूल हुई। दस मिनट कम सात पर रिचर्डसन ने कहा कि मैंने "वेल्ज़" शब्द भेजा है। इसके उत्तर में श्रीयुत फ्रांक्स ने तार दिया कि "नाम' इँगलेण्ड दस मिनट कम सात पर पहुँचा"। फलतः, यद्यपि विचार-स्थानान्तरकरण समकाल में हुआ, तथापि शब्द अशुद्ध समझा गया।

एक्सप्रस का एक प्रतिनिधि इन सब प्रयोगों के समय वहाँ उपस्थित था। साक्षात्कार करने पर श्रीयुत रिचर्डसन ने उससे कहा कि दूरी अधिक होने के कारण परीक्षायें यथा-सम्भव बहुत सादी रक्खी गई थीं। इससे कम दूरियों पर और अधिक उचित अवस्थाओं में मैं और श्रीयुत फ्रांक्स बहुत असाधारण परिणाम प्राप्त कर चुके हैं।

"जब कोई विशेष-रूप से परीक्षा ले रहा हो तब अपने मन को एकाग्र करना या सब विचारों को निकालकर इसे पूर्णतः ग्रहण योग्य बना देना बहुत कठिन होता है। इस समय घबरा जाने का डर रहता है।

"डाक्टरों और विचक्षण लोगों की समिति में संशय का होना अनिवार्य है। और मनः-संयोग-द्वारा संवाद भेजनेवाले के उच्च मज्जातन्तुगत तनाव (tension) को विरोधी की उपस्थिति से बढ़कर और कोई वस्तु क्षुब्ध करनेवाली नहीं। इन प्रयोगों में मेरी सफलता का कारण समिति में खुले मनवाले सभ्यों का होना है। वे सब गुण-दोष-विवेचक तो थे, परन्तु कट्टर संशयात्मा न थे।"

जब उनसे पूछा गया कि ऐसे संदेशों को प्राप्त करते समय आपको कैसा अनुभव होता था तब श्री रिचर्डसन ने कहा—

"वे एक चमक के सदृश आते थे। मान लीजिए कि आप मुझे यह संदेश पहुँचाना चाहते हैं कि ऊपर की आलमारी में एक पढ़ने लायक़ पुस्तक है तो मुझे इसका विचार ऐसे ही उत्पन्न होगा जैसे यह मेरा अपना ही हो, और मुझे ऊपर जाकर पुस्तक निकाल लेनी चाहिए।

"जब नाटिङ्घम में श्रीयुत फ्रांक्स पहले-पहल मेरे साथ संलाप करना चाहते थे तब मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो घण्टी बज रही है।

"घण्टी का कोई शब्द नहीं था—सहजावबोध की एक तेज़ झलक थी। मुझे आशा है कि मैं इस शक्ति को बहुत बढ़ा सकता हूँ, और दीर्घ अभ्यास से दूर से दूर स्थान पर भी विचारों को भेज सकता हूँ।"

उसी संवाद-पत्र के १८ जुलाई १९०३ से लेकर आगे दिया उद्धरण भी मनन करने योग्य है—

"रिव्यू आव् रिव्यूज़ के कार्यालय में जो मनःसंयोग-सम्बन्धी प्रयोग किये गये हैं और जिनका विवरण कल के अंक में प्रकाशित हो चुका है उनको देखकर श्रीयुत डब्ल्यू० टी० स्टैड को कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। स्मरण रहे कि श्रीयुत रिचर्डसन ने लन्दन से नाटिङ्घम को जो कि ११० मील की दूरी पर है विचार-स्थानान्तरकरण-द्वारा शब्द, संख्यायें और समय भेजे थे।

श्रीयुत स्टैड का कथन है कि इन प्रयोगों ने इस बात को और भी अधिक प्रमाणित कर दिया है कि दूरी की कुछ भी परवाह न करके एक मन के लिए दूसरे मन के साथ संलाप करना सम्भव है। साईकीकल रिसर्च सोसाइटी के वृत्तान्त मनःसंयोग के प्रमाणित उदाहरणों से भरे पड़े हैं, यद्यपि अक्सर हालतों में दोनों मनों को इस बात का ज्ञान न था कि विचार-संक्रमण होने-वाला है।

विचार-स्थानान्तरकरण संसार में अतीव साधारण बात है। आप एक संख्या लिखते हैं और एक व्यक्ति मेज़ के दूसरी ओर एक संख्या लिखता है, और दोनों संख्यायें एक ही निकलती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुधवार रात्रि के प्रयोगों में दिलचस्पी की बड़ी बातें दूरी की लम्बाई और संदेशों का निश्चित और यथार्थ होना था। मुझे आशा है कि कालान्तर में मैं उसी विधि से कोई भी शब्द या शब्द-समूह भेज सकूँगा।

कई लोग ऐसी विधियों से संदेशों को भेज और ग्रहण करते हैं जिनको वे समझ नहीं सकते। उदाहरणार्थ मुझे डेस्क पर बैठे हुए किसी व्यक्ति विशेष से मिलने की इच्छा उत्पन्न होती है, और मैं उस इच्छा पर अपने मन को एकाग्र करता हूँ। थोड़ी ही देर बाद वह मेरे कमरे में आ जाता है। मैं पूछता हूँ कि आप कैसे आये। वह केवल इतना ही कह सकता है कि वह अनुभव करता था कि मैं उससे मिलना चाहता हूँ।

'परन्तु आप किसी एक व्यक्ति की बात करते हैं जो आपके यहाँ नौकर है—जो साथ के कमरे में बैठा है?,

नहीं, नहीं। चाहे वह मनुष्य के नसिङ्गटन में बैठा हो, तब भी यह बात हो सकती है।

अलबत्ता, स्वतश्चल मनःसंयोग (Automatic telepathy)—अर्थात् तुम्हारी अपनी इच्छा के बिना ही तुम्हारा अनेक मीलों के अन्तर पर बैठे व्यक्ति के विचारों को लिखना—केवल शब्दों के मनःसंयोग से बहुत अधिक उन्नत बात है, इसकी एक अद्भुत घटना मेरे साथ आज ही घटी। मेरा एक मित्र जहाज़ पर इँग्लैंड आ रहा था। कुछ दिन हुए मैंने मनःसंयोग-द्वारा उससे कुछ प्रश्न पूछे। मेरे हाथ ने एक-दम लिखना शुरू किया, और पूरे और सविस्तर उत्तर लिख दिये।

"आज सवेरे मुझे अपने मित्र का पत्र मिला। उससे पता लगा कि जो कुछ मैंने लिखा था वह एक शब्द को छोड़ कर शेष सब अक्षरशः ठीक था। एक वाक्य का एक अंश सर्वथा अशुद्ध था क्योंकि मेरे हाथ ने 'नहीं' लिख दिया था जो कि वहाँ नहीं होना चाहिए था।"

मनःसंयोग की कुछ बातें जहाँ सच्ची निकलती हैं, वहाँ कुछ झूठी भी हो जाती हैं, इसका कारण श्रीयुत स्टॅड इस प्रकार बताते हैं। अफ्रीका के जंगली मनुष्यों को एक टेलीफ़ोन का यन्त्र दे दीजिए, और उन्हें इसके सिवा और कुछ न बताइए कि इसके-द्वारा तुम एक दूसरे से बातें कर सकते हो; वे अनेक प्रकार की भारी भूलें करेंगे और उन्हें विकलतायें होंगी, तब कहीं जाकर उनको यन्त्र के नियमों का पता लगेगा; परन्तु यदि वे बुद्धिमान् हों तो बीच में से आनेवाले कतिपय ठीक सन्देशों पर उन्हें विश्वास रखना चाहिए, और धैर्य्यपूर्वक प्रयोग करते जाना चाहिए, यहाँ तक कि भूल को निकालकर वे टेलीफोन को संलाप का यथार्थ और क्रियात्मक साधन बना सकेंगे।

श्रीयुत स्टॅड का कहना है कि हमें मनःसंयोग पर भी इसी प्रकार उद्यम करते रहना चाहिए। अन्त को हमें एक दिन इसका तत्त्व और इससे काम लेने की विधि अवश्य मालूम हो जायगी।

सन्तराम

गैसों के द्वारा विद्युत्प्रवाह।

यदि सभी लोग बिजली की अनेक करामातों और कुतूहल-प्रद बातों से स्वयं परिचित न होंगे तो कम से कम उसके बारे में कुछ न कुछ सुना या पढ़ा तो ज़रूर ही होगा। बड़े शहरों के रहनेवालों को तो बिजली की रोशनी का पूरा अनुभव है। वे बिजली-द्वारा चालित ट्राम या रेलगाड़ी के सुख का भी अनुभव करते हैं। उनमें कई एकों ने बिजली की दूसरी करामातों का भी सुख-भोग किया होगा। बिजली के पंखे, बिजली-द्वारा कड़ी सर्दियों में कमरों को गरम करने के यन्त्र, तरह तरह के खाना पकाने के यन्त्र और बरतन धोने के यन्त्र आदि अनेक प्रकार के यन्त्रों का उपयोग किया होगा या उनके बारे में सुना होगा। बड़े बड़े डायनमों अथवा छोटी छोटी बिजली की बैटरियों-द्वारा जो बिजली उत्पन्न की जाती है उसे किसी धातु के तारों के द्वारा जहाँ चाहें वहाँ पहुँचाकर उसका हर एक प्रकार के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े काम में उपयोग किया जा सकता है।

बिजली की बदौलत तार-द्वारा आप हिन्दुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे को बड़ी ही जल्दी, यदि ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्तज़ाम हुआ तो, एक-दो मिनट के अन्दर, ख़बर पहुँचा सकते हैं। यही नहीं, जो देश एक दूसरे से समुद्रों-द्वारा असंलग्न हैं, वहाँ भी सामुद्रिक तारों-द्वारा अर्थात् समुद्र के भीतर भली भाँति अवरोधित लम्बे तारों के द्वारा उसी प्रकार जल्दी ख़बर पहुँचा सकते हैं। यह बिजली के ही कारण हो सका है कि टेलीफ़ोनों के द्वारा हम शहर की एक कोठी में बैठ कर उसके दूसरे भाग में या देश के किसी दूसरे नगर में बैठे किसी व्यक्ति से भली भाँति बातचीत कर सकते हैं।

बे-तार के तार तथा बे-तार के टेलीफ़ोन के द्वारा आप दूरस्थ किंवा निकटस्थ नगर में बैठे हुए अपने मित्र के पास अपने कुशल-समाचार भेज सकते हैं और तदनुसार उसके भी जान सकते हैं। पाश्चात्य देशों की बात जाने दीजिए, कलकत्ता-बम्बई में ही आज-कल घर बैठे ही तार के खटराग के बिना भी किसी एक नियत स्थान पर होता हुआ गाना-बजाना या व्याख्यान या अन्य कोई वैसी ही बात सुनी जा सकती है। यह सब कुछ बिजली की कृपा से ही सम्भव हुआ है। यद्यपि यह सच है कि इन सब बातों के लिए बिजली एक स्थान से दूसरे स्थान तक नहीं ले जाई जाती तो भी इनके लिए उसकी एक प्रकार की तरङ्गों का उपयोग किया जाता है। जैसे पानी के तल पर पत्थर फेंकने से तरङ्गें उठती हैं, उसी प्रकार बिजली की तरङ्गें किसी स्थान पर उत्पन्न कर ली जाती हैं, जो तत्काल चारों तरफ़ फैल जाती हैं और उपर्युक्त यन्त्र-द्वारा उनका उपयोग कर उपर्युक्त आश्चर्य्यजनक कार्य्य सम्पन्न होते हैं। वैज्ञानिकों ने यह बात प्रायः पूर्णरीति से सिद्ध कर दी है कि संसार में जितने जड़, चेतन, भारी, हलके पदार्थ हैं वे सबके सब बिजली के आविर्भाव-मात्र हैं। यह तो आपको मालूम ही होगा कि संसार क्या सारे विश्व भर में केवल ९० या ९२ मूल पदार्थ हैं। इन ९० प्रकार के मूल-पदार्थों या परमाणुओं के परस्पर, एक-दो या अधिक के, संयोगमात्र से, प्रकृति ने सारी रचना की है। बीसवीं शताब्दी का विज्ञान अब यह बतला रहा है कि ये परमाणु और कुछ नहीं, केवल दो प्रकार की धनात्मक और ऋणात्मक बिजली के परस्पर सम्बन्ध-मात्र हैं। अर्थात् प्रत्येक प्रकार के परमाणु में और कुछ नहीं केवल एक धनात्मक बिजली के बिन्दु का भराव (Point Charge) है, अर्थात् एक छोटे से बिन्दु के जितने विस्तारवाले स्थान में धनात्मक बिजली भरी हुई है, सिवा इस भराव-मात्र के और कुछ नहीं है, और उसके चारों ओर इस भराव के अनुसार एक दो या अधिक ऋणात्मक बिन्दु-भराव परिक्रमण कर रहे हैं। जैसे सूर्य के चारों ओर पृथिवी, मङ्गल आदि ग्रह परिक्रमा करते रहते हैं, वैसे ही एक धनात्मक बिन्दु के भराव के चारों ओर ऋणात्मक भराव के कण परिक्रमा दे रहे हैं। जितने ऋणात्मक कण हैं, उतने ही बीच में धनात्मक भराव हैं, इसलिए मामूली अवस्था में कोई भी परमाणु शिथिल अवस्था में रहता है अर्थात् उसकी बिजली परस्पर सम्बन्धित रहती है और बिजली का असर बाहर कुछ भी नहीं दिखलाई पड़ता। परन्तु वास्तव में एक एक अणु में बिजली भरी रहती है, भरी हुई ही नहीं, किन्तु इन दो प्रकार की बिजलियों के सिवा वहाँ और कुछ भी नहीं रहता। इन्हीं बिजली के भरावों के कारण अणु में बोझ होता है, और दोनों प्रकार के भरावों के भिन्न भिन्न संगठनों से भिन्न भिन्न भाँति के परमाणु उत्पन्न होते हैं। वास्तव में प्रकृति की मौलिक ईंटें यही दो प्रकार की हैं, एक तो मौलिक ऋणात्मक विद्युत् कण और दूसरी धनात्मक विद्युत्-कण। एक धनात्मक और एक ऋणात्मक कण के मेल से हलके से हलके पदार्थ, आर्द्रजन नामक वायु के एक परमाणु का जन्म होता है। ७५ धनात्मक और उतने ही ऋणात्मक कणों के परस्पर सम्बन्ध से एक सोने का परमाणु संगठित है। भौतिक विज्ञान का यह सबसे नवीन सिद्धान्त है, पर इसके पूरे वर्णन तथा स्पष्टीकरण का यहाँ उपयुक्त अवसर नहीं। हाँ, इन वैद्युत्-कणों की एक झलकमात्र आगे आपको इस लेख में अवश्य मिलेगी। पहले दो प्रकार के बिजली के आविर्भावों का भी पूरा वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता, केवल उनके नाम-मात्र का ही परिचय करा दिया गया है।

ऊपर कह आये हैं कि मामूली तौर के बिजली के कुतूहल और उसकी करामातें आपके सामने तब आती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं जब कि कहीं न कहीं पर, चाहे डायनमो से, चाहे बैटरियों-द्वारा उत्थित बिजली की धारा आपके पास तारों-द्वारा पहुँचती है। यदि तारों-द्वारा सम्बन्ध न हो तो बिजली की धारा चल ही नहीं सकती।

इस प्रकार यदि बिजली की बैटरी के धनात्मक और ऋणात्मक सिरों को आप तार-द्वारा जोड़ दें तो उसमें से बिजली की धारा प्रवाहित हो जाती है। बैटरी में बिजली उत्पन्न होती है और दोनों सिरों के द्वारा वह सदैव निकलने के यत्न में रहती है। यदि उसको निकलने का कोई मार्ग मिल गया तो वह निकल भागती है। यदि आप एक सीधा नल खड़ा कर दें, जिसका नीचे का सिरा बन्द हो, और उसमें पानी भर दें, तो आप जानते हैं कि उस पानी में सदैव यह प्रवृत्ति रहती है कि यदि मार्ग मिले तो वह निकल भागे। इस प्रकार के दो सीधे नल खड़े करो और उनके नीचे के भाग आपस में जोड़ दो, परन्तु जोड़नेवाले नल में एक टोंटी लगा दो, जिसके-द्वारा आप दोनों खड़े नलों में जब चाहें सम्बन्ध कर दें, जब चाहें टोटी घुमाकर उनको असम्बद्ध कर दें अर्थात् उनका सम्बन्ध तोड़ दें। फिर दोनों नलों में पानी भर दो, पर एक में पानी का तल ज़्यादा ऊँचा हो। इसके बाद बीच की कुंजी घुमाकर उन्हें सम्बन्धित कर दो। ऐसा करते ही पानी एक नल से दूसरे नल में बह जायगा और तब तक बहता रहेगा जब तक कि दोनों नलों में पानी की सतह सम न हो जायगी। जिस नल में पहले पानी ज़्यादा ऊँचाई तक था उसमें पानी का दबाव दूसरे की अपेक्षा ज़्यादा था और इसी दबाव के कारण पानी उस नल से दूसरे नल तक बहता है।

इसी प्रकार उक्त बैटरियों के सिरों में भी बिजली का दबाव पैदा होता है और जब कभी दोनों सिरों को धातु के तार-द्वारा मिला देते हैं तब उसी दबाव के कारण बिजली की धारा बह निकलती है। दबाव की कमी या अधिकता पर ही बिजली की धारा की घट-बढ़ निर्भर है। यदि दो बैटरियों को शृंखला-बद्ध जोड़ दें तो बिजली का दबाव दूना हो जायगा और उसी पहले तार के द्वारा दोनों सिरों को जोड़ देने से धारा भी दूनी हो जायगी। यदि तार कहीं से टूटा हुआ होगा तो मामूली हालतों में धारा नहीं बह सकती। क्योंकि टूटे हुए तार के दोनों सिरों के बीच हवा आ जाती है और हवा बिजली का अवरोधक है अर्थात् हवा के द्वारा मामूली हालतों में विद्युत्-प्रवाह नहीं हो सकता। पर यदि आप बैटरियों की संख्या बढ़ाते जायँ तो एक समय ऐसा आयगा जब बैटरियों की बहुतायत के कारण बिजली के दबाव का इतना ज़्यादा ज़ोर होगा कि वह उक्त हवा के अवरोध को तोड़ देगा, अर्थात् हवा के अवरोध में इतनी शक्ति न रहेगी कि बिजली के इस भारी दबाव को सँभाल सके और तब बिजली की धारा बह निकलेगी—बिजली की एक चिनगारी तार के टूटे हुए सिरों के बीच हवा में होकर निकल पड़ेगी, और यदि दबाव काफ़ी हुआ तो इस प्रकार का सतत सम्बन्ध बन जायगा।

बिजली के इतने बड़े दबाव को पैदा करने के लिए कि वह हवा या अन्य किसी गैस में भी बिजली की धारा का सञ्चालन कर सके, बहुत ही ज़्यादा बैटरियों की ज़रूरत होती है। एक मामूली बैटरी में जो बिजली का दबाव पैदा हो सकता है उसकी मात्रा केवल एक या दो "वोल्ट" (volt) की होती है। मामूली हवा में, मामूली हालतों में, यदि उपर्युक्त तार के टूटे हुए सिरों में इंच के २५ वें भाग का अन्तर हो तो बिजली का प्रवाह चलाने के लिए, बिजली की इतनी छोटी चिनगारी हवा में उत्पन्न करने के लिए कोई चार हज़ार वोल्ट के दबाव की ज़रूरत होगी। आप हिसाब लगा सकते हैं कि कितनी बैटरियों की ज़रूरत होगी। परन्तु बिजली के ऐसे बड़े बड़े दबाव पैदा करने के लिए इस प्रकार की बैटरियों की शृंखलाओं से काम नहीं लिया जाता। इस प्रकार का दबाव पैदा करने के लिए बिजली बनाने की मशीनें होती हैं, जिनके-द्वारा आसानी से भारी से भारी दबाव पैदा किये जा सकते हैं। इस प्रकार की कलों में दो प्रधान हैं, विम्सहर्स्ट मेशीन (Wimshurst Machine) और इंडक्शन काइल (Induction Coil)। इन दोनों के चित्र यहाँ दिये जाते हैं (चित्र नं० १ और २), पर यहाँ इतना अवसर और अवकाश नहीं कि यह बतलाया जाय कि इनसे बिजली किस प्रकार उत्पन्न होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

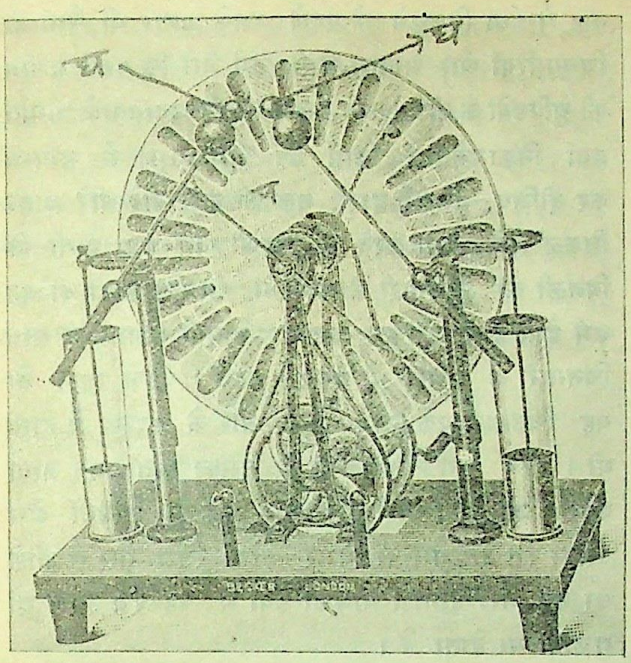

चित्र नं० १ । बिजली बनानेवाली एक प्रकार की कल
(विम्सहर्स्ट—Wimshurst मशीन)

घ घ घुण्डिया हैं, जिनमें मशीन के पहिये (प) घुमाने से बिजली एकत्र होती है । एक पर धनात्मक भराव होता है, दूसरी पर ऋणात्मक ।

इन दोनों प्रकार की मशीनों में आपको दो गोल घुण्डियाँ या नुकीली सूइयाँ सी दिखलाई देंगी । जब मशीन को चलाते हैं तब जो बिजली पैदा होती है वह इन्हीं दोनों घुंण्डियों या सूइयों पर एकत्र होती है, और जब उसका दबाव काफ़ी हो जाता है तब एक घुण्डी से दूसरी की ओर एक बिजली की धारा बह निकलती है जो बिजली की चिनगारी के स्वरूप में दिखलाई दे जाती है । एक घुंडी पर धनात्मक और दूसरी पर ऋणात्मक बिजली का भराव एकत्र होता है । इन दोनों भिन्न भिन्न प्रकार की बिजलियों से सदैव परस्पर सम्बद्ध हो जाने की प्रवृत्ति रहती है । पर दोनों घुण्डियों के बीच की हवा इस प्रकार के सम्बन्ध को रोकने की कोशिश में रहती है । जब दबाव काफ़ी हो जाता है तब हवा का यह अवरोध टूट जाता है और धनात्मक तथा ऋणात्मक बिजलियों का सम्बन्ध हो जाता है । बिजली की धारा का प्रवाह होता है । बिजली की चिनगारी निकलती है । घुण्डियों के बीच में जितनी ही ज़्यादा दूरी होगी, उतने ही ज़्यादा बिजली के दबाव की हवा का अवरोध तोड़ने के लिए आवश्यकता होगी ।

जब कभी बिजली की धारा इस प्रकार हवा या अन्य किसी प्रकार की गैस में होकर बह निकलती है तब सदैव चिनगारी दिखलाई देती है और साथ ही चटाख़े की आवाज़ भी होती है । इसका कारण यह है कि जब कभी बिजली की धारा किसी तार से होकर जाती है तब उसको मार्ग में कुछ न कुछ प्रतिरोध अवश्य मिलता है, जिसका उल्लंघन करने में बिजली उस तार में गर्मी पैदा करती है । गर्मी की मात्रा तार के प्रतिरोध पर निर्भर रहती है । यदि प्रतिरोध काफ़ी हुआ और उसमें काफ़ी बड़ी धारा चलाई गई तो गर्मी भी ज़्यादा पैदा होती है । बिजली के लैम्पों के तार में

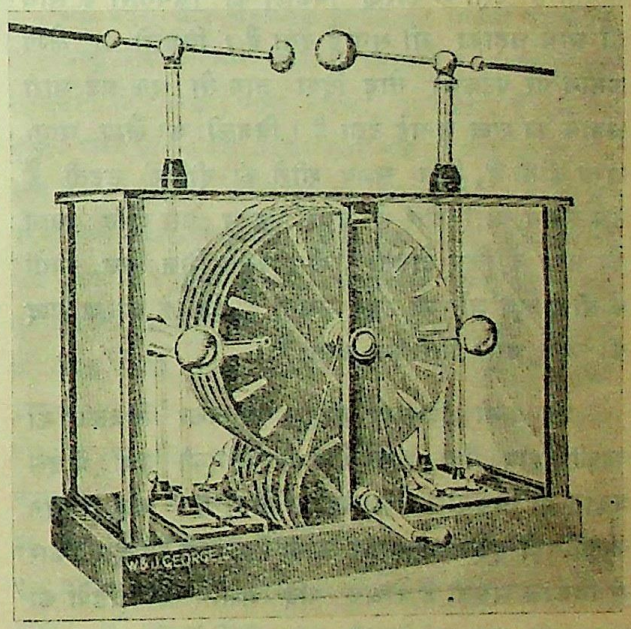

चित्र नं० २ । एक बड़े मेल की विम्सहर्स्ट मशीन ।

इसकी कार्य-प्रणाली है बिलकुल वैसी ही जैसी कि पहले चित्र में दिखलाई हुई मशीन की । केवल एक जोड़े की जगह इसमें कई एक पहिये के जोड़े हैं । हैंडल घुमाने से इसकी घुण्डियों में काफ़ी मात्रा का विद्युत्-दबाव पैदा किया जा सकता है । इस मशीन की घुण्डियाँ भली भाँति प्रत्यक्ष हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिजली चलाने पर इतनी ज़्यादा गरमी पैदा होती है कि तार गरम होकर बिलकुल सफ़ेद सा हो जाता है। इसी प्रकार जब कभी बिजली हवा में होकर गुज़रती है तब हवा का प्रतिरोध बहुत ही ज़्यादा होने के कारण, बहुत ही बड़ी मात्रावाली गर्मी पैदा होती है। इस प्रकार तापमान की अत्यधिक बाढ़ के कारण चिनगारी सी दृष्टिगोचर होती है। जब किसी वायु का तापमान बढ़ता है तब उस वायु का घन-फल या विस्तार भी बढ़ता है। अतएव हवा के जिस स्थान से बिजली की धारा बही थी उसका तापमान बहुत ही ज़्यादा बढ़ जाने के कारण, वहाँ की हवा इधर-उधर फैलेगी, अर्थात् उस स्थान से बह कर वह हवा इधर-उधर चारों ओर चली जायगी, और फिर इस किञ्चित् शून्य स्थान को भरने के लिए इधर-उधर से हवा बड़े ज़ोर के साथ बह कर आयगी। कहते हैं कि ज़ोर से इधर-उधर से आनेवाली हवा के बीच में जो टक्कर लगती है उसी के कारण बिजली की चिनगारी के साथ ही साथ धड़ाका भी सुनाई देता है। बिजली का लैम्प ज़मीन पर पटककर तोड़ दिया जाय तो एक बड़े भारी धड़ाके का शब्द सुनाई देता है। बिजली का लैम्प वायु-शून्य होता है, जिस समय शीशे की दीवारें टूटती हैं उस समय चारों ओर से हवा बहकर उस शून्य स्थान को भरने के लिए दौड़ती है और उसके भिन्न भिन्न भागों के बीच बड़ी ज़ोर की टक्कर लगती है, जिसके कारण शब्द की लहर चारों ओर फैल जाती है।

जब कभी इंडक्शन काइल चलाकर बिजली का काफ़ी दबाव पैदा करते हैं तभी मामूली हवा में इस प्रकार की चिनगारी और धड़ाका होता है। यदि मशीन काफ़ी बड़ी हुई तो एक फुट लम्बी चिनगारी भी इस प्रकार से निकाल सकती हैं। अब यदि मशीन की घुंडियों का तार-द्वारा एक शीशे की नल के सिरों से इस प्रकार सम्बद्ध कर दें कि बिजली की चिनगारी शीशे के नल में से होकर जाय और फिर इस नल से हवा को निकालना शुरू कर दें तो बड़ी ही विचित्र बातें होती हुई दिखलाई देंगी। यदि बिजली की मशीन को सदा ही काम करते रहने दें जिससे कि शीशे के नल के दोनों सिरों पर लगी हुई घुंडियों में सदैव विद्युत् का काफ़ी दबाव बना रहे तो नल से हवा निकलने के पहले उसके अन्दर भी वैसी ही चिनगारियाँ और आवाज़ जारी रहेंगे जैसे कि पहले मशीन की घुण्डियों के बीच। अब नल का शून्य बनानेवाले अर्थात् हवा निकालनेवाले किसी पंप (pump) से सम्बन्ध कर दीजिए, जिसके द्वारा नल की हवा धीरे धीरे बाहर निकल सके। ऐसा करने पर पहली बात यह होगी कि बिजली की चिनगारी के साथ जो आवाज़ होती थी वह कम होते होते बिलकुल बन्द हो जायगी। साथ ही साथ चिनगारी के लक्षण भी बदलते रहेंगे। पहले पहल तो यह चिनगारी एक लम्बे पतले तार के स्वरूप में होती थी। अब हवा निकालने पर उसका पतलापन जाता रहेगा, वह मोटी डोरी के आकार की हो जायगी और उसका रंग उस गैस पर निर्भर करेगा जिस गैस से शीशे का नल भरा होगा। मामूली हवा में यह रंग लाल या गुलाबी सा होता है।

वास्तव में नल से हवा निकालने पर जो परिवर्तन इस चिनगारी के लक्षणों में होते हैं और जो रंग दिखलाई देते हैं, उनका शब्दों में वर्णन करना बहुत ही कठिन है। वे तो देखते ही बन पड़ते हैं। बिना देखे उनकी मनोहरता और विचित्रता ठीक तरह समझ में नहीं आ सकती। परन्तु 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' के होते हुए भी यहाँ इन सब परिवर्तनों का मौखिक तथा चित्रांकित वर्णनों-द्वारा बतलाने का यत्न किया जायगा।

जैसे जैसे नल की हवा बाहर निकाली जाती है, वैसे ही वैसे बिजली की चिनगारी मोटी होती जाती है, अन्त में वह सारे नल में भर जाती है। इन अवस्थाओं में इसको चिनगारी कहकर पुकारना अनुचित मालूम पड़ता है, अब यह सचमुच ही विद्युत् की धारा के प्रवाह के रूप में दृष्टिगोचर होती है। जैसे ही जैसे हवा और भी बाहर निकालते हैं, वैसे ही वैसे इस नल के भीतर के दृष्टिगत विद्युत्प्रवाह में और भी परिवर्तन होते हैं। नल के भीतर जो दोनों सिरों पर घुण्डियाँ सी लगी हैं, जिनका बिजली की मशीन से सम्बन्ध है, उनको विद्युत्-द्वार (electrode) कह सकते हैं। जिस द्वार से बिजली नल में प्रवेश करती है उसको धन-द्वार (anode) कह सकते हैं। यह बिजली के लिए धनात्मक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस घुण्डी से बिजली बाहर जाती हैं अर्थात् जिसका मशीन की ऋणात्मक बिजली से भरी हुई घुण्डी से सम्बन्ध है उसको ऋण-द्वार (cathode) कह सकते हैं। इस पिछले अर्थात् ऋण-द्वार के पास अब एक छोटा सा अन्धकार प्रदेश सा बन जाता है, अर्थात् इस प्रदेश में विद्युत्-प्रवाह की वह लाल सी रोशनी नहीं दिखलाई पड़ती। ऋण-द्वार की घुण्डी स्वयं एक प्रकार की विशेष, कासनी रंग की सी ज्योति से आवृत दिखलाई पड़ती है।

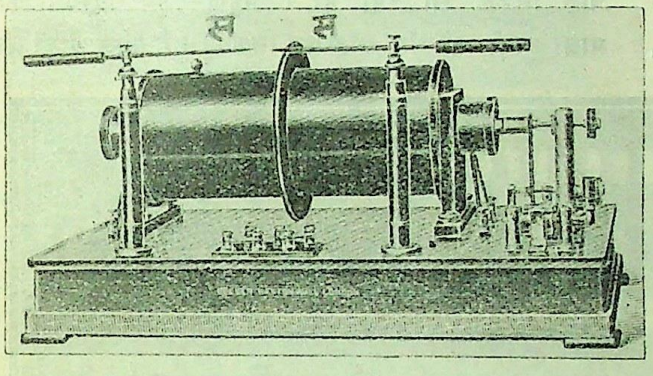

चित्र नं० ३। बिजली बनाने की दूसरी प्रकार की कल।

रूमकार्फ़ की इंडक्शन कुण्डली—Ruhmkorff's Induction Coil)

स स सूइयाँ हैं, जिनके बीच कल चलाने पर बिजली की चिनगारियाँ निकलती हैं। इन सूइयों के बीच का, एवं पहले दोनों चित्रों में दिखलाई गई कलों की घुण्डियों के बीच का अन्तर इच्छानुसार कम-बढ़ किया जा सकता है।

इस ज्योति के बाद उक्त अंधकार-स्थान दृष्टि में आता है। और उसके बाद वह लाल रंग का प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। इसका वह लाल रंग भी अब कुछ हलका सा हो जाता है। इस लाल रंग के प्रवाह को, जो धनात्मक द्वार से संलग्न होता है, धनस्तम्भ कह सकते हैं। जैसे जैसे नल की शून्यता की मात्रा बढ़ती जाती है, वैसे ही वैसे इस धनस्तम्भ का विस्तार कम होता जाता है, उसकी ललाई भी धीमी होती जाती है। कुछ देर के बाद अर्थात् और अधिक हवा के निकालने पर यह स्तम्भ बिलकुल निरन्तर यानी लगातार नहीं रहता, किन्तु एक पतली लाल पट्टी के बाद अँधेरी अर्थात् बेरंगी पट्टी आती है। इसके बाद फिर लाल, उसके बाद फिर अन्धकार इत्यादि। अर्थात् स्तम्भ पट्टीदार हो जाता है। पहले तो इस प्रकार की पट्टियों की संख्या काफ़ी और उनकी मोटाई कम होती है, पर अन्तिम अवस्था में थोड़ी ही सी मोटी मोटी पट्टियाँ रह जाती हैं।

इस बीच में जैसे जैसे शून्यता की मात्रा बढ़ती रही है, ऋणात्मक-द्वार के पासवाला अन्धकारमय प्रदेश भी बढ़ता रहा है। ऋणात्मक घुंडी के चारों ओर जो कासनी रंग का प्रकाश उसको आवृत किये हुए था वह भी उस घुंडी को छोड़कर और आगे बढ़ आता है। इस प्रकार इस प्रकाश और ऋणात्मक घुंडी के बीच में एक दूसरे ही अन्धकार-प्रदेश का प्रारम्भ होता है। यह दूसरा अन्धकार-प्रदेश क्रमशः बढ़ता रहता है और अपने आगेवाले कासनी रङ्ग के प्रकाश, पहले अन्धकारमय प्रदेश और धनात्मक स्तम्भ की पट्टियों को धनात्मक द्वार की ओर ढकेलता रहता है। अन्त में जब शून्यता की मात्रा बहुत ज़्यादा बढ़ जाती है तब यह दूसरा अन्धकार-प्रदेश बढ़कर सारे नल में फैल जाता है। अब नल में सर्वथा अन्धकार ही अन्धकार रह जाता है; पहले अन्धकार-प्रदेश और धनात्मक स्तम्भ की पट्टियाँ सब ग़ायब हो जाते हैं और ऋणात्मक घुण्डी को आवृत करनेवाली कासनी रङ्ग की ज्योति बढ़कर नल के शीशे के ऊपर वास करने लगती है। जिस समय इसका वासस्थान नल के भीतर की किञ्चित् शून्यीभूत हवा होता है उस समय यह हवा को कासनी रङ्ग की ज्योति सी चमकाती है, पर जब उसका वासस्थान नल के शीशे पर हो जाता है तब यह शीशा कासनी रङ्ग की नहीं, किन्तु एक प्रकार के हलके, हरे रङ्ग की ज्योति देने लगता है। वास्तव में शीशा किस रङ्ग से चमकेगा, यह शीशे की प्रकृति के ऊपर निर्भर करता है। भिन्न भिन्न प्रकार के शीशे भिन्न भिन्न रङ्ग देते हैं।

ऊपर की क्रिया होते समय अर्थात् नल की शून्यता बढ़ाई जाते समय नल के भीतर जो कुछ हवा बाक़ी रहती है उसका प्रतिरोध भी कम होता रहता है। पहले मामूली हवा में बिजली की चिनगारी बड़ी मुश्किल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकलती थी, परन्तु अब शून्य होने पर बिजली का प्रवाह बड़ी ही आसानी से होने लगता है। बिजली की धारा सदा उसी मार्ग से जाती है जिसमें उसका प्रतिरोध कम होता है। यदि बिजली की मशीन के सिरों को शून्यप्राय नल के सिरों से और साथ ही साथ पूर्वोक्त मशीन पर लगी हुई घुण्डियों से भी सम्बद्ध कर दें, और उन दोनों घुण्डियों के बीच बहुत ही थोड़ा अन्तर रक्खें, तो भी बिजली का प्रवाह नल के अन्दर ही जारी रहेगा। घुण्डियों के बीच की थोड़ी सी दूरी तय करने की अपेक्षा वह नल की बड़ी लम्बाई-द्वारा ही जाना पसन्द करता है, जिससे यह प्रकट होता है कि वहाँ प्रतिरोध अवश्य कम होता है। पर यदि शून्यता की मात्रा और भी अधिक बढ़ा दी जाय तो उसका प्रतिरोध फिर बढ़ने लगता है और यदि वह शून्यता की मात्रा अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँचा दी जाय तो नल का प्रतिरोध फिर बहुत ही बढ़ जाता है और तब उसके अन्दर से उक्त प्रकार का बिजली का प्रवाह नहीं निकल सकता।

नल के सभी स्थानों-द्वारा जाते हुए विद्युत्प्रवाह का उपर्युक्त वर्णन साधारण शब्दों में ही किया गया है। इसके लक्षणों का बहुत ही अल्प दिग्दर्शन तत्सम्बन्धी चित्रों से यहाँ कराया गया है। उपर्युक्त वर्णन एवं इन चित्रों से मालूम होगा कि ऋणात्मक-द्वार के पास बड़ी ही विचित्र और विशेष बातें होती रहती हैं। वास्तव में वास्तविक प्रवाहों को ध्यान-पूर्वक देखने से ऐसा मालूम होता है, मानो ऋणात्मक-घुण्डी के तल से कोई चीज़ निकल सी रही हो। पहले जब शून्यता की मात्रा थोड़ी ही थी, यह वह निकली हुई चीज़ थोड़ी ही दूर तक जा सकती थी और जहाँ उसकी यात्रा का अन्त होता था, वहाँ का स्थान, तद्वर्ती पदार्थ, अर्थात् वहाँ की हवा कासनी रङ्ग से चमकने लगती थी। जैसे जैसे शून्यता की मात्रा बढ़ाई जाती है, वैसे ही वैसे ऋणात्मक-द्वार से इस निकली हुई वस्तु का यात्रा-क्षेत्र भी बढ़ाता जाता है, अन्त में वह बढ़कर सारे नल को ही अपना लेता है। इस समय इस चीज़ की यात्रा नल के शीशे

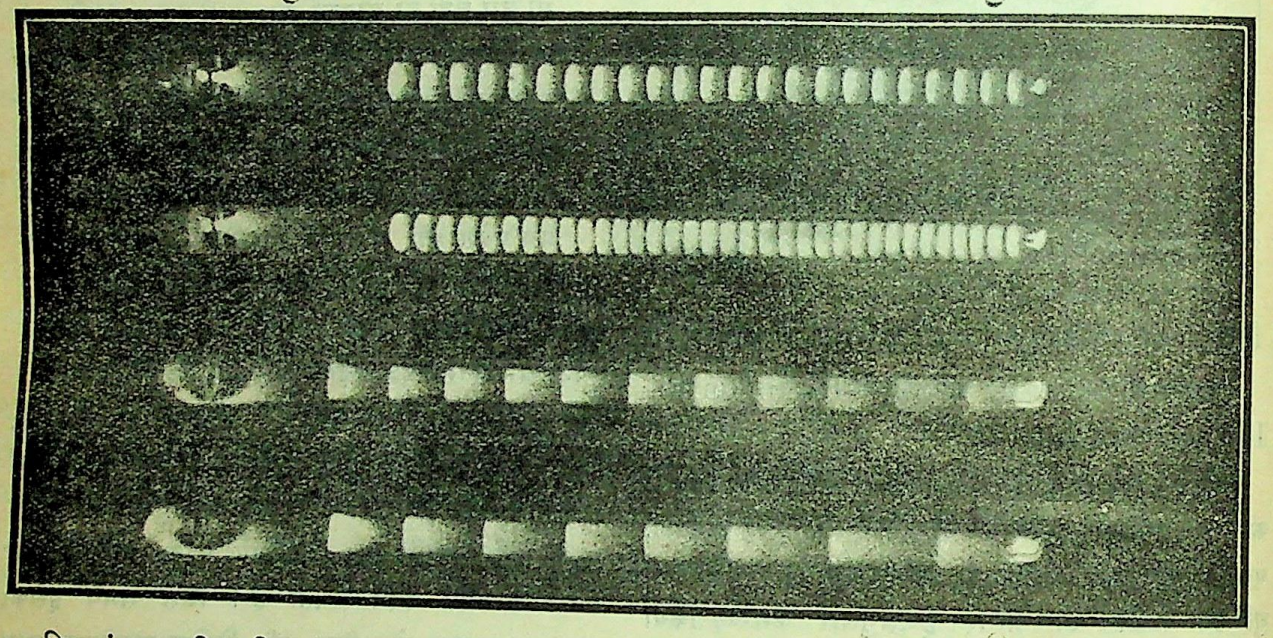

चित्र नं० ४। भिन्न भिन्न मात्रा के शून्य में विद्युत्प्रवाह भिन्न भिन्न भाँति का होता है। यहाँ चारों नलों में भिन्न भिन्न मात्रा का शून्य है। नं० १ में सबसे कम और नं० ४ में सबसे ज़्यादा दरजे का शून्य है। विद्युत्-प्रवाह का रूप किस प्रकार बदलता है, यह बिलकुल प्रत्यक्ष है। इन चित्रों में बाईं ओर ऋणात्मक द्वार है, दाहनी ओर धनात्मक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर समाप्त हो जाती है और शीशा एक विशेष रङ्ग की ज्योति से चमकने लगता है। इस ऋणात्मक द्वार से

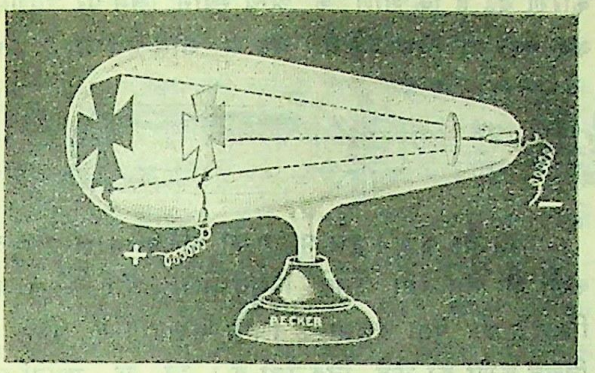

चित्र नं० ५। विद्युत्-कणों की वृष्टि में क्रास की छाया।

निकली हुई वस्तु का अनुसंधान और प्रयोग करने से पता चलता है कि यह वस्तु और कुछ नहीं, केवल बहुत ही छोटे विद्युत्-पूरित कण-मात्र हैं। इस प्रकार के हज़ारों छोटे-छोटे कण ऋण-द्वार से बह निकलते हैं और इनमें का प्रत्येक ऋणात्मक बिजली से भरा हुआ होता है। सभों पर एक ही मात्रावाला ऋण-विद्युत्-भराव होता है। ये कण "इलेक्ट्रन" विद्युत्-कण कहलाते हैं। चाहे

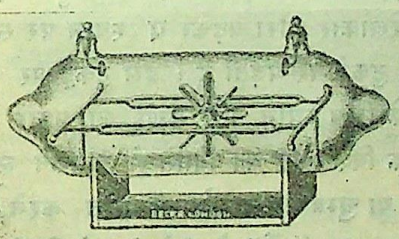

चित्र नं० ६। विद्युत्-कणों के प्रहार से इस नलिका में दिखलाई हुई चर्ख़ी रेलों पर चलने लगती है।

कोई वायु या वाष्प नल के भीतर क्यों न हो, नल के ऋण-द्वार की घुण्डी किसी पदार्थ की क्यों न बनी हुई हो, सदैव ऐसे ही विद्युत्-कण निकलते हैं। अनुसन्धानों-द्वारा इन कणों का भार और उन पर स्थित ऋण-बिजली का भराव तौला और नापा जा सकता है। इस प्रकार पता चलता है कि ये विद्युत्-कण चाहे जहाँ से उत्पन्न किये जायँ, जहाँ कहीं भी ये पाये जाते हैं, सभी ठौर, सभी समय, प्रत्येक विद्युत्-कण का मामूली भार और बिजली के भराव की मात्रा एक सी ही होती है।

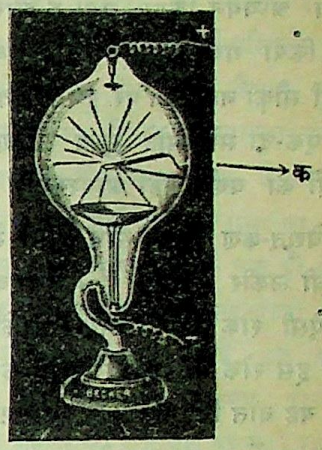

चित्र नं० ७। नतोदराकार विद्युत्-ऋण-द्वार-द्वारा विद्युत्-कण क स्थान पर एकत्र किये जाते हैं। यहाँ सधाया हुआ प्लाटिनम धातु का एक टुकड़ा गर्मी से प्रायः सफ़ेद हो उठता है।

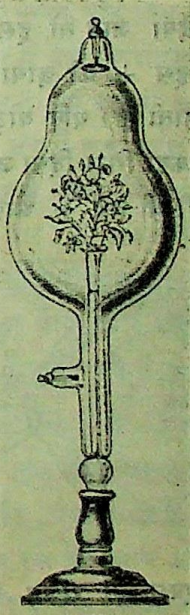

चित्र नं० ८। इस नल में रक्खा हुआ फूलों का गुच्छा मामूली हालतों में बिलकुल सफ़ेद ही सफ़ेद दिखलाई देता है। पर जिस समय उस पर विद्युत्-कणों की वृष्टि होती है उस समय तरह तरह के रङ्गों से चमक उठता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस प्रकार के अनुसन्धानों और प्रयोगों के द्वारा इन विद्युत्-कणों का वेग, उनका भार और उनके वैद्युत् भराव का अध्ययन किया गया है और उनका ठीक ठीक अनुमान किया गया है, इन बातों का वर्णन करने के लिए यहाँ मौक़ा नहीं है। पर इन विद्युत्-कणों के एक-दो मोटे मोटे मुख्य लक्षणों और गुणों का वर्णन यहाँ आवश्यक है।

ये विद्युत्-कण सदा सीधे मार्ग में जाते हैं अर्थात् सदा सीधी लकीर में चलते हैं। अतएव यदि इनके मार्ग में कोई ऐसी रोक रख दी जाय जिसको ये पार नहीं कर सकते तो इस रोक की छाया विद्युत्-कणों के नल में पड़ जायगी। यह बात चित्र नं० ५ में दिखलाई गई है। चित्राङ्कित नलिका में इतना काफ़ी शून्य उत्पन्न किया गया है कि विद्युत्-प्रवाह जारी करने से ऋण-घुंडी से जो विद्युत्-कण निकलते हैं वे सारी नलिका की पूरी लम्बाई को पार कर सकते हैं। और जब आगे के शीशे की दीवार पर पड़ते हैं तब उसे हरे रंग की ज्योति से चमका देते हैं। अब यदि इनके मार्ग में + के आकार का एक मोटा धातव टुकड़ा रख दिया जाय तो इसकी छाया दीवार पर पड़ती है। जहाँ इस + की छाया पड़ती है, वहाँ से हरी ज्योति लुप्त हो जाती है। यदि थोड़ी देर छाया पड़ने के बाद उक्त धातव टुकड़ा गिरा दिया जाय तो जहाँ पहले उसकी छाया पड़ रही थी वह + आकृति का स्थान हरी ज्योति से चमकने लगता है और इसकी ज्योति नलिका के अन्य स्थानों की ज्योति से तीव्रतर होती है। अतएव उक्त + की छाया आप अब भी देख सकते हैं। इसका कारण यह है कि शीशे के अन्य स्थान, जिन पर विद्युत्-कण सदा ही गिर रहे थे, थक से जाते हैं परन्तु उक्त

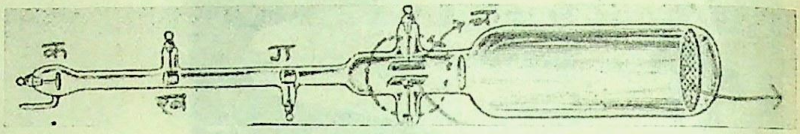

चित्र नं० १०। इस प्रकार की नलिका-द्वारा विद्युत्-कणों के वेग तथा उनके विद्युत्-भराव और बोझ की निष्पत्ति का पता चलता है। क ऋणद्वार है, जहाँ से विद्युत्-कणों का झुंड निकलता है। ख, ग, स्थानों पर इनके मार्ग में रोक रक्खी हुई है। इन रोकों में एक एक छोटा सा छेद है, जिनके द्वारा कणों की केवल एक पतली रेखा सी नल के दाहने अर्द्धभाग में जाने पाती है। यह कण रेखा च-छ दो धातव पट्टिकाओं के बीच से होकर जाती है। इन पट्टिकाओं को बिजली की बैटरियों के धन और ऋण सिरों से सम्बद्ध कर उनके बीच वैद्युत् बलक्षेत्र उत्पन्न किया जा सकता है। नलिका का यह स्थान एक विद्युत्-चुम्बक के दोनों ध्रुवों के बीच में रक्खा होता है। वृत्ताकार असंलग्न रेखा-द्वारा ये ध्रुव सूचित हैं। कणों की रेखाकार धारा बढ़कर प स्थान पर सधाये हुए एक धातव टुकड़े पर पड़ती है। इस टुकड़े पर ऐसा लेप है कि उसके जिस स्थान पर कणों का प्रहार होता है वह एक विशेष रङ्ग की ज्योति से चमकने लगता है। विद्युत् या चुम्बकीय बलक्षेत्र संचारित करने के पहले उक्त कण इस "पर्दे" के बीचोबीच के हिस्से को प्रकाशित करते हैं। अब यदि केवल चुम्बकीय बलक्षेत्र उत्पन्न किया जाय तो ये कण वहाँ से हट कर नीचे या ऊपर के स्थान पर गिर कर उसको प्रकाशित करते हैं। इसी प्रकार वैद्युत् बलक्षेत्र-द्वारा भी उनका मार्ग बदला जा सकता है। वैद्युत् और चुम्बकीय बलक्षेत्रों को एक साथ इस प्रकार संचारित कर सकते हैं कि कणों का मार्ग बिलकुल न बदलने पावे। ऐसी हालतों में दोनों प्रकार के बलक्षेत्रों के ज्ञान के द्वारा कणों का वेग और उनके भराव तथा बोझ की निष्पत्ति का ज्ञान भी हो सकता है।

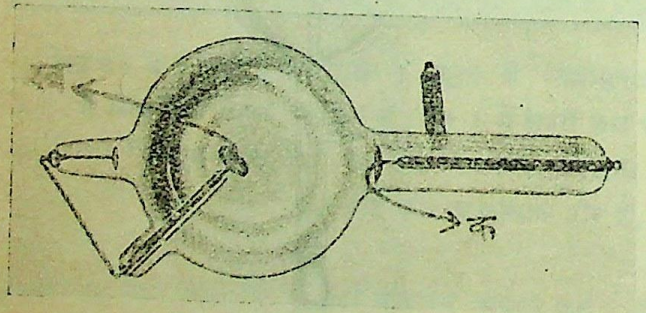

चित्र नं० ९। एक्स या रांजन किरणों का ट्यूब। नतोदराकार ऋण-द्वार क से विसर्जित विद्युत्-कण ख स्थान पर एकत्र किये जाते हैं। यहाँ रक्खी हुई रोक से रांजन किरणें विकसित होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन-द्वारा आविष्ट स्थान ताज़ी हालत में होता है, अतएव जब इस पर विद्युत्-कणों की वर्षा होती है तब इस ताज़े स्थान से तीव्रतर हरी ज्योति निकलने लगती है।

चुम्बक के द्वारा इन विद्युत्-कणों का मार्ग बदला जा सकता है। अतएव उक्त नल के पास यदि हम एक चुम्बक को इधर-उधर घुमायें तो छाया भी उसके साथ घूमने लगती है। यदि किसी एक सीधे धातव तार में बिजली की धारा प्रवाहित हो और इसके पास हम चुम्बक ले जायँ, अर्थात् उस धारा-सञ्चारित तार पर चुम्बकीय बल-क्षेत्र का प्रभाव डालें, तो वह तार अपने स्थान से हटने का यत्न करने लगता है। इसी गुण के कारण बिजली के

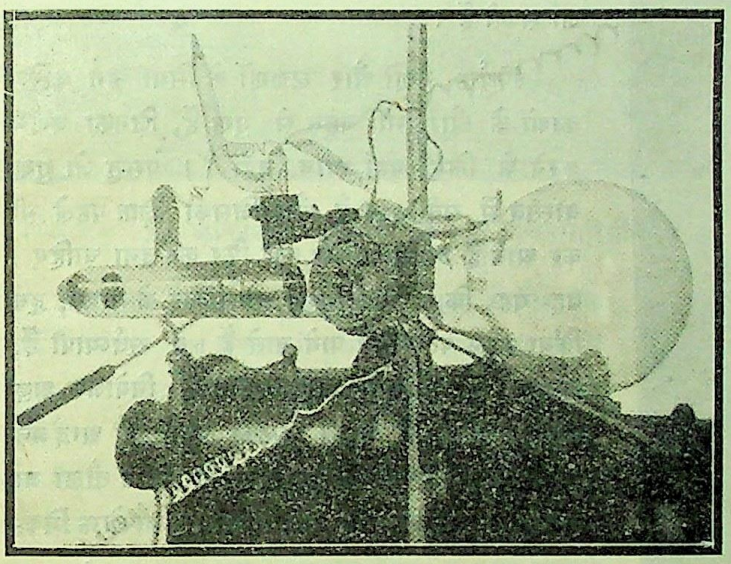

चित्र नं० ११। यह उस असली नलिका का चित्र है जिसके द्वारा सर जे० जे० टाम्सन ने पहले-पहल कणों के वेग तथा भराव और बोझ का ज्ञान प्राप्त किया था।

मोटर का निर्माण सम्भव हो सका है। उपर्युक्त विद्युत्-कणों का प्रवाह एक प्रकार की विद्युत्-धारा ही है, अतएव इन कणों के मार्ग पर भी चुम्बकीय बल-क्षेत्र का असर पड़ना अवश्यम्भावी है। इसी प्रकार यदि दो धातव टुकड़ों के बीच बिजली का बल-क्षेत्र उत्पन्न किया जाय और उनके बीच से विद्युत्-कणों की धारा निकाली जाय तो भी उनके मार्ग में परिवर्तन हो जायगा। बिजली और चुम्बक के बल-क्षेत्र-द्वारा इन विद्युत्-कणों के मार्ग में इस प्रकार का जो परिवर्तन होता है उससे इन कणों में धनात्मक या ऋणात्मक बिजली का भराव है, इसका निर्णय किया जा सकता है। इसी मार्ग-परिवर्तन की ठीक ठीक नाप से उनके भार, वेग और वैद्युत् भराव की मात्राओं का भी ठीक ठीक निश्चय किया जा सकता है। चित्र नं० ६ में वह यन्त्र दिखलाया गया है जिसके-द्वारा इन बातों का पहले-पहल निर्णय किया गया था। वास्तव में इस बात को ध्यान में रखते हुए कि एक ही प्रकार की बिजली से भरे हुए पदार्थों में अपकर्षण होता है और ये कण ऋण-घुंडी से निकल भागते हैं, इन कणों की बिजली धनात्मक या ऋणात्मक होगी, इसके उत्तर में सन्देह की गुंजाइश ही नहीं रह सकती।

ये विद्युत्-कणिकायें मामूली पदार्थों-द्वारा बड़ी जल्दी सोख ली जा सकती हैं। अर्थात् यदि इनकी एक धारा मामूली वायव, द्रव, या ठोस पदार्थ पर पड़े तो उसी में वह खप जाती है, उस पदार्थ को पार कर दूसरी ओर नहीं निकल सकती। परन्तु यदि वायु बहुत ही सूक्ष्म हो तो ऐसे वायु में वह धारा बहुत दूर जा सकती है। इसी कारण जब नल में वायु का परिमाण काफ़ी होता है तब ये कण बहुत दूर नहीं जा सकते, परन्तु काफ़ी वायु निकाल डालने पर ये सारे नल को पार कर सकते हैं। इसी प्रकार यदि किसी धातु का बहुत ही पतला पत्तर या वरक़ इनके मार्ग में रक्खा जाय और यदि वरक़ काफ़ी पतला हो तो उसको भी वे पार करने में समर्थ होते हैं।

उपर्युक्त नलिकाओं में ये विद्युत्-कण बड़े ही वेग से चलते हैं। इनका कुछ बोझ भी होता है। अतएव इनके चलने से काफ़ी झोंक पैदा होती है और यदि इनके मार्ग में कोई ऐसी रोक रख दी जाय जो अपेक्षतया आसानी से ठेली जा सके तो ये कण इसको ठेल भी सकते हैं। जैसे चित्र नं० ७ में दिखलाई हुई चर्ख़ी को ये रेलों पर ढकेलते से देख पड़ते हैं।

ये कण सदा सीधी लकीर में चलते हैं और ऋण-द्वार के तल से समकोण पर निकलते हैं। यदि ऋण-द्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नतोदराकार बना दिया जाय तो ये किसी एक स्थान पर एकत्र किये जा सकते हैं। इस प्रकार इन्हें एकत्र करने से, यानी एक केन्द्र-स्थान पर लाने से, ये बड़ी ही गर्मी उत्पन्न करते हैं, जिससे उस केन्द्र पर रक्खा हुआ प्लैटिनम का कोई टुकड़ा गर्मी से लाल हो जाता है।

इसके सिवा बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जिन पर ये कण गिर कर उनको भाँति भाँति के रंगों से चमका देते हैं। इस प्रकार हमारे उपर्युक्त शीशे के नल हरे रंग से चमक

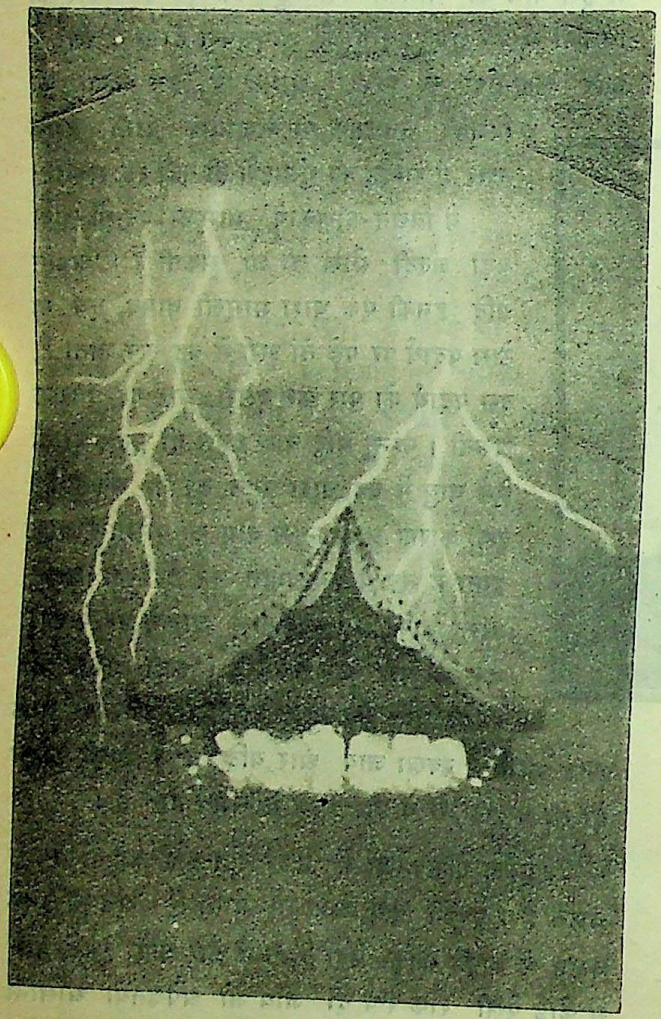

चित्र नं० १२। दामिनि दमकि रही घन माँहीं।

उठते हैं। भिन्न भिन्न पदार्थों की इस प्रकार से उत्पन्न चमक भिन्न भिन्न रंगों की होती है। यदि भिन्न भिन्न पदार्थों-द्वारा किसी एक फूल के आकार का कोई खिलौना सा निर्माण किया जाय और वह इन कणिकाओं के मार्ग में रख दिया जाय तो वह फूल भाँति भाँति के रंगों से चमक उठता है और बहुत ही सुन्दर मालूम पड़ता है।

पाठक एक्सरेज़ के कम से कम नाम और गुणों से तो अवश्य ही परिचित होंगे। इन एक्स-किरणों के जनक यही विद्युत्-कण हैं। जब कभी इनके चलने में बाधा पहुँचती है तभी बाधा डालनेवाले इस पदार्थ से एक्सकिरणें निकलती हैं। चित्र नं० १० में यही दिखलाया गया है।

यहाँ यह भी कह देना उचित होगा कि इन कणों को प्रकट करने की जो विधि ऊपर लिखी गई है उसके सिवा और भी अनेक विधियों से वे प्रकट किये जा सकते हैं।

उपर्युक्त गुणों और लक्षणों के सिवा इन कणिकाओं के और भी बहुत से गुण हैं, जिनका वर्णन करने के लिए यहाँ स्थान नहीं है। परन्तु जो गुण वास्तव में सर्वप्रधान है और जिसका ज़िक्र पहले भी कर आये हैं उसका उल्लेख यहाँ फिर कर देना चाहिए। वह यह कि ये विद्युत्-कण सब प्रकार के वायव, द्रव किंवा स्थूल पदार्थों में पाये जाते हैं। ये सर्वव्यापी हैं, अतएव ये अवश्यमेव प्रत्येक पदार्थ के नियोजक अङ्ग होंगे। संसार में सबसे हलका पदार्थ है आर्द्रजन नामक वायु। इसके एक परमाणु का बोझ तौला जा चुका है। आर्द्रजन वायु के एक परमाणु का बोझ निकलता है $१\cdot६६ \times १०^{-२४}$ ग्राम अर्थात् $\frac{१}{६ \times १०^{२४}}$ ग्राम। इस बोझ का अनुमान करना ज़रा कठिन है। यह एक ग्राम का साठ लाख शंखवाँ हिस्सा है। अर्थात् जब साठ लाख शंख आर्द्रजन परमाणु एकत्र होते हैं तब कहीं उनका बोझ एक ग्राम होता है। यह संख्या, अर्थात् साठ करोड़ शंख ६ के आगे २३ शून्य रखने से बनती है। एक ग्राम प्रायः एक मासे के बराबर होता है। उक्त विद्युत्-कणिका का बोझ इससे कहीं हलका है। एक विद्युत्-कणिका का बोझ केवल ९×१०^{-२८} ग्राममात्र अर्थात् प्रायः $१/१०^{२९}$ ग्राम निकलता है। अर्थात् आर्द्रजन के एक परमाणु के बोझ का केवल दो हज़ारवाँ भाग। अनुसन्धानों-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा यह भी पता लगा है कि आर्द्रजन के एक परमाणु में उक्त प्रकार का केवल एक ही विद्युत्-कण होता है। इसी

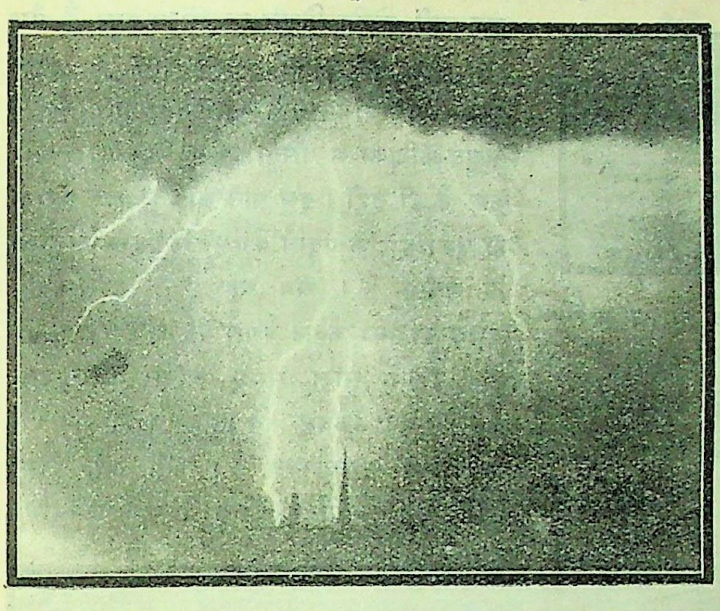

चित्र नं० १३। आकाशीय बिजली की बड़ी "चिनगारियाँ"।

लिए कहा गया था कि यह विद्युत्-कण पदार्थ के नियोजक अङ्गों का केवल एक अवयव है। वर्तमान समय की खोजों से यह पता चला है कि कोई भी पदार्थ दो प्रकार की "ईंटों" से बना है। एक ईंट तो है यह उपर्युक्त ऋणात्मक वैद्युत् भराववाला विद्युत्-कण, जिसका गुण-वर्णन यहाँ किया गया है और दूसरी ईंट है धनात्मक वैद्युत् भराव का एक छोटा कण। इस धन-विद्युत्-कण का आकार उक्त ऋण-कण से भी छोटा है, पर इसका बोझ उससे बहुत ज़्यादा है। वास्तव में एक धनात्मक और एक ऋणात्मक विद्युत्-कण के योग से ही एक आर्द्रजन परमाणु बनता है। दोनों प्रकार के विद्युत्-कणों के वैद्युत् भराव की मात्रा का परिमाण एक ही जितना है, केवल एक है धनात्मक और दूसरा ऋणात्मक। इसी लिए आर्द्रजन वायु का परमाणु मामूली हालतों में विद्युत्-शिथिल होता है, अर्थात् उससे किसी प्रकार का भी वैद्युत भराव नहीं प्रकट होता।

यदि किसी पदार्थ पर बिजली का एक भराव दे दिया जाय तो उस पदार्थ का बोझ बढ़ जाता है। इसे समझने के लिए पहले आप एक लोहे के टुकड़े और चुम्बक का ध्यान करिए। यदि एक लोहे के टुकड़े को आप तराज़ू के एक पलड़े पर रख कर तोलें तो उसका कुछ भार निकलेगा अर्थात् तराज़ू के दूसरे पलड़े पर कुछ बाँट रखने पड़ेंगे। अब तराज़ू के पहले पलड़े के नीचे एक चुम्बक रख दीजिए। यह बिलकुल सुस्पष्ट होगा कि अब तराज़ू के इस पलड़े को उठाने के लिए दूसरे पलड़े पर पहले से कहीं ज़्यादा बाँट रखने पड़ेंगे। अर्थात् लोहे के टुकड़े पर चुम्बक का असर होने के कारण या यह कहिए कि उस पर चुम्बकीय भराव होने के कारण उसका बोझ बढ़ जाता है। इस बढ़े हुए बोझ को हम चुम्बकीय बोझ कह सकते हैं। जितनी ज़्यादा शक्तिवाला चुम्बक उपर्युक्त दृष्टान्त में उपयुक्त होगा, अर्थात् जितना ही ज़्यादा चुम्बकीय भराव होगा, उतना ही ज़्यादा चुम्बकीय बोझ होगा, यह भी सुस्पष्ट है। इसी प्रकार यदि किसी पदार्थ को बिजली का भराव

चित्र नं० १४। वेगपूर्वक घूमते हुए कैमरे-द्वारा लिया हुआ दामिनि-दमक का चित्र। इस प्रकार के चित्र-द्वारा यह सूचित होता है कि जो एक-मात्र चिनगारी नज़र आती है वह वास्तव में कई एक चिनगारियों के मेल से बनी हुई होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाय तो उसका भी बोझ बढ़ जायगा। विद्युत्-युक्त पदार्थ का पूरा बोझ होगा उसका मामूली गुरुत्वाकर्षण-

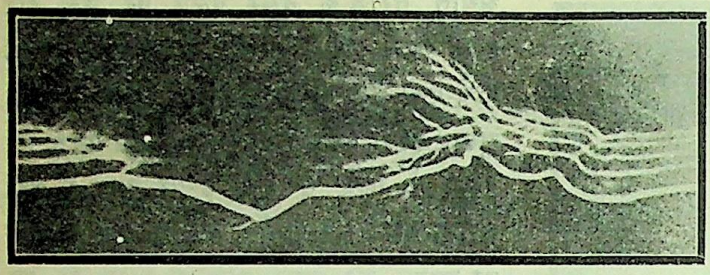

चित्र नं० १५। बिजली की कलों की सूइयों के बीच जो चिनगारी उत्पन्न होती है वह किस प्रकार से धीरे धीरे बढ़कर अन्त में एक समूची चिनगारी के रूप में नज़र आती है, यह भी वेगपूर्वक चलाये हुए कैमरे-द्वारा प्रत्यक्ष किया जा सकता है। इसी का प्रत्यक्षीकरण।

निकलती है। इन कणिकाओं का सारा का सारा बोझ वैद्युत् भराव का ही बोझ है। अर्थात् विद्युत्-कणिका और कुछ नहीं, केवल विद्युत् का भराव-मात्र है और इसी भराव के कारण उसका बोझ है—उसमें उपर्युक्त पदार्थीय बोझ कुछ भी नहीं। अर्थात् विद्युत्-कणिका में सिवा वैद्युत् भराव के और कुछ है ही नहीं। इस बात का दिग्दर्शन कराया जा चुका है कि पदार्थ केवल विद्युत्-कणिकाओं का संयोग है। अब यह प्रकट हुआ है कि विद्युत्-कणिका केवल वैद्युत् भराव है। अतएव सारे पदार्थ, सारा संसार, सारा विश्व, और कुछ भी नहीं केवल विद्युत् के धनात्मक और ऋणात्मक भराव-मात्र हैं। यही नहीं, किन्तु भिन्न भिन्न पदार्थों की भिन्न भिन्न रासायनिक

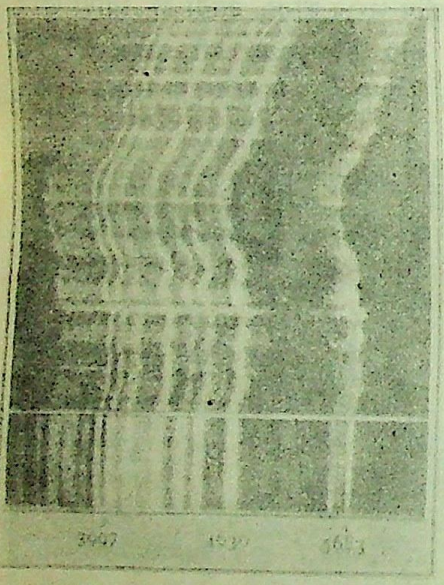

आकाशीय बिजली का वर्णपट

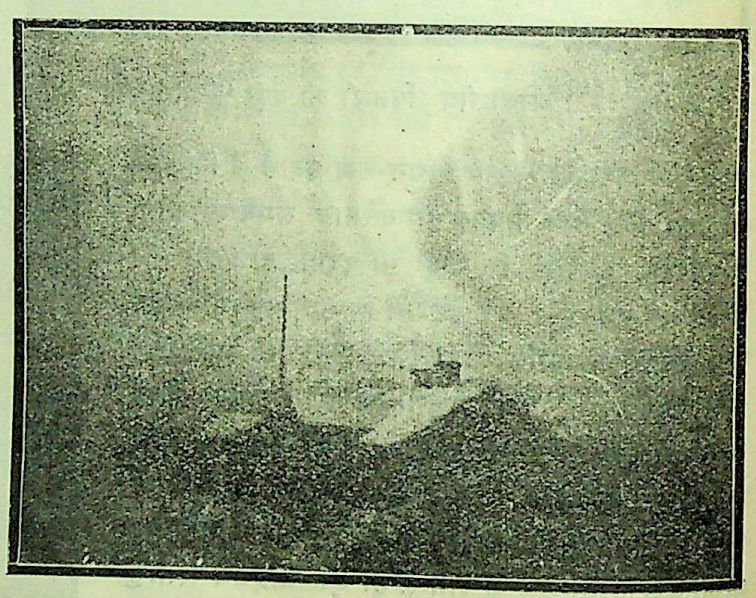

चित्र नं० १६। हवा और आकाशीय बिजली के रश्मिविश्लेषण चित्र। दोनों का नितान्त सादृश्य बिलकुल स्पष्ट है।

चित्र नं० १७। मेरुज्योति का एक चित्र।

सम्बन्धी बोझ, जिसको कह सकते हैं पदार्थीय बोझ—वैद्युत्-बोझ। अच्छा तो अब उक्त विद्युत्-कणिका के आकार का भी पता मिला है और उस पर स्थिति विद्युत्-भराव का भी। इसलिए उसके वैद्युत् बोझ का पता लग सकता है। इस हिसाब के लगाने से एक बड़ी ही विचित्र बात

किंवा भौतिक प्रकृति का कारण एवं सब प्रकार के प्रकाश या आलोक और सब प्रकार की शक्तियों तथा सब प्रकार के तेज का कारण भी यही हमारी छोटी छोटी विद्युत्-कणिकायें ही हैं। इन सब बातों के भी प्रमाण वर्तमानकाल का वैज्ञानिक अनुसन्धान स्पष्ट दे रहा है। देखत छोट खोट नृप ढोटा। परन्तु इन बातों के और अधिक विस्तृत विवरण का यहाँ अवसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। वास्तव में ये जो पिछली बातें लिखी गई हैं ये भी हमारे प्रस्तुत विषय से बहुत ही परे हैं। इन सबके बारे में कदाचित् फिर कभी कुछ लिखा जायगा।

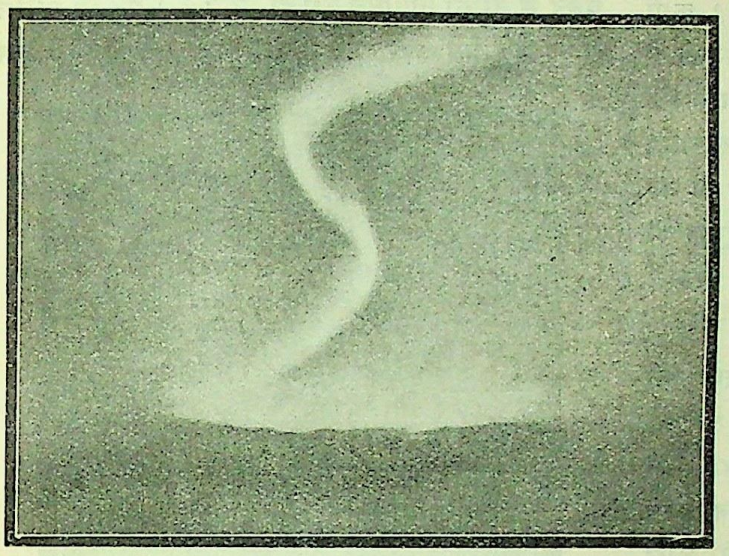

चित्र नं० १८। एक दूसरी मेरुज्योति का चित्र।

गैसों-द्वारा विद्युत्-प्रवाहों के अध्ययन का जो ज़िक्र हमने यहाँ तक किया है वे सब प्रयोगशाला में उत्पन्न कर भले प्रकार दिखाये जा सकते हैं। पर प्रकृति में भी इसी प्रकार की कारस्वाइयाँ हुआ करती हैं—प्रयोगशाला के छोटे छोटे प्रवाहों के रूप में नहीं, किन्तु प्राकृतिक बड़े प्रवाहों में। उपर्युक्त सारी बातें दो प्रकार के प्रवाहों के अन्तर्गत होती हैं। एक तो बिजली की मशीन पर लगी हुई घुण्डियों के बीच की कड़ाके से युक्त बहुत ही पतले टेढ़े-मेढ़े तागे के आकार की बिजली की चिनगारियों में और दूसरी उन नलिकाओं-द्वारा प्रवाहित भांति भांति के रङ्ग के और बड़ी ही विचित्र प्रकृतिवाले मोटे आकार के मनोहारी निःशब्द प्रवाह में। प्रकृति में भी इन दोनों प्रकार के बिजली के खेल होते रहते हैं। अर्थात् एक तो तड़ित् या आकाशीय बिजली और दूसरे पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी प्रदेशों में दृष्टिगोचर होनेवाले भाँति भाँति के रङ्गों और आकार के विद्युत्प्रवाह, जिनको मेरु-ज्योति (aurora) कह कर पुकार सकते हैं। तो आइए अब इनका भी कुछ थोड़ा सा अध्ययन और चित्रों-द्वारा अवलोकन करके अपना मन बहलावें।

वास्तव में आकाशीय बिजली की प्रकृति का ज्ञान अभी तक ठीक ठीक नहीं हो सका है। इसमें तो सन्देह नहीं कि यह तड़ित् और कुछ नहीं केवल प्रयोग-शाला में दर्शित बिजली की चिनगारी का एक विशाल संस्करण-मात्र है। धनात्मक और ऋणात्मक बिजलियाँ सदैव एक दूसरे से मिलने के लिए उत्सुक और उन्मत्त रहती हैं। यदि पर्याप्त मार्ग मिले तो ये चट इस मार्ग से दौड़कर एक दूसरे के गले मिल जाती हैं, और इस गाढ़ालिङ्गन के द्वारा उनकी मनोकामना पूरी होने पर वे शान्त हो जाती हैं। प्रयोगशाला की विद्युत्-मशीन की दोनों घुण्डियों में एक तो धनात्मक और दूसरी ऋणात्मक बिजलियों के द्वारा पूरित हो जाती हैं और जब इनमें काफ़ी दबाव हो जाता है तब वे वायु के प्रतिरोध को तोड़ कर एक दूसरी की ओर दौड़ कर मिलती हैं। इसी दौड़ और वेग के कारण चिनगारी उठती और चटाख़े की आवाज़ होती है जैसा कि पहले कह आये हैं। इसी प्रकार

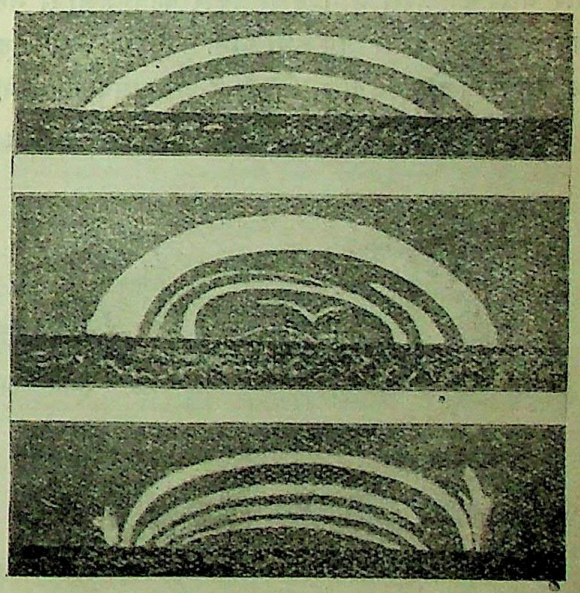

चित्र नं० १९। धनुष के आकार की मेरुज्योतियाँ।

जिस समय दो पृथक् पृथक् बादल दो प्रकार की बिजलियों से पूर्ण हो जाते हैं और इनमें अत्यधिक मात्रा में बिजली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर जाती है तब इन दोनों के बीच विद्युत्प्रवाह होता है, बड़ी लम्बी चिनगारी निकलती और उसके साथ ही साथ बड़े धड़ाके का शब्द होता है। बादलों के गर्जन और बिजली के तर्जन का यही कारण है। कभी कभी कोई एक बादल तो एक प्रकार की बिजली से बहुत पूर्ण हो जाता है, पर उसके पास कोई दूसरा बादल दूसरे प्रकार की बिजली से पूर्ण नहीं होता। उस समय यदि इस बादल की बिजली का दबाव काफ़ी हुआ तो वह मध्यस्थित वायु के प्रतिरोध को तोड़ कर भूतल की ओर दौड़ निकलती है और इस प्रकार भूमि पर बिजली गिरती है।

यदि शीशे के नल का एक सिरा पतला करके पानी की धारा इस महीन सिरे से गिरायें तो थोड़ी दूर तक तो धारा लगातार गिरती है, पर इसके बाद वह छोटी या बड़ी बूँदों में टूट कर गिरती है। अनुसन्धान करने पर मालूम होता है कि जिस समय पानी की धारा इस प्रकार बूँदों में टूटती है उस समय धनात्मक और ऋणात्मक बिजलियों का प्रादुर्भाव होता है। जो बूँदें नीचे गिरती हैं वे एक प्रकार की बिजली से अन्वित होती हैं और धारा का ऊपरी भाग दूसरे प्रकार की बिजली से भर जाता है। इसी प्रकार जब कभी पानी की एक बड़ी बूँद टूट कर छोटी छोटी बूँदों में गिरती है उस समय भी दोनों

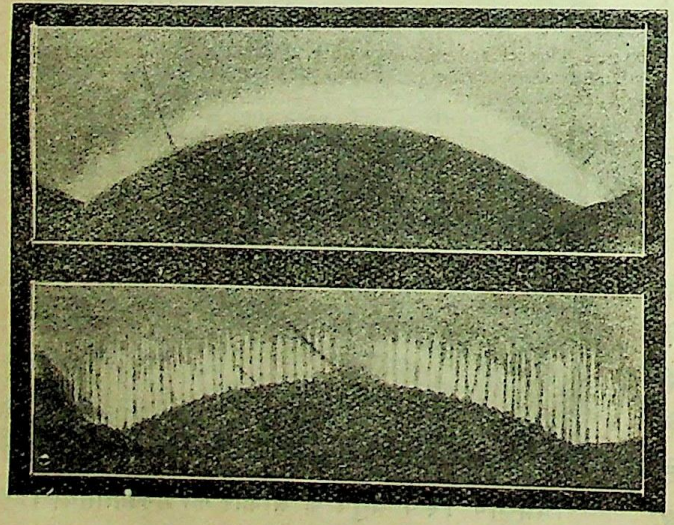

चित्र नं० २०। मेरुज्योतियों के मेहराब।

प्रकार की बिजलियों का प्रादुर्भाव होगा। कहते हैं कि बादलों की बिजली इसी प्रकार बनती है। भूमिस्थ जल-तल पर से जलवाष्पान्वित हवा जिस समय ऊपर उठती है तब ऊपर पहुँचने पर इस प्रकार उड़ कर फैलने की वजह से उसका तापमान कम हो जाता है। यह भी मालूम है कि जैसे जैसे ऊपर उठते हैं, वैसे वैसे तापमान भी कम

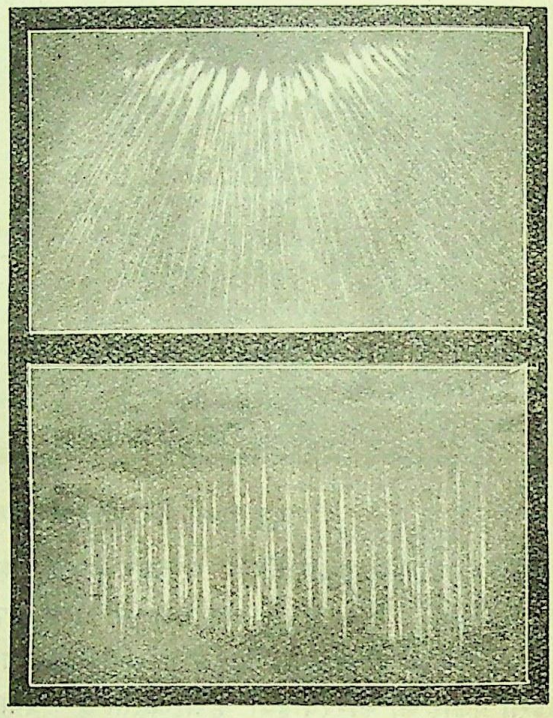

चित्र नं० २१। किरणों के आकार की मेरुज्योतियाँ।

होता जाता है। दोनों कारणों से ऊपर गई हुई जल-वाष्पान्वित हवा का तापमान कम हो जाता है। हवा में जो पानी वाष्प-स्वरूप में पहले विद्यमान था, तापक्रम के कम होने के कारण अब जल की छोटी छोटी बूँदों में परिवर्तित होकर बादलों का निर्माण करता है। बढ़ते बढ़ते ये बूँदें जब बहुत बड़ी हो जाती हैं तब ऊपर उठती हुई हवा उनको सँभाल नहीं सकती और ये बड़ी बड़ी बूँदें नीचे गिरने लगती हैं। ऊपर उठती हुई हवा इन बड़ी बड़ी बूँदों को छोटी छोटी बूँदों में तोड़ देती है और इस समय दोनों प्रकार की बिजलियों का जन्म होता है। ऊपर उठती हुई हवा और उसके साथ के जल-कण तो एक प्रकार की बिजली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

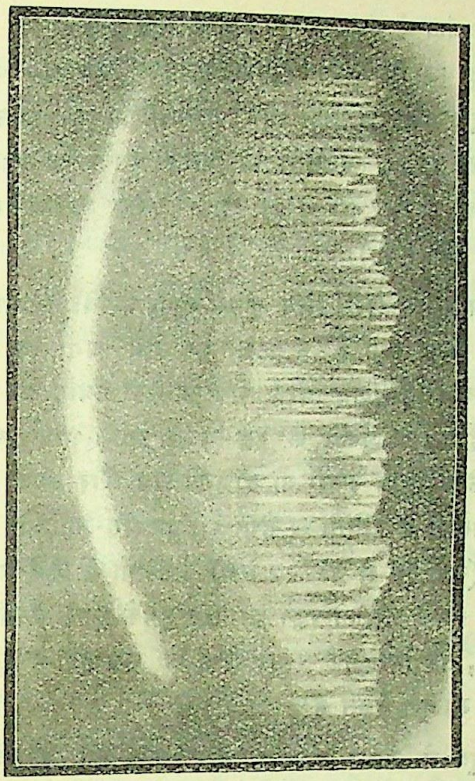

चित्र नं० २२ । मेरुज्योतिक चाप और उसके नीचे लड़दार परदे के आकार की मेरुज्योति ।

चित्र नं० २३ । फीते के आकार की मेरुज्योति ।

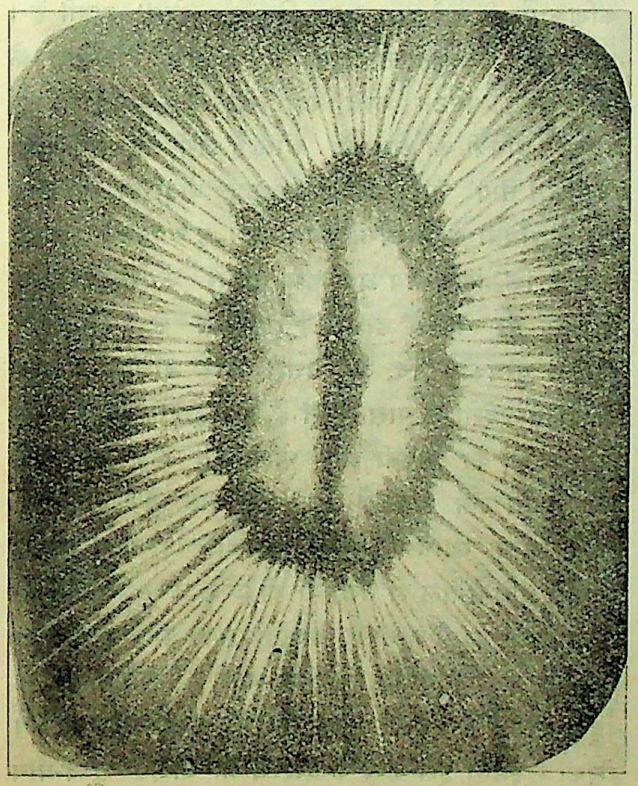

चित्र नं० २४ । मेरुज्योतीय किरीट ।

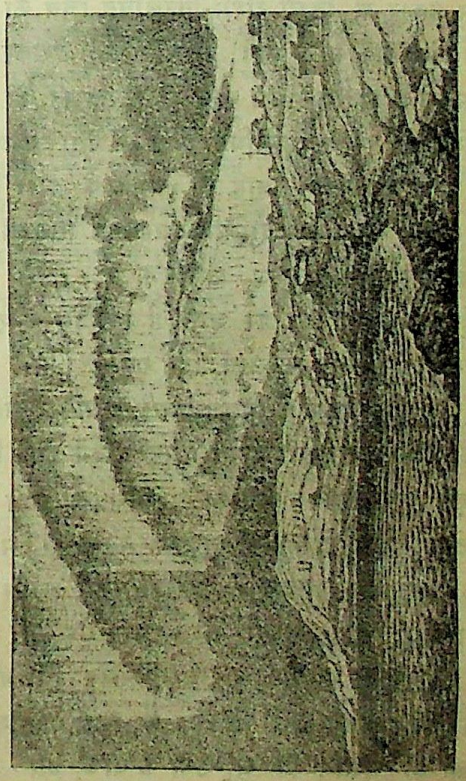

चित्र नं० २५ । कपड़े के धान सरीखी मेरुज्योति ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से परिपूरित हो जाते हैं और नीचे गिरती हुई बूँदें दूसरे प्रकार की बिजली से। इस प्रकार बिजली का पृथक्करण हो जाता है, जिसकी वजह से भिन्न भिन्न बादल भिन्न भिन्न प्रकार की बिजलियों से पूरित होकर तड़ित् के उत्पादन में योग देते हैं।

यदि तड़ित् की चमक की रश्मि की विश्लेषक यन्त्र-द्वारा परीक्षा की जाय तो मालूम पड़ता है कि वह किन्हीं चुने हुए रङ्गों के योग से बनी है। यदि जलते हुए बिजली के लम्प की सफ़ेद रोशनी की इस प्रकार परीक्षा की जाय, अर्थात् यदि उसको किसी शीशे के त्रिपार्श्व (prism) के द्वारा देखें तो देख पड़ेगा कि यह सफ़ेद रोशनी तरह तरह के रङ्गों में परिवर्तित हो जाती है, अर्थात् इन तरह तरह के रङ्गों के योग से वह बनी है। यदि बिजली की धारा किसी गैस के द्वारा प्रवाहित की जाय तो भिन्न भिन्न गैसों से भिन्न भिन्न प्रकार के रङ्गों की चमक निकलेगी। और यदि इन सब चमकों की रश्मि की विश्लेषक-द्वारा परीक्षा की जाय तो जान पड़ेगा कि भिन्न भिन्न चमकों में भिन्न भिन्न रङ्गों के भिन्न भिन्न योग हैं। अतएव यदि इस प्रकार के किसी रश्मि-विश्लेषित चित्र को देखें तो भिन्न भिन्न प्रकार के रङ्गों के योग को देखकर हम बतला सकते हैं कि किस गैस-वायु की चमक का यह चित्र है। तड़ित् के रश्मि-विश्लेषित चित्र से पता चलता है कि यह हवा में विद्युत्-प्रवाह की चमक के द्वारा उत्पन्न हुआ है। चित्र नं० १५ में दामिनि दमक एवं मामूली हवा की चमक के रश्मि-विश्लेषण का चित्र है। इससे ऊपर कही गई बात साफ़ प्रकट हो जाती है। तड़ित् के एकाध चित्र और भी इस लेख के साथ दिये गये हैं (नं० ११, १२, १३)। इस प्रकार के विद्युत्-प्रवाह अर्थात् 'दामिनि दमक' को किसने न देखा होगा। यहां दिये हुए चित्रों और तड़ित् के वास्तविक रूप का मनोचित्रण आप स्वयं कर सकते हैं, इन दोनों की तुलना करने से मालूम होगा कि चित्र और वास्तव में कितना बड़ा अन्तर है। इसी प्रकार का, बल्कि इससे भी बढ़कर, भेद और सब चित्रों के बारे में भी समझिए। जिस समय बिजली की चिनगारी निकलती है, चाहे आकाश में, चाहे प्रयोगशाला की बिजली की मशीन की घुण्डियों के बीच, उस समय चाहे आँख से एक ही चिनगारी दिखलाई दे, पर वास्तव में कई एक चिनगारियाँ निकलती हैं। यदि वेग से घूमते हुए एक कैमरे के द्वारा इन चिनगारियों का चित्र लिया जाय तो प्रत्येक चिनगारी या चमक अपनी अलग स्थिति को प्रकट करती है। चित्र नं० १३ और १४ में यह भली भाँति दर्शित है।

प्रयोगशाला में जिन दूसरे प्रकार के विद्युत्-प्रवाहों का वर्णन किया गया है वे ऋणात्मक तथा धनात्मक विद्युत्-कणों के सूक्ष्मीकृत विरल गैसान्तर्गत प्रवाह के कारण होते हैं। इसी प्रकार के रङ्ग-विरङ्गे भाँति भाँति रूपवाले रङ्गों के समुदाय उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव और उनके निकटवर्ती प्रदेशों में दृष्टिगोचर होते हैं। इन मेरु-ज्योतियों के कुछ चित्र (नं० १६ से नं० २४ तक) के चित्रों में दिये गये हैं। यद्यपि इनके असली रङ्गों का पता इनके द्वारा नहीं चल सकता, तथापि इनके तरह तरह के रूप ही बड़े मनोरञ्जक मालूम पड़ते हैं।

सूर्य से केवल प्रकाश और ताप का ही विसर्जन नहीं होता, किन्तु धनात्मक और ऋणात्मक विद्युत्-कणिकायें भी सूर्य-द्वारा सतत विसर्जित होती रहती हैं। अन्तराल के नितान्त शून्य में ये कण रोक-टोक के बिना सदैव पर्यटन करते रह सकते हैं। इनमें के कुछ हमारी पृथिवी की ओर भी आते हैं जैसे कि सूर्य-द्वारा विसर्जित ताप और प्रकाश का कुछ थोड़ा ही सा अंश हमारी पृथिवी के भाग्य में पड़ता है। हम पहले ही कह आये हैं कि चुम्बकीय ध्रुव इस प्रकार के विद्युत्-कणों के मार्ग पर असर डालते हैं। पृथिवी के उत्तरी और दक्षिणी चुम्बकीय ध्रुव, जो उत्तरी और दक्षिणी भौगोलिक ध्रुव-प्रदेशों के पास स्थित हैं, सूर्य-द्वारा विसर्जित उक्त विद्युत्-कणों को अपनी ओर खींच लेते हैं। अतएव ये कण सदैव उक्त ध्रुवों के पास ही जाते हैं, पृथिवी के किसी अन्य स्थान पर नहीं। हमको यह भी मालूम है कि हम पृथिवी-तल से जितना ही ऊँचे ऊपर जायँ, हवा की सूक्ष्मता बढ़ती जाती है, अर्थात् उसका घनत्व कम होता जाता है, वह ज़्यादा पतली होती जाती है। पृथिवी-तल से बहुत अधिक ऊँचाई पर हवा बड़ी ही सूक्ष्म दशा में है। इसकी सूक्ष्मता इस लेख के प्रारम्भ में वर्णित शून्य-प्राय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नलों की गैसों की सूक्ष्मता के बराबर है। अतएव जैसे विद्युत्-प्रवाह-सम्बन्धी रङ्गादि हमें प्रयोगशाला में दिखलाई पड़ते हैं, वैसे ही, परन्तु बहुत बड़े आकार में, पृथिवी के वातावरण के ऊपरवाले भाग में होते हैं। इन्हीं को हम मेरु-ज्योति कह कर पुकारते हैं। भिन्न भिन्न समयों में उच्चस्थ हवा में विद्युत्-कणों के भिन्न भिन्न मार्ग होंगे। इस प्रकार मेरु-ज्योतियों के भिन्न भिन्न आकार भी समझ में आ सकते हैं।

यदि यह बात ठीक है, अर्थात् यदि मेरु-ज्योति का कारण है विद्युत्-कणों का उच्चस्थ सूक्ष्म हवा के अन्तर्गत प्रवाह, तो मेरु-ज्योति के रश्मि-विश्लेषण-चित्रों में और हवा के वैसे ही चित्रों में सादृश्य होना चाहिए। परन्तु यह सादृश्य नहीं पाया जाता। अतएव ऊपर लिखे हुए मेरुज्योति के कारण के सिद्धान्त में पूरा पूरा विश्वास नहीं हो सकता। परन्तु अभी हाल में ही एक वैज्ञानिक ने इस बात का पूरा समाधान कर दिया है कि वास्तव में हमारा ऊपर कहा हुआ सिद्धान्त ठीक है।

यह बात तो सभी को विदित होगी और इसका ज़िक्र पहले भी कर आये हैं कि जैसे जैसे पृथिवी-तल से ऊपर को उठते हैं, वैसे ही वैसे तापमान कम होता जाता है अर्थात् ठण्डक बढ़ती जाती है। काफ़ी उँचाई पर यह तापमान बहुत ही कम होगा। पृथिवी-तल से किसी मेरुज्योति की उँचाई कितनी है, इसकी पैमाइश की जा सकती है। इस उँचाई पर, जहाँ मेरु-ज्योतियों का आविर्भाव होता है, तापमान इतना कम होता है कि नत्रजन नामक गैस, जो सारे वायुमण्डल का ४।५ वाँ हिस्सा है और जिसके रश्मि-विश्लेषित चित्र से मेरु-ज्योति तथा तड़ित् के वैसे ही चित्रों की तुलना की जाती है, उस उँचाई पर गैसरूप में कदापि नहीं ठहर सकता, किन्तु वह जमकर स्थूलरूप में विद्यमान होगा, एक प्रकार की नत्रजन के बरफ़ के छोटे छोटे स्फटिकों ने वायु-मण्डल के इस तल भाग को आच्छादित कर रक्खा होगा। अतएव विद्युत्-कणिकाओं की जब इन स्फटिकों से टक्कर लगेगी, जब वे नत्रजन गैस के भीतर से नहीं किन्तु नत्रजन के बरफ़ीले स्फटिकों के बीच से होकर गुज़रेंगी तब जो रङ्ग उत्पन्न होगा वह नत्रजन गैस में विद्युत्-प्रवाह-द्वारा उत्पादित रङ्ग से अवश्य भिन्न होगा। उक्त विद्वान् ने प्रयोगशाला में इस प्रकार के नत्रजन के बरफ़ का निर्माण किया और फिर विद्युत्-कणों की इस बरफ़ से टक्कर लगवाई। उस समय जो चमक निकली उसके रश्मि-विश्लेषित चित्रों में और मेरुज्योति के चित्रों में बहुत ही सादृश्य पाया गया। इस प्रकार पहले का असादृश्य अब सादृश्य में परिवर्तित हो गया है।

जगद्बिहारी सेठ

विजय ।

"जब से भूपेन्द्रनाथ ने उमा सुन्दरी को देखा है तब से".....रात्रि के दस बजे थे। प्रफुल्लकुमार अकेला अपने कमरे में बैठा था। उसके सामने एक पुस्तक खुली हुई थी। प्रफुल्ल को लिखने-पढ़ने से कुछ अधिक प्रेम न था। एक तो उसे अपने कारबार से अवकाश ही कम मिलता था और दूसरे बचपन में उसने विद्याभ्यास भी अधिक नहीं किया था। हाँ, उसको उपन्यास पढ़ने का बेहद शौक़ था। जब कभी किसी नवीन उपन्यास के प्रकाशन का समाचार सुनता, तुरन्त उसको मँगवा कर पढ़ता। आज जब वह दोपहर के समय लीला के साथ अपने भावी समधी शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय के यहाँ गया था तब उसने उनके सुपुत्र को अविनाश बाबू का 'कुमारी' उपन्यास पढ़ते देखा था। बस, उसी समय से उसका मन कुमारी पढ़ने के लिए व्यग्र हो रहा था। मार्ग में ही उसने एक दूकान से उपन्यास मोल लिया और रात्रि में ही उसे समाप्त करने का पक्का निश्चय किया।

इस समय जो पुस्तक उसके सामने खुली थी वह यही कुमारी उपन्यास था। पुस्तक को समाप्त करना दूर रहा, पूरे एक घंटे में उसने उसका पहला पृष्ठ भी नहीं पढ़ पाया। उसने बहुत मन लगाना चाहा, किन्तु उल्लिखित वाक्यांश के आगे आँखों ने पढ़ने से साफ़ इन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार कर दिया। राखाल की स्मृति रह रह कर उसके हृदय-पटल पर चमक जाती थी। राखाल उसका पुराना मित्र था सही, पर उसकी स्मृति उसे सुखदायक नहीं थी और विशेष कर इस समय तो वह उसे महान् अपशकुन समझता था। उसका मन हठात् सोचता था कि हे ईश्वर! क्या लीला की शादी में कोई विघ्न उपस्थित होनेवाला है! क्या वह अपनी स्त्री की अन्तिम इच्छा को भी पूर्ण नहीं कर सकेगा? एक एक करके उसके पिछले जीवन के सभी दृश्य उसकी आँखों के सामने आने लगे। दुष्ट साथियों की संगति से वह किस प्रकार पथ-भ्रष्ट हुआ था, इससे उसके मा-बाप को कैसी असीम वेदना हुई थी। किस प्रकार वह अपने दुराचरण पर गर्व और संतोष किया करता था। यद्यपि उसने कुलीन घराने के लड़कों की भाँति बी० ए० या एम० ए० पास नहीं किया था, तथापि क्या उसने अपनी प्रखर बुद्धि से सैकड़ों बार अपने साथियों को उल्लू नहीं बनाया है, क्या वे उसका लोहा नहीं मान गये हैं। यदि लोहा न मान जाते तो उसका नाम ही गुरुघंटाल क्यों पड़ता? स्त्री की याद आते ही उसका दिल धड़कने लगा। कुसुम तुम सचसुच कुसुम थी। न जाने पूर्व-जन्म के किस पाप के कारण तुमको नीच कुल में जन्म लेना पड़ा था। कई वर्ष बीत गये हैं तो भी तुम्हारा उज्ज्वल मुख ज्यों का त्यों मेरी आँखों के आगे चमका करता है। किन्तु क्या कुसुम, ईश्वर तुम्हारी अन्तिम इच्छा पूरी न होने देगा। नहीं, नहीं, ईश्वर तुम जैसी सती-साध्वी स्त्रियों की आत्मा को कष्ट नहीं पहुँचा सकता। संसार में ऐसा कौन सा सद्गुण है जो तुममें नहीं था। सच तो यह है कि यदि तुमने मेरा हाथ न पकड़ा होता तो मैं दार-जिलिंग की उन काली और बीभत्स कोठरियों से कभी नहीं निकल सकता। लीला, क्या तुम जानती हो कि तुम्हारी मा तुम्हें कितना प्यार करती थी। लीला का स्मरण आते ही हारमोनियम के मधुर संगीत ने उसका ध्यान आकर्षित कर लिया। लीला दोमंज़िले के एक सुसज्जित कमरे में आसावरी राग अलाप रही थी। सुनते ही प्रफुल्ल की कल्पना भङ्ग हो गई।

उसने किताब बन्द कर के मेज़ पर फेंक दी और गुनगुनाता हुआ उठ खड़ा हुआ—दूकान पर यद्यपि उसने मुझे और लीला को क्षणभर के लिए ही देखा है, तथापि उसने हमें पहचान लिया होगा, इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं। वह एक धूर्त है, वह क्यों मुझे भूलने लगा। मैं तो समझता था कि वह शाम तक ही मेरे पास आ जायगा। लेकिन अभी तक नहीं आया। आज नहीं, तो कल तो किसी प्रकार नहीं टल सकता। पर इसकी चिन्ता ही क्या। मैंने भी बाल कुछ धूप में सफ़ेद नहीं किये हैं।

उसके अन्तिम वाक्य से एक प्रकार का आन्तरिक गर्व टपकता था। यह उसके स्वभाव का एक अंग बन गया था। कुरसी से उठ कर और जेब से एक चमकता हुआ सिगरट-केस निकाल कर वह कमरे में इधर-उधर टहलने लगा। टहलने से उसका चित्त कुछ हलका हो चला था। प्रफुल्ल की आयु साठ वर्ष की होगी, किन्तु देखने से वह इतना बुड्ढा नहीं मालूम पड़ता था। मूछ के अधिकांश बाल अभी काले ही थे। सीना चौड़ा और हाथ-पैर मज़बूत थे। चेहरे से भी दृढ़ता टपकती थी।

उसने एक सिगार जलाया और दो-तीन कस लगाये। सहसा वह खड़ा हो गया। उसके कान चौकन्ने हो गये। सारा शरीर पत्थर की मूर्ति की भाँति अचल था।

क्यों? क्या उसे कोई भयंकर शब्द सुनाई दिया था? नहीं, लीला तो अब भी सुरीले कण्ठ से गा रही थी। कार्नवालिस स्ट्रीट पर इस समय चहल-पहल भी काफ़ी थी। फिर क्यों, प्रफुल्ल की आँखें गिद्ध की भाँति एकटक खिड़की की ओर देख रही थीं।

बात यह थी कि किवाड़ खटखट कर रहे थे और काँच से एक सुडौल हाथ की धुँधली झलक दिखाई देती थी।

प्रफुल्ल ने एक लम्बी साँस ली और फिर मन ही मन कहा—लो, मैं तो पहले ही जानता था कि उसके आने में देरी नहीं है।

पाँच-छः लम्बे लम्बे क़दम बढ़ाने से प्रफुल्ल खिड़की के पास पहुँच गया। रात्रि अँधेरी थी, तथापि उसे खिड़की के नीचे कोई खड़ा दिखलाई दिया। उसे निश्चय हो गया कि यह राखाल के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। उसने चिटखनी खोल दी और आगन्तुक धीरे से ऊपर चढ़ आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते ही वह एक आराम-कुरसी पर जा धमका। थोड़ी देर में उसने कहा—तुम्हारी सभ्यता में कोई संदेह नहीं, तुमने झट से खिड़की खोल दी। देखो तो बाहर कैसा अँधेरा और जाड़ा है। बाहर निकलने को जी नहीं चाहता था।

राखाल की पोशाक घटिया न थी। अप-टू-डेट नवयुवक जिस ढंग से रहते हैं वही ढंग उसने ग्रहण कर रक्खा था। वह सदर दरवाज़े से न होकर छिपकर खिड़की की राह से क्यों आया है, इसका कुछ कारण नहीं बताया जा सकता, शायद प्रफुल्ल भी इसी बात को सोच रहा था। प्रफुल्ल की अपेक्षा इसका रंग कुछ गोरा, होंठ कुछ पतले और आँखें कुछ छोटी थीं। आयु भी उससे कुछ कम होगी।

प्रफुल्ल बिलकुल चुप था। राखाल हथेलियाँ मलता हुआ कुरसी से उठ खड़ा हुआ और उसके समीप पहुँच कर पूछने लगा—क्यों, किस चिन्ता में पड़े हो?

प्रफुल्ल ने फिर भी कोई उत्तर न दिया। केस से एक नया सिगार निकाल कर जलाया और केस तथा दियासलाई का बक्स उसकी ओर बढ़ा दिया।

राखाल ने केस ले तो लिया, किन्तु सिगार जलाने के पहले एक बार फिर पूछा—क्यों, क्या सोने की तैयारी कर रहे थे?

प्रफुल्ल ने संक्षेप में कहा—नहीं कुरसी पर बैठ जाओ।

राखाल फिर कुरसी पर बैठ गया। एकाएक उसकी दृष्टि ज़ीने की ओर गई। उसने कहा—क्या वही लड़की ऊपर गा रही है? गाना तो बहुत अच्छा है, आवाज़ भी सुरीली है। देखने में भी बड़ी भोली-भाली और सुन्दर मालूम होती थी। दूकान में ही जब मैंने तुम दोनों को देखा था तब मैं समझ गया था कि यह तुम्हारी ही कन्या होगी। बिलकुल कुसुम के अनुरूप है। क्यों कभी वह भी उसकी याद करती है? प्रफुल्ल, क्या तुम जानते थे कि मैं तुमसे भेंट करने आऊँगा?

प्रफुल्ल ने फिर भी एक ही शब्द में सिर हिलाकर उत्तर दिया—हूँ।

राखाल ने फिर पूछा—क्या तुम्हें अनुमान हुआ था कि तुमको देखने के बाद मैं तुम्हारा पीछा करूँगा।

प्रफुल्ल ने उत्तर दिया—हाँ, यह भी कोई पूछने की बात है।

राखाल ने कहा—प्रफुल्ल, तुम ऐसे क्षुब्ध हो, क्या तुम उन दिनों को बिलकुल ही भूल गये जब हम तुम जिगरी दोस्त थे। न तुम्हें मेरे बिना कल पड़ती थी और न मुझे तुम्हारे बिना। अच्छा, मुझे थोड़ी-सी ह्विसकी पिलाओगे?

प्रफुल्ल ने कुछ मुस्कराकर कहा—क्यों नहीं, मैंने पहले से ही तुम्हारे लिए रख छोड़ी है।

प्रफुल्ल धीरे-धीरे अलमारी की ओर बढ़ा और उसमें से एक बोतल उठा लाया। इतने में राखाल ने कमरे में चारों ओर एक तीव्र दृष्टि फेंकी और फिर कहा—यह तो पहले से ही जानता था कि तुम बड़े शौक़ीन हो, दारजिलिंग में सैकड़ों बार मैंने इस बात का अनुभव किया है। किन्तु तुम्हारी सजावट से तो मैं दंग रह गया। यह मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि शौक़ीनी के अतिरिक्त पढ़ने-लिखने से भी तुम्हें इतना अधिक प्रेम है। अलमारियाँ पुस्तकों से भरी दिखाई देती हैं। मगर मैं अपनी बात बताऊँ। यहाँ आने के पहले मैंने इधर-उधर के कई लोगों से तुम्हारे विषय में पूछा था। उन्होंने बतलाया कि तुम एक बड़े भारी महाजन हो, तुम्हारे पास जूट की कई मिलें हैं और उनका आफ़िस क्लाइव स्ट्रीट में है। सच तो बताओ, ये बातें कहाँ तक ठीक हैं या कोरा चकमा है।

प्रफुल्ल ने गिलास बढ़ाते हुए कहा—ठीक हैं, पहले इसको पी लो, फिर सब बतलाऊँगा।

राखाल ने शिष्टाचार के ढंग से अपने मेज़बान को धन्यवाद दिया और एक ही साँस में आधा गिलास साफ़ कर गया, किन्तु फिर और पीने की इच्छा न हुई। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। राखाल आरामकुरसी पर लेट सा गया था। उसके पैर कुरसी के दोनों हाथों पर रक्खे थे और सिर के नीचे हाथ तकिया का काम दे रहे थे। फिर बात छेड़कर उसने कहा—क्यों प्रफुल्ल, तुमने क्या कहा था, सब ठीक हैं? क्यों मुझसे भी चाल? सच सच बताओ, क्या मामला है।

प्रफुल्ल मेज़ के सहारे खड़ा था। बीच-बीच में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिगार के दो-एक कस लगा लेता था। उसने उसी गम्भीरता से कहा—नहीं, मैं झूठ नहीं बोलता।

राखाल ज़ोर से हँस पड़ा—यह भी कोई नई बात है? किन्तु प्रफुल्ल, यह तो बताओ तुम मुझसे बिगड़े क्यों हो? बातें करना चाहते तो केवल हूँ-हाँ न करते। शायद मैं छिपकर खिड़की की ओर से आया हूँ, इसलिए—पर मैं ने सोचा था कि इसमें तुम्हें कोई आपत्ति न होगी। मैंने एक बार तुम्हारे अहाते का पूरा चक्कर लगाया, तुम कमरे में टहल रहे थे। इसलिए खिड़की की राह से आने में ही मुझे सबसे अधिक सुबिधा मालूम हुई।

प्रफुल्ल ने कहा—क्यों न हो, यह तो तुम्हारी पुरानी आदत के ही अनुकूल हुआ।

राखाल ने भी उत्तेजित होकर कहा—बहुत ठीक, मैं और चाहे जो कुछ हूँ, ढोंगी नहीं।

अब की बार प्रफुल्ल ने बड़े ज़ोर से दो-तीन कस लगाये और कहा—राखाल, संसार में एक व्यक्ति ऐसा है जिसकी मैं कभी सूरत नहीं देखना चाहता? क्या तुम उसे जानते हो?

राखाल ने कहा—क्यों नहीं, यह तो बिलकुल स्पष्ट है और इसमें तुम्हारा कुछ दोष भी नहीं। दुनिया की चाल ही ऐसी है। यदि तुम आज भी बचपन की भाँति दारजिलिंग की उन मैली-कुचैली कोठरियों में सड़ते होते तो तुम मुझको अपने गले से लगाते और भाई की तरह प्यार करते। किन्तु आज तुम तो नवाब बन बैठे हो, इसलिए यदि मेरी सूरत तुम्हारी आँखों में काँटे की तरह खटकती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

प्रफुल्ल ने उत्तर दिया—नहीं, केवल एक यही कारण नहीं है।

राखाल ने पूछा—अच्छा दूसरा कारण भी सुनूँ।

प्रफुल्ल ने हाथ का संकेत करके कहा—ज़रा ठहरो, सब बताऊँगा। तुम्हारे कहने का मतलब यह है न कि मैं पक्का ठग हूँ। इसमें संदेह नहीं कि मैं एक पक्का धूर्त्त था और इसके कहने में मुझे कोई संकोच नहीं कि मैं अब भी एक पक्का धूर्त्त हूँ। किन्तु एक बात है। मेरे भाग्य ने कुछ ऐसा पलटा खाया है कि अब मुझे उसकी आवश्यकता नहीं रही। बिना धूर्त्तता के ही लक्ष्मी मेरी चेरी सी हो रही है। इसलिए राखाल, तुम यह निश्चय समझो कि मैं फिर कभी अपनी पुरानी चालें ग्रहण नहीं कर सकता और इसके लिए किसी प्रमाण की भी आवश्यकता नहीं। जब मुझे योंही रुपया मिलता है तब मैं क्यों उसके लिए अपनी जान जोखिम में डालूँगा। मैं यह नहीं कहता कि मैं बड़ा धर्मात्मा हो गया हूँ अथवा मेरा हृदय पलट गया है। जैसा मैं पहले था वैसा अब भी हूँ, रत्ती-भर भी नहीं बदला। यह बात तुम्हें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। आपत्ति पर आपत्ति पड़े, बाधा पर बाधा आये, मुझे किसी का भय नहीं, मैं दृढ़ता से उनका सामना करने के लिए तैयार हूँ। तुम इस बात को मान सकते हो या नहीं?

राखाल ने फिर मेज़ से गिलास उठाया और इस बार उसको बिलकुल साफ़ कर गया। फिर हँसते हुए कहा—शाबास, प्रफुल्ल, शाबास। विपत्ति और बाधा। विघ्न-बाधाओं की कौन सी बात है? मैंने कभी ऐसी कोई विघ्न-बाधा नहीं देखी जिससे तुम्हारे हृदय में भय का संचार हुआ हो। शायद तुम भय का नाम भी नहीं जानते। और न कोई ऐसी विपत्ति ही है जिस पर तुम विजय न पा सको। इस विषय में तुम पक्के उस्ताद हो। तभी तो हम लोगों ने तुम्हारा नाम 'गुरुघंटाल' रक्खा है। क्यों, ठीक कहता हूँ न?

प्रफुल्ल ने उसी गम्भीरता से कहा—अच्छा, यह तो हुआ। लेकिन राखाल यह तो बताओ, तुम यहाँ आये किसलिए हो?

राखाल ने उत्तर दिया—अच्छा, अब तुमने मतलब की बात छेड़ी है, सुनो मेरी पहली मंशा तो है—दोस्ती के मुरझाये हुए पौधे को सींचना।

"और दूसरी"

"तुम्हारे सौभाग्य पर तुम्हें बधाई देना।"

"और तीसरी"

"थोड़ा सा कर्ज़ा लेना, बहुत नहीं, केवल पाँच सौ रुपये।"

राखाल इतना कहकर सीधा कुरसी पर बैठ गया और ध्यान से प्रफुल्ल के मुख की ओर देखने लगा। इस समय उसका प्रत्येक रोम सचेत था, क्योंकि यहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी सफलता और असफलता का निर्णय होने-वाला था। किन्तु प्रफुल्ल ने उसकी ओर देखा ही नहीं। नीचा सिर करके जेब से घड़ी निकाल कर देखने लगा।

उसी दशा में सहसा उसके मुँह से निकल गया—पाँच सौ रुपये।

राखाल ने कहा—हाँ, केवल पाँच सौ, मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँगा।

प्रफुल्ल ने कहा—नहीं, नहीं, पाँच सौ नहीं, मैं तुम्हें पाँच हज़ार दूँगा।

राखाल की आँखें चमक गईं। उसने उत्सुकता से पूछा—सच कहते हो?

प्रफुल्ल ने उत्तर दिया—सच, बिलकुल सच।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। अन्त में राखाल ने कहा—मैं तुम्हारा मतलब समझ गया। शायद तुम यह समझते हो कि मैं तुम्हारी पोल खोलना चाहता हूँ।

प्रफुल्ल ने कहा—हाँ, इसके सिवा और कौन सा कारण हो सकता है।

राखाल ने उत्तर दिया— और शायद इसी लिए तुमने प्रलोभन की मात्रा इतनी अधिक बढ़ा दी है कि एक बार पाँच हज़ार जायँ सो जायँ, सिर से बला तो टले।

प्रफुल्ल ने सिर हिलाकर कहा—नहीं तुम भूल करते हो। क्या मैं यह नहीं जानता कि तुम इतने से कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकते। जब तक मेरे शरीर में एक बूँद भी रक्त रहेगा तब तक तुम मेरी जान नहीं छोड़ सकते। जोंक की तरह लगे ही रहोगे।

राखाल ने कहा—वाह, मानव-चरित्र-चित्रण में बड़े सिद्धहस्त मालूम होते हो।

प्रफुल्ल ने प्रत्युत्तर में कहा—क्या, तुम्हारे कौटिल्य की पराकाष्ठा दिखाने में मैंने किसी प्रकार की त्रुटि की है।

राखाल का चेहरा कुछ पीला पड़ गया, किन्तु उसने बनावटी हँसी हँसना चाही। फिर व्यंग्य से कहा—दुधारी गाय की दो लातें सह लेना ही उचित है। एक ओर पाँच हज़ार रुपये और दूसरी ओर अपमान और निरादर। मूल्य तो काफ़ी नहीं है, किन्तु इस समय मैं शायद इतने रुपयों के सहारे इससे भी घोरतर अपमान आसानी से निगल जाऊँगा। अच्छा, मुझे रुपये कब मिलेंगे?

प्रफुल्ल ने ज़ोर से कहा—रुपये, तुम मुझसे रुपये लेना चाहते हो, मैं एक फूटी कौड़ी भी नहीं देने का।

राखाल के चेहरे से वह व्यंग्य-हँसी भी ज़ाती रही। वह अकड़ कर बैठ गया। उसने पूछा—अच्छा, यह बताओ, तुम मेरे साथ कौन सी शैतानी चाल चल रहे हो।

प्रफुल्ल ने मुड़कर पीकदान उठाया और खाँसते हुए उसमें दो तीन बार थूका, फिर गम्भीरता से कहा—देखो, मैं तुम्हें सब बातें समझाकर कहे देता हूँ, कान खोलकर सुन लो। उसमें सन्देह करने की गुञ्जाइश नहीं। पहली बात, हमेशा के लिए अपने दिल से यह बात निकाल दो कि मैं कभी तुम्हें एक पैसा भी दूँगा। क्योंकि न तो मैं डरपोक हूँ और न मूर्ख। यह तो शायद तुम्हें भी मान्य होगा। आज मैं तुमको रुपया दूँ और कल से तुम मेरी देहरी पर अड़ जाओ। मुझे तुमसे पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जायगा। तुम मेरे सुख में एक विषाक्त कंटक होगे। मुझे न दिन को भूख लगेगी और न रात को नींद। वह कंटक और कुछ नहीं मेरी पुरानी कथा है। उसी को साधन बनाकर तुम अपना काम निकालोगे। इसी लिए मुझे तुम्हारे मुँह को बन्द करने की आवश्यकता है और मैंने उसके लिए एक युक्ति सोच रक्खी है।

देखो, उस कोने में जो तिजोड़ी रक्खी है उसके भीतर एक रत्न-मञ्जूषा है। उसमें मेरे सबसे बढ़िया और बहुमूल्य आभूषण हैं। यदि तुम जैसे आदमियों के हाथ वे सब गहने लग जायँ तो तुम उनके द्वारा पाँच हज़ार रुपये आसानी से वसूल कर सकते हो। कुछ अधिक ही मिलेगा, कम एक पैसा भी नहीं। अच्छा, ये सब गहने मैं तुम्हें दे सकता हूँ।

प्रफुल्ल का जोश क्रमशः बढ़ता जाता था। उसने हाथ का संकेत करते हुए कहा—ठहरो, अभी तुम्हारे बोलने की बारी नहीं आई है। यह निश्चित है कि तुम उन्हें प्राप्त कर सकते हो, किन्तु एक शर्त पर। तुम्हें उन्हें चुराना होगा। मैं तुम्हें इससे अधिक नहीं फँसाना चाहता। यदि मैं तुम्हें इस प्रकार पाँच वर्ष के लिए जेल की हवा खिला सकूँ तो कम से कम मैं उतने दिनों तक तो सुख की नींद सोऊँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राखाल ने फिर टोकना चाहा, किन्तु प्रफुल्ल ने ज़ोर से कहा—ठहरो, पहले मेरी पूरी बात सुन लो। कल ढाका के एक ज़मींदार यहाँ आये थे। उन्होंने इस संदूक़ के लिए सात हज़ार रुपये लगाये हैं। उनको अब केवल अपनी गृहिणी की स्वीकृति लेना शेष है। इसी हेतु मैं कल सवेरे इस मञ्जूषा के साथ अपने नौकर को वहाँ भेजनेवाला था। अब मैं उसको कल रात्रि की गाड़ी से भेजूँगा। इसमें तुम्हें और भी अधिक आसानी होगी। नौकर वही है जो तुम्हें दरवाज़े पर दिखाई दिया होगा। हबड़ा से गाड़ी ८ बज कर २० मिनट पर छूटती है, ४ नम्बर के प्लेटफ़ार्म से छूटेगी। मैं स्वयं नौकर के साथ स्टेशन जाऊँगा और उसको एक फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठाऊँगा। डिब्बा बिलकुल ख़ाली होगा, रेलवालों को कुछ ले-देकर यह सब ठीक कर लिया जायगा। तुम वहीं प्लेटफ़ार्म पर खड़े रहना। ज्योंही गाड़ी छूटने के लिए सीटी दे, त्योंही तुम घबराते हुए उस डिब्बे के सामने पहुँचना और घुसने की चेष्टा करना। मैं सिर से पैर तक तुम्हारे ऊपर एक सरसरी दृष्टि डालूँगा और फिर तुमको भीतर घुसा लूँगा, साथ ही नौकर को ऐसा संकेत कर दूँगा कि आदमी भले मालूम होते हैं, उनसे डरने की कोई बात नहीं। यह तो तुम जानते ही हो कि वह गाड़ी एक्सप्रेस ट्रेन है। छूटने के कोई ५० मिनट के बाद अगले स्टेशन पर ठहरती है। अच्छा, तुम मेरा मतलब समझ गये?

राखाल ने नाक सिकोड़ते हुए घृणासूचक ढंग से कहा—तुम कोई भयंकर चाल चलना चाहते हो, मुझी को उल्लू बनाओगे? क्यों?

राखाल की आँखों में संदेह झलकता था। प्रफुल्ल ने उस संदेह की उपेक्षा करके स्वयं आश्चर्य से कहा—इसका मतलब।

राखाल ने भी उसी ढंग से कहा—मतलब? क्यों प्रफुल्ल, क्या तुमने मुझे स्कूल में पढ़नेवाली कोई लड़की समझ रक्खा है? अपने नौकर को तो तुम ये सब बातें पहले से ही समझा-बुझा दोगे। ज़रा सा भी मैंने इधर-उधर किया कि दन से उसने मेरे सीने पर गोली छोड़ दी।

प्रफुल्ल ने कहा—ग़लत बिलकुल ग़लत। उसके पास कोई हथियार न होगा। लेकिन मान लो कि उसके पास एक पिस्तौल रहे भी तो उसमें हानि ही क्या है। क्या तुम समझते हो कि मैं ऐसा मूर्ख हूँ कि तुम्हारी तेज़ी और उस्तादी के आगे उसकी पिस्तौल पर भरोसा करूँगा। राखाल, इस विषय में तो तुम्हें डरने की कोई आवश्यकता नहीं।

राखाल ने पूछा—अच्छा उसके बाद मैं क्या करूँगा।

प्रफुल्ल ने हँसकर कहा—क्या करोगे? एक रूमाल और क्लोरोफार्म। मैं समझता हूँ, तुम्हारे लिए यही सबसे अच्छा और सबसे आसान उपाय होगा।

राखाल सिहर उठा। थोड़ी देर के बाद उसने धीरे से कहा—इसमें सन्देह नहीं कि तुम अपने नौकर के साथ बड़ा सद्व्यवहार कर रहे हो। यदि उसे आपके गुण मालूम हो जायँ तो वह आपको बहुत धन्यवाद देगा।

प्रफुल्ल ने उत्तर दिया—इससे तुम्हें क्या सरोकार! मैं पीछे से उसका मन समझा दूँगा। वह मुझसे अप्रसन्न नहीं रह सकता।

राखाल ने कहा—तुमने यह नहीं सोचा कि यदि मैं उसे मार डालूँ तो—

प्रफुल्ल ने उत्तर दिया—नहीं, तुम्हें ऐसा साहस नहीं हो सकता। जब तुम मेरे सामने डिब्बे में चढ़ोगे तब तुम व्यर्थ ही फाँसी पर लटकने की चेष्टा क्यों करोगे?

राखाल ने कहा—ठीक है, तुम्हारे आभूषण उड़ जायँगे। पर जब तुम्हारा नौकर अपने बयान में मेरा नाम लेगा तब तुम मुझे पकड़ाये बिना न रहोगे।

प्रफुल्ल ने कहा—मालूम होता है, राखाल, तुम अपनी पुरानी चालबाज़ियाँ भूल गये? बेशक, तुममें बड़ा परिवर्तन हो गया है। मैं नहीं समझता था कि जेल के डर से तुम ऐसे सुअवसर को भी हाथ से जाने दोगे।

राखाल ज़ोर ज़ोर से हाथ मलने लगा। उसने मुँह बना कर कहा—प्रफुल्ल, मैं तुम्हारी चाल समझ गया, लेकिन तुम हो बड़े शैतान! अच्छा यदि मैं ज़ेवर लेकर साफ़ भाग जाऊँ।

प्रफुल्ल ने कहा—तुम भाग जाओगे, इसमें सन्देह ही क्या है। लेकिन फिर कभी अपना मुँह दिखाना तब बताऊँगा। देखो, मैं कोई बात छिपाना नहीं चाहता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राखाल ने उत्तर दिया—मुझे सोचने के लिए समय चाहिए।

प्रफुल्ल ने कहा—यह तुम्हारी मर्ज़ी है, तुम चाहे जितना सोचो। मैं कम से कम तुम्हारी गर्दन पर हाथ अवश्य रखना चाहता हूँ, वास्तव में तुम्हीं मुझे इसके लिए बाध्य कर रहे हो।

राखाल ने कहा—मान लो, मैं इस पर न राज़ी होऊँ।

प्रफुल्ल ने उत्तर दिया—यह तुम्हारी मर्ज़ी। किन्तु किसी अन्य उपाय से रुपया पाने की आशा करना व्यर्थ है। क्या तुम्हारी समझ में मैं ऐसा पोच हो गया हूँ कि तुम मेरी चुग़लियाँ किया करोगे और मैं हाथ पर हाथ रक्खे चुपचाप बैठा रहूँगा। अभी मैं इतना मुरदा नहीं हो गया हूँ।

राखाल ने कहा—यह तो मैं नहीं कह सकता। पर लड़की! यदि मैं अपना मुँह खोलूँ तो क्या तुम उसका विवाह किसी उच्च कुल में कर सकोगे?

प्रफुल्ल के मुख पर मुस्कराहट की झलक आई, किन्तु उससे आनन्द नहीं, बरन कठोरता टपकती थी। उसने कहा—खूब समझे! जो ये मैं तुम्हें पाँच हज़ार रुपये देने के लिए तैयार हूँ वे और किसलिए? क्या मुझे स्वयं अपने बचाने की चिन्ता है? तुम चाहे साक्षात् राक्षस ही क्यों न हो मैं अब भी तुम्हें तीन बार पटकने का दम रखता हूँ।

राखाल ने व्यंग्योक्ति की। कहा, तुम्हारा भाषण बहुत सुन्दर होता है। अच्छा, क्या तुम एक बार मुझे अपने आभूषण देखने दोगे? पहले मैं यह देख लूँ कि जुए में क्या दाव लगाया जा रहा है।

"यह उचित है" कहता हुआ प्रफुल्ल उठा और तिजोड़ी के पास पहुँचा। तिजोड़ी में ताला नहीं लगा था। थोड़ा सा झुक कर प्रफुल्ल ने उसके भीतर हाथ डाला और उसमें से एक छोटा सा सन्दूक़ निकाला। सन्दूक़ सुन्दर आबनूस की लकड़ी का बना हुआ था। उसके ऊपर जो नक़्क़ाशी का काम था वह था यद्यपि थोड़ा, किन्तु किसी बड़े कुशल शिल्पकार के हस्तलाघव का नमूना मालूम होता था। बीच में चाँदी की एक सिंह-मूर्ति बनी थी। जिस समय प्रफुल्ल ने उसको मेज़ पर रक्खा उस समय वह चाँदी का सिंह बिजली की रोशनी में दूध के समान चमक उठा। प्रफुल्ल ने अपने वास्कट की जेब से एक सुनहरी चाबी निकाली और उसको सिंह के जबड़ों में दबा दिया। सन्दूक़ तुरन्त खुल गया। राखाल इन सब बातों को ध्यान-पूर्वक देख रहा था। ज्यों ही सन्दूक़ खुला, त्योंही उसकी आँखें चकाचौंध हो गईं। उसने पहले कभी ऐसे चमकीले रत्नाभूषण नहीं देखे थे। उसके चेहरे का रङ्ग कुछ गहरा हो गया। वह सिर झुका कर ध्यानपूर्वक उन चमकीले रत्नों को देखने लगा। उस समय उसका सारा मन मानो आँखों में आ बैठा था। सन्दूक़ में केवल तीन चन्द्रहार थे। वे बड़ी ही सावधानी से लाल मखमली घरों में यथास्थान रक्खे थे। बीच का हार सबसे बड़ा था। इन हारों में मोती, लाल, नीलम, पन्ना, हीरा आदि इस सुन्दरता से जड़े हुए थे कि नेत्रों पर उनका बहुत ही मधुर प्रभाव पड़ता था। राखाल की आँखें तृप्त हो गईं। घड़ी भर के लिए वह मंत्र-मुग्ध सा खड़ा रह गया।

प्रफुल्ल राखाल के मुख की ओर देख रहा था। थोड़ी देर बाद उसने कहा—राखाल, तुम्हें असली और नक़ली रत्नों की परख तो खूब है।

राखाल ने सिर ऊँचा करके और एक साँस लेकर कहा—ये सब तो असली मालूम होते हैं।

प्रफुल्ल ने ढक्कन लौटाकर ताला बन्द कर दिया और चाबी अपनी जेब में रख ली। फिर संक्षेप में कहा—मेरे कहने के अनुसार ये सब तुम्हें प्राप्त हो सकते हैं। बोलो तुम इस अवसर को हाथ से जाने दोगे अथवा उससे लाभ उठाओगे।

राखाल ने उत्तर दिया—लोभ बहुत भारी है, मैं इसे अस्वीकार नहीं कर सकता। राखाल की आवाज़ एकाएक भारी हो गई थी।

प्रफुल्ल ने उलट कर कहा—यदि तुम करते तो तुमसे बढ़ कर दुनिया में मूर्ख मिलना कठिन होता। यह कहकर उसने सन्दूक़ उठाया और धीरे धीरे तिजोरी की ओर जाने लगा।

ज्योंही प्रफुल्ल ने पीठ फेरी त्योंही राखाल चुपचाप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुरसी से उठा। साथ ही उसका दाहिना हाथ ओवरकोट की जेब में पहुँच गया। राखाल की आँखों में एक प्रकार की भयङ्कर लाली दौड़ रही थी। वह कमर झुकाये हुए प्रफुल्ल के क़दमों में क़दम मिलाता हुआ उसके पीछे जा रहा था। हाथ अब जेब से बाहर निकल आया था। उसमें एक छोटा सा तमञ्चा था। इधर प्रफुल्ल ने सन्दूक़ को तिजोर में रखना चाहा उधर राखाल ने तमञ्चे को उसकी गरदन पर जा डटाया। उनके बीच केवल ८ अङ्गुल का अन्तर होगा, किन्तु प्रफुल्ल और उसकी मृत्यु के बीच ८ मिनट का भी अन्तर नहीं मालूम होता था। तमञ्चा छूटता कि सीधा वह स्वर्ग को सिधारता। पर प्रफुल्ल तो बदमाशों का बदमाश था। न जाने कैसे उसने राखाल की शैतानी पहले ही से ताड़ ली थी। शायद सङ्कट के समय मनुष्यों को ईश्वर की ओर से कोई प्रेरणा हुआ करती है। प्रफुल्ल बिना पीछे देखे ही पहलवान की भाँति एकाएक उछल पड़ा।

राखाल भी उसी तेज़ी से एक क़दम पीछे हट गया। शिकार के समय बिल्ली जैसी सचेत होती है, ठीक वही दशा उस समय राखाल की थी। वह बिल्ली की तरह थोड़ा सा गुर्राया भी। थोड़ी देर तक दोनों दूर ही दूर अपने हथकंडे दिखाते रहे। किसी ने एक शब्द भी मुँह से न निकाला। प्रफुल्ल अन्त में हताश-भाव से पत्थर की मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ा हो गया। घबराहट उसके मुख पर प्रकट दिखाई देती थी, उसकी आँखें तमञ्चे के गोल मुँह पर लगी थीं।

कुछ देर बाद राखाल ने कहा—बच्चा, अब मुझसे छूटकर नहीं जा सकते।

प्रफुल्ल काँप उठा। उसने दाहने हाथ से अपने मुँह को ढँक लिया और चिल्लाकर कहा—ठहरो, ठहरो, राखाल, ईश्वर के लिए मुझे जान से मत मारो।

उसी समय कमरे में एक गम्भीर शान्ति सी छा गई। लीला के हारमोनियम की आवाज़ वायुमण्डल में गूँज रही थी। यद्यपि प्रकटरूप से इन लोगों का ध्यान कभी उस ओर नहीं गया था, तथापि ज्योंही लीला ने हारमोनियम के परदे को अन्तिम बार दबाया, त्योंही उनको उसका अभाव खटकने लगा।

राखाल ने कठोर होकर कहा—क्यों न मारूँ? अभी तक तुम्हारी शान थी, तुम बढ़ बढ़ कर बातें करते थे, उस समय तुम्हें इसका ख़याल ही न था। अब मेरी बारी है। कान खोल कर सुनो। ज़रा भी टस से मस हुए कि तुम्हारा सिर उड़ गया। बताओ—कौन बेवक़ूफ़ है मैं या तुम। बोलो, चुप क्यों हो?

प्रफुल्ल ने पहले अपने सूखे हुए होंठों पर जीभ फेरी और फिर बड़ी नम्रता से कहा—ज़रा धीरे से बोलो, यदि तुम गोली चलाओगे तो आवाज़ होगी।

राखाल ने चिढ़ाते हुए कहा—शैतान की दुम, इसकी मुझे क्या परवाह। क्या मैं डरता हूँ? जल्दी से रत्न-मंजूषा मेरे हाथ दो। देखो आँखें इधर-उधर मत करना। हाथ से टटोल कर उसे निकाल दो। नहीं तो दन से गोली छूट जायगी। मैं अभी रुपये वसूल किये लेता हूँ। यह मेरा ऐहसान रहा कि तुमको जान से नहीं मारूँगा। पर तुम काहे को मानने लगे?

बात भी पूरी नहीं होने पाई थी कि प्रफुल्ल ने सन्दूक़ निकाल कर चुपचाप राखाल के आगे बढ़ा दिया। राखाल ने उसे सँभाल कर बायें हाथ से पकड़ लिया। इतना धन पाने पर भी उसका क्रोध शान्त न हुआ था। उसने कुढ़ाने की दृष्टि से कहना शुरू किया—बच्चू ने उपाय तो बहुत अच्छा सोचा था। मैं इनके नौकर को लूटने के लिए स्टेशन जाऊँ और उस पर तुर्रा यह कि इनके सामने मानो मैं जान-बूझ कर अपने गले में फाँसी डाल लूँ। युक्ति तो बड़ी उत्तम थी, किन्तु मैं क्या ऐसा मूर्ख हूँ। प्रफुल्ल, तुमने धोखा खाया, बड़ा धोखा खाया। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि तुम अब दारजिलिंग-वाले प्रफुल्ल नहीं हो। तुममें बड़ा परिवर्तन हो गया है। तुम बहुत नीचे जा गिरे हो। माल खाने से सभी मोटे और बेकाम हो जाते हैं। आयु भी तो तुम्हारी अधिक हो गई। किन्तु हाँ, बुद्धि अब भी ठीक ठीक काम करती है। एक दिन तुम मुझे शिक्षा देते थे, और आज मैं तुम्हें शिक्षा देता हूँ। गुरु गुड़ ही रहा, चेला शक्कर हो गया। क्यों, यह चकमा तो जन्म भर याद रहेगा? बोलो इस खेल में किसकी विजय हुई?

प्रफुल्ल वेदना से ही मन ही मन कुण्ठित हो रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उसने भर्राई हुई आवाज़ में कहा—तुमको माल तो मिल गया, अब और क्या चाहते हो? क्या अभी तृप्ति नहीं हुई?

राखाल ने उत्तर में कहा—नहीं, इस बार मैं और कुछ नहीं लूँगा। लेकिन याद रक्खो कि मैं तुम्हारा पीछा छोड़नेवाला नहीं। मैं एक बार क्या सैकड़ों बार तुम्हारे पास आऊँगा। जब कभी मुझे आवश्यकता होगी तभी मैं तुम्हारे पास आऊँगा। जब तक तुम्हारी जेब में एक भी फूटी कौड़ी रहेगी तब तक मैं तुम्हारा पिण्ड नहीं छोड़ने का। एका-एक वह हँस पड़ा और फिर बोला—मैं धूर्त्त हूँ, नहीं नहीं जोंक हूँ। मैं भी तो इनकार नहीं करता, याद रक्खो तुम्हारा एक एक बूँद लोहू पी जाऊँगा। समझे, अब तुम्हें अपने जीवन का एक एक दिन भाररूप मालूम होगा, हर घड़ी और हर पल जान के लाले पड़े रहेंगे। अपनी खाल उतार कर जीना तुम्हारे लिए आसान होगा, मगर मुझसे पीछा छुड़ाना असम्भव है। हाँ, यदि मेरे साथ कुछ सद्-व्यवहार करते तो शायद मुझे भी इतना क्रोध न आता। किन्तु बच्चा, तब तो ऐंठ के मारे मरे जाते थे। तुम अब मुझसे तभी छुटकारा पा सकते हो जब या तो तुम मर जाओगे या मैं मर जाऊँगा।

राखाल का तमञ्चा अब भी प्रफुल्ल के ऊपर तना हुआ था और प्रफुल्ल मुँह लटकाये हुए खड़ा था। अन्तिम वाक्य के समाप्त होने के पहले ही राखाल खिड़की के पास पहुँच गया और बात की बात में नीचे जा उतरा।

प्रफुल्ल उठा और आराम-कुरसी में जा गिरा। उसके हाथ-पैर ढीले पड़ गये थे। उसका मुँह छाती पर लटक गया था। उसे देख कर कोई भी कह सकता था कि उसे अपनी पराजय से असीम दुख हुआ है।

सङ्गीत की ध्वनि तो पहले से ही बन्द हो चुकी थी। राखाल के चले जाने से शान्ति और भी गम्भीर हो गई। इतनी गम्भीर कि मानो काटे खाती हो।

थोड़ी ही देर में प्रफुल्ल सिर उठा कर अपने आप बड़बड़ाने लगा—अभी क्या हुआ है, दस पाँच मिनट में वह कुत्ता फिर लौटेगा। ऐसा नहीं हो सकता कि वह न लौटे। यही गुनगुनाते गुनगुनाते उसके मुख पर एक हलकी मुस्कराहट छा गई, जिसने उसकी मूँछों में एक हलचल सी मचा दी। उसकी आँखों में भी एक हलकी किरण चमक गई। प्रफुल्ल कमरे में इधर-उधर भी दृष्टि डाल रहा था। कुत्सित हँसी की रेखा उसके चेहरे पर खेल रही थी। एकाएक उसकी दृष्टि खिड़की की ओर गई। उसने देखा कि चलते समय राखाल ने खिड़की के किवाड़ बड़ी सावधानी से बन्द कर दिये थे।

परन्तु प्रफुल्ल ने मन ही मन कहा—भला, इसकी क्या आवश्यकता थी। उसी को तो अभी आना होगा और शायद लौट भी पड़ा हो। पर मुझे इसकी चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं। देखूँ, वह शैतान क्या क्या चालें चलता है।

कुछ देर तक वह बिलकुल चुपचाप बैठा रहा। किन्तु उसका क्षुब्ध मस्तिष्क बड़ी तेज़ी से काम कर रहा था। मन ही मन वह अनेक विचार बाँध रहा था, उससे उसके क्रोध को कुछ सान्त्वना मिल रही थी। वह फिर अपने आप बातें करने लगा—

यहाँ तक तो प्रत्येक घटना अक्षरशः मेरी इच्छा के अनुकूल हुई है। मैंने रात की गाड़ी से आभूषण भेजने की जो चर्चा उठाई थी वह भूमिका-मात्र थी, किन्तु थी आवश्यक। यदि वह उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता तो मुझे कोई आपत्ति न होती। किन्तु मुझे तो निश्चय था कि जहाँ वह उन रत्नाभूषणों को एक बार अपनी आँखों से देख लेगा तहाँ फिर कदापि उसको स्वीकार नहीं कर सकता। उस दशा में उसी बात की सम्भावना थी जैसा कि उसने किया है। मैं तो जानता था कि जहाँ मैंने पीठ फेरी तहाँ तुरन्त राखाल ने जेब से पिस्तौल निकाली, इस-लिए मैं पहले से ही सावधान था। इस समय निस्सन्देह असली आभूषण उसके हाथ में पहुँच गये हैं, किन्तु इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि अब संशय उसके मन में प्रवेश करने लगा होगा। विजय की प्रथम उत्तेजना के शान्त होते ही वह इस घटना पर सोचना प्रारम्भ करेगा। 'ऐसे बहुमूल्य आभूषणों का सन्दूक़ चुपचाप मुझे सौंप कर प्रफुल्ल ने कैसी मूर्खता की है। मेरी ही आँखों के सामने इतनी असावधानी से ज़ेवर को उठाना-धरना यह कहाँ की बुद्धिमानी थी? सचमुच प्रफुल कुछ शिथिल पड़ गया है, किन्तु दाव-पेंच दिखाने और बातें बनाने में तो अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी वह पक्का उस्ताद मालूम पड़ता है। वह कभी इस मूर्खता के साथ आत्मसमर्पण नहीं कर सकता।' अवश्य ही राखाल के हृदय में ऐसे विचार उठ रहे होंगे, क्योंकि उसने बहुत दिनों तक मेरी सङ्गति की है। वह जानता है कि आज तक कभी मेरा निशाना ख़ाली नहीं गया। उसको यह भी मालूम है कि उसने अथवा उसकी पार्टी ने कभी मुझे किसी विषय में नीचा नहीं दिखा पाया। उसको यह भी याद होगा कि मेरी चालें जो देखने में बहुत ही सीधी-सादी और उथली मालूम होती थीं, वास्तव में कितनी गम्भीर और पेचीदा निकलती थीं। सब प्रकार की सम्भावनाओं का विचार करते ही मैंने अपना मार्ग निश्चित किया है। जहाँ एक बार उसने मेरे युक्तिचातुर्य पर विचार किया तहाँ तुरन्त सन्देह का भूत उसके हृदय में घर कर लेगा।

वह अपने मन में सोचेगा—प्रफुल्ल बिलकुल काठ का उल्लू है। क्या वह सचमुच ऐसा बुद्धू हो गया है। नहीं, उसने अवश्य मुझे धोखा दिया है। मैं उस समय उसकी चाल न समझ सका। ओह, यह तो उसको उल्लू बनाने के बजाय मैं स्वयं बन बैठा। प्रफुल्ल मेरी बुद्धि पर अट्टहास करता होगा, ज़रूर करता होगा। ओहो क्या एक बार भी मैं इस दुष्ट को नीचा नहीं दिखा सकता।

राखाल के मन में यही विचार उठ रहे थे, इन्हीं विचारों के तारतम्य से प्रफुल्ल कुछ ज़ोर से कह उठा—'वह देखो' बेचारा बड़ी उलझन में पड़ गया है, कभी आगे बढ़ता है, कभी पीछे हटता और कभी सिर पर हाथ रखकर बैठ जाता है। लो वह रत्न-मञ्जूषा को टटोलने लगा। वह यह देखना चाहता है कि उसके रत्न सच्चे या झूठे हैं। पर बच्चू उसको खोलना कुछ हँसी-खेल नहीं है। सिंह के जबड़े में चाबी डाली जाती है। हाँ, ठीक है किन्तु बिना चाबी के उसको तुम तो क्या तुम्हारे सात पुरखा भी नहीं खोल सकते। ताला बहुत ही मज़बूत है। लो, फिर इधर ही आ रहा है, मैंने तो पहले से ही सोचा था कि वह आवेगा फिर आवेगा, बचा जा कहाँ सकते हो, मेरा माल हज़म करना क्या आसान है; देखो कैसे चुपके चुपके चोरों की भाँति आ रहा है। शायद मेरी ओर ही घूर रहा है। मैं क्या कर रहा हूँ। बिलकुल चुपचाप बैठा हूँ। बच्चा मेरे अन्तःकरण का भाव समझना कठिन है। इस घटना से मुझे न दुख हुआ है और न सुख। लो अब तो बिलकुल खिड़की के पास आ गया। ओहो मेरा अनुमान अक्षरशः ठीक निकला।

अभी तक प्रफुल्ल आराम-कुरसी में निश्चिन्त और निश्चेष्ट बैठा था। किन्तु विचारावेश में वह एक-दम उठ खड़ा हुआ, अपने दोनों हाथ इस प्रकार फैलाये जैसे सुस्ती भगा रहा हो। फिर एक प्रचण्ड अट्टहास किया। थोड़ी ही देर बाद ऐसे ज़ोर से बोलना शुरू किया मानो कोई बाहर खड़ा हुआ उसकी बातें सुन रहा है।

'बड़ा मूर्ख है। ज़रा सी भी समझ नहीं। रोटी का टुकड़ा देखकर जैसे चूहे चूहेदानी में घुस जाते हैं वही हाल इस छोकड़े का है। समझता-बूझता तो पत्थर नहीं, पर बनता बड़ा होशियार है।'

प्रफुल्ल अपनी हथेलियाँ मलता हुआ प्रसन्न-चित्त से इधर-उधर टहलने लगा। बीच बीच में सिगार के दो एक कस लगा लेता था। उसके रङ्ग-ढङ्ग से ऐसा मालूम होता था जैसे कोई बड़ी प्रसन्नता हुई हो। थोड़ी देर तक यह स्वाँग दिखाकर वह फिर तिजोरी के पास गया और उसमें से एक सन्दूक़ निकाल लाया। यह सन्दूक देखने में ठीक पहले सन्दूक़ के समान था। यह भी आबनूस की लकड़ी का बना था, और इस पर भी चाँदी के सिंह की तसवीर थी।

प्रफुल्ल को पूर्ण विश्वास था कि खिड़की के बाहर से दो शैतानी आँखें उसे घूर रही हैं। उसने बड़े गर्व से इस सन्दूक़ को ऊपर उठाया। प्रतिद्वन्द्वी को हराने से उसके हृदय में परम सन्तोष था। फिर जेब से एक रूमाल निकाल कर उसको साफ़ करने लगा। बीच बीच में खिलखिला उठता था।

थोड़ी देर के बाद वह फिर उस सन्दूक़ को तिजोरी में रख आया और रोशनी बुझा कर ज़ोर से दरवाज़ा बन्द करता हुआ ऊपर ज़ीने पर चढ़ने लगा।

इधर से यह ऊपर चढ़ रहा था और उधर से लीला नीचे की खटपट सुनकर नीचे उतर रही थी। पिता को देखकर उसने कहा—मैं तो समझी थी कि आप किसी से बातें कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रफुल्ल ने अपनी एकलौती पुत्री के कन्धों पर दोनों हाथ रख दिये, जैसे उसे कोई सहारा मिल गया हो। उसने प्रेम से कहा—नहीं, मैं तुम्हारा गाना सुनने के लिए ऊपर आ रहा था। कोई ऐसा मधुर गीत सुनाओ जिससे मुझे नींद आ जाय।

दोनों ऊपर चढ़ गये। प्रफुल्ल पलँग पर जा लेटा और लीला हारमोनियम खोलकर बजाने लगी। प्रफुल्ल की दृष्टि तो लीला की ओर थी और ऐसा मालूम भी होता है कि वह गीत सुन रहा है, किन्तु यथार्थ में न तो उसकी आँखें ही लीला को देख रही थीं और न उसके कान ही उसके मधुर सङ्गीत को सुन रहे थे। उसकी आँखों के सामने तो नीचे का कमरा झूल रहा था। यद्यपि इस समय वह वहाँ नहीं था, तथापि उसकी एक एक वस्तु उसे मानो प्रत्यक्ष दिखाई दे रही थी। उसका हृदय धकधक् कर रहा था। वह सोचता था राखाल से एक ही बार में छुटकारा पाने के लिए मैंने जो अकाट्य जाल बिछाया है वह उसको फँसाने में सफल होगा या नहीं। बात बड़ी थी, इसी पर उसका जीवन निर्भर था।

इसी लिए उसका मस्तिष्क उत्तेजित था। हृदय में बहुत से विचार उठ रहे थे। नस नस में सनसनाहट सी फैल रही थी। दिल की बढ़ती हुई धड़कन को रोकने के लिए उसने कई बार लम्बी लम्बी साँसें लीं, पर फल उलटा हुआ। उसकी दम घुटने सी लगी।

सहसा उसके दिल में विश्वास सा हो गया कि राखाल फिर कमरे में आ गया है। वह सोचता है, नहीं, इसके अतिरिक्त वह कुछ और सोच ही नहीं सकता कि मैंने उसे एक नक़ली रत्न-मञ्जूषा दी है। जो रत्न-मञ्जूषा मुझे दिखाई थी उसमें असली रत्न थे। किन्तु इसमें नक़ली रत्न हैं। मैं इन काँच के टुकड़ों को लेकर क्या करूँगा। लेकिन अच्छी घात लगी अब इस सन्दूक़ को तो रक्खे देता हूँ और उसी असली को उठाये लिये जाता हूँ। लेकिन बच्चा, ले जाओ, यही तो मैं भी चाहता हूँ। जहाँ तुम अब की बार सिंह के जबड़े में कोई कील डाली तहाँ बात की बात में तुम्हारा प्राणान्त हो गया। आग में कूद पड़ने से मनुष्य की बचना सम्भव हो जाय, गङ्गा में डूबा हुआ मनुष्य भी जी जाय, पर मेरे सन्दूक़ के विद्युत् से तुम एक सेकिंड भी नहीं बच सकते। जब यन्त्र से बम का गोला छूटेगा तब उसे मेरी चाल मालूम होगी।

लीला ने गाना बन्द कर दिया था, केवल हारमोनियम बजा रही थी। किसी भी आदमी को उससे शान्ति मिल सकती थी। किन्तु प्रफुल्ल तो किसी और ही धुन में था। उसने मन ही मन कहा—यदि मेरा अनुमान ठीक न निकला, यदि कहीं राखाल नीचे न हुआ, तो—

कल्पनामात्र से प्रफुल्ल के पसीना आगया। वह सोचने लगा—यदि इस बार मैंने अपने आपको राखाल के पञ्जे से नहीं छुड़ा पाया तो बस, मेरा सर्वनाश हो गया। यही मेरा अन्तिम अचूक बाण है। इससे यदि मेरा काँटा दूर न हुआ तो मृत्यु मेरे लिए श्रेयस्कर होगी। लेकिन क्या मरना आसान है? राखाल मुझे घुला घुलाकर मारेगा। हा ईश्वर! मेरे भाग्य में क्या यही लिखा है!

अरे, नीचे तो बिलकुल शान्ति मालूम होती है, क्या राखाल नहीं आया? नहीं, बड़ी देर हुई। यदि आया होगा तो लौट भी गया होगा। इतनी देर तक क्या करेगा? प्रफुल्ल बड़ी दुबिधा में था। ऐसा प्राणान्तक कष्ट उसने कभी नहीं उठाया था। वह कान लगाकर सुन रहा था कि नीचे के कमरे में कोई शब्द होता है या नहीं। बार बार उसके बदन से पसीना छूटता था। वह सोचने लगा—यह तो जानता ही था कि ज्योंही मैं राखाल को ज़ेवर दिखलाऊँगा, त्योंही वह झट उन्हें छीनने के लिए उद्यत हो जायगा। ऐसे प्रलोभन को वह घड़ी भर भी नहीं रोक सकता। इसीलिए मेरी इच्छा हुई थी कि उसी समय उसको नक़ली सन्दूक़ पकड़ा दूँ, किन्तु अन्त समय में मेरी राय न जाने क्यों बदल गई? मुझे डर था—यदि कहीं राखाल यह कह बैठे कि सन्दूक़ खोलो, मैं केवल गहने ही ले जाऊँगा, तो उस दशा में मेरे प्राण अवश्य सङ्कट में पड़ जाते, राखाल को नक़ली जवाहिरात पहचानने में देर न लगती। क्रोध में वह न जाने क्या कर बैठता। लेकिन इस दुबिधा में पड़े रहने से क्या लाभ है, व्यर्थ ही कष्ट उठा रहा हूँ। नीचे चल कर देख ही क्यों न लूँ। या तो चिड़िया जाल में फँस ही गई होगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या फिर वार ख़ाली गया होगा। द्वितीय सम्भावना का विचार आते ही उसका हृदय धड़कने लगा।

इधर प्रफुल्ल ने जाने का उपक्रम किया और उधर लीला ने भी बाजा बन्द किया। वह थक सी गई थी। प्रफुल्ल नीचेवाले कमरे के द्वार पर कुछ देर के लिए खड़ा हो गया। कमरे में एक-दम सन्नाटा था। उसने दरवाज़ा खोला और स्विच उठा दी। कमरा ज्यों का त्यों था। कुछ भी इधर-उधर नहीं हुआ था। उसे केवल तिजोरी का ढक्कन एकाध इंच हटा हुआ सा मालूम पड़ा। खिड़की के किवाड़ भी ज्यों के त्यों बन्द थे, जैसे किसी ने उनको छुआ भी न हो। प्रफुल्ल ने सोचा—राखाल बड़ा होशियार है, छोटी छोटी बातों को खूब ध्यान से देखता है, इसीलिए कमरे में उसके आने का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता।

उसने तिजोरी में झाँक कर देखा। अरे! यह क्या, नक़ली सन्दूक़ ही अभी तक जहाँ का तहाँ रक्खा हुआ है? प्रफुल्ल कुछ निश्चित न कर सका। बात यह थी कि रखते समय उसने सन्दूक़ की स्थिति पर ठीक ठीक ध्यान नहीं दिया था। वह कल्पित राखाल की दृष्टि में अपनी लापरवाही दिखाना चाहता था। आख़िर उसने सन्दूक़ बाहर निकाला। उसका हाथ काँप रहा था। वह चाबी लगाता था, किन्तु वह सिंह के जबड़े में न जाती थी। उसने ज़ोर लगाया तो वह एकाएक भीतर चली गई। तो भी ताला नहीं खुला। किन्तु बहुत ज़ोर लगाने पर भी चाबी न घूमी। और चाबी घूमे तो कैसे घूमे, वह तो रत्न-मञ्जूषा की चाबी थी, भला उससे प्राणघातक नक़ली सन्दूक़ किस प्रकार खुल सकता था?

प्रफुल्ल सोचता—अँगूठे और तर्जनी के इशारे से ही चाबी घूम जानी चाहिए थी किन्तु वास्तव में उसकी उँगलियाँ ऐसी काँप रही थीं कि उनमें सम्मिलितरूप से काम करने की शक्ति ही न रह गई थी। अनिष्ट की आशङ्का से उसके हृदय की गति रुक सी रही थी। अन्तिम दाव के निर्णय के समय जुआरी की भी ठीक ऐसी ही दशा होती है। प्रफुल्ल ने भी इस दाव पर अपना सर्वस्व लगा दिया था। लगाते समय बड़ी बड़ी कल्पनायें की थीं, बड़ी बड़ी आशायें बाँधी थीं। किन्तु जो आशङ्कायें पहले उपेक्षणीय मालूम होती थीं उन्हीं के रौद्ररूप से अब हृदय डावाडोल हो रहा था। बदमाशों के बदमाश, गुरुघंटालजी ने शायद इस बार कल्पना से आवश्यकता से अधिक काम लिया! उसको ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी ने उसे नदी में फेंक दिया हो; उसका चेहरा ठंढा पड़ रहा था।

अरे!

चाबी घूम गई। ढक्कन खुल गया। बिजली के प्रकाश में रत्नजटित चन्द्रहार दमक मारने लगे। प्रफुल्ल को विश्वास हो गया 'राखाल आया था—चला गया। चिड़िया फँस गई, मेरा जीवन निष्कण्टक हो गया।'

उसके अन्तःकरण में एक प्रचण्ड अट्टहास का वेग उठा, किन्तु होंठों तक आते आते रुक गया। भर्राई हुई आवाज़ में उसके मुँह से निकला —'मैं इस खेल में भी, अपने अन्तिम खेल में भी, जीता।

पर ज्योंही उसने मस्तक का पसीना पोंछने के लिए हाथ उठाना चाहा, त्योंहीं वह काँपने लगा, वह शिथिल पड़ गया था, उसमें जीवन-शक्ति न रह गई थी।

दीनानाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

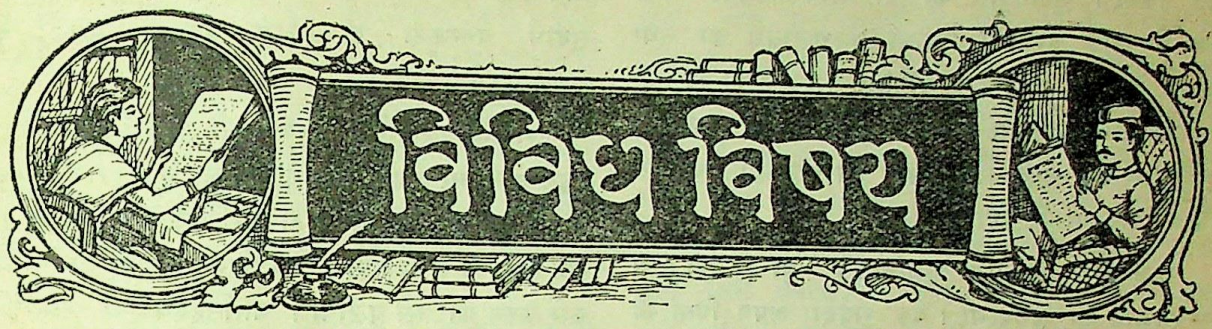

१—महारानी दुर्गावती।

उत्तर देलखंड तथा बघेलखंड के दक्षिण और गोदावरी नदी के उत्तर का वह बड़ा प्रान्त गोंड़वाना कहलाता है जिसके पूर्व में उड़ीसा, बङ्गाल तथा बङ्गाल की खाड़ी और पश्चिम में मालवा है। प्रकृति ने भारतवर्ष को दो मुख्य विभागों—उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ—में बाँटा है, जिनके बीच में कई पहाड़ी सिलसिले और घोर वन हैं। यह अरण्य-शृङ्खला खम्भात की खाड़ी से बङ्गाल की खाड़ी तक बराबर चली गई है। यद्यपि आधुनिक सभ्यता ने इन जङ्गलों को काट-छाँट कर उन्हें बसाने में अत्यधिक सफलता प्राप्त की है, पर अब भी इस विभाग के बहुत से भाग घोर जङ्गल हैं। गोंड़वाना भी इसी अरण्य-शृङ्खला के अन्तर्गत है और आधुनिक प्रान्तीय विभागों के अनुसार वह मध्यप्रान्त तथा मन्दराज-प्रान्त में विभाजित हो गया है। आर्यों के आक्रमणों से हार खाकर भारतवर्ष के प्राचीनतम निवासी दक्षिण की ओर हटते हुए इसी अरण्य-शृङ्खला के शरण में आये और आज तक भी वे इस विभाग में अधिकता से पाये जाते हैं। इन्हीं प्राचीनतम निवासियों की एक जाति गोंड है, जिसके नाम पर इस प्रान्त का नामकरण गोंडवाना हुआ।

जातिगत विचारों से गोंड शूद्रों में परिगणित हैं। ये जङ्गलों में रहकर कृषि, पशुपालन तथा आखेट से उदर-पूर्ति करते हुए किसी प्रकार कालयापन करते हैं। अबुल-फ़ज़ल अकबरनामे में इस प्रान्त के विषय में लिखता है—"इसके पूर्व में झारखंड के अन्तर्गत एक स्थान रत्नपुर और पश्चिम में मालवा का एक दुर्ग रायसेन है। इस प्रान्त की लम्बाई डेढ़ सौ कोस है। उत्तर में पन्ना* और दक्षिण में "दक्खिन" है। चौड़ाई अस्सी कोस है। यह प्रान्त गढ़कंटक कहलाता है और इसमें बहुत सी गढ़ियाँ तथा अनेक ऊँचे दुर्ग हैं। इसमें असंख्य बस्तियाँ और ग्राम हैं तथा कुछ लेखकों ने यहाँ तक लिखा है कि इसमें सत्तर सहस्र ग्राम हैं। मुख्य नगर का नाम गढ़ तथा पास के एक स्थान का नाम कंटक है, जिन दोनों को मिला कर इस प्रान्त का नामकरण हुआ है। राजधानी चौरागढ़ है।

"प्राचीन समय में इस प्रान्त का कोई एक राजा न था और वह कई छोटे छोटे राज्यों में विभाजित था। वर्तमान समय में, सौभाग्य से, वह उस जाति के अधीन नहीं है और अब कई राजाओं के अधिकार में है जैसे गढ़ का राजा। इस प्रान्त की सेना में अधिकतर पैदल होते हैं और घुड़सवार बहुत कम होते हैं।"

प्राचीन समय में गढ़-मण्डल का राजवंश प्रतिष्ठित माना जाता था। इसी वंश के एक राजा खार्जी ने अपने कौशल तथा योग्यता से आस-पास के कई राजाओं को अपना करद बनाया और अपनी सेना दस सहस्र पैदल तथा एक सौ अश्वारोही तक बढ़ाई। इसके पुत्र गोरखदास तथा पौत्र सुखनदास ने अपने पूर्वज की नीति का अवलम्बन कर अपनी सैन्य-संख्या साठ सहस्र पदाति तथा पाँच सौ सवार तक बढ़ाई और

* उर्दू लिपि के माहात्म्य के कारण अँगरेज़ी इतिहासों में कई स्थानों पर भट्टा को पन्ना या पट्टा लिख दिया गया है। फ़ारसी की पुरानी तवारीख़ों में बघेलखंड का भट्टा ही के नाम से उल्लेख किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ राजपूतों को भी सेना में सम्मिलित कर उसे सुसङ्गठित किया। सुखनदास को दो योग्य सहकारी मिल गये थे—एक हम्मीरपुरनिवासी करचुलीवंश का तथा दूसरा परिहार था। इन दोनों ने राज्य-कार्य्य को बड़ी योग्यता तथा परिश्रम के साथ सुचारु-रूप से चलाया। सुखनदास की मृत्यु पर उसका पुत्र अर्जुनदास चालीस वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा।

अर्जुनदास का पुत्र अमानदास बड़ा ही हठी तथा दुष्ट स्वभाव का पुरुष था। यह सर्वदा अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध आचरण करता रहा, जिससे अर्जुनदास को कई बार उसे कारारुद्ध तक करना पड़ा था। प्रत्येक बार प्रतिज्ञा तथा शपथ कराकर उसे स्वतन्त्रता देता था, पर वह कभी अपना आचरण नहीं छोड़ता था। एक बार कुछ अक्षम्य कृत्य कर वह भागा और बघेलखण्ड के राजा वीरसिंहदेव बघेला के शरण में चला गया, जिन्होंने उसे पुत्र के समान रक्खा। ये वीरसिंहदेव राजा शालिवाहन के पुत्र थे। इनके पौत्र राजा रामचन्द्र अकबर के समकालीन थे। जब वीरसिंहदेव सुलतान सिकन्दर लोदी के दरबार को गये तब अमानदास को अपने अल्पवयस्क पुत्र वीरभानु के पास छोड़ गये। इस समाचार को सुनकर अर्जुनदास ने अपने द्वितीय पुत्र जोगीदास को उत्तराधिकारी बनाना निश्चित किया, पर उसने बड़े भाई के स्वत्व का विचार कर इस प्रस्ताव को नहीं माना।

अमानदास को जब अपने पिता के इस विचार का पता लगा तब वह गुप्तरूप से स्वदेश लौटा और अपनी माता के गृह में छिप कर रहने लगा। यहाँ उसने राजा के एक सेवक को, जिससे उसका पहले ही से घनिष्ठ सम्बन्ध था, मिलाकर एक रात्रि में अपने पिता का वध कर डाला। परन्तु राज-कर्मचारियों ने एकत्र होकर उस पितृघातक को पकड़ लिया और उसके भाई जोगीदास से सब वृत्तान्त कह कर उससे राज्य-प्रबन्ध अपने हाथ में लेने की प्रार्थना की, पर उसने कोरा सा उत्तर देकर राज्य-भार से अपना पीछा छुड़ाया। उसका उत्तर यह था कि यदि उसके बड़े भाई ने पितृवध कर अनन्त काल तक के लिए अपने नाम को कलङ्कित किया है तो क्या वह भी भ्रातृ-द्रोह करके स्वयं कलङ्कित हो। राजकर्मचारीवर्ग की प्रार्थनाओं को व्यर्थ करने के लिए अन्त में उसने उस सुदीर्घ वनस्थली के किसी एकान्त स्थान की शरण ली।

राजकर्मचारीवर्ग ने अन्य किसी उत्तराधिकारी के न रहने तथा उस जघन्य कृत्य के कर्ता को अपना राजा मानने में कुण्ठित हो जाने से राजा वीरसिंहदेव बघेला को इन सब वृत्तान्तों से अवगत कराया और उस राज्य पर अधिकार करने को उसे बुलाया। वीरसिंहदेव यह समाचार सुनकर सुलतान सिकन्दर लोदी से बिदा हो ससैन्य गढ़ को पहुँचा और राज्य पर अधिकार कर लिया। अमानदास ने पहाड़ों में शरण ली और जब वह राजा के विरुद्ध किसी प्रकार सफल होने की आशा न कर सका तब अन्त में उससे पत्र-व्यवहार आरम्भ किया। उसने पत्र में अपने कृत्य पर बहुत पश्चात्ताप करते हुए लिखा कि एक पिता को अपनी मूर्खता तथा नीचता से मारने पर अब वह दूसरे के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण कैसे कर सकता है? वीरसिंहदेव के इस राज्य का प्रबन्ध करके लौटते समय मार्ग में अमानदास ने जाकर उनसे भेंट की और करुणारस का स्वरूप धारण कर अन्त में विजेता को दयार्द्र कर लिया। वीरसिंहदेव ने अन्ततः उसे क्षमा कर उसका राज्य उसे फेर दिया। वह अपनी प्रजा पर भी पश्चात्ताप प्रकट करता रहा, जिसके कुछ न कुछ अंश का उद्गम अवश्य ही उसका हृदय रहा होगा। अमानदास इसके अनन्तर शान्तिपूर्वक राज्य करता रहा। उसने रायसेन-दुर्ग विजय करने में सुलतान बहादुर गुजराती की बहुत सहायता की थी, जिसने उसे सङ्ग्रामसाह की पदवी दी। अन्त में उसकी मृत्यु पर उसका पुत्र तथा इस लेख की चरित-नायिका के पति दलपतिसिंह राज्यासन पर विराजमान हुए।

कहा जाता है कि अमानदास को कोई सन्तान नहीं थी। उसने अपने एक कर्मचारी गोविन्ददास कछवाहा से यह प्रस्ताव किया कि उसकी गर्भवती स्त्री अमानदास के राजमहल में सन्तान प्रसव करे। यदि पुत्री हो तो वह अपने पिता के ही अधिकार में रहे और पुत्र हो तो अमानदास उसे अपना पुत्र प्रकट करे। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सब अत्यन्त गुप्तरूप से किया जाय। गोविन्ददास के इस प्रस्ताव के मान लेने पर वैसा ही किया गया। ईश्वर की कृपा से पुत्र ही उत्पन्न हुआ, जिसका दलपति-सिंह नाम रक्खा गया। इसका विवाह बांधव-नरेश राजा शालिवाहन बघेला* की पुत्री दुर्गावती से हुआ। दलपति केवल सात वर्ष राज्य करके स्वर्ग को सिधारा। इसके पुत्र वीरनारायण या वीरसाह की अवस्था उस समय केवल पाँच वर्ष की थी।

ऐसे समय में रानी दुर्गावती ने आधार कायस्थ नामक एक कर्मचारी की सहायता से राज्य को सँभाला। उनमें जितनाही सौन्दर्य तथा लावण्य था उतनी ही योग्यता तथा साहस भी था। उन्होंने घरेलू राज्य-प्रबन्ध ठीक करके पड़ोस के राजाओं से सन्धि-युद्ध करने में भी अपनी नीति-निपुणता दिखलाई। मालवा के सुलतान बाज़बहादुर और उसके अफ़सरों के विरुद्ध इन्होंने कई बार युद्ध किया था और बराबर विजयी रही थीं। उनके पास बीस सहस्र घुड़सवार और एक सहस्र मस्त हाथी थे। उस वंश के अनेक राजाओं के समय की संचित लक्ष्मी से भी उनका कोष परिपूर्ण था। वे स्वयं तीर तथा गोली चलाने में निपुण थीं और शिकार खेलने में अपनी बन्दूक़ से पशुओं को मारने में भले प्रकार अभ्यस्त थीं। वे शेर का भी शिकार करती थीं। उनके साहस तथा वीरता की अनेक कहानियाँ उन प्रान्तों में प्रचलित हैं †।

अकबर के राज्यकाल के आरम्भ ही में ख़्वाजा अब्दुल मजीद हरवी आसफ़ख़ाँ कड़ा का फ़ौजदार नियुक्त हुआ। संवत् १६२० में इसने पहले भट्टा के राजा रामचन्द्र बघेला पर चढ़ाई की, जिन्होंने ग़ाज़ीख़ाँ तातार को शरण दी थी। युद्ध के अनन्तर सन्धि होगई और राजा ने अकबर बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके अनन्तर आसफ़ख़ाँ ने गढ़कंटक की ओर दृष्टि फिराई। इसने पहले कुछ मनुष्यों को उस राज्य में भेजकर उस राज्य की सामाजिक तथा प्रबन्ध आदि की अवस्था का पूरा पता ले लिया और तब उस राज्य के सीमान्त ग्रामों तथा शहरों में लूटमार मचाना आरम्भ किया। रानी दुर्गावती ने इस बढ़ते हुए शत्रु का अपने साहस तथा रण-कौशल के भरोसे तिरस्कार ही किया और अपनी रक्षा का इन्होंने कोई उत्तम प्रबन्ध नहीं किया। संवत् १६२१* में एका-एक इन्हें यह समाचार मिला कि आसफ़ख़ाँ ने, जिसने बादशाह से इस चढ़ाई के लिए आज्ञा ले ली थी, चार सहस्र सवार और पैदल सेना के साथ उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी है और कूच करता हुआ धामद † तक पहुँच गया है। उस समय रानी दुर्गावती की सेना उसके राज्य के कई स्थानों में बिखरी हुई पड़ी थी। इस समाचार को सुनते ही उन्होंने अपने विश्वासपात्र दीवान आधार कायस्थ से कहा कि 'यह सब तुम्हारी ही मूर्खता का फल है कि शत्रु अपने राज्य में जब इतनी दूर तक चला आया तब तुम्हें ख़बर मिली और अपनी सेना को इस प्रकार बिखेर रक्खा है कि इतना शीघ्र सबको एकत्र करना असम्भव है। अस्तु जितनी सेना है उसी को सज्जित करो, उसी के साथ हम स्वयं युद्ध को जायँगी।' इस प्रकार आज्ञा देकर उसी समय रानी ने युद्ध की तैयारी की और पुत्र को साथ लेकर कूच करती हुई शत्रु के सामने जा पहुँची।

आसफ़ख़ाँ यद्यपि धामदा तक बड़ी शीघ्रता से गया था, पर वहाँ पहुँच कर विशेष कारणों से वहीं ठहर गया, जिससे रानी दुर्गावती को चार सहस्र सेना एकत्र करने का अवसर मिल गया। रानी के मन्त्रियों ने उन्हें सम्मति दी कि युद्ध करना उचित है, पर आप अधिक सेना एकत्र

* इसी पत्रिका के चतुर्थ भाग पृ० २१६ में दुर्गावती के पिता का नाम चन्दनराय तथा उसका कन्नौज का राजा होना लिखा गया है। पर उस लेख में इस विषय के किसी आधार का उल्लेख नहीं है।

† अबुलफ़ज़ूल-कृत अकबर-नामा इलि० डा० जि० ६ पृ० ३०-४।

* तारीख़े अलफ़ी में ९६६ हि० अर्थात् सं० १७१८ लिखा है। पर तबक़ाते अकबरी और अकबर नामा में वही सन् दिया गया है जो इस लेख में माना गया है। इंपी० गज़े० जि० १. पृ० ३०१ में भी सन् १५६४ ई० दिया है।

† मध्यप्रदेश के रायपुर ज़िले में एक छोटा नगर है, जिसकी स्थिति २१°२७′ उ० और ८१°२३′ पू० है। रायपुर नगर के बारह कोस पश्चिमोत्तर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने तक किसी सुरक्षित स्थान में रहें तो उत्तम होगा। रानी ने यह सम्मति मान ली और गढ़ की ओर के दृढ़ स्थानों तथा बनों में हट आईं *। आसफ़ख़ाँ ने रानी दुर्गावती का पता न पाकर गढ़ की ओर कूच किया और उसके ग्रामों पर अधिकार कर लिया। इस बीच रानी की एक सहस्र सेना † और आ पहुँची। तब उन्होंने निश्चित किया कि इस तरह छिपे छिपे फिरने से युद्ध करना ही उत्तम है और यह विचार कर उन्होंने अपनी सेना को ओजस्विनी भाषा में उत्साह दिलाकर युद्ध की तैयारी की। आसफ़ख़ाँ भी ससैन्य पहुँचा और दोनों दल युद्ध में भिड़ गये। तीन सौ मुग़ल मारे गये और रानी ने भागती हुई सेना का पीछा किया।

दिन के अन्त होने पर रानी दुर्गावती ने अपने सेना-ध्यक्षों की सम्मति ली कि अब क्या करना उचित है। सभी ने कुछ न कुछ सम्मति दी ही होगी, पर रानी की इच्छा थी कि उस समय वहाँ से अपने कैंप को लौट चलें और रात्रि में आक्रमण कर शत्रु को नष्ट कर दें या अपने स्थानों पर रात्रि भर खड़े रहें तथा सुबह होते ही पुनः युद्ध आरम्भ कर दें, क्योंकि ऐसा न करने से आसफ़ख़ाँ सुबह होते ही पास की पहाड़ी पर अधिकार कर उस पर तोपख़ाना चढ़ा देगा और तब उनका नाश होना अनिवार्य हो जायगा। इस प्रकार रात्रि के आक्रमण का निश्चय कर वे ससैन्य कैंप में लौट आईं, पर कोई भी इस कार्य की ओर अग्रसर न हुआ। अन्त में जैसा रानी दुर्गावती ने कहा था वैसाही हुआ। आसफ़ख़ाँ ने उस पहाड़ी पर अधिकार कर लिया और तोपें लगवा कर युद्ध के लिए सुसज्जित हो वहीं डट गया। युद्ध करनाही निश्चय कर दुर्गावती अपने सर्वोत्तम गजेन्द्र पर सवार हुईं और अपने विश्वस्त सेवक आधार कायस्थ को महावत के स्थान पर बिठा कर लड़ने को तैयार हुईं। थोड़ी ही देर में घोर युद्ध होने लगा और दोनों दल के वीर आपस में इस प्रकार गुत्थमगुत्था होकर लड़े कि तीर-बन्दूक़ छोड़ कर वे द्वन्द्व-युद्ध करने लगे।

महारानी के सुपुत्र राजा वीरसाह ने युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई और इन्होंने तीन प्रहर के घोर युद्ध में बादशाही सेना को तीन बार पीछे हटा दिया, पर अन्त में वे इतने घायल हो गये कि महारानी को लाचार होकर उन्हें सुरक्षित स्थान में पहुँचा देने की आज्ञा देनी ही पड़ी। इस आज्ञा के मिलते ही राजा को सुरक्षित स्थान में रक्षापूर्वक पहुँचाने के बहाने सेना का बहुत बड़ा अंश अपनी वीर युद्ध-नेत्री को छोड़ कर प्राणों के लोभ से चला गया। महारानी के साथ केवल तीन सौ सेना रह गई थी। तिस पर भी उन्होंने युद्ध से पराङ्मुख होना उचित न समझा और युद्ध बराबर चलता रहा। इसी समय भाग्यरूपी धनुष से छूटा हुआ तीर आकर उनके कपोल में लगा। उन्होंने साहस से उस तीर को खींच लिया, पर उसकी नोक घाव में ही रह गई। साथ ही दूसरा तीर भी उसी कुटिल मार्ग से आ पहुँचा और इस बार गर्दन में आ लगा। यद्यपि इसे भी उन्होंने खींचकर निकाल लिया, पर वे बेहोश हो गईं। कुछ होश आने पर उन्होंने आधार से कहा कि 'मैंने सर्वदा तुम पर विश्वास रक्खा है और इसी लिए कहती हूँ कि आज के कुसमय में अविश्वास का कार्य न करना। अर्थात् पराजय होने पर हमें जीवित ही शत्रु को मत सौंप देना'। परन्तु आधार ने स्पष्टरूप से प्रकट कर दिया कि मुझमें ऐसा कार्य के करने की शक्ति नहीं है। तब रानी दुर्गावती ने तुरन्त कटार निकाल कर अपनी जीवन-लीला वहीं समाप्त कर दी। उसके अनेक विश्वस्त सेवकों ने भी उसी युद्ध में अपना जीवन विसर्जन कर दिया।

---

* इंपी० गज़े० जि० १० पृ० ३०२ में लिखा है कि सिंगौरगढ़ के पास आसफ़ख़ाँ से परास्त होकर रानी दुर्गावती गढ़ा की ओर हट आईं और फिर मांडला के पास एक पहाड़ी दर्रे में अपनी सेना सजाई थी।

† फ़ैज़ी सरहिन्दी कृत तकमीले-अकबर नामा से ही यह वृत्तान्त लिया गया है, जिसमें दोनों पक्ष की सेनाओं की संख्यायें इसी प्रकार लिखी गई हैं। परन्तु तारीख़े आलफ़ी में आसफ़ख़ाँ की सेना की संख्या नहीं दी गई है और दुर्गावती की सैन्य-संख्या २० सहस्र सवार और ५०० हाथी लिखा है। तबक़ाते अकबरी में आसफ़ख़ाँ की फ़ौज पचास हज़ार और रानी की बीस हज़ार और ७०० हाथी लिखा है। (इलि० डा० जि० ५ पृ० १६६ और २८८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसफ़ख़ाँ को इस विजय में बहुत लूट तथा लगभग एक सहस्र के हाथी प्राप्त हुए। इसके अनन्तर दो महीने बीतने पर वह उस प्रान्त की राजधानी चौरागढ़ * की ओर गया और उस दुर्ग को घेर लिया। राजा वीरसाह युद्ध के लिए ससैन्य बाहर निकले, पर थोड़े ही युद्ध के अनन्तर वे परास्त होकर पकड़े गये और दुर्ग पर अकबरी सेना का अधिकार हो गया। तारीख़े आलफ़ी लिखता है कि युवक वीरसाह को आसफ़ ने हाथी के पैरों तले कुचलवा कर मार डाला। आसफ़ख़ाँ के हाथ असंख्य सोने चाँदी के सामान जवाहिरात तथा सिक्के लगे, जिन्हें वहाँ के राजों ने कई पीढ़ियों से संचित किया था। कहा जाता है कि एक सौ एक पात्र मुहरों से भरे मिले थे। पर इसने यह सब लूट अपने लिए रख ली और बादशाह अकबर को उसने उस लूट में मिले हुए एक सहस्र हाथियों में से केवल दो सौ † हाथी पेशकश के रूप में भेजे थे। यद्यपि अकबर को लूट के अपने इस भाग को पाकर क्रोध हुआ, पर उस समय वे तरह दे गये। आसफ़ख़ाँ यह सब लूट लेकर अपनी जागीर कड़ा को लौट गया।

ब्रजरत्नदास

२—प्राचीन भारत में सार्वजनिक सभायें, राज-सभायें और मंत्रि-परिषदें।

उत्तर-भारत में वैदिक काल से ही जन-समुदाय का शासन-कार्य्य परिषदों-द्वारा चलता था। ऋग्वेद के दसवें मंडल में सभासदों के मतैक्य का उल्लेख है। अथर्ववेद के भी कई स्थानों में सभाओं की कार्य्यवाही पर प्रकाश डाला गया है। किसी कार्य्यविशेष के लिए अथवा अवसर-विशेष पर जब सभा बैठती थी तब वह समिति का नाम धारण करती थी। आवश्यकता पड़ने पर राजा का वर्णाधिकार भी इन्हीं समितियों को प्राप्त होता था। पर सभा और समिति में कुछ वास्तविक भेद था अथवा नहीं, इस विषय पर पाश्चात्य विद्वानों में मतभेद है। लड्विग का अनुमान है कि सभा ब्राह्मणों तथा अन्य मान्य व्यक्तियों का तथा समिति सर्वसाधारण का समुदाय थी। ज़िमर का मत सबसे निराला है। उसके विचार से सभा एक ग्रामीण संस्था थी और राजा के वहाँ जाने पर वह उसका सभापति मनोनीत होता था। पर प्रोफ़ेसर मैकडोनल्ड ने सभापति-निर्वाचन की बात अप्रामाणिक सिद्ध की है और कहा है कि सभा और समिति में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं था। मैकडोनल्ड का मत ही मान्य है। राजा की उपस्थिति सभी सभा-समितियों में अपेक्षित थी और इसमें सन्देह नहीं कि राजा और सभा-समितियों का मतैक्य साम्राज्य की सुख-समृद्धि के लिए सर्वथा अपरिहार्य्य था।

पुरातत्त्व के प्रसिद्ध अनुसंधान-कर्त्ता हैव्किंस ने अमरीका की ओरिएन्टल सोसायटी के पत्र में उपलब्ध प्रमाणों-द्वारा सिद्ध किया है कि रामायण और महाभारत के युग में इन सभा-समितियों के अनेक रूप थे और इनका कार्य्यक्षेत्र बड़ा विस्तृत था। उन्होंने इनके अधिकारों की एक सूची प्रकाशित की थी। ये कार्य्यकारिणी और व्यवस्थापिका तो थी हीं, सांग्रामिक समस्यायें भी हल करती थीं। कभी तो ये न्यायालयों की तरह तथ्यातथ्य का निर्णय करती थीं, कभी राजकीय दरबार का काम करती थीं और कभी सामाजिक संघ का स्वरूप धारण कर आमोद-प्रमोद मनाती थीं। पर साधारणतः जन-साधारण के बहुमत का दिग्दर्शन कराना ही इनका उद्देश था। इन सभाओं की मंत्रणा-प्रणाली बहुधा संशय-ग्रस्त है। राजा को सभा के मतामत का ज्ञान किस प्रकार होता था, यह भी अनिश्चित है। सभासद प्रत्येक प्रस्ताव का स्वतन्त्र रूप से अनुमोदन अथवा विरोध करते थे अर्थात् वोट की प्रथा प्रचलित थी या नहीं, यह भी संदिग्ध है। पर मताधिक्य का नियम प्राचीन हिन्दुओं को अनवगत नहीं था और चाणक्य कहता है कि सीमा-प्रान्तीय विवाद का निर्णय वैमत्य (द्वैधीभाव) के समय ग्रामीण संस्थायें बहुमत (बहवः शूच्यः) के द्वारा करती थीं तथा मंत्रि-परिषद् में भी मताधिक्य का ही प्राधान्य रहता था। अतएव सहज

* मध्यप्रदेशान्तर्गत नरसिंहपुर, ज़िले में एक प्राचीन दुर्ग है। यह नर्मदा घाटी से ८०० फुट ऊँचे सतपुड़ा पहाड़ के एक शिखर पर नरसिंहपुर नगर के ११ कोस दक्षिण-पश्चिम में है।

† तारीख़ अलफ़ी में लिखा है कि केवल १५ हाथी भेजे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही अनुमान किया जा सकता है कि सार्वजनिक सभाओं (Popular Assemblies) में भी संख्याधिक्यता ही अपेक्षित रही होगी। इन सभाओं की सभापति-निर्वाचन-प्रणाली भी अज्ञात है, पर सम्भवतः अवस्था, चरित्र और सद्गुणों को देखकर ही निर्वाचन होता होगा।

शैशुनाग-राजवंश का षष्ठमाधिपति पितृहन्ता अजातशत्रु बड़ा प्रतापी था। वह पार्श्ववर्ती वृज्जिक देश को अपने हस्तगत करना चाहता था। पर उसके बलाबल का ठीक निर्णय न कर पाया था। अतएव उसने अपने मन्त्री वर्षकार को वृज्जिकों का सामर्थ्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए बुद्धदेव के पास भेजा। उस समय उस मुक्तात्मा ने अपने प्रधान शिष्य आनन्द को संबोधित करके कहा था कि जब तक वे लोग समभाव से एकत्र हुआ करेंगे, जब तक उनकी सभाओं के कार्य्य अविरोधरूप से सम्पन्न हुआ करेंगे और जब तक देश-शासन सहानुभूति-पूर्ण सहयोग से चलता रहेगा तब तक उनके अधःपात की आशंका नहीं की जा सकती और उनकी उत्तरोत्तर उन्नति का ही समय जानना चाहिए। बुद्धदेव का यह कथन सभा-समितियों की प्रतिष्ठा का द्योतक, उनकी उपयोगिता का सूचक और प्राधान्य का परिचायक है।

पर इस मङ्गलमय संस्था के गौरव का भी क्रमशः अवसान होता गया और अन्ततः सामाजिक व्याघातों और निरङ्कुश अधीश्वरों की स्वेच्छाचारिता के कारण वह लुप्त हो गई। इसके ह्रास और नाश के तीन कारण बतलाये जा सकते हैं—वर्णविभागकृत सामाजिक वैषम्य, शासित प्रदेशों का पूर्वापेक्षाकृत भौमिक विस्तार और एकाधिपतियों का असाधारण अधिकार। समाज में जब जाति-भेद का पूर्ण विकास, विस्तार और संवर्धन हो चुका तब वह राष्ट्रीय ऐक्य का अन्तक और विद्वेष, वैषम्य, तथा पार्थक्य का जनक सिद्ध हुआ और क्रमशः राष्ट्रीय संस्थाओं का संहार करके धर्मशाखागत औद्योगिक तथा साम्प्रदायिक संस्थाओं की सृष्टि करने लगा। उस समय तक प्रतिनिधि-प्रेषण-प्रथा का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, अतएव जैसे जैसे राज्य की सीमावृद्धि होती गई वैसे वैसे दूर दूर से प्रजाजनों का आकर सार्वजनिक सभाओं में सम्मिलित होना कष्टप्रद और असंभव सा जान पड़ने लगा। अतः सभा की अविरल बैठकें कम पड़ती गईं और फिर बन्द हो गईं। राजाओं की स्वेच्छाचारपरायणता के कारण क्रमशः इन सार्वजनिक सभाओं का स्थान राज-सभाओं और मन्त्रि-परिषदों ने ग्रहण किया।

राज-सभा की बैठक प्रतिदिन हुआ करती थी। यही सर्वोपरि न्यायालय था। प्रजा के दुःखनिवेदनों को सुनना तथा यथोचित क्लेशनिवृत्ति और बाधा-निराकरण का उपाय करना ही इसका मुख्य कर्तव्य था। कभी कभी राज्य-शासन-विधि का गुरुतर प्रश्न भी इसी राज-सभा में हल होता था और देश को अधिकाधिक समृद्धिशाली बनाने की युक्तियाँ भी यहीं सोची जाती थीं। पाञ्चाली का पाणिग्रहण करके जब पाण्डव अपने द्यूत-अपहृत राज्य के पुनर्लाभ की कामना करने लगे तब धृतराष्ट्र ने अपनी राज-सभा में ही पाण्डवों से संधि करके शांति स्थापन की इच्छा प्रकट की थी।

युवराज, मन्त्रिवर्ग तथा मुख्य प्रकृति पुरुषगण बलाधिप, न्यायाध्यक्ष तथा सामन्तगण, राजपरिजन तथा अन्य कुलीन जन, यही राजसभा के सदस्य होते थे। स्थायी सदस्यों के अतिरिक्त कतिपय सत्कुलसंभूत विशिष्टजन भी निमन्त्रित किये जाते थे। नीतिवाक्यामृत का अनुशासन है कि जो राज-पुरुष न हों तथा जिन्हें निमन्त्रण-पत्र न मिला हो उन्हें राजसभा में भूल कर भी न जाना चाहिए। शत्रु-मित्र-समदर्शी, सद्वंशज, शक्तिशाली, नृपानुरक्त तथा मानवीय निर्बलताओं का दमन कर कर्तव्यपथ पर अविचल रहनेवाला व्यक्ति ही राज-सभा का सभासद् अथवा सभासद् होने योग्य समझा जाता था। सभामंडप में प्रत्येक सभासद् अपने निर्दिष्ट स्थान पर ही बैठता था। सभासदों के विनीत व्यवहार, मर्य्यादा, सभ्यता और शिष्टाचार पर विशेष ध्यान दिया जाता था। चाणक्य ने सभामंडप में सभासदों के पारस्परिक हास्य-प्रलाप को गर्हित और सदाचारविरुद्ध बतलाया है। सभासदों को एक दूसरे के भाषण के बीच में रोक-टोक करने का अधिकार प्राप्त न था। वाक्यापक्षेपन सभा-नियम के विरुद्ध था। मत-प्रदान के लिए राजाज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारणतः अपेक्षित थी, परन्तु संकटकाल में अत्यावश्यक विषयों के सम्बन्ध में कोई नियंत्रण नहीं रह जाता था। चाणक्य कहता है कि राजा को सदा मंगलकर उपदेश देना प्रत्येक सभासद् का एकान्त कर्तव्य है। राज्य के लाभालाभ का ध्यान रखते हुए, अन्य सभासदों के मतामत की परवा न करके, सत्यनिष्ठा और सदाचार के अनुकूल अपना मत पूछे जाने पर स्पष्ट-रूप से प्रदान करना चाहिए। असत्य, प्रत्ययातीत, अप्रमाणभूत, अथवा अपने सम्मान-जनक, तथा उत्तरदायित्वपूर्ण पद-मर्य्यादा के अनुपयुक्त कोई बात सभासद् को न कहनी चाहिए। स्वयं अपमानित होकर भी परछिद्रान्वेषण करना अश्रेयस्कर ही समझा जाता था। असभ्य, अप्रत्यक्ष, अश्रद्धेय और अनृत, इन चार प्रकार के भाषणों को चाणक्य ने निन्द्य, कुत्सित, बीभत्स्य, और गर्हित बतलाया है। शुक्रनीति का यह मत है कि सभासदों का वाक्य-विन्यास प्रिय, तथ्य और पथ्य होना चाहिए। राज-सभा की कार्य्य-प्रणाली अन्य सभाओं की अपेक्षा कुछ भिन्न थी। अमात्यों के उपदेशानुसार सभा के सामान्यतः व्यापक मत का केवल अनुमान ही लगाकर राजा कार्य्य-निर्णय करता था। अवसर विशेष पर राज-सभा में दाम्भिक आडम्बरों का संविधान किया जाता था। खांडवप्रस्थ की नव-निर्मित राजधानी में राज-प्रवेश के समय युधिष्ठिर की राजसभा का अलौकिक आयोजन बड़ा आडम्बरपूर्ण किया गया था। अनेक लब्धप्रतिष्ठ तपोधनों, शक्तिशाली अधीश्वरों और पराक्रमी सामन्तगणों ने उस लोकोत्तर राज-सभा की श्रीवृद्धि की थी।

जब सार्वजनिक सभाओं का स्थान राज-समितियों ने ग्रहण किया तब विशेषतः मंत्रियों के द्वारा ही काम होने लगे और मंत्रियों की परिषद् भी एक सहकारी संस्था बन गई। सोमदेव सूरि ने नीति-वाक्यामृत में और चाणक्य ने अर्थशास्त्र में इसका नाम मन्त्रिपरिषद् कहा है, पर कादम्बरी में इसका उल्लेख मन्त्रमण्डल के नाम से किया गया है। इस मन्त्रि-परिषद् अथवा मन्त्र-मण्डल में राज्य के सब महत्त्व-पूर्ण विषयों की पूरी छान-बीन होती थी। उच्च राज-पुरुषगण तथा अन्य प्रतिष्ठित लोग भी इसके सदस्य होते थे। सदस्यों की संख्या समयानुसार परिवर्तित हुआ करती थी। चाणक्य, राज्य के आवश्यकतानुसार, संख्याबाहुल्य के पक्ष में था, पर उशना के मत से २०, बृहस्पति के मत से १६ और मनु के मत से १२ ही सदस्य पर्य्याप्त थे। मन्त्र-मंण्डल के मे सदस्य अपना मत लिख कर प्रदान करते थे और प्रत्येक लिपिबद्ध परामर्शपत्र की पूर्ण आलोचना की जाती थी। 'षट्कर्णः भिद्यते मन्त्रः' के अनुयायी अबुलफ़ज़ल ने आईने अकबरी में हिन्दूशासन-प्रणाली के प्रसंग पर इस विषय का उल्लेख करते हुए कहा है कि अनुशासक अमात्य को अविकत्थन, विचार-दक्ष, नृपति-परायण, उदारचरित, अप्रमादी और विक्रान्त होना चाहिए। पर इतने उच्च गुणोपेत विरले ही होते हैं, अतएव महत्त्व-पूर्ण राजकीय विषयों पर बहुत लोगों से विमर्श करना श्रेयस्कर नहीं है। प्राचीन हिन्दू-शासक नियंत्रित मन्त्रणा का मूल्य जानते थे और इसीलिए प्रधान मन्त्री के अतिरिक्त इने-गिने ज्ञानवृद्ध दूरदर्शी लोगों से ही परामर्श किया करते थे। अबुलफ़ज़ल का कथन युक्तियुक्त है। पर इसमें सन्देह नहीं कि शासन में निरंकुशता परिहार्य्य और मन्त्रणा सदा सुखदा और कल्याणकारी समझी जाती थी। विशालाक्ष ने मन्त्रणा-सभाओं की उपयोगिता सिद्ध करते हुए कहा है कि शासन की बागडोर किसी निरवग्रह नृपति के हाथ में अविपन्न और सुरक्षित नहीं रह सकती।

चाणक्य ने राज्य-शासन-व्यवस्था में प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष और तर्क-साध्य, इन तीन समालोच्य विषयों का समावेश किया है। अतएव प्रमाणभूत को पूर्णतः असंदिग्ध सिद्ध करने के लिए, विवादास्पद विषयों में मत-विपर्य्यय के समय सन्देह-निराकरण के लिए, आनुषंगिक विषयों को यथासाध्य तर्कसिद्ध करने के लिए तथा गुहानिहित पर प्रकाश डालने के लिए मन्त्रणा की आवश्यकता होती थी। यों तो मन्त्रि-परिषद् में प्रायः सभी राजसम्बन्धी विषयों पर विचार होता था, पर मुख्यतः महत्त्व-पूर्ण कार्य्यों का आरम्भिक उपक्रम करना, कार्य्यविशेष के लिए वस्तु-निर्देश, पुरुष-नियोग तथा देशकाल निश्चित करना, अनागत विपत्ति का यथोचित प्रतीकरण तथा सब प्रयास सुखान्त हों इसका उपाय करना ही उनका मुख्य कर्तव्य था। थोड़े व्यय में ज़्यादा काम कर दिखाना ही सोमदेव ने परिषदों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविक सार्थकता की पहचान बतलाई है। मन्त्रि-मण्डल में सभापति का आसन राजा या उसकी अनुपस्थिति में प्रधान मन्त्री ग्रहण करता था। बाणभट्ट के हर्षचरित्र में प्रमाण मिलता है कि राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद नया राजा चुनने के लिए जो मन्त्रि-परिषद् बैठी थी उसमें सभापति का आसन राज्य के प्रधान मन्त्री भंडी ने ही ग्रहण किया था।

बृहस्पति-सूत्र में मन्त्रि-परिषद् की कार्य्य-प्रणाली इस प्रकार कही गई है—पूर्वं स्वामिना कार्य्यनिवेदनं, यत् पुनर्यथाक्रमे एकैकशः मतं श्रोतव्यं। अर्थात् पहले सभापति आलोच्य विषय कह सुनावे और तब प्रत्येक व्यक्ति का अलग अलग मत सुना जाय। अन्ततः कार्य्यक्रम निर्णय के विषय में चाणक्य ने कहा है कि—यत् भूयिष्ठब्रुयुस्तत् कुर्य्यात्—अर्थात् मताधिक्य के अनुसार काम होना चाहिए।

आलोच्य विषय तथा मन्त्रि-परिषद् का निर्णय अमात्यों को गुप्त रखना पड़ता था और भेद न खुलने पावे इसका पूरा पूरा बन्दोबस्त किया जाता था। किसी किसी विषय पर वाद-विवाद बहुत देर तक होता रहता था; पर निरर्थक विवाद के विरोधी चाणक्य ने अर्थशास्त्र में कहा है कि—न दीर्घम् मन्त्रयेत्—अर्थात् बहुत देर तक परामर्श करना उचित नहीं, और परिषद् में जो बात निश्चित हो जाय उसे कार्य्यरूप में शीघ्र ही परिणत करने का प्रयत्न करना चाहिए। मन्त्रि-परिषद् का अधिकार बड़ा विस्तृत था। शासन-कार्य्य में इसका स्थान सर्वश्रेष्ठ था। चाणक्य ने कहा है कि 'मन्त्रसम्पदा हि राजा नीयते'—और व्यवहार में भी यही था। प्रत्येक नूतन आदेश के लिए परिषद् की अनुमति आवश्यक थी और समय पड़ने पर राजा के चुनने का अधिकार भी इसे ही प्राप्त था।

सार्वजनिक सभाओं, राज-सभाओं और मन्त्रि-परिषदों का उपर्युक्त वर्णन उत्तरभारतीय राज्यों से ही सम्बन्ध रखता है, पर इससे यह न समझना चाहिए कि दक्षिण-भारत में इनका अभाव था। आज से लगभग दो हज़ार वर्ष पहले दक्षिण-भारत के केरल-राज्य में पाँच राज्य-कार्य्यकारिणी सभायें थीं। एक सार्वजनिक सभा थी, जो प्रजामत को प्रकट करती थी और राजा को स्वेच्छाचारी होने से रोकती थी; दूसरी पुरोहितों की सभा थी, जो राज्य के लिए मङ्गलकर होमयज्ञादि धर्म-कार्य करती रहती थी; तीसरी ज्योतिषियों की सभा थी, जो सब कामों के लिए शुभ-मुहूर्त निश्चित किया करती थी; चौथी मन्त्रियों की सभा थी, जो राज-कर वसूल करती थी और धर्म्माधिकरण का काम करती थी और पाँचवी वैद्यों की सभा थी, जो प्रजा की स्वास्थ्य-रक्षा का उपाय किया करती थी।

शासित के मतानुसार शासन करना ही शासक के सौष्ठव की पराकाष्ठा है। इतिहास के आदि-काल से ही इन सार्वजनिक तथा मन्त्रण-सभाओं की स्थिति यही प्रमाणित करती है कि इस देश में सदा से प्रजा के मतामत का ध्यान रखते हुए निरङ्कुशता त्याग कर तथा विचार-दक्ष अमात्यों से उपदिष्ट होकर ही राजा देश-शासन करता था।

श्रीनारायण महथा

३—उर्दू का व्याकरण।

जब हम अनेक भाषाओं के इतिहासों पर दृष्टि डालते हैं तब मालूम होता है कि उन भाषाओं के व्याकरण की रचना के सम्बन्ध में कोई विशेषता अथवा विचित्रता अवश्य सम्मिलित है। परन्तु उर्दू-व्याकरण के रचे जाने का जो इतिहास है वह सबसे बढ़कर विचित्र प्रतीत होता है, क्योंकि प्रायः सभी भाषाओं के व्याकरण की रचना उन्हीं भाषाओं के पण्डितों-द्वारा हुई है और उर्दू-व्याकरण की रचना का श्रीगणेश अन्य भाषाओं के विद्वानों तथा अन्य देशवासियों के द्वारा हुआ है। वास्तविक बात यह है कि व्याकरण की आवश्यकता उस समय मालूम पड़ती है जब किसी भाषा का जाननेवाला किसी अन्य भाषा सीखने का उद्योग करता है। अस्तु, जब योरपीय लोग भारत में आये और उनको हिन्दुस्तानी अथवा उर्दू सीखने की आवश्यकता पड़ी तब उनके निमित्त व्याकरण का होना अत्यावश्यक था। उस समय उर्दू बहुत अच्छी दशा में नहीं थी। निदान आवश्यकतानुसार एक योरपीय ने उर्दू-व्याकरण की रचना सबसे पहले की। बड़े मज़े की बात तो यह है कि उसके बाद भी उर्दू के अनेक व्याकरण योरपीयों-द्वारा ही रचे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये और वे विशेषतः योरपियन भाषाओं में योरप में ही छपे भी।

उर्दू-भाषा भारत में ही पैदा हुई है। पहले-पहल भारतीयों ने ही इसे सँभाला और बाद को विदेशियों ने इसका पालन-पोषण किया। परन्तु उर्दू-व्याकरण की नींव जिसने डाली वह प्रशिया का निवासी था और उसका नाम जान जोशवा कटलर था। वह लूथर का अनुयायी था। मुग़ल-सम्राट् बहादुरशाह (सन् १७०८-१२) और जहाँदारशाह (सन् १७१२) के दरबार में वह डच-दूत के रूप में आया था। सन् १७११ में वह सूरत की डच-व्यापारिक कम्पनी का मैनेजर नियुक्त हुआ। इसका मिशन जहाँदारशाह की सेवा में लाहोर के क़रीब सन् १७११ के १० वीं दिसम्बर को पहुँचा और वह वहीं से बादशाह के साथ दिल्ली को लौटा था।

वह लाहोर, आगरा और दिल्ली से होकर गया था। फिर दिल्ली से १४ आक्टोबर सन् १८१२ को चलकर २० आक्टोबर को आगरे पहुँचा और फिर आगरा से सूरत पहुँचकर सन् १७१६ तक डच-व्यापारिक कम्पनी का मैनेजर रहा। इसके पश्चात् वह ईरान का दूत नियुक्त हुआ। इस प्रकार उसके तीस वर्ष 'डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की नौकरी में कटे। इस्फ़हान से लौटते समय वह फ़ारस की खाड़ी के गमबरून नामी स्थान में ज्वर से पीड़ित होकर इस संसार से चल बसा।

हिन्दुस्तानी अथवा उर्दू-भाषा का जो व्याकरण तथा कोष उसने लिखा था उसे डेविड मिल साहब ने सन् १७४३ ई० में प्रकाशित किया। परन्तु लेखक ने इस ग्रन्थ को लगभग सन् १७१५ में लिखा था। सारा ग्रन्थ लैटिन-भाषा में है, पर हिन्दुस्तानी शब्द और वाक्य रोमन अक्षरों में हैं। एक बात जो इस व्याकरण में बहुत ध्यान देने योग्य है वह यह है कि कर्ता का चिह्न 'ने' का कहीं वर्णन ही नहीं है और 'हम' के सिवा 'आप' शब्द (जो गुजराती भाषा में प्रयोग किया जाता है) उत्तमपुरुष का बहुवचन बतलाया है।

कटलर की पुस्तक के प्रकाशित होने के दूसरे वर्ष ही अर्थात् सन् १७४४ में सुप्रसिद्ध मिशनरी शिलज़ की पुस्तक हिन्दुस्तानी (उर्दू) भाषा के व्याकरण पर प्रकाशित हुई। ये मिशनरी महोदय कटलर साहब के व्याकरण से परिचित थे। अपनी पुस्तक में इन्होंने कटलर के ग्रन्थ का उल्लेख भी किया है। शिलज़ साहब का भी व्याकरण लैटिन-भाषा में है, परन्तु हिन्दुस्तानी शब्द फ़ारसी-अरबी लिपि में हैं और उनका उच्चारण लैटिन में दिया गया है। इसमें देव-नागरी अक्षरों का भी वर्णन है, किन्तु कुछ अक्षर छोड़ दिये गये हैं।

उक्त दोनों व्याकरणों के पश्चात् सन् १७७२ में हेडले साहब का व्याकरण प्रकाशित हुआ। और फिर तो कई व्याकरण प्रकाशित हुए। किन्तु सबसे अधिक प्रामाणिक पुर्तगाली-भाषा का 'ग्रेमीटिका इन्दुस्तान' नामी ग्रन्थ है, जो सन् १७७८ में लिस्बन नगर से प्रकाशित हुआ था। इसके बाद डाक्टर जान गिलगिरिस्ट साहब का समय आता है। इन्होंने उर्दू की बहुमूल्य सेवा की है।

डाक्टर साहब का उर्दू का कार्य-काल सन् १७८७ से आरम्भ होता है। यह उन्हीं के उद्योग का फल था कि कलकत्ता का फ़ोर्ट विलियम कालेज उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दस वर्षों तक उर्दू की रचना का केन्द्र रहा। उन्होंने कई चुने हुए लोगों को वहाँ इकट्ठा कर उनसे ऐसी पुस्तकें लिखवाईं जिनमें से कई सदैव जीवित रहेंगी। यद्यपि डाक्टर साहब का उद्देश यह था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी में जो अँगरेज़ नौकर होकर आते हैं उनको उर्दू सिखाने के लिए समुचित पुस्तकें तैयार कराई जायँ ताकि वे लोग सुगमता के साथ उस (उर्दू) भाषा को जो भारतवर्ष में बोली या समझी जाती है सीख सकें। परन्तु इसी सिलसिले में व्याकरण-कोष के सिवा कई अद्वितीय ग्रन्थों की भी रचना होगई।

डाक्टर साहब के प्रशंसनीय उद्योग से ग्रन्थ-रचना का एक अत्युत्तम क्रम बँध गया। स्वयं उन्होंने भी उर्दू-भाषा का कोष और व्याकरण-सम्बन्धी कई पुस्तकें लिखीं। यद्यपि उनकी कई पुस्तकों में उर्दू-व्याकरण का थोड़ा-बहुत अंश सम्मिलित था, तथापि उनका रचा हुआ उर्दू-व्याकरण वस्तुतः सन् १८०९ में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। फिर इस अमूल्य ग्रन्थ के बाद योरपीयों-द्वारा जिन उर्दू-व्याकरणों के रचे जाने तथा प्रकाशित होने का पता चलता है वे क्रमानुसार इस प्रकार हैं।

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस्टर जान शेक्सपियर के व्याकरण का प्रथम खण्ड लन्दन से सन् १८१३ में निकला। दूसरा सन् १८१८ में और तीसरा सन् १८२६ और चौथा, जिसमें दक्षिणी भाषा का भी संक्षिप्त व्याकरण सम्मिलित किया गया था, सन् १८४३ में और इसके पश्चात् एक संस्करण सन् १८५६ में निकला।

सन् १८२० में 'उर्दू रिसालः गिलगिरिस्ट' के नाम से कलकत्ता से प्रकाशित हुआ और इसकी कई आवृत्तियाँ—सन् १८३१ और सन् १८४६ में कलकत्ता से और सन् १८४५ में आगरा से निकलीं। यह छोटा ग्रन्थ वास्तव में गिलगिरिस्ट साहब के व्याकरण का संक्षिप्त संस्करण था।

विलियम टट साहब की पुस्तक पहले-पहल कलकत्ता में सन् १८२७ में छपी। दूसरी बार सन् १८२४ और तीसरी बार सन् १८३३ में निकली। इसमें केवल व्याकरण का ही अंश नहीं था, बल्कि कोष तथा भाषा-सम्बन्धी अन्य पाठ भी दो भागों में थे।

फ्रांसीसी विद्वान् दिसासी की पुस्तक सन् १८२९ में फ्रांस के प्रधान नगर पेरिस से निकली और इसी विद्वान् का व्याकरण-विषयक एक महत्त्व-पूर्ण लेख सन् १८३८ की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में निकला।

सन् १८३० में मिस्टर एस० डब्ल्यू० बरीटन साहब की किताब लन्दन से प्रकाशित हुई।

सन् १८३१ में मिस्टर स्टीमफ़ोर्ड अर्नाट की अमूल्य पुस्तक लन्दन में प्रथम बार छपी। दूसरी बार सन् १८४४ में प्रकाशित हुई। यह पुस्तक फ़ारसी और रोमन अक्षरों में है और इसमें कई उपयोगी परिशिष्ट भी हैं।

मिस्टर डंकिन फ़ार्बस ने मिस्टर स्टीमफ़ोर्ड अर्नाट की पुस्तक में कुछ वृद्धि कर दी और इसका नवीन संस्करण लन्दन से सन् १८४४ में प्रकाशित हुआ।

सन् १८४४ में मिस्टर जेम्स आर० बैलिंटाइन की पुस्तक भी लन्दन से निकली। और सम्भवतः यही पुस्तक कुछ परिवर्तन तथा संशोधन के पश्चात् फिर सन् १८६८ में प्रकाशित हुई।

सन् १८४७ में रेवरेण्ड जी० इस्माहल साहब की पुस्तक लन्दन में छपी। इसमें उर्दू-साहित्य का भी चुना हुआ अंश सम्मिलित है। इसी का दूसरा संस्करण सन् १८५८ में निकला।

जर्मनी के एक विद्वान् ने भी एक पुस्तक लिखी थी। वह बर्लिन से सन् १८५२ में प्रकाशित हुई थी।

सन् १८७२ में जान डौसन साहब ने एक पुस्तक रची थी। मिस्टर जान प्लेट की पुस्तक लन्दन में सन् १८७४ में छपी। यह वास्तव में एक अमूल्य पुस्तक है।

सन् १८८२ में पामर साहब की किताब हिन्दुस्तानी, फ़ारसी तथा अरबी व्याकरण पर लन्दन से निकली। सन् १८८२-८३ में मिस्टर डब्ल्यू० केगर ने एक व्याकरण रचा।

सन् १८८३ में प्रोफ़ेसर फ़ानकियो ने एक पुस्तक रची और वह निपोली से प्रकाशित हुई।

सन् १८८३ में मिस्टर जे० विनसन ने भी एक व्याकरण रचा।

जर्मन-विद्वान् ए० सी० डल का व्याकरण सन् १८९३ में लिपज़िग से निकला। और सन् १८९४ में लिपज़िग से मिशनरी शिलज़ की भी किताब फिर प्रकाशित हुई।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, केवल व्याकरण-विषयक पुस्तकों की बाबत लिखा गया है। अन्य विषयों की जो पुस्तकें योरपीयों-द्वारा लिखी गई हैं उनके उल्लेख की यहाँ आवश्यकता नहीं। इससे भली भाँति ज्ञात हो जाता है कि उर्दू के व्याकरण की बाबत कितना उद्योग और कब से योरपीयों-द्वारा हुआ है और योरप की भिन्न भिन्न भाषाओं में कितनी पुस्तकें उर्दू-व्याकरण पर भिन्न भिन्न स्थानों से निकली हैं। परन्तु यह भी ज्ञात रहे कि भारतवासियों ने भी जब उर्दू-व्याकरण की रचना की आवश्यकता समझी और इसकी ओर ध्यान दिया तब अनेक पुस्तकें लिखी गईं।

उर्दू के सुप्रसिद्ध कविवर मीर इन्सा अल्लाख़ाँ देहलवी आदि भारतवासी ही हैं, जिन्होंने उर्दू-व्याकरण को लेखबद्ध किया। नवाब सआदतअलीख़ाँ बहादुर के समय में कविवर महोदय ने 'दरियाय लताफ़त' नामी पुस्तक सन् १८०२ में लिखी। उक्त अमूल्य ग्रन्थ में उर्दू-व्याकरण के सिवा स्त्रियों के मुहावरे, भिन्न भिन्न जातियों की बोलियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि अन्य उपयोगी बातें भी हैं। सौ वर्ष से भी अधिक हुए जब इस ग्रन्थ की रचना हुई थी, तथापि इस समय भी यह एक अद्वितीय तथा आदरणीय पुस्तक है। यह पुस्तक पहले-पहल सन् १८४८ में मुर्शिदाबाद में प्रकाशित हुई थी, किन्तु इसका बढ़िया संस्करण थोड़े ही दिन बीते 'अंजुमन तरक्क़ी उर्दू' ने निकाला है।

स्वर्गीय सर सैयद अहमदख़ाँ का भी रचा हुआ एक उर्दू-व्याकरण पाया जाता है, जो लगभग सन् १८४० का रचा हुआ प्रतीत होता है। परन्तु इसके छपने की नौबत नहीं आई। केवल इसकी एक हस्तलिखित प्रति इटावा के इस्लामिया हाई-स्कूल में है।

मौलवी अहमदअली देहलवी का व्याकरण सन् १८४५ में दिल्ली से प्रकाशित हुआ। ग्रन्थ का नाम है—'फ़ैज़ का चशमः'।

बाद को आज तक शनैः शनैः बहुतेरे लोगों ने उर्दू-व्याकरण के छोटे-मोटे अनेक ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से तथा सरकारी स्कूलों के लिए लिख डाले। ऐसे लेखकों की यदि सूची तैयार की जाय तो वह कुछ कम लम्बी न होगी। परन्तु उर्दू-व्याकरण की जो पुस्तकें हैं उनमें सबसे अच्छी पुस्तक 'क़वायद उर्दू' नाम की मौलवी अब्दुलहक़ साहब, बी० ए०, द्वारा रचित है। यह ग्रन्थ वास्तव में स्वतन्त्ररूप से रचा गया है। बहुतेरों के समान इसमें अरबी या फ़ारसी व्याकरण का अनुकरण नहीं है।

महेशप्रसाद

४—जल्दी फल उत्पन्न करने की एक नई रीति।

संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के एक उद्भिज्ज-शास्त्रवेत्ता ने वृक्षों में जल्दी फल पैदा करने की एक नई युक्ति ढूँढ़ निकाली है। जो वृक्ष आठ वर्ष में फलते हैं वही अब केवल दो वर्ष में फल दे सकेंगे। तरकीब कठिन भी नहीं। प्रत्येक बुद्धिमान् आदमी, चाहे वह उद्भिज्ज-शास्त्र का ज्ञाता हो चाहे न हो, उसके अनुसार कार्य करके लाभ उठा सकता है। युक्ति यह है—

तीन चार सप्ताह का छोटा पौधा जड़ बचा कर उखाड़ लिया जाता है। उसकी जड़ में इतनी मिट्टी लगी रहती है जिसकी नमी से वह, किसी बाहरी सहारे के बिना भी, कुछ दिन तक जीवित रह सके। तत्पश्चात् वह अपनी ही जाति के किसी दो तीन वर्ष के पुराने पौधे में लगा दिया जाता है। वह पुराना पौधा नये पौधे से कई गुना बड़ा होता है। पुराने पौधे के एक फुट ऊपर की छाल पहले छील डाली जाती है। नये पौधे की भी छाल छील दी जाती है। तब दोनों पौधों के छिले हुए भाग एक दूसरे से मिला कर मुलायम कपड़े से बाँध दिये जाते हैं। नये पौधे की जड़ की मिट्टी भी पुराने पौधे से बाँध दी जाती है। दो तीन सप्ताह बाद नया पौधा पुराने में लग जाता है। वह उसी से पोषक-रस पाने लगता है और उसी का एक अङ्ग बन जाता है। तब, कुछ दिनों बाद, कपड़ा और मिट्टी उससे अलग कर दी जाती है और उसकी जड़ें, जो पुराने पौधे से लटकती रहती हैं, काट दी जाती हैं। जब पुराने में नया पौधा अच्छी तरह लग जाता है तब उसकी सारी शाखायें काट दी जाती हैं। उस पुराने पौधे का पोषक-रस, जो सारी शाखाओं में बँट जाता था, अब केवल नये पौधे ही को मिलने लगता है। फल यह होता है कि पौधा बहुत बलिष्ठ हो जाता है। और समय से पहले ही कहीं अच्छे और विशेष स्वादिष्ट फल देने लगता है। एक जाति के दो प्रकार के वृक्षों की कलियों के पराग के संयोग से सङ्कर फलों का आविष्कार आज से बहुत पहले हो चुका है। परन्तु उसमें बहुत देर लगा करती है। अब इस नई प्रणाली-द्वारा उस प्रकार के फल शीघ्र पैदा किये जा सकेंगे और जाँच करने-वालों का समय भी बहुत बचेगा। भविष्यत् में होनेवाले उद्भिज्ज-शास्त्र-सम्बन्धी अन्य आविष्कारों और अनुभवों को भी इस नई तरकीब से सहायता मिलेगी और लोग इस रीति के अनुसार कार्य करके अपने फलों और फूलों की पैदावार भी खूब बढ़ा सकेंगे।

त्र—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—सौन्दर्य-कला के विषय में योरपीय विद्वानों के विचार।

साधारणतः 'कल्पना' शब्द से हम यह समझते हैं कि यह मानसिक शक्ति प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त है, किन्तु यथार्थ में इसका उन मानसिक संवेदनाओं और भावनाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है जिनको हम अन्य किसी उत्तम नाम के अभाव में सौन्दर्य-कला के नाम से अभिहित कर सकते हैं। सम्भव है कि आप अपना जीवन-कालयापन कर रहे हों और वह भी वीरतापूर्वक, किन्तु आपमें कल्पना का नाम भी न हो। उदाहरण के लिए मकान इस प्रकार मज़बूत बनाया जा सकता है जो पानी और आँधी से निवासियों की पूर्ण रक्षा कर सके, साथ ही उसमें प्रकाश आने की भी पूर्ण सुविधा हो, तथापि यह भी सम्भव है कि वह देखने में भद्दा हो। किन्तु यदि किसी को उतना ही मज़बूत और उतना ही सुविधाजनक ऐसा मकान मिल सके जो देखने में भी सुन्दर हो तो कोई भी मनुष्य स्वेच्छापूर्वक उक्त भद्दे मकान में रहना पसन्द नहीं करेगा। बस, यही सौन्दर्य उत्तम कल्पना का स्वाभाविक और एक-मात्र विषय है। इतना ही नहीं, जो मनुष्य अपने जीवन को सार्थक करना चाहता है अथवा अधिक से अधिक उन्नत करना चाहता है उसको चाहिए कि वह इस सौन्दर्य के असली भेद को समझने की कोशिश करे।

ब्लेकी

सौन्दर्य-कला उस भाषा का विज्ञान है जो संसार में सबसे अधिक प्रचलित है। यह संसार-व्यापी भाषा है। वास्तव में, हमारी संवेदनाओं और अन्तःप्रेरणाओं की अभिव्यक्ति का नाम ही कला है। और इसी अभिव्यक्ति की आलोचना करना विज्ञान का विषय है। मानसिक तथ्य या सिद्धान्त दो प्रकार के होते हैं, एक व्यक्तिगत और दूसरे सार्वजनिक। इन दोनों का अन्तर केवल इतना ही है कि सार्वजनिक सिद्धान्तों का निर्माण व्यक्तिगत सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। अस्तु अभिव्यक्ति के बिना सार्वजनिक सिद्धान्तों का अस्तित्व ही सम्भव नहीं हो सकता, किन्तु अभिव्यक्ति किसी प्रकार अपने अस्तित्व के लिए सार्वजनिक सिद्धान्तों की मुहताज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं। काव्य मनुष्यमात्र की मातृ-भाषा है और इसी लिए आदि-मनुष्य स्वभावतः उच्च कोटि के कवि हुआ करते थे।

सिगनेार कोसी

पशु एक-दम इन्द्रिय-लिप्त रहता है अर्थात् इन्द्रिय के बाहर उसकी पहुँच नहीं होती और देवता सर्वथा ज्ञानमय होते हैं, वे उस उच्चासन से नीचे नहीं उतरते। किन्तु मनुष्य इन दोनों के बीच में स्थित है और इसी लिए वह कला का मर्म समझ सकता है और उसके रस का उपभोग कर सकता है। कला स्वर्ग और नरक के बीच की वस्तु है। यही कारण है कि कला और काव्य का जन्म इतिहास में विज्ञान और दर्शन के पहले दिखाया गया है।

शिलर

यह समझना कि कला मानवीय जीवन में एक आकस्मिक घटना है, यदि हो तो भी उत्तम और न हो तो भी उत्तम, एक भयङ्कर भूल है। वास्तव में मनुष्य-जीवन के अनादि और वास्तविक स्वरूप के विकास के लिए वह उतनी ही आवश्यक है जितनी और कोई वस्तु। हाँ, इस विकास-क्रम में उसका एक स्थान नियत है, जिसकी किसी प्रकार अवहेलना नहीं की जा सकती।

मर्ज़

मानवीय जगत् के उद्धार में कला का क्या स्थान है, यह केवल एक इसी बात से जाना जा सकता है कि वह मनुष्यों की सहानुभूति को जाग्रत करती है। कलाओं का उद्देश भिन्न भिन्न भावनाओं को उत्तेजित करना होता है, किन्तु ये सब भावनायें सामाजिक होती हैं। कला से हमें एक उसी प्रकार का व्यायक आह्लाद मिलता है जैसा कि सामाजिक विस्तार और सङ्गठन के आन्दोलनों से प्राप्त होता है। मनुष्य में सौन्दर्योपासना की एक सहज वृत्ति विद्यमान है, उसको स्वाभाविक और सामञ्जस्यपूर्ण रीति से उत्तेजना देने का सबसे सरल उपाय है कला और कला-निदर्शन।

गुश्रो

कला का सच्चा लक्ष्य जीवन-धारा की अभिव्यक्ति करना है। उससे हमारा अनुभव फैलता है। यह उन मनुष्यों के साथ हमारा सम्पर्क स्थापित कर देती है जो व्यावहारिक जगत् में हमारे व्यक्तिगत संसर्ग से बाहर रहते हैं। हमारी अन्धाधुन्ध स्वार्थ-प्रियता का मूल-कारण क्या है? हमारी कल्पना की शिथिलता और कला का धर्म यही है कि वह अपनी कल्पना के आवेश से हमारी स्वार्थान्ध आत्मा की बन्द कोठरी के द्वार खोल देती है। मनुष्य और समाज के बीच सामञ्जस्य स्थापित हो जाता है। वास्तव में, सहानुभूति तो प्रत्येक मनुष्य में होती है और तीव्र भी होती है, किन्तु वह व्यापक नहीं होती, इसी लिए कलाविद् का काम सहानुभूति को तीव्र करना उतना अधिक नहीं जितना अधिक उसको व्यापक बनाना है। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन-यापन ही मनुष्य को सबसे पहले सहानुभूति का पाठ पढ़ा देता है, किन्तु फिर भी हमारी सहानुभूति सङ्कुचित रहती है, क्योंकि अधिकतर लोगों का जीवन-क्षेत्र ही बहुत परिमित होता है। इसी-लिए हमें कला की आवश्यकता होती है। क्योंकि कला वह जादू है जिसके द्वारा हमारी आँखों की पट्टी खुल जाती है और हम अपने क्षितिज के बाहर देखने लगते हैं।

जार्ज इलियट

कला हमारे प्रतिबन्धों को भङ्ग कर देती है। पूर्व और पश्चिम में झगड़ा है, एक दूसरे की जान पर तुले हुए हैं। क्यों? क्योंकि उनके स्वार्थ विपरीत हैं। किन्तु ऐसे सङ्कट के समय में भी कवि और नाट्यकार हमारी रक्षा के लिए अग्रसर होते हैं। उनकी कृतियों के द्वारा मनुष्य एक दूसरे को समझने लगते हैं।

किसी विस्तीर्ण प्रजातान्त्रिक राष्ट्र के जीवन पर, जिसमें बहुत सी जातियों और परस्पर सङ्घर्षक स्वार्थों का समावेश हुआ हो, विचार-पूर्वक दृष्टिपात कीजिए और तब आपको पता चलेगा कि कला मनुष्य के लिए क्या कर सकती है। यदि कला के द्वारा नागरिकों की कल्पना और सहानुभूति को यथेष्ट उत्तेजना न दी जाय तो क्या यह सम्भव है कि वे कभी अपने देश के व्यापक जीवन को भले प्रकार समझ सकेंगे और फिर क्या वे ऐसी अवस्था में घड़ी भर के लिए भी देश के शासन की बागडोर अपने हाथों में सँभाल सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु प्रत्येक कला को हम सामाजिक नहीं कह सकते। फ़ेशनेबिल कला का अथवा उस कला का, जो प्रकृति का अनुकरण करना चाहती है—उद्देश मनुष्य को उन्नत करना नहीं, बरन प्रसन्न करना होता है। किन्तु काव्य-कला, वक्तृत्व-कला, औपन्यासिक-कला अथवा नाट्य-कला—ये ऐसी कलायें हैं जिनका सम्बन्ध रूप-रेखा की अपेक्षा मनुष्य-जीवन से विशेष होता है और सच पूछा जाय तो जिस कला के द्वारा मनुष्य की सामाजिक वृत्ति को कुछ भी उत्तेजना नहीं मिलती उसको हम उत्तम कला किसी प्रकार नहीं कह सकते। मेरा तो विश्वास है कि यदि मनुष्य कुछ दिनों तक कला के सहानुभूतिवर्द्धक प्रभावों के अधीन रहे तो उसको अपने भाइयों के समझने में देर नहीं लग सकती। उसकी आँखें खुल जाती हैं, उसकी कल्पना उड़ने लगती है। अपने भाइयों में किसी न किसी प्रकार उसकी सहानुभूति इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसको हम उदारहृदय कहने लगते हैं। फिर वह एक देश का नहीं, एक द्वीप का नहीं, बरन समस्त जगत् का नागरिक बन जाता है। यही कला का महाप्रसाद है।

रोज़

कला जातियों के पारस्परिक वैमनस्य को कम करती है तथा पारस्परिक प्रेम को बढ़ाती है। यदि दो राष्ट्र परस्पर एक दूसरे की कला-सम्बन्धी रचनाओं को समझने और उनका आदर करने लगें तो उनके बहुत दिनों के बिछुड़े हुए हृदय बहुत आसानी से मिल सकते हैं। इतना ही नहीं, इस आदान-प्रदान से कालान्तर में उनका प्रेम-बन्धन सुदृढ़ हो जायगा, फिर कभी उसके टूटने की सम्भावना ही न रह जायगी। इसका सबसे अच्छा उदाहरण यह है कि जापानियों ने अपनी कला के बल से ही सभ्यता के मद से चूर और उन्नतिशील योरपीय जातियों के संरक्षित घेरे में आसानी से प्रवेश कर लिया है। या योरप के राष्ट्र चिरकाल से यूनान की प्राचीन मूर्ति-निर्माण-कला अथवा जर्मनी की नवीन सङ्गीत-कला अथवा इँग्लैंड और फ्रांस की वास्तु-कला-सम्बन्धी गाथिक शैली या इटली की चित्रकला की सामान्य रूप से जो प्रशंसा करते चले आ रहे हैं, उसका योरप के व्यापक सङ्गठन और सौहार्द-ग्रन्थन में कोई हाथ नहीं है? है और अवश्य है। वास्तव में यदि कला का इस प्रकार आदान-प्रदान न हुआ होता तो पश्चिमी सभ्यता का विकास कदापि इतना अधिक न हो सकता।

मेकडानल

चाहे कोई चित्र हो, चाहे कोई फ़ोटो और चाहे कोई मूर्त्ति—जिसके द्वारा हमारे हृदय में किसी उदात्त विचार का सञ्चार होता है, जो किसी वीर कृत्य को प्रदर्शित करती है अथवा जो हमें प्रकृति के किसी गम्भीर तथ्य का दर्शन कराती है अथवा जो सामाजिक जीवन की एक झलक हमारे सामने खींच देती है, वह वास्तव में हमारा गुरु है, उससे हम शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, आत्म-शिक्षा का इससे बढ़ कर और कोई दूसरा साधन नहीं। ऐसे चित्रों और मूर्त्तियों को अवश्य घर में रखना चाहिए। गृह उनके कारण अधिक सुखप्रद और चित्ताकर्षक मालूम होता है।

उदाहरण के लिए यदि हमारे गृह में किसी महान् पुरुष का चित्र लगा हुआ हो तो उसके द्वारा हमें उसकी जीवनी समझने में सहायता मिलती है। ऐसा मालूम होता है जैसे हम उससे परिचित हों। इसमें तो सन्देह नहीं कि उन विशालहृदय और पुण्यात्माओं का साथ एक ऐसा साथ है जो हम व्यावहारिक जगत् में आसानी से नहीं पा सकते। वे हमसे कहीं अधिक उन्नत होते हैं। यह भी सम्भव है कि हम अपने जीवन के अन्त तक अपने पूजनीय गुरुओं की बराबरी न कर सकें, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारी दीवारों पर उनके चित्र टँगे रहने से हमारे हृदयपटल पर उनका मधुर प्रभाव अवश्यमेव पड़ता रहता है।

स्माइल्स

मेरी समझ में सङ्गीत और सब कलाओं से उच्च है। वास्तव में इसको हमारी हार्दिक भावनाओं और वेदनाओं की भाषा समझना चाहिए। यह हमारे सुख-दुख, हास्य-विनोद, अनुताप-परिताप, भय और घृणा को स्वाभाविक ढंग से व्यक्त करता है। केवल इसी कला से हमारी आत्मा को पूर्ण शान्ति मिलती है, इसी के द्वारा हमारा तुच्छ अहङ्कार और व्यक्तिगत इच्छायें समूल नष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाती हैं। सङ्गीत मनुष्य को देहाध्यास से ऊपर उठा कर उसके हृदय के अन्तस्तल को स्पष्ट दिखा देता है।

सोपेनहोयर

सङ्गीत की उपमा हम भाषा से दे सकते हैं, क्योंकि केवल एक यही भाषा ऐसी है जिसको मनुष्य-मात्र समझ सकते हैं। भाषा के लिए व्याकरण और शब्द-कोष की आवश्यकता होती है। व्याकरण से तो यह मालूम होता है कि शब्द और वाक्य कैसे बनते हैं और शब्द-कोष से प्रत्येक शब्द का अर्थ मालूम होता है। सङ्गीत में भी ये दोनों बातें होती हैं। सङ्गीत के व्याकरण से हमें यह ज्ञात होता है कि सङ्गीत में सामञ्जस्य कैसे स्थापित किया जाता है। सङ्गीत का शब्द-कोष बाद की चीज़ है। सोपेन-होयर का कहना है कि इसने शब्द-कोष का सङ्ग्रह किया है। इसमें सन्देह नहीं है कि उसी ने सबसे पहले हमको सङ्गीत का यथार्थ भेद बतलाया है।

कूनो फिसर

सङ्गीत के विषय में सबसे अधिक आवश्यक यह है कि बच्चों के कान छोटी अवस्था से ही सङ्गीत की ओर झुका देना चाहिए, जिससे वे भले प्रकार अभ्यस्त हो जायँ, क्योंकि सङ्गीत-कला सीखने की शक्ति बहुत जल्दी क्षीण हो जाती है। जहाँ बच्चा तेरह-चौदह वर्ष का हुआ और यदि उसको यथोचित अवसर न दिया गया कि उसकी शक्ति कुण्ठित होगई। इसलिए जितनी जल्दी सम्भव हो उतनी जल्दी बच्चों को इस ओर झुका देना चाहिए। फिर बच्चे में चाहे सङ्गीत-कला का स्वाभाविक अङ्कुर हो, चाहे न हो, बच्चा बहुत कुछ सङ्गीत-कला सीख सकेगा।

एच० जी० वेल्स

कला का धर्म यह है कि वह मनुष्य को ईश्वर के साथ और आपस में भी जोड़ देती है। इसी लिए जो कला अज्ञान की ओर ले जानेवाली है अथवा जो काम-लिप्सा को उत्तेजित करती है अथवा जिसको हम राष्ट्रीय कला कहते हैं, वह सब कला नहीं, क्योंकि वह मनुष्य को नीचे गिरानेवाली है। उसके द्वारा मनुष्य मनुष्य का शत्रु हो जाता है। इसी प्रकार यह कहना भी सर्वथा निर्मूल है कि केवल उच्च आत्मायें कला की अधिकारिणी हैं। जिसे सचमुच कला कहना चाहिए उसे तो छोटे-बड़े सभी सीख सकते हैं।

टाल्स्टाय

कौशलेश।

२—राजा बाबू।

अँगरेज़ों और जर्मनों के राष्ट्रीय स्वभाव और संस्कृति में वैसे तो अनेक स्थलों पर मतभेद है, किन्तु एक स्थान पर यह अन्तर इतना चौड़ा है कि वह तुरन्त दीखे बिना नहीं रह सकता। यह स्थान है शिशु-व्यवहार। अँगरेज़ लोग जिस प्रकार अपने बाल-बच्चों के साथ व्यवहार करते हैं उस प्रकार जर्मन लोग नहीं करते। जर्मनी में बच्चों को उतनी स्वतन्त्रता नहीं है जितनी इँग्लैंड में है। वे शायद स्वतन्त्रता को बच्चों के विकास में बाधक समझते हैं, इसी लिए उन पर कड़ी दृष्टि रखते हैं। उनके बच्चों में व्यक्तित्व का प्रौढ़ विकास नहीं होता। वे प्रारम्भ से ही बच्चों को किताबें घोल घोल कर पिला देना चाहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार बच्चा किताबी कीड़ा तो बन जाता है, किन्तु उसमें सोचने-विचारने की शक्ति नहीं उत्पन्न होती। वह दूसरों की बात बहुत मानने लगता है पर अँगरेज़ों की अवस्था इससे सर्वथा भिन्न है। उनको बच्चों से बहुत प्रेम होता है वे उनको बड़ी सहानुभूति से देखते हैं। संसार में ऐसी बहुत कम जातियाँ हैं जो इस बात में अँगरेज़ों की बराबरी कर सकें। एक अँगरेज़ी विद्वान् ने तो अपनी जातिवालों को एक बार यह चेतावनी दी थी कि वे ऐसे लोगों से सदैव सचेत रहा करें जिनके हृदय में बच्चों से प्रेम न हो। यदि कोई साधारण अँगरेज़ स्त्री या पुरुष किसी बच्चे से बातें कर रहा हो और तुम उसके बीच में टोक दो तो समझ लो कि तुम्हारी ख़ैर नहीं है। छोटे बच्चों की चुटीली बातों को लोग बड़े प्रेम से सुनते हैं। शायद ही कोई ऐसा पाषाण-हृदय अँगरेज़ हो जो बच्चों की बातों का प्रत्युत्तर न देना चाहे। वहाँ के समाचारपत्रों और सामयिक पत्रों के पन्ने लौटाने से यह बात और भी स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है। कोई भी ऐसा लोकप्रिय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र न होगा जिसमें दो-एक मनोरञ्जक स्तम्भ न हों। और यदि हम उन स्तम्भों के चुटकिलों एवं क़िस्से-कहानियों की छान-बीन करें तो हमें ज्ञात होगा कि उनमें से अधिकांश बच्चों से ही सम्बन्ध रखते हैं। बात यह है कि बच्चों के प्रति इन लोगों का विशेष अनुराग है। कहा तो यह जाता है कि ब्रिटिश सैनिक, जो ब्रिटिश-जाति के प्रतिनिधि माने जाते हैं, और बच्चों में कोई अन्तर नहीं होता, क्योंकि उन दोनों का हृदय एक होता है। भेद केवल उनके आकार-प्रकार में होता है। इसी लिए वे सदैव बालकों के सामने प्रसन्नचित्त रहते हैं। सारांश यह कि इस विषय में अँगरेज़ों और जर्मनों में एक मौलिक अन्तर है। कहना न होगा कि भारतवासी इस विषय में अँगरेज़ों की अपेक्षा जर्मनों से अधिक मिलते-जुलते हैं। यहाँ भी बच्चों के प्रति बड़ी उदासीनता है। उनके व्यक्तित्व को अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझते। इसलिए कभी कभी उसको बड़ी निर्दयता से कुचल डालते हैं। भारतवर्ष के बच्चों की ऐसी दयनीय अवस्था, जिन पर देश की भावी उन्नति निर्भर है, निस्सन्देह शोचनीय है।

पाश्चात्य देशों में बच्चों के प्रति अनुराग बढ़ाने के लिए लोग तरह तरह की युक्तियाँ भी करते हैं। कुछ दिन हुए, रायल एकेडेमी में एक सुन्दर चित्र दिखाया गया था। उसका शीर्षक था राजा बाबू। चित्र लम्बे-चौड़े कैनविस के टुकड़े पर खींचा गया था। उसमें एक ओर तो एक राज-प्रासाद बना था और दूसरी ओर से सैकड़ों स्त्री-पुरुष घोड़ा-गाड़ियों और मोटरों में बैठे हुए आ-जा रहे थे। सड़क के बीचोंबीच नीली वर्दी पहने हुए एक पुलिसमैन खड़ा था। सड़क की एक पटरी पर एक धाय बच्चों की गाड़ी में एक छोटे से बच्चे को बैठाये हुए खड़ी थी। उसको इस पार से उस पार जाना था। किन्तु ऐसी भीड़ में किस प्रकार जाय। बच्चे के मुख ने पुलिसमैन के हृदय में दया उत्पन्न कर दी। उसने हाथ उठा कर सब गाड़ियों को जहाँ का तहाँ रोक दिया। घड़ी भर के लिए सन्नाटा छा गया और राजा बाबू शान के साथ सड़क पार हो गये।

यह चित्र लोगों को बहुत पसन्द आया। उसके सामने दर्शकों की भीड़ लग गई। और भीड़ क्यों न लगती, एक तो विषय अत्यन्त लोकप्रिय और फिर कुशल कारीगर के द्वारा खींचा हुआ। अतएव थोड़े ही दिनों में उसका फ़ोटो लिया गया, ब्लाक बनवाया गया और तसवीरें छापी गईं। जब ये तसवीरें प्रेस से निकलीं तो बात की बात में हज़ारों प्रतियाँ देश भर में फैल गईं। चित्रकारों की आँखें खुलीं। उनको पहले-पहल मालूम हुआ कि बच्चे जैसी उपेक्षणीय वस्तु भी जनता को इतनी अधिक रुचिकर हो सकती है और वह कला जैसी उच्च विद्या का विषय बन सकती है। इँग्लैंड के चित्रकार इस ओर अधिकाधिक ध्यान देने लगे।

किन्तु इस विषय में सबसे अधिक उन्नति अमेरिका ने की है। न्यूयार्क के चार्ल्स हेनरीट्वेल्वट्रीज़ नामक चित्रकार बच्चों के भावात्मक चित्र अङ्कित करने में बड़े सिद्धहस्त हैं। उनकी रचनायें संसार भर में प्रसिद्ध होगई हैं। उन्हीं के कुछ चित्र यहाँ दिये जाते हैं। इनको देखते ही बच्चों के हृद्गत भाव प्रकट हो जाते हैं। वे बच्चों के चित्रों को बड़े बड़े कैनविस के टुकड़ों पर अथवा तैल-चित्र नहीं बनाते। उनके चित्र तो छोटे और सादे रङ्गों से भरे होते हैं, जिससे इनमें स्वाभाविकता अधिक रहती है। उन्होंने बच्चों की विभिन्न आकृतियों को एक नया अर्थ ही प्रदान कर दिया है। यही उनकी प्रतिभा का सर्वोत्तम प्रमाण है। उनकी सबसे लोकप्रिय रचना का शीर्षक है—ओह, क्यों तंग करते हो। चित्र पर दृष्टिपात करने से चित्रकार की प्रतिभा का अनुमान हो सकता है। बच्चे की उस्तादी किस खूबी से व्यक्त की गई है। उसके रङ्ग-ढङ्ग से मालूम होता है कि भविष्य में वह दुनिया के कामकाजी आदमियों की भाँति अपनी सुस्ती किस प्रकार छिपा सकेगा। उनकी एक दूसरी प्रसिद्ध कृति का शीर्षक है—चुप रहो, सबसे अधिक शब्द करनेवाला मैं हूँ। इसकी कल्पना भी बड़ी सुन्दर है। एक अरुण-कमल-वदन बच्चा एक शान्त परिवेष्टन में ज़ोर ज़ोर से ख़र्राटे भर रहा है। इनका तीसरा चित्र 'हम शान्ति चाहते हैं' भी बड़ा मज़ेदार है, इसमें जीवन के प्रारम्भिक मासों के सबसे बड़े आवेग को बड़ी उत्तमता से व्यक्त किया गया है। इसकी सफलता का ढिँढोरा पीटना व्यर्थ है।

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि उनकी रचनायें चलते-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों तंग करते हो ?

चुप रहो, सबसे अधिक शब्द करनेवाला मैं हूँ।

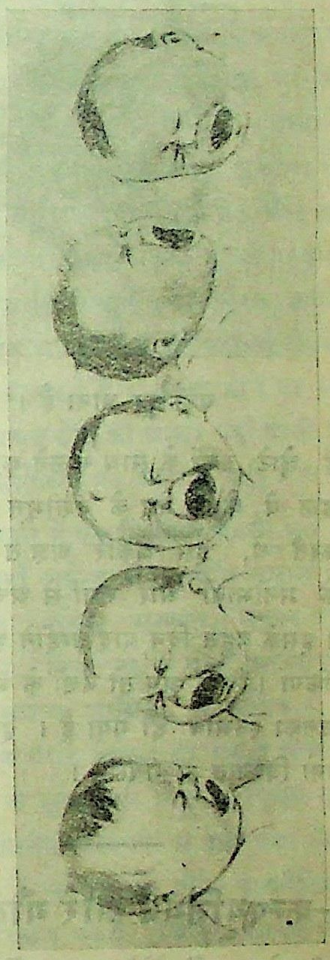

हम शान्ति चाहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिरते बालकों के छाया-चित्र नहीं हैं और वास्तव में ऐसी छोटी अवस्था के इस प्रकार के आदर्श मिलना भी एक प्रकार से असम्भव है। उसका स्रोत तो उनकी कल्पना और उनका सूक्ष्म-निरीक्षण है। कहा जाता है

बड़ी दूर जाना है।

कि उन्हें छोटे बच्चों के साथ खेलने का बड़ा शौक़ है। पहले-पहल वे केवल प्रेम के वशीभूत होकर उनके साथ खेला करते थे, इस प्रकार अज्ञात रूप से ही वे बच्चों के मनोभावों और रूपों से अच्छी तरह परिचित हो गये। इसके बहुत दिन बाद उन्होंने अपने अनुभवों का उपयोग किया। किन्तु अब तो बच्चों के भावों का निरीक्षण करना उनका स्वभाव हो गया है। इसी कारण उनका नाम इतना विख्यात हो गया है।

रामशरण।

३—कन्फ्यूसियस और गौतम बुद्ध।

चीनी लोग इन्हीं दोनों महात्माओं के भक्त हैं। एक की याद तो वे इस प्रकार करते हैं—कन्फ्यूसियस, कन्फ्यूसियस, तेरी महिमा अपार है! कन्फ्यूसियस, तेरे पहले संसार में कभी किसी कन्फ्यूसियस का जन्म नहीं हुआ था और हे कन्फ्यूसियस, तेरे बाद भी संसार में कभी किसी कन्फ्यूसियस का जन्म नहीं होगा। कन्फ्यूसियस तेरी महिमा अपरम्पार है। बुद्ध भगवान् के प्रति भी उनकी कुछ कम श्रद्धा नहीं है। प्रत्येक चीनी प्रति दिन कहा करता है—बुद्ध भगवान्, मैं तेरी शरण लेता हूँ, मैं धर्म की शरण लेता हूँ, मैं सङ्घ की शरण लेता हूँ।

इसका कारण यह है कि बुद्ध और कन्फ्यूसियस की शिक्षाओं में बड़ी समानता है। कन्फ्यूसियस का जन्म गौतम बुद्ध से बहुत पहले हुआ था। जिस समय पहली शताब्दी में बौद्ध-धर्म ने चीन के बृहत् साम्राज्य में प्रवेश किया उस समय वहाँ कन्फ्यूसियस के मत का प्रचार था। धीरे धीरे बौद्ध-धर्म भी बढ़ने लगा। इसमें सन्देह नहीं कि प्रारम्भ में एक दूसरे के अनुयायियों में खूब संघर्ष हुआ। लोग एक दूसरे के नाम से चिढ़ने लगे। किन्तु अन्त में ज्यों ज्यों उनको एक दूसरे की शिक्षाओं से अधिकाधिक परिचय होता गया, त्यों त्यों द्वेषभाव दूर होता गया। लोग कन्फ्यूसियस की सदाचार-शिक्षा को भी मानते रहे और बौद्ध-धर्म के अनुयायी भी बन गये। वास्तव में उनमें कोई मौलिक विरोध नहीं था।

इनकी शिक्षाओं में क्या समानता है, गौतम बुद्ध का जीवन-चरित तो भारतवर्ष में बहुत प्रसिद्ध है। दो-एक बातों को छोड़कर इनसे कन्फ्यूसियस का जीवन अधिक नहीं मिलता। इनका जन्म भी ईसा से ५५१ वर्ष पहले एक राजघराने में हुआ था। बचपन से ही इनको मन्दिर बनाने और उसमें पूजा करने का बड़ा प्रेम था। कन्फ्यूसियस ने स्वयं अपने विकास-क्रम का उल्लेख किया है—

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में मुझे अध्ययन से अभिरुचि हुई। तीस वर्ष की अवस्था में मेरे विचार पक्के हो गये, पचास साल में मुझे ईश्वरीय नियमों का बोध हुआ, साठ वर्ष की अवस्था में मेरे हृदय में सत्य का संचार होने लगा और सत्तर वर्ष की अवस्था में मैं अपने अन्तःकरण के आदेशों के अनुसार चलने लगा। किन्तु मेरी साधना पूरी नहीं हुई। मैं अपने ज्ञान का यथार्थ विश्लेषण और मर्म न समझ सका। ज्ञान होने पर भी मैं सत्य-पथ पर नहीं चल सका, यहाँ तक कि मैं अपने दोषों को भी दूर न कर सका—यही मेरे लिए सबसे बड़े परिताप की बात है।

१९ वर्ष की अवस्था में चीनी रस्मरवाजों के अनुसार कन्फ्यूसियस का ब्याह हुआ था। उस समय वे राजकीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमि और तोपख़ानों के संरक्षक नियत किये गये थे। ईसा के ५३० वर्ष पहले उन्होंने उपदेशक का काम प्रारम्भ किया। उनके पास बहुत से जिज्ञासु आने लगे। ५२ वर्ष की आयु में कन्फ्यूसियस चंग-टूयू शहर का प्रधान बनाये गये। उनके शासन-काल में इस शहर ने खूब उन्नति की। किन्तु चार वर्ष काम करने के बाद उन्होंने इस पद से त्यागपत्र दे दिया और यत्र-तत्र घूम-फिर कर अपनी शिक्षाओं का प्रचार करने लगे। लोगों ने उनके प्रति यथेष्ट आदर-भाव दिखाया। उनके जीवन-काल में ही उनके ३,००० से अधिक शिष्य हो गये। ईसा के ४७९ वर्ष पहले ७३ वर्ष की आयु में इस महान् पुरुष की मृत्यु हुई। मृत्यु तो संसार में सभी की होती है, ऐसा कौन है जो सदैव अपना नश्वर शरीर स्थिर रख सके। किन्तु सबसे बड़े दुःख की बात यह थी कि लोग उनका यथेष्ट सम्मान न कर पाये। उस समय के राजकुमार और धनी-मानी सज्जन तो उन्हें एक गर्विष्ठ दार्शनिक समझते थे, जिनकी शिक्षाओं से व्यावहारिक जगत् को कोई लाभ नहीं हो सकता था। यही कारण था कि अन्तिम समय में अपने सदाचार के प्रति लोगों की यथेष्ट श्रद्धा न देखकर उनके चेहरे पर दुःख की झलक थी।

गौतम बुद्ध ने संसार को निर्वाण का जो मार्ग दिखाया था वह चाहे नया हो, चाहे पुराना, किन्तु उन्होंने स्वयं इस विषय में कहा है—मैंने कोई नया मार्ग नहीं चलाया, मेरा मार्ग तो सनातन और पुरातन है, प्राचीन बौद्ध इसी का अनुसरण करते थे। निस्सन्देह उनका ज्ञान बहुत कुछ प्राचीन शास्त्रों पर अवलम्बित भी था। कन्फ्यूसियस ने भी इस प्रकार प्राचीन महात्माओं के सिद्धान्तों का अनुसरण किया था। एक जगह उन्होंने लिखा है—मैंने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया है वह स्वयं मेरे अन्तःकरण की स्फूर्ति नहीं है। मुझे तो केवल प्राचीन सिद्धान्तों से प्रेम है और मैं विचारपूर्वक उन्हीं का अध्ययन करना चाहता हूँ। कहते हैं कि कन्फ्यूसियस ने केवल एक पुस्तक अपनी आयु के अन्तिम वर्ष में बनाई थी। उसमें उनके सदाचारिक, सामाजिक और धार्मिक सिद्धान्तों का सार सङ्कलित है। जिस प्रकार गौतम बुद्ध के देहावसान के बाद उनके शिष्यों ने उनके वचनों को कई पुस्तकों के रूप में सङ्ग्रह किया था उसी प्रकार कन्फ्यूसियस के शिष्यों ने भी बहुत सी पुस्तकें बनाई हैं जिनमें उन्होंने अपने गुरु के वार्तालापों का उल्लेख किया है।

इतना होने पर भी बुद्ध और कन्फ्यूसियस में एक बड़ा अन्तर है। वह यह कि बुद्ध भगवान् को हम बौद्ध-मत का प्रवर्तक मानते हैं, किन्तु कन्फ्यूसियस को हम किसी नवीन मत का प्रवर्तक नहीं कह सकते। बौद्ध-मत एक स्वतन्त्र मत है, इसमें कोई सन्देह नहीं कर सकता। उन्होंने जीवन पर एक बिलकुल ही नये ढङ्ग से विचार किया है, उन्होंने हिन्दू-धर्म के कई मौलिक सिद्धान्तों का खण्डन तथा बहुत सी प्रथाओं का विरोध भी किया है। किन्तु कन्फ्यूसियस में यह बात नहीं थी। उन्होंने मनुष्य को निर्वाण का कोई नया मार्ग नहीं सुझाया है। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने जिन नैतिक और सदाचार-सम्बन्धी नियमों का प्रतिपादन किया है वे बहुत ही उच्च कोटि के हैं, यहाँ तक कि वे स्वयं बुद्ध, अरस्तू, मूसा, ईसा, मुहम्मद, अफ़लातून आदि किसी भी आचार्य के नियमों से भले प्रकार टक्कर ले सकते हैं। इतना होने पर भी उनसे मनुष्य-जीवन के सफल होने की आशा नहीं होती। अतएव हम उन्हें किसी धर्मविशेष का आचार्य नहीं मान सकते।

हाँ, कन्फ्यूसियस में एक विशेषता है, जो बुद्ध भगवान् की शिक्षाओं में नहीं पाई जाती। उन्होंने समाज के अन्तर्गत परिवारों का परस्पर सम्बन्ध, मनुष्य-मनुष्य के बीच प्रेम-व्यवहार, पिता-पुत्र के बीच आदर्श वात्सल्य-प्रेम, शासकों के कर्त्तव्य, शासितों के अधिकार, आदर्श शासक की पहचान आदि विषयों की अच्छी चर्चा की है। वास्तव में इन्हीं के सुधार पर उनका विशेष ज़ोर था। सामाजिक और राजनैतिक विषयों से उन्हें बड़ा प्रेम था।

गौतम बुद्ध ने सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों पर बहुत कम विचार प्रकट किये हैं, शायद वे इनको अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझते थे। एक बार अजातशत्रु ने उनसे पूछा था—महाराज, मगध की शाही सेनायें वज्जन लोगों को मटियामेट करने पर तुली हुई हैं, ऐसी अवस्था में वज्जन लोगों का क्या कर्त्तव्य है? उसके उत्तर में बुद्ध भगवान् ने कहा था—जब तक वज्जन लोगों में परस्पर प्रेम है, वे मिलजुल कर काम करते हैं, वे कोई नई बात नहीं उठाते और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न किसी प्राचीन संस्था की अवहेलना ही करते हैं, उनकी अपने पूर्वजों पर श्रद्धा, विश्वास और भक्ति है, उनकी आज्ञा पालने में तत्पर हैं, तब तक विश्वास रक्खो, उनका कोई बाल-बाँका नहीं कर सकता। वे उत्तरोत्तर उन्नति करते जायँगे।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि गौतम बुद्ध का आध्यात्मिक विषयों की ओर अधिक ध्यान था और कन्फ्यूसियस का आधिभौतिक तथ्यों की ओर। किन्तु उनमें से कोई दूसरे विषय की अवहेलना नहीं करना चाहता था। कन्फ्यूसियस ने आधिभौतिक जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित साधन बतलाये हैं—(१) संसार की वस्तुओं का यथार्थ निरीक्षण; (२) उनसे ज्ञान-प्राप्ति; (३) विचारों तथा कार्यों में सत्यशीलता; (४) अन्तःकरण की विशुद्धता; (५) आत्मा का विकास; (६) परिवार का संरक्षण; (७) शासन का संगठन।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कन्फ्यूसियस ने स्वयं इन सिद्धान्तों को अपने जीवन में प्रत्यक्ष करना चाहा था। अपने नैतिक जीवन के विषय में उन्होंने एक स्थान में लिखा है—मनुष्य के नैतिक जीवन में चार बातें मुख्य हैं, किन्तु मुझे दुःख है कि मैं इनमें से एक को भी नहीं पूर्ण कर सका हूँ। मनुष्य को अपने पिता की उसी प्रकार सेवा करना चाहिए जिस प्रकार वह अपने पुत्र से अपनी सेवा कराना चाहता है, किन्तु मैं इस बात में सफल नहीं हो सका। मनुष्य को अपने सम्राट् की उसी प्रकार सेवा करना चाहिए जिस प्रकार वह अपने अधीन किसी मन्त्री से अपनी सेवा कराना चाहता है। यह भी मुझ से नहीं हो सका। मनुष्य को अपने बड़े भाई के प्रति उसी तरह का व्यवहार करना चाहिए जिस प्रकार वह अपने छोटे भाई से अपने प्रति व्यवहार कराना चाहता है। यह भी मैं नहीं कर सका। मनुष्य को पहले अपनी ओर से मित्रों के प्रति ऐसा व्यवहार करना चाहिए जैसा वह उन से अपने प्रति व्यवहार कराना चाहता है। दुःख है कि मैं इसमें भी समर्थ नहीं हुआ।

चीन और भारत दोनों में समाज की नींव परिवार पर स्थापित की गई है। समाज वास्तव में एक बृहत् परिवार है। जिस देश में परिवार-सङ्गठन उत्तम है उस देश में समाज-सङ्गठन उत्तम होना ही चाहिए। इसी लिए दोनों देशों के प्राचीन ऋषियों ने पहले परिवार-सङ्गठन की आवश्यकता अनुभव की थी। संस्कृत में तो 'पिता स्वर्ग, पिता धर्म, पिता कर्म'—का सिद्धान्त एक साधारण उक्ति हो गई है। इससे मालूम होता है कि हिन्दुओं में पिता की आज्ञाओं को श्रद्धापूर्वक शिरोधार्य करने का भाव अत्यधिक प्रबल है। बुद्ध ने धम्मपद में लिखा है—जो कोई माता की सेवा करता है वह धन्य है, पिता की जो सेवा करता है वह धन्य है, ब्राह्मण की जो सेवा करता है वह भी धन्य है। पराभव-सूत्र में उन्होंने लिखा है कि जो व्यक्ति योग्य होने पर भी अपने माता-पिता का भरण-पोषण नहीं करता उसका पतन अनिवार्य है। दीर्घनिकाय में बुद्ध भगवान् ने पाँच प्रकार से पिता की सेवा करने का आदेश दिया है—उनका भरण-पोषण करे, उनका काम सँभाले, परिवार का भार उठाये, उनकी सम्पत्ति का भोग करे और मृत्यु के बाद उनका श्राद्ध करे। कन्फ्यूसियस की शिक्षाओं में भी यही भाव विद्यमान है। उन्होंने एक जगह लिखा है कि पुत्र तीन प्रकार से पिता की सेवा कर सकता है। एक तो यह कि जिससे पिता का यश बढ़े और दूसरा वह जिससे उनको अपयश न लगे और सबसे निकृष्ट सेवा यह कि उनका भरण-पोषण कर सके। उनका विचार था कि अधिकतर निकृष्ट प्रकार की सेवा को ही आज-कल लोग परम सेवा मान लेते हैं। कुत्ते-बिल्ली और हाथी-घोड़े भी तो अपने आश्रितों का भरण-पोषण करते हैं। क्या उनमें कोई आदर का भाव होता है। क्या आज-कल हमारी पितृ-सेवा में इससे कोई अधिक उच्च भाव काम करता है? वात्सल्य-प्रेम तो स्वर्गीय वस्तु है, इसके बिना संसार की शोभा नहीं, इसके बिना मनुष्य अपने ध्येय में सफल नहीं हो सकता? यदि यह पूछा जाय कि ईश्वर ने इस पृथ्वी पर अथवा समस्त ब्रह्माण्ड में कौन सा प्राणी सबसे श्रेष्ठ बनाया है तो कन्फ्यूसियस का कहना है कि मैं एक-दम कह दूँगा कि वह प्राणी मनुष्य है और यदि यह पूछा जाय कि मनुष्य के कार्यों में से कौन सा कार्य सर्वोत्तम है तो मैं कहूँगा पितृ-सेवा और पितृ-प्रेम।

सारांश यह कि कन्फ्यूसियस ने पारिवारिक एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक सम्बन्धों पर सबसे अधिक ज़ोर दिया है। पिता-पुत्र-सम्बन्ध में चीनी और भारतीय आदर्शों में जो समानता है वही समानता पति-पत्नी-सम्बन्धी आदर्शों में भी पाई जाती है। उदाहरण के लिए चीन में यह प्रथा है कि लड़कियों के विवाहोत्सव पर माताएँ अपनी कन्याओं को मकान की देहरी पर छोड़ने जाती हैं और बिदा होते समय उन्हें यह उपदेश देती हैं—देखो बेटी, तुम अपने घर जा रही हो, तुम्हें वहाँ बहुत सँभल कर रहना चाहिए, कभी किसी का निरादर न करना। भारतीय आदर्श से इसकी तुलना करना व्यर्थ है। यह भाव भी चीनियों में कन्फ्यूसियस का जमाया हुआ है।

कन्फ्यूसियस का सामाजिक आदर्श भी बहुत ऊँचा है। उनका मुख्य सिद्धान्त यह है कि मैं चाहता हूँ कि मैं मनुष्यों के साथ वैसा व्यवहार न करूँ जैसा मैं चाहता हूँ कि वे मेरे साथ न करें। बस, इसी के आधार पर उनके सदाचार का निर्माण हुआ है। ईसामसीह ने भी कई शताब्दी बाद इस सिद्धान्त का प्रचार किया था। एक बार किसी ने कन्फ्यूसियस से पूछा—क्या कोई एक ऐसा शब्द नहीं कि उसी एक शब्द में मनुष्य के नैतिक जीवन के मौलिक नियमों का समावेश हो जाय। उस समय कन्फ्यूसियस ने उत्तर में कहा था—क्यों नहीं, आत्म-दर्शिता ऐसा शब्द है। इसका यह अर्थ है कि सबको अपने समान समझो अर्थात् जिस प्रकार का व्यवहार तुम दूसरों से नहीं करना चाहते हो उस प्रकार का व्यवहार दूसरों के साथ मत करो। अतएव यह कहा जा सकता है कि कन्फ्यूसियस के सदाचार का सार है आत्मदर्शिता। कन्फ्यूसियस ने यह भी कहा है कि केवल एक इसी कसौटी से मनुष्य का मूल्य लगाया जा सकता है।

यद्यपि गौतम बुद्ध ने आध्यात्मिकता को मुख्य रक्खा है, तथापि उन्होंने कभी सदाचार की अवहेलना नहीं की, बरन उन्होंने सदाचार को इसका एक-मात्र साधन बताया है। उन्होंने सदाचार के आठ नियम बताये हैं—(१) उत्तम विचार (जो मिथ्या-विश्वास और भ्रम-पूर्ण से न हो), (२) उत्तम अभिलाषा (जो बुद्धिमान् और विशाल हृदयवाले मनुष्य के योग्य हो), (३) उत्तम भाषा (नम्र, सच्ची तथा स्पष्ट); (४) उत्तम व्यवहार (शान्तिमय, सच्चा और शुद्ध); (५) उत्तम जीवन-निर्वाह (जिससे किसी सजीव प्राणी को कष्ट न पहुँचे); (६) उत्तम साधना (जिससे इन्द्रियाँ और मन वश में हों); (७) उत्तम अध्यवसाय (जिससे अन्तःकरण शुद्ध और बुद्धि निर्मल हो); (८) उत्तम ध्यान या समाधि (जिसमें जीवन के तथ्यों पर विचार होता रहे)।

गौतम बुद्ध का कहना है कि इन्हीं नियमों का पालन करने से गृहस्थ और संन्यासी दोनों ही अपने जीवन को सफल कर सकते हैं। क्योंकि इनमें सामाजिक उन्नति और आत्मोन्नति दोनों का समावेश हो गया है। बौद्ध-धर्म के अनुसार जीवन का अन्तिम लक्ष्य अर्हत बन जाना है। इसके लिए मनुष्य को दस बन्धनों से मुक्त होना पड़ता है। वे हैं—१ अहम्मन्यता, २ संशय, ३ शुभ कार्यों का बल, ४ काम, ५ ईर्ष्या-द्वेष, ६ जीवन-मोह, ७ पुनर्जन्म की आशा, ८ घमंड, ९ आत्म-गौरव, और १० अज्ञान। कन्फ्यूसियस ने जीवन का ध्येय दिव्य जीवन प्राप्त करना ठहराया है। उसके लिए मनुष्य को इच्छाओं पर संयम प्राप्त करना चाहिए तथा क्षमा, साहस, समता, भलाई, सचाई, नम्रता, उच्चाभिलाषा और बुद्धिमत्ता का अभ्यास करना चाहिए। इन आदर्शों में अन्तर यही है कि वे एक दूसरे के विरोधी नहीं।

यही कारण है कि यद्यपि कन्फ्यूसियस का जन्म भारतवर्ष के बाहर बहुत दूर चीन-देश में हुआ था, तथापि उनके उपदेशों में भारतवासियों को भारतीयपन दिखाई देता है और यही कारण है कि बौद्ध-धर्म थोड़े ही दिनों में चीन, जापान, कोरिया, तिब्बत, स्याम, ब्रह्मा आदि देशों में फैल गया था। इसमें सन्देह नहीं कि एशियाई राष्ट्रों के बीच मानसिक एकता स्थापित करने में बौद्ध-धर्म ने जितना काम किया है उतना और किसी ने नहीं किया है। बौद्ध-धर्म का सार है अहिंसा। इसी एक भाव ने एक समय एशिया के राष्ट्रों में एक नवीन जीवन फूँक दिया था और उनको एकता के सूत्र में संग्रथित कर दिया था। राजनैतिक विभिन्नता होने पर भी उनका हृदय एक हो गया था।

दी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

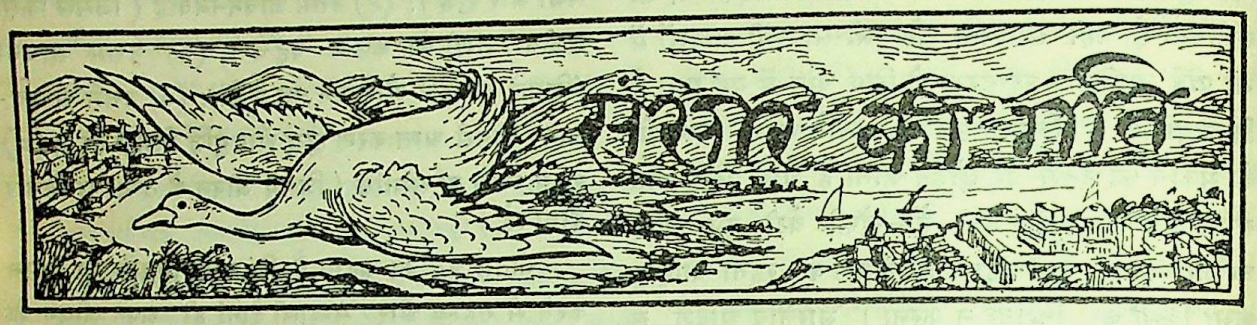

आयर्लैंड की वर्तमान अवस्था।

आयर्लैंड की योरप के प्राचीन सभ्य देशों में गणना है। जिस समय अधिकांश योरप तथा सम्पूर्ण ग्रेट ब्रिटेन ईसाई-धर्म के प्रकाश से रहित था उस समय आयर्लैंड उसके प्रकाश से आलोकित था। यही नहीं, वहाँ के उपदेशक ईसाई-धर्म का प्रचार करने के लिए ग्रेट ब्रिटेन और योरप के भिन्न भिन्न देशों में आया-जाया करते थे। वहाँ पठन-पाठन का भी खूब प्रचार था। दूर दूर देशों से लोग आयर्लैंड में अध्ययन करने आते थे। परन्तु कालान्तर में उसकी पूर्व जैसी दशा न रह सकी।

पहले आयर्लैंड अपने स्वदेशी राजाओं-द्वारा शासित होता था। वह कई स्वाधीन राज्यों में विभक्त था, जिनके शासक आपस में प्रायः लड़ते-भिड़ते रहते थे। सारा देश एक राजा के अधिकार में न था। अन्त में इसी आपसी कलह के कारण आयर्लैंड के एक राजा ने इँग्लैंड के राजा द्वितीय हेनरी से सहायता माँगी। यहीं से आयर्लैंड की पराधीनता का युग प्रारम्भ हुआ। सहायता देने के बहाने हेनरी ने आयर्लैंड पर अधिकार कर लिया। उसके समय से अब तक इस प्राचीन सभ्य द्वीप पर अँगरेज़ों का ही शासन रहा है। तब से आज तक का उसका इतिहास पराधीनता का ही इतिहास है। परन्तु इस दीर्घ काल के अपने शासन में इँग्लैंड आयर्लैंड को इँग्लैंड न बना सका। आयर्लैंड अपनी स्वाधीनता की भावना का त्याग नहीं कर सका। वह आयर्लैंड ही बना रहा।

आयर्लैंड के स्वर्गीय देशभक्त आर्थर ग्रीफ़िथ ने सन् १९०५ में 'हंगरी का पुनर्जन्म' नामक एक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक का आयर्लैंड में अत्यधिक प्रचार हुआ। इस पुस्तक ने वहाँ के सीनफ़ीन-दल की नीति के प्रसार का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसी नीति की बदौलत आयर्लैंड अपनी वर्तमान स्वाधीन स्थिति प्राप्त करने में समर्थ हुआ है। सीनफ़ीन-दल के संस्थापक ग्रीफ़िथ और उसके साथी अपने देश के जातीय दल की नीति से असन्तुष्ट थे। जातीय दल की भिक्षुक-नीति उन्हें पसन्द नहीं थी। यह दल अँगरेज़ी पार्लियामेंट में अपने दल के सदस्यों को भेजने के लिए नौकरी का प्रलोभन देकर वोट प्राप्त किया करता था और अपना कार्य-क्रम स्थायी बनाये रखने के लिए अमरीका के चन्दे के धन पर आश्रित था। इसके विपरीत ग्रीफ़िथ की नीति काम करने की नीति थी। उसके आर्थिक विचारों का प्रभाव भी लोगों पर अच्छा पड़ा।

पहले आयर्लैंड की अपनी अलग पार्लियामेंट थी। उसको सन्तुष्ट रखने के लिए ही अँगरेज़-सरकार ने इसकी रचना की थी। परन्तु विद्रोह के कारण वह सन् १७९८ में तोड़ दी गई। तब से १९१४ तक उसका शासन अँगरेज़ी पार्लियामेंट के द्वारा ही होता रहा। पर जनता में असन्तोष ज्यों का त्यों बना रहा, उसने अँगरेज़ी-शासन को कभी नहीं स्वीकार किया। यह दशा देख कर जब सरकार ने जनता को सन्तुष्ट करने के लिए होमरूल एक्ट बनाया और फिर उसे तहा कर अलग रख दिया तब जनता का विश्वास देशी तथा अँगरेज़ी दोनों प्रकार के राजनैतिक दलों से उठ गया।

इसी बीच में महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। अतएव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयर्लैंड की मनोवृत्ति में भी आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। युद्ध-काल में होमरूल एक्ट को न जारी करने की बात पर वहाँ का जातीय दल भी राज़ी हो गया था। उसके नेता मिस्टर जान रेडमंड तन-मन से सरकार का साथ देने को तैयार हो गये। आयर्लैंड ने धन-जन से पूरी सहायता दी। परन्तु इस अवसर पर जो लोग सेना में भर्ती हुए थे उनमें से कुछ जान रेडमंड से पृथक् हो गये। इन्होंने अपने को 'आयरिश वालंटियर' के नाम से प्रसिद्ध किया। ये सब प्रजातन्त्रवादी हो गये थे। इन्होंने सन् १६१६ के ईस्टर में विद्रोह कर दिया।

डेवेरिन के सदस्य।

इस विद्रोह का दमन करने में सरकार ने बड़ी उग्र मूर्ति धारण की। उसके असफल होने पर उसके नेता पकड़ लिये गये। उनमें से एक नेता को प्रतिदिन गोली मारी जाती थी। विद्रोहियों को भयभीत करने के लिए यह क्रूर-कर्म १६ दिन तक जारी रहा। पर इसका उलटा प्रभाव पड़ा। लोगों की सहानुभूति विद्रोहियों से हो गई। फिर क्या था। अस्त्र-शस्त्र के सङ्ग्रह का काम गुप्त रीति से धूम के साथ होने लगा। यद्यपि सरकार ने सन् १६१८ में सीनफ़ीन-दल तथा 'वालंटियर' सेना के सभी नेताओं को गिरिफ़्तार कर लिया था, तो भी उसका कुछ प्रभाव न पड़ा। उलटा यह हुआ कि इस साल के पार्लियामेंट के चुनाव में आयर्लैंड ने अपने सदस्यों में से सीनफ़ीन-दल-वालों को ही अधिक संख्या में चुना। इस दल के ७५ सदस्य चुने गये और जान रेडमंड के दल के केवल छः ही सदस्य चुने जा सके। सीनफ़ीन-दल के इन मनोनीत सदस्यों ने जनवरी सन् १६१६ में डब्लिन में ही अपनी डेल या पार्लियामेंट की बैठक की। ये लोग अँगरेज़ी पार्लियामेंट में शामिल होने को लन्दन नहीं आये। यही नहीं, इन्होंने शासन-विभागों की भी रचना कर डाली। इस प्रकार आयर्लैंड के स्वाधीनता प्राप्त करने का यह पहला उपक्रम हुआ।

डेल या सीनफ़ीन पार्लियामेंट की आज्ञा से उसकी अधीनस्थ देश की नव-निर्मित सभी शासन-संस्थाओं ने पुरानी स्थानिक शासन-व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया। यह काम डेल ने छः ही महीने के भीतर कर दिखाया। इसके सिवा अँगरेज़ी कचहरियों का बायकाट भी साल-भर तक दृढ़ता के साथ जारी रहा। उनके स्थान पर जो सीनफ़ीन-कचहरियाँ खोली गई थीं उन्होंने देश में न्याय और व्यवस्था क़ायम रखने में कमाल कर दिखाया।

सन् १६२० के मध्य तक सीनफ़ीन-दल आयर्लैंड में इतना अधिक प्रबल पड़ गया कि वहाँ अँगरेज़ी सर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार का सारा मुल्की काम-काज ही बन्द हो गया। जो सरकारी बारकें जला देने से बच गई थीं, रायल आयरिश कांस्टेबुलरी के जवान उन्हीं में छिपे पड़े रहते थे। यह हाल देख कर अँगरेज़-सरकार ने अपनी सत्ता के रक्षणार्थ नई योजना की। क्रम क्रम से वहाँ 'ब्लैक एंड टांस' तथा 'अक्ज़िलिअरी रायल आयरिश कांस्टेबुलरी' दलों के जवान आये। इन्होंने सीनफ़ीनों को तहस-नहस करना शुरू किया। चारों ओर लूट-फूँक और मारकाट मच गई। 'अक्ज़िलिअरी' दल के जवानों ने तो आकर लूट मार की ऐसी धूम मचा दी जिससे अँगरेज़ी सरकार की रही-सही प्रतिष्ठा भी जाती रही।

घूँसे का जवाब लात से देने से अँगरेज़-सरकार ने आयर्लैंड में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि उसके लिए केवल दो ही उपाय शेष रह गये। या तो वह एक विशाल सेना भेज कर आयर्लैंड को सीनफ़ीन-दल के हाथ से विजय करे, क्योंकि वहाँ से अँगरेज़ी सत्ता बिलकुल उठ गई थी या उनसे सन्धि करके अपना पिण्ड छुड़ाये। उसने दूसरे उपाय को ही ग्रहण करना श्रेयस्कर समझा। सरकार ने विद्रोही नेता मिस्टर डी वेलरा से दूत-द्वारा बातचीत शुरू की और सन् १९२१ की ११ वीं जुलाई को क्षणिक सन्धि हो गई। इसके बाद सन्धि की बात-चीत चली। तत्कालीन प्रधान मन्त्री मिस्टर लायड जार्ज और सीनफ़ीन-नेता मिस्टर डी वेलरा के बीच पत्र तथा तार-द्वारा कुछ समय तक द्वन्द्व होता रहा। अन्त में सन्धि-सभा ने १२ वीं अक्टोबर को अपना कार्य प्रारम्भ किया और ६ ठी दिसम्बर को सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये। इस प्रकार सदियों की यह भयङ्कर समस्या हल होकर अन्त में आयर्लैंड को उसकी स्वाधीनता प्राप्त हुई।

परन्तु आयर्लैंड की नई सरकार के सामने अभी अल्स्टर की समस्या ज्यों की त्यों बनी है। अल्स्टर का प्रश्न आज का नहीं है। आयर्लैंड के स्वाधीन होने में इसका प्रश्न सदा से बाधक रहा है। अभी हाल में जब मिस्टर ऐस्क्वीथ के मन्त्रिमण्डल ने आयर्लैंड का मसला हल करने के लिए होमरूल एक्ट पास किया था तब भी अलल्स्टरवालों ने उसका बड़ा विरोध किया था। यही नहीं, आयर्लैंड के स्वराज्य का विरोध करने के लिए उसके तत्कालीन नेता सर एडवर्ड कार्सन के नेतृत्व में उनका एक अस्त्र-शस्त्र से सज्जित सेना-दल भी तैयार हो गया था। परन्तु योरपीय युद्ध के प्रारम्भ हो जाने से वह मामला जहाँ का तहाँ रह गया। क्योंकि होमरूल एक्ट के कार्य में परिणत न किये जाने से आयर्लैंड के उत्तरी और दक्षिणी दोनों दलों को अपनी अपनी तलवारें म्यान में ही कर लेनी पड़ी थीं। दक्षिणी आयर्लैंड का दल भी अल्सटरवालों का सामना करने के लिए रण-सज्जा से सज्जित हो रहा था। और मज़ा यह था कि अँगरेज़ी सरकार यह सब कुछ चुपचाप बैठी देखती थी।

अल्स्टर और दक्षिण-आयर्लैंड की उपर्युक्त समस्या दक्षिण में आयरिश फ्री स्टेट और अल्स्टर में नई पार्लियामेंट के स्थापन से भी हल नहीं हुई। इन दोनों का मनोमालिन्य जैसा का तैसा आज भी बना हुआ है। फ्री स्टेटवालों का कहना है कि भौगोलिक और आर्थिक दृष्टि से आयर्लैंड एक ही देश है, वह दो देशों में विभक्त नहीं है। हम जातीय एकता चाहते हैं और उस एकता को अल्स्टर से समझौता करके क़ायम रखना चाहते हैं। हम उसे जैसा वह चाहे पूर्ण राजनैतिक और धार्मिक स्वतन्त्रता देने को तैयार हैं। परन्तु उसे भी तद्वत् प्रतिज्ञा-बद्ध होना और आर्थिक एवं राजनैतिक एकता स्वीकार करना पड़ेगी। पर अल्स्टरवाले फ्री स्टेटवालों के सदृश राजनैतिक भावना नहीं रखते। वे सम्राट् के भक्त होने के कारण उन लोगों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहते जो 'यूनियन जैक' के स्थान में आयर्लैंड का 'तिरङ्गा झण्डा' उड़ाते हैं और आयर्लैंड को अँगरेज़-विरोधी स्वाधीन प्रजातन्त्र बनाना चाहते हैं। उनका कहना है कि हम साम्राज्य के भक्त हैं। हम प्रोटेस्टेन्ट-सम्प्रदाय के ईसाई हैं और अपने ऊपर रोमन कैथलिक सम्प्रदाय प्रधान फ्री स्टेट को प्रबल होने देना नहीं चाहते। हमें अलग ही रहना पसन्द है। वे हमारी सम्पत्ति के लोभ से हमें अपने में मिलाना चाहते हैं। परन्तु हम इसके लिए तैयार नहीं हैं। हम अपने सिद्धान्त पर दृढ़ हैं और उसकी रक्षा के लिए सब तरह तैयार भी हैं।

अल्स्टर और फ्री स्टेट की यह कठिन समस्या है। आयर्लैंड की ३२ काउन्टियों में इस समय २६ काउन्टियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्री स्टेट के अन्तर्गत हैं। इन्हें कनाडा के सदृश शासनाधिकार मिल गया है। शेष छः काउन्टियों को होमरूल दिया गया है। इनकी अपनी अलग पार्लियामेंट है, जिसके हाथ में इनका शासन-भार है।

डी-वेलरा।

आयरिश फ्री स्टेट का शासन-कार्य उसकी नव-निर्मित डेल-ईरियन नामक लोक-सभा की सम्मति से होता है। मिस्टर डि वेलरा और उसके अनुयायी प्रजातन्त्रवादी दल ने इस सभा का बहिष्कार किया है। अतएव इस समय इसमें सन्धि के पक्षपाती अर्थात् स्वर्गीय मिस्टर ग्रीफ़िथ के अनुयायियों की ही प्रधानता है। इन लोगों के सन्धि के स्वीकार कर लेने पर आयर्लैंड में जो गृह-युद्ध प्रारम्भ हुआ था उसमें यही लोग विजयी हुए और मिस्टर डी वेलरा का प्रजातन्त्रवादी दल हार गया। फलतः इन लोगों ने देश का शासन-भार ग्रहण किया।

डेल ईरियन के सभी प्रतिनिधि नवयुवक हैं, उनमें अधिकांश अभी तीस वर्ष के ही भीतर होंगे। शायद ही संसार में कोई ऐसी लोकसभा हो जिसमें बैठकर इतने नवयुवक अपने देश का शासन-कार्य सञ्चालन करते हों। इसके सिवा एक यह भी मज़ेदार बात है कि संसार के किसी भी व्यवस्थापक मण्डल के इतने व्यवस्थापकों ने जेल की हवा न खाई होगी जितने कि इस डेल के व्यवस्थापकों ने खाई है। इनमें से कुछ को तो ऐंग्लो-आयरिश झगड़े के समय में प्राणान्तक कष्ट तक झेलने पड़े हैं। ऐसे ही साहसी देश-भक्तों से फ्री स्टेट की राजसभा सङ्गठित है।

डेल में सरकारी दल के ५७ प्रतिनिधि हैं। इनमें एक स्त्री-प्रतिनिधि भी है। यह प्रसिद्ध देश-भक्त जनरल मिचल कालिंस की बहन है। कालिंस सन्धिवादी दल की सेना के प्रधान सेनापति थे। गृह-युद्ध के भयङ्कर अवसर पर प्रजातन्त्रवादियों ने इन पर अचानक आक्रमण कर इन्हें मार डाला था। सरकारी दल के बाद प्रजातन्त्रवादी दल का महत्त्व है। डेल के चुनाव के अवसर पर

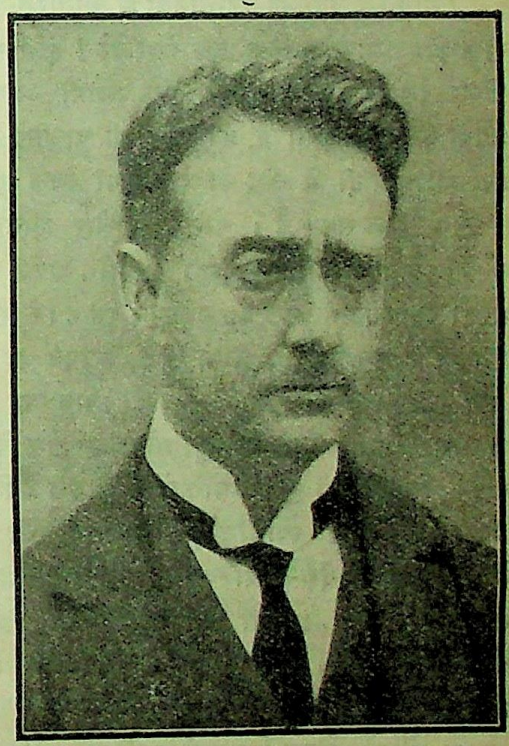

आयर्लैंड के एक प्रसिद्ध नेता।

इस दल के ४७ प्रतिनिधि चुने गये थे, पर इन लोगों ने डेल का बहिष्कार किया है। सरकारी दल के सिवा डेल के शेष प्रतिनिधि चार दलों में विभक्त हैं। इनमें स्वतन्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दल के १५, किसान-दल के १५, मज़दूर-दल के १४ और प्रजातन्त्रवादी दल के ५ प्रतिनिधि हैं। इस समय डेल की दल-बन्दी इसी प्रकार है। प्रजातन्त्रवादी प्रतिनिधियों को छोड़ कर ये सब प्रतिनिधि मिल कर डेल का सुचारु-रूप से सञ्चालन करते हैं।

डेल का कार्य-सञ्चालन बड़ी गम्भीरता से होता है। परन्तु जब कोई महत्त्व-पूर्ण विषय उपस्थित होता है और वाद-विवाद होने लगता है तब गरमा-गरमी भी हो जाती है। परन्तु डेल के योग्य स्पीकर की सावधानी से कोई असङ्गत बात नहीं होने पाती और वाद-विवाद क़ायदे के साथ होकर समाप्त हो जाता है। यद्यपि स्पीकर नव-युवक और अनुभवहीन हैं, तो भी उन्होंने सभा के सञ्चालन में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। प्रतिनिधि लोग गैलिक तथा अँगरेज़ी दोनों भाषाओं में भाषण करते हैं। सात सौ वर्षों की पराधीनता में आयरिश लोग अपनी राष्ट्रीय भाषा गेलिक तक गँवा बैठे! इस समय वह केवल देश के सुदूर दक्षिणी तथा पश्चिमी भागों में ही अपना अस्तित्व रखती है, फ्री स्टेट की चालीस लाख के ऊपर की आबादी में वहाँ की देश-भाषा केवल छः ही लाख लोग बोल सकते हैं। परन्तु इस ओर लोगों का ध्यान पिछले वर्षों में बहुत रहा है, लोग अपनी राष्ट्र-भाषा को पुनरुज्जीवित करने को सचेष्ट हो रहे हैं। और अब तो देश का शासन उन्हीं के हाथों में है, अतएव वह दिन दूर नहीं है जब गैलिक अपना पहले का स्थान फिर प्राप्त कर ले। शिक्षा-मन्त्री अध्यापक डाक्टर ओयन मैकनील विद्वान् ही नहीं हैं, किन्तु उन्हीं मुख्य व्यक्तियों में से एक हैं जिनके आत्मबल से आयर्लैंड स्वाधीन होने में समर्थ हुआ है। इनके निरीक्षण में देश-भाषा के समुन्नत होने की पूर्ण सम्भावना है। डेल के सभी प्रतिनिधियों के गैलिक न जानने के कारण सारा कार्य अभी अँगरेज़ी-भाषा में ही होता है।

सभा में जो विषय विचारार्थ उपस्थित होते हैं वे प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण होते हैं। उनका किसी न किसी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन से ही सम्बन्ध रहता है। बात यह है कि विनाश और संहार के उपरान्त अब जिस नये युग का वहाँ आविर्भाव हुआ है उससे देश में नये सिरे से सुधार का कार्य प्रारम्भ हो गया है। शासन अपने हाथ में आ जाने से देशवासी स्वदेश की उन्नति अपनी भावना के अनुसार करना चाहते हैं। अतएव डेल में भाँति भाँति की नई नई योजनायें उपस्थित की जाती हैं और उन्हें कार्य में परिणत करने के पहले वाद-विवाद के द्वारा उन पर ख़ूब विचार किया जाता है। इस कारण डेल का कार्य-सञ्चालन मनोरञ्जक और उत्साहजनक लगता है।

परन्तु फ्री स्टेट के सामने बड़ी कठिन आर्थिक समस्या उपस्थित है। हाल के गृह-युद्ध में अनेक बहुमूल्य देश-भक्तों के मारे जाने के सिवा पाँच करोड़ पौंड की सम्पत्ति भी नष्ट हो गई है। तो भी अर्थ-मन्त्री मिस्टर अर्नेस्ट ग्लाइथ अपने विषय के योग्यतम व्यक्ति हैं। ये देश की आर्थिक कठिनाई हल करने के काम में जुटे हुए हैं। यद्यपि प्रजातन्त्रवादी दल यह कह कर कि जब डेल में हमारा बहुमत होगा तब हम वर्तमान सरकार के ऋण को नहीं स्वीकार करेंगे कठिनाई डाल रहा है, तो भी सरकार ऐसी बाधाओं की उपेक्षा करती हुई अपने उद्योग में तत्पर है। अर्थ की कठिनाई के ही कारण डेल का अपना भवन नहीं है और न अपनी मर्यादा के अनुरूप वह नूतन गृह निर्माण कर सकती है और न कोई मोल ही ले सकती है। उसके अधिवेशन जिस भवन में इस समय होते हैं वह रायल डब्लिन सोसायटी का लीस्टर भवन है। इसमें प्रतिनिधियों के बैठने के लिए स्थान की कमी है। इसके सिवा यह साधारण इमारत उसके उपयुक्त भी नहीं है। परन्तु सरकार का ध्यान अभी ऐसी बातों की ओर उतना नहीं है जितना कि देश की पुनः रचना की ओर।

रमाशङ्कर उपाध्याय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

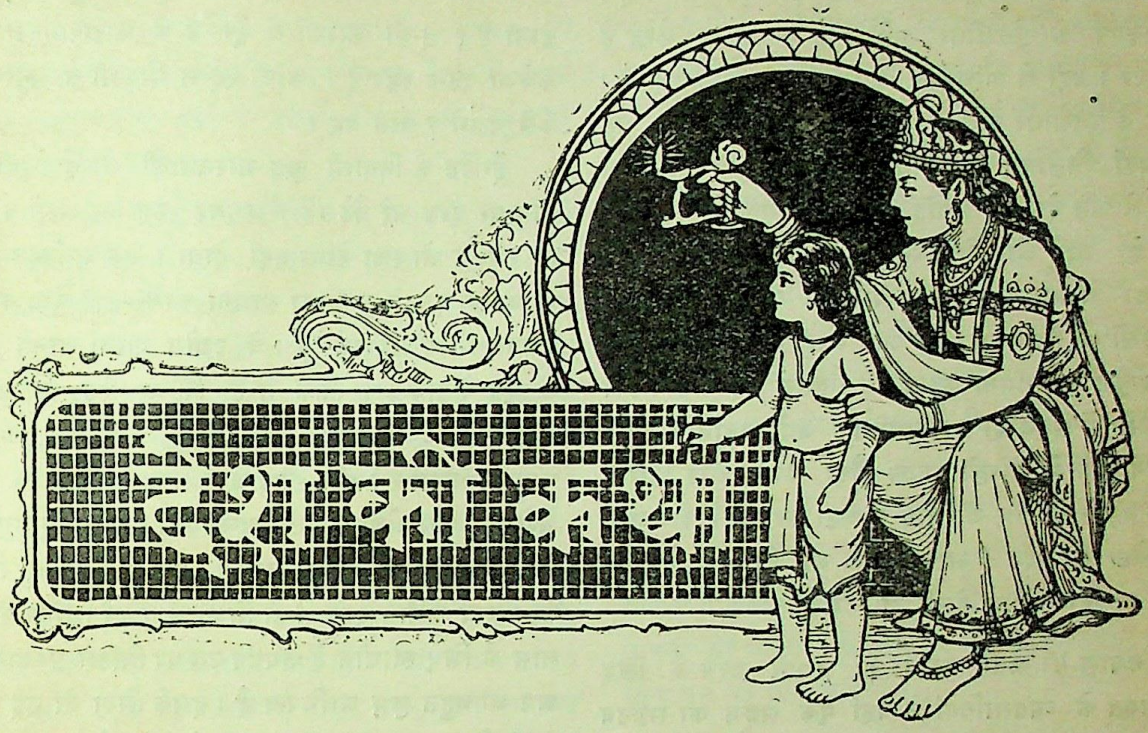

१—कपास की पैदावार और उसका ख़र्च।

अँगरेज़ों का देश क्यों इतना समृद्ध और क्यों इतना शक्तिशाली है? केवल व्यापार और उद्योग-धन्धों की बदौलत। उसकी राजधानी लन्दन लक्ष्मी का लीलाक्षेत्र है। शायद ही कोई ऐसा देश होगा जिसने लन्दन में कर्ज़ न लिया हो, जो वहाँ के पूँजी-पतियों का ऋणी न हो। ग्रेट-ब्रिटेन भारतवर्ष के एक छोटे से सूबे से भी छोटा है। जोतने-बोने लायक़ ज़मीन वहाँ बहुत ही थोड़ी है। उसकी उपज से वहाँवालों की उदरपूर्ति नहीं हो सकती। यदि अन्य देशों से खाद्य-सामग्री वहाँ न पहुँचे तो फ़ाक़ेकशी की नौबत आ जाय और कुछ समय तक खाद्याभाव होने से हज़ारों नहीं, लाखों आदमी "राम-नाम सत्य" के शिकार हो जायँ। उस देश की समृद्धि का सबसे बड़ा ज़रिया उसके कल-कारख़ाने हैं। इन कल-कारख़ानों में अधिक-संख्या कपड़े के पुतलीघरों की है। अतएव कहना चाहिए कि उसकी अधिकांश समृद्धि का कारण कपड़े ही का व्यवसाय है। अनेक कारणों से इस व्यवसाय में कुछ शिथिलता आ गई है। इससे लाखों मज़दूर बेकार हो गये हैं; वे भूखों मर रहे हैं; उन्हें जीवित रखने के लिए वहाँ की गवर्नमेंट को करोड़ों रुपया, बतौर ख़ैरात के, उन्हें देना पड़ता है। इस समय इन मरभुखों की संख्या कोई १२ लाख है। हाँ, ये सब कपड़े ही के पुतलीघरों के मज़दूर नहीं, और और कारख़ानों के भी हैं। तथापि पहले प्रकार ही के बेकारों की संख्या अधिक है।

एक समय था जब भारत ही अपना बना हुआ कपड़ा विलायत भेजता था। परन्तु उसका यह व्यवसाय अनेक युक्तियों और क़ानूनी प्रतिबन्धों से नष्ट कर दिया गया। उन युक्तियों और उन प्रतिबन्धों के निर्देश की यहाँ पर ज़रूरत नहीं। अब तो विलायत ही के बने कपड़े से अधिकांश भारतवासियों का तन ढकता है। विलायती कपड़े के इस ख़र्च से भारत का करोड़ों रुपया वहाँ चला जाता है और उसकी समृद्धि को बढ़ाने और वहाँ के लाखों मज़दूरों की उदरपूर्ति करने का कारण होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलायत में लङ्काशायर नाम का एक प्रान्त है। वहीं कपड़े के पुतलीघर अधिक हैं। उसका केन्द्र है मैंचेस्टर। वहीं से अधिकतर कपड़ा भारत में आता है। कपड़े के पुतलीघर रुई ही की बदौलत चलते हैं। वह रुई वहाँ विलायत में होती नहीं। वह तो उसे अन्य देशों से प्राप्त होती है। यदि वह उसे न मिले तो कारख़ाने बन्द हो जायँ और विलायत में हाहाकार मच जाय। रुई का अभाव या उसकी आमदनी में कमी होते ही मरभुखों की संख्या वहाँ बढ़ जाय और गवर्नमेंट को बहुत बड़े सङ्कट का सामना करना पड़े। इससे यह बात पाठकों के ध्यान में सहज ही आजायगी कि क्यों वहाँवाले अपने अधीन देशों में अच्छी कपास पैदा करने और उसकी उपज बढ़ाने के लिए जी-जान से चेष्टा कर रहे हैं। उनकी यह चेष्टा इस देश (भारत) में भी हो रही है और दिन पर दिन अधिक होती जा रही है।

कपास की खेती बढ़ाने का उद्योग करने के लिए विलायत के व्यवसायियों ने वहाँ एक सङ्घ का सङ्गठन किया है। उसका नाम है—(British) Association. उस सङ्घ से सम्बन्ध रखनेवाले एक साहब का नाम है—डब्लू० एच० हिमबरी (Himbury). आपका कहना है कि विलायत के पुतलीघरों में हर साल ४० लाख गाँठें रुई की ख़र्च होती हैं। उनमें से, कुछ समय पूर्व तक, ३० लाख गाँठें अकेले अमेरिका के संयुक्त-राज्यों से उन्हें मिलती रही हैं। बाक़ी की १० लाख मिस्र, भारत तथा ब्रेज़ील आदि अन्य देशों से। अमेरिका में पहले जितनी रुई होती थी उससे उस देश का भी काम निकल जाता था और इँग्लेंड का भी। पर वहाँ भी कपड़े के पुतलीघरों की संख्या बढ़ गई है और बराबर बढ़ती जा रही है। नतीजा यह हुआ है कि सालाना कोई १ करोड़ ११ लाख गाँठों में से ६१ फ़ी सदी गाँठें वहीं ख़र्च हो जाती हैं। बाक़ी जो ३९ फ़ी सदी रह जाती हैं उनका चालान विदेशों को होता है। वे सब इँग्लेंड ही को तो मिल जाती नहीं; अन्य देशों को भी उनमें से बहुत कुछ मिलती हैं। एक बात और भी है। अमेरिका में कपास की पैदावार अब कम भी हो गई है। वहाँ एक कीड़ा पैदा हो गया है, जो कपास की फली को खा जाता है या उसे बरबाद कर देता है। इससे बहुत नुक़सान होता है। इन्हीं कारणों से इँग्लेंड के कारख़ानेदारों का कलेजा दहल रहा है। काफ़ी रुई न मिलेगी तो कारख़ाने कैसे चलेंगे? बात यह।

इँग्लेंड के निवासी कुछ भारतवासी तो हैं नहीं जो हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें और यह कह कर सन्तोष करें कि राम ने जो रचा होगा वही होगा। भय उपस्थित होने पर वे उसे टालने—उसका सामना करने—की चेष्टा करना अपना कर्तव्य समझते हैं। वे उद्योग करना जानते हैं। अतएव वे अब इस फ़िक्र में हैं कि जो देश इँग्लेंड के अधीन हैं उनमें कपास ख़ूब बोई जाय और अच्छी कपास—लम्बे रेशे की—बोई जाय। यह इसलिए कि उन्हें अमेरिका और ब्रेज़ील आदि अन्य देशों का मुँह न ताकना पड़े, जितनी रुई उन्हें दरकार हो सब उन्हें भारत, मिस्र तथा अन्य अधीन देशों से ही मिल जाया करे। मिस्र यद्यपि नाम के लिए स्वाधीन है तथापि उस पर ब्रिटिश-सरकार का अब भी बहुत कुछ आधिपत्य है। इसके सिवा जो रुई वहाँ होती है उसका अल्पांशही वहाँ ख़र्च होता है। अधिकांश बाहर ही जाता है। वह सब इँग्लेंड को मिलता है। मिस्र की कपास अच्छी भी होती है। इसी से वहाँ और सूडान में कपास की खेती की वृद्धि करने की कितनी ही योजनायें विलायतवालों ने कर रक्खी हैं।

अब रहा भारत, सो यहाँ भी विलायतवाले अनेक उपायों से कपास की खेती बढ़ा रहे हैं और चाहते हैं कि यहाँ लम्बे रेशे की कपास ख़ूब बोई जाय और वह सब उन्हीं को मिले। सरकार भी उनके इस उद्योग को सफल करने के साधन प्रस्तुत करती जाती है।

भारत में रुई की जो गाँठें बँधती हैं वे २½ मन की होती हैं। १९२२-२३ में यहाँ २ करोड़ १८ लाख एकड़ में कपास बोई गई थी। उससे जो कपास हुई उसकी, बिनौले निकाल देने पर, ५० लाख ७५ हज़ार गाँठें रुई की हुईं। उनमें से आधी रुई यहीं ख़र्च हो गई। वह यहीं के पुतलीघरों के काम आई। परन्तु यहाँ जो कपास होती है वह अधिकतर छोटे रेशे की होती है, जिसका ख़र्च विलायत में नहीं। लम्बे रेशे की रुई की यहाँ सिर्फ़ १४ लाख गाँठें होती हैं जिनमें से आधी यहीं खप जाती हैं। बाक़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की २ लाख गाँठों का चालान विदेश को होता है। उनमें से भी अधिक अंश जापान चला जाता है। जापान को तो छोटे रेशे की रुई का भी चालान बहुत होता है। इस तरह विलायत को यहाँ से उसके मतलब की बहुत ही कम रुई मिलती है।

अब चेष्टा यह हो रही है कि यहाँ, भारत में, लम्बे रेशे की रुई खूब पैदा की जाय। ऊपर जिस सङ्घ का उल्लेख हुआ है उसके प्रयत्न से पञ्जाब की गवर्नमेंट ने खानेवाल नामक जगह में ७,३०० एकड़ में अच्छी कपास की खेती कराना आरम्भ कर दिया है। सिन्ध में भी शायद कुछ कुछ ऐसा ही प्रबन्ध किया गया है या किया जानेवाला है। हर प्रान्त के कृषि-विभाग के अफ़सर भी कपास की खेती बढ़ाने और अच्छी कपास पैदा कराने के उद्योग में लगे हुए हैं। वे लोग इस बात की जाँच कर रहे हैं कि किस प्रकार के बिनौले से लम्बे रेशे की रुई हो सकती है और कहाँ कहाँ, कैसी ज़मीन में, किस तरह बोने और कैसी खाद डालने से, उसकी उपज बढ़ सकती है। एक क़ानून भी नया बन गया है। उसमें रुई में मेल करना अथवा अच्छे रेशे की रुई में बुरे रेशे की रुई मिलाना जुर्म क़रार दिया गया है। इसके सिवा इंडियन सेंट्रल काटन कमिटी नाम की एक संस्था की भी स्थापना हो गई है। उसके मेम्बरों में सरकारी अफ़सर भी हैं और ग़ैर सरकारी भारतवासी भी। रुई की जितनी गाँठें यहाँ ख़र्च होती हैं और जितनी विदेश को जाती हैं उन पर चार आना फ़ी गाँठ कर लगाया गया है। इस कर से जो रुपया वसूल होता है वह कपास की खेती की वृद्धि और अच्छी कपास पैदा करने की युक्तियाँ ढूँढ़ निकालने के काम में ख़र्च होता है। कुछ विद्वान् इन युक्तियों को ढूँढ़ निकालने के काम में लगा दिये गये हैं। उनके लिए एक गवेषणागार या रसायनशाला भी बन गई है।

सो विलायत के पुतलीघरों को अच्छी रुई की कमी न पड़े। इसलिए भारत में तरह तरह की योजनायें की जा रही हैं। होना ही चाहिए। विलायत की विशेष समृद्धि कपड़े के पुतलीघरों के जारी रहने और उनमें अधिक काम होने ही पर अवलम्बित है। उनमें जितना ही अधिक कपड़ा बनेगा और उसका जितना ही अधिक चालान होगा, लक्ष्मीजी भी उतनी ही अधिक मात्रा में वहाँवालों पर प्रसन्न होंगी और मरभुखों की संख्या भी वहाँ उतनी ही अधिक मात्रा में कम हो जायगी।

कहाँ तो विलायतवासी और वहाँ की गवर्नमेंट ये सब योजनायें कर रही है, कहाँ गाँधीजी फ़रमाते हैं कि न कोई विदेश का बना कपड़ा पहने और न अपने ही देश के पुतलीघरों का बना। वे चाहते हैं कि सारी रुई यहीं चरखे पर कात डाली जाय और सबका खद्दर बन जाय। भला, इस निष्ठुरता का भी कुछ ठिकाना है। गाँधीजी शायद इस सिद्धान्त के क़ायल नहीं—"परोपकारः पुण्याय"। उन्हें सोचना चाहिए कि यदि उनके उद्देश की सिद्धि हो गई तो लङ्काशायर के पुतलीघरों पर कैसी गुज़रेगी और उनमें काम करनेवाले लाखों मज़दूर कैसे पेट पालेंगे। यदि वे इँग्लेंड पर रूठे हैं तो रूठे रहें। जापान ने उनका क्या बिगाड़ा है। सारी रुई यहीं कत जायगी तो जापान को भी तो वह न मिलेगी। गेहूँ के साथ घुन भी पिस जायगा!

ज्ञ—

२—व्यापार से सम्बन्ध रखनेवाले कमिश्नर की वार्षिक रिपोर्ट।

अँगरेज़ों की विलायत, इँग्लेंड, की बढ़ी हुई धन-लक्ष्मी का प्रधान कारण उसके व्यापार और कलकारख़ानों की उन्नति है। अतएव कच्चे माल को दूसरे देशों से मँगाने और अपने यहाँ तैयार हुए माल को बाहर भेजने के साधनों को बढ़ाते रहने का प्रयत्न सदा ही जारी रहता है। कपास वहाँ नहीं होती। पर कपड़े के पुतलीघर वहाँ सैकड़ों हैं। यदि उन्हें रुई न मिले तो वे बन्द हो जायँ। इसी तरह उनमें तैयार हुए कपड़े का चालान यदि विदेशों को न हो और वह यथेष्ट न बिके तो भी वे बन्द हो जायँ और यदि बन्द न भी हों तो काम के घण्टे ज़रूर ही कम करने पड़ें। इससे बेकारी बढ़े और देश में सर्वत्र हाहाकार मच जाय। इसी से इस बात का सदा प्रयत्न किया जाता है कि ऐसी दुर्व्यवस्था का सामना कभी न करना पड़े।

हिन्दुस्तान से बहुत सा कच्चा माल विदेश को जाता है और विदेश में तैयार हुआ बहुत सा माल यहाँ आता है। यह आदान-प्रदान भारत और इँग्लेंड में भी परस्पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जारी है। इस लेन-देन में विशेष सुभीता कर देने के लिए, कुछ समय से, एक नये प्रबन्ध की आयोजना हुई है। एक कमिश्नर इस देश में रक्खा गया है और एक इँग्लैंड में भी। वह 'ट्रेड-कमिश्नर कहाता है। उसका काम है कि वह यह देखता रहे कि कौन वस्तु कितनी मात्रा में यहाँ से बाहर जाती है और कौन कहाँ से कितनी आती है। किस वस्तु की खपत कहाँ कितनी है और किस तरह उसके चालान में सुभीता और उन्नति हो सकती है। उसका यह काम यद्यपि सभी देशों के आदान-प्रदान से सम्बन्ध रखता है तथापि वह सबसे अधिक ऐसी ही तजबीज़ें पेश करता रहता है जिनसे इँग्लैंड और भारत का पारस्परिक व्यापार बढ़े—अर्थात् यहाँ से इँग्लैंड के मतलब का कच्चा माल वहाँ अधिक जाय और वहाँ से तैयार हुआ माल यहाँ अधिक आवे। ये ट्रेड-कमिश्नर व्यापारियों और बड़ी बड़ी कोठियों से पत्र-व्यवहार भी करते हैं और जो जिस विषय में पूछपाछ करता है उसे उस विषय के प्रश्नों का उत्तर भी देते हैं। हर साल ये अपनी कारगुज़ारी की रिपोर्टें भी करते हैं। उनकी रिपोर्टें सर्व-साधारण की—विशेष करके व्यापारियों और कलकारख़ानों के मालिकों की—जानकारी के लिए प्रकाशित भी होती हैं। यहाँ, इस देश में, जो ट्रेड-कमिश्नर है उसकी पिछली रिपोर्ट निकले अभी थोड़ा ही समय हुआ। उसकी कुछ बातों का उल्लेख आगे किया जाता है—

रिपोर्ट का सम्बन्ध १९२३-२४ से है। रिपोर्ट बहुत बड़ी है। उसमें व्यवसायियों और व्यापारियों के जानने योग्य अनेक बातें हैं। किस तरह भारत का कच्चा माल अधिक मात्रा में विलायत जा सकता है। और वहाँ का तैयार माल यहाँ किस तरह अधिक आसकता है, यह जिसे जानना हो उसके लिए यह रिपोर्ट बड़े ही महत्त्व की है। इससे विलायतवाले ज़रूर ही फ़ायदा उठावेंगे क्योंकि वे व्यापार-कुशल और विशेष शिक्षित हैं। परन्तु भारतवासियों से अधिक आशा नहीं। रिपोर्ट के साल भारत में बाहर से जितना माल आया उससे बहुत अधिक माल यहाँ से गया। यही चाहिए भी था। यदि कोई १०) की चीज़ हमें दे और हम उसे १५) की दें तो देने को लेने से बज़ा करने पर हमें ५) अधिक मिलें। ये ५) गोया हमारे घर रहेंगे और उतनी मात्रा में इस देश की समृद्धि बढ़ जायगी। पिछले साल इस देश ने जितने का माल बाहर से ख़रीदा उससे १ अरब ४४ करोड़ अधिक का उसने बेच दिया। मतलब यह कि इतना रुपया उसने औरों से अधिक खींचा। इस अधिक आमदनी में ४८ करोड़ की सोना-चाँदी और ३४ करोड़ की सरकारी हुंडियाँ वग़ैरह शामिल हैं। यदि इन दोनों मदों को कुल आमदनी से निकाल डालें तो भी ६२ करोड़ रुपये की आमदनी भारत को अधिक हुई। अर्थात् इतना रुपया बाहर से भारत में खिँच आया और देश की समृद्धि की वृद्धि का कारण हुआ। भारतीय व्यापार चार-पाँच वर्ष बाद इस दशा को पहुँचा है। इसके पहले वह देता ही अधिक रहा है, पाता कम रहा है। इस व्यापार-वृद्धि के विषय में ट्रेड-कमिश्नर साहब का कथन है—और उनका यह कथन विलायती व्यवसायियों ही के लिए है— कि घबराने की कोई बात नहीं। ये दिन ऐसे ही न रहेंगे; वे फिर फिरेंगे; फिरने के लक्षण दिखाई भी देने लगे हैं। पिछले कई वर्षों में विदेशी कपड़े की आमदनी यहाँ बहुत कम हुई है। व्यवसायियों और कोठीवालों के गोदामों में विदेशी माल अब कम रह गया है। इससे आशा है कि आगे उसकी कटती अधिक होगी। अर्थात् अब विदेशी माल अधिक मँगाया जायगा। मांचेस्टर के कपड़े की आमदनी कम होने का एक कारण कमिश्नर साहब की राय में कपड़े का महँगा होना भी है। आपका इशारा शायद यह है कि विलायतवाले अगर अपना कपड़ा कुछ सस्ता कर दें तो वह खूब मँगाया जाय। आपका ख़याल है कि करोंड़ों का चाँदी-सोना जो यहाँ आया है वह व्यवसायियों की तिजोरियों में बन्द पड़ा है। वे लोग मौक़ा देख रहे हैं। ज्योंही माल की क़ीमत कम हुई त्यों हीं वे धड़ाधड़ आर्डर भेजने लगेंगे। क्यों नहीं क़ीमत घटा देते और यह सारा चाँदी-सोना खींच लेते? उधर तो ये इशारे हो रहे हैं, इधर गाँधीजी, घर घर चरखा चलवा कर, मांचेस्टर के कपड़े की जगह खद्दर को दे डालने की कोशिश में हैं। देखिए, इस होड़ में किसे कितनी कामियाबी होती है।

किसी किसी का ख़याल है कि यह जो इतना चाँदी-सोना भारत में आया है वह सारे भारत के व्यापारियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और व्यवसायियों को नहीं मिला। अतएव वह उनकी तिजोरियों में बन्द नहीं। यहाँ से रुई, ग़ल्ला, जूट और चाय ही अधिक रवाना होती है। इससे जो लोग इन वस्तुओं का व्यापार करते हैं उन्हीं को यह रुपया अधिक मिला है। यदि यह सच है तो यह अनुमान ग़लत हो सकता है कि सारे देश को इससे लाभ पहुँचा है। और मौक़ा मिलते ही विदेशी वस्तुओं की—विशेष करके कपड़े की—ख़रीद फिर ज़ोरों से शुरू होगी।

ट्रेड-कमिश्नर साहब की राय में विलायती माल की कम खपत का एक कारण भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति का अव्यवस्थित होना भी है। परन्तु सन्तोष की बात इतनी है कि अँगरेज़ों के साम्राज्य की बनी वस्तुओं के "बायकाट" (दूरीकरण) को गांधीजी नापसन्द करते हैं। उधर हिन्दू-मुसलमानों में अनबन भी खूब हो रही है। इसके सिवा स्वराज्यवादियों के दल का रुख़ भी पहले का जैसा नहीं रहा। कौंसिलों में घुस कर उन्होंने अब सरकार से सम्बन्ध भी जोड़ लिया है। विलायती माल की खपत बढ़ने के ये सब शुभ लक्षण हैं। बात यह कि जब तक एका था तब तक भारत के हित की दृष्टि से विदेशी माल लोग कम लेते थे। अनैक्य और पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष के कारण अब लोगों की चित्तवृत्ति बदल गई है या बदल जाने के लक्षण दिखा रही है। इससे सम्भव है कि विदेशी माल की कटत अब भारत में पहले से अधिक हो। हिन्दू और मुसलमान तथा उदार और अनुदार भारतवासी अब लड़ें—खूब लड़ें। वे अपना घर फूँक तमाशा देखें। बाहरवाले अपने माल से भारत के बाज़ारों को पाट कर खूब गुलछर्रे उड़ावें।

अपने ख़र्च के लिए सरकार को करोड़ों रुपये का सामान विलायत से मँगाना पड़ता है। वहाँ लन्दन में सामान की ख़रीद के लिए स्टोर्सडिपार्टमेंट नाम का एक महकमा है। विलायतवाले वहीं बैठे बैठे उसी की मारफ़त अपना माल अब तक बेच लेते थे। भारतवासियों के बहुत कुछ रोने-धोने पर अब ऐसे सामान की ख़रीद का प्रबन्ध थोड़ा-बहुत यहीं हो गया है। इस पर ट्रेड-कमिश्नर साहब ने विलायत के कारख़ानेदारों और व्यवसायियों को चेतावनी दी है कि तुम्हारे चुपचाप बैठने का अब समय नहीं। और देशवालों ने अपनी अपनी एजंसियाँ वग़ैरह भारत में खोल दी हैं। तुम भी जागो और भारत के बाज़ारों को अपनी मुट्ठी में करो। अन्यथा जो सामान भारत में नहीं तैयार होता या अच्छा नहीं बनता उसे सरकारी महकमे और देशवालों से ख़रीद लिया करेंगे। तुम कोरे ही रह जावगे। कमिश्नर साहब का यह भय बहुत कुछ निर्मूल है। भारत में कोयले की कमी नहीं। पर अभी, हालही में, करोड़ों का कोयला सरकार ने आफ़रीक़ा से ख़रीदा है। और वहाँ की खानों के मालिक विलायत-वासियों ही के भाई-बन्द हैं।

ज्ञ—

३—भारतवर्ष में शकर की पैदावार और ख़र्च।

और देशवालों को जिस समय शकर का तो क्या, गुड़ का भी स्वाद मालूम न था और जिस समय उनमें से बहुतों ने शकर का नाम भी न सुना था उस समय भी भारत में "विपाण्डुरा पुंड्रक-शर्करा" तैयार होती थी और देवों ही के भोग में नहीं, मनुष्यों के भी उपयोग में आती थी। वेदों तक में शकर का उल्लेख है। परन्तु सबके दिन सदा एक से नहीं रहते। जो लोग या जो देश समय का रुख़ नहीं देखते, नई नई बातों की खोज में नहीं रहते, अपनी त्रुटियों को दूर करके अन्य उन्नतिशील देशों की बराबरी करने का यत्न नहीं करते, वे किसी न किसी समय दूसरों के द्वारा ज़रूर ही पराहत होते हैं। जैसे पहले यह देश वस्त्र-निर्माण और वस्त्र-व्यवसाय में बढ़ा-चढ़ा था वैसे ही शकर की पैदावार में भी बढ़ा-चढ़ा था। हज़ारों मन शकर यहाँ से विदेश को जाती थी। यह देखकर अन्य देशवालों ने भी अपने यहाँ ईख बोने और उससे शकर पैदा करने का प्रयत्न किया। योरप में गन्ना या ईख बहुत कम पैदा होती या हो सकती है। इस कारण वहाँ के अध्यवसाय-निपुण मनुष्य मारिशस, जावा, फिजी, गायना और क्यूबा आदि टापुओं में गन्ना पैदा करने लगे। वहाँ उन्होंने बड़ी बड़ी कोठियाँ और बड़े बड़े कारख़ाने खोल दिये। विज्ञान के बल से उन्होंने बहुत रस देनेवाले और बहुत मोटे नये नये प्रकार के गन्ने पैदा कर लिये। फिर मैशीनों की सहायता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस करोड़ों मन गन्ने से वे बहुत अधिक उत्तमोत्तम शकर तैयार करने लगे। वह शकर भारत आने लगी और सस्ते दामों में बिकने लगी। नतीजा यह हुआ कि यहाँ की बनी हुई शकर, महँगी पड़ने के कारण, कम ख़र्च होने लगी। धीरे धीरे उसकी पैदावार और उसका ख़र्च बहुत ही थोड़ा रह गया। क्योंकि यहाँ वही वेदों के ज़माने की पतली ईख अब तक होती है और शकर बनाने की प्रक्रिया भी वही पुरानी चली आती है। भला मैशीनों का मुक़ाबला कहीं हाथों से हो सकता है।

ऊपर जिन टापुओं के नाम दिये गये हैं वहाँ गन्ने और शकर की पैदावार की बदौलत व्यवसायियों को मालामाल होते देख जर्मनी के धन-लोलुपों और व्यवसाय-कुशलों के हृदय में कुढ़न पैदा हुई। इस कारण कि वहाँ गन्ना नहीं पैदा होता और होता भी है तो बहुत कम। अतएव वहाँ के विज्ञानविशारदों ने चुकन्दर से चीनी बनाने का आविष्कार किया। थोड़े ही समय में वहाँ चुकन्दर की काश्त बेहद बढ़ गई और उससे तैयार की गई शकर से भारत के बाज़ार पट जाने लगे। एक तो जावा और मारिशस आदि की शकर की आमदनी के कारण भारतीय शकर का व्यवसाय पहले ही अधमरा हो चुका था, जर्मनी के चुकन्दर की चीनी ने उसे और भी चौपट कर दिया। तब विदेशी शकर पर आयात कर लगाया गया और कालान्तर में वह बढ़ा भी दिया गया। परन्तु इससे बहुत ही कम लाभ हुआ है। अन्य देशों से शकर का आना अब भी बन्द नहीं। तुर्रा यह कि भारत में यहीं की बनी हुई शकर महँगी पड़ती है, पर सात समुद्र पार से आनेवाली सस्ती।

इस वैपरीत्य का कारण यह है कि न तो यहाँ अच्छा गन्ना पैदा करने ही की कोई विशेष योजना हुई और न बड़े बड़े कारख़ाने खोलकर मैशीनों की सहायता से शकर बनाने ही का प्रयत्न किया गया। बहुत समय तक यही दशा रही। हाँ, अब कुछ समय से गवर्नमेंट ने अपने कृषि-विद्या-विशारदों से खोज कराकर अच्छे अच्छे गन्ने पैदा कर दिये हैं और उनके बीज भी कृषकों के लिए सुलभ कर दिये गये हैं। उधर कुछ बड़े बड़े कारख़ाने भी व्यवसायियों ने खोल दिये हैं। विलायत से कुछ मैशीनें भी अब यहाँ ऐसी आगई हैं जो कम दामों पर मिलती हैं और जिनकी सहायता से छोटे मोटे व्यवसायी भी गुड़ और राब से अधिक शकर तैयार कर सकते हैं।

तथापि इन योजनाओं से भी काम नहीं चल सकता। यहाँ शकर का जितना ख़र्च है वह यहीं की बनी हुई शकर से नहीं पूरा होता। शुगरब्यूरो नाम की एक शकर-सम्बन्धिनी संस्था है। उसके सेक्रेटरी, वाइने सेयर, नामक एक साहब की लिखी हुई एक रिपोर्ट अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है। उसका सम्बन्ध १९२३-२४ के साल से है। उसमें सेयर साहब ने शकर के भारतीय व्यवसाय के विषय की अच्छी आलोचना की है। उससे नीचे लिखी हुई बातें मालूम होती हैं।

महँगी हो जाने के कारण विदेश से अब कम शकर यहाँ आती है। १९१३-१४ में, अर्थात् युद्ध के पहले, ८ लाख टन शकर का चालान बाहर से यहाँ हुआ था। एक टन २७ मन का समझिए। इस हिसाब से, १० वर्ष पहले, कोई २ करोड़ मन शकर विदेश से भारत आती थी। कुछ ठिकाना है, कितने करोड़ रुपये विदेशी व्यापारी सिर्फ़ शकर बेच कर भारत से ले जाते रहे हैं! पर अब, १९२३-२४ में, उसकी आमदनी घटकर ४ लाख ११ हज़ार टन रह गई है। अर्थात् अब भी साल में वह १ करोड़ मन से अधिक आती है। जिस साल के व्यवसाय की समालोचना की गई है उस साल यहाँ, भारत के ३१ कारख़ानों में, सिर्फ़ ७४ हज़ार टन सफ़ेद शकर, जैसी कि प्रायः विदेश से आती है, तैयार हुई। इसके सिवा, बाबाआदम के समय से प्रचलित अपने देशी ढङ्ग से तैयार की गई शकर का वज़न अन्दाज़न ५० हज़ार टन समझिए। इस प्रकार कुल मिलाकर साल में यहाँ सिर्फ़ १ लाख २४ हज़ार टन सफ़ेद शकर बनी। इसका मतलब यह हुआ कि यहाँ की बनी हुई सारी शकर भी यहाँ ख़र्च हो गई और बाहर से आई हुई ४ लाख ११ हज़ार टन और भी खप गई। दूसरे शब्दों में इस बात को इस तरह कह सकते हैं कि १९२३-२४ में भारत को कोई ५½ लाख टन शकर दरकार थी, जिसमें से वह लगभग सवा लाख ही मन अपने यहाँ तैयार कर सका। अवशिष्ट शकर विदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मँगा कर विदेशी व्यवसायियों की जेबें उसे अपने रुपये से भरनी पड़ीं।

कितने परिताप की बात है कि जो देश किसी समय अपनी शकर बेचकर औरों से करोड़ों रुपये उपार्जन करता था वही अब अपने और अपने देवताओं के भोग के लिए दूसरे देशों से शकर मँगाता है और ऐसी शकर मँगाता और खाता है जिसे अनेक धर्म्म-प्राण भारतवासी अखाद्य ही नहीं, अस्पृश्य तक समझते हैं।

सेयर साहब ने अपनी आलोचना में लिखा है कि चुकन्दर की चीनी का व्यवसाय बीच में कुछ मन्दा पड़ गया था। पर अब वह झपाटे से बढ़ रहा है। कुछ ही दिनों में चुकन्दर की चीनी बहुत अधिक मात्रा में यहाँ आने लगेगी। उधर जावा और क्यूबा टापू के व्यवसायी भी शकर की पैदावार बढ़ाने और उसे अधिक सस्ते दामों पर बेचने की चेष्टा जी-जान से कर रहे हैं। इस दशा में यहाँ जो थोड़ी-बहुत शकर तैयार होती है वह भी कुछ दिनों में शायद न तैयार हो और हो भी तो और भी कम हो। क्योंकि परता ही न पड़ेगा। क्यूबा या जावा की शकर यदि रुपये की ४ चार सेर यहाँ बिके और इतनी सस्ती होने पर भी व्यवसायियों को मुनाफ़ा हो तो बनारस या शाहजहाँपुर की बनी हुई शकर उसका मुक़ाबला कदापि न कर सकेगी। वह इतनी सस्ती कभी न बिक सकेगी। इसके सिवा शकर बनाने के जो कारख़ाने यहाँ हैं उनमें भी ख़र्च इतना है कि वे भी विदेशी शकर का मुक़ाबला न कर सकेंगे।

इस दुर्गति से बचने का इलाज यही हो सकता है कि गवर्नमेंट ने आयात शकर पर जो कर लगाया है उसे बढ़ा दे, नहीं तो जितना है उतना तो ज़रूर ही बना रहने दे। अच्छे गन्ने की काश्त की जाय और वैज्ञानिक ढङ्ग से खेतों की उर्वराशक्ति बढ़ा कर गन्ने की पैदावार बढ़ाई जाय। फिर शकर बनाने के कारख़ानों की संख्या में भी वृद्धि हो। साथ ही कारख़ानों का ख़र्च घटाया जाय और शकर-निर्म्माण की प्रणाली में ऐसी उन्नति की जाय जिससे शकर अधिक बने। इस समय शकर का जो अंश व्यर्थ जाता वह न जाय।

इन सब बातों के होने के बहुत ही कम लक्षण दिखाई देते हैं। अतएव भारत में शकर के बचेखुचे व्यवसाय के भी नष्ट हो जाने का बहुत बड़ा डर है। आलसियों और अपना घर आपही सुधारने की फ़िक्र न करनेवालों की जो दुर्गति न हो सो थोड़ी।

ज्ञ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

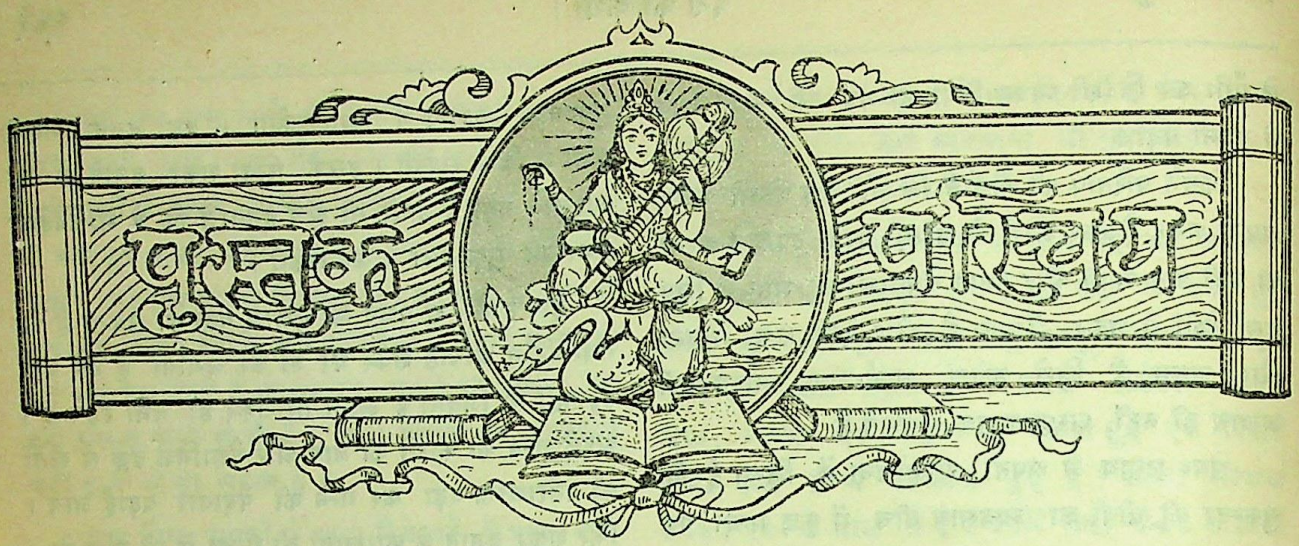

१—**ऋण-परिशोध**—मूल-लेखक, श्रीकालीप्रसन्न-दास गुप्त, अनुवादक, पण्डित रामेश्वरप्रसाद पाण्डेय, प्रकाशक, गाँधी-हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, ३१७, कालबादेवी बम्बई। पृष्ठ-संख्या २६२। छपाई-सफ़ाई साधारण। जिल्द सुन्दर और मज़बूत। मूल्य सादे संस्करण का १॥।) और सजिल्द संस्करण का २।) है।

गांधी-हिन्दी-पुस्तक-भण्डार ने हिन्दी-गौरव-ग्रन्थ-माला के नाम से जो ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं वे साधारणतः सभी उच्च कोटि के हैं। इधर दो वर्षों से इसका कार्य बन्द हो गया था। किन्तु प्रस्तुत पुस्तक उक्त गौरव ग्रन्थ-माला का २७ वाँ पुष्प है। यह एक बँगला उपन्यास का अनुवाद है। कथा सामाजिक है। हिन्दू-समाज की समस्याओं को दिखाने की कोशिश की गई है। अनुवाद की भाषा साधारण है।

२—**अद्भुत कहानियाँ अर्थात् प्राणियों के हृदय की बात**—लेखक, श्रीयुत ज्ञानेन्द्रमोहनदास, अनुवादक, पण्डित जनार्दन झा, प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक एजन्सी, १२६, हरिसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १००, मूल्य ॥) है।

यह पुस्तक एजेन्सी की बाल-विनोद-पुस्तकमाला की तीसरी पुस्तक है। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी में ऐसी बालोपयोगी पुस्तकों की बहुत कमी है जिनसे बालकों की ज्ञान-वृद्धि भी हो और मनोरञ्जन भी। प्रस्तुत पुस्तक-माला का यही उद्देश है। इसमें जानवरों से सम्बन्ध रखने-वाली २६ सच्ची कहानियों का समावेश किया गया है। कहानियों में यह दिखाया गया है कि भिन्न भिन्न जाति के पशु-पक्षी मनुष्यों के साथ कैसा बर्ताव करते हैं। किन्तु प्रायः सभी कहानियाँ विदेशियों से सम्बन्ध रखती हैं। अनुवाद की भाषा सरल है। पुस्तक सचित्र है।

३—**कवित्त-रामायण**—लेखक, स्वर्गीय पण्डित रामगुलाम द्विवेदी। सम्पादक, पण्डित महावीरप्रसाद मालवीय वैद्य "वीर कवि" प्रकाशक, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ७८। मूल्य ।=) है।

स्वर्गीय पण्डित रामगुलामजी द्विवेदी बड़े हरिभक्त थे। इन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी के काव्य-ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन किया था। प्रस्तुत पुस्तक में इन्होंने सम्पूर्ण रामायण की कथा अपने कवित्तों में कही है। कुल कवित्त-संख्या २१६ है। सम्पादक महोदय ने पाद-टिप्पणी के रूप में कुछ क्लिष्ट शब्दों के अर्थ दे दिये हैं। भूमिका में द्विवेदीजी का अति सूक्ष्म परिचय भी दिया गया है। पुस्तक सर्वथा पठनीय है।

४—**हिन्दू-सङ्गठन-विधि**—लेखक और प्रकाशक, पण्डित रघुनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य-प्रभाकर, छिपैटी, इटावा। पृष्ठ-संख्या १२५। छपाई-सफ़ाई रद्दी, मूल्य ॥) है।

लेखक ने भूमिका में लिखा है कि 'हमने हिन्दू-जाति को मृतक समझ कर उसके जिलाने के लिए प्रभावशाली शब्दों का अमोघ रस देकर जीवित खड़े करने की चेष्टा की है.....। हमें तो इसमें कोई अमोघ रस नहीं दिखाई दिया। अधिकतर हिन्दू-सङ्गठन और शुद्धि की ही चर्चा की गई है। यहाँ उनकी उपयोगिता अथवा अनुपयो-गिता का विषय छेड़ना व्यर्थ सा है। पुस्तक में भाषा एवं फ़ूफ़-सम्बन्धी अनेक ग़लतियाँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—अखानी वाणी तथा मनंहर-पद—संवत् सत्रह सौ के उत्तरार्द्ध और अट्ठारह सौ के पूर्वार्द्ध के बीच गुर्जर-देश में, अखा नाम का एक ज्ञानी किंवा वेदान्ती पुरुष हो गया है। जाति का वह सुनार था। जन्म तो उसका एक गाँव में हुआ था, पर अधिकांश गृहस्थाश्रम उसका अहमदाबाद में बीता। वहाँ उसकी बहन ब्याही थी। वह बड़ा सच्चा, निस्पृह और साधु-स्वभाव था। दैवयोग से उसके समस्त कुटुम्बी काल-कवल हो गये। इससे उसे संसार से विशेष विराग हो गया। अहमदाबाद के तत्कालीन सुल्तान की टकसाल में वह मुलाज़िम था। वहाँ उसके काम के सम्बन्ध में उस पर कुछ झूठे इलज़ाम भी लगाये गये। यद्यपि, जाँच के बाद, उनसे वह बरी समझा गया। तथापि इस घटना से भी उसके हृदय पर कड़ी चोट लगी। निदान उसने घरद्वार छोड़कर देशाटन या तीर्थ-यात्रा की ठानी। वह वल्लभ-सम्प्रदाय का वैष्णव था। अतएव वह अहमदाबाद से जयपुर गया और कुछ समय तक उसने वहाँ के एक गोस्वामीजी की सेवा की। गोस्वामीजी के चरित से उसे सन्तोष न हुआ। तब वह घूमते-घामते काशी पहुँचा। वहाँ वह बहुत समय तक रहा और एक महात्मा से वहीं शास्त्राध्ययन और वेदान्त-परिशीलन किया। धीरे धीरे उसका माया-मोह छूट गया और वह पक्का वेदान्ती बन गया। काशी से वह फिर अपने प्रान्त को लौट आया और वहीं कहीं उसका शरीरान्त हुआ।

इस अखा ने अपनी मातृभाषा गुजराती में वेदान्तज्ञान से ओतप्रोत भरी हुई बहुत रचना की है। गुर्जर-देश में उसकी उस रचना या काव्य का बड़ा मान है। रचना प्रासादिक और विशेष सरल है। यत्र तत्र योंही कुछ स्थलों को छोड़कर अखा ने बड़ी ही सीधी-सादी भाषा में गीता, उपनिषद्, वेदान्त आदि के तत्त्व समझाये हैं। उसकी रचना का ढङ्ग वही है जो ढङ्ग कबीरदास और पलटू साहब आदि सन्तों की रचना का है।

प्रस्तुत पुस्तक में अखा की प्रायः समस्त रचनाओं का सङ्ग्रह है। उनके नाम ये हैं—

(१) अखेगीता
(२) पञ्चीकरण
(३) अनुभवबिन्दु
(४) चित्त-विचार-संवाद
(५) गुरु-शिष्य-संवाद
(६) कैवल्यगीता
(७) सन्तप्रिया
(८) अखा के छप्पय
(९) अखा के पद
(१०) अखा के सोरठे

यह सब रचना इस बड़े आकार की मोटी पुस्तक के कोई ३०० सफ़हों में समाप्त हुई है। इसके आगे एक और पुस्तक है, जिसका नाम है—

६—मनहर-पद—इन पदों के कर्ता का नाम था मनोहरदास। वह बड़नगरा नागर-ब्राह्मण था। भावनगर के पास का रहनेवाला था। वह फ़ारसी का अच्छा ज्ञाता था। उसका किया हुआ उपनिषदों का फ़ारसी-अनुवाद पाया गया है। पीछे से उसने तर्क, वेदान्त और व्याकरण का भी अभ्यास करके उनमें भी विज्ञता प्राप्त की थी। संवत् १८९४ में उसने संन्यास ग्रहण किया और १९०१ में शरीर छोड़ा। अखा के सदृश उसके भी पदों में वेदान्त-निरूपण है। पदों की संख्या कोई सवा दो सौ के ऊपर है। उनमें से ७२ पद तो गुजराती भाषा में हैं और १५० हिन्दी में। इन पिछले पदों की भाषा यद्यपि विशुद्ध हिन्दी नहीं, तथापि उनमें जो कुछ कहा गया है सब समझ में आता है। मनोहरदास के पदों की पृष्ठ-संख्या १२३ है।

ये दोनों ही पुस्तकें एक ही में, एक के बाद दूसरी, संलग्न हैं। कुल पृष्ठ-संख्या, जीवन-चरित आदि मिला कर, २०० है। काग़ज़ मोटा और टाइप सुस्पष्ट है। मूल्य केवल १॥=) है। इसी से पाठक समझ जायँगे कि यह पुस्तक अहमदाबाद और बम्बई के सस्तु-साहित्य-वर्द्धक कार्य्यालय के द्वारा प्रकाशित हुई है और उसी से मिल सकती है। पुस्तक पर बड़ी सुन्दर जिल्द चढ़ी हुई है।

७—गिरधर-कृत रामायण—राम का परमपावन चरित भारतवर्ष के हिन्दूमात्र के घर घर में गाया जाता है। जो लोग साक्षर नहीं—जो रामायण नहीं पढ़ सकते—वे, मौक़ा मिलने पर, उसे सुनते अवश्य हैं। जिनके भाग्य में यह भी बदा नहीं उनके मुँह से दिन में एक आध दफ़े "राम" तो अवश्य ही निकल जाता है—मुख में न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सही दुखही में। रामचरित को भारतवासी देश-देशान्तरों तक में ले गये हैं। हज़ारों वर्ष हो गये, कितने ही हिन्दू स्याम, अनाम और जावा में जा बसे थे। उनके वंशजों ने यद्यपि धर्म्मान्तर ग्रहण कर लिया है; तथापि राम को वे भी नहीं भूले। किसी न किसी रूप में रामचरित का गान, वहाँ अब तक हो रहा है। यहाँ, अपने देश में, वाल्मीकि-रामायण के अतिरिक्त कितने ही प्रान्तों की प्रान्तीय भाषाओं में भी अलग अलग रामायण हैं। बँगला-भाषा की कृतिवासीय रामायण के कुछ काण्ड तो हिन्दी-भाषा में भी अनुवादित हो चुके हैं। इस रामायण का प्रचार बङ्गाल में उतना ही है जितना कि तुलसीकृत रामायण का प्रचार हिन्दी-भाषा-भाषियों में है। द्रविड-देश में भी वहाँ की भाषाओं में रामायण विद्यमान है। गुर्जर-देश में तो कई रामायणें हैं। उनमें से विष्णुदास, उद्धव और गिरधर की रामायणें बहुत प्रसिद्ध हैं। पिछली का प्रचार और सभी रामायणों से अधिक है। इसका कारण है उसकी सरलता, सरसता और लोकप्रिय राग-रागिनियों में रचना। तुलसीदास की रामायण के सदृश उसके भी सैकड़ों संस्करण आज तक छप कर प्रकाशित हो चुके हैं। पर वे सब बाज़ारू हैं। उनमें शुद्धता की तरफ़ कम ध्यान दिया गया है।

इसी त्रुटि को दूर करने के लिए अहमदाबाद और बम्बई के सस्तु-साहित्य-वर्धक कार्य्यालय ने गिरधर की गुजराती रामायण का एक संस्करण अभी हाल ही में प्रकाशित किया है। उसकी पृष्ठ-संख्या ८०० के लगभग है; आकार बड़ा है; काग़ज़ पुष्ट है; टाइप मोटा है; ऊपर सुन्दर जिल्द है। पर मूल्य केवल २॥) है।

इस रामायण के कर्त्ता गिरधरदास बहुत पुराने नहीं। उनकी मृत्यु संवत् १९०८ में हुई थी। अतएव उन्हें शरीर छोड़े अभी १०० वर्ष भी नहीं हुए। वे जाति के वैश्य थे। संस्कृतज्ञ न थे। पर भक्त थे और प्रासादिक कवि थे। उनकी वाणी में रस था। इसी से उनकी रामायण का इतना आदर गुजरात और काठियावाड़ में है। उन्होंने उसकी रचना राग-रागिनियों में की है। उनकी भाषा और कविता का एक नमूना चार पंक्तियों में नीचे दिया जाता है—

हावे ऋषिमुक उपर राम रह्या छे, सेवे सुग्रीष राज;
अनेक देशना कपि आव्या छे, करवा रामनु काज।
शोधने अरथे गया केटला, केटला, रानी पास;
अनेक प्रकारनी रमत करे छे, रीझवे रमानिवास॥

गिरधर का निवासस्थान बड़ोदा था। वहीं प्राप्त हुई और गिरधर ही के हाथ से लिखी गई एक प्रति के आधार पर इस रामायण का यह संस्करण तैयार किया गया है। अतएव इसकी शुद्धता में सन्देह नहीं। पुस्तकारम्भ में अनेक कृतविद्य लेखकों और महात्माओं के द्वारा किये गये रामकथा-माहात्म्य के वर्णन के अवतरण हैं और पुस्तकान्त में इस रामायण के रचयिता गिरधर का संक्षिप्त जीवन-चरित।

ज्ञ—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

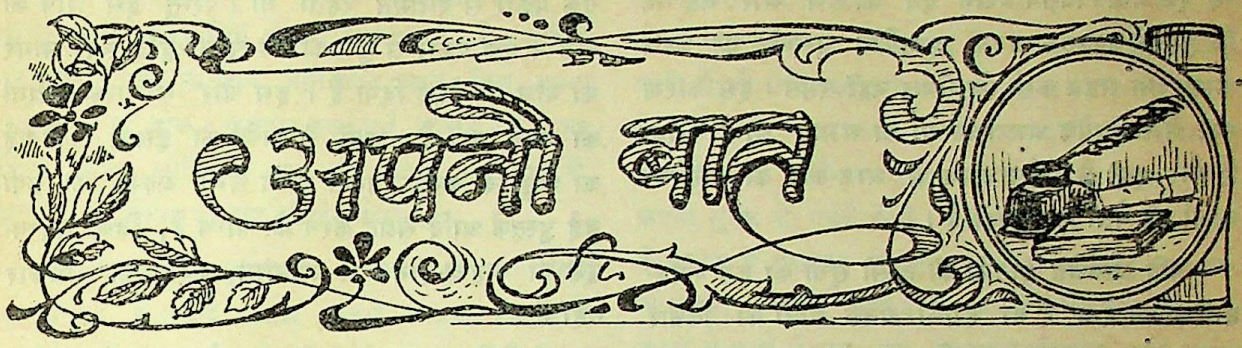

१—श्रेष्ठ पुस्तकें।

सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों के सम्बन्ध में एक मत नहीं है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार किसी भी पुस्तक को सर्वश्रेष्ठ कह सकता है। ऐसी दशा में कोई निश्चित मत नहीं हो सकता कि अमुक श्रेणी की ही पुस्तकें सर्वश्रेष्ठ मानी जानी चाहिए। अतएव यह विषय विवादग्रस्त है। तो भी सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों की सूची बनाने का लोगों ने प्रयत्न किया है। परन्तु निपुण आलोचकों ने ऐसी सूचियों से भी अपना मतभेद प्रकट किया है।

हाल में एक लेखक ने अँगरेज़ी के श्रेष्ठ ग्रन्थों की एक सूची तैयार की थी। परन्तु उसमें उसने महाकवि कीट्स की रचना को स्थान नहीं दिया। इसका कारण सूची-निर्माता की अपनी अन्तर्भावना है। यदि टाल्स्टाय को एक ऐसी ही सूची बनाने का काम दिया जाता तो वे उसमें शेक्सपियर की रचना को कभी न शामिल करते। इसी प्रकार वर्ड्सवर्थ अपनी सूची में गेटी को न रखते। सारांश यह कि विद्वज्जन इस प्रकार की जो सूची तैयार करते हैं उसे वे अपने आदर्श के अनुसार ही सजाते हैं, वे लोक-रुचि की परवा नहीं करते।

अतएव साधारण पाठक साहित्यिकों-द्वारा निर्दिष्ट सूची से अपना मनोविनोद नहीं कर सकते। वे तो ऐसा मनोरञ्जक मसाला चाहते हैं जो उन्हें प्लेटो या अरिस्टाटल जैसे धुरन्धर आचार्य नहीं प्रदान कर सकते। श्रेष्ठ पुस्तक से यह मतलब नहीं है कि वह शिक्षा-जनक अवश्य ही हो।

सर्वसाधारण के लिए सर्वश्रेष्ठ पुस्तक कौन है? इसके निश्चय की कसौटी पुस्तक की बिक्री है। जो पुस्तक अधिक बिके वही उनके लिए सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। परन्तु किसी पुस्तक की अधिक खपत के भी कई कारण हो सकते हैं। अपने नयनाभिराम रूप-रङ्ग या बुद्धिमानी से विज्ञापन-बाज़ी करने पर भी किसी पुस्तक का खूब प्रचार हो जाता है। कभी कभी प्रतिकूल आलोचनाओं से भी लोग कुतूहल-वश किसी पुस्तक के प्रचाराधिक्य के कारण स्वयं बन जाते हैं। कभी कभी सर्वसाधारण में छिड़े हुए किसी महत्त्व-पूर्ण प्रश्न की चर्चा करने के ही कारण तीसरे दर्जे तक की पुस्तक की ख़ासी बिक्री हो जाती है। ऐसी दशा में किसी पुस्तक का अधिक बिकना ही उसके श्रेष्ठ पुस्तक होने का पर्याप्त प्रमाण नहीं माना जा सकता। लोगों को ऐसी पुस्तकें पढ़ने के लिए हमें उत्साह नहीं देना चाहिए। यह तो हुई सर्वसाधारण की कसौटी की बात। अब विद्वानों की बात लीजिए।

विद्वान् लोग संसार के उच्च विचारों से परिचय प्राप्त करने के इच्छुक रहते हैं। अतएव सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों की खोज में जिन उपायों का अवलम्बन वे करते हैं उनमें एक यह है। वे किसी पुस्तकालयाध्यक्ष को बुलाकर उसकी सम्मति माँगते हैं। पर प्रायः उससे उनका मत नहीं मिलता। बात भी बहुत कुछ ठीक है, क्योंकि किसी बड़े पुस्तकालय के अध्यक्ष के लिए प्रतिवर्ष हज़ारों नई आने-वाली पुस्तकों का ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है। अतएव उनके लिए सर्वश्रेष्ठ पुस्तक निश्चित करने का काम उन्हीं लोगों का होना चाहिए जो नवप्रकाशित पुस्तकों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचना में ही संलग्न रहते हैं। पर इस सम्बन्ध में भी एक बात विशेष ध्यान देने की है। और वह यह कि पुस्तक-प्रकाशक अपनी प्रकाशित पुस्तकों की कठोर आलोचना सहन करने को तैयार नहीं रहते। इस कारण स्पष्ट और निरपेक्ष आलोचनाओं का अभाव सा हो गया है और इसी से सर्वसाधारण में आज-कल की आलोचनाओं की वैसी क़दर नहीं है।

यदि सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों की किसी सूची को हमें व्यावहारिक-रूप देना है तो हमको अनेक बातों का विचार करना होगा। उनकी विषय-भिन्नता का भी ध्यान रखना होगा। बहुत सम्भव है कि ज्योतिष-सम्बन्धी हाल के अन्वेषण होमर की अपेक्षा भी अधिक महत्त्व के हों। नित्य नया ज्ञान प्रकाश में आ रहा और पुराने विचार तथा सिद्धान्त अशुद्ध सिद्ध होते जा रहे हैं। अतएव इस स्थिति की उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसी सूची बनाने में एक इस बात से भी अच्छी सहायता मिल सकती है कि शिक्षित पुस्तक-प्रेमी उन पुस्तकों के नाम बता दें जिनसे उनका अधिक प्रेम हो।

यह जानकर लोगों को आश्चर्य हो सकता है कि प्रसिद्ध दार्शनिक हक्सले को जासूसी कहानी बहुत पसन्द थी। चार्ल्सडार्विन भी इसी श्रेणी के साहित्य से अधिक प्रेम रखते थे। पिछले युद्ध के समय सैनिकों ने नटमोल्ट और गार्विस की रचनायें खूब पढ़ीं। एक विद्वान् का तो यहाँ तक मत है कि हाजी बाबा के समान पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई और एक मेल्विली की 'माबी डिक' को सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानता है। लोगों की रुचि का यह हाल है। तब श्रेष्ठ पुस्तकों की सूची दार्शनिक, सैनिक या साधारण पाठक आदि किस किसके लिए बनाई जाय। वास्तव में श्रेष्ठ पुस्तक वही है जो अथ से इति तक पढ़ी जा सके और दुबारा उसके पढ़ने की रुचि बनी रहे।

२—रद्दी का विचार।

छापे की कल के प्रचार से संसार में धीरे धीरे पुस्तकों के पहाड़ लगते जाते हैं। इसके पहले ऐसी बात न थी। तब पुस्तकों की संख्या-वृद्धि बहुत कुछ हिसाब के साथ होती थी। वही रचनायें नक़ल की जाती थीं जो महत्त्व की होती थीं। अतएव पुस्तकों की संख्या-वृद्धि एक प्रकार से परिमित रहती थी। परन्तु इस छापे की कल ने एक प्रकार से पुस्तकों की संख्या-वृद्धि-रूपी सागर का बाँध ही खोल दिया है। इस ओर साधारण लोगों का ध्यान नहीं है। उन्हीं संस्थाओं को इसकी कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है जो सभी प्रकार की छपी हुई पुस्तकें आदि संग्रह करने को बाध्य हैं, जिन्हें महत्त्व-पूर्ण या महत्त्व-हीन की मीमांसा करने का अधिकार नहीं है।

अँगरेज़ी सरकार के कापीराइट के क़ानून के अनुसार वहाँ के सभी प्रेसवालों को अपने यहाँ की छपी हुई पुस्तकों आदि की कुछ निश्चित प्रतियाँ वहाँ की कुछ संस्थाओं को भेंट करनी पड़ती हैं। वहाँ के म्यूज़ियम तथा दूसरे चार पुस्तकालयों को यह अधिकार प्राप्त है। प्रेसवाले इनको केवल अपने यहाँ की पुस्तक ही नहीं, किन्तु डायरी, घर की हिसाब-बही, स्कूल के फ़ार्म, क्रिसमस-कार्ड जैसी साधारण से साधारण चीज़ें तक भेजते हैं और इस पर मज़ा यह कि उन संस्थाओं को इनमें से एक एक चीज़ को अपने यहाँ सँभाल कर रखना पड़ता है। किसी छपे हुए काग़ज़ को रद्दी समझ कर फेंक देने का अधिकार उन्हें नहीं है। ऐसी दशा में उक्त संस्थाओं के आगे कैसी विकट समस्या आकर खड़ी होती होगी, यह सहज में ही अनुमेय है। आज-कल के प्रकाशन की अधिकता को देखते हुए उनके कार्य के विराट् स्वरूप की कल्पना तक करना किसी बाहरी आदमी के लिए कठिन है।

उक्त पाँच संस्थाओं के सिवा विलायत की कुछ अन्य वैसी ही संस्थाओं को भी उन्हीं के समान अधिकार प्राप्त थे। पर ये संस्थायें अपना उत्तरदायित्व अधिक समय तक न उठा सकीं। इन्होंने अपना अधिकार ही छोड़ दिया। उसके स्थान में सङ्ग्रहार्थ पुस्तकें ख़रीद करने के लिए इन्होंने सरकार से आर्थिक सहायता ही लेनी स्वीकार की।

संग्रह-कार्य के अटूट सिलसिले को देखकर एक बार म्यूज़ियम के अधिकारी घबरा से गये थे। उन्होंने सरकार से प्रार्थना की कि हमें यह अधिकार दे दिया जाय कि हम अपने संग्रह में उन्हीं 'प्रकाशनों' को स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दें जो महत्त्व-पूर्ण हों और बाक़ी को नष्ट कर दिया करें। परन्तु सरकार इस बात पर सहमत नहीं हुई। बाद को म्यूज़ियम के अधिकारियों की भी राय बदल गई। उन्होंने भी समझ लिया कि कौन जाने कौन वस्तु किस समय महत्त्वपूर्ण हो जाय, अतएव एक पुर्ज़ा काग़ज़ भी न नष्ट किया जाना चाहिए। बात भी बहुत कुछ ठीक है, आगे के उदाहरण से स्पष्ट भी हो जाती है।

आक्सफ़ोर्ड का पुस्तकालय विलायत का एक प्रसिद्ध पुस्तकालय है। इसे टामस बाडले नामक विद्वान् ने स्थापित किया था। इसने अपने पुस्तकालय में हलकी श्रेणी के ग्रन्थ संग्रह करने को निषेध कर दिया था। इसने कहा था कि जन्त्रियाँ, नाटक आदि जैसी पुस्तकें संग्रह करने के सम्बन्ध में मुझे अपना नियम बदल देने के लिए कोई कारण नहीं दिखाई देता। शायद ही नवप्रकाशित चालीस नाटकों में एक-आध ऐसा निकल आवे जो संग्रह-योग्य समझा जा सकता है। परन्तु सैकड़ों वर्ष बाद उसी पुस्तकालय को वही तिरस्कृत नाटक दुगुने-तिगुने दाम देकर ख़रीदने पड़े।

वस्तुतः यह किसी भी तरह नहीं कहा जा सकता कि कौन चीज़ रद्दी है और कौन चीज़ नहीं रद्दी है। ऐसी दशा में पूर्वोक्त संस्थाओं को आँख मूँद कर सभी 'प्रकाशनों' को अपने संग्रह में सुरक्षित रखना ही पड़ेगा। रह गई उसके विराटत्व की बात सो इसकी निष्पत्ति का भार उनके उत्तराधिकारियों के ज़िम्मे है।

३—हबशियों में शिक्षा-प्रचार।

अमरीका के हबशियों में शिक्षा का ख़ूब प्रचार है। एक तो उनमें स्वयं शिक्षा के प्रति अनुराग है, दूसरे वहाँ के उदार लोग भी उन्हें शिक्षित कर देना चाहते हैं। इसके लिए उन लोगों ने समय समय पर आर्थिक सहायता भी पर्याप्त परिमाण में दी है। टस्केगी और हैम्पट के प्रसिद्ध विद्यालय इसी उदार भावना के प्रमाण हैं। हबशी विद्यार्थियों को पर्याप्त शिक्षा देने के ही लिए इनकी स्थापना हुई है।

अमरीका के हबशियों को अपनी दास-वृत्ति से सन् १८६४ में छुटकारा मिला था। यही समय उनके नव जीवन का प्रारम्भ-दिवस माना जाता है। तब से वे बराबर उन्नति करते जा रहे हैं। यहाँ तक कि इन साठ वर्षों में उनकी आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। साठ वर्ष पहले जिस जाति में सौ में दो आदमी भी मुश्किल से लिख-पढ़ सकते थे उसी जाति में आज सौ में पैंसठ आदमी साक्षर होगये हैं। और यह कार्य उन हबशियों ने कर दिखाया है जो अपनी मुक्ति के पहले कोई तीन सौ वर्ष से दास-प्रथा के बन्धन में बँध कर पिसते आ रहे थे। परन्तु दासता के बन्धन से मुक्त होते ही वे अपनी जाति को समुन्नत करने के कार्य में लग गये, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज हम उन्हें एक सभ्य और शिक्षित जाति के रूप में देखते हैं।

सौभाग्यवश उन्हें और भी अधिक समुन्नत कर देने के लिए अमरीका के प्रसिद्ध धन-कुबेर राकफ़ेलर महोदय अब आगे आये हैं। इन्होंने उनकी एक प्रसिद्ध शिक्षा-संस्था को तीस लाख रुपयों का दान दिया है। ये रुपये उस संस्था को इस शर्त पर मिलेंगे कि वह इतनी ही और रक़म चन्दा करके एकत्र कर ले। इसमें सन्देह नहीं कि यह रक़म शीघ्र ही मिल जायगी। इस प्रकार इन साठ लाख रुपयों से शिक्षा-प्रचार का कार्य और भी चारु रूप से होने लगेगा।

अमरीका में इस समय हबशियों के लिए कोई पाँच सौ स्कूल और कालेज खुले हुए हैं। इनमें एक लाख के लगभग विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। इसके सिवा दूसरे सरकारी स्कूलों की भी संख्या मिला देने पर शिक्षा पाने-वाले हबशी विद्यार्थियों की पूरी संख्या बीस लाख पहुँचती है। परन्तु इनकी शिक्षा के मुख्य केन्द्र हैम्पटन-टस्कगी के विद्यालय ही हैं। पूर्वोक्त दान इन्हीं विद्यालयों को दिया गया है। हैम्पटन का विद्यालय सन् १८६८ में ही खुल गया था। इस समय इसमें दो हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। इसमें ढाई सौ शिक्षक हैं। इसकी डेढ़ सौ इमारतें एक हज़ार एकड़ भूमि में फैली हुई हैं।

हबशियों की इस समुन्नति को कम से कम हम भारतीयों के नेता लालचभरी निगाह से अवश्य देख सकते हैं।

४—योरप का स्त्री-समाज।

योरपीय तथा भारतीय स्त्रियों की तुलना करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए लाला लाजपतराय लिखते हैं—योरप में स्त्री-समाज की दशा अत्यन्त उन्नत है। शिक्षा-दीक्षा में उनकी तुलना संसार की इतर जातियों के स्त्री-समाज से नहीं दी जा सकती। वास्तव में वह भी वहाँ के पुरुष-समाज के सदृश सामाजिक, राजनैतिक आदि बातों में बहुत आगे बढ़ गई हैं। उसे सभी तरह की स्वाधीनता प्राप्त है।

परन्तु योरप में भी जो समुन्नत दशा पश्चिमी, उत्तरी तथा मध्य-योरप के स्त्री-समाज को प्राप्त है वह उसके दक्षिण-पूर्वी भाग को नहीं है। परन्तु रूस में शिक्षा के सम्बन्ध में स्त्री-पुरुष का भेद-भाव नहीं रक्खा गया है। इस प्रकार बालकन प्रायद्वीप को छोड़ कर प्रायः समग्र योरप का स्त्री-समाज अधिक समुन्नत दशा में है। और उसकी सबसे अधिक विशेषता इस बात में है कि उसमें सेवा-भाव का संस्कार आ गया है, रोगी-दुखी प्राणियों के काम आने में वहाँ की स्त्रियाँ अपना एकान्त धर्म समझती हैं।

हम भारतीयों को वहाँ की स्त्रियों की वास्तविक दशा का पूरा ज्ञान नहीं है। उनके सम्बन्ध में हमारे विचार भ्रमपूर्ण हैं। हम लोग यह समझते हैं कि योरपीय स्त्रियाँ ख़ाली बैठी रहती हैं और गुलछर्रे उड़ाया करती हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। योरपीय स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक समय तथा कठिन परिस्थितियों में कड़े से कड़े काम करने पड़ते हैं। यह बात सच है कि उनमें भी सभी प्रकार की स्त्रियाँ हैं। जो हाल भारत का है, वही हाल योरप का भी है।

योरपीय स्त्री जैसी परिश्रमशील होती है वैसी ही आनन्द-प्रिय भी होती है। वह धन पैदा करती है और उसे ख़र्च भी करती है। फलतः वह भारतीय स्त्री की अपेक्षा अधिक अच्छी दशा में है।

तो भी भारतीय स्त्रियों की अपनी विशेषता अलग है। वे अधिकतर प्रेमिक, अपने आदर्शों के प्रति अधिक अनुरागशील होती हैं, उनमें त्याग और अनुरक्ति का भाव भी अधिक रहता है। उधर योरपीय स्त्री में स्वाधीन-भावना की मात्रा अधिक रहती है, वह अपना जीवन उसी भावना के अनुसार व्यतीत करना चाहती है। और इस आदर्श-भिन्नता का एक कारण यह भी है कि योरप में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है।

योरप तथा भारत में स्त्रियाँ अधिकांश में वैवाहिक जीवन की इच्छुक रहती हैं। पर योरप में यदि किसी स्त्री का विवाह नहीं हुआ तो उसकी उसे उतनी परवा भी नहीं, भारतीय स्त्रियों की भाँति वह अपने को असहाय तथा दुखी नहीं समझेगी।

परन्तु योरपीय स्त्रियों में अब एक नये भाव का प्रचार हो रहा है। वे भी अपने को भारतीय स्त्रियों की भाँति आभूषणों से अलङ्कृत करना पसन्द करने लगी हैं। चूड़ी, कण्ठी, बाजूबन्द, हार आदि आभूषणों का उनमें भी प्रचार होने लगा है। यद्यपि भारतीय स्त्रियों में आभूषण-प्रेम बहुत अधिक है, तो भी सन्तान-प्रेम में वे संसार में किसी जाति की स्त्री के आगे झुकनेवाली नहीं। हाँ, योरपीय स्त्रियाँ उनकी अपेक्षा अधिक निपुण तथा सावधान माताओं का स्थान ग्रहण करती हैं। वहाँ की स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति व्यायामशील भी होती हैं, जिससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है।

———

Printed and published by K. Mitra, at The Indian Press Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २६, खण्ड १] जून १९२५—ज्येष्ठ १९८२ [संख्या ६, पूर्ण-संख्या ३०६

मुक्ति का द्वार।

(१)

किसी गूढ़ अज्ञात विषय में
लगा हुआ था मेरा ध्यान।
सहसा मुझको हुआ किसी के
आने की आहट का भान।
किन्तु चक्षुओं को चमकाकर
चारु चञ्चलालोक-समान;
पल भर हमको दे निज दर्शन
हुआ अदर्शन वह छविमान।

(२)

क्या मैंने देखा था मुझको,
इसका कुछ भी हुआ न ज्ञान।
पर मेरे नयनों के भीतर
समा गया वह ज्योतिष्मान।
था खिंच गया उसी क्षण मेरे
हृदय-पटल पर उसका चित्र।
हुआ न जाने तब से कैसा
मेरे मन का हाल विचित्र।

(३)

जिधर देखता उधर उसी का
दिखलाई देता प्रतिरूप,
जग में जगती हुई उसी की
ज्योति दीखती मुझे अनूप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों ओर देख पड़ती है
छटा उसी की ही अवदात,
छोटे बड़े सभी जीवों में
अंश उसी का होता ज्ञात।

(४)

सूर्य-शशी के किरण-जाल में,
छिपा उसी का दिव्य प्रकाश,
मुझको मिलता इन्द्र-चाप के
रङ्गों में उसका आभास।
सब चीज़ों में समा रही है
प्रभा उसी की अपरम्पार
हिम-मण्डित पर्वत-शिखरों पर
क्या न उसी का है विस्तार।

(५)

जल के थल के तथा अनल के,
जलनिधि-तल के भी निःशेष,
सदा उसी के ही प्रकाश में
हैं दीखते पदार्थ विशेष।
तन में धन में तथा सुमन में
जन जन में वन में अभिराम,
मुझे दीखती कण कण में भी
ज्योति उसी की शोभाधाम।

(६)

जाना जाना जाना मैंने
है तद्रूप सकल संसार,
मेरे पहले के विचार सब
अब निकले नितान्त निस्सार!
जग की सेवा करना ही बस
है सब सारों का भी सार,
विश्व-प्रेम के बन्धन में ही
मुझको मिला मुक्ति का द्वार।

गोपालशरणसिंह

पेशावर का युद्ध।

अथ क्षमामेव निरस्तविक्रम-
श्चिराय पर्येपि सुखस्य साधनम्।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं
जटाधरः सन् जुहुधीह पावकम्।

(भारवि)

सन् ५३३ ईसवी में कोरूर* के प्रसिद्ध युद्ध में प्रचण्ड हूणों के परास्त हो जाने पर ५०० वर्ष तक कोई विदेशी हमला भारत पर नहीं हुआ। यद्यपि सन् ७११ में अरबों ने क़दम क़दम पर ख़ून की नदियाँ बहाकर सिन्ध-देश जीतकर मुलतान पर दख़ल कर वहाँ के प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर को गिराकर सूर्य भगवान् की स्वर्णमयी रत्न-जटित देशपूज्य प्रतिमा को नष्ट कर डाला, फिर भी देश पर इसका कोई भारी असर नहीं हुआ।

तत्कालीन देश की दशा।

इन पञ्च शताब्दियों में बड़े बड़े परिवर्तन और उथल-पुथल देश में हो गये। देशव्यापी बौद्धधर्म को ब्राह्मणों ने, जो सुंग-वंश के समय से ज़ोर पकड़ रहे थे, इसी काल में भारत से उखाड़ फेंका, किन्तु यह देखकर कि जनसाधारण के हृदय में अहिंसा और (बुद्ध की) मूर्ति-पूजा की जड़ें बहुत गहरी जम गई हैं, बहुदर्शी ब्राह्मणों ने बौद्ध-धर्म को अदल-बदल कर एक नया धर्म चलाया। यज्ञ और श्राद्ध में पशुहिंसा पर ज़ोर न दिया और बुद्ध की पूजा के स्थान में उन तपोबल ऋषियों और सूर्य-सोम-वंशी राजाओं की पूजा, जिन्होंने बुद्ध से पहले असुरों-राक्षसों को मारकर वेदधर्म की रक्षा की थी, विष्णु के अवतार मानकर प्रचलित की और उनकी वीरतापूर्ण कीर्ति-गाथायें, जो प्राचीन काल से प्रचलित थीं और जिन्हें सूत, वाचक, बन्दीजन बड़े बड़े यज्ञों और

---

* यह प्रसिद्ध युद्ध मुलतान के दक्षिण कोरूर नामक स्थान में उज्जयिनी के महाराज यशोधर्मन और हूण-सरदार मिहिरगुल के बीच हुआ, जिसमें हूणों का विनाश हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजसभाओं में गाते थे, इकट्ठा करके पुराणों का निर्माण किया। बहुत से बौद्ध-मन्दिर विष्णु-मन्दिर में बदल दिये गये और असंख्य धन लगा कर बहुसंख्यक बड़े बड़े मन्दिर बड़ी कारीगरी से बनाये गये, बहुत से क्षत्रिय और विदेशी म्लेच्छ जातियाँ बड़े बड़े यज्ञों में शुद्ध कर वेद की शरण में लाये गये।

धर्म परिवर्तन का प्रभाव।

इस धर्म-परिवर्तन से देश भर में घोर अराजकता फैल गई और लगातार युद्ध होने लगे, जिसका परिणाम यह हुआ कि देश में बहुत से छोटे-बड़े स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये। कठोरकर्मा तपस्वी ब्राह्मण, जिनके राजनैतिक ज्ञान की प्रशंसा विदेशी लेखक करते आये हैं, बड़े बड़े समृद्धिशाली मन्दिरों में बड़े ख़र्चीले विधान से बड़े ऐशोआराम के साथ रहने लगे। आर्यों का समूह "विश," जिसमें रहकर कृष्ण बड़े हुए, जिसने कलियुग में भी "गुप्त" और 'वर्धन' सम्राटों को उत्पन्न किया, राजनैतिक अधिकार खोकर सूखी आध्यात्मिक चर्चा और अहिंसा के भाव में फँसकर कायर निस्तेज होकर अनेक जातियों में बँट कर शूद्र और निर्बल बन गया। ६ ठी शताब्दी के मध्यभाग में हर्ष की मृत्यु के बाद भारत ने कोई चक्रवर्ती नहीं उत्पन्न किया। देश-रक्षा का भार उन थोड़े से राजाओं और राजपुत्रों के हाथ में रह गया, जो शूरवीर होने पर भी प्रजा को निर्बल जानकर अविवेकी और उच्छृङ्खल हो गये। अपनी सफलता से उन्मत्त ब्राह्मण घमण्ड से अन्धे हो गये। ऊँच-नीच के विचार ने ज़ोर पकड़ा, विदेशों में आवागमन वर्जित हुआ। इससे लोग कूप-मण्डूक और अज्ञानी हो गये। इस्लाम की भीषण आग से, जो संसार के अधिकांश देशों को जलाकर बड़े वेग से भारत की ओर बढ़ रही थी, देश को कौन बचाता? हाय! इस भारत-भूमिरूपी कामधेनु की रक्षा इन खून के प्यासे भेड़ियों से कैसे हो? आर्यों का वह जगत्प्रसिद्ध बल नहीं रह गया था। उनकी रक्षा करनेवाली वैश्वानर-अग्नि तो वेदान्त और अहिंसा के ठंढे पानी में बुझ गई थी।

भगवान् लोकजित् (बुद्ध), हम मानते हैं कि कुरुक्षेत्र में भुजबल-मदमत्त पुरु-वंश का नाश और प्रभास में बलोद्धत यादवों का संहार देखकर ही तुम्हारा दयामय हृदय करुणा से भर गया था और इसी से तुमने हमको दयामय अहिंसा-धर्म का उपदेश देना उचित समझा। भगवन् धर्मराज (बुद्ध), इससे क्या अनर्थ नहीं हुआ। अत्रि और अङ्गिरा, इक्ष्वाकु और पुरुरवा के बलवान् वंशधर, जो सूर्य के समान तेजस्वी थे, जिनके रथ के पहियों से बड़े बड़े समुद्र बन गये थे, जिनकी ओर देखने का साहस भी किसी में नहीं था, तपोभ्रष्ट हततेज होकर गुलाम बन गये। तुमने हमको बकरी बनाकर हम पर पश्चिम के बर्फ़ीले पहाड़ों से खूँख़ार भेड़ियों के झुण्ड छोड़ दिये।

मुसल्मानों का काबुल पर अधिकार।

सन् ६२२ ईसवी में इस्लाम-धर्म के चलानेवाले की मृत्यु के बाद नये उत्साह नये धर्म से उन्मत्त अरबों ने संसार के अधिकांश देशों को तलवार की नोक पर रख लिया। १०० वर्ष के भीतर ही उन्होंने फ़ारस, लघु एशिया, मिस्र आदि देशों को जीत कर मध्य-एशिया की दुर्धर्ष युद्धजीवी जातियों को वश कर मुसलमान बना डाला। समस्त पश्चिम और मध्यएशिया के मुसलमान हो जाने पर सबों का लक्ष्य भारत ही रह गया। सन् ६६४ में मर्व के सरदार अब्दुलरहमान बिन शिमूर ने सबसे पहले काबुल के बौद्ध शाहिया राजाओं पर आक्रमण किया और काबुल के पश्चिम-देश को उजाड़ कर १२,००० निवासियों को मुसलमान कर डाला। इसके बाद अरबों के हमले काबुल पर लगातार होते रहे। आठवीं सदी में अबूसफरा के मातहत अरबों की एक बड़ी सेना ने काबुल-नरेश को एक युद्ध में हराकर कमज़ोर कर दिया। अन्त में नवीं शताब्दी के मध्यभाग में अरब-सेनापति याकूब ने काबुल पर दख़ल कर नगर को जलाकर निवासियों को मुसलमान बनाया। इस प्रकार विधानुरागी और प्रतापी शाहियों का अन्त हुआ, जिनके लिए कवि-इतिहासकार कल्हण ने शोक के आँसू बहाये हैं।

ग़ज़नी-राज्य की स्थापना।

काबुल जीतकर मुसलमान और आगे बढ़े। सन् ६६० के क़रीब अलगीन नामक एक तुर्क गुलाम ने तीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हज़ार तुर्क-सवारों के साथ नैशापूर से निकल कर काबुल से पूर्व ग़ज़नी के मज़बूत पहाड़ी क़िले पर धावा किया। ग़ज़नी के शूरवीर भाटियों ने, जो यदुवंश की एक शाखा और काबुल के अधीन छोटे सामन्त थे, प्रबल शत्रु से आक्रान्त होने पर क़िला छोड़ लड़ते-भिड़ते निकल गये और सिन्धु-नदी पार कर दक्षिण-पञ्जाब में अपने भाइयों में आ मिले, जो छोटे छोटे क़िलों के मालिक थे। सन् ९७७ में अलपगीन के मरने पर उसका दामाद सुबुक्तगीन अपने बल और बुद्धि से काबुल, खुरासान, जुर्जन, वीस्ट, हिरात आदि देशों को जीत कर पञ्जाब के महाराज जयपाल को एक भारी युद्ध में हराकर पेशावर को अपने राज्य में मिलाकर एक बड़ा बादशाह होकर मरा। इसके बाद जब इसका बड़ा पुत्र महमूद, जो महा-कट्टर मुसलमान, बड़ा दक्ष सेनापति और संसार की नूतन युद्ध-कला में प्रवीण था, अपने छोटे भाई इस्माइल को गद्दी से उतार कर सुलतान की पदवी से बादशाह हुआ तब इसके इस्लामी झंडे के नीचे भारत का धन लूटने के लालच और धर्म-प्रचार के जोश में भरे हुए सिपाहियों का एक ऐसा ज़बरदस्त लश्कर इकट्ठा होगया जैसा दुनिया में किसी बादशाह के पास न था (फ़रिश्ता-विग्ज़-कृत पृष्ठ ३२)। संसार के इस्लामी देशों से चुने हुए वीर घोड़ों पर सवार होकर ग़ज़नी की ओर चल पड़े। यदि महमूद चाहता तो वह अटलांटिक-समुद्र तक की पृथ्वी जीत लेता। किन्तु इस्लाम-धर्म के प्रचार के जोश में भरे हुए महमूद और उसकी प्रकाण्ड सेना का पूरा बल भारत पर ही आ पड़ा।

सुसङ्गठित साम्राज्य न होने पर भी, अहिंसा और वेदान्त की माया में पड़े हुए ब्राह्मण और प्रजावर्ग में राजनैतिक बल न होने पर भी, स्वदेश-स्वधर्म-रक्षा के लिए मातृभूमि की जो सेवा भारत के पुत्रों ने की है वह अपना लिखा इतिहास न होने पर भी संसार के इतिहास में अद्वितीय है, अभूतपूर्व है। संसार के वे देश जो आज स्वतन्त्रता का दम भरते हैं, विदेशी विधर्मी शत्रुओं से आक्रान्त होकर पराजय की कड़ी आँच कभी नहीं सह सके, विजेताओं के ग्रास बनकर उनमें मिल गये, उनका नामोनिशान तक न रह गया। पर आठ सौ वर्ष तक हमने लगातार अपना ख़ून पानी की तरह बहाकर अपना धर्म और अपनी हस्ती क़ायम रक्खी।

महमूद की सेना।

महमूद की सेना में मध्यएशिया के ऐसे एक लाख नौमुसलिम तुर्क-सवार थे जिनकी उम्र घोड़े की पीठ पर ही बीती थी। वे एक दिन में सौ कोस का धावा मार जाते थे।* वे चमड़े के कवच पहनते, बड़े क्रूर और संसार भर में सबसे अच्छे योद्धा और महमूद की सेना का मुख्य भाग थे। इनके सिवा उसके अरब-रिसाला में लोहे का जिरह-बख़्तर पहननेवाले २० हज़ार जगत्प्रसिद्ध अरब-सवार थे। पैदल तीरन्दाज़ सेना में मध्यएशिया के उज़बक आदि जातियों के तुर्क भर्ती थे, जो अपने लम्बे धनुष से निशाना मारने और दूर तक बाण फेंकने में सिद्धहस्त थे। चौथे दल में वे चुने हुए अरब-सिपाही थे जो हाथियों को भगाने के लिए क़िलों से पत्थर फेंकते और आतिशबाज़ी छोड़ते थे। इसी दल में खाई खोदनेवाले, जर्राह और फ़ौज में क़ाफ़िरों को मारकर शहीद या ग़ाज़ी बन जाने का जोश फैलानेवाले मुल्ला भी नियुक्त थे।

हिन्दू-सेना।

बौद्ध-धर्म के प्रभाव में बहुत समय तक रहने से भारतीय आर्यों की रहन-सहन बिलकुल बदल गई थी। वैदिक आर्यों का घोड़े से वैसा उत्कट प्रेम, जिन्हें वे अपने रथों में जोत कर अपने बलशाली हाथों में लोहे के भारी धनुष लेकर दिव्यास्त्रों-द्वारा दस्यु, असुर, राक्षस आदि को सहज में जीत लेते थे, बड़े बड़े यज्ञों में जिनका मांस खाकर बलवान् वीर्यवान् पुत्रों को उत्पन्न करते थे, उनके वंशजों में नहीं रहा। अब भारतीय सेना के मुख्य बल हाथी थे। इन हाथियों में एक बड़ा भारी दोष था। विशालाकार भयङ्कर हाथियों की सेना, जिसे हिन्दू फ़ौज के आगे रखते थे, यदि बढ़ते हुए शत्रु तक पहुँच गई तो अपनी जीत निश्चित है, किन्तु यदि शत्रु ने अस्त्र-शस्त्र फेंक कर या आतिशबाज़ी

* इन्हीं सवारों को लेकर महमूद ने भारत पर १२ आक्रमण कर बड़े बड़े मन्दिरों को उनकी रक्षा के लिए हिन्दुओं के इकट्ठा होने के पहले उनको युद्ध का अवसर ही न देकर लूट लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से* कुछ हाथियों को भयभीत कर लौटा दिया तो अपनी सेना का सर्वनाश होगया। इसी से निपुण सेनापति महमूद ने तातारियों के बादशाह अलिकख़ान के साथ युद्ध में अपने हाथियों को बाज़ू पर रक्खा और उनके आक्रमण से तातारियों को मटियामेट कर डाला।

भारत पर महमूद का पहला आक्रमण।

अपनी विशाल सेना में से बारह हज़ार चुने हुए सवार लेकर महमूद वसन्त-ऋतु में ग़ज़नी से निकला और महाराज जयपाल पर, जो महमूद को रोकने के लिए सिन्धु पार कर पेशावर के पास ६,००० सवार, तीन सौ हाथी और तीस हज़ार पैदल सेना के साथ डेरा डाले पड़े थे, आक्रमण किया। बड़ा भीषण युद्ध हुआ और महाराज की सेना ने बड़ी वीरता से शत्रु का सामना किया, किन्तु तुर्क और अरब-सवारों के भयानक हमले, जो अर्सलान जजीब और अबदुल्लाह तई के सञ्चालन में चारों ओर से लगातार हो रहे थे, देर तक रोक न सके। पाँच हज़ार से अधिक सिपाही और प्रधान वीर मारे गये। बहुत से हाथी तीरों से साही की पीठ बन गये. १५ से अधिक मारे गये, बाक़ी घायल होकर अपनी सेना को कुचलते हुए भाग निकले। अपने १५ भाई-भतीजों और प्रधान सरदारों के साथ महाराज क़ैद हो गये।

अफ़ग़ानों का क़त्ल।

इस रक्तवर्षी युद्ध में फ़तह पाकर महमूद ने बड़ा धन पाया। महाराज जयपाल के बहुमूल्य डेरों को लूट कर जयपाल और सरदारों को बँधवा कर उनके गले से रत्न-जटित हार उतरवा लिये, जिनमें अकेले महाराज का ही हार दस लाख रुपये से अधिक मूल्य का था। क़ैदियों का प्रबन्ध कर महमूद ने सिन्धु पार कर राजधानी भटिंडा को घेर लिया। लेकिन उसे मज़बूत पाकर मन्त्रियों से ख़िराज ठहरा कर सुलह कर ली। उसने महाराज जयपाल को सरदारों के साथ छोड़ दिया, लेकिन उन पहाड़ी सरदारों को, जो पेशावर के आस-पास रहते थे, इस्लाम-धर्म स्वीकार न करने पर क़त्ल करवा डाला। क़ैद से छूट कर पराजय और अपमान से सन्तप्तहृदय जयपाल अपने पुत्र अनङ्गपाल को राज्य देकर शरीर में एक बूँद रक्त रहते मुसलमानों का सामना करने की आज्ञा देकर तुषानल में प्रवेश कर गये।

*अरबों ने सिन्ध की लड़ाई में हाथियों पर आग के गोले फेंके। इन गोलों को अरबी फ़ौज में हुक्का कहते थे।

भटनेर पर दूसरा आक्रमण।

राजगद्दी पर बैठकर अनङ्गपाल मन्त्रियों से परामर्श कर ख़िराज देने के लिए प्रजा और सामन्तों से धन इकट्ठा करने लगे। किन्तु जब भटनेर* के राजा से उनके हिस्से का धन माँगा गया तब यदुवंशावतंस त्रिजयचन्द्र ने देश और धर्म के शत्रु की अधीनता मानने से साफ़ इनकार कर दिया। इतना ही नहीं, इस पुरुष-सिंह ने अपने ५,००० शूरवीर भाटियों को, जिनके घोड़ों पर से ज़ीन और शरीर से कवच कभी उतरते ही नहीं थे, जो बड़े धनुर्धर और अपने शस्त्राभ्यास और असीम साहस के लिए भारत में प्रसिद्ध थे, साथ लेकर क़िले से स्त्री-बच्चों और ख़ज़ाने को हटाकर क़िले से एक मंज़िल आगे बढ़कर एक ऊँचे स्थान पर पड़ाव डालकर उसे महमूद के आकस्मिक हमले से बचाने को ख़ूब मज़बूत कर लिया और मुलतान के हाकिम अबुलफ़तह दाऊद का ख़ज़ाना, जो ग़ज़नी जा रहा था, छापा मार कर लूट लिया।

भाटियों से महमूद का घोर युद्ध।

अबुलफ़तह और अनङ्गपाल का पत्र पाकर महमूद चुटीले साँप की तरह ५०,००० दुर्भेद सवारों को लेकर सन् १००३ में भटनेर पर टूट पड़ा और अपने नियमानुसार सेना सजाकर चट्टान की तरह अटल भाटियों पर तीनों ओर से सवारों का ज़बरदस्त हमला किया। क्रोध से होठ काटते हुए भयरहित भाटियों ने अपने लोहे के धनुषों से धर्मद्रोही शत्रुओं पर बाणों की भयानक वर्षा कर कितने ही घोड़ों की पीठ ख़ाली कर दी। भारी हानि सह कर मुसलमानी फ़ौज को पीछे हटना पड़ा।

तीन दिन तक अल्ला हो अकबर के नारे मार कर

*मुसलमान तवारीख़ लिखनेवालों ने इस स्थान का नाम "भटिया" लिखा है। स्थान का निर्णय योरपीय विद्वानों ने नहीं कर पाया, किन्तु राजा शिवप्रसाद का भटनेर मानना ठीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने जगत्प्रसिद्ध सवारों से महमूद ने इन मुट्ठी भर भाटियों पर हमले पर हमले किये, किन्तु नरशार्दूल भाटियों ने एक इञ्च ज़मीन नहीं छोड़ी। यदुकुल-केशरी विजयचन्द्र ने अपने प्रसिद्ध गजराजों के पैर, जो सेना के आगे खड़े थे, लोहे की ज़ञ्जीरों से बँधवा दिये। महमूद के बड़े बड़े नामी सामन्त और बहुत से सिपाही खेत रहे, फ़ौज के हौसिले पस्त हो गये। मुसलमानी सेना का इतना भारी नुक़सान हुआ जितना पहले कभी किसी युद्ध में नहीं हुआ था। चौथे दिन जब महमूद ने सेना को आक्रमण करने की आज्ञा दी तब अजेय तुर्क-सवारों के पैर आगे न बढ़े। उनकी दशा उस बकरे की सी हो गई जो शिकार में शेर को बुलाने के लिए बाँध दिया गया हो। शाहज़ादा नसीर और अर्सलान जजीब आदि प्रधान सरदार लौट चलने के लिए सुलतान से अर्ज़ करने लगे। (किताब ६ यामिनी अनु० पेज ४०)

भटनेर पर क़ब्ज़ा।

अपनी अजित प्रकाण्ड सेना की हार देखकर दृढ़-प्रतिज्ञ सुलतान घायल शेर की तरह भड़क उठा। उसने जोश में आकर अपने हाथ में इस्लामी झंडा लेकर मक्के की ओर देखकर क़सम खाई कि आज "या तो फ़तह है या मौत"। फिर उसने झंडा हाथ में लेकर अपनी समग्र सेना के साथ भाटियों की पङ्क्ति पर भीषण आक्रमण किया। 'अल्ला हो अकबर' के नारे लगाती समुद्र की लहर की तरह गरजती सेना को जमे क़दम आती देख अपने अमूल्य जीवन से भारत-भूमि की और भी सेवा करने के लिए वीर विजयचन्द्र ने अपनी टूटी-फूटी सेना को, जिनमें दो हज़ार योद्धा बच रहे थे, पीछे हटकर भटनेर के दृढ़ क़िले में आश्रय लेने की आज्ञा दी और युद्धस्थल छोड़कर ५०० वीरों के साथ क़िले में पहुँच गये। किन्तु इस आज्ञा को उन शूरवीर भाटियों ने जो अपने ख़ून से मातृभूमि की पूजा करना चाहते थे नहीं माना। ऐसे पुनीत समय में क्या सच्चे क्षत्रिय पीछे हटते हैं। ये थोड़े से वीर अपने घोड़े आगे बढ़ाकर तुर्क-सेना में पिल पड़े। बड़ा घोर युद्ध हुआ, खूब जमकर तलवारें चलीं, सुलतान के आस-पास नामी नामी वीर काम आये, खुद सुलतान भी घायल हो गया। हतोत्साह होकर तुर्क-सेना आगे न बढ़ सकी।

रात बीतने पर महमूद ने सेना आगे बढ़ाकर भटनेर को चारों ओर से घेर लिया और चाहा कि हल्ला कर क़िले पर दख़ल कर लें, किन्तु बचे-खुचे थोड़े से भाटियों ने ऊँची दीवार पर से तीरों की भयानक मार कर शत्रु को बार बार पीछे हटा दिया। यह देखकर महमूद ने अपने सेनापतियों को मिट्टी डालकर खाई पाटने का हुक्म दिया। मुसलमानी सेना का यह उद्योग देखकर और अपने इने-गिने सिपाहियों से क़िले की रक्षा असम्भव समझकर उन सरदारों और सिपाहियों को जो उस क़िले की रक्षा के लिए जिसमें उन्होंने जन्म लिया था, सुख दुख भोगे थे, प्राण देने को दृढ़प्रतिज्ञ थे क़िले में छोड़ कर अपने दस वीरों के साथ अँधेरी रात में कमन्द लटकाकर दीवार से उतर गये और खाई पारकर हरिन के झुंड में सिंह की तरह शत्रुओं को मारते-काटते शत्रु-सेना को चीरते निकल गये (फरिश्तः पृष्ठ ३६) और निःशंक होकर पास की पहाड़ी पर घने जङ्गल में घुस गये। आश्चर्य-चकित महमूद ने अपने दो हज़ार चुनिन्दा सवारों को महाराज के पीछे भेजकर पहाड़ को गर्दन में हार की तरह घेर कर आग लगवा दी और समूची सेना से भटनेर पर आक्रमण कर भटनेर के क़िले और नगर पर, जिसके सब रक्षक मारे जा चुके थे, दख़ल कर आग लगाकर भस्म कर दिया और अपने सरदारों में से एक को कुछ सेना के साथ छोड़कर फ़तह का डङ्का बजाते वह ग़ज़नी को लौट पड़ा। धन्य विजयचन्द्र धन्य! तुम जैसे पुत्र उत्पन्न कर भारत-भूमि पुत्रवती है। यद्यपि तुम्हारा इतिहास देशवासियों ने नहीं लिखा, केवल मुसलमान इतिहास-लेखकों के भाव ही हमने शब्दों को उलट-पुलट कर लिख दिये हैं, फिर भी तुम्हारी वीरता थर्मापाली के वीरों से कम नहीं है। थर्मापाली में स्पार्टा के आठ सौ शूरवीरों ने ऐयाश फ़ारसी-सेना का सामना पहाड़ की आड़ से किया था, लेकिन वीर-शिरोमणि तुमने अपने पाँच सौ वीरों के साथ दुनिया की सबसे बलिष्ठ सेना का सामना मैदान में कर उसे मथकर उसका मुँह मोड़कर भारत का पानी रक्खा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनङ्गपाल पर तीसरा हमला ।

सन् १००५ में मुलतान के हाकिम अबुल फ़तह दाऊद ने अपने प्राचीन बौद्ध-धर्म को ग्रहण कर इस्लाम-धर्म छोड़कर महाराज अनङ्गपाल से सन्धि कर महमूद को कर भेजना बन्द कर दिया । यह ख़बर सुनते ही महमूद एक लाख सवारों के साथ ग़ज़नी से निकला और अनङ्गपाल की सेना पर, जो सिन्धु नदी पार कर पेशावर के पास छावनी डाले पड़ी थी, आक्रमण किया । सुबह से शाम तक लड़ाई होती रही । अन्त में भारतीय सेना दबकर पीछे हटी और मैदान छोड़कर भाग निकली । अपने सवारों के मज़बूत दलों को लेकर महमूद ने महाराज अनङ्गपाल का पीछा चिनाब नदी तक किया । किन्तु जब सुना कि महाराज उत्तर को मुड़कर पहाड़ों से होते हुए काश्मीर की ओर निकल गये तब सुलतान ने अपने घोड़ों की बाग राजधानी भटिंडे की ओर मोड़ी और मार्ग में नगरों-ग्रामों को जलाकर ख़ाक-स्याह करता लूटता-फूँकता भारत की सर ज़मीन को उसके पुत्रों के ख़ून से तर करता भटिंडे के सुन्दर नगर और उसके मन्दिरों को मटियामेट करता मुलतान पहुँचा और क़िले को घेर कर सात दिन में सर कर लिया और अबुल फ़तह को क़ैद कर भटिंडा और मुलतान का अधिकार सुखपाल* को देकर हिरात के हाकिम अर्सलान जज़ीब का पत्र पाकर कि तातार के बादशाह एलिक ख़ान ने ख़ुरासान पर हमला किया है, अपनी सेना के साथ झटपट ग़ज़नी को लौट गया और एक भयानक युद्ध में तातारियों को ऐसी कड़ी शिकस्त दी कि महमूद के जीवन में फिर तातारियों ने इधर नदी पार करने का साहस नहीं किया ।

सुखपाल का विद्रोह, चौथा हमला ।

महमूद को तातारियों के साथ सङ्ग्राम में फँसा देखकर सुखपाल ने स्वतन्त्रता का डङ्का बजा दिया, इस्लाम-धर्म छोड़कर सेना इकट्ठा करने लगे और भटिंडे को मज़बूत कर सिन्धु नदी के किनारे अपनी सेना का पड़ाव डाल दिया और नदी के किनारे दूर तक तीरंदाज़ों के दृढ़ दलों को फैला दिया कि शत्रु नदी पार न करने पावें । महमूद ने जासूसों से ख़बर पाकर बड़ी तेज़ी से चुपचाप नदी पार कर सुखपाल की सेना पर पीछे से प्रचण्ड हमला किया और बात की बात में उन्हें क़ैद कर ग़ज़नी भेज दिया ।

हिन्दू और हिन्दू-धर्म के नाश के लिए विकट प्रयत्न ।

इस समय इस्लाम का प्रतापसूर्य अपनी प्रखर किरणों से संसार के अधिकांश देशों को जला रहा था । बग़दाद के ख़लीफ़ा और संसार के अन्य इस्लामी देशों के राजदूत महमूद के पास क़ीमती नज़रों और चुने हुए नामी सिपाहियों के साथ आने लगे । बड़े बड़े नामी फ़क़ीर और धर्मप्रचारक, आलिम-फ़ाज़िल, हकीम और कारीगरों से ग़ज़नी का शहर भर गया । बड़े बड़े जोशीले उपदेशक भारत के धनी और शूरवीर काफ़िरों का नाश करने के लिए दिये गये । सेना में हर सिपाही एक-दिल एक-विचार और जान देकर इस्लाम फैलाने और असंख्य धन और गुलाम लूटने के जोश से भरा हुआ था । ऐसे दो लाख रण-दुर्मद सवारों को साथ लेकर महमूद सन् १००८ में भयङ्कर और अशुभ साल में वैशाख महीने में अपनी रक्षा के लिए भारतीय सेनाओं के एकत्र होने के पहले ही एकाएक आक्रमण कर भारत के धन-रत्नों से भरे विशाल मन्दिरों को तोड़ने, तीर्थों का नाश करने और ब्राह्मणों का सिर काट कर इस्लाम फैलाने के लिए ग़ज़नी से निकल पड़ा ।

इन बातों से भारतवासी बेख़बर नहीं थे । अभी सिन्धुदेश की भूमि ख़ून से तर थी, सूर्य-मन्दिर के नाश का घाव भारत के हृदय से सूखा नहीं था । पञ्जाब की उर्वरा भूमि श्मशान हो रही थी, अब इस भीषण समाचार ने देश को कँपा दिया । किन्तु कोई दृढ़ साम्राज्य न होने पर भी, जो देश की सारी शक्तियों का उपयोग करता, देश के छोटे छोटे राज्यों में बँट जाने पर भी, बौद्ध और जैन-धर्मों के उपदेश से आर्यों की प्राचीन वीरता के नष्ट हो जाने पर भी, भारत के सपूतों ने कोई बात उठा न रक्खी, किन्तु परमात्मा को यही मंजूर था कि यह हरा-भरा बाग़ उजड़ कर मरुभूमि बन जाय ।

* ये सुखपाल महाराज जयपाल के भाई थे, पेशावर की लड़ाई में क़ैद होकर मुसलमान होगये थे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्रता के लिए अनङ्गपाल का उद्योग।

देशभक्त अनङ्गपाल ने, जो एक सिपाही और शरीर में एक बूँद रक्त रहते भारत की स्वतन्त्रता और धर्म की रक्षा के लिए सुलतान से युद्ध करने की प्रतिज्ञा अपने पिता से कर चुके थे, भारत के हर एक नरेश के पास पत्र देकर अपने विश्वासी दूतों को भेजा कि यह इस्लामी आग पञ्जाब को जलाती हुई आगे बढ़ेगी और आप सबको भस्म कर देगी इससे यदि प्राण और प्राण से भी प्यारे धर्म और देश की रक्षा चाहते हो तो सेनासहित आकर हमारे साथ अमरकीर्ति को प्राप्त करो। इसके बाद वे बड़े उत्साह से अपने पाँच हज़ार शूरवीरों के साथ पहाड़ों से निकल कर सिन्धुनदी पार कर गये।

प्राचीनकाल से काश्मीर और सिन्धुनदी के दोनों किनारे की पहाड़ियों पर 'केकय' नामधारी चन्द्रवंश की एक शाखा राज्य कर रही थी। किन्तु ईसवी सन् के आरम्भ-काल में कनिष्क आदि शक-सम्राटों के प्राबल्य में ये लोग राज्य-भ्रष्ट होकर हीनदशा में सिन्धु के आस-पास छोटे छोटे प्रजातन्त्र बनाकर रहने लगे थे। ये क्षत्रिय बड़े उग्र, शूरवीर और कठोरकर्मा थे। अनङ्गपाल ने सुचतुर ब्राह्मणों को भेजकर इन वीरों को अपनी ओर कर लिया, और तीस हज़ार केकयों (जो अब गक्कर कहलाते हैं) की कुमक पाकर ख़ैबर का रास्ता रोक लिया। उन्होंने बड़ी सावधानता के साथ दुरारोह पहाड़ियों पर गक्कर तीरंदाज़ों को रक्खा और अपने हाथियों को पहाड़ियों के नीचे, जिसमें भागने पर वे अपनी ही सेना की हानि न कर सकें।

युद्ध का आरम्भ।

अनङ्गपाल के इस अपूर्व साहस और रण-कौशल का हाल जासूसों से सुनकर दो लाख सिपाहियों के साथ बड़ी तैयारी से सुलतान ग़ज़नी से आगे बढ़ा और अपने नियमानुसार सेनापतियों को शत्रु पर हमला करने का आदेश दिया। किन्तु दुर्गम चट्टानों पर जमे हुए गक्कर तीरंदाज़ों से उनको भारी हानि उठाकर भागना पड़ा। पैदल सवारों के लगातार हमले और अनेक छल-बल करके भी घोर प्रयत्न के साथ युद्ध करके भी सुलतान गक्करों को पहाड़ियों से न हटा सका। उसके सब प्रयत्न विफल होगये।

अनङ्गपाल का यह वीरतापूर्ण कार्य भारत भर में बिजली की तरह फैल गया। कन्नौज, अजमेर, कालिन्जर, उज्जयिनी और त्रिपुरी के बलशाली राजाओं ने अपनी अपनी सेनायें एक बार भारत की स्वतन्त्रता की रक्षा के अर्थ अनङ्गपाल की सहायता के लिए भेजीं। देश के हर कोने से वीर लोग धर्म और देश के लिए सम्मुख युद्ध में मर कर अक्षय लोक पाने के लिए शस्त्रों को सँभाल पञ्जाब की ओर चल पड़े। भारत की स्त्रियों ने अपने युद्धोन्मुख पतियों और भाइयों को सेना के ख़र्च के लिए अपने प्राणप्रिय गहने दे दिये। हर एक मन्दिर-देवालयों में ब्राह्मण प्रचण्ड देशद्रोही शत्रु के नाश के लिए प्रार्थना-पूजा में निरत हुए। थोड़े ही दिनों में एक भारी सेना अनङ्गपाल की सहायता के लिए एकत्र होगई। आह! यदि यह भीड़-भाड़ नियमबद्ध होकर किसी एक प्रवीण सेनापति के सञ्चालन में होती तो निश्चय है कि युद्ध का परिणाम कुछ और ही होता। इस सेना का भरसक प्रबन्ध कर अनङ्गपाल महमूद को, जो कुछ पीछे हटकर खाई खोद मज़बूत क़िलेबन्दी करके बैठ गया था, तीन ओर से घेर लिया।

महमूद की रणनीति।

महमूद ने, जो संसार में सबसे बड़ी ज़बरदस्त सेना का अधिपति होते हुए खुद भी दुनिया के नामी सेनापतियों में था, क्रोध में भरा हुआ हिन्दुओं का भारी लश्कर देखकर अपने आक्रमण रोक कर कुछ पीछे हटकर गहरी खाईं चारों ओर खुदवा कर सेना को सुरक्षित किया, और सेनापतियों से परामर्श कर इतिहास-प्रसिद्ध रोमन-सेना-पति सीज़र की वह रणनीति, जो उसने "एम्रिस" के युद्ध में काम में लाकर पाम्पी पर विजय पाई थी, काम में लानी निश्चित की। अर्थात् उसने पहली खाईं के बाद सेना के मध्यभाग में एक और गहिरी खाईं खुदवाई, जिसमें यदि शत्रुसेना ज़ोर पकड़ कर पहली खाईं में घुस आवे तो दूसरी खाईं पर उसे रुकना पड़े और उस रुकी हुई सेना पर क़िलेबन्दियों से बाण और पत्थरों की वर्षा कर उसका नाश कर दिया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गक्करों का भीषण हमला ।

चालीस दिन दोनों सेनायें आमने-सामने पड़ी रहीं। इन दिनों बराबर कुमक पाते हुए हिन्दुओं ने मज़बूती के साथ तीन ओर से महमूद को घेर लिया। महमूद जानता था कि समय बीतने पर हिन्दी सेना बेसब्र बेक़ायदे होकर टूट पड़ेगी और हुआ भी यही। क्रोध से अधीर होकर अनङ्गपाल ने शत्रु के ६,००० मशहूर तुर्क तीरंदाज़ों पर, जो खाईं पर सबसे आगे हिरावल में थे, गक्कर सरदारों को धावा करने की आज्ञा दी। शरीर पर मोटे कम्बल कवच की तरह रस्सियों से बाँधे नङ्गे पैर नङ्गे सिर अपने लम्बे बालों को सिर पर मज़बूत बाँधे हुए शूरवीर गक्कर मातृभूमि से उऋण होने के लिए दोनों हाथों में लम्बी सीधी तलवारें, जिनके क़ब्ज़े कुहनी की रक्षा करते हुए ढाल का काम भी देते थे, घुमाते हुए चीते की तरह खाईं पार कर मुसलमानी सेना में घुस पड़े। भयानक युद्ध मच गया, बात की बात में उज़बक धनुर्धरों को घास की तरह काटकर वीर गक्कर अरब और तुर्क रिसालों पर, जो दोनों बग़लों से अपने प्रसिद्ध सेनापति अबदुल्लहतई और अर्सलान जज़ीब के सञ्चालन में हमले कर रहे थे और सामने शाहज़ादे नसीरुद्दीन युसुफ़ की पैदल फ़ौज पर टूट पड़े।

गक्कर सरदारों को आगे बढ़कर सुलतान की ख़ास सेना तक पहुँचने से पहले दोनों बग़लों से प्रसिद्ध तुर्क-रिसालों के कड़े हमलों को रोकना पड़ा। १५ हज़ार गक्कर इस आक्रमण में खेत रहे। फिर भी शूरवीर गक्कर अपने भाइयों के शरीरों पर पैर रखते हुए आगे ही बढ़ते गये, किन्तु उनके आक्रमण की तीव्रता कम होती गई। उनके नामी नामी वीर और सरदार काम आगये। सेनापति अनङ्गपाल ने गक्करों की अपूर्व वीरता से उत्साहित होकर समस्त सेना को आक्रमण करने की आज्ञा देकर अपने प्रसिद्ध हाथी को गक्करों की मदद के लिए आगे बढ़ाया। बड़े वेग से हर हर शब्द से शत्रुओं के हृदयों को कँपाती प्रलयपयोधि की तरह गर्जती हिन्दी-सेना उन पैदल और सवारों को, जो गक्करों से युद्ध कर रहे थे, मटियामेट कर महमूद की रक्षित सेना पर टूट पड़ी। किन्तु आगे बढ़कर उसे एक-दम रुक जाना पड़ा।

देश और धर्म के लिए ।

अनङ्गपाल के आगे बढ़ते ही और डङ्के पर चोट पड़ते ही समूची हिन्दी-सेना, जो तीन ओर से क़िलेबन्द मुसलमानी सेना को घेरे हुई थी, धर्म के जोश से भरकर अपने सामने भारी रुकावट देख कर भी पीछे न हटी। अपने हाथियों, घोड़ों और लाशों से खाईं पाट कर वीर क्षत्रिय दाँतों से होंठ काटते हुए महमूद पर पिल पड़े। किन्तु यह आक्रमण नियमबद्ध सेना का न था, जो समय पर अपनी हानि देख कर लौटाई जा सके। उसका हमला बरसात में बढ़ी हुई नदी की तरह था, जो पेड़ों को उखाड़ती गरजती बढ़ती ही चली जाती है। अपनी सेना की नाज़ुक दशा देख कर रणधीर महमूद ने बड़ी धीरता और नियम से क़िलेबन्दी पर मज़बूती से जमी हुई अपनी पैदल सेना को, जो शाहज़ादे नसीरुद्दीन युसुफ़ के अधीन थी, खाइयों में रुकी हिन्दी सेना पर हमला करने का हुक्म दिया।

तीर-बर्छे और भारी पत्थरों की भीषण मार से भारतीय सेना का भारी नुक़सान हुआ, नामी नामी सेनानायक मारे गये। जो हिन्दू सिपाही खाईं पार कर क़िलेबन्दियों पर चढ़ भी गये थे वे वीरता के साथ मारे गये। मौक़ा देखकर अरब-पैदलों ने, जो इसी समय के लिए यहाँ तैनात थे, अनङ्गपाल के हाथी पर, जो खाईं पर रुका हुआ था, बाण और आतिशबाज़ी की भीषण बौछार की। आतिशबाज़ी के भयानक शब्द और शस्त्र-प्रहारों से अनेक गहिरी चोटें खाकर और महावत के मारे जाने पर गजराज भड़क उठा और चिंघाड़ कर पीछे को मुड़ कर भागा।

अवसान ।

भँवर में पड़े जहाज़ की तरह हिन्दी-सेना को डाँवाडोल देखकर महमूद अपने प्रसिद्ध सवारों के साथ आगे बढ़ा और अन्तिम और प्रचण्ड हमला उखड़ी हुई भारतीय सेना पर किया। इस भीषण हमले को न सह कर सेनापति को भागता समझ कर दिल छोड़ कर निर्लज्ज क्षत्री प्राणों के मोह से पलट कर भाग निकले। एक लाख से अधिक वीरों ने अपने रक्त से मातृभूमि की पूजा की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुर्क और अरब सत्तार-फ़ौजों ने सिन्धु तक हिन्दी फ़ौजों का पीछा कर २०,००० सिपाहियों को मार गिराया। पेशावर से सिन्धु तक की पृथ्वी अपने रक्त से सींच कर सूखते हुए वैदिक धर्मरूपी वृक्ष की रक्षा कर एक लाख से अधिक वीर इस लोक में अक्षय कीर्ति छोड़ कर सूर्य-मण्डल को भेद कर निकल गये, जिसको (धर्म-वृक्ष) हरा रखने के लिए भारत के पुत्रों को एक हज़ार वर्ष अपना खून पानी की तरह बहाना पड़ा। इस भीषण दृश्य से और भारत की दुर्दशा से जिनका मुख मारे लज्जा के लाल हो गया था वे भगवान् दिनकर भी अस्ताचल की ओर जा छिपे। उनके साथ साथ सेनापति अनङ्गपाल भी अपने पुत्र त्रिलोचनपाल को बचे-खुचे योधा और भूमि देकर अदृश्य होगये! दूसरे दिन भारत में फिर सूर्योदय हुआ, लेकिन आह ? वह सूर्य जो इस युद्ध के पहले भारत पर प्रकाश डालता था फिर नहीं उदय हुआ।

वेणी शुक्ल

सांख्य-दिग्दर्शन।

सांख्यदर्शन के आदि-आचार्य कपिल हैं, यह सर्वसम्मत है। विज्ञानभिक्षु के भाष्य से युक्त जो सूत्र कपिल के कहे जाते हैं वे वस्तुतः कपिल-रचित नहीं, यह कई एक अनुसन्धान-कर्त्ता पण्डितों का मत है। अपने मत की पुष्टि में उनकी युक्ति यह है कि श्रीशङ्कराचार्यजी ने या अन्य प्राचीन जैन एवं बौद्ध विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में जहाँ कहीं सांख्यसिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए या खण्डन करते हुए सांख्यसिद्धान्तों के प्रतिपादक किसी ग्रन्थ का उल्लेख किया है, वहाँ ईश्वर-कृष्ण-रचित सांख्य-कारिका का ही। सांख्यदर्शन के सूत्रों का उल्लेख किसी ने नहीं किया।

महाभारत के अन्तर्गत शान्तिपर्व के तीन सौ अठारहवें अध्याय में भगवान् कपिल के अतिरिक्त जैगीषव्य, असित, देवल, पराशर, वार्षगण्य, भृगु, पञ्चशिख, शुक, गौतम, आर्ष्टिषेण, गर्ग, नारद, आसुरि, पुलस्त्य, सनत्कुमार, शुक्र, कश्यप, रुद्र नाम के अन्य सांख्याचार्यों का भी उल्लेख है।*

इनमें से पञ्चशिखाचार्य के कुछ वचन योगदर्शन के व्यास-भाष्य में मिलते हैं, जिन पर विज्ञानभिक्षु-रचित भाष्य है। उन सांख्यसूत्रों में भी पञ्चशिख का नाम आया है।

आधेय शक्तियोग इति पञ्चशिखः। ५ अ० सू० ३२

अविवेकनिमित्तो वा पंचशिखः। ६ अ० ६८ सू०

इस सूत्र के अगले सूत्र में सनन्दनाचार्य का नाम आया है।

लिङ्गशरीरनिमित्तक इतिसनन्दनाचार्यः।

६ अ० ६९ सू०।

योगसूत्रों के व्यास-भाष्य में वार्षगण्य का एक वचन है।

मूर्त्तिव्यवधिजातिभेदाभावान्नास्ति पृथक्त्वमिति वार्षगण्यः।

उद्योतकराचार्य ने न्यायवार्त्तिक के चतुर्थ सूत्र की व्याख्या करते हुए भगवान् गौतम के प्रत्यक्ष-लक्षण के समर्थन तथा वसुबन्धु, दिङ्नाग और जैमिनि के प्रत्यक्ष-लक्षणों के खण्डन के अनन्तर साङ्ख्यों के प्रत्यक्ष-लक्षण के खण्डन के लिए सांख्यसम्मत प्रत्यक्ष-लक्षण को इस प्रकार लिखा है।

"तथा श्रोत्रादिवृत्तिरिति"।

इस पर न्यायवार्त्तिक की तात्पर्य-टीका नामक व्याख्या में श्रीवाचस्पति मिश्र का कथन है—

"वार्षगण्यस्यापि लक्षणमयुक्तामित्याह—श्रोत्रादिवृत्तिरिति"। अर्थात् वार्षगण्य का भी लक्षण अयुक्त है, इसलिए कहते हैं श्रोत्रादि इत्यादि। इससे प्रतीत होता है कि यह

---

* जैगीषव्यस्यासितस्य देवलस्य मया श्रुतम्।
पराशरस्य विप्रर्षेर्वार्षगण्यस्य धीमतः॥
भृगोः पञ्चशिखस्यास्य कपिलस्य शुकस्य च।
गौतमस्यार्ष्टिषेणस्य गर्गस्य च महात्मनः॥
नारदस्यासुरेश्चैव पुलस्त्यस्य च धीमतः।
सनत्कुमारस्य ततः शुक्रस्य च महात्मनः॥
कश्यपस्य पितुश्चैव पूर्वमेव मया श्रुतम्।
तदनन्तरञ्च रुद्रस्य विश्वरूपस्य धीमतः॥
म० शा० अ० ३१८ श्लो० ५९। ६०। ६१। ६२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचन भी वार्षगण्य का है। अन्तिम सांख्याचार्य भगवान् ईश्वरकृष्ण की सांख्य-सन्तति प्रसिद्ध है। सांख्यज्ञान कपिल से आसुरि और आसुरि से पञ्चशिख के पास गया। पञ्चशिख से भार्गव, उलूक, वाल्मीकि, हारीत देवल आदि को मिला। इनसे ईश्वरकृष्ण ने प्राप्त किया।* ईश्वरकृष्ण की कारिकाओं के चार व्याख्यान प्रसिद्ध हैं। वाचस्पतिमिश्ररचित सांख्यतत्त्वकौमुदी—नारायण-कृत चन्द्रिका—माठरवृत्ति—गौडपादाचार्य-कृत भाष्य। इनमें सांख्यतत्त्व-कौमुदी सांख्यसिद्धान्तों का समर्थन तथा परपक्ष का निराकरण दृढ़ हेतुओं द्वारा चारुरूप से करती है। माठरवृत्ति में सांख्य-मत का प्रतिपादन सरल और स्पष्टरूप से है। अन्य व्याख्याओं में ऐसी कोई बात नहीं जो इन दो में न हों।

ऊहः शब्दोऽध्ययनं (सां० का० ५१) इत्यादि कारिका की व्याख्या में वाचस्पति ने ऊह आदि सिद्धियों का स्वमतानुसार निरूपण करने के अनन्तर अन्य मतानुसार सिद्धियों का जो स्वरूप निर्देश किया है वह माठर-मत है। यह सांख्यतत्त्व-कौमुदी और माठरवृत्ति के आलोचन से प्रतीत होता है। माठर की प्राचीनता में एक यह भी प्रमाण है।

माठरवृत्ति कुछ एक स्थलों में सांख्यतत्त्व-कौमुदी से विरुद्ध है। द्वितीय कारिका यह है—

दृष्टवदानुश्राविकः सह्यविशुद्धः क्षयातिशययुक्तः।
तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्॥

माठरवृत्ति में इसका अर्थ यह है—त्रिविध दुःख के विनाश के लिए दृष्ट उपायों के समान श्रुतिप्रतिपाद्य अग्निहोत्रादि भी अनुपयुक्त हैं। अग्निहोत्रादि वैदिक उपाय पशुहिंसा के बिना नहीं होता अतः अशुद्ध है। स्वर्गादि की प्राप्ति भी कुछ समय के लिए होती है, सदा के लिए नहीं। धनी को देखकर जैसे दरिद्र दुःखी होता है, वैसे ही स्वर्ग में सौ अप्सराओंवाले स्वर्ग के प्राणी को देखकर जिसके पास पाँच अप्सरायें हैं उसे दुःख होता है। भाव यह कि ज्वरादि दुःख जैसे ओषधि आदि दृष्ट उपायों से कभी कभी नहीं नष्ट होते, इसी प्रकार अग्निहोत्रादि उपायों से भी कभी कभी फल नहीं होता। मध्यमपिण्डं पुत्रकामा पत्नीप्राश्नीयात् "आधत्त पितरो गर्भम्" इति मन्त्रेण। अर्थात् पुत्राभिलाषिणी पत्नी "आधत्त पितरो गर्भम्" इस मंत्र के साथ मध्यमपिण्ड को खाय। इस वेदवचन की आज्ञा से अनेक पिण्डों के खाने पर भी पुत्र नहीं होता। वेदवचन है—"पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्" अर्थात् सौ वर्षपर्यन्त देखें और सौ वर्षपर्यन्त जीवित रहें। परन्तु मृत्यु का कोई नियम नहीं। गर्भ में मृत्यु हो जाती है, बाल्यकाल में या यौवन में भी मृत्यु हो जाती है। यज्ञविधि के प्रतिपादक कल्पसूत्रों में निन्दनीय कार्यों का भी उपदेश है। अग्निष्टोम में पशुवध, नरमेध में मनुष्यवध, शौत्रामणी में सुरापान और विधवा के साथ ऋत्विजों का असङ्गत संलाप किया जाता है। इसलिए दृष्ट और वैदिक उपायों से विपरीत उपाय कल्याणकारी है। व्यक्त, अव्यक्त और पुरुष इन तीनों के ज्ञान से उसकी प्राप्ति होती है। इस ज्ञान से फल अवश्यम्भावी है। यम, नियमादि युक्त होने से यह उपाय शुद्ध है। जन्म-मरण का चक्र सर्वदा के लिए दूर हो जाता है। अतः इसका फल कभी क्षीण नहीं होता। मोक्ष सर्वोत्कृष्ट है, अतः न्यूनाधिक भाव से रहित है। इस व्याख्या से स्पष्ट है कि माठर के वेद में दृढ़ आशा नहीं है। वाचस्पति के समय में लोग वैदिक कर्मों को अति श्रद्धा से करते थे। स्वयं वाचस्पति मिश्र भी वेदों को परम प्रमाण मानते थे, अतः उन्होंने व्याख्या करते हुए वेद में अनृत दोष का प्रतिपादन नहीं किया। वाचस्पति-व्याख्या इस प्रकार है—वेदप्रतिपादित ज्योतिष्टोमादि भी लौकिक उपायों के समान दुःख की निवृत्ति अल्पकाल के लिए करते हैं। सोमादि यज्ञों से स्वर्ग मिलता है, परन्तु पशुहिंसा के बिना यज्ञ नहीं होता, अतः हिंसा का फल दुःख भी अवश्य भोगना पड़ता है। नियत समय

---

*एतत् पवित्रमग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ।
आसुरिरपि पञ्चशिखाय ते न च बहुलीकृतं तन्त्रम्।
शिष्यपरंपरयागतमीश्वरकृष्णेन चैतदार्याभिः॥
संक्षिप्तमार्यमतिना सम्यक् विज्ञाय सिद्धान्तम्॥
सां० का०। ७। ७१।

पञ्चशिख के शिष्यों का नाम माठरवृत्ति में है।

ततः पञ्चशिखेन, तस्मात् भार्गवोलूकवाल्मीकिहारीतदेवलप्रभृतीनागतम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनन्तर स्वर्ग में एक क्षण की स्थिति नहीं हो सकती। ईर्ष्या के दाह से छुटकारा भी स्वर्ग में नहीं होता। श्रवण, मनन, निदिध्यासन-द्वारा प्राप्त व्यक्त, अव्यक्त और पुरुष का ज्ञान ही दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति अर्थात् मोक्ष का उपाय है।

उन्तीसवीं कारिका है—

स्वालक्षण्या वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।
समान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्याः वायवः पञ्च॥

माठर ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है—बुद्धि की अध्यवसाय अभिमान की अहङ्कार और मन की सङ्कल्प असाधारण वृत्ति है। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान ये पाँच वायु सब करणों की वृत्ति हैं। एक पिंजरे के निवासी अनेक तोते ओदन के दिखाने पर जब चलने लगते हैं तब पिंजरा हिलने लगता है। पिंजरे का हिलना जैसे सब तोतों के प्रयत्न से होता है, वैसे ही प्राणादि वायु भी तेरह प्रकार के करणों के अर्थात् बुद्धि, अहङ्कार, मन, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय इन सबके कार्य हैं। वाचस्पति का अर्थ यह है—बुद्धि, अहङ्कार, मन इन तीन करणों की तीन असाधारण वृत्तियाँ हैं। इन्हीं तीनों की साधारण-वृत्ति प्राणादि पाँच वायु हैं। अन्तिम अंश में वाचस्पति का मत माठर-मत से भिन्न है। विज्ञानभिक्षु ने भी "त्रयाणां स्वालक्षण्यम्" २ अ० सू० सू० "सामान्य करणवृत्तिः प्राणाद्याः वायवः पञ्च" २ अ० ३१ सू० इन सूत्रों की व्याख्या में इस कारिका का उल्लेख करते हुए वाचस्पति के अनुकूल अर्थ किया है। "समस्तेन्द्रियवृत्तिः प्राणादिलक्षणा जीवनम्" यो० द० वि० पा० ३८ सू० के इस भाष्य-वचन की व्याख्या करते हुए वाचस्पति ने प्राणादि को सब करणों का वृत्तिरूप कहा है। सांख्यतत्त्व-कौमुदी में जिस कारिका की व्याख्या में प्राणादि को तीन करणों का वृत्तिरूप माना है उसी कारिका का वाचस्पति ने इस अवसर पर प्राणादि-समुदाय सब करणों का वृत्तिरूप है इस अर्थ की पुष्टि के लिए उल्लेख किया है।*

* द्वयी इन्द्रियाणां वृत्तिर्बाह्याभ्यन्तरी च। बाह्या रूपाद्यालोचनलक्षणा, आभ्यन्तरी तु जीवनम्। स हि प्रयत्नभेदः शरीरोपगृहीतमारुतक्रियाभेदहेतुः सर्वकरणसाधारणः। यथा चाहुः—

"सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्याः वायवः पञ्च"।

विज्ञानभिक्षु ने भी योग-भाष्य के ऊपर दिये वाक्य की व्याख्या योगवार्त्तिक में "त्रयाणां स्वालक्षण्यम्" इस सांख्यसूत्र की स्वकृत व्याख्या के विरुद्ध की है। सार यह कि प्राणादि-समुदाय माठर तथा योग-भाष्यकार के मत में सब करणों का और कई एक के मत में तीन करणों का साधारण वृत्तिरूप है।

बत्तीसवीं कारिका है—

करणं त्रयोदशविधं तदाहरणधारणप्रकाशकरम्।
कार्यं च तस्य दशधाऽहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च॥

माठर-वृत्ति का अर्थ यह है—पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि, अहङ्कार, मन ये तेरह प्रकार के करण हैं। ये करण आहारक, धारक और प्रकाशक हैं। इन्द्रियाँ आहारक, अभिमान धारक और बुद्धि प्रकाशक है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग आनन्द इन दस कार्यों का ज्ञानेन्द्रियों से प्रकाशन कर्मेन्द्रियों से ग्रहण और धारण होता है। जैसे अन्धकार में रक्खे घट का दीप से प्रकाशन तथा हस्त से ग्रहण और धारण किया जाता है।

वाचस्पति का अर्थ इस प्रकार है—त्रयोदश प्रकार के करण क्रम से आहरण, धारण और प्रकाशन करते हैं। वाक् आदि कर्मेन्द्रियाँ ग्रहण करती हैं। बुद्धि अहङ्कार और मन प्राणादिरूप अपनी वृत्ति से शरीर का धारण करते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ प्रकाश करती हैं। इन करणों का कार्य भी क्रम से दस प्रकार का है। कर्मेन्द्रियों के वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग, आनन्द नामक कार्य दिव्य-अदिव्य भेद से दस प्रकार के हैं, अतः आहार्य दस प्रकार का है। बुद्धि आदि तीन अन्तःकरणों का शरीर धार्य है। शरीर की रचना पृथिवी आदि पाँच भूतों से होती है। शब्दादि पाँच विषयों के समुदाय का नाम पृथिवी है और शब्दादि पाँच दिव्य-अदिव्य भेद से दस हैं, अतः धार्य भी दस तरह का है। ज्ञानेन्द्रियों के शब्दादि पाँच विषय दिव्य-अदिव्य भेद से दस हैं अतः प्रकाश्य भी दस प्रकार का है।

माठर की अपेक्षा वाचस्पत्ति का अर्थ ठीक बैठता है। कारिका के "आहरणधारणप्रकाशकरम्" तथा "आहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च" इन वाक्यों का शब्दक्रमानु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारी अर्थ वाचस्पति का है। माठर के अर्थ में "प्रकाश्यं" को उखाड़ कर पहले और "आहार्यं धार्यं" को पीछे रखना पड़ता है। इतने पर भी अर्थ अच्छी तरह नहीं जमता। कर्मेन्द्रियों-द्वारा आहरण ठीक है, परन्तु धारण सब कर्मेन्द्रियों से नहीं हो सकता। वाक्-इन्द्रिय किस विषय का धारण करती है ? "आहरणधारणप्रकाशकरम्" की व्याख्या में अभिमान को धारक बता कर "धार्यं" की व्याख्या में शब्दादि को कर्मेन्द्रियों का धार्य बताना परस्पर विरुद्ध है। प्राणादि के बिना अभिमान की धारकता भी नहीं हो सकती है। प्राणादि-द्वारा यदि अभिमान की धारकता कही जाय तो बुद्धि और मन ने क्या अपराध किया है। उन्तीसवीं कारिका में प्राणादि को बुद्धि आदि की साधारण वृत्ति कहा गया है, अतः यहाँ बुद्धि आदि की धारकता का प्रतिपादन ही युक्ति-सङ्गत है।

सांख्यदर्शन के आदि-आचार्य कपिल ईश्वर की सत्ता को मानते थे या नहीं, यह भी कुछ दिनों से विवाद-विषय है।

सांख्यसूत्रों में तथा सांख्यकारिकाओं में अनेक स्थलों पर ईश्वर का खण्डन किया गया है। इसके लिए प्रथम अध्याय के ९२। ९३। ९४। ९५। संख्या के; पञ्चम अध्याय के २। ३। ४। ५। ६। ७। ८। ९। १०। ११। १२। संख्या के, और षष्ठ अध्याय के ६४। संख्या के सूत्रों को देखना चाहिए। "समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता" (१ अ० ११६) इस सूत्र के ब्रह्मपद का अर्थ भी परमात्मा नहीं, किन्तु शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव जीवात्मा ही है। यदि ब्रह्मपद का अर्थ परमात्मा किया जाय तो परमेश्वर-सत्ता के खंडनपरक अनेक सूत्रों से विरोध उपस्थित होगा। ब्रह्मपद के यथाश्रुत प्रसिद्ध अर्थ परमात्मा के ग्रहण के लिए अनेक सूत्रों के अर्थ में खींचातानी न्याय्य नहीं कही जा सकती। और भी, सत्त्व, रज, तम का नाम प्रकृति है। किसी न किसी परिणाम को प्रकट या तिरोहित करना प्रकृति का स्वभाव है। इस सांख्यसिद्धान्त को मान लेने पर संसार के सृष्टि-प्रलय में अनुपयुक्त ईश्वर की सत्ता किस अनुमान से सिद्ध होगी ? इस भाव का प्रतिपादन सत्ताईसवीं कारिका की माठरवृत्ति में बड़े मनोरञ्जकरूप से किया गया है। माठरवृत्ति में शङ्का की गई है कि अहङ्कार से एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति तो होगई, परन्तु उचित स्थान पर इन इन्द्रियों को रक्खा किसने। ऊँचे स्थान पर रक्खी आँख दूरस्थ वस्तु को देख सकेगी। सिर में स्थित कान दूर से शब्द को सुन सकेंगे। शरीर के अन्दर और बाहर वर्त्तमान त्वचा अनेक प्रकार के स्पर्शों का ग्रहण कर सकेगी। मुख के अन्तर्भाग में स्थित जिह्वा अनेक रसों को चख सकेगी। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों को उचित स्थान पर जड़ प्रकृति किसी चेतन कर्त्ता के बिना कैसे रख सकती है। इस शङ्का का समाधान इस प्रकार किया गया है—अहङ्कार में वर्त्तमान सत्त्व, रज, तम नामक तीन गुण ही इन्द्रियों को उचित स्थान पर स्थापित करते हैं। इसमें किसी चेतन की आवश्यकता नहीं। मुक्ति के लिए भी परमात्मा अनुपयुक्त है। बछड़े की रक्षा के लिए गो के स्तनों में जैसे अचेतन दुग्ध की प्रकृति होती है, वैसे ही जीव की मुक्ति के लिए प्रकृति की प्रवृत्ति होती है। मोक्ष का कारण प्रकृति और पुरुष का भेद ज्ञान है। इस दशा में ईश्वर-चिन्ता किसलिए ?

संक्षेप में सांख्य-सिद्धान्त इस प्रकार है—

प्रकृति, महान्, अहङ्कार, पाँच तन्मात्रायें, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, पाँच महाभूत और पुरुष ये पच्चीस पदार्थ हैं।

सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों का नाम प्रकृति है। माठर-वाचस्पति आदि के मत में प्रकृति विभु और विज्ञानभिक्षु के मत में अणु विभु है। जीवात्मा शरीरभिन्न अकर्ता अभोक्ता साक्षी नित्य और असङ्ग है। आत्मा अनेक हैं। जैसे वायुताड़ित चञ्चल जल में प्रतिबिम्बित स्थिर चन्द्र-मण्डल भी तरल प्रतीत होता है, वैसे ही बुद्धि में प्रतिबिम्बित आत्मा भी बुद्धि के परिणाम ज्ञान-सुख-दुःखादि से युक्त प्रतीत होता है। ज्ञान-स्वरूप आत्मा की छाया से प्रकृति का विकार अचेतन बुद्धि भी चेतन सी ज्ञात होती है।

अज्ञान से बन्ध और ज्ञान से मोक्ष होता है।

आत्म-तत्त्व-साक्षात्कार के बिना कैवल्य नहीं मिलता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्म-साक्षात्कार के अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि बहिरङ्ग और ध्यान-धारणा-समाधि अन्तरङ्ग साधन हैं।

कार्य और कारण का अभेद है। कारण में पहले कार्य अव्यक्त रहता है और पीछे व्यक्त होता है। कार्य और कारण का तादात्म्य सम्बन्ध है। नैयायिकों के समान समवाय नहीं।

प्रमाण तीन हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द। इन तीनों में उपमानादि अन्य प्रमाणों का अन्तर्भाव है।

शरीर दो प्रकार के हैं। सूक्ष्म और स्थूल। महत्, अहङ्कार, एकादश इन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रायें इन अठारह पदार्थों का नाम सूक्ष्म शरीर है। जो अहङ्कार का बुद्धि में अन्तर्भाव करते हैं वे सत्रह ही पदार्थ मानते हैं। सूक्ष्म शरीर का परिमाण अणु है। वाचस्पति माठरादि के मत में दो ही शरीर हैं। विज्ञानभिक्षु के मत में स्थूल-सूक्ष्म के अतिरिक्त पाँच भूतों का बना अधिष्ठान शरीर भी है। सूक्ष्म शरीर इस अधिष्ठान शरीर का आश्रय है। स्थूल शरीर के छः भेद हैं—ऊष्मज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज्ज, सांकल्पिक, सांसिद्धिक। जू आदि का ऊष्मज, पक्षि सर्पादि का अण्डज, मनुष्य गो आदि का जरायुज, वृक्ष लतादि का उद्भिज्ज, सनकादि का सांकल्पिक और योगियों-द्वारा योगबल से रचित सांसिद्धिक शरीर होता है।

ईश्वरचन्द्र ब्रह्मचारी

इँग्लैंड के नीच पेशेवाले अँगरेज़ों से हम क्या सीख सकते हैं ?

हम लोग उन अँगरेज़ों से भी जो नीच पेशों में लगे हुए हैं, बहुत कुछ सीख सकते हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि ये लोग समय का मूल्य बहुत अच्छी तरह समझते हैं, अपने काम पर ठीक समय पर पहुँचते हैं और उसको नियत समय में ही पूरा कर डालते हैं। दूसरे, वे उन कामों में भी छोटे-मोटे बहुत से औज़ारों का उपयोग करते हैं जिनके लिए ख़ाली हाथों के सिवा हमारे पास और कोई दूसरा साधन नहीं होता। प्रायः ऐसा कोई काम नहीं जिसके लिए वे बहुत से औज़ार काम में न लाते हों और विशेषता यह है कि प्रत्येक औज़ार का काम पृथक् पृथक् होता है। तीसरी बात यह कि वे मैले-कुचैले कामों को भी सफ़ाई के साथ करते हैं। कार्य के किसी भी अङ्ग को अधूरा छोड़ना तो वे जानते ही नहीं, चाहे वह अनावश्यक हो और चाहे लोगों की दृष्टि से छिपा हुआ हो। और चौथी सबसे बड़ी बात यह है कि नीच से नीच काम करनेवाला मनुष्य भी किसी प्रकार सामाजिक तिरस्कार का पात्र नहीं होता। उसने नीच काम करना पसन्द किया है, इसलिए कोई उसे नीच नहीं कह सकता। जब वह अपना काम समाप्त कर लेता है और सज-धज के साथ अपनी बढ़िया पोशाक में बाहर निकलता है तब वह अपने आपको उसी प्रकार महत्त्व-पूर्ण और गुरुतर समझता है जैसे किसी दूसरे को। यही नहीं, दूसरे लोग भी उसकी उतनी ही क़द्र करते हैं जितनी कि होनी चाहिए। सारांश यह कि उसके पेशे के कारण कोई उसकी अवहेलना नहीं कर सकता।

आप पूछ सकते हैं कि मेरे हृदय में ऐसे विचार क्यों उठे। इसका उत्तर यह है कि हाल में मुझे ऐसे दो अँगरेज़ों से थोड़ी सी बातचीत करने का मौक़ा मिला है जो हमारे घर का कूड़ा साफ़ करने आते हैं। इनमें से एक तो एक बड़ी गाड़ी हाँकता है, जिसमें आलू तथा अन्य साग-पात और गोभी के पत्ते आदि अथवा इसी प्रकार का कूड़ा-करकट भरा रहता है। दूसरे को उसका सहायक या साथी कहना चाहिए। प्रत्येक घर में लोहे के बड़े बड़े पतीले रक्खे रहते हैं, हफ़्ते भर घर का सारा कूड़ा-करकट इन्हीं में फेंका जाता है। सप्ताह के किसी नियत दिन पर ये लोग प्रत्येक घर में पहुँचते हैं और दोनों मिलकर उन पतीलों को गाड़ी में उड़ेल कर चले जाते हैं।

ये पतीले 'डस्टबिन' कहलाते हैं, इनका लोहा बड़ी मेहनत से साफ़ किया जाता है, साथ ही इनके ऊपर एक ढक्कन भी रहता है, जो बिलकुल ठीक बैठ जाता है। किन्तु तो भी कूड़ा-करकट लगातार पाँच-छः दिन तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्द रहने के कारण सड़ने सा लगता है और उससे कुछ दुर्गन्ध भी निकलने लगती है। पाँच-छः दिन में ऐसा होना अनिवार्य ही है। परन्तु इसमें न तो बेचारे झाड़ूवाले का कुछ दोष है और न उसके साथी का ही। बात यह है कि इससे जल्दी वे आ ही नहीं सकते। म्यूनीसिपलटी, जिसकी अधीनता में वे लोग काम करते हैं, पहले उनको सप्ताह में दो बार भेजा करती थी, किन्तु महायुद्ध के समय उसे किफ़ायत की सूझी और उसने दो बार की जगह एक बार ही भेजना शुरू कर दिया और लोगों ने इस प्रथा को नापसन्द करने के बजाय, उलटा उसका स्वागत किया, क्योंकि इस प्रकार टेक्स की दर में कुछ कमी होगई।

कुछ दिन हुए मैं एक नये केमरा से, जिसको मैंने हाल ही में मोल लिया था, यों ही अभ्यास कर रहा था। सड़क के एक किनारे से दूसरे किनारे पर जाते समय मुझे वही झाड़ूवाला और उसका साथी दिखाई दिया। एकाएक मुझे ख़याल आया कि यदि मैं इन लोगों के फ़ोटो लेकर अपने देश को भेजूँ तो लोग उनको खूब पसन्द करेंगे, क्योंकि उन्हें मालूम हो जायगा कि नीच पेशों में कैसे अँगरेज़ काम करते हैं। बस, मैंने तुरन्त एक 'स्नेपशोट' ले लिया, फ़ोटो में उसका, उसके साथी का और घोड़ा, गाड़ी आदि सभी का चित्र आ गया।

दो-एक सप्ताह पहले मैं कार्यवश शहर जा रहा था, रास्ते में झाड़ूवाले ने रोक कर मुझसे पूछा—क्यों, महाशय, फ़ोटो कैसा हुआ ?

अपनी जेब में हाथ डालकर मैंने फ़ोटो निकाला और कहा—लो यह है, कहो, तुम्हें कैसा मालूम होता है।

झाड़ूवाले ने फ़ोटो अपने हाथ में ले लिया और क्षण भर उसको ध्यानपूर्वक देखता रहा, फिर अपने साथी को इशारे से अपने पास बुलाकर उसे दिखाने लगा। उसे देखकर दोनों ही खुश हुए, अन्त में एक ने कहा—हम लोग बड़े अच्छे दिखाई देते हैं, चेहरा तो बहुत ही साफ़ आया है। घोड़ा भी बिलकुल हिला डुला नहीं। साहब, यह बड़ा चालाक है, ज़रूर समझ गया होगा कि मेरा फ़ोटो लिया जा रहा है।

मैंने उस झाड़ूवाले और उसके साथी को उस फ़ोटो की एक एक प्रति दे दी, दो अतिरिक्त कापियाँ मैंने इसी लिए बनाई भी थीं। इस पर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और इसके लिए मुझे धन्यवाद पर धन्यवाद देने लगे।

एक दिन सवेरे जब मैं अपने मकान में जाने के लिए चिटख़नी खोल रहा था तब उसी झाड़ूवाले ने मुझे देखकर कहा—सुनिए तो महाशय, मेरी स्त्री आपके दिये हुए चित्र को 'इन्लार्ज' करवा रही है। वह कहती है, मैं उसे अपनी बैठक में लटकाऊँगी। महाशय, वह आपको बहुत धन्यवाद देती थी।

डस्टबिन कूड़ा-गाड़ी में उलटी जाती है।

मैंने भी प्रशंसा की दृष्टि से उत्तर दिया—तुम लोग समय के बड़े ही पाबन्द हो। अपने साप्ताहिक दौरे में जिस दिन तुम मेरे यहाँ आते हो, यदि कहीं उस दिन मेरी घड़ी बन्द हो जाती है तो मैं तुम्हारे आगमन से ठीक कर लेता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कहा—हाँ महाशय, हम लोग जल्दी ही अपने काम पर चल देते हैं और जहाँ तक सम्भव होता है ठीक वक्त पर अपना काम पूरा कर लेते हैं। मैं और मेरा साथी—दोनों ही अपने काम में किसी प्रकार का गड़बड़ नहीं पसन्द करते।

मैंने कहा—ठीक है, मैंने भी तो देखा है कि तुम लोग अपना काम बहुत ही जल्दी और बहुत ही सावधानी से करते हो।

पहुँचता है। फिर वह उसको उठाकर इस प्रकार पीछे लटका लेता है कि आधा तो वह उसके कन्धों पर रहता है और आधा उसके सिर पर। दरवाज़े के सामने ही फ़र्श पर गाड़ी खड़ी रहती है और गाड़ी के ही सहारे एक छोटी सी सीढ़ी भी लटकी रहती है। झाड़ूवाला 'डस्टबिन' को पीठ पर लादे हुए ही सीढ़ी पर चढ़ जाता है और फिर डस्टबिन को गाड़ी में उड़ेल देता है। इसके बाद वह उसको हिला-डुलाकर यह भी देख लेता है कि

घरों का कूड़ा-करकट साफ़ करनेवाले अँगरेज़।

वास्तव में बात भी ऐसी ही है। झाड़ूवाला अपने साथी के साथ प्रत्येक शुक्रवार को ठीक ८ बजे मेरे यहाँ आता है, और सबसे पहले पिछले दरवाज़े को खटखटाता है या घन्टी बजाता है, क्योंकि यह दरवाज़ा प्रायः बन्द रहता है। फिर वह ज़ोर से आवाज़ भी लगाता है, जिससे हम लोग समझ जायँ कि कौन दरवाज़ा खटखटा रहा है। इस पर नौकरनी दरवाज़ा खोल आती है और तब उनमें से एक भीतर धँसता है और सीधा 'डस्टबिन' के पास

उसकी तह में अथवा अगल-बगल कहीं कुछ चिपक कर तो नहीं रह गया है। यदि रह जाता है तो वह उसे खुरच कर निकाल डालता है। अन्त में वह उस कूड़ा-करकट को उलट-पलट कर यह देख लेता है कि कहीं इसमें नौकरों ने कोई ऐसी चीज़ तो नहीं फेंक दी है जिसके कुछ दाम वसूल हो सकें, जैसे टूटे-फूटे चाय के बर्तन अथवा पुराने-धुराने टोप प्रायः फेंक दिये जाते हैं। यदि झाड़ूवाले को ऐसी कोई चीज़ मिल जाती है तो वह एक कोने में उसका ढेर लगाता जाता है अथवा उसे उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोकरी में फेंक देता है जो गाड़ी के पीछे विशेषतः इसी काम के लिए लगाई जाती है। कभी कभी तो कबाड़-ख़ाने के नौकर-चाकर भी इन कूड़ेख़ाने की गाड़ियों के पीछे घूमते दिखाई देते हैं, ज्यों ही कोई ऐसी चीज़ मिलती हैं, त्योंही वे दो-एक पेनी देकर उसे मोल ले लेते हैं। कहीं कहीं छोटे-मोटे दूकानदार भी अपनी अपनी गाड़ियों को लिये हुए ऐसी ही चीज़ों की तलाश में घूमा करते हैं। जब कभी झाड़ूवाले को ऐसे दूकानदार मिल जाते हैं तब वे मोल-भाव करके रद्दी सामान बेच देते हैं। डस्टबिन को कूड़े से ख़ाली कर वह उसमें थोड़ा सा मसाला छोड़ देता है जिससे गन्दगी से रक्षा होती है। यह मसाला म्यूनिसिपलटी-द्वारा मुफ़्त दिया जाता है। फिर वह डस्टबिन को उसी प्रकार पीठ पर लाद कर हमारे पिछवाड़े के आँगन में रख जाता है। 'डस्टबिन' भी हफ़्ते भर तक अपने स्थान पर जहाँ का तहाँ डटा रहता है। झाड़ूवाले के सिवा वह किसी दूसरे को छूने की आज्ञा नहीं देता।

किसी किसी घर में ये डस्टबिन, जिनको झाड़ूवालों को पीठ पर लादना पड़ता है, कीचड़ आदि में सने रहते हैं। इससे उनके कपड़े गन्दे हो जाते हैं। कभी कभी उसकी पेंदी या अगल-बगल में छेद हो जाता है और जब वह उसे पीठ पर लाद कर चलता है तब गन्दा कूड़ा उससे बाहर निकल पड़ता है और उसके कपड़े ख़राब हो जाते हैं। किन्तु इसमें भी झाड़ूवाले का कोई दोष नहीं, अगर कोई दोष है तो घर के लापरवाह नौकर या नौकरानी का। चतुर नौकरानी तो प्रायः गन्दा कूड़ा-करकट रद्दी काग़ज़ों में लपेट देती हैं, इससे झाड़ूवाले का काम अधिक सुविधा-जनक हो जाता है।

कहना न होगा कि सभी झाड़ूवाले एक समान होशियार नहीं होते, कोई अधिक और कोई कम। वास्तव में यह तो दुनिया की रीति ही है। उदाहरण के लिए मैंने ऐसे झाड़ूवाले भी देखे हैं जो अपने ख़ाली हाथों से उस कूड़ा-करकट को इस प्रकार टटोलते हैं, मानो उसमें कोई ख़ज़ाना गड़ा हुआ है। 'डस्टबिन' में चिपके हुए गन्दे कूड़े-करकट को छुटाने के लिए लोहे या लकड़ी के छोटे-छोटे डन्डे से रहते हैं, किन्तु मैंने झाड़ूवालों को अपनी अँगलियों से भी खुरचते हुए देखा है।

पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जो अँगरेज़ इन कामों में लगे हुए हैं वे कूड़ा-करकट साफ़ करने में ख़ाली हाथों से काम नहीं लेते। अपने साथ

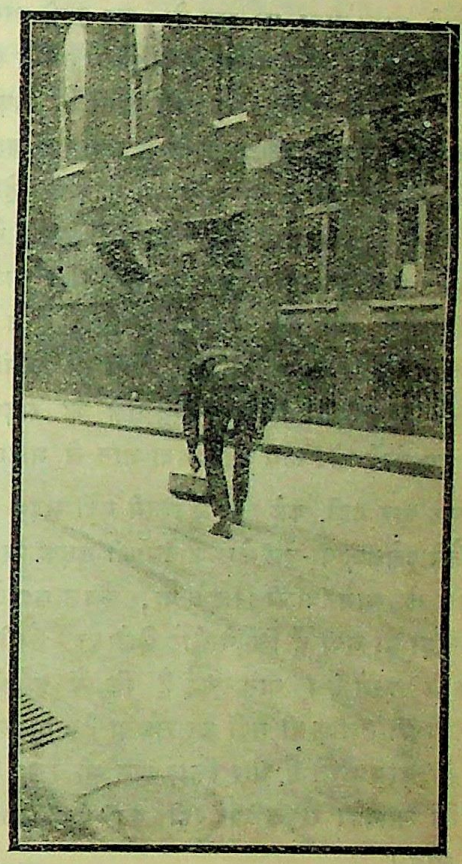

तसले और ब्रुश से सड़क साफ़ करनेवाला।

औजार का जो गट्ठा लिये रहते हैं या तो उसमें के किसी हथियार से काम लेते हैं अथवा तुरन्त ही कोई नया हथियार गढ़ लेते हैं। यही लोग नहीं, छोटे-छोटे बच्चे तक भी, जो सड़कों पर से घोड़ों और खच्चरों की लीद साफ़ करते हैं, अपने छोटे छोटे ब्रुशों और तसलों से बड़ी ही सफ़ाई के साथ काम करते हैं।

असली बात यह है कि जब कभी मैं इन अँगरेज़ों और उनके बच्चों को उन सड़कों को साफ़ करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखता हूँ जो दिन में काम-काज के समय आवागमन से एक-दम पट जाती हैं तभी उनकी होशियारी देखकर मुझे दङ्ग रह जाना पड़ता है। मोटरकारों, मोटरओमनी-बसों और लारियों, तथा घोड़े और खच्चरों की गाड़ियों, बाइसिकलों और पैदलों के दौड़-धूप के बीच से वे किस प्रकार कूड़ा-करकट और लीद आदि उठा ले जाते हैं जैसे कोई ताना-बाना पूर रहा हो। जब पानी बरसता है और सड़कों पर फिसलाहट हो जाती है तब वे बड़े बड़े डंडों के द्वारा, जिनमें रबड़ लगी रहती है, सड़कों का कूड़ा-कचरा किनारे की नालियों में घसीट ले जाते हैं। गाड़ियों और आदमियों का यातायात चाहे तेज़ हो, चाहे सुस्त, उससे उनके काम में कोई बाधा नहीं पड़ती, वे उससे बिलकुल नहीं घबराते। किन्तु मुझे तो यही आश्चर्य है कि वे ऐसी भीड़ में गाड़ियों के नीचे दबने से कैसे बच जाते हैं। देखना तो दूर, मैंने तो कभी सुना भी नहीं कि किसी अँगरेज़ झाड़ूवाले को सड़क साफ़ करते हुए कोई चोट लग गई अथवा जान से मारा गया।

एक बार नहीं, कई बार मैं किसी बड़ी सड़क के मोड़ पर, जैसे ब्लेकफ़ायर-पुल को जानेवाली सड़क पर अथवा सेंटपाल के सामनेवाली सड़क पर, केवल यह देखने के लिए खड़ा हो गया हूँ कि ये छोटे छोटे बच्चे कैसी सफ़ाई से काम करते हैं। बात यह है कि मैं इनकी कार्य-कुशलता की तारीफ़ ही नहीं कर सकता। ये बिजली जैसी तेज़ी से काम करते हैं और फिर काम भी कैसा, मजाल नहीं कि आपको सड़क पर रद्दी का एक टुकड़ा भी मिल जाय।

कुछ दिन पहले की बात है। उसके पहले मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि इँगलैंड के झाड़ूवालों की दृष्टि में समय का इतना अधिक मूल्य हो सकता है। एक अँगरेज़ सड़क पर झाड़ू लगा रहा था। मैंने उसके समीप पहुँचकर पूछा—मैं तुम्हारा फोटो ले सकता हूँ। उस समय मेरे हाथ में छोटा सा प्रसिद्ध 'इका' कैमरा था। उसमें एक बहुत ही तेज़ जर्मन लेन्स लगा हुआ था। यदि मैं चाहता तो बात की बात में उससे बिना पूछे ही उसका फोटो उतार लेता। तथापि उसके ढङ्ग को देखकर, जो उसके नीच काम में लगे रहने पर भी सम्मानास्पद सा मालूम होता था, मैंने पहले उससे पूछ लेना ही उचित समझा।

अच्छा, अब ज़रा उसका उत्तर सुनिए। 'आप केवल दो मिनट ठहर जाइए। दो मिनट में १२ बज जायँगे और उस समय मैं अपना मध्याह्न का भोजन करने जाऊँगा। वह मेरा निजी समय है, उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता, उसमें से आप चाहे जितना समय शौक़ से ले सकते हैं। यहाँ यह बतला देना भी अनुचित न होगा कि उत्तर देने के पहले उसने अपनी चाँदी की घड़ी को देख लिया था, जो उसकी कलाई पर बँधी थी। रक्षा की दृष्टि से उसने उसे एक पीले केस में बन्द कर रक्खा था। मैंने अपने देश में कभी किसी भारतीय झाड़ूवाले को चाँदी की घड़ी बाँधे हुए नहीं देखा है, बहुतों को तो क्या बजा है, इसकी सुध तक नहीं होती।

जो अँगरेज़ लन्दन अथवा अन्य किसी अँगरेज़ी शहर की सड़कों पर झाड़ू देते हैं उनमें एक भी ऐसा नहीं जो लिख-पढ़ न सकता हो। जो अँगरेज़ बचपन में जिस म्यूनीसिपलटी की हद में रहता है उसको उसी के प्राइमरी स्कूलों में अनिवार्य-रूप से पढ़ना पड़ता है। इसमें कोई अपवाद नहीं हो सकता। ये स्कूल अधिकतर स्थानीय टेक्सों के धन से चलते हैं, किन्तु सरकार भी सहायता के रूप से कुछ न कुछ प्रदान किया करती है। जब ये झाड़ूवाले प्रातःकाल अपने बिस्तरे से सोकर नहीं उठते, उसके पहले ही अख़बार बेचनेवाले इनके द्वार पर दैनिक संस्करण की प्रति छोड़ जाते हैं। इधर इनकी स्त्रियाँ ख़ासतौर से इनके पहले उठती हैं और इनके लिए चाय या कहवा तैयार करके बड़े बड़े प्यालों में भरकर रख छोड़ती हैं। जब ये लोग उसको पीने बैठते हैं उसी समय समाचार-पत्रों के मोटे-मोटे हेडिङ्गों तथा चित्रों पर एक नज़र डाल लेते हैं। इनमें से कोई-कोई तो किसी न किसी समाचार-पत्र के सायङ्कालीन संस्करणों को भी मोल लेते हैं। इससे उन्हें मालूम हो जाता है कि जिस घोड़े पर उन्होंने बाजी लगाई है वह जीता है या नहीं अथवा जिस क्रिकेट या फुटबाल के मैच से उनका विशेष प्रेम है उसमें कौन जीता और कौन हारा। अँगरेज़ लोग चाहे उच्च श्रेणी के हों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और चाहे नीच—घुड़दौड़ अथवा अन्य खेल-कूदों पर बाज़ी लगाने के बड़े शौक़ीन होते हैं। यह उनका एक जातीय स्वभाव सा हो गया है। जहाँ बड़े लोग पौंडों में बाज़ी लगाते हैं, वहाँ ये झाड़ूवाले केवल एक या दो पेनी लगाकर ही सन्तोष कर लेते हैं, किन्तु कुछ न कुछ लगाते हैं अवश्य। वहाँ जो दैनिक पत्रों के मध्याह्नकालीन या सायङ्कालीन अथवा अतिरिक्त रात्रिकालीन संस्करण निकला करते हैं उनका काम ही यही होता है। छोटे-बड़े सभी जुआड़ी, जो घुड़दौड़, अखाड़ों अथवा अन्य खेल-

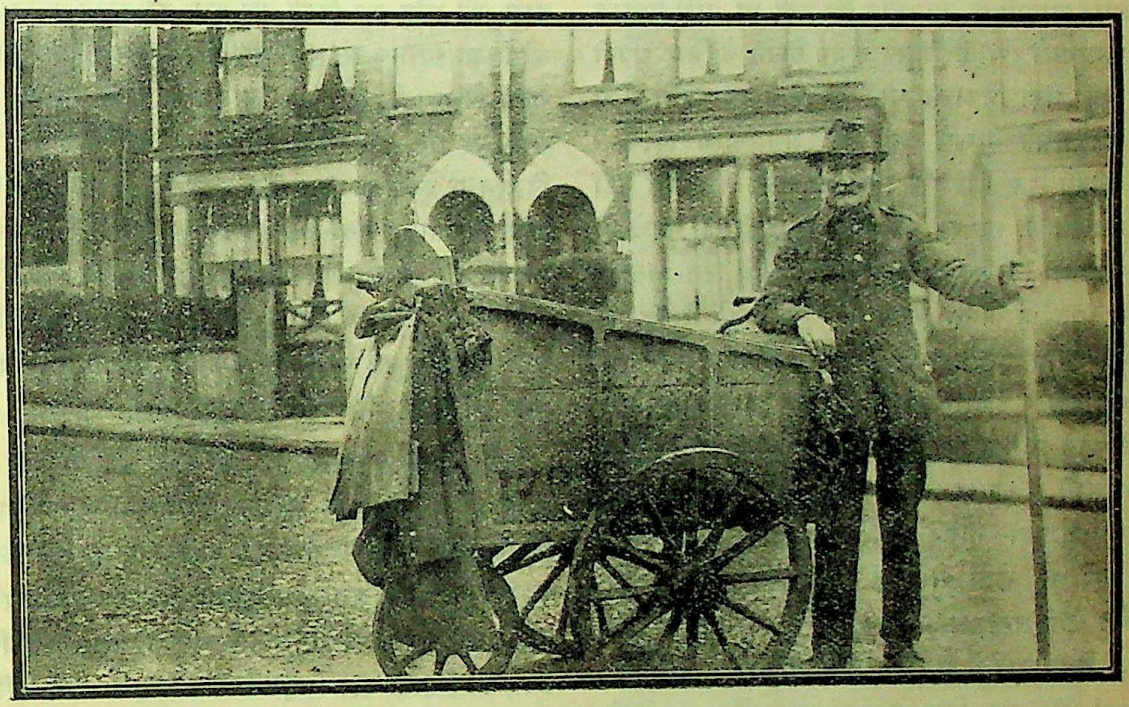

कौंसिल का झाड़ूवाला।

कूदों पर बाज़ी लगाया करते हैं, अपने-अपने प्रेमपात्र की सफलता और विफलता का हाल जानने के लिए बहुत ही उत्सुक रहते हैं। हार खा जाने पर भी ये लोग कभी हताश नहीं होते।

अँगरेज़ झाड़ूवाले अधिकतर सचित्र पत्र पढ़ते हैं। इन पत्रों में समाचार छोटे-छोटे पेराग्राफों में बड़े अच्छे ढङ्ग से सजाये जाते हैं, पर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने अथवा अपनी ग्राहक-संख्या स्थिर रखने का मुख्य साधन जो इनके पास होता है वह है चित्रों और कारटूनों की प्रचुरता। कुछ समाचार-पत्रों की लोकप्रियता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उनकी प्रति संस्करण दस दस लाख प्रतियाँ निकलने लगती हैं। लोगों पर उनकी ऐसी धाक छा जाती है कि फिर उनकी ग्राहक-संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती जाती है। साधारणतः ऐसे पत्रों के सञ्चालक और स्वामी ऐसे लोग होते हैं जिन्हें इनके द्वारा अपना मतलब गाठने में कोई सङ्कोच नहीं होता। वे तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर ऐसे ऐसे भड़कीले और सनसनी पैदा करनेवाले लेख छापते हैं कि उनसे या तो उनका राज-नैतिक अर्थ सिद्ध होता है अथवा वे और कोई लाभ उठाते हैं।

ये झाड़ूवाले स्कूलों में बहुत थोड़े दिनों के ही लिए पढ़ते हैं और साधारणतः उससे निकलने के बाद ये लोग अपनी ज्ञान-वृद्धि के लिए कोई विशेष चेष्टा नहीं करते। इसलिए इनकी बुद्धि फैल नहीं पाती, इनका मानसिक क्षितिज बेतरह संकुचित हो जाता है, ये एक सङ्कीर्ण घेरे के बाहर सहानुभूति भी नहीं प्रकट कर सकते। जब ये किसी कार्य्य के लिए वोट देने जाते हैं तब प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी के नाम की चिट्ठी डालते हैं जिसके नाम का डङ्का पीटा जाता है। उनको विशेष रुचिकर होनेवाले पत्र-द्वारा रात-दिन उनके कानों में बस वे उसी डङ्के का स्वर अलापते हैं। अपनी ओर से वे एक इञ्च भी इधर-उधर नहीं हो सकते। प्रेसवाले अपने राजनैतिक स्वार्थों की उद्देश-पूर्ति के लिए उनकी नकेल जिस ओर घुमाया करते हैं, वे चुपचाप उसी ओर चलने लगते हैं।

अभी इँग्लेंड में कुछ ऐसे बुड्ढे झाड़ूवाले भी हैं जिनके बचपन में यहाँ शिक्षा अनिवार्य नहीं हुई थी। मैं जिस आदमी से बातचीत कर रहा था, मेरा मतलब उस झाड़ूवाले से है जिसने समय देखने के लिए अपनी चाँदी की घड़ी निकाली थी, वह ऐसे ही बुड्ढों में से था। जब उसने मुझसे कहा कि मैंने आज तक कभी अपने जीवन में एक दिन के लिए भी स्कूल की सूरत नहीं देखी तब तो मैं दङ्ग रह गया, क्योंकि थोड़ी देर पहले ही उसने कहा था कि जब जो कुछ भी मेरे हाथ लग जाता है मैं उसे बड़े प्रेम से पढ़ता हूँ, मुझे पढ़ने में बड़ा ही आनन्द आता है। मुझे आश्चर्य-चकित देखकर वह स्वयं कह उठा—चकराने की कोई बात नहीं, मैंने स्वयं लिखने-पढ़ने का अभ्यास किया है। जब मैं पाँच ही वर्ष का था तभी से बराबर काम कर रहा हूँ। मेरा पिता एक किसान के यहाँ नौकर था, पाँच वर्ष की अवस्था में उसके हरे-भरे खेतों से कौए भगाया करता था। धीरे-धीरे मैंने खेती-सम्बन्धी सभी छोटे-मोटे काम करना सीख लिया। किन्तु बाद में मैं रेलवे में काम करने चला गया। पर वहाँ भी मेरा दिल न लगा। इसलिए सड़कों को साफ़ करने के काम में लग गया। तब से मैं बराबर यही काम कर रहा हूँ। मैं समझता हूँ, मुझे शायद इस काम में २० वर्ष हो गये होंगे, क्योंकि इस समय अवश्य ही मेरी आयु ५५ और ६० के बीच में होगी।

मैंने उससे पूछा—यह तो बताओ कि तुमने रेलवे का काम छोड़ कर सड़कों को साफ़ करने का काम क्यों पसन्द किया। उसने कहा—क्योंकि सड़कों को साफ़ करने से मुझे अधिक रुपया मिलता है। साथ ही इसमें जान जाने अथवा हाथ-पैर के टूटने का उतना भय नहीं जितना रेलवे के काम में है। रेलवे के काम में मुझे लगातार एक सप्ताह तक आधी रात को जागना पड़ता था और दोपहर के सोना। दूसरे सप्ताह में फिर दिन को जगना पड़ता और रात को सोना। मैं तो इस काम को सब तरह से अच्छा समझता हूँ; यदि मैं पहले से जानता होता तो शायद कभी अपने जीवन में कोई दूसरा काम न करता। आज-कल मुझे ३ पौण्ड प्रति सप्ताह के हिसाब से वेतन मिलता है, अभी हाल में ही म्यूनिसिपलटी ने हम लोगों के वेतन में दो शिलिङ्ग छः पेन्स की वृद्धि कर दी है।

मनुष्य नीचे से ऊपर उठने की कोशिश करता है, नीच काम को छोड़ कर किसी उच्च कार्य की इच्छा करना हम लोगों का स्वभाव सा बन गया है। यदि कोई झाड़ूवाला रेलवे विभाग में जाने को लालायित होता तो यह एक साधारण सी बात होती। किन्तु जिस व्यक्ति ने रेलवे-विभाग के काम को त्याग कर झाड़ू देने का काम स्वीकार किया हो, साधारणतः उसकी मानसिक प्रवृत्ति को हम लोग अवश्य ही असाधारण कहेंगे। किन्तु मुझे उसकी बात पर उतना आश्चर्य नहीं हुआ जितना कि होना चाहिए था, क्योंकि इसके पहले भी मुझे एक बार ऐसी ही मानसिक वृत्ति का परिचय मिल चुका था।

मैं पहले पहल इँग्लेंड में उतरा ही था कि मुझे थोड़े ही दिनों बाद एक ऐसे मकान में जाना पड़ा जो बिलकुल नया था। और सच पूछा जाय तो जिस समय उसमें पहुँचा उस समय वह पूर्णरूप से बन कर तैयार भी नहीं हुआ था। मेरे पहुँचने के बाद भी उसमें कुछ दिनों तक काम होता रहा। एक मिस्त्री, जिसका नाम हेरी था उसको ठीक कर रहा था, उसी ने उसमें पत्थर लगाये, सफ़ेदी की, रङ्ग चढ़ाया और फ़र्श बिछाया। काम समाप्त ही होनेवाला था कि उसने काम करना छोड़ दिया। एक दिन मैंने मालिक-मकान से पूछा कि हेरी का क्या हुआ?

उसने कहा—हेरी, अरे, उसे तो एक बढ़िया काम मिल गया है; अब तो वह कौंसिल के लिए काम करने लगा है। मैं उसे जो वेतन देता था उससे वह कहीं अधिक प्राप्त करने लगा है।

मैंने पूछा—कैसी कौन्सिल और कैसा काम?

मालिक-मकान ने कहा—वह सड़कों को साफ़ करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का काम करने लगा है। यदि आप किसी दिन डूथलिच गाँव की ओर जायँगे तो वह आपको अवश्य मिलेगा, क्योंकि वह उसी ओर लगाया गया है। शनिवार को उसे आधे दिन की छुट्टी मिलती है और तब वह यहाँ काम करने के लिए आता है। किसी किसी रविवार को भी काम कर दिया करता है। पर असली बात यह है कि कौंसिल में नौकरी मिल जाने से उसकी अवस्था बहुत उन्नत हो गई है। मैं उसको इतना अधिक कभी नहीं दे सकता था।

कुछ दिनों बाद मैंने हेरी को सड़क झाड़ते हुए देखा। उसकी आर्थिक अवस्था में जो उन्नति हुई थी उसके कारण उसका चेहरा खिला हुआ था। उसको इस बात का गर्व था कि मैं कौंसिल की अध्यक्षता में काम कर रहा हूँ। मिस्त्री होने के स्थान में झाड़ू देने का काम मिल जाने से कोई अपने भाग्य को सराह सकता है—मैं मन ही मन इस पर विचार करने लगा। उससे मेरी आँखें खुल गईं।

अच्छा थोड़ी देर के लिए चाँदी की घड़ीवाले झाड़ूदार के पास फिर आइए। क्योंकि वह भी तो अपने देश के शासकों में से है। इसलिए उससे बातचीत करते समय मुझे उसके राजनैतिक विज्ञान-सम्बन्धी विचारों के जानने की उत्सुकता हुई थी। मैं समझता हूँ, आपको भी उसकी बातें रुचिकर होंगी। मैंने उससे पूछा था—तुम किस राजनैतिक दल के पक्षपाती हो ? मैंने सोचा था कि अवश्यमेव इसने मज़दूर-दल के लिए वोट दिया होगा। किन्तु उसका उत्तर सुनकर मुझे जो आश्चर्य हुआ, शायद आप उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। उसने कहा—मैंने अपने जीवन में कभी आज तक वोट नहीं दिया। राजनीतिज्ञों के विषय में क्या पूछते हो ? अरे वे तो सब एक ही थैले के चट्टे-बट्टे हैं, टोरी, लिबरल या लेबर सबके सब एक-समान हैं। अपना हित-साधन उनका उद्देश होता है। निर्वाचन-दिवस के पहले वे स्वयं आपके मकान पर आयँगे, आपसे हाथ मिलायँगे, इतना ही नहीं, आपके बच्चों को भी प्यार करेंगे। किन्तु निर्वाचन के एक ही दिन बाद यदि तुम्हें उनके आँगन में जाने का मौक़ा हो और यदि तुम योंही एकाध पत्थर उठा लो तो समझ लो, वे तुम्हें पुलीस में भेजे बिना न रहेंगे। हम ग़रीबों की तो बात ही पूछनेवाला कौन है ? असल में जब वे एक बार पार्लियामेंट में पहुँच जाते हैं तब किसी की भी परवाह नहीं करते। बस, अपनी अपनी चिन्ता में रत हो जाते हैं।

मैं शायद उस झाड़ूवाले से घंटों बातचीत करता रहा। क्योंकि उसका मस्तिष्क नये नये विचारों और आदर्शों से

लन्दन का एक झाड़ूवाला।

भरा हुआ मालूम होता था। मेरा तो यहाँ तक कहना है कि यदि कहीं उसके विचार कार्यरूप में परिणत किये जायँ तो लन्दन की सामाजिक अवस्था और सफ़ाई की व्यवस्था बहुत कुछ उन्नत हो सकती है। लन्दन ही क्या, संसार के किसी भी बड़े शहर के लिए वे उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। किन्तु इसी बीच में एक लड़का ज़ीद से भरी हुई गाड़ी लिये हुए हम लोगों के पास आ पहुँचा। उसको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायद यह उत्सुकता थी कि हम लोग इतनी देर से क्या बातें कर रहे हैं। मुझे उसकी उत्सुकता की कोई चिन्ता नहीं थी, किन्तु उसकी गाड़ी से निकलनेवाली दुर्गन्ध ने बरबस हमारी बातचीत का सिलसिला बन्द कर दिया। अतएव मैं झट उस चित्ताकर्षक झाड़ूवाले से बिदा लेकर अपने काम पर चल पड़ा। मैं मन ही मन सोच रहा था—सचमुच 'अति विचित्र भगवंत गति'। जिनके हृदय में अपने समाज के प्रति न तो कोई सहानुभूति है और न जिनके मस्तिष्क में संसार की अवस्था सुधारने के लिए कोई व्यावहारिक विचार ही उठ सकते हैं वे तो आज शक्तिशाली और उत्तरदायी बने हुए हैं और इसके समान हीरे धूल और कीचड़ में सड़ रहे हैं। कैसी उल्टी चाल है!

लन्दन की सड़कें जो इतनी अधिक साफ़ रहती हैं उसका अधिकांश श्रेय ऐसे ही झाड़ूवालों को है। यही कारण है कि आप उन पर कूड़ा-करकट नहीं देखते, केलों और नारङ्गियों के छिलके अथवा काग़ज़ के टुकड़े प्रायः गिरते ही उठा लिये जाते हैं। लन्दन की सड़कों में "शहर" की सड़कें—शहर से केवल उसी भाग से मतलब है जहाँ समस्त ब्रिटिश द्वीप अथवा समस्त ब्रिटिश-साम्राज्य का आर्थिक कारबार चलता रहता है और वेस्ट एण्ड की सड़कें, जहाँ धनी लोग रहते हैं, विशेषरूप से सदैव झकाझक रहती हैं। चाहे आप दिन में जायँ, चाहे रात में और चाहे जिस ऋतु में वे आपको सदैव एक-दम साफ़ दिखाई देंगी। झाड़ूवाले पहले एक लम्बे दस्तेवाले झाड़ू से लीद और कूड़ा-करकट को समेट कर ढेर सा बना लेते हैं। झाड़ू में एक ओर खुरचने के लिए औजार सा लगा रहता है। उससे यदि फ़र्श पर कोई चीज़ लिपट जाती है तो उससे छुटा लेते हैं। और फिर उसको फावड़े से उठाकर हाथ-गाड़ी में डाल देते हैं। छोटी-छोटी हाथ से चलनेवाली गाड़ियाँ इसी काम के लिए बनाई जाती हैं। यदि उनके पास ये गाड़ियाँ नहीं होतीं तो वे उसको उन बड़ी बड़ी गाड़ियों में डालते हैं जो समय-समय पर बराबर चारों ओर चक्कर लगाया करती हैं। प्रत्येक झाड़ूवाले के पास तरह तरह के अनेक औजार भी मौजूद रहते हैं। जिनको वह अपनी हाथ-गाड़ी में रक्खे रहता है।

कभी कभी जब बहुत रात गये अथवा बड़े प्रातःकाल मुझे किसी समाचार-पत्र के कार्यालय से आने का मौक़ा लगा है तब मैंने देखा है कि मोटर-पावर से चलनेवाले बड़े बड़े एञ्जन सड़कों को साफ़ करने और पानी छिड़कने में लगे हुए हैं। वे कितनी तेज़ी से और कितनी

एक अँगरेज़ झाड़ूवाला।

सफ़ाई से काम करते हैं यह देखते ही बनता है। पेरिस में इसके लिए एक दूसरा ही विधान है, जिसे अँगरेज़ी में 'वाटर फ़लशिंग' कहते हैं। सचमुच इसके द्वारा सफ़ाई बड़े ही उत्तम ढङ्ग से हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे बार बार इस बात पर आश्चर्य हुआ है कि जब टेम्स जैसी विशाल नदी लन्दन के हृदय को फाड़ कर बह रही है, फिर क्यों यहाँ के म्यूनिसिपल अधिकारी यहाँ भी वही वाटर फ़्लशिंग विधान नहीं चला देते। मैं समझता हूँ, एक न एक दिन इन लोगों की आँखें खुलेंगी और ये तब इसका उपयोग करेंगे।

यद्यपि कूड़ा ढोनेवालों एवं सड़क पर झाड़ू लगानेवालों का काम बहुत ही गन्दा होता है और जब वे लोग अपना काम समाप्त करके रात को घर पहुँचते हैं तब उनके धन्धे का प्रभाव उन पर अच्छी तरह प्रकट हो जाता है। पर जब लोग नहा-धोकर और अपनी बढ़िया पोशाक पहन कर बाहर निकलते हैं तब वे वैसे ही भले मालूम होते हैं जैसे कि भद्र लोग! एक दिन की बात है। मुझे ठीक याद है कि हम लोग अपने ही मकान के पास एक छोटे से पार्क में इधर-उधर टहल रहे थे। इतने में मेरी स्त्री ने पूछा—क्यों, जिस भले मानुस ने अभी हम लोगों को सलाम किया है वह कौन है (इँग्लैंड में टोप उतारने का अर्थ ही सलाम करना होता है)।

मैंने हँस कर कहा—उसे मैं भी जानता हूँ और तुम भी जानती हो। कूड़ा उठानेवाला, वही जो प्रत्येक सप्ताह में एक बार अपने पिछले आँगन से कूड़ा उठाने आया करता है।

मेरी स्त्री ने कहा—हाँ, ठीक है, अब मैं भी उसे पहचान गई। इसी को कायापलट कहते हैं। जो इसे न पहचानता होगा वह शायद यही कहेगा कि हज़रत किसी बैंक का मैनेजर होंगे या किसी आफ़िस के कर्मचारी। यह तो कोई स्वप्न में ही नहीं सोच सकता कि यह आदमी भी सप्ताह भर तक उस गन्दे काम को करता होगा जो हम लोगों ने देखा है।

मैंने कहा—नहीं, यह बात नहीं है। यह हिन्दुस्तान थोड़े ही है। यहाँ झाड़ूवाले अछूत नहीं समझे जाते। वह सब लोगों के साथ बराबरी से मिलता-जुलता है। वह सड़कों पर झाड़ू देता है अथवा हम लोगों के घरों से कूड़ा-करकट उठा ले जाता है। इसलिए कोई उसे उँगली नहीं उठा सकता।

मेरी स्त्री ने कहा—क्या यहाँ कोई भी अछूत नहीं ? नहीं, यह इतना सर्वव्यापक नहीं जितना आप समझते हैं। क्या आपको उन मिसेज़ ब्लेक की बात-चीत याद नहीं जो हम लोगों को जार्ज बर्नार्ड शॉ का पिगमेलियन खेल देखने के अवसर पर मिली थीं।

मुझे वह बात-चीत भूली न थी। खेल समाप्त हो चुका था। हम लोग उस पर आलोचना कर रहे थे। बात यह थी कि उस खेल में शॉ ने अपना दार्शनिक ज्ञान

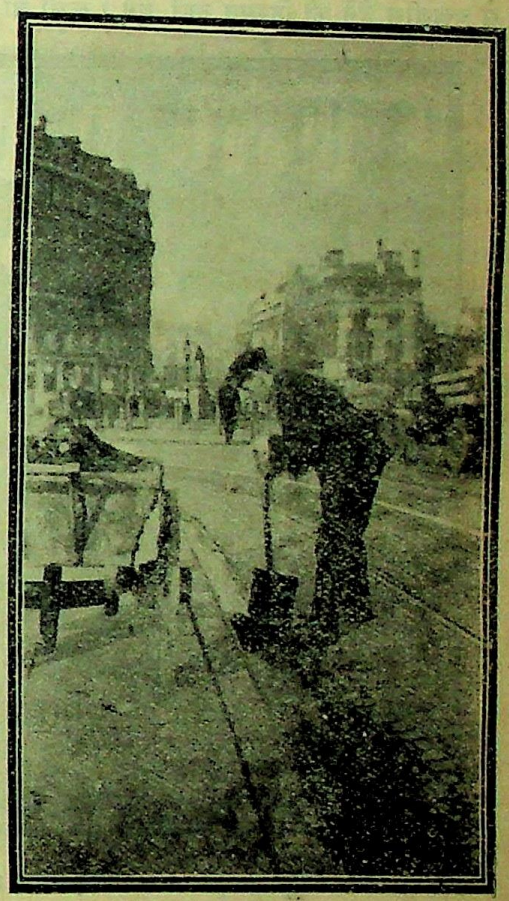

ब्लैक फ़ायर पुल के पास की सड़क।

एक झाड़ूवाले के मुख-द्वारा प्रकट किया था और वही झाड़ूवाला एक प्रकार से उस नाटक का मुख्य नायक था। उसमें सन्देह नहीं कि उसमें शॉ का साहस झलकता था। इसी अवसर पर मिसेज़ ब्लेक ने कहा था—मैं समझती हूँ कि मुझे कोई श्रेणीजन्य अनुचित पक्षपात नहीं है, तथापि जिस चीज़ को झाड़ूवाले ने छू लिया हो उसे छूना मेरी शक्ति के बाहर है। गरमियों के दिनों में वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग प्रायः पिछले द्वार पर बख़शीस माँगने के लिए इकट्ठे होते हैं। वार्षिकोत्सव के लिए ये लोग चन्दा इकट्ठा करते हैं। यद्यपि इनकी गाड़ियों पर स्पष्ट लिखा रहता है कि इन्हें कोई बख़शीस देने की आवश्यकता नहीं। इनके हाथ में एक गन्दी सी किताब रहती है जिसमें दाता लोग अपना नाम और चन्दा लिख दिया करते हैं। मैं सच कहती हूँ मुझे कभी सहज-स्वाभाविक ढङ्ग से बख़शीस देने की हिम्मत नहीं हुई। कभी तो मैं यों ही फेंक देती हूँ या कभी उनके हाथों पर डाल देती हूँ अथवा जो किताब वे खोले रहते हैं उसी पर पटक देती हूँ जिससे कहीं मेरा कोई अङ्ग उन्हें स्पर्श न कर ले। मिसेज़ ब्लेक ने ऐसी ही बातें कही थीं। यह भी कहा था कि इन लोगों के गन्देपन को देख कर घृणा होने लगती है। ये अपना काम ऐसे गन्दे और भद्दे ढङ्ग से करते हैं कि मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि ये हम सब लोगों से पृथक् एक बाहिरी श्रेणी के आदमी हैं। मैं दावे के साथ कहती हूँ कि यदि कहीं मुझे वैसा काम करना पड़े, उदाहरण के लिए डस्टबिन को साफ़ करने का, तो मैं अवश्य ही किसी लकड़ी या टीन के टुकड़े से काम निकालूँगा। उस गन्दे काम में हाथ डालना तो मेरे लिए असम्भव सा है।

मुझे एक और बात-चीत की बात याद आ गई। यह मेरे एक मिशनरी मित्र के साथ हुई थी। ये बहुत दिनों तक आक्सफ़ोर्ड में रहने के बाद भारतवासियों को ईसाई-

लीद-गोबर साफ़ करनेवाला अँगरेज़।

मत में लाने के लिए भारतवर्ष गये थे। लन्दन में मुझे एक से एक शिक्षित मनुष्यों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, किन्तु मेरी समझ में ये किसी से किसी प्रकार कम नहीं थे। हम लोग जाति के विषय में बात-चीत कर रहे थे। भला इसकी शाखा-प्रशाखायें इतनी दृढ़ कैसे हो सकती हैं।

मेरे मित्र ने कहा—मुझे एक बात से सबसे अधिक आश्चर्य हुआ और वह यह कि यह जाति-व्यवस्था और सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों की अपेक्षा मुझी को अपने वशीभूत कर रही है। हम लोगों ने एक दावत दी थी। उसमें कुछ भङ्गी भी सम्मिलित थे जिनको हमने ईसाई बनाया था। क्या आप इस बात पर विश्वास कर सकते हैं कि जब मैंने उन लोगों को उन्हीं रकाबी और गलासों में खाते-पीते देखा जिनमें हम लोग रोज़ खाते-पीते थे, तब मुझे बहुत ही बुरा मालूम हुआ, असहय सा हो गया। मैं जानता था कि यह भाव बहुत बुरा है, एक-दम नीच और घृणित है, किन्तु मैं उसको अपने मन से नहीं दूर कर सकता था।

बात यह है कि जिसे हम लोग 'जाति-भेद' कहते हैं उसे अँगरेज़ श्रेणी-जन्य 'पक्षपात' कहते हैं। यदि हम दोनों भावों का विश्लेषण करें तो अन्त में दोनों की व्युत्पत्ति बहुत कुछ एक सी पायँगे। इँग्लैंड में, उदाहरण के लिए वे लोग भी जो मध्यम श्रेणी के निम्न वर्गों में गिने जाते हैं अपने उत्सवों में उन लोगों को नहीं बुलाते जो उनके घर का कूड़ा-करकट साफ़ करते हैं और न कभी उन लोगों के साथ अपनी लड़कियों का विवाह ही कर सकते हैं। किन्तु तो भी हम साधारणतः यह नहीं कह सकते कि यह सङ्कोच अथवा सङ्कीर्णता घृणा-जन्य है। ये लोग उन लोगों को झाड़ू देने के कारण घृणा की दृष्टि से देखते हों, सो बात नहीं है। मुझे तो सन्देह है कि सौ में से निन्नानवे फ़ी सदी मनुष्य कभी इस बात को सोचते ही नहीं कि कूड़ा ढोनेवाले अथवा झाड़ू-वाले जिस काम में लगे हुए हैं वह नीच है। उनको इसकी चिन्ता नहीं। पर यह सर्वथा निश्चित है कि यहाँ अछूत-समस्या नहीं है।

सभ्यता दिन-प्रति-दिन उन्नति करती जाती है, एक न एक दिन मनुष्यों की उत्पादक शक्ति कोई ऐसी युक्ति ढूँढ़ निकालेगी कि कूड़ा ढोनेवालों और झाड़ूवालों का काम ही न रह जायगा। मशीनें इनका काम करने लगेंगी। मेरी समझ में, वह दिन अब बहुत दूर भी नहीं है।

लेट निहालसिंह

——

धर्मधुरन्धर।

(१)

धारे धर्म कर्म को करके मर करके भी हटे नहीं,
चाहे अस्थिर अंग कटे पर स्वयं स्वप्न में कटे नहीं।
प्रण-पालन में प्राण-निछावर करता है कुछ खेद नहीं,
कठिन कार्य से धर्मधुरन्धर को होता निर्वेद नहीं॥

(२)

इन्द्रासन भी मरघट के सम जिसे धर्म के सम्मुख है,
ध्रुव-सम रहे धर्म-संकट में दुख में भी जिसको सुख है।
जिसे लाभ में हर्ष नहीं है जिसे हानि में क्षोभ नहीं,
धर्मधुरन्धर वही धर्म को छोड़ अन्य में लोभ नहीं॥

(३)

पुत्र, कलत्र, धाम, धन, धरणी इनकी जिसको चाह नहीं,
डाह न उर में जिसके मुख से कभी निकलती आह नहीं।
किन्तु धन्य धार्मिक स्वत्वों पर मर मिटता है आप वही,
पाप-कलाप न जिसके मन में क्यों सह सकता ताप वही?

(४)

सत्याग्रह से सत्य प्रेम है वही मनुज करनेवाला,
जो डरनेवाला न किसी से धर्म-हेतु मरनेवाला।
जो हो मन में वही वचन में उसी बात पर अड़ा रहे,
धर्मधुरन्धर बलि होने को बलि-वेदी पर खड़ा रहे॥

(५)

नश्वर देह-हेतु ईश्वर की आज्ञा से जो मुरे नहीं,
जिसने काया-मनो-वचन से किये कर्म हैं बुरे नहीं।
धर्मधुरन्धर वही पुरन्दर को भी नाच नचाता है,
प्रलय मचाता है पल में पर अपना धर्म बचाता है॥

(६)

जिसने अपने को छोटों से भी छोटा है मान लिया,
पर-हित को धर्मोत्तम जिसने धर्म-बुद्धि से जान लिया।
धर्मधुरन्धर वही निरन्तर पर-हित में है लगा हुआ,
जगा हुआ है घोर निशा में धर्म-सुधा में पगा हुआ॥

(७)

आत्म-हनन से भी बढ़ करके धर्म-हनन को जो जाने,
सच्चा साथी सदा धर्म को उभय लोक में जो जाने।
ईश्वर का सहचर है वह उसका अनुचर बनकर रहिए,
कहिए उसको धर्मधुरन्धर उसके लिए दुःख सहिए॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

धर्मधुरन्धर नर को कोई कर्म कठिन है कहीं नहीं,
उसके हाथ हिलाने से क्या हिल सकती है मही नहीं ?
पर उसको उपकार, अहिंसा, और सत्य का ध्यान रहे,
ज्ञान रहे जिसमें उस जन का क्यों न जगत में मान रहे ?

(९)

धर्मधुरन्धर धर्म-हेतु ही तिल के सम पिस जावेगा,
पर-उपकृति मे क्रम-क्रम से वह चन्दन सा घिस जावेगा।
पर वह निज कर्तव्य न जीते जी सपने में छोड़ेगा,
मोड़ेगा मुख दैशिक व्रत से या क्यों नाता तोड़ेगा ?

(१०)

रङ्क-तुल्य है राजा जिसको पर्वत हैं सम राई के,
शत्रु-मित्र में भेद न जिसको कण्टक हैं सम भाई के।
धर्मधुरन्धरता की पदवी उसी मनुज को मिलती है,
हिलती है जिसके भय से भू, रज में नलिनी खिलती है॥

(११)

पतित-पावनी गङ्गा सी हो प्रज्ञा अति निर्मल जिसकी,
सेवा करे करों को जोड़े अतिबल भी कल्मिल जिसकी।
धर्मधुरन्धर वही राम सा पतित जनों से स्वयं मिले,
खिले कमल सा उन्हें उठाकर खल-मण्डल से नहीं हिले॥

(१२)

निपतित को उत्थित कर देना अधर्मों को उत्तम करना,
डरना नहीं-कभी विघ्नों से चाहे अपना हो मरना।
धर्मधुरन्धर उसको कहिए जिसमें ये सब लक्षण हों,
शिक्षण होवे यदुपतिवाला रघुपतिवाला रक्षण हो॥

रामचरित उपाध्याय

चुनाव, प्रतिनिधि और मताधिकार।

(१) प्रारम्भिक बातें।

पृथ्वी के अन्य बड़े बड़े देशों की परिस्थिति के साथ साथ भारतवर्ष में भी एक नया परिवर्तन हुआ है। पश्चिमी देशों से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक-क्षेत्र में नई नई रूढ़ियों और व्यवहारों का प्रचार हो रहा है। शासन-कार्य को प्रजा-सम्मत और लोकप्रिय बनाने के लिए अनेक संस्थाओं का जन्म हुआ है और चुनाव तथा मताधिकार की बहुत सी बातें सुन पड़ती हैं। इस लेख में हम भारतीय परिस्थिति पर ध्यान रखकर इन विषयों पर कुछ तात्त्विक विचार करेंगे।

मनुष्य-जाति दिनोंदिन प्रजासत्ताक शासन-पद्धति की उपासना अधिकाधिक करती जा रही है। उसने हज़ारों वर्षों के अनुभव से देख लिया है कि एक व्यक्ति का राज्य अथवा एकाधिपत्य शासन-पद्धति उसका उतना हित नहीं कर सकती जितना बहुत से श्रेष्ठ व्यक्तियों का लोकप्रिय प्रातिनिधिक शासक-समूह कर सकता है। इतिहास उसके इस अनुभव का साक्षी है। एक व्यक्ति—राजा—को रिझाकर लट्टू बना लेना, लोभ-लालच में फँसा लेना और अपने मतलब गाँठने के लिए मोहित कर लेना उतना कठिन नहीं जितना कि दस पचास, सौ दो सौ विद्वानों और नेताओं को अपने चक्कर में ले आना है। स्वार्थान्धता, सबलता और खुशामद एकाधिपत्य राज्य-पद्धति की तरह अपना जादू प्रजातन्त्र-पद्धति पर भी डालती है, इसलिए यह धारणा भ्रमपूर्ण है कि इस पद्धति में दोषों का पता ही न रहता होगा। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कुछ शताब्दियों से मनुष्य-जाति प्रजातन्त्र-राज्य-पद्धति को अधिक हितकर समझने लगी है और उसके प्रचार तथा स्थापन का प्रयत्न कर रही है। लोक-प्रवाह एक विकसित तथा उच्च प्रजा-सत्ताक शासनपद्धति की ओर जा रहा है यही इस युग की नवीनता है।

शासन-कार्य, चाहे उसका सञ्चालक एक व्यक्ति हो या बहुत से व्यक्ति हों, तभी तक प्रजा का हित कर सकता है जब तक उसमें निरङ्कुशता न हो। यह सर्वमान्य नियम है कि राजा, सरकार अथवा शासक-समूह की उत्पत्ति प्रजा के हित, व्यवस्था तथा विकास के उद्देश से की गई है और इन्हीं उद्देशों के पालन के लिए उसकी आवश्यकता भी है। इन्हीं उद्देशों का पालन करने के लिए वह प्रजा से अनेक प्रकार के कर ले सकती है और प्रजा पर उसका बहुत सा अधिकार उत्पन्न हो जाता है और अधिकार के साथ उसके कुछ आवश्यक कर्तव्य भी हो जाते हैं। प्रजा यदि उसमें कुछ स्वेच्छाचार या निरङ्कुशता देखने लगती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तो उससे कारण पूछती है और अवहेलना होने पर थोड़ी-बहुत रुकावट डालती और टीका-टिप्पणी करती है, क्योंकि कर लेनेवाले पर कर देनेवाला भी कुछ प्राकृतिक अधिकार रखता है। सारांश यह है कि प्रजा की इच्छा—लोकमत—से ही शासक-समूह का जन्म होता है और शासन का दीर्घ जीवन लोकप्रियता पर निर्भर रहता है अर्थात् प्रजा और सरकार का सम्बन्ध आधार-आधेय का सम्बन्ध है। ज्यों ही किसी व्यक्ति से कर लिया जाता है, त्यों ही इस बात की भी स्वाभाविक आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है कि उस व्यक्ति की राय मालूम हो सके, वह कुछ बोल सके और शासन-कार्य में अपना मत देने का उसे अधिकार रहे। अर्थात् कर देनेवाला प्रत्येक मनुष्य (मताधिकारी या वोटर) अपने स्थान के शासन का आंशिक राजा भी है। यदि किसी म्युनिसिपालिटी नामक सीमाबद्ध राज्य में दस हज़ार मतदाता हैं तो इसका सरल अर्थ यही है कि उसके दस हज़ार राजा हैं।

प्रजातन्त्र-शासन-प्रणाली का थोड़ा-बहुत प्रत्यक्ष दर्शन भारतवासियों को आज-कल लोकल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट-कौन्सिल, म्युनिसिपालिटी और व्यवस्थापक कौन्सिलों के द्वारा मिलता है। गाँव, शहर और प्रान्तों में इन्हीं संस्थाओं के निश्चय के अनुसार शासन चलता है। प्रधान सत्ता का सारी प्रजा में बँट जाना अथवा शासन-कार्य में बिना बाधा के सार्वत्रिक मताधिकार का होना उत्तम कोटि के प्रजा-सत्ताक शासन का चिह्न है। सार्वत्रिक मताधिकार का प्रसार हो जाने पर भी सब मतदाता एक ही समय में एक स्थान में बैठकर अपनी राय नहीं दे सकते। कल्पना कीजिए कि आपके देश का राज्य दस पचीस लाख मतदाताओं (वोटरों) की राय से चलता है; ऐसी दशा में इन सबका सदा एक स्थान में हाज़िर हो सकना और छोटे बड़े सभी विषयों पर एक ही समय इकट्ठों विचार करते बैठे रहना असम्भव है। इसलिए असुविधा दूर करने के लिए और शक्तियों का अपव्यय रोकने के लिए ये अपनी ओर से कुछ प्रतिनिधि चुन लिया करते हैं और अपने प्रतिनिधियों की सारी इच्छाओं और कार्रवाइयों को अपनी इच्छा तथा कार्रवाई समझने के लिए तैयार हो जाते हैं। यही कारण है कि कुछ लोग प्रजासत्ताक-राज्यपद्धति को प्रतिनिधि-शासन-प्रणाली भी कहते हैं। इस तरह चुनाव के द्वारा होनेवाले शासन से मतदाता प्रजा-समुदाय को जो सुख-दुख होता है उसके लिए जवाबदार कोई दूसरा न होकर स्वयं वह समुदाय ही है।

सरकार नामक शक्ति अर्थात् शासन-क्रिया के दो विभाग होते हैं, पहला व्यवस्था के लिए क़ानून बनाना और दूसरा क़ानून को अमल में लाना। इन्हीं दो प्रधान कर्तव्यों का पालन करने के लिए प्रत्येक सरकार व्यवस्थापक-सभा और कार्यकारिणी सभा बनाती है। इस सिद्धान्त को ध्यान में रखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस शासन के इन दोनों विभागों में प्रजा अथवा उसके प्रतिनिधियों का हाथ जितना कम हो उतना ही उस शासन का प्रातिनिधिक स्वरूप भी कम हो जाता है। रिफ़ार्म-एक्ट के अनुसार भारतवर्ष में भी कुछ कार्यकारी विभाग प्रजा के अधीन कर दिये गये हैं, इसलिए भारतीय जनता तथा शिक्षित-समाज में मताधिकार, चुनाव, लोकमत, प्रतिनिधि, वोटर आदि बहुत से शब्द सुनाई पड़ते हैं। इन शब्दों का अर्थ समझने के लिए ऊपर कुछ स्थूल तथा प्रारम्भिक सिद्धान्त दिये गये हैं। इनके कुछ ख़ास ख़ास उपभेदों पर विचार करने के लिए हमें किसी म्युनिसिपालिटी या प्रान्तीय कौन्सिल के चुनाव का उदाहरण ध्यान में रखना चाहिए।

(२) मताधिकार।

प्रजातन्त्र-शासन-पद्धति में राजनैतिक सत्ता जनसाधारण में बँट जाती है। लोक-समुदाय का जो अंश इस सत्ता का पात्र होता है, यथार्थ में वही अंश शासक भी है। उदाहरणार्थ, यह बतलाया जा चुका है कि किसी स्थान में पचीस हज़ार मताधिकारी हैं। इस कथन का यही अर्थ हो सकता है कि उस स्थान के पचीस हज़ार राजा हैं और उनमें से प्रत्येक व्यक्ति के पास राज्य-बल का $\frac{1}{25000}$ वाँ अंश अर्थात् समान भाग है। जिस तरह से किसी मनुष्य का उसके पड़ोसी की कोई वस्तु अथवा पञ्चायती पदार्थ पर अधिकार नहीं, उसी तरह न्याय की दृष्टि से उसे यह भी अधिकार नहीं कि वह अपने मताधिकार का दुरुपयोग करे, क्योंकि यह अधिकार लोक-समुदाय के हित के लिए मिली हुई उसके पास एक पवित्र सार्वजनिक धरोहर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब म्युनिसिपालिटी या कौन्सिल की शासक-सभा का कार्य-काल अथवा राज्य-काल समाप्त हो जाता है तब नई शासक-सभा का चुनाव होता है। इन संस्थाओं की सीमा के भीतर रहनेवाले मनुष्य-समुदाय में से सभी को मत देने का—शासन में भाग लेने का—अधिकार नहीं रहता। कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें मतदाता या वोटर बनने का अधिकार रहता है अर्थात् वे प्रतिनिधि के चुनाव में भाग ले सकते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो केवल प्रजाजन हैं अर्थात् जिन्हें राज्य के कार्य में मत देने या चुनाव करने का कोई हक़ नहीं। यदि आपके नगर की मनुष्य-संख्या एक लाख है तो मतदाताओं की संख्या बीस-पचीस या तीस हज़ार होगी। वहाँ जो शेष साठ-सत्तर हज़ार निवासी हैं उन्हें मत देने का कोई अधिकार नहीं रहेगा। चुनाव के द्वारा जो शासनसभा बनती है वह मतदाताओं के ऊपर भी शासन करती है और मूक प्रजा पर भी। अतएव उत्तम शासन वही हो सकता है जो अधिकारी वोटरों के हित के साथ अधिकार-हीन प्रजा के दुख-सुख का भी ध्यान रक्खे।

मतदाता बनने अथवा निर्वाचन करने का हक़ रखने के लिए कुछ न कुछ पात्रता और योग्यता चाहिए। यह योग्यता कई प्रकार की हो सकती है। कहीं अवस्था की योग्यता देखी जाती है, जैसे किसी किसी पश्चिमी देश में पचीस वर्ष से कम अवस्था-वाले मतदाता नहीं बनाये जाते। कहीं इस बात की आवश्यकता होती है कि ज़मीन, मकान, जागीर आदि व्यक्तिगत सम्पत्ति अमुक मात्रा (दो-चार सौ रुपये या दस-बीस पौण्ड) से कम की न हो। कहीं मताधिकार वार्षिक आमदनी पर अवलम्बित रहता है और कहीं सालाना इनकमटैक्स पर। कहीं वह प्रत्येक मनुष्य मतदाता हो सकता है जो स्कूल-कालेज की कोई ख़ास परीक्षा में पास हो। किसी स्थान में वह मनुष्य मतदाता नहीं बन सकता जिसका निवास उस स्थान की सीमा में एक ख़ास अवधि—वर्ष दो वर्ष—तक न रहा हो। भिन्न भिन्न देशों और परिस्थितियों में मताधिकार की पात्रता के लिए बहुत से भिन्न भिन्न नियम पाये जाते हैं और उनका प्रचार मानवीय अनुभव तथा हितदृष्टि से हुआ है।

प्रजातान्त्रिक संस्थाओं में जिन सिद्धान्तों के आधार पर मत के अधिकार की रचना की जाती है वे अनेक प्रकार के होते हैं। मनुष्य-संख्या के सिद्धान्त पर जनता को अधिकार मिलना अधिक उपयोगी और लाभदायक होता है। जात-पाँत के भेदभाव के सिद्धान्त पर मताधिकार की बुनियाद डालना बड़ा घातक होता है, क्योंकि अन्त में भेदभाव एक ऐसी चीज़ है जो जनता के सामाजिक जीवन में अनुचित द्वन्द्वभाव उत्पन्न कर राष्ट्र की एकता में प्रबल बाधा डालती है। आदर्श सिद्धान्त तो यह है कि योग्य व्यक्तियों को प्रधिनिधित्व दे दिया जाय, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान अथवा पारसी हों या ईसाई। यह आदर्श संसार से, ख़ासकर भारतवर्ष से, बहुत दूर है। मताधिकार और प्रतिनिधित्व को जाति-तत्त्व पर सदा के लिए स्थिर कर लेने के लिए हमारे कुछ मुसलमान भाई प्रबल प्रयत्न कर रहे हैं। जो हिन्दू यह समझते हों कि मुसलमानों के इस प्रयत्न को केवल इसलिए तुरन्त नष्ट कर देना चाहिए कि वह राष्ट्रीयता के मूलतत्त्व—एकता—का गला घोंट देगा वे ग़लती कर रहे हैं। एक अग्रगण्य पत्र-सम्पादक के मतानुसार यह बुराई अभी कुछ समय तक भारतवर्ष में जीवित रहने के लिए आई है, अतएव इसकी पूरी अवहेलना नहीं की जा सकती; हाँ, इसके भविष्य विकास को रोकना चाहिए। अस्तु। विशेष दलों, प्रबल स्वार्थों और अल्पसंख्यक लोगों के हित पर ध्यान रखकर भी कुछ अंश तक मताधिकार की सृष्टि की जाती है।

मताधिकार का फैलाव जितना कम और सङ्कुचित होगा, उतना ही शासन का कार्य भी सङ्कुचित और स्वेच्छा-पूर्ण रहेगा। इसलिए शासन के स्वरूप को अधिक प्रातिनिधिक बनाने के लिए मनुष्य-जाति के शुभचिन्तकों का कर्तव्य है कि वे जनता में मत देनेवालों की संख्या बढ़ावें और शिक्षा के द्वारा अपात्रों को पात्र बनावें। जिनमें स्वाभाविक अपात्रता हो वे मतदाता नहीं बन सकते जैसे पागल, अत्यन्त दरिद्र, दिवालिया, चरित्रभ्रष्ट या सजायाफ़्ता मनुष्य, युद्ध में गये हुए सिपाही और बच्चे। ऐसे लोगों को छोड़कर जो व्यक्ति अभी तक अपने स्थान अथवा देश के शासन-कार्य में मत देने के अधिकार से वञ्चित हैं उन सबको शीघ्रातिशीघ्र निर्वाचक बनाने का प्रयत्न होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि सोचने और विचार करने की शक्ति ईश्वर ने सबको—शिक्षित और अपढ़ को भी—दी है और प्रत्येक मनुष्य को संसार का थोड़ा न थोड़ा व्यावहारिक ज्ञान अवश्य रहता है। कहा है कि "अपने हानि-लाभ और हित-अहित को पशु-पक्षी भी जानते हैं, मनुष्यप्राणी तो भला गुण और ज्ञान से युक्त है?" पश्चिमी देशों में स्त्रियों को भी मत देने का अधिकार दिया जा रहा है और यह आवश्यक तथा उचित भी है, क्योंकि उनमें बुद्धि तथा योग्यता का अभाव नहीं। हमारे यहाँ तो अभी पुरुषवर्ग के मताधिकार की व्यापकता का ठिकाना नहीं, अतएव अशिक्षित स्त्री-समाज की बात अभी बहुत दूर है। राजनीति के एक प्रसिद्ध आचार्य मांटेस्क्यू का मत है कि "उन लोगों को छोड़कर जो इतने नीच श्रेणी के हैं कि उनकी अपनी निजी इच्छा ही नहीं है, सब लोगों को प्रतिनिधियों के चुनाव में हिस्सा लेने का अधिकार होना चाहिए।" स्मरण रखना चाहिए कि सभ्य कहलानेवाले देशों से शिक्षा-विषयक उपाधि, बड़े पद और अमीरी का मताधिकार-सम्बन्धी बन्धन धीरे धीरे उठता जा रहा है।

मत देने का अधिकार कई प्रकार का हो सकता है, जैसे एकमताधिकार, बहुमताधिकार, निर्णयकारक या अतिरिक्त मताधिकार, व्यक्तिगत मताधिकार और किसी दूसरे को सौंपा जा सकनेवाला (हस्तान्तरणीय) मताधिकार। एकमताधिकार की प्रथा में एक व्यक्ति को किसी विषय पर संख्या की दृष्टि से केवल एक मत देने का अधिकार रहता है, चाहे वह व्यक्ति राजा हो या रङ्क और महान् विद्वान् हो या बिलकुल मामूली बुद्धिवाला हो। बहुमताधिकार में साधारण आदमियों की अपेक्षा असाधारण आदमियों को एक से अधिक मत देने का अधिकार रहता है। जैसे उत्तम चरित्रवाले किसी व्यक्ति को, दूरदर्शी अनुभववाले मुखिया को, अपार सम्पतिवाले रईस को और श्रेष्ठ विद्वान् को दो या तीन मताधिकार दे दिये जाते हैं। इससे साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा इनकी असाधारणता सूचित होती है। परन्तु संसार ने इस प्रथा का प्रयोग कम—बहुत ही कम—किया है, क्योंकि इसमें दो बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ हैं। एक तो यह समाज में असमानता और बड़े-छोटे का प्रत्यक्ष भेदभाव उपस्थित करती है और फिर उत्तम चरित्र, दूरदर्शी अनुभव, अपार सम्पत्ति और श्रेष्ठ विद्वत्ता को नापने के लिए कोई सर्वमान्य कसौटी या यन्त्र ढूँढ़ निकालना बड़ा कठिन है। इसी लिए संसार में एकमताधिकार की पद्धति का प्रचार हुआ है। निर्णयकारक या अतिरिक्त मताधिकार सभा-सम्मेलनों के सभापतियों को आप ही आप मिल जाता है, क्योंकि जब किसी विषय पर मतभेद रखनेवाले सदस्यों की संख्या समान हो तो अन्तिम निर्णय बिना अतिरिक्त मताधिकार के हो नहीं सकता। बहुतेरे कामों में मताधिकार प्रायः व्यक्तिगत होता है; विचारकों और विशेषज्ञों ने यही उचित समझा है कि एक व्यक्ति अपने इस अधिकार को दूसरे को न दे, क्योंकि इस बात का विश्वास नहीं कि किसी प्रस्ताव पर मोहनलाल जैसा सोचेगा ठीक वैसा ही सोहनलाल भी विचार कर सकेगा, दोनों की बुद्धि, अनुभव, योग्यता और दृष्टिकोण में बड़ा अन्तर रहेगा। जो मताधिकार किसी दूसरे व्यक्ति को—मित्र, भाई या मुख़्तार को—सौंप दिया जाता है उसका मूल्य या तो घट जाता है या बढ़ जाता है, ज्यों का त्यों रहना प्रायः सर्वथा असम्भव है।

मताधिकारियों की आँखों में धूल डालने के लिए बहुत सी चालें चली जाती हैं; प्रलोभन और प्रभाव का उपयोग किया जाता है और बहुत से स्वाँग रचे जाते हैं। चुनाव का समय आने पर लोकप्रिय बनने के लिए कोई कौन्सिल या म्युनिसिपालिटी से इस्तीफ़ा दे देता है, कोई खादी की टोपी पहिनने लगता है, कोई काँग्रेसकमेटी के दफ़्तर में जाकर मेम्बरी के फ़ार्म पर दस्तख़त कर आता है और कोई सरकार के दोष बतलाना प्रारम्भ कर अपनी प्रजाहितैषिता का परिचय देता है। यदि किसी पुराने प्रतिनिधि से कहा जाय कि आपने तो एक समय प्रतिनिधि बनकर प्रजा का गला घोंट डाला था तो उत्तर मिलेगा—"साहब क्या किया जाय? उस समय परिस्थिति ही ऐसी थी।" अधिक पूछिए तो वे कहेंगे कि आप उन बातों को समझ ही नहीं सकते। बस, छुट्टी हुई। ऐसे महात्मा लोग आगामी चुनाव के लिए किसी न किसी तरह रास्ता साफ़ कर लेते हैं और प्रतिनिधि बन जाने के बाद जनता को ही मूर्ख कहने लगते हैं। ऐसे लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की करामातों को पहचान कर मत देना चाहिए। "जैसे हाँड़ी काठ की चढ़ै न दूजी बार" उसी तरह धोखेबाज़ व्यक्ति किसी कारणवश एकाध बार जनता के प्रतिनिधि बन सकते हैं—बार बार नहीं। मतदाताओं का चुनाव से उदासीन रहना बड़ा घातक होता है; यदि उसका बहिष्कार इच्छा-पूर्वक किया गया हो तो दूसरी बात है। चुनाव से अलग रहना प्रतिनिधि-शासन-पद्धति को सङ्कुचित बनाकर नादिरशाही का स्वागत करने के बराबर है। उससे जनता में राजनैतिक जाग्रति का अभाव सूचित होता है और स्वार्थियों को अधिकारारूढ़ होने का अवसर मिलता है। जो वोटर किसी निजी झगड़े के कारण किसी योग्य उम्मेदवार के विरुद्ध लोगों को भड़काता है वह उतना ही पापी है जितना किसी की मुरौवत में फँस जानेवाला वोटर। सार्थक, सच्चा, और उपयोगी मत वही हो सकता है जो अपनी स्वतन्त्र इच्छा से, किसी सार्वजनिक हित का ध्यान रखकर विचार-पूर्वक, दिया गया हो।

हम पहले कह आये हैं कि प्रत्येक मताधिकारी उस सीमाबद्ध स्थान के शासन का आंशिक राजा है जिसके लिए प्रतिनिधि चुनने में उसकी भी एक आवाज़ हो। यह भी कहा जा चुका है कि वोटर को अपने अधिकार को एक सार्वजनिक धरोहर समझकर उसका उपयोग केवल बहुजन-समाज के हित के लिए करना चाहिए। मताधिकारी लोग अपनी अपनी ज़िम्मेदारी और कर्त्तव्य को जितनी उत्तमता से समझेंगे, उतनी ही प्रतिनिधि-शासन-पद्धति अधिक सन्तोषजनक होती जायगी। वोटर में कितनी बड़ी शक्ति छिपी रहती है उसका पता किसी चुनाव के समय लगता है, जब वोट के भिखारी और उम्मेदवारों के दलाल उनके दरवाज़े खटखटाते हैं। अपनी शक्ति को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए वोटरों को चाहिए कि वे अपनी एक सभा अथवा मताधिकारी सङ्घ बनावें और उसकी बैठक में आपसी विवाद करके यह निश्चय कर लें कि वे किन किन उम्मेदवारों की सफलता चाहते हैं और किन उम्मेदवारों की पदाभिलाषा को अनुचित या असामयिक समझते हैं। अपनी निश्चित नीति के द्वारा वे किसी अयोग्य उम्मेदवार से प्रार्थना कर सकते हैं कि वह अपनी उम्मेदवारी वापस ले ले और किसी ऐसे पात्र व्यक्ति को उम्मेदवार बनने का आग्रह भी कर सकते हैं जो केवल सङ्कोच के कारण तटस्थ हो रहा हो। उम्मेदवारों से उसकी नीति और भविष्य कार्य-क्रम की स्पष्ट घोषणा करा लेना सङ्गठित वोटरों के हाथ की बात है। प्रतिनिधि चुनते समय बड़ी सावधानी के साथ खूब समझ-बूझ कर और जाँच-पड़ताल करके मत देना चाहिए और सङ्घ अथवा सङ्गठन होने पर यह काम सरलता तथा सफलता से हो सकता है।

(३) चुनाव।

चुनाव अथवा निर्वाचन वह क्रिया है जिसके द्वारा एक निश्चित अवधि—कहीं कहीं तीन वर्ष—के लिए नियम बनानेवाले और शासन करनेवाले प्रतिनिधियों की उत्पत्ति सत्ताधारी प्रजा अर्थात् वोटरों के द्वारा की जाती है। प्रजा-द्वारा चुने गये प्रतिनिधि यदि प्रजा का हित न करें तो इसमें उन प्रतिनिधियों की अपेक्षा अधिक दोष उन्हें चुननेवालों का है, क्योंकि प्रतिनिधि बनाने का अधिकार तो चुननेवालों के हाथ में रहता है। व्यावहारिक राजनीति चाहती है कि जिन व्यक्तियों में दोष कम और गुण अधिक हों उनका उपयोग किया जाय, अतएव यह आशा करना ठीक नहीं कि सभी स्थान और सभी समय में सर्वथा निर्दोष प्रतिनिधि मिल सकेंगे; संसार के व्यवहार में हमें केवल उन प्रतिनिधियों को पाकर सन्तुष्ट होना चाहिए जो अन्य दूसरे व्यक्तियों की तुलना में अधिक हितकारी तथा विश्वसनीय सिद्ध हो सकते हों। तुलनात्मक-दृष्टि से जो अधिक योग्य हों, उनसे सेवा करा लेने के बदले उनकी सदा निन्दा करते रहना मूर्खता और गुलामी का चिह्न है। चुनाव के द्वारा हम अपने हाथ की राजनैतिक शक्ति को दूसरे आदमी के हवाले करते हैं इसलिए चुनाव के समय के आलस्य के बड़े बुरे परिणाम होते हैं।

जिस स्थान, प्रान्त अथवा सीमा के लिए चुनाव होता है वह स्थान अनेक काल्पनिक विभागों (डिवीज़न, वार्ड या सर्किल) में बाँट दिया जाता है और उन सब विभागों की ओर से शासन-सभा में आवश्यकतानुसार एक या एक से अधिक प्रतिनिधि चुने जाते हैं। प्रतिनिधियों की पूरी संख्या का निश्चय आबादी, मुख्य मुख्य प्रबल दल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और परस्पर-विरोधी स्वार्थों को ध्यान में रखकर किया जाता है। यदि किसी विभाग के पास इस बात का प्रमाण हो कि अन्याय या भूल से उसे दूसरे विभागों की तुलना में कम प्रतिनिधि मिले हैं तो वह उचित मार्ग से लड़कर अपने प्रतिनिधि की संख्या बढ़ा सकता है। और, यदि किसी विभाग को पक्षपात या भय से उचित से अधिक संख्या में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिल गया हो तो यह संख्या प्रयत्न से घटाई भी जा सकती है। इसी तरह यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अधिकारियों के द्वारा प्रकाशित वोटरों की सूची में यदि किसी पात्र वोटर का नाम छूट गया हो अथवा किसी अपात्र मतदाता का नाम दर्ज हो गया हो तो निश्चित अवधि के भीतर उज्र पेश करने से वह नाम बढ़ाया अथवा काटा जा सकता है।

चुनाई की आवश्यकता प्रजातान्त्रिक शासनपद्धति के लिए अनिवार्य है, क्योंकि इस पद्धति का अर्थ ही यह है कि प्रजा स्वयं अपना मालिक और स्वयं अपना नौकर बनना चाहती है। परन्तु अनेक कारणों से यह असम्भव है कि समस्त मताधिकारी प्रत्यक्ष-रूप से शासक बनें। कुछ मुख्य कारण ये हैं—(१) वे सबके सब एक स्थान में एक ही समय सर्वदा उपस्थित नहीं हो सकते; (२) उनके इस तरह उपस्थित न हो सकने पर भी प्रजा की इच्छा—लोकमत—की एकता का पता लगाये बिना शासन ठीक ठीक चल नहीं सकता; (३) बहुसंख्यक प्रजा को अपने सांसारिक गोरखधंधों और निजी झंझटों से इतना समय नहीं मिलता कि वे शासन के कठिन कार्य में सदा भाग ले सकें; जिन्हें समय मिलता है उनमें भी बहुतेरे ऐसे होते हैं जो सारा शासन-भार कुछ विश्वसनीय व्यक्तियों को सौंप कर स्वयं चिन्ताओं से मुक्त रहना चाहते हैं। इन्हीं कारणों से मताधिकारी प्रजा अपनी ओर से प्रतिनिधि चुनकर अपना मत उनके द्वारा व्यक्त करती है।

जब चुनाव होने का समय आता है तब चुनने के अधिकार रखनेवाले निर्वाचकों के सुभीते के लिए कोई तारीख़ मुक़र्रर की जाती है, समय निश्चित कर दिया जाता है, भिन्न भिन्न विभागों में स्थान (पोलिंगस्टेशन) नियत कर दिया जाता है, प्रत्येक स्थान के लिए एक निरीक्षक (पोलिंग अफ़सर) नियुक्त कर दिया जाता है और जिस सीमा के लिए चुनाव होता है उस सीमा भर में अधिकारी प्रजा की जानकारी के लिए इन बातों की घोषणा मुनादी और इश्तिहार के द्वारा कर दी जाती है। मत देने के लिए एक ख़ास पत्र या मतपत्र रहता है और उस पर लिखकर मत देना पड़ता है। जो मताधिकारी लिख-पढ़ नहीं सकता उसकी ओर से लिखने का काम निरीक्षक को करना पड़ता है। मतदाता जिस या जिन प्रतिनिधियों को अपना मत देना चाहे उनके छपे हुए नाम के सामने प्रायः × चिह्न लगा देने की प्रथा है। यदि निरीक्षक को सन्देह हो जाय कि अमुक व्यक्ति मतदाता नहीं है तो वह इसके लिए प्रमाण माँग सकता है और दिया हुआ मत तब तक सार्थक नहीं होता जब तक सन्देह दूर न कर दिया जाय। जो मत निश्चित समय के भीतर लिख कर नहीं दिया जाता उसका कोई मूल्य नहीं रहता। किसी अनुचित बात की शिकायत हो तो मतदाता उसे नियमानुसार चुनाव के मुख्याधिकारी (सुपरवाइज़िंग अफ़सर) के पास पेश कर सकते हैं।

स्वीकृत नियमों और सिद्धान्तों का भङ्ग होने पर किसी एक विभाग का अथवा सभी विभागों का चुनाव नाजायज़ हो जाता है। चुनाव नाजायज़ होने के बहुत से कारण हो सकते हैं। निश्चित समय के समाप्त होने पर भी जब किसी स्वार्थ या शरारत से मत-पत्र स्वीकृत किये जाते हैं, जब निरीक्षक नियमों का अथवा आवश्यक सुस्ता का भङ्ग करता है या किसी उम्मेदवार के अनुकूल-प्रतिकूल मतदाताओं पर दबाव डालता है, जब उम्मेदवार और उनके पक्षपातियों को चुनाव के स्थान के भीतर भी वोटरों की स्वतन्त्रता में बाधा डालने का मौक़ा दिया जाता है अथवा जब इसी तरह की कोई धोखेबाज़ी और अनुचित कार्रवाई होती है तब उस स्थान का सारा चुनाव रद्द हो सकता है, जहाँ ऐसी कार्रवाई होने का प्रमाण दिया जा सके। वोटरों की नामावली एक ख़ास समय के भीतर प्रकाशित न हो अथवा उसमें कोई हानिकारक भूल हो तो भी चुनाव रद्द हो सकता है। जब तक कोई प्रबल कारण न बतलाया जा सके तब तक चुनाव की तारीख़ मनमाने ढङ्ग से नहीं बढ़ाई जा सकती। एक बार चुनाव रद्द हो जाने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी ख़ास या सबके सब विभाग का चुनाव फिर दुबारा किया जाता है। बार बार चुनाव होने से मतदाताओं का समय नष्ट होता है और धन का बहुत सा अपव्यय भी होता है, परन्तु इन हानियों को रोकने के लिए कोई उपाय नहीं है। उपाय यही है कि पहली ही बार के चुनाव में पूरी सावधानी रखी जाय।

जब चुनाव का समय आता है तब पदाभिलाषी लोग और उनके पक्षवाले मनुष्य मतदाताओं को अपनी अपनी ओर खींचने का प्रयत्न बहुत पहले से करते हैं। कोई किसी पदाभिलाषी की प्रशंसा करने लगता है और कोई किसी की निन्दा। उम्मेदवारों के गुण-दोषों की छानबीन होने लगती है, वोटरों की राय जानने का प्रयत्न ज़ोरों से शुरू हो जाता है और किसी उम्मेदवार के विरुद्ध और किसी के पक्ष में मत देने के लिए मताधिकारियों से प्रार्थना प्रचार, आग्रह आदि खुले तौर से किया जाता है। इस कार्रवाई को अँगरेज़ी में केनवासिंग कहते हैं, जिसे हम एक उच्चकोटि की अनिवार्य दलाली भी कह सकते हैं। जिस अंश तक यह दलाली प्रजासत्ताक सिद्धान्तों के आधार पर सार्वजनिक हित की दृष्टि से की जाती है उस अंश तक यह सर्वथा उचित ही नहीं, लाभदायक, आवश्यक और न्यायानुमोदित है। परन्तु जिस अंश तक यह दलाली नीचता, प्रलोभन और धमकी के साथ किसी चतुर व्यक्ति या बेईमान दल के व्यक्तिगत लाभ के लिए की जाती है उस अंश तक दूषित, नाशकारी तथा अन्यायपूर्ण होने के कारण यह त्याज्य और निन्दनीय भी है। केनवासिंग करनेवाले को सबसे पहले यह जानना चाहिए कि वह किसी उम्मेदवार के पक्ष में क्यों है और अन्य उम्मेदवारों के विरुद्ध क्यों है। उसके पास आक्षेपों का प्रामाणिक उत्तर चाहिए। खेद है कि केनवासिंग का काम युक्तियों और सिद्धान्तों के आधार पर कम और व्यक्तिगत ईर्ष्या, द्वेष तथा स्वार्थ के आधार पर अधिक हुआ करता है। विरोधी पक्ष को व्यर्थ बदनाम करने और शरारतभरी ग़लतफ़हमियों का सहारा पकड़ने से थोड़ी देर के लिए काम भले ही चल जाय, परन्तु अन्त तक इसका परिणाम अच्छा होने का नहीं। नापाक तरीक़ों से मदद लेकर मेम्बर या प्रतिनिधि बनना चोरी और जुए से अमीर बनने के बराबर है। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि नाम की भूख रखकर अपना लाभ देखनेवाले दल और व्यक्ति चुनाव में सफल होने के लिए बड़ी बड़ी प्रतिज्ञायें करते हैं, बड़े बड़े घोषणा-पत्र निकालते हैं और वोटरों को अनेक प्रकार के आश्वासन देते हैं और काम निकल जाने पर सब कुछ भूल जाते और प्रजा के साथ विश्वासघात करते हैं।

चुनाव की क्रिया को निर्दोष बनाने के लिए बड़े बड़े विचारशील विद्वानों ने बैलट की—गुप्त चिट्ठियों-द्वारा काग़ज़ के टुकड़ों पर लिखकर मत देने की—प्रथा का जन्म दिया है। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि स्वार्थी, चालबाज़ तथा नीच मनुष्य-स्वभाव ने इस श्रेष्ठ प्रथा को सर्वथा निर्दोष नहीं होने दिया। वोट का सौदा, रिश्वत-बाज़ी, मतदाताओं पर अनुचित दबाव पड़ना और उनसे वस्तुस्थिति का छिपाया जाना प्रजातान्त्रिक शासन-पद्धति के सबसे बड़े दोष और भय-स्थान हैं और इन बुराइयों का मूल-उत्पत्ति-स्थान जनता का अज्ञान तथा उदासीनता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रजा के राजनैतिक जीवन के लिए प्रारम्भिक शिक्षा-प्रचार की बहुत बड़ी आवश्यकता है। चुनाव तब तक किसी काम का नहीं जब तक चुनाव करनेवाले उसका महत्त्व और ज़िम्मेदारी नहीं समझते।

(४) प्रतिनिधि।

सत्ता का कितना अधिक मूल्य है, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। अतएव यदि कोई योग्य व्यक्ति सत्ता और पद की अभिलाषा रक्खे तो उसका अपमान न होना चाहिए। प्रभुता का मद छोड़ कर महत्त्वाकांक्षा रखनेवालों का सार्वजनिक हित के लिए जितना अधिक सम्मान होगा उतना ही लाभ भी अधिक होगा। इस दृष्टि से हमें उन व्यक्तियों का सज्जनतापूर्वक स्वागत करना चाहिए जो चुनाव के लिए उम्मेदवार हो रहे हों। सफल होने के लिए उनके पक्ष में किसी प्रतिद्वन्द्वी की तुलना में बहुमत चाहिए। बहुमत प्राप्त कर लेना साधारण दशा में सूचित करता है कि प्रतिनिधि की योग्यता, प्रभाव और शक्ति पर चुननेवालों का विश्वास है। कुछ उम्मेदवार धन और चालबाज़ी के बल पर भी अपने को सफल बना लेते हैं। उम्मेदवार यदि अपने पिछले सार्वजनिक जीवन अथवा भविष्य लोक-हितैषिता का अभि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान और निश्चय रखता हो तो उसे अपने पक्ष में स्वयं डङ्का पीटने, अपने सहायकों से प्रचार कराने, अपने मार्ग की व्यर्थ बाधाओं को दूर करने और सर्वसाधारण के हित के नाश करनेवाले उम्मेदवार की निन्दा करने में भी सङ्कोच न करना चाहिए। जिस विभाग के किसी उम्मेदवार का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं होता वह अनायास मैदान मार लेता है। जहाँ चुनाव के समय स्पर्धा और चढ़ा-ऊपरी नहीं होती, वहाँ समझना चाहिए कि या तो मताधिकारी लोग आत्मशासन के तत्त्व को नहीं समझते या परिस्थिति को देखकर नये व्यक्ति योग्य होने पर भी उम्मेदवार नहीं बनना चाहते अथवा उस अकेले उम्मेदवार से बढ़कर कोई दूसरा पात्र और सर्वमान्य उम्मेदवार सुलभ नहीं है।

सफल उम्मेदवार प्रतिनिधि कहलाते हैं। प्रतिनिधि शब्द का उपयोग वैद्यक-शास्त्र में अधिक होता है; जब कोई जड़ी-बूटी नहीं मिलती तब काम चलाने के लिए उसके बदले में समान-गुण-धर्मवाली किसी दूसरी "प्रतिनिधि" जड़ी का उपयोग किया जाता है। अतएव प्रतिनिधि निर्वाचकों के वकील और सेनापति हैं—वे जनतारूपी समुद्र के समय पर मिल सकनेवाले चुने हुए रत्न, सार्वजनिक इच्छा के निर्मल दर्पण अथवा लोकमतरूपी वृक्ष के मौसमी फल हैं। यहाँ थोड़े में यह बतला देना अप्रासङ्गिक न होगा कि भारतवर्ष में प्रतिनिधि तीन प्रकार के होते हैं; प्रजा की ओर से चुने हुए, सरकार की ओर से नामज़द किये हुए और शासन-सम्बन्धी पिछले अनुभव के कारण नई प्रतिनिधि-सभा में सम्मिलित किये हुए।

आवश्यकता होने पर प्रतिनिधि को अपनी नीति की घोषणा करने के लिए और वोटरों के सामने कैफ़ियत देने के लिए तैयार रहना चाहिए। घोषणा व्यक्तिगत भी हो सकती है और किसी दल की ओर से भी हो सकती है। जो प्रतिनिधि जनता में मिल-जुल कर काम करते हैं, उसके सामने मुँह दिखाने में लज्जित नहीं होते और छिप-लुक कर काम करना पसन्द नहीं करते उनके लिए घोषणापत्र प्रकाशित करने की और बड़ी बड़ी प्रतिज्ञायें करने की आवश्यकता बहुत कम रहती है। संसार में कुछ थोड़े से जीव ऐसे भी होते हैं जो पद मिलने अथवा न मिलने पर सार्वजनिक हित के लिए प्रतिज्ञायें कम और शान्तिपूर्वक कार्य अधिक किया करते हैं; ऐसे जीव ईश्वर के भेजे हुए प्रजा के जन्मसिद्ध प्रतिनिधि होते हैं। अस्तु, जब प्रजा घोषणा करने के लिए किसी को बाध्य करती है तब समझना चाहिए कि या तो उम्मेदवार पर उसे पूरा विश्वास नहीं या वह उसके बीते हुए जीवन से अनभिज्ञ है। उत्तरदायित्व का अर्थ समझनेवाले आवश्यकता होने पर घोषणा कर देने में अपना अपमान नहीं समझते।

प्रतिनिधि बनने की योग्यता और पात्रता न होने पर प्रतिनिधि बन सकना प्रायः कठिन है। जो इस पद का अभिलाषी हो उसे सबसे पहले यह जानना चाहिए कि मताधिकारियों में वह किस मात्रा तक विश्वास-पात्र है और उसने उनका कौन सा हित किया है अथवा करने की सच्ची तथा प्रकट इच्छा रखता है। ध्यान रखने की बात है कि कोरी बुद्धि और विद्या देश का भला नहीं कर सकती, बुद्धि के साथ आचरण की भी बड़ी आवश्यकता रहती है। केवल जाति से ब्राह्मण होने से पात्रता और मुसलमान होने से अपात्रता नहीं सिद्ध होती। थोड़ी सी अँगरेज़ी जानने, अच्छे मोटर में बैठ सकने और किसी पुराने प्रतिनिधि को अपना रिश्तेदार बतलाने से ही पात्रता नहीं आ सकती। चुनाव के समय अयोग्य उम्मेदवार भी कामयाब होने के लिए हाँफते हुए दिखाई पड़ते हैं। कुछ उम्मेदवार ऐसे होते हैं जो प्रतिनिधि बनने के सर्वथा योग्य रहते हैं, परन्तु सङ्कोच के कारण चुनाव के युद्ध में वे हार जाते हैं; अतएव जो लोग प्रजाहित का दम भरते हैं उन्हें चाहिए कि ऐसे उच्च प्राणियों को सफल बनाने में यथाशक्ति पूरा प्रयत्न करें। प्रतिनिधि बनने का उम्मेदवार वही बने जिसके पास जनता की सेवा के लिए काफ़ी समय हो, जिसे कर्तव्य और ज़िम्मेदारी का ज्ञान हो, जो लोकहित के लिए हृदय रखता हो और शासन-सम्बन्धी उलझनों को समझ कर अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थिति में अपने चुननेवालों की इच्छा का ध्यान रखकर कार्य कर सकता हो। योग्य से योग्य प्रतिनिधि को भी कुछ न कुछ बदनामी के लिए तैयार रहना चाहिए, क्योंकि शासन का कार्य ही ऐसा कठोर होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उससे सब एक साथ प्रसन्न हो नहीं सकते—बहुसंख्यक लोगों की प्रसन्नता ही योग्यता का स्पष्ट प्रमाण है। सफलता प्राप्त करने के लिए एक छोटी सी, परन्तु साथ ही बहुत बड़ी बात को स्मरण रखना चाहिए कि संसार में "काम प्यारा है—चाम नहीं।"

प्रतिनिधि के कर्तव्य, ज़िम्मेदारी और अधिकार बहुत बड़े बड़े रहते हैं। जिस निर्वाचक-दल की ओर से वह चुना गया है उससे अधिकांश हित का सदा ध्यान रखना उसका प्रथम कर्तव्य है। अतएव वह एक बड़े अंश तक किसी अपनी नीति से बँधा रहता है। साथ ही वह प्रतिनिधि सभा के शिष्टाचार-सम्बन्धी नियमों से भी मुक्त नहीं है, क्योंकि आरम्भ में ही उनका पालन करने के लिए उसे शपथ लेनी होती है। यह सब होकर भी उसकी बुद्धि और समयानुकूल स्वतन्त्र विचार-शक्ति सदा मुक्त रहती हैं—इन्हें वह किसी के हाथ नहीं बेचता। प्रतिनिधि के हाथ-पैर पूरे पूरे बाँध कर शासनसभा में भेजना अनुचित है; निर्वाचकों को चाहिए कि ख़ास ख़ास विषयों पर उम्मेदवार की नीति को सन्तोषदायक समझ लेने पर उसे अधिकार दे दें। जिस पर विश्वास न हो सके उसे भेजने की ज़रूरत ही नहीं। जनता को गँवार, मूर्ख और नालायक़ कहनेवाले प्रतिनिधि को कुछ शर्म होनी चाहिए; "ग्रामीणता और तुच्छता की निन्दा करना व्यर्थ है, क्योंकि इनका अस्तित्व कभी मिटने का नहीं।" जनता दरिद्रता और शिक्षा-हीनता के कारण यदि गँवार और शक्तिहीन न रहे तो प्रतिनिधि अथवा वकील को पूछेगा कौन? उसकी ज़िम्मेदारी भी बहुत बड़ी रहती है। वह जिस निर्वाचक-समूह की ओर से प्रतिनिधि है उसे शासन-सभा की ख़ास ख़ास बातें बतलाने में कोई आनाकानी न करनी चाहिए। वहाँ के भेदों और गुप्त अत्याचारों को प्रकट करने में कोई कोई प्रतिनिधि बार-बार क़ानूनी पोशीदगी (council secret) की दुहाई दिया करते हैं, यह खेद की बात है। जिस प्रस्ताव में प्रतिनिधि की उचित बात भी नहीं मानी जाती उसे जनता के सामने प्रकट कर देने से प्रतिनिधि के लिए लज्जा की कोई बात नहीं। उलटे, अपने निर्वाचकों को समय समय पर वर्तमान परिस्थिति तथा राजनैतिक बातों की शिक्षा देते रहने की ज़िम्मेदारी भी उस पर रहती है। वह बड़े शोक का प्रसङ्ग होता है, जब कोई प्रतिनिधि शासन-सभा की बैठकों में अपने निजी कामों के कारण उपस्थित नहीं हो सकता। ऐसी दशा में उसे अपने पद का त्याग तुरन्त कर देना चाहिए। जब मत देने के समय प्रतिनिधि ही न रहेगा तब मताधिकारियों के समस्त मत का मूल्य भी शून्य हो जाता है। सभा की बैठक में हाज़िर रह कर भी मत न देना बहुत ही ख़ास और थोड़े अवसरों में उचित कहा जा सकता है—साधारण दृष्टि से राय का छिपाया जाना अनुचित है, क्योंकि उससे प्रतिनिधि की बुद्धि की अनिश्चितता, स्वभाव का दब्बूपन अथवा व्यर्थ की उदासीनता प्रकट होती है। उसके अधिकार भी छोटे नहीं हैं। प्रजा के हित-साधन करने का और अपने महान् पद की सार्थकता के लिए प्रयत्न करने का पवित्र अधिकार उसकी मुट्ठी में रहता है। अत्याचारों को रोकने, स्वार्थियों की पोल खोलने और लोगों के कष्ट तथा असुविधाओं को दूर करने के लिए उसके हाथ में एक प्रत्यक्ष शस्त्र रहता है। प्रतिनिधियों का सर्वप्रथम कार्य जनता की सेवा करना है—उनकी उत्पत्ति प्रतिनिधि-शाही स्थापित करने के लिए नहीं की जाती। प्रतिनिधि-शासन-प्रणाली का जन्म ही इस बुनियाद पर हुआ है कि जनता स्वामी है—सेवक नहीं।

× × × ×

उपसंहार के रूप में कुछ बातों का संक्षेप में उल्लेख कर हम इस लेख को समाप्त करेंगे।

राजामहाराजाओं, सेनापतियों और नवाबों के मनमाने अत्याचार और प्रजापीड़न से प्रतिनिधि-शासन-प्रणाली की कल्पना की गई है और प्रजा ने अधिकार-विभाजन (अधिकार की केन्द्रस्थता का बँटवारा) करने पर ध्यान दिया है। लोकमत का सम्मान ही इस प्रणाली का मुख्य उद्देश है। जहाँ लोकमत पर बेजा दबाव डाला जाता हो, फ़ौजी शासन का अस्तित्व हो, पक्षपात हो और प्रजा के सम्मुख उत्तरदायित्व नहीं हो, वहाँ शासन का प्रजासत्ताक स्वरूप नहीं रहता। लोकमत निन्दात्मक और प्रशंसात्मक दो प्रकार का होता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो प्रजातान्त्रिक शासन-पद्धति प्रिय तथा अप्रिय लोकमत को मान दे सकती है वही सच्ची पद्धति है। लोकमत में पूर्ण एकता का होना प्रायः कठिन होता है, अतएव बहुमत ही सर्वसम्मति का काम देता है; प्रजातन्त्र-पद्धति में यह एक बड़ी कठिनाई है।

प्रजासत्ता का बढ़ना सुखों के साथ कठिनाइयों और ज़िम्मेदारियों को भी बढ़ाता है। यह सिद्धान्त शासकों और शासितों पर समान रीति से घटित है। शासितों में ज्यों ज्यों मताधिकार का प्रसार होता जाता है, त्यों त्यों शिक्षा-प्रचार की आवश्यकता भी बहुत बढ़ती जाती है, क्योंकि साधारण जन-समाज अर्थात् मामूली आदमियों में जो अज्ञान, उदासीनता और कुतर्क रहता है उसका दूर होना ज्ञान के प्रकाश के बिना असम्भव सा है। जब तक प्रजा का एक बड़ा भाग चुनाव के महत्त्व को समझ कर उसमें दिलचस्पी नहीं लेगा तब तक प्रजातन्त्र-शासन केवल एक स्वाँग होगा। स्मरण रखना चाहिए कि भारतवर्ष के वकील-बारिस्टर, मास्टर-डाक्टर, कौन्सिलों के मेम्बर आदि से ही भारतवर्ष नहीं बना है। ३३ करोड़ की आबादी में शिक्षित की संख्या बहुत थोड़ी है। भारतीय मनुष्य-संख्या का एक बहुत ही बड़ा अंश देहातों में रहता है और दुर्भाग्यवश उनके पास संसार की बातें बहुत कम पहुँच सकती हैं।

एक महत्त्व की बात और है। हमें अपनी इस धारणा का त्याग कर देना चाहिए कि देहात में रहनेवाले करोड़ों भारतवासियों के लिए प्रतिनिधि-शासन-पद्धति कोई नई बात होगी। भारतवर्ष के गाँवों में इस पद्धति का प्रचार हज़ारों वर्ष के पहले से होगया है और आज तक किसी न किसी रूप में वह सर्वत्र पाया जाता है। वह पवित्र पद्धति है ग्राम-पंचायत-प्रथा। हमारे देहाती भाई बड़े बड़े झगड़ों और उलझनों को पाँच पञ्च बनाकर जिस खूबी से सफलतापूर्वक सुलझा लेते हैं वह देखते और समझते ही बनता है। प्रतिनिधि-शासन पञ्च-प्रथा का एक लम्बा चौड़ा नाम और अत्यन्त विकसित रूप है; पञ्चायत के मूलतत्त्वों से वह भिन्न नहीं है। हम यह मानते हैं कि पञ्चायत की प्राचीन प्रथा में कई कारणों से कुछ बड़े दोष घुस पड़े हैं, परन्तु उन्हें दूर कर देने से जनता का लाभ हुए बिना न रहेगा।

कुछ समय से भारतवर्ष में जातिगत मताधिकार के तत्त्वों पर चर्चा फैली हुई है और इसमें हिन्दू-मुसलमान भिन्न भिन्न दृष्टियों से विचार कर रहे हैं। इस विषय में अधिक न कह कर बड़े बड़े राजनैतिक पण्डितों के मतानुसार इतना ही कहा जा सकता है कि यथार्थ प्रतिनिधि-शासन-पद्धति की उपासना के साथ रियायत या विशेष अधिकार की उपासना भी नहीं की जा सकती। यदि इस शासन-पद्धति का उद्देश मानव-विकास के मार्गों को प्रशस्त करना हो तो इसे स्थायी दलबन्दी से विमुख होकर केवल सच्ची योग्यता का निष्पक्ष सम्मान करना सीखना होगा। ऐसा न करने पर कभी न कभी वह दिन अवश्य आवेगा जब दुःखी जनता प्रजातन्त्र-शासन को साझे में चलनेवाली "बारह भाई की खेती" समझने लगेगी।

प्रस्तुत लेख में हमें जो कुछ निवेदन करना था उसके सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण भाग का उल्लेख कर हम इस लेख की समाप्ति करेंगे। प्रजातन्त्र-शासन-प्रणाली में शासक तथा शासित सभी लोग, भिन्न भिन्न स्वार्थवाले दल और प्रत्येक जाग्रत मनुष्य अधिकार की ऐसी चिल्लाहट मचाया करते हैं जिसकी आवाज़ पृथ्वीतल से उड़कर आकाश को भी कँपा देती है। जो आदमी अधिकार के साथ कर्तव्य की उपासना भूल जाता है वह एक ऐसा राजनैतिक काना बन जाता है जिसे दाहनी ओर की चीज़ें तो दिखाई पड़ती हैं, पर बाईं ओर के संसार का पता ही नहीं रहता। जब हम यह चाहते हैं कि हमारी वस्तु की चोरी कोई न करे तब हमारी इस इच्छा का यह भी अर्थ होना चाहिए कि हम किसी की वस्तु को न चुरायँगे। आधिभौतिकता के साथ आध्यात्मिकता का मेल किये बिना सुख, शान्ति और व्यवस्था का सच्चा दर्शन असम्भव है।

मावलीप्रसाद श्रीवास्तव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हज़रत अली साहब।

मुसलमानी महापुरुषों में हज़रत अली साहब बहुत अधिक कीर्तिशाली हुए हैं। शिया मुसलमान विशेषरूप से आपका आदर करते हैं। वे आपको अपना प्रथम इमाम समझते हैं, किन्तु कुछ मुसलमानों को छोड़कर अन्य मुसलमान भी आपका काफ़ी आदर करते हैं। बहुत से मुसलमान आपको अपना चौथा ख़लीफ़ा मानते हैं। आपका जन्म मक्का के कुरैश घराने में हुआ था। यह वही पवित्र तथा सुप्रसिद्ध घराना है जिसमें हज़रत मुहम्मद साहब एवं प्रथम तीन ख़लीफ़ाओं—हज़रत अबूबकर, हज़रत उमर तथा हज़रत उस्मान साहब का जन्म हुआ है। परन्तु आप हज़रत मुहम्मद साहब के बहुत ही नज़दीकी सम्बन्धी अर्थात् चचेरे भाई थे। आपके जन्म-काल के विषय में बहुत मतभेद है। किन्तु यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध है कि आप हज़रत साहब से बहुत छोटे थे। सम्भवतः सन् ५९९ ईसवी में आपका जन्म मक्का के परमपवित्र मन्दिर में हुआ था। आपसे पूर्व किसी अन्य को उस परमपवित्र मन्दिर में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। आपके माता-पिता सम्पन्न थे, इस कारण आपका पालन-पोषण एक उत्तम रीति से हुआ।

इस्लाम-धर्म्म-ग्रहण।

अभी आपकी आयु बहुत ज़्यादा न हो पाई थी कि आप हज़रत साहब की सङ्गति में रहने लगे। फिर जिस दिन ख़ुदा ने हज़रत साहब को नबी बनाया उसके दूसरे ही दिन आपने मुसलमानी धर्म्म ग्रहण किया। ऐतिहासिक बतलाते हैं कि हज़रत अली साहब ही प्रथम नवयुवक हैं जिन्होंने नवयुवकों में सबसे पहले हज़रत मुहम्मद साहब के नबी होने पर विश्वास किया था और मुसलमान-धर्म्म को ग्रहण किया था। इसके सिवा इतिहास इस बात को भी दर्शाते हैं कि मुसलमान-धर्म्म के ग्रहण के समय उनकी आयु नौ या दस अथवा तेरह या पन्द्रह वर्ष की थी। उस समय यद्यपि मूर्तिपूजा का बड़ा ज़ोर था, तथापि उन्होंने अपनी बाल्यावस्था में कभी मूर्त्ति को प्रणाम नहीं किया था और इस प्रकार आयुपर्यन्त मूर्त्ति-पूजा से बचे रहे।

शौर्य्य-चरित्र।

हज़रत अली साहब के शौर्य्य की कथायें बहुत पाई जाती हैं और इस बात का यथेष्ट परिचय देती हैं कि आप निर्विवाद रूप से एक अद्वितीय शूर-वीर थे। जब मक्का के कुरैशियों ने हज़रत मुहम्मद साहब को मार डालने का विचार किया तब आप निश्चिन्त होकर हज़रत साहब के बिछौने पर जाकर सो गये थे और इस तरह हज़रत साहब को मक्का से मदीना चले जाने का मौक़ा मिल गया और उनकी जान बच गई।

बदर की लड़ाई के समय आपकी आयु २७ वर्ष की थी। उस युद्ध में सत्तर शत्रु मारे गये थे। उनमें २१ शत्रुओं की एक अच्छी संख्या केवल आपके ही हाथ से मारी गई थी। ओहद की लड़ाई में बड़ा गड़बड़ हुआ था, किन्तु आपने बड़े धैर्य्य तथा शौर्य्य से काम लिया था, यद्यपि दस या सोलह चोटें आपको लगी थीं। ख़न्दक़ के युद्ध में शत्रुओं की संख्या दस हज़ार थी और मुसलमान केवल तीन हज़ार ही थे। उस समय शत्रुओं के दल के एक वीर ने द्वन्द्व-युद्ध करने के लिए ललकारा। हज़रत अली साहब ने मैदान में उतर कर मुक़ाबिला करने का विचार किया। हज़रत मुहम्मद साहब ने पहले आपको रोका। पर जब शत्रु ने फिर मुक़ाबिला के लिए ललकारा तब आपने फिर हज़रत साहब से आज्ञा माँगी। इस बार हज़रत साहब ने अपनी पगड़ी आपके सिर पर रख दी और आज्ञा दे दी। पहले थोड़ी देर तक दोनों ओर से चोटें हुईं। अन्त में आपने शत्रु के कन्धे पर तलवार का एक ऐसा वार किया कि उसका हाथ बिलकुल ही उड़ गया और जब वह मर कर गिरा तब उसके पुत्र को भी तलवार के घाट उतार दिया। फलतः परिणाम यह हुआ कि शत्रु मैदान छोड़ कर भाग गये।

इनके सिवा आपके शौर्य्य तथा धैर्य्य के अगणित उदाहरण पाये जाते हैं, किन्तु ख़ैबर के युद्ध के विषय में जो कथा है वह बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है। ख़ैबर का क़िला किसी से फ़तह नहीं होता था। आपने ही उस पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय प्राप्त की थी। कहा जाता है कि आपने ख़ैबर-क़िला के एक किवाड़ को उखाड़ डाला और उसको ढाल के समान हाथ में ले लिया। फिर जब तक मुक़ाबिला हुआ, आप उसे हाथ में बराबर लिये ही रहे। युद्ध के बाद जब उसे आपने पृथक् रक्खा तब (एक लेखक के कथनानुसार) वह आठ मनुष्यों से भी पलटा न जा सका था।

ख़िलाफ़त और झगड़े।

तीसरे ख़लीफ़ा हज़रत उस्मान साहब के जीवन-काल में ही बड़ा विद्रोह फैल गया था। वे विद्रोहियों के ही हाथों मारे भी गये थे। उनके मारे जाने पर लोगों की इच्छा नया ख़लीफा चुनने की हुई। मदीना-निवासियों ने हज़रत अली साहब से ख़लीफ़ा बनने की प्रार्थना की। पहले आपने इनकार किया और कहा—अमीर अर्थात् ख़लीफ़ा होने के बदले मैं मन्त्री होना अधिक उत्तम समझता हूँ। तुम जिसे चाहो ख़लीफ़ा बनाओ, मैं सहमत हूँ। क़िन्तु जब आपने देखा कि मामला बिगड़ता ही जा रहा है और कोई सँभालनेवाला नहीं दिखाई पड़ता तब लोगों के विशेष आग्रह पर आप सन् ६५५ में ख़लीफ़ा बने। कुछ लोगों को छोड़ कर विशेषतः सारे मदीना-निवासियों ने आपको अपना ख़लीफ़ा स्वीकार किया और नियमानुसार आप ख़लीफ़ा समझे गये। इस अवसर पर आपने जो शब्द कहे थे उसका सारांश यह है—

हे लोगो! मुझ पर किसी का कोई हक़ सिवा इसके और कुछ नहीं है कि तुमने मुझको ख़िलाफ़त के लिए चुना है। कल तुम मेरे पास परेशान होकर आये थे। मैं इस कार्य्य से पीछा छुड़ाता था। किन्तु अब तुम लोगों का आग्रह बहुत ज़्यादा हुआ है कि मैं तुम्हारा अमीर बनूँ और तुम्हारे भाग्य की डोर मेरे हाथ में हो।

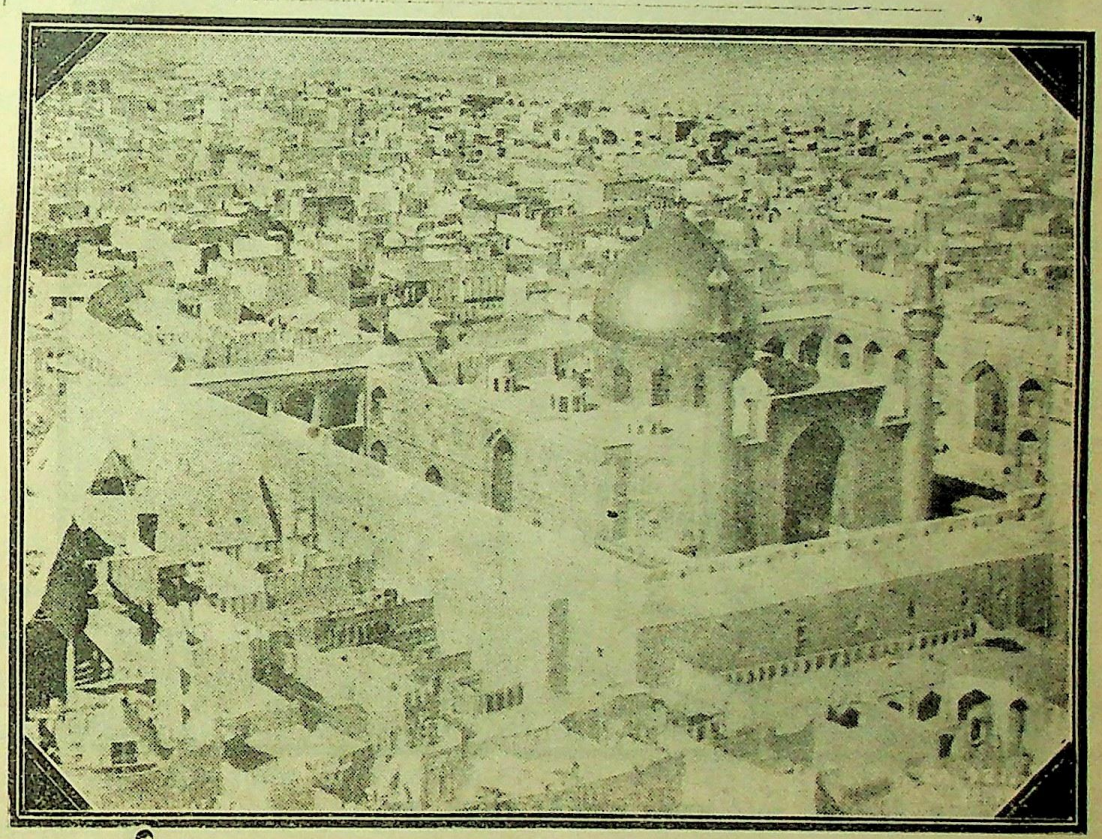

हज़रत अली का मक़बरा, नजफ़।

जो लोग हृदय से हज़रत अली साहब का ख़लीफ़ा होना पसन्द नहीं करते थे उन्होंने ख़लीफ़ा होने के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही कहा कि आप हज़रत उस्मान साहब का बदला लें। किन्तु उस अवसर पर बड़ा असन्तोष फैला हुआ था। हज का समय होने के कारण चारों ओर के लोग वहाँ एकत्र थे। ऐसी दशा में केवल प्रबन्ध को ठीक-ठाक रखना ही कुछ कम असाधारण कार्य न था, अतः हज़रत अली साहब तुरन्त इस ओर यथोचित कार्रवाई न कर सकते थे। इस पर विरोधियों को हज़रत अली साहब के विरुद्ध वैमनस्य फैलाने का अच्छा अवसर मिल गया। अली साहब स्वयं हज़रत उस्मान साहब का बदला क्यों नहीं लेते अथवा घातकों को हमारे हवाले क्यों नहीं करते। हज़रत उस्मान साहब के शरीर पर शहादत के समय जो कुरता था वह रक्त से भीगा हुआ हज़रत मावियां के पास शाम में पहुँच गया था और शहादत के अवसर पर आपकी धर्म्मपत्नी की जो अँगुलियाँ कट गई थीं वे भी कुरते के साथ ही वहाँ पहुँच गई थीं। हज़रत मावियां ने इन दोनों चीज़ों को दमिश्क की मसजिद के

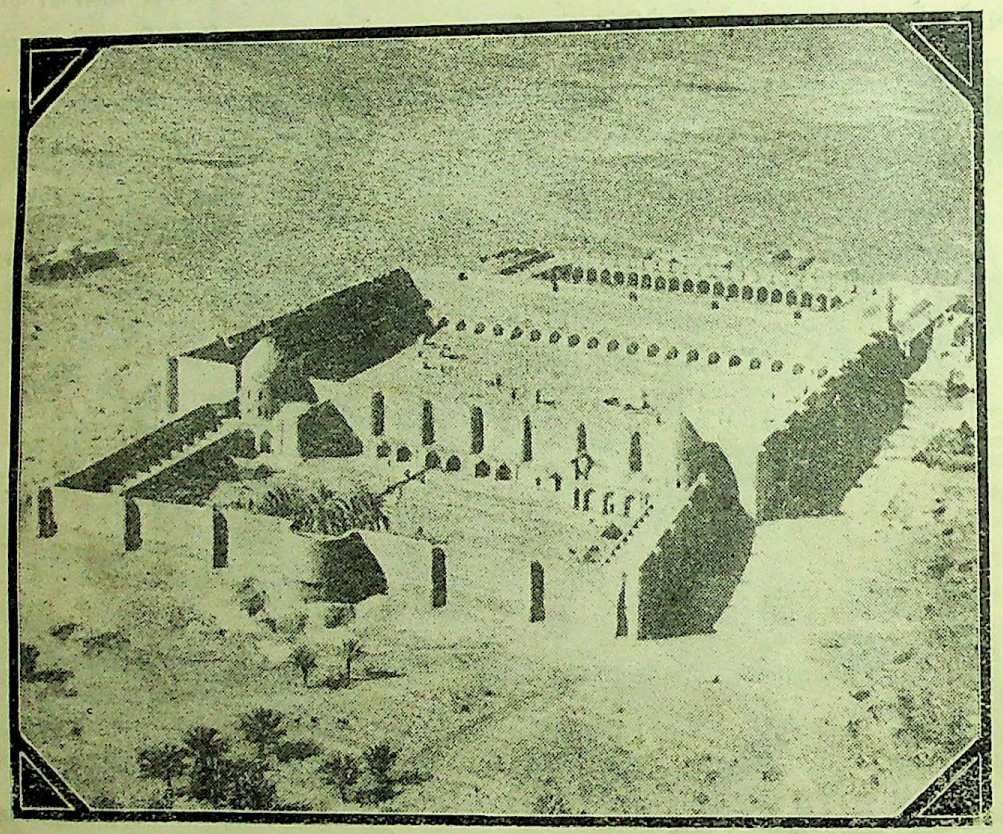

हज़रत अली की मस्जिद, कूफ़ा।

शाम-देश उमैया राज-घराने की अधीनता में काफ़ी समय तक रह चुका है। उस समय वहाँ हज़रत उस्मान साहब के चचेरे भाई हज़रत मावियां राज्य करते थे। हज़रत अली साहब चाहते थे कि वह भी आपकी ख़िलाफ़त को स्वीकार करे, किन्तु उसने केवल आपकी ख़िलाफ़त ही स्वीकार करने से इनकार नहीं किया, बल्कि आपका हाथ भी हज़रत उस्मान साहब के वध में बताया और इलज़ाम की नीव इस बात पर रक्खी गई कि हज़रत मेम्बर पर रक्खा था। उन्हें देखकर शामवाले बहुत भड़क उठे थे और हज़रत उस्मान साहब का बदला लेने के लिए बहुत ही कड़ाई के साथ उत्तेजित हो गये थे।

हज़रत अली साहब ने ख़लीफ़ा होते ही अपने भिन्न भिन्न अधिकारियों को अनेक स्थानों में भेज दिया था। हज़रत मावियां तथा हज़रत उस्मान साहब के नियुक्त किये हुए कुछ अन्य अधिकारियों को उन्होंने अपने पास बुलाया था, किन्तु जब हज़रत मावियां का रङ्ग-ढङ्ग सन्तोषजनक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न देखा, उनकी ओर से कोई समुचित उत्तर भी न मिला और एक काफ़ी समय भी बीत गया तब आपने युद्ध करने का प्रबन्ध किया। जब लश्कर कूच करने को था तब मक्का-निवासियों के घोर विरोध का पता लगा। मक्का-वाले वास्तव में उन लोगों के उभारने से विरोधी हो गये थे जो हृदय से हज़रत अली साहब का ख़लीफ़ा होना पसन्द नहीं करते थे और जिन्होंने हज़रत अली साहब के ख़लीफ़ा होते ही हज़रत उस्मान साहब के ख़ून का बदला लेने के लिये आपको उकसाना चाहा था। ये लोग एक लश्कर तैयार किये बैठे थे और नियमबद्ध लड़ाई करना चाहते थे। इस कारण हज़रत अली साहब ने हज़रत माविया पर चढ़ाई करना रोक दिया और इन विरोधियों की ओर झुक पड़े। भयङ्कर युद्ध हुआ। शत्रुओं की संख्या ३० हज़ार थी, उनमें से १६,७६० काम आये। हज़रत अली साहब की २० हज़ार सेना में केवल २,०७० मरे। अन्त में यथोचित रूप से निपटारा हुआ। सभों ने हज़रत अली साहब की ख़िलाफ़त को स्वीकार किया, और दोनों ओर के लोगों ने अपने किये पर पश्चात्ताप किया।

झगड़े का भयङ्कर स्वरूप।

मक्का-निवासियों के झगड़े से निपट कर हज़रत अली साहब ने शीघ्र ही हज़रत माविया की ओर ध्यान किया। अपना लश्कर ठीक किया। हज़रत माविया ने भी अपने लश्कर के साथ चढ़ाई कर दी। फ़ुरात Euphrates नदी के किनारे दोनों ओर की सेनाओं का पड़ाव पड़ा। हज़रत अली साहब चाहते थे कि बिना युद्ध ठने ही मामला सुलझ जाय, किन्तु महान् उद्योग करने पर भी आप सफलीभूत न हुए। फ़ुरात के जल पर शामवालों का अधिकार हो गया था। वे हज़रत अली साहब के लोगों को पानी नहीं लेने देते थे। आपके आदमियों को पानी का बड़ा कष्ट था। आप चाहते थे कि हमारे आदमी भी सुगमता के साथ बेखटके पानी ले सकें, किन्तु शामी लोगों ने न माना। अन्त में इस मामले का निपटारा भी लड़ाई के हाथ में दे दिया गया और लड़ाई ने इसका फ़ैसला हज़रत अली साहब के हक़ में किया। परन्तु जब हज़रत अली साहब का अधिकार पानी पर हो गया तब आपने अपने शत्रुओं के लिए कोई रुकावट न पैदा की, बल्कि बड़ी उदारता के साथ अपने ही समान पानी का अधिकारी अपने शत्रुओं के लिए भी समझा।

यथोचित उद्योग करने पर भी जब हज़रत अली साहब ने मामले के निपटने की कोई सूरत न देखी तब घोर युद्ध करना ही उचित समझा। इस प्रकार लड़ाई आरम्भ हो गई। ख़ूब मार-काट हुई। फिर मुहर्रम का महीना आया। उसमें नियमानुसार लड़ाई बन्द रखना उचित था, इसलिए लड़ाई बन्द रही। जब सारा मास बीत गया तब फिर लड़ाई की घोषणा हुई। हज़रत अली साहब ने सबको सूचित किया—

> जब तक वे (शत्रु) लोग तुमसे न लड़ें, तुम कदापि उन पर आक्रमण न करना। जब तुम जीत जाओ तब भागनेवालों का पीछा न करना। उनको मार न डालना। घायलों का असबाब न छीनना, किसी की पूँजी न लूटना। किसी स्त्री पर हाथ न उठाना। चाहे वह तुम्हें गालियाँ ही क्यों न दे। इत्यादि।

जब इस बार लड़ाई छिड़ी तब उसने अति भयङ्कर स्वरूप धारण किया। हज़रत अली साहब के शत्रुओं की स्थिति चिन्ता-जनक होगई। जब शामियों ने मैदान हाथ से जाता हुआ देखा तब वे अपने भालों की नोकों पर कुरान शरीफ़ को उठाकर रणक्षेत्र में आये। इसका तात्पर्य्य यह था कि कुरान शरीफ़ के अनुसार जो कुछ न्याय ठहरेगा, हम उसे स्वीकार करेंगे। इस पर मजबूर होकर लड़ाई बन्द करनी पड़ी। फिर पञ्चायत के लिए दोनों ओर से पञ्च नियत हुए। पञ्चों अर्थात् प्रतिनिधियों की बैठक हुई। और अन्तिम निश्चय के अनुसार अमीर माविया साहब शाम और मिस्र देश के उत्तराधिकारी हुए और हज़रत अली साहब बाक़ी मुसलमानी राज्य के स्वामी स्वीकार किये गये। इतिहासों में वह लड़ाई 'सफ़ैन' की लड़ाई के नाम से विख्यात है। इसमें न्यून से न्यून सत्तर बार सङ्ग्राम हुए थे। एक सौ दस दिनों तक सफ़ैन में पड़ाव रहा था। हज़रत अली साहब के लश्कर की संख्या ६० हज़ार थी। इनमें २५ हज़ार मारे गये। हज़रत माविया के लश्कर की संख्या एक लाख २० हज़ार थी। उसमें से ४५ हज़ार मारे गये थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शत्रुओं ने भाले की नोक पर कुरान शरीफ़ रक्खा था। इससे हज़रत अली साहब शत्रुओं के साथ सन्धि करने पर राज़ी होगये थे—यह बात कुछ लोगों को उचित नहीं प्रतीत हुई और इसे उन लोगों ने शत्रुओं की ओर से एक चाल समझा। इसलिए इन लोगों ने यह आग्रह किया कि ऐसे शत्रुओं के साथ सन्धि करना व्यर्थ अथवा निर्मूल है। हज़रत अली साहब के ऐसे विरोधियों की संख्या बारह हज़ार हो गई थी। वे लड़ने के लिए तैयार हो गये थे। इनमें ८ हज़ार मनुष्यों को तो आपने ऊँचा-नीचा समझा कर अपनी ओर कर लिया। उन्होंने अपने विचार की तिलाञ्जलि दे दी। अब केवल ४ हज़ार ऐसे रह गये थे जो अपनी बात पर डटे ही थे। इस पर आपने लश्कर को इनके साथ लड़ने की आज्ञा दी। थोड़े ही समय में इनका सफ़ाया होगया। आपके केवल दो योधा काम आये, किन्तु शत्रुओं की ४ हज़ार संख्या में केवल ९ ही बचे थे, जो भिन्न भिन्न स्थानों को भाग गये थे। इतिहास में इस समूह के लोग 'ख़वारिज' अथवा 'ख़ारजी' के नाम से प्रसिद्ध हैं, क्योंकि ये लोग हज़रत अली साहब के विरुद्ध राजद्रोही होकर निकले थे। इस समुदाय के लोग अब भी शिया लोगों तथा हज़रत अली के साथ शत्रुता रखते हैं।

हज़रत अली साहब का वध।

'ख़ारजी' समूह के लोग हज़रत मावि़या के शत्रु पहले से ही थे, किन्तु अब हज़रत अली साहब के भी घोर विरोधी हो गये। बर्क बिन अब्दुल्ला ने हज़रत मावि़या को और

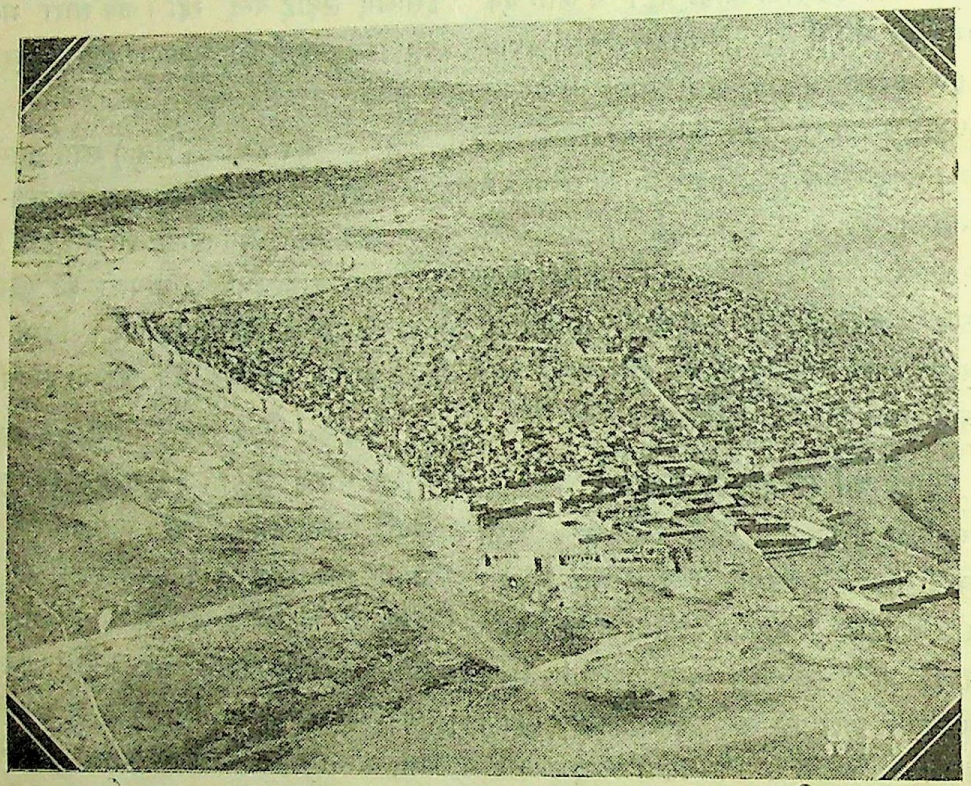

नजफ़-नगर।

अब्दुल रहमान इब्न मलज़म ने आपको मार डालने का प्रण किया। दोनों अपने अपने काम के लिए रवाना हुए। बर्क अपने कार्य्य में सफलीभूत न हुआ, किन्तु इब्न मलज़म अपने कार्य्य में पूरा उतरा। वह कूफ़ा में आया। अपने दो सहायक बनाये। फिर तलवार लेकर वह उनके साथ अपनी घात में बैठा। प्रातःकाल जब निमाज के लिए आप बुलाये गये और घर से बाहर निकले तब इब्न मलज़म के एक साथी ने आप पर आक्रमण किया, किन्तु वार ख़ाली गया। इसके बाद ही तुरन्त इब्न मलज़म ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयमेव पहुँच कर झटपट एक तलवार आपके माथे पर मारी। चोट गहरी लगी और उसी के कारण आप कई दिन बाद स्वर्ग-लोक को सिधार गये। आपके वध के विषय में एक कथन यह भी है कि इब्न मलज़म एक ख़ारजिया स्त्री पर मोहित था। इसके साथ विवाह किया था अथवा करना चाहता था। वास्तव में उसी के कारण उसने आपका वध किया था।

इब्न मलज़म के दोनों सहायक तो बचकर भाग गये, किन्तु वह स्वयं पकड़ा गया। लोगों ने उसे हज़रत अली साहब के सम्मुख पेश किया। आपने जनता को सम्बोधन करके कहा कि यदि मैं घाव के कारण मर जाऊँ तो तुम भी उसे मार डालना जैसा कि उसने मुझे मारा है। यदि मैं बच गया तो जैसा उचित होगा मैं कर लूँगा। हे लोगो! मेरे कारण बहुत से लोगों को मार डालने के लिए न भड़कना। इसके लिए मेरी मृत्यु का बहाना न करना। हे मेरे पुत्र, हसन! यदि मैं मर जाऊँ तो तुम भी उसी की तलवार से ऐसा ही एक वार मारना। फलतः आपकी मृत्यु के पश्चात् इब्न मलज़म पर तलवार का एक वार किया गया और उसका काम तमाम हो गया।

यश तथा सन्तानादि।

हज़रत अली साहब का देहान्त सन् ४० हिज़री के रमजान मास अर्थात् जनवरी सन् ६६१ में हुआ था। उस समय उनकी आयु ५८, ६३, ६५ अथवा ७० वर्ष की थी। इस आयु में उन्होंने चार वर्ष और नौ मास तक ख़िलाफ़त की थी। उनकी ख़िलाफ़त का समय विशेषतया झगड़ों में ही बीता था, किन्तु हज़रत मुहम्मद साहब के समय से लेकर हज़रत उस्मान साहब के समय तक आपने जो सेवा इस्लाम की की है, स्मरणीय है। वस्तुतः उसके दर्शाने के लिए यहाँ पर्याप्त स्थान नहीं है। निस्सन्देह उनके कार्य्य तथा गुणों का ही यह फल है कि बहुत से लोग उनके प्रति बड़ा ही उच्चभाव रखते हैं। आपने नौ विवाह किये थे। इन सभों से चौदह बालक और सत्रह बालिकायें हुई थीं। इन्हीं में हज़रत इमाम हुसैन साहब भी हैं, जिनकी स्मृति में मुहर्रम हुआ करता है और ताज़िये आदि बनाये और निकाले जाते हैं। हज़रत मुहम्मद साहब के बाद संसार में जिन मुसलमान व्यक्तियों का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है वे हज़रत अली साहब और उनके दोनों सुपुत्र हज़रत इमाम हसन साहब तथा हज़रत इमाम हुसैन साहब ही हैं।

नजफ़ नगर में स्मारक।

हज़रत अली साहब सन् ६५७ से सन् ६६१ तक कूफ़ा में रहे थे। वहीं आपके शत्रु ने आप पर वार किया था और वहीं आपका प्राणान्त भी हुआ था। आपने मृत्यु से पहले यह आज्ञा दी थी कि मृत्यु के पश्चात् मेरा शरीर एक ऊँट पर रक्खा जाय और उस ऊँट को स्वतन्त्र-रूप से छोड़ दिया जाय। जहाँ कहीं वह बैठे वहीं मुझे गाड़ा जाय। फलतः वैसा ही किया गया।

उमैया राजघराना आपका शत्रु था, इस कारण इस राजघराने के सौ साल राज्यकाल तक आपकी क़ब्र को सुरक्षित रहने के विचार से बिलकुल गुप्त रक्खा गया था। किसी प्रकार का चिह्न नहीं बनाया गया था। सन् ७९१ में बग़दाद के ख़लीफ़ा हारूनरशीद को आपकी पवित्र क़ब्र का अकस्मात् पता चला। तब एक स्मारक भी बनवाया गया, जो भक्त लोगों के दर्शन के निमित्त नियत हुआ। वह दिव्य स्थान जो पहले टूटी-फूटी अवस्था में था, बहुत ही कम लोगों को मालूम था और एक छोटी सी बस्ती के समीप था, शनैः शनैः अब अति भव्य बन कर जगत्-विख्यात हो गया है और उसके चारों ओर खूब अच्छा नगर बस गया है जो नजफ़ के नाम से प्रसिद्ध है। मेसोपोटामिया के प्रधान स्थानों में से उसकी गणना है।

नजफ़ नगर मेसोपोटामिया में मरुस्थल के किनारे पर है। लगभग सौ वर्ष बीते अरब के वहाबी मुसलमानों के आक्रमणों से बचने के लिए इसके चारों ओर दीवार बनाई गई है। यहाँ कई हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। सारे शिया इस स्थान को परमपवित्र मानते हैं। मेसोपोटामिया के अरबशिया यहाँ गाड़े जाने को बहुत अच्छा समझते हैं। उनका विश्वास है कि जो यहाँ गाड़े जाते हैं उनके पापों का हिसाब-किताब नहीं किया जाता और उनके सारे पाप क्षमा कर दिये जाते हैं।

ईसा की दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मूसल के सूबेदार अबुलहैजा हमदानी ने हज़रत अली साहब की क़ब्र पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक चौखम्बा छत्र बनवाया था। आँगन और छत आदि को भी उसने सुन्दर बिछौनों एवं वस्त्रों से सजा दिया था। उस समय यह नगर बहुत छोटा था और इसके चारों ओर दीवार भी बनवा दी गई थी। बूया राजघराने के बादशाह अज़दुद् दौला ने कर्बला में हज़रत इमाम हुसैन साहब का एक अच्छा स्मारक बनवाया था। यह बादशाह अपनी मृत्यु के बाद नजफ़ में गाड़ा गया। फिर कुछ काल बाद नजफ़ का स्थान शिया मुसलमानों के लिए एक परमपवित्र क़बरिस्तान हो गया। अब तो नजफ़ एक बहुत अच्छा नगर होगया है। चौदहवीं शताब्दी से ही इसकी दशा बहुत अच्छी हो चली थी। इस समय यहाँ के मक़बरे में सोने-चाँदी के दीपक जलते हैं और अन्य बहुत सी अमूल्य वस्तुएँ भी यहाँ उपयोग में लाई जाती हैं। और क़ब्र का मुख्य भाग असली सोने से मढ़ा हुआ है। बड़े सौभाग्य की बात तो यह है कि वहाबी या अन्य लोगों की लूट से यहाँ की अमूल्य वस्तुएँ अभी तक बची हुई हैं। परन्तु यह भी जान लेना चाहिए कि कुछ लोगों का ऐसा भी मत है कि हज़रत अली साहब कूफ़ा की बड़ी मसजिद के एक कोने में गाड़े गये थे।

महेशप्रसाद मौलवी फ़ाज़िल

प्रारब्ध-परिवर्तन।

(१)

सुलतानसिंह ने दृढ़ता से कहा—मैं एक वर्ष के अन्दर अन्दर अपना प्रारब्ध बदल-लूँगा।

सागरचन्द जोश में तीर के समान तन कर खड़ा हो गया, और भर्राती हुई आवाज़ में बोला—तुम हँसी तो नहीं कर रहे!

"यह हँसी का अवसर नहीं"।

"तो सच कह रहे हो?"

"हाँ हाँ सच"।

"इतने थोड़े अवसर में तुम सफल हो जाओगे, इसकी तुम्हें आशा है?"

"सोलह आने"।

"आज क्या तारीख़ है?"

सुलतानसिंह ने दीवार पर लटके हुए एक मैले से कैलेन्डर की ओर देख कर कहा—तीस आक्टोबर १९१२ ईसवी।

"तो पहली नवम्बर १९१३ का सूरज तुम्हें निर्धन न देखेगा।"

"कभी नहीं।"

सुलतानसिंह उन मनुष्यों में से था जिन्हें लोग भलेमानस बदमाश कहते हैं। कभी उसने बहुत अच्छे दिन देखे थे। उसका पिता दौलतराम नगर के बड़े बड़े रईसों में से एक था। उसके पास रुपये की कमी न थी। सदर-बाज़ार में तीन दुकानें थीं, दो मकान, बैंकों में रुपया इनके अतिरिक्त था। परन्तु इतना ही नहीं, उसका हृदय भी सद्भावों से भरपूर था। जब तक जीता रहा, उसके नाम की नगर भर में पूजा होती रही। परन्तु इधर उसने आँखें बंद कीं, उधर सुलतानसिंह ने उसका रुपया ऐंठने पर कमर कस ली। दौलतराम की रोक-टोक ने सुलतानसिंह को कभी मर्य्यादा से बाहर न होने दिया था। उस समय वह एक बे-पर के पक्षी के समान था, जिसकी बेबसी से अधिक करुणा-जनक उसकी उड़ने की इच्छा थी। दौलतराम की मृत्यु ने उसको पर लगा दिये। दो वर्ष तक दिल खोलकर आनन्द लूटे, और मनमानी मौज मारता रहा। यह काल उसके जीवन का सुख-स्वप्न था, जिसको तोड़ने के लिए कोई जाग्रति न थी। सप्ताह के सातों दिन जलसे होते रहते थे, और ये जलसे कोई साधारण जलसे न होते थे। एक एक दिन में सैकड़ों पर पानी फिर जाता था। उसके इन कामों ने उसकी पैत्रिक सम्पत्ति को नष्ट कर डाला, जिस प्रकार बर-सातो नालों का वेगवान् प्रवाह किनारों के टूट जाने से हरी-भरी खेतियों को निगल जाता है।

परन्तु फिर भी उसके चेहरे-मोहरे से यह ख़याल न होता था कि उसमें ये गुण भी होंगे। वह इतना भलामानस और भोला-भाला प्रतीत होता था कि अनजान मनुष्य प्रायः धोखा खा जाते थे, और समझ बैठते थे कि उसके मुँह में तो दाँत ही नहीं। उसकी विनीत दृष्टि, नम्र आँखें और भोली बातें देख कर किसी को कल्पना भी नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती थी कि यह मनुष्य विलासी भी हो सकता है। उसने नक़द रुपया उड़ा दिया, मकानों को रेहन भी रख दिया, परन्तु उन्हें बेचा नहीं। इमारत गिर गई थी, परन्तु चार-दीवारी उसी प्रकार खड़ी थी। यह चारदीवारी उसकी पुरानी शोभा का चिह्न थी, जिसे बनाये रखने के लिए वह तन-मन से यत्न कर रहा था। मनुष्य इतना अपमान से नहीं डरता जितना उसकी चर्चा से डरता है। सुलतान-सिंह ने जो कुछ किया, पर्दे की ओट में किया। यद्यपि उसकी थोड़ी बहुत निन्दा हो चुकी थी, तो भी इतनी नहीं कि लोग घृणा करने लगें। उसके पिता का दबदबा अभी तक बाक़ी था। मनुष्य मर जाता है, परन्तु उसका नाम जीवित रहता है।

इसी प्रकार कुछ वर्ष व्यतीत होगये। सुलतानसिंह की आँखें खुलीं। जब तक हाथ खुला था तब तक कोई विचार न था। रुपया आता था, ख़र्च हो जाता था। बैंक से मँगवाने में कोई परिश्रम न करना पड़ता था। एक काग़ज़ का पुर्जा ही भेजने से काम चल जाता था। परन्तु जब वह ख़र्च हो गया तब वसन्त में पतझड़ के चिह्न दिखाई देने लगे। सुलतानसिंह चिन्ता में डूब गया। जिस प्रकार नाटक देखने के पश्चात् मनुष्य मण्डप के बाहर का अन्धकार देखकर घबरा जाता है, उसी प्रकार सुलतानसिंह के सामने निराशा ने अँधेरा खोल दिया। इस निराशा में कितनी वेदना थी, कितना दुःख। सुलतानसिंह के हृदय पर मानो किसी ने गर्म लोहा रख दिया। एक दिन चिरकाल तक अपनी अवस्था पर विचार करता रहा। अन्त में तलमलाकर खड़ा होगया, और दृढ़ता से बोला—मैं एक वर्ष के अन्दर अन्दर अपना प्रारब्ध बदल लूँगा।

(२)

सागरचन्द सुलतानसिंह का मित्र था। सुलतानसिंह को उस पर पूरा पूरा भरोसा था। वह अपनी गुप्त से गुप्त बातों में भी उसे सम्मिलित करने से नहीं हिचकि-चाता था। सागरचन्द को केवल सुलतानसिंह के रुपये की लालसा हो, यह बात न थी। उसे स्वयं सुलतानसिंह से प्यार था। प्रायः देखा जाता है कि बुरे से बुरे मनुष्यों में भी कोई न कोई अच्छा गुण पाया जाता है, जिस प्रकार काली से काली घटा के गिर्द श्वेत धारी होती है। सागरचन्द छटा हुआ बदमाश था, परन्तु उसमें एक गुण था। मैत्री निभाने का भाव उसमें कूट कूट कर भरा हुआ था। जब सुलतानसिंह ने ख़र्च से हाथ खींचना आरम्भ किया तब उसके मित्रों का आना-जाना घट गया, वे अच्छे घरानों के थे। परन्तु सागरचन्द की चाल-ढाल में अन्तर न आया, वह नीच दुष्ट था। प्लेग के दिनों में जब नगर ख़ाली हो जाते हैं, और लोग लाशें छोड़ छोड़ कर प्राण बचाने के लिए भाग खड़े होते हैं, तब प्रायः वही लोग सेवा-समिति बनाकर आगे बढ़ते हैं जो बदमाश होते हैं।

सागरचन्द जब सुलतानसिंह के मन का विचार जान गया कि वह एक वर्ष में अपने आपको सुधार लेगा तब उसका हृदय आनन्द की हिलोरें लेने लगा, जैसे कमल जल में तैरता है। इस समय उसकी आँखों में चमक थी, होंठों पर मुस्कराहट। सहानुभूति के भाव से आगे बढ़ा, और बोला—क्या करोगे ?

सुलतानसिंह ने उत्तर दिया—यत्न करना धर्म है, वही करूँगा, देखा चाहिए, विधाता क्या करता है।

सागरचन्द को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे सुलतानसिंह उससे बात छिपाता है। उसके कलेजे में तीर सा लगा। अनमना सा होकर बोला—मुझसे नहीं कहोगे ?

सुलतानसिंह वास्तविक बात समझ गया। उसने घबरा कर कहा—मेरा यह आशय न था।

"तो बात खोल क्यों नहीं देते ?"

"अभी सुना चाहते हो या ठहर कर ?"

"मेरा मन तो अभी चाहता है, जब तक सुन न लूँगा, चैन न आयेगा।"

सुलतान ने कमरे से बाहर दृष्टि दौड़ाई, और बोला—मैं ब्याह करूँगा।

"इसके पश्चात् ?"

"स्त्री की ज़िन्दगी का बीमा करवा लूँगा।"

"फिर ?"

"स्त्री मर जायगी।"

"न मरी तो ?"

"न मरने का कारण क्या है ? अवश्य मरेगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सागरचन्द निपट मूर्ख ही न था। उसने मिडल तक शिक्षा पाई थी। सुलतानसिंह की भयानक हँसी देखकर सब बात ताड़ गया, और बोला—बहुत अच्छा, अर्थात् उसका जीवन तुम्हारे हाथ में होगा।

"पूर्णरूप से।"

"इससे आगे चलो।"

"वह मर जायगी, मेरा प्रारब्ध बदल जायगा।"

सागरचन्द कुछ समय तक चुप रहा। उसने यह नहीं सोचा कि यह एक वज्र पाप है। वह इससे भी आगे चलने को तैयार था। परन्तु डरता था कि कहीं सुलतानसिंह डोल न जाय अथवा इससे उसे कोई हानि न पहुँचे। उसने इस प्रश्न के प्रत्येक अंश पर विचार किया और कहा—स्कीम तो बहुत बढ़िया है। यदि सफल हो जाय तो सचमुच तुम्हारा प्रारब्ध बदल सकता है, परन्तु इसमें भय भी बहुत है।

सुलतानसिंह ने उत्तर दिया—भई, मोती समुद्र की तह ही से निकलता है। उसके लिए मृत्यु के मुख में जाना होता है।

इस समय सुलतानसिंह ऐसा प्रसन्न था, जैसे कोई राज्य मिल गया हो। सफलता का विचार सफलता से भी बढ़कर मनोरञ्जक है।

इसके दो मास पश्चात् सुलतानसिंह का ब्याह होगया।

(३)

सन्ध्या का समय था। सुलतानसिंह अपने आँगन में आरामकुर्सी पर बैठा एक उपन्यास देख रहा था। इतने में नौकर ने आकर कहा—सरकार! मिनरवा इनश्योरेंस कंपनी का एजंट आया है।

सुलतानसिंह ने पुस्तक हाथ से रख दी, और उठकर टहलने लगा। इस समय उसके हृदय में विचारों की उथल-पुथल हो रही थी। सोचने लगा, क्या करने लगा हूँ। मेरे पिता ने लोक-हित के लिए पक्की सरायें बनवाई थीं, मैं अपने लिए एक निर्दोष बालिका की हत्या करने लगा हूँ, पिता-पुत्र में कितना अन्तर है। यदि यह बात किसी तरह खुल गई तो.....

सुलतानसिंह का मस्तिष्क खौलने लगा, उस पर भयानक आतङ्क सा छा गया। पाप से अधिक भयङ्कर पाप का विचार है। सुलतान का हृदय डोल गया। निश्चय किया कि यह पाप न करूँगा। परन्तु इतने में लालसा ने सिर उठाया, मन का विचार बदल गया। सुलतानसिंह ने उत्तर दिया—बुला लाओ।

पाप का मार्ग कितना साफ़ है।

एजंट ने आकर प्रणाम किया, और बैठकर कंपनी के प्रासपेक्टस सुलतानसिंह के हाथ में रख दिये। सुलतानसिंह ने कुछ पृष्ठ उलट-पलट कर देखे, और पूछा—आपकी कंपनी स्त्रियों का बीमा भी किया करती है?

एजंट ने कुछ विस्मित सा होकर उत्तर दिया—जी हाँ, करती है।

"उसके (रेट्स) दिखलाइए।"

"कितने वर्ष के लिए?"

एजंट ने एक पृष्ठ निकालकर कहा—ये हैं।

"बहुत ज़्यादा हैं।"

"स्त्रियों के अधिक ही होते हैं, कंपनी को बड़ा (रिस्क) होता है।"

"हुँ।"

"आप कितने रुपयों की पालिसी लेना चाहते हैं।"

"एक लाख की।"

एजंट ने उछलकर कहा—एक लाख की?

"हाँ एक लाख की, कितने रुपये मासिक देने होंगे?"

एजंट ने पहले यह हिसाब लगाया कि मुझे मासिक कमीशन क्या मिला करेगा। आशा ने अनार के फूल के समान मुँह का रङ्ग लाल कर दिया। फिर उसने धीरज से उत्तर दिया—पाँच सौ रुपये मासिक।

"बहुत बड़ी रक़म है, अर्थात् सवा लाख के लगभग तो हम देंगे और हमको मिलेगा एक लाख, इसमें तो साफ़ हानि दिखाई देती है।

एजंट का कलेजा धड़कने लगा। डर था कि कहीं सौदा रह न जाय, जोश से बोला—महोदय, कंपनी जो रिस्का सिर पर ले रही है वह भी तो थोड़ा नहीं, एक लाख की रक़म भी तो कोई चीज़ है। भारतवर्ष में इसकी प्रथा प्रचलित नहीं, योरप में प्रत्येक मनुष्य बीमा कराना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना कर्त्तव्य समझता है। यही कारण है कि वहाँ एक मनुष्य की मृत्यु पर सारा परिवार भूखों नहीं मरता।

सुलतानसिंह अपने विचारों में निमग्न था। एजंट ने समझा, मेरी स्पीच काम कर गई। सँभलकर बोला—तो फ़ार्म भर दीजिएगा, कल डाकृरी देख-भाल हो जायगी।

काँपते हुए हाथों ने फ़ार्म भर दिया। दूसरे दिन डाकृरी इम्तिहान होगया। सुलतान ने शान्ति का निःश्वास छोड़ा। सफलता की दो कक्षायें पूरी हो गईं। क्या तीसरी भी होगी।

(४)

छः मास बीत गये। सुलतानसिंह ने अपनी स्त्री सतवन्ती की ओर ध्यान न दिया। वह प्रायः मर्दाने ही में रहता था। ज़नाने में जाते हुए उसका कलेजा काँपता था। वह प्रायः रात को भी मर्दाने में पड़ा रहता था। सतवन्ती से जहाँ तक हो सके कम भेंट करूँ, यही उसका यत्न था। उसके मुख की ओर देखकर उसके विचार बदल जाते थे। वह कभी कभी उसकी मदभरी आँखों को देख लेता तो कई दिन तक उसके हृदय में हलचल मची रहती थी। उसकी यह इच्छा कि स्त्री कुरूपा हो, पूरी न हुई। वह परम सुन्दरी थी, जैसे सफ़ेद पत्थर की मूर्ति। उसे देख कर सुलतानसिंह चकित रह जाता था। उसने बढ़िया से बढ़िया सुन्दरियाँ देखी थीं, परन्तु ऐसी रूपवती स्त्री आज तक न देखी थी। उसे सन्देह होने लगा कि मैं अपना काम न कर सकूँगा। सौन्दर्य्य ने अपना चमत्कार दिखाया। कहते हैं, सौन्दर्य्य से पशु भी वश में आ जाते हैं। क्या सुलतानसिंह उनसे भी गया गुज़रा है।

वर्षा के दिन थे, आकाश पर बादल खेलते थे। सुलतानसिंह शराब के मद में उन्मत्त हुआ, एक शीशी लिये ज़नाने में आया, और सतवन्ती से बोला—इसे सँभाल कर रखना, प्रतिदिन सबेरे उठकर पिया करो, तुम निर्बल हो रही हो, अच्छी हो जाओगी।

यह दवा एक वैद्य ने तैय्यार की थी, जिसका घातक प्रभाव शनैः शनैः हड्डियों में घर कर जाता था, और जाँच करने से पता नहीं लगता था कि मृतक को विष दिया गया है। सतवन्ती ने पति के मुख से ये प्रेम से सने हुए वचन सुने, तो स्वर्ग में पहुँच गई, और मुस्कराती हुई बोली—यह क्या है, शराब तो नहीं।

"नहीं, ताक़त की दवाई है।"

"आप भी पिया करें, चिन्ता ने मुँह का क्या हाल कर दिया है।"

कैसा वचन था, प्रेमरस में डूबा हुआ। सुलतानसिंह के अन्तःकरण ने उसे फटकारना आरम्भ किया, परन्तु उसने अपने इस भाव को अन्दर ही अन्दर दबा दिया, और कहा—मेरे लिए दूसरी वस्तु बन रही है।

इस समय उसके सीने में दिल ज़ोर ज़ोर से धड़क रहा था।

(५)

दिन चढ़ा, परन्तु सुलतानसिंह को सुधि न थी। सतवन्ती के हाथों के तोते उड़ गये। उसने घबराकर डाकृर को बुलवाया। इस समय सुलतानसिंह अचेत पड़ा था। डाकृर ने आकर देखा १०६ डिग्री का ज्वर। सतवन्ती सुनकर सहम गई, उसकी आँखों में पानी आगया। भर्राई हुई आवाज़ में बोली—कोई ख़तरा तो नहीं?

"अभी तक तो कोई नहीं, परन्तु डर है कि बहुत जल्द नेमोनिया हो जायगा।"

सतवन्ती की रोकी हुई चीख निकल गई। डाकृर ने कहा—इससे क्या होगा, सेवा करो।

बहता हुआ पानी थम गया। सतवन्ती सावधान होकर सेवा करने लगी। उसने समझ लिया कि इस समय रोने से काम न चलेगा। लुटता हुआ जीवन बच सकता है तो एक-मात्र सेवा से। वह पति के सिरहाने बैठ गई और समय पर दवाई पिलाती गई। दिन बीत गया, परन्तु ज्वर न घटा। रात बीती, पर अन्तर न पड़ा। डाकृर ने आकर देखा और कहा—जिस बात का डर था वह हो गई। नेमोनिया बन गया है।

सतवन्ती के कलेजे में भाला सा चुभ गया। परन्तु उसने आँखों को वश में रक्खा। सेवा-शुश्रूषा में निमग्न होगई। सुलतानसिंह लगातार एक मास बीमार रहा। सतवन्ती ने दिन-रात एक कर दिये। जब कभी सुलतानसिंह सचेत होता, सतवन्ती श्रद्धाभाव से शुश्रूषा में लगी देख पड़ती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह देखकर वह सोचता, यह कितनी नेक है, प्रेम का स्रोत, और मैं कितना नीच हूँ, रुपये का दास। इस विचार से उसके हृदय में सैकड़ों प्रकार के उथल-पुथल होने लगते। जो काम सुन्दरता न कर सकती थी, उसे प्रेम और सेवा ने किया।

जिस दिन सुलतानसिंह चारपाई से उठा, उस दिन सतवन्ती के आनन्द की थाह न थी। उसका मुख इस प्रकार चमकता था, जैसे चौदस का चन्द्रमा। डाक्टर ने सुलतानसिंह से कहा—मैं सच सहता हूँ, कि यदि यह ऐसा मन लगाकर आपकी सेवा न करती तो आपका बचना असम्भव ही हो चुका था।

डाक्टर चला गया, तो सतवन्ती ने घूँघट उठाया। सुलतानसिंह गद्गद प्रसन्न हो रहा था। वह अतिशय प्रेम में व्याकुल होकर बोला—सतवन्ती!

सतवन्ती ने उत्तर दिया—आप बहुत निर्बल होगये हैं, वह मेरी ही दवा पी लिया करें, निर्बलता दूर हो जायगी।

सुलतानसिंह को जैसे किसी ने गोली मार दी, घबरा कर बोला—वह तुमने पी तो नहीं ली।

"नहीं।"

"तनिक ले आओ।"

सतवन्ती दौड़कर अलमारी से बोतल उठा लाई, और एक अपराधिनी के समान पति की ओर देखकर बोली—आपकी बीमारी के कारण मुझे इसके पीने का ध्यान ही न रहा, क्षमा कर दें, अब पी लिया करूँगी।

सुलतानसिंह ने उसे ज़ोर से दीवार पर मारा, और शान्ति की साँस ली।

सतवन्ती सहम कर पीछे हट गई, और बोली—यह आपने क्या किया है? बड़ी क़ीमती वस्तु थी।

सुलतानसिंह ने इसका कोई उत्तर न दिया, केवल सतवन्ती की ओर देखकर भुजायें फैला दीं।

एकाएक उसकी दृष्टि कैलेन्डर की ओर गई। उस दिन पहली नवम्बर थी। उसे एक वर्ष पहले का वचन याद आगया कि मैं एक वर्ष के अन्दर अन्दर अपना प्रारब्ध बदल लूँगा, और पहली नवम्बर का सूरज मुझे निर्धन न देखेगा।

और क्या वह निर्धन था? उसे धन नहीं, परन्तु धन से बढ़कर ऐसी वस्तु मिल चुकी थी जिसके लिए संसार के राजे-महाराजे भी तरसते हैं।

थोड़ी देर बाद सागरचन्द आया, परन्तु इस तरह सहमा हुआ जैसे कोई दण्ड मिलनेवाला हो। उसे ख़याल ही नहीं, निश्चय होगया था कि जाकर सतवन्ती की मृत्यु का समाचार सुनूँगा। अतएव आश्चर्य्यभरी दृष्टि से उसने सुलतानसिंह की ओर देखा, आँखों ने आँखों से प्रश्न किया।

सुलतानसिंह ने मुस्कराकर कहा—क्या पूछते हो?

"सतवन्ती का क्या हुआ?"

"आनन्द-प्रसन्न है।"

सागरचन्द की छाती से जैसे कोई बोझ उतर गया। प्रसन्न होकर बोला—धन्यवाद है उस परमेश्वर को, जो तुमने अपना वचन पूरा नहीं किया। जब मैं उस बेचारी लड़की को दिन-रात घूँघट निकाले हुए श्रद्धा और प्रेम से तुम्हारी सेवा करते देखता था और उसके साथ ही तुम्हारी प्रतिज्ञा का ख़याल करता था, तब मेरा कलेजा काँप जाता था?

"परन्तु मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी।"

सागरचंद घबराकर खड़ा हो गया, उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे किसी ने उसका गला दबा दिया हो। रुक रुक कर बोला—क्या कहते हो?

मेरा प्रारब्ध बदल गया है, मैं अब निर्धन नहीं हूँ, परन्तु मेरे इस प्रारब्ध-परिवर्तन का कारण मेरी स्त्री की मृत्यु नहीं, प्रत्युत उसका जीवन है।

यह कहते कहते सुलतानसिंह ने अपने पुलकित नेत्र बन्द कर लिये और आरामकुर्सी के सहारे पीठ लगा कर लेट गया।

सुदर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ससीम और असीम।

इस बाह्य जगत् के साथ हमारा क्या सम्बन्ध है? साधारण मनुष्य की दृष्टि में, मनुष्य एक परिमित शक्ति-सम्पन्न चैतन्य प्राणी है, जो इस बाह्य जगत् की नाना प्रकार की जड़ सामग्री को अपने अनुकूल बनाकर अपने उद्देशों की पूर्ति किया करता है। पर ज्ञानी की दृष्टि भिन्न है। वह प्रकृति के देश-काल के भीतर ज्ञानी को अनन्त भगवान् के दर्शन कराती है, जिनके द्वारा मूढ़ पुरुषों की आँखों से वह छिपा रहता है। प्रत्येक दृश्यमान वस्तु क्या है? न तो यह ब्रह्माण्ड जड़-पदार्थों का स्तूपमात्र है और न किसी विश्वकर्मा ने इस स्तूप में केवल व्यवस्था स्थापित करके उसको वर्तमान स्वरूप दे रक्खा है। यह तो एक ऐसा वृत्त है जिसका केन्द्र स्वयं अनन्त परमात्मा का हृदय है। देश और काल में स्थित रहनेवाले जगत् में स्वयं कोई निजी सत्ता नहीं, उसके सभी अंगोपांग, वास्तव में विचारों के चित्र हैं। प्रकृति के तुच्छ से तुच्छ पदार्थ से परमात्मा उसी प्रकार आविर्भूत हो रहा है जैसे कि दिव्य आकाश-मण्डल से। आत्म और अनात्म, जड़ और चैतन्य के भ्रम-पूर्ण अदार्शनिक भेद को, जो चिरकाल से चला आता है एक-दम भूल जाइए और फिर जहाँ देखिए वहीं ईश्वर खड़ा दिखाई देगा। सच्चा दार्शनिक वही है जिसकी तीव्र दृष्टि जड़ पदार्थों के पर्दे के भीतर बैठे हुए अनन्त आत्मा पर गड़ गई हो।

प्रकृति जड़ नहीं है, वह तो चैतन्य ब्रह्म का सजीव आविर्भाव है। उसकी उत्पत्ति भी आत्मा से होती है और उसका लय भी आत्मा में होता है। उसके प्रत्येक भाग में एक ही अनादि जीवन संचार कर रहा है और इसी लिए प्रकृति एक सजीव शरीर की भाँति काम करती है। दो विश्वव्यापी भूतों ने—देश और काल ने—मनुष्य को चारों ओर से अपनी माया में लपेट कर चक्कर में डाल रक्खा है, एक-दम पागल बना दिया है, किन्तु थोड़े से ज्ञानी पुरुषों ने जगत् का मनोयोग-पूर्वक निरीक्षण किया, जिससे एक-एक करके ये दोनों सांसारिक भूत लोप होने लगे और उनकी दिव्य दृष्टि के आगे अन्तःस्थित पवित्र की पवित्रात्मा प्रकट होने लगी। बाहरी वस्तुओं के तमाशे में जिन लोगों की दृष्टि बँधी हुई है उनको प्रकृति जड़ प्रतीत होती है, पर ज्ञान के नेत्रों को इन सब वस्तुओं में आत्मा के ही दर्शन होते हैं। वास्तव में, प्रकृति ज्ञान की पूर्ण विरोधिनी है। जगत् में प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से पृथक् दिखाई देती है, हर एक घटना अलग अलग होती है, फिर इनमें एकता का सूत्र ढूँढ़ निकालना साधारण दृष्टि का काम नहीं। नाना प्रकार की प्राकृतिक घटनाओं और पदार्थों के बीच उस एकता का पता सहज में नहीं लगता जो बीज-रूप से उनके भीतर विद्यमान है। यद्यपि ये स्वयं अनादि अद्वैत आत्मा पर अवलम्बित हैं तो भी उनसे उस आत्मा का यथेष्ट स्पष्टीकरण नहीं होता। जो केवल दृश्य है उससे उसके आधार के आन्तरिक जीवन का रहस्य सहसा प्रकट नहीं होता। किन्तु प्रकृति जो बात छिपाये हुए है उसे ज्ञानी प्रकट कर देता है। क्योंकि मनुष्य में विचार है, विचार का काम ही सङ्कलन करना है, नाना प्रकार की वस्तुओं को एक सूत्र में बाँध देना, सारे ब्रह्माण्ड के अन्तस्तल की अनन्त आत्मा का पता लगा लेना विचार का ही काम है। विकास-मार्ग में बढ़ते-बढ़ते जब प्रकृति मनुष्य का रूप धारण करती है तब उसको अपने प्राणस्वरूप आत्मा का पहले-पहल अनुभव होता है, मानो वह पुनः अपने आदि-स्थान की ओर लौटती है। मनुष्य की आत्मा में प्रकृति के अन्य उपाङ्गों की अपेक्षा परमात्मा कहीं अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है। यह समस्त सृष्टि परमात्मा से ही प्रकट हुई है और वह पुनः उसी परमात्मा में लीन होगी। सबसे पहले मनुष्य में उसकी सभ्यता और आध्यात्मिक जीवन के इतिहास में इस उन्नति का उपक्रम होता है। मनुष्य के रूप में प्रकृति बहिर्मुख से अन्तर्मुख होती है। अतः मनुष्य का परमात्मा से केवल वही सम्बन्ध नहीं है जो सृष्टि का है, क्योंकि वह तो केवल उसका परिधान-मात्र है, किन्तु मनुष्य परमात्मा के आत्मज्ञान में, चाहे कितने ही थोड़े परिमाण में हो, साझीदार है।

अतएव आत्म-साक्षात्कार ही हमारे नैतिक जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अन्तिम ध्येय है। मनुष्य की परिच्छिन्नता के नीचे उसका वास्तविक अनन्त स्वरूप छिपा हुआ है। इसलिए समय पाकर उसकी संचालन-शक्ति हमको आदर्श की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती है। यही कारण है कि छोटे से छोटा चर्मकार भी अपनी स्थायी तृप्ति के लिए सम्पूर्ण विश्व पर एकाधिकार प्राप्त करना चाहता है। किन्तु अकेला यही चमार तो संसार में नहीं है। संसार में ऐसे-ऐसे अगणित अपरिमित प्राणी हैं जिनकी आकांक्षायें किसी प्रकार इससे कम नहीं होंगी। भला ऐसी अवस्था में फिर किस प्रकार एक मनुष्य का आत्म-साक्षात्कार दूसरे मनुष्य के आत्म-साक्षात्कार के साथ निभ सकता है? यदि प्रत्येक प्राणी अखिल विश्व पर अपना एकाधिपत्य प्राप्त करना चाहे और केवल उसी अवस्था में उसकी स्थायी तृप्ति हो सके तो बतलाइए, संसार में यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है।

इस समस्या को हल किये बिना भी तो काम नहीं चल सकता। असल बात यह है कि पृथक् पृथक् प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवनादर्श को नहीं प्राप्त कर सकता, किन्तु अपने भाइयों के जीवन-साफल्य में उसकी सार्थकता भी सम्मिलित है। मनुष्य में स्वभावतः दो प्रवृत्तियाँ हुआ करती हैं। एक नीचे ले जानेवाली और एक ऊपर उठानेवाली। मन मनुष्य को सांसारिक अनित्य सुखों की ओर प्रेरित करता है और बुद्धि मनुष्य को नाना प्रकार के दुःख सहन करके भी अपने कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ रहने के लिए कहती है। हमारा कर्त्तव्य क्या है? वही, जिससे नित्य सुख मिलने की सम्भावना हो। किन्तु इन्द्रिय-जन्य सुखों के आगे इस नित्य सुख की कल्पना इतनी सूक्ष्म होती है कि सहज में हम उसका अस्तित्व तक मानने को तैयार नहीं होते और सहसा यह प्रश्न पूछने लगते हैं कि लौकिक सुख मानव-जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्यों नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि पूर्णावस्था आनन्दमय है, उससे एक अविचल स्थिर अवस्था का बोध होता है, जिससे शान्ति कभी भङ्ग नहीं होती। किन्तु मनुष्य जब तक मनुष्य है उसे प्राप्त नहीं कर सकता। निस्सन्देह इच्छित पदार्थ के मिल जाने से सुख होता है और उन्नति का अर्थ भी नीची अवस्था से ऊँची अवस्था में पहुँचना होता है, अतएव उसमें कुछ न कुछ सुख का समावेश होना अवश्यम्भावी है। किन्तु अन्धेर तो यह है कि ज्यों ज्यों इस प्रकार हम अपने कल्पित आदर्श की ओर बढ़ते जाते हैं, त्यों त्यों वह हमसे और दूर भागता जाता है। एक क़दम आगे बढ़ने से थोड़ा-बहुत सुख अवश्य मिलता है, किन्तु साथ ही साथ अपनी वर्तमान अवस्था और निरन्तर भागनेवाले आदर्श के बीच एक नई कमी का अनुभव होने से दुःख का प्रादुर्भाव होता है। इस असन्तोष के ही कारण आगामी उन्नति सम्भव होती है, अतएव असन्तोष और उन्नति का जोड़ा है। दोनों एक दूसरे के अभिन्न साथी हैं। इस असन्तोष से आनन्द का बहिष्कार भी नहीं होता, दोनों के मिलने से अन्तःकरण की विलक्षण अवस्था हो जाती है, इसी को कोई कोई दार्शनिक शान्ति के नाम से अभिहित करते हैं। अतः केवल शुद्ध सुखभोग हमारी दौड़धूप का ध्येय नहीं हो सकता। कारण स्पष्ट है; मनुष्य ऐसा प्राणी उसके लिए बनाया ही नहीं गया, उसका ध्येय तो पूर्णावस्था को प्राप्त करना है।

मनुष्य सुख से वञ्चित है, वह भी उसकी महत्ता का लक्षण है, क्योंकि उसका वास्तविक स्वरूप अनन्त है, वह चाहे जितनी योग्यता से प्रयत्न करे, अपने अनन्त स्वरूप को सान्त आडम्बर के द्वारा कदापि नहीं भूल सकता। क्या समस्त योरप के अर्थसचिव, सुधारक और विधायक महोदयों की सेना एक चर्मकार को सन्तुष्ट करने का भार अपने ऊपर ले सकती है? दो-तीन घण्टे से अधिक उसको प्रसन्न रखना उनके लिए कठिन हो जायगा, क्योंकि उसमें आत्मा है जो उसके भोगलिप्सु पेट से सर्वथा भिन्न है। यदि उसकी स्थायी तृप्ति और सन्तोष का आयोजन किया जाय तो बस परमेश्वर के इस अखिल ब्रह्माण्ड पर उसका एकाधिकार होना चाहिए, यदि इसमें एक रत्ती भर भी कमी हुई तो उसका सारा मज़ा किरकिरा हो जायगा, उसको सुख-भोग करने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए, उसने कोई इच्छा प्रकट की नहीं कि उसको तुरन्त पूरा होना चाहिए। अच्छा, पहले उसको सर्वशक्तिमान् परमात्मा के ब्रह्माण्ड का आधा भाग देकर देखिए, आप उसको दूसरे अर्द्धभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक वितरित न की जाए
NOT TO BE ISSUED

के स्वामी से लड़ते-झगड़ते पायँगे। यदि पूछिएगा तो वह अपने आपको सबसे अधिक अभागा बतलायेगा, जैसे भगवान् ने उसके साथ सबसे अधिक घृणित व्यवहार किया हो। हमारे आनन्दरूपी प्रकाश में असन्तोष-रूपी काला धब्बा है, जो छाया की भाँति हमारा पीछा कभी नहीं छोड़ सकता।

मनुष्य का स्वरूप अनन्त है, अतः उसको अपनी वर्तमान अपूर्ण अवस्था से सन्तुष्ट रहना असम्भव हो जाता है। यद्यपि प्रत्यक्ष में वह परिमित और परिच्छिन्न है, किन्तु वास्तव में उसकी आत्मा और परमात्मा में कोई अभिन्नता नहीं है। वह अपनी ससीमता के कारण, जो चारों ओर से उसमें लिपटी हुई है, परमात्मा से छोटा है, किन्तु पशु-कोटि से कहीं बड़ा है। मनुष्य-जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है? ज्ञान से मनुष्य का जो स्वरूप ज्ञात होता है वही वास्तव में बन जाना, अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात् करना, पूर्णता लाभ करना ही मनुष्य-जीवन का एक-मात्र ध्येय हो सकता है। मनुष्य के रूप में अवतार लेने से अनन्त आत्मा देश और काल की सीमाओं से परिच्छिन्न होगई है। मानो वह इस जगत् में एक परदेशी कैदी की भाँति बद्ध हो रही है। अतः स्वभाववश वह अपने घर के लिए अधीर हो उठती है, अपने खोये हुए आनन्द-भवन को प्राप्त करने का यत्न करती है।

यदि मनुष्य सचमुच पूर्णतः ससीम होता तो उसके लिए ज्ञान की इच्छा करना अथवा उद्देश-विशेष की पूर्ति के लिए उद्योग करना कदापि सम्भव नहीं हो सकता था, क्योंकि उसको अपनी सीमा के बाहर निकलने का क्या अधिकार हो सकता था? बात यह है कि न तो मनुष्य सर्वज्ञ ही है और न पूर्णरूपेण अज्ञ ही है, किन्तु इन दोनों के बीच में स्थित है, इसी लिए दार्शनिक जिज्ञासा उसके लिए सर्वथा सम्भव और बिलकुल स्वाभाविक है। हममें बुद्धि है और बुद्धि ही सृष्टि का विधायक सिद्धान्त है। अतएव हम समझते हैं कि संसार हमारा है, हमारा उस पर एकाधिकार होना चाहिए, किन्तु इसके विरुद्ध हमारी ससीम प्रकृति हमको पग-पग पर बतलाती रहती है कि हम परिस्थितियों के दास हैं, उनके स्वामी नहीं, कैदियों की भाँति परतन्त्र हैं, राजा की भाँति स्वतन्त्र नहीं। हमारी बुद्धि हमको हवा में ले उड़ती है और हमारी शक्ति हमको अपने स्थान में जकड़ना चाहती है। मानव-स्वरूप की यही विचित्रता उसके असन्तोष का कारण है। यही विरोध जो उसके स्वरूप में विद्यमान है उसकी उस सतत इच्छा का कारण है जिसकी प्रेरणा से वह सदैव आगे ही आगे बढ़ना चाहता है। पूर्णता प्राप्त करने की इच्छा ही, जो बिना तृप्त हुए कभी बुझ नहीं सकती, बुद्धि की पोषक और सदाचार की गारंटी है। एक न एक दिन अवश्यमेव पूर्णता लाभ होगी, अपनी सच्ची आत्मा का साक्षात्कार होगा। अतएव अपने आदिम स्वरूप को पुनः प्राप्त करने की चेष्टा का दूसरा नाम ही सदाचार है। सदाचार संचय की वस्तु नहीं, वह 'होने' और 'करने' की बात है। इसका समावेश न केवल सुकोमल मनोभावनाओं में है, चाहे वे कितने ही दिव्य क्यों न हों, और न अक्रियात्मक गुणों में ही है, चाहे वे कितने ही प्रिय क्यों न मालूम हों, बरन सदाचार का अर्थ है अपने आदर्श परमात्मा की ओर निरन्तर आगे बढ़ने के लिए उद्योग करते रहना, जो सत्, चित्, और आनन्दरूप है। संसार की बहुत सी आपत्तियों का मूल-कारण यह भ्रमपूर्ण धारणा है कि सदाचार की सार्थकता केवल थोथे मनोभावों में मग्न होकर चुपचाप शान्तिभाव धारण करने में ही मान ली गई है। पर कर्म संन्यास नहीं। आत्म-साक्षात्कार ही उसका मूलमन्त्र है। मनुष्य की निम्न-प्रवृत्ति पर उच्च प्रवृत्ति की विजय पाना, ज्ञान और कार्यक्षमता में वृद्धि होना, अन्तर से और बाहर से प्रकृति पर आधिपत्य होना ही सदाचार का असली अर्थ है।

सदाचार का पहला विरोधी आलस्य है। हम खाने का कष्ट तो उठा सकते हैं, किन्तु काम नहीं करना चाहते, मनुष्यों की शिकायतों के गर्भ में यही भावना रहती है। मनुष्य का सबसे भारी अभाग्य यही है कि वह काम नहीं कर सकता, अतएव अपना मानव-जीवन भी सार्थक नहीं कर सकता। जो मनुष्य सचाई के साथ काम करता है वह सदैव आशान्वित रहता है, आलस्य में ही निराशा का निरन्तर निवास है।

यह पुस्तक वितरित न की जाए
NOT TO BE ISSUED
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन्य है वह जिसने अपना कर्तव्य पहचान लिया है, वह फिर किसी और आनन्द की कामना ही नहीं कर सकता। संसार में केवल एक राक्षस है—आलसी आदमी। भगवान् ने अपनी सन्तान को पहला आदेश यही दिया है, 'काम करो' 'काम करो'। संसार का भविष्य उन लोगों के हाथ में नहीं है जो मत्यु के द्वार पर हैं, बरन जो जीवित हैं, जो कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होनेवाले हैं।

मनुष्य का एक-मात्र कर्तव्य और सर्वश्रेष्ठ अधिकार यही है कि वह बराबर आगे बढ़ता जाय। पीछे न हटे। दिल खोल कर आगे बढ़ने में ही जीवन है। अधिकाधिक भगवान्-सदृश बनना अपना पुराना चोला उतार कर नया रूप धारण करना ही परम पुरुषार्थ है। हृदय में उच्च मनोवृत्तियों का आधिक्य होना कोई सद्गुण नहीं, यदि वे किसी प्रकार व्यवहार में व्यक्त न हों। "भावुक सब जीवधारियों में सबसे अधिक बाँझ होता है।" सबसे अधिक आवश्यकीय वस्तु है आत्मोन्नति, हमारी वास्तविक आत्मा के विकास में अपनी अवस्था पर मनन करने से बड़ी सहायता मिलती है, किन्तु असावधानी से प्रायः यह वृत्ति स्वार्थ और घमंड के रूप में परिणत हो जाती है। इस आत्मचिन्तन से दो बातें प्रकट होती हैं—पश्चात्ताप या मिथ्याभिमान।

अपने पिछले कर्मों के लिए पश्चात्ताप करना और चिन्ता कर अपने आपको घुला देना एक अस्वास्थ्यकर गुण है, किन्तु डींग हाँकना और व्यर्थ घमंड करना तो कहीं बुरा है—दोनों ओर स्वार्थपरता है। जो हो चुका, मुफ़्त में फिर उसी ओर ताकते रहना व्यर्थ है, 'गतन्न शोचनीयं'। हमारा ध्यान तो बराबर आगे बढ़ने और अपने लिए मार्ग बनाने में लगना चाहिए।

सदाचार में कर्म की प्रधानता है। किन्तु कुछ दार्शनिक सुखवाद को ही नैतिक सिद्धान्त मान बैठे हैं। सुखवाद के अनुसार मनुष्य-जीवन का ध्येय, संक्षेप में, अधिक से अधिक इन्द्रिय-जन्य सुख प्राप्त करना है। कालान्तर में 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है'—इस दार्शनिक सिद्धान्त का समावेश करने के लिए सुखवाद का यह रूप हो गया कि 'प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अधिक से अधिक लोगों के लिए अधिक से अधिक इन्द्रियजन्य सुख जुटाने का उद्योग करे'। इस मत के एक प्रसिद्ध दार्शनिक बेन्थेम ने तो सुख-दुःख तौलने की एक तराजू ही बना डाली है। किन्तु कारलाइल ने सुखलिप्सु जनों के विषय में लिखा है—

"बदमाश और शैतान हैं वे लोग जो भोग-विलास के प्यासे हैं अथवा जो दुःख के नाम से काँप उठते हैं।"

"यह मनुष्य-जीवन वसन्त की बहार नहीं है, बरन यहाँ तो सदैव युद्धाग्नि की लपटें उठा करती हैं, यहाँ मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार सिद्धान्तों के सहारे आगे बढ़ना पड़ता है। "ऐ मूढ़! ऐसा कौन सा क़ानून है कि सदैव तुझको प्रसन्न ही रहना चाहिए? थोड़ी देर पहले तुझको 'मैं हूँ' यह अनुभव करने का ही क्या अधिकार था? क्या हुआ यदि तेरे भाग्य में जन्म भर दुःख ही दुःख बदा है? यदि सुख से वञ्चित हो तो क्या हानि है? यदि ऐसा समझता हो कि बिना सुख के जीवन व्यर्थ है तो क्या तू अपने आपको उस गिद्ध की अपेक्षा कुछ बढ़कर समझ सकता है जो आकाश में इधर-उधर बड़ी तेज़ी से उड़ता फिरता है और मानो बड़ी उदासी से चीख़-चीख़ कर कह रहा है—हाय, मुझे यथेष्ट मांस नहीं मिला। "बेन्थेम के सुखवाद ने तो भगवान् की सृष्टि को कूड़ा-करकट—सुख और दुःख—तौलने की तराजू बना डाला है"।

"मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया है या नहीं? केवल एक यही चिन्ता समझदार व्यक्ति को हो सकती है, उसी के पूरा करने में उसको आनन्द मिलता है"।

कहने का तात्पर्य यह कि हमारे जीवन का ध्येय आत्मसाक्षात्कार है, आनन्द नहीं, किन्तु क्या आत्मानुभवी पुरुष आनन्द-शून्य हो सकता है? जीवन की पूर्णावस्था तो सबसे अधिक आनन्दमयी होना चाहिए, ज्यों ज्यों हम उसके समीप पहुँचते जाते हैं, त्यों त्यों हमें अधिक आनन्द मिलता है। विरक्तों ने स्वयं इस बात का अनुभव किया है, पर आनन्द शब्द का प्रयोग न करके उन्होंने शान्ति को नैतिक जीवन का मुख्य लक्षण बतलाया है। किन्तु यथार्थ में त्याग भी सुखवाद की तरह एकाङ्ग सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त भी उसी प्रकार एक मिथ्या कल्पना के आधार पर स्थिर किया गया है कि शुष्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार या केवल शक्ति ही मनुष्य का असली सारतत्त्व है, जैसे सुखवाद एक दूसरी उतनी ही मिथ्या कल्पना पर निर्धारित है कि इन्द्रियगम्य अनुभव ही मनुष्य में सर्व-प्रधान है। यह दोनों नैतिक सिद्धान्त भ्रमपूर्ण हैं, क्योंकि ये हमारे मिश्रित स्वरूप के केवल एक अंश को ही मनुष्य का पूर्णरूप मान लेते हैं, और तदनुसार ऐसे एकाङ्गी आदर्श स्थापित करते हैं जो मनुष्य को तृप्त करने में सर्वथा असमर्थ हैं। परमेश्वर की तरह पूर्ण होना ही हमारा वास्तविक ध्येय है, किन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि परमात्मा की पूर्णता में आनन्द का भी एक स्थान है; सत्, चित्, आनन्द, यही स्वरूप प्राप्त करना हमारा सर्वोत्कृष्ट कर्त्तव्य है।

तब हमारा पथप्रदर्शक कौन सा मन्त्र है? मैं ही हर एक वस्तु हूँ, नहीं, बरन यह कि हर एक वस्तु मैं ही हूँ। क्योंकि परमात्मा मनुष्य के सम्मिलित समाज के रूप में प्रकट हुआ है और किसी व्यक्ति-विशेष का मूल्य और महत्त्व केवल इसी कारण है कि वह इस सामाजिक जीवन में एक साझीदार है। समाज एक सजीव शरीर है जो अपने अङ्गों-उपाङ्गों-द्वारा अपने आदर्श की ओर बढ़ रहा है और समाज के सदस्य उसके उद्देश और आदर्श की पूर्ति में सहायक बन कर अपना जीवन सार्थक कर सकते हैं। शरीर में हम किसी एक इन्द्रिय की शक्ति को सम्पूर्ण देह की शक्ति से पृथक् नहीं कर सकते। हाथ हाथ है और पैर पैर, क्योंकि सभी शरीर को स्थिर रहने में अपनी अपनी शक्ति के अनुसार सहायता देते हैं। जैसे हाथ शरीर से कट जाने पर हाथ नहीं रह सकता, उसी प्रकार मनुष्य-समाज से अलग हो जाने पर मनुष्य नहीं रहता, बरन पशु हो जाता है। समाज मनुष्य से पहले है जैसे कि देह इन्द्रियों से पहले है। वास्तव में देह जीवित है, उसकी किसी इन्द्रिय में इसी लिए प्राण है कि वह कोई आवश्यक कार्य करके उसके सञ्चालन में सहायता करती है। मनुष्य अपने कार्यों-द्वारा समाज के उद्देशों की पूर्ति में सहायता करके अपने जीवन को सार्थक बना सकता है। व्यक्तिवाद अदूरदर्शी लोगों का सिद्धान्त है। गम्भीर दृष्टि से विचार करने पर यह सचाई तुरन्त प्रकट हो जाती है कि हम मनुष्य को किसी जाति की कल्पना किये बिना समझ ही नहीं सकते।

'समाज एक सजीव प्राणी है,' इस विचार को विस्तार देने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि गत शताब्दी में यदि कोई सिद्धान्त विवादरहित रूप से स्थापित हुआ है तो वह यही सिद्धान्त है कि व्यक्तियों के योग का नाम समाज नहीं है, बरन समाज स्वयं एक सजीव प्राणी है। सभी स्कूलों के विचारक भी इस बात में एकमत हैं।

"मनुष्य एकाकी नहीं रह सकता। जैसे देह में नसें एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, उसी प्रकार हमारा पारस्परिक सम्बन्ध एक दूसरे से बँधा है या तो हम सबों की भलाई होगी या फिर हम सबको मिलकर दुःख भोगना पड़ेगा, उत्थान होगा तो सबका, पतन होगा तो सबका। बड़े से बड़ा मनुष्य अपने आपको छोटे से छोटे मनुष्य से पृथक् नहीं कर सकता"।

"मनुष्य को पूर्णतः समझने के लिए हमें उसके व्यक्तिगत कार्यों और भलाई-बुराई के बाहर देखना होगा, अपने सम्बन्धियों के साथ उसको देखना होगा। समाज में ही मनुष्य को पहले-पहल यह अनुभव होता है कि वह क्या है, वह तभी पहले-पहल अपना यथार्थरूप धारण करता है। समाज में आते ही मनुष्य में एक बिलकुल ही नये प्रकार के आध्यात्मिक उद्वेगों का उदय होता है, उसके विश्व का विस्तार न जाने कितना बढ़ जाता है, उसका स्वरूप कहीं अधिक गम्भीर हो जाता है। समाज वह क्षेत्र है जहाँ मनुष्य-स्वभाव पहले-पहल बनता और बढ़ता है।"

"सिपाही अपनी सेना का सैनिक बन कर ही युद्ध कर सकता है और तभी विजय की सम्भावना भी हो सकती है, इसी प्रकार व्यक्ति विशेष भी अपनी सजीव जाति का अङ्ग बन कर ही अपने आदर्श तक पहुँच सकता है। जाति का जीवन ही उसका जीवन है, जाति की सफलता ही उसकी सफलता है। मनुष्य के उच्च जीवन का स्वरूप समाज या राष्ट्र है। यही लौकिक देवता मनुष्य के लिए पूजनीय है, इसी की पूजा में मनुष्य की मुक्ति है। समाज एक ऐसा सङ्गठित व्यक्ति है जिसमें अनेक व्यक्तियों की वाणी का समावेश हुआ है, समाज ही पृथ्वी पर मनुष्यों की सबसे बड़ी सफलता का चित्र है। समाज में ही और समाज के द्वारा ही मनुष्य के उद्योगों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयुक्त विकास होता है, और उसी के द्वारा मनुष्य मूल्यवान् हो जाता है। थोड़े से विचार करने से भी समाज हमारे जीवन की सबसे अधिक आश्चर्यजनक घटना मालूम होने लगती है, उसमें एक अलौकिकपन है, यह एक ऐसा सर्वव्यापक जीवन है जिसमें हमारा व्यक्तिगत जीवन एक बार नहीं, दो बार नहीं, बरन सैकड़ों बार जीवित होता है, और जो कुछ भी अनन्तता की झलक हममें है वह इसके द्वारा स्पष्ट हो जाती है।"

अच्छा, तब किसी व्यक्ति विशेष के क्या कर्त्तव्य हैं? ये समाज में उसका स्थान देख कर ही निश्चित किये जा सकते हैं। इन कर्त्तव्यों का पालन करने से वह अपने जीवन को सार्थक बनाने और साथ ही साथ अपने समाज के उद्देशों की पूर्ति करने में समर्थ हो सकता है, ठीक उसी प्रकार जैसे शरीर का कोई अङ्ग अपना काम ठीक तरह से सम्पादन करके शरीर को पुष्ट रखता है और स्वयं भी जीवित रहता है। अतएव जिसको अपने कर्त्तव्य का ज्ञान प्राप्त करना हो वह यह देखे कि समाज में मेरा क्या स्थान है।

"सम्भव है, समाज में हमारा स्थान बहुत ही नीच और अज्ञात हो, उसमें कोई भी आकर्षक बात न हो, किन्तु तो भी हमारा जीवन कर्त्तव्य-शून्य नहीं हो सकता, कुछ न कुछ कर्त्तव्य वहाँ हमारे लिए अवश्य विद्यमान रहता है। वह स्थान जहाँ कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता, वास्तव में, मनुष्य-जीवन का अन्तिम आदर्श है। तुच्छ से तुच्छ, दीनहीन, अत्यन्त दुःखमय, और घृणास्पद स्थल पर भी तुम खड़े हो, पर तुम्हारा कर्त्तव्य सदैव स्पष्ट होगा, उसी को अपना आदर्श समझो, उसी आदर्श पर पहुँचने का उद्योग करो, काम करो और विश्वास रक्खो, तुम जीवित रहोगे और एक दिन मुक्त हो जाओगे।" अतएव मनुष्य के लिए एक ही सन्देश हो सकता है—"पहले उस काम को जो तुम्हारे समीप है, यदि तुम उसको अपना कर्त्तव्य समझते हो, तो अवश्य पूर्ण करो, तब तुम्हारा दूसरा कर्त्तव्य स्वतः ही तुमको ज्ञात हो जायगा। और इस प्रकार तुम एक दिन पूर्णतम को पहुँच जाओगे।" जीवो ब्रह्मैव नापरः

'मुमुक्षु'

नवीन सर्बिया।

पिछले महायुद्ध के फलस्वरूप बाल्कन-प्रायद्वीप का सर्बिया-राज्य अधिक शक्तिशाली और गौरव-पूर्ण हो गया है। इसके सिवा इसके क्षेत्रफल में भी बहुत अधिक वृद्धि हो गई है। इसके सीमावर्ती राज्यों के जिन प्रान्तों में सर्ब जाति के लोग निवास करते थे वे सब उनसे लेकर सर्बिया को दे दिये गये हैं। इस प्रकार इनकी समग्र जाति का एक नूतन विस्तृत राज्य ही निर्मित हो गया है। स्लाव लोगों का यह नया राज्य जुगो-स्लाविया के नाम से प्रसिद्ध हुआ है।

पिछले बाल्कन-युद्ध तथा योरपीय महायुद्ध के पहले सर्बिया का क्षेत्रफल केवल ४८,३०० वर्ग मील था, अर्थात् जोधपुर-राज्य से कुछ ही बड़ा था। परन्तु इन दोनों युद्धों की बदौलत उसके क्षेत्रफल में बहुत अधिक वृद्धि हो गई है। बाल्कन-युद्ध में विजयी होकर उसने तुर्कों से पुराना सर्बिया और मेसेडोनिया के प्रान्त तो ले ही लिये थे। अब इस योरपीय-युद्ध में उसे आस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य के हर्ज़ीगोविना, डल्मेशिया, बोस्निया, क्रोटिया, स्लावोनिया, बनाट आदि प्रान्त और बलगेरिया के पश्चिमी प्रदेश मिल गये हैं। इसके सिवा मान्टीनिग्रो का राज्य भी उसमें शामिल कर दिया गया है। इस प्रकार सर्बिया अब एक नये बलशाली राज्य में परिणत हो गया है और अब इसकी जन-संख्या १,२०,१७,००० होगई है।

सन् १९२१ की २२ वीं जून को इस नूतन सङ्गठित राज्य के लिए एक नई शासन-विधि स्वीकृत हुई थी। इसके अनुसार तीन सौ सदस्यों की एक सभा बना दी गई। इसका नाम राष्ट्रीय परिषद् है। इसके आवाहन-विसर्जन का अधिकार राजा को दिया गया है। पूर्वोक्त शासन-विधि में फेरफार करने का अधिकार राजा को नहीं है। शासन-भार प्रधान मन्त्री और १५ सचिवों के मन्त्रि-मण्डल पर निर्भर है। इनके सिवा एक प्रतिनिधि-सभा भी है। इन सबके सहयोग से इस नूतन राज्य के शासन-कार्य का सञ्चालन होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्ब या स्लाव लोग पहले कार्पेथियन पहाड़ के उत्तर में गैलेशिया प्रदेश में रहते थे। सातवीं सदी के प्रारम्भ में ये वहाँ से आकर बाल्कन-प्रायद्वीप में बस गये। जिन प्रान्तों को इन्होंने अपनी निवास-भूमि बनाई थी वे इन्हें तत्कालीन रोमन-सम्राट् ने दे दिये थे। इन्होंने रोमन-सम्राट् को अपना सम्राट् मान लिया था। परन्तु कालान्तर में जब कान्स्टैंटिनोपिल पर तुर्कों का अधिकार हो गया और वे देश के भीतरी भाग की ओर अग्रसर हुए तब उनसे इनकी मुठभेड़ हुई। सर्ब लोग यद्यपि तुर्कों से दिल खोल कर लड़े, तो भी उनके आगे न ठहर सके। तुर्कों ने इनके देश को अपने अधिकार

दक्षिण-यूगोस्लेविया की दो महिलायें।

में कर लिया। यह चौदहवीं सदी के अन्तिम भाग की बात है। तभी से सर्बों की पराधीनता का युग आरम्भ हुआ। यह पराधीनता इन्हें पूरे चार सौ वर्ष तक भोगनी पड़ी। पर इस लम्बे-चौड़े समय में सर्ब लोगों ने अपनी

यूगोस्लेविया की एक शिक्षिता ईसाई-कुमारिका।

स्वाधीनता की भावना को एक दिन के लिए भी नहीं छोड़ा। इनकी पराधीनता का काल इनके स्वतन्त्रता-प्राप्ति के युद्ध का इतिहास है, जो इस साहसी जाति की वीरता और महत्त्वाकांक्षा जैसे मनुष्योचित गुणों का पूर्ण परिचय देता है। अपने इन्हीं गुणों की बदौलत, तरह तरह के भयङ्कर अत्याचार सह लेने के बाद, आज यह जाति अपने उद्देश में सफल हुई है।

अधिक समय तक तुर्कों के अधीन रहने के कारण सर्बों के ऊपर मुसलमानों का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। यह बात उनके रहन-सहन और पहनाव आदि से भले प्रकार स्पष्ट होती है। यही नहीं, सर्बों को इस्लाम-धर्म भी स्वीकार करना पड़ा है। नूतन सर्विया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जन-संख्या में ११ फ़ी सदी मुसलमान हैं, जो अधिकांश में स्लाव-जाति के ही हैं। तुर्कों के शासन-

सर्बिया की एक ग्रामीण पाठशाला की अध्यापिका।

काल में इनको मुसलमान हो जाना पड़ा था। इनकी अधिक संख्या बोस्निया, हर्ज़ीगोविना आदि प्रान्तों में ही है इनकी कोई एक तिहाई जन-संख्या मुसलमान हो गई है। बहुत दिन नहीं हुए, ये प्रान्त तुर्कों के ही शासन में थे।

सर्बिया से रूस की सदा सहानुभूति रही है। इसका कारण इन दोनों देशों के निवासियों का एक जाति का होना है। सर्बिया के स्वाधीनता प्राप्त करने में रूस ने सदा सहायता की है। इसके सिवा तुर्कों से विरोध होने के कारण आस्ट्रिया से भी उसे सहायता मिलती रही है। यद्यपि ये दोनों प्रबल राष्ट्र सर्बिया की सहायता के बहाने अपना ही उल्लू सीधा करने की घात में रहते थे, पर बीच में हो गया कुछ और ही। तुर्कों के विरुद्ध इन दो प्रबल राष्ट्रों के प्रयत्नों का अन्तिम परिणाम यह हुआ कि बाल्कन-प्रायद्वीप में आज स्लाव-जाति का एक नूतन राज्य सङ्गठित होगया है।

सर्ब लोग स्वाधीनता के बड़े प्रेमी होते हैं। उन्हें

मैसीडोनिया की एक स्त्री और उसकी भेष-भूषा।

दास-वृत्ति से बड़ी घृणा है। यहाँ तक कि वे कभी किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सेवा-टहल की नौकरी तक नहीं करते। स्वयं उन्हें इसके लिए बाहरवाले ही रखने पड़ते हैं।

दक्षिण-सर्बिया की स्त्री का पहनावा।

सर्बों का स्वभाव सीधा-सादा और व्यवहार निष्कपट होता है। वे दयालु और मर्यादाशील होते हैं। परस्पर के हेलमेल में भी उनका व्यवहार सरल होता है, सभा-समाजों में वे उसी के साथ उठते-बैठते हैं जो उनसे समानता का व्यवहार करता है।

यों तो वे हँसमुख होते हैं, पर अवसर पर उग्र तथा प्रचण्ड भी पड़ जाते हैं। वीरता एवं सौजन्य के लिए तो वे चिरकाल से प्रसिद्ध हैं। सदियों तक तुर्कों के साथ लड़ते रहने में अपनी वीरता का परिचय उन्होंने अच्छी तरह दिया है। पर उनके सौजन्य का परिचय उस समय मिलता है जब भिन्न जाति का कोई आपदग्रस्त व्यक्ति उनके द्वार पर जा खड़ा होता है।

सर्बों का आतिथ्य-सत्कार ज़माने से प्रसिद्ध है। यही नहीं, सर्ब लोग जब अपने किसी मित्र या सम्बन्धी से भेंट करने जाते हैं तब वे कुछ सौग़ात लेकर जाते हैं। वे लड़कों के लिए विशेष प्रकार की रोटियाँ और घर की प्रत्येक स्त्री और कन्या के लिए कोई न कोई सुगन्धित फूल ले जाते हैं। उस फूल में रेशम के तागे से एक सिक्का भी लगा दिया जाता है। यह उनका परम्परागत पारस्परिक व्यवहार है। अपरिचित यात्रियों के लिए तो उनके घर के द्वार सदा ही खुले रहते हैं। बोस्निया के बेगों के मकानों के पास तो अतिथि के विश्राम के लिए अलग घर तक बने रहते हैं। कोई व्यक्ति चाहे तो यहाँ पूरा महीने भर पड़ा रह सकता है। उसे और उसके घोड़े को भी बिना एक पैसा ख़र्च किये हुए भोजन और चारा-पानी बराबर

मैसीडोनिया-वासी सर्ब-स्त्री का आभूषण-प्रेम।

मिलता रहेगा। मान्टीनिग्रो में तो अतिथि-सत्कार को बड़ा महत्त्व प्राप्त है। हत्यारे तक को उनके घर में आश्रय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल जाता है। कोई भी अपराधी, चाहे जिस जाति का हो उनकी शरण में पहुँच भर जाय, फिर उसका कोई बाल तक बाँका नहीं कर सकता।

सर्बिया में लड़की की अपेक्षा लड़के के जन्म पर लोग अधिक प्रसन्न होते हैं। पुत्र-जन्म के लिए माता-पिता दोनों लालायित रहते हैं। इस कारण वहाँ लड़कियों का दर्जा छोटा होता है। यह बात उनके जीवन की दूसरी बातों से भी स्पष्ट है। कोई स्त्री अपने पति का नाम नहीं लेती। हमारे देश की ही भाँति वहाँ की स्त्रियाँ भी अपने पति के सम्बन्ध में 'वे' सर्वनाम का ही उपयोग करती हैं। पुरुष की अपेक्षा वहाँ स्त्री को काम भी अधिक करना

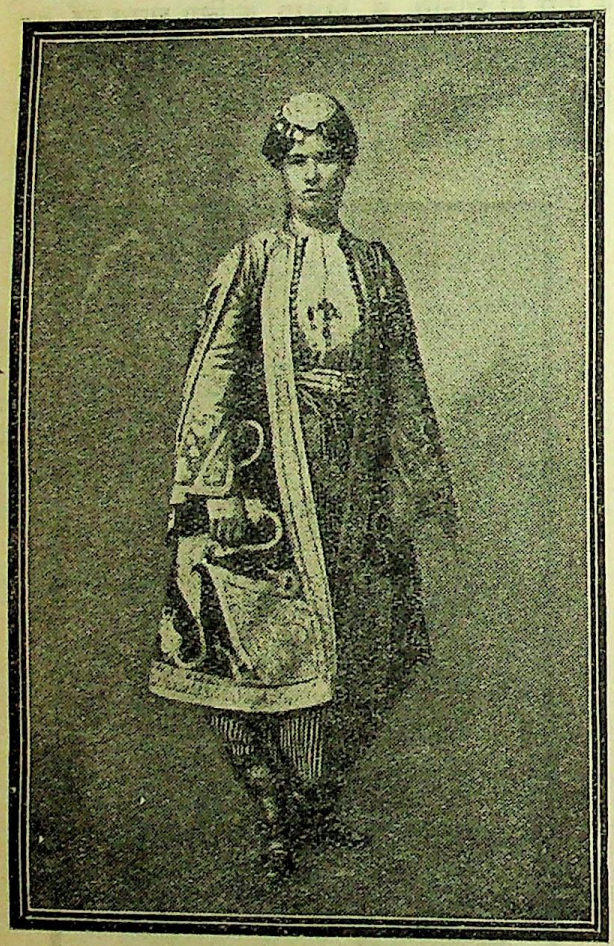

दक्षिणी यूगो-स्लेविया की एक नव-शिक्षिता मुसल्मान-कुमारिका।

पड़ता है। उसे सबसे पहले सोकर उठना पड़ता है और सबके बाद सोने को मिलता है। उसी को घर के सारे काम करने पड़ते हैं। वह चर्खा कातती, करघे पर कपड़ा बिनती, भोजन पकाती, बर्तन धोती, गाय दुहती, दूध-दही तैयार

मैसीडोनिया की एक युवती और कुमारी।

करती और बीमारी में लड़कों की दवा-दारू भी करती है। गर्मी के दिनों में घर-गृहस्थी के उपयोग में आनेवाले मिट्टी के बर्तन भी उसी को बनाने पड़ते हैं। इन सारे कामों के सिवा वह खेती के कामों में भी सहायता देती है। मान्टीनिग्रो में तो स्त्रियों को बोझा तक ढोना पड़ता है। वहाँ के मर्द बोझा ढोना अपमानजनक समझते हैं।

परन्तु स्त्रियों के इस प्रकार काम के यन्त्र बन जाने का यह मतलब नहीं कि उनकी वहाँ कुछ वक़त ही नहीं। वास्तव में सर्ब लोग स्त्री-जाति को पूज्यभाव से देखते हैं। उनकी वहाँ 'ढोल, गवाँर, शूद्र, पशु' में गणना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। कोई भी पति स्त्री से रूखा व्यवहार नहीं करता, मारने-पीटने की बात तो अलग रही। वहाँ की स्त्रियाँ भी कुछ कम सुशीला नहीं होतीं। जैसे गृह-कार्य में वे निपुण और परिश्रमशील होती हैं, वैसे ही उनमें स्त्रियोचित दूसरे गुण भी होते हैं। मान्टीनिग्रो जैसे प्रदेशों की स्त्रियाँ तो पुरुषों की भाँति अस्त्र-धारण करने में भी प्रवीण होती हैं। वे केवल आत्म-रक्षा करने में ही समर्थ नहीं होतीं, किन्तु आततायी को दण्ड देने की भी शक्ति रखती हैं।

सर्बिया की स्त्रियों एवं मर्दों की भेष-भूषा में एशिया-ईपन झलकता है। यहाँ के निवासी एशियाइयों की भाँति

क्रोटियावासिनी दो महिलायें।

नंगे पैर चलना-फिरना असभ्यता का चिह्न नहीं समझते। स्त्रियों को रङ्ग-विरङ्गी पोशाक पहनने के सिवा तरह तरह के आभूषणों से भी अत्यधिक प्रेम रहता है। चूड़ियों, हमेलों की वहाँ भी ख़ासी धूम है। नाना प्रकार के

मैसीडोनियावासी एक धनिक सर्ब-स्त्री का पहनावा।

मनोहर शृङ्गार किये हुए स्त्रियाँ प्रायः बाज़ारों में देखने में आती हैं। यहाँ की मुसलमान-स्त्रियों में पर्दे का रवाज है। वे जब बाहर निकलती हैं तब बुर्का डालकर। ईसाई-स्त्रियाँ भी बुर्का का उपयोग करती हैं, पर परदे के विचार से नहीं। सब लोग तरह तरह की पोशाक पहनते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर साधारणतया मर्द लोग नीचे फतुही और ऊपर एक सफ़ेद कुर्त्ता पहनते हैं, जो प्रायः कामदार होता है। जो

सर्वदेशीय मुसलमान-बालक।

पायजामे पहनते हैं वे घुटनों तक तंग और ऊपर ढीले-ढाले रहते हैं। ये ऊनी होते हैं उनके पहनावे में मुसलमानी प्रभाव झलकता है। यहाँ के मुसलमान पगड़ी और फेज टोपी देते हैं। अधिकांश मर्द-औरतें सफ़ेद और भूरे रङ्ग के ही कपड़े पहनते हैं। वे लोग शोरगुल के भी बड़े प्रेमी होते हैं, अनेक अवसरों पर तमञ्चे-बन्दूक़ दागकर उनकी दनदनाहट का आनन्द लूटते हैं। सर्ब लोगों का परस्पर का अभिवादन चुम्बन है। ये एक दूसरे का मुख चुम्बन कर ही आगन्तुक का स्वागत करते हैं। नाचने का तो उतना नहीं, पर गाने का उनमें बहुत अधिक प्रचार है। गड़रिये अपनी भेड़ें चराते समय प्रायः दिन भर बाँसुरी बजाया करते हैं। कृषक भी अपने खेतों में काम करते समय कुछ न कुछ गुनगुनाया करते हैं। गावों और क़स्बों में लोग गली चलते हुए प्रायः गाते ही देख पड़ते हैं।

सर्बिया कृषिप्रधान देश है। वहाँ सौ में चौरासी लोग कृषि करते हैं। सभी के पास कुछ न कुछ ज़मीन होती है, जिसमें लोग अपने परिवार की सहायता से खेती कर अपना निर्वाह करते हैं। वहाँ भूस्वामियों का अभाव है। तुर्क-शासन के साथ ही भूस्वामी-पद्धति भी लुप्त हो गई थी। कृषि-योग्य भूमि जिसके हाथ में जितनी थी वह उसी की हो गई। नवीन सर्बिया में इस पद्धति के सार्वत्रिक

क्रोटिया की कृषक-रमणियाँ और उनके कद्दू।

प्रचार की योजना की गई है। बोस्निया आदि प्रान्तों के भूस्वामी अपने अधिकारों से वञ्चित किये जा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्विया के खानेबदोशों का नृत्य ।

हर्ज़ीगोविनावासी एक सर्ब-कुँजड़ा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्बिया का भूमि-सम्बन्धी क़ानून यहाँ भी जारी कर दिया गया है। इस व्यवस्था के कारण सर्व लोगों का सामाजिक सङ्गठन बहुत बढ़िया हो गया है। राव-रङ्क का भेदभाव उनमें नहीं है।

सर्बिया की भूमि अधिक उपजाऊ है। उनके देश की कोई तीन-चौथाई भूमि खेती के योग्य है। उनके कृषि-कार्य में वहाँ के मौसम भी बाधा नहीं डालते। इसके सिवा उन्हें क़ानूनी सुविधायें भी प्राप्त हैं। यदि किसी कृषक पर ऋण का भार इतना अधिक हो जाता है कि उसकी सारी भूमि तथा सम्पत्ति के नीलाम हो जाने पर भी वह वसूल नहीं हो सकता

सेराजेवो की मस्जिद में जुमा की नमाज़।

तो भी वह निरा कङ्गाल नहीं हो जाने पाता। उस दशा में भी क़ानून उसकी रक्षा करता है और महाजन को उसके निर्वाह के लिए पाँच एकड़ भूमि, एक हल, एक जोड़ी बैल, तथा खेती के औजार आदि छोड़ ही देने पड़ते हैं। कृषि-कार्य में वहाँ के कृषकों में सहयोग का

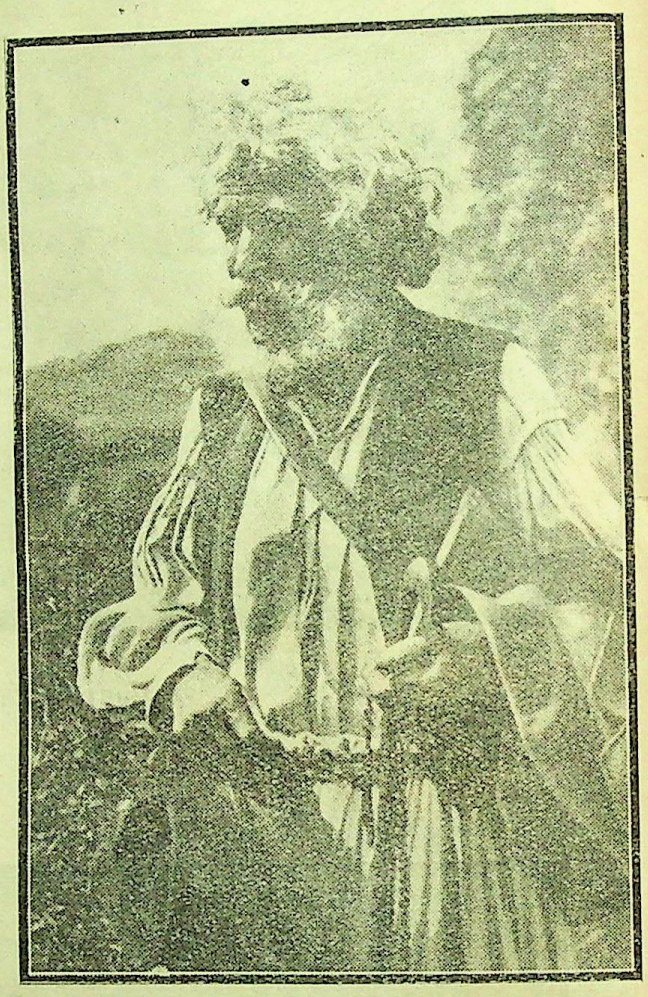

सर्ब-पादड़ी।

ख़ासा प्रचार है। उन्हें अपने खेत आदि काटने में पड़ोसियों से पूरी मदद मिलती है।

सर्बिया में कृषकों को एक यह भी सुविधा प्राप्त है कि उन्हें अकाल के समय अन्न के अभाव का दुख नहीं झेलना पड़ता। वहाँ के प्रत्येक किसान को टैक्स के रूप में ३०० पौंड अन्न देना पड़ता है। वह अन्न प्रत्येक किसान अपनी गाड़ी में लादकर अपने जवार के अन्न-भाण्डार को पहुँचा देता है। वह वहाँ दूसरी फ़सल के तैयार हो जाने के समय तक सुरक्षित रक्खा रहता है। इसके बाद बेच दिया जाता है। यदि दूसरी फ़सल न हुई तो इस अन्न-भाण्डार से उनके अभाव की पूर्ति की जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्ब-कृषक साधारण तौर से अच्छा और पौष्टिक भोजन करते हैं। उन्हें कोदो-मटर पर ही रहकर अपना जीवन नहीं बिता देना पड़ता। पनीर, सूअर का मांस, सूखी मछली या मांस और करमकल्ले की भाजी आदि उनका साधारण खाद्य है। उन्हें मांस या मछली के शोरबे से अधिक प्रेम है। उसमें तरकारी और टमाटो मिलाकर वे उसे गाढ़ा करके खाते हैं।

यद्यपि सर्ब लोगों की एकमात्र जीविका कृषि है, तो भी उन्होंने कृषि-विद्या में कुछ भी उन्नति नहीं की वही बाबा आदम की प्रणाली आज भी प्रचलित है। वही काठ के हल और वही पुराने ढङ्ग का बोना-जोतना।

सर्ब लोग अपने घर एक दूसरे के घर से कुछ अन्तर पर बनाते हैं। एक परिवार के लोग एक ही घर में रहते हैं। उस घर में सबके लिए अलग अलग कमरे बने रहते हैं। घर पर सबसे बड़े पुरुष और स्त्री का ही अधिकार रहता है। इन्हीं की आज्ञा सबको शिरोधार्य करनी पड़ती है। घर के सब लोग मिलकर रहते और घर का काम-धाम करते हैं। एक घर के लोग अपने काम-काज के लिए बाहरवालों की सहायता नहीं लेते। वे अपनी गाड़ी और हल यहाँ तक कि अपने जूते भी अपने हाथ से बना लेते हैं। घर की स्त्रियाँ ऊन कातकर अपने आवश्यक कपड़े बुन लेती हैं। खाने को अन्न खेती से मिल ही जाता है। सिर्फ़ नमक आदि जैसी ही कुछ चीज़े उन्हें ख़रीदनी पड़ती हैं। वास्तव में वे आत्मनिर्भर होते हैं। कई एक घरों के लिए एक मिल होती है, जिसका

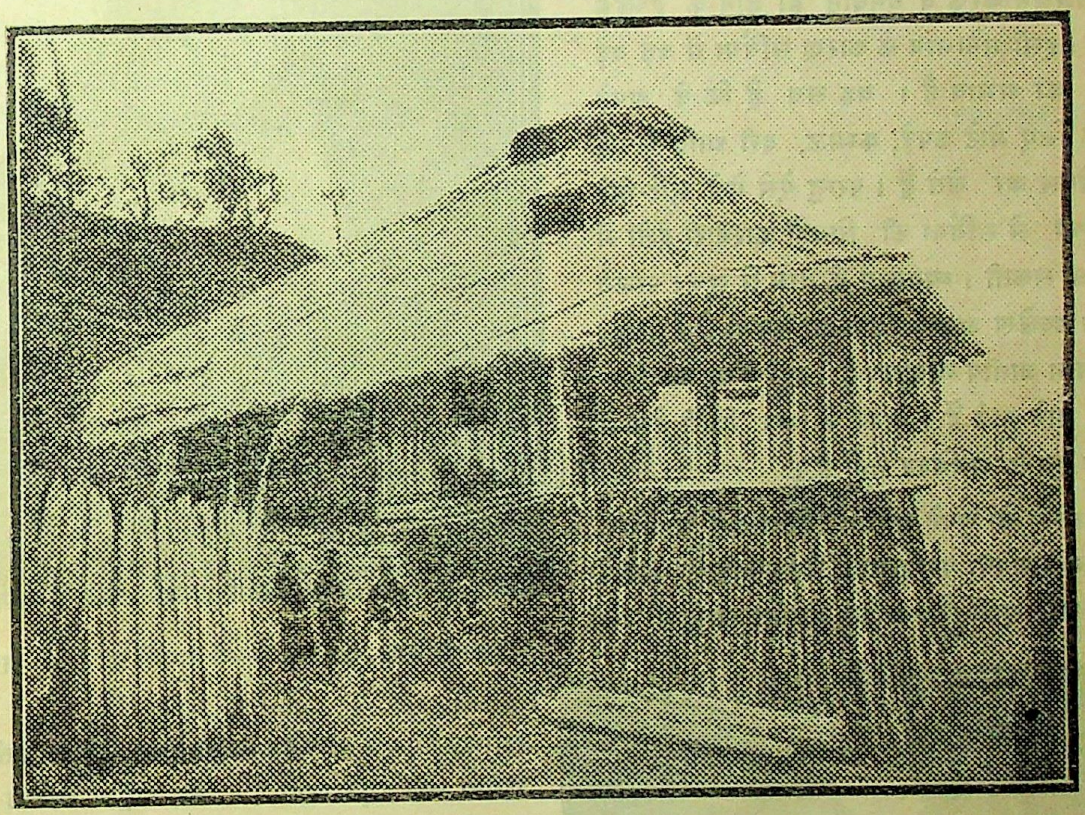

एक सर्ब-कृषक का घर।

उपयोग बारी बारी से सभी घरवाले करते हैं। इन गृह-सङ्घों की रचना मुख्यतः तुर्कों के शासन-काल में हुई थी, क्योंकि तुर्क लोग घर पीछे कर लगाते थे। इसी से लोगों ने कर से बचने के लिए परिवार में बँधकर रहना अधिक पसन्द किया। यहाँ तक कि किसी किसी गृह की जन-संख्या दो दो सौ तक पहुँच जाती थी। इस स्थिति के कारण उनमें भ्रातृत्व की भावना ने भी प्रबल-रूप धारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लिया है। यद्यपि इन गृह-सङ्घों का पहले जैसा सङ्गठन अब नहीं रह गया है, तो भी उनमें सम्मिलित कुटुम्ब-प्रणाली का ही प्रचार है।

सर्बिया में ज्वार, जौ और गेहूँ आदि अन्न खूब उत्पन्न होते हैं। तम्बाकू भी अच्छे परिमाण में उत्पन्न होती है। परन्तु सर्ब लोग अधिक परिश्रम नहीं करते और न नये ढङ्ग की वैज्ञानिक-रीति की खेती करना ही उनको पसन्द है। वे स्वभाव से ही अपने बाबा आदम की स्थिति से सन्तुष्ट रहते हैं। अधिक परिश्रम करके वे धनवान् हो जाने के इच्छुक नहीं होते। इसी मनोभाव के कारण सर्बिया में बड़े बड़े कारख़ानों का अभाव है। यह सच है कि वे अपने उपयोग के लिए मोटे कपड़े, कम्मल, दरी आदि वस्तुएँ हाथ से तैयार कर लेते हैं। परन्तु ऐसे ऐसे छोटे-मोटे उद्योग-धन्धों से सर्बिया की गिनती कारबारी देशों में नहीं की जा सकती। व्यवसाय के नाम से सूअर पालने के पेशे का उल्लेख अवश्य किया जा सकता है। वास्तव में यह उनका जातीय व्यवसाय है। यहाँ ये बहुत अधिक संख्या में पाये जाते हैं। योरप के अन्य किसी देश में सूअरों का इतना आधिक्य नहीं है।

सर्ब लोगों को अपने जातीय इतिहास से अत्यधिक प्रेम है। उन्हें अपनी परम्परागत गौरव-वर्द्धिनी गाथायें आज भी नहीं भूली हैं। उनका ग्रामीण साहित्य उनके पूर्वजों के वीरोचित कार्यों का स्मारक है। विदेशियों के

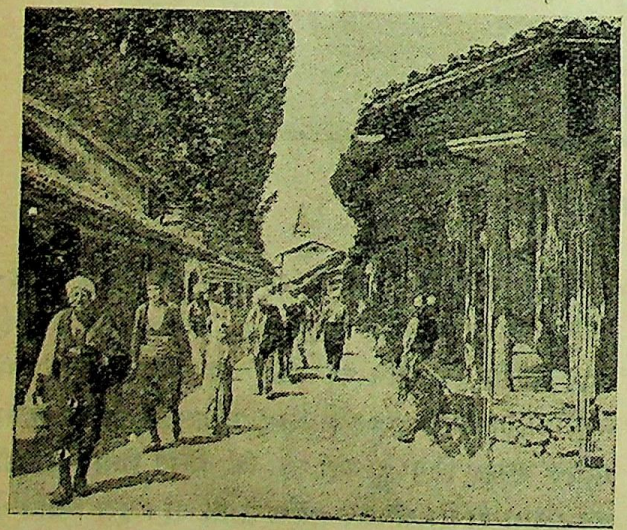

सेराजेवो का बाज़ार।

स्लावोनिया का एक कृषक अपनी जाड़े की पोशाक में।

सम्मिलन एवं तज्जनित सङ्घर्ष का उस पर रत्ती भर भी प्रभाव नहीं पड़ने पाया है। वह राष्ट्रीय भावना से सराबोर है। अपने पूर्वजों की कीर्ति-गाथा से उनको इतना अधिक प्रेम है कि खेतों में काम करते या अपने पशु चराते समय वे यदि कुछ गाते हैं तो एकमात्र वही। और अवकाश मिलने पर प्रायः नित्य सन्ध्या-समय कृषक लोग किसी वृद्ध को घेर कर बैठ जाते हैं, जो उन्हें गा गाकर जातीय गीतों का रसास्वादन कराता है।

सर्ब लोग इसाई-धर्म को मानते हैं, पर उनमें अभी तक परम्परागत प्राचीन संस्कार मौजूद हैं। इनके रीति-रवाजों में उनका प्रभाव मौजूद है। क्रिसमस के पहले पैंतालीस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन तक निरामिष भोजन का व्रत करना उसका एक प्रमाण है। इनकी ऐसी दूसरी बातें भी यह स्पष्ट सूचित करती हैं कि ये कट्टर ईसाई नहीं हैं। ये प्रत्येक रविवार को गिरजाघर जाने के अधिक प्रेमी नहीं हैं। गिरजाघर को धार्मिक संस्था जैसा मान नहीं देते। ये उसे देश-भक्ति के प्रदर्शन का ही स्थान समझते हैं। अतएव मुख्य मुख्य धार्मिक अवसरों या किसी ऐतिहासिक घटना विशेष के महोत्सव पर ही ये लोग सानुराग अधिक संख्या में एकत्र होते हैं।

नूतन सर्विया के आगे नया आदर्श है। जो नये प्रदेश दूसरे राज्यों से लेकर उसके राज्य में मिला दिये गये हैं, यद्यपि उनके निवासी स्लाव जाति के ही हैं तो भी सदियों तक दूसरों के अधीन रहने के कारण पुराने सर्विया के स्लावों से वे अनेक बातों में भिन्न हैं। उदाहरण के लिए क्रोटिया आदि प्रान्तों के निवासी मुख्य सर्विया के निवासियों की अपेक्षा अधिक शिक्षित हैं। इसी तरह वे इनकी अपेक्षा रहन-सहन तथा दूसरी बातों में भी अधिक उन्नत हैं। पर भिन्नता का स्थान गौण है, क्योंकि एकतामूलक अन्य बातों की अधिकता है। सभी प्रान्तों के कृषकों में एक जाति होने के सिवा अन्य बातों में अधिक साम्य है और कृषक वहाँ दस में नौ हैं ही। यद्यपि भिन्न भिन्न परिस्थितियों में रहनेवाले इन विभिन्न प्रान्तों को ऐक्य-सूत्र में बँधने में विलम्ब होगा, तो भी भविष्य आशा-प्रद है।

रमाशङ्कर उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

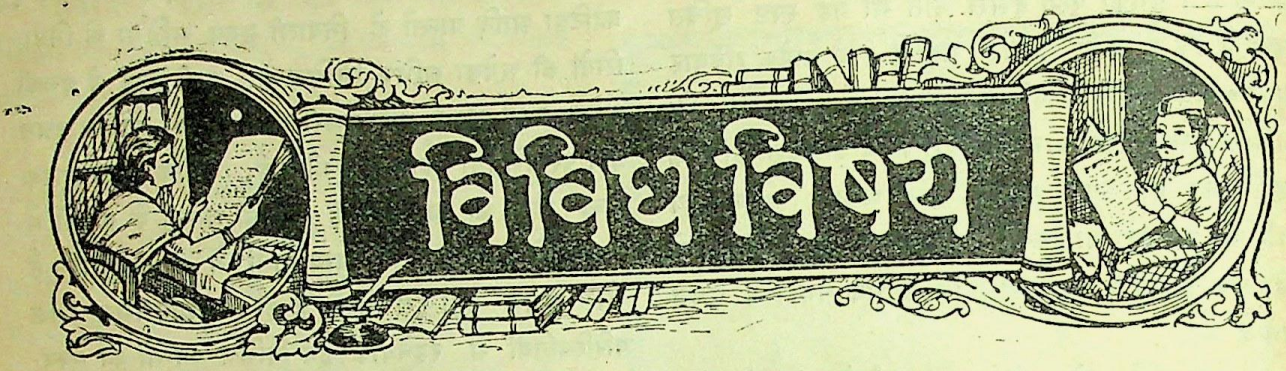

१—पलाण्डु-दिग्विजय।

जयपुर में एक वैद्य-प्रवर होगये हैं। उनका नाम है श्रीकृष्णरामजी।

श्रीकृष्णरामजी आयुर्वेद के मर्मज्ञ तो थे ही, वे आशु कवि भी थे। कविसमाज ने आपको 'कविमल्ल' उपाधि से अलङ्कृत किया था।

आपके विरचित मुद्रित ग्रन्थों की सूची आपके परम शिष्य स्वामीजी महाराज श्रीलक्ष्मीरामजी आयुर्वेदाचार्य ने पद्य-द्वारा इस प्रकार प्रकट की है।

"आर्यालङ्कारशतं पञ्चमहाकाव्यसारशतकं च।
जयपुरविलासकाव्यं मुक्तकमुक्तावली नाम॥
श्रीकच्छवाहवंशं छन्दोगणितं पलाण्डु-दिग्विजयम्।
गोविन्दभट्टभंगं तथैव होलोत्सवो भाणः॥
जयपुरमेलककुतुकं गप्पसमाधानमद्भुतं तद्वत्।
नाथस्तवः कनीयान् काशीनाथस्तवोऽपि तथा॥
सम्राट्सुताभिनन्दनमाधवपाणिग्रहोत्सवावच्छौ।
गोपालगीतपत्रप्रशस्तिमुख्यानि खण्डकाव्यानि॥"

यहाँ उनके पलाण्डु-दिग्विजय का परिचय दिया जाता है। राजा पलाण्डु अपनी राजधानी धर्मपुर से चिर्भट, गृञ्जन (गाजर) आदि मन्त्री और रसोन (लशुन) सेनापति को साथ लेकर दिग्विजय करने के लिए रवाना हुआ।

मार्ग में अलस (रोग) आदि बाधकों का नाश करती हुआ वह महाराष्ट्र जा पहुँचा।

वहाँ शूल, अतिसार, ऐंठन आदि आत्मीय जनों के साथ उग्र वमन करती हुई विषूचिका जब मनुष्यों को दुःखी करने लगी तब जनता ने राजा की शरण जाकर सेनापति-द्वारा निवेदन कराया। राजा सेनापति को लेकर उसके साथ तुमुल युद्ध करने लगा। इतने में ही विलम्बिका ने सेनापति को मूर्च्छित कर दिया। पर रसोन ने पुनः सचेत हो उस पर ऐसा प्रहार किया कि यम ने उसे नरक का केवल दर्शन कराकर ही स्वर्ग को भेज दिया। 'हतो वा प्राप्स्यते स्वर्गम्'

अपनी भगिनी का इस प्रकार शरीरान्त देख राजा के भय से काँपती हुई विषूचिका शरीर या नगर को छोड़ भाग ही तो गई। तब से इसकी सेवा क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी करने लगे। क्योंकि "गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते।"

एक दिन भिक्षुक-वेष से गुप्त अर्थात् धूलि से मलीन तांदलजा (शाकविशेष) नामक दूत ने आकर राजा को प्रणाम किया और जीवक (कन्दविशेष) का वृत्तान्त कहना आरम्भ किया।

मैं जीवक की राजधानी हिमाचल का 'जो ऋषभ से रक्षित है,' अवलोकन कर भय और विस्मययुक्त हुआ। उसमें संन्यासी भेष से ही प्रविष्ट होना उचित समझा। वहाँ सायङ्काल तो दृष्टिगोचर ही नहीं होता था। श्रीसूर्य-नारायण के अस्ताचल की ओर झुकते ही वहाँ की महौषधियाँ अपना प्रकाश फैला देती थीं। मानो विद्युत् की दीपमाला हो।

एक दिन पर्व के दिन राजा से निमन्त्रित हुआ और आन्तरिक तथा बाह्य गुप्त भेद लेकर निर्विघ्न विदा हुआ। कुछ दूर जाकर ही उसके एक दूत से जो वाक्-कलह हुआ वह सुनिए—जीवक के दूत ने कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"(कु) कीर्तिपात्रं भविता तव प्रभुः
(प्र) तापमारोक्ष्यति जीवको हि नः।"

अर्थ—तुम्हारा स्वामी पराजित होगा और हमारा स्वामी जीवक प्रतापी होगा। यह सुन मैंने कहा—

"विकत्थसे किं स्पशपाश रे वृथा
विहाय वर्णं प्रथमं पुनः पठ॥"

अर्थ—हे मूर्ख! क्या बकता है? प्रथम अक्षर (कोष्ठकान्तर्गत) छोड़ फिर पढ़।

इस तरह श्रीमान् की अनुकम्पा से सफल हो आपके चरण-कमल में उपस्थित हुआ। अब जैसा उचित समझें, करें।

विजयी पलाण्डु ने पिण्डालु, रतालु आदि आत्मवर्गों के साथ झट जीवक पर आक्रमण कर ही तो दिया। शत्रु भी मेदा, महामेदा आदि सामन्तों को साथ ले युद्ध के अर्थ उद्यत होगया और दोनों में तुमुल युद्ध हुआ।

तोपों के भीषण शब्द से दिग्गज चिंघाड़ने लगे। धरा थरथराने लगी। जल शोषण होने लगा। विमानस्थ देवगण भी व्याकुल होने लगे। चराचर शरण की आकांक्षा करने लगे। यहाँ तक कि समाधिस्थ महेश का ध्यान भङ्ग होगया। रण में हताहत सैन्यों के रुधिर-स्रोतों से हिमालय पीताम्बरधारी होगया। अन्ततः इन दोनों राजाओं का भीषण रण देख देवगण अधीर हो इन्द्र के यहाँ गये।

पुनः इन्द्र, ब्रह्मा आदि सब मिल श्रीकृष्णचन्द्र से प्रार्थी हुए। श्रीकृष्ण ने सबों को सन्तोष देकर आश्वासन दिया कि मैं स्वयं जाकर समझाऊँगा।

श्रीकृष्ण, ब्रह्मा और महेश ने सहसा स्वयं रणभूमि में प्रकट हो अज्ञान-तिमिर का नाश किया। मूर्तित्रय के अवतरित होते ही बद्धाञ्जलि पलाण्डु ने स्तुति कर निज काया को कृतकृत्य किया।

प्रहृष्ट परमेश्वर ने अपनी सुधामयी दृष्टि से उनके शारीरिक व्रण दूर कर पलाण्डु को अपना अपना चिह्न प्रदान किया।

श्मश्रूणि पाटलमहांसि विरञ्चिरस्मै,
शम्भुर्जटा मरकताङ्कुरसंनिभाभाः।
शङ्खं च चक्रमपि हन्त मुरारिरुर्द्ध-
तिर्यग्विभक्तवपुषे विततार तुष्टः॥

अर्थात् सबसे प्रथम ब्रह्मा ने अपनी श्मश्रू में से निकाल दाढ़ी प्रदान की जो प्याज के नीचे होती है। तब महेश ने अपनी जटा में से मरकत-सदृश जटा दी जो ऊपर होती है। अब श्रीकृष्ण अधीर हुए कि मैं क्या दूँ? मैं ही रह गया। तब अपने आयुध 'जो हाथ में थे' शङ्ख और चक्र दोनों दिये। पलाण्डु को ऊपर की ओर से या तिर्यक् विदीर्ण करने पर अन्दर क्रमशः शङ्ख और चक्र का चिह्न निकलता है।

इस प्रकार मूर्तित्रयी पलाण्डु को अपने अपने चिह्न से अलङ्कृत कर जीवक आदि को जीवनी शक्ति प्रदान कर अन्तर्हित होगई। उस समय पुष्पवर्षा हो रही थी।

"संजीव्य जीवकमुखानपि कन्दमुख्या-
न्नातःपरं कुरुत युद्धमितिप्रशास्य।
देवाश्चतुर्मुखचतुर्भुजपञ्चवक्त्रा
अन्तर्हिताः कुसुमवर्षणमुत्सृजन्तः॥"

जीवक, मेदा, महामेदा आदि अष्टवर्ग "राज्ञामप्यस्तु दुर्लभः" दुर्लभ होने से कवि का कथन है कि—

"तदादि खलु जीवकप्रभृति हन्त कन्दाष्टकं,
दृढाकलितधिक्कृति क्वचनलज्जया लीयत।
प्रतिक्षणमहंकृति क्थितचेतसां युज्यते,
निलीय भुवि वर्तनं समितिमानभङ्गे सति॥"

अपमान के कारण लज्जा से लुप्त हो गया।

"तदाप्रभृति वैदिकैः वरवर्णिनी सँस्कृतः,
पलाण्डु-रूपसेवितः पटुचमत्कृतिः स्नेहतः।
चिरं रुचिमुदञ्चयन् धुरि रसायनानां स्थितो
गदान् अहह संहरन्निह दधातु कामं सताम्॥"

हरिद्रा, लवण, तैल से संस्कृत किया हुआ पलाण्डु रोगों का नाश करता हुआ सज्जनों का मनोरथ पूर्ण करे।

वर्णिनी = हलदी, सुन्दरी। पटु = लवण, उज्ज्वल। स्नेह = तैल, प्रेम। काम = कामदेव, मनोरथ।

पलाण्डु के उत्कृष्ट रोगनाशक गुणों का वर्णन करते हुए कवि ने अपनी काव्य-चातुरी का कैसा अच्छा परिचय दिया है, यदि यह जानने की इच्छा हो तो संस्कृतज्ञ पाठक मूलग्रन्थ का अध्ययन करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निद्राजनक, वृष्य, शुक्रल आदि गुण होते हुए भी इसका स्वरस हैज़े में अति लाभदायक है—

"पलाण्डुकन्दपानीयं पानीयं द्विपलोन्मितम्।
विषूचिकां विशेषेण निःशेषयति निश्चितम्॥"

लशुन गुण—

दोषोत्सारिणि धीप्रसारिणि महानैर्बल्यसंहारिणि,
श्लेष्मच्छेदिनि वातभेदिनि भृशं भग्नास्थि संमेलिनि।
रक्तोद्रेकिणि पित्तहेलिनि लघावप्यौषधीनां गुरौ,
दुर्गन्धः सुगुणे किमत्र लशुने धातस्त्वया स्थापितः॥"

क्या ? "धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत्"

वैद्य उत्सवलाल शर्म्मा

२—स्वर्गीय श्रीनित्यानन्द मीमांसक।

मनीषि-मण्डली-मण्डन मीमांसक-मौलि-मणि श्रीनित्यानन्दजी काशी की विद्वन्मणि-माला के नायक-मणि थे। गत मार्गशीर्ष-कृष्ण १३, संवत् १९८१, सोमवार (२४ नवम्बर १९२४,) को अर्द्ध-रात्रि के बाद, केदार-घाट पर, गौरीकुण्ड और गङ्गाजी में गोते लगाते हुए, ८७ वर्ष की अवस्था में, आपका शरीरपात होगया। अन्त-समय में अतिसार से आपका शरीर निर्मल हो गया था। दस दिनों तक तो आप केवल गङ्गाजल पीकर ही व्रत करते रहे। आपका शव-संस्कार बड़े समारोह से हुआ। उसमें काशी के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित विद्वान् सम्मिलित हुए थे।

संवत् १८९६ की पौषशुक्लाष्टमी को आपका शुभ जन्म हुआ था। पञ्जाब-प्रान्त के काँगड़ा-ज़िले का हरिपुर-गुलेर नामक गाँव आपका जन्मस्थान है। आपके पिता का नाम था पण्डित भीमसेनजी। आप काश्मीर और मण्डी आदि देशी रियासतों के कुलपूज्य पुरोहित वह्वृ-सारस्वत ब्राह्मण थे। लड़कपन से ही आपकी आस्तिकता और प्रत्युपन्नमतित्व देखकर लोग चकित रहते थे। केवल २२ वर्ष की अवस्था में घर से सिर्फ़ लोटा-धोती लेकर आप अमृतसर भागकर चले आये। वहाँ पण्डित मेलारामजी से व्याकरण और न्याय पढ़ा। अपनी विपन्नावस्था के कारण आप पेड़ की सूखी पत्तियाँ जलाकर और एक पैसा रोज़ के चने चबाकर बड़ी मननशीलता और श्रद्धा के साथ विद्याध्ययन करते रहे। अपने पाण्डित्य के प्रताप से आपने लाखों रुपये कमाये। अन्त-समय अपने सुयोग्य उत्तराधिकारियों के लिए आप प्रचुर सम्पत्ति छोड़ गये हैं।

संवत् १९३२ में आप काशी आये। यहाँ आकर न्याय, वेदान्त और मीमांसा-शास्त्र का अध्ययन किया। श्रीराधामोहन भट्टाचार्य से नव्यन्याय और साम्ब शास्त्री के पिता स्वामी शास्त्री से मीमांसा, वेदान्त आदि पढ़ा। जगत्प्रसिद्ध त्र्यम्बक शास्त्री के पिता अमृत शास्त्री से आपने आयुर्वेद भी पढ़ा। उसके आप बड़े मर्मज्ञ थे। आज भी आपके कई शिष्य पीयूषपाणि वैद्य हैं। अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम रस आप स्वयं बना लिया करते थे। पाकशास्त्र के तो आप अद्भुत पण्डित थे। बड़ा ही सुस्वादु भोजन बनाते थे। प्रायः कहा करते थे कि रसोई उसी के हाथ की मीठी होती है जो सदाचारी, उदार, शान्तिप्रिय, धर्मनिष्ठ, विचारवान् और शुद्ध प्रकृति का होता है। आप स्वयं भी बड़े आस्तिक, स्पष्टवादी, सरल-हृदय, साधु-प्रकृति, आत्माभिमानी और सत्यप्रिय थे। पठन-पाठन और भगवद्भजन के सिवा आपका कोई कर्त्तव्य ही नहीं था।

कैलासवासी होने से दो-तीन महीने पहले तक आप प्रतिदिन तीन बार गङ्गा-स्नान करते थे। आजीवन बारहों महीने आपका यही नियम रहा। दो बजे रात से दस बजे दिन तक आप केवल धार्मिक कृत्यों में ही व्यस्त रहा करते थे। रोज़ ही कई हज़ार गायत्री-जप करते थे। सन्ध्याकाल के चार घण्टे जप-ध्यान में ही बीतते थे। शेष समय में आप विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। कर्मकाण्ड और धर्मशास्त्र में भी आपकी अमोघ गति थी। न्याय-वेदान्त के सभी उच्च कोटि के कठिन और जटिल ग्रन्थ, हज़ारों बार पढ़ाने के कारण आपके कण्ठस्थ थे। देहावसान के एक वर्ष पूर्व तक आप काशी के कितने ही विद्वानों को मीमांसा-शास्त्र पढ़ाया करते थे। भारतवर्ष में पूर्व-मीमांसा-शास्त्र के आप एक ही विद्वान् थे। आपके उठ जाने से इस शास्त्र का एक प्रकार से लोप-सा हो गया।

इसी लिए द्वारकापीठ के जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वर्गीय स्वामी श्री १००८ माधवतीर्थजी महाराज, माननीय मालवीयजी और साहित्याचार्य प्रोफ़ेसर रामावतार शर्मा, एम० ए०, आदि आपके परम भक्त थे। काशी की विद्वन्मण्डली आपको बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में इस समय काशी में आप ही एक-मात्र वयोवृद्ध और ज्ञान-वृद्ध विद्वान् रह गये थे। आपके लोकान्तरित होने से काशी में अब एक भी कोई प्राचीन विद्वान् न रह गया। आपकी अवस्था का कोई विद्वान् वहाँ था भी नहीं और है भी नहीं। स्वामी विशुद्धानन्दजी महाराज और साधुबेला-तीर्थ के उदासीनप्रवर हिज़ हाइनेस श्रीस्वामी हरनामदासजी महाराज आदि आपके घनिष्ठ मित्रों में थे। जगत्-प्रसिद्ध नैयायिक गौतमावतार श्रीसीताराम शास्त्री, सुब्रह्मण्य शास्त्री (जोधपुर) और महामहोपाध्याय केशवानन्द स्वामी आदि आपके शिष्यों में थे।

आप केवल शास्त्रानुशीलन के व्यसनी थे। और कोई भी व्यसन आपको छू तक न गया था। वासनाओं और आडम्बरों का लेश भी आपमें न था। पुराने विचार के सीधे-सादे सात्त्विक पुरुष थे। प्रतिभा शक्ति विलक्षण थी। लगातार आठ-आठ घण्टे तक सौ-सौ छात्रों को पढ़ाते रह जाते थे। आँखों की ज्योति कुछ मन्द हो जाने और घरवालों के लाख मना करने पर भी, मृत्यु के एक साल पहले तक, आप अनवरत दो-दो तीन-तीन घण्टे तक कण्ठ ही अनेक विद्वानों को पढ़ाते रह जाते थे।

शास्त्रार्थ करने में आप बड़े प्रचण्ड थे। कई बार मण्डी-राज्य के दरबार में आपके साथ काशी के जगन्मान्य विद्वान् महामहोपाध्याय बाल-सरस्वती बालशास्त्रीजी का शास्त्रार्थ हुआ था। अध्ययन-काल समाप्त होने के बाद लगभग २० वर्ष तक आप मण्डी, सुखेत और विलासपुर आदि पञ्जाबी राज्यों में प्रधान राजपण्डित रहे। उस समय समूचे पञ्जाब में आपकी गणना अद्वितीय विद्वानों में थी। कई वर्ष तक आप काश्मीर-नरेश महाराज रणवीरसिंह के दरबार के प्रधान पण्डितों में थे। महाराज बहादुर आपको बहुत मानते थे। वर्तमान काश्मीर-नरेश महाराज प्रतापसिंहजी भी आपका बड़ा आदर करते थे। महाराज रणवीरसिंहजी के आग्रह से ही आप काशी की जम्बू-पाठशाला में अध्यापन करने लगे। आपने जीवन-भर में लगभग चार सहस्र साधुओं और ब्राह्मणों को विद्याध्ययन कराया, आपके चेलों में कई प्रतिष्ठित महन्त आज भी विद्यमान हैं।

आपके कई सन्तानों में चार पुत्र थे, जिनमें तीन तो २५-२५ वर्ष की अवस्था में ही चल बसे। आपके ज्येष्ठ पुत्र सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र पण्डितरत्न षड्दर्शन-भास्कर श्रीपद्मनाभ शास्त्री आज भी आपकी कीर्ति-पताका के दण्ड-स्वरूप विद्यमान हैं। शास्त्रीजी को आपने स्वयं सन् १९०३ में अपने स्थान पर अध्यापक नियुक्त करा दिया था। पाठशाला के हिन्दू-कालेज में मिल जाने पर शास्त्रीजी उसी

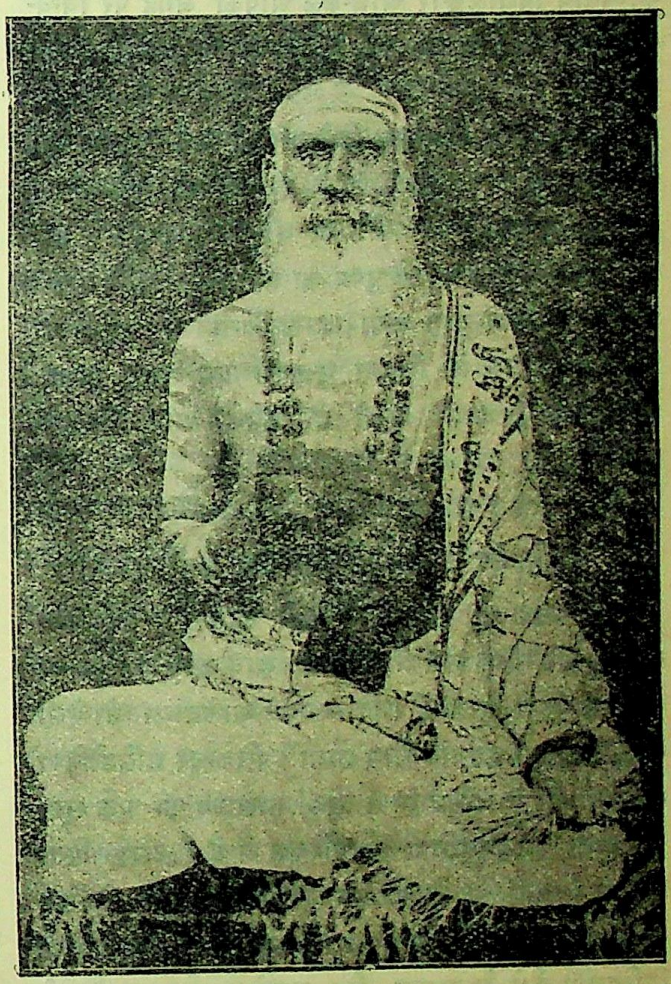

स्वर्गीय श्रीनित्यानन्द मीमांसक।

में पढ़ाते रहे। फिर हिन्दू-विश्वविद्यालय खुलने पर आप उसमें मीमांसा-शास्त्र के अध्यापक नियुक्त हुए।

शास्त्रीजी की अवस्था इस समय ५२ वर्ष की है। आप भी काशी के विद्वत्समाज के एक प्रधान स्तम्भ और उच्चकोटि के लब्धकीर्ति विद्वान् हैं। आपके भी अनेक विद्वान् शिष्य काशी तथा अन्यान्य प्रान्तों में प्रसिद्ध हैं। आप न्याय, सांख्य, योग और मीमांसा-शास्त्रों के धुरन्धर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् हैं। आपकी निर्भीकता और स्पष्टवादिता बहुत प्रसिद्ध है। आपका दार्शनिक व्याख्यान बड़ा रोचक और ओजस्वी होता है। बम्बई में एक बार महात्माजी के सभापतित्व में जैन-दर्शन और आस्तिक-दर्शनों के साम्य पर आपका बड़ा ही प्रभावशाली और गम्भीर भाषण हुआ था। आपके आयुष्मान् पुत्र पण्डित केदारनाथ काव्यतीर्थ विद्यालङ्कार आज-कल आपकी जगह पर विश्व-विद्यालय में काम कर रहे हैं; हिन्दी के उत्साही प्रेमी भी हैं।

वास्तव में मीमांसक-शिरोमणिजी बड़े भाग्यशाली थे। मरने से चार महीने पहले ही आपकी धर्मपत्नी का देहान्त हो चुका था। प्रपौत्र का भी मुँह देख चुके थे।

यह सब कुछ आपके पुण्य का प्रताप-मात्र था। शुद्धाचार और विद्यानुराग तथा शास्त्र-चिन्तन से मनुष्य को इहलोक-परलोक में कितना सुख-सौभाग्य और कितनी शान्ति-समृद्धि प्राप्त होती है, इसके आप ज्वलन्त आदर्श थे।

शिवपूजनसहाय

३—सिकन्दर ने व्यास नदी पार क्यों न की?

सिकन्दर का नाम कौन नहीं जानता? असामान्य वीरता, अलौकिक तेज और प्रताप बखान करने में सिकन्दर का नाम पहले आता है। दिग्विजय करनेवाला तो ऐसा कोई बिरलाही इतना प्रसिद्ध होगा। सिकन्दर मसिडोनिया का राजा था। मसिडोनिया तुर्की-साम्राज्य का एक सूबा राजधानी कुस्तुन्तुनिया के पश्चिम में है। उसका पिता यूनानी (यवन) जाति का एक साधारण राजा फ़िलिप था। ऐसे छोटे फ़िलिप का लड़का इतना बड़ा प्रतापी दिग्विजयी कैसे हो सकता है। इससे यह कथा गढ़ी गई कि फ़िलिप की अनुपस्थिति में यूनानियों के देवदेव जुपिटर (द्यौस् पितर इन्द) उसकी माता ओलिम्पिया के पास पहुँच गये थे। यद्यपि विशेष छान-बीन से यह पता लगा है कि उसके जन्मदाता एक दूसरे मनुष्य नियारकस (तिरेराकस?) ही थे। हमको इस जाँच से प्रयोजन नहीं। सिकन्दर की कीर्ति के आगे उनका "हरामीपन" निमज्जतीन्दोःकिरणेष्विवांकः। सिकन्दर की बड़ी भारी प्रशंसा उनके ईरान (फ़ारस) जीतने की है और हमारे भारतवर्ष में विशेषकर उनके बड़ाई-बखान का ग्रन्थ फ़ारसीभाषा का सिन्कदरनामा है। हमारे मुसलमान भाई और उनके अनुयायी फ़ारसी पढ़नेवाले कायस्थ भाई सिकन्दर को मुसलमान वीर समझते हैं (यद्यपि उसका जन्म पैग़म्बर साहेब से नौ सौ बरस पहले हुआ था), और उसके वीर विजयी होने का अभिमान करते हैं।

सिकन्दर के दिग्विजय पर विचार करने के लिए उस समय के देशों की स्थिति का जानना आवश्यक है। यूनान छोटे छोटे राज्यों में बँटा हुआ था जो आपस में लड़ा करते थे। अनाटोलिया, सीरिया आदि भी यूनानियों के अधीन थे। एक उत्साही पुरुष के लिए इनका जीतना कोई बड़ी बात न थी। इनको जीत कर पहला बड़ा राज्य जिससे सिकन्दर की मुठभेर हुई ईरान था। उसी के जीतने का राग आज बाईस सौ बरस से अलापा जा रहा है। ईरान से बढ़कर सिकन्दर ने गान्धार देश में पाँव रक्खा। उन दिनों गान्धार-देश भारतवर्ष ही का एक भाग था और सम्भव है कि तक्षशिला के अधीन था। तक्षशिला का राजा सिकन्दर से मिल गया। जब ख़ैबर की घाटी में रोक-टोक न हुई तो यही अनुमान होता है कि तक्षशिला का राजा पौरव का वैरी था और उसको नीचा देखाना चाहता था। पिछले पाँच छः सौ बरस के भारत के इतिहास से सिद्ध है कि नादिर, अहमदशाह अब्दाली सब हिन्दुस्तान के शासकों के निमन्त्रण से यहाँ आये थे। अब्दाली को तो सब जानते हैं कि मरहठों से लड़ने के लिए नज़ीबाबाद के नजीबुद्दौला, रामपुर के हाफ़िज रहमतख़ाँ और अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने बुलाया था। अब्दाली की पानीपत की लड़ाई में जीत हुई, परन्तु मुसलमान इतिहासलेखक इसका कारण नहीं बतलाते थे कि इतने सहायक होने पर भी क्यों अब्दाली हिन्दुस्तान से ऐसा भागा जैसे गधे के सिर से सींग। ऐसी ही कुछ दशा यूनान के महावीर सिकन्दर की भी हुई थी। यह बात स्पष्टरूप से श्रीयुत एच० सी० रायजी ने बङ्गाल एसियाटिक सोसाइटी के जिल्द १६ संख्या ८ में दिखाई है जिसका आशय पाठकों को भेट किया जाता है।

ई० पू० ३२४ के वसंत-ऋतु में ३०,००० पैदल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४,००० सवारों की सेना लेकर सिकन्दर ने हेलिसपाण्ट (दरेदानियाल) को पार किया। ई० पू० ३३१ के वसंत में अरबेला के समर में विशाल अकेमेनियन-साम्राज्य विजयी मेसीडोनी के पाँव के तले आ गया। ईरान-साम्राज्य ईजिन (यूनानसागर) भारत की सीमा तक फैला हुआ था परन्तु थोड़े से यूनानी सिपाहियों के आगे छिन्न भिन्न हो गया। यूनानियों के साहस, उनकी वीरता और उनकी रणशिक्षा और ईरानियों की निर्बलता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है ?

यूनानियों और ईरानियों का विरोध बहुत पुराना है। ४९२ ई० पू० में ईरान के सम्राट् मारदोनियस ने पहले-पहल यूनान पर चढ़ाई की थी, इस चढ़ाई की लहरें बराबर यूनान पर टकराती रहीं और ४८० ई० पू० में यूनान की राजधानी अथेन्स को ईरानियों ने लेकर भस्म कर दिया था। अब ईरान के भाग्य ने पलटा खाया परन्तु सिकन्दर की इस जीत से तृप्ति न हुई। वह सारे एशिया को जीतना चाहता था। डायोनिसोस, समीरामिस और साइरस के दिग्विजय की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। सिकन्दर हिन्दुस्तान को जीतकर उनसे भी बढ़ना चाहता था। इस विचार से ई० पू० ३२७ के वसंत-ऋतु में उसने हिन्दूकुश को पार किया और भारत की पश्चिमोत्तर-सीमा पर पहुँचा। अपनी यात्रा के बीच बीच में उसकी सेना बढ़ती गई और भारत पर चढ़ाई के दिन उसके पास प्लुटार्क के अनुमान के अनुसार १,२०,००० पैदल और १५,००० सवार थे। कहा जाता था कि हिन्दुस्तान की चढ़ाई मनुष्यों की क्या गिनती है देवताओं की भी पति खोती थी। कार्य्य कठिन था, इसी लिए इतनी सेना का बढ़ाना आवश्यक समझा गया था।

इस सजधज से सिकन्दर भारत की ओर बढ़ा, लड़ता-भिड़ता वोहिन्द पहुँचा। सिन्ध और वितस्ता (झेलम) पार करके पोरस (पौरव) को परास्त किया और सिन्ध की दो और सहायक नदियाँ उतर कर ई० पू० ३२६ के सितम्बर मास में विपासा (व्यास) के तट पर पहुँचा। सिकंदर का भारत पर आक्रमण यहीं रुक गया और यहीं से उसको लौटना पड़ा। सिकन्दर के इतिहास-लेखक कहते हैं कि उसकी सेना ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया और ग़दर मचा दिया। अरायन कहता है कि विपासा के पार के रहनेवाले भारतवासियों का हाल सुनकर सिकन्दर का आगे बढ़ने का उत्साह बढ़ता जाता था परन्तु उसके सिपाही निरुत्साह हो गये। सिकन्दर का समझाना लालच देना, धमकी देना सब व्यर्थ हो गया और प्रत्युत्तर में उसे क्रोध और असन्तोष, विलाप और आँसुओं की धारा मिली। यूनानी-सेना की यह चाल अनोखी रही है और इसका निर्णय हो जाना चाहिए। वीर यूनानियों के मंदोत्साह होने के क्या कारण थे ? जितनी सेना इस समय थी उसकी एक तिहाई से इन्हीं यूनानियों ने विशाल ईरानी-सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया था। सुदूर मैसीडान से निकल कर सिकन्दर ने सारा पश्चिम-दक्षिण-एशिया, अफ्रीका का उत्तरी भाग अपने बस में कर लिया और अब विपासा के तट पर विश्राम कर रहे थे। यह अनुमान किया जा सकता है कि सिकन्दर को यह बड़ी रुकावट इसलिए पड़ी कि उसकी सेना युद्ध करते करते थक गई थी और घर लौट जाना चाहती थी। बिराने और दूर देशों में लड़नेवाले सिपाहियों के लिए यह स्वाभाविक है। परन्तु उनके ग़दर मचाने का क्या यही एक अकेला कारण हो सकता है ?

विपासा के तट पर सिकन्दर ने अपने सिपाहियों को जो व्याख्यान दिया उसमें वह एक स्थान पर कहता है। "सैनिको ! मैं इस बात से अज्ञ नहीं हूँ कि पिछले दिनों में इस देश के कुछ रहनेवालों ने तुम लोगों को त्रास दिखाने के लिए बहुत सी कहानियाँ गढ़ी हैं।" यह कहानियाँ क्या थीं। सैनिक यह अवश्य जानते थे कि भारत का जीतना सुगम नहीं है और अनेक बार साहरस और समीरमिस ऐसे लौकिक वीरों का उद्योग तो निष्फल हुआ ही था। हिरकलीज़ और डानीशस जो देवतुल्य वीर माने जाते थे वे भी कृतकार्य्य नहीं हुए। पर यह कैसे हो सकता है कि ये कहानियाँ पिछले ही दिनों में सैनिकों को सुनाई गई हों ? यह तो विदित ही है कि ये कहानियाँ विपासा के दूसरी ओर की जातियों के विषय में थीं। हम बड़ी सावधानी से उन किंवदन्तियों पर विचार करेंगे जो विपासा के तट पर पड़े हुए यूनानी कटक के कानों में डाली गई थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरायन से विदित है कि यह जातियाँ युद्ध में वीर थीं और बहुत अच्छे राज्यशासन में रहती थीं। करटियस और डुवेडोरस ने लिखा है कि विपासा के इस पार की जातियों में गङ्गारीडी और प्रेसाई बड़ी शक्तिमती थीं। सिकन्दर जानता था कि उनके राजा अग्रमस (या चन्द्रमस) के पास अपने देश की रक्षा के लिए बीस हज़ार तलवार और २,००,००० पैदल और २,००४ घोड़े के रथ और तीन हज़ार हाथी थे। सिकन्दर को यह समाचार फीजियस से मिला था। फीजियस विपासा के पास एक प्रान्त का राजा था और सिकन्दर से मिल गया था। सिकन्दर को पहले कुछ सन्देह था परन्तु जब राजा पौरव ने भी उससे कहा कि जाति और राज्य के विषय में जो कुछ कहा गया है उसमें अत्युक्ति नहीं है तो सिकन्दर को पूरा विश्वास हो गया। परन्तु प्रश्न यह है कि जिस सिकन्दर ने जो सेना उसके पास इस समय थी उससे १०,००,००० ईरानियों को सहज ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया उसको ऐसे राजा से लड़ने में क्यों सङ्कोच हुआ जिसके पास कुल ढाई लाख सेना थी। इस प्रश्न का उत्तर प्लुटार्क ने दिया है और वह यह है—

"पौरव के युद्ध में मेसेडोनियावाले मन्दोत्साह हो गये थे और इसी से हिन्दुस्तान में आगे बढ़ना नहीं चाहते थे। पौरव को बड़ी कठिनाई से उन्होंने जीता था। उनकी सेना में केवल २०,००० पैदल और २,००० सवार थे। इसी से जब सिकन्दर ने उनसे आगे बढ़ने को कहा तो उन्होंने बड़े आग्रह से उसका विरोध किया।"

प्लुटार्क यह भी लिखता है कि "गन्दरेते और प्रेसई के राजा लोग अस्सी हज़ार सवार, दो लाख पैदल, आठ हज़ार रथ और छः हज़ार हाथी लिये उससे भिड़ने को तैयार थे और इसमें अत्युक्ति भी नहीं है क्योंकि थोड़े ही दिन पीछे सन्द्राक्रकोटस् ने जो उस समय सिंहासन पर बैठ चुका था सिल्यूकस को ५०० हाथी दिये और छः लाख सेना लेकर सारे हिन्दुस्तान को जीत लिया। इन उक्तियों की पुराणों से पुष्टि होती है। उनमें उग्रसेन महापद्म और उसके कुल की ऐसी ही शक्ति लिखी है। प्लुटार्क के वचन का प्रमाण डियोडोरस सिकुलस के लेख से भी मिलता है। वह कहता है कि दक्षिण के देशों में काकेशस के पास पहला देश भारत है। यह बहुत बड़ा राज्य है और इसकी आबादी घनी है, इसमें अनेक जातियाँ रहती हैं इनमें सबसे बड़ी गन्दरैदे है। सिकन्दर ने इसके हाथियों की संख्या सुन कर उस पर चढ़ाई नहीं की। इससे स्पष्ट है कि विपासा के तट पर यूनानी सिपाहियों के ग़दर का एक कारण यह था कि नन्दों के बल और शक्ति का समाचार सुन सुन कर यूनानी बहुत डर गये थे और इन समाचारों में कोई अत्युक्ति न थी परन्तु और भी कारण थे। हम प्लुटार्क से सुन चुके कि पौरव के युद्ध में मैसीडोनियावाले इतने मंदोत्साह हो गये थे कि भारतवर्ष में आगे बढ़ना नहीं चाहते थे परन्तु प्लुटार्क के इस वाक्य से सेना में ग़दर का एक दूसरा कारण भी निकल आता है। सिकन्दर ने एक ओर तो प्रबल अकीमीनियन साम्राज्य को सहज में नष्ट किया, हिन्दुस्तान में उसे नन्दों के साम्राज्य का सामना करना तो दूर रहा, छोटे छोटे राजाओं की मुठभेड़ में उसके दाँत खट्टे हो गये तो हम यही कहेंगे कि ईरानी बड़े निर्बल थे और उस समय के भारतवासी बड़े ही वीर थे। एक ओर तो क़वायद सीखे हुए यूनानी सिपाही जो एक बड़ा साम्राज्य अपने अधीन कर चुके थे और जहाँ से उनको अच्छी से अच्छी रसद और सामग्री मिल सकती थी, जिसके नायक योरप के चुने हुए वीर थे, दूसरी ओर भारत के छोटे छोटे राजा परन्तु इस असम विरोध में भी सिकन्दर की बड़ी हानि हुई और वह घायल हो गया। कैसे आश्चर्य की बात है। मेसागा में अपने मरे पतियों के हथियार उठाकर स्त्रियाँ मरदों के साथ विजयी यवन के छल का आक्रमण रोकने के लिए लड़ी थीं। इस विषय में दारा की चाल का मुक़ाबिला राजा पौरव से कीजिए जो नौ घाव सह कर, बन्दी होने पर भी, अकड़ा रहा। यूनानी पलटन ईरानियों का युद्ध-कौशल देखकर समझी होगी कि भारतवासी भी ऐसे ही बोदे होंगे परन्तु जब एक छोटे से राजा पौरव ने उनका ऐसा कट्टर सामना किया तो उनकी आशा पूरी न हुई। यूनानियों की समझ में आ गया कि सिकन्दर के भारतीय प्रतिद्वन्द्वी ईरान की पलटनों से भिन्न हैं। ईरानी-सेना बालू से भरी एक विशाल मूर्त्ति थी। पौरव से लड़ते ही उनको विदित हो गया कि व्यास उतर कर मगध के सिपाहियों से मुठभेड़ हुई तो उनकी दुर्गति हो जायगी और सारी कमाई कीर्त्ति मिट्टी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में मिल जायगी। हम तो समझते हैं कि हिन्दूकुश को पार करते ही यूनानी सैनिक बिगड़ने लगे और जब विपासा (व्यास) के तट पर नन्दों के बल की कहानियाँ सुनीं तो उनकी नानी मर गई। परिणाम यह हुआ कि कटक में ग़दर मच गया और सिकन्दर से भागते ही बना। मक़दूनिया के विजयी वीर और भारत के एक-मात्र साम्राज्य जिसे यूनानी अग्रमिस कहते हैं का युद्ध वर्णन करने का अवसर इतिहास को न मिला। इस युद्ध का क्या परिणाम होता, यह बताना कठिन है। हो सकता है कि सिकन्दर का युद्ध-कौशल अन्त में काम कर जाता। परन्तु यह भी सम्भव है कि व्यास उतर कर भारत के मध्य में पाँव रखते ही उनकी वही गति हो जाती जो पलटोवा की लड़ाई के पीछे बारहवें चार्ल्स की अथवा मासको जीतने पर नेपोलियन की हुई।"

ये बातें राय महाशय ने अँगरेज़ी पुस्तकों के आधार पर लिखी हैं मनगढ़न्त इसमें कुछ नहीं है। हिन्दुस्तान में सिकन्दर के आने या किसी पुरुवंशी राजा के साथ उसके युद्ध का वृत्तान्त हमको अभी तक अपने देश के किसी ग्रन्थ में नहीं मिला। मुद्राराक्षस में मलयकेतु यवन का यहाँ आना लिखा है। परन्तु मलयकेतु सिकन्दर नहीं हो सकता।

श्रीअवधवासी सीताराम

४—उर्दू-कविता का आरंभ।

इस पत्रिका में इसी वर्ष की प्रथम तीन संख्यायों में 'उर्दू-कविता' शीर्षक एक लेख छपा है, जिसमें संक्षेप में उर्दू-साहित्य का इतिहास लिखा गया है। इसको पढ़ने से ज्ञात होता है कि केवल प्रोफ़ेसर आज़ाद-कृत 'आबे हयात' के आधार पर यह लेख तैयार किया गया है और उस ग्रंथ के निर्माण के अनन्तर जो कुछ नई बातें प्रकाश में आई हैं उनका इसमें समावेश नहीं किया गया है। इस लेख में मैं केवल उर्दू-साहित्य के आरम्भिक-काल के विषय में ही कुछ लिखना चाहता हूँ।

यह कथन अवश्य ही सर्वमान्य होगा कि जिस उर्दू को लोग हिन्दी से भिन्न एक दूसरी भाषा मानते हैं उसका अन्म-स्थान भारतवर्ष है तथा वह हिंदू और मुसलमानों के पारस्परिक व्यवहार के लिए ही बनी थी। जब मुसलमान आक्रमणकारी भारतवर्ष में आकर बसने लगे तब वे आरंभ में पड़ावों में ही बसते थे। इन पड़ावों में रहने पर भी उन्हें हिन्दू-व्यापारियों से बात-चीत तथा अपने विचार उन पर प्रकट करने के लिए उन्हें एक ऐसी भाषा की आवश्यकता पड़ी जिन्हें दोनों समझ सकें। स्वभावतः वही कार्य सबको पसंद होता है जो विशेष जटिलता न लिये हो और सहज में ही हो सके। हिन्दुओं के लिए तुर्की, अरबी, फ़ारसी आदि अनेक भाषाओं का सीखना जितना जटिल था उतना ही मुसलमानों को हिन्दी सीखना सहज था। ऐसी अवस्था में एक ऐसी भाषा की सृष्टि होगई जो वास्तव में हिन्दी थी, पर उसमें दो-एक फ़ारसी, अरबी आदि के शब्द भी एक दो वाक्यों के बाद आ जाते थे। यही भाषा समय पाकर उर्दू कहलाई। पर उस शब्द से आधुनिक काल की उर्दू, एक विशेष भाग की, न समझना चाहिए, क्योंकि यदि उससे आप हैं, आप आदि कुछ शब्द चुनकर निकाल दें और अस्त, शुभा आदि उनके स्थान पर लगा दें तो बलीग़ व फ़सीह फ़ारसी तैयार हो जाय। इस प्रकार की भाषा समझने में नव्वे सैकड़े भारतीय मुसलमानों को भी कठिनता होगी, पर दुराग्रह के ही कारण यह प्रथा, दुर्बोध फ़ारसी अरबी शब्दों के प्रयोग की बढ़ती जाती है।

तुर्की-भाषा में उर्दू शब्द का अर्थ बादशाही सेना या सैनिक पड़ाव है (ग़ियासुल्लुगात्)। उर्दू में बोली जानेवाली भाषा ही कुछ दिनों के अनन्तर उर्दू कहलाने लगी और इस प्रकार एक नई बोली का नामकरण हो गया। हिन्दी-शब्दसागर में उर्दू के विषय में लिखा है—'वह हिन्दी जिसमें फ़ारसी, अरबी भाषा के शब्द अधिक मिले हों और जो फ़ारसी-लिपि में लिखी जाय।' इस प्रकार उर्दू को हिन्दी से भिन्न एक दूसरी भाषा मानना उसी प्रकार भ्रान्तिमय कहा जायगा जिस प्रकार 'स्टेशन जाते हुए रास्ते में दस रुपये का एक नोट कोट के बग़ली पैकेट से गिर गया' को तीसरी भाषा कहना। अस्तु।

'उर्दू का प्रथम कवि' नामक एक लेख मैंने नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, नया संदर्भ, भाग ४ संख्या २ में छपवाया था जिसका आशय यहाँ दिया जाता है—

उर्दू नाम की इस व्यावहारिक भाषा का जन्म-स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरी भारत का कोई सैनिक पड़ाव ही था और वह लगभग पाँच शताब्दी तक इसी रूप में रही। मुसलमान-कविगण भी इस लंबे काल के बीच यदि इस भाषा में कविता करते थे तो वह हिन्दी के ही साहित्य-भांडार की सामग्री हो जाती थी, क्योंकि तब तक वे हिन्दी के छंद-शास्त्र के ही अनुगामी रहे। अमीर खुसरो फ़ारसी-भाषा के प्रसिद्ध कवि होगये हैं और अपनी पहेलियों तथा फुटकर पदों के कारण, जिन्हें उन्होंने हिन्दी छंद-शास्त्र के अनुसार इसी व्यावहारिक भाषा में लिखा है, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में भी उन्हें अच्छा स्थान मिला है। ये तेरहवीं शताब्दी में हुए थे और इनकी २९५ पहेलियों तथा पदों का संग्रह मैंने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित कराया है। सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में जायसी, कुतबन आदि कई मुसलमान कवि हो गये हैं, जिनकी रचनाओं को आधुनिक उर्दूदाँ कभी उर्दू नहीं कहेंगे, पर वे हिन्दी-साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। तात्पर्य यह है कि उस समय तक विद्वानों ने उस व्यावहारिक भाषा को अपनाकर उसे भिन्न साहित्यिक रूप नहीं दिया था और शायद यह कभी हिन्दी से भिन्न दूसरा साहित्यिक रूप भी न धारण करती, यदि दक्षिण की यात्रा न कर आती। जिस समय इसने दखिन में पहले-पहल साहित्यिक रूप धारण किया उस समय यह दखिनी कहलाई। मीरहसन अपने 'तज़किरः' में लिखते हैं कि 'रेख़्तः आरंभ में दखिनी भाषा से निकली' उर्दू के प्रसिद्ध शायर 'मीर' साहब लिखते हैं कि—

ख़ूगर नहीं कुछ योंही हम रेख़्तः गोई के।
माशूक़ था जो अपना बाशिंदः दकन का था॥

रेख़्तः शब्द भी बड़े मार्के का है, जिसका अर्थ 'गिरा पड़ा या मिलाजुला' है। यह शब्द भी उर्दू-भाषा का ही द्योतक है। दक्षिण में जब मुसलमानी राज्य स्थापित हो गये तब मुसलमानों के साथ साथ उर्दू भी दक्षिण में पहुँची। मुसलमान-सुलतानों के दरबारों की भाषा फ़ारसी थी और उनके प्रजा की भाषा आर्य-भाषाओं से भिन्न द्रविड़-भाषायें—कनाड़ी, तैलंगी आदि—थीं। इस कारण जब उर्दू ने दक्षिण में साहित्यिक रूप धारण करना आरंभ किया तब उस पर हिंदी-छंद-शास्त्र के बदले फ़ारसी-छंद-शास्त्र का प्रभाव पड़ने लगा और उसने उलटा रास्ता पकड़ा। इस प्रकार उर्दू नामक हिंदी ने वास्तव में एक नया और प्रतिकूल मार्ग ग्रहण कर लिया और दोनों का पार्थक्य अब स्पष्ट होगया। इस पार्थक्य को बढ़ाने में फ़ारसी-लिपि तथा भारत को छोड़ कर अन्य देशों के विचार, कथाओं तथा उपमानादिक के व्यवहार ने अधिक सहायता दी। इन विचारों पर दृष्टि देने से यह भी कहा जा सकता है कि उर्दू का प्रथम कवि ही उर्दू कही जानेवाली भाषा का जन्मदाता है।

साधारणतः पहले यही माना जाता था कि अहमदाबाद-निवासी वली उल्ला उपनाम 'वली' उर्दू का पहला कवि है, बाद को उसके विषय में यह भी निश्चय हुआ कि फ़ारसी के दीवानों के ढङ्ग पर उर्दू में पहले दीवान का प्रणेता यही है। परन्तु अब एक सङ्ग्रह इधर प्राप्त हुआ है, जो फ़ारसी के ढङ्ग पर 'वली' से डेढ़ शताब्दी पहले रचा गया था। इस दीवान का रचयिता अकबर बादशाह का समकालीन गोलकुण्डा का सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाह था, जो संवत् १६३७ में गद्दी पर बैठा था। इस दीवान की हस्तलिखित प्रति इस समय निज़ाम-हैदराबाद के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। यह अच्छे काग़ज़ पर नस्ख़ चाल के हरफ़ों में लिखा हुआ अठारह सौ पृष्ठों का संग्रह है। मुहम्मद कुली कुतुबशाह के भ्रातृ-पुत्र तथा उत्तराधिकारी मुहम्मद कुतुबशाह ने अपने चाचा की ग़ज़लों को क्रम से लगा कर यह प्रति तैयार कराई और आरम्भ में एक पद्यमय भूमिका लिख कर निज सम्पादन का परिचय दिया है।

मुहम्मद कुली कुतुबशाह उपनाम 'ज़िल्लेअल्लाह' की कविता यद्यपि फ़ारसी-छन्द-शास्त्र के ही साँचे में ढली थी, तो भी उसमें व्यावहारिक उर्दू-भाषा का रूप भी बना हुआ था अर्थात् हिन्दी के शब्दों की अधिकता, हिन्दी-वाक्य-रचना तथा विचारों का प्रभाव पूरा था। उनकी कविता प्राचीन उर्दू के सच्चे रूप का आभास देती है। उन्होंने अपनी कविता में हिन्दी तथा फ़ारसी का ऐसा अच्छा मिश्रण किया है कि वह धूपछाँह के समान सुन्दर दिखलाता है, पर आधुनिक उर्दूदाँ उस दो रङ्गेपन को नहीं पसन्द करते थे, इसलिए उन्होंने एक ही रङ्ग को, फ़ारसी को, इतना चढ़ाया कि दूसरा मुलम्मे के नीचे छिप सा गया। इनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता में फ़ारसी के भाव, विचार तथा छन्द के होते हुए भी एक प्रथा शुद्ध हिन्दी या भारतीय है, जो इनकी समग्र कविता में एक रूप से वर्तमान है। फ़ारसी में पुरुष प्रेमी अर्थात् आशिक़ और स्त्री प्रेम की पात्र अर्थात् माशूक़ होती है। विरह के कष्टों का झेलना, आहोनारे मानना और सहरानवरदी (जङ्गलों में भटकना) करना पुरुषों का काम था। इसके विपरीत हिन्दी में स्त्रियों की विरहाग्नि से गाँव के गाँव का भस्म हो जाना, उन्हीं का अभिसार करना तथा कष्ट उठाना दिखलाया जाता है। फ़ारसी-कवित्त स्त्रियों के प्रति उदार है, पर यह औदार्य दिखावटी है। प्रेम एकांगी नहीं होता। 'मुमकिन नहीं कि दर्द इधर हो उधर न हो' तब ऐसी अवस्था में दोनों ही ओर विरह-कष्ट होगा। स्त्री का अधिक सुकुमार और असहनशील होना स्वाभाविक है और पुरुष का अधिक सहिष्णु होना। कवि पुरुष-द्वारा इसे प्रकट कर विनोद का पात्र हो सकता है, पर स्त्री-द्वारा इसी कष्ट को किसी सीमा तक कहला-कर पाठकों में सहानुभूति उत्पन्न कर सकता है।

प्रोफ़ेसर आज़ाद ने आबेहयात में लिखा है कि उर्दू की उत्पत्ति व्रजभाषा से हुई है, पर यह उनकी भ्रान्ति-मात्र है। व्रज-भाषा उत्तरी भारत के एक विशेष स्थान की बोली-मात्र है। पर प्राचीन हिन्दी-कविता का अधिकांश भाग उसी बोली में होने के कारण व्रजभाषा को हिन्दी का पर्यायवाची शब्द मान लेने से ही पूर्वोक्त भ्रान्ति की उत्पत्ति हो गई है। क्या अमीर ख़ुसरो की इस पहेली की भाषा आधुनिक हिन्दी, जिसे खड़ी बोली कहते हैं, नहीं है ?

तारा बारा जल गया जला नहीं एक तागा।
घर का चोर पकड़ गया जल मोरी भागा।
जाल।

वास्तव में उर्दू वह हिन्दी है जो दिल्ली तथा उसके पश्चिम की ओर साधारणतः बोली जाती थी। जब यह दक्षिण गई और वहाँ के कवियों ने इसमें कविता आरम्भ की तब इस भाषा में बहुत से दक्खिनी शब्द भी मिल गये। उदाहरण के लिए उर्दू के प्रथम कवि मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह के कुछ शैर यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

कुफ़र रीत क्या हैर इसलाम रीत
हर एक रीत में इश्क़ का राज़ है॥
तुम बिन रहा न जावे अन नीर कुछ न भावे।
बिरहा किता सतावे मन सेति मन मिला दो॥
मुँज इश्क़ के गदा को औरङ्गशाही देना।
सब आशिक़ाँ मुँज आगे हैं तिल्फ़ जो दबिस्ताँ।
चर्ख़ के ख़ुसख़ाने में सूर पिया माने मद।
मस्त हो जाकर पड़ता ग़र्व के चश्में मंझार॥

उर्दू-कवि-जगत् के दो चार उत्कृष्ट कवियों को अलग कर देने पर देखा जायगा कि उसकी शृंगारिक कविता, जो चार शताब्दी पहले थी वैसी ही आज भी है। भाषा की सफ़ाई तथा भिन्नता को छोड़कर कोई नई बात दिखलाई नहीं देती, वही विचार, भाव तथा छंद आज तक चले आ रहे हैं।

व्रजरत्नदास

५—राव जोधाजी।

आज हम सरस्वती के पाठकों के सामने जिस राठोड़-वीर का जीवन-चरित उपस्थित करते हैं उसका जन्म विक्रम-संवत् १४७२ की वैशाख-कृष्ण १४ (ईसवी सन् १४१५ की ९ अप्रेल) को हुआ था। ये मारवाड़ के स्वामी राव रणमल्लजी के द्वितीय पुत्र थे। रणमल्लजी की बहन का विवाह मेवाड़ के राणा मोकलजी के साथ हुआ था। परन्तु जिस समय राणा खेता के दासीपुत्र चाचा और मेरा ने राणा मोकलजी को मार डाला उस समय उनके पुत्र राणा कुम्भा की अवस्था बहुत ही छोटी थी। इसी से अपने भानजे के सहायतार्थ राव रणमल्लजी शीघ्रही मेवाड़ पहुँचे और उन्होंने चाचा मेरा को मार कर राणा कुम्भाजी को गद्दी पर बिठा दिया। परन्तु कुम्भाजी की अवस्था छोटी होने के कारण वे राजद्रोही पुरुषों का सामना करने में बिलकुल ही असमर्थ थे, अतः अपनी बहन की प्रार्थना से राव रणमल्लजी ने कुम्भाजी के प्रतिनिधि-रूप से राज्य का प्रबन्ध स्वयं अपने हाथ में ले लिया। यह बात मेवाड़-वालों को पसन्द न आई। उन्होंने मौक़ा पाकर राणा कुम्भाजी को राज्य छिन जाने का भय दिखला कर भड़-काया और उनको अपनी तरफ़ मिलाकर विक्रम-संवत् १४९५ की कार्तिक-कृष्ण ३० की रात को रावजी को सोते समय मरवा डाला।

मेवाड़ जाने के समय जोधाजी भी अपने पिता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ थे और इनका डेरा क़िले के बाहर था। अतः जैसे ही इनको अपने पिता के मारे जाने का समाचार मिला, वैसे ही ये ७०० साथियों के साथ मारवाड़ की तरफ़ भाग चले। यह देख राणाजी की फ़ौज ने इनका पीछा किया। परन्तु साथ के राठोड़-वीरों ने इस सेना से युद्ध छेड़ जोधाजी को जाँगलू देश के जङ्गलों की तरफ़ भाग जाने का मौक़ा दिया। मारवाड़ की राजधानी मंडोर पर राणाजी का अधिकार होगया। जोधाजी ने अपने पैत्रिक राज्य को हस्तगत करने की अनेक चेष्टायें कीं, परन्तु उन्हें सफलता न हुई। इसी बीच राणा कुम्भाजी ने इनके उद्योग को शिथिल करने के लिए जोधाजी के चचेरे भाई राघवदेव को सोजत का परगना दे दिया। परन्तु जब इससे भी जोधाजी के आक्रमणों में कमी न हुई तब लाचार हो राणाजी ने दूसरे प्रदेश भी राघवदेवजी को दे दिये। परन्तु वीर जोधाजी इससे भी न घबराये और नित्य नये उत्साह के साथ मेवाड़ की सेना पर आक्रमण करने लगे। अन्त में क़रीब १५ वर्ष के लगातार परिश्रम के बाद संवत् १५१० में इन्होंने राणाजी के सेनापतियों को मारकर मंडोर पर अधिकार कर लिया और कुछ ही दिनों बाद सोजत भी इनके अधिकार में आगया।

यह समाचार सुन राणा कुम्भाजी ने मारवाड़ पर चढ़ाई की। जोधाजी भी उनके इस प्रकार आगमन की सूचना पा अपनी वीर राठोड़वाहिनी के साथ उनके मुक़ाबले को चले। ख्यातों में लिखा है कि इस सेना के बहुत से वीर बैलगाड़ियों में बैठकर लड़ने गये थे। जब राणाजी को इनके इस प्रकार आगमन की सूचना मिली तब उनको निश्चय हो गया कि ये लोग मरने-मारने का निश्चय करके ही आये हैं। हार जाने पर भी इनका पीछे लौटना या भागना असम्भव है। अतः ऐसे लोगों से युद्ध करना अवश्य ही हानिकारक है। यह सोच उन्होंने युद्ध करने का विचार त्याग दिया और चुपचाप अपने देश की तरफ़ लौट गये। परन्तु राव जोधाजी के हृदय में अपने पिता के रक्त का बदला लेने की आग जल रही थी। अतः इन्होंने इस सुअवसर को हाथ से निकलने देना उचित न समझा और बड़ी वीरता के साथ राणाजी का पीछा किया। पहले तो मार्ग में इन्होंने गोडवाड़ को लूटा और फिर वहाँ से आगे बढ़ मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ पर आक्रमण किया। यह देख कुम्भाजी भाग खड़े हुए। संवत् १५१३ में जोधाजी ने चित्तौड़ को घेर वहाँ के सुदृढ़ दुर्ग के किवाड़ जला दिये और नगर को लूट लिया।

इसके बाद राणाजी ने अपने पुत्र ऊदाजी के द्वारा सन्धि का प्रस्ताव भेजा। जोधाजी ने भी इस शर्त पर कि जहाँ तक की पृथ्वी में बाँवल (बबूल) के वृक्ष उगते हैं वहाँ तक की पृथ्वी मारवाड़-राज्य की हो और जहाँ तक की ज़मीन में आँवल के दरख़्त लगते हैं वहाँ तक की ज़मीन मेवाड़ के नीचे रहे, सुलह कर ली।

संवत् १५१६ की ज्येष्ठशुक्ला ११ शनिवार (१२ मई सन् १४५९) के दिन* जोधाजी ने मंडोर से ६ मील दक्षिण में नया क़िला बनवाना प्रारम्भ किया और उसके बन जाने पर वहीं अपने नाम पर जोधपुर नामक नगर बसाया।

संवत् १५१८ में जोधाजी ने अपने पुत्र बरसिंघजी और दूदाजी को मेड़ता की तरफ़ भेजा और मालवा के हाकिम से अजमेर परगने का बहुत सा प्रदेश छीनकर उनको दे दिया।

इसी वर्ष राव जोधाजी तीर्थ-यात्रा के लिए रवाना हुए। आगरे पहुँचने पर इनकी मुलाक़ात कन्नौजिया राठोड़ करन से हुई। यह करन देहली के बादशाह बहलोल लोदी के उमराओं में था। उसी के द्वारा रावजी बादशाह से मिले और समय पड़ने पर सहायता करने का वादा कर इन्होंने तीर्थों पर लगनेवाला कर उससे माफ़ करवा दिया। यहाँ से रवाना होकर इधर-उधर घूमते हुए जिस समय ये गया के पास पहुँचे उस समय उक्त

* जोधपुर की ख्यातों में जोधाजी के किले बनवाने का संवत् १५१५ लिखा है, परन्तु सम्भवतः यह संवत् मारवाड़ी विक्रम-संवत् है। इसका आरम्भ श्रावण से होता है। अतः ज्येष्ठ में चैत्रादि विक्रम-संवत् १५१६ होना चाहिए। यदि विक्रम-संवत् १५१५ ही माना जाय तो उस दिन शायद ईसाई-सन् १४५८ की २५ मई होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदेश हुसैनशाह के अधिकार में था। जोधाजी ने उससे जौनपुर में मुलाक़ात की और उसके शत्रुओं पर चढ़ाई करने का वादा कर गया के यात्रियों पर लगनेवाला कर भी छुड़वा दिया। घोसूंडी (मेवाड़) में संवत् १५६१ का राना रायमल जी का एक लेख* मिला है। उसमें लिखा है—

श्रीयोधचितिपतिरुग्रखड्गधारा-
निर्यातप्रहतपठाणपारशीकः ॥५॥
पूर्वानताद्दीद्गयया विमुक्तया
काश्यां सुवर्णैर्विपुलैर्विपश्चितः।

अर्थात्—जोधाजी ने पठानों को परास्त किया, गया के यात्रियों पर लगनेवाला कर छुड़वाया और काशी में सुवर्ण का दान दिया।

इसके बाद लौटते हुए रावजी ने अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा के अनुसार हुसैनशाह के शत्रुओं पर आक्रमण कर उन्हें इधर-उधर भगा दिया। ये लोग ग्वालियर के पास ही छोटे छोटे क़िले बनाकर रहते थे। इस प्रकार द्वारका, प्रयाग, काशी, गया आदि तीर्थस्थानों में होते हुए राव जोधाजी जोधपुर लौट आये।

संवत् १५२४ में जोधाजी ने नागोर के शासक फ़तनख़ाँ को भगाकर नागोर पर अधिकार कर लिया। इस पर फ़तनख़ाँ भाग कर जूझणूं (फतेहपुर) की तरफ़ चला गया।

संवत् १५२५ में राना कुम्भाजी के पुत्र ऊदाजी ने अपने पिता को मार डाला और इस भय से कि कहीं जोधाजी इस अवसर पर कुछ गड़बड़ न करे साँभर और अजमेर उनको दे दिया।

संवत् १५३१ में इन्होंने छापर (द्रोणपुर) के मोहिल राजा को हराकर उसका प्रदेश छीन लिया। इस पर वह भाग कर फ़तनख़ाँ के पास जूझणूं चला गया। यह देख जोधाजी ने उस पर भी चढ़ाई की। इस पर वे लोग दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी और जौनपुर के हुसैनशाह से मदद ले आये। परन्तु युद्ध में जोधाजी की ही विजय हुई और द्रोणपुर का इलाक़ा इन्होंने अपने पुत्र बीदाजी को दे दिया।*

संवत् १५३५ में जालोर के मुसलमान-शासकों ने और सिरोही के राव लखाजी ने मारवाड़ में उपद्रव करना शुरू किया। परन्तु अन्त में इन्हें हार मानकर जोधाजी से सन्धि करनी पड़ी।

जोधाजी के एक पुत्र का नाम बीकाजी था। उन्होंने जाँगलू-प्रदेश को जीत संवत् १५४२ में वहाँ पर क़िले की नीव रक्खी। उनके साथ उनके चाचा वीर काँधलजी भी थे। संवत् १५४४ के क़रीब उन्होंने हाँसी-हिसार तक के प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। परन्तु अन्त में वे हिसार के हाकिम सारंगख़ाँ के हाथ से मारे गये। इस पर जोधाजी ने अपने भाई का बदला लेने के लिए उक्त हाकिम पर चढ़ाई की। जब उसे मारकर वे लौटे तब अपने पुत्र बीकाजी को राव की पदवी देकर जाँगलू-प्रदेश का स्वाधीन राजा बना दिया। इसके बाद संवत् १५४५ की वैशाखशुक्ला २ को बीकाजी ने अपने नाम पर बीकानेर नामक नगर बसाया।

संवत् १५४५ की वैशाखशुक्ला ५ को ७३ वर्ष की अवस्था में जोधपुर में ही जोधाजी का स्वर्गवास हो गया। इन ७३ वर्षों में २३ वर्ष तक तो ये अपने पिता की सेवा में रहे, १५ वर्ष तक मेवाड़वालों के साथ झगड़े के कारण इधर-उधर फिरते और आक्रमण करते रहे। इसके बाद ३५ वर्ष तक इन्होंने राज्य-सुख का उपभोग किया।

इनके समय में दिल्ली की बादशाहत शिथिल पड़ गई थी। मालवा, गुजरात, जौनपुर, मुलतान आदि के शासकों ने अपने अपने स्वतंत्र राज्य बना लिये थे और वे लोग एक दूसरे का मुल्क दबाने की चिन्ता में लगे रहते थे। इसी से हमारे चरित-नायक को अपने राज्य-विस्तार का अच्छा अवसर मिल गया और इन्होंने मंडोर, मेड़ता, नागोर, फलौदी, महेवा, भाद्राजून, पौकरण, सोजत, गोड़वाड़, जैतारण, सिवाना, साँभर और अजमेर का बहुत सा भाग अपने अधिकार में कर लिया।

* बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल भाग ५६, अङ्क १, नं० २,

* कहीं कहीं इस घटना का संवत् १५२६ लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल की भी क्या ही विचित्र गति है! जो नवयुवक एक दिन महाराणा कुम्भा का कोप-भाजन होकर निराश्रय हो रहा था वही कालान्तर में इतना प्रबल पराक्रमी हुआ कि स्वयं महाराणा को और उसके पुत्र को उसके सामने झुकना पड़ा और दिल्ली और जौनपुर के बादशाह भी तीर्थों आदि पर लगनेवाला कर छोड़ कर उसकी मैत्री प्राप्त करना अपना सौभाग्य समझते थे। इतना ही नहीं, उसी ने जोधपुर-राज्य की वृद्धि के साथ साथ एक दूसरा स्वतंत्र राज्य ही अपने पुत्र बीकाजी को दिलवा दिया।

संवत् १५१६ की मार्गशीर्षशुक्ला २ को जोधाजी ने जोधपुर से एक ताम्रपत्र दिया था। यद्यपि वह असली नहीं मिला है, तथापि संवत् १६३५ में उनके वंशज महाराज उदयसिंहजी ने जो एक सनद उसकी एवज़ में लिख दी थी उससे उक्त घटना का बोध होता है। उसमें जोधाजी की उपाधि महाराव लिखी है। इसी संवत् का एक लेख* कोडमदेश (बीकानेर राज्य) में मिला है। इससे ज्ञात होता है कि वहाँ का कोडमदेश नामक तालाब इन्हीं जोधाजी की माता कोडमदे की यादगार में बनाया गया था।

विश्वेश्वरनाथ रेउ

६—नासदीय सूक्त।

आध्यात्मिक उन्नति की प्रथम सीढ़ी तो किसी न किसी प्रकार का द्वैतवाद ही है, परन्तु इससे जिज्ञासा की शान्ति नहीं होती। यह तभी होती है जब हम अपरिमित तत्त्व पर पहुँचते हैं, क्योंकि उससे आगे जाने की सम्भावना ही नहीं रहती। अपरिमित होने के लिए अद्वैत होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि द्वैत होने से ही सीमा निश्चित हो जाती है। यहाँ तक तो ठीक है। परन्तु अब जो बड़ी भारी समस्या उपस्थित होती है वह यह कि यह अद्वैत द्वैत किस प्रकार हुआ। इस 'प्रकार' के कहने की कठिनता के कारण ही द्वैतवाद, परिणामवाद, विवर्तवाद आदि अनेक मत प्रकट हो गये और अन्त को कह दिया गया कि यद्यपि अद्वैत का द्वैत होना तो निश्चय है, परन्तु किस विधि से हुआ, यह कोई भी नहीं कह सकता। माया अनादि और अनिर्वचनीय है।

इस समस्या का स्पष्ट उत्तर ऋग्वेद के प्रसिद्ध नासदीय सूक्त में दिया गया है। उसी सूक्त को हम आज पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं। सृष्टि-रचना-विधि के विषय में यह प्रामाणिक सूक्त है। आश्चर्य यही है कि इस सूक्त के रहते हुए भी इतना मत-भेद प्रकट हुआ। इसका अर्थ भी हम वही देते हैं जो लोकमान्य तिलक जैसे विद्वान् ने किया है। ऋग्वेद के इस सूक्त के कर्त्ता ब्रह्मर्षि कहते हैं—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥

अर्थ—तब अर्थात् मूलारम्भ में असत् नहीं था और सत् भी नहीं था। अन्तरिक्ष नहीं था और उसके परे का आकाश भी न था! किसने किस पर आवरण डाला? कहाँ? किसके सुख के लिए? अगाध और गहन जल कहाँ था?

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किंचनाऽऽस ॥२॥

अर्थ—तब मृत्यु अर्थात् मृत्युग्रस्त नाशवान् दृश्य सृष्टि न थी। अतएव अमृत अर्थात् अविनाशी नित्य पदार्थ भी न था। रात्रि और दिन का भेद समझने के लिए कोई साधन न था। वह अकेला एक ही अपनी शक्ति से वायु के बिना श्वासोच्छ्वास लेता अर्थात् स्फूर्तिमान् होता रहा। इसके अतिरिक्त या इसके परे और कुछ भी न था।

तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽ-
प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाम्वपिहितं यदासीत्
तपसस्तन्महिनाऽजाय केतम् ॥३॥

अर्थ—जो ऐसा कहा जाता है कि अन्धकार था,

* जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भाग १३, पृ० २१७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरम्भ में यह सब अन्धकार से व्याप्त भेदाभेद-रहित जल था, आभु अर्थात् सर्वव्यापी ब्रह्म तुच्छ से अर्थात् झूठी माया से आच्छादित था, वह मूल में एक तप की महिमा से प्रकट हुआ था।

पहली ऋचा में ही जब ऋषि की तीव्र बुद्धि सृष्टि के प्रकट होने से पूर्व पहुँचती है तब यह सिद्धान्त स्वयं सिद्ध प्रतीत होता है कि सृष्टि से पूर्व सृष्टि के प्रकार का पदार्थ कोई भी नहीं हो सकता। सत्-असत् का विरोध तो सृष्टि के प्रकट होने पर हुआ। इसलिए उस समय यह द्वन्द्व हो नहीं सकता। जब सृष्टि न थी तब उसके अन्तर्गत अन्तरिक्ष कैसे हो सकता है और जब सीमाबद्ध अन्तरिक्ष नहीं था तब उसके परे का आकाश होने का प्रश्न भी नहीं हो सकता। इसलिए जब वहाँ किसी प्रकार की सीमा का भाव नहीं था तब वहाँ दो तत्त्व कैसे हो सकते हैं। और यदि एक ही तत्त्व था तो फिर कौन किस पर आवरण डाले, किसके लिए और कहाँ डाले। क्योंकि ये सब बातें तो दो तत्त्वों में ही सम्भव हैं। यदि कहो कि दो तत्त्व न होकर वहाँ सब जल ही था, सो भी नहीं। क्योंकि जल के रहने के लिए भी स्थान चाहिए और वह भी सीमाबद्ध।

अपरिमित तत्त्व को इस प्रकार अद्वैत सिद्ध करते हुए ऋषि दूसरी ऋचा में इसको और भी दृढ़ करते हैं और उस तत्त्व का भी सुन्दर निरूपण करते हैं। कहते हैं कि यद्यपि उस समय नाशवान् सृष्टि और अमृततत्त्व का भेद नहीं था, रात्रि और दिन का भी भेद नहीं था, तो भी इसका अर्थ यह नहीं है कि उस समय कुछ था ही नहीं। यदि कुछ न होता तो सृष्टि कहाँ से आती! इसलिए ऋषि कहते हैं, उस समय जो कुछ भी था वह एक था। अपरिमित होने से उसका कुछ आकार नहीं था, न उसका रङ्ग-रूप कुछ कहा जा सकता है। क्योंकि ये सब तो नाशवान् सृष्टि के गुण हैं, जो पीछे से हुई। परन्तु एक बात उसके सम्बन्ध में और कह सकते हैं। और वह यह कि वह निष्क्रिय नहीं है, जड़ नहीं है, बरन चैतन्य है, क्योंकि वह भी क्रिया करता रहता है। यह कैसे ज्ञात हुआ? जिस प्रकार सब सीमाबद्ध वस्तुओं के परे जाते जाते हम अपरिमित तत्त्व पर पहुँचते हैं, उसी प्रकार एक शक्ति से पूर्व उसकी कारण-शक्ति पर जाते जाते हम एक स्वक्रियात्मिक शक्ति के सिद्धान्त पर पहुँचते हैं। संसार में रूपान्तर होते रहना तो प्रत्यक्ष ही है। रूपान्तर के लिए शक्ति की आवश्यकता है। शक्ति का कोई विशेषरूप उसके पूर्व की शक्ति की क्रिया से प्रकट हुआ। जो शक्ति अन्त में कारण-रहित होगी वह स्वक्रियात्मिक होगी। और कारण-रहित शक्ति का होना ऐसा ही आवश्यक है जैसा कि अपरिमित तत्त्व का है। नहीं तो जिज्ञासा को सन्तोष नहीं होता। सृष्टि में शक्ति के दो स्वरूप, जड़ और चैतन्य, देख पड़ते हैं। इन दोनों में भेद यही है कि चैतन्य वस्तु में स्वयं क्रिया करने की शक्ति है। फिर यह जड़ शक्ति कहाँ से आई? इसका उत्तर इस बात से मिलेगा कि ये जड़ पदार्थ कैसे प्रकट हुए। क्योंकि जड़ पदार्थों के प्रकट होने पर तो वे अपने स्वभावानुसार शक्ति दिखायँगे ही तथा उन जड़ पदार्थों के प्रयोग से जो शक्ति उत्पन्न होगी वही शक्ति का जड़ स्वरूप प्रतीत होगा। इस आदिशक्ति को भी चेतनता का ही कोई स्वरूप होना चाहिए और वह स्वरूप भी परम तत्त्व में ही स्थित होना चाहिए। अब इसी ऋचा में ऋषि उन लोगों को भी उत्तर देते हैं जो ईश्वर या ब्रह्म को शक्ति-रूप मानते हैं, अथवा शक्ति या परम तत्त्व दो भिन्न भिन्न वस्तु मानते हैं। शक्ति बिना किसी शक्तिशाली वस्तु के नहीं रह सकती। इसलिए शक्ति को ही ईश्वर मान लेना भूल है। कारण कि ऐसी अवस्था में ईश्वर को भी आधार की आवश्यकता पड़ जायगी। शक्ति और ब्रह्म दो भिन्न भिन्न तत्त्व इसलिए नहीं हो सकते कि शक्ति बिना आधार के रह नहीं सकती और यह हम पहले ही देख चुके हैं कि अपरिमितता से किसी दूसरे आधार का वहाँ रहना सम्भव ही नहीं। अतएव इस स्वक्रियात्मिक चेतन-शक्ति का आधार वही परम तत्त्व है। इसलिए ऋषि उसे 'स्वधा' कहते हैं। परन्तु क्या इसका अर्थ यह होता है कि उस परम तत्त्व में इस शक्ति के अतिरिक्त और भी कुछ है। हाँ है। वह उस परम तत्त्व का गुण विस्तृत्व है। क्योंकि बिना इसके न तो वह अपरिमित ही हो सकता है और न शक्ति का आधार ही। सत्य के इसी अंश को लेकर विशिष्टाद्वैतवाद प्रकट होता है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि ये दोनों गुण पृथक् पृथक् हैं, जिनके मिलने से परम तत्त्व बनता हो। यह तो एक ही वस्तु के दो गुण हैं जैसे कि जल में शीतलता और रस है। इसका अर्थ यह नहीं कि जल शीतलता तथा रस सब पृथक् पृथक् हैं। यथार्थ में सब एक हैं। हम केवल विचार के सुभीते के लिए उन्हें अलग अलग गिनते हैं। इसी लिए ऋषि कहते हैं कि "वह अकेला एक ही अपनी शक्ति से"।

यह शक्ति तो रही, परन्तु उसके आदि-स्वरूप में क्रिया क्या होती है। इसके लिए ऋषि कहते हैं कि बिना वायु के श्वासोच्छ्वास अथवा स्फुरण होता था। श्वासोच्छ्वास में होता है वायु का भीतर जाना तथा बाहर आना और यही क्रिया दुहराती रहती है, जैसे घड़ी का लटकन हिलता रहता है। ऐसी ही क्रिया, जो अपने को दुहराती रहे, अनन्त समय तक होती रह सकती है। और ऐसी सूक्ष्म क्रिया ही परम तत्त्व के सूक्ष्म रूप में हो सकती है। परन्तु उस परम तत्त्व में बाहर-भीतर कुछ नहीं है और न उसमें दूसरी वस्तु वायु हो सकती है। इसलिए वह क्रिया ऐसी होनी चाहिए जिसमें किसी दूसरी वस्तु है और स्थान की आवश्यकता न हो। यह गुण चेतनता की क्रिया में है। केवल मानसिक क्रिया के लिए स्थान या वस्तु की आवश्यकता नहीं। परन्तु देखना है कि मानसिक क्रिया में ऐसी साधारण तथा निरन्तर होनेवाली क्रिया कौन है। वह है चेतनता की एकाग्रता अथवा उसका विस्तृत होना, सिमटना या फैलना। और सम्पूर्ण मानसिक क्रियायें इन्हीं दोनों क्रियाओं में से किसी एक का कोई विशेष स्वरूप होती हैं। फिर प्रश्न यह है कि यदि चेतनता की एकाग्रता या विस्तृतता से ही प्रयोजन है तो श्वासोच्छ्वास क्यों कहा। इसलिए कि उस आदि-स्वरूप में चेतनता अति सूक्ष्म होती है। उसमें मानसिक क्रियाओं जैसे विकसित स्वरूप नहीं होते। इसलिए उसमें चेतनता का सा अहम्भाव नहीं होता। इसी लिए कहते हैं, ब्रह्म-रूप में न ज्ञाता होता है और न ज्ञेय, यहाँ तक कि वहाँ अपना ज्ञान भी नहीं होता। इसी स्वरूप को योग-वाशिष्ट में "बोधमात्र" कहा है। परन्तु बोधमात्र से भी सूक्ष्म इस स्वरूप को ऋग्वेद के ये ऋषिराज इस प्रकार सङ्केत करते हैं मानो वह जड़ शक्ति की क्रिया हो। परन्तु पूर्णतः जड़ नहीं, क्योंकि चेतना की क्रिया करने की शक्ति यहाँ भी उपस्थित है।

तीसरी ऋचा में ऋषि इस क्रिया का परिणाम बतलाते हैं। ऋषि कहते हैं कि यह जो कहा जाता है कि आरम्भ में अन्धकार से व्याप्त जल अथवा माया से आच्छादित ब्रह्म था, यह यथार्थ में सदैव से ही ऐसा द्वैत-स्वरूप नहीं था कि जहाँ माया और ब्रह्म का, अन्धकार और जल का भेद हो, अर्थात् जहाँ अव्यक्त के व्यक्त होने का आरम्भ हुआ हो। वरन यह अव्यक्त में से व्यक्त वही 'एक तप की महिमा से' स्वयं प्रकट हुआ। यह भी स्मरण रहना चाहिए कि इस दशा में भी यह व्यक्त स्वयं अव्यक्त है, अर्थात् उस व्यक्त के अन्तर्गत अनेक पदार्थ व्यक्त नहीं हुए। वरन वह एक रस जल-समान है। भेद केवल इतना है कि इस अवस्था में यह व्यक्त पदार्थ अपने पूर्व के ब्रह्म-स्वरूप से व्यक्त हो गया, अर्थात् माया से या अन्धकार से व्याप्त हो गया है। यह व्यक्त हुआ कैसे? अपने तप की महिमा से। जो क्रिया श्वासोच्छ्वास की हो रही थी उसी में जब चेतन-शक्ति एकाग्र होने लगी तब उसके साथ परम तत्त्व के अंश का विस्तृत्व भी सिकुड़ने लगा और उसी ब्रह्म में से एक ब्रह्माण्ड व्यक्त हो गया। इसी को श्रुति कहती है कि उसने अपना यज्ञ किया। इसी अवस्था को सांख्य 'महान्' कहता है, यहाँ ही बुद्धि का स्थान है। क्योंकि यहाँ की चेतना अहङ्कार से भी सूक्ष्म है। परन्तु है व्यक्त। चेतनता की एकाग्रता यहाँ पूर्ण नहीं होती, क्योंकि पूर्ण होने के लिए अपने बोध की, अहम्भाव के होने की, आवश्यकता है। इसलिए आगे चौथी ऋचा में ऋषि कहते हैं—

कामस्तदग्रे समवर्ततादि
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

अर्थ—इसके मन का जो रेत अर्थात् बीज प्रथमतः निकला वही आरम्भ में काम हुआ। ज्ञाताओं ने अन्तःकरण में विचार करके बुद्धि से निश्चित किया कि (यही) असत् में अर्थात् मूल-परब्रह्म में सत् का यानी विनाशी दृश्य सृष्टि का (पहला) सम्बन्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि कहते हैं कि इसी महान् या व्यक्त के मन का जो बीज प्रथम निकला, अथवा इस महान् की चेतना की एकाग्र होने की जो क्रिया सम्पूर्ण हुई वह अहम्भाव को प्राप्त हुई, अर्थात् मन का बीज निकला, क्योंकि मानसिक क्रियाओं के व्यक्तित्व का आधार यह अहम्भाव अथवा अहङ्कार ही है। और इसी को श्रुति में आरम्भ का 'काम' या 'इच्छा' कहा है। यही अवस्था सांख्य के अहङ्कारतत्त्व के प्रकट होने की है। यहीं दृश्य-सृष्टि का सम्बन्ध अदृश्य से होता है, अर्थात् उस ब्रह्माण्ड में भी इसके द्वारा अनेक पदार्थ व्यक्त होते हैं। यहीं कहते हैं कि उस ब्रह्म को भी अनेक होने की इच्छा हुई। इच्छा शब्द का प्रयोग इसलिए है कि इच्छा में चेतनता प्रथम एकाग्रता को पहुँच कर फिर वह इच्छित वस्तु की ओर फैलती है। अब प्रश्न यह है कि इस मन के बीज से दृश्य सृष्टि कैसे प्रकट हुई सो पाँचवीं ऋचा में भी बताते हैं। यहाँ यह भी विचारणीय है कि ऋषि इस विषय को अगम्य नहीं कहते, बरन कहते हैं कि "ज्ञाताओं ने अन्तःकरण में विचार करके बुद्धि से निश्चित किया"।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषाम्
अधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन्
स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

अर्थ—रश्मि या किरण या धागा इनमें आड़ा फैल गया और यदि कहें कि यह नीचे था तो यह ऊपर भी था। रेतोधा अर्थात् बीजप्रद हुए और बड़े भी हुए। उन्हीं की स्वशक्ति इस ओर रही और प्रयति अर्थात् प्रभाव उस ओर हो रहा।

कैसा सुन्दर निरूपण है! कहते हैं कि उस अहङ्कार की किरणें उस ब्रह्माण्ड में चारों ओर ऊपर-नीचे फैल गईं। उनसे अहङ्कार के अनेक बीज भी हुए और इन्हीं की स्वशक्ति अर्थात् चेतन-शक्ति एक ओर रही अथवा केन्द्रस्थ रही और उसका प्रभाव फैलने में जो बड़ा भारी धक्का लगा उसका असर दूसरी ओर रहा। यहाँ जड़ और चेतन-सृष्टि का भेद उपस्थित हो गया। क्योंकि जहाँ स्वशक्ति का केन्द्र रहा, वहाँ से चेतन-सृष्टि हुई और जहाँ उस धक्के के प्रभाव से गाढ़ापन अधिक हो गया, वहाँ से जड़-सृष्टि प्रकट हुई। इससे यह कदापि न समझना चाहिए कि जड़ पदार्थ चेतनता-रहित हैं। उनमें चेतनता तो है, परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म प्रकार की, जो चेतन-सृष्टि की अपेक्षा जड़ प्रतीत होती है। इसी प्रकार यह न समझना चाहिए। चेतन वस्तु में विस्तृत्व नहीं है, परन्तु वह बहुत सूक्ष्म है। इसी लिए दीखता नहीं। इसी से कुछ लोग आत्मा तथा परमात्मा को शक्तिरूप अथवा विस्तृत्व-रहित मानते हैं, जो असम्भव है। ये दोनों ही गुण परब्रह्म के हैं और ब्रह्म सब स्वरूपों में उपस्थित होना चाहिए, केवल मात्रा में भेद पड़ जाता है।

अब यह प्रश्न होता है कि इस जड़ तथा चेतन-सृष्टि के अनेक रूप किस प्रकार हुए। एक प्रश्न यह भी रह गया है कि यह उपद्रव हुआ किस स्थान में। इनका उत्तर ऋषि इस प्रकार देते हैं।

को अच्छा वेद क इह प्र वोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेना
थ को वेद यत आबभूव ॥६॥

अर्थ—यह विसर्ग यानी पसारा किससे या कहाँ से आया—यह प्र यानी विस्तारपूर्वक यहाँ कौन कहेगा? इसे कौन निश्चयात्मक जानता है? देव भी इस विसर्ग के पश्चात् हुए हैं। फिर वह जहाँ से हुई उसे कौन जानेगा?

मुख्य मुख्य बातों का तो तर्क से निश्चय करना सम्भव है, परन्तु उनके विस्तार को कहना सम्भव नहीं। क्योंकि उस विस्तार में छोटे छोटे असंख्य भेद समयानुसार हो सकते हैं। इसी लिए उस विस्तार को ठीक ठीक वह कहे जिसने उसे होते देखा हो। इसलिए यद्यपि यह सिद्धान्त तो स्थिर किया जा सकता है कि जड़ या चैतन्य-सृष्टि का भेद अद्वैत-सत्ता से कैसे हुआ। परन्तु इसका भी विस्तार कहना कि अमुक वस्तु अमुक रूप से प्रकट हुई, इस प्रकार सब वस्तुओं के लिए कहना असम्भव है। इसी प्रकार यद्यपि यह कहा जा सकता है कि अद्वैत-स्वरूप से सृष्टि के प्रकट होने की विधि सिद्धान्तानुसार है। परन्तु यह कहना कि अमुक ब्रह्माण्ड ब्रह्म के किस अंश से अथवा किस स्थान में प्रकट हुआ असम्भव है। इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तारात्मक बातों को निश्चयपूर्वक कौन जानता है ? देवता भी तो पीछे हुए। उन्होंने भी तो स्वयं होते हुए नहीं देखा। परन्तु लोग ईश्वर को सर्वज्ञ कहा करते हैं। तो प्रश्न यह है कि सम्भव है, वह जानता हो ! सो ऋषि कहते हैं—

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्
सो अगं वेद यदि वा न वेद ॥७॥

अर्थ—यह विसर्ग अर्थात् फैलाव जहाँ से हुआ अथवा निर्मित किया गया या नहीं किया गया—उसे परम आकाश में रहनेवाला इस सृष्टि का जो अध्यक्ष है वही जानता होगा या न भी जानता हो !

प्रथम तो ऋषि साधारण सा उत्तर देते हैं कि सम्भव है, वह ईश्वर इस सृष्टि का अध्यक्ष जानता हो। परन्तु तत्काल कहते हैं कि न भी जानता हो। पहले तो यह देखना चाहिए कि यहाँ ईश्वर से प्रयोजन ब्रह्म का नहीं है। क्योंकि ब्रह्म की चेतना तो अत्यन्त सूक्ष्म है, जिसकी क्रिया के लिए श्वासोच्छ्वास जैसे शब्द का प्रयोग हुआ था। इसी लिए उसकी चेतनता में तो कोई भिन्नात्मक ज्ञान रह ही नहीं सकता। अतएव वह सृष्टि के प्रकट होने के सम्बन्ध में ऐसा ज्ञान नहीं रख सकता। उससे आगे चलकर मिलता है चेतन-शक्ति का वह केन्द्र जिसकी किरणें फैलकर ब्रह्माण्ड में जड़ तथा चैतन्य पदार्थों के व्यक्त होने का कारण होती हैं। यदि उस केन्द्र की चेतन-शक्ति अति तीव्र होगी तो सम्भव है कि वह केन्द्र अथवा नारायण इस प्रश्न के उत्तर को जानता हो। परन्तु नहीं। वह भी न जानता हो। कारण कि प्रथम तो वह भी पीछे हुआ है। इसलिए अपने से पहले की बातों को तो नहीं जान सकता। दूसरे उसकी चेतनता तीव्र तो है, परन्तु भिन्नात्मिक नहीं। उसकी चेतनता में सञ्चित शक्ति तो मनुष्य की चेतनता से असंख्य गुनी है, परन्तु भिन्नता नहीं। उसमें अहङ्कार है, परन्तु इन्द्रियाँ नहीं। कारण यह कि उस चेतन बीज पर, जिसको जीवात्मा कहते हैं, जब बाह्य पदार्थों का आघात होता है तब उसकी चेतन-शक्ति एकत्र होकर उस आघात के प्रतिकार में प्रस्तरित होती है और इस प्रकार से उसी में नवीन नवीन शक्तियाँ अथवा इन्द्रियाँ प्राप्त हो जाती हैं। बस इसी अंश का विस्तार पश्चिम के जीव-विकाश-वाद में है।

कैसा अनुपम उत्तर इस कठिन समस्या का है ! संसार के किसी भी अन्य साहित्य में इसे पाना दुर्लभ है। इसमें यह महान् ब्रह्मर्षि न तो "अनिर्वचनीय" की ओट लेता है, न द्वैतात्मक भाषा की त्रुटियाँ बखान करता है, न उत्तर को ही 'अगम्य' समझता है। उसे न विवर्तवाद की आवश्यकता है, न द्वैतवाद की। साधारण भाषा में उन रहस्यों का प्रकाश है जिन तक पहुँचने में बड़े बड़े विद्वानों की बुद्धि शिथिल होती है। परन्तु हम लोग ऐसे हैं कि व्याकरण की खैंचातानी में, शब्दों की काट-छाँट में, सुलभ पदार्थ को भी दुर्लभ कर देते हैं। यही हाल नेति नेति के सिद्धान्त का भी है। उसका विचार किसी और लेख में होगा।

ज्वालाप्रसाद सिंहल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—बुद्ध भगवान् के वचन।

जिसकी हम उपासना करते हैं उसे देख लेना और अच्छी तरह जान लेना चाहिए।

यह मुझे मालूम है कि आदिपुरुष का हृदय प्रेम-पूर्ण है, उसे हम लोगों का बड़ा ध्यान रहता है, तथापि जन्म-मरण, जरा और व्याधि आदि बातों ने उसकी अतिशय दयालुता से मेरा विश्वास उठा दिया है।

जो मनुष्य अपनी वर्तमान स्थिति पर ठीक तौर से विचार नहीं करता, बरन केवल इस विचार से कि अन्त में मुक्ति हो ही जायगी, पुरुषार्थ की ओर कोई ध्यान नहीं देता, वह मृत्यु के अनिवार्य चक्र से कदापि नहीं बच सकता।

बस, इसी ज्ञान को मैं सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण समझता हूँ। इसी कारण बड़े सोच-विचार के बाद मैंने संन्यास लिया है। तथापि अपने पिता और उनके दुःख की वार्ता सुनकर उनके प्रति मेरा प्रेम और भी अधिक गम्भीर हो जाता है।

पर वास्तव में यह सब तमाशा स्वप्न के सदृश है, इसमें कोई भी सार नहीं। अतएव तुम इस बात को बिना किसी शील-सङ्कोच के ग्रहण कर लो कि संसार की स्थिति निरन्तर परिवर्तनशील रहती है।

पिता-पुत्र का सम्बन्ध ही स्वयं दुखदायी नहीं है, उससे हमें जो वियोग-व्यथा होती है वह अज्ञान का प्रभाव है।

जैसे राहगीर चलते चलते सड़क में किसी एक स्थान पर मिल जाते हैं और फिर घड़ी भर विश्राम के बाद अपनी अपनी राह चल देते हैं, बस यही हाल हमारे सांसारिक सम्बन्धों का है।

पहले प्रारब्धवश दो आदमी मिलते और फिर प्रारब्धवश ही दोनों बिछुड़ जाते हैं। जो आदमी सांसारिक सम्बन्धों के इस मिथ्या-स्वरूप को भलीभाँति समझ लेता है, उसे फिर कोई दुःख नहीं सता सकता।

जिन वस्तुओं का अस्तित्व काल के द्वारा परिगणित होता है वे सब नाशवान् हैं। पर्वत और वन—सभी ऐसे पदार्थ हैं। चैतन्य प्राणी भी, जो ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से आबद्ध है, काल के अन्तर्गत है।

जिस प्रकार औषध के बिना रोग को सहन करना कठिन है उसी प्रकार सांसारिक प्रभुता को भी ज्ञान के बिना सँभालना दुस्साध्य है। मनुष्य चारों ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञान से घिरा हुआ है, अतएव वह भोग-लिप्सा के पीछे पड़ जाता है।

अन्त में हम रात-दिन चिन्ता-चक्र में पड़ जाते हैं, यही डर रहता है कि कहीं हमारे बाह्य रूप में कोई त्रुटि तो नहीं है। लोक-रीति को मानते मानते दिल बैठ जाता है। हृदय सत्य को स्वीकार नहीं करता। किन्तु बुद्धिमान् का आचरण इसके सर्वथा विपरीत होता है।

वे जानते हैं कि राज-सिंहासन पर बैठने में जितनी ही चिन्ता है, धार्मिक जीवन व्यतीत करने में उतनी ही शान्ति। अतएव उन्हें जङ्गलों और पर्वतों में रहना तथा कन्द-मूल खाना हज़ार गुना अच्छा लगता है।

जिसको ऐसा ज्ञान हो गया हो, जिसको धार्मिक वृत्ति में आनन्द आने लगा हो, वह क्या फिर जङ्गलों को छोड़कर विषय-भोग के लिए घर की ओर मुँह फेरेगा?

मैंने संसार के सुख-दुख, जीवन-मरण, जरा और रोग देख लिये हैं। उन्हीं के चङ्गुल से बचने के लिए मैं संन्यासी हुआ हूँ। क्या फिर भी मैं मूर्खों की भाँति उनका स्वाद चखने के लिए लौट सकता हूँ। आनन्द की खोज करना और राज्यपद की लालसा करना दोनों एक साथ नहीं हो सकते। इनमें उतना ही विरोध है, जितना धूप और छाँह में, आग और पानी में। जो मनुष्य राज्यपद पाना चाहता है उसके लिए शान्ति की इच्छा करना व्यर्थ है।

आत्म और अनात्म का प्रश्न बखेड़ा है। इससे विक्षिप्त मस्तिष्क और भी विक्षिप्त हो जाता है। इस प्रकार के निरर्थक विवादों में मेरी रुचि नहीं।

पवित्रता, सत्यता, वैराग्य और ज्ञान—बस, इन्हीं बातों की प्राप्ति के लिए मैं चेष्टा कर रहा हूँ। संसार में एक से एक जटिल समस्यायें और सिद्धान्त प्रकट हो रहे हैं। पर क्या कोई अन्धा किसी दूसरे अन्धे का पथ-प्रदर्शक बन सकता है?

पवित्रता और अपवित्रता का भेद जानने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि पवित्रता का अभ्यास प्रारम्भ कर दो, अपवित्रता से घृणा करो, त्याग और आत्मसंयम का अवलम्बन करो। प्राचीन लोग जो कहते आये हैं, उस पर विचार करो, पर किसी एक सिद्धान्त का हठ मत करो।

सारांश यह कि तुम्हारे हृदय में जिज्ञासा होना चाहिए। सत्य बात का विश्वास करो और पापों का तिरस्कार करो। जो शब्द सच्चे हृदय से नहीं निकलते हैं उनका न निकलना ही अच्छा। बुद्धिमान् ऐसे शब्दों का कभी प्रयोग नहीं करते।* श्र

२—अद्भुत मक्खियाँ।

ईश्वर की सृष्टि में अनेक जीव-जन्तु ऐसे हैं जिनकी विचित्रता का वृत्तान्त सुनकर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है। अभी, कुछ ही समय पूर्व, जान जे वार्ड (John J. Ward) नामक एक सज्जन ने एक प्रकार की अद्भुत मक्खियों का पता लगाया है। इन मक्खियों की विचित्रता का हाल सुनकर प्राणितत्त्व-वेत्ता अवाक् रह जाते हैं।

वार्ड साहब कई साल से अपने बाग़ीचे में देख रहे थे कि एक नियत समय पर बहुत सी मक्खियाँ आकर गुलाब के पौधों पर बैठ जाती हैं। दो चार दिन के भीतर ही ये मक्खियाँ इतनी अधिक हो जाती हैं कि इनसे बाग़ीचे के प्रायः सभी पेड़ पौधे ढक जाते हैं। वार्ड साहब इनकी इस बढ़ती पर बड़े चकित हुए। वे अनुसन्धान करने लगे कि एकाएक ये मक्खियाँ इसी समय यहाँ कैसे आ पहुँचती हैं और इनकी इतनी अधिक वृद्धि इतनी जल्दी कैसे हो जाती है। बहुत दिनों के बाद वार्ड साहब को इनके विषय में जो बातें मालूम हुईं वे बहुत ही कौतूहल-जनक हैं।

वार्ड साहब कहते हैं कि शरद्ऋतु के अन्तिम भाग में ये मक्खियाँ उनके बाग़ीचे में आती हैं। इनका आकार साधारण मक्खी से कुछ छोटा होता है। रङ्ग इनका हरा होता है। बाग़ीचे में आते ही ये वहाँ के वृक्षों के पत्तों पर अण्डे देने लगती हैं। अण्डों के साथ ही एक प्रकार का रस निकलता है। इस रस के प्रभाव से अण्डे वृक्षों के पत्तों पर चिपक जाते हैं। अण्डों का

* अश्वघोष बोधिसत्त्व से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपरी भाग मज़बूत होता है, इसी कारण अधिक से अधिक ठण्ड पड़ने पर भी इन्हें कुछ भी हानि नहीं पहुँचती; वसन्त का प्रारम्भ होते ही अण्डे फूटने लगते हैं। अण्डों से स्त्री-जातीय बच्चे निकलते हैं। इनके पङ्ख नहीं होते। तीन चार दिन के भीतर ही ये बढ़कर बड़े हो जाते हैं। इन अण्डों से पुरुष-जातीय मक्खियाँ नहीं पैदा होतीं। पुरुष-जातीय मक्खियों के न होने पर भी नई पैदा हुई मक्खियाँ बच्चे जनती हैं। इनके भी बच्चे स्त्री-जाति ही के होते हैं। पर ये अण्डों से नहीं, माता के गर्भ से निकलते हैं। इनके भी पङ्ख नहीं होते। वार्ड साहब लिखते हैं कि ये मक्खियाँ केवल शरदृतु के अन्तिम ही भाग में अण्डे देती हैं; और समय में बच्चे पैदा करती रहती हैं। इसके सिवा सबसे बड़ी आश्चर्य की बात यह है कि पुरुष-जाति की मक्खियों की सहायता के बिना ही इनके बच्चे पैदा होते हैं।

नवजात पक्षविहीन मक्खियाँ ज्योंही चार पाँच दिनों में बढ़कर बड़ी हो जाती हैं त्योंही उनके पक्षविहीन स्त्री-जातीय बच्चे पैदा होते हैं। बड़े हो जाने पर इन बच्चों से भी उसी तरह पक्षविहीन स्त्री-जातीय बच्चे पैदा होते हैं। इस प्रकार इनका यह व्यापार निरन्तर जारी रहता है। किन्तु एक स्थान पर जब ये इतनी बढ़ जाती हैं कि इनके रहने के लिए काफ़ी जगह नहीं रहती तब इनके गर्भ से पङ्खयुक्त स्त्री-जातीय बच्चे पैदा होते हैं। ये बच्चे उड़कर अन्यत्र चले जाते हैं। वहाँ जाकर फिर पक्षविहीन स्त्री-जातीय बच्चे पैदा करने लगते हैं।

शरदृतु के अन्तिम भाग में पक्षविहीन मक्खियों का एक अन्तिम दल पैदा होता है, वही अण्डे देता है। उसके पैदा होने के बाद ही, कुछ दिनों में, एक पुरुष-जातीय दल भी पैदा होता है। पुरुष-जातीय मक्खियों का यह दल वर्ष में एक ही बार उत्पन्न होता है। स्त्री-जातीय मक्खियों का अन्तिम दल, जो अण्डे देता है, इसी पुरुष-जातीय दल की सहायता से देता है। अण्डे देने के बाद ही इन दोनों दलों की सब मक्खियाँ मर जाती हैं। इनके अण्डे ही वसन्त-ऋतु के प्रारम्भ में फूटते हैं और उनसे निकली हुई स्त्री-जातीय मक्खियाँ क्रमशः अपने आप ही स्त्री-जातीय पक्षविहीन और पक्षयुक्त बच्चे पैदा करती रहती हैं।

एक प्राणितत्त्व-वेत्ता ने हिसाब लगाकर देखा है कि एक एक मक्खी अपने जीवन-समय में, अर्थात् कई सप्ताहों के भीतर छः अरब मक्खियों के जन्म का कारण होती है।

विलायत में हक्सले (Huxley) नामक एक प्राणि-तत्त्व-वेत्ता हो गया है। उसका कथन है कि एक मक्खी की दस पीढ़ियों की सब मक्खियाँ यदि इकट्ठी की जा सकें तो उन सबका वज़न इतना होगा जितना कि साढ़े तीन मन के वज़नवाले ५० करोड़ मनुष्यों का होता है। इस बढ़ती का कुछ ठिकाना है।

ये मक्खियाँ वृक्षों और पौधों के पत्ते, फल-फूल और उनके नवीन नवीन अङ्कुरों को खाकर अपना जीवन निर्वाह करती हैं। यदि ये सारी मक्खियाँ एक साल भी जीवित रहें तो देश भर में कहीं कोई उद्भिज्ज वृक्ष और पौधे न रह जायँ। पर, प्रकृति-देवी ने इनके नाश का भी उपाय नियत कर दिया है। सब प्रकार के जीव-जन्तु, कीट-पतङ्ग और पक्षी आदि इन मक्खियों को अपना आहार बनाते हैं। इस प्रकार उनके द्वारा इनकी करोड़ों की संख्या विनष्ट हो जाती है।

वार्ड साहब ने इन मक्खियों के एक प्रबल शत्रु का भी वर्णन किया है। वह एक प्रकार की बर्रजाति का कीड़ा है। परन्तु उसका आकार बर्र के आकार से बहुत छोटा होता है। वह उन हरे रङ्ग की मक्खियों का किस प्रकार नाश करता है, सो भी सुन लीजिए—

ये कीड़े अण्डे देने के समय हरे रङ्ग की मक्खियों को ढूँढ़ते फिरते हैं। मक्खियों को पाकर ये उनमें से एक के ऊपर बैठ जाते हैं। फिर ये उस मक्खी के पेट में अपनी गर्भनली डाल कर उसमें अपना अण्डा रख देते हैं। अण्डे के साथ ही एक प्रकार का विषैला रस निकल कर मक्खी के पेट में भर जाता है और दो चार दिन के बाद ही वह उसे मार डालता है। इस प्रकार मरी हुई मक्खियाँ पेड़ों और पौधों के पत्तों और डालियों पर पड़ी रहती हैं। कुछ समय बाद बर्र-जातीय कीड़े का अण्डा फूट जाता है और उसमें से बच्चा निकल कर उस हरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मक्खी का मांस खाता रहता है। बड़ा होने पर वह उड़ जाता है। इस प्रकार बर्र-जातीय कीड़े प्रति दिन हज़ारों मक्खियों का नाश किया करते हैं।

प्रकृति-देवी यदि इन मक्खियों की बढ़ती रोकने का ऐसा उपाय न करती तो इनसे देश के देश सत्यानाश हो जाते। सब प्रकार के उद्भिज्ज और अनुद्भिज्ज-भोजी प्राणी संसार से चल बसते और यहाँ केवल मक्खियों ही मक्खियों का साम्राज्य हो जाता।

आप अपने देश के टिड्डी-दल को ही देखिए। टिड्डियों का असंख्य समूह जब आता है तब किसानों के होश उड़ जाते हैं। सैकड़ों कोस तक खेती और बाग़-बाग़ीचे सफ़ाचट हो जाते हैं। जहाँ सघन वृक्षों की गहरी छाया देख पड़ती थी, क्षण भर में वहीं सूर्य की किरणों का प्रखर प्रकाश फैल जाता है। पर इनके नाश का भी प्रबन्ध प्रकृति-देवी ने कर रक्खा है। सैकड़ों प्रकार के पक्षी, सरीसृप आदि इनको अपना आहार बना लेते हैं।

परमेश्वर शर्म्मा

३—नरक में स्वर्ग।

मैंने नौकर से कह दिया था—मैं किसी से मिलूँगा नहीं। किन्तु मैंने देखा कि एक साहब घर में बलपूर्वक घुसने का उद्योग कर रहे हैं। नौकर ने आकर ख़बर दी—आप्टिन रे हैं। मैंने कमरे से ही देखा कि नौकर के पीछे एक-दम काला जामा पहने हुए कोई खड़ा है। मैंने सोचा—इस दुष्ट ने भी मुझे देख लिया होगा। अब छिपना ठीक नहीं। इसलिए कुछ ज़ोर से कहा—अच्छा आने दो। मन में सोचा,—कहाँ से यह बला आई!

जब हम किसी कार्य में व्यग्र होते हैं तब दूसरों का हस्तक्षेप बहुत ही बुरा मालूम होता है। हाँ, यदि कोई स्त्री बीच में आजाय तो इतना बुरा नहीं लगता, क्योंकि उसके हृदय में इस व्याघात के लिए कुछ पश्चात्ताप का भाव होता है।

रे मेरा साथी था, तथापि मैंने बड़े विरक्तभाव से उससे बैठने के लिए कहा। किन्तु जब वह मुझे बहुत ही चिन्ताकुल और उदास मालूम हुआ तब मेरे मुँह से एका-एक निकल गया—

क्यों, यह कैसी हालत बना रक्खी है?

उसने कहा—तुम भी बैठ जाओ, ज़रा सुस्ता लूँ तो सारी कथा कह सुनाऊँ। या तो मैं स्वप्न देख रहा था अथवा शायद पागल हो गया हूँ।

इतना कहकर वह आरामकुर्सी पर लेट सा गया, उसने दोनों हाथों से अपना माथा पकड़ लिया। मैं आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देखने लगा। उसके बालों से पानी की बूँदें टपक रही थीं, उसका कोट, पायजामा, टोप, जूते आदि सभी भीगे हुए थे। मैं खिड़की के पास जाकर बाहर की ओर देखने लगा। वहाँ सड़क पर उसका नौकर गाड़ी लिये खड़ा था। मैं हैरान था कि आख़िर मामला क्या है।

मुझको चकित देखकर उसने कहा—मैं पियर लेशेजेर—क़ब्रिस्तान गया था।

'इतने सवेरे'?

'हाँ, सात बजे मैं (masked Dauce) छद्मवेषी अभिनय देखने निकला था।'

क़ब्रिस्तान और अभिनय के बीच में ऐसा कौन सा सम्बन्ध हो सकता है, यह मैं कुछ न समझ पाया। किन्तु मैंने कुछ पूछा नहीं। चुपचाप डिब्बे से तम्बाकू निकाल कर शान्तभाव से सिगरिट बनाने लगा।

बड़ी देर हो गई। किन्तु वह चुपचाप बैठा रहा। हठात् मैंने पूछा—क्यों, तुम क्या कहनेवाले थे?

वह उठकर बैठ गया और इस प्रकार सिर हिलाया, मानो धन्यवाद प्रकट कर रहा हो। मैं सिगरिट बना चुका था। ज्योंही मैं उसे जलाने के लिए तैयार हुआ, त्योंही उसने हाथ के सङ्केत से निषेध करते हुए कहा—

एलेकज़ेण्डर, ज़रा ठहरो, मेरी कथा मनोयोग-पूर्वक सुन लो।

'तुम्हें यहाँ बैठे आध घंटे से तो ऊपर हो गया, लेकिन तुमने एक भी बात मुँह से नहीं निकाली'।

'अरे बड़ी अद्भुत घटना है!'

मैं खीज सा गया था, मैंने सिगरिट फेंक दी। क्या करता उसका अनुरोध मानना ही पड़ा। किन्तु मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ ऐसा भान होने लगा—यह आदमी बहुत जल्दी पागल हो जायगा।

उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और फिर बोला—मैं तुम्हारे साथ एक दिन 'ओपेरा' देखने गया था। क्यों, याद है न?

'वही जिसमें तुम मुझे छोड़कर चले गये थे, उसी की चर्चा करते हो?'

'हाँ, उसी की। बात यह थी—मैंने सुन रक्खा था कि एक दूसरी नाट्यशाला में एक बहुत ही अद्भुत अभिनय होनेवाला है। इसी लिए मैं उसको देखने के लिए लालायित हो रहा था। तुमने मुझे मना किया, किन्तु मैंने तुम्हारी बात न सुनी। मानो भाग्य ही मुझे वहाँ खींचे लिये जा रहा था। तुम मेरे साथ नहीं गये। तुम अनुभवी हो, तुमने दुनिया देखी है। तुम यदि गये होते तो मुझे विश्वास है, तुम अवश्य ही मुझे वहाँ से खींच लाते। मैंने जिस समय ओपेरा से निकलकर नाट्यशाला के लिए प्रस्थान किया था उस समय मेरा मन तुममे कुछ खिन्न सा हो गया था। थोड़ी ही देर में मैं नाट्यशाला में पहुँच गया। देखा, भवन लोगों से खूब ठसाठस भरा हुआ है, लोगों में स्फूर्ति भी काफ़ी थी। ऊपर-नीचे के सभी दर्जे भरे हुए थे। मैंने एक बार नीचे के कमरे का चक्कर लगाया। देखा कि १५-२० आदमी, जिनके चेहरों पर परदा पड़ा हुआ था, एक साथ मेरा नाम पुकारने लगे। बाद में उन्होंने मुझे अपने भी नाम बताये।

ये सब बड़े बड़े आदमी थे, कोई सौदागर, कोई अफ़सर और कोई जागीरदार। किन्तु ये सबके सब कुलियों, साईसों अथवा हरकारों का वेष बनाये हुए थे। सभी युवा थे और सभी उच्च कुल के, पढ़े-लिखे, विद्वान् और सम्माननीय व्यक्ति थे। किन्तु अपनी वंश-मर्यादा, विद्या, बुद्धि, शिष्टता आदि की तिलाञ्जलि देकर ये किस निर्लज्जता से नृत्य कर रहे थे, यह देखकर मैं दङ्ग रह गया। मैंने पहले इन नाट्यशालाओं की कथा सुनी थी, किन्तु मुझे विश्वास नहीं होता था कि इस उन्नत युग में भी लोग इतना गिर सकते हैं। मैं दो-चार सीढ़ी ऊपर चढ़ गया और एक खम्भे की आड़ से यह तमाशा देखने लगा। मनुष्यों की तो वहाँ अपार भीड़ थी। इस प्रकार भीतर चले आते थे जैसे समुद्र में तरङ्गें उठ रही हों। सभी के चेहरों पर नानाप्रकार के छद्मवेष थे, उनकी पोशाकें भी बड़ी विचित्र थीं। उनका मतलब यह था कि उन्हें कोई पहचान न सके। चारों ओर बड़ा शोर-गुल हो रहा था, कोई हँसता था और कोई आपस में हँसी-मज़ाक कर रहे थे। अद्भुत तमाशा था। इसी समय एक बड़ा ही सुरीला बाजा बजने लगा। उसको सुनकर लोगों में बिजली सी दौड़ गई। लोग बेतहर चञ्चल हो उठे। किसी ने किसी का हाथ पकड़ा, तो किसी ने किसी की कमर। इस प्रकार सब उन्मत्त सा होकर मण्डलाकार ढंग से नाचने लगे। बेहोशी में वे स्टेज के ऊपर ऐसे ज़ोरों से पैर पटकते थे कि धम्-धम् की भारी आवाज़ होती थी, यहाँ तक कि उससे धूल सी निकलने लगती थी। धीरे-धीरे उनकी गति और भी तेज़ होने लगी, नशे में चूर होकर वे अपने आपको बिलकुल भूल गये। स्त्रियाँ तो चीत्कार सा करने लगीं, उनके लिए इतनी उत्तेजना सहना कठिन था। मैं सोचने लगा—क्या नरक का दृश्य इससे भी बीभत्स होगा!

जो दृश्य मेरी आँखों के सामने हो रहा था उसकी तुम कल्पना नहीं कर सकते। जब कभी कोई परिचित व्यक्ति मेरे पास से निकल जाता, वह अपनी उन्मत्तावस्था में मेरे ऊपर ऐसे व्यंग्यबाण छोड़ता कि मैं कह उठता था कि हे ईश्वर! ये ऐसे निर्लज्ज कैसे हो गये। इनके तुमुल घोष, अट्टहास और परिहास, वाद्य-सङ्गीत और प्रेमालाप से मैं हैरान हो रहा था। तथापि एक इससे भी भयङ्कर विप्लव मेरे मस्तिष्क में चक्कर लगा रहा था। सोचता—मैं जागता हूँ या स्वप्न देख रहा हूँ। क्योंकि यदि ये सब प्रकृतस्थ हैं तो मैं पागल हूँ और यदि ये पागल हैं तो में प्रकृतस्थ हूँ। मैं कुछ स्थिर न कर सका। मुझे डर लगने लगा। मैं झट सीढ़ियाँ उतर कर नाट्यशाला के बाहरी दरवाज़े की ओर जाने लगा, किन्तु मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वह नारकीय चीत्कार और उन्मत्त प्रलाप मेरा पीछा कर रहा है।

अपना मस्तिष्क ठण्डा करने के लिए मैं बाहर के बरामदे में खड़ा हो गया। मुझे उस समय वैसी-विक्षिप्तावस्था में बाहर जाने का साहस नहीं हुआ। मेरा मस्तिष्क अब भी चक्कर काट रहा था। मुझे डर था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं रास्ता न भूल जाऊँ अथवा यदि गाड़ी से जाऊँ तो कहीं गाड़ी से नीचे न गिर पड़ूँ।

ठीक इसी अवसर पर एक दौड़ती हुई गाड़ी आकर उस भवन के फाटक पर ठहर गई और उससे एक महिला नीचे उतरी। उसकी पोशाक काली थी और उसका चेहरा मखमल के छद्मवेष से छिपा हुआ था। वह सीधे नाट्य-शाला के भीतर घुसने लगी।

टिकटचैकर ने कहा—टिकट। महिला ने उत्तर दिया—टिकट, मेरे पास टिकट नहीं है।

'तो बुकिङ्ग क्लर्क के पास जाकर टिकट ले आइए'।

वह महिला कुछ उदासीनता से पीछे लौटी। टिकट मिलने की जगह पहुँचकर उसने अपना बेग खोला और उसमें हाथ डालकर कहा—ओह! पैसा तो मेरे पास नहीं है। क्या आप मेरी इस अँगूठी के बदले मुझे एक प्रवेश-टिकट दे सकेंगे।

क्लर्क ने उत्तर दिया—मेमसाहब, यह दूकान नहीं है। इतना ही नहीं, उसने वह हीरे की अँगूठी नीचे फेंक दी। महिला चुपचाप खड़ी रही। उसने अँगूठी की ओर ध्यान ही न दिया।

तब मैंने अँगूठी उठाकर उसके हाथ पर रख दी। उस समय मैंने देखा कि छद्मवेष के भीतर से उसकी आँखें मेरे ही चेहरे पर लगी हुई हैं। उसने धीरे से कहा भी—मैं आपसे बड़ी विनय करती हूँ, किसी प्रकार मुझे नाट्य-शाला के भीरत पहुँचा दीजिए। मैंने कहा—लेकिन अब मैं तो बाहर जा रहा हूँ।

'अच्छा तो आप अँगूठी के बदले मुझे तीन रुपया दे दीजिए। मैं इसके लिए आपकी आजीवन ऋणी रहूँगी।'

मैंने वह अँगूठी फिर उसकी उँगली में पहना दी और इसके बाद क्लर्क के पास जाकर दो टिकट मोल लिये। तब दोनों जने एक साथ नाट्यशाला में गये।

जिस समय वह महिला मेरे साथ बरामदे से होकर जा रही थी उस समय उसके पैर लड़खड़ाने लगे। इस-लिए उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैंने पूछा—क्यों, क्या आपको कोई कष्ट है?

'नहीं, नहीं, कोई कष्ट नहीं, मुझे ज़रा चक्कर सा आ गया था'।

मुझे भी उस नारकीय दृश्य का स्मरण आते ही एक कँपकपी सी मालूम हुई।

हम लोगों ने तीन बार नीचे के दरजे का चक्कर लगाया। उन्मत्त पागलों के बीच से होकर चलना सचमुच बड़ा कठिन था। कोई कोई योंही धक्का दे देता था और कोई कोई तो ऐसे भयङ्कर अपशब्द मुँह से उच्चारण करते थे कि उन्हें सुनकर मुझे मर्मान्तक कष्ट होता था, विशेष कर इस कारण कि मैं एक अपरिचित स्त्री को अपने साथ लिये हुए था। सोचा—न जाने यह रमणी अपने मन में क्या कहती होगी। अन्त में हम लोग फिर प्रवेश-द्वार के समीप आ गये। महिला एक कुरसी पर बैठ गई। मैं भी कुरसी के एक हाथ का सहारा लिये हुए उसके सामने खड़ा हो गया। वह कहने लगी—निश्चय ही आपको मेरी हालत देखकर आश्चर्य हो रहा होगा। मेरी भी ठीक ऐसी ही दशा है। स्वप्न में भी मैंने यह नहीं सोचा था कि जीवन में मुझे कभी ऐसे स्थान में आना होगा। जान-बूझ कर यहाँ आने की इच्छा करना तो दूसरी बात है। मेरे मित्र ने मुझे लिखा था—वह एक स्त्री को साथ लेकर इस नाट्य-शाला में आयगा। जो स्त्री इस नाट्य-शाला में आना पसन्द करेगी, भला वह कैसी स्त्री होगी!

मेरे चेहरे पर हठात् कुछ मुस्कराहट आगई। उसने समझा कि मैं उसके ऊपर व्यंग्य कर रहा हूँ। वह फिर कहने लगी—आप सोचते होंगे कि मैं भी तो यहाँ आई हूँ। मैं यहाँ आई हूँ, इसमें सन्देह ही क्या? किन्तु मैं उसे ढूँढ़ने आई हूँ। मैं उसकी स्त्री हूँ। और ये लोग अपनी विषय-वासना की तृप्ति के लिए यहाँ आये हैं। इनमें और मुझमें अन्तर है। मैंने उसको कहाँ कहाँ नहीं खोजा। एक रात भर क़ब्रिस्तान में बैठी रही। किन्तु मैं आपसे शपथ-पूर्वक कहती हूँ—मैं कभी आज तक अपने किसी सम्बन्धी के बिना घर से बाहर नहीं निकली। एक न एक साथी सदैव मेरे साथ रहा है। किन्तु इस समय आप देखते हैं कि मैं भी उसी पथ का पथिक हो रही हूँ जिसके ये अन्य सब लोग हैं। इतना ही नहीं, मैं एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरिचित व्यक्ति के हाथ पर हाथ रख कर चल रही हूँ। वह न जाने अपने मन में क्या सोचता होगा। यह सब मेरे लिए डूब मरने की बात है। पर इस सबके लिए कारण—अच्छा, क्या आपको कभी किसी से ईर्ष्या हुई है।

मैंने कहा—हाँ, हुई तो है। ओह, बड़ी भयानक—

"तब तो आप मुझे अवश्य क्षमा कर देंगे, क्योंकि आपको स्वयं इसका अनुभव हुआ है। कैसी भयङ्कर वेदना होती है। आदमी को बिलकुल उन्मत्त कर देती है। किन्तु यह उन्मत्तता हमको अप्रिय नहीं मालूम होती। आदमी जानता न हो कि यह पथ बुरा है, अवाञ्छनीय है—सो बात नहीं। किन्तु उसे तो कोई शक्ति बलपूर्वक इस पाप-कर्म में, इस नारकीय पथ में नियुक्त करती है। यह शक्ति बड़ी प्रबल होती है। इसके वशीभूत होकर मनुष्य क्या नहीं कर सकता? इसे किसी बात की चिन्ता नहीं रहती, यह किसी की परवा नहीं करती, यह केवल प्रतिशोध चाहती है। बदला लिये बिना इसे चैन नहीं मिलता।

मैं कुछ उत्तर देना ही चाहता था कि वह एकाएक सँभलकर बैठ गई। उसी समय दो छद्मवेषधारी उसके पास से निकले। हाथ का सङ्केत करके उसने कहा—चुप। इतना कहकर वह मुझको घसीटती हुई उनके पीछे पीछे चलने लगी। मैं कुछ न समझ सका। मैं ऐसे पाप-चक्र में पड़ गया था कि ज्यों ज्यों सुलझने की कोशिश करता था, त्यों त्यों उलझता जाता था। मेरे सारे शरीर में एक विचित्र स्फूर्ति हो रही थी, किन्तु उसका क्या अर्थ था—सो मैं कुछ नहीं समझ सकता था।

उस महिला की व्याकुलता देख देखकर मेरी उत्सुकता और भी बढ़ती जाती थी। मैं सोचता था—मुझे क्या हो गया है। जो मैं बच्चे की भाँति इसका आज्ञा-पालन कर रहा हूँ। किसी दैवी शक्ति की प्रेरणा से हम दोनों उन दोनों छद्मवेषधारियों के पीछे चल रहे थे। इनमें एक स्त्री थी और एक पुरुष। वे धीरे-धीरे कुछ बातें कर रहे थे। इतने धीमे कि उनको समझना हमारे लिए कठिन था।

'यह उसी का कण्ठस्वर है, हाँ, हाँ, शरीर का गठन भी उससे बहुत मिलता-जुलता है।'

इतने में उनमें से एक छद्मवेषधारी हँसने लगा। मेरे साथ की महिला ने कुछ उत्तेजित होकर कहा—हाँ, हाँ, यह उसी की हँसी है। अवश्य है, उसी की है। पत्र में ठीक लिखा था। हा! ईश्वर, मेरा क्या होगा!

हम लोग उन्हीं छद्मवेषधारियों के पीछे थे। वे सीढ़ियों के ऊपर चढ़े। हम लोग भी चढ़े। ऊपर घूम-घाम कर उन्होंने एक बन्द कमरा खोला। हम लोग छाया की तरह उनका पीछा कर रहे थे। वे दोनों उस कमरे में घुस गये। फिर उन्होंने दरवाज़ा बन्द कर दिया।

हमारी सङ्गिनी की अवस्था बड़ी ही विचित्र हो रही थी। उसकी विषम उत्तेजना देखकर मुझे डर लगने लगा। मैंने उसका मुख नहीं देखा था। किन्तु वह मेरे शरीर के इतने पास खड़ी थी कि उसके दिल का धड़कना, रह रह करके उसका सिहरना, उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग का काँपना मुझे स्पष्ट दिखाई देने लगा। इसके पहले मैंने कभी किसी प्राणी को ऐसी तीव्र यन्त्रणा भोगते नहीं देखा था। मैं बड़े सङ्कट में पड़ गया। मैं इस रमणी से पूर्णतः अपरिचित था, कौन है, सो भी नहीं जानता था। पर ऐसी अवस्था में उसे छोड़कर जाऊँ तो कैसे जाऊँ।

पहले तो यह रमणी कुछ देर किंकर्तव्यविमूढ़ सी खड़ी रही। किन्तु फिर थोड़ी देर में उन दोनों छद्मवेषधारियों की बातें सुनने के लिए वह दरवाज़े के पास पहुँची और कान लगाकर सुनने लगी। उसने कुछ सुना या नहीं, सो तो मैं नहीं जानता, पर यह ठीक नहीं मालूम होता था। यदि कहीं वह उस दशा में पकड़ी जाती तो बड़ा अनर्थ हो जाता। इसलिए मैं बलपूर्वक उसको वहाँ से घसीट लाया और पास के ही एक कमरे में घुस गया। उसका दरवाज़ा भी बन्द कर दिया। यहाँ भी वह घुटने के बल उसी कमरे के परदे के पास बैठ गई और कान लगाकर सुनने लगी। मैं पीठ फेर कर एक कुरसी पर सिर नीचा किये हुए बैठा रहा।

मैंने इस स्त्री को जितना देख पाया था उसी से मैं अनुमान लगा रहा था कि स्त्री कितनी स्वरूपवती है। रंग तो उसका बहुत ही उज्ज्वल मालूम पड़ता था। जो अंश उसके छद्मवेष से नहीं ढका था उसे देखकर मैं कह सकता था कि उसकी आयु भी अभी अधिक नहीं। बाहरी गठन भी बड़ी सुडौल मालूम होती थी। छद्मवेष के भीतर से दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर आँखें चमक रही थीं। दाँतों की पङ्क्ति भी हाथी-दाँत के समान उज्ज्वल थी। हाथ जितने खुले हुए थे उतने से ही वे किसी बहुत ही कुशल प्रतिमाकार के बनाये हुए मालूम देते थे। जिस समय मैंने अँगूठी पहनाई थी उस समय उँगलियाँ कैसी कोमल मालूम हुई थीं, यह मैं अभी तक नहीं भूला हूँ। उसके रेशमी काले काले बाल भी, जो उसकी छद्मवेष की टोपी में नहीं समाते थे, हवा में उड़ते हुए बड़े सुन्दर मालूम होते थे। पैरों की सुन्दरता को तो कहना ही क्या, कितने हलके और कितने सुडौल।

मैं बैठा बैठा उसी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की आलोचना कर रहा था। उसका निष्कर्ष यही था कि रमणी अद्वितीय सुन्दरी है। जब हम किसी रमणी की रूप-राशि की प्रशंसा करते हैं तब उतने से ही हमारी सन्तुष्टि नहीं होती। हम कुछ और भी चाहने लगते हैं। मैं उसके हृदय की धड़कन और शरीर के कम्पन का तो अनुभव कर ही चुका था, सोचने लगा—ये तो प्रणय के चिह्न हैं। यदि इस रमणी के हृदय में मेरे ही प्रति प्रेम जाग्रत हो गया हो तो—ओ, इस स्वर्गीय अप्सरा को पाकर मैं कितना धन्य हूँगा। विधाता ने अवश्य ही मेरे लिए, केवल मेरे ही लिए इसकी सृष्टि की है। मेरे सौभाग्य का क्या कहना।

मैं ऐसे ही विचारों में तल्लीन हो रहा था कि एका-एक मैंने देखा कि वह रमणी अपनी जगह से उठकर मेरी ओर बढ़ रही है। समीप आते ही वह कम्पित स्वर में कहने लगी—

देखिए, मैं आपके सामने शपथ खाकर कहती हूँ। मैं सुन्दरी हूँ, नवयौवना हूँ, मेरी आयु उन्नीस वर्ष से अधिक नहीं। इसके अतिरिक्त, आप विश्वास कीजिए, मैं एक-दम निष्कलङ्क हूँ। स्वर्ग की परियाँ भी मुझसे अधिक पवित्र होने का दावा नहीं कर सकतीं। यह कहते कहते उसे ऐसा आवेश आया कि वह मेरे गले में दोनों हाथ डालकर मुझसे लिपट गई। उसने बड़े करुण स्वर में कहा—अब मैं आपकी हूँ, मुझे ग्रहण कीजिए।

आवेश के मारे उसका सारा शरीर थर-थर काँपने लगा, ऐसी ही अवस्था में उसने बड़े ज़ोर से मुझे चुम्बन कर लिया। वह चुम्बन था या दंशन—मैं ठीक ठीक नहीं कह सकता। लेकिन उससे मेरी नस-नस में बिजली सी दौड़ गई। थोड़ी देर में मैं भी उसी प्रकार काँपने लगा।

इसके बाद की मानसिक अवस्था का वर्णन करना कठिन है।

कोई दस मिनट के बाद मैंने देखा कि वह मूर्च्छित अर्द्ध-मूर्च्छित अवस्था में मेरे बाहु-पाश में फँसी हुई है। रह-रहकर वह काँख रही थी।

धीरे-धीरे उसको चेतना आने लगी। तब मुझे उसके छद्मवेष के भीतर देखने का अवसर मिला। उसकी आँखें गड्ढों में धँस गई थीं। मुख पाण्डु-वर्ण हो गया था। उसके दाँत आपस में कटाकट कर रहे थे, जैसे उसे शीत-ज्वर चढ़ आया हो। उस दिन का दृश्य आज भी मेरी आँखों के सामने झूल रहा है।

जो जो घटनायें उस दिन हुई थीं वे सभी मुझे अच्छी तरह याद हैं। वह फिर मेरे पैर के नीचे बैठ गई और काँख काँख कर कहने लगी—

यदि मेरे ऊपर आपकी कुछ भी दया है तो मेरी एक बात मानिए। मेरे ऊपर से अपनी दृष्टि हटा लीजिए। कभी मुझको जानने की चेष्टा न करना। अब मैं जाती हूँ, मुझे भूल जाइए। किन्तु मैं आपको नहीं भूलूँगी।

यह कहकर वह उठ खड़ी हुई और दरवाज़ा खोल कर बाहर चली गई। पर थोड़ी ही देर में उल्टे पैर लौटी और कहने लगी—मैं विनय करती हूँ। कृपाकर मेरा पीछा न करना।

वह फिर बाहर चली गई और दरवाज़ा बन्द हो गया। जैसे भूत अपनी माया से लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार वह भी बात की बात में मेरी आँखों के सामने से लोप हो गई। मैं चुपचाप बैठा रह गया। उस दिन से आज तक मैंने कभी फिर उसे नहीं देखा।

इस घटना को छः मास हो गये। मैंने उसको सर्वत्र ढूँढ़ डाला। थियेटर, नाट्य-शाला, सङ्गीतालय—जहाँ उसके मिलने की रत्ती भर भी सम्भावना हो सकती है। ऐसा कोई स्थान बाक़ी न छोड़ा। यदि मुझे दूर से सुन्दर, गौरवर्ण, काले केश और बच्चों के समान छोटे पैरवाली कोई स्त्री आती दिखाई देती तो मैं तुरन्त उसका पीछा करता। पास पहुँच कर ध्यानपूर्वक उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेहरा देखता और मन में सोचता—मुझे देखकर अवश्य ही उसका मुख लज्जा से रक्तवर्ण हो जायगा और तब मैं झट उसे पकड़ लूँगा। किन्तु मैंने उसको कहीं न पाया। मेरा ख़ाक छानना वृथा हुआ। बस, मेरे जीवन का एक ही सहारा रह गया। मुझे स्वप्न में प्रायः उसके दर्शन हो जाया करते थे। वह नाना रूपों में दिखाई देती थी।

मोटी बात यह है कि उस दिन से मैं मैं नहीं रह गया। मुझमें भीषण परिवर्तन हो गया है। क्या तुमने किसी अन्य पुरुष को इस प्रकार एक-दम अपरिचित रमणी के प्रणय के पीछे पागल होते देखा है। यद्यपि मेरी आशा आज तक सफलीभूत नहीं हुई, तथापि मैं हताश नहीं हुआ। कुछ न कुछ आशा लगी ही रही। मुझे ईर्ष्या हो रही थी, किन्तु ईर्ष्या करने का कोई अधिकार नहीं था। यह भी नहीं जानता था कि ईर्ष्या करूँ तो किससे? तिस पर तुर्रा यह कि मैं अपने पागलपन की कथा किसी से कह-सुन भी नहीं सकता था। मन ही मन जलना-भुनना मेरा काम था। वह मायाविनी मुझे घुला घुलाकर मार रही थी।

इतना कहकर उसने अपनी वास्कट की जेब से एक चिट्ठी निकाली और कहने लगा—

मैं तुमसे सारी कथा कह चुका। अब तुम इस पत्र को पढ़ देखो।

पत्र में लिखा था—

'वह रमणी उस रात्रि की बात नहीं भूली। और न भूल सकने के ही कारण वह मरनेवाली है। हत-भागिनी को यह सन्देह है कि कहीं आप उसे भूल न गये हों।

आपको जब यह पत्र मिलेगा तब तक उसके प्राण निकल जायँगे। इसलिए आप सीधे पियर-लेशेजेर क़ब्रि-स्तान में जाइए। वहाँ के द्वारपाल से कहिए कि जिस नवीन समाधि के प्रस्तर पर 'मेरी' का नाम लिखा हो वह मुझे दिखा दे। फिर नतजानु होकर समाधि में विश्राम करने-वाली के लिए थोड़ी सी प्रार्थना करना। क्या ऐसा करोगे?

ओष्टिन रे ने फिर कहना शुरू किया—

कल रात्रि में मुझे यह पत्र मिला था। अतएव आज प्रातःकाल ही मैं क़ब्रिस्तान में गया। द्वारपाल ने मुझे वह समाधि दिखा दी। वहाँ दो घंटे तक मैं घुटने टेककर प्रार्थना करता रहा। प्रार्थना क्या, अपने भाग्य को रोता रहा। तुम मेरी बात समझते हो न? मैं आज फिर उसी रमणी के पास बैठा हुआ था। अन्तर केवल यही था कि उसके शरीर से उसकी पवित्रात्मा प्रस्थान कर गई थी। ईर्ष्या और तज्जनित अनुताप से उसका हृदय विदीर्ण हो गया था, फिर भला उसका शरीर कैसे ठहर सकता था। वह आज भी मेरे पैरों के समीप पड़ी हुई थी। आज भी मैं उससे उसी प्रकार अपरिचित था, जिस प्रकार छः महीने पहले। न मुझको उसके जीने का पता था, न मरने का। किन्तु उसने मेरे जीवन में एक अचल स्थान प्राप्त कर लिया है। क्या तुमने कभी कोई ऐसी दूसरी घटना सुनी है? कैसी भीषण घटना है! मेरे जीवन में अब कौन सी आशा रह गई है? मैं उसको क्या कभी देख सकूँगा? नहीं, कदापि नहीं। यदि मुझे आशा होती कि उसकी समाधि को खोदने से मुझे उसका कोई ऐसा चिह्न मिल जायगा जिससे मैं उसका चित्र तैयार कर सकता तो ऐसा ही करता। मैं सचमुच उसको प्यार करने लगा था। एलेक्ज़ेण्डर तुम मेरी बात समझते हो या नहीं। मैं पागलों के समान उसको प्यार करना चाहता हूँ। यदि मुझे यह विश्वास हो जाय कि मैं उसे दूसरे लोक में प्राप्त कर सकूँगा तो मैं सच कहता हूँ, मैं इसी क्षण आत्महत्या कर डालूँ।

इतना कहकर उसने मेरे हाथ से पत्र छीन लिया और बारम्बार उस पत्र को चूमने लगा। इस समय वह बच्चों के समान रो रहा था।

मैंने उसे अपनी छाती से लगा लिया। उसे मैं किस प्रकार सान्त्वना दूँ सो मेरी समझ में नहीं आया। अतएव मैं भी रोने लगा।*

केसरी

४—मग लोग कौन हैं?

भविष्य-पुराण में एक कथा है कि दुर्वासा ऋषि के शाप से श्रीकृष्ण का पुत्र साम्ब कोढ़ी होगया। नारद

* डूमा की कहानी के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनि ने इस रोग से छुटकारा पाने के लिए साम्ब को सूर्योपासना करने का उपदेश दिया। साम्ब समुद्र के उत्तरी तट पर गया और चन्द्रभागा* नदी पार कर 'मित्रवन' नामक तीर्थ में जाकर निराहार तप करने लगा। तपस्या से प्रसन्न होकर सूर्य ने उसको रोग-मुक्त कर दिया। सूर्य के वर से वह तेजःपुञ्ज और अतिरूपवान् होगया। सूर्य ने उसको चन्द्रभागा के तट पर अपनी प्रतिमा (सूर्य की प्रतिमा) स्थापित करने की आज्ञा दी। साम्ब ने इस आज्ञा का पालन कर वहाँ अत्युत्तम भव्य मन्दिर बनवाकर एक विशाल सूर्य-प्रतिमा स्थापित की। तदनन्तर साम्ब ने नारद मुनि से प्रार्थना की कि इस प्रतिमा की पूजा के लिए गुणवान् ब्राह्मण की योजना कीजिए। नारद मुनि ने कहा कि देवों-द्वारा अङ्गीकार किये हुए द्रव्य को ब्राह्मण लोग स्वीकार नहीं करेंगे। अतएव उग्रसेन के उपाध्याय गौरमुख से जाकर उससे अपना हेतु निवेदन कर। साम्ब गौरमुख के पास गया, किन्तु उसने उस मन्दिर की पूजा करना स्वीकार नहीं किया। गौरमुख ने कहा कि देव के द्रव्य का परिग्रह करना ब्राह्मण का कर्म नहीं है। अतएव तू इसको 'मग' को अर्पण कर दे। क्योंकि देवों का अन्न ग्रहण करने और उनकी पूजा करने का अधिकार उसी को है। 'मग' का वर्णन करते हुए गौरमुख कहते हैं—"सूर्य-पत्नी निक्षुभा के गर्भ से मग पैदा हुआ है और वह एक उत्तम द्विज है। सूर्य के शाप से निक्षुभा सुजिह्व ऋषि की कन्या के रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई। सुजिह्व मिहिर गोत्र का श्रेष्ठ ब्राह्मण है। इस प्रकार 'मग' सूर्य का पुत्र है। उसके गर्भ से, अग्नि से पैदा हुए पुत्र मग, सोम से पैदा हुए द्विजातीय और सूर्य से उत्पन्न हुए 'भोजक' कहलाते हैं। मग लोग कहाँ रहते हैं, मुझे मालूम नहीं, इसलिए तू सूर्य से ही जाकर पूछ।" यह सुनकर साम्ब वापस लौट गया और तब उसने सूर्य-प्रतिमा से अपना हेतु निवेदन किया। सूर्य ने कहा कि इस जम्बूद्वीप में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है जो मेरी पूजा करने योग्य हो। अतएव शाकद्वीप में जाकर मेरी पूजा करनेवाले लोगों को ले आ। शाकद्वीप में मग, मगग, नागग और मन्दग नामक चार वर्ण के लोग रहते हैं। उनको मैंने चारों वेद पढ़ाया है। वे लोग वेदोक्त-विधि से मेरी पूजा करते हैं और अव्यङ्ग धारण करते हैं। तब साम्ब शाकद्वीप गया, वहाँ उसको तेजस्वी 'मग' नामक ब्राह्मण मिले। साम्ब ने अठारह कुल के 'मग' ब्राह्मण लाकर चन्द्रभागा के तट पर बसाये। और इस नगर का नाम साम्बपुर रक्खा। इसके बाद साम्ब ने भोजवंशीय लोगों की कन्याओं से इनका विवाह करा दिया।

एक बार साम्ब को 'मग' लोगों की विद्वत्ता के सम्बन्ध में शङ्का उत्पन्न हुई। साम्ब की इस शङ्का का समाधान करते हुए व्यास महाराज कहते हैं—"मग ज्ञानवेत्ता और कर्मयोगी हैं। ये ऋषि और मौन-व्रत धारी हैं। ये लोग सूर्य की अर्चा करते हैं, इसलिए 'अर्चयत्' कहाते हैं। भोज-कन्या के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण इनको 'भोजक' भी कहते हैं। ब्राह्मणों की तरह मगों को भी चारों वेद कहे गये हैं। परन्तु वे विपरीत करके कहे गये हैं। शाकद्वीप के पवित्र और विद्वान् लोग शेष नामक सर्प की काँचली धारणकर यज्ञ करते हैं। 'अस्र-मिव वै' उनका गायत्री मन्त्र है। इसे 'अच्छ' कहते हैं। ये लोग आठ प्रकार के शरीर से उत्पन्न शूद्र हैं। ये कमर में 'अव्यङ्ग' धारण करते हैं। उपनयनादि संस्कार किये जाने पर भी, कोई भोजक तब तक शुद्ध नहीं माना जा सकता, जब तक कि वह अव्यङ्ग न धारण कर ले। अव्यङ्ग को पतिताङ्ग, अर्हक, सारसन और जय भी कहते हैं। अव्यङ्ग सदा-सर्वदा धारण किये रहना आवश्यक है।"

नारद मुनि ने एक बार भोजक लोगों के यहाँ भोजन किया था (भ० पु०—अध्याय १३६-१४७)

इस कथा का सारांश यह है कि—

१—भारतवर्ष में (जम्बूद्वीप में) सूर्योपासना नहीं होती थी।

२—सूर्य की पूजा करने के लिए दूसरे द्वीप से लोग बुलाये गये।

३—वे लोग दाढ़ी रखते थे। अव्यङ्ग नामक डोरी कमर में बाँधते थे। वे मन्त्र उच्चारण करते थे। ये मन्त्र वेद

* पंजाब की चन्द्रभागा नदी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ऋचाओं के समान जान पड़ते थे। किन्तु दर असल वेद-मन्त्र न थे।

वे शूद्र थे। किन्तु ज्ञान-सम्पन्नता के कारण ब्राह्मणत्व को प्राप्त होगये थे। और उनको क्षत्रियों की कन्यायें ब्याही गई थीं।

ऊपर के विवेचन से यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या हमारे पारसी भाई ही तो 'मग' नहीं हैं, अतएव अब इस बात पर विचार किया जायगा कि 'मग' लोग और कोई नहीं पारसी ही हैं।

भविष्य-पुराण की कथा से तो यह मालूम होता है कि भारतवर्ष में सूर्योपासना का अभाव था। किन्तु दर असल बात ऐसी नहीं है। भारतवर्ष में अति प्राचीन-काल में सूर्योपासना अस्तित्व में थी। वेदों में अनेक स्तोत्र ऐसे हैं, जिनमें सूर्य की स्तुति की गई है। गायत्री-मन्त्र सूर्य की ही स्तुति है। उदयास्त और मध्याह्न-काल में गायत्री-मन्त्र-द्वारा सूर्योपासना की जाती है। सूर्य के मन्दिर और मूर्त्तियाँ हमारे लिए नवीन नहीं हैं। तथापि ईसवी सन् के प्रारम्भ में सूर्य-भक्ति बाहर से हमारे यहाँ आई है। वराहमिहिर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ बृहत्संहिता के ६० वें अध्याय में लिखा है कि सूर्यदेव की पूजा-अर्चा करने का अधिकार 'मग' लोगों को ही है। श्रीकृष्णपुत्र साम्ब-द्वारा संस्थापित सूर्य-प्रतिमा की पूजा-अर्चा के लिए दूसरे देश से 'मग' लोग बुलाये गये थे। सुजिह्व मुनि निचुभा को सूय से 'जरशब्द' या 'जरशस्त' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी से 'मग' की उत्पत्ति हुई है। ये लोग अव्यङ्ग नामक कमरपट्टा कमर में बाँधते थे। 'मग' लोगों का वर्णन और भी कई ग्रन्थों में पाया जाता है। गयाप्रान्त के गोविन्दपुर-नामक ग्राम में सन् ११३७-३८ का एक शिलालेख पाया गया है। इसके पहले ही श्लोक में लिखा है कि श्रीकृष्ण-पुत्र साम्ब सूर्य से उत्पन्न मग लोगों को भारतवर्ष में लाया है। राजपूताना और उत्तर-हिन्दुस्तान में 'मग' ब्राह्मण पाये जाते हैं। ये 'मग' पारसियों में के 'मगी' या 'मजी' हैं। और भविष्य-पुराण में मगों के पूर्वज 'जरशस्त' का नाम आया है। जरशस्त पारसियों के ऋषि झरदुष्ट्र का ही नाम है। अवेस्ता की भाषा में पारसियों के यज्ञोपवीत को (यह कमर में बाँधा जाता है) 'ऐव्याओंघन' कहते हैं। इसे ही अव्यङ्ग कहते हैं। प्रसिद्ध यात्री अलबेरुनी ने अपने प्रवास-वर्णन में लिखा है कि मजियन नामक पारसी लोग भारत में 'मग' कहलाते हैं (प्र० भाग पृष्ठ २१)। 'मग' लोग शाकद्वीप से आये हैं, ऐसी धारणा होने का कारण यह है कि ईसवी सन् से तीन सौ वर्ष पूर्व से भारतवासी शक लोगों से परिचित हैं। अतएव मगों का भी शक लोगों के देश से आना मान लिया गया। अतएव यह स्पष्ट है कि सूर्यपूजक पारसी ही भारतवर्ष में मिहिर नामक सूर्य-भक्ति लाये हैं। ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतवर्ष में यह दन्तकथा प्रचलित थी कि श्रीकृष्ण-पुत्र साम्ब ने ही सूर्य-भक्ति का बीज बोया। पञ्जाब-प्रान्त में मुलतान के पास चन्द्रभागा के तट पर सूर्य-प्रतिमा की स्थापना की गई थी। प्रख्यात चीनी यात्री हुएन सांग के समय में यह मन्दिर खूब प्रसिद्ध था। सत्रहवीं सदी में औरङ्गज़ेब ने इस मन्दिर को नष्ट कर डाला।

'मिहिर' नामक सूर्यवाचक संस्कृत-शब्द की उत्पत्ति भी चमत्कार-पूर्ण है। अति प्राचीनकाल से सूर्य का एक नाम 'मित्र' भी है। यही शब्द पारसियों की प्राचीन आसुरी भाषा में 'मिथ्र' हो गया। 'मिथ्र' पारसियों के सूर्य-देव हैं। यह शब्द क्रमशः 'मिहर' 'मिह्र' और मिहिर रूप में बदल गया। और यही मिहिर शब्द संस्कृत में प्रवेश पा गया। किसी ज़माने में सूर्य-पूजा लघु एशिया से लेकर रोम तक प्रचलित थी। ईसवी सन् की पहली सदी में भारतवर्ष में महाराज कनिष्क शासन करते थे। आपके सिक्कों पर सूर्य की प्रतिमा और 'मिह्रो' शब्द अङ्कित है। इससे पता चलता है कि बौद्ध-धर्म स्वीकार करने के पहले महाराज कनिष्क मिहिरोपासक थे। इसी ज़माने में भारतवर्ष के उत्तर-भाग में सूर्योपासना का प्रचार हुआ और मुलतान का देवालय भी सम्भवतः इसी ज़माने में बना।

सन् ४३७ के लगभग पञ्जाब, राजपुताना, गुजरात, कच्छ, इन्दौर, ग्वालियर के आस-पास सूर्य के देवालय स्थापित किये जाने के प्रमाण-स्वरूप छः लेखों का पता लगा है। इनमें अन्तिम लेख सन् १०२७ का है।

वराहमिहिर ने बृहत्संहिता के ५८ वें अध्याय में उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवालयों में स्थापित सूर्य-प्रतिमाओं का वर्णन किया है। मूर्ति के पैर जानु-पर्यन्त ढके रहते थे अर्थात् जानु-पर्यन्त पैर जूते से ढके रहते थे। कमर में कुस्त या कमरबन्द रहता था, जिसका एक सिरा नीचे लटकता रहता है। इस देवता की पूजा मग लोग करते थे। इससे स्पष्ट है कि सूर्य-भक्ति पारसियों के देश से आई है। तदनन्तर सूर्य-भक्ति हिन्दू-धर्म में पूर्णतया शामिल हो गई। सूर्य-पूजक मग लोग हिन्दू बन गये और उनकी एक जुदा ब्राह्मण-जाति बन गई। वे वेद-पठन करते थे; किन्तु उनका वेद उलटा था। इन मग ब्राह्मणों ने भारतवर्ष की शूद्र जाति की स्त्रियों से विवाह कर लिया और भविष्य-पुराण में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि उनके यहाँ का अन्न ग्रहण करना अनुचित नहीं है। कालान्तर के बाद लोग यह बात बिलकुल ही भूल गये कि सूर्योपासना विदेश से आई है। लोगों की यह धारणा हो गई कि वेद में वर्णित सूर्य-स्तुति से ही सूर्योपासना का सम्बन्ध है और सूर्य-प्रतिमा और देवालय भी उसी से सम्बन्ध रखते हैं। महाराज हर्षवर्धन के ज़माने के—सातवीं सदी के—एक ताम्रपत्र से पता चलता है कि उसका बाप, दादा और आजा सूर्योपासक (परमादित्य-भक्त) थे।*

शङ्कर राव जोशी

५—डालर का वैदेशिक विनिमय।

इस समय आर्थिक संसार में ग्रेटब्रिटेन और अमेरिका अत्यन्त धनशाली राष्ट्र हैं। ग्रेटब्रिटेन के पास पूँजी की कमी नहीं है; किन्तु फिर भी कई कारणवश उसे अमेरिका के सामने झुकना पड़ता है। आज यदि प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो परोक्ष रूप से ग्रेटब्रिटेन अमेरिका का लोहा मानता है। दोनों एक दूसरे की शक्ति का अनुभव करते हैं। इँग्लेंड अपने सूती कारख़ानों को अमेरिका के कपास से मुक्त कराने की उधेड़-बुन में है। अमेरिका ने जहाज़ी व्यवसाय आदि कई उन्नति-जनक औद्योगिक कार्यों में भी पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली है। जहाज़ी व्यवसाय की सफलता अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है और हम भारतवासियों के लिए तो सर्वथा अनुकरणीय है।

सुवर्ण-माध्यम-पद्धति न होने से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में भारत को इँग्लेंड के सिक्के से काम लेना पड़ता है। इसके रुपये की दर शिलिङ्ग और पेन्स में निश्चित होती है। यह देश अमेरिका का बहुत बड़ा ग्राहक है। इसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय की दृष्टि से किसी न किसी सिक्के के मापदण्ड में डालर के विनिमय जानने की अत्यन्त आवश्यकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय और उद्योग-धन्धों में धन-विनियोग करने में आज भी इँग्लेंड की कोई समता नहीं कर सकता; किन्तु फिर भी कई कारण हैं कि उसके सिक्के की दर अमेरिका के बाज़ारों में गिरती है। इँग्लेंड की कई कमज़ोरियों से न्यूयार्क के एक्सचेञ्ज में पौण्ड की दर घटती जाती है। इस अवस्था से सभी अँगरेज़ विशेषज्ञ चिन्तित हैं। वे सोचते हैं कि ब्रिटिश-मुद्रा-पद्धति में कौन कौन से ऐसे परिवर्तन किये जायँ जिनसे उनके देश का सुवर्ण-विनिमय-माध्यम-पूर्व अवस्था को प्राप्त हो। इँग्लेंड अपनी हानि-पूर्ति भारत और अन्यान्य उपनिवेशों से कर लेता है; किन्तु फिर भी वह अमेरिका के सामने ऐसी नाज़ुक अवस्था में नहीं रहना चाहता। इँग्लेंड की वैदेशिक विनिमय-नीति से भारत की सन्तान त्रस्त हो रही है। भला, उसकी चिन्ता वह क्यों करने लगा। इँग्लेंड के सिक्के का मूल्य कम करने में अमेरिका ने केवल व्यापारिक सुविधाओं से लाभ उठाया है। भारतीयों की यह शिकायत बेजा नहीं है कि ब्रिटिश-सरकार कौन्सिल-बिल, ऋण, वेतन और इण्डिया आफ़िस के ख़र्च में बहुत सा धन लेकर भारतीय विनिमय की दर निश्चय करने में किञ्चित् न्याय नहीं करती; पर अँगरेज़ व्यापारियों की यह धारणा अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रतीत होती है कि विनिमय का मूल्य ऐसे गुप्त साधनों से कम किया जाता है जिससे पौंड की अदला-बदली में उसका विक्रय-मूल्य भी घट जाता है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य शङ्कायें भी अँगरेज़-व्यापारी करते हैं।

*विविधज्ञान-विस्तार (मराठी) के दो लेखों के आधार पर लिखित—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध-ऋण के अतिरिक्त समानरूप से यदि पौंड और डालर की क़ीमत पर ध्यान दें तो डालर के मोल में पौंड की दर गिरने के कारण और परिणाम स्पष्ट प्रकट होते हैं। सन् १९१३ से १९२३ तक की दस वर्ष की अवधि में इँग्लैंड में वस्तुओं की क़ीमत ६० प्रति सैकड़ा से अधिक थी, और अमेरिका में ५० प्रति सैकड़ा से भी कम थी। एक इसी कारण से पाठक समझ जायँगे कि डालर के विनिमय में पौंड की दर किसलिए कम है।

न्यूयार्क के एक्सचेञ्ज में पौंड की दर कम होने का दूसरा कारण भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। अँगरेज़-व्यवसायी अपने देश की बहुत सी पूँजी प्रतिवर्ष उपनिवेश और विदेशों के उद्योग-धन्धों में लगाते हैं। कहा जाता है कि यह पूँजी अत्यधिक सीमा में लगाई जा रही है। यह बात सत्य है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में इँग्लैंड का स्थान सर्वोपरि है। लन्दन के स्टाक एक्सचेञ्ज में समस्त विदेशी ज़मानतों और हिस्सों का कारबार होता है। किसी भी देश का व्यापारी लन्दन के एक्सचेञ्ज में सौदा कर सकता है। इसी कारण इँग्लैंड की बेहद पूँजी बाहर लगी हुई है। यह पूँजी अब भी बराबर लगती जा रही है। इस धन-विनियोग से ही साम्राज्य का विस्तार हुआ है। अमेरिका के समान इँग्लैंड की ज़मीन उपजाऊ न होने के कारण अँगरेज़ों के उद्योग-धन्धों की वृद्धि इसी से हुई है। व्यापारियों के इस प्रोत्साहन से ब्रिटिश-सरकार भी लाभ उठाती है। सचमुच ये व्यापारी ही साम्राज्य-सञ्चालन के अङ्गीभूत हैं। तब यह धन-विनियोग किस प्रकार रुक सकता है? ऐसी विकट समस्या होने पर भी सन् १९२४ में केवल जून मास तक—छः महीने के भीतर विदेश की दस करोड़ साठ लाख पौंड की माँग में से छः करोड़ साठ लाख अकेले इँग्लैंड ने दिये। तिस पर यह रक़म बहुत घट गई है। विगत वर्षों के अङ्कों से पता चलता है कि अब आधी से भी कम रक़म लगती है। यद्यपि अँगरेज़ अपनी इस नीति में परिवर्तन करने के इच्छुक नहीं हैं, तथापि उनके अन्तःकरण में स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि कब तक उपनिवेश और विदेशों में इस प्रकार धन लगता रहेगा। क्या अन्त में उनके लिए यह कार्य असम्भव न होगा? विदेश के जिन जिन औद्योगिक सङ्गठनों में अँगरेज़ों की पूँजी लगती है उनमें काफ़ी उत्पादन होता है, पर समष्टिरूप से इतना नहीं होता कि अधिक निर्यात हो सके। कारण, सभी उपनिवेश और विदेशों में स्थानीय खपत अधिक होती है। यद्यपि अधिक उत्पादन की अत्यन्त चेष्टा हो रही है, तथापि यह आशङ्का की जाती है कि यदि विदेश में लगी हुई पूँजी बहुत अधिक बढ़ गई तो इँग्लैंड के स्थानीय कारबार में धन की कमी हो जायगी। इसलिए अब यह चेष्टा की जा रही है कि आमदनी का बहुत थोड़ा अंश नई पूँजी के ख़रीदने में लगाना चाहिए।

देश के उत्पादन की बचत और असली मुनाफ़ा—इन दोनों का अन्तर निकाल कर पूँजी लगाना उचित बताया जाता है। उदाहरण के लिए यदि समाज की बचत दो अरब पौंड प्रतिवर्ष है और वह एक अरब पौंड का निर्यात प्रतिवर्ष करता है तो अवश्य ही ऐसे उपाय काम में लाने चाहिए जिनसे धन के लाने में रुकावट हो। व्यापारिक नीति के अनुसार एक उपाय यह बताया जाता है कि इतनी अधिक तादाद में आयात किया जाय जिससे कि देश के सिक्के में उसका मूल्य कम हो।

इँग्लैंड आज व्यापारिक नीति का प्रयोग करने के लिए स्वतन्त्र है; लेकिन उस पराधीन भारतवर्ष के विषय में क्या कहा जाय जिसकी आर्थिक कठिनाइयों का कोई ठिकाना नहीं है। भारतवासी किसी ज़ोरदार उपाय से इँग्लैंड की वैदेशिक विनियम-नीति में परिवर्तन करावें तो सर्वदा ठीक है। लेकिन न्यूयार्क के बाज़ार में पौंड की दर कम होने पर इँग्लैंड कठिन उपायों को काम में नहीं ला सकता। वह यदि देश में काफ़ी धन रखकर पौंड की दर बढ़ाना चाहता है तो उसे उपनिवेश और विदेशों में कम पूँजी लगाना चाहिए। इस पर भी वह अपना दूसरे राष्ट्र पर क्रोध प्रकाश करे और घातक नीति से काम लेना चाहे तो अन्यायपूर्ण है। इँग्लैंड में खपत घटाने का भी प्रयत्न हो रहा है। परन्तु उसका धन उत्पादन के काम में भी बहुत लगता है। ग्रेटब्रिटेन विदेश में पूँजी लगाना कम करेगा, यह सन्देहजनक है। कारण, वह एक अकेला ही महाजन है, जो सर्वत्र पूँजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाता है। अमेरिका विदेश के किसी उद्योग-व्यवसाय में स्वतन्त्रतापूर्वक पूँजी नहीं लगाता है। इस प्रकार ग्रेट-ब्रिटेन का मुक़ाबला करने के लिए कोई सामने नहीं आता। पर दूसरी ओर यह भी विकट प्रश्न है कि घर में भी पूँजी चाहिए।

इसके लिए कुछ लोग यह उपाय बताते हैं कि ब्रिटिश-बैंकों में विदेश का धन जमा होने के लिए विशेष दर नियत की जाय। लेकिन इसका परिणाम लाभ-प्रद न होगा। यह विशेष दर नियत होते ही न्यूयार्क और अमस्टरडम के बाज़ार इँग्लेंड से बदला लेने के लिए टूट पड़ेंगे। तब यह मनोमालिन्य अत्यन्त भयङ्कर होगा। हमारी समझ से ऐसी चेष्टा भी हो चुकी है। जब पौंड की दर तीस सेंट थी तब लन्दन में विदेश की जितनी बाक़ी थी सब निकाल ली गई थी। कुछ लोगों ने तो ऊँची दर बढ़ जाने के ख़याल से धन निकाला था और दूसरे पौंड ख़रीद कर एक्सचेंज के बढ़ जाने पर फ़ायदा उठाना चाहते थे। यदि यह भी मान लिया जाय कि लन्दन में विदेश की रक़म जमा होने के लिए बैंक की ऊँची दर रक्खी गई और लोगों ने ब्याज के लालच से धन भी लगाया तो भी जब तक पौंड का मूल्य चढ़ा रहेगा तब तक तो कुछ नहीं होगा। लेकिन ज्यों ही पौंड की दर गिरी त्यों ही सब उन्नति रुक जायगी।

सबसे सरल उपाय यह है कि वस्तुओं की क़ीमत अमेरिका की अपेक्षा कम हो। इस प्रयत्न में बदला लेने का कोई भाव नहीं है। इतना ही नहीं, इस मार्ग के अवलम्बन से इँग्लेंड में शान्ति और अशान्ति दोनों होंगी। कारण, जिसके अनुराग में ज़रा भी धक्का पहुँचेगा वही उपद्रव करेगा। फिर यह भी निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता कि कितना भाव घटेगा। यदि १० प्रति सैकड़ा भाव घटाया गया तो यह सन्देहजनक है कि बैंक की दर पाँच प्रति सैकड़ा भी बढ़ेगी। यद्यपि इस उपाय से काम हो सकता है; किन्तु इसे भी प्रयोग में लाने के लिए सरकार का ख़र्च बढ़ जायेगा। यदि अमेरिका विदेश के उद्योग-धन्धों में पूँजी लगाना शुरू कर दे तो इँग्लेंड की पूँजी बिना किसी प्रयत्न के बच जाती है। लेकिन अमेरिका के वर्तमान रुख़ से ऐसा नहीं प्रतीत होता। सुवर्णमाध्यम की उग्र नीति, डालर के विपरीत पौंड में ज़मानतों और जर्मनी के सुवर्ण-मार्क से भी इँग्लेंड फ़ायदा उठा सकता है।*

जी० एस० पथिक

६—रेल छूटने की सूचना देनेवाला यन्त्र।

बड़े बड़े स्टेशनों से रेल छूटने में जब पाँच मिनट रह जाते हैं तब मुसाफ़िरों को सचेत करने के लिए पहली घण्टी बजती है, और रेल छूटते समय दूसरी घण्टी। पर हमारे देश के अपढ़ और अनजान आदमी इस पर भी अकसर रह जाते हैं और रेल छूट जाती है। अमेरिका ख़ूब सभ्य और शिक्षित देश है। वहाँ वाले रेलों के छूटने के वक़्त से अच्छी तरह जानकार होते हैं। तिस पर भी उनके सुभीते के लिए स्टेशनों पर कुछ लोग ऐसे नियत रहते हैं जो ज़ोर ज़ोर से पुकार कर रेलों के छूटने के समय की सूचना मुसाफ़िरों को दिया करते हैं। इन कर्म्मचारियों की तन-ख़्वाह में रेलों का लाखों रुपया ख़र्च होता है। उसे बचाने के लिए अमेरिका में अब एक ख़ास तरह का टेलिफोन बनाया गया है। उसके लिए अब स्टेशनों पर अलग कमरा रहेगा। वहाँ एक आदमी उस पर काम करने के लिए नियत रहेगा। स्टेशनों के मुसाफ़िरख़ानों, भोजना-लयों, प्लेटफ़ार्मों और पाख़ानों तक में उससे लगाव रखनेवाले टेलिफोन के बड़े बड़े चोंगे रहेंगे। बैठने की जितनी बेंचें होंगी, सबके नीचे भी ये चोंगे लगे रहेंगे। जब रेल छूटने का वक़्त होगा तब पूर्वोक्त कर्मचारी अपने कमरे के टेलिफोन में पुकारकर उसकी सूचना देगा। उसकी आवाज़ एक ही साथ बेंचों के नीचे लगे हुए चोगों तथा भोजनालयों आदि में बड़े ही ऊँचे स्वर में सुनाई देगी। जहाँ पर जो मुसाफ़िर बैठा होगा वहीं उसे रेल छूटने के समय की सूचना हो जायगी। इस तरकीब को अमेरिका की सभी रेलों ने पसन्द किया है। कुछ ने इस तरह के यन्त्र लगा भी दिये हैं। जिन्होंने नहीं लगाये वे भी शीघ्र ही लगानेवाले हैं।

—— प्र—

* अँगरेज़ी से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—भारतवर्ष के लिए सार्वजनिक लिपि।

भारतवर्ष के लिए एक सार्वजनिक लिपि की चर्चा नई नहीं, पुरानी है। यदि भारतवर्ष भर में एक लिपि का प्रचार हो जाय तो कई विषयों में लाभ होने की बड़ी सम्भावना है। अभी हाल में ही कलकत्ता-विश्वविद्यालय के तुलनात्मक भाषाविज्ञान के प्रोफ़ेसर डाक्टर आई० जे० एस० तारापुरवाला, पी०-एच० डी० महोदय ने फिर से यह चर्चा छेड़ी है। उनका कहना है—

लिपि के प्रश्न पर विचार करते समय हमें कई महत्त्व-पूर्ण बातों पर ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। जो लिपि सामान्य-रूप से सारे भारतवर्ष में स्वीकृत और प्रचलित हो सकती है उसमें कम से कम निम्नलिखित गुण अवश्य होना चाहिए—

१—उसके लिखने में आसानी हो।

२—उसको याद करना भी आसान हो।

३—वह वैज्ञानिक रीति से शुद्ध हो।

४—साथ ही जिन सिद्धान्तों के अनुसार उसका निर्माण किया जाय वे ऐसे हों कि साधारण बुद्धि और शिक्षावाला मनुष्य भी उनको आसानी से समझ सके।

यदि सारे संसार के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय लिपि बनाने का प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता तो बस, यही चार शर्तें पर्याप्त होतीं। किन्तु भारतवर्ष की सार्वजनिक लिपि के लिए मुझे एक और शर्त जोड़ना आवश्यक प्रतीत होता है। वह है—

५—जहाँ तक सम्भव हो—देश की ऐतिहासिक परम्पराओं से भी उसका सम्बन्ध होना चाहिए।

प्राचीन काल में, आज से कोई २,३०० वर्ष पहले के भारतीय इतिहास में हमें एक ऐसी बात मिलती है जो इस विषय में विशेष हर्षोत्पादक और आशाप्रद कही जा सकती है। वह यह कि आज भारतवर्ष में जिन भिन्न-भिन्न लिपियों का प्रचार दिखाई दे रहा है, आदि-काल में उन सबका उद्गम एक ही मातृस्वरूपा लिपि से हुआ था। यही कारण है कि आज भी इन लिपियों में उस आदिलिपि के न्यूनाधिक लक्षण दिखाई देते हैं। सच बात तो यह है कि भारतवर्ष भर के लिए सामान्य लिपि का प्रश्न बहुत ही पुराना है। जिस समय सम्राट् अशोक की छत्र-छाया में सारा भारतवर्ष एक हो रहा था, उस समय सारे भारतवर्ष में एक ही लिपि प्रचलित थी। उस सामान्य लिपि का नाम ब्राह्मी था। प्रसिद्ध भाषातत्त्व-वेत्ता आइज़क टेलर ने इसके विषय में लिखा है—

भारतवर्ष में प्राचीनकालीन शिलालेखों का जो बृहत् समुदाय पाया जाता है उससे कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। एक तो यह कि अधिकांश उस समय लिखे गये थे जब कि भारतवर्ष की सामान्य लिपि का पृथक्-करण नहीं हुआ था। दूसरे इनका तिथि-निर्णय भी किसी प्रकार विवादास्पद नहीं है और तीसरे यह कि ये अभी बहुत दिनों तक सुरक्षित रह सकते हैं। वास्तव में प्रायः एक ही बात अनेक स्थानों में कहीं शिलाओं पर और कहीं स्तम्भों पर—दुहराई गई है और भारतवर्ष में सर्वत्र बिखरे हुए हैं।

इन लेखों में जिन सुन्दर और सर्वाङ्गपूर्ण स्वर-व्यञ्जनों का प्रयोग किया गया है वे आज भी वैज्ञानिक दृष्टि से संसार के स्वर-व्यञ्जनों में अद्वितीय हैं। स्पष्ट, साधारण, विशाल और पूर्ण होने के साथ ही ये याद करने में आसान और तेज़ी के साथ पढ़े जाने योग्य हैं। इनमें भ्रम होना तो बहुत ही कठिन है। संस्कृत के वैयाकरणों ने जिस क्रम और सूक्ष्मता से शाब्दिक विश्लेषण करके इनका निर्माण किया है वह सर्वथा चमत्कारिक है। वर्तमान भाषातत्त्वविशारदों ने भी बहुत से नये नये स्वर-व्यञ्जनों का निर्माण किया है, किन्तु मृदुलता, सूक्ष्मता, यथार्थता और सार्थकता में कोई इनकी बराबरी नहीं कर सकते।

इससे सिद्ध होता है कि उस सार्वजनिक लिपि की खोज के लिए हमें अधिक दूर जाने की ज़रूरत नहीं, हमारे ही देश में हमारे ही पूर्वजों ने आज से २,५०० वर्ष पहले जिस लिपि का निर्माण किया था, वह न केवल भारतवर्ष के लिए, बरन समस्त संसार के लिए आदर्श रूप हो सकती है। हमारी भाषाओं के भेद-भावों को लिपि-बद्ध करने में ये स्वर-व्यञ्जन विशेषरूप से उपयोगी हैं। कहना न होगा कि हमारी देवनागरी-लिपि इसी प्राचीन ब्राह्मी-लिपि की सन्तान है। आश्चर्य का विषय है कि घर में ऐसी सुन्दर लिपि के रहते हुए हम लोग क्यों इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं।

——

वासुदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

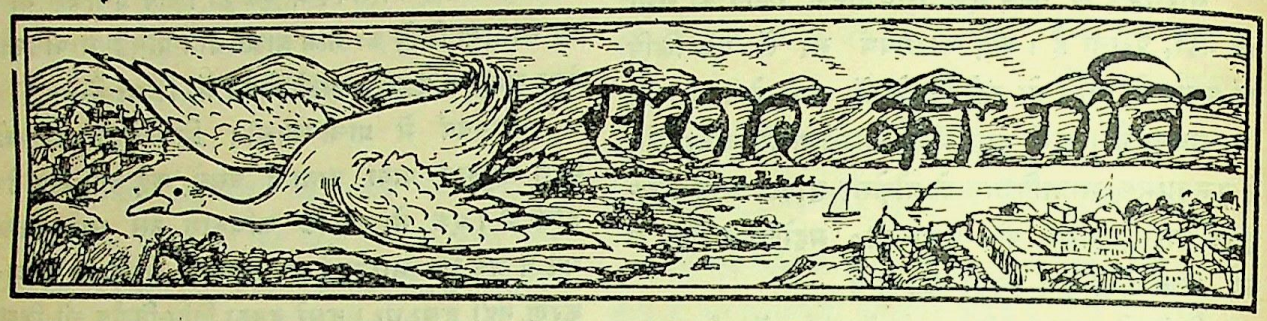

योरप की वर्तमान दशा।

योरप के लिए बीसवीं सदी का प्रारम्भ आशा-प्रद ही नहीं, किन्तु उसके उज्ज्वल भविष्य का सूचक था। इसका कारण हर्बर्ट स्पेंसर, शिलर, क्रोपाटकिन, टाल्स्टाय जैसे महात्माओं की शिक्षायें और उनका पूर्ण प्रभाव था। परन्तु आशा आशा ही रही। उनकी शान्ति और उच्च आदर्श की शिक्षायें वहाँ के भिन्न भिन्न राष्ट्रों की देश-भक्ति के आगे अपना चमत्कार नहीं दिखा सकीं।

निस्सन्देह योरपीय जनता का शान्ति से प्रेम है, परन्तु हृदय से वह लड़ाकू भी है। उसके इस लड़ाकू भाव को भड़का देने के लिए वहाँ के प्रभावशाली समाचार-पत्र सदा तैयार रहते हैं। ये समाचार-पत्र अधिक-तर पूँजी-पति व्यवसायियों और लड़ाई का सामान तैयार करनेवाले कारबारियों की ही वस्तु हैं। अतएव इनके द्वारा सदा देश-भक्ति का ही पाठ पढ़ाया जाता है। और देश-भक्ति तथा संसार में शान्ति का राज्य दोनों बातें साथ साथ नहीं हो सकतीं।

योरपीय राष्ट्रों की अपनी अपनी महत्त्वाकांक्षायें हैं, जिनकी पूर्ति युद्ध के बिना नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए युद्ध के पहले रूस का दाँत कान्स्टैंटिनोपल पर था। इधर यूनान और बल्गेरिया अलग ही इस पर अपनी घात लगाये थे। तुर्क इसे हाथ से जाने देना नहीं चाहते थे। ग्रेटब्रिटेन डार्डे ने लीज़ की जल-प्रणाली अपने हाथ में कर लेना चाहता था। जर्मनी फ्रांस के उपनिवेश हथियाना चाहता था। फ्रांस अल्सेस और लोरेन प्रदेश जर्मनी से वापस लेना चाहता था। इँग्लैंड अफ्रीका में कैरो से उत्तमाशा अन्तरीप तक केवल अपना ही झंडा उड़ाना चाहता था। मतलब यह कि कोई भी अपनी स्थिति से सन्तुष्ट नहीं था। यहाँ तक कि सन् १९१३ में फ्रांस की देश-भक्ति का भाव अधिक उत्तेजित हो उठा। यही नहीं, उस समय एक प्रकार से 'युद्ध' की लहर सारे योरप पर दौड़ गई। निस्सन्देह साम्यवाद आदि शान्ति-प्रवर्तक सिद्धान्तों की उस समय विजय थी, पर वे भी युद्ध को न रोक सके।

प्राचीन-काल में यहूदी, यूनानी और रोमन लोग अपने आपको दूसरी जातियों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझते थे, क्योंकि वे अपने अपने समय में दूसरों की अपेक्षा अधिक समुन्नत और क्षमताशाली थे। अतएव उनका यह जात्याभिमान अकारण नहीं था। उनकी सभ्यता के उत्तराधिकारी वर्तमान योरपीय जातियों में भी धीरे-धीरे वैसे ही जात्याभिमान ने अपना घर कर लिया है। आज योरप की एक छोटी से छोटी भी जाति अपने को संसार में सबसे बढ़कर समझती है। यहाँ तक कि जात्याभिमान का यह रोग सुदूर अमरीका तक में जा पहुँचा है। इस प्रकार पाश्चात्य देशों में विदेशों के प्रति घृणा के भाव ने अच्छी तरह जड़ पकड़ लिया है। धर्म-भेद का भी योरप में कुछ कम ज़ोर नहीं है। लेटिन और स्लाव लोगों के देशों में सनातन ईसाई-धर्म की प्रबलता है। पर पश्चिमी और उत्तरी योरप में नव संस्कृत ईसाई-धर्म का ज़ोर है।

योरप ने उन्नीसवीं सदी में स्वाधीनता के जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श को ग्रहण किया था उसे आज वह भूल गया है। जिन देशों में प्राचीन-पद्धति के अनुसार शासन-कार्य होता रहा है उनमें सर्वसाधारण के अधिकारों की मिट्टी पलीद हो रही है। कहीं कहीं लब्धप्रतिष्ठ लोक-नायक शासनाधिकार अपने हाथ में करके वहां का कर्ता-धर्ता बन बैठा है, जो लोगों के स्वत्वों की कुछ भी परवा नहीं करता। उधर बोल्शेवी-नीति-प्रधान रूस आदि देशों में न तो व्यक्तिगत स्वाधीनता रह गई है और न लिखने-पढ़ने की स्वाधीनता ही किसी को प्राप्त है।

वास्तव में योरप का भविष्य उसकी वर्तमान स्थिति को देखते हुए अधर में लटका हुआ देख पड़ता है।

संसार में शान्ति का ही राज्य रहे, अब फिर युद्ध न हों, इसके लिए यद्यपि सभी राष्ट्रों के प्रमुख राजनीतिज्ञ सिरतोड़ प्रयत्न कर रहे हैं तो भी लक्षण अच्छे नहीं देख पड़ते।

उसकी वर्तमान स्थिति अभी तक सन्तोषजनक नहीं हुई है। यह बात स्वयम् वहीं के बड़े बड़े नेता स्वीकार करते हैं। उदाहरण-स्वरूप यहां एक विद्वान् अमरीकन के कथन का सारांश दिया जाता है—

योरप में एक-मात्र रूस ही अपने वैदेशिक सम्बन्धों पर विस्तृत-रूप से निगाह रखता है। वह अपनी वैदेशिक नीति पर आज भी अटल है। उसकी इस नीति से राष्ट्र को क्या लाभ-हानि है, इसकी उसे परवा नहीं। उसके वर्तमान शासकों ने इस नीति को अपने लाभ एवं अपने अस्तित्व के लिए ही स्वीकार किया है।

रूस के वर्तमान शासक पश्चिमी योरप के प्रत्येक राज्य की वर्तमान शासन-पद्धति नष्ट कर डालना चाहते हैं। इसके लिए वे बराबर प्रयत्नशील रहे हैं और इस दिशा में उन्होंने थोड़ा-बहुत अपना प्रभाव भी डाला है। वे केवल योरप के सुसभ्य और समुन्नत राष्ट्रों में ही भयङ्कर क्रान्ति नहीं करवाना चाहते, किन्तु एशिया और अफ्रीका को भी अपने प्रभाव-क्षेत्र में ले आने की चेष्टा में निरत हैं।

इधर फ्रांस और जर्मनी एक दूसरे का रत्ती भर विश्वास नहीं करते। जर्मनी के हाथ-पैर बांध दिये गये हैं, पर वह अपने बन्धन ढीले करने को बराबर सचेष्ट है। फ्रांस स्वभावतः जर्मनी से भयभीत रहेगा, क्योंकि जर्मनी उसका योरप में प्रतिद्वन्द्वी है, साथ ही जन-संख्या एवं अन्य बातों में भी वह फ्रांस से बढ़ा हुआ है। अतएव अपनी रक्षा के लिए फ्रांस सैनिक बल पर निर्भर रहना चाहता है। परन्तु धनाभाव के कारण वह अपने सैनिक बल को भी सुस्थिर नहीं रख सकता। इँग्लैंड ने फ्रांस के युद्ध-ऋण के भुगतान में सहायता दी है, परन्तु रक्षा के सम्बन्ध में वह वचनबद्ध होने को नहीं तैयार है। वास्तव में उसकी रक्षा के सम्बन्ध में कुछ न कुछ प्रबन्ध होना आवश्यक है। क्योंकि तभी वह अपना सैनिक व्यय घटाकर अपनी आर्थिक स्थिति ठीक कर सकेगा। उसकी रक्षा की मीमांसा के लक्षण भी दिखाई दे रहे हैं, इससे इँग्लैंड की भी रक्षा होती है।

पुराने आस्ट्रो-हंगरी-साम्राज्य के भङ्ग हो जाने से जो नूतन राज्य अस्तित्व में आये हैं उनकी आर्थिक दशा अभी तक अव्यवस्थित है। इसका कारण उनका सङ्कीर्ण राष्ट्रीयवाद, आर्थिक प्रतिबन्ध और पारस्परिक भय एवं ईर्ष्या-द्वेष है। फ्रांस की भांति पोलैंड और जेचोस्लोकिया भी जर्मनी से डरते हैं; पोलैंड और रूमेनिया रूस से सशङ्क हैं और बल्गेरिया तथा यूगोस्लेविया में बोल्शेवी आन्दोलन जड़ पकड़ गया है। सारांश यह कि समग्र पश्चिमी योरप गरम पानी की तरह खौल रहा है। इधर सन्धि के बाद से इँग्लैंड और फ्रांस में जर्मनी के सम्बन्ध में एक मत नहीं है। इसी से रूस में जर्मनों के विरोधी भाव के कारण किसी का कोई उद्देश नहीं सिद्ध हुआ। सौभाग्यवश 'डेविस प्लान' की रचना से इस जटिल प्रश्न के निपटारे की बहुत कुछ सम्भावना हो गई है।

वास्तव में सन्धि के कारण योरप के टुकड़े टुकड़े हो गये हैं। अतएव सन् १९१९ के बाद से वह एक भी बड़े मामले के सम्बन्ध में आपस में समझौता नहीं कर सका। इसके सिवा अधिकांश राज्यों ने या तो हानिकर आर्थिक नीति का अवलम्बन किया है या अपना व्यय घटाने में जो आवश्यक उपाय ग्रहण किये हैं उनमें वे असफल हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमी एशिया के सम्बन्ध में फ्रांस और इँग्लैंड का मतैक्य नहीं रहा है। इस ओर के अपने अपने प्रभाव-क्षेत्रों में इन दोनों महाशक्तियों की निर्बलता ही प्रकट हुई। इस दशा का कारण इनकी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा और साम्राज्यवाद का षड्यन्त्र है। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि तुर्कों को नव-जीवन प्राप्त हो गया। कहाँ तो तुर्कों को योरप से निकाल बाहर करने की बात थी, कहाँ इन दोनों महाशक्तियों के मतभेद की बदौलत तुर्कों ने स्वाधीनता की वह स्थिति प्राप्त कर ली, जैसी पहले के सुलतानों के समय में भी उन्हें नहीं प्राप्त थी। एशिया के इस ओर के देशों में राष्ट्रीय भाव जाग्रत हुए हैं और बोल्शेवी सिद्धान्तों का भी खूब प्रचार हुआ है। अतएव इस ओर इन दोनों शक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता की नीति ने उनकी स्थिति को दृढ़ता नहीं प्रदान की है।

इँग्लैंड, फ्रांस और इटली में जो प्रतिद्वन्द्विता है तथा इनकी जर्मनी से जो घृणा है, इन दोनों बातों का मिट जाना ही अब वाञ्छनीय है। सभ्यता की रक्षा और अपनी प्रजा की भलाई के लिए इन राज्यों में ऐसा समझौता हो जाना चाहिए जिसमें बोल्शेविकों का भय दूर हो जाय। इसके साथ ही रूस के साथ व्यवहृत होनेवाली इनकी नीति में भी ऐक्य होना चाहिए। इस समय तो इनमें से प्रत्येक इस भय से कि कहीं हमारा प्रतिद्वन्द्वी हमसे अधिक लाभ न उठा ले, रूस को अपने जाल में फाँस लेने के प्रयत्न में है। रूस की वर्तमान आर्थिक दशा के आगे उसका ऋण का दायित्व स्वीकार कर लेना कुछ अर्थ ही नहीं रखता। उसे तो अपने पुनर्निर्माण के लिए पश्चिमी योरप की पूँजी की आवश्यकता है ही। यह बात उसके वर्तमान शासकों की भाव-भङ्गी से भी प्रकट होती है। वास्तव में रूस की समुन्नति से पश्चिमी योरप भी लाभान्वित होगा।

जर्मनी ने जो नया प्रस्ताव उपस्थित किया है वह एक महत्त्व-पूर्ण बात है। जर्मनी को अपनी समुन्नति के लिए अवसर देना ही होगा। क्योंकि तभी वह सन्तुष्ट होगा। और जर्मनी का सन्तुष्ट होना, फ्रांस की रक्षा तथा योरप की शान्ति की मीमांसा है।

योरप की वर्तमान दशा से अमरीका का भयभीत होना ठीक ही है। क्योंकि वह योरप के झगड़े में नहीं पड़ना चाहता। उसे व्यर्थ की शत्रुता मोल लेनी नहीं पसन्द है। अमरीका संसार के सभी देशों से मित्रता का ही व्यवहार रखना चाहता है।

विज्ञ

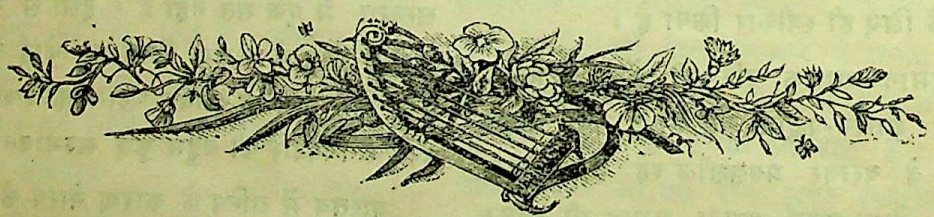

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

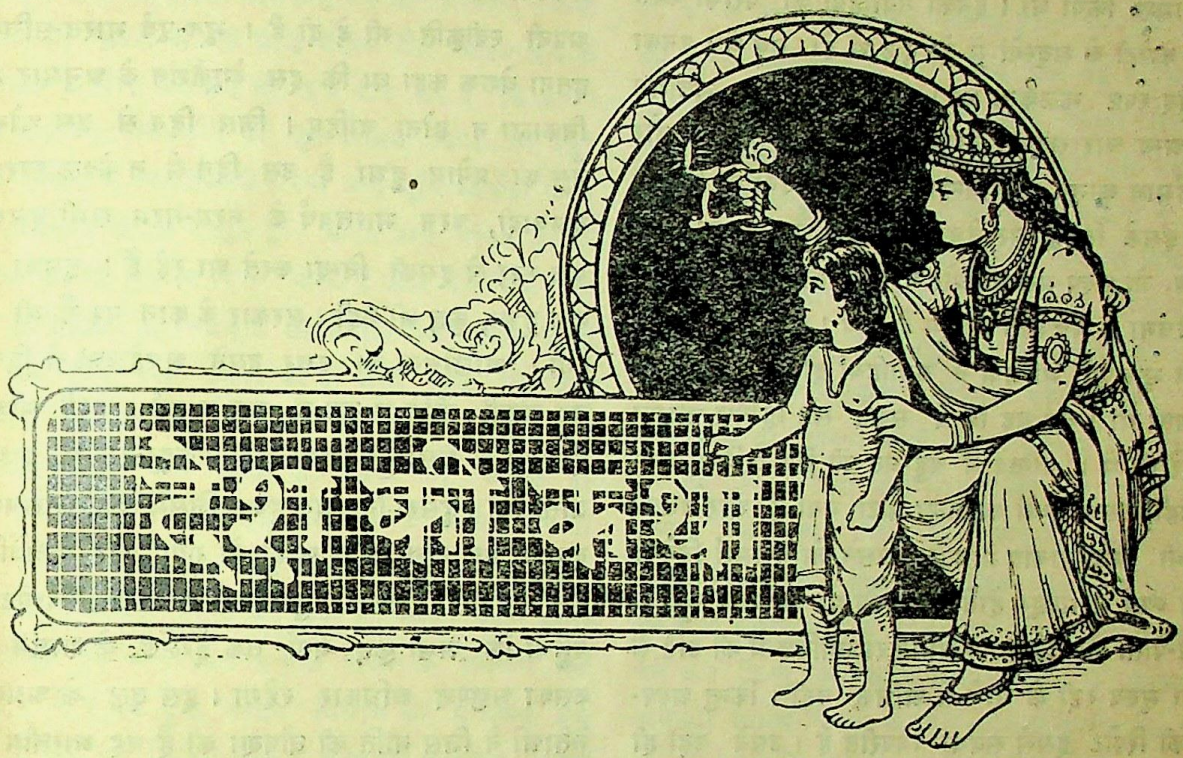

वर्तमान राजनैतिक स्थिति।

मिस्टर सी० वाई० चिन्तामणि महोदय ने, जो नरमदल के अग्रगण्य नेताओं में से हैं, अपने एक लेख में भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति का दिग्दर्शन कराया है। उसकी कुछ बातें पाठकों के विचारार्थ यहाँ दी जाती हैं। सबसे पहले उन्होंने गतवर्ष की महत्त्व-पूर्ण घटनाओं की आलोचना की है। वे लिखते हैं—

गतवर्ष व्यवस्थापक महासभा में दिये हुए वचन के अनुसार भारत-सरकार ने शासन-सुधार के क़ानून की कार्य-प्रणाली पर विचार करने के लिए दो कमेटियाँ बैठाई थीं। इनमें से एक कमेटी तो शुद्ध सरकारी कमेटी थी, किन्तु दूसरी कमेटी में जनता के प्रतिनिधियों की संख्या काफ़ी होने के कारण उसको सार्वजनिक कमेटी कह सकते हैं। पर उक्त दोनों कमेटियों के लिए एक बड़ा कड़ा प्रतिबन्ध था। वह यह कि उनके विचार और परामर्श को किसी प्रकार पूर्वोक्त क़ानून की रीति-नीति, उद्देश और ध्येय की उचित सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। पहली कमेटी का निष्कर्ष यह था कि जब तक स्वयं उक्त क़ानून में कोई संशोधन नहीं किया जाता तब तक कोई वास्तविक उन्नति सम्भव नहीं। भारत-सरकार ने यही नोट बड़ी कमेटी के सदस्यों के पास भेज दिया था। नोट में दो बातों का उल्लेख था। एक तो यह कि द्विविध शासन सन् १९१९ के क़ानून का प्रधान और अनिवार्य अङ्ग है। दूसरी यह कि उक्त क़ानून की १९ वीं धारा के अनुसार भारत-सचिव को जो विशेष अधिकार दिये गये हैं उनका प्रयोग बहुत ही कम अवसरों पर होना चाहिए।

इस प्रकार दूसरी कमेटी के सामने बहुत सा मसाला एकत्र हो गया था। सपरिषद गवर्नरों ने सन् १९२३ और २४ में क़ानून की कार्य-प्रणाली और संचालन के विषय में भारत-सरकार के पास अपनी सम्मतियाँ भेजी थीं, प्रान्तीय कार्यकारिणी समितियों के अधिकांश भारतीय सदस्यों ने अपना मतभेद प्रकट किया था, अधिकांश मंत्रियों ने अपनी राय पृथक्-रूप से प्रकट की थी। सार्वजनिक संस्थाओं और राजनैतिक नेताओं ने भी समय समय इस पर टीका-टिप्पणियाँ प्रकाशित की थीं। इस सारी सामग्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अतिरिक्त कमेटी ने मौखिक रूप से भी बहुत से सज्जनों से परामर्श किया था। इनकी गवाहियों की परीक्षा करते समय कमेटी के सदस्यों में दो दल से हो गये थे। उनका मतभेद स्पष्ट झलकता था। सर एलेकज़ेण्डर मुडीमेन और अन्य चार सदस्य, जो बहुमत की ओर थे, खुले तौर से वर्तमान क़ानून की निन्दात्मक आलोचना के विरोधी थे। इसके विरुद्ध सर तेजबहादुर सप्रू और अन्य तीन सदस्य, जो अल्प-मत की ओर थे, उतने ही खुले ढङ्ग से उस आलोचना के पक्षपाती मालूम होते थे। कमेटी के सामने जितने भूत-पूर्व मन्त्रियों ने गवाहियाँ दी थीं उनमें एक विशेषता थी। वह यह कि वे सबके सब द्विविध शासन के विरोधी थे। वास्तव में बहु-मत की रिपोर्ट किसी काम की नहीं, उसमें तथ्यों का गला घोंटा गया है और उसका तर्क भी वितण्डावाद मात्र है। उसने जो परामर्श दिये हैं वे भी व्यर्थ से मालूम होते हैं। संक्षेप यह कि उसमें खूब ही लीपा-पोती की गई है। भारतीय राजनीतिज्ञता की दृष्टि से उसका मूल्य रद्दी के पोथे से अधिक नहीं। किन्तु अल्प-मत की रिपोर्ट इससे सर्वथा विपरीत है। उसने बड़ी ही योग्यता और निष्पक्षता से तथ्यों का विश्लेषण किया है और तर्क-द्वारा गम्भीरता के साथ यह दिखा दिया है कि ऊपरी लीपा-पोती से काम नहीं चल सकता। उसकी स्पष्ट राय है कि क्षणिक उपायों से एक साङ्घातिक रोग को दूर करने की चेष्टा करना व्यर्थ है। सरकार की बुद्धिमानी इसी में है कि वह भावी राज्य-व्यवस्था की नीव ऐसे स्थायी सिद्धान्तों पर रक्खे जिससे नियमित समयों पर अपने आप उत्तरोत्तर उन्नति होती जाय। भारतीय जनता ने प्रायः एक स्वर से अल्प-मत की सम्मतियों का अभिवादन किया है और बहुमत की असङ्गत आलोचना और अनुचित परामर्शों की निन्दा की है।

इसके बाद चिन्तामणि महोदय ने एक दूसरी महत्त्व-पूर्ण घटना का उल्लेख किया है। वह है बङ्गाल आरडीनेंस का प्रयोग। इसके अनुसार बङ्गाल-प्रदेश में बहुत से आदमी पकड़े और नज़रबन्द किये गये हैं। इतना ही नहीं, वायसराय ने अपने विशेष अधिकारों के द्वारा दो बिलों का निर्माण भी किया है, जिनके अनुसार बराबर पाँच वर्ष तक उस ओरडीनेंस का बङ्गाल-प्रान्त पर दौरा रहेगा। वर्तमान और भूत-पूर्व दोनों भारत-सचिवों ने बिना किसी संकोच के इस अनुचित कार्यवाही पर अपनी स्वीकृति भी दे दी है। भूत-पूर्व भारत-सचिव ने इतना बेशक कहा था कि इस रेगूलेशन के अनुसार देश-निकाला न होना चाहिए। जिस दिन से इस ओरडीनेंस का प्रयोग हुआ है उस दिन से न केवल स्वराज्य-दलवादी, बरन भारतवर्ष के नरम-गरम सभी दलवाले एक स्वर से इसकी निन्दा करते आ रहे हैं। इसका फल क्या हुआ, कुछ भी नहीं। सरकार के कान पर जूँ भी नहीं रेंगी। आलोचना का उत्तर उसने अवहेलना से दिया। वह अपनी नीति से टस से मस न हुई। इसी बीच में इँग्लेण्ड के शासन की बाग-डोर मज़दूर-दल के हाथ से जाती रही। दूसरा निर्वाचन हुआ, जिसमें ब्रिटिश-लिबरल-दल तो एक प्रकार से साफ़ ही हो गया और कंज़र्वेटिव-दल एक ऐसे विशाल बहुमत के साथ पार्लियामेंट में पहुँचा कि अभी कुछ वर्षों तक इँग्लेंड के शासन पर उसका अक्षुण्ण अधिकार रहेगा। इस दल के अग्रगण्य नेताओं ने जिस नीति की घोषणा की है वह भारतीय दृष्टि से अधिक असन्तोषजनक नहीं हो सकती। नवीन भारत-सचिव ने ली कमीशन के अवाञ्छित और सर्वथा अनुचित परामर्शों के अनुसार काम करना भी प्रारम्भ कर दिया है। इसके राजनैतिक दुष्परिणाम अभी से दिखाई देने लगे हैं। कहने का तात्पर्य यह कि आज-कल जिस नीति का अवलम्बन किया जा रहा है वह उस घोषणा से सर्वथा विपरीत है जिसमें ब्रिटिश-शासन का ध्येय भारतवर्ष को उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन प्रदान करना बतलाया गया है। प्रवासी भारतवासियों की अवस्था भी बहुत ही शोचनीय है। उसको उन्नत करना तो दूर रहा, वह दिन-प्रति-दिन और भी बिगड़ती जाती है। समस्या उत्तरोत्तर गम्भीर हो रही है, किन्तु उसको सुलझाने के लिए न तो भारत-सरकार ने और न ब्रिटिश-सरकार ने ही कोई वास्तविक उपाय सोचा है और न उनका ऐसा इरादा ही मालूम पड़ता है। एक बात इससे भी भयङ्कर हुई है। अभी हाल में सरकार ने जिस सैनिक नीति की घोषणा की है वह महान् आपत्ति-जनक है। वैसे तो जिस दिन से ब्रिटिश लोगों ने इस देश में पदार्पण किया है, उसी दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बहुत सी बातों में उनकी नीति सर्वथा अनुचित और एक-दम अभारतीय रही है, किन्तु यह सैनिक नीति, हमारी समझ में, सबसे अधिक प्राण-घातक और भारत-हित के विपरीत है और आश्चर्य तो इस बात का है कि जान-बूझ कर भारतीय-हितों पर कुठाराघात किया जा रहा है। देखिए न, भारतवासी अपनी मातृ-भूमि की रक्षा करने के अधिकार से भी वञ्चित हैं। न तो उन्हें उचित सैनिक शिक्षा का ही अवसर दिया जाता है और न सैनिक सेवा का अधिकार। भारतवर्ष में जो ब्रिटिश-सेना रक्खी जाती है वह प्रायः उसी प्रकार की है जैसी कोई विजातीय शासक पराजित देश में रखना चाहता है। इसके पीछे जितना व्यय किया जाता है उसका तो कहना ही क्या! आज से ८ वर्ष पहले सन् १९१७ में यह घोषणा की गई थी कि अब भारतवर्ष में जो नया शासन-विधान प्रचलित किया जा रहा है उसका उद्देश होगा भारतवर्ष को अन्य स्वराज्य-प्राप्त राज्यों के समकक्ष कर देना। चार वर्ष इस नवीन विधान को प्रचलित हुए हो भी गये, पर ब्रिटिश-सरकार ने अपनी कलुषित सैनिक नीति में कोई परिवर्तन करने की इच्छा तक न की। कम से कम हमें उसके कोई लक्षण नहीं दिखाई दिये। बस, यही हमारे वर्तमान राजनैतिक क्षेत्र की सबसे विकट समस्या है। वायसराय अभी हाल में ही इँग्लैंड बुलाये गये हैं, वहाँ वे भारत-सचिव के साथ कई महत्त्व-पूर्ण विषयों पर विचार करेंगे। यदि भारत-सचिव की इच्छा हुई तो शायद वे भूत-पूर्व गवर्नरों तथा कार्यकारिणी समितियों के सदस्यों से भी परामर्श करें, क्योंकि आज-कल वहाँ उनकी कमी नहीं। ख़ासा दरबार है, कुछ तो छुट्टी पर गये हैं और कुछ ने पेन्शन ही ले ली है। पर इससे भारतीयों को सांत्वना नहीं मिल सकती। यद्यपि इन लोगों के व्यक्तिगत विचारों और भावों में बहुत अन्तर है, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष के लिए ये सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। कम से कम भारत-वर्ष के प्रति इनके प्रायः एक से ही विचार और भाव हैं, चाहे वे लिबरल हों या कंज़र्वेटिव। हमारी समझ में तो शायद उन सबमें उदार हमारे लार्ड रीडिंग ही हैं। किन्तु भला उनकी उदारता से भारतवर्ष को क्या लाभ हुआ!

यह तो हुई सरकार की कथा। उसके चिंतिंज में तो बड़े से बड़े सूक्ष्मवीक्षण-यंत्र के द्वारा भी हमें आशा की किरण नहीं दिखाई देती। अब प्रश्न यह है कि हमारे राजनीतिज्ञों की क्या अवस्था है। क्या उनका सार्वजनिक कार्य सन्तोषजनक है? इसके उत्तर में भी हमें नकार ही कहना पड़ता है। देश की सबसे दुखित घटना है हिन्दू-मुसलमानों का पारस्परिक वैमनस्य। अंधे से अंधा भी इसको प्रत्यक्ष देख सकता है। गत वर्ष जो हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े हुए हैं वे बहुत ही शोकजनक हैं। उन्हीं से द्रवित होकर सितम्बर में मिस्टर गाँधी ने एक लम्बा व्रत किया था, जिससे दिल्ली में एक कान्फ़रेन्स की योजना हुई थी। किन्तु जिस मेल-मिलाप की हम लोग आशा लगाये बैठे थे वह उसके द्वारा सम्पादित न हो सका। राजनैतिक दलों के मिलाने के लिए नवम्बर में एक ऐसी ही और कान्फ़रेन्स हुई थी। उसके लक्षण अच्छे दिखाई देते थे। किन्तु दिसम्बर में मिस्टर गाँधी के प्रस्ताव के अनुसार काँग्रेस-विधान के बदल जाने के कारण इस आशा पर भी पानी फिर गया। जब पुनः दिल्ली में उक्त कान्फ़-रेन्स का अधिवेशन हुआ उस समय ऐसा वाद-विवाद उठा कि उसके आगे राजनैतिक एकता की चेष्टा करना दुस्साहस प्रतीत होने लगा। बेलगाँव में राष्ट्रीय महा-सभा की प्रभा भी क्षीण हो गई, उसकी राजनैतिक शक्ति का ह्रास होने लगा। स्वराज्यदल अन्य सब दलों की अपेक्षा शक्तिशाली है, किन्तु उसे भी यह ज्ञान नहीं कि वह कितने पानी में है। उसे किस प्रकार कार्य करना चाहिए, यह ठीक ठीक स्थिर ही नहीं हुआ है। व्यवस्थापक-महासभा के 'लिबरल' सदस्यों ने इस वर्ष स्वराज्यदल के सदस्यों का साथ छोड़ दिया है। गतवर्ष व्यवस्थापक-महासभा में जो एक राष्ट्रीय-सम्मेलन सा बन गया था, इस वर्ष उसका अस्तित्व ही लोप हो गया है। इसके दोनों दल जिस प्रकार महासभा में लड़ते-झगड़ते थे वह दोनों के लिए ही लज्जा की बात है। इस महासभा में कुछ ऐसे 'स्वतंत्र' सदस्य भी हैं जो किसी ओर नहीं। इनमें पण्डित मदन-मोहन मालवीय और मिस्टर जिन्ना अन्य सबसे प्रधान हैं। किन्तु इनकी दशा भी विचित्र है। न तो ये स्वयं अपना कोई दल बनाते हैं और न स्वराज्यदल अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिबरल पार्टी में ही मिलते हैं। कुछ दिनों से लाला लाजपतराय की ओर देश का ध्यान विशेष-रूप से आकर्षित हो रहा है। लोग उनको विश्वास की दृष्टि से देखते हैं। यद्यपि वे अब भी अपने आपको काँग्रेस का समर्थक कहते हैं, तथापि यह उन्होंने साफ़ साफ़ कह दिया है कि उसमें हम बहुत-कुछ संशोधन चाहते हैं। उन्होंने 'स्वतंत्र' राजनीतिज्ञों को जो परामर्श दिया है वह हमारी समझ में सर्वथा उचित है। उनको तुरन्त ही अपनी अपनी धारणा के अनुसार उक्त दोनों में से किसी एक में सम्मिलित हो जाना चाहिए। इससे राजनैतिक वायुमण्डल बहुत साफ़ हो सकता है। किन्तु लालाजी ने स्वयं किसी एक विशिष्ट दल में सम्मिलित होकर ऐसा आदर्श उपस्थित नहीं किया है। लिबरल-दल का कार्य अब भी उसी प्रकार शान्त-रूप से चल रहा है जैसे पहले चलता था। वह अब भी अपनी उसी सुनिश्चित नीति का अवलम्बन कर रहा है, सभी देशों और सभी कालों में लोग जिसकी सत्यता का अनुभव कर चुके हैं। किन्तु भारतवर्ष में इसके समर्थक थोड़े हैं, इसका सङ्घटन भी शिथिल है। उसके अतिरिक्त न इसके पास कोष है और न नेता। मुस्लिम राजनीतिज्ञों ने लखनऊ के १९१६ के संधिपत्र को ठुकरा दिया है। वे चाहते हैं कि निर्वाचित संस्थाओं और सरकारी नौकरियों में उनके लिए स्थान पृथक्-रूप से सुरक्षित रक्खे जायँ। बहुत से हिन्दू इस बात को मान लेते हैं कि वर्तमान अवस्था में जातिगत निर्वाचन आवश्यक है, क्योंकि सारे देश में इस समय जातिगत के अतिरिक्त प्रान्तगत विधान के अनुसार निर्वाचन की व्यवस्था करना व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र के बाहर की बात है। पर प्रश्न तो यह है कि कितने स्थान? वास्तव में इनकी माँग इतनी अधिक है कि कोई हिन्दू उसके लिए तैयार नहीं हो सकता।

अन्त में चिन्तामणि महोदय लिखते हैं—आज भारतीय लोकमत जितना असङ्गठित है उतना शायद वह कभी नहीं रहा है। कम से कम हमें ऐसे समय की याद नहीं। यही कारण है कि उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। इसीलिए आज लोक-मत को एक व्यवस्थित और प्रबल संस्था के रूप में सङ्गठित होने की जितनी आवश्यकता है, उतनी शायद पहले किसी समय नहीं थी। यदि ऐसा नहीं होगा तो हम लोग अपने विपक्षियों के उस सङ्गठन का सामना किस प्रकार कर सकेंगे जो हमारे हितों को कुचलने पर तुला हुआ है। वह अपने दिल से हमको रत्ती भर अंश नहीं देना चाहता। पर दुःख की बात तो यह है कि यद्यपि सभी विचारशील और शिक्षित भारतवासी चाहते हैं कि भारतवर्ष में स्वराज्य हो और इँगलेंड भी हमारी इस इच्छा से परिचित हो चुका है, तथापि उसका कोई परिणाम होता नहीं दिखाई देता। बात यह है कि केवल राष्ट्रीय इच्छा से ही काम नहीं चल सकता। उसको कार्य-रूप में परिणत करने की चेष्टा होना चाहिए। राष्ट्र को कटिबद्ध हो जाना चाहिए कि ध्येय-प्राप्ति के बिना हम क्षण भर भी चैन नहीं लेंगे। हम लोगों में इसी बात की कमी है और भारतोन्नति के विरोधियों के पास यही सबसे बड़ा हथियार है। इसका इलाज भी बहुत साधारण मालूम होता है। इसकी अनिवार्यता के विषय में तो कहना ही क्या? पर साथ ही इस समय यह असम्भव सा मालूम होता है।

ऐसी अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे वर्तमान राजनैतिक नाटक का यह अङ्क दुःखान्त है या सुखान्त।

आलोचक

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

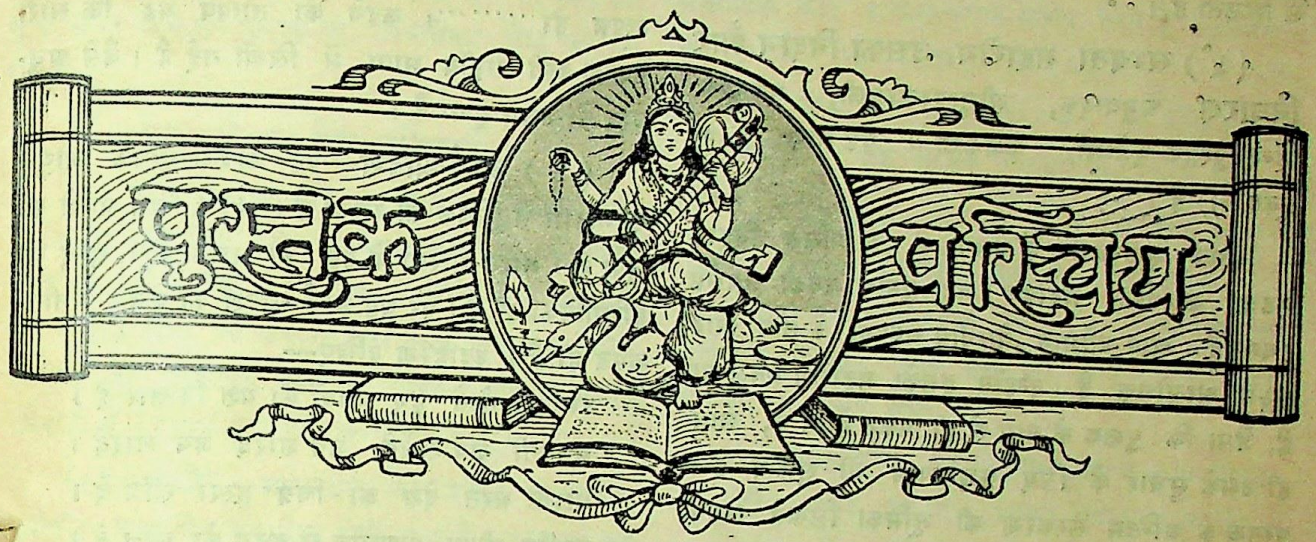

(१) वीर मराठे—लेखक श्रीयुत भीमसेन विद्यालङ्कार हैं। पृष्ठ-संख्या २१२ और मूल्य १) है। यह नवयुग ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प है। इसमें मरहटा-साम्राज्य की कथा सार-रूप में कही गई है। शिवाजी से लेकर अन्तिम पेशवा तक सभी मुख्य मुख्य मरहटों का वर्णन इसमें आगया है। इसके पढ़ने से महाराष्ट्र के उदय एवं अस्त, उसकी दोनों अवस्थाओं, का परिचय हो जाता है। विषय-विवेचन की शैली भी मनोरञ्जक है। लेखक ने इसे कई पुस्तकें पढ़कर स्वतन्त्र-रूप से लिखा है। छपाई और काग़ज़ साधारण है। नया बाज़ार, दिल्ली के पते पर शायद लेखक को लिखने से पुस्तक मिल सकती है।

(२) स्वाधीनता के पुजारी—लेखक श्रीयुत भूदेव विद्यालङ्कार, प्रकाशक, प्रताप-कार्यालय, कानपुर हैं। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या २२६ और मूल्य १।) है।

इसमें रूस देश के दस क्रान्तकारियों का चरित वर्णित है। ज़ारशाही के अत्याचारों से उत्पीड़ित होकर जो देश-भक्त समय समय पर स्वाधीनता की बलि-वेदी पर अपने आपको अर्पित करते रहे हैं उन्हीं में से चुनकर दस देश-भक्तों की कथा इसमें लिखी गई है। इनमें अधिक चरित स्त्री-देश-भक्तों के हैं। जिन व्यक्तियों के चरित इसमें लिखे गये हैं उनमें कई एक बहुत पहले हो गये हैं। इन चरितों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि देश-भक्त के जीवन का भाग कितना अधिक कण्टकाकीर्ण है और उसे पार करने में उसे अपने प्राण देने के पहले कैसे कैसे अमानुषिक अत्याचार सहन करने पड़ते हैं।

(३) अमीरी व ग़रीबी—इसे प्रोफ़ेसर सुधाकर एम० ए० ने लिखा है। इसमें अमीरी व ग़रीबी के वास्तविक अर्थ की चर्चा सरल भाषा में की गई है। अर्थ-शास्त्र के विचारों को लेखक ने सीधे-सादे ढङ्ग से भले प्रकार समझाने की चेष्टा की है। लेखक महोदय अपने प्रयत्न में सफल हुए हैं। यद्यपि यह विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है, तो भी इतर जन भी इससे लाभ उठा सकते हैं। भाषा सरल और छपाई सुन्दर है। मूल्य ॥) है। पता—इंडियन प्रिंटिङ्ग वर्क्स चौक ग्वाल-मण्डी, लाहौर।

(४) भारतीय शासन—लेखक श्रीयुत भगवानदास केला हैं। यह इसका चौथा संस्करण है। इसके इस प्रचार का एक कारण यह भी है कि यह पुस्तक बरार के हिन्दी-स्कूलों तथा अन्य दो-एक शिक्षा-संस्थाओं में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत है। और तो विषय के विचार से यह उपयोगी है ही। इसमें भारतीय शासन-पद्धति का संक्षेप में यथोचित वर्णन किया गया है। पहले के संस्करणों की त्रुटियाँ दूर कर तथा दो-एक नये विषयों के परिच्छेद बढ़ा देने से यह पुस्तक और अधिक उपयोगी एवं पूर्ण होगई है। इसका मूल्य ।।≡) है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक को भारतीय ग्रन्थ-माला वृन्दावन के पते पर लिखने से मिलती है।

(५) सभ्यता महारोग, उसका निदान और निवारण—अनुवादक, श्रीसुन्दरलालजी, प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या ३०७, मूल्य २।) है।

इसके मूल-लेखक हैं योरप के एक प्रसिद्ध विद्वान् एडवर्ड कारपेण्टर महोदय। यह पुस्तक उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। आप वर्तमान योरपीय सभ्यता के तीव्र और सूक्ष्म आलोचक हैं। उन्होंने इसको महारोग बतलाया है, जैसा कि पुस्तक के नाम से ही प्रकट होता है, साथ ही उसके सुधार के लिए कुछ उपाय भी सुझाये हैं। पुस्तक के अन्तिम संस्करण की भूमिका लिखते समय लेखक कहते हैं—जब इस पुस्तक का प्रथम संस्करण निकला था तब लोगों ने इस पुस्तक के विचारों को घृणा अथवा उदासीनता की दृष्टि से देखा था, किन्तु आज तीस वर्ष बाद यह कहा जा सकता है कि इसके अधिकांश विचार लोगों को मान्य हो गये हैं। इससे पुस्तक की उपयोगिता भली भाँति सिद्ध हो जाती है। जहाँ एक ओर संसार पश्चिम के विज्ञान और सङ्गठन की अपूर्व शक्ति को देख कर मोहित हो रहा है, वहाँ दूसरी ओर विचारशील मनुष्य उसके आन्तरिक जीवन की कृत्रिमता एवं स्वार्थ-परता के विरोधी हो रहे हैं। हमारे देश में भी इस समय दोनों दलों के व्यक्ति हैं, कुछ आधुनिक सभ्यता के पक्ष-पाती हैं और कुछ विरोधी। इस पुस्तक में सभ्यता के प्रश्न पर तात्त्विक दृष्टि से विचार किया गया है। अतएव पुस्तक का प्रकाशन बहुत ही सामयिक और उपादेय हुआ है।

अनुवाद की भाषा के सम्बन्ध में दो-एक शब्द लिखे बिना पुस्तक का परिचय पूरा नहीं हो सकता, क्योंकि इसकी भाषा कुछ निराली सी है। अनुवादक के शब्दों में ही इसका कारण सुन लीजिए—मैंने अपनी पुरानी आदत के खिलाफ़ उर्दू-शब्द स्वतंत्रता से इस्तेमाल किये हैं। मेरा विचार है कि उर्दू में अरबी और फ़ारसी लफ़्ज़ों की भरमार करना या हिन्दी को संस्कृत का नमूना बनाने की कोशिश करना दोनों बातें राष्ट्रीय भाषा के विकास में रुकावट डालनेवाली हैं। हमें वह रीति इख़्तियार करनी चाहिए जिससे हमारे हृदय और दिमाग़ों में विशालता उत्पन्न हो.....। कहने का तात्पर्य यह कि सारी पुस्तक इसी राष्ट्रीय भाषा में लिखी गई है। वैसे अनुवाद तो उत्तम हुआ है।

(६) आर्य-आदर्श—यह कविता-पुस्तक श्रीयुत शोभाराम धेनुसेवक की रचना है। ५, ६ वर्ष पहले की छपी है। भारत-भारती के ढङ्ग की रचना है। छन्द भी हरिगीतिका ही है। पर यह आर्य-आदर्श का केवल अतीत-खण्ड ही है। उदाहरण देखिए—

उभार दे सोते हुए भावों को यश विस्तार दे।
भगवती जय शारदे, जय शारदे जय शारदे।
भारती भरत देश का चित्र हृत्पर खींच दे।
स्वर्गीय वीणा वाद्यामृत से हृदय को सींच दे।

इसका मूल्य ॥) है। लेखक को श्रीतुलसी-ग्रन्थ-माला लखनादौन, सिवनी, (म० प्र०) के पते पर लिखने से मिलती है।

(७) वेदसंदेश (प्रथम भाग)—लेखक, श्रीविश्व-बन्धु शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल० आचार्य, प्रकाशक श्रीमती प्रबन्ध-कर्त्री सभा, डी० ए० वी० कालेज लाहौर। आकारा छोटा, पृष्ठ-संख्या ११४ और मूल्य सजिल्द का १।।।) और सादी का १।=) है। छपाई और काग़ज़ अच्छा और जिल्द भी सुन्दर है।

यह इस पुस्तक का प्रथम भाग है। इसका प्रकाशन दयानन्द-शताब्दी के उपलक्ष्य में हुआ है। इस भाग में दो अध्याय हैं। पहले अध्याय में वैदिक संसार के दार्शनिक स्वरूप का वर्णन है और इसमें विकासवाद से लेकर लोकायत, बौद्धमत, नवीन वेदान्त मायावादादि दार्शनिक विचार-धारा की मीमांसा करके वैदिक दार्शनिक विचार का कथन किया गया है। दूसरे अध्याय में शरीर तथा शारीरिक जीवन-सम्बन्धी वेद-मत का निदर्शन किया गया है। यह अध्याय भी पहले अध्याय की भाँति ५ उच्छ्वासों में विभक्त है। इसमें शारीरिक जीवन-सम्बन्धी ब्रह्मचर्य एवं नीरोग्यता आदि प्रमुख बातों का यथास्थान अलग अलग विस्तार के साथ विवेचन है। विषय-विवेचन संवाद-रूप में है। अतएव उसका आशय समझने में कठिनाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होती। प्रारम्भ में अकारादि क्रम से विषय-सूची तथा प्रमाण-रूप में आये हुए वेद-मन्त्रों की भी वैसी ही सूची लगा देने से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है।

कुछ नये पत्र और पत्रिकायें।

(१) भविष्य—कानपुर का साप्ताहिक भविष्य अब दैनिक हो गया है। दैनिक भविष्य चार पृष्ठों में छपता और एक पैसे में बिकता है। इसका वार्षिक मूल्य ८) है। यह राष्ट्रीय नीति का प्रचारक है। इसके सम्पादक दैनिक स्वतन्त्र के सहकारी सम्पादक पण्डित अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी हैं। इसकी एक प्रति का मूल्य)। है।

(२) कर्मवीर—मध्यप्रदेश का प्रसिद्ध साप्ताहिक कर्मवीर अब फिर प्रकाशित होने लगा है। इस बार वह खण्डवा से पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी के ही सम्पादकत्व में निकला है। पृष्ठ-संख्या १२ और वार्षिक मूल्य ३।) है। आकार-प्रकार पहले ही जैसा है।

(३) प्रभात—इस पत्र का जन्म दयानन्द-जन्म-शताब्दी के अवसर पर हुआ था। यह साप्ताहिक है और बरेली से निकलता है। इसकी पृष्ठ-संख्या १२, वार्षिक मूल्य ३।) और आकार प्रताप जैसा है। यह 'धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक समाचार पत्र' है। इसके सम्पादक प्रोफ़ेसर धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, तर्कशिरोमणि, एम० ए०, एम० ओ० एल०, आर० ए० एस हैं।

(४) हिन्दू-सेवक—यह पत्र ब्यावर से निकलता है। साप्ताहिक है। वार्षिक मूल्य ५) और पृष्ठ-संख्या सिर्फ़ ८ है। आकार भी प्रताप जैसा है। काग़ज़ और छपाई साधारण है। इसका उद्देश हिन्दू-जाति के धर्म और अधिकारों की रक्षा करना, हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों का अर्थ प्रकट करना और सामाजिक कुप्रथाओं का दूर करना है। इसके सम्पादक पण्डित रघुनाथप्रसाद शास्त्री वैद्यराज हैं।

(५) माहेश्वरी बन्धु—यह 'श्री डीडू माहेश्वरी' जाति का साप्ताहिक मुखपत्र है। कलकत्ते से प्रकाशित होता है। पृष्ठ-संख्या १२ और वार्षिक मूल्य ३) है।

(६) सैनिक—यह प्रताप के भूत-पूर्व सम्पादक श्रीयुत श्रीकृष्णदत्त पालीवाल के सम्पादकत्व में आगरे से निकला है। यह २० पृष्ठों में निकलता है। पत्र साप्ताहिक और आकार-प्रकार प्रताप जैसा है। वार्षिक मूल्य ३) है। इसका सिद्धान्त-वाक्य यह है—

कमर बाँध कर अमर समर में नाम करेंगे।
सैनिक हैं हम विजय स्वत्व-संग्राम करेंगे॥

(७) भगीरथ—यह पत्र बम्बई से निकला है। 'धार्मिक, राष्ट्रीय, व्यापारिक साप्ताहिक, संवादपत्र' है। इसके सम्पादक कृष्णकुमार मिश्र हैं। सनातनधर्म का पोषक है। इसका वार्षिक मूल्य ३।) और पृष्ठ-संख्या १६ है। आकार प्रताप जैसा है।

(८) शिक्षामृत—यह विविध-विषय-विभूषित शिक्षा-सम्बन्धी मासिक पत्र है। श्रीयुत गोपालदास रेजा के सम्पादकत्व में नरसिंहपुर से निकलता है। मध्य-प्रान्त के शिक्षा-विभाग से स्वीकृत है। इसका वार्षिक मूल्य डाक-व्यय सहित ३) है। मूल्य पेशगी लिया जाता है। आकार रायल अठपेजी है।

(९) हितैषी—यह 'विविध-विषय-विभूषित सामाजिक मासिक पत्र' है। इसका वार्षिक मूल्य २॥) है। इसके सम्पादक श्रीयुत शिवनारायण रामप्रताप उपाध्याय और सहायक सम्पादक काशीनाथ नारायण त्रिवेदी हैं। यह हितैषी कार्यालय, सारङ्गपुर (मालवा) से प्रकाशित होता है।

(१०) मातृभूमि—यह सचित्र मासिक पत्रिका है। आकार सरस्वती जैसा है। इसके सम्पादक श्रीयुत रघुनाथ विनायक धुलेकर एम० ए०, एल० एल० बी० और उपसम्पादक श्रीयुत व्रजभूषणलाल त्रिपाठी, विशारद 'निश्चल' हैं। यह झाँसी से निकली है। इसकी पृष्ठ-संख्या ४० और वार्षिक मूल्य ३) है। इसका सिद्धान्त-वाक्य 'स्वतन्त्रता जीवन है और दासता मृत्यु है।'

(११) सूर्योदय—यह श्रीवाराणसी विद्यापरिषद का मुखपत्र है। पाक्षिक है और संस्कृत में निकलता है। इसका वार्षिक मूल्य 'सज्जनों' से ३) और विद्यार्थियों तथा सभा-समाजों आदि से केवल ॥।) लिया जाता है। इसके सम्पादक श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री हैं। पता सूर्योदय-कार्यालय, जगत्गंज, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती।

(१) बङ्किमनिबन्ध-माला—अहमदाबाद और बम्बई सस्तु-साहित्य-वर्द्धक कार्य्यालय ने बङ्गभाषा के प्रसिद्ध लेखक बङ्किमचन्द्र चैटर्जी के निबन्धों का एक संग्रह, गुजराती भाषा में, कोई १० वर्ष पहले प्रकाशित किया था। उसका परिचय उसी समय सरस्वती में दिया गया था। यह कार्य्यालय उनकी "धर्म्मतत्त्व" नामक पुस्तक का भी गुजराती-अनुवाद प्रकाशित कर चुका है। इस बात को भी कई वर्ष हो चुके। इन दोनों पुस्तकों के पहले संस्करण का यथेष्ट आदर होने के कारण उनकी समस्त कापियाँ शीघ्र ही बिक गईं। अतएव पूर्वोल्लिखित कार्य्यालय ने अब इसका यह दूसरा संस्करण निकाला है। पर दोनों पुस्तकें अलग अलग न निकालकर एक ही में रख दिया है। आरम्भ में बङ्किम बाबू का विस्तृत चरित है, फिर उनकी निबन्धावली और अन्त में उनका धर्म्मतत्त्व छापा गया है। पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ६०० के लगभग, काग़ज़ मोटा, आकार बड़ा, ऊपर मनोमोहक जिल्द, और टाइप स्पष्ट है। मूल्य केवल १॥।=) है। बड़ी सस्ती और साथ ही बड़ी उपादेय पुस्तक है। लोक-रहस्य नामक निबन्धों में मनोरञ्जन करने की इच्छा रखने-वालों और धर्म्मतत्त्व में धर्म्म-रहस्य के जिज्ञासुओं की मनस्तुष्टि करने के लिए बहुत अधिक सामग्री है।

(२) धर्म्मतत्त्व—अहमदाबाद और बम्बई के सस्तु-साहित्य-वर्द्धक कार्य्यालय ने वङ्गदेश के विख्यात लेखक बङ्किमचन्द्र चैटर्जी के समस्त लेखों का संग्रह, बङ्किम-निबन्धावली के नाम से, प्रकाशित किया है। उसी में उनकी धर्म्मतत्त्व नामक पुस्तक भी आगई है। यह पुस्तक विशेष उपादेय है। इसमें धर्म्म के तत्त्व बड़ी योग्यता और बिल-कुल ही नये ढँग से समझाये गये हैं। इसी से पूर्व-निर्दिष्ट कार्य्यालय ने इसे, मँझोले आकार में, अलग भी प्रका-शित किया है। जो लोग बङ्किम बाबू के सभी निबन्ध नहीं ले सकते या नहीं पढ़ना चाहते वे इसे अलग लेकर अपनी ज्ञानलिप्सा की प्रचुर पूर्ति कर सकते हैं। इसी लिए इस कार्य्यालय ने यह आयोजना की है। प्रस्तुत पुस्तक की पृष्ठ-संख्या २४८ है। ऊपर काग़ज़ की साधारण जिल्द है। मूल्य केवल ।॥) है। आरम्भ में बङ्किम बाबू का ४८ पृष्ठ-व्यापी जीवनचरित है। मूल पुस्तक बँगला भाषा में है। उसका यह गुजराती अनुवाद है। अनुवादक हैं—भीमजी हरजीवन, सुशील। जो गुजराती भाषा जानते हैं और जो धर्म्म-ज्ञान की थोड़ी-बहुत प्राप्ति करना चाहते हैं उन्हें इस पुस्तक को ज़रूर पढ़ना चाहिए। इसमें निष्काम कर्म्म और ईश्वर-भक्ति का रहस्य बड़ी ही खूबी से सम-झाया गया है। जिस बुद्धिमत्ता से बङ्किमचन्द्र ने इसमें धार्म्मिक विचारों का ग्रन्थन किया है वह सर्वथा प्रशंस-नीय है। उनके ये विचार कभी पुराने होने के नहीं। खुशी की बात है, इस पुस्तक का अनुवाद हिन्दी में भी हो चुका है।

(३) धम्मपद—गौतम बुद्ध के मुख से, अपने जीवन-काल में, भिन्न भिन्न अवसरों पर, भिन्न भिन्न विषयों के सम्बन्ध में अनेक सुभाषित निकले थे। उनके देहावसान के अनन्तर उनके शिष्यों और बौद्धश्रमणों ने उन्हें पद्य का रूप देकर उनका प्रचार किया। ये पद्य पाली भाषा और अनु-ष्टुप् छन्द में हैं। इन्हीं के समुदाय का नाम है धम्मपद अर्थात् धर्म्म-सम्बन्धी पद्य या पद। यह समुदाय विषया-नुसार अनेक वर्गों में विभक्त है। यथा—चित्तवर्ग, पण्डितवर्ग, पापवर्ग, दण्डवर्ग, जरावर्ग आदि। यह धम्मपद गाथा-साहित्य के अन्तर्गत है। बौद्धधर्म्म के अनुयायी इसे बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। इसके अनुवाद चीनी भाषा तक में हो गये हैं। चीनी तुरकिस्तान के खोटन नामक नगर के पास खँडहरों में ज़मीन के भीतर से भी इसकी खण्डित प्रतियाँ मिली हैं। प्रस्तुत पुस्तक में पाली भाषा के इन्हीं धम्मपदों का संग्रह, देवनागरी अक्षरों में, छापा गया है। मूल के साथ ही, दाहनी तरफ़, उनका अनुवाद भी गुजराती भाषा और गुजराती ही अक्षरों में दे दिया गया है। आरम्भ में एक लम्बी प्रस्ता-वना है। उसमें बौद्ध-साहित्य और धम्मपद के विषय में विशेष विवेचना की गई है। गुजराती-अनुवाद धर्म्मानन्द कोसम्भी और रामनारायण पाठक ने किया है। पुस्तक पर जिल्द है। छापे की भूलें बहुत रह गई हैं। इससे विस्तृत शुद्धिपत्र लगाना पड़ा है। मूल्य १) है और मिलने का पता—गुजरात-विद्यापीठ, अहमदाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला।

बम्बई से मुनि-अनन्तकीर्ति-दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला नाम का एक ग्रन्थ-गुच्छ प्रकाशित होता है। प्राचीन जैन-ग्रन्थों का सम्पादन करके उनका प्रकाशन इस माला में किया जाता है। इसके पहले छः ग्रन्थों या पुष्पों की एक एक कापी हमें समालोचनार्थ प्राप्त हुई है। जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्य्यालय, हीराबाग़, डाकख़ाना गिरगाँव, बम्बई ने इन पुस्तकों को भेजने की कृपा की है। उसी से ये सब ग्रन्थ मिल सकते हैं। इनका परिचय, थोड़े में, नीचे कराया जाता है।

मूलाचार—इस माला का यह पहला पुष्प है। मूल-ग्रन्थ प्राकृत भाषा के गाथा-छन्द में है। उसके कर्ता श्री वट्टकेरस्वामी नाम के कोई प्राचीन जैनाचार्य्य हैं। उनके अस्तित्वकाल के विषय में ग्रन्थ-प्रकाशक या सम्पादक ने कुछ नहीं लिखा। ग्रन्थ का सम्पादन और संशोधन पण्डित मनोहरलाल शास्त्री ने किया है और प्रकाशन मुनि-अनन्तकीर्ति-दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला के अधिकारियों ने। अपने ५ ग्रन्थों का प्रकाशन भी उन्हीं ने किया है। पुस्तक में पहले तो प्राकृतभाषाबद्ध मूल गाथायें हैं, फिर श्री वसुनन्दि-सिद्धान्त चक्रवर्ती की लिखी हुई उसकी संस्कृत-छाया है। तदनन्तर भाषा का भावार्थ हिन्दी में है। यह भावार्थ पण्डित नन्दलाल और ऋषभदास ने पहले जयपुरी-भाषा में किया था। उसी का रूपान्तर, बोल-चाल की हिन्दी-भाषा में, करने का श्रेय पूर्वनिर्दिष्ट पण्डित मनोहरलाल शास्त्री को प्राप्त हुआ है। पुस्तक में मूलगुणाधिकार, पञ्चाचाराधिकार, शीलगुणाधिकार आदि १२ अधिकार या अध्याय हैं। उनमें उनके नामानुसार जैनाचारों का विस्तृत वर्णन है। पुस्तक का आकार मँझोला, छपाई और काग़ज़ उत्तम, पृष्ठ-संख्या ४५० के ऊपर और मूल्य ३) है। ऊपर सुन्दर जिल्द है।

श्रावकाचार—यह इस माला का दूसरा ग्रन्थ है। इस पर भी सुन्दर जिल्द है। छपाई और काग़ज़ भी पूर्ववत् उत्तम है। पर पृष्ठ-संख्या ५०० के ऊपर होने पर भी मूल्य केवल १॥=) है। आकार इसका भी मँझोला है। मूल ग्रन्थ संस्कृत-भाषा में है। उसके कर्ता आचार्य्य अमित-गति हैं। उनको हुए आठ नौ सौ वर्ष हो चुके। ग्रन्थ १५ परिच्छेदों में विभक्त है। रचना अनेक सरस और श्रुतिमधुर वृत्तों या छन्दों में है। उनमें अमितगति ने श्रावकों के भिन्न भिन्न आचारों का विस्तृत वर्णन किया है। उनकी मूल-संस्कृत-रचना का भावार्थ भी प्रत्येक श्लोक के नीचे दे दिया गया है। इस भावार्थ या अनुवाद के कर्त्ता कोई पण्डित भागचन्द्र नाम के सज्जन हैं। पुस्तक को छपकर प्रकाशित हुए लगभग चार वर्ष हो गये।

प्रमेयरत्नमाला—इस नाम की पुस्तक इस माला का तीसरा फूल है। इसका भी आकार मँझोला, छपाई साफ़-सुथरी, काग़ज़ चिकना और पृष्ठ-संख्या २५० है। ऊपर बड़ी अच्छी जिल्द है। मूल्य लिखा नहीं।

कोई डेढ़ हज़ार वर्ष पूर्व माणिक्यनन्दि नाम के एक आचार्य्य होगये हैं। वे जैन थे और न्याय-शास्त्र के उद्भट विद्वान् थे। उन्होंने परीक्षामुख नामक एक सूत्र-ग्रन्थ की रचना की और उसमें जैनों के शास्त्रों के अनुकूल हेय तथा उपादेय पदार्थों का विवेचन किया। अर्थात् परीक्षा-द्वारा उन्होंने सत् और असत् वस्तुओं का विवेचन करके एक छोटे से परन्तु प्रामाणिक न्याय-ग्रन्थ की रचना की। उनके इस ग्रन्थ की एक विस्तृत टीका अनन्तवीर्य-सूरि नाम के न्यायशास्त्री जैनाचार्य्य ने लिखने की कृपा की। इस टीका में उन्होंने मूल का मतलब समझाने के सिवा शङ्का-समाधान, शास्त्रार्थ और खण्डन-मण्डन का समावेश करके ग्रन्थ की गहनता को और भी बढ़ा दिया। जयपुर के आधुनिक पण्डित जयचन्द्र ने इस टीका की "भाषा वचनिका" लिखकर टीका का अर्थ-ज्ञान यथाशक्ति सुलभ कर दिया। परन्तु भाषा आपने अपनी ही अर्थात् ढूँढारी या राजस्थानी ही रक्खी। प्रस्तुत पुस्तक में माणिक्यानन्दि के मूल-सूत्र तो ज्यों के त्यों दे दिये गये हैं, पर अनन्तवीर्य की प्रमेयरत्नमाला नाम की संस्कृत-टीका न छापकर केवल उसकी ढूँढारी वचनिका ही छापी गई है। इस वचनिका की शैली सर्वथा पुरानी है। अतएव उसे पढ़ते समय नवीन जिज्ञासुओं के मन में कुछ न कुछ उद्वेग अवश्य ही उत्पन्न होता है। तथापि जैनों के न्यायशास्त्र-सम्बन्धी इस प्राचीन ग्रन्थ को इस प्रकार के सुलभ कर देने के लिए माला के सञ्चालक धन्यवाद के पात्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

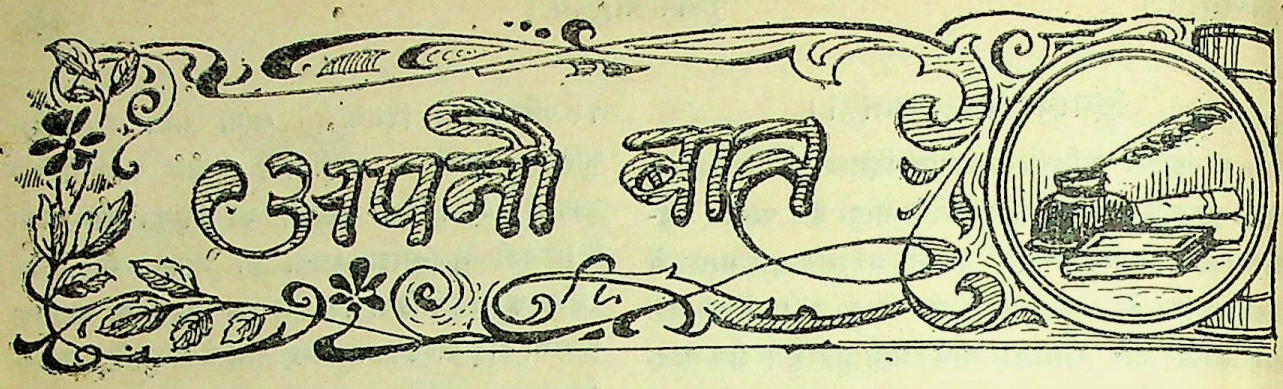

संयम का महत्त्व।

स्त्री और पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा होना चाहिए, यह प्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य की पाशविक वृत्तियों में काम-लिप्सा-प्रवृत्ति शायद सबसे अधिक प्रबल है। जो मनुष्य इस वृत्ति को यथेष्ट संयम के अधीन नहीं रख सकते वे अपने शरीर, मन, बुद्धि को तो नष्ट-भ्रष्ट कर ही देते हैं, किन्तु उनका समाज भी उनके कुफल से सुरक्षित नहीं रह सकता। इतिहास इस बात का साक्ष्य देता है कि जिस जाति, समाज अथवा राष्ट्र ने अपने अन्तर्गत स्त्री-पुरुषों की भोग-लिप्सा-सम्बन्धी उच्छृङ्खलता को रोकने के लिए विशेष प्रयत्न नहीं किया, वह बहुत ही जल्दी पतन के गर्त में विलीन हो गया है। हमारे पूर्वजों ने शायद विवाह-प्रथा इसी उद्देश से प्रचलित की थी। इसके प्रयोग से दो बातें अनुभवसिद्ध हो चुकी हैं। एक तो यह कि साधारणतः विवाहित स्त्री-पुरुष अपनी भोग-लिप्सा-वृत्ति को जितना अधिक संयम में रख सकते हैं उतना अविवाहित स्त्री-पुरुष नहीं रख सकते। और दूसरी यह कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ इस संयम में अधिक सफल होती हैं। जिन जातियों की स्त्रियों ने अपने पातिव्रत की भले प्रकार रक्षा की है, उसको प्राणाधिक प्रिय समझा है, वे जातियाँ हज़ारों सङ्कट सहने पर, सैकड़ों विजेताओं के आघातों से कुचले जाने पर भी, एक-दम लुप्त नहीं होगईं। इसके विरुद्ध जिन जातियों की स्त्रियों ने इसको इतना अधिक महत्त्व नहीं दिया वे किसी न किसी प्रकार अपना सर्वस्व खो चुकी हैं। उदाहरण के लिए हिन्दू रमणियाँ इस बात का गर्व कर सकती हैं कि हम इस विषय में संसार की अन्य स्त्रियों से अधिक उन्नत हैं। जिस समय मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण किया और यहाँ की स्त्रियों का धर्म भ्रष्ट करना चाहा, उस समय अधिकांश स्त्रियों ने अत्याचारियों के स्पर्श से कलुषित होने की अपेक्षा चिता पर जलना, प्रज्वलित अग्नि का आलिङ्गन करना कहीं अधिक उत्तम समझा। उनका वह आदर्श पातिव्रत-प्रेम वर्तमान हिन्दू-जाति के अस्तित्व का शायद सबसे बड़ा कारण है। यदि उन रमणियों में वह आदर्श-प्रेम न होता तो आज हिन्दू-जाति का अस्तित्व होता या न होता—यह भी बहुत सन्देह की बात हो जाती। क्योंकि भारतवर्ष की ही तरह मुसलमानों ने जब भूमध्य-सागर के समीपवर्ती—जैसे सीरिया, मिस्र, मोरोको, एंलजीरिया आदि देशों पर आक्रमण किया तब वहाँ की स्त्रियाँ इस परीक्षा में उत्तीर्ण न हुईं, वे आसानी से मुसलमानों के हाथों बिक गईं। फल यह हुआ कि उनका ईसाईपन नष्ट हो गया। उस समय ये देश ईसाई थे। यद्यपि ईसाई-धर्म ने पातिव्रत-धर्म पर बहुत ज़ोर दिया है, यहाँ तक कि उसने स्त्री और पुरुष दोनों के ही पुनर्विवाह का निषेध किया है, क्योंकि उसकी दृष्टि में पुनर्विवाह सदैव असंयम का चिह्न है, तथापि वे ईसाई-स्त्रियाँ अपना धर्म पालन करने में समर्थ न हुईं। यहाँ हम पहले यह दिखलाना चाहते हैं कि वर्तमान समय में पाश्चात्य देशों के सदाचार की क्या अवस्था है। इतना तो निश्चित है कि वहाँ पातिव्रत-धर्म का उतना माहात्म्य नहीं है, जितना हिन्दुओं अथवा बौद्धों में है। लेकिन इस बात को योरोपियन विद्वानों के ही मुख से सुनिए।

पाश्चात्य देशों का नैतिक पतन।

मिस्टर क्रोले लिखते हैं—

ईसाई-मत को प्रचलित हुए दो सहस्र वर्ष होने-वाले हैं, पर अभी तक ईसाई-जगत् स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक ठीक नहीं समझ सका है। इसके सम्बन्ध में उसकी भावना अनिश्चित, असङ्गत और अन्धविश्वासपूर्ण है। वेस्टर मार्क का कहना है कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ स्त्री-पुरुषों के अनुचित सम्बन्धों की संख्या में भी वृद्धि हो रही है। इँग्लेंड के प्रसिद्ध ऐतिहासिक गिबन की भी यही राय है—इसमें सन्देह नहीं कि सभ्यता के अधिकाधिक उन्नत होने से मनुष्य की भयङ्कर और उद्दण्ड वृत्तियों का बहुत शमन हो रहा है, पर पातिव्रत-धर्म के विषय में कोई उन्नति नहीं दिखाई देती।

आईवन ब्लाक लिखते हैं—यदि हम एक शब्द में वर्तमान योरपीय सभ्यता के मर्म को व्यक्त करना चाहें तो वह होगा—जीवन-सङ्ग्राम के दारुण परिश्रम से परिमार्जित भोग-लिप्सा। हमारे जीवन से शान्ति और संयम का अभाव हो रहा है। हम लोग पागलों की भाँति भयङ्कर से भयङ्कर और उद्दण्ड से उद्दण्ड उत्तेजनाओं के पीछे दौड़ते-फिरते हैं। उत्तेजना जितना ही कामोद्दीपक होती है, उतनी ही मनोरञ्जक समझी जाती है। शहरों के अधिकांश निवासी निरन्तर ऐसे ही मनोरञ्जन की खोज में तल्लीन रहते हैं। किन्तु इतने से ही बस नहीं, हमें एक क़दम और आगे बढ़ना पड़ता है, इन वासनाओं में लिप्त होकर संभोग से बचना बड़ा ही दुस्तर कार्य है। वर्तमान काल में बड़े शहरों की उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ इस प्रवृत्ति का घनिष्ट सम्बन्ध है। शहर जितना ही बड़ा होगा, उसमें उत्तेजक सामग्री का उतना ही अधिक प्राधान्य होगा। किन्तु धीरे धीरे छोटे छोटे शहरों और देहातों में भी इसका अनुकरण होने लगा है।

इतना ही नहीं, हमारे यहाँ के साहित्यज्ञ भी इस प्रवृत्ति को बढ़ाने में सहायता कर रहे हैं। उनकी लिखी हुई छोटी-बड़ी लाखों पुस्तकें, आँख और कान को तृप्त करनेवाली पेरिस की मनोरञ्जक वस्तुएँ तथा सुस्वादु खाद्य-पदार्थ—ये सबके सब हमको एक ही दिशा की ओर ले जा रहे हैं—और वह है स्त्री। कहने का तात्पर्य यह कि आधुनिक सभ्यता मनुष्य की कामवासना को जाग्रत, उत्तेजित, उन्नत और जटिल बनाने के लिए नित नई-नई युक्तियाँ निकाला करती है। शहरों का जीवन तो, जो आधुनिक सभ्यता के केन्द्र हैं, एक-दम कामोद्दीपक है। आज-कल मांस और शराब की अधिकाधिक खपत ने भी काम-वासना को बेहद बढ़ा दिया है। उसकी तृप्ति के लिए लोग न जाने कौन-कौन सी उपाय नहीं करते हैं। बहुमूल्य और स्वादिष्ट भोजन में कामोद्दीपक शक्ति होती है—इसका लोग खूब अनुभव कर चुके हैं और शराब तो मानो हमारे विलासप्रिय आधुनिक जीवन का मूल स्रोत ही है। धीरे धीरे यह अज्ञातरूप से मनुष्य को अपने चङ्गुल में इस प्रकार फँसा लेती है कि फिर उसका विलासप्रियता, अनाचार और तज्जनित रोगों के कुचक्र से निकलना दुस्साध्य हो जाता है।

आज-कल सभ्य जगत् के ब्रह्मचर्य-संयम की बुरी हालत है। आश्चर्य तो यह है कि समाज ने अभी तक इस विषय में अपना मत भी स्थिर नहीं कर पाया है। सारा विधान तर्क-हीन और असङ्गत है। एक ओर लोग घोर से घोर अनाचार और व्यभिचार को आँख मूँदे सह लेते हैं और दूसरी ओर व्यर्थ के विधि-निषेधों से मनुष्य के अन्तःकरण को कुचलते हैं और ज़रा सी अवज्ञा पर कठोर से कठोर दण्ड देते हैं। हमारी वर्तमान सभ्यता तो एक-दम काम-लिप्सा के पीछे पागल सी हो उठी है। उसकी चर्चा करने से ही लोगों में उत्तेजना का भाव जाग्रत हो जाता है। आज-कल आपको ऐसे बहुत कम दम्पति मिलेंगे जो वास्तव में स्वास्थ्यकर और आनन्दमय जीवन व्यतीत कर रहे हों। नहीं तो स्त्री-पुरुष के संसर्ग का नाम लेते ही लोगों के हृदय में बिजली सी दौड़ जाती है, आँखें चमक उठती हैं, स्वर भारी हो जाता है, गालों पर लालिमा छा जाती है जैसे कोई बड़ा भारी अपराध किया हो।

अब ज़रा इँग्लेंड के सुप्रसिद्ध विद्वान् मिस्टर वेल्स की भी राय सुनिए। उनका कहना है—मेरी निश्चित राय है कि गत सौ वर्षों में संसार के सभ्य देशों की जनता का साधारण तौर से नैतिक अधःपतन ही हुआ है। यद्यपि आज-कल हमारे बीच में सैकड़ों धार्मिक सुधारक और उदार विश्वप्रेमी हैं, तथापि संसार में दयनीय और दीन-हीन बच्चों की बेहद वृद्धि हो रही है। ऐसा मालूम होता है कि ये लोगों को असली भेद की बात ही नहीं बतलाते अथवा इनकी चलती ही नहीं, क्योंकि काम-वासना को रोकना कोई आसान काम नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नूतन व्याधि।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि सभ्य संसार की वर्तमान नैतिक अवस्था सन्तोषजनक नहीं है। वैसे तो इस दुरवस्था के बहुत से कारण हो सकते हैं, परन्तु सबसे प्रधान कारण यह है कि बचपन में बालकों के ब्रह्मचर्य्य की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। डाक्टर ड्यूक्स लिखते हैं—यह बुराई आज-कल बहुत ही व्यापक हो रही है। यद्यपि इसका ठीक ठीक हिसाब लगाना असम्भव सा है, तथापि मेरा अनुमान है कि बोर्डिङ्ग हाउसों में रहनेवाले लगभग ९५ फ़ी सदी छात्र वहाँ से निकलने के पहले अपना ब्रह्मचर्य्य तोड़ देते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि इनके माता-पिता इस विषय में पूर्ण उदासीन रहते हैं। उन्हें घर से भेजने के पहले वे उनसे उपदेशात्मक एकाध वाक्य भी नहीं कहते। फल यह होता है कि भोले-भाले बच्चे अज्ञानता के कारण बुराई के दलदल में फँस जाते हैं। डाक्टर आर्थर शिवली का कहना है—प्रारम्भ में बच्चे यह नहीं समझते कि इस कार्य्य से किसी प्रकार की हानि भी हो सकती है। उन्हें उसमें आनन्द आता है, अतएव वे उससे हाथ नहीं खींचते। इस आनन्द में एक और विशेषता होती है, वह यह कि जिह्वा-सन्तुष्टि की भाँति इसमें एक भी पैसा ख़र्च नहीं करना पड़ता। बच्चों में उस समय आत्म-संयम की शक्ति तो यथेष्ट होती नहीं, अतएव वे दिन-प्रतिदिन गड्ढे में गिरते जाते हैं।

किन्तु सबसे बड़ी विपत्ति तो यह है कि बचपन की इस लापरवाही का दुष्परिणाम केवल बचपन तक ही सीमाबद्ध नहीं रहता। जब बचपन से निकल कर वे युवावस्था में प्रवेश करते हैं तब कामवासना के प्रलोभनों को जीतने की उनमें शक्ति ही नहीं रह जाती। आज-कल आपको ऐसे बहुत से मनुष्य मिलेंगे जो जीवन की अन्य बातों में सर्वथा प्रशंनीय होते हुए भी इस विषय में मुँह के बल गिर पड़ते हैं। या तो वेश्याओं के चक्कर में फँसते हैं या निर्दोष बालिकाओं को फँसाने के लिए ऐसे जाल फैलाते हैं जिसकी चर्चा ही घृणोत्पादक है। डाक्टर क्लेमेंट का भी यही कहना है—यदि हम वेश्या-वृत्ति अथवा समाज की अन्य बुराइयों को ध्यानपूर्वक देखें तो उनका मूल-कारण हमें बचपन की यही लापरवाही मालूम होगी। यदि हम चाहते हैं कि समाज से ये बुराइयाँ उठ जायँ तो हमें चाहिए कि हमें अपने बालकों और विद्यार्थियों के जीवन को अधिक पवित्र और अधिक शुद्ध बनाने की कोशिश करना चाहिए। अन्यथा इस भयङ्कर सामाजिक रोग का निवारण ही कैसे हो सकता है! जिस समाज में अनुचित भोगलिप्सा के लिए स्त्रियों की माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती हो, उसमें स्त्री-समाज को उन्नत करने की बात करना व्यर्थ है। उसका तो एक ही उपाय है। वह यह कि पहले पुरुषों को उन्नत बनाओ, तब ऐसी स्त्रियों की माँग कम होने से समाज अपने आप परिष्कृत हो जायगा। अतएव हमें बालकों को उसी समय से संयम और ब्रह्मचर्य-पालन करने का महत्त्व समझाना चाहिए जब उनकी काम-वासना इतनी प्रबल नहीं होती कि वे उनको एक-दम अपने वशीभूत करलें। मेरी समझ में नैतिक सुधारक चाहे जितनी कोशिश करें वे कदापि वेश्या-वृत्ति को दमन करने में समर्थ नहीं हो सकते। यदि हम इस बुराई को समाज से दूर करना चाहते हैं तो हमें इसके मूल-स्रोत पर आघात करना चाहिए अर्थात् जो वेश्यागमन करते हैं उनके जीवन को शुद्ध करने की चेष्टा करना चाहिए। यदि वेश्याओं की माँग कम हो जायगी तो वे अपने आप कम हो जायँगी।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। हमें केवल बालकों को ही ब्रह्मचर्य और संयम की शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं है, बरन बालिकाओं की भी पवित्रता हमें उतनी ही प्रयोजनीय होना चाहिए। यदि बालक और बालिकाओं—दोनों के चित्त पर पवित्रता के भाव अङ्कित कर दियें जायँ तो बहुत सम्भव है कि यह बुराई धीरे धीरे बहुत कुछ निर्मूल होने लगे। क्योंकि यह तो निश्चित सा है कि सौ में निन्नानबे फ़ी सदी लड़कियाँ जो इस वृत्ति को ग्रहण करती हैं वे कभी इसे स्वेच्छापूर्वक नहीं अङ्गीकार करतीं। वे प्रारम्भ में अवश्य ही किसी न किसी प्रकार बहकाई जाती हैं। या तो उनकी भोग-लिप्सा इतनी उत्तेजित कर दी जाती है कि उसको सँभालना उनके आत्मसंयम के बाहर की बात हो जाती है अथवा उन्हें ऐसे ऐसे दुर्लभ सुख-भोगों का प्रलोभन दिया जाता है कि वे बिलकुल अन्धी हो जाती हैं। पर आश्चर्य तो यह है कि ये काम

112882

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल नीच प्रकृति के व्यक्ति ही नहीं करते, बरन बड़े बड़े शिक्षित और सभ्य पुरुष भी, जो आज्ञाकारी पुत्र, स्नेही भ्राता, शुभचिन्तक मित्र अथवा देश-प्रेमी नागरिक कहलाते और वास्तव में होते हैं, वही अपने बाल्यकालीन असंयम के कारण भोली-भाली लड़कियों को फँसाने के लिए उत्कण्ठित हो उठते हैं। फिर इन बेचारियों का क्या दोष! यही न कि उनका शरीर सुन्दर और सुडौल होता है अथवा यह कि उनमें प्रेम की मात्रा इतनी अधिक होती है कि वे कभी किसी का अविश्वास ही नहीं करतीं। पर हे भगवन्! इसके कारण जो रौरव नरक उनको भोगना पड़ता है उसकी कल्पना से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं!

असल बात यह है कि बचपन में जिन बालक और बालिकाओं का ब्रह्मचर्य-व्रत खण्डित हो जाता है, फिर उनकी प्रेम-भावना भी स्वार्थमय हो जाती है। चाहे कोई मरे या जिये, उन्हें अपने काम से काम। जीवन के अन्य कामों की कर्त्तव्य-बुद्धि तथा सौजन्य से वे अवश्य ही प्रेरित होते हों। उन्हें भी दूसरों को प्रसन्न करने की इच्छा रहती है, वे भी अपने सहयोगियों के साथ सचाई से प्रतिद्वन्द्विता करना चाहते हैं, उन्हें भी कर्तव्यनिष्ठा होती है, वे भी सत्य के भक्त होते हैं। पर जहाँ भोग-लिप्सा की बात आती है तहाँ वे किसी प्रकार अपने आपको नियंन्त्रण में नहीं रख सकते। फिर उस भोग-लिप्सा के जो शिकार हो जाता है उसका चाहे जितना अहित होता हो, अपनी स्त्री को जिसे वह प्राणाधिक प्रिय समझता है चाहे जितना कष्ट होता हो, अपने पुत्रों का चाहे जितन भला-बुरा हो, इस विषय में वह किसी की परवा नहीं करता, उसकी एकमात्र इच्छा होती है अपनी कामवासना को तृप्त करना। यह तो हुआ पाश्चात्य देशों की नैतिक अवस्था का चित्रण।

पाश्चात्य देशों के संसर्ग का फल।

अब यह देखना चाहिए कि इसका अन्य देशों पर जिन्हें वे असभ्य कहते हैं, क्या प्रभाव पड़ा है। अमेरिका का एक मासिक पत्र लिखता है—जिस समय योरपीयों ने अमेरीका पर आक्रमण किया, उस समय यहाँ रेड इण्डियन वास करते थे। वे सभ्यता की वर्तमान परिभाषा के अनुसार असभ्य थे, इसमें सन्देह ही क्या। पर उस समय उनमें कुछ नैतिक गुण, जिनमें पातिव्रत-धर्म और एकपत्नीव्रत भी सम्मिलित है, इतनी अधिक मात्रा में पाये जाते थे कि उस मात्रा में ये गुण आज-कल के सभ्य देशीय श्वेताङ्गों में भी नहीं पाये जाते।

एक दूसरे विद्वान् ने तो यहाँ तक लिखा है—यदि कहीं असभ्यता और वेश्या-वृत्ति का पारस्परिक सम्बन्ध दिखाया गया हो तो आपको तुरन्त ही यह समझ लेना चाहिए कि इस सिद्धान्त के निरूपण में अवश्य ही कहीं न कहीं भूल हुई है, अथवा लेखक उन असभ्य जातियों की चर्चा कर रहा है जो श्वेताङ्गों के ही संसर्ग से इस दोष के भागी बन गई हैं। क्योंकि जो जङ्गली जातियाँ इन लोगों के संसर्ग में नहीं आई हैं उनमें वेश्या-वृत्ति के समान कोई प्रथा देखने में नहीं आती। अतएव जब हम असभ्य जङ्गली जातियों की नैतिक अवस्था पर विचार करने लगें तब हमें यह बात अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि इनका श्वेताङ्गों से संसर्ग हुआ है अथवा नहीं।

यथार्थ में सभ्यता में ही वेश्या-वृत्ति का उदय होता है और वहीं वह परिपालित होती है। यह कोई दैवी घटना नहीं है। बात यह है कि सभ्यता की ही परिस्थितियों में इस कुकर्म के लिए अवकाश मिलता है, असभ्यता के दैन्य में तो ये बातें सम्भव ही नहीं हो सकतीं।

हिन्दुओं का नैतिक आदर्श।

अन्त में यहाँ पर दो-एक शब्दों में यह दिखा देना भी असङ्गत न होगा कि पूर्वीय देशों के सदाचार के विषय में योरपीय विद्वानों की क्या राय है। मिस्टर रीस डेविड्स लिखते हैं—हिन्दू-धर्म पातिव्रत-धर्म पर तो विशेष ज़ोर देता ही है, पर भारतवासियों ने ईसा के ६०० वर्ष पहले ही अपने सामाजिक नियम इस प्रकार सुगठित कर लिये थे कि उनमें गोलमाल की गुञ्जाइश ही नहीं हो सकती थी। इसके बाद जब भारतवर्ष में बौद्ध-युग का प्रादुर्भाव हुआ तब बुद्ध भगवान् ने भी हिन्दूधर्म की भाँति पातिव्रत पर बड़ा ज़ोर दिया। उनका आदेश था—ब्रह्मचर्य अथवा पातिव्रत हमको कुछ इसलिए धारण नहीं करना है कि उसके द्वारा हम समाज में डींग हाँकें अथवा यशोपार्जन करके किसी प्रकार की स्वार्थ-सिद्धि करें। ब्रह्मचर्य का उद्देश तो यह है कि उसके द्वारा हमारा हृदय पवित्र हो, उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...त का प्रकाश फैले। स्त्री-पुरुष दोनों की ही जब ऐसी बुद्धि हो तभी यथार्थ-रूप से ब्रह्मचर्य का पालन हो सकता है, तभी मनुष्य अपनी पाशविक वृत्तियों को जीत सकता है और तभी दुख और शोक का नाश होना सम्भव है।

बौद्ध-धर्म के ये केवल मौखिक सिद्धान्त नहीं थे। बरन् जहाँ जहाँ प्रारम्भिक अवस्थाओं में इसका प्रचार हुआ, वहाँ-वहाँ के लोगों ने शुद्ध हृदय से भगवान् की शिक्षाओं का अनुकरण किया। गिलबर्ट महोदय चीनी स्त्रियों के विषय में लिखते हैं—पातिव्रत-धर्म को चीनी लोग स्त्रियों का सर्वश्रेष्ठ गुण मानते हैं। एक बार होंगों पर कुछ विद्रोहियों ने धावा किया था। उस समय उपद्रवियों के हाथों से बचने के लिए सैकड़ों चीनी लड़कियाँ अपने आप एक कुएँ में कूद पड़ी थीं। इस प्रकार के उदाहरणों से चीनी स्त्रियों के उच्च पतिव्रत-धर्म का जो ज्वलन्त प्रमाण मिलता है, उस पर सन्देह करने की आवश्यकता नहीं। इसके विरुद्ध बहुत से लोग कुछ चीनी स्त्रियों के वर्तमान चरित्र से उनके इस प्राचीन आदर्श को संशय की दृष्टि से देखते हैं। वास्तव में किसी गम्भीर विषय का इस प्रकार उपहास करना ठीक नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ के अधिकांश शहरों में ऐसे गृह हैं जिन्हें वेश्या-गृह का नाम दिया जा सकता है, परन्तु ये बहुत ही लुके-छिपे हैं और केवल व्यसनी लोगों को ही इनका पता रहता है। इसके अतिरिक्त जो इनमें बैठती हैं वे या तो बदमाशों-द्वारा बहकाई जाती हैं अथवा दरिद्री माता-पिता असहाय होकर उनको छोड़ देते हैं। स्वेच्छा से कभी कोई स्त्री इस वृत्ति को धारण नहीं करती। चीन के उन बन्दरगाहों पर जहाँ सन्धि के कारण विदेशी लोग स्वतन्त्रता-पूर्वक आते-जाते हैं, अनाचार बहुत बढ़ा-चढ़ा है, किसी भीतरी शहर में लोग इसको कदापि सहन नहीं कर सकते।

किन्तु प्रश्न यह है कि बौद्ध-धर्म ने पातिव्रत-धर्म का जो आदर्श स्थापित किया था वह आया कहाँ से? असली बात यह है कि बुद्ध भगवान् ने अपनी समकालीन हिन्दू-जातियों में प्रचलित रमणी-आदर्श को अपनी शिक्षाओं में सम्मिलित कर लिया था। हाँ, उन्होंने उसको अधिक स्पष्ट करके उस पर विशेष ज़ोर बेशक दिया। अतएव जहाँ जहाँ यह धर्म फैलता गया वहीं वहीं इस आदर्श की भी प्रतिष्ठा होती गई। जहाँ बौद्ध-धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा है अथवा जहाँ के बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों में कोई गड़बड़ नहीं हुई है वहाँ आज भी जारज सन्तानों का औसत अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है।

वर्तमान समस्या।

योरपीय विद्वानों की ये उक्तियाँ सचमुच हिन्दुओं के लिए गौरव का विषय हैं। किन्तु यह तो हुआ हमारा प्राचीन गौरव। वर्तमान समय में हमारी जैसी स्थिति है वह सब पर प्रकट है। लेकिन आज-कल पाश्चात्य सभ्यता बड़े वेग से भारतवर्ष को आक्रान्त कर रही है, इसमें किसी सन्देह नहीं हो सकता। जीवन के प्रायः सभी विभागों पर उसका गंभीर प्रभाव पड़ रहा है। विद्यार्थी-जीवन में, सामाजिक आचार-विचार में, राजनीति के क्षेत्र में—साहित्य में, सङ्गीत में, खेल-कूद में—मतलब यह कि प्रायः सभी बातों में पश्चिमी सभ्यता की छाप लग रही है। ऐसी अवस्था में प्रश्न यह है कि कहीं हमारे देश में भी उससे वह कुफल पैदा न हो जो अन्य पूर्वीय जातियों को पश्चिमीय जातियों के संसर्ग से भोगना पड़ा है। अतएव इतना कहना असङ्गत न होगा कि इस समय देश के प्रत्येक विचारशील स्त्री-पुरुष का यह परम कर्तव्य है कि वह अपने पूर्वजों के ब्रह्मचर्य एवं संयम के उच्चतम आदर्श को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए प्राणपण से चेष्टा करे। वास्तव में पाश्चात्य सभ्यता की कौन सी बात संग्रहणीय है और कौन सी त्याज्य, यह कहना बहुत ही कठिन है। जिस देश की भौतिक क्षमता में वृद्धि की सम्भावना हो वह तो कभी त्याज्य नहीं कही जा सकती, लेकिन वह तभी जब उससे हमारे प्राचीन आदर्शों में क्षति पहुँचने की सम्भावना न हो। अतएव जिससे केवल विलासिता की वृद्धि और प्रचार होता हो उसके विषय में सभी को सतर्क रहना चाहिए। इन्हीं सब बातों का विचार करते हुए यह कहना भी कठिन है कि देश उन्नति की ओर जा रहा है अथवा अवनति की ओर, विकास की ओर अग्रसर है अथवा विनाश की ओर। सचमुच यह एक समस्या है और बड़ी विकट।

Printed and published by K. Mitra, at The Indian Press Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED
Cancelled
1939-2000

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar